स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

UGZY - 01
प्राणी विविधता-I

प्रथम खण्ड
प्राणी जीवन में विविधता-I (संगठन) 1

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -01
प्राणी विविधता-I

खंड

1

प्राणी जीवन में विविधता-1 (संगठन)

इकाई 1

पाँच जगत वर्गीकरण 7

इकाई 2

प्रोटोज़ोआ 35

इकाई 3

मेटाज़ोआ – उद्‌भव और विकास 64

प्राणी विविधता-I (नॉन-कॉर्डेटा)

पृथ्वी पर पाए जाने वाले लगभग 20 लाख जीवों की विभिन्न जातियों (स्पीशीज़) का अब तक नामकरण एवं उल्लेख किया जा चुका है। जीवाणु, प्रजीव, कवक और पादप इन जातियों का छोटा सा अंश है अधिकांशतर जीवधारी तो प्राणी जगत में सम्मिलित बहुकोशिकीय जीवों की जातियां ही हैं। प्राणी वर्गों का और आगे उप-विभाजन भी संतुलित नहीं है क्योंकि इनमें से केवल 3 प्रतिशत प्राणी कशेरूकी (रीढ़ की हड्डी वाले प्राणी) हैं और 97 प्रतिशत प्राणी अ-कशेरूकी (अर्थात बिना रीढ़ वाले प्राणी) हैं।

अकशेरूकी अर्थात नॉन कॉर्डेट संघ ही इस पाठ्यक्रम प्राणी विविधता-I का विषय है। इस पाठ्यक्रम में प्राणी विविधता के साथ-साथ उनके रूप और कार्यो का तुलनात्मक वर्णन किया गया है। नॉनकार्डेट प्राणियों के रूपों में अत्यधिक विविधता पायी गयी है। इस विविधता और इससे संबंधित तीव्र गति से विकसित होता ज्ञान इतना अधिक है इसमें उपयुक्त ज्ञान का चयन कर आप तक पहुँचाना आसान कार्य नहीं था। ऐसा इसलिये कि हम चाहते हैं कि आपको पर्याप्त जानकारी भी मिले पर साथ ही साथ आप पर अधिक बोझ भी न पड़े।

यह पाठ्यक्रम चार खंडों में विभाजित किया गया है। पहला खंड प्राणि-वर्गीकरण से संबंधित है। इस पाठ्यक्रम में हमने जीवों के पाँच जगत वर्गीकरण प्रणाली की प्रचलित अवधारणा का अनुसरण किया है जिसके अनुसार प्रोटोज़ोआ प्राणी जगत में सम्मिलित नहीं हैं लेकिन इन जीवों में अभी भी प्राणिविज्ञानियों की काफी अभिरूचि है और कई वैज्ञानिक इन्हें प्राणी ही मानते हैं। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा पढ़ाए जा रहे प्राणिविज्ञान के पाठ्यक्रम में आदिजन्तु (प्रोटोज़ोआ) को सम्मिलित किया गया है। इसलिए प्रोटोज़ोअन को भी हमने इस पाठ्यक्रम में एक स्वतंत्र इकाई के रूप में सम्मिलित किया है। हम इस खंड में इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि यद्यपि सभी प्राणियों में मूलभूत रूप से संरचनागत और प्रकार्यात्मक लक्षण एक जैसे होते हैं फिर भी जिस स्थान में प्राणी रहता है और विकसित होता है उसके अनुसार प्राणि जगत में शारीरिक विविधता पायी जाती है।

दूसरा खंड अ-कशेरूकी के वर्गीकरण के बारे में है। हमने इस खंड में उन्ही ज्ञात फाइलमों की चर्चा की है जिनके सजीव उदाहरण पाये जाते हैं। आप देखेंगे कि इन प्राणियों का वर्णन ज्यादा विस्तृत नहीं है। केवल उन्हीं गुणों और विशेषताओं पर अधिक ज़ोर दिया गया है जो प्रत्येक समूह में महत्वपूर्ण हैं और जिनसे विद्यार्थी का परिचित होना आवश्यक है। इस प्रकार आप विभिन्न फाइलमों की उनके विभेदक लक्षणों के अनुसार तुलना कर सकेंगे। प्राणि-वर्गीकरण को केवल वर्गों तक सीमित रखने का हर संभव प्रयास किया गया है जिससे आपके ऊपर अधिक बोझ न पड़े और किसी प्रकार की भ्रम की स्थिति उत्पन्न न हो। फिर भी आवश्यकता महसूस होने पर किसी फाइलम विशेष में प्राणी विविधता को समझाने के लिए उसके मुख्य आडर (order) से कुछ उदाहरणों को उनके चित्रों सहित समझाया गया है। इस खंड में हमने अधिकांश कम महत्वपूर्ण फाइला अर्थात तथाकथित "माइनर फाइला" का वर्णन नहीं किया है। इन फ़ाइलमों में से अधिकतर फ़ाइला में बहुत कम स्पीशीज़ होतीं हैं। और इन प्राणियों के बारे में अधिक जानकारी भी प्राप्त नहीं है। फिर भी, इन फाइलमों को इस खंड में सूचीबद्ध किया गया है और उस समूह के संगठन को समझाने के लिए चित्र भी दिए गए हैं। इससे आपको इन फाइलमों के अस्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

हम आशा करते हैं कि वर्गीकरण के उलझन में फंसे बिना आप इस खंड में दिए गए उदाहरणों आदि की सहायता से प्राणि-जीवन की विविधता के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। प्रायः जानबूझकर वर्गीकरण की सबसे आधुनिक प्रणाली का अनुसरण नहीं किया गया है। इस संदर्भ में प्रचलित प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और अप्रचलित साथ ही पुराने तथ्यों से बचा गया है। इससे आपको प्राणी जगत के प्रचलित तथा आधुनिक वर्गीकरण को समझने में सहायता मिलेगी।

आगामी खंडों, अकशेरूकियों के तुलनात्मक रूप और प्रकार्यों, में विभिन्न प्राणियों के प्रकार्य के संदर्भ में उनके संगठन के बारे में बताया गया है और यह दर्शाया गया है कि विकास के साथ-साथ इनमें किस प्रकार परिवर्तन हुए हैं।

प्राणियों को अपने जीवनकाल के दौरान चार अभिभावी अनिवार्यताओं (overriding compulsion) से गुज़रना आवश्यक होता है। ये हैं- भोजन करना, दूसरे प्राणी द्वारा खाए जाने से बचना, अपने पर्यावरण की प्राकृतिक परिस्थितियों में जीवित रहना और अपनी अगली पीढ़ी को अपने जीन देना। इस प्रकार, उनका व्यवहार इन सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का उनके प्रयास का परिणाम है। इस पाठ्यक्रम के अंतिम खंड में आप अकशेरूकियों के जीवन के किसी भी व्यवहार के अनुकूलन मान के विषय में पढ़ेंगे। इस पाठ्यक्रम में आप हानिकारक और लाभदायक अकशेरूकियों के बारे में भी संक्षेप में पढ़ेंगे।

प्राणि-विविधता के विषय में बनाए गए 3 पाठ्यक्रमों की श्रृंखला में प्राणि-विविधता-I पहला पाठ्यक्रम है। संपूर्ण श्रृंखला एक पैकेज के रूप में है, एक-एक पाठ्यक्रम के रूप में नहीं। हम यह मानकर चलते हैं कि इस पैकेज को लेने से पहले ही आपने एल.एस.सी.-01, एल.एस.सी.-05, एल.एस.सी.-06 और एल.एस.सी.-07 का अध्ययन कर लिया है और इसीलिए हमने इन पाठ्यक्रमों से व्यापक संदर्भ प्रस्तुत किए हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ/व्याख्या प्रत्येक खंड के अंत में शब्दावली में दिए गए हैं। यदि आप अपना ज्ञान बढ़ाना चाहते हैं और इन खंडों में दी गई जानकारी के बारे में विस्तार से जानना चाहते हैं तो इसके लिए आप खंड के अंत में दी गई संदर्भ सूची देख सकते हैं।

हम आशा करते हैं कि आपको इस पाठ्यक्रम की सामग्री सरल, सुबोध तथा सूचनाप्रद और समझने में आसान लगेगी।

खंड-1 प्राणी जीवन में विविधता-1 (संगठन)

इस खंड में तीन इकाइयाँ हैं। पहली इकाई -पाँच जगत वर्गीकरण में आप पढ़ेंगे कि जीवों का पाँच जगत में वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है जिनमें प्राणी जगत भी एक है। इस जगत में हमने सभी प्राणियों को सम्मिलित किया है जिन्हें पहले मेटाज़ोअन या बहु-कोशिकीय प्राणी के रूप में जाना जाता था। दूसरी इकाई- प्रोटोज़ोअन (आदिजन्तु) में आप कुछ एक कोशिकीय जीवों-"प्रोटोज़ोअन प्रजीव" के विभिन्न पहलुओं के बारे में पढ़ेंगे। आधुनिक मान्यताओं के अनुसार ये प्राणी जगत के अंग नहीं हैं लेकिन, आवश्यकता अनुसार हमने इन्हें इस पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया है। इन "प्राणि प्रजीवों" को, जैसाकि प्रायः कहा जाता है, सात महत्वपूर्ण फाइलमों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक की सामान्य विशिष्टताएं दी गई हैं और उनके परिस्थितिकीय एवं व्यावहारिक महत्व पर विशेष ज़ोर दिया गया है। हानिकारक प्रोटोज़ोअन का वर्णन अलग से किया गया है क्योंकि प्रोटोजोअन द्वारा होने वाले रोग प्रदाहजनक से लेकर प्राणघातक तक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए आज विश्व में प्रोटोज़ोअन द्वारा होनेवाली मलेरिया की समस्या काफी चिन्ताजनक है।

तीसरी इकाई- मेटाज़ोआः उद्भव और विकास में हमने प्राणी जगत में संगठन के बुनियादी स्तरों और प्राणियों की अलग-अलग शारीरिक संरचनाओं का वर्णन किया है जिनके कारण वह किसी विशेष पर्यावरण में निवास और प्रजनन कर पाते हैं। आप सीखेंगे कि किस प्रकार इन लक्षणों को विभिन्न समूहों या फाइलमों में श्रेणीबद्ध करने में प्रयोग किया जाता है। इस इकाई में एक कोशिकीय पूर्वज प्राणियों से बहु-कोशिकीय प्राणियों की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न कल्पनाओं के बारे में भी बताया गया है।

अगले खंड में आप प्रत्येक अकशेरूकी फाइलम के विशिष्ट लक्षणों, विभिन्न वर्गों तक इसके वर्गीकरण, का उदाहरण सहित अध्ययन करेंगे। जिसके द्वारा विभिन्न फाइलमों से सम्मिलित जैव विविधता का परिचय मिलेगा।

उद्देश्य

इस खंड के अध्ययन के बाद आपः

- पाँच जगत वर्गीकरण और वर्गीकरण की इस प्रणाली में विभिन्न प्राणियों के स्थान की चर्चा कर सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि प्रोटोज़ोअन जटिल संरचना और व्यवहार वाले एक कोशिकीय प्राणी हैं और जो बहुकोशिकीय जीव की किसी एक कोशिका के साथ पूर्णतः तुलनीय नहीं है,
- प्रोटोज़ोइनकी पारिस्थितिकीय और आर्थिक महत्व की चर्चा कर सकेंगे,
- प्राणियों संरचनात्मक संगठन को प्रभावित करने वाले विभिन्न लक्षणों की चर्चा कर सेकेंगे और यह बता सकेंगे कि विभिन्न समूहों में प्राणियों को वर्गीकृत करने के लिए इन लक्षणों का प्रयोग किस तरह किया जाता है।

इकाई 1 पाँच-जगत वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
1.2 पदार्थ : सजीव तथा निर्जीव
सजीव पदार्थ का रसायन
विशिष्ट संघटना
उपापचय
वृद्धि एवं परिवर्धन
जनन
उत्तेजनशीलता
अनुकूलन
समस्थापन
गतिशीलता
1.3 वाइरस वर्गः जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं के बीच की एक सीमान्त स्थिति
1.4 अकोशिक तथा कोशिक जीव
कोशिका-सिद्धान्त
कोशिका-सिद्धान्त के अपवाद
वर्तमान एकीकृत कोशिका-सिद्धान्त
1.5 प्रोकैरियोट तथा यूकैरियोट वर्ग
1.6 सजीव जीवधारियों का वर्गीकरण
स्पीशीज़—वर्गीकरण की एक महत्वपूर्ण धारणा
जीवधारियों का द्विपद नामकरण
जीवधारियों का वर्गीकरण
1.7 वर्गीकरण प्रणालियां
दो-जगत वर्गीकरण
तीन तथा चार-जगत वर्गीकरण
पांच-जगत वर्गीकरण
पांच-जगत के वर्गीकरण की सीमाएं
परस्पर संबंध तथा वर्गीकरण में छिपे अर्थ
1.8 सारांश
1.9 अंत में कुछ प्रश्न
1.10 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते ही हैं जीव विज्ञान में जीवन, जीवधारियों तथा उनमें एक-दूसरे के प्रति एवं पर्यावरण के प्रति पाए जाने वाले संबंधों का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान की इस शाखा ने हमारे जीवन के लगभग हर पहलू को प्रभावित किया है। इस क्षेत्र में होने वाली प्रगतियों ने अनेकानेक विविध उत्पादों को जैसे कि वेक्सीनों (vaccines) एवं ऐंटिबायोटिकों (antibiotics) को अस्तित्व में ला दिया। इस विज्ञान ने अंगों का प्रत्यारोपण (transplantation) एवं जीवनों (genes) का जोड़-तोड़ (manipulation) संभव बना दिया है। आज जीववैज्ञानिक अनेकानेक जीवनानिवार्य पहलुओं पर कार्य कर रहे हैं जैसे कि खाद्य-उत्पादन

बढ़ाना, पर्यावरण की गुणवत्ता को उन्नत करना, स्वास्थ्य एवं दीर्घ-आयु संबंधी रहस्यों की खोज करना तथा हृदय रोगों, एड्स (AIDS) एवं कैंसर (cancer) जैसे भयानक रोगों से टक्कर लेना। इस क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों ने पर्यावरण की पेचीदगी एवं उस नाजुक संतुलन की ओर भी हमारा ध्यान खींचा है जो समस्त जीवित एवं निर्जीव वस्तुओं के बीच पाया जाता है। इस इकाई में हम देखेंगे कि जीवित वस्तुएं निर्जीव वस्तुओं से किस प्रकार भिन्न हैं तथा स्वयं जीवित वस्तुओं में किस प्रकार परस्पर-भिन्नता पायी जाती है, इसके साथ विभिन्न वर्गीकरण प्रणालियों की जानकारी भी हम प्राप्त कर सकेंगे। इस पाठ्यक्रम की अन्य इकाईयों में प्राणियों के उन अपेक्षाकृत कम उन्नत वर्गों, जिन्हें हम एक साथ मिलाकर अरज्जुकी (गैर-कॉर्डेट, non-chordate) कहते हैं, का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- सजीव तथा निर्जीव पदार्थ की विशिष्टताएं बता सकेंगे,
- बता सकेंगे कि वाइरसों को स्पष्टतः सजीव जीवधारियों में क्यों नहीं रखा जा सकता,
- अकोशिक (acellular) तथा कोशिक (cellular) जीवधारियों में अंतर बता सकेंगे,
- प्रोकैरियोटिक (असीमकेंद्रकी) तथा यूकैरियोटिक (ससीमकेंद्रकी) कोशिकाओं में विभेद कर सकेंगे,
- कोशिका सिद्धान्त का वर्णन कर सकेंगे, इसका ऐतिहासिक विकास बता सकेंगे तथा इस सिद्धान्त के कुछ अपवादों की चर्चा कर सकेंगे,
- अलग-अलग समय पर अलग-अलग विशेषज्ञों ने सजीव जीवधारियों का किस-किस प्रकार वर्गीकरण किया है का वर्णन कर सकेंगे,
- दो-,तीन-,चार-, तथा पांच-जगत के वर्गीकरण प्रणालियों का वर्णन कर सकेंगे तथा इन सभी वर्गीकरण प्रणालियों की सीमाएं एवं अस्पष्टताएं बता सकेंगे।

1.2 पदार्थ : सजीव तथा निर्जीव (MATTER : LIVING AND NONLIVING)

वाइरसों को जीवित तथा निर्जीव के बीच की सीमारेखा कहा जाता है क्योंकि जब ये परपोषी कोशिका के बाहर होते हैं तब इनमें निर्जीव वस्तु के लक्षण पाए जाते हैं, मगर जब ये परपोषी कोशिका के भीतर होते हैं तब ये परपोषी कोशिका की उपापचयी यांत्रिकी का उपयोग करके अपना उपापचय करते एवं जनन करते हैं।

ब्रह्मांड दो आधारभूत घटकों—पदार्थ तथा ऊर्जा का बना हुआ है। पदार्थ में जैसा कि आप जानते ही हैं द्रव्यमान (mass) होता है तथा यह स्थान घेरता है। आप पदार्थ को छू सकते हैं। यह दो अवस्थाओं में पाया जाता है— सजीव एवं निर्जीव। सजीव वस्तुओं में जीवन होता है। हम सभी अधिकतर जीवित वस्तुओं तथा निर्जीव वस्तुओं को सरलता से पहचान तो सकते हैं किंतु इन दो श्रेणियों के बीच विविध अंतर बता सकना इतना सरल नहीं है। उदाहरण के लिए, आप यह तो आसानी से कह देंगे कि खरगोश सजीव है और पत्थर सजीव नहीं है तथा इन दोनों की भिन्नता का कारण भी दे सकेंगे। मगर जब आप वाइरसों पर विचार कर रहे हों तो आप यह स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते कि वे सजीव हैं अथवा निर्जीव। अतः आइए उन विविध लक्षणों की गणना एवं उनका वर्णन करें जो सामान्यतः सजीव जीवधारियों की विशिष्टताएं मानी जाती हैं। इन्हें नौ श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (1) सजीव वस्तुओं का रसायन (2) विशिष्ट संघटना, (3) उपापचय, (4) वृद्धि एवं परिवर्धन, (5) जनन, (6) उत्तेजनशीलता, (7) अनुकूलन, (8) समस्थापन, (9) गतिशीलता। ये सभी गुणधर्म एक साथ मिलकर सजीव वस्तुओं की विशिष्टताएं बनाते हैं। ये ही हैं जीवन का आधार।

1.2.1 सजीव पदार्थ का रसायन (Chemistry of Living Matter)

सभी सजीव वस्तुएं जिनमें हम भी शामिल हैं प्रोटोप्लाज़्म की बनी होती हैं। प्रोटोप्लाज़्म अनिवार्यतः एक जलीय घोल में प्रोटीनों का कोलॉयडीय निलंबन होता है। यह अणुओं का बना होता है जिनमें प्रधान तत्व कार्बन है जो हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन के साहचर्य में होता है। अन्य तत्व जैसे कि फ़ॉस्फ़ोरस, कैल्सियम, सोडियम आदि कम मात्राओं में पाए जाते हैं। सारणी 1.1 में भूपर्पटी में सर्वाधिक व्यापक तत्वों तथा हमारे शरीर में सर्वाधिक व्यापक तत्वों की आपेक्षिक प्रचुरता की तुलना की गयी है। जैसा कि आप

सारणी में देख सकते हैं, सजीव पदार्थ समस्त उपलब्ध तत्वों में से केवल कुछ बहुत थोड़े से ही तत्वों का उपयोग करता है। और तो और, सजीव जीवधारियों के भीतर पाए जाने वाले तत्वों का अनुपात पर्यावरण में पाए जाने वाले तत्वों के अनुपात से भिन्न होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि सजीव पदार्थ कुछ ऐसे पदार्थों को भी अपने भीतर ले सकता है जो निर्जीव पर्यावरण में बहुत ही कम मात्रा में पाए जाते हैं एवं इन तत्वों को वह सजीव कोशिकाओं के भीतर सांद्रित कर सकता है। यही नहीं, सजीव वस्तुओं में पदार्थ का तीव्रता से उलट-फेर का चक्र होता रहता है। उदाहरण के लिए, कार्बन को शर्करा के रूप में ग्रहण किया जाता है और उसे कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में बाहर छोड़ दिया जाता है। आप उसी एक कार्बन परमाणु को जीव के भीतर स्थायी तौर पर मौजूद नहीं देख सकते। इस प्रकार सजीव तंत्रों में पायी जाने वाली परमाणुओं तथा अणुओं की संघटना उससे कहीं ज़्यादा परिवर्तनशील होती है जितनी कि अन्य या निर्जीव वस्तुओं में होती पायी जाती है जैसे कि पत्थर में। पथरीली चट्टान में आज भी वही परमाणु मौजूद हैं जो उसमें पिछले वर्ष थे। इसके विपरीत जो खरगोश हम आज देख रहे हैं वह अधिकतर उन परमाणुओं का बना हुआ है जो सबसे बाद के हैं जब हमने उसे पिछले वर्ष में देखा था।

हाइड्रोजन, कार्बन तथा नाइट्रोजन, ये तीनों मिलकर भूपर्पटी में पाए जाने वाले समस्त परमाणुओं का 1% से भी कम भाग बनाते हैं, लेकिन सजीव पदार्थ में ये कुल परमाणुओं का लगभग 74% भाग बनाते हैं।

जीवित वस्तुओं के भीतर पदार्थ का तीव्र उलट-फेर उपापचय का भाग होता है, जो सजीव वस्तुओं की एक और विशिष्टता है।

सारणी 1.1

भूपर्पटी (स्थलमंडल, lithosphere) तथा मानव शरीर के संघटना तत्व। प्रत्येक संख्या विद्यमान परमाणुओं की सकल संख्या की प्रतिशतता को दर्शाती है; उदाहरण के लिए, भूपर्पटी के किसी भी एक निरूपक प्रतिचयन में प्रत्येक 100 परमाणुओं में से 47 परमाणु ऑक्सीजन के पाए जाते हैं। इसके विपरीत भूपर्पटी के प्रत्येक 10,000 परमाणुओं में से कार्बन के केवल 19 परमाणु ही होते हैं। पृथ्वी की भूपर्पटी में सर्वाधिक मात्रा में पाए जाने वाले चार तत्व ऑक्सीजन, सिलिकॉन, ऐलुमिनियम तथा लौह हैं। सजीव जीवधारियों में ऑक्सीजन को छोड़कर सिलिकॉन, ऐलुमिनियम तथा लौह अति सूक्ष्म मात्राओं में पाये जाते हैं। सजीव जीवधारियों में सर्वाधिक पाए जाने वाले चार तत्व हाइड्रोजन, ऑक्सीजन कार्बन और नाइट्रोजन हैं। अधिकतर प्राणियों के शरीर का लगभग 75% भाग पानी का बना होता है तथा शेष शुष्क भार का 50% भाग कार्बन का होता है जिसके साथ यदि हुआ तो बहुत थोड़ा सा ही सिलिकॉन भी हो सकता है। इसके विपरीत भूपर्पटी का 28% भाग सिलिकॉन तथा 0-2% से भी कम भाग कार्बन का होता है।

	स्थल मंडल की संघटना		मानव शरीर की संघटना संघटना
ऑक्सीजन	47	हाइड्रोजन	63
सिलिकॉन	28	ऑक्सीजन	25.5
ऐलुमिनियम	7.9	कार्बन	9.5
लोहा	4.5	नाइट्रोजन	1.4
कैल्सियम	3.5	कैल्सियम	0.31
सोडियम	2.5	फॉस्फोरस	0.22
पोटैशियम	2.5	क्लोरिन	0.03
मैग्नीशियम	2.2	पोटैशियम	0.06
टिटैनियम	0.46	सल्फर	0.05
हाइड्रोजन	0.22	सोडियम	0.03
कार्बन	< 0.1	मैग्नीशियम	0.01
		अन्य सभी	< 0.1

जीवधारियों द्वारा बनाए गए कार्बन आधारित यौगिकों को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों—कार्बोहाइड्रेटों, वसाओं तथा प्रोटीनों में विभाजित किया जा सकता है। उसके बाद, ये यौगिक कोशिका नामक संरचनाओं में संघटित हो जाती हैं और ये ही कोशिकाएं जीवधारियों की अपनी-अपनी विशिष्ट संघटना बनाती हैं।

1.2.2 विशिष्ट संघटना

सजीव वस्तुएं आकार तथा आकृति में कितनी ही भिन्न क्यों न हों, वे सब कोशिकाओं की ही बनी होती हैं। मगर वाइरस (विषाणु) एक अपवाद है। कोशिकाओं के अध्ययन से पता चलता है कि प्रत्येक कोशिका में उच्च स्तर की सम्मिश्रता एवं संघटना पायी जाती है, और उसे एक ऐसी रसायन फैक्ट्री की तरह माना जा सकता है जो पूरी तरह स्वचालित, पूरी तरह परिपूर्ण, प्रदूषण-रहित तथा श्रमिक समस्याओं से मुक्त है। यह उत्तरोत्तर और नया जीवित पदार्थ बनाती जाती है। जिस क्षण यह प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तब हम कहते हैं कि कोशिका की मृत्यु हो गयी। पर हां, यह भी सही है कि कोशिका अपने लिए पदार्थ एवं ऊर्जा को बाहर के पर्यावरण से ही प्राप्त करती है। निर्जीव पदार्थों में इस प्रकार की सम्मिश्र संरचनात्मक संघटना नहीं होती। अमीबा तथा बैक्टीरिया, आदि जैसे निम्नतर जीवधारी एककोशिक यानी केवल एक ही कोशिका के बने होते हैं। इसके विपरीत उच्चतर जीवधारियों में जैसे की मानव अथवा नीम के पेड़ में जीवधारी का शरीर अरबों-अरबों कोशिकाओं का बना होता है। कोशिकाएं परस्पर मिलकर ऊतक (tissue) बनाती हैं। अनेक ऊतक मिलकर अंग बनाते हैं जैसे कि प्राणियों का हृदय, यकृत अथवा आंत्र (चित्र 1.1)।

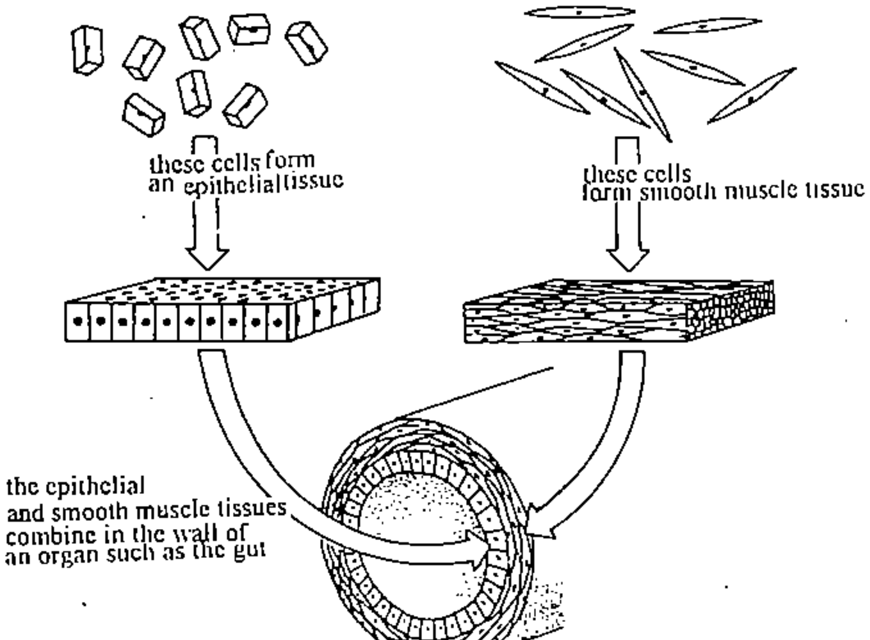

चित्र 1.1 : यह चित्र सरल रूप से दर्शाता है कि किस प्रकार कोशिकाएं मिल कर ऊतकों का निर्माण करती हैं और कैसे ऊतक मिलकर तंत्रों की रचना करते हैं।

अनेक अंग एक समन्वित रूप में कार्य करते हुए तंत्र (system) बनाते हैं, जैसे कि हमारे शरीर में नाक, श्वासनली तथा फेफड़े परस्पर मिलकर श्वसन-तंत्र बनाते हैं। सारणी 1.2 में मानवों में विविध अंगों तथा उनसे बनने वाले तंत्रों को बताया गया है।

सारणी 1.2 : इसमें मानव शरीर के विविध तंत्र बताए गए हैं।

तंत्र का नाम	तंत्र के प्रमुख अंग	मुख्य कार्य
पाचन-तंत्र	आहार-नाल, यकृत तथा पैंक्रियाज़	भोजन का पाचन तथा अवशोषण
श्वसन-तंत्र	नाक, श्वासनली तथा फेफड़े	ऑक्सीजन लेना तथा कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ना
रक्त (परिसंचरण) तंत्र	हृदय, रक्त वाहिनियां	ऑक्सीजन तथा आहार को सारे शरीर में पहुँचाना
उत्सर्गी तंत्र	वृक्क, मूत्राशय, यकृत	विषैले अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालना

संवेदी तंत्र	आँख, कान, नाक	उद्दीपनों को पहचानना
तंत्रिका-तंत्र	मस्तिष्क, मेरू रज्जु	संदेशों को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में पहुँचाना
पेशी-कंकाल तंत्र	पेशियां तथा हड्डियां	शरीर को आलम्ब प्रदान करना तथा उसमें गति लाना
जनन-तंत्र	वृषण तथा अण्डाशय	संतान उत्पन्न करना

1.2.3 उपापचय (Metabolism)

आप जानते ही हैं कि उपापचय वह प्रक्रम है जिसके द्वारा सजीव जीवधारी ऊर्जा प्राप्त करते एवं उसका उपयोग करते हैं। सजीव जीवधारियों के भीतर होने वाले नानाविध कार्यिकीय क्रिया-कलापों के दौरान बहुसंख्यक जैवरसायन अभिक्रियाएं होती हैं। जीवधारी के इन तमाम जैवरासायनिक क्रिया-कलापों को एक साथ मिलाकर उपापचय कहा जाता है। शरीर में मोटे तौर पर दो प्रकार की जैवरासायनिक अभिक्रियाएं होती हैं (चित्र 1.2)। एक में, सरल पदार्थों में संयोजन होकर सम्मिश्र पदार्थ बनते हैं, इसे **उपचय** (anabolism) कहते हैं तथा इसमें ऊर्जा का प्राप्त करना एवं उसका संग्रह करना शामिल हैं। दूसरी में, जिसे **अपचय** (catabolism) कहते हैं, सम्मिश्रण पदार्थों के विघटन के फलस्वरूप सरलतर पदार्थ बनते हैं तथा ऊर्जा का विमोचन होता है। जीवधारियों में उपापचयी अभिक्रियाएं लगातार और साथ-साथ होती रहती हैं, तथा जब कभी वे रुक जाती हैं तब जीव की मृत स्थिति आ जाती है।

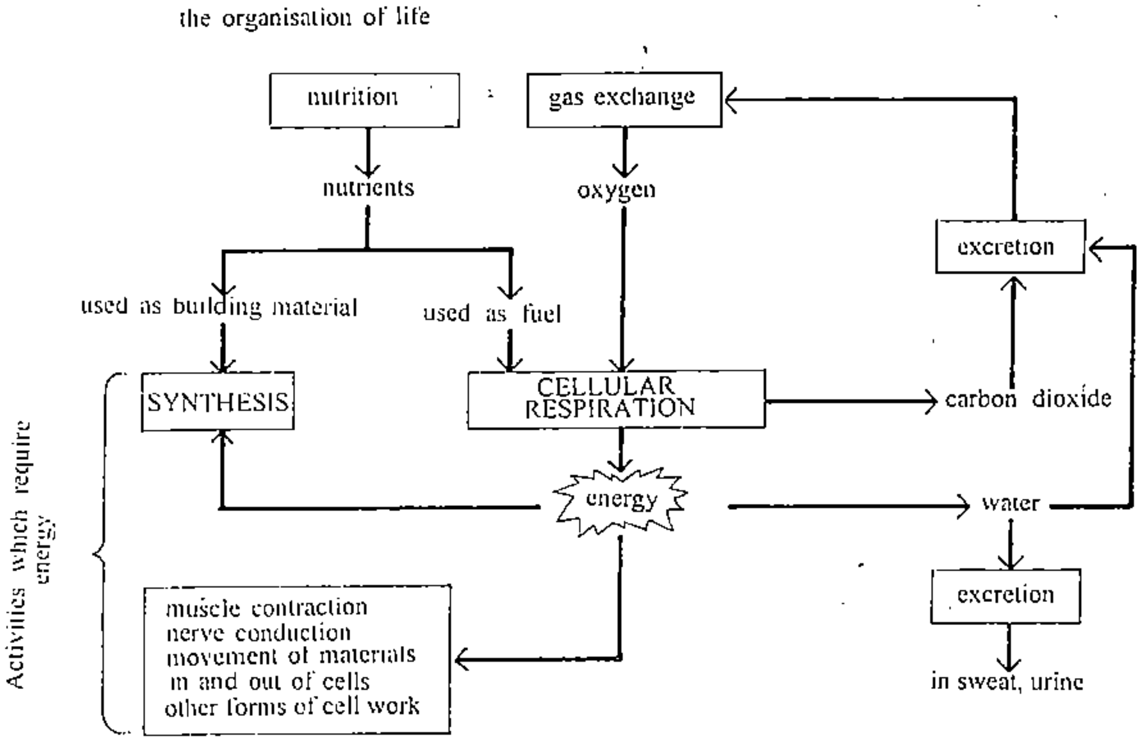

चित्र 1.2 : उपापचयी (उपचय और अपचय) अभिक्रियाएं प्रत्येक जीवधारी के भीतर सतत होती रहती हैं। यह चित्र कुछ उपापचयी अभिक्रियाओं के बीच परस्पर संबंध दर्शाता है। जीव द्वारा अंतर्ग्रहित कुछ पोषक आवश्यक पदार्थों एवं कोशिका-अंशों के संश्लेषण में उपयोग में आ जाते हैं; अन्य पोषक तत्व कोशिकीय श्वसन में ईंधन के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं: श्वसन वह प्रक्रम है जिसके द्वारा आहार में संचित ऊर्जा को प्राप्त कर लिया जाता है। यह ऊर्जा संश्लेषण में प्रयुक्त होने तथा कोशिका के भीतर होने वाले नानाविध क्रिया कलापों के लिए चाहिए। कोशिकीय श्वसन के वास्ते ऑक्सीजन भी चाहिए जो गैस विनिमय के द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। कोशिकाओं से निकली कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल जैसे अपशिष्टों को शरीर से बाहर निकालना होता है।

सजीव तंत्रों में दो मुख्य ऊर्जा दिशामार्ग होते पहचाने जाते हैं। ये हैं **प्रकाश-संश्लेषण** और **कोशिकीय श्वसन**, इन दोनों में अपनी-अपनी अलग **इलेक्ट्रॉन परिवहन श्रृंखलाएं** (electron transfer chains) होती हैं।

जीवधारियों के विविध कार्यकलापों का परम ऊर्जा स्रोत सूर्य है।

प्रकाश-संश्लेषण के दौरान कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल का सूर्य के प्रकाश तथा क्लोरोफ़िल की उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेटों का संश्लेषण होता है। यह उपचयी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में सूर्य की विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर दिया जाता है तथा कार्बोहाइड्रेटों के रासायनिक आबंधों में संचित कर लिया जाता है।

ऐडिनोसीन ट्राईफ़ास्फ़ेट (ATP) की तुलना अक्सर एक चार्जयुक्त बैटरी से की जाती है। तुरंत आवश्यकता पर यह अपना एक उच्च-ऊर्जा फ़ॉस्फ़ेट और उसके साथ जुड़ी ऊर्जा को बाहर निकाल देता है और स्वयं डिसचार्ज होकर ऐडिनोसीन डाइफ़ॉस्फ़ेट (ADP) बन जाता है। जैविकीय ऑक्सीडेशन के परिणामस्वरूप यह "डिसचार्ज हुआ" ADP फिर से चार्ज होकर ATP बन जाता है। इस प्रकार ऊर्जा, कोशिकाओं के भीतर "चार्जयुक्त" ATP के रूप में संचित रहती है और आवश्यकता पड़ने के समय उपयोग के लिए तत्काल उपलब्ध रहती है।

कोशिकीय श्वसन न्यूनाधिक रूप में प्रकाश-संश्लेषण की विपरीत क्रिया है। कोशिकीय श्वसन के दौरान सम्मिश्र कार्बन यौगिक, विशेषकर कार्बोहाइड्रेट अणुओं के टूटने पर कार्बन डाइऑक्साइड बनती तथा ऊर्जा का विमोचन होता है। यह अपचयी अभिक्रिया है। वसा तथा प्रोटीन भी अपचयी अभिक्रियाओं के दौर से गुज़रते हैं। इस प्रकार विमोचित ऊर्जा का विभिन्न क्रिया-कलापों के लिए सजीव तंत्रों में उपयोग कर लिया जाता है। यह कहना और भी सही होगा कि कार्बोहाइड्रेटों सहित सम्मिश्रण कार्बन अणुओं के जैविकीय ऑक्सीकरण के दौरान जो ऊर्जा निकलती है वह जीव द्वारा ऐडिनोसीन ट्राइफ़ॉस्फ़ेट (ATP) में संजो ली जाती है। ATP एक उच्च ऊर्जा फ़ास्फ़ेट होता है जो कोशिका के भीतर संचित कर लिया जा सकता है। इस संचित ATP से ऊर्जा को तत्काल प्राप्त कर लिया जा सकता है। जीवधारियों के विविध कार्यकलापों के लिए यही ऊर्जा-स्रोत है। इस प्रक्रिया के दौरान विमोचित होने वाले इलेक्ट्रॉन माइटोकॉण्ड्रिया के भीतर इलेक्ट्रॉन परिवहन श्रृंखला में इलेक्ट्रॉन वाहकों के द्वारा चलते जाते हैं। यहीं माइटोकॉण्ड्रिया में ही अनिवार्यतः हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के संयोजन द्वारा जल का निर्माण होता है। आपने इन पहलुओं के विषय में कोशिका जैविकी (खण्ड 3, इकाई 11 तथा 12) में अधिक विस्तार से पहले ही पढ़ रखा होगा।

निर्जीव पदार्थ में इस प्रकार के सम्मिश्रण ऊर्जा परिवर्तन होते नहीं पाए जाते।

1.2.4 वृद्धि एवं परिवर्धन (Growth and Development)

आपने बाग-बगीचों में गमलों में उगे हुए सुंदर-सुंदर पौधे देखे होंगे। पौधे में तो वृद्धि होती रहती है मगर गमले में नहीं होती। नियमतः सजीव वस्तुओं में वृद्धि होती है निर्जीव वस्तुओं में नहीं होती। परंतु कुछ निर्जीव वस्तुएं भी वृद्धि करती सी जान पड़ती हैं। उदाहरण के लिए, यदि फिटकरी अथवा सामान्य नमक के एक क्रिस्टल को संतृप्त घोल के भीतर रख दिया जाए तो आप देखेंगे कि क्रिस्टल के चारों ओर अतिरिक्त फिटकरी अथवा नमक का पदार्थ जम जाता है और क्रिस्टल का आकार बढ़ जाता है। मगर यदि आप क्रिस्टल को विलायक जल में लटका दें तब आप देखेंगे कि क्रिस्टल छोटा होता जाता तथा अंततः विलीन हो जाता है। यदि इसी प्रकार का प्रयोग आप पौधे के साथ करेंगे तो पौधा घटता या विलीन नहीं होता है। स्पष्ट है कि पौधे की वृद्धि अतिरिक्त जीवित पदार्थ के जुड़ते जाने से होती है। पौधा हो या प्राणी उसका अस्तित्व सामान्यतः एक सूक्ष्म कोशिका से ही प्रारम्भ होता है—एक ऐसी कोशिका से जिसका आकार एक मिलीमीटर व्यास के अंश से अधिक नहीं होता, तथा वह वृद्धि करके विशाल आकार प्राप्त कर लेता है। एक अकेली कोशिका से पूर्ण विकसित व्यष्टि के बनने की प्रक्रिया को परिवर्धन कहते हैं। इस प्रक्रिया में न केवल आकार में वृद्धि होना ही शामिल है वरन् उसमें सम्मिश्रता भी बढ़ती जाती है। वृद्धि और परिवर्धन जीवधारियों की महत्वपूर्ण विशिष्टताएं हैं।

वृद्धि में या तो कोशिकाओं के आकार में वृद्धि होना होता है या उनकी संख्या में वृद्धि होना, या फिर दोनों ही होते हैं। वृद्धि तब होती है जब जीव अपने पर्यावरण से पदार्थ को, जैसे कि आहार को, अपने भीतर ले लेता और फिर उसे अपनी ही संरचनाओं में संघटित कर लेता है। कोई बिल्ली भी उसी आहार पर जीवित रह सकती है जिसे हम खाते हैं। मगर बिल्ली उस आहार को अपने ही प्रकार के ऊतकों में बदलती है और पहले से अधिक बड़ी बिल्ली बनती जाती है, जबकि हम उस आहार को अपने प्रकार के ऊतकों में बदलते जाते और बढ़ते जाते हैं। प्रत्येक उदाहरण में, जिस विशेष प्रतिरूप में पोषक तत्व जुड़ते-संयोजित होते जाते हैं वह जीनों में कोडित सूचना द्वारा नियंत्रित होता है।

अमीबा तथा उसके समवर्ती सदा जीवित रहने वाले हैं बशर्ते कि उन्हें और कोई जीव खा न जाए या फिर प्रतिकूल पर्यावरण के द्वारा वे नष्ट न हो जाएं। अतः सामान्यतः अमीबा मरता नहीं है, बस अगली पीढ़ी का एक अंश बन जाता है।

1.2.5 जनन (Reproduction)

सजीव वस्तुएं स्वतः जनन द्वारा पैदा नहीं होती, वरन वे तो पहले से ही मौजूद सजीव वस्तुओं से उत्पन्न होती हैं। यह सिद्धांत जीव विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों में से ही एक है। जीवधारियों में अपने ही जैसी संतानों को पैदा करना सजीव वस्तुओं की ही विशिष्टता है। जनन में उस सूचना का संचरण शामिल है जो केंद्रक में भरे डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिइक एसिड (DNA) नामक विलक्षण वंशागति पदार्थ के द्वारा संचारित होती है। इस सूचना में परिवर्तन अथवा म्यूटेशन (उत्परिवर्तन) होते रहते हैं। आवश्यक परिस्थितियां उपलब्ध होने पर DNA अणु में प्रतिकृति की क्षमता पायी जाती है। DNA ही जीवधारियों की संरचना तथा उनके

प्रकार्य के संबंध में सूचना का कोडन करता है। उदाहरण के लिए, DNA ही सुनिश्चित करता है कि बिल्लियों के बच्चे बिलौटे ही होंगे न कि पिल्ले।

प्रोटिस्टों के समान सरल जीवधारियों में जनन अलैंगिक प्रकार का हो सकता है। उदाहरण के लिए, अमीबा-जैसे प्रोटिस्ट में जनन एक सीधे विभाजन द्वारा सम्पन्न हो जाता है (चित्र 1.3a) जब अमीबा एक निश्चित बड़ा आकार प्राप्त कर लेता है तब वह अपने DNA की एक ठीक वैसी ही प्रतिलिपि बना लेता है, तथा प्रत्येक प्रतिलिपि पृथक होकर एक केंद्रक बना लेती है। तदनंतर अमीबा दो में विभाजित हो जाता है और इस प्रकार प्रत्येक संतति अमीबा में DNA की एक प्रतिलिपि से युक्त केंद्रक होता है।

परंतु, उच्चतर पौधे तथा प्राणी लैंगिक विधि से जनन करते हैं। इस विधि में एक नर युग्मक (गैमीट) तथा एक मादा युग्मक में संयोजन होता है (चित्र 1.3b)। नर युग्मक शुक्राणु तथा मादा युग्मक अण्डा होता है। शुक्राणु अण्डे को निषेचित करके एक युग्मनज (ज़ाइगोट) बनाता है जिसमें परिवर्धन होकर एक नयी व्यष्टि बन जाती है। प्रत्येक युग्मक में अपने जनक से प्राप्त जीनों (genes-DNA) की एक सम्पूर्ण प्रतिलिपि होती है। अतः युग्मक अगुणित (हेप्लॉइड) होते हैं। दो युग्मकों का संयोजन और उसके बाद उनके केन्द्रकों का संलयन होने से युग्मनज की DNA अंतर्वस्तु दोगुनी हो जाती है, और इस प्रकार युग्मनज द्विगुणित (डिप्लॉइड) होता है। युग्मनज से व्युत्पन्न सभी कोशिकाएं द्विगुणित होंगी। इस प्रकार प्रत्येक संतति केवल एक ही जनक की प्रतिलिपि मात्र नहीं होती वरन् वह मां तथा पिता, दोनों के द्वारा दिए गए विविध जीनों की अन्योन्यक्रिया का उत्पाद होती है। इसके परिणामस्वरूप आनुवंशिक विभिन्नता पैदा होती है जो विकास एवं अनुकूलन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। अतः, हालांकि व्यष्टिगत जीव तो मर जाता है लेकिन जनन-प्रक्रिया तथा वंश के आगे बढ़ते जाने के रूप में वह स्वयं सतत बना रहता है।

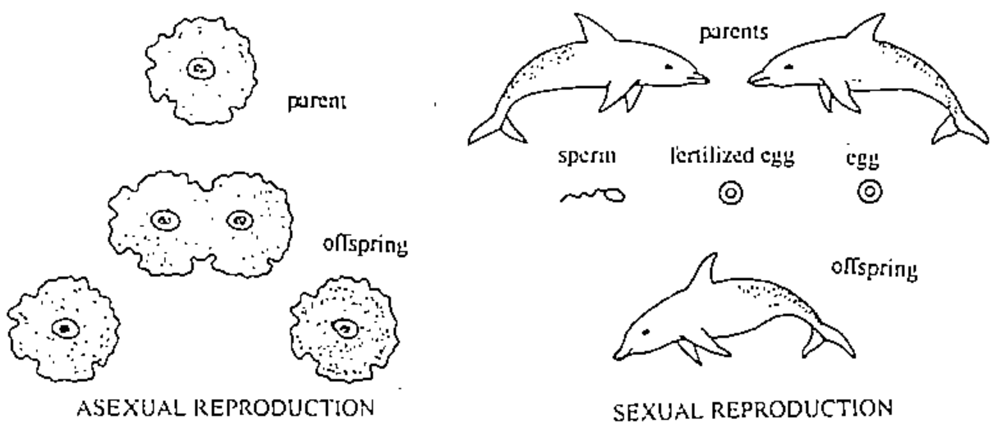

चित्र 1.3 : जनन के प्रकार : (a) अलैंगिक जनन, एक व्यष्टि से दो संतानें बनती हैं जो अपने जनक से अभिन्न होती हैं। (b) लैंगिक जनन में, दो जनकों में से प्रत्यके जनक एक-एक लैंगिक कोशिका प्रदान करता है और ये दो कोशिकाएं परस्पर जुड़कर नई संतान बनाती हैं।

1.2.6 उत्तेजनशीलता (Irritability)

यदि टार्च का तीव्र प्रकाश आपकी आंखों पर डाला जाए जो आपकी आंख व्यवहारतः स्वयं ही बंद हो जाती हैं। तीव्र प्रकाश एक उद्दीपन (stimulus) की तरह काम करता है तथा आंखों का बंद होना अनुक्रिया (response) अथवा उत्तेजनशीलता होती है। उत्तेजनशीलता में उद्दीपन के प्रति जीव में जो अनुक्रिया होती है वह एक सम्मिश्र अनुकूली क्रिया है और सजीव जीवधारियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशिष्टताओं में से एक है। समस्त सजीव वस्तुओं में विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता होती है। कुछ सामान्य उद्दीपन ये हैं: प्रकाश, ऊष्मा, गुरूत्व, ध्वनि एवं विविध रसायन। उद्दीपन दो प्रकार के हो सकते हैं—बाहरी तथा भीतरी। बाहरी उद्दीपन, पर्यावरण से संबंधित होते हैं यानि शरीर के बाहर के, तथा भीतरी उद्दीपन कोशिका के अंदर के पर्यावरण अथवा कोशिकाओं के बाहर के पर्यावरण मगर शरीर के भीतर के ही होते हैं। उच्चतर प्राणियों में विशिष्ट उद्दीपनों को प्राप्त करने के वास्ते अति विशेषित संवेदी अंग बन जाते हैं जैसे हम मनुष्यों में आंख या नाक। सरल प्राणियों में इस प्रकार के अति विशेषित अंग और यहां तक कि विशेषित कोशिकाएं भी नहीं होती, हालांकि पूर्ण जीवधारी फिर भी उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करता है। पहली नज़र में शायद आप सोचते हों कि पौधों में उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया नहीं होती। मगर निकट से देखने पर आप पाएंगे कि पौधे भी प्रकाश, गुरूत्व तथा जल के जैसे उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करते हैं। वे इन उद्दीपनों की दिशा की ओर को अथवा उनके

विमुख दिशा में वृद्धि करते हैं। कुछ पौधे तो प्राणियों के समान स्पर्श के प्रति भी अनुक्रिया करते हैं जैसे *माइमोसा* (लाजवंती/छुईमुई) तथा वीनस फ़्लाई ट्रैप (चित्र 1.4)।

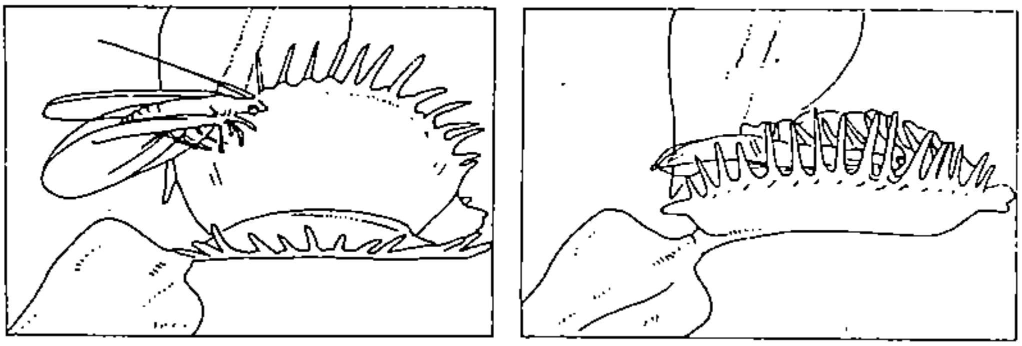

चित्र 1.4 : कुछ पौधे जैसे कि वीनस फ़्लाई ट्रैप (Venus fly-trap) किसी कीट के स्पर्श के प्रति अनुक्रिया कर सकते हैं और कीट को अपने अंदर फंसा लेते हैं। इस चित्र में वीनस फ़्लाई ट्रैप की पत्ती को एक लेसविंग नामक कीट को आकर्षित करते एवं उसे पकड़ते हुए दिखाया गया है। इस पौधे की पत्ती में एक सुगंध होती है जो कीटों को आकर्षित करती है। जब पत्ती की सतह पर बने प्रेरण रोम कीट की उपस्थिति जान जाते हैं तब मध्यशिरा पर छपका जैसा गतिशील जोड़ बनाती हुई पत्ती मुड़कर बंद हो जाती हैं, पत्ती के सीमांत एक-दूसरे से चिपक जाते तथा रोम एक-दूसरे में फंस जाते हैं जिसके शिकार बचकर बाहर नहीं निकल सकता। तदुपरांत पत्ती में से एंज़ाइमों का स्राव होता है जो पहले तो कीट को मरणासन्न करते और फिर उसे पचा लेते हैं।

उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करने में समन्वय की आवश्यकता होती है। सरलतम जीव तक में भी अनेक भाग अथवा अवयव होते हैं और प्रत्येक अवयव को सही-सही एवं अन्य अवयवों के साथ ताल-मेल बनाते हुए कार्य करना होता है तभी जाकर अनुकूली अनुक्रिया संभव होती है। प्राणियों में यह समन्वय तंत्रिका एवं अंतःस्रावी तंत्रों के माध्यम से सम्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप कार्यकरों (effectors) के द्वारा अनुक्रिया होती है। प्राणियों के महत्वपूर्ण कार्यकर पेशियां तथा ग्रंथियां होती हैं। पौधों में तंत्रिका-तंत्र नहीं होता तथा वे समन्वय के लिए मुख्यतः अपने हार्मोनों पर ही निर्भर रहते हैं।

निर्जीव वस्तुओं में उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया की क्षमता अर्थात उत्तेजनशीलता होती नहीं पायी जाती।

1.2.7 अनुकूलन (Adaptation)

उत्तेजनशीलता से ही निकटतः संबंधित है जीवों की अनुकूलन क्षमता। आपने अनुभव किया होगा कि जब आप देर तक अंधेरे कमरे में रहने के बाद बाहर खुली धूप में जाते हैं तब आपको कुछ परेशानी सी महसूस होती है

चित्र 1.5 : मादा बिटर्न (Bittern) पक्षी के पिच्छ पर बने नडघास जैसे पैटर्न उसे अण्डे सेंकते समय छिपा कर रखते हैं।

और बाहर का प्रकाश बहुत ज़्यादा तीव्र महसूस होता है। फिर भी थोड़ी सी देर के बाद आपकी वह परेशानी कम होने लगती है तथा धूप में भी आप पूर्ववत आराम से देख सकते हैं। अतः आप नए पर्यावरण के लिए "अनुकूलित" हो गए होते हैं। जीवधारी तथा उसके पर्यावरण में इस प्रकार के सामंजस्य स्थापित होने को ही **अनुकूलन** कहते हैं। अपने परिवेश के प्रति अनुकूलन कर सकने की क्षमता ही वह चीज़ है जिससे पौधे और प्राणी सतत परिवर्तनशील पर्यावरण की लपेट-चपेट में भी अपने को जीवित बनाए रखते हैं (चित्र 1.5)। उदाहरण के लिए, व्हेल (whale) का मछली-जैसा शरीर समुद्र जल में रहने के लिए एक अनुकूलन है। इसी प्रकार फूलों से मकरंद चूसने वाले पक्षियों की लम्बी चोंच मकरंद चूसने के लिए अनुकूलित है।

1.2.8 समस्थापन (Homeostasis)

परिभाषा की दृष्टि से समस्थापन जीव के भीतरी पर्यावरण में स्थिरता बनाए रखने को कहते हैं। जीवन को चलाए रखने के लिए यह अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं होता तो जीवन समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आपकी रक्त कोशिकाएं एक ऐसे माध्यम में डूबी हुई न रहें जिसकी संघटना लगभग रक्त के जैसी न हो तो ये कोशिकाएं मृत हो जाएंगी। आपका शरीर इस विधि से कार्य करता है कि आपके रक्त की संघटना लगभग एक सी ही बनी रहती है। इस सामंजस्य का बना रहना समस्थापना का ही परिणाम है। आपके शरीर के तापमान का नियमन होना भी समस्थापना क्रियाविधियों का ही उदाहरण है। जब कभी हमारे शरीर का तापमान 37°C से ऊपर हो जाता है तो हमारे मस्तिष्क की कुछ विशेष कोशिकाएं इस तापमान वृद्धि को महसूस कर लेती हैं, और तब वे मानों एक थर्मोस्टैट का सा कार्य करती हैं। ये कोशिकाएं स्वेद (पसीना) ग्रंथियों को तंत्रिका-आवेगों के रूप में संदेश भेजती हैं कि वे पसीने का स्रवण बढ़ा दें (चित्र 1.6)।

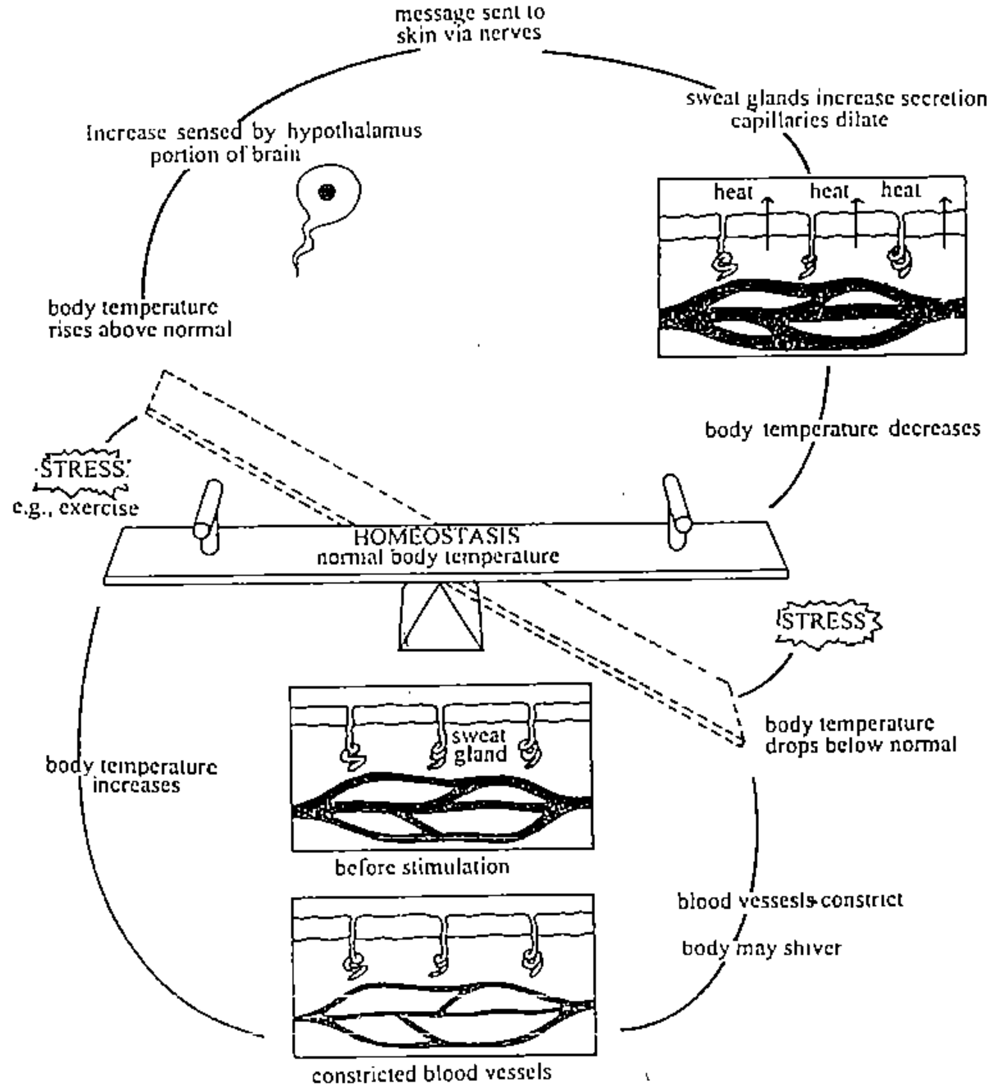

चित्र 1.6 : मनुष्य में समस्थापन क्रियाविधियों द्वारा देह के तापमान का नियमन। देह के सामान्य तापमान-परास से तापमान के ऊपर बढ़ जाने पर मस्तिष्क की विशेष कोशिकाएं उत्तेजित होकर स्वेद (पसीना) ग्रंथियों तथा त्वचा की कोशिकाओं को संदेश पहुंचाती है। त्वचा में रक्त का अधिक परिसंचरण तथा अधिक पसीना निकलना-- ये क्रियाविधियाँ शरीर से अतिरिक्त गर्मी को बाहर निकाल देने में सहायक होती हैं। जब शरीर का तापमान सामान्य परास से नीचे आ जाता है तब त्वचा की रक्त-वाहिनियां संकुचित हो जाती हैं जिससे शरीर की बाहरी सतह पर कम गर्मी पहुंचती है। साथ ही, कपकपी भी आ सकती है जिसमें पेशी संकुचन हो-होकर गर्मी पैदा होती है।

शरीर की सतह से पसीने के वाष्पन द्वारा देह का तापमान नीचे आने लगता है, तथा अन्य तंत्रिका आवेग त्वचा की बारीक रक्त वाहिनियों (केशिकाओं–capillaries) को फैला देते हैं जिससे उनमें अधिक रक्त बहने लगता है। इस बढ़े हुए रक्त प्रवाह से देह की अधिक गर्मी बाहरी सतह पर आने लगती है और उसका बाहर को विकिरण हो जाता है। निर्जीव वस्तुओं में इस प्रकार की कोई प्रणाली नहीं पायी जाती।

1.2.9 गति (Movement)

सजीव वस्तुओं की एक अन्य विशेषता है गति। इसका अर्थ सदा संचलन ही नहीं है यानी जीव का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। प्राणियों में तो गति बिल्कुल स्पष्ट है। हम अपने हाथ-पैर हिलाते हैं, तथा हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। अधिसंख्य प्राणी कम से कम अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था में इस विधि से गति करते ही हैं। पौधों में गति इतनी स्पष्ट नहीं होती। फिर भी यदि आप पादप-कोशिकाओं को सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखें तो उनके भीतर साइटाप्लाज़्म (कोशिकाद्रव्य) की धारा-गतियां देख सकते हैं। इस गति को साइक्लोसिस (cyclosis) कहते हैं। *माइमोसा* तथा वीनस-फ़्लाईट्रैप (चित्र 1.4) जैसे कुछ पौधों में गति स्पष्ट होती दिखायी पड़ती है, जैसा कि आप पहले ही पढ़ चुके हैं।

प्राणियों में संचलन-विधियां अलग-अलग प्रकार की होती हैं। कुछ निम्नतर प्राणी अपने महीन बाल जैसे सिलिया अथवा दीर्घतर कशाभों के विस्पंदन से गति करते हैं। कुछ जैसे कि अमीबा अपने पादाभों (pseudopodia) का उपयोग करके चलते फिरते हैं; ये पादाभ साइटोप्लाज़्म की अस्थायी बहिर्वेधन होती हैं। कुछ प्राणी जैसे स्पंज, प्रवाल (coral) सीपियां तथा कुछ परजीवी एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति नहीं करते। फिर भी, इनमें वे अधिकतर में स्वच्छंद तैरने वाली लार्वा अवस्थाएं होती हैं। यही नहीं, स्थानबद्ध वयस्कों में भी सिलिया अथवा कशाभ या स्पर्शक तालबद्ध रूप में गति करते रहते हैं।

इस प्रकार आपने देखा कि ऊपर वर्णन की गयी विशिष्टताओं में से एक या अधिक विशिष्टताएं सजीव वस्तुओं को निर्जीव वस्तुओं से अलग पहचान करती हैं। मगर इन सब में भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण आधार है जनन, क्योंकि जीवित वस्तुओं की विशिष्टताओं में से यही सबसे अधिक सुस्पष्ट विशिष्टता है।

बोध प्रश्न 1

बताइए कि निम्न कथनों में से कौन सा सही (✓) है, कौन सा गलत (×)

(a) मोमबत्ती की थिरकती ज्वाला सजीव होती है। (   )

(b) कृषक द्वारा भंडारित सुखाए गए मटर के बीज निर्जीव होते है। (   )

(c) समस्त पौधों तथा प्राणियों के लिए ऊर्जा का अंतिम स्रोत सूर्य है। (   )

(d) किसी भी अन्य कार्बनिक यौगिक की तरह DNA का अणु निर्जीव होता है। (   )

1.3 वाइरस वर्गः जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं के बीच की एक सीमान्त स्थिति

1 मिलिमीटर (mm) = 1/1000 मीटर (m)
1 माइक्रोमीटर (µm) = 1/1000 mm
1 नानोमीटर (nm) = 1/1000 µm

वाइरस उपकोशिकीय, परासूक्ष्मदर्शी संक्रामक साधन हैं जिनका आकार 20 nm-300 nm के बीच का होता है। इनमें से अनेक वाइरसों से रोग पैदा होते हैं, जैसे कि प्राणियों में पोलियो, डेंगू , चेचक, रेबीज, जुकाम आदि तथा पौधों में मोज़ैक, बौना होना, बैल्लन (पत्तियों का गोल-मटोल होना), आदि। ये अविकल्पी (obligatory) अंतःकोशिकीय परजीवी होते हैं। दूसरे शब्दों में, ये केवल सजीव कोशिकाओं के भीतर ही प्रगुणन कर सकते हैं। इनमें एक न्यूक्लीइक अम्ल (DNA अथवा RNA) को घेरता हुआ एक प्रोटीनी आवरण अथवा केप्सिड बना होता है।

वाइरसों की खोज 1892 में एक रूसी जीव-वैज्ञानिक इवैनोव्स्की (Iwanowsky) ने की थी, तब उसने इन्हें "फ़िल्टर-पारगामी कारक" की संज्ञा दी थी, हालांकि इन्हें बहुत बाद में इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के आगमन के बाद ही देखा जा सका था। इनकी कुछ विशिष्टताएं सजीव तथा निर्जीव दोनों ही प्रकार की वस्तुओं की हैं। अतः वाइरसों के गुणधर्मों का निरीक्षण करना लाभदायक होगा। इन्हें सजीव इसलिए माना जाता है क्योंकि इनमें जनन की क्षमता है हालांकि ऐसा ये अपनी परपोषी-कोशिका के भीतर उसकी कोशिका-कार्यप्रणाली का उपयोग करके ही कर पाते हैं। इसके विपरीत, इनमें कुछ गुणधर्म निर्जीव वस्तुओं के भी हैं। परपोषी कोशिका के बाहर होने की दशा में ये उपापचय की दृष्टि से निष्क्रिय होते हैं। किसी भी अन्य रासायनिक पदार्थ की भांति इन्हें भी क्रिस्टलीकृत किया जा सकता है। ये उपापचयी पदार्थों को अपने पर्यावरण में से प्राप्त नहीं कर सकते तथा इनमें न तो राइबोसोम होते हैं और न ही ATP-उत्पादक प्रणालियां होती हैं

जिनके द्वारा ये न्यूक्लिक अम्ल तथा प्रोटीन का संश्लेषण कर सकें। इनमें अपनी कोई एंज़ाइम-प्रणाली भी नहीं होती और ये उपापचय नहीं कर सकते। साथ ही इनमें न तो वृद्धि की क्षमता होती है और न ही ये उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया कर सकते हैं।

अतः वाइरसों के अस्तित्व में दो प्रावस्थाएं आती हैं (i) अपनी परपोषी कोशिकाओं के भीतर जहां उनकी कुछ सजीवगत विशिष्टताएं होती दिखायी पड़ती हैं, तथा (ii) अपने परपोषी के बाहर जहां वे अलग-थलग कण जैसे दिखायी पड़ते हैं और उस दशा में वे निर्जीव माने जा सकते हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि वाइरस सजीवों तथा निर्जीवों के बीच की सीमारेखा के रूप में हैं।

वाइरस नानाविध आकृतियों के होते पाए जाते हैं। कुछ गोल होते हैं अथवा बहुफलकीय (polyhedral) (चित्र 17a), कुछ कुंडलिनी (helical) एवं सिलिंडिराकार प्रकट होने वाले, या कुछ शलाका (छड़नुमा) जैसे (चित्र 1.7b) अथवा कुछ सम्मिश्र (चित्र 1.7c) प्रकार के होते हैं। वाइरसों को प्रायः उनके परपोषी के अधार पर वर्गीकृत किया जाता है जैसे कि प्राणी-वाइरस (प्राणी-कोशिकाओं में संक्रमण करने वाले), पादप-वाइरस (पादप-कोशिकाओं में संक्रमण करने वाले) तथा बैक्टीरियोफ़ाज (बैक्टीरिया-कोशिकाओं में संक्रमण करने वाले)

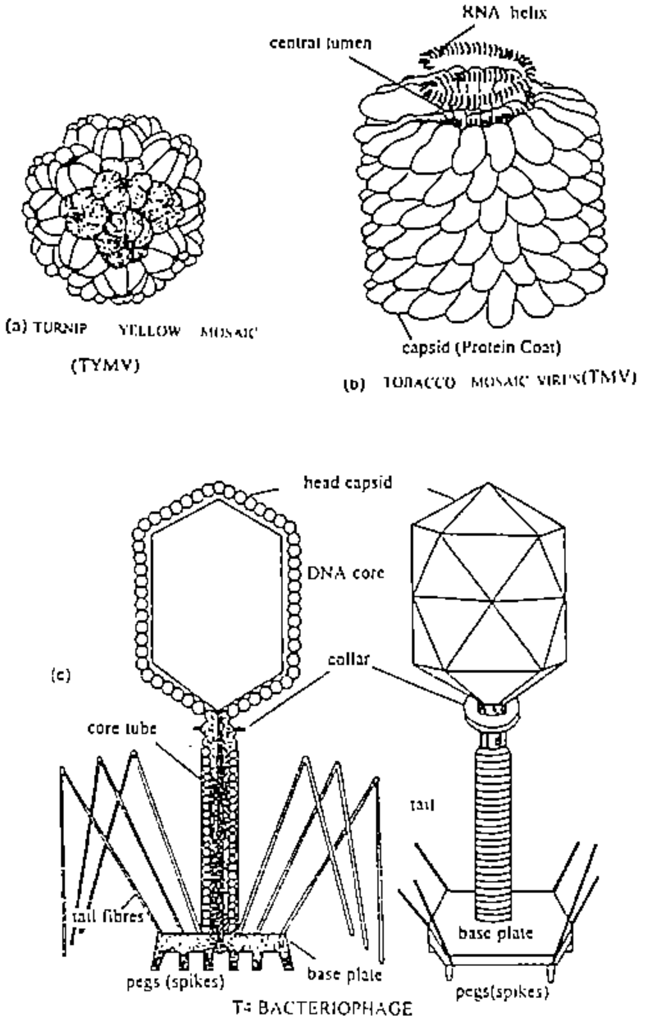

चित्र 7.1 वाइरसों की भिन्न आकृतियां (a) गोलाकार (b) कुंडलिनी, तथा (c) सम्मिश्रण

बोध प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(a) वाइरस केवल एक —————— के भीतर ही जनन कर सकते हैं।

(b) चूँकि वाइरस अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, इसलिए इनके साइज़ को —————— नामक इकाई में व्यक्त किया जाता है।

(c) वाइरसों को "फिल्टर पारगामी कारकों" के रूप में एक वैज्ञानिक जिसका नाम __________ था, ने सन् __________ में खोजा था।

(d) कोई भी वाइरस कण __________ की केंद्रीय अंतर्वस्तु तथा __________ नामक एक प्रोटीन आवरण का बना होता है।

(e) वाइरसों को __________ तभी कहा जा सकता है जब वे अपने परपोषी के भीतर होते हैं।

1.4 अकोशिक तथा कोशिक जीव
(Acellular and Cellular Organisms)

पिछले अनुभाग के अध्ययन के बाद अब आप जीवित तथा निर्जीव की विशिष्टताएं बता सकेंगे। तथापि, इन दोनों के बीच की सीमारेखा बहुत स्पष्ट नहीं है। वाइरसों जैसे अनेक स्वरूप है जिनमें ये आधार ठीक-ठीक से पूरे नहीं बैठते। इनकी संरचना अन्य जीवधारियों की संरचना से सर्वथा भिन्न है। अतः हम कहते हैं कि अधिकतर जीवधारी कोशिकाओं के बने होते हैं अर्थात् उनमें कोशिक संघटना पायी जाती है। इसके विपरीत वाइरस अकोशिक होते हैं। इस प्रकार अब हम कोशिका की संकल्पना एवं कोशिका-सिद्धान्त पर आ जाते हैं।

1.4.1 कोशिका-सिद्धान्त (Cell Theory)

सत्रहवीं शताब्दी में संयुक्त सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार ने उन सजीव वस्तुओं की ओर तीव्र रुचि पैदा की जो अन्यथा कोरी आंखों से नहीं देखी जा सकती थी। राबर्ट हुक (Robert Hooke) ने सन् 1665 में कॉर्क (काग) के पतले कतलों को एक अपरिष्कृत सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखकर "कोशिकाओं" (cells) की खोज की। ऐसा करते हुए उसने वास्तव में उन खाली जगहों का वर्णन किया जो कोशिकाओं के द्वारा घेरी गयी एवं सेलुलोज़ की दीवारों द्वारा सीमित की गयी थीं। हुक तथा उसके समकालीनों ने अन्य पौधों एवं प्राणियों से भी कोशिकाओं का वर्णन किया।

मगर, कोशिका-सिद्धान्त जो कि जीव विज्ञान का एक महानतम एवं सर्वाधिक अधारभूत सामान्यीकरण है, 200 वर्ष के बाद ही जाकर सूत्रबद्ध किया जा सका। दो जर्मन खोजकर्ताओं श्लाइडेन (Schleiden) (1838) जो एक वनस्पतिज्ञ था एवं श्वान्न (Schwann) (1839) जो एक प्राणिवैज्ञानिक था, इन दोनों को स्वतंत्र रूप में कोशिका के विषय में अपना-अपना पहला संक्षिप्त फिर भी पूर्ण बोधगम्य कथन प्रस्तुत करने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने कहा कि सभी पौधे तथा प्राणी छोटी-छोटी आधारभूत इकाइयां, जिन्हें कोशिकाएं कहते हैं, के बने होते हैं और यह भी कि कुछ जीवधारी एककोशिक होते हैं जबकि कुछ अन्य बहुकोशिक।

उसके बाद जो खोजें हुई उनसे कोशिकाओं के विषय में और अधिक प्राप्त सूचना शामिल करके इस संकल्पना में और भी विस्तार हुआ। हम जानते हैं कि कोशिकाओं को बाहर से एक कोशिका झिल्ली घेरे रहती है और यह कि उसमें साइटोप्लाज़्म (कोशिकाद्रव्य) एवं एक न्यूक्लियस (केंद्रक) होता है (चित्र 1-8a तथा b) और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कोशिका-विभाजन नामक प्रक्रिया के द्वारा कोशिकाएं लगभग समान संतति कोशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं।

इस प्रकार जाना जाने लगा कि पूर्वतः विद्यमान कोशिकाओं के विभाजन के उपरांत ही नई कोशिकाएं बनती हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि कोशिकाएं निर्जीव पदार्थ से स्वतः पैदा नहीं होती। निष्कर्ष यह कि आज जितनी भी जीवित कोशिकाएं हैं उन सभी की पूर्वजता हम उन कोशिकाओं तक ले जा सकते हैं जो प्राचीन युगों में विद्यमान हुआ करती थीं।

1.4.2 कोशिका-सिद्धान्त के अपवाद

वाइरसों के अतिरिक्त और भी कई मामले हैं जो कोशिका-सिद्धान्त के अपवाद-स्वरूप सामने आते हैं। इससे वैज्ञानिकों को आवश्यकता महसूस हुई कि इस सिद्धान्त का और अधिक व्यापक दृष्टिकोण लिया जाए। चित्र 1.9 में आप कुछ जीवधारियों को देखेंगे जैसे कि बैक्टीरिया, नील-हरित शैवाल, माइकोप्लाज़्मा, अमीबा, *क्लैमाइडामोनस* तथा *स्पूकर*। ये सभी मूलतः एक ही कोशिका के बने हैं। ऐसे मामलों में एक अन्य समस्या सामने आ खड़ी होती है। आपने अभी तक सीखा था कि किसी भी जीवधारी की आधारभूत संरचनात्मक

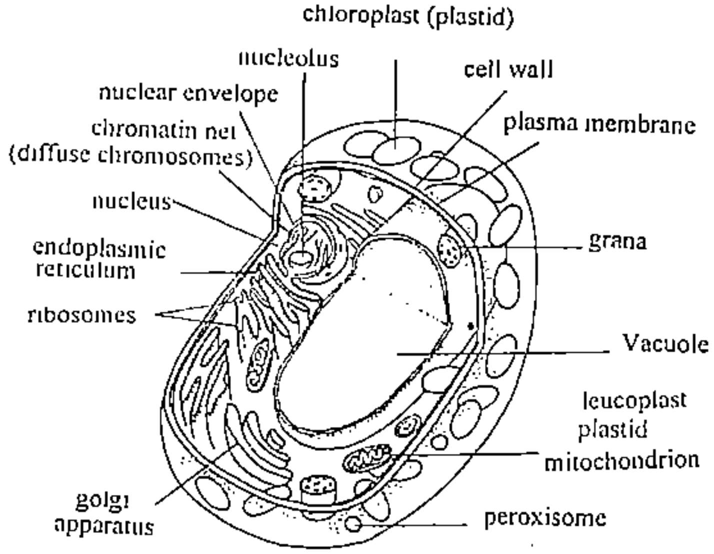

(a) Plant cell

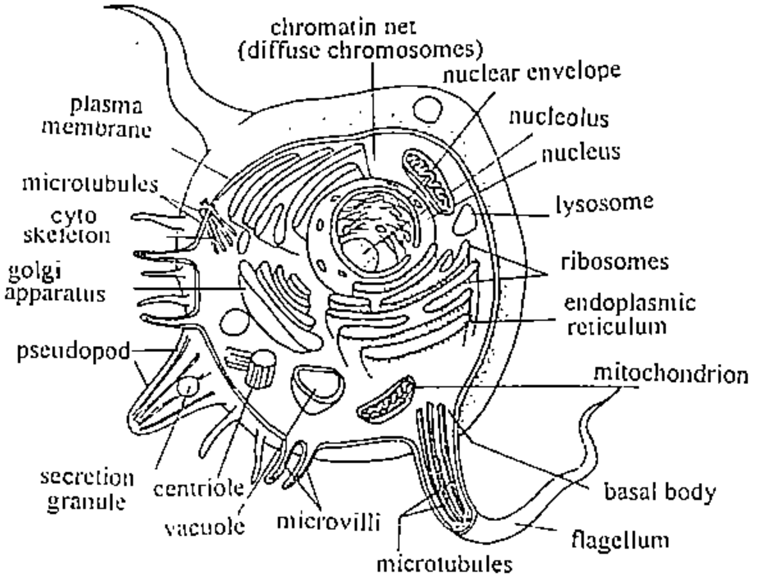

(b) Animal cell

चित्र 1.8 : सामान्यीकृत पादप-कोशिका (a) एवं प्राणि-कोशिका (b)। वास्तव में किसी भी कोशिका, न तो पादप-कोशिका (a) और न ही प्राणि-कोशिका (b) में वे समस्त विशिष्टताएं मौजूद पायी जाती हैं जो इन मिश्र आरेखों में दर्शायी गयी हैं। ये दोनों ससीमकेंद्रकी (यूकेरियोटिक) कोशिकाएं हैं अर्थात इनमें से प्रत्येक में एक केंद्रक है। यह केंद्रक एक न्यूनाधिक गोलाकार पिंड होता है जिसका दोहरी झिल्ली वाला एक केंद्रक-आवरण होता है, और भीतर भरा आनुवंशिक पदार्थ एवं एक सघनतर केंद्रिका (न्यूक्लियोलस) होता है। इस प्रकार यह केंद्रक शेष कोशिका से पृथक हुआ रहता है। कोशिका झिल्ली के भीतर की एक अर्धद्रव्य संहति साइटोप्लाज़्म (कोशिकाद्रव्य) होता है जिसके भीतर अनेक कोशिकांग तथा आंतरिक झिल्लियां होती है। पादप तथा प्राणी दोनों प्रकार की कोशिकाओं में ये सब होते हैं : माइटोकॉण्ड्रिया जिनमें आहार-अणुओं का ऑक्सीकरण होता है, गॉल्जी उपकरण जिसमें निर्मित कोशिका-पदार्थ संचित होते हैं, राइबोसोम जिन पर प्रोटीनों का संश्लेषण होता है, तथा एंडोप्लाज़्मी रेटिकुलम जिसमें विविध भीतरी झिल्लियां होती हैं और जो भीतर की ओर केंद्रक से तथा बाहर की ओर प्लाज़्मा-झिल्ली से सम्पर्क बनाए रखता है। किंतु पादप-कोशिकाएं तथा प्राणि-कोशिकाएं समान नहीं होती। पादप-कोशिका का एक सर्वाधिक सुव्यक्त लक्षण उसके भीतर विशाल धानियों का पाया जाना है जिनके भीतर एक स्वच्छ एवं प्रायः वर्णकयुक्त तरल कोशिका-रस (cell sap) भरा रहता है। (प्राणियों की कोशिकाओं में धानियां प्रायः कम पायी जाती हैं और वे अक्सर छोटी-छोटी होती हैं) । पादप-कोशिकाएं एक मोटी अर्धदृढ़ कोशिका भित्ति से आवरित रहती हैं। इसके विपरीत, प्राणि-कोशिका की आकृति अधिक परिवर्तनशील है। सेंट्रियोल प्ररूपतः प्राणि-कोशिकाओं में पाए जाते हैं जबकि पादप-कोशिकाओं में प्लास्टिड होते हैं जिनमें एक तो प्रकाश-संश्लेषणकारी क्लोरोप्लास्ट एवं दूसरे ल्यूकोप्लास्ट होते हैं। प्राणि-कोशिका की सतह से अवशोषी सूक्ष्मविलाई अथवा परिग्राही पादाभ निकले हो सकते हैं। कुछ प्राणि-कोशिकाओं में गतिशील सम्मिश्रण कशाभ अथवा सिलिया एवं उनसे संबद्ध आधारीय पिंड होते हैं। उच्चतर पौधों में सिलिया अथवा कशाभों का अभाव होता है, हालांकि फ़र्नों तथा कुछ निम्नतर पौधों में कशाभों से युक्त गतिशील शुक्र कोशिकाएं होती पायी जाती हैं। लाइसोसोम केवल प्राणि-कोशिकाओं में ही पाये जाने वाले कोशिकांग होते हैं।

सिनसिशियमी कोशिकाएं तब बनती हैं जब या तो केंद्रक के विभाजन के बाद कोशिक-विभाजन नहीं होता या कोशिकाओं का संलयन हो जाता है। अतः ये विशेष मामले हैं जिनमें व्यष्टिगत केंद्रक कोशिका-झिल्ली द्वारा एक-दूसरे से पृथक नहीं होते बल्कि वे एक सम्मिलित झिल्ली द्वारा परिसीमित एक सम्मिलित साइटोप्लाज़्मा में पड़े होते हैं।

इकाई कोशिका ही होती है कुछ-कुछ ऐसे जैसे कि किसी दीवार में ईंटें। मगर ऊपर दिए गए उदाहरण में मात्र अकेली कोशिका ही पूर्ण जीव है, और कैसा आश्चर्य है कि वही अकेली कोशिका समस्त शरीर प्रकार्यों को जैसे कि श्वसन, पाचन, उत्सर्जन आदि को पूरा करती है। समस्या तब और भी ज्यादा जटिल हो जाती है जब हम देखते हैं कि अनेक बहुकेंद्रकी प्रोटोज़ोआ तथा बहुकेंद्रकी प्राणी ऊतक आदि भी पाए जाते हैं उदाहरण के लिए, अमीबा की एक स्पीशीज़ *कैओस* (*Chaos*) के शरीर में अनेक केंद्रक मौजूद होते हैं और इसी तरह *ओपेलाइना* (*Opalina*) (सिलिएट) के जैसे और भी अनेक प्रोटोज़ोआ हैं। सामान्य ताल-पादप *निटेला* (*Nitella*) में विशालकाय कोशिकाएं होती हैं जिनके साइटोप्लाज़्म में अनेक-अनेक केंद्रक होते हैं। हमारे शरीर में भी ऐसे ऊतक तथा ऐसी कोशिकाएं हैं जिनमें सिनसिशियमी व्यवस्था पायी जाती हैं जैसे कि रेखित पेशी-रेशों में।

अनेक केंद्रकों से युक्त इस प्रकार की कोशिकाओं को सिनसिशियमी (syncytial) कहा जाता है। ऊपर बतायी गयी समस्या इस बात से पैदा हुई कि कोशिका-सिद्धान्त का प्रस्तुतीकरण बहुकोशिक जीवों पर किए गए प्रेक्षणों पर आधारित था। इससे एक गलत धारणा यह पैदा हुई कि एककोशिक जीव बहुकोशिक जीवों की एक कोशिका के समान हैं।

जैसा भी हो, अब यह निस्संदेह स्थापित हो चुका है कि एकीकृत-सिद्धान्त जैसा कि वह आज है केवल वाइरसों को छोड़कर बैक्टीरिया से लेकर प्रोटोज़ोआ और मानवों तक सब पर सर्वत्र लागू होता है।

1.4.3 वर्तमान एकीकृत कोशिका-सिद्धान्त

एककोशिक जीवधारियों और विशेषकर जीवधारियों के सदृश वाइरसों के अस्तित्व के स्पष्टीकरण के लिए कोशिक-सिद्धान्त का एक प्रकटतः गंभीर अर्थ-प्रसार करना होगा। यद्यपि वाइरसों को सजीव माना जाता है, मगर उनकी देह-संघटना अकोशिक होती है।

आज के एकीकृत कोशिका सिद्धान्त में चार बातें की जाती हैं : (1) सभी सजीव वस्तुएं या तो एक अकेली कोशिका की एक से अधिक या कोशिकाओं एवं कोशिका-उत्पादों की बनी होती हैं। कोशिका, एक कोशिक-झिल्ली द्वारा परिसीमित जीवद्रव्य-संहति होती है तथा उसके भीतर एक केंद्रक (न्यूक्लियस) होता है। (2) नई कोशिकाएं केवल पूर्वविद्यमान कोशिकाओं के विभाजन से ही बनती हैं। (3) समस्त कोशिकाओं के रासायनिक रचकों एवं उपापचयी क्रियाकलापों में आधारभूत समानताएं पायी जाती हैं। (4) कुल मिलाकर जीव के क्रियाकलाप को उसकी परस्पर निर्भर कोशिकीय इकाईयों के सामूहिक क्रियाकलापों एवं उनकी अन्योन्यक्रियाओं के रूप में देखा-समझा जाता है।

इस आधार पर सजीव जीवधारियों को मोटे तौर पर इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :

I. **अकोशिक** (acellular) स्वरूप जिनका शरीर कोशिकाओं का नहीं बना होता, जैसे वाइरस, तथा

II. **कोशिक** (cellular) स्वरूप जिनका शरीर कोशिकाओं का बना होता है। कोशिक स्वरूप और आगे इस प्रकार विभाजित किए जा सकते हैं :

   (a) **एककोशिक जीव** (unicellular organisms) जिनके शरीर में केवल एक ही कोशिका होती है जैसे बैक्टीरिया, नील-हरित शैवाल, प्रोटोज़ोआ-प्राणी, आदि, तथा

   (b) **बहुकोशिक जीव** (multicellular organisms) जिनके शरीर में अनेक कोशिकाएं होती हैं। इस प्रकार के जीवों में कोशिकाएं मिलकर ऊतक, ऊतक मिलकर अंग तथा अंग मिलकर अंग-तंत्र बनाते हैं। इन जीवों के उदाहरण हैं प्राणियों में स्पंजों से लेकर मानव तक तथा पौधों में अधिसंख्य शैवालों से लेकर पुष्पी पौधों तक।

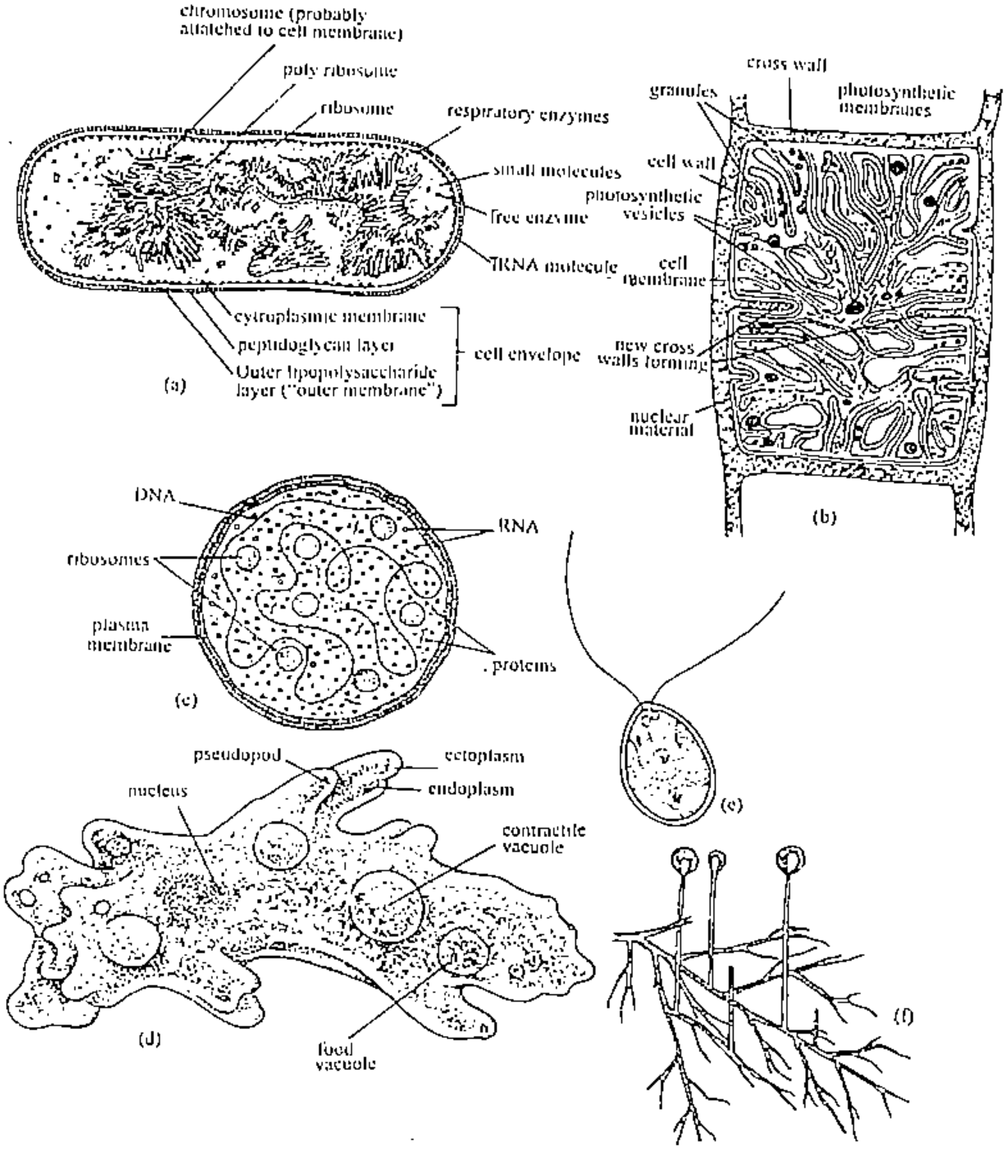

चित्र 1.9 : कुछ एककोशिक जीव : (a) बैक्टीरियम (*ऐशेरिकिया कोलाई, Escheriachia coli*), (b) नील-हरित शैवाल, (c) माइकोप्लाज़्मा, (d) अमीबा (एक प्रोटोज़ोअन) (e) *क्लैमाइडोमानस* (एक शैवाल), तथा (f) म्यूकर *(Mucor)* (एक कवक)

बोध प्रश्न 3

बताइए कि निम्न कथनों में से कौन सही हैं तथा कौन गलत :

(a) कोशिका-सिद्धान्त को श्लाईडेन तथा श्वान्न ने अलग-अलग प्रस्तुत किया था। (सही/गलत)

(b) पौधे तथा वाइरस दोनों ही आधारभूत इकाईओं, जिन्हें कोशिकाएं कहते, के बने होते हैं। (सही/गलत)

(c) कुछ कोशिकाएं हैं जो स्वतःजात पैदा होती हैं। (सही/गलत)

(d) कोशिकाएं अपने रासायनिक रचकों तथा उपापचयी क्रियाकलापों में भिन्न होती हैं। (सही/गलत)

(e) किसी जीव की क्या विशिष्ट प्रकार्य-विधि होगी, यह उसकी परस्पर-निर्भर कोशिका इकाइयों की सामूहिक क्रियाओं एवं अन्योन्यक्रिया पर निर्भर करता है। (सही/गलत)

1.5 प्रोकैरियोट तथा यूकैरियोट वर्ग (PROKARYOTES AND EUKARYOTES)

अब तक आप जान चुके हैं कि कोशिका-सिद्धान्त सभी सजीव जीवों पर सही बैठता है। मगर, यदि आप एक ओर किसी बैक्टीरिया (चित्र 1.9a), किसी नील-हरित शैवाल (चित्र 1.9b) अथवा किसी माइकोप्लाज़्मा (चित्र 1.9c) को तथा दूसरी ओर किसी एक अमीबा (चित्र 1.9d), *क्लैमाइडोमोनस* (चित्र 1.9e) अथवा किसी बहुकोशिक जीव की व्यष्टिगत कोशिका (चित्र 1.9f), चाहे वह पादप की हो अथवा प्राणी की (चित्र 1.8a और 1.8b) को सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखें तो आप इन दोनों समूहों में एक स्पष्ट अंतर पाएंगे। पहले समूह के जीवों में आप एक सुनिर्मित केंद्रक नहीं पाएंगे क्योंकि उनमें एक पृथक स्पष्ट केंद्रक नहीं होता तथा उनके केंद्रक पदार्थ को कोई केंद्रक-झिल्ली नहीं घेरे रहती। इसके विपरीत अमीबा, *क्लैमाइडोमोनस* अथवा बहुकोशिक जीव चाहे वह पौधा हो या प्राणी, की व्यष्टिगत कोशिका की विशेषता है कि उसमें केंद्रक को घेरती हुई एक स्पष्ट सुनिर्मित झिल्ली बनी होती है। क्रम-विकास की दृष्टि से झिल्ली-परिसीमित केंद्रक का अभाव होना आदिम माना जाता है तथा उसका मौजूदा होना उन्नत दशा माना जाता है। केंद्रक (न्यूक्लियस) को केरियॉन (karyon अथवा caryon) भी कहा जाता है; अतः जीवविज्ञानियों ने जीवों की इन दो श्रेणियों के लिए, दो अलग-अलग शब्द बनाए हैं— **प्रोकैरियोट** (prokaryotes) (असीमकेंद्रकी) जिनकी कोशिकाओं में झिल्ली-परिसीमित केंद्रक नहीं होता तथा **यूकैरियोट** (eukaryotes) (ससीमकेंद्रकी) जिनकी कोशिकाओं में सुस्पष्ट अलग बना केंद्र होता है।

प्रोकैरियोटों तथा यूकैरियोटों में और भी अनेक अंतर पाए जाते हैं, जैसा कि आप सारणी 1.3 में देख सकते हैं।

सारणी 1.3 प्राकैरियोटों तथा यूकैरियोटों की कोशिकाओं में भिन्नताएं।

लक्षण	प्रोकैरियोट	यूकैरियोट	
		उच्चतर पादप	**प्राणी**
1. आकार (साइज़)	0.2-500μm, अधिकतर 1μm	30-50μm	10-20μm अधिकतर 10μm
2. कोशिका भित्ति	प्रायः असेलुलोज़ी तथा पेप्टिडोग्लाइकैन की बनी	होती है, अधिकतर सेलुलोज़ी	नहीं होती
3. अंतः झिल्लियां	नहीं होती	होती हैं	होती हैं
4. केंद्रक झिल्ली	नहीं होती	होती हैं	होती है
5. क्रोमोसोम	एकल, वृताकार, हिस्टोन नहीं होते	बहुल, रेखीय हिस्टोनों से युक्त सम्मिश्रण	बहुल, रेखीय हिस्टोनों से युक्त सम्मिश्रण
6. केंद्रिका	नहीं होती	होती है	होती है
7. विभाजन	अमाइटोसिस	माइटोसिस अथवा मीयोसिस	माइटोसिस अथवा मीयोसिस
8. लैंगिक जनन	विरल	सामान्यतः	सामान्यतः
9. राइबोसोम	सूक्ष्म, 70s	बड़े 80s	बड़े 80s
10. माइटोकॉण्ड्रिया	नहीं होते, श्वसन एंजाइम प्लाज़्मा-झिल्ली से संबद्ध	होते हैं	होते हैं

(क्रमशः)

11. प्लास्टिड	नहीं होते, प्रकाश-संश्लेषी एंजाइम प्लाज़्मा-झिल्ली से संबद्ध	होते हैं	नहीं होते
12. कशाभ अथवा सिलिया (जब होते हैं)	होते हैं, सरल एकल सूक्ष्म रेशक के बने	नहीं होते*	होते हैं, सम्मिश्रण, नौ परिधीय तथा दो केंद्रीय सूक्ष्मरेशक (9+2 व्यवस्था)
13. एंडोसाइटोसिस तथा एक्सोसाइटोसिस	नहीं होते*	नहीं होते*	होते हैं

* हालांकि उच्चतर पौधों में नहीं होते फिर भी ये लक्षण अधिक आदिम पौधों में पाए जाते हैं। प्रकट्तः ये विकास के दौरान समाप्त हो गए हैं।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए कथनों के वास्ते एक-एक शब्द बताइए :

(a) ऐसे जीव जिनका शरीर कोशिकाओं का नहीं बना होता।

(b) ऐसी कोशिकाएं जिनके भीतर झिल्ली से परिसीमित केंद्रक मौजूद नहीं होता।

(c) ऐसी कोशिकाओं का प्रकार जिनमें अंतः झिल्लियां होती हैं।

(e) अनेक कोशिकाओं के बने जीव

1.6 सजीव जीवधारियों का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF LIVING ORGANISMS)

सजीव जीवधारियों की दुनियां अति विविध है। जीववैज्ञानिक इन विविध स्वरूपों को स्पीशीज़ (प्रजातिया) कहते हैं। अनुमानतः जीवित पौधों तथा प्राणियों की पंद्रह लाख (15,00,000) से अधिक स्पीशीज़ ज्ञात हैं तथा इससे भी अधिक की खोज अभी बाकी है। इसके विपरीत पृथ्वी की सतह से लाखों-लाखों स्पीशीज़ विलुप्त हो चुकी हैं प्रत्येक स्पीशीज़ की व्यष्टियां नर हो सकती हैं या मादा, बच्चे या प्रौढ़, और वे आकृतियों आकारं, रंग आदि में परस्पर भिन्न भी होती हैं। पौधों तथा प्राणियों में पायी जाने वाली यह विविधता इतनी विशाल एवं चकरा देने वाली हो सकती है कि यदि इन्हें किसी क्रम व्यवस्था में न रखा जाए तो इसमें से कोई भी अर्थ निकालना लगभग असंभव हो जाएगा। पौधों एवं प्राणियों को उनकी समानताओं एवं उनके परस्पर संबंधों के आधार पर एक क्रम-व्यवस्था के अनुसार व्यवस्थित करने का ही दूसरा नाम वर्गीकरण है। विज्ञान की इस शाखा को **वर्गिकी** (taxonomy) कहा जाता है। अर्न्स्ट मायर (Ernst Mayr) ने वर्गिकी (टैक्सॉनॉमी) की परिभाषा करते हुए इसे वर्गीकरण का सिद्धान्त एवं व्यवहार कहा है।

"लाख" तथा "करोड़" के शब्द मुख्यतः भारत में ही इस्तेमाल होते हैं और ये संस्कृत मूल के हैं। अन्य देशों में "मिलियन" शब्द का प्रचलन है, मगर ध्यान दीजिए कि

1 लाख	= 1,00,000
1 मिलियन	= 1,000,000 (दस लाख)
1 करोड़	= 10,000,000

1.6.1 स्पीशीज़ (Species)—वर्गीकरण की एक महत्वपूर्ण धारणा

अब तक आपके सामने यह शब्द "स्पीशीज़" अनेक बार आ चुका है। जीवविज्ञान में इस शब्द का एक निश्चित अर्थ है। यद्यपि सजीव संसार विशाल एवं विविध है, फिर भी वैज्ञानिक ने पौधों तथा प्राणियों के सुनिश्चित स्वरूप एवं उनके प्रकारों को पहचान लिया है।

इन प्रकारों को **स्पीशीज़** (species) कहते हैं (अंग्रेजी में "स्पीशीज़" शब्द एकवचन तथा बहुवचन दोनों के लिए इस्तेमाल होता है) अर्न्स्ट मायर (1969) ने अपनी पुस्तक **"प्रिंसिपिल्स ऑफ सिस्टेमेटिक ज़ूलोजी"** में स्पीशीज़ की एक अच्छी परिभाषा प्रस्तुत की है। उसके अनुसार "स्पीशीज़ ऐसी प्राकृतिक समष्टिों का समूह होता है जो वास्तव में परस्परजनन कर रही होती हैं अथवा इसकी उनमें क्षमता होती है तथा ये समष्टियां ऐसे ही अन्य समूहों से जननतः पृथक होती हैं"। मगर ऐसे अनेकानेक मामले हैं जिनमें यह कठोर परिभाषा

वाइरसों को इस समय तक द्विपद नाम नहीं दिए गए हैं। उन्हें प्रायः दो प्रकार से नाम दिए जाते हैं, एक तो उस स्थान के आधार पर जो उनकी पहचान में निहित है (जैसे सेंडई वाइरस जो संडाई स्थान से प्राप्त हुआ है) या उस रोग अथवा लक्षण के आधार पर जो उनसे पैदा होते हैं जैसे कि पोलियो वाइरस, मानव प्रतिरक्षा अभाव वाइरस (HIV), तम्बाकू का मोज़ेक वाइरस। साथ ही, वाइरसों को उनके परपोषी-परास अथवा जिन ऊतकों में वे आक्रमण करते हैं उनके आधार पर इन्हें फैमिलियों तथा उच्चतर श्रेणियों में विभाजित करने के प्रयास भी किए गए हैं। वाइरसों की एक और भी बेहतर प्रणाली को इस समय विकसित किए जाने का प्रयास हो रहा है जो उनके अपरिवर्तनशील लक्षणों पर आधारित होगी।

अथवा आधार लागू नहीं हो पाता, अतः व्यवहारतः स्पीशीज़ की पहचान एवं वर्णन आकारिकीय तथा शारीरीय लक्षणों पर ही आधारित रहते हैं। सामान्यतः वर्गिकी में इस्तेमाल होने वाले समूहन में स्पीशीज़ ही निम्नतम श्रेणी है।

1.6.2 जीवधारियों का द्विपद नामकरण (Binomial Nomenclature)

जीवविज्ञानियों द्वारा स्वीकृत आज की आधुनिक वर्गीकरण प्रणाली का सुझाव सर्वप्रथम 1758 में एक स्वेडनवासी (Swedish) वनस्पति लिनियस (Linnaeus) (1707-1778) ने अपनी कृति "Systema Naturae" में रखा था जो आकारिकी पर आधारित था। उसने प्रस्ताव रखा कि प्रत्येक प्रकार के जीव को, अपना ही सबसे अलग लैटिन में द्विपद नाम (दो शब्दों का नाम) दिया जाए जो उसे अन्य सभी प्रकार के जीवों से पृथक पहचान प्रदान करा सके। इस द्विपद नाम का पहला शब्द उस जीनस को होना चाहिए जिसमें यह स्पीशीज़ आती हो। जीनस (genus, बहुवचन genera) में एक या एक से अधिक निकटतः संबंधित एवं समान स्पीशीज़ आती हैं। [द्विपद नाम के दूसरे भाग का नाम स्वयं उसी स्पीशीज़ को व्यक्त करता है।] उदाहरणतः इस प्रणाली के अनुसार पालतू बिल्ली का नाम *Felis domestica* है। इसमें पता चलता है कि घरेलू बिल्ली को जीनस *Felis (फ़ीलिस)* में रखा गया है तथा इस जीनस के भीतर इसे एक विशिष्ट अथवा स्पीशीज़ का गुणसूचक नाम *domestica (डोमेस्टिका)* दिया गया है। यह पूरा नाम पालतू बिल्ली को इसी जीनस *Felis* की अन्य स्पीशीज़ से पृथक करता है जैसे कि *Felis bengalensis* (*बेंगालैनसस*) (तेंदुए) से तथा *Felis chaus* (*चौस*)(जंगली बिल्ली) से, जो सभी भारत में ही पायी जाती हैं। इसका यह भी अर्थ है कि जीनस *Felis* के अंतर्गत आनेवाली सभी स्पीशीज़ किसी अन्य जीनस के अंतर्गत आने वाली स्पीशीज़ की अपेक्षा आपस में अधिक निकट के संबंध वाली एवं एक दूसरे के समान हैं। रोमन लिपि में लिखे जाने पर जीनस नाम का पहला अक्षर बड़ा लिखा जाता है। इसके विपरीत स्पीशीज़ नाम हमेशा छोटे अक्षर से शुरू होता है। जीनस तथा स्पीशीज़ दोनों नाम छपने में तिरछे टाइप में तथा हाथ से लिखने अथवा टाइप करने पर उनके नीचे रेखा खींची जाती है।

1.6.3 जीवधारियों का वर्गीकरण

सारणी 1.4 : *Homo sapiens* का वर्गीकरण।

श्रेणी	टेक्सॉन
जगत	ऐनिमेलिया
फ़ाइलम	कॉर्डेटा
क्लास	मैमेलिया
आर्डर	प्राइमेटीज़
फैमिली	होमिनिडी
जीनस	*Homo*
स्पीशीज़	*Homo sapiens*

अब आपने देख लिया कि द्विपद नामकरण से प्रत्येक स्पीशीज़ को अपना ही सबसे अलग तथा असंदिग्ध नाम मिल जाता है। यह आवश्यक है कि स्पीशीज़ को जीनसों में तथा जीनसों को उच्चतर श्रेणियों में समूहित किया जाए क्योंकि ऐसा करने से उनकी समानताओं तथा एक दूसरे के साथ अनेक संबंधों के विषय में अधिक सूचना प्रकट हो सकेगी (सारणी 1.4)। अतः निकट संबंध वाली अनेक जीनसों को एक फैमिली (Family) में समूहित किया जाता है तथा निकट-संबंधों वाली फैमिलियों को एक ऑर्डर (Order) में, निकटतः संबंधित आर्डरों को एक क्लास (Class) में, निकट संबंध वाले क्लासों को एक फ़ाइलम (Phylum) में अथवा पौधों के मामलों में डिवीजनों, (Divisions) में तथा विविध फ़ाइलमों को एक जगत (Kingdom) में समूहित किया जाता है। अतः वर्गीकरण की उच्चतम श्रेणियां जगत होते हैं। चित्र 1.10 में मुख्य पदानुक्रमिक वर्गिकीय श्रेणियां दर्शायी गयी हैं और उससे आपको वर्गीकरण में इस्तेमाल किए गए जीवों के वर्गीकरण का एक अंदाजा लग सकता है।

उच्चतर श्रेणियों के नामों को उसी प्रकार लैटिन शब्दों से बनाया जाता जैसे कि जीनस अथवा स्पीशीज़ के नाम और उन्हें हमेशा बड़े अक्षर से ही शुरू किया जाता है (जैसे Reptilia, Amphibia, Mammalia, आदि)। किंतु उनके अंग्रेजी में पुकारे जाने वाले सामान्य नाम बड़े अक्षर से नहीं लिखे जाते (जैसे amphibians, mammals, आदि)। जीनस तथा स्पीशीज़ से ऊपर के स्तर के वर्गिकीय नामों को तिरछे अक्षरों में नहीं छापा जाता। सारणी 1.4 में संक्षेप में दर्शाया गया है कि मानवों को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है। सारणी 1.5 में द्विपदनाम पद्धति में प्रयुक्त होने वाली मुख्य परम्पराओं को एक सारांश के रूप में दर्शाया गया है।

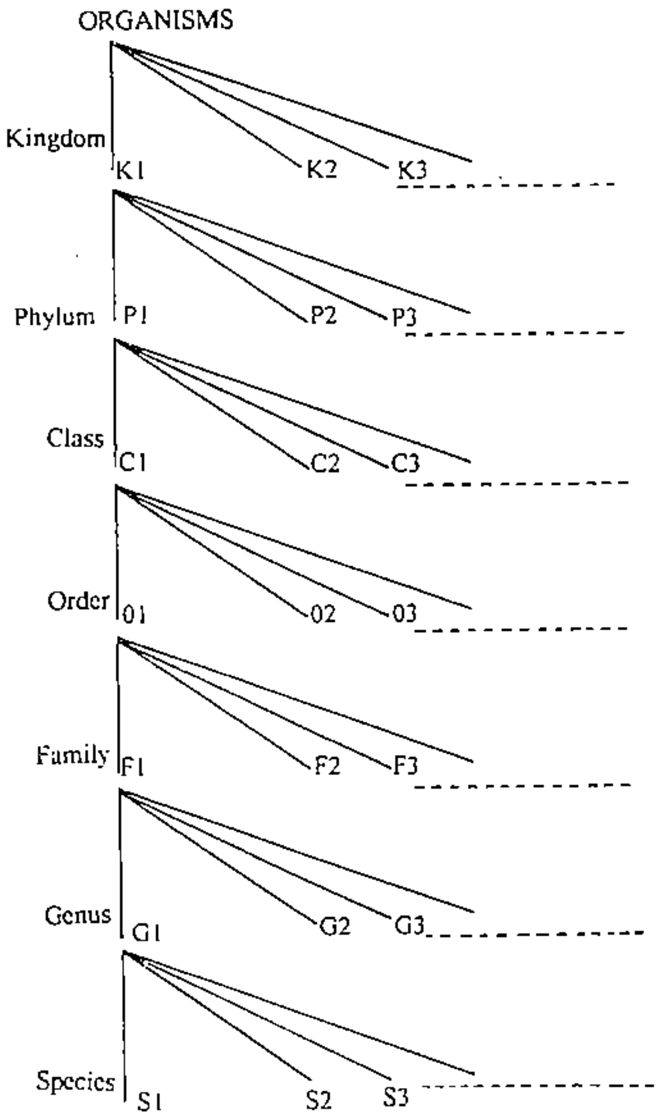

चित्र 1.10 : इसमें मुख्य वर्गिकी श्रेणियां तथा जीवों के वर्गीकरण की विधि दर्शायी गयी है। (पादप वर्गिकी में फाइलम के स्थान पर डिविज़न का उपयोग किया जाता है)

सारणी 1.5 : द्विपदनामों तथा उच्चतर टेक्सॉनों के नामों में उपयोग में लायी जाने वाली परम्पराएं।

बड़े अक्षर से प्रारम्भ कीजिए	उदाहरण
1. जीनस, लेकिन सामान्यतः स्पीशीज़ को नहीं	*Ursus horribiles*
2. जीनस स्तर से ऊपर के टेक्सॉनों के लैटिन नाम लेकिन उनके सामान्य अंग्रेजी नाम नहीं।	Mammalia, mammals Hominidae, hominids
तिरछे अक्षरों में छापें अथवा नीचे रेखा खींचें जीनस तथा स्पीशीज़ (द्विपदनाम), लेकिन जीनस-स्तर के ऊपर लैटिन अथवा अंग्रेजी नाम नहीं	*Homo sapiens*, Hominidae

1.7 वर्गीकरण प्रणालियां (CLASSIFICATION SYSTEMS)

1.7.1 दो-जगत वर्गीकरण

वर्गीकरण का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं मनुष्य का। यह प्रागैतिहासिक काल से ही प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि मानव ने अपने विकास के इतिहास के बिल्कुल आरम्भ में ही सजीव जीवों को उनका

अपना-अपना विशिष्ट नाम देना शुरू कर दिया था। सभ्यता के प्रारम्भ होने से पहले ही सजीव वस्तुओं को प्राणियों तथा पौधों में विभाजित किया जाने लगा था। हिप्पोक्रेटीज़ (460-370 ई.पू.), अरस्तु (384-322 ई.पू) एवं अन्य अनेक व्यक्तियों ने जीव-सृष्टि में पायी जाने वाली अपार विस्मयकारी एवं विविधतापूर्ण अस्तव्यस्तता में कुछ क्रम व्यवस्था लाने का प्रयत्न किया। अरस्तू पहला व्यक्ति जान पड़ता है जिसने एक तर्कसंगत वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया। उसने रक्त के होने या न होने के आधार पर प्राणियों को दो वर्गों में विभाजित किया : (1) सैंग्विनियस (Sanguineous) (रुधिरयुक्त) तथा (2) नॉन-सैंग्विनियस (Non-Sanguineous) (बिना रुधिर वाले)। उसका मानना था कि विकासरत जीवन एक सम्पूर्ण प्राणि-रूप की ओर बढ़ता जा रहा है जिसमें रक्त मौजूद हो गया (सारणी 1.6)। उसकी इस कल्पना में वर्गीकरण में पदानुक्रम प्रणाली (hierarchial system) की झलक थी, जिसे उसने अपनी पुस्तक "Scala Naturae" (स्केला नेचुरी) में प्रस्तुत किया था। साथ ही, उसने सजीव सृष्टि के दो जगत पहचाने—Plantae (पादप-जगत) तथा Animalia (प्राणि जगत)। "प्लॉन्टी" में अचल जीवों को रखा गया तथा "ऐनिमेलिया" में सभी चल जीवों को। आज हमें यह भी मालूम है कि इन दोनों जगतों के बीच एक प्रमुख अंतर इनकी पोषण-विधियों में है—पादप-जगत के सदस्य स्वपोषी होते एवं अपना भोजन अधिकतर प्रकाश संश्लेषण विधि से बनाते हैं जबकि प्राणि-जगत के सदस्य विषमपोषी होते हैं एवं अपना भोजन अन्तर्ग्रहण (ingestion) द्वारा प्राप्त करते हैं।

सारणी 1.6: अरस्तु का "जीवन-सोपान" अथवा "स्केला नेचुरी"।

शिशुप्रज (VIVIPAROUS) (बच्चे देने वाले)		सैंग्विनियस (रुधिरधारी) 1. मानव 2. बाल वाले चौपाए (स्थलीय स्तनी) 3. सीटेसिया (समुद्री प्राणी)
अंडप्रज (OVIPAROUS)	परिपूर्ण अण्डों वाले	4. पक्षी 5. शल्की चौपाए तथा एपोडा (रेप्टाइल तथा ऐम्फीबिया)
	अपरिपूर्ण अण्डों वाले	6. मछलियाँ, (रुधिरहीन) नॉन-सैंग्विनियस 7. मैलेसिया (सेफैलोपौड) 8. मैलेकॉस्ट्राका (क्रस्टेशिया)
कृमिप्रज (VERMIPAROUS) जनन होता है जनन अवपंक, मुकुलन अथवा स्वतः जनन द्वारा		9. कीट 10. ऑस्ट्रेकोडर्मा (सेफैलोपोडा) को छोड़कर अन्य मौलस्क)
जनन होता है स्वतः जनन द्वारा		11. जूफ़ाइट

जगत प्लांटी को बाद में जीवविज्ञानियों ने दो उपजगतों (sub-kingdom) में विभाजित कर दिया—(i) थैलोफाइटा (Thallophyta) जिसमें फ़ाइलम ऐल्गी (क्लोरोफिल-युक्त) तथा फ़ाइलम फंजाई (क्लोरोफिल-रहित) आते हैं तथा (ii) एम्ब्रियोफाइटा (Embryophyta) जिसमें फ़ाइलम ब्रायोफाइटा (लिवरवर्ट तथा मॉसें) तथा फ़ाइलम ट्रैकियोफाइटा (Tracheophyta) (संवहनी पौधे) आते हैं। दूसरी ओर, प्राणि-जगत को दो उपजगतों में बांटा गया—प्रोटोज़ोआ (Protozoa) जिसमें सभी एककोशिक प्राणी आते हैं तथा मेटाज़ोआ (Metazoa) जिसमें स्पंज तथा अन्य सभी बहुकोशिक प्राणी आते हैं। एक तीसरा उपजगत पैराज़ोआ (Parazoa) बाद में बनाया गया जिसमें स्पंजों को ले आया गया क्योंकि इनका स्थान एककोशिक तथा बहुकोशिक के बीच का पाया गया।

स्पंजों में ऊतक स्तर की देह संघटना नहीं पायी जाती। (इनमें ऊतक नहीं होते)। सभी मेटाज़ोअनों में पेशी तथा तंत्रिका कोशिकाएं होती हैं तथा उनमें मुख एवं आहारनाल होती है।

1.7.2 तीन तथा चार-जगत वर्गीकरण

दो जगत वाले वर्गीकरण ने जहां वर्गीकरण की अनेक समस्याओं का तो समाधान कर दिया, वहीं वह पौधों तथा प्राणियों के बीच कोई स्पष्ट विभेद कर सकने में असफल रहा। साथ ही, यह विभिन्न जीवों के बीच सही संबंध भी नहीं दर्शा सका। इस संदर्भ में खास कठिनाई एककोशिक स्तर के जीवों के साथ रही है। *यूग्लीना* तथा *वाल्वॉक्स* ऐसे जीव हैं जिनमें पौधों तथा प्राणियों दोनों प्रकार के लक्षण एक साथ पाए जाते हैं। एक ओर इनमें क्लोरोफिल पाया जाता है और ये पौधों की ही तरह प्रकाश-संश्लेषण के द्वारा अपना भोजन बनाते हैं, तो दूसरी ओर ये प्राणियों के समान सक्रिय रूप में तैरते भी हैं। इस कारण से प्राणिवैज्ञानिकों ने इन्हें प्राणियों के साथ मिलाकर फाइलम प्रोटोज़ोआ के अंतर्गत रखा तथा वनस्पतिविज्ञानियों ने इन्हें पौधों के रूप में लेकर फाइलम थैलोफाइटा में रखा। इसके अतिरिक्त *Peranema* जैसे कुछ अन्य जीव हैं जो *Euglena* के बहुत समान हैं परंतु उनमें क्लोरोफिल नहीं होता। इन्हें पौधों में शामिल नहीं किया जाता तथा ये सदा प्रोटोज़ोआ में वर्गीकृत किए जाते रहे हैं। इस प्रकार की कठिनाईयों को दूर करने के लिए हीकेल (Haeckel, 1866) ने प्रोटिस्टा (Protista) के नाम से एक तीसरे जगत की स्थापना का प्रस्ताव रखा था (इस नाम "प्रोटिस्टा" का अर्थ है आदितम यानी कि सबसे पहला) तथा इसमें सभी थैलोफाइटा तथा प्रोटोज़ोआ को एक साथ मिलाकर रखा गया था। इस जगत में बैक्टीरिया तथा नील-हरित शैवालों को भी रखा गया था। इस प्रणाली के अनुसार पुराने जगत प्लांटी में केवल एम्ब्रियोफाइटा के सदस्य रखे गए थे जब कि एनिमेलिया में केवल पैराज़ोआ तथा मेटाज़ोआ शामिल किए गए थे। मगर अनेक जीवों, जैसे कि प्रोटिस्टा के नील-हरित शैवालों एवं बैक्टीरिया में झिल्ली-परिसीमित केंद्रक नहीं होते (आप अनुभाग 1.3 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि इस प्रकार के जीवों को प्रोकैरियोट्स कहते हैं)। अतः इस प्रकार के जीवों को एक साथ मिलाकर रखने के लिए व्हिट्टेकर (Whittaker)) ने एक चौथे जगत **मोनेरा** (Monera) की स्थापना की। विकास की दृष्टि से जगत मोनेरा सर्वाधिक आदिम माना जाता है।

1.7.3 पाँच-जगत वर्गीकरण

इस प्रकार आप देखेंगे कि तीन-जगत तथा चार-जगत, इन दोनों ही प्रकार के वर्गीकरणों से दो-जगत की वर्गीकरण प्रणाली की कुछ विसंगतियों को दूर किया जा सका। मगर इन प्रणालियों में फंजाई को उचित स्थान नहीं दिया जा सका—इस वर्ग के जीवधारियों में क्लोरोफिल नहीं होता है। चार-प्रणाली के वर्गीकरण में इन्हें अनुचित रूप से प्रोटिस्टा में रखा गया था जबकि असलियत तो यह है कि वे अपने स्वरूप, प्रकार्य एवं व्यवहार में प्रोटिस्टा से सर्वथा भिन्न हैं। ये न तो पौधे ही माने जा सकते थे और न ही प्राणी, अतः 1969 में व्हिट्टेकर ने इनके लिए एक बिल्कुल ही पृथक जगत "फंजाई" (Fungi) की रचना की और इस तरह उसने पाँच-जगत के वर्गीकरण का प्रस्ताव रखा (चित्र 1.11)। व्हिट्टेकर के वर्गीकरण में, जिसे आज सामान्यतः इस्तेमाल में लाया जाता है प्रोकैरियोट-यूकैरियोट के आधारभूत अंतर को बरकरार रखा गया। अतः **जगत मोनेरा** में प्रोकैरियोट आते हैं। यूकैरियोटों को शेष चार जगतों में विभाजित किया जाता है। **जगत प्रोटिस्टा** में एककोशिक ससीमकेंद्रकी जीवधारी (प्रोटोज़ोआ तथा एककोशिक ससीमकेंद्रकी शैवाल) आते हैं। बहुकोशिक जीवों को उनकी पोषण-विधि तथा संघटना में पाए जाने वाले अन्य आधारभूत अंतरों के आधार पर तीन-जगत में विभाजित किया जाता है। जगत प्लांटी में बहुकोशिक, प्रकाश-संश्लेषणकारी जीव अर्थात उच्चतर पौधे एवं बहुकोशिक शैवाल आते हैं। जगत फंजाई में कवक (*moulds*), यीस्ट (*yeast*) तथा कुकुरमुत्ते (mushrooms) आते हैं जिनमें क्लोरोफिल नहीं होता तथा जो अपना पोषण अवशोषण के द्वारा प्राप्त करते हैं। नान-कॉर्डेटों (अरज्जुकियों) तथा कॉर्डेट (रज्जुकी) प्राणियों को मिलाकर जगत ऐनिमेलिया बनाया गया है। इनमें से अधिसंख्य प्राणी अपने भोजन को अंतर्ग्रहीत करके उसे अपने भीतर पचाते हैं हालांकि कुछ परजीवी केवल अवशोषी प्रकार के ही होते हैं। पाँच-जगत के विकासीय परस्पर संबंध चित्र 1.11 में दर्शाए गए हैं। प्रोटिस्टों को माना जाता है कि उन्हीं से समस्त बहुकोशिक जीवों का उद्भव हुआ जो अलग-अलग स्वतंत्र रूप में विकसित होते गए।

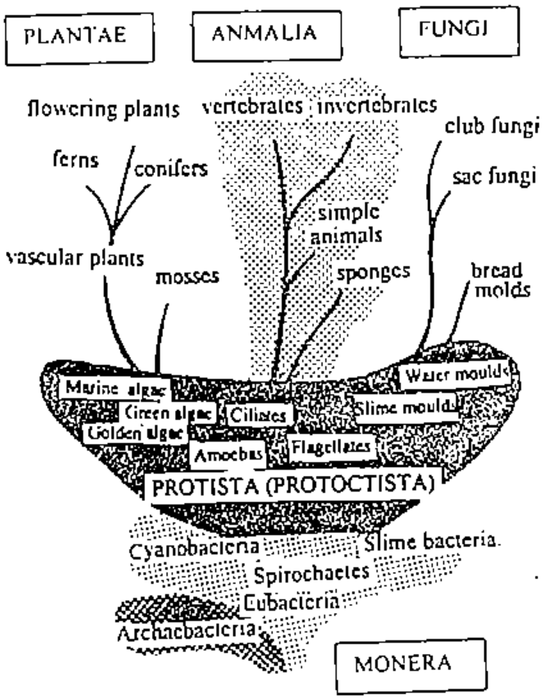

First life forms

चित्र 1.11 : **पाँच-जगत वर्गीकरण–पाँच जगतों को इस प्रकार रखा गया है कि उसमें उनके जातिवृत्तीय संबंधों का संकेत मिलता है। सबसे नीचे के जगत जिसे प्रोकैरियोट तथा मोनेरा कहते हैं, को अब दो पृथक जगतों आर्कियोबैक्टीरिया (Archaebacteria) यानी प्रथम अथवा प्राचीन बैक्टीरिया तथा यूबैक्टीरिया (Eubacteria) में विभाजित किया जाने लगा है जिसमें दो सर्वथा भिन्न प्रकार के प्रोकैरियोट आते हैं। इस स्तर से ऊपर एक-साथ एक विशाल समूहन है जिसे अस्थायी तौर पर प्रोटिस्टा अथवा प्रोटोक्टिस्टा (Protoctista) कहते हैं। इसके कुछ सदस्य उसी वंश क्रम में से निकले हैं जिनसे पौधों, कवकों तथा प्राणियों का विकास हुआ है।**

इस समय, जैसा आप जानते हैं पाँच-जगत वर्गीकरण करने की प्रवृत्ति चल रही है। फिर भी, पाँच-जगत के वर्गीकरण को स्वीकार करते हुए प्राणिवैज्ञानिक प्रोटोज़ोआ को जो कि जगत प्रोटिस्टा में आता है, अरज्जुकियों का आदितम वर्ग मान कर चल रहे हैं। ऐसा कुछ हद तक तो ऐतिहासिक कारणों से है और कुछ हद तक इसलिए कि अधिकतर प्राणिवैज्ञानिक प्रोटोज़ोआ में रुचि रखते हैं। हमने भी अपने पाठ्यक्रम में यही प्रणाली अपनायी है। सारणी 1.7 में व्हिट्टेकर द्वारा प्रस्तावित पाँच-जगत की विशिष्टताओं को दिया गया है और प्राणि-विविधता पाठ्यक्रम में हमने उसी का अनुसरण किया है।

सारणी 1.7: व्हिट्टेकर द्वारा प्रस्तावित पाँच-जगत की विशिष्टताएं।

जगत	विशिष्टताएं
मोनेरा (Monera)	पृथ्वी पर रहने वाले आदितम जीव। ये सूक्ष्मदर्शीय एकल कोशिका वाले अकेन्द्रकी होते हैं। इनमें वास्तविक केंद्रक नहीं होते वरन इनमें केवल केंद्रकीय क्षेत्र अथवा केंद्रकाभ (nucleoids) होते हैं। इनका अकेला क्रोमोसोम डी.एन.ए. के एक वृत्ताकार अणु का बना होता है जिसके साथ कोई प्रोटीन संबद्ध नहीं होता। इनमें माइटोकॉण्ड्रीया अथवा क्लोरोप्लास्ट जैसे कोई झिल्लीदार कोशिकांग भी नहीं होते। कोशिका-विभाजन में माइटोसिस अथवा मीयोसिस नहीं होता। कोशिकाएं द्विविभाजन द्वारा विभाजित होती हैं। कोशिका-भित्तियां प्रायः पेप्टिडोग्लाइकैन की बनी होती हैं (यह पदार्थ ऐमिनो अम्लों तथा शर्कराओं का बना होता है) तथा अनेक उदाहरण एक कैप्सूल का स्राव करते हैं जो पोलीसैकेराइड पदार्थ

(क्रमशः)

	का बना होता है। आज कल मोनेरा जगत को दो पृथक जगतों में विभाजित करने की प्रवृत्ति है, ये हैं जगत आर्कियोबैक्टीरिया (Archeobacteria) (प्राचीन बैक्टीरिया) तथा जगत यूबैक्टीरिया (Eubacteria) (वास्तविक बैक्टीरिया)। प्रतिनिधि : आर्कियोबैक्टीरिया, नील-हरित शैवाल, ऐक्टिनोमाइसिटीज़, "फलन" बैक्टीरिया, रिकेट्सिया, माइकोप्लाज़्मा, *डेलो विब्रिओज* (*Bdello vibrios*), आदि।
प्रोटिस्टा (प्रोटोक्टिस्टा)	प्रोटिस्ट एक-कोशिक यूकैरियोट होते हैं, कुछ उदाहरण कोशिकाओं के अदृढ़ पुंज बना लेते हैं जिन्हें निवह (कॉलोनियां) कहते हैं। माना जाता है कि प्रथम यूकैरियोट प्रोटिस्ट थे, जिनमें से कुछ ने उच्चतर यूकैरियोटों—कवकों, पौधों तथा प्राणियों को जन्म दिया जिनका संसार में आज बाहुल्य है। प्रतिनिधि : प्रोटोज़ोआ तथा एककोशिक शैवाल
फ़ंजाई	बहुकोशिक यूकैरियोटों का विविध समूह : पादप-सदृश परंतु क्लोरोफिल न होने के कारण ये प्रकाश-संश्लेषण करने में असमर्थ होते हैं। ये सब किसी जीवित अथवा निर्जीव स्रोत से आहार को अपनी सतह में से प्राप्त करते हैं न कि प्राणियों की तरह अंतर्ग्रहीत करके। अनेक उदाहरणों में ये पाचन एंज़ाइमों को अपने शरीर के बाहर स्रवण करते हैं जिसके द्वारा आहार का अवभंजन हो जाता है। अवभंजन उत्पादों को कवक भित्ति में से अवशोषित कर लिया जाता है। जनन के दौरान कवक अलैंगिक तथा लैंगिक दोनों प्रकार के बीजाणु (स्पोर) बना सकते हैं। प्रतिनिधि : अवपंक फफूंदी (स्लाइम मोल्ड), फफूंदी अथवा वास्तविक कवक, यीस्ट, आसिता (मिलड्यू), किट्ट (rust)] कुकुरमुत्ते
प्लांटी	बहुकोशिक, स्वपोषी यूकैरियोट जिनमें सेलूलोज़ से युक्त कोशिका-भित्ति होती है। सभी पौधों में जनन-ऊतक अथवा अंग होते हैं और वे स्पष्ट परिवर्धन अवस्थाओं में से गुज़रते हैं एवं उनमें पीढ़ी-एकांतरण (alternation of generations) होता है। कोशिकाओं में प्रायः बड़ी केंद्रीय धानी (vacuole) होती है। पौधों में अनिर्धरी प्रकार की वृद्धि होती है परन्तु प्रायः उनमें न तो निश्चित देह-साइज़ होता है और न ही कोई निश्चित आकृति। प्रतिनिधि : बहुकोशिक शैवाल, मॉसें, हार्सटेल, लाइकोपोड, फ़र्न तथा बीज-पौधे।
ऐनिमेलिया	बहुकोशिक यूकैरियोटिक विषमपोषी। प्राणियों में प्रकाश-संश्लेषी व्यष्टि नहीं होते तथा वे अन्य जीवों का अंतर्ग्रहण करके पोषक तत्व प्राप्त करते हैं कोशिकाओं में कोशिका-भित्ति नहीं होती। बहुत से सदस्यों में उन्नत प्रकार का ऊत्तक-विभेदन तथा सम्मिश्रण प्रकार के अंग-तंत्र बन गए होते हे एवं ये प्राणी स्वच्छंद रूप से चलते फिरते हैं। इनमें समन्वय के लिए विशेषित तन्त्रिका ऊतक बना होता है एवं इनमें उद्दीपनों के प्रति तीव्र अनुक्रिया की विशेषता पायी जाती है। वृद्धि निर्धारित प्रकार की होती है, जिसमें अधिकतर इनका निश्चित आकार एवं आकृतियां होती है। प्रतिनिधि : स्पंज, जेलीफिश, चपटे-कृमि, गोल कृमि, सखंड कृमि, मौलस्क, आर्थ्रोपोड, इकाइनोडर्म, कॉर्डेट (मछलियां, ऐम्फीबियन, रेप्टाइल, पक्षी तथा स्तनी)।

आपने अनुभव किया होगा कि व्हिट्टेकर के पांच-जगत के वर्गीकरण में वाइरसों को शामिल नहीं किया गया है। कदाचित् इनका अपना अलग ही जगत होना चाहिए था क्योंकि ये अन्य सभी जीवों से भिन्न हैं। मगर विभिन्न जगतों में क्रमविकास-संबंधों की झलक तो प्रकट होनी ही चाहिए, और चूँकि वाइरसों के क्रमविकासीय उद्भव पता नहीं चल पाए हैं, इसलिए इनके सही-सही स्थान का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। ऐसा माना जाता है कि वाइरसों का उद्भव कोशिक जीवों के आगमन के बाद ही हुआ, क्योंकि इनका अस्तित्व इन कोशिक जीवों पर ही निर्भर है। अतः इन्हें ऐसे आदितम जीव नहीं कहा जा सकता जिनसे आगे चलकर कोशिक जीव विकसित हुए।

1.7.4 पाँच-जगत के वर्गीकरण की सीमाएं

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है प्रत्येक वर्गीकरण प्रणाली की कुछ न कुछ अपनी ही सीमाएं हैं। दो-जगत के वर्गीकरण की अपनी उपयोगिता समाप्त हो गयी क्योंकि इसके द्वारा *यूग्लीना* तथा *वॉल्वॉक्स* जैसे जीवों के साथ न्याय नहीं हो पाया। तीन जगत के वर्गीकरण में असीमकेंद्रकीयों (प्रोकैरियोटों) को ठीक से स्थान नहीं दिया जा सका। चार जगत के वर्गीकरण की सीमा यह थी कि जगत मोनरा के बनाने के बावजूद यह प्रोटिस्टा तथा ऐनिमेलिया के बीच के श्रृंखला-क्रम को नहीं दर्शा सका।

आज का पाँच-जगत का वर्गीकरण भी वर्गिकी की समस्याओं का अंतिम समाधान नहीं है। अधिसंख्य जीवविज्ञानियों द्वारा स्वीकारे जाने के बावजूद इस प्रणाली में भी अनेक कमियां हैं। प्रोटोज़ोआ को प्राणि-जगत से अलग कर देने पर बहुत से प्राणिवैज्ञानिक चिंतित हैं। प्रोटोज़ोआ में प्राणियों की ऐसी बहुत सी विशिष्टताएं हैं जो मेटाज़ोआ में पायी जाती हैं। इनमें से अधिकतर प्रोटोज़ोआ आहार का अंतर्ग्रहण करते हैं, अनेक में विशेषित कोशिकांग हैं एवं उनमें उन्नत संचलन-तंत्र पाए जाते हैं, अनेक में लैंगिक जनन होता है तथा कुछ प्रोटोज़ोआ निवही (कॉलोनीय) होते हैं जिनमें कोशिक-प्रकारों में श्रम-विभाजन पाया जाता है। वास्तव में, इसमें कतई संदेह नहीं कि मेटाज़ोअन प्राणी एक या एक से अधिक प्रोटोज़ोआ समूहों से विकसित हुए हैं। अतः यह स्वीकार करते हुए भी कि पाँच-जगत के वर्गीकरण के अनुसार प्रोटोज़ोआ यूकैरियोटिक प्रोटिस्ट हैं प्राणी नहीं, प्राणिवैज्ञानिक प्रोटोज़ोआ को अपने ही क्षेत्र में रखने का दावा करते हैं। यह प्रणाली भी सभी मामलों में विविध समूहों के बीच के परस्पर संबंधों को स्पष्टतः नहीं दिखा पाती। आज भी अनेक फ़ाइलमों में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जिनके परस्पर संबंधों के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है। अरज्जुकी (नान-कॉर्डेट्स) में जिस समूहन को एक साथ मिलाकर **गौण (माइनर) फ़ाइला** कहा गया है उसने जातिवृत्तीय स्थानन की समस्या को अनसुलझायी कर दिया। हाल ही में अनेक जीवविज्ञानियों ने मोनेरा को भी और दो वर्गों में विभाजित कर दिया है : (i) यूबैक्टीरिया (Eubacteria) तथा (ii) आर्कीयोबैक्टीरिया (Archaebacteria) जिससे छह-जगत का प्रस्ताव सामने आया है। वास्तव में पिछले बीस वर्षों में वर्गीकरण प्रणाली के नानाविध संशोधनों पर विवेचन किया गया है जिनमें जगतों की संख्या 3-13 तक रखी गयी है। जीवविज्ञानी सामान्यतः पांच-जगत के वर्गीकरण को ही अपनाते हैं भले ही इसमें अपर्याप्ताएं मौजूद हैं क्योंकि उपलब्ध वर्गीकरण-प्रणालियों में यही एक सर्वाधिक सुविधाजनक है।

1.7.5 परस्पर संबंध एवं वर्गीकरण में छिपे अर्थ

वर्गीकरण का उद्देश्य जीवों को उनकी **समानताओं** के आधार पर समूहित किया जाना है। किंतु प्रश्न उठता है कि कौन सी समानताओं के आधार पर। आप जानते हैं कि मछली तथा व्हेल दोनों ही जल में रहती हैं, तथा पक्षी और तितली दोनों ही हवा में रहते हैं। तो क्या हमें मछली तथा व्हेल को एक साथ एक वर्ग में और पक्षी तथा तितली को एक साथ एक अन्य वर्ग में रखना चाहिए? कदाचित मन तो ऐसा ही करता है क्योंकि मछली तथा व्हेल में तैरने वाले अंग हैं और पक्षी तथा तितली में उड़ने के लिए पंख होते हैं। और वास्तव में ऐसा हुआ भी था, शुरू के एक जीवविज्ञानी प्लाइनी (Pliny) ने इस प्रकार के **समवृत्ति** (analogous) **अंगों** के आधार पर वर्गीकरण किया था, अर्थात ऐसे अंगों के आधार पर जो कार्य तो एक ही करते हैं एवं देखने में भी एक जैसे ही लगते हैं मगर उनका विकासीय उद्भव भिन्न है। किन्तु प्राणियों की संरचना के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त होने से पता चला कि मछली और व्हेल तथा पक्षी और तितली उनके देह-लक्षणों में समानताओं की अपेक्षा भिन्नताएं अधिक हैं। उदाहरण के लिए मछलियां गिलों से सांस लेती हैं जब कि व्हेल फेफड़ों से लेती हैं। इसी प्रकार पक्षियों में भीतरी कंकाल होता है जबकि तितलियों के समान कीटों में यह भीतरी न होकर बाहरी कंकाल होता है। कार्ल लिनियस (Karl Linnaeus) ने ये मूलभूत अंतर पहचाने और उसने अपनी वर्गीकरण-प्रणाली को **समजातता** (homology) पर आधारित किया। समजात अंग वे होते हैं जिनका विकासीय उद्भव तो एक ही होता है मगर ज़रूरी नहीं कि वे देखने में एक से हों

अथवा उनका प्रकार्य भी एक सा ही हो। उदाहरण के लिए, यदि आप मानव के अग्रपाद, चमगादड़ के पंख तथा व्हेल के फ़्लिपर (ये तीनों प्राणी स्तनी हैं) (चित्र 1.12 a, b, c) अवलोकन करें, तो आप देखेंगे कि भले ही प्रत्येक मामले में अग्रपाद का प्रकार्य एवं उसका बाहरी स्वरूप अलग-अलग है फिर भी उनकी मूलभूत कंकाल-योजना एक ही है और ये **समजात** हैं। और तो और, जीवाश्म अभिलेखों से पता चलता है कि इन सबका एक ही समान उद्‌भव रहा है प्राचीन ऐम्फीबियनों के अग्रपादों से। अतः निष्कर्ष निकलता है कि पंचांगुलिक (पेंटाडेक्टाइल) अग्रपादों वाले सभी प्राणी परस्पर संबंधित हैं। इसके अतिरिक्त, दो कशेरुकी समूहों के अग्रपादों में जितनी अधिक गहरी समानता होगी वे समूह उतने ही अधिक संबंधित होंगे। समजातता पर आधारित वर्गीकरण विभिन्न समूहों के बीच के सहज संबंधों को प्रकट करता है। दूसरे शब्दों में, यह हमें बताता है कि वे सभी जीव-जंतु जिनमें समान आधारभूत संरचनात्मक लक्षण पाए जाते हैं, सबके सब किसी एक समान पूर्वज से ही विकसित हुए हैं।

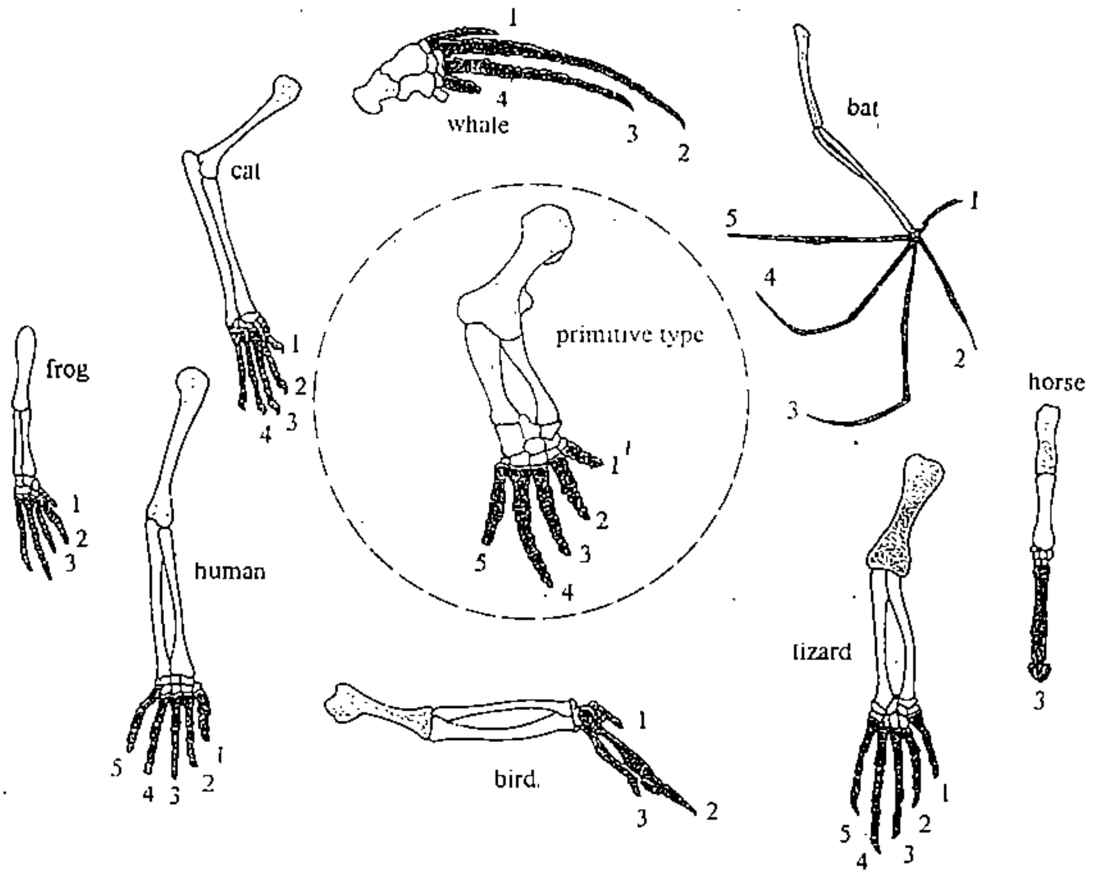

चित्र 1.12 : अनेक प्रतिरूपी कशेरुकियों के समजात अग्रपादों की एक सुझाव गए आदिम पूर्वज प्ररूप के साथ तुलना की गयी है। प्रत्येक उदाहरण में, व्यष्टिगत हड्डियाँ अलग-अलग तरह से रूपांतरित हो गयी हैं हालांकि अब भी ये पूर्वज में देखी जा सकती हैं। चूंकि इन पादों का भ्रूण विज्ञानीय उद्‌भव एक ही है इसलिए इन्हें समजात (homologous) कहा जाता है। सर्वाधिक भिन्नता का परिवर्तन पक्षी, घोड़े, व्हेल में दिखायी पड़ता है। अनेक अलग-अलग हड्डियों में ह्रास हो गया है तथा कुछ में संलयन हो गया है। एक और स्पष्ट रूपांतरण चमगादड़ों उंगलियों की बहुत लम्बी हो गयी हड्डियों में दिखायी पड़ता है।

अतः वर्गीकरण में यह अर्थ छिपा है कि उसके द्वारा परस्पर संबंधों का स्तर प्रकट होना चाहिए। इसके आधार पर किसी भी वर्ग का क्रमविकासीय इतिहास पता लग सकना चाहिए। ऐसा कर सकने के लिए दो आधारभूत उपधारणाएं मन में रखनी सही होंगी : एक तो यह कि एक ही समूह में रखी गयी सभी स्पीशीज़ का, यदि उन्हें सही-सही रखा गया है, एक समान पूर्वज होना चाहिए और दूसरी यह कि कोई भी जीवित जीवधारी किसी अन्य जीवित जीवधारी का पूर्वज नहीं हो सकता। समान पूर्वज हो सकता है आज जीवित अवस्था में नहीं पाया जाता हो और वह अपने जीवाश्मित अवशेषों को छोड़कर विलुप्त हो गया हो।

बोध प्रश्न 5

निम्न कथनों में सही पर्यायों पर निशान लगाइए :

(a) जनन की दृष्टि से पृथक हो गयी अंतःप्रजननशील व्यष्टियों को (स्पीशीज़/जीनस) कहते हैं।

(b) प्रोटिस्ट शब्द का प्रचलन (अरस्तू/हीकेल) ने शुरू किया था।

(c) पांच-जगत के वर्गीकरण ने (शैवालों/कवकों) के स्थान को जगत के स्तर पर लाकर ऊँचा कर दिया।

(d) एक ही प्रकार्य को करने वाले मगर अलग-अलग उद्भव के अंगों को (समजात/समवृत्ति) अंग कहते हैं।

(c) वर्गीकरण की आधुनिक प्रणाली को अट्ठारहवीं शताब्दी में (चार्ल्स डार्विन/कार्ल लिनियस) ने प्रस्तावित किया था।

1.8 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा कि

- सजीव पदार्थ में कुछ खास आधारभूत विशिष्टताएं होती हैं जैसे कि जनन, उत्तेजनशीलता, अनुकूलन तथा समस्थापन, उच्च स्तर की संरचनात्मक संघटना, ऊर्जा को ग्रहण करने एवं उसका उपयोग करने की क्षमता, वृद्धि एवं परिवर्धन, और ये सभी उसको निर्जीव पदार्थ से पृथक दर्शाती है।

- सभी जीवधारी, चाहे आदिम हों या उन्नत (वाइरसों को छोड़कर) कोशिकाओं के बने होते हैं। अतः इन्हें कोशिक कहा जाता है।

- वाइरस आनुवंशिक पदार्थ (DNA अथवा RNA) के एक केंद्रीय क्रोड के बने होते हैं जिसे ऊपर से एक प्रोटीन आवरण अथवा केप्सिड घेरे रहता है, तथा इनमें कोशिक संघटना नहीं होती। अतः इन्हें अकोशिक कहते हैं।

- कोशिकाएं दो प्रकार की होती हैं : प्रोकैरियोटिक (असीमकेंद्रकी) जिनमें एक सुगठित अथवा वास्तविक केंद्रक का अभाव होता है तथा यूकैरियोटिक (ससीमकेंद्रकी) जिनमें एक वास्तविक केंद्रक मौजूद होता है।

- वर्गिकी (टेक्सोनॉमी) जीवविज्ञान की वह शाखा है जिसका संबंध जीवधारियों के उनके परस्परसंबंधों के आधार पर वर्गीकरण करने से है।

- वर्गीकरण की आधारभूत इकाई स्पीशीज़ है : प्रत्येक स्पीशीज़ को एक अपना ही सबसे अलग लैटिन द्विपद नाम दिया जाता है जिसका एक पद जीनस का नाम होता है तथा दूसरा पद स्पीशीज़ दर्शाता है। स्पीशीज़ को और आगे अधिकाधिक व्यापक टैक्सोनों (समूहों) में समूहित किया जाता है। वर्गिकीय पदानुक्रम में उच्चतर से निम्नतर श्रेणियों का क्रम इस प्रकार है –जगत प्राणियों में फाइलम तथा पौधों में डिविज़न, → आर्डर → फैमिली → जीनस → स्पीशीज़।

- सैद्धांतिक रूप में सजीव वस्तुओं को उनके जातिवृत्तीय संबंधों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। मगर कभी-कभी इसमें कठिनाई आती है जिससे कि व्यवहार में सजीव वस्तुओं को अक्सर आकारिकी तथा शरीर के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

- सजीव जीवधारियों के वर्गीकरण की समय-समय पर अलग-अलग विधियां प्रस्तुत की गयी हैं। ये हैं दो, तीन, चार एवं पांच जगतों की वर्गीकरण प्रणालियां। इस समय पाँच-जगतों की वर्गीकरण प्रणाली सबसे अधिक प्रयोग की जाती हैं। आधुनिक वर्गीकरण समजातता पर तथा जीवों में परस्पर संबंधों को स्थापित करने के प्रयासों पर आधारित है।

1.9 अंत में कुछ प्रश्न

1. सूची A के शब्दों को सूची B के सबसे उपयुक्त शब्दों से मिलाइए :

सूची A	सूची B
1. समस्थापन	a. वे जीव जिनकी कोशिकाओं में सुस्पष्ट अलग बना केंद्र होता है
2. यूकैरियोट (ससीमकेंद्रकी)	b. वे जीव जिनमें क्लोरोफिल नहीं होता तथा जो अपना पोषण अवशोषण के द्वारा प्राप्त करते हैं

3. फंजाई — c. जीवधारी के भीतर होने वाले तमाम नानविध जैवरासायनिक अभिक्रियाएं

4. उपापचय — d. जीव के भीतरी पर्यावरण में स्थिरता वनी रहनी।

2. आपके विचार में वह कौन सा सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार है जिसके द्वारा सजीव वस्तु को निर्जीव वस्तु से अलग पहचाना जा सकता है?

....

....

....

3. लगभग तीन पंक्तियों में वाइरसों के निर्जीव लक्षणों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

4. ससीमकेंद्रकी (यूकैरियोटिक) कोशिका के कोई दो महत्वपूर्ण लक्षण वताइए।

....

....

....

....

5. दो-जगत के वर्गीकरण की कोई दो कमियां वताइए।

....

....

....

....

6. जीवधारियों के आधारभूत सिद्धान्तों का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

1.10 उत्तर

बोध प्रश्न 1	(a) गलत,	(b) गलत,	(c) सही,	(d) गलत
बोध प्रश्न 2	(a) जीवित कोशिका	(b) नानोमीटर	(c) इवानॉव्स्की, 1892	
	(d) न्यूक्लिइक अम्ल, कैप्सिड		(e) सजीव	
बोध प्रश्न 3	(a) सही,	(b) गलत,	(c) गलत,	(d) गलत
	(e) सही			
बोध प्रश्न 4	(a) अकोशिक,	(b) प्रोकैरियोट्स,	(c) यूकैरियोट्स	(d) एककोशिक जीव,
	(e) बहुकोशिक जीव			
बोध प्रश्न 5	(a) स्पीशीज़	(b) हीकेल	(c) फ़ंजाई	(d) समवृत्ति,
	(e) कार्ल लिनियस			

अंत में कुछ प्रश्न

1. 1d, 2a, 3b, 4c

2. सजीव वस्तुओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण उनमें जनन की क्षमता का पाया जाना है।

3. वाइरसों को क्रिस्टलों रूप में बनाया जा सकता है, उनमें अपनी कोई एंज़ाइम-प्रणाली नहीं होती तथा उनमें उत्तेजनशीलता एवं वृद्धि के लक्षण नहीं पाए जाते।

4. 1. झिल्ली द्वारा परिसीमित वास्तविक केंद्रक का पाया जाना;

   2. एक से अधिक क्रोमोसोमों का पाया जाना।

5. 1. इसके द्वारा प्राणियों तथा पौधों के बीच स्पष्ट विभेद नहीं हो पाता, तथा

   2. यह अनेक जीवों के सही-सही संबंधों को नहीं दर्शा पाता।

6. आधुनिक वर्गीकरण प्रणाली में जीवों के बीच के संबंधों की झलक मिलनी चाहिए। किसी एक वर्ग की सभी स्पीशीज़ का एक समान पूर्वज होना चाहिए ताकि वर्गीकरण के द्वारा वर्ग का जातिवृत्त प्रकट हो सके ताकि उस वर्ग का क्रमविकासीय इतिहास पता लगाना संभव हो सके।

इकाई 2 प्रोटोज़ोआ

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

2.2 प्रोटोज़ोअनों की सामान्य विशिष्टताएं

2.3 संरचनात्मक संघटना तथा प्रकार्य

देह-स्वरूप

संचलन कोशिकांग

पोषण

परासरण नियमन तथा उत्सर्जन

श्वसन

अनुक्रिया की क्रियाविधि

जनन क्रियाविधियां

पुटीभवन

2.4 प्रोटोज़ोआ का वर्गीकरण

कशाभी प्रोटोज़ोआ

अमीबीय प्रोटोज़ोआ

स्पोर का निर्माण करने वाले प्रोटोज़ोआ

पक्ष्माभी प्रोटोज़ोआ

2.5 कुछ परजीवी प्रोटोज़ोआ

अमीबे

फ़्लैजेलेट

स्पोरोज़ोअन

सिलिएट

2.6 सारांश

2.7 अंत में कुछ प्रश्न

2.8 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

पहली इकाई में आपने प्रोकैरियोटों तथा यूकैरियोटों में विभेद करना सीखा। आज पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवों की अनुमानित 17 लाख स्पीशीज़ में से केवल कुछ हजार ही प्रोकैरियोटों की स्पीशीज़ हैं। शेष स्पीशीज़ अधिकतर यूकैरियोटों की हैं। ये ही यूकैरियोट इस पाठ्यक्रम के शेष भाग की विषय वस्तु हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि जीवधारियों को पांच जगतों में विभाजित किया जाता है जो इस प्रकार हैं—मोनेरा (Monera), प्रोटिस्टा (Protista), फ़ंजाई (Fungi), प्लांटी (Plantae), ऐनिमेलिया (Animalia)। इनमें से प्रोटिस्टा आदिम एककोशिक यूकैरियोट हैं। इनमें से कुछ से फ़ंजाई का उदय हुआ, कुछ अन्य से प्लांटी का और इनसे भी कुछ अन्य से ऐनिमेलिया वर्ग बना और ये तीनों ही वर्ग बहुकोशिक हैं। तथापि, कुछ प्रोटिस्ट एककोशिक होते हुए भी ऐनिमेलिया के इतने समान हैं कि शुरू में इस वर्ग को प्रोटोज़ोआ नाम दिया गया था और इसे दो जगत के वर्गीकरण में ऐनिमेलिया जगत के अंतर्गत एक फ़ाइलम की श्रेणी के रूप में रखा गया था। परन्तु अब हमें मालूम है कि प्रोटोज़ोआ-प्राणी वास्तव में एककोशिक जीवों का एक विषमांग समूह हैं और इस नाम का अब कोई औपचारिक जीववैज्ञानिक स्तर नहीं है। फिर भी कई मुख्य कारणों से यह वर्ग अब भी प्राणी-विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों में बदस्तूर चला आ रहा है। इन कारणों में एक तो यह है कि

इन जीवों की प्राणियों से समानता है, दूसरा यह कि अधिसंख्य प्राणिवैज्ञानिकों की इस वर्ग के जीवों में रुचि है और तीसरा यह कि ऐसा करना सुविधाजनक भी है। इसी प्रचलन का अनुसरण करते हुए हमने भी प्रोटोज़ोअनों को इस पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया है। चित्र 2.1 में पांच जगत के वर्गीकरण, तथा दो जगत के वर्गीकरण के पौधों तथा प्राणियों के साथ इसके संबंध को मोटे तौर पर दर्शाया गया है।

इस इकाई का संबंध प्रोटोज़ोअनों अथवा "प्राणी प्रोटिस्टों" अथवा एककोशिक प्राणियों से है। आप इस इकाई में प्रोटोज़ोअनों की सामान्य विशिष्टताओं के विषय में तथा उनके वर्गीकरण और साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के प्रोटोज़ोआ फ़ाइलमों के बीच विभेद कैसे किया जाए इनके बारे में पढ़ेंगे। साथ ही, आप कुछ ऐसे सर्वाधिक सामान्य एवं महत्वपूर्ण प्रोटोज़ोअनों के विषय में भी जानेंगे जो मनुष्यों में परजीवी रूप में पाए जाते हैं। प्रोटोज़ोअनों के वर्गीकरण का अध्ययन करने से पहले आइए इनकी सामान्य विशिष्टताओं का अवलोकन करें क्योंकि ये विशेष लक्षणों पर आधारित इस समूह के वर्गीकरण को सीखने में आपकी मदद करेंगी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- प्रोटोज़ोअनों तथा मेटाज़ोअनों में विभेद कर सकेंगे,
- प्रोटोज़ोअनों की सामान्य विशिष्टताएं गिना सकेंगे,
- विविध प्रोटोज़ोआ-फाइलमों में अंतर बता सकेंगे,
- प्रोटोज़ोअनों में पोषण, संचलन एवं जनन की विविध विधियों की विवेचना कर सकेंगे,
- समझा सकेंगे कि प्रोटोज़ोअन किस प्रकार परासरणनियमन तथा श्वसन करते हैं,
- मनुष्यों में पाए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण परजीवी प्रोटोज़ोअनों की सूची बना सकेंगे,
- प्रोटोज़ोअन परजीवियों की उन विधियों की रूपरेखा दे सकेंगे जिनके द्वारा वे अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं।

2.2 प्रोटोज़ोअनों की सामान्य विशिष्टताएं

प्रोटोज़ोअन यूकेरियोट जीव होते हैं जो प्रोटिस्टा जगत के अंतर्गत लगभग 80,000 एककोशिक जीवों का समूह बनाते हैं।

प्रोटोज़ोआ के सभी सदस्यों में केवल एक ही समान लक्षण पाया जाता हैः एककोशिक स्तर की संघटना। अन्य सभी पहलुओं में इनमें भारी विविधता पायी जाती है। प्रोटोज़ोअनों में सभी प्रकार की सममितियां पायी जाती हैं एवं इनकी सूक्ष्मशारीरीय संरचना में तरह-तरह की सम्मिश्रता होती पायी जाती है।

प्रोटोज़ोआ के विपुल अधिसंख्य जीव सूक्ष्मदर्शीय होते हैं। आकार में ये एक माइक्रॉन से लेकर जैसे कि प्लवक *माइक्रोमोनस (Micromonas)* है, कुछ मिलीमीटर तक के होते हैं जैसा कि अमीबा की अनेक स्पीशीज़ तथा सिलिएटों में होता है।

अधिसंख्य प्रोटोज़ोअन एकचर व्यष्टियों के रूप में होते हैं लेकिन निवही (कॉलोनीय) भी होते हैं जैसे *वॉल्वॉक्स (Volvox)* जो कोशिकाओं के बीच श्रम-विभाजन का सबसे पहला संकेत प्रदान करता है।

जहां कहीं भी जीवन विद्यमान है वहां प्रोटोज़ोआ भी जरूर पाए जाएंगे। स्वच्छंदजीवी प्रोटोज़ोआ समुद्र में, विविध प्रकार की अलवण जल राशियों में, एवं मिट्टी में पाए जाते हैं। इनके अलावा इनमें सहभोजी (commensals), सहोपकारिक (mutualistic) तथा अनेक परजीवी स्पीशीज़ भी पायी जाती हैं। पोषण स्वपोषी, विषमपोषी अथवा मृतजीवी प्रकार का पाया जा सकता है।

जनन अलैंगिक रूप में समसूत्री विभाजन से लेकर मुकुलन, विखंडन तथा सिस्ट-निर्माण जैसी विधियों से होता

है। लैंगिक जनन कुछ स्पीशीज़ में संयुग्मन (conjugation) अथवा युग्मनज (ज़ाइगोट) के निर्माण की विधि जिसे सिनगैमी भी कहते हैं, के द्वारा होता है।

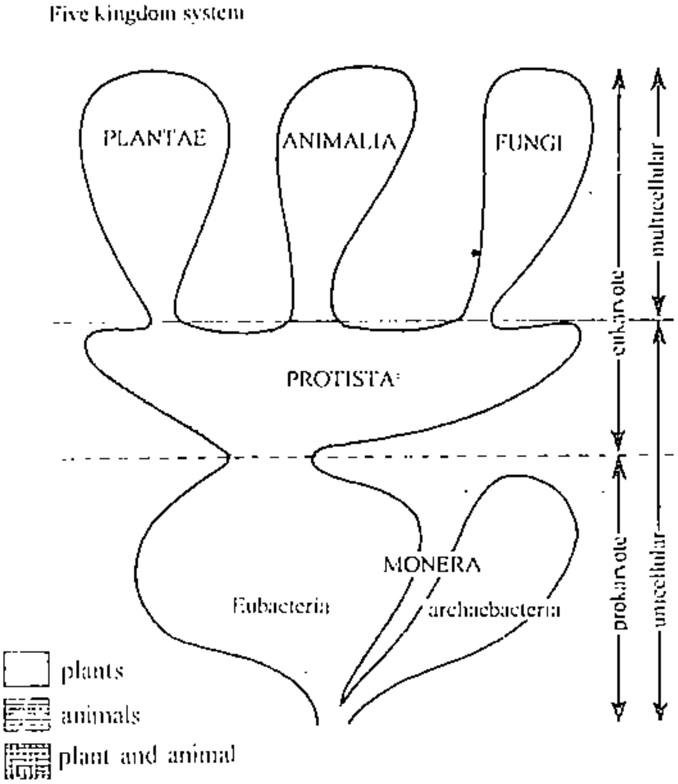

चित्र 2.1: वर्गीकरण की पांच जगत की प्रणाली और पादप प्राणी द्विशाखन के साथ उसका संबंध।

संचलन-विधियां भी इस समूह में अनेक विकसित हो गयी हैं जैसे कि पादाभों (pseudopodia), कशाभों (flagella), पक्ष्माभ (cilia) और प्रत्यक्ष कोशिका-गति के द्वारा। किसी भी प्रोटोज़ोअन को, भले ही वह एककोशिक होता है, एक सम्पूर्ण जीव मानना चाहिए जिसमें वे सभी प्रकार्य पूरे होते हैं जो किसी बहुकोशिक प्राणी में होते पाए जाते हैं। प्रोटोज़ोअनों में वे सामान्य अंतःकोशिक संरचनाएं तो हैं ही जो सभी कोशिकाओं में समान रूप से पायी जाती हैं, मगर इनके अलावा उनमें विशिष्ट प्रकार्यों को पूरा करने के वास्ते विशिष्ट कोशिकांग भी हैं।

2.3 संरचनात्मक संघटना तथा प्रकार्य

आइए अब हम इस इकाई में उन सभी तरीकों को देखें जिनके द्वारा एक अकेली कोशिका वाली प्रोटिस्टन देह-योजना को, इस समूह के सदस्य अपने-अपने विविध आवासों के प्रति अनुकूलन की क्षमता प्राप्त करने में किस प्रकार इस्तेमाल करते हैं।

2.3.1 देह-स्वरूप

प्रोटोज़ोअन का शरीर केवल कोशिका-झिल्ली द्वारा ही परिसीमित होता है जिसे **प्लाज़्मालेमा** (plasmalemma) कहते हैं। कुछ प्रोटोज़ोअनों में, जैसे कि सिलिएटों में, शरीर की दृढ़ता एवं लचीलापन कोशिका-झिल्ली के तुरंत नीचे स्थित एक **कोशिकाकंकाल** (cytoskeleton) द्वारा बनाए रखा जाता है, और ये दोनों रचनाएं परस्पर मिल कर **तनुत्वक्** अथवा **पेलिकल** (pellicle) बनाती हैं। यह कोशिकाकंकाल सूत्रीय प्रोटीनों का बना हो सकता है या सूक्ष्मनलिकाओं का या आशयों का या इन तीनों का मिला-जुला हो सकता है (चित्र 2.2)। अनेक प्रोटोज़ोअनों में, जैसे कि डाइनोफ़्लैजेलेटों, स्पोर बनाने वाले प्रोटोज़ोअनों तथा सिलिएटों में कोशिका झिल्ली के नीचे आशयों की एक चपटी एवं न्यूनाधिक रूप में सतत परत होती है, इन आशयों को **कूपिकाएं** (alveoli) कहते हैं। ये एक दृढ़ कंकाल बनाने में सहायक होती हैं।

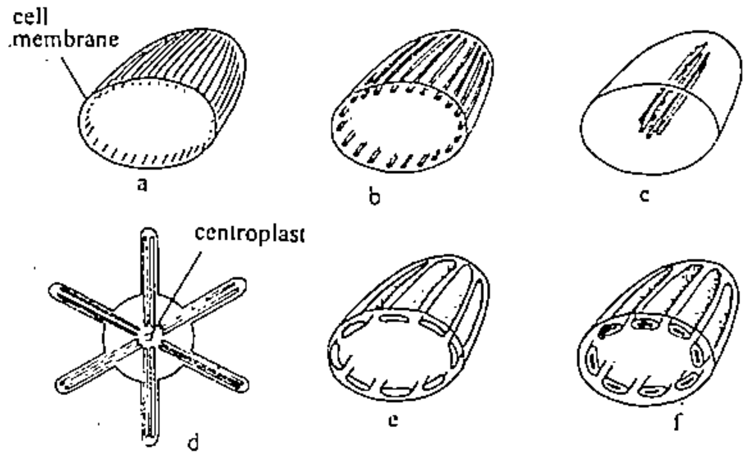

चित्र 2.2: प्रोटोज़ोअनों के अंतःकंकाल

क) सूत्रीय प्रोटीनों का एक सघन जाल बन जाता है जिसे एपिप्लाज़्म कहते हैं, उदाहरण *यूग्लीना* तथा कुछ सिलिएट।

ख) सूक्ष्मनलिकीय कॉर्सेट जो फ्लैजेलेटों, स्पोर बनाने वाले प्रोटोज़ोआ तथा कुछ सिलिएटों में पाया जाता है।

ग) सूक्ष्मनलियों का अक्षीय कंकाल

घ) अक्षपाद सूक्ष्मनलिकाएं एक सेंट्रोप्लास्ट से तारे की किरणों की भांति चारों ओर अरीय रूप में निकली होती हैं।

ङ) सिलिएटों की "रिक्त" कूपिकाएं

च) डाइनोफ्लैजेलेटों की कूपिकाओं में सेलुलोज़ प्लेटों का बना दृढ़ कंकाल।

कोशिका की बाहरी सतह पर बाह्यकंकाल का स्रावित होना भी अनेक प्रोटोज़ोअनों में पाया जाता है। ये प्रोटोज़ोअन जिलेटिन, सेलुलोज़ अथवा टेक्टिन (एक श्लेष्म जैसा पदार्थ) जैसे कुछ खास कार्बनिक पदार्थों की परतें अपनी प्लाज़्मालेमा के बाहर स्रावित करते हैं। कुछ उदाहरणों में एक जैविक मैट्रिक्स का स्रवण होता है जिसमें सिलिका जैसे खनिज अथवा कैल्सियम कार्बोनेट समाविष्ट रहते हैं। प्रायः कुछ बाहरी पिंड भी जैसे कि रेत के कण जैविक मैट्रिक्स में मिलकर उसे मज़बूत बना देते हैं। ये रसायन तरह-तरह से संघटित होकर विभिन्न प्रोटोज़ोआ में प्रावरक, कवच, लोरिका अथवा पुटी बनाते हैं जिनसे सुरक्षा प्रदान होती है।

क) **प्रावरक** (Theca): यह प्लाज़्मा झिल्ली के बाहर कसकर चिपकी हुई एक कड़ी संरचना होती है जो मुख्यतः सेलुलोज़ की बनी होती है। इसकी तुलना पादप कोशिका की कोशिका-भित्ति से की जा सकती है। प्रावरक एक से लेकर अनेक परत तक का मोटा हो सकता है मगर फिर भी यह लचीला होता है. कभी-कभी इसमें अकार्बनिक लवणों के जमाव से यह दृढ़ हो जाता है। प्रावरक की सतह चिकनी तथा समतल हो सकती है अथवा खुरदरी एवं पच्चीकारी युक्त हो सकती है जैसे कि *ग्लेनोडियम (Glenodium)* (चित्र 2.3)

ख) **कवच** (Shell): अधिसंख्य प्रोटोज़ोअनों में एक कवच के रूप में बाह्यकंकाल पाया जाता है जिसे टेस्ट अथवा चोल भी कहते हैं। यह कवच प्राणी के शरीर को घेरता हुआ एक ढीला आवरण होता है। इसमें एक से लेकर अनेक तक छिद्र होते हैं जिनमें से प्राणियों के पादाभ बाहर को निकाले जा सकते हैं। इन कवचों की संरचना, इनका पदार्थ एवं निमार्ण-विधियां विभिन्न प्रोटोज़ोअनों में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कवच सामान्यतः दो प्रकार के पदार्थों के बने होते हैं:

(i) जैविक अर्थात कार्बनिक पदार्थ जैसे कि काइटिन (chitin) अथवा टेक्टिन (tectin) जिसे **कूटकाइटिन** (pseudochitin) भी कहते हैं जो *आर्सेला (Arcella)* में पाया जाता है (चित्र 2.3b)

(ii) अकार्बनिक पदार्थ जैसे कि रेत के छोटे कण अथवा डायटम-कवच इकाइनोडर्म प्लेटे, आदि जो एक काइटिनी अथवा कूटकाइटिनी स्राव के द्वारा परस्पर चिपकी-जुड़ी रहती हैं जैसे *डिफ़्लूजिया (Difflugia)* (चित्र 2.3) में। फोरेमिनिफेरा (अमीबाभ प्रोटोज़ोअन) के कवच काफी सुंदर होते हैं तथा मुख्यतः केल्सियम कार्बोनेट के बने होते हैं (चित्र 2.16)।

ग) लॉरिका (Lorica): यह एक आवरण होता है जो प्रावरक से भिन्न होते हुए जीव पर ढीला-ढीला सा चढ़ा रहता है। यह एक प्याला, घंटी अथवा फूलदान सरीखी रचना हो सकती है जिसमें एक छिद्र होता है और छिद्र में से प्राणी अपने उपांग अथवा शरीर का अग्र भाग बाहर को निकाले रहता है। एकचर प्रोटोज़ोअनों में लोरिका में एक वृंत बना हो सकता है। *कोथुर्निया (Cothurnia)* जो जोड़ों के रूप में पाया जाता है टेक्टिनी लोरिका के भीतर स्थित होता है तथा वृंतयुक्त होता है (चित्र 2.3)

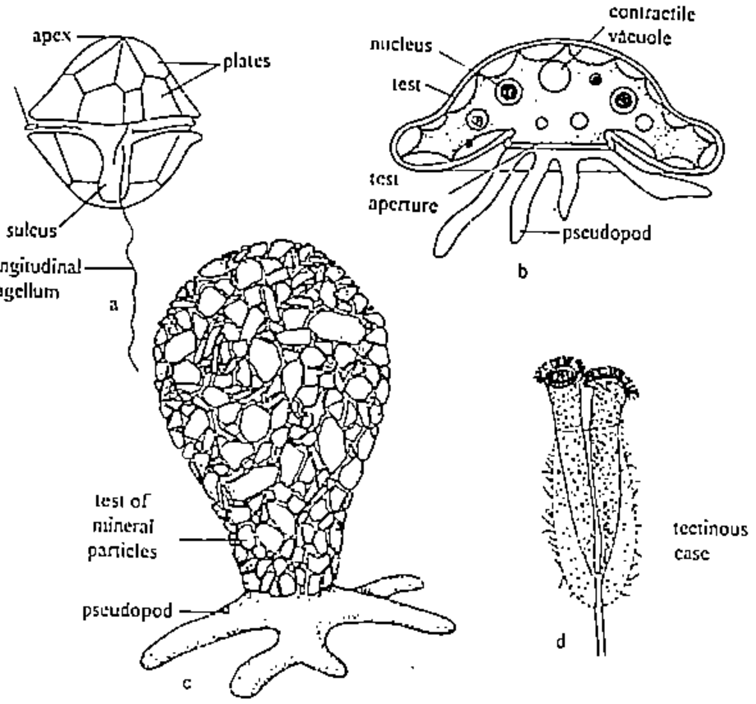

चित्र 2.3 : प्रोटोज़ोअनों के बाह्यकंकाल
- a) *ग्लेनोडियम* का सुसज्जित प्रावरक
- b) *आर्सेला* में कूटकाइटिन
- c) *डिफ़्लूजिया* में कूटकाइटिनी स्रावों द्वारा परस्पर चिपकाया गया अकार्बनिक पदार्थ
- d) *कोथुर्निया*

प्रोटोज़ोआ के केंद्रक झिल्ली से परिसीमित होते हैं, आकार में विविध होते हैं तथा इनकी विभाजन विधि भी अलग-अलग होती है। इनके मूलतः दो स्वरूप पाए जाते हैं : एक तो आशयी प्रकार जिसमें न्यूक्लियोप्लाज़्म की पर्याप्त मात्रा होती है और दूसरा संहत स्वरूप। जब केंद्रक एक से अधिक की संख्या में पाए जाते हैं प्रायः सभी एक से होते हैं केवल सिलिएटों को छोड़कर जिनमें एक बड़ा संहत वृहतकेंद्रक (macronucleus) तथा एक या एक से अधिक सूक्ष्मकेंद्रक (micronuclei) होते हैं। साइटोप्लाज़्म में एक्टोप्लाज़्म तथा एंडोप्लाज़्म के क्षेत्रों में विभेद हो सकता है।

एक्टोप्लाज़्म प्रकाशसूक्ष्मदर्शी के नीचे पारदर्शी दिखायी पड़ता है और उसमें कशाभों अथवा पक्ष्माभो के आधार स्थित होते हैं। एंडोप्लाज़्म कणिकीय दिखायी पड़ता है और उसके भीतर केंद्रक तथा साइटोप्लाज़्मी कोशिकांग होते हैं। एक्टोप्लाज़्मा अधिक दृढ़ होता है तथा वह कोलॉयड की जेल अवस्था में होता है जब कि एंडोप्लाज़्मा सॉल अथवा अधिक तरल अवस्था में होता है।

2.3.2 संचलन कोशिकांग

प्रोटोज़ोआ के संचलन कोशिकांग कशाभ, पक्ष्माभ अथवा पादाभ हो सकते हैं। प्रोटोज़ोअनों के वर्गीकरण में इनका बहुत महत्व है।

पक्ष्माभ तथा कशाभ की मूल संरचना एक ही होती है और केवल इसी एक आधार पर इन दोनों में विभेद नहीं किया जा सकता। इनमें एक तंतु अथवा **ऐक्सोनीम** (axoneme) होता है जिसके ऊपर झिल्ली का बना एक आवरण होता है जो कोशिका सतह की प्लाज़्मा-झिल्ली में जारी रहता है (चित्र 2.4)। इस ऐक्सोनीम के भीतर एक मैट्रिक्स होता है और इस मैट्रिक्स में मुख्यतः गोलिकामय ट्यूबुलिन नामक प्रोटीन की बनी सूक्ष्मनलिकाओं के ग्यारह समुच्चय होते हैं। इन सूक्ष्मनलिकाओं की व्यवस्था कुल मिलाकर यूकैरियोटों के सभी पक्ष्माभ तथा कशाभों में एक-जैसी ही विशिष्ट प्रकार की होती है।

नौ द्विक सूक्ष्मनलिकाएं एक वृत्त के रूप के तथा दो अलग-अलग केंद्र में पड़ी होती है। केंद्रीय सूक्ष्मनलिकाएं कोशिका सतह पर एक आधारप्लेट पर आकर समाप्त हो जाते हैं जब कि परिधीय

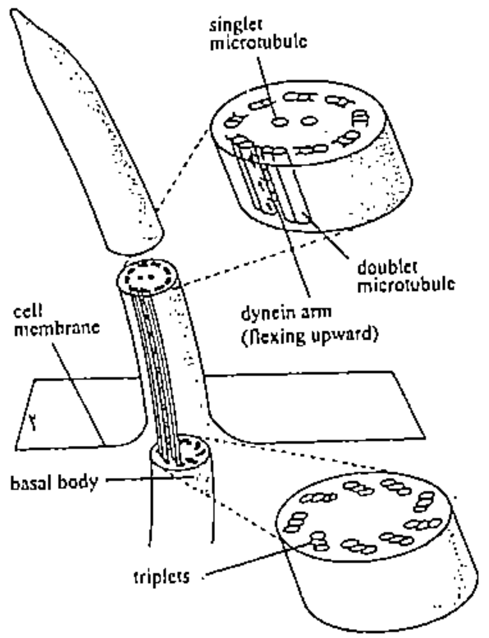

चित्र 2.4 : पक्ष्माभ तथा कशाभों की परासंरचना का आरेखीय प्रतिदर्श।

सूक्ष्मनलिकाएं भीतर कोशिका काय में जारी रहती हैं। लगभग इस स्थान पर एक और सूक्ष्मनलिका नौ में से प्रत्येक ज़ोड़ों में आकर मिलती है जिससे एक छोटी नली बन जाती है जो कोशिका के भीतर को चलती जाती है, तथा इस नली में सूक्ष्मनलिकाओं के तिगड्डे अथवा त्रिक (triplets) बन जाते हैं। ये सब मिलकर **आधारीय पिंड** (basal body) अथवा **काइनेटोसोम** (kinetosome) बनाने में योगदान देते हैं। सभी पक्ष्माभों तथा कशाभों में चाहे वे प्रोटोज़ोआ के हों अथवा मेटाज़ोआ के, यह आधारीय पिंड पाया जाता है। सिलिएट प्रोटोज़ोअनों में तंतुओं का एक सम्मिश्र अथवा **काइनेटोडस्मेटा** (kinetodesmata) पक्ष्माभ के आधारीय पिंडों को जोड़ता हुआ एक अवसिलिया विन्यास (infraciliature) है। यद्यपि संरचना की दृष्टि से पक्ष्माभ तथा कशाभों में कोई परस्पर अंतर नहीं होता फिर भी इन दोनों कोशिकांगों में कुछ विभेद किए जा सकते हैं (चित्र 2.5) पक्ष्माभ प्रायः कशाभों की तुलना में अधिक कड़े तथा छोटे होते हैं, एवं इनकी संख्या अधिक होती तथा ये पंक्तियों में व्यवस्थित होते हैं।

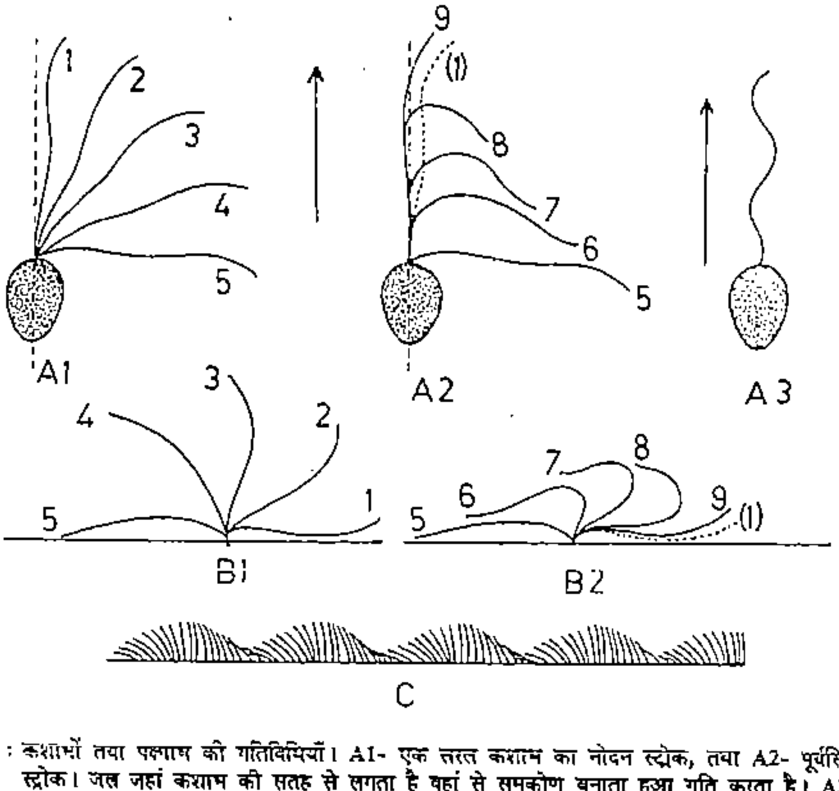

चित्र 2.5 : कशाभों तथा पक्ष्माभ की गतिविधियाँ। A1- एक तरल कशाभ का नोदन स्ट्रोक, तथा A2- पूर्वस्थिति स्ट्रोक। जल जहां कशाभ की सतह से लगता है वहां से समकोण बनाता हुआ गति करता है। A3- मुड़ने की अनेक तरंगों से एक सतत गति पैदा होती है। (तीर के निशान जल के नोदन एवं संचलन की दिशा दर्शाते हैं। B1 तथा B2- एक अकेले पक्ष्माभ के क्रमशः नोदन एवं पूर्वस्थि स्ट्रोक C- सिलियरी विसपंदन की अनुक्रमिक लय। प्रत्येक पक्ष्माभ अपने से अगले पक्ष्माभ से ज़रा से बाद में विस्पंद करता है परंतु अपनी सहवर्ती पंक्ति के पड़ोसी पक्ष्माभ के साथ-साथ, इस प्रकार पक्ष्माभ युक्त सतह के ऊपर, तरंगें पक्ष्माभ के प्रभावकारी स्ट्रोक के विपरीत दिशा में चलती हुई दिखायी पड़ती हैं।

आपको याद होगा आपने LSE-05 की इकाई-6 में पक्ष्माभ तथा कशाभों की गति की क्रियाविधि के बारे में पढ़ा। इन कोशिकांगों की गति सर्पण (sliding) सूक्ष्मनलिका परिकल्पना द्वारा समझाई गयी है। गति में जो ऊर्जा काम में आती है वह ATP से निकाली होती है। सर्पण सूक्ष्मनलिका परिकल्पना का प्रत्यक्ष प्रमाण देखने के लिए सूक्ष्म स्वर्ण- मनकों को ऐक्सोनीम सूक्ष्मनलिकाओं पर लगा कर उनकी गति को सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखा गया है।

पादाभ

पादाभ कोशिका के प्रवाहशील साइटोप्लाज़्मी बहिःसरण होते हैं जिनके द्वारा अमीबाभ गति संभव होती है (LSE-05 की इकाई 6 देखिए)। प्रोटोज़ोआ में पादाभों के अनेक स्वरूप पाए जाते हैं। सर्वाधिक परिचित स्वरूप **लोबोपोडियम** (lobopodium) अथवा पालिपाद होता है। ये लोबोपोडियम शरीर के कुंद प्रसार होते हैं जिनके भीतर एक्टोप्लाज़्म तथा एंडोप्लाज़्म दोनों होते हैं (चित्र 2.6)। शरीर के पतले प्रसारों को **फ़ाइलोपोडियम** (filopodium) अथवा तंतुपाद कहते हैं। ये अक्सर विशाखीय होते हैं और इनके भीतर केवल एक्टोप्लाज़्म होता है। फ़ाइलोपोडिया के बारबार विशाखित होने एवं उनके पुनः जुड़ते जाने से एक जाल-जैसा बन जाता है जिसे **रेटिकुलोपोडिया** (reticulopodia) अथवा जालपाद कहते हैं। लम्बे पतले पादाभ **ऐक्सोपोडिया** (exopodia) अथवा अक्षपाद कहलाते हैं जिनके भीतर सूक्ष्मनलिकाओं की अक्षीय शलाकाओं का आलम्ब बना होता है। ऐक्सोपोडिया को बाहर को बढ़ाया निकाला जा सकता अथवा भीतर को सिकोड़ा जा सकता है, ऐसा कर सकना अतिरिक्त सूक्ष्मनलिकाओं को बनाकर अथवा उन्हें समाप्त करके किया जा सकता है।

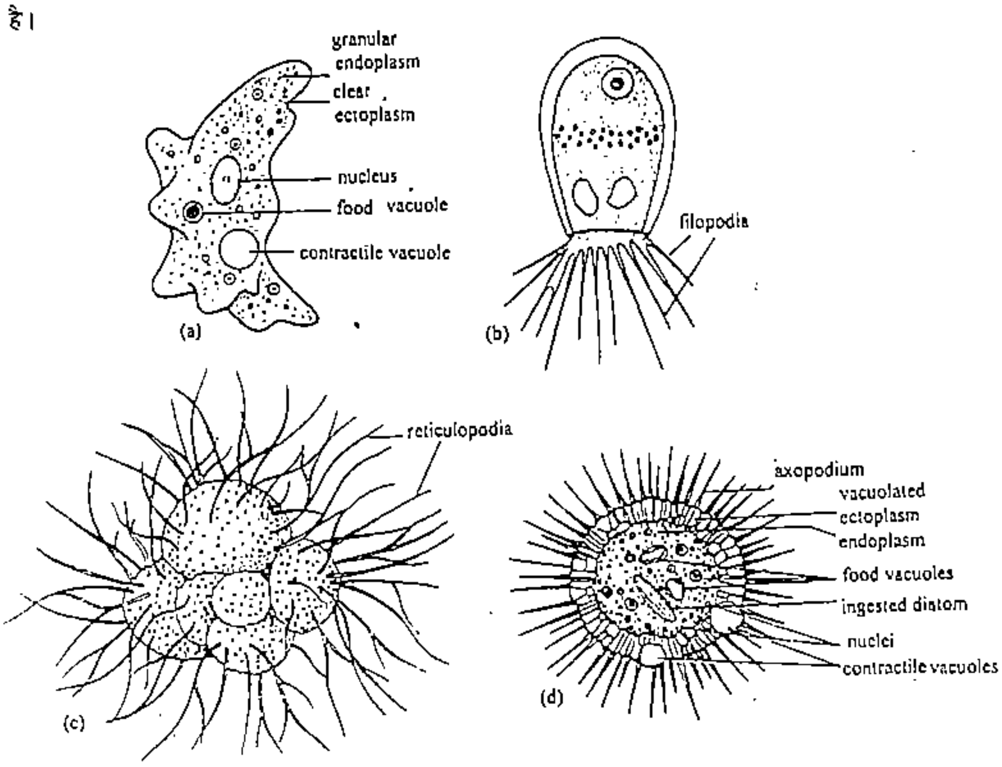

चित्र 2.6 : विविध पादाभः

a) *अमीबा* के लोबोपोडिया (पालिपाद)

b) *क्लैमाइडोफ़्रिस* जो एक अलवणजलीय अमीबा होता है, के फ़ाइलोपोडिया (तंतुपाद)

c) *ग्लोबीजेराइना* के रेटिक्यूलोपोडिया (जालपाद)

d) *ऐक्टिनोफ़्रिस सॉल* जिसे अक्सर सूर्य जंतुक कहते हैं, के ऐक्सोपोडिया (अक्षपाद)

जिस समय अमीबा की कोशिका काया में से एक या अधिक पादाभ पालियां बाहर को निकाली जा रही होती हैं तब अस्थायी पिछला सिरा, **पुच्छाभ** अथवा यूरॉइड, (uroid) खिंचता चला आता है। बीच का अधिक तरल प्रोटोप्लाज़्म जिसे **एंडोप्लाज़्म** कहते हैं प्रसारशील पादाभ की ओर को बहता जाता है, और इस प्रसारशील पादाभ का अंतिम सिरा एक अधिक गाढ़े जेल **एक्टोप्लाज़्म** के रूप में दिखायी पड़ता है। अमीबाभ गति के दौरान सॉल-सदृश एंडोप्लाज़्म पादाभ के बढ़ते जाते सिरे पर जेल-सदृश एक्टोप्लाज़्म में बदल जाता है। साथ ही साथ इसके ठीक विपरीत प्रक्रिया यूरॉइड (पुच्छाभ) पर होती रहती है जहां पर जेल सॉल में

बदलता जाता है। किसी एक बिंदु पर पादाभ अधःस्तर से संलग्न हो जाता तथा कोशिका आगे को चला दी जाती है।

यह विचारधारा भी व्यापक रूप से स्वीकारी जाने लगी है कि अमीबाभ गतियां भी कोशिकीय प्रोटीनों के संकुंचन पर निर्भर होती हैं और ये प्रोटीन पेशी में पाए जाने वाले प्रोटीनों के तुल्य होते हैं (LSE-5, इकाई 6 से स्मरण कीजिए)। ऐक्टिन तथा मायोसिन अमीबाभ कोशिकाओं में पायी गयी हैं तथा कुछ उदाहरणों में ट्रोपोमायोसिन भी देखी गयी है। चित्र 2.7 में विभिन्न प्रकार की अमीबाभ गतियां दर्शायी गयी हैं।

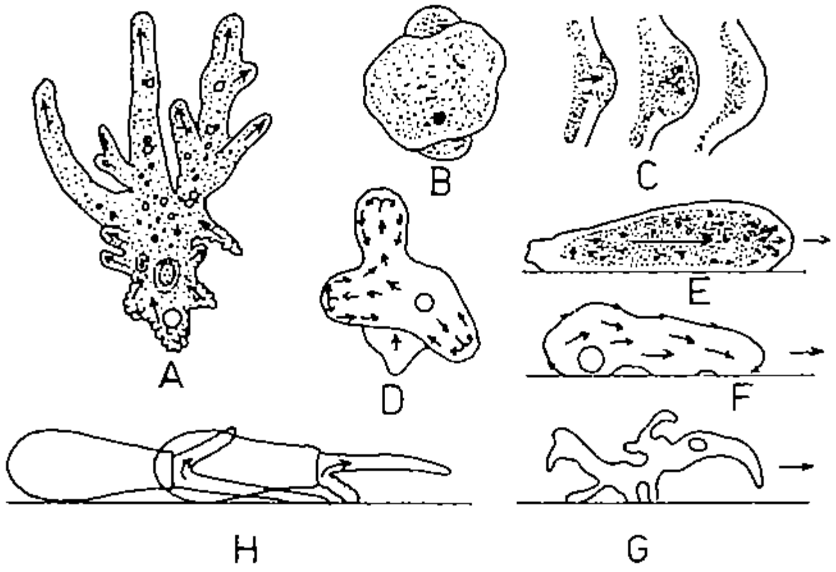

चित्र 2.7 : विभिन्न अमीबों में अमीबाभ संचलन A- *अमीबा प्रोटियस* (पालिनुमा पादाभ) । B- *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका* (चौड़े पालिनुमा पादाभ)। C- एंडोप्लाज़्म (काले क्षेत्र) का एक्टोप्लाज़्म (हल्के क्षेत्र) में सहसा प्रवाह से पालिनुमा पादाभ का बनना। D- अमीबा में प्रोटोप्लाज़्म की धारा। E- अमीबा की रेंगना गति। F- लुढ़कनी गति। G- पैदल चलने की सी गति (एक से अधिक पादाभों के बनने के कारण) H- *डिफ्लूजिया* में "इंच-वर्म" के तरीके का संचलन।

बोध प्रश्न 1

प्रोटोज़ोआ के विभिन्न वर्गों में पायी जाने वाली गति की विधियों में परस्पर समानताएं तथा भिन्नताएं बताइए।

....

....

....

2.3.3 पोषण

प्रोटोज़ोआ में सभी प्रकार के पोषण पाए जाते हैं। कुछ प्रोटोज़ोअन अकार्बनिक पूर्वगामियों (कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रेटों तथा अमोनियम लवणों) से स्वयं अपने भोजन का संश्लेषण करते हैं और इसलिए वे **स्वपोषी** (autotrophic) होते हैं जैसे क्लोरोफिल-धारी फ़्लेजेलेट। कुछ अन्य **विषमपोषी** (heterotrophic) होते हैं क्योंकि वे अपने भोजन के लिए पर्यावरण से प्राप्त होने वाली कार्बनिक तथा अकार्बनिक कच्ची सामग्री पर निर्भर होते हैं। विषमपोषी प्रोटोज़ोअनों की आहार-आदतें बहुत अलग-अलग होती हैं। कुछ अपने पर्यावरण से घुलनशील कार्बनिक पोषणों का आहार करते हैं, ऐसे जीवों को **मृतजीवी** (saprozoic) अथवा परासरणपोषी (osmotroph) कहते हैं जैसे परजीवी प्रोटोज़ोआ। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य हैं जो **प्राणिसमभोजी** (holozoic) होते हैं जो दृढ़ एवं ठोस जैविक आहार का अंतर्ग्रहण करते हैं, इन्हें **भक्षिपोषी** (phagotrophs) भी कहते हैं क्योंकि ये प्राणी अथवा पादप स्रोत के ठोस जैविक आहार का अंतर्ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वे बैक्टीरिया तथा अन्य छोटे प्रोटिस्टों को समूचा अंदर ले जाते हैं और अपनी खाद्य-धनियों के भीतर उन्हें पचाते हैं, उदाहरण राइज़ोपोड तथा सिलिएट-प्राणी।

स्वपोषी प्रोटोज़ोआ प्रकाश-ऊर्जा का उपयोग करके अपने कार्बनिक अणुओं का संश्लेषण करते हैं किंतु कभी-कभी वे भक्षिपोषी अथवा परासरणपोषी भी हो जाते हैं। और तो और, विषमपोषी प्रोटोज़ोआ में भी कुछ ही ऐसे होंगे जो पक्के तौर पर केवल एक ही प्रकार की पोषण-विधि का अनुसरण करते हों। उदाहरण के लिए, *यूग्लीना* की अलग-अलग स्पीशीज़ की पोषण-विधि में काफी विविधता पायी जाती है। कुछ स्पीशीज़ को स्वपोषी होते हुए भी पूर्वनिर्मित कार्बनिक अणुओं की आवश्यकता होती है, और कुछ ऐसी स्पीशीज़ हैं कि यदि उन्हें अंधेरे में रखा जाए तो उनके क्लोरोप्लास्ट समाप्त हो जाते हैं और वे स्थायी तौर पर परासरणपोषी हो जाती हैं। भक्षिपोषी पोषण में भक्षकाणुक्रिया निहित होती है जिसमें कोशिका झिल्ली आहार कण का अंतर्वलन कर लेती है (चित्र 2.8) और आहार का परिग्रहण हो जाता है। तदुपरांत अहार कण एक अंतःकोशिक झिल्ली से परिसीमित आशय में बंद हो जाता है जिसे **खाद्य-धनी** (food vacuole) अथवा **फैगोसोम** (phagosome) कहते हैं। उसके बाद लाइसोसोमों के एंज़ाइमों की क्रिया द्वारा आहार का पाचन किया जाता है। ये एंज़ाएम खाद्य धानी में पहुंचा दिए जाते हैं और अनपचे पदार्थ को एक्सोसाइटोसिस द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। पचा हुआ पदार्थ कोशिका में अवशोषित हो जाता है। अधिसंख्य सिलिऐटों, अनेक फ़्लैजेलेटों तथा एपिकाम्प्लेक्सनों में जिस जगह भक्षकाणुक्रिया होती है वहां एक निश्चित मुख जैसे संरचना बन जाती है जिसे **कोशिकामुख (साइटोस्टोम,** cytostome) कहते हैं चित्र (2.10 देखिए)। अमीबों में भक्षकाणुक्रिया किसी भी स्थान पर हो सकती है जहां पादाभ आहार कण को घेर लेते हैं। फ़्लैजेलेटों में एक अस्थायी कोशिकामुख प्रायः किसी एक खास स्थान पर हो सकता है अथवा कोशिकामुख एक स्थायी विशेषीकृत संरचना हो सकती है।

मृतजीवी अशन या तो **कोशिकापायन** (pinocytosis) के द्वारा या विलेयों के झिल्ली में से सीधे विसरण के द्वारा या सुगमीकृत अथवा सक्रिय परिवहन के द्वारा सम्पन्न हो सकता है।

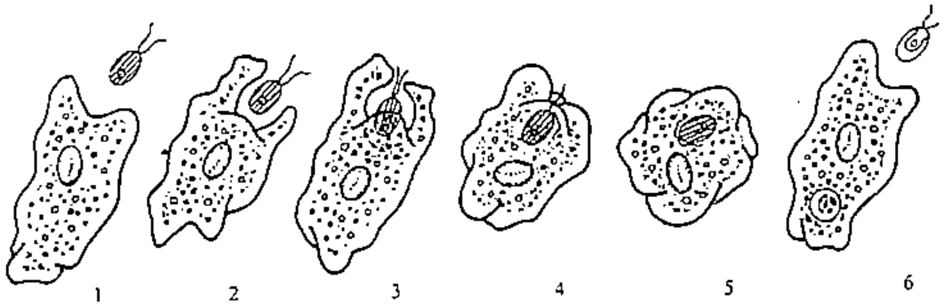

चित्र 2.8: *अमीबा* में भक्षकाणुक्रिया।

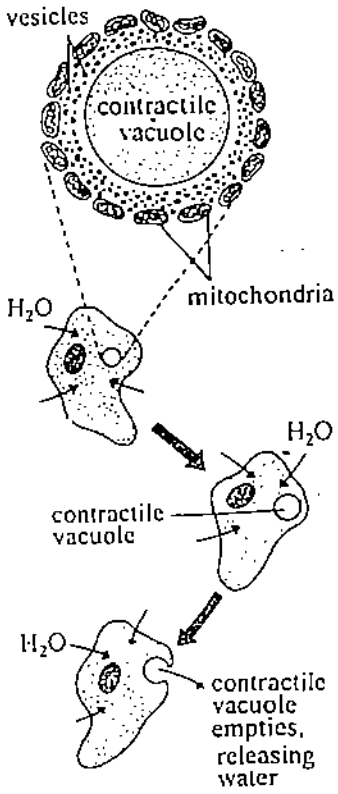

चित्र 2.9 : *अमीबा प्रोटियस* की संकुंचनशील धानी के चारों ओर छोटे-छोटे आशय बने होते हैं जिनमें तरल भर जाता है, और फिर यह तरल धानी में छोड़ दिया जाता है। उन बहुसंख्यक माइटोकॉण्ड्रिया पर ध्यान दीजिए जिनके बारे में समझा जाता है कि वे उस ऊर्जा को प्रदान करते हैं जो सूक्ष्म आशयों के भीतर की लवण मात्रा को सही स्तर पर रखने के लिए आवश्यक है।

2.3.4 परासरण नियमन तथा उत्सर्जन

प्रोटोज़ोआ में परासरणनियमन (osmoregulation) अर्थात जलसंतुलन संकुंचनशील धानियों (contractile vacuoles) द्वारा सम्पन्न होता है। प्राणी में एक से लेकर अनेक तक संकुंचनशील धानियां हो सकती हैं जिनका कोशिका के भीतर नियत स्थान हो सकता है। इनके साथ योगदात्री नालें अथवा अन्य आशय भी हो सकते हैं जो इन धानियों में खुलते हैं। ये सभी संरचनाएं जल एवं आयनों का नियमन करने वाली होती हैं जो एक पम्प की तरह कोशिका द्रव्य से जल को बाहर निकाल फेंकती रहती हैं। सभी अलवणजलीय प्रोटोज़ोआनो में संकुचनशील धानियों की कार्यशील प्राणालियां मौजूद होती पायी जाती है जबकि समुद्री एवं परजीवी उदाहरणों में ये प्रायः कम ही पायी जाती हैं।

उपापचयी अपशिष्टों का उत्सर्जन लगभग हमेशा ही केवल विसरण द्वारा ही होता है। सभी प्रोटोज़ोअन अमोनोत्सर्गी (ammonotelic) होते हैं, अर्थात् उनके नाइट्रोजन उपापचय का अंतिम उत्पाद अमोनिया होता है जो शीघ्र ही निर्विघ्न रूप से बाहरी माध्यम में विसरित हो जाती है।

प्रोटोज़ोआ के अलग-अलग समूहों में संकुचनशील धानियों की सम्मिश्रता भी अलग-अलग प्रकार की होती है। अमीबों में वे धानियां कोशिकाद्रव्य में चक्कर लगाती घूमती जाती हैं। छोटे-छोटे आशय इन धानियों से जुड़कर अपने अंतः पदार्थ को धानियों में डालतें जाते हैं और धानी झिल्ली से जुड़कर अपने अंतः पदार्थ को शरीर से बाहर निकाल देती है (चित्र 2.9)।

सिलिएटों में (जैसे *पैरामीसियम* में) संकुचनशील धानियाँ अधिक जटिल संरचना वाली होती हैं। संकुचनशील धानी एक निश्चित स्थान पर बनी होती है, इसका उत्सर्गी छिद्र बाहर को खुलता है, और इसे घेरते हुए संभरण नालों के ऐम्पुला बने होते हैं (चित्र 2.10)। संभरण नालों को घेरता हुआ एक जाल 20 nm व्यास वाली सूक्ष्मतर नालों का बना होता है जो एंडोप्लाज़्मी रेटिकुलम के नाल-तंत्र से भी जुड़ा रहता है ऐम्पुलों के चारों ओर रेशकों के पूल होते हैं संभवतः रेशकों की भूमिका ऐम्पुलों के संकुंचन में होती है। इनके द्वारा ऐम्पुलों में संकुचन होता है जिससे धानी भर जाती है और जब धानी के अंतःपदार्थ का बाहर को विसर्जन हो चुकता है तब ऐम्पुले वियोजित हो जाते हैं ताकि पदार्थ का उलटा प्रवाह न आ सके।

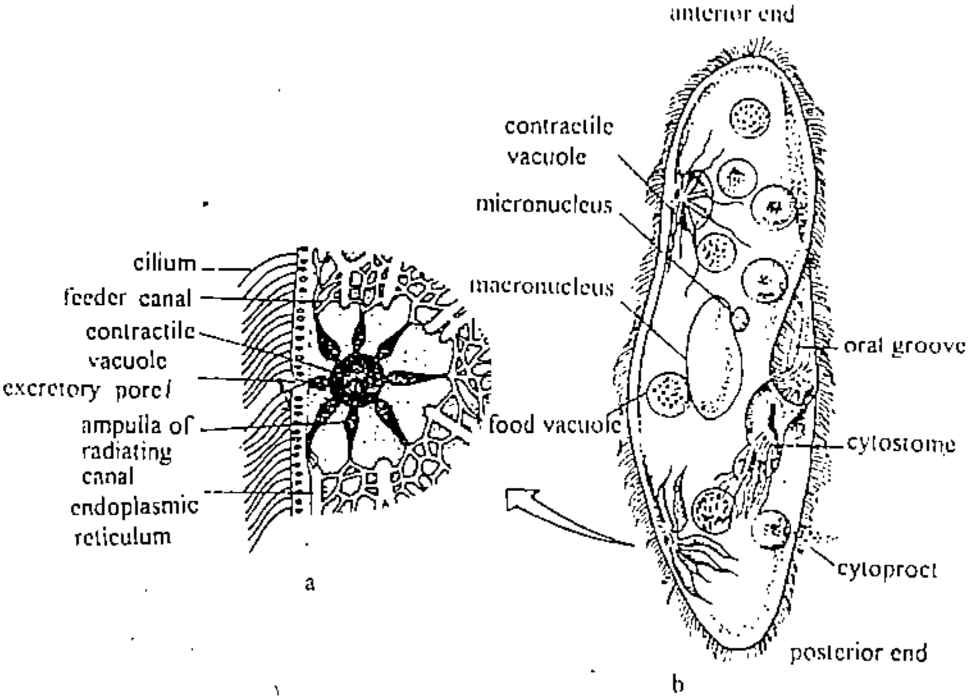

चित्र 2.10 : (a) *पैरामीसियम* जिसमें कोशिकाग्रसनी, खाद्य-धानियां तथा एक से अधिक केंद्रक होते हैं।
(b) *पैरामीसियम* में संकुचनशील धानी को बड़ा करके दिखाया गया सेक्शन जो जल एकत्रित करके उसे बाहर निकाल फेंकता है, और इस प्रकार परासरणनियमनकारी प्रकार्यों को पूरा करता है।

बोध प्रश्न 2

प्रोटोज़ोआ में संकुंचनशील धानियों के मुख्य प्रकार्य क्या हैं?

....

....

....

2.3.5 श्वसन

गैस-विनिमय कोशिका-झिल्ली के आर-पार ऑक्सीजन के विसरण द्वारा सम्पन्न होता है। कुछ प्रोटोज़ोअन इस ऑक्सीजन का उपयोग कर लेते हैं मगर कुछ अन्य ऐसे भी है जिनमें अवायवीय श्वसन की भी क्षमता होती है। *मोनोसिस्टिस (Monocystis)* जैसे परजीवी प्रोटोज़ोअन इसके उदाहरण हैं। उपापचयी अपशिष्ट जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड तथा अमोनिया जीवधारी में से बाहर को विसरित हो जाते हैं।

2.3.6 अनुक्रिया की क्रियाविधि

प्रोटोज़ोआ अनेक प्रकार के उद्दीपनों के प्रति संवेदनशील होते हैं जैसे कि स्पर्श, ताप-परिवर्तन, प्रकाश, रसायन, आदि। उनमें ऐसा किस प्रकार होता है अभी तक स्पष्ट नहीं है, मगर अमीबे लगातार अपनी आकृति और स्थान बदलते रहते हैं और उनकी प्रोटोप्लाज़्म-संहति में उद्दीपनों को प्राप्त करने तथा साथ ही साथ इन उद्दीपनों का संवहन करने की भी क्षमता होती है। पक्ष्माभ तथा कशाभ स्पर्श के लिए अति

संवेदनशील होते हैं। एक विशेष संवेदी कोशिकांग स्टिग्मा (stigma) अथवा नेत्र-बिंदु (eye spot) होता है। यह स्टिग्मा कुछ-लाल से रंग का एक पिंड होता है, यह प्रकाश संश्लेषी फ़्लैजेलेटों में पाया जाता तथा प्रायः कशाभ के मूल के निकट स्थित होता है। स्टिग्मा अक्सर प्याले की आकृति का सा होता है और वह एक ओर से प्रकाश-संवेदी क्षेत्र को ढके रहता है। पुनः यह स्पष्ट नहीं है कि उद्दीपन का, प्राप्त होने वाले स्थान से दूसरे स्थान पर, जहां क्रिया में अंतर आ जाता है किस प्रकार संवहन होता है।

2.3.7 जनन क्रियाविधि

अलैंगिक जनन सभी प्रोटोज़ोअनों में विखंडन (fission) मुकुलन (budding) तथा सिस्ट (पुटी) निर्माण के द्वारा होता है। इस विधि में जीव बिना युग्मकों (गैमीटों) के बनाए हुए अपने ही प्रकार की संततियों को बनाता है। जनक जीव द्विगुणित क्रोमोसोमों के सम्पूर्ण एक समुच्चय को अपनी संतति कोशिका में पहुंचा देता है (चित्र 2.11)

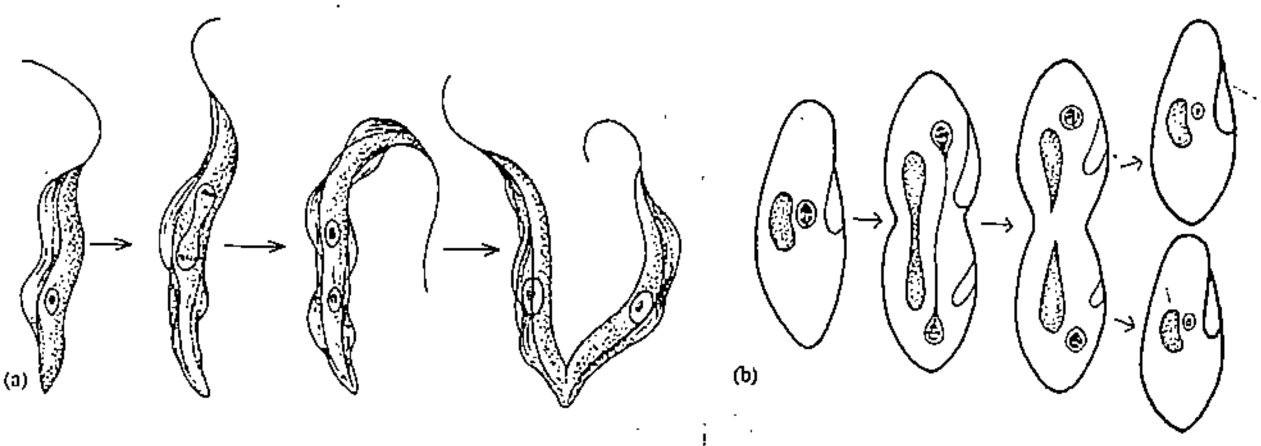

चित्र 2.11 : प्रोटोज़ोअनों में द्वि-विखंडन
a) एक फ़्लैजेलेट *ट्रिपैनोसोमा* में
b) एक सिलिएट *पैरामीसियम* में

लैंगिक जनन में केंद्रक में अर्धसूत्री विभाजन होते हैं जिससे द्विगुणित केंद्रक से अगुणित युग्मक (गैमीट) बन जाते हैं और फिर इन युग्मकों के संयोजन से पुनः द्विगुणितता प्राप्त हो जाती है। इस विधि में युग्मक या तो अलग-अलग जनकों से आए हुए हो सकते हैं जिस स्थिति में इस संयोजन को **उभयमिश्रण** (amphimixis) प्रकार का कहा जाता है। या फिर ये युग्मक एक ही जनक से बने हो सकते हैं जिस स्थिति में इसे **स्वमिश्रण** (automixis) प्रकार का कहा जाता है। संयोजनशील युग्मक या तो पूर्ण जीव हो सकते हैं या केवल केंद्रक। जब पूर्ण जीवों में संयोजन होता है तब इस प्रक्रिया को **सिनगैमी** (syngamy) कहते हैं। तथा जब केवल केंद्रकों से संयोजन होता है तब उसे **संयुग्मन** (conjugation) कहते हैं। सिनगैमी सिलिएटों को छोड़कर उन प्रोटोज़ोआ वर्गों में पायी जाती है जिनमें लैंगिक जनन होता है दूसरी ओर सिलिएटों में संयुग्मन होता है।

सिनगैमी

दो युग्मक आकारिकी की दृष्टि से समान हो सकते हैं (समयुग्मक isogametes) या असमान हो सकते हैं (असमयुग्मक, anisogametes) युग्मकों का रूप भी भिन्न हो सकता है, वे कशाभयुक्त हो सकते हैं अथवा अमीबाभ हो सकते हैं। युग्मनज (ज़ाइगोट) प्रायः एक शांत अवस्था में चला जाता है और बाद में उससे नयी व्यष्टियां बन जाती हैं।

संयुग्मन

संयुग्मन सिलिएटों की विशिष्टता है। इसकी तफ़सीलें अलग-अलग स्पीशीज़ में अलग-अलग होती हैं। इस

प्रक्रिया के सामान्य लक्षण *पैरामीसियम* की स्पीशीज़ में देखे जा सकते हैं, जिसमें एक गुरुकेंद्रक (macronucleus) तथा एक लघुकेंद्रक (micronucleus) होता है (चित्र 2.12)। संयुग्मन के लिए तैयार दो सिलिएट अंशतः जुड़ जाते हैं। देह की सतह तथा पेलिकल में बहुत से परिवर्तन होते हैं। गुरूकेंद्रक का विघटन हो जाता है तथा लघुकेंद्रक में दो बार विभाजन होकर चार अगुणित प्राक्केंद्रक (pronuclei) बन जाते हैं। इनमें से भी तीन का विघटन हो जाता है तथा चौथे से दो नए प्राक्केंद्रक बनते हैं-—एक स्थिर (stationary) तथा दूसरा प्रवासी (migratory) प्राक्केंद्रक। प्रवासी प्राक्केंद्रक अपने से दूसरे संयुग्मी में चला जाता है। उसके बाद ये दो प्राणी पृथक हो जाते हैं तथा प्राक्केंद्रक में संयोजन होकर युग्मनज (जाइगोट) बन जाता है। संयुग्मन के बाद अनेक विभाजन होकर गुरूकेंद्रक तथा लघुकेंद्रक बन जाते हैं तथा सामान्य केंद्रक-व्यवस्था पुनः प्राप्त हो जाती है।

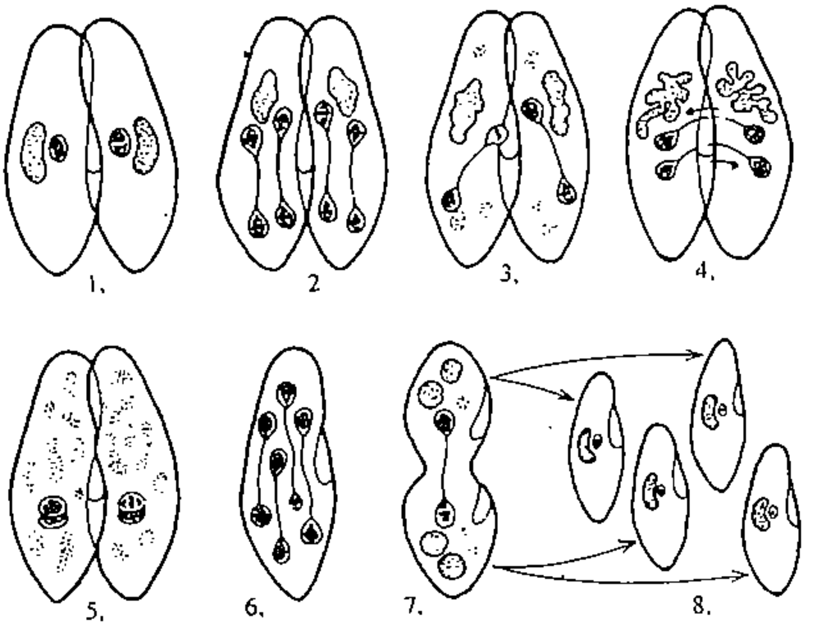

चित्र 2.12 : *पैरामीसियम कॉडेटम* में संयुग्मन।

2.3.8 पुटीभवन

पुटीभवन अनेक प्रोटोज़ोअनों के जीवन-चक्र की विशेषता है। प्रोटोज़ोअन अपने चारों ओर एक स्थूल आवरण का स्राव करता है जिसे पुटी (cyst) कहते हैं और निष्क्रिय हो जाता है, तथा इस अवस्था के दौरान उसकी समस्त उपापचयी क्रियाएं लगभग पूरी तरह बंद कर ली जाती हैं। यह सुरक्षाकारी पुटी निर्जलीकरण अथवा शुष्कन के प्रति अथवा निम्न तापमान के प्रति तो प्रतिरोधी होती ही है, साथ ही प्राणी को पर्यावरण की नानाविध प्रतिकूल दशाओं जैसे कि आहार का अभाव, शुष्कन, घट गया ऑक्सीजन सांद्रण, pH आदि में भी निकाल ले जाती है।

कुछ स्पीशीज़ में विभजन, मुकुलन तथा सिनगैमी के जैसी जनन प्रावस्थाएं भी पुटी के भीतर-भीतर होती रह सकती हैं। मगर समुद्री स्पीशीज़ में पुटीभवन की प्रक्रिया या तो होती ही नहीं या बहुत ही कम होती पायी जाती है।

प्रोटोज़ोआ का गतिमान अवस्था में अथवा पुटीभूत अवस्था में दूर-दूर तक प्रकीर्णन हो सकता है। यह प्रकीर्णन अनेक साधनों द्वारा हो सकता जैसे जलधाराएं, पवन, कीचड़, कचरा, या पक्षियों एवं प्राणियों के शरीर।

कुछ मृदा-आवासी तथा अलवण जलीय प्रोटोज़ोआ की पुटियों में गज़ब का स्थायित्व पाया जाता है। मृदा का एक सिलिएट *कॉल्पोडा* (*Colpoda*) सूखी मिट्टी में 38 वर्ष तक जीवित बना रह सकता है। दूसरी ओर, सभी पुटियां इतने लम्बे-लम्बे समय तक जीवित नहीं बनी रहतीं। *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका* की पुटियां आमाशय के अम्लीय माध्यम को तो सहन कर लेती हैं मगर 50°C के ऊपर अथवा धूप में निर्जलीकरण में जीवित नहीं बनी रह पाती।

अनुकूल परिस्थितियों के पुनः वापिस लौट आने पर वह प्रोटोज़ोआ जिनकी पुटियां प्रतिरोधी अवस्था के रूप में होती हैं, पुटियों में से वाहर निकल आते हैं।

बोध प्रश्न 3

I मूल पाठ में से शब्दों का इस्तेमाल करते हुए रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1) प्रोटोज़ोआ ———— नामक जगत के सदस्य हैं।

2) *वॉल्वॉक्स* प्रोटोज़ोआ का एक ———— प्रकार का उदाहरण है।

3) कुछ सिलिएट प्रोटोज़ोअनों में ———— का एक दृढ़ कंकाल वन गया होता है।

4) पादाभों द्वारा ———— गति पैदा होकर संचलन होता है।

5) जीव का ऐसा विभाजन जिसमें दो समान संतति कोशिकाएं वन जाती हैं ——— कहलाता है।

6) ———— नामक प्रक्रिया में दो सिलिएटों के वीच अगुणित केंद्रकों का आदान-प्रदान होता है।

7) अमीवा में पोषण ———— प्रकार का होता है।

8) *यूग्लीना* में संचलन-संरचना ———— होती है।

II कॉलम क में दिए गए मदों को कॉलम ख में दिए गए मदों से मिलाइए:

	क		ख
क	सूक्ष्मनलिकाएं	i)	प्राणिसमभोजी
ख	आहार के लिए अन्य जीवों पर निर्भरता	ii)	वाह्यकंकाल
ग	फोरेमिनिफ़ेरा-प्राणियों के टेस्ट (चोल)	iii)	परजीवी प्रोटोज़ोआ
घ	ठोस आहार का अंतर्ग्रहण	iv)	संकुचनशील धानियां
ङ	अवायवीय श्वसन	v)	कोशिकाकंकाल
छ	परासरण नियमन	vi)	विषमपोषी पोषण

2.4 प्रोटोज़ोआ का वर्गीकरण

परम्परागत रूप में प्रोटोज़ोअनों को चार समूहों में विभाजित किया जाता है– फ़्लैजेलेट (कशाभी) प्राणी, अमीवे, स्पोरोज़ोअन तथा सिलिएट। हमने इस स्थूल समूहन को सुविधा की दृष्टि से वनाए रखा है ताकि आपको विभिन्न समूहों की तुलना के लिए एक आधार मिल जाए और आप प्रोटोज़ोअनों में पायी जाने वाली विविधता का अंदाज़ा लगा सकें। इस अनुभाग के अंत में हमने एक वर्गीकरण रूपरेखा दी है जिसे सन् 1980 में "सोसाइटी आफ़ प्रोटोजूलोजिस्ट्स" ने सामने रखा था। इस वर्गीकरण के अनुसार सात फ़ाइलम माने जाते हैं। यह वर्गीकरण अधिक वास्तविक है। इसमें और वातों के साथ-साथ एक तो यह माना जाता है कि फ़्लेजेलेट तथा अमीवे अन्य समूहों की अपेक्षा आपस में अधिक निकटतः संबंधित हैं और दूसरी यह कि स्पोरोज़ोअनों में अनेक असंबंधित स्वरूप पाए जाते हैं।

2.4.1 कशाभयुक्त प्रोटोज़ोअन

(फ़ाइलम–सार्कोमैस्टिगोफ़ोरा; उपफ़ाइलम–मैस्टिगोफ़ोरा)

1. ये ऐसे प्रोटोज़ोअन हैं जो एक या अधिक कशाभों के द्वारा गति करते हैं और इन्हीं में सर्वाधिक संख्या में, लगभग 6800 स्पीशीज़ पायी जाती हैं।

2. अलैंगिक जनन अनुदैर्ध्य द्विविभजन द्वारा होता है (चित्र 2.11 देखिए)। लैंगिक जनन में समयुग्मक (isogametes) बनते हैं।

3. पोषण-विधि के आधार पर उन्हें सामान्यतः दो समूहों में विभाजित किया जाता है।

(क) **फाइटोफ्लैजेलेट** (Phytoflagellates) **स्वपोषी होते हैं**, इनमें क्लोरोफिल होता है या उससे संबंधित अन्य वर्णक होते हैं। ये प्राणी आहार को वसा, तेल तथा स्टार्चों (ग्लाइकोजन के अलावा) के रूप में संचित करते हैं। यह स्वच्छंद जीवी होते तथा इन्हें अक्सर शैवाल फ़ाइलमों में रखा जाता है।

उदाहरणः *यूग्लीना, क्लैमाइडोमोनस (Chlamydomones) वॉल्वॉक्स, पेरानीमा (Peranema), गोनियम (Gonium), पैंडोराइना (Pandorina)*, तथा डाइनोफ़्लैजेलेट (चित्र 2.13)

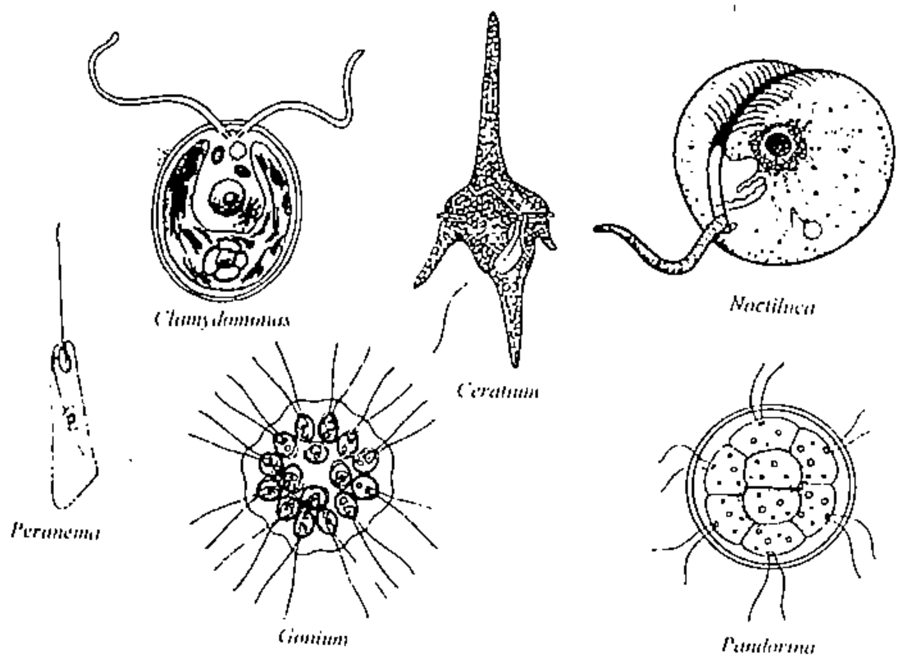

चित्र 2.13 : फाइटोफ्लैजेलेटों में पायी जाने वाली विविधता। *गोनियम* तथा *पैंडोराइना* कॉलोनीय होते हैं। *नॉक्टिल्यूका* (*Noctiluca*) तथा *सेरेशियम* (*Ceratium*) डाइनोफ्लैजेलेट होते हैं।

फाइटोफ़्लैजेलेटों में डाइनोफ़्लेजेलेटों का समूह एक रोचक वर्ग है, इनमें भूरे अथवा पीले वर्णकधर होते हैं हालांकि कुछेक प्राणी रंगहीन भी होते हैं। कुछ स्पीशीज़ जैसे कि *नॉक्टिल्यूका* जीवसंदीप्तिशील (bioluminescent) होती हैं। डाइनोफ़्लैजेलेट-प्राणी जब बहुत तीव्र गति से प्रजनन करते हैं तब वे अन्य जीवों को क्षति पहुँचाते हैं क्योंकि इनके शरीर से विषैले पदार्थ निकलते हैं जो अन्य जीवों के लिए ज़हरीले होते हैं।

(ख) **ज़ूफ़्लैजेलेट** (Zooflagellates) विषमपोषी होते हैं जो या तो स्वच्छंदजीव सहभोजी (commensals) होते हैं या सहजीवी (symbiotic) या अन्य प्राणियों में परजीवी होते हैं। इनकी अनेक स्पीशीज जैसे *ट्राइकोनिम्फा* (*Trichonympha*) तथा *मिक्सोट्राइका* (*Myxotricha*) (चित्र 2.14 देखिए) दीमकों के आहार-नाल में रहती हैं और सेलुलोज़ का पाचन करती हैं, यह सेलुलोज़ वह होता है जिसे लकड़ी खाने वाली दीमकें खा तो लेती हैं मगर स्वयं पचाने में असमर्थ होती हैं। *ट्राइकोनिम्फा* लकड़ी खाने वाले कीटों (दीमकों तथा काष्ठ-काकरोचों) की पश्च आहार-नाल में सहोपकारिक सहजीवी के रूप में रहता है। ये फ़्लैजेलेट बड़े आकार के होते हैं (कभी-कभी 300 µm तक लम्बे) । इनका अग्र सिरा एक विशद पेलिकल से ढका होता है एवं उस पर सैकड़ों-सैकड़ों कशाभ होते हैं। परंतु इनके पश्च सिरे से पादाभ निकलते हैं जो लकड़ी के अंशों का अंतर्ग्रहण कर लेते हैं। यह फ़्लैजेलेट सेलुलोज़-पाचक एंज़ाइम बना सकता है, मगर इसका कीट-पोषी ऐसे एंज़ाइम नहीं बना सकता है। अतः यह कीट अपने सहजीवियों से विमोचित कार्बोहाइड्रेटों पर निर्भर रहते हैं।

हर बार जब भी इन कीटों में निर्मोचन (moulting) होता है तब उनकी पश्च आहार नाल का अस्तर भी बाहर निकल जाता है जिससे उसके सहजीवी-प्राणी भी निकल जाते हैं। यदि ऐसे कीट नए सहजीवियों को पुनः अर्जित नहीं कर पाते तो वे सामान्य रूप से लकड़ी खाते रहने के बावजूद भूख से मर जाते हैं क्योंकि वह लकड़ी को पचा सकने में असमर्थ होते हैं। फ्लैजेलेट प्राणी भी इस सहोपकारिता पर उतने ही निर्भर हैं जितने कि इनके परपोषी कीट, क्योंकि परपोषी के शरीर के बाहर ये कुछ ही मिनटों में मर जाते हैं। बच्चा-दीमक अथवा नयी-नयी निर्मोचित दीमक इन सहजीवियों को

तब प्राप्त करती है जब यह कॉलोनी की अन्य दीमकों के गुदा-छिद्र से सीधे आहार ग्रहण करती होती हैं। *मिक्सोट्राइका* पूरी तरह कशाभों से ढका हुआ दिखायी पड़ता है। मगर इनमें से केवल चार कशाभ ही वास्तविक कशाभ होते हैं तथा शेष एक प्रकार के बैक्टीरिया अथवा स्पाइरोकीट होते हैं (हाशिये में दी गई टिप्पणी देखिए) जो इसकी सतह पर संलग्न रहते हैं। इनकी कोड़ेनुमा गति से फ़्लैजेलेट तैर सकता है तथा इसके अपने कशाभ दिशा-परिवर्तन में सहायक होते हैं।

स्पाइरोकीट लम्बे पतले कुंडलिनी-रूपी बैक्टीरिया होते हैं जो आकार में 500 μm तक लम्बे हो सकते हैं। इनकी कोशिका-भितियां इतनी दृढ़ नहीं होतीं, अतः वे सरलता से मुड़-झुक सकते हैं। अधिकतर स्पाइरोकीट अहानिकर होते हैं। और जल, मृदा तथ अन्य प्राणियों के शरीर के भीतर रहते हैं, मगर कुछ तो भयंकर परजीवी भी होते हैं। यौन रोग उपदंश (सिफ़िलिस) एक स्पाइरोकीट से ही होता है।

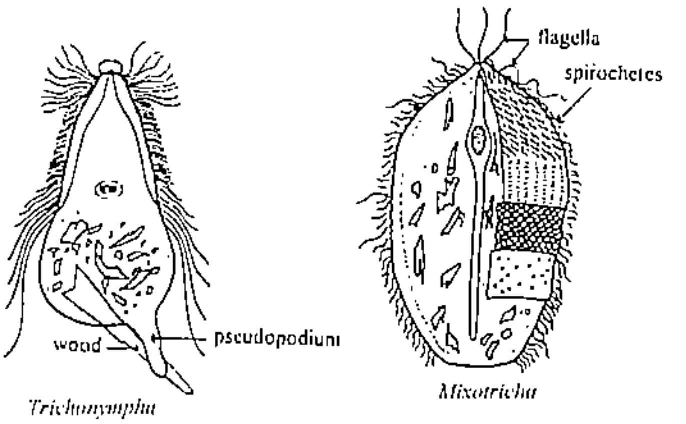

चित्र 2.14 : दीमकों के आहार-नाल में रहने वाले ज़ूफ़्लैजेलेट परजीवी।

फ़्लैजेलेटों की अन्य सुपरिचित स्पीशीज़ *ट्रिपैनोसोमा* तथा *लीश्मानिया* है जो अफ्रीका तथा एशिया में मानवों एवं मवेशियों में पायी जाती हैं। *ट्रिपैनोसोमा* से मनुष्यों में **निद्रालुरोग** (sleeping sickness) तथा मवेशियों में **नगाना** (nagana) रोग पैदा होते हैं। **सेट्सी-मक्खी** (tsetse fly) द्वारा परपोषी के काटे जाने पर परपोषी के रक्त में फ़्लैजेलेट का संक्रमण पहुंच जाता है। *लीश्मानिया* से व्यापक काला-अजार तथा अन्य संबंधित रोग पैदा होते हैं। ये शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को प्रभावित करता है तथा रोगी में अन्य प्रभावों के साथ-साथ त्वचा के घाव पैदा करता है। इस प्रोटोज़ोअन की परपोषी रक्त चूसने वाली एक मक्खी होती है जिसे सैंडफ़्लाई कहते हैं। इनके विषय में और अधिक विस्तार से आप अनुभाग 2.5 में पढ़ेंगे।

2.4.2 अमीबाभ प्रोटोज़ोअन

(फाइलम-सार्कोमेस्टिगोफ़ोरा; उपफ़ाइलम सार्कोडिना)

अमीबाभ प्रोटोज़ोअनों की पहचान है कि इनमें शरीर के प्रवाहशील प्रसार पाए जाते हैं जिन्हें पादाभ कहते हैं। इनका उपयोग आहार करने तथा संचलन में किया जाता है। आकृति तथा संरचना के आधार पर पादाभों को अलग-अलग नाम दिए जाते हैं (इस इकाई का अनुभाग 2.3 देखिए)। इस समूह में परिचित अमीबे (चित्र 2.6a) तथा अन्य समुद्री, अलवणजलीय तथा थलवासी टेक्सॉन आते हैं। अमीबाभ आकृति कदाचित कुछ स्पीशीज़ में पूर्वज प्रोटिस्टन दशा के पूर्ववत बने रहने का ही परिणाम हो सकती है। कुछ अन्य स्पीशीज़ में हो सकता है कि यह आकृति द्वितीयक रूप से कशाभ समाप्त हो जाने से पैदा हुई हो क्योंकि अनेक समूहों के जीवन-चक्र में कशाभ युक्त युग्मक पाए जाते हैं।

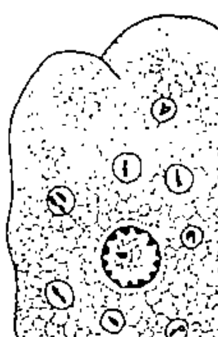

चित्र 2.15 : *एंटअमीबा कोलाई* जो मानव आहारनाल में सामान्यतः पाया जाता है।

अमीबाभ प्रोटोज़ोआ असममित हो सकते हैं अथवा उनमें गोलीय सममिति होती हैं। इनमें अपेक्षाकृत थोड़े से ही कोशिकांग होते हैं और हो सकता है कि प्रोटोज़ोअनों में सबसे सरल ये ही हों। तथापि अधिसंख्य स्पीशीज़ में जटिल कंकालीय संरचनाएं विकसित हो गयी हैं जिसके कारण ये अपनी ही तरह के अति सुन्दर जीव बन गए हैं। अमीबाभ प्रोटोज़ोअनों के चार प्रमुख समूह हैं : अमीबे, फ़ोरैमिनिफ़ेरा- प्राणी, हीलियोज़ोअन तथा रेडियोलेरियन। इनमें से अमीबे तथा फ़ोरैमिनिफ़ेरन सुपरक्लास राइज़ोपोडा में आते हैं जबकि रेडियोलेरियन तथा हीलियोज़ोअन सुपरक्लास ऐक्टिनोपोडा में आते हैं क्योंकि उनमें अक्षपाद होते हैं।

1. **अमीबे** या तो नग्न हो सकते हैं या टेस्ट (चोल) अथवा कवचों में बंद हो सकते हैं। समुद्री, अलवणजलीय तथा परजीवी नग्न अमीबों में प्रायः बड़े आकार के तथा सामान्यतः नलिकाकार पालिपाद अथवा महीन फ़ीते जैसे तंतुपाद होते हैं जिन्हें संचलन एवं अशन में इस्तेमाल किया जाता है। (चित्र 2.6 देखिए)। कवच युक्त अमीबे समुद्र, अलवणजल तथा मिट्टी में पाए जाते हैं। इनके ऊपर एक कवच मढ़ा होता है जो स्रावित जैव पदार्थ या परस्पर जोड़े एक बाहरी खनिज पदार्थ का बना हो सकता है (चित्र 2.3)। कवच में बने एक बड़े छिद्र में से पालिपाद अथवा तंतुपाद बाहर को निकले हो

सकते हैं। विभिन्न प्राणियों और मानव की आहार नाल में अनेक सहभोजी और परजीवी अमीबा पाए जाते हैं। *एंटअमीबा कोलाई* (चित्र 2.15) मनुष्यों की आहार-नाल में पाया जाने वाला सहभोजी है जो बेक्टीरिया तथा अंतड़ियों के कचरे को खाता रहता है जबकि *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका* एक परजीवी है जिससे अमीबीय पेचिश होती है (अनुभाग 2.5 देखिए)

2. **फ़ोरेमिनिफ़ेरा**-प्राणी अधिकतर नितलस्थ (benthic) स्पीशीज़ होती हैं। इनके अनेक कक्षों वाले केल्सियमी टेस्टों अथवा कवचों में बहुत से छिद्र हैं, इसलिए यह नाम फ़ोरेमिनिफ़ेरा अर्थात छिद्रधारी पड़ा। एक अकेले बड़े छिद्र में से साइटोप्लाज़्मा बाहर को निकाला हो सकता है। इंगलैंड की डोवर की चॉक-चट्टानें ऐसे ही फ़ोरेमिनीफ़ेरन कवचों के गहरे-गहन अवसादों की बनी हैं (चित्र 2.16)

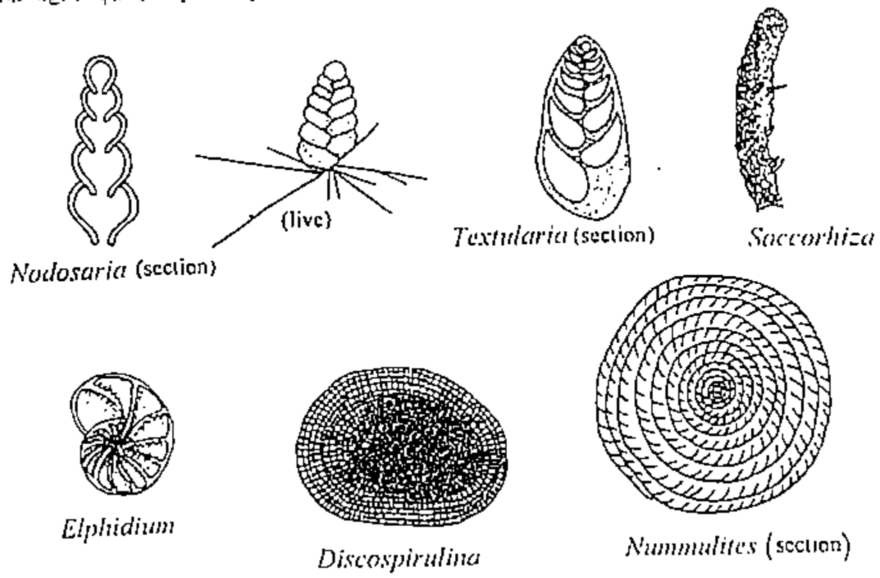

चित्र 2.16 : विविध प्रकार के फ़ोरेमिनिफ़ेरन कवच जो मुख्यतः केल्सियम कार्बोनेट के बने होते हैं। जीवाश्म स्पीशीज़ *न्यूमुलाइटीस (Nummulites)* का संसार के कुछ भागों में विशाल चूना-पत्थर के जमावों में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

3. **रेडियोलेरियन**-प्राणी पूर्णतः समुद्री प्लवक स्पीशीज़ होते हैं जिनमें गोलाकार शरीर तथा अरीय रूप में निकले हुए पादभ होते हैं जिन्हें अक्षपाद कहते हैं। गोल शरीर के दो विभाजन होते हैं— एक भीतरी भाग तथा दूसरा बाहरी भाग। भीतरी क्षेत्र में एक से लेकर अनेक केंद्रक होते हैं और उसे घेरता हुआ एक **केंद्रीय केप्सूल** (central capsule) होता है जो एक झिल्ली से ढका रहता है। रेडियोलेरियनों का यह एक विशेष विभेदक लक्षण है। केप्सूल की झिल्ली में छिद्र बने होते हैं जिनके द्वारा भीतरी केप्सूल का साइटोप्लाज़्म शरीर के बाहरी विभाजन के साथ जुड़ा-जारी रहता है। यह बाहरी साइटोप्लाज़्म **कैलिमा** (calymma) कहलाता है।

रेडियोलेरियन का कंकाल सिलिकॉन डाइआक्सॉइड अथवा स्ट्रांशियम सल्फेट का बना होता है जो जालीदार गोलों अथवा किरणों के समान निकले कंटकों के रूप में गठित होता है (चित्र 2.17 a तथा b)।

रेडियोलेरियनों तथा फ़ोरेमिनिफ़ेरनों के कंकाल महासागर की तलहटी का मुख्य भाग होते हैं जहां वे कुल जमाव का 30% या अधिक भाग होते हैं। इसे **रेडियोलेरियन ऊज़** (radiolarian ooze) अथवा फ़ोरैम कहते हैं किन्तु 4000 m की गहराई के नीचे दाब के कारण ये कवच घुलने लग जाया करते हैं। कवच युक्त अमीबाभ प्रोटोज़ोआ ही प्रोटोज़ोआ का वह बड़ा वर्ग है जिसका जीवाश्म रिकार्ड मिलता है। रेडियोलेरियन प्राचीनतम जीवाश्म हैं। मीज़ोज़ोइक तथा सीनोज़ोइक युगों में फ़ोरैम कवच के व्यापक संचय ने विश्व के विभिन्न भागों में विशाल चूना-पत्थर निर्माण एवं चॉक संचयन में भारी योगदान दिया है। वे खदानें जिनसे मिस्र के पिरामिड बनाए गए मुख्यतः फ़ोरैम कवचों की ही बनी हुई थीं।

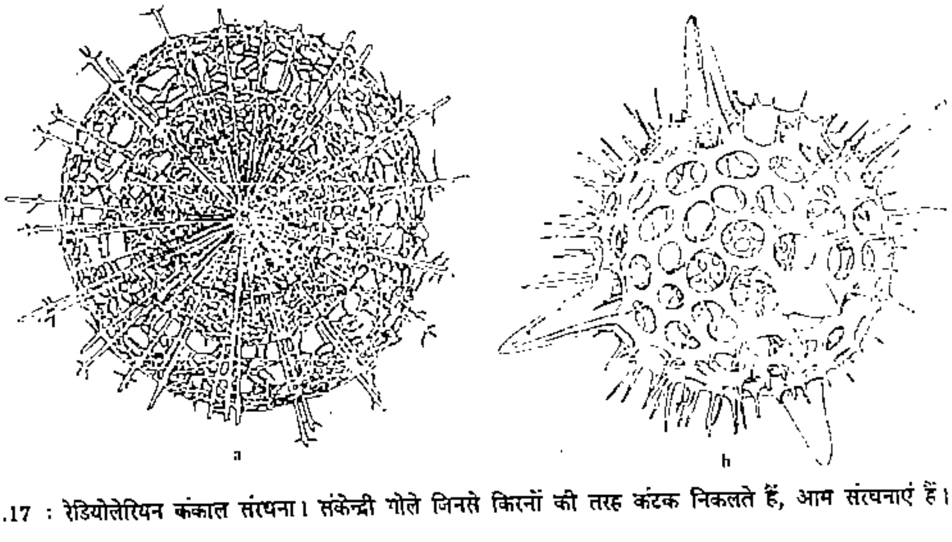

चित्र 2.17 : रेडियोलेरियन कंकाल संरचना। संकेन्द्री गोले जिनसे किरणों की तरह कंटक निकलते हैं, आम संरचनाएं हैं।

4. **हीलियोज़ोअन** गोलीय प्रोटोज़ोअन होते हैं जो समुद्रों में अथवा अलवण जल की स्थिर जलराशियों में पाए जाते हैं। ये मुख्यतः तलहटी के कचरे में होते हैं। सूक्ष्म सुई-जैसे पादाभ देह की सतह से किरणों के समान निकले होते हैं। इन्हें अक्षपाद (axopodia) कहते हैं (चित्र 2.6 को भी देखिए)। प्रत्येक अक्षपाद के भीतर एक अक्षीय शलाका होती है जिसके ऊपर एक गतिमान साइटोप्लाज़्म होता है।

हीलियोज़ोअन के शरीर में एक बाहरी धानीयुक्त एक्टोप्लाज़्मी **कॉर्टेक्स** (cortex) तथा एक भीतर सघन **मेडुला** (medulla) होता है। मेडुला के भीतर सघन साइटोप्लाज़्म होता है तथा उसके भीतर एक से लेकर अनेक केंद्रक एवं अक्षीय शलाकाओं के आधार स्थित होते हैं (चित्र 2.18)।

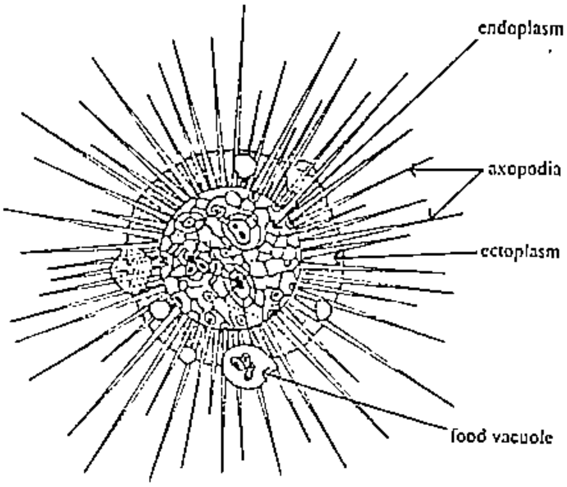

चित्र 2.18 : बहुकेंद्रकीय हीलियोज़ोअन *इकाइनिस्फीरियम*, (*Echinisphaerium*)

बोध प्रश्न 4

बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत :

1. समस्त फ़्लैजेलेट प्रोटोज़ोआ स्वपोषी होते हैं।
2. कुछ फ़्लैजेलेटों जैसे कि दीमकों की आहार नाल में सहजीवी रूप में रहने वालों में सेलुलोज़ को पचाने की क्षमता होती है।
3. फ़्लैजेलेट तथा अमीबाभ प्रोटोज़ोअन आजकल एक ही फ़ाइलम में रखे जाते हैं।
4. सभी अमीबाभ प्रोटोज़ोअनों में एक या किसी अन्य प्रकार के पादाभ होते हैं।
5. सभी अमीबाभ प्रोटोज़ोअनों में या तो सममिति होती नहीं या गोलाकार सममिति होती हैं।
6. रेडियोलेरियनों का शरीर गोल होता है तथा उनमें किरणों के समान पादाभ निकले होते हैं जिन्हें अक्षपाद कहते हैं।
7. फ़ोरेमिनिफ़ेरन तथा रेडियोलेरियन प्रोटोज़ोअन ही प्रोटोज़ोआ का एकमात्र बड़ा समूह है जिनका जीवाश्म रिकॉर्ड मिलता है।
8. ज़ूफ़्लैजेलटों में लैंगिक जनन नहीं होता ।

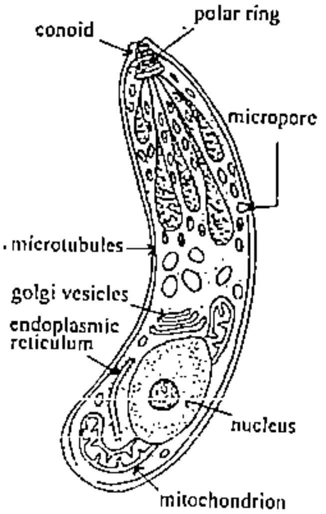

चित्र 2.19: एक सामान्यीकृत एपिकॉम्प्लेक्सन स्पोरोज़ोअन का पार्श्व दृश्य। शीर्षस्थ सम्मिश्र के घटक शेड करके दिखाए गए हैं। (Farmer. J.N, 1980 The Protozoa से)।

2.4.3 स्पोर का निमार्ण करने वाले प्रोटोज़ोआ (फ़ाइलम- ऐपिकॉम्प्लेक्सा)

प्रोटोज़ोआ में लगभग 4000 ऐसी स्पीशीज़ हैं जिनके जीवन चक्र में स्पोर (बीजाणु) बनाने वाली अवस्थाएं आती हैं। स्पोर बनाने वाले प्रोटोज़ोआ की अधिकतर ज्ञात स्पीशीज़ क्लास स्पोरोज़ोआ में आती हैं तथा वे परजीवी हैं। उनमें कशाभ अथवा पादाभ नहीं होते और वे अकशेरूकी अथवा कशेरूकी परपोषियों की कोशिकाओं के भीतर अथवा कोशिकाओं के बीच-बीच के स्थानों में रहती हैं। इनके शीर्षस्थ सिरे पर वलयाकार, नलिकाकार तथा तंतु समान कोशिकांग होते हैं जिनका एक स्पष्ट विभेदकारी सम्मिश्र बन जाता है, यह सम्मिश्र केवल इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के नीचे ही दिखायी पड़ता है। इस फ़ाइलम में दो वर्ग आते हैं एक

तो ग्रीगेराइन (gregarines) जो कीटों, ऐनेलिडों तथ अन्य कृमियों में कोशिकाबाह्य परजीवी होते हैं, और दूसरा **कॉक्सीडियन** (coccidians) जो कशेरूकियों तथ अकशेरूकियों की रक्त कोशिकाओं के अंतःकोशिक परजीवी होते हैं। सर्वाधिक परिचित कॉक्सीडियन *प्लाज़्मोडियम* (*Plasmodium*) है जिससे मलेरिया होता है। मलेरिया-परजीवी के विषय में आप और अधिक विस्तार से अनुभाग 2.5 में पढ़ेंगे। स्पोरोज़ोअनों के जटिल जीवन-चक्र में प्रतिरूपतः अलैंगिक तथा लैंगिक प्रावस्थाएं आती हैं (चित्र 2.20)। स्पोरोज़ोअनों में युग्मनज (जाइगोट) को छोड़कर सभी अवस्थाएं अगुणित होती हैं।

युग्मनल में अर्धसूत्री विभाजन होता है जिससे एक संक्रामक स्पोर-जैसी अवस्था **स्पोरोज़ोऑइट** (sporozoite) बनती है जिसमें बहुविभाजन होकर और अधिक स्पोरोज़ोऑइट बन जाते हैं। ये परपोषी में आक्रमण करते तथा उसके भीतर अशन करने वाली अवस्था **ट्रोफोज़ोऑइट** (trophozoite) बन जाती हैं। कुछ स्पोरोज़ोअनों में ट्रोफ़ोज़ोआइट में बहुविभाजन होकर **मीरोज़ोऑइट** (merozoite) बन जाते हैं, इस अवस्था को बनाने वाले बहुविभाजन को **शाइज़ोगोनी** (schizogony) कहते हैं। प्रत्येक मीरोज़ोआइट में और आगे बहुविभाजन होकर और नए मीरोज़ोआइट बन जाते हैं जिनमें अंततः **गैमोगोनी** (gamogony) होती है अर्थात ऐसा बहुविभाजन जिससे युग्मक बनते हैं और फिर इन युग्मकों का संलयन होकर युग्मनज बनता है।

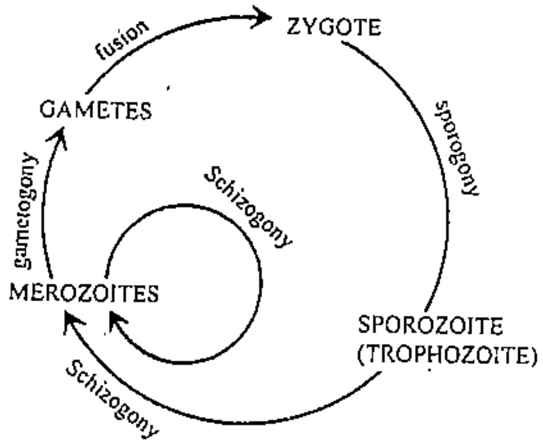

चित्र 2.20 : कॉक्सीडियन स्पोरोज़ोअनों का जीवन-चक्र। युग्मनज को छोड़कर सभी अवस्थाएं अगुणित होती हैं।

2.4.4 सिलिएट प्रोटोज़ोअन (फ़ाइलम सिलियोफ़ोरा)

प्रोटोज़ोअनों में सिलिएट प्राणी ही ऐसे हैं जो सबसे बड़ा और सर्वाधिक समांग वर्ग बनाते हैं। ये सभी एक ही फ़ाइलम **सिलियोफोरा** में रखे जाते हैं तथा ऐसा प्रमाण मिलता है कि इन सबका एक ही समान क्रमविकासीय इतिहास रहा है। इसमें 7200 से अधिक स्पीशीज़ आती हैं जो अलवणजल, समुद्री जल तथा मृदा की जल परत में पायी जाती हैं। करीब एक-तीहाई सिलिएट या तो वाह्य परजीवी, या अंतः परजीवी, या सहभोजी होते हैं।

इस फ़ाइलम का सबसे पुराना परिचित उदाहरण चप्पल नुमा *पैरामीसियम* है (चित्र 2.10 देखिए)। अन्य सुपरिचित उदाहरण हैं *वार्टिसेला* (*Vorticella*) *स्टेन्टर* (*Stentor*), *डाइडिनियम* (*Didinium*), *बैलेंटिडियम* (*Balantidium*) (चित्र 2.21)

सभी सिलिएटों में पक्ष्माभ होते हैं जिनसे संचलन और निलम्यन अशन की क्रियाएं होती हैं। इनका एक और विभेदक लक्षण है **काइनेटोसोमों** (kinetosomes) (सिलिया के आधार पिंडो) का पाया जाना और उससे संबद्ध रेशकों के एक सम्मिश्र संलागी प्रणाली का होना जो काइनेटोसोमों को अनुदैर्घ्य पक्तियों में जोड़े रखती है। ये सब परस्पर मिलकर अवपृष्ठीय सिलिया-व्यवस्था अथवा **अवसिलियरी-तंत्र** (infraciliary system) बनाते हैं। अधिकतर सिलिएटों में एक मुख अथवा **साइटोस्टोम** (कोशिकामुख) होता है और वे कणों से युक्त जल को अपने मुख में को बहाकर अशन करते हैं। कोशिकामुख तथा कोशिकाग्रसनी खाद्य धानी में खुलते हैं तथा अनपचा अवशेष एक नियत स्थान से बाहर निकाल फेंक दिया जाता है। एक अन्य विशिष्ट लक्षण इनमें दो प्रकार के केंद्रकों का पाया जाना है—एक बड़ा **गुरूकेंद्रक** (macronucleus) तथा एक या एक से अधिक **लघुकेंद्रक** (micronuclei)। गुरूकेंद्रक को कायिक केंद्रक भी कहते हैं क्योंकि यह जीव की सामान्य उपापचयी प्रक्रियाओं का नियमन करता है ताकि उससे सूत्रीविभाजन एवं कोशिकीय विभेदन का नियंत्रण हो

सके। इसकी आवश्यकता प्रोटीन संश्लेषण में होती है। गुरुकेंद्रक में मौजूद DNA की मात्रा उससे कहीं ज्यादा होती है जितनी कि लघुकेंद्रक में होती है और ऐसा इसलिए है क्योंकि लघुकेन्द्रक से गुरुकेंद्रक के बन जाने के बाद उसकी प्रतिकृतियां बनती जाती हैं।

इसके विपरीत लघुकेंद्रक छोटा और गोल होता है। यह द्विगुणित होता है तथा एक या एक से अधिक हो सकता है एवं इसमें RNA न के बराबर होता है। लघुकेंद्रक में आनुवंशिक पदार्थ होता है जिसके द्वारा लैंगिक जनन के दौरान आनुवंशिक आदान-प्रदान होता है और साथ ही गुरुकेंद्रक का पुनर्निर्माण भी इसी से होता है।

सिलिएटों में अलैंगिक जनन अनुप्रस्थ विभजन के द्वारा तथा लैंगिक जनन संयुग्मन के द्वारा होता है, संयुग्मन में सम्पर्क के क्षेत्र पर लघुकेंद्रकों का आदान-प्रदान एवं संलयन होता है।

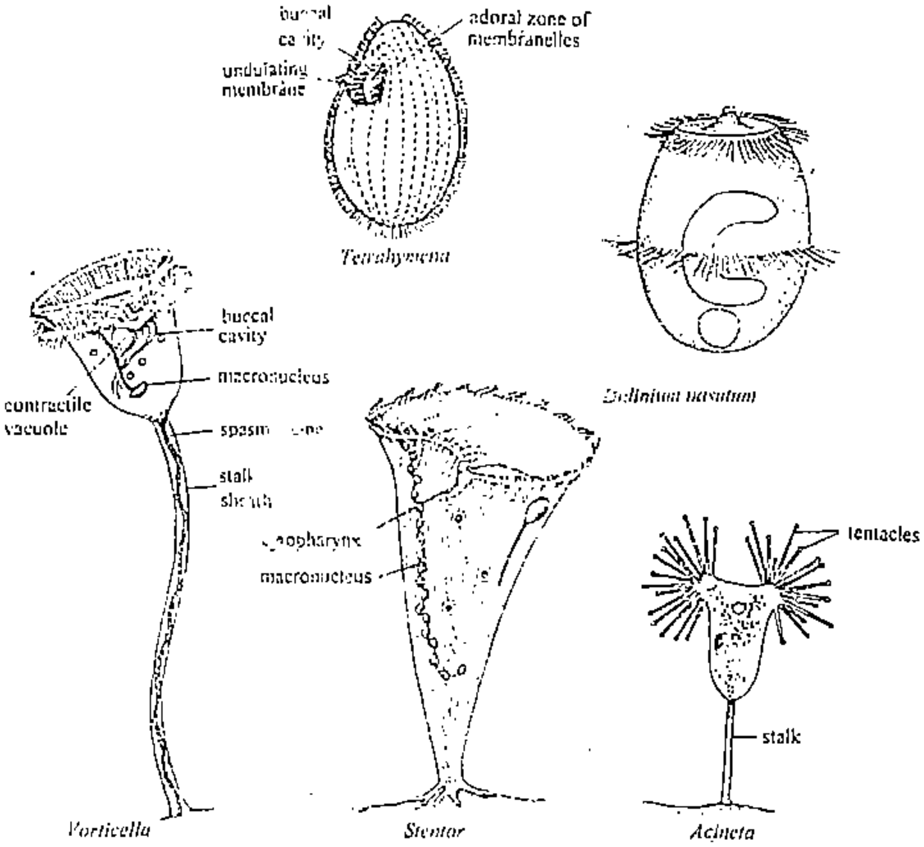

चित्र 2.21 : *वार्टिसेला* तथा *स्टेन्टर*, जो स्थानबद्ध सिलिएट हैं। स्टेन्टर अपने को अधःस्तर से छुड़ाकर यहां-वहां तैर भी सकता है। *डाइडीनियम* (Didinium), एक दयोघनी सिलिएट
बैलेंटिडियम, आहारनाल का एक परजीवी सिलिएट

बोध प्रश्न 5

क) सिलियोफोरनों के पक्ष्माभ के क्या प्रकार्य हैं ?

....

....

....

ख) सिलियोफोरनों में गुरुकेंद्रक तथा लघुकेंद्रक के क्या प्रकार्य हैं ?

....

....

....

प्रोटोज़ोआ की वर्गीकरण योजना

जगत प्रोटिस्टा- एक कोशिकीय यूकैरियोट-प्राणी

I **फ़ाइलम सार्कोमैस्टिगोफ़ोरा** (Sarcomastigophora) संचलन कोशिकांग—कशाभ, पादाभ, अथवा ये दोनों, प्रायः एक ही प्रकार का केंद्रक, प्रतिरूपतः स्पोर-निर्माण नहीं होता, लैंगिक जनन सिनगैमी द्वारा।

i) **उपफ़ाइलम मैस्टिगोफ़ोरा** (Mastigophora) वयस्क अवस्थाओं में एक या अधिक कशाभ होते हैं, स्वपोषी अथवा विषमपोषी पोषण, जनन सामान्यतः विभजन द्वारा अलैंगिक विधि से।

क्लास फाइटोमैस्टिगोफ़ोरा (Phytomastigophora) पादप-समान फ्लैजेलट-प्राणी; इनमें सामान्यतः क्लोरोफ़िल अथवा अन्य वर्णक होते हैं। उदाहरणः *यूग्लीना, वॉल्वॉक्स, काइलोमोनस, नाक्टिल्यूका, पेरानीमा, क्लैमाइडोमोनस*

क्लास ज़ूमैस्टिगोफ़ोरा (Zoomastigophora) क्लोरोप्लास्ट रहित फ्लैजेलेट-प्राणी; एक से लेकर अनेक कशाभ; कुछ वर्गों में बिना कशाभों के अमीबाभ स्वरूप; अधिकतर स्पीशीज़ सहजीवी।

उदाहरण *ट्राइकोमोनस, ट्राइकोनिम्फ़ा ट्रिपैनोसोमा, लीशमानिया, जिआर्डिया*।

ii) **उपफ़ाइलम ओपैलाइनेटा** (Opalinata)

शरीर पक्ष्माभ जैसे कोशिकांगों की अनुदैर्घ्य पंक्तियों से ढका हुआ परंतु वास्तविक पक्ष्माभ व्यवस्था नहीं होती। परजीवी, साइटोस्टोम (कोशिकामुख) नहीं होता, एक ही प्रकार के दो या अनेक केंद्रक। उदाहरणः *ओपैलाइना, प्रोटोपैलाइना* (चित्र 2.22)।

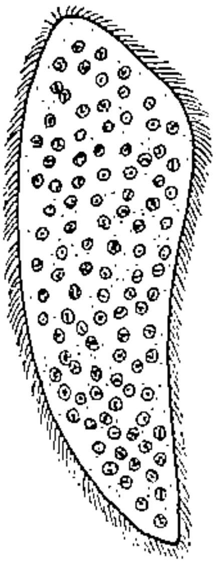

चित्र 2.22: एक बहुकेंद्रकयुक्त अंतःजीवी फ्लैजेलेट *ओपैलाइना* मेंढक तथा टोडों में परजीवी।

iii) **उपफ़ाइलम सार्कोडिना** (Sarcodina)

पादाभ होते हैं, कशाभ कुछ स्पीशीज़ में परिवर्धन अवस्थाओं में होते हैं; स्वच्छजीवी अथवा परजीवी।

क) **सुपरक्लास-राइज़ोपोडा** (Rhizopoda)

संचलन पालिपादों, तंतुपादों, अथवा जालपादों द्वारा या बिना पादाभों के बनाए हुए प्रोटोप्लाज़्मी प्रवाह के द्वारा। उदाहरणः *अमीबा, एंटअमीबा, डिफ़्लूजिया, आर्सेला, ग्लोबीजेराइना*

ख) **सुपरक्लास ऐक्टिनोपोडा** (Actinopoda)

अक्सर गोलाकार, सामान्यतः प्लवक, पादाभ अक्षपादों के रूप में, कंकाल जब भी होता है तब जैव पदार्थ का बना होता है और या सिलिका का या स्ट्रॉशियम सल्फ़ेट का बना होता है, जनन अलैंगिक तथा/अथवा लैंगिक, अशनकारी कोशिकाएं विरलतः कशाभ युक्त, अनेक स्पीशीज़ में छोटी कशाभ युक्त अवस्थाएं जिनकी सही-सही प्रकृति (युग्मक हैं या स्पोर) अब भी अनिश्चित हैं।

उदाहरण *एकैंथोमीट्रा (Acanthometra), ऐक्टिनोफ़्रिस, इकाइनोस्फ़ीरियम*

II **फ़ाइलम लेबिरिंथोमॉर्फा** (Labyrinthomorpha)

पोषी अवस्था होती है, एक्टोप्लाज़्मी जालक जिसमें स्पिंडलाकार अथवा गोलीय अनअमीबाभ कोशिकाएं होती हैं। एक छोटा वर्ग जो शैवालों पर रहता है, अधिकतर समुद्री अथवा ज्वरनदमुखी। उदाहरण *लैबिरिंथुला (Labyrinthula)*

III **फ़ाइलम एपिकॉम्प्लेक्सा** (Apicomplexa)

कुछ परिवर्धनशील अवस्थाओं में अग्र सिरे से संबद्ध विशेष लक्षण के रूप में कोशिकांगों (शीर्षस्थ सम्मिश्र) का एक समुच्चय का पाया जाता है। कुछ वर्गों में कशाभयुक्त सूक्ष्मयुग्मकों को छोड़कर शेष सभी में पक्ष्माभ तथा कशाभ नहीं होते हैं, पुटियां अक्सर पायी जाती हैं, सभी स्पीशीज़ परजीवी।

i) **क्लास पर्किन्सिया** (Perkinsea)

सीपियों में परजीवी रूप में पाया जाने वाला एक छोटा वर्ग

ii) **क्लास स्पोरोज़ोआ (Sporozoa)**

स्पोर तथा अंडपुटियां (oocysts) होती हैं जिनके भीतर स्पोरोगोनी के परिणामस्वरूप बने संक्रमक स्पोरोज़ोआइट होते हैं, संचलन की प्रक्रिया परिपक्व जीव में शरीर को लचका-मचका कर, सर्पण द्वारा अथवा अनुदैर्घ्य कटकों के ऊर्मिलन द्वारा। कशाभ कुछ ही स्पीशीज़ में केवल सूक्ष्मयुग्मकों में पाए जाते हैं, पादाभ सामान्यतः नहीं होते, जब कभी होते हैं तो उनका उपयोग अशन में किया जाता है संचलन में नहीं। एक या दो परपोषियों वाले जीवन-चक्र।

उदाहरणः *मोनोसिस्टिस, ग्रीगेराइना, टॉक्सोप्लाज़्मा, प्लाज़्मोडियम*

IV **फा़इलम मिक्सोज़ोआ (Myxozoa)**

निम्नतर कशेरूकियों विशेषकर मछलियों और अकशेरूकियों में पाए जाने वाले परजीवी

V **फ़ाइलम माइक्रोस्पोरा (Microspora)**

अकशेरूकियों विशेषकर आर्थ्रोपोडों एवं निम्नतर कशेरुकियों के परजीवी

VI **फ़ाइलम ऐस्केटॉस्पोरा (Ascetospora)**

एक छोटा वर्ग जो अकशेरूकियों में तथा कुछेक कशेरूकियों में परजीवी रूप में पाया जाता हैं।

VII **फा़इलम सिलियोफो़रा (Ciliophora)**

सरल पक्ष्माभ अथवा जटिल पक्ष्माभ कोशिकांग जीवन-चक्र की कम से कम किसी एक अवस्था में पाए जाते हैं। बाहरी सतह के पक्ष्माभ न भी हों तो अवपेलिकल पक्ष्माभ तो होते ही हैं। विरल अपवादों को छोड़कर सभी में दो प्रकार के केंद्रक; द्विविभाजन अनुप्रस्थ मगर बहुविभाजन तथा मुकुलन भी होते हैं। लैंगिकता जिसमें संयुग्मन, स्वयुग्मन (ऑटोगैमी) तथा कोशिकायुग्मन (साइटोगैमी) होते हैं। पोषण विषमपोषी; संकुंचनशील धानी प्रतिरूपतः होती है; अधिकतर स्पीशीज़ स्वच्छंदजीवी मगर कुछ सहभोजी और कुछ वास्तविक परजीवी भी होती हैं।

यह एक बहुत बड़ा वर्ग है जिसे "सोसाइटी ऑफ प्रोटोज़ूलौजिस्ट्स ने तीन क्लासों तथा बहुत से आर्डरों एवं उपआर्डरों में विभाजित किया है। क्लासों को पक्ष्माभी विन्यास और वह भी खास तौर से कोशिकामुख के चारों ओर के विन्यास के आधार पर पृथक किया गया है।

उदाहरणः *पैरामीसियम, डाइडिनियम, कॉल्पोडा, बैलेनटिडियम, स्टेन्टर*, एपिडिनियम, वॉर्टिसेला, ट्राइकोडाइना, ऐफेलोटा, टेट्राहाइमेना

2.5 कुछ परजीवी प्रोटोज़ोआ

प्रोटोज़ोआ की हज़ारों स्पीशीज़ में से अधिकतर स्वच्छंदजीवी होती हैं। तथापि ये परजीवी भी हैं जैसे कि सार्कोमेस्टिगोफो़रा तथा सिलियोफ़ोरा फ़ाइलमों की अनेक स्पीशीज़ अपने जीवन के किसी एक भाग में अथवा पूरे जीवन में, तथा एपिकॉम्प्लेक्सा फ़ाइलम (स्पोरोज़ोआनों) के तो सभी सदस्य परजीवी हैं। अनेक स्पोरोज़ोआन अपने परपोषियों के भीतर प्रधानतः अंतःकोशिक जीवन बिताते हैं। मनुष्यों तथा पशुओं में परजीवी रूप में पाए जाने वाले प्रोटोज़ोआन गंभीर रोगजनक होते हैं जिनके कारण भारी हानियां पहुंचतीं एवं प्रभावित समष्टियों में बहुत ज़्यादा मौतें होती हैं। आइए मनुष्यों में पाए जाने वाले सर्वाधिक सामान्य एवं महत्वपूर्ण प्रोटोज़ोआन परजीवियों के विषय में कुछ जानें।

2.5.1 अमीबे

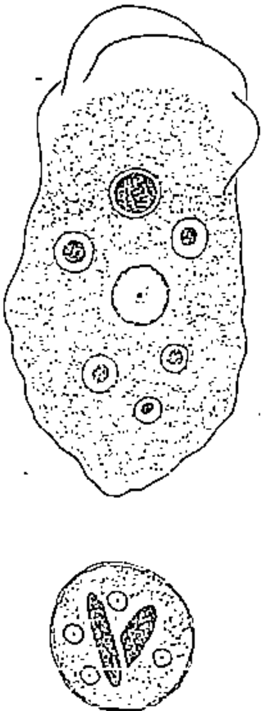

चित्र 2.23 : एंटअमीबा हिस्टोलिटिका तथा उसकी पुटी अवस्था (Kudo से)।

जीनस *एंटअमीबा* के अमीबों की जैविकी में विभिन्नताएं पायी जाती हैं। *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका* अथवा पेचिश का अमीबा मनुष्यों तथा बंदरों की बड़ी अंतड़ी में परजीवी रूप में पाया जाता है। *ई. कोलाई* भी इसी स्थान पर रहता है मगर वह एक अहानिकर सहभोजी है। इसके अलावा *ई. जिंजिवेलिस* मुंह में रहता है।

ई. हिस्टोलिटिका (चित्र 2.23) के जीवन चक्र में तीन स्पष्ट प्रावस्थाएं हैं ट्रोफो़ज़ोआइट, पुटीपूर्व अवस्था तथा पुटी। ट्रोफोज़ोआइट तथा पुटी, ये दो अवस्थाएं विष्ठा में सामान्यतः दिखाई पड़ती है। ऊतकों के भीतर केवल ट्रोफ़ोज़ोआइट अवस्था होती है। ट्रोफ़ोज़ोआइट अवस्था सक्रिय रूप में अशन करती तथा विभाजन करती हुई होती है। यह लगभग 12-30 μm व्यास की होती है। इसके साइटोप्लाज़्म में आहारआशयों के भीतर अनेक लाल रक्त कणिकाएं देखी जा सकती हैं जिनमें पाचन अलग-अलग चरणों पर सम्पन्न हुआ हो सकता है।

ट्रोफोज़ोआइट अवस्था में बड़ी अंतड़ी की अवकाशिका के भीतर जल्दी-जल्दी बार-बार द्विविभाजन होते हैं, जिसके फलस्वरूप वहां पर परजीवी की पेंठ बैठ जाती है। इनमें से कुछ अमीबे अंतड़ी के म्यूकोसा मे घुस

एंटअमीबा हिस्टोलिटिका के संक्रमण से पैदा होने वाले रोग-लक्षणों का पहले-पहल लौश (Losch,1875) ने वर्णन किया था मगर बाद में 1903 में शौडिन (Schaudin) ने इस परजीवी की ट्रेफोज़ोआइट तथा पुटी अवस्थाओं का वर्णन किया। शौडिन स्वयं अपने ही ऊपर प्रयोग कर रहा था। अपने ही ऊपर प्रयोग करने के दौरान उसे *ई.हिस्टोलिका* का तीव्र संक्रमण हो गया तथा वह 35 वर्ष की अल्प आयु में ही संसार से चल बसा।

ऊतक वासी बन जाते हैं। उन्हीं ऊतक आक्रमणकारियों के कारण अंतड़ियों की दीवार में अल्सर(व्रण) बन जाते हैं जिनसे दस्त तथा पेचिश के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। पुटियां केवल उन्हीं में बनती हैं जो अंतड़ी की अवकाशिका में रहती हैं, तथा ये पुटियां विष्ठा के साथ परपोषी के शरीर से बाहर निकल जाती हैं। परिपक्व पुटी में चार केंद्रक होते हैं तथा परजीवी की संक्रामक अवस्था भी यही होती है। जब कभी पुटियों से युक्त संदूषित आहार अथवा जल का अंतग्रहण कर लिया जाता है तब मनुष्य में संक्रमण पहुंच जाता है। जीवनक्षम पुटियां आमाशय में से होकर अंतड़ी में पहुंच जाती हैं, अंतड़ी के स्रावों से पुटी की दीवार घुल जाती है तथा चतुष्केंद्रकी अमीबा बाहर आ जाता है। इसमें विभाजनों के होने से आठ की संख्या में नन्हें अमीबे बनते हैं जिनमें केवल एक-एक केंद्रक होता है। ये नन्हें अमीबा शीघ्र ही एक नया चक्र आरम्भ कर देते हैं।

2.5.2 फ्लैजेलेट

अनेक कशाभी प्रोटोज़ोआ मनुष्यों में परजीवी होते हैं और ये रक्त में अथवा रेटिक्यूलों-एंडोथीलियल तंत्र के ऊतकों में रहते हैं। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीनस *लीश्मानिया* तथा *ट्रिपैनोसोमा* हैं। इन सबको अपने जीवन-चक्र में दो परपोषियों की आवश्यकता होती है— रक्त-चूषक कीट परजीवी की संक्रमक अवस्था को कशेरूकी परपोषी के भीतर पहुंचा देता है।

ये प्रोटोज़ोआ लम्बे पतले या कभी-कभी गोल होते हैं, एवं इनके अग्र सिरे पर एक अकेला कशाभ होता है। इनकी कुछ खास अंतःकोशिका दशाओं में हो सकता है कि कशाभ न भी हो। इनका कशाभ शरीर के अग्र सिरे पर अथवा पश्च सिरे के समीप स्थित एक कशाभ-पॉकेट के तले पर बने एक आधार पिंड अथवा काइनेटोसोम से निकलता है। आधार-पिंड से बिल्कुल सटी हुई एक गोल शलाका अथवा डिस्क जैसी संरचना काइनेटोप्लास्ट (kinetoplast) पड़ी होती है। यह काइनेटोप्लास्ट एक विशाल माइटोकॉण्ड्रियॉन का रूप है और इसके भीतर DNA होता है। कहा गया है कि काइनेटोप्लास्ट (अथवा माइटोकॉण्ड्रियल DNA) एक उपापचयी कोशिकांग है जो कीट मध्यस्थ परपोषी में जीवित रहने के लिये तो आवश्यक है परन्तु कशेरूकी के रक्त में ट्रिपैनोसोमों के जीवन के लिए आावश्यक नहीं। चित्र 2.24 में एक ट्रिपैनोसोम की संरचना को जैसी कि वह इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से दिखायी पड़ती है, दिखाया गया है।

अधिकतर रक्त वासी प्ररूप लम्बे एवं पतले होते हैं मगर जब वे अंतःकोशिकीय हो जाते अथवा वाहक कीट द्वारा अंतर्ग्रहण कर लिए जाते हैं तब उनकी आकृति में अंतर आ जाता है। तदनुसार, ट्रिपैनोसोम के जीवन चक्र में अनेक बहुरूपी स्वरूप होते देखे जाते हैं।

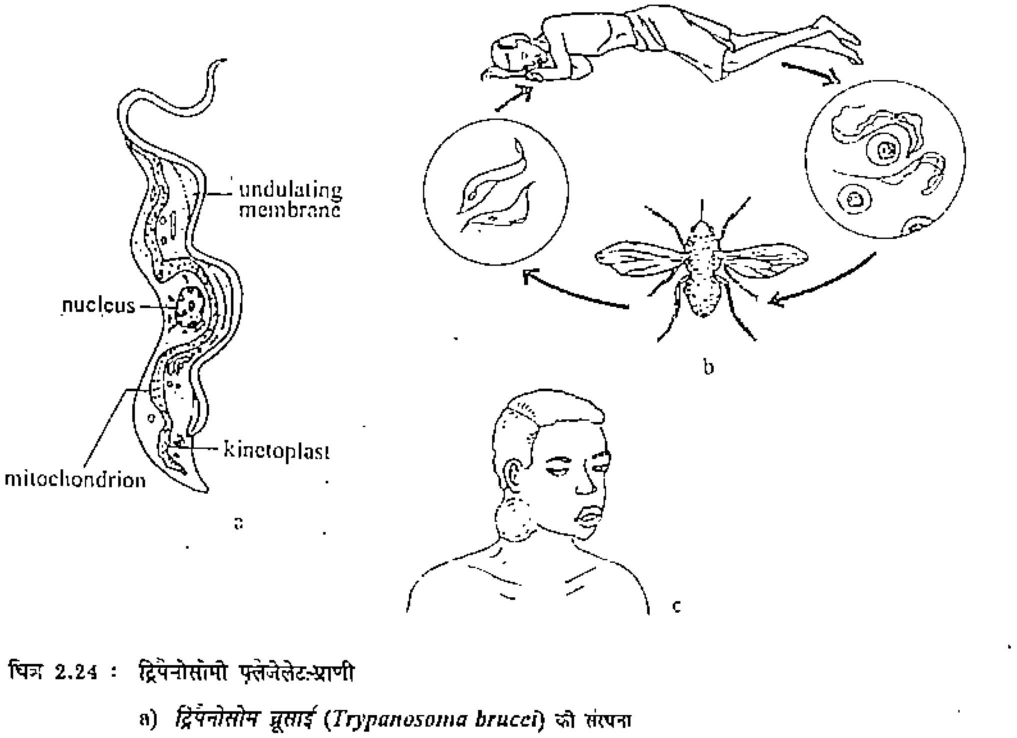

चित्र 2.24 : ट्रिपैनोसोमी फ्लेजेलेट-प्राणी

a) *ट्रिपैनोसोम ब्रूसाई (Trypanosoma brucei)* की संरचना

b) अफ्रीकी निद्रालु रोग के रोग कारक *ट्रिपैनोसोमा ब्रूसाई गैम्बिएन्स (Trypanosona brucei gambiense)* का जीवन-चक्र। यह फ्लैजेलेट सेट्सी मक्खी के काटने से प्रेषित होता है।

c) सूजी हुई लसीका ग्रंथियां जिनमें परजीवी रहता है।

विभिन्न ट्रिपैनोसोम

ट्रिपैनोसोम वर्ग के परजीवी बहुत ही भयानक रोगजनक जीव होते हैं जिनसे अफ्रीका में तथा दक्षिण एवं मध्य अमरीका में भी मानव समष्टियों एवं पालतू जानवरों की बहुत ज़्यादा संख्या में मौतें होती हैं।

ट्रिपैनोसोमा ब्रूसाई (*Trypanosoma brucei*) अफ्रीकी स्तनियों (मानव तथा वैबूनों को छोड़कर) का व्यापक परजीवी है। इससे पालतू जानवरों की बहुत ज़्यादा मृत्यु होती हैं। *टी॰बी॰ गैम्बिएन्स* (*T. B. gambiense*) तथा *टी.बी. रोडेसिएन्स* (*T.B. rhodesiense*) इन दोनों में मनुष्य में निद्रालु रोग पैदा होता है। ये अपने संचरण के लिए *ग्लोसिना* (*Glossina*) जीनस की सेट्सी मक्खी का सहारा लेते हैं जो अपने रक्त-पान के दौरान इन्हें मनुष्य के भीतर पहुंचा देती है।

ये जीव मक्खी के काटने पर परिसंचारी रक्त में पहुंच जाते हैं और फिर बाह्यकोशिक रक्त तरलों (रक्त तथा लसीका) में प्रगुणन कराते हुए ट्रिपैनोमैस्टिगोट (trypanomastigote) स्वरूप बनाते हैं। जब दोबारा से मक्खी मनुष्य को काटती है तब रक्त-आहार के साथ ये परजीवी भी मक्खी द्वारा अंतग्रहण कर लिए जाते हैं। मक्खी की मध्य आहार-नाल में परजीवी में प्रगुणन होता है, तदुपरांत कुछ दिनों के अंतराल के बाद ये आगे लार ग्रंथियों में पहुंच जाते हैं जहां उनमें प्रगुणन होकर संक्रामक अवस्था बन जाती है। जब संक्रमित सेट्सी मक्खी एक नए परपोषी को काटती है तब वह परजीवी की संक्रामक अवस्था को उसके परिसंचारी रक्त में पहुंचा देती है (चित्र 2.24 देखिए) *टी. गैम्बिएन्स* से दीर्घकालिक रोग हो जाता है जो अंततः "निद्रालु रोग" (sleeping sicknes) का रूप ले लेता है। *टी. रोडेसिएन्स* के संक्रमण से भी ऐसा ही मगर अधिक तीव्र रोग पैदा हो जाता है तथा संक्रमित व्यक्ति कुछ ही महीनों में मर जाता है। *ट्रिपैनोसोमा क्रूज़ाई* से चगास (chagas) रोग होता है जो दक्षिण अमरीका में पाया जाता है।

विभिन्न लीश्मैनिया-प्राणी

लीश्मैनिया जीनस की स्पीशीज़ मानव सहित स्तनियों की परजीवी होती हैं। लीश्मैनिया का संक्रमण संसार के बहुत व्यापक क्षेत्र में पाया जाता है, यह एशिया तथा निकट पूर्व और मध्य पूर्व से लेकर पूर्वी एवं पश्चिमी अफ़्रीका तक तथा मेक्सिको से लेकर उत्तरी आर्जेंटीना तक फैला हुआ है।

दो चिकित्सकों लीश्मान तथा डोनोवान ने अलग-अलग 1903 में काला-आज़ार (मृत्यु-ज्वर) के रोगजनक कारक की खोज की। उस समय ये दोनों खोजकर्त्ता भारत में ही काम कर रहे थे। चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में उनकी यह खोज एक युगांतरकारी घटना थी।

सैंडफ्लाई सिकता मक्षी (*फ़्लेबोटोमस Phlebotomus* तथा *लुट्ज़ोमिया Lutzomia* की स्पीशज़) *लीश्मैनिया* की सभी स्पीशीज़ की वाहक होती हैं। सैंडफ़्लाई के भीतर यह परजीवी कशाभ युक्त होता है। रक्त का आहार करने के दौरान मक्खी इस परजीवी को स्तनी परपोषी की त्वचा में पहुंचा देती है। परिभ्रमी मैक्रोफाज इन परजीवियों को अपने भीतर परिग्रहीत कर लेते हैं। इस परपोषी कोशिका के भीतर इनका कशाभ टूट कर अलग हो जाता है तथा ये गोल आकृति के हो जाते हैं। चित्र 2.25 (a) । बार-बार द्विविभाजन हो कर परजीवी में प्रगुणन होता है, तब ये परपोषी-कोशिका को नष्ट करके उससे बाहर आ जाते हैं तथा नए मैक्रोफ़ाजों में घुसकर अपने प्रजनन चक्र को पुनः दोहराते हैं। जब कोई सैंडफ्लाई किसी संक्रमित कशेरुकी के रक्त का आहार करती है तब उसमें लीश्मैनिया की संक्रमक अवस्थाओं का भी अंतर्ग्रहण हो जाता है। मक्खी की मध्य आहारनाल में परजीवी का रूप बदल जाता है तथा उसमें प्रगुणन होता है। जब मक्खी दोबारा आहार करती है तब वह परजीवी को नए परपोषी में डाल देती है।

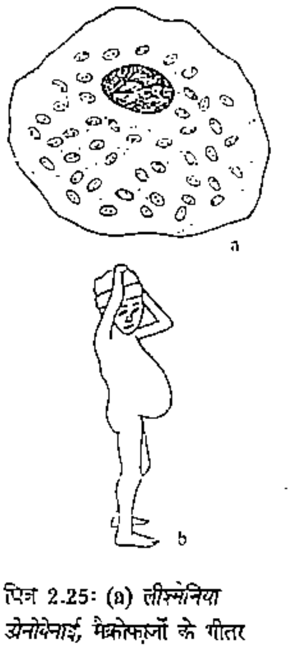

चित्र 2.25: (a) *लीश्मैनिया डोनोवेनाई*, मैक्रोफ़ाजों के भीतर

(b) बढ़ी तिल्ली के कारण एक बच्चे का फूला हुआ पेट

लीश्मैनिया की विभिन्न स्पीशज़ से अनेक रोग पैदा होते हैं। *एल. डोनोवेनाई* (*L. donovani*) से एक गंभीर एवं घातक रोग **"काला-आज़ार"** अथवा **अंतरंग लीश्मैनिऐसि** (visceral leishmaniasis) हो जाता है जिसमें जिगर तथा तिल्ली प्रभावित होते हैं (चित्र 2.25 b), यह रोग पूर्वी भारत, चीन, मध्यपूर्व, तथा आफ़्रीका में तथा लैटिन अमरीका के भी कुछ भागों में दूर-दूर तक फैला हुआ है। असम में 1890 और 1900 के बीच काला-आज़ार के कारण 25 प्रतिशत आबादी समाप्त हो गयी थी। कभी-कभी जिन लोगों में पहले काला-आजार का संक्रमण हो चुका होता है गंभीर चर्मीय संक्रमण प्रकट होता है।

एल. ट्रॉपिका (*L.tropica*) से **त्वचा-लीश्मैनिऐसिस** अथवा "ओरियंटल सोर" नामक रोग होता है। यह मुख्यतः पश्चिम और मध्य भारत में तथा पूर्वी गोलार्ध के शुष्क प्रदेशों में पाया जाता है। इससे होने वाला यह रोग हल्का ही होता है, जिसमें मक्खी के काटने की जगह पर एक छोटा सा ज़ख़्म बन जाता है।

जिआर्डिया

जिआर्डिया इंटेस्टाइनेलिस (*Giardia intestinalis*) मनुष्यों की अंतड़ी में पाया जाता है। इसका एक विशेष स्थान इसलिए है कि कदाचित यही सबसे पहला परजीवी प्रोटोज़ोआन था जिसे ऐंटनी वान लयूवेनहॉक ने 1681 में अपनी ही विष्ठा में देखा था। यह मनुष्यों में और उनमें भी विशेषकर बच्चों में बहुत ही आम पाया जाने वाला परजीवी है जिससे जिआर्डिएसिस नामक रोग हो जाता है। इसका ट्रोफ़ोज़ोइट नाशपाती के

आकार का होता है (चित्र 2.26), इसमें दो केंद्रक होते हैं जिनके मध्य में 8 आधारीय पिंड होते हैं जिनसे 8 कशाभ निकले होते हैं जिनके द्वारा परजीवी तैर सकता है। सामान्यतः यह परजीवी छोटी अंतड़ी में रहता है मगर गंभीर संक्रमण से दस्त आने लग जाते हैं तथा पेट के ऊपरी भाग में दर्द होता है। पुटियां विष्ठा के साथ बाहर निकलती हैं तथा विष्ठा से संदूषित जल के माध्यम से संक्रमण आगे फैलता है।

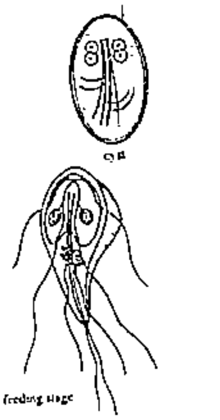

चित्र 2.26: a) *जिआर्डिया इंटेस्टाइनेलिस*
b) दो कोशिकाओं से युक्त पुटी, जैसी कि वह प्रायः विष्ठा में दिखायी देती है।

ट्राइकोमोनास वेजीनेलिस (Trichomonnas vaginalis)

यह जगतव्यापी प्रोटोज़ोअन केवल स्त्रियों की योनि तथा पुरूषों के मूत्र मार्ग या प्रोस्टेट में ही पाया जाता है। इससे एक हल्का रोग ट्राइकोमोनास योनिशोथ हो जाता है। यह प्रोटोज़ोअन अण्डाकार होता है। (चित्र 2.27) तथा इसमें चार अग्र मुक्त कशाभ होते हैं तथा एक पीछे को मुड़ा हुआ पश्च कशाभ होता है। यह पश्च कशाभ शरीर के उस एक पतले फिन-सरीखे प्रसार से जुड़ा होता है जो एक ऊर्मिल झिल्ली (undulating membrane) का रूप लिए हुए होता है। इस परजीवी का संक्रमण या तो यौन सम्पर्क से या संक्रमित सामग्री के संदूषण से होता है।

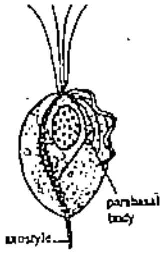

चित्र 2.27: *ट्राइकोमोनास वैजाइनेलिस*

बोध प्रश्न 6

(i) कॉलम अ में दिए गए परजीवियों को कालम ब में दिए गए उनसे पैदा होने वाले रोगों से मिलाइए:

अ		ब	
(क)	*एंटअमीबा हिस्टोलिटिका*	(i)	अफ़्रीका का निद्रालु रोग
(ख)	*ट्रिपेनोसोमा गैम्बिएन्स*	(ii)	काला आज़ार
(ग)	*ट्रिपेनोसोमा क्रूज़ाई*	(iii)	"ओरियंटल सोर"
(घ)	*लीश्मैनिया डोनोवनाई*	(iv)	पेचिश
(च)	*लीश्मैनिया ट्रॉपिका*	(v)	चगास-रोग

(ii) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत तथा अपने उत्तर को दिए गए चौकोर में लिखिए।

क) द्वितीयक अमीबिऐसिस सर्वाधिक सामान्यतः फेफड़ों में होती है। ☐

ख) *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका* की संक्रमक अवस्था चार केंद्रकों वाली पुटी होती है। ☐

ग) *ट्रिपेनोसोमा गैम्बिएन्सी* रक्त प्लाज़्मा में होता है। ☐

घ) सभी ट्रिपेनोसोमा-संक्रमण सेट्सी मक्खी से संचरित होते हैं। ☐

च) *लीशमानिया* की स्पीशीज़ अपने कशेरूकी परपोषी के भीतर कशाभ युक्त अवस्था के रूप में प्रगुणित होती है। ☐

छ) *ट्राइकोमोनास* एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संदूषित आहार-वस्तुओं के माध्यम से फैलता है। ☐

हमारे पूर्वजों को निश्चय ही मलेरिया के विषय में जानकारी थी। भारत और चीन के प्राचीन आयुर्विज्ञान लेखों में बार-बार आने वाले ज्वर का वर्णन आता है जिसे दुरात्माओं का प्रकोप कहा जाता था। हिप्पोक्रेटीज़ (5 वीं शताब्दी ईसा पूर्व) ने हालांकि इस रोग के लक्षणों को पहचान लिया था, मगर उसने ऐसा माना कि यह रोग गंदी (mal = गंदी) वायु (= air) तथा कीचड़ और दलदलों से निकले कुहासों से होता है। यही विश्वास लगभग 2000 वर्षों तक चलता रहा। यूनानवासियों तथा रोमवासियों ने तो यहां तक किया कि उन्होंने कीचड़ तथा दलदलों से जल को निकाल कर साफ़ रखना शुरू कर दिया। लैवेरान (Laveran) ने तो सन 1880 में *प्लाज़्मोडियम फ़ैल्सीपैरम* की अलैंगिक अवस्थाओं का वर्णन कर दिया था, परन्तु उससे 300 वर्ष पहले से ही रसायन-चिकित्सा होने लगी थी। लोग पेरू के *सिनकोना* वृक्ष की छाल का इस्तेमाल करने लगे थे (इस छाल को ज्वर-वृक्ष छाल कहा जाने लगा था)। कुनैन तथा सिनकोनीन इसी सिनकोना वृक्ष से प्राप्त ऐल्केलॉइड हैं।

2.5.3 स्पोरोज़ोअन

जीनस *प्लाज़्मोडियम* के स्पोरोज़ोअनों से गंभीर मानव रोग मलेरिया होता है। ये सर्वाधिक अच्छी प्रकार से जाने गए परजीवी हैं जो अपने कशेरूकी परपोषी के शरीर के स्थिर ऊतकों तथा परिसंचरणरत लाल रक्त कोशिकाओं के भीतर रहते हैं। *प्लाज़्मोडियम* की सौ से अधिक स्पीशीज़ नानाविध कशेरूकियों के परजीवी रूप में रहती हैं जैसे कि छिपकलियों, पक्षियों तथा स्तनियों और उनमें भी खास तौर से प्राइमेटों तथा रोडेंटों में। *प्लाज़्मोडियम* की चार स्पीशीज़ से मलेरिया होता है, ये चार स्पीशीज़ मुख्यतः मानव में ही पायी जाती हैं तथा उनका और कोई कशेरूकी परपोषी नहीं होता। ये चार स्पीशीज़ हैः *प्लाज़्मोडियम वाइवेक्स (Plasmodium vivax), पी. फ़ैल्सीपैरम (P. falciparum) पी. मलेरी (P. malariae) तथा पी. ओवेल (P. ovale)* जो सबकी सब संसार के उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे ज़्यादा पायी जाती हैं।

सभी मलेरिया परजीवीयों को दो परपोषियों की आवश्यकता होती हैः एक कशेरूकी परपोषी जिसमें परजीवी का अलैंगिक चक्र पूरा होता है (जिसमें शाइज़ोगोनी तथा गैमीटोगोनी शामिल हैं), तथा दूसरा एक मच्छर जिसमें जीवन-चक्र की लैंगिक प्रावस्था (जिसमें गैमीटोगोनी का पूरा होना तथा स्पोरोगोनी शामिल हैं) सम्पन्न होती है।

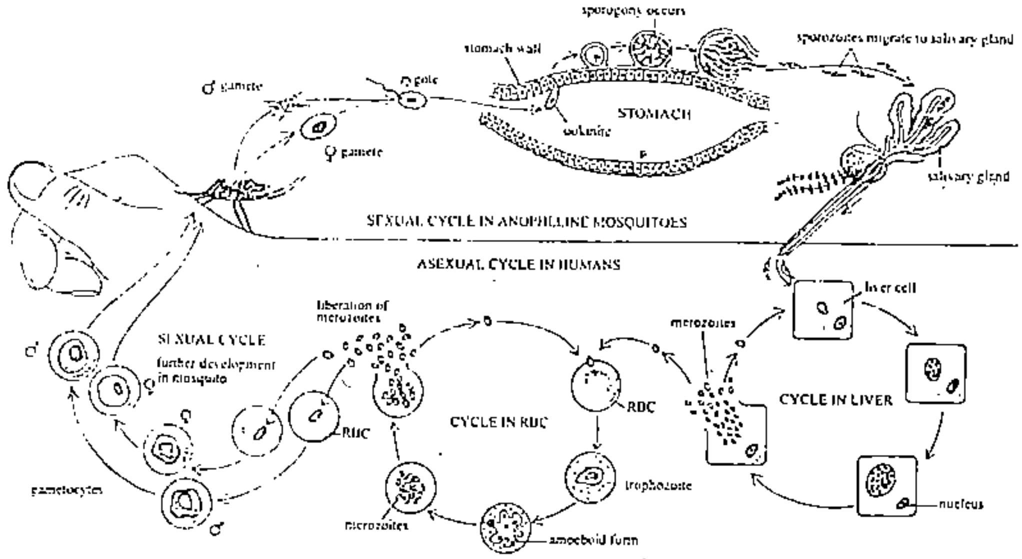

चित्र 2.28: मच्छर तथा मानव परपोषियों में मलेरिया परजीवी का जीवन-चक्र।

मनुष्य में परजीवी का जीवन चक्र (चित्र 2.28 में दर्शाया गया) तब से आरम्भ होता है जब कोई संक्रमित मच्छर काटते और रक्त चूसते समय अपने लार-स्रावों के साथ-साथ स्पोरोज़ोइट को मानव रक्त में प्रविष्ट कर देता है। शीघ्र ही ये स्पोरोजोइट परिसंचरण में से गायब हो जाते तथा यकृत-कोशिकाओं के भीतर पहुंच जाते हैं जहां उनमें बहुविभाजन होते हैं (शाइज़ोगोनी)। वहां उनकी संख्या बढ़ जाने पर परजीवीकृत यकृत-कोशिकाएं फूट जाती हैं जिससे बड़ी संख्या में परजीवी बाहर आ जाते हैं। इस अवस्था के परजीवियों को **लालरक्तकोशिका पूर्व मीरोजोइट** (pre-erythrocytic merozoites) कहते हैं क्योंकि ये अभी तक लाल रक्त कोशिकाओं के भीतर नहीं पहुंचे होते हैं। जब तक परजीवी यकृत में रह रहा होता है तब तक के काल को **उद्भवन-काल** (incubation period) कहते हैं और *प्लाज़्मोडियम* की अलग-अलग स्पीशीज़ में यह 6-15 दिन का अलग-अलग होता है। इन लाल रक्त कोशिकापूर्व मीरोजोइटों से लाल रक्त कोशिकाओं (RBC) में एक अलैंगिक प्रगुणन-चक्र शुरू होता है जिसे **लालरक्तकोशिका-चक्र** (erythrocytic cycle) कहते हैं। RBC के भीतर ये परजीवी अमीबाभ ट्रॉफ़ोज़ोइट बन जाते हैं तथा हीमोग्लोबिन को खाते हैं। ट्रोफ़ोज़ोइटों में होने वाले पाचन का अंतिम उत्पाद **हीमाज़ोइन** (haemozoin) होता है जो परपोषी कोशिका में एकत्रित हो जाता है। RBC में होने वाले अलैंगिक जनन की इस प्रक्रिया को **शाइज़ोगोनी** (schizogony) कहते हैं, इसमें अकेली एक व्यष्टि से बहुत अधिक संख्या में नए जीव बन जाते हैं। शाइज़ोगोनी लाल रक्त कोशिकाओं की बहुत बड़ी संख्या में एक साथ एक ही समय पर होती है और ऐसे प्रत्येक चक्र के अंत में परजीवीभूत RBC में से बहुत बड़ी संख्या में मीरोजोइट बाहर निकलते हैं। RBC के फूटते समय उसमें से परजीवी के उपापचयी उत्पाद भी बाहर निकलते हैं और टॉक्सिनों से ही मलेरिया के खास कंपकपी तथा बुखार के लक्षण पैदा होते हैं। ये मीरोजोइट नए RBC, में प्रवेश करके फिर से प्रगुणन चक्र चलाते हैं। चूंकि RBC से बाहर निकलने वाले मीरोजोइटों की समष्टि कुछ हद तक समकालिक होती है, अतः कंपकंपी एवं ज्वर की घटनाएं एक ताल बद्ध अवधि में अर्थात आवर्तिता (periodicity) के साथ होती हैं और यह आवर्तिता प्लाज़्मोडियम की हर स्पीशीज़ के लिए अलग-अलग होती है। *पी. वाइवेक्स* (सुदम तृतीयक benign tertian) मलेरिया में यह हर 48 घंटे के बाद होती हैं, *पी. मलेरी* (चतुर्थक, quartan) में हर 72 घंटे के बाद, *पी. ओवेल* में हर 48 घंटे के बाद तथा *पी. फ़ैल्सीपैरम* (दुर्दम्य तृतीयक, malignant tertian) में हर 48 घंटे के बाद होती है। कुछ पीढ़ियों के उपरांत मीरोजूआइटों में से कुछ मीरोज़ूऑइट एक नए RBC में प्रवेश करने के बजाए बड़ी युग्मक निर्माणकारी एककेंद्रकीय कोशिकाएं बन जाते हैं। यह अवस्था परजीवी की **गैमीटोसिटिक** (युग्मक जनक) अवस्था है। इनमें से कुछ नर अथवा माइक्रोगैमीटोसाइट

P.vivax, P.ovale तथा P.malariae के मामले में एक प्रसुप्त संक्रमण यकृत-कोशिकाओं के भीतर कायम बना रह सकता है। यह परजीवी का लालरक्तकोशिकाबाह्य चक्र होता है तथा उपचार द्वारा परजीवी के लालरक्तकोशिका चक्र को समाप्त हो जाने के बाद भी मलेरिया के दोबारा होने का स्रोत बना रहता है। *P. falciparum* के मामले में लाल रक्त कोशिकाओं में संक्रमण हो चुकने के बाद यकृत में संक्रमण नहीं होता और मलेरिया का दोबारा होने (रिलेप्स) का खतरा नहीं होता।

(microgametocyte) होते हैं तथा कुछ मादा अथवा मैक्रोगैमीटोसाइट (macrogametocyte) होते हैं। गैमीटोसाइटों में कशेरूकी परपोषी के भीतर और आगे परिवर्धित नहीं होता। इनका और आगे का परिवर्धन केवल मच्छर के आमाशय में ही होता है। जब कोई ऐनाफ़िलीस मादा मच्छर संक्रमित व्यक्ति को काटता है तब वह रक्त के साथ-साथ इन गैमीटोसाइटों को भी चूस जाता है। (नर-मच्छर रक्त चूसने वाले नहीं होते वह पौधों का रस चूसते हैं)। मच्छर के आमाशय में गैमीटोगोनी की प्रक्रिया पूरी होकर गैमीट (युग्मक) बन जाते हैं। दो गैमीट प्ररूप संलयन करके युग्मनज (ज़ाइगोट) बना देते हैं। युग्मनज एक गतिशील ऊओकिनीट (ookinete) बन जाता है। यह आमाशय की दीवार को वेधकर बाहरी सीमाकारी झिल्ली के नीचे बैठ जाता है तथा **ऊसिस्ट (oocyst)** बन जाता है। ऊसिस्ट में बहुसंख्यक कोशिका-विभाजन होते तथा उसके आकार में वृद्धि होती और फिर अनेक स्पिंडलाकार कोशिकाएं बन जाती हैं जिन्हें **स्पोरोजोइट (sporozoites)** कहते हैं। जब यह ऊसिस्ट इन अवस्थाओं से पूरी तरह भर जाती है, और ऐसा मच्छर द्वारा रक्त-आहार करने के 10-20 दिन बाद होता है, तब यह ऊसिस्ट फूट जाती है तथा उसके भीतर के स्पोरोजोइट मच्छर की हीमोसील (रक्तगुहा) में बिखर जाते हैं। तब ये स्पोरोजोइट मच्छर की लार-ग्रंथियों में पहुंचते हैं। ये ही मनुष्यों के लिए संक्रमणशील होते हैं तथा जब मच्छर मनुष्यों को काटता है तब उसके रक्त में छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार इस परजीवी का जीवन-चक्र पूरा होता है।

टॉक्सोप्लाज़्मा

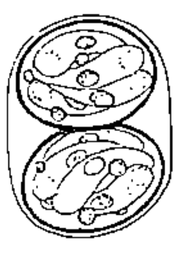

चित्र 2.29: *टॉक्सोप्लाज़्मा गोनिडियाई*।

टॉक्सोप्लाज़्मा गोनिडियाई (Toxoplasma gonidii) में किसी प्रोटोज़ोअन परजीवी के लिए एक असाधारण परपोषी-परास पाया जाता है। यह कदाचित हर प्रकार के समतापी (warm-blooded) प्राणी में संक्रमण कर सकता है। इससे होने वाला रोग अथवा संक्रमण तीव्र हो सकता है अथवा हो सकता है कि यह प्रसुप्त एवं पूर्णतः अदृश बना रहे। यह परजीवी शरीर की किसी भी केंद्रकयुक्त कोशिका में प्रवेश कर सकता है और उसके भीतर अलैंगिक विधि से विभाजन करके पुटी बना लेता है (चित्र 2.29)। मां का संक्रमण गर्भ में प्रवेश कर सकता है तथा उसके शिशु में अनेक जन्मजात दोष आ सकते हैं। परजीवी का संचरण कच्चा गोश्त खाने अथवा पालतू जानवरों के माध्यम से फैल सकता है विशेषतः इसलिए क्योंकि बिल्ली आदि के बालों में इस परजीवी की पुटियां मौजूद रहती हैं।

बोध प्रश्न 7

निम्न वाक्यों को पूरा कीजिए:-

क) मलेरिया ———— नामक जीनस के परजीवीयों के द्वारा पैदा होता है।

ख) मलेरिया परजीवी का मनुष्य के RBCs में होने वाला चक्र ———— कहलाता है।

ग) प्लाज़्मोडियम के जनन की लैंगिक प्रावस्था ———— के भीतर होती है।

घ) ऊओकिनीट एक ———— युग्मनज होता है।

च) लगभग हर 40 घंटे के बाद आने वाला मलेरिया ज्वर ———— मलेरिया कहलाता है।

2.5.4 सिलिएट

चित्र 2.30: बैलेंटिडियम कोलाई।

आयुर्विज्ञान एवं पशुचिकित्सा महत्व का एकमात्र सिलिएट परजीवी *बैलेंटिडियम कोलाई* (चित्र 2.30) होता है जो मानव, कपियों, बंदरों तथा सूअरों की बड़ी आंत्र में रहता है। *बी. कोलाई* संसार के हर भाग में पाया गया है। यह आंत्र-म्यूकोसा में आक्रमण करता है जिससे दस्त आने, चक्कर आना, जी मतलाना तथा उल्टियां आने की शिकायत हो जाती है। परजीवी बड़ी अंतड़ियों में परजीवी सिस्ट (पुटी) अवस्था बनाता है और ये पुटियां विष्ठा के साथ परपोषी के शरीर से बाहर निकल जाती हैं।

2.6 सारांश

प्रोटोज़ोअन ऐसे एककोशिक प्राणि सदृश विषमपोषी जीवों का समूह है जो यूकैरियोट प्रोटिस्टा की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। अधिसंख्य प्रोटोज़ोआ समुद्र अथवा अलवणजल में रहते हैं मगर ऐसी भी अनेक स्पीशीज़ हैं जो परजीवी, सहभोजी और सहोपकारी होती हैं। इनका शरीर किसी प्रकार के बाह्यकंकाल (टेस्ट) अथवा किसी आंतरिक कोशिकाकंकाल (सूक्ष्मनलिकाओं, सूक्ष्मतंतुओं अथवा आशयों) द्वारा आलंबित रहता है। अधिकतर प्रोटोज़ोअन समूहों को उनके संचलन कोशिकांगों के आधार पर पहचाना जाता है, जो कशाभों,

पादाभों तथा सिलिया के रूप में होते हैं। पाचन की क्रिया अंतःकोशिक होती है जो एक खाद्य-धानी के भीतर सम्पन्न होती है, आहार इस धानी में एक कोशिकामुख के द्वारा अथवा परिग्रहण की प्रक्रिया के द्वारा पहुंचता है। जल तथा आयनों का नियमन संकुचनशील धानी के द्वारा सम्पन्न होता है। जनन विभाजन के द्वारा होता है। अलग-अलग वर्ग के अनुसार मीयोसिस होकर या तो युग्मक बनते हैं या अगुणित स्पोर बनते हैं। पुटीभवन सामान्यतः होता पाया जाता है।

प्रोटोज़ोअन फ़ाइलमों को पूर्वतः चार वर्गों में रखा जाता था -

i) फ़्लैजेलेट-प्राणी — कशाभों द्वारा संचलन

ii) अमीबाभ-प्राणी — पादभों के द्वारा संचलन

iii) सिलिएटा-प्राणी — सिलिया द्वारा संचलन

iv) स्पोरोज़ोआ-प्राणी — परजीवी प्रोटोज़ोआ. अतः कोई विशेपीकृत संचलन कोशिकांग नहीं होते।

इस विशाल विषमांग समूह को अब "सोसाइटी ऑफ़ प्रोटोजूलौजिस्ट्स" (1980) के अनुसार 7 फ़ाइलमों में वर्गीकृत किया जाता है।

अनेक महत्वपूर्ण रोगजनक प्रोटोज़ोअनों का वर्णन किया गया है जो अमीबों, फ्लेजेलेटों, सिलिएटों तथा स्पोरोज़ोअनों में से लिए गए हैं। परजीवी स्पोरोज़ोअनों जैसे कि मलेरिया-जनक *प्लाज़्मोडियम* तथा *ट्रिपैनोसोमा* एवं *लीश्मैनिया* जैसे फ़्लेजेलेटों के जीवन-चक्रों का वर्णन किया गया है।

2.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. स्पष्ट कीजिए कि एक अकेली मेटाज़ोअन कोशिका की तुलना में एककोशिक प्रोटोज़ोअन को किस प्रकार अधिक जटिल कहा जा सकता है?

....

....

....

2. निम्न प्रोटोज़ोअन फ़ाइलमों में विभेद कीजिएः

एपिकॉम्प्लेक्सा, सिलियोफोरा तथा सार्कोमेस्टिगोफोरा

....

....

....

3. आपके विचार में प्रोटोज़ोअनों को पुटीभूत अवस्था में किन आवासों में पाया जा सकता है? इस अवस्था का उन्हें क्या लाभ होता है?

....

....

....

4. प्रोटोज़ोआ के सामान्य लक्षणों की सूची बनाइए।

....

....

....

5. सिलियोफ़ोरों में संयुग्मन के विभिन्न चरणों की रूपरेखा दीजिए।

....

....

....

6. मनुष्य के लिए प्रोटोज़ोअन परजीवियों के महत्व पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

7. मलेरिया के रोगलक्षणों के आवर्ती रूप में प्रकट होने में कौन सा कारक निहित होता है?

....

....

....

2.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. अमीबा पादाभों द्वारा चलता है, फ़्लैजेलेट तथा सिलिएट प्राणी कशाभों एवं पंक्तिबद्ध सिलिया के द्वारा चलते हैं इनके ये कोशिकांग विस्पंदन द्वारा गति प्रदान करते हैं।

2. संकुंचनशील धानियों की भूमिका उत्सर्गी न होकर परासरण नियमनकारी होती है। ये कोशिका के अधिशेष जल को बाहर निकालकर कोशिका की जलमात्रा का नियमन करती हैं।

3. I
   1. प्रोटिस्टा
   2. कॉलोनीय
   3. सूक्ष्मनलिकाएं
   4. अमीबाभ
   5. द्वि-विभाजन
   6. संयुग्मन
   7. प्राणीसमभोजी
   8. कशाभ

   II क) v, ख) vi, ग) ii, घ) i, च) iii छ) iv,

4. 1- गलत, 2-सही, 3 सही, 4 सही, 5 सही, 6 सही, 7 सही, 8 गलत

5. (क) संचलन तथा निलम्बन अशन
   (ख) गुरुकेंद्रक — कायिक प्रकार्य
   सूक्ष्मकेंद्रक — जनन प्रकार्य

6. I क) iv, ख) i, ग) v, घ) ii, च) iii,
   II क) गलत, ख) सही, ग) सही, घ) गलत, च) गलत, छ) गलत

7. (क) *प्लाज़्मोडियम* (ख) लालरक्तकोशिका-चक्र (ग) मच्छर,
   (घ) गतिशील, (च) तृतीयक

"अंत में कुछ प्रश्न" के उत्तर

1. एक अकेली मेटाज़ोअन कोशिका से भिन्न होते हुए एककोशिक प्रोटोज़ोअन विविध प्रकार के प्रकार्य कर सकता है। वास्तव में एककोशिक प्रोटोज़ोअन अपने आप में एक पूर्ण जीवधारी होता है। जबकि एक ओर कोई मेटाज़ोअन कोशिका केवल एक ही प्रकार का कार्य कर सकती है जैसे कि स्रवण, संकुचन, उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया, जनन आदि वहीं दूसरी ओर एककोशिक प्रोटोज़ोअन ये सभी कार्य कर सकता है, अतः वह अधिक जटिल होता है।

2. भाग 2.4 देखिए।

3. तालाब, झीलें, नदियां तथा आर्द्र मिट्टी जैसे आवास जो अगर सूख जाएं तो उनमें पुटीभूत प्रोटोज़ोअन मौजूद होते हैं। पुटीभवन हो जाने पर जीव पुटी के भीतर प्रसुप्त अवस्था में लम्बे समय तक जीवित बने रहते हैं तथा अनुकूल परिस्थितियों के पुनः लौट आने पर वे फिर से सक्रिय हो जाते हैं।

4. भाग 2.2 देखें।

5. अनुभाग 2.3.7 देखिए।

6. इसका उत्तर आप मूलपाठ में से प्रोटोज़ोअन परजीवियों और उनके द्वारा पैदा होने वाले रोगों के उदाहरण देकर दे सकते हैं।

7. लालरक्तकोशिकीय शाइज़ोगोनी की अवधि से मलेरिया के रोगलक्षणों का निर्धारण होता है। इस चक्र के पूरा होने पर जिस निश्चित अंतराल पर पैदा हुए मीरोज़ोइट रक्त-प्लाज़्मा में छोड़ दिए जाते हैं उससे मलेरिया के रोगलक्षण प्रकट होते हैं।

इकाई 3 मेटाज़ोआ – उद्भव तथा विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

3.2 देह-संगठन के स्तर

3.3 मेटाज़ोआ की विशिष्टताएं

3.4 सममिति

असममित तथा गोलीय सममिति

अरीय तथा द्विअरीय सममिति

द्विपार्श्वीय सममिति

3.5 परिवर्धन प्रतिरूप

विदलन

ब्लास्टोपोर की नियति

3.6 जनन परतें

3.7 देह गुहा

कूटसीलोम

सीलोम

3.8 शिरोभवन तथा खण्डीभवन

3.9 मेटाज़ोआ का उद्भव तथा विकास

सिन्सीशियमी मत

कॉलोनीय मत

बहुस्रोतोद्भवी मत

मेटाज़ोआ का विकास

3.10 सारांश

3.11 अंत में कुछ प्रश्न

3.12 उत्तर

3.1 प्रस्तावना

आप पहले की इकाई-1 में देख चुके हैं कि दो-जगत के वर्गीकरण में एककोशिक प्राणियों को एक-साथ एक अकेले फ़ाइलम प्रोटोज़ोआ में रखा जाता था, और यही अकेला फ़ाइलम उपजगत प्रोटोज़ोआ भी बनाता था। शेष प्राणी जो सभी बहुकोशिक थे विभिन्न फ़ाइलमों में रखते हुए उपजगत मेटाज़ोआ में रखे जाते थे। (इसी प्रकार का समूहन पौधों में भी दो उपजगतों प्रोटोफ़ाइटा तथा मेटाफ़ाइटा में होता था)। किंतु आज की पांच-जगत के वर्गीकरण की संकल्पना में इस पुराने समूहन का कोई औचित्य नहीं है। फिर भी, हम अक्सर मेटाजोआ शब्द का उपयोग करके पांच-जगत के वर्गीकरण की प्रणाली के ऐनिमैलिया का ही अर्थ लगाते हैं। इस इकाई में हम देह-संगठन के स्तरों एवं आधारभूत देह-योजना से प्रारम्भ करते हैं। विभिन्न अकशेरुकी तथा कशेरुकी प्राणी भले ही आपस में कितने ही भिन्न नज़र आते हों, फिर भी उन्हें चार मूल देह-योजनाओं में रखा जा सकता है। ये योजनाएं हैं—एककोशिक योजना, कोशिका-समूह योजना, अंध-थैला योजना, तथा नालिका के भीतर नलिका योजना। प्रोटोजोआ पहली श्रेणी में आते हैं, तथा शेष तीन संरचना योजनाएं मेटाज़ोअनों में पायी जाती हैं। उसके बाद हम मेटाजोअनों के विशिष्ट लक्षणों को सूचीबद्ध करेंगे। साथ ही हम उन लक्षणों का भी विवेचन करेंगे जो किसी भी प्राणी की संरचना को समझने एवं उसके वर्गीकरण को

जानने के लिए जरूरी हैं। ये लक्षण इस प्रकार हैं— (i) विदलन प्रतिरूप तथा जनन परतों की संख्या जिनसे वह प्राणी व्युत्पन्न हुआ है; (ii) उसकी देह-सममिति, (iii) देह-गुहा की प्रकृति तथा (iv) खण्डीभवन एवं शिरोभवन। यदि आप परिवर्धन जीवविज्ञान (LSE-06) पाठ्यक्रम के खण्ड 3 के पाठ को दोबारा से पढ़ लें और उसके बाद इस इकाई को पढ़ें तो आपको इसे समझने में सहायता मिलेगी, क्योंकि उसमें वर्णन की गयी अधिकांश संकल्पनाएं इसके समझने में सहायक होंगी। इस इकाई के बाद के अनुभागों में उन विविध सिद्धांतों पर विचार करेंगे जिनका संबंध मेटाज़ोअनों अर्थात् ऐनिमैलिया के उद्भव एवं विकास से है।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- प्राणियों की देह-संगठन के विभिन्न स्तरों का वर्णन कर सकेंगे,
- प्राणियों में पाए जाने वाले विभिन्न विदलन प्रतिरूपों का वर्णन कर सकेंगे,
- विविध जनन परतों के प्ररूपों को पहचान सकेंगे तथा उनके व्युत्पादों के प्रकार्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- सममिति पर आधारित विभिन्न प्राणि-वर्गों को पहचान सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार की देह-गुहाओं, खंडीभवन, शिरोभवन तथा उनके प्रकार्यात्मक महत्व का वर्णन कर सकेंगे,
- प्राणियों का उनकी संरचनात्मक संगठन के आधार पर वर्गीकरण कर सकेंगे,
- ऐनिमैलिया के उद्भव एवं विकास का विवेचन कर सकेंगे।

3.2 देह संगठन के स्तर

आप इससे पहले के पाठ्यक्रम LSE-01 में पदार्थ के संगठन के स्तरों के विषय में पढ़ चुके हैं। आपको याद होगा कि समस्त पदार्थ की सबसे छोटी संरचनात्मक इकाईयां अवपरमाण्विक कण होते हैं जिनमें मुख्यतः इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन होते हैं। इससे ऊपर चलकर जो बड़ी इकाईयां हैं वे हैं परमाणु और अनेक परमाणुओं के आपस में मिलकर बनने वाले संयोजन यौगिक (compound) होते हैं और ये यौगिक विविध प्रकार से परस्पर जुड़कर संगठन का इससे भी उच्चतर स्तर बनाते हैं जिसे यौगिक-सम्मिश्र (complexes of compounds) कहते हैं। पदार्थ के इस प्रकार के स्तरों को एक पिरेमिड के रूप में देखा जा सकता है (चित्र 3.1)

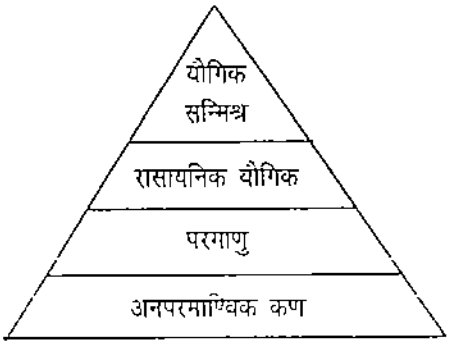

चित्र 3.1: पदार्थ की संगठन के स्तर।

इस पिरेमिड में किसी भी एक स्तर में उससे नीचे के सभी स्तर उसके घटकों के रूप में होते हैं तथा वह स्वयं भी सभी उच्चतर स्तरों का एक घटक होता है। उदाहरण के लिए, परमाणुओं में अवपरमाण्विक कण उनके घटक हैं तथा स्वयं परमाणु रासायनिक यौगिकों के घटक हैं। इसी प्रकार, सजीव पदार्थ में भी यौगिकों

के सम्मिश्र कोशिकांग नामक अवसूक्ष्मदर्शीय एवं सूक्ष्मदर्शीय पिंडों के रूप में पाए जाते हैं, जिनमें कोशिका के भीतर विशेष प्रकार्य करने की क्षमता होती है।

वह जीव जो केवल एक कोशिका के बने हुए होते हैं सरलतम एवं आदितम जीव-जंतु हैं जिन्हें एककोशिक जीव कहते हैं। इनकी देह-संगठन का स्तर निम्नतम है जिसे **देह-संगठन का प्रोटोप्लाज़्मी स्तर** (protoplasmic level) कहते हैं। यदि हम मेटाज़ोअन देह-संगठन को एक पिरैमिड विध में रखने का प्रयत्न करें तो यह प्रोटोप्लाज़्मी स्तर सबसे नीचे आएगा। जैसे-जैसे जीवों का एककोशिक से बहुकोशिक स्तर की ओर विकास होता गया वैसे-वैसे उनकी देह-संगठन का स्तर भी सरल से जटिल की ओर बदलता गया।

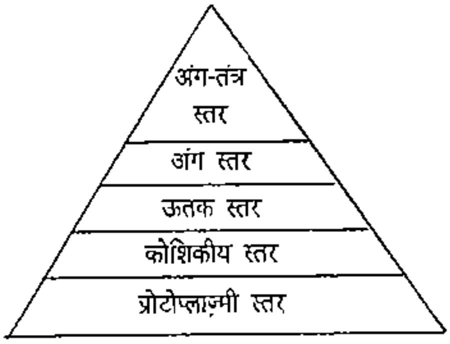

चित्र 3.2: देह-संगठन के स्तर।

चित्र 3.2 को देखिए। संगठन का अगला उच्चतर स्तर **कोशिकीय स्तर** (cellular level) है। यह वास्तव में ऐसी कोशिकाओं का समूहन होता है जो प्रकार्य की दृष्टि से विभेदित हो चुकी हैं। इस स्तर पर एक श्रम-विभाजन प्रकट हो चुका है जिसमें कुछ कोशिकाएं जनन के लिए विशेषित हो गयी हैं तथा कुछ कोशिकाएं पोषण के लिए। मेटाज़ोआनों में प्लैकोज़ोआ तथा मेसोज़ोआ देह-संगठन के कोशिकीय स्तर के अंतर्गत आते हैं (चित्र 3.3 a तथा b)। कुछ विशेषज्ञ स्पंजों (पोरिफ़ेरा) को भी इसी वर्ग में रखते हैं क्योंकि इनमें विभिन्न प्रकार्यों के लिए अनेक कोशिका-प्रकारों का विभेदन हो चुका है मगर अभी तक वास्तविक ऊतक संगठना नहीं आयी है (चित्र 3.3c)।

फाइलम प्लैकोज़ोआ में एक सूक्ष्म समुद्री प्राणी *ट्राइकोप्लैक्स ऐढेरेन्स* (*Trichoplax adherens*) की अकेली स्पीशीज़ आती है; यह प्राणी दो एपिथीलियमी परतों—एक पृष्ठीय तथा एक अधर परत का बना होता है जिनके बीच में अदृढ़ मीज़ेन्काइम जैसी कोशिकाएं बंद भरी रहती हैं। मेसोज़ोआ में ऐसे परजीवी कृमियों की लगभग 50 स्पीशीज़ आती हैं जिनकी एक सरल संरचना होती है जिसमें 20-30 सिलियायुक्त कोशिकाएं होती हैं जो कुछ थोड़ी सी ही जनन कोशिकाओं को बाहर से ढ़क रखती हैं।

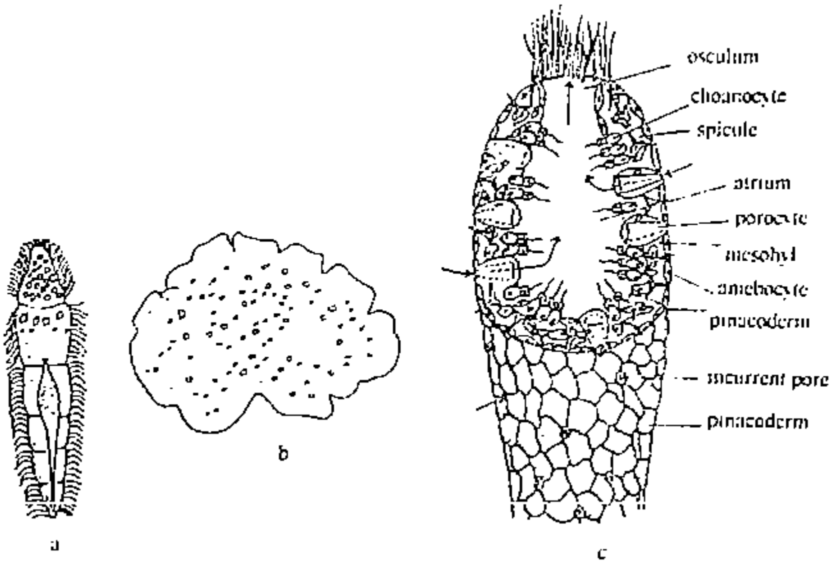

चित्र 3.3: (a) देह-संगठन का कोशिकीय स्तर: मेसोज़ोअन रोपैल्यूरा (*Rhopalura*)। (हाइमन से)।
(b) एक प्लैकोज़ोअन (मार्गुलिस तथा श्वार्ट्ज़ 1982 से) (c) ऐस्कॉनाभ स्पंज का अनुदैर्घ्य काट।

जैसा कि आप पहले से ही जानते हैं ऊतक ऐसी कोशिकाओं का समूह होता है जो उद्भव एवं संरचना में समान होती हैं तथा वे एक विशिष्ट प्रकार्य करती होती हैं। देह-संगठन का इससे अगला स्तर **ऊतक स्तर (tissue level)** होता है जिसे सीलेंटेरेटों (नाइडेरिया तथा टेनोफ़ोरा) में देखा जा सकता है। ये दो जनन परतों

के बने होते हैं जिनमें से एक्टोडर्म परत से एपिडर्मिस बनती है तथा एण्डोडर्म परत से गैस्ट्रोडर्मिस। जेलीफिशों तथा उनके संबंधियों को ऊतक-संगठन का प्रारम्भ माना जाता है और ऊतक के एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में आता है नाइडेरियनों का तंत्रिका-जाल जिसके अंदर तंत्रिका-कोशिकाओं एवं उनके प्रवर्धों का परस्पर मिलकर एक निश्चित ऊतक संरचना बन जाती है जिसके द्वारा समन्वय का कार्य सम्पन्न होता है (चित्र 3.4)।

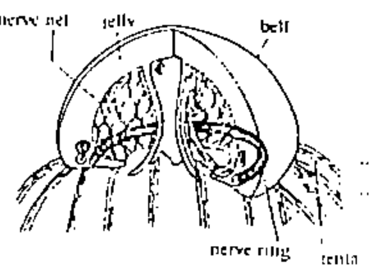

चित्र 3.4: ऊतक स्तर का संगठन–जेलीफ़िश में तंत्रिका-जाल।

देह-संगठन का इससे अगला स्तर जैसाकि आप पिरैमिड में देख रहे है **अंग (organ)** हैं। अंग सामान्यतः एक से अधिक प्रकार के ऊतकों के बने होते हैं। यह पहले से ही कुछ नाइडेरियनों, टेनोफ़ोरों तथा चपटेकृमियों अर्थात् प्लैटीहेल्मिंथीज़ में पाया जाता है जिनमें नेत्र तथा जनन-अंग जैसे सुनिश्चित अंग बने होते हैं (चित्र 3.5)।

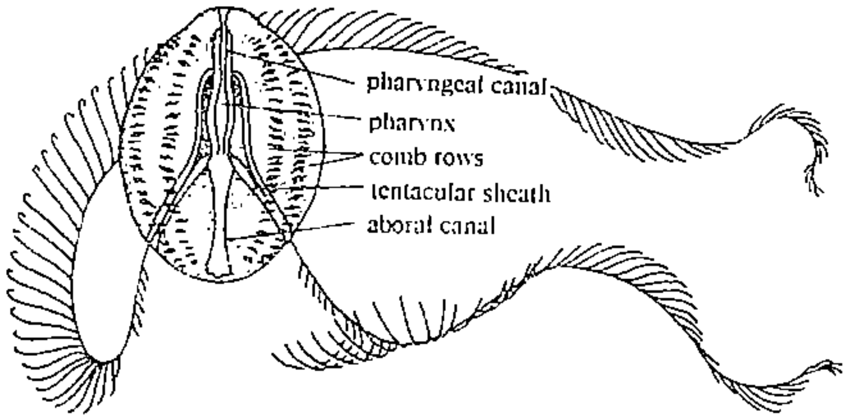

चित्र 3.5: एक प्ररूपी टेनोफ़ोर में अंग-स्तर का संगठन।

जब कई अंग मिलकर एक विशिष्ट प्रकार्य करने के लिए काम करते हैं तब संगठन का उच्चतम स्तर अर्थात देह संगठन का **अंग-तंत्र स्तर (organ system level)** बन जाता है। ये अंग-तंत्र देह के आधारभूत प्रकार्यों से संबंधित होते हैं। इस प्रकार का देह-संगठन पहली बार प्लैटीहेल्मियीज़ (चित्र 3.6) में पाया जाता है, उदाहरण के लिए इनमें एक पाचन-तंत्र है जो सुविकसित जनन-तंत्र से अलग है। इस फ़ाइलम से लेकर स्तनियों तक सभी प्राणियों में उच्चतम स्तर का देह-संगठन पाया जाता है।

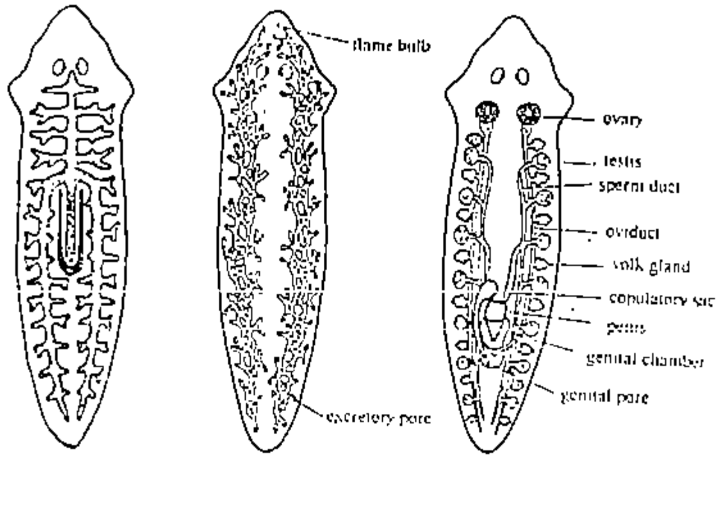

चित्र 3.6 : प्लैनेरिया में अंग-तंत्र स्तर का संगठन। पाचन-तंत्र, उत्सर्गी-तंत्र, जनन-तंत्र

3.3 मेटाज़ोआ की विशिष्टताएं

इकाई-2 में आपने जाना कि एककोशिक प्रोटोज़ोआ उच्च कोटि के बहुविविध एवं सफल प्राणी हैं जिनमें एकल कोशिका की सीमाओं में रहते हुए अनोखा संगठन एवं श्रम-विभाजन पाया जाता है। इनमें अवकोशिकीय स्तर पर कोशिकांगों की संरचना में भिन्नता लाकर विविधता प्राप्त की गयी है। उधर मेटाज़ोआ अर्थात बहुकोशिक प्राणियों में संरचनात्मक विविधता स्वयं कोशिकाओं में भिन्नता लाकर पैदा हुई है, ये कोशिकाएं अलग-अलग प्रकार्यों के लिए विशेषित हो गयीं। ये कोशिकाएं सामान्यतः स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम नहीं होतीं।

तो आइए सबसे पहले मेटाजोअनों की विशिष्टता प्रकट करने वाले लक्षणों की सूची तैयार करें :—

1. मेटाज़ोआ के सदस्यों में एक जटिल बहुकोशिक संरचनात्मक संगठन होता है जिसमें ऊतक, अंग तथा अंग-तंत्र मौजूद हो सकते हैं।

2. मेटाज़ोअनों के जीवन-इतिहास में प्रतिरूपतः एक निषेचित अण्डा वयस्क बनने से पूर्व अपने प्रारम्भिक भ्रूण परिवर्धन में एक ब्लास्टुला अवस्था में से गुज़रता है।

3. चूंकि मेटाज़ोअन बहुकोशिक होते हैं वे एककोशिक प्रोटोज़ोअनों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक बड़े होते हैं। स्वभाविक है कि इनकी पोषण आवश्यकताएं अधिक होंगी तथा इन्हें आहार को ढूंढना होता है। इसके परिणामस्वरूप मेटाज़ोअनों में संचलन का उच्च विकास हुआ है तथा इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में इन प्राणियों में पेशी तत्वों एवं तंत्रिका संरचनाओं का विकास हुआ।

4. संचलन की क्षमता ने मेटाज़ोअन प्राणियों की आकृति को प्रभावित किया है और स्वयं इस आकृति ने मेटाज़ोअन वर्गों को विशिष्ट प्रकार की सममितियाँ (symmetries) प्रदान कर दीं।

5. अधिकतर मेटाज़ोअनों में अग्र सिरे अर्थात शीर्ष का विभेदन हुआ (शिरोभवन, cephalisation); शिरोभवन से ही संबंधित है शीर्ष भाग में तंत्रिका-तंत्र का केंद्रीकरण।

हालांकि सभी मेटाज़ोअनों में कुछ विशिष्ट लक्षण समान रूप से पाए जाते हैं फिर भी उनकी देह योजनाएं कई बातों में भिन्न होती हैं जैसे सममिति, भीतरी संगठन, परिवर्धन प्रतिरूप, तथा देह गुहा की निर्माण-विधि में। इन्हीं भिन्नताओं के रूप में हमें वह आधार मिल जाता है जिसके द्वारा इन प्राणियों को अलग-अलग फ़ाइलमों में समूहित अथवा व्यवस्थित किया जा सकता है। तो आइए इन लक्षणों का एक-एक करके विवेचन करें।

3.4 सममिति

प्रत्येक सजीव जीवधारी के शरीर की कोई न कोई आकृति अथवा स्वरूप तो होता ही है। प्राणियों की सामान्य देह-योजना अनेक योजनाओं (चित्र 3.7 a-f) में से किसी-न-किसी एक के रूप में तो गठित होनी ही चाहिए।

सममिति (symmetry) का अर्थ है शरीर के अवयवों अथवा अंगों का किसी एक काल्पनिक विभाजन रेखा के इधर और उधर अथवा एक समान अक्ष के चारों ओर अथवा किसी एक बिंदु के चारों ओर अरीय रूप में इस प्रकार से व्यवस्थित होना कि सम्मुखी (opposite) भाग एक-दूसरे के दर्पण-प्रतिबिंब लगते हों। सममिति के मोटे तौर पर दो विभाजन किए जाते हैं (i) प्राथमिक (primary) अर्थात भ्रूणीय, तथा (ii) द्वितीयक (secondary) अर्थात वयस्क रूप (adult)। वयस्करूप सममिति हो सकती है वही हो जो प्राथमिक थी या नहीं भी हो सकती। उदाहरण के लिए, स्टारफ़िश का लार्वा द्विपार्श्वतः सममित होता है जबकि वयस्क स्टारफ़िश अरीय रूप में सममित होती है। इसमें प्राथमिक सममित द्विपार्श्व होती है तथा द्वितीयक सममिति अरीय होती है। सममिति के अनुसार प्राणियों को मूलतः पांच प्रकार का कहा जा सकता है— (i) असममित, (ii) गोलीय, (iii) द्विपार्श्व, (iv) अरीय तथा (v) द्विअरीय

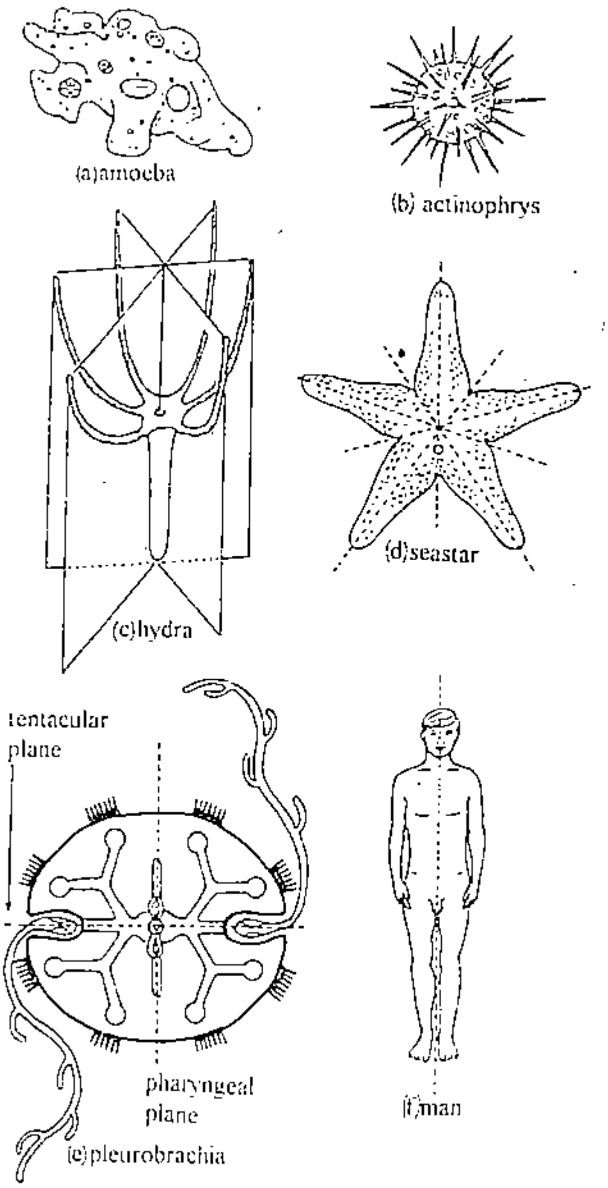

चित्र 3.7: विभिन्न प्रकार की देह-सममितियां a) असममित (asymetrical), b) गोलीय (spherical) सममिति, (c-d) अरीय (radial) सममिति, (e) द्विअरीय (biradial) सममिति; (f) द्विपार्श्व (bilateral) सममिति।

3.4.1 असममित तथा गोलीय सममिति

कुछ जीव-जंतु असममित होते हैं, ऐसे जीवों को बीच से चाहे जैसे भी विभाजित करें कोई भी दो अर्धांश एक-जैसे दिखायी नहीं देंगे (चित्र 3.7a)। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि ये ऐसे प्राणी हैं जिन्हें किसी भी समतल अथवा अक्ष (अनुदैर्ध्य, सममितार्धी अथवा अनुप्रस्थ) पर दो अभिन्न अर्धांशों में काटा नहीं जा सकता। अमीबा तथा अधिसंख्य स्पंज इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

इसके बिल्कुल विपरीत है गोलीय सममिति। जिन प्राणियों में गोलीय सममिति पायी जाती है उन्हें केंद्र से गुज़रते हुए अनेक समतलों पर दो अभिन्न अर्धांशों में विभाजित किया जा सकता है, दूसरे शब्दों में केंद्र से गुज़रने वाला प्रत्येक समतल ऐसे दो अर्धांश प्रदान करेगा जो एक दूसरे के दर्पण-प्रतिबिंब होंगे। इस प्रकार की सममिति मुख्यतः कुछ प्रोटोज़ोआ में पायी जाती है तथा अन्य प्राणि-वर्गों में बहुत ही कम पायी जाती है। प्रतिरूपी उदाहरण हैं *ऐक्टिनोफ्रिस* (चित्र 3.7b) तथा कॉलोनीय *वाल्वॉक्स*।

3.4.2 अरीय तथा द्विअरीय सममिति

अरीय सममिति वह सममिति होती है जिसमें शरीर के भाग एक केंद्रीय अक्ष अथवा शैफ़्ट के चारों ओर, पहिए की तीलियों की तरह, इस प्रकार व्यवस्थित होते हैं कि अक्ष पर कोई उदग्र काट लगाने पर पूरा जंतु

दो अभिन्न अर्धांशों में विभाजित हो जाता है। सामान्य जेलीफिश तथा हाइड्रा (नाइडेरिया) में अरीय सममिति पायी जाती है (चित्र 3.7c)। स्टारफ़िश तथा उसके संबंधियों में रूपांतरिक प्रकार की अरीय सममिति पायी जाती है। इन्हें पांच समतलों पर विभाजित किया जा सकता है, प्रत्येक समतल पर दो स्पष्ट अर्धांश प्राप्त होते हैं। इसे पंचतयी (pentamerous) सममिति कहते हैं। शरीर की एक दिशा पर मुख होता है और इसे मुख सतह कहते हैं; इसकी विपरीत दिशा अपमुखी होती है (चित्र 3.7)। मुख-अपमुख अक्ष के सहारे काट लगाने पर अभिन्न अर्धांश प्राप्त होंगे।

द्विअरीय सममिति कोई अलग नहीं बल्कि इसी अरीय सममिति का ही एक बदला हुआ स्वरूप है। यह ऐनिमोनों तथा टेनोफ़ोरों में पायी जाती हैं। यद्यपि देखने पर प्राणी अरीय रूप में सममित दिखायी देता है पर वास्तव में वह दो प्रारीय (per-radial) स्थानों पर से ही दो बराबर अर्धांशों में विभाजित किया जा सकता है—ये दो स्थान हैं एक तो स्पर्शक समतल (tentacular plane) और दूसरा इसी समतल से समकोण बनाती हुई सममितार्धी समतल (चित्र 3.6e)।

अरीय तथा द्विअरीय प्राणी प्रायः स्थानबद्ध, मुक्त रूप में तिरने वाले अथवा मामूली से तैरने वाले होते हैं। इन प्राणियों को रेडिएटा (Radiata) कहा जाता है।

3.4.3 द्विपार्श्व सममिति

द्विपार्श्व सममिति वाले प्राणियों में उनका मुख्य अक्ष शीर्ष (अग्र सिरे) से लेकर पूंछ (पश्च सिरे) तक चलता जाता है। इनमें एक अधर (निचली ventral) तथा एक पृष्ठ (ऊपरी dorsal) सतह होती है जो एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इनके केवल दो पार्श्व होते हैं दायां और बायां जो एक-जैसे दिखायी पड़ते हैं। इसमें प्राणी केवल एक ही समतल, जो अग्र सिरे से पश्च सिरे तक चलता जाता है, के सहारे दो अभिन्न अर्धांशों में विभाजित किया जा सकता है। स्पंजों, टेनोफ़ोरों तथा नाइडेरियनों को छोड़कर मानव-सहित लगभग सभी प्राणियों में द्विपार्श्व सममिति ही पायी जाती है। वयस्क इकाइनोडर्म भले ही अरीयतः सममित (पंचतयी) हों मगर उनके लार्वों में द्विपार्श्व सममिति ही पायी जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि विकास द्विपार्श्वतः सममित पूर्वजों से ही हुआ है। सामान्यतः देखा जाता है कि जब द्विपार्श्व प्राणी एक स्थानबद्ध जीवन व्यतीत करने लग जाते हैं तब उनमें अरीय सममिति की ओर परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन मामूली सा हो सकता है जैसे कि ऐकार्न बार्नेकल्स (acorn barnacles) में जिनमें केवल सुरक्षाकारी वृत्ताकारी भित्ति प्लेटें ही अरीय रूप में व्यवस्थित होती है या यह बहुत तीव्र हो सकता है जैसे कि "सी-स्टार्स" अथवा स्टारफ़िशों में। द्विपार्श्व प्राणियों को बाइलेटेरिया (Bilateria) कहते हैं।

बोध प्रश्न 1

बायीं ओर दिए गए शब्दों को दायीं ओर सूची में दिए गए सही-सही कथनों से मिलाइएः—

(क) असममित	(i) अनेक अभिन्न अर्धांशों में विभाजित किए जा सकते हैं
(ख) द्विपार्श्वतः सममित	(ii) केवल दो अभिन्न अर्धांशों में विभाजित किए जा सकते हैं उससे अधिक में नहीं
(ग) द्विअरीयतः सममित	(iii) इकाइनोडर्म-प्राणी
(घ) पंचतयी अरीय सममिति	(iv) टेनोफ़ोर-प्राणी
(च) गोलीय	(v) दो अभिन्न अर्धांशों में विभाजित नहीं किए जा सकते

3.5 परिवर्धन प्रतिरूप

पिछले अनुभाग में आपने देखा कि ऐनिमेलिया के मेटाज़ोअन प्राणियों को देह सममिति के आधार पर दो समूहों में बांटा जा सकता है। द्विपार्श्व मेटाजोआ को दो बड़े वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक प्रोटोस्टोमिया (Protostomia) और दूसरा ड्यूटेरोस्टोमिया (Deuterostomia)। प्लेटीहेल्मिन्थीज़, मोलस्का, ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोड़ा तथा अनेक छोटे फ़ाइलम प्रोटोस्टोमिया वर्ग में आते हैं तथा एकाइनोडर्माटा, कॉर्डेटा और कम-से-कम दो छोटे फ़ाइलम ड्यूटेरोस्टोमिया वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इन वर्गों में प्राणियों को रखने के लिए जो लक्षण ध्यान में रखे गए हैं वे मुख्यतः परिवर्धन-संबंधी हैं। हम सर्वप्रथम विदलन प्रतिरूपों को लेंगे।

3.5.1 विदलन

आप परिवर्धन जीवविज्ञान (LSE-06) में पढ़ चुके हैं कि एककोशिक ज़ाइगोट में कोशिका-विभाजन (विदलन) प्रारम्भ हो जाता है। सर्वप्रथम अकेली कोशिका में विभाजन होकर दो कोशिकाएं बनती हैं, फिर इनमें पुनः विभाजन होकर चार, फिर आठ और इस प्रकार विभाजन होते होते ज़ाइगोट से बहुत सी कोशिकाओं की एक गेंद बन जाती हैं। इन कोशिकाओं को **ब्लास्टोमियर** (blastomere) या कोरकखंड कहते हैं।

पहले तथा दूसरे विदलन के समतल, अक्ष पर गुज़रते हुए उदग्र होते हैं, मगर आपस में वे समकोण बनाते हैं। इन दो विदलनों के फलस्वरूप चार ब्लास्टोमियर बन जाते हैं जो अक्ष के चारों ओर एक-दूसरे के अगल-बगल पड़े होते हैं। तीसरे विदलन का समतल पहले दो समतलों एवं अक्ष पर समकोण बनाते हुए क्षैतिज होता है और इस तरह वे ज़ाइगोट के विषुवत के समांतर होता है। इससे अब आठ ब्लास्टोमियर बन जाते हैं। इन आठ में से चार ब्लास्टोमियर अन्य चार के ऊपर स्थित होते हैं।

विदलन के प्रतिरूप एवं ज़ाइगोट में एक काल्पनिक केंद्रीय अक्ष के चारों ओर ब्लास्टोमियरों की व्यवस्था दो में से किसी एक प्रकार की हो सकती है—अरीय अथवा सर्पिल।

अरीय विदलन (radial cleavage) द्वारा कोशिकाओं के एक के ऊपर एक के रूप में व्यवस्थित टीयर अथवा परतें बन जाती हैं (चित्र 3.8 a)। अरीय प्रकार विदलन को **अनिर्धारी** (indeterminate) अथवा **नियमनकारी** (regulative) भी कहते हैं क्योंकि इस प्रकार आरम्भिक भ्रूण का प्रत्येक ब्लास्टोमियर यदि बाकी से अलग कर दिया जाय तो वह अपने परिवर्धन का नियमन करके एक सम्पूर्ण एवं सही-सही अनुपातों वाला भ्रूण बना लेता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ये ब्लास्टोमियर **समशक्त** (equipotent) होते हैं; इनकी अंतिम नियति अभी तक निर्धारित नहीं हुई होती तथा आरम्भिक ब्लास्टोमियरों का स्थान और भ्रूण में जो अंग उससे बनेंगे इनके बीच कोई निश्चित संबंध नहीं होता (इसीलिए अनिर्धारी)। इस प्रकार का विदलन कुछ नाइडेरियनों, एकाइनोडर्मों तथा समस्त कॉर्डेटों में पाया जाता है।

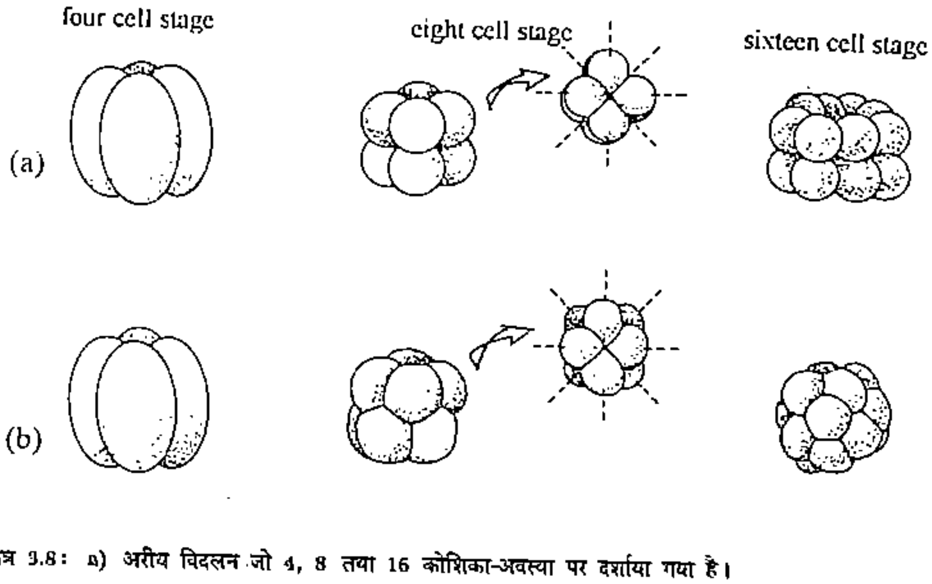

चित्र 3.8: a) अरीय विदलन जो 4, 8 तथा 16 कोशिका-अवस्था पर दर्शाया गया है।
b) सर्पिल विदलन जिसमें 4 से 8 और 8 से 16 अवस्था में संक्रमण दर्शाया गया है।

सर्पिल विदलन (spiral cleavage) में तीसरा तथा चौथा विदलन समतल ध्रुव अक्ष पर तिरछा होता है जिससे परिणामी ब्लास्टोमियर एक-दूसरे के ठीक ऊपर नहीं पड़े होते वरन् कोशिकाओं के बीच की खांच के ऊपर स्थित होते हैं (चित्र 3.8 b)। तीसरे विदलन के दौरान बनने वाले स्पिंडल एक सर्पिल के रूप में व्यवस्थित होते हैं और इसीलिए यह नाम सर्पिल विदलन पड़ा। इस प्रकार का विदलन एकाइनोडर्मों को छोड़कर समस्त अकशेरुकियों में पाया जाता है (अर्थात् यह ऐनेलिडों, नेमर्टीनों, पौलीक्लैड, प्लैनेरियनों आर्थ्रोपोड़ा तथा मोलस्कनों में पाया जाता है)।

सर्पिल विदलन वाले भ्रूणों में होने वाला परिवर्धन **मोज़ेक** (mosaic) अथवा **निर्धारी** (determinate) प्रकार कहलाता है। इसका अर्थ यह है कि अण्डे के अंग-निर्माणकारी क्षेत्र अण्डे में ही पूरी तरह स्थानीकृत होते हैं तथा इन ब्लास्टोमियरों की नियति शुरू में ही निर्धारित हो जाती है। यदि ब्लास्टोमियरों को पृथक कर दिया

जाए तो उनमें से पृथक किए गए प्रत्येक ब्लास्टोमियर में कुछ खास समय तक आगे परिवर्धन होता रहेगा मानो वह किसी एक समग्र का ही अंश हो और उससे एक दोषपूर्ण आंशिक भ्रूण बनेगा। आरम्भिक भ्रूणों में एक साइटोप्लाज्मी कारक, जो अभी तक पहचाना नहीं गया है, पृथक होकर एक अलग ब्लास्टोमियर में आ जाता है, इस ब्लास्टोमियर को **मीज़ेंटोब्लास्ट** कहते हैं (इसे 4d′ कोशिका भी कहा जाता है) और इससे आगे चलकर मीज़ोडर्म बनती है।

3.5.2 ब्लास्टोपोर की नियति

विदलन के फलस्वरूप कोशिकाओं की एक गेंद-सी बन जाती है जिसे **मौरुला** (morula) कहते हैं (अंग्रेजी में "मोरुला" का अर्थ है शहतूत जैसा, और इसीलिए यह नाम दिया गया)। मौरुला के भीतर एक गुहा प्रकट हो जाती है जिससे अब यह मौरुला एक **ब्लास्टुला** (blastula) बन जाता है। इसकी केंद्रीय गुहा को **ब्लास्टोसील** (blastocoel) कहते हैं तथा इस गुहा को चारों ओर से घेरती हुई कोशिका-परतों को **ब्लास्टोडर्म** (blastoderm) कहा जाता है। ब्लास्टोडर्म में अंतर्वलन अर्थात भीतर को मुड़ जाने से दोहरी-भित्ति वाला **गैस्ट्रुला** (gastrula) बन जाता है। इस दोहरी-भित्ति वाले प्याले की गुहा को **आघंत्र** (archenteron) कहते हैं तथा इस आघंत्र के बाहर को खुलने वाले छिद्र को **ब्लास्टोपोर** (blastopore) कहते हैं (चित्र 3.9)। जैसे-जैसे गैस्ट्रुला का और आगे परिवर्धन होता जाता है वैसे-वैसे भ्रूण के अलग-अलग भागों से अलग-अलग संरचनाएं बनती जाती हैं और अंततः पूर्ण नया जीव बन जाता है। प्लेटीहेल्मन्थीज़, नेमैटोडों, ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों तथा मोलस्कों, जिनमें सर्पिल विदलन होता है, में भ्रूण के ब्लास्टोपोर से प्राणी का मुख बनता है तथा गुदा अलग से द्वितीयक रूप में बनती है (चित्र 3.9)। चूंकि इन प्राणियों में मुख पहले बनता है इसलिए इन्हें प्राणि-जगत के **"प्रोटोस्टोमिया"** विभाजन में रखा जाता है जिसका अर्थ है मुख-प्रथम विभाजन।

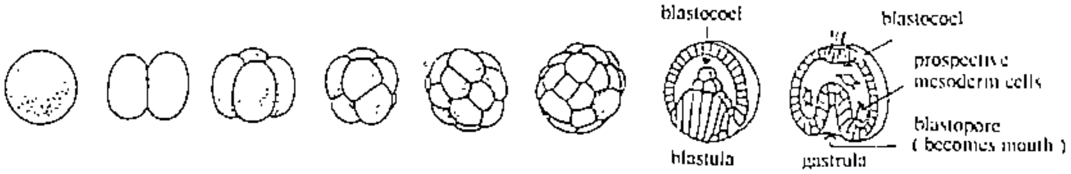

चित्र 3.9 : नेमर्टीन कृमि (प्रोटोस्टोम) का आरम्भिक भ्रूण-विज्ञान।

एकाइनोडर्मो, कीटोग्नैथों, हेमिकॉर्डेटों तथा कॉर्डेटों में, जिनमें अरीय विदलन होता है, ब्लास्टोपोर से प्राणी की गुदा बनती है तथा मुख, देह-भित्ति में एक स्वतंत्र रूप से बना हुआ द्वितीयक छिद्र होता है जैसा कि चित्र 3.10 में दिखाया गया है। इसलिए इन प्राणियों को **ड्यूटेरोस्टोमिया** (मुख द्वितीयक) कहा जाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि ब्लास्टोपोर की नियति से विकास की दो आधारभूत दिशा-रेखाएं निर्धारित होती हैं—एक तो प्रोटोस्टोमों की जिनमें विदलन सामान्यतः मोजेक (निर्धारी एवं सर्पिल) प्रकार का होता है और दूसरे ड्यूटेरोस्टोमों की जिनमें विदलन आमतौर से नियमनकारी (अरीय तथा अनिर्धारी) प्रकार का होता है।

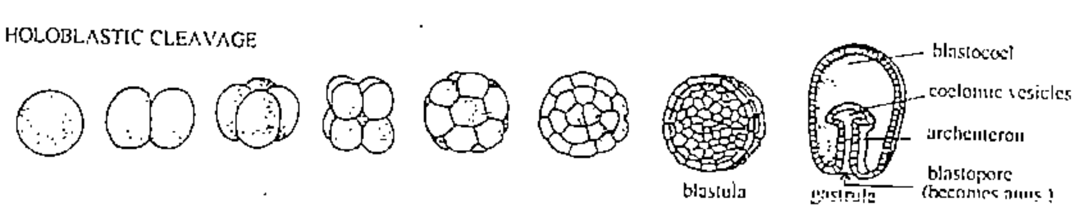

चित्र 3.10: एक ड्यूटेरोस्टोम "सी-स्टार" में ब्लास्टोपोर निर्माण।

3.6 जनन परतें

पिछले अनुभाग में आपने पढ़ा कि ब्लास्टुला की ब्लास्टोडर्म में अंतर्वलन होकर दो या अधिक परतों वाला गैस्ट्रुला बन जाता है। इनमें से बाहरी परत एक्टोडर्म होती है तथा भीतर की परत एंडोडर्म होती है जो

भीतरी प्याले का अस्तर बनाती है। परिवर्धन के दौरान आगे चलकर प्ररूपतः इन दो परतों के बीच में एक तीसरी परत मीज़ोडर्म बन जाती है। इसका विस्तृत वर्णन इसी इकाई के अनुभाग 3.7 में दिया गया है। ये तीन भ्रूण परतें जिनसे प्राणी के विविध अंग बनते हैं, **जनन परतें** (germ layers) कहलाती हैं।

इस चरण पर आपको यह जान लेना चाहिए कि फ़ाइलम नाइडेरिया तथा टेनोफ़ोरा के प्राणी केवल दो ही परतों के बने होते हैं— एक **एक्टोडर्म** जो प्राणी की बाहरी परत बनाती है और दूसरी **एंडोडर्म** जो भीतरी होती है एवं जिसे **गैस्ट्रोडर्म** (gastroderm) भी कहा जाता है। मगर एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच एक अकोशिक जेली-जैसा पदार्थ **मीज़ोग्लीया** (mesoglea) पाया जाता है जो दो परतों को परस्पर जोड़ने-बाँधने का काम करता है। इस परत को गलती से तीसरी जनन परत **मीज़ोडर्म** नहीं समझ लेना चाहिए। चूँकि इन दो फ़ाइलमों के प्राणियों में मीजोडर्म नहीं होती इसलिए इन्हें **डिप्लोब्लास्टिक** (diploblastic) अर्थात द्विजननस्तरीय कहते हैं। अगर हम हाइड्रा का एक अनुदैर्ध्य (लम्बा) सेक्शन काटें तो हम देखेंगे कि दो स्पष्ट परतें हैं जिन्हें एक अकोशिक मीज़ोग्लीया परस्पर जोड़े रखती है। इन दो जनन परतों से अनेक विभिन्न कोशिका प्ररूप बन जाते हैं जैसा कि चित्र 3.11 में स्पष्ट देखा जा सकता है।

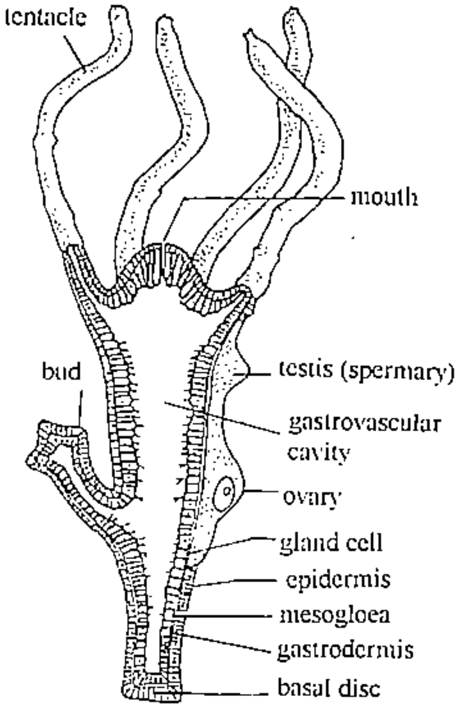

चित्र 3.11: हाइड्रा का अनुदैर्ध्य सेक्शन।

शेष सभी प्राणी (प्लेटीहेल्मिन्थीज से लेकर स्तनियों तक) तीन जनन परतों एक्टोडर्म, एंडोडर्म तथा मीज़ोडर्म के बने होते हैं। ये प्राणी **ट्रिप्लोब्लास्ट्रिक** (triploblastic) अर्थात त्रिजननस्तरीय होते हैं। मान लीजिए कि हम किसी घोड़े (जो एक स्तनी एवं ट्रिप्लोब्लास्टिक है) का एक सेक्शन काटें तो क्या हम उसी प्रकार से तीन परत देखने की आशा कर सकते हैं जैसे कि डिप्लोब्लास्टिक हाइड्रा में हमने दो परतें देखी थीं? नहीं, ऐसा हम नहीं देख पाएंगे, कारण यह कि ये तीन जनन परतें ऐसे ही नहीं कायम बनी रहती बल्कि उनमें विभेदन एवं रूपांतरण होकर घोड़े के शरीर की विभिन्न संरचनाएं एवं अंग बन गए हैं। तीन परतें केवल आरम्भिक भ्रूण अवस्था में ही दिखायी पड़ सकती हैं। इसीलिए हम इन्हें भ्रूण-परतें अथवा जनन परतें कहते हैं।

जनन परतों की नियति

नाइडेरियनों तथा टेनोफ़ोरों में सभी कोशिका प्ररूप या तो एक्टोडर्म से या एंडोडर्म से बनते हैं। इसी प्रकार शेष सभी प्राणियों के समस्त ऊतक एवं अंग तीन जनन परतों से बनते हैं कदाचित आप जानना चाहेंगे कि जैसे-जैसे आप भ्रूण से शिशु अवस्था में पहुंचे वैसे वैसे इन तीन जनन परतों से शरीर की कौन-कौन सी विभिन्न संरचनाएं बनी। तालिका 3.1 में यही दर्शाया गया है।

तालिका 3.1 : तीन जनन-परतों के व्युत्पाद।

	एक्टोडर्म		एंडोडर्म		मीज़ोडर्म
(i)	त्वचा की एपिडर्मिस	(i)	थाइरॉइड, थाइमस, पैराथाइरॉइड, मध्य कान, यूस्टेशियन नलिका के एपिथीयमी भाग	(i)	त्वचा की डर्मिस
(ii)	मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु	(ii)	यकृत तथा अग्न्याशय	(ii)	कंकाल-तंत्र
(iii)	कपाल एवं मेरु तंत्रिकाएं, मुख एपिथीलियम तथा मुख-ग्रंथियों की एपिथीलियम	(iii)	लेरिंक्स से प्रारम्भ होकर श्वसन-तंत्र का एपिथीलियमी अस्तर	(iii)	अधिसंख्य पेशियां, और वसा ऊतक भी, तथा सभी प्रकार के संयोजी ऊतक
(iv)	नासीय एवं घ्राण एपिथीलियम	(iv)	योनिमार्ग तथा मूत्राशय का एपिथीलियमी अस्तर	(iv)	प्राणियों में कुछ प्रकार के शल्क तथा सींग
(v)	गुदा-नाल की एपिथीलियम	(v)	मुख तथा गुदा नाल को छोड़कर शेष पूरी आहार-नाल का एपिथीलियमी अस्तर	(v)	दांतों का डेन्टीन भाग
(vi)	आंख का लेन्स तथा रेटिना	(vi)	स्तनियों, आदि में श्रवण नलिका मध्य गुहा,	(vi)	रक्तवाहिका तंत्र और साथ में रक्त भी
(vii)	स्वेद सिवेशस तथा स्तन ग्रंथियों की एपिथीलियम			(vii)	मूत्र-जनन तंत्र का अधिकतर भाग
(viii)	बाल, नाखून (अन्य प्राणियों में पिच्छ, हुक, शल्क)			(viii)	ऐड्रीनल कॉर्टेक्स
(ix)	ऐड्रीनल मेडुला, अग्र तथा पश्च पिट्यूटरी, तथा वर्णक कोशिकाएं			(ix)	सीलोमी एपिथीलियम, आंत्रयोजनियां, तथा आहार नाल की बाहरी परतें
(x)	भीतरी कान आशय (लेबिरिंथ)			(x)	गोनडों का अस्तर
(xi)	दांतों का इनेमेल				
(xii)	त्वचिक संवेदी अंग				

तालिका पर निगाह डालते हुए आपने अनुभव किया होगा कि जनन परतों का क्या महत्त्व है। आइए अब आगे प्राणियों की एक अन्य विशिष्टता—गुहाएं तथा सीलोम पर चर्चा करेंगे।

बोध प्रश्न 2

मूल पाठ से शब्दों को लेकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(i) आद्यंत्र ———— में प्रकट होती है तथा यह भावी ———— होती है।

(ii) फाइलम नाइडेरिया के प्राणियों में एक बीच की परत ———— होती है और जनन-परतों के आधार पर इन प्राणियों को ———— कहा जाता है।

(iii) मनुष्यों सहित सभी कॉर्डेटों में ———— जनन परतें पायी जाती है तथा ये प्राणी ———— प्रकार के कहलाते हैं।

(iv) नासीय एपिथीलियम, रेटिना तथा भीतरी कान-आशय ———— के व्युत्पाद हैं।

(v) डर्मिस, ऐड्रीनल कॉर्टेक्स तथा अधिकतर पेशियां ———— के व्युत्पाद होते हैं।

(vi) मध्य कान और योनिमार्ग तथा श्वसन-पथ की एपिथीलियम ———— के व्युत्पाद होते हैं।

3.7 देह गुहा

धानियां, खाली स्थान, रिक्तकाएं तथा गुहाएं सभी जीवों में चाहे वे पौधें हों या प्राणी, सभी में महत्वपूर्ण रही हैं। सभी प्राणियों के शरीर में गुहाएं होती हैं। ये गुहाएं अलग-अलग प्राणियों में अलग-अलग प्रकार्य करती है। परंतु इनमें से अधिकतर को देह-गुहाएं नहीं माना जाता। उदाहरण के लिए, स्पंजों में पायी जाने वाली स्पंजोसील नामक गुहा वास्तव में जल-नालों का तंत्र होती है। सामान्यतः देह गुहा शब्द से हम एक ऐसी बड़ी और तरल-भरी गुहा का अर्थ लगाते हैं जो देह-भित्ति तथा भीतरी अंगों के बीच बनी होती है। द्विपार्श्व प्राणियों को उनके भीतर देह गुहाओं के होने या न होने के आधार पर विभाजित किया जाता है। प्राणियों में दो प्रकार की देहगुहाएं पायी जाती हैं—कूटसीलोम तथा सीलोम।

3.7.1 कूटसीलोम

प्लेटीहेल्मिन्थीज में आहार-नाल को घेरती हुई कोई देह-गुहा नहीं होती, इनमें एक ठोस प्रकार की देह संरचना पायी जाती है (चित्र 3.12 a)। यह मीज़ोडर्म देह-भीत्ति तथा आहार-नाल के बीच के स्थान को कोशिकाओं के एक जाल के रूप में भरे रखती है, इस कोशिका जाल को पेरेन्काइमा कहते हैं। इस प्रकार के प्राणियों को **असीलोमी-प्राणी** (acoelomates) कहते हैं। नेमैटोडों में एक अलग ही स्थिति है : मीजोडर्म देह-गुहा के भीतर कुछ खास परिसीमित क्षेत्रों में ही सीमित रहती है और यह गुहा न तो मीज़ोडर्म से भरी होती है और न ही मीज़ोडर्म इसका अस्तर बना होता है। यह गुहा वास्तव में भ्रूण की चिरस्थायी ब्लास्टोसील होती है और इसे **कूटसीलोम** कहते हैं। भीतरी अंग कूटसीलोम के अंदर मुक्त रूप में पड़े होते हैं। देहगुहा का, मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न पेरिटोनियम से बना, कोई अस्तर नहीं होता। इस प्रकार से रचित प्राणियों को **स्यूडोसीलोमेट** (pseudocoelomates) अर्थात कूटसीलोमी कहते हैं (चित्र 3.12b)।

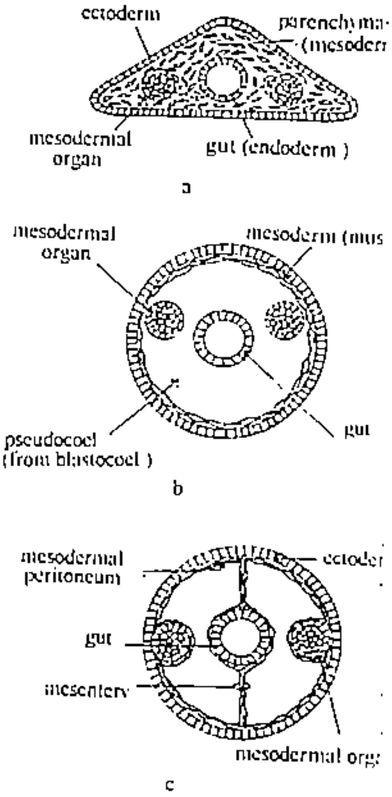

चित्र 3.12: असीलोम, कूटसीलोमी तथा सुसीलोमी प्राणियों के सेक्शन

3.7.2 सीलोम

वास्तविक सीलोम एक ऐसी देह गुहा होती है जो भ्रूणीय मीज़ोडर्म के भीतर बनती है तथा यह गुहा देह-भित्ति (त्वचा : एक्टोडर्म) और आहर-नाल (एंडोडर्म) के बीच स्थित होती है और इस गुहा का अस्तर बनाती हुई मीज़ोडर्म-कोशिकाएं होती हैं।

इस अस्तर को उच्चतर प्राणियों में पेरिटोनियम कहा जाता है। सीलोम के भीतर विविध भीतरी अंग स्थित होते हैं तथा इन अंगों पर पेरिटोनियम की परत चढ़ी होती है एवं अनेक आंत्रयोजनियां (मीज़ेंटरी) होती हैं (चित्र 3.11 c), ये मीज़ेटरियां पतली झिल्लियां होती हैं जिनके सहारे भीतरी अंग अपने स्थानों पर टिके होते हैं। इस गुहा के भीतर का द्रव अंगों को झटकों से बचाता है तथा देह को दृढ़ता प्रदान करता है। साथ ही अकशेरूकियों में यह द्रव परिसंचरण, उत्सर्जन एवं श्वसन में भी कार्य करता है।

प्राणियों में सीलोम निर्माण के दो प्रतिरूप पाए जाते हैं—शाइज़ोसील तथा एंटेरोसील। शाइज़ोसील (schizocoel) अर्थात दीर्णगुहिक प्रतिरूप में दो टेलोब्लास्ट (teloblast) कोशिकाएं (आद्य-मीज़ोडर्म कोशिकाएं) (चित्र 3.13a) ब्लास्टोपोर के पास से पृथक हो जाती हैं। इन दो कोशिकाओं में प्रचुरोद्भवन होकर एक जोड़ी टेलोब्लास्टिक पट्टियां बन जाती हैं। शुरू में ये पट्टियां ठोस होती हैं लेकिन बाद में प्रत्येक पट्टी में विपाटन होकर बीच में एक गुहा बन जाती है। यही गुहा बढ़कर सीलोम बन जाती है। जिन प्राणियों में विशिष्टतः इस प्रकार की सीलोम पायी जाती है उन्हें **शाइज़ोसीलोमेट्स** (schizocoelomates) अर्थात विपादसीलोमी प्राणी कहते हैं। उदाहरण : ऐनेलिड, आर्थ्रोपोड तथा मोलस्क-प्राणी।

"Schizo" ग्रीक शब्द "Schizein" से आया है जिसका अर्थ है विपाटन (to split)। Entero ग्रीक शब्द "enteron" अर्थात आंत्र/आहार-नाल से आया है।

सीलोम के एन्टरोसील अर्थात आंत्रगुहिक प्रकार के परिवर्धन में मीज़ोडर्म का निर्माण भ्रूण के भीतर आद्यंत्र (आर्केंटेरॉन) से निकलने वाले युग्मित पार्श्व कोष्ठों के रूप में होता है (चित्र 3.13 B)। ये कोष्ठ बढ़ते जाते हैं और बाद में आद्यंत्र से कटकर अलग हो जाते हैं। कोष्ठ की गुहा सीलोम बन जाती है। कोष्ठ की भीतरी दीवार परिवर्धनशील आहार-नाल को घेर लेती है तथा बाहरी दीवार परिवर्धनशील देह-भित्ति का अस्तर बन

"Coelom" शब्द ग्रीक के "koilos" से आया है जिसका अर्थ है "खोखला" अथवा गुहा

जाती है। ये दो परतें ही भावी मीज़ोडर्म होती हैं। इस प्रकार की गुहाओं वाले प्राणियों को एंटेरोसीलोमेट्स (enterocoelomates) अर्थात आंत्रगुहिक कहते हैं। सीलोम-परिवर्धन का यह प्रतिरूप एकानोडर्मों, हेमिकॉर्डेटों तथा कॉर्डेटों में पाया जाता है।

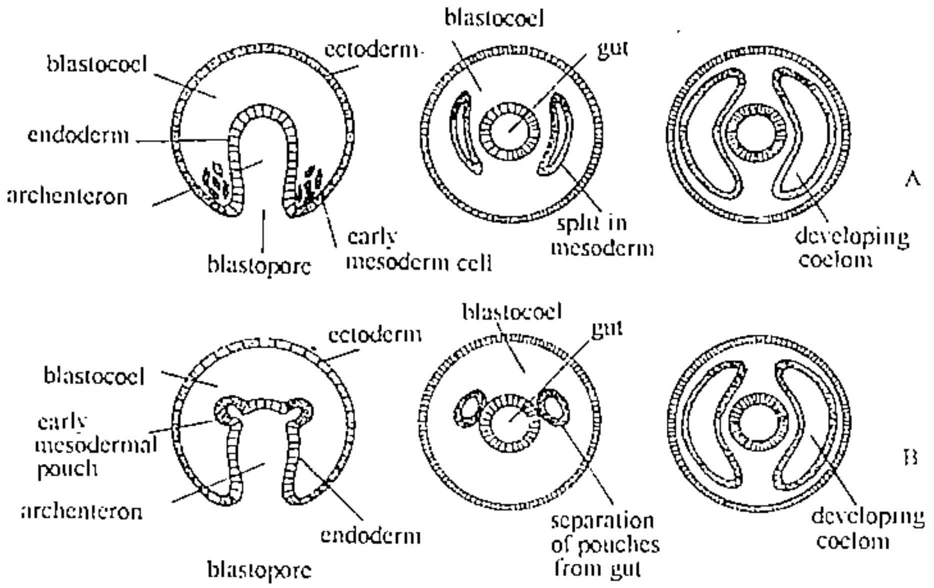

चित्र 3.13: सीलोम का परिवर्धन

A) शाइज़ोसीलोमी (दीर्णगुहिक) उद्भव

B) एंटेरोसीलोमी (आंत्रगुहिक) उद्भव

सीलोम के बनने के जो ये दो प्रतिरूप हैं वे विकास के दौरान प्रोटोस्टोम तथा ड्यूटेरोस्टोम में हुए द्विशाखन की ही एक अन्य अभिव्यक्ति है। प्रोटोस्टोमों में प्ररूपतः शाइज़ोसीलोमी प्रकार के उद्भव वाली सीलोम होती है जबकि ड्यूटेरोस्टोमों में यह एंटेरोसीलोमी प्रकार की होती है।

सीलोम के होने से सीलोमी प्राणियों में नलिका-के-भीतर-नलिका वाली देह-योजना बन जाती है जिसके कारण इन प्राणियों में, बिना भीतरी देह गुहा वाले प्राणियों की अपेक्षा, अधिक लचीलापन संभव हो जाता है। इसके अतिरिक्त तरल से भरी सीलोम कुछ प्राणियों में एक द्रवस्थैतिक (hydrostatic) कंकाल के जैसा भी कार्य करती है, जैसे कि कृमियों में जिनमें इसके द्वारा मिट्टी में सुरंगों में घुसने तथा गति करने में सहायता मिलती है। प्राणि-विकास में सीलोम का बहुत बड़ा महत्व है। इसके द्वारा अधिक जटिल एवं दीर्घतर प्राणियों का विकास आगे बढ़ पाया है।

बोध प्रश्न 3

प्रत्येक कथन के सामने दी गयी जगह में सही के लिए (स) तथा गलत के लिए (ग) लिखिए :

(i) वास्तविक सीलोम सभी ट्रिप्लोब्लास्टिक (त्रिजनस्तरीय) प्राणियों में होती पायी जाती है। [ ]

(ii) डिप्लोब्लास्टिक (द्विजनस्तरीय) प्राणियों को, जिनमें वास्तविक सीलोम नहीं होती, एसीलोमेट्स (असीलोमी प्राणी) कहते हैं। [ ]

(iii) दीर्णसीलोमी सीलोम भ्रूणीय टेलोब्लास्टों से बनती है। [ ]

(iv) एंटेरोसीलोमेट्स (आंत्रगुहिक प्राणियों) को प्रोटोस्टोम्स भी कहते हैं। [ ]

(v) नीमेटोडों में एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच एक गुहा होती है मगर इसमें मीज़ोडर्म का अस्तर नहीं बना होता। [ ]

(vi) स्यूडोसीलोमेटों में एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच की गुहा में पूरी तरह मीज़ोडर्म भरी रहती है। [ ]

3.8 शिरोभवन तथा खण्डीभवन

द्विपार्श्व प्राणियों में प्रवृत्ति होती है कि जब भी वे रेंगते या तैरते होते हैं तब वे अपनी देह के एक ही सिरे को आगे को रखते तथा एक ही सतह को नीचे अधःस्तर की ओर किए रखते हैं। ऐसी स्थिति में संवेदी अंगों तथा तंत्रिका-तंत्र में भी यही प्रवृत्ति होगी कि वे अग्र सिरे पर ही संकेंद्रित हों। इस प्रकार के शीर्ष सिरे के विभेदन का ही दूसरा नाम **शिरोभवन** (cephalisation) है ("सिफ़ेलाइज़ेशन" का शाब्दिक अर्थ शीर्ष का बनना ही है)। द्विपार्श्व प्राणियों में शिरोभवन का विकास अलग-अलग स्तरों तक हुआ है। मुख सामान्यतः अग्रग सिरे पर स्थित होता है और उसके साथ आहार पकड़ने वाले अंग भी बने होते हैं क्योंकि शीर्ष पर बने संवेदी अंग आहार को पहचान सकते हैं। इसी क्षेत्र में तंत्रिका-कोशिकाएं संघटित होकर मस्तिष्क बना लेती है ताकि समन्वय तीव्रता से हो सके, अनुदैर्ध्य तंत्रिका-रज्जु इसलिए बन जाती हैं ताकि सूचना का सारे शरीर में तीव्रता से संचरण हो सके। शिरोभवन को आदि स्वरूप में प्लेटीहेल्मिन्थीज़ में देखा जा सकता है (चित्र 3.14)।

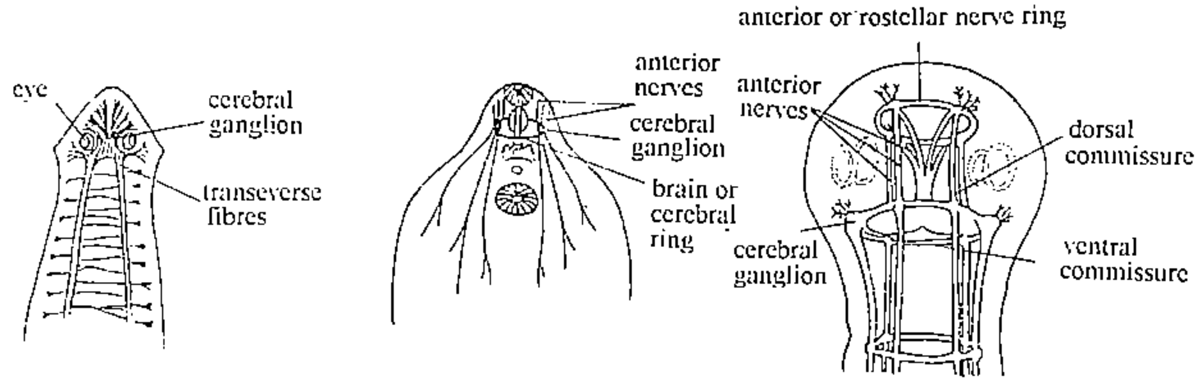

चित्र 3.14: शरीर के अग्र क्षेत्र में तंत्रिका तंत्र का संकेंद्रण। प्लैनेरिया में, यकृत पर्णाभ (लिवर-फ्लूक) में, फीताकृमि में।

खण्डीभवन (segmentation) अथवा विखंडता (metamerism) शरीर के अग्र-पश्च अक्ष में उसके छोटे-छोटे अनुप्रस्थ कक्षों में विभाजित हुए होने को कहते हैं। खण्डीभवन प्राणियों में व्यापक रूप में पाया जाता है, तथा वास्तविक खण्डीभवन ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों एवं अधिकतर कॉर्डेटों में होता पाया जाता है, हालांकि कुछ अन्य वर्ग है जिनमें एक्टोडर्मी देह-भित्ति का केवल सतही खण्डीभवन पाया जाता है।

आधारभूत रूप में तीन प्रकार के देह-स्वरूप पाए जाते हैं। पहला, **मोनोमेरिक** (monomeric) अर्थात एकखण्डी जिसमें बड़ी देहगुहा का कोई विभाजन नहीं हुआ होता। इस प्रकार का देह स्वरूप *ऐस्कैरिस* में पाया जाता है। दूसरा, **ओलाइगोमेरिक** (oligomeric) अर्थात अल्पखण्डी जिसमें देहगुहा तीन क्षेत्रों में विभाजित होती है तथा प्रत्येक क्षेत्र के भीतर एक पृथक देह-गुहा होती है तथा उदर पर कोई विभाजन नहीं होता, *फ़ोरोना* (*Phorona*) कृमि में यही देह-योजना पायी जाती है, तीसरा **मेटामेरिक** (metameric) अर्थात विखण्डी स्वरूप होता है जिसमें देह तीन हिस्सों में विभाजित होता है—शीर्ष, वक्ष तथा उदर और पुनः उदर में विभाजन होकर एक खण्ड-श्रृंखला बन गयी होती है।

खण्डयुक्त देह-स्वरूप फ़ीताकृमियों, ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों तथा कॉर्डेटों में पाया जाता है। इनमें से फ़ीताकृमियों में पाया जाने वाला खण्डीभवन बाकी के खण्डीभवन से बिल्कुल भिन्न होता है। हम देख सकते हैं कि फ़ीताकृमि का खण्डीभवन सतही होता है, इसकी क्यूटिकल तथा देह-भित्ति में छल्ले-जैसी शिकनों की श्रृंखला बनी होती है जिसके कारण शरीर को आसानी से मोड़ा-तोड़ा या सिकोड़ा जा सकता है। मगर यह खण्डीभवन पूर्णतः एक्टोडर्मी होता है (चित्र 3.15) तथा इस प्रकार का खण्डीभवन एक जनन संबंधी अनुकूलन भी है। पूरे शरीर के खण्डों में एक सतत प्रक्रिया होती रहती है, खण्ड बनते हैं, परिपक्व होते हैं तथा टूट कर अलग होते जाते हैं। नए खण्ड ग्रीवा (गर्दन) क्षेत्र में बनते हैं तथा पुराने खण्ड पश्च सिरे से टूट कर अलग हो जाते हैं। प्रत्येक खण्ड एक स्वतंत्र इकाई के रूप में कार्य करता है और उसका अन्य खण्डों के साथ कोई जीवनावश्यक संयोजन-संबंध नहीं होता।

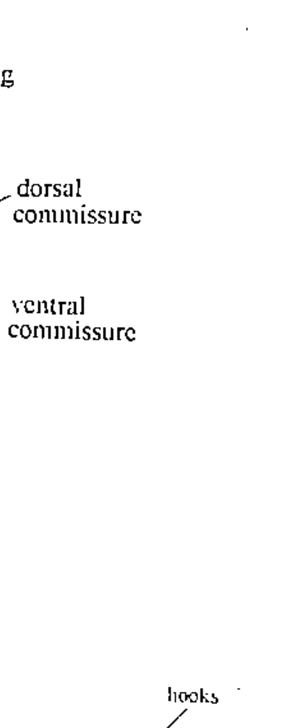

चित्र 3.15: फ़ीताकृमि में सतही खण्डीभवन।

Annelida

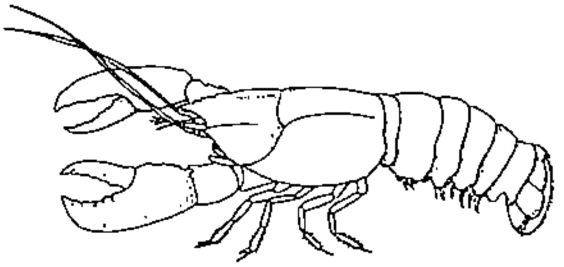

Arthropoda

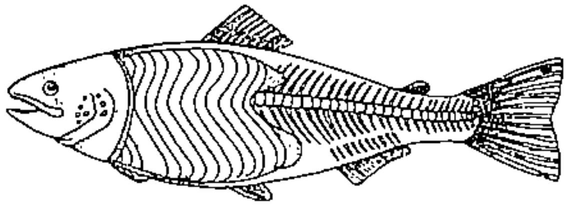

Chordata

चित्र 3.16 : खण्डीभवन-दर्शी फाइलम। ऐनेलिड तथा आर्थ्रोपोड प्राणी तो आपस में संबंधित हैं, परंतु, कॉर्डेटों में विखंडता स्वतंत्र रूप से प्रकट हुई है।

इसके विपरीत वास्तविक खण्ड में जैसा कि वह ऐनेलिडों में देखा जा सकता है, प्रत्येक खण्ड में मीज़ोडर्म से बनी पृथक शाइज़ोसीलोमी देहगुहा होती है। व्यष्टिगत खण्ड एक प्रचुरोद्भवन क्षेत्र से रेखीय क्रम में मुकुलित होते जाते हैं, यह मुकुलन पश्च सिरे के सामने से शुरू होकर आगे-आगे बढ़ता जाता है।

खण्डयुक्त प्राणियों में एक विशेषित अग्र **ऐक्रॉन** (acron) (अथवा पुरोमुख, **prostomium**) होता है तथा एक पश्च **पाइगिडियम** (pygidium) अथवा **टेल्सॉन** होता है, और ये दोनों ही खण्ड नहीं होते। इन दोनों के बीच कम या ज़्यादा संख्या में खण्ड होते हैं। लगभग परिपूर्ण खण्डीभवन में उपांगों, पेशियों, गैंग्लियॉनों, तंत्रिकाओं, रक्त-वाहिनियों, सीलोम तथा सभी देह-अंगों की प्रत्येक खण्ड में पुनरावृत्ति होती है। यह व्यवस्था ऐनेलिडों में सबसे अच्छी पायी जाती है। कॉर्डेटों में, खण्डीभवन सामान्यतः अक्षीय कंकाल, पेशियों तथा तंत्रिकाओं में ही झलकता है।

प्रश्न उठता है कि आखिर प्राणियों में ही खण्डीभवन का विकास क्यों हुआ? जिन प्राणियों में यह होता है उन्हें इससे क्या लाभ है? आइए इसे ज़रा निकट से देखें। सबसे खास लाभ यह है कि खण्डीभवन से शरीर में कोष्ठों की एक क्रम श्रृंखला बन जाती है जिसमें प्रत्येक खण्ड लगभग स्वतंत्र रूप में नियंत्रित हो सकता है, इस विधि से **विशेषीकरण** की दिशा में एक ढांचा या आधार उपलब्ध हो गया। कॉलोनीय (निवही) प्राणियों में यह विशेषीकरण ज़ूऑइडों के रूप में हुई बहुरूपता में पाया जाता है जबकि सखण्ड प्राणियों में **खण्डों का क्षेत्रगत** विशेषीकरण होता है।

उदाहरण के लिए, ऐनेलिडों में शरीर दो क्षेत्रों में विभाजित होता है—एक शीर्ष तथा एक धड़ (चित्र 3.16)। ये विभाजन कीटों तथा अनेक क्रस्टेशियनों में अधिक सुस्पष्ट होते हैं। अर्थात उच्चतर कशेरूकियों में क्षेत्रगत विशेषीकरण इस हद तक हो गया होता है कि खंडीभवन पेशी-व्यवस्था तक में समाप्त हो गया है।

क्षेत्रगत विशेषीकरण प्रायः तीन प्रक्रमों के द्वारा होता है:

1) कुछ संरचनाओं का कुछ खण्डों में सीमित हो जाना, उदाहरण के लिए, ऐनेलिडों में गोनड कुछ खास जनन खण्डों में ही सीमित होते हैं, जैसे केंचुए में।

2) खण्डीय संरचनाओं में विभिन्न प्रकार्यों के लिए संरचनात्मक परिवर्तन आ जाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ खण्डीय उपांग संचलन के लिए उपयुक्त होकर रूपांतरित हो जाते हैं तो कुछ परिग्रहण अथवा चबाने के लिए। (जैसे कीटों में)

3) प्राणी की लम्बाई में खण्डों का संलयन हो जाना। उदाहरण के लिए, अग्र खण्डों का संलयन होकर शीर्ष का बन जाना। *नेरीस (Nereis)* के शीर्ष में एक्रॉन तथा दो अन्य खण्ड शामिल हुए होते हैं तथा *ड्रोसोफिला* में यह पांच खण्डों का बना होता है।

विखण्डीय खंडीभवन का एक और महत्वपूर्ण लक्षण है कोमल शरीर वाले प्राणियों के संचलन में पाया जानेवाला इसका महत्व। असीलोमी प्राणी संचलन के लिए अपनी अनुदैर्घ्य तथा वृत्ताकार पेशियों का उपयोग करते हैं लेकिन सीलोमी गुहा के विकसित हो जाने से संभव हो सका कि इसका तरल एक द्रवचालित (hydraulic) कंकाल के रूप में कार्य कर सके। अकशेरुकियों में, जैसे कि ऐनेलिडों में, देह-भित्ति की पेशियां इस तरल दबाव के विपरीत कार्य करती हैं। वृत्ताकार पेशियों के संकुचन से सीलोमी तरल पर पड़ने वाली द्रवस्थैतिक दाब से शरीर लम्बा हो जाता है, और जब अनुदैर्घ्य पेशियां संकुचित होती हैं तब शरीर चौड़ा हो जाता है। विखंडीय खंडीभवन से शरीर में आगे-पीछे कोष्ठ बन जाते हैं। अतः शरीर के इस लम्बे होने तथा चौड़े होने को एक समय में कुछेक खण्डों तक सीमित रखा जा सकता है। लम्बे शरीर की आकृति में होने वाले इस प्रकार के स्थानीय परिवर्तन से संचलन दक्षता बढ़ जाती है। शरीर के चौड़े हो गए हुए भाग को बिल की दीवारों से कसकर चिपकाया जा सकता है, खास तौर से तब जब कि शूक (setae) जैसी अनुलग्नी संरचनाएं मौजूद हों और फिर शरीर को लम्बा करने से पर्याप्त प्रणोद (thrust) बन जाता है जिससे प्राणी आगे को बढ़ता हुआ गति करता है। इस प्रकार एकांतर क्रम से पैदा होने वाली क्रमांकुचनी तरंगों के द्वारा प्राणी आगे की ओर तीव्रता से एवं अधिक दक्षता के साथ चलता जा सकता है।

अभी तक हमने इस इकाई में एक तो देह-अभिकल्पनाओं की उन विशिष्टताओं पर विचार किया है जो विभिन्न प्राणियों में समान रूप से पायी जाती हैं और दूसरे उन विभिन्न देह-योजनाओं पर जिनके आधार पर प्राणियों के मुख्य वर्गों को अलग-अलग पहचाना जाता है। अब हम इन्हीं विशिष्टताओं का उपयोग करके प्राणियों का समूहन एवं वर्गीकरण करेंगे जैसा कि साथ में दिए गए चार्ट में दर्शाया गया है।

पूर्वज एककोशिक जीव

एककोशिक (प्रोटोज़ोआ) | **बहुकोशिक (मेटाज़ोआ)**

कोशिका-समुच्चय

जनन परत नहीं होती
वास्तविक सीलोम अथवा अंग नहीं होते असममित, अंतःकोशिक पाचन
(मीज़ोजोआ, स्पंज)

यूमेटाज़ोआ

जनन परतें, वास्तविक ऊतक, मुख और पाचन-तंत्र होते हैं

रेडिएटा

अरीय सममिति, ऊतक स्तर की संगठन
(टेनोफ़ोर, नाइडेरिया)

बाइलेटेरिया

द्विपार्श्व सममिति, अंग-तंत्र के स्तर की संघटना

प्रोटोस्टोमिया

ब्लास्टोपोर से मुख बनता है और गुदा अलग से बनाती है

सर्पिल विदलन

परिवर्धन निर्धारी प्रकार का

ड्यूटेरोस्टोमिया

ब्लास्टोपोर से मुख नहीं बल्कि गुदा बनती है। मुख बाद में देह-भित्ति के एक स्वतंत्र छिद्र से बनता है

अरीय विदलन

परिवर्धन अनिर्धारी प्रकार का

एसीलोमैटा

(उदाहरण : प्लेटीहेल्मिन्थीज़ नेमर्टिया, नैथोस्टोम्युलिडा)

स्यूडोसीलोमैटा

गुहा ब्लास्टोसील से बनती है

पेरिटोनियम-अस्तर नहीं होता
(उदाहरण : नेमेटोडा, रोटिफेरा)

शाइज़ोसीलोमैटा

सीलोम की व्युत्पत्ति मीज़ोडर्मल पट्टियों के विपाटन से बनती है
(उदाहरण : ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा. मोलस्का)

एंटेरोसीलोमैटा सीलोम आंत्रसीलोमी कोष्ठों के संलयन से बनती है। (उदाहरण : एकाइनोडर्मस से लेकर कॉर्डेटों तक)

3.9 मेटाज़ोआ का उद्भव एवं विकास

अधिकतर आरम्भिक मेटाज़ोआ कोमल शरीर वाले हुआ करते थे, इसलिए उनके जीवाश्म अत्यंत दुर्लभ हैं। इनका जो भी अत्यन्त टूटा-फूटा जीवाश्म रिकार्ड मिलता है उससे इनके उद्भव पर कोई ख़ास प्रकाश नहीं पड़ता। अतः इनके उद्भव के संबंध में अधिकतर स्पष्टीकरण इनके भ्रूण विज्ञान एवं तुलनात्मक आकारिकी के आधार पर ही दिए जाते हैं।

एककोशिक जीवों से बहुकोशिक मेटाज़ोअनों के उद्भव के स्पष्टीकरण करने की दिशा में अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें से तीन मुख्य मतों पर विचार किया जा सकता है।

1. **सिन्सीशियमी मत** (Syncytial theory) : इसमें कहा गया है कि पूर्वज मेटाज़ोअन किसी एक बहुकेंद्रकी सिलिएट में कोष्ठीकरण होकर अथवा कोशिकाकरण द्वारा बने हैं।

2. **कॉलोनीय मत** (Colonial theory) : इसमे कहा गया है कि पूर्वज मेटाज़ोअनों का उदय कॉलोनीय (निवही) फ़्लैजेलेटों में कोशिकीय विशेषीकरण एवं परस्परनिर्भरता के आने से हुआ है।

3. **बहुस्रोतोद्भवी मत** (Polyphyletic theory) : इसमें कहा गया है कि मेटाज़ोअनों का उदय जीवों के एक से अधिक समूहों से हुआ है।

3.9.1 सिन्सीशियमी मत

इस मत में कहा गया है कि पूर्वज मेटाज़ोअन सर्वप्रथम सिन्सीशियमी संरचना के थे जिनमें बाद में चलकर अलग-अलग केंद्रकों के चारों ओर कोशिका-झिल्लियों के बन जाने से कोशिकीय व्यवस्था बन गयी और इस प्रकार एक प्ररूपी बहुकोशिक शरीर बन गया (चित्र 3.17a)। हाड्ज़ी (Hadzi, 1953) तथा हेन्सन (Hanson, 1977) इस मत के मुख्य प्रवर्तक थे।

अनेक सिलिएटों में द्विपार्श्व सममिति होने की प्रवृत्ति होती है इसलिए इस मत के समर्थकों का मानना है कि पूर्वज मेटाज़ोअन आज के असीलोमी चपटे कृमियों के समान द्विपार्श्वतः सममित था।

इस मत को इस तथ्य से भी बल मिलता है कि असीलोमी चपटे कृमियों मे (1) वही साइज़ होते पाए जाते हैं जो सिलिएटों में होते हैं, (2) द्विपार्श्वतः सममिति होती है, (3) ये सिलियायुक्त होते हैं तथा (4) इनमें सिन्सीशियमी दशा की प्रवृत्ति होती है।

इस मत के विरोध में अनेक आपत्तियां हैं। एक तो यह कि यह मत चपटे कृमियों के भ्रूण विज्ञान को अनदेखा करता है क्योंकि इसमें कोशिकाकरण जैसी कोई चीज़ नहीं पायी जाती, और दूसरे यह कि इसके द्वारा मेटाज़ोआ में पाए जाने वाले कशाभयुक्त शुक्राणुओं का भी स्पष्टीकरण नहीं होता। इस मत के विरोध में कदाचित सबसे महत्वपूर्ण आपत्ति यह होगी कि इसमें माना जाता है कि असीलोमी चपटे-कृमि ही आदिम मेटाजोअन हैं और इसी आधार पर यह माना जाना भी स्वाभाविक होगा कि अरीय सममिति की अपेक्षा द्विपार्श्व सममिति अधिक पुरानी है और इस प्रकार अरीय सीलेंटरेट प्राणी द्विपार्श्व चपटे कृमियों से व्युत्पन्न हुए होंगे। मगर उधर दूसरी ओर यह माना जाता है कि अरीय सममिति अधिक आदिम है द्विपार्श्व सममिति नहीं, तथा अरीय सीलेंटरेट-प्राणी चपटे कृमियों से विकसित नहीं हुए हो सकते थे।

3.9.2 कॉलोनीय मत

मेटाज़ोआ के उद्भव के विषय में यही सबसे ज्यादा स्वीकारा जाने वाला मत है। यह विचारधारा सबसे पहले हीकेल (Haeckel, 1874) के मन में उपजी थी जिसमें बाद में मेट्शिनकॉफ (Metschnikoff, 1886) तथा हाइमन (Hyman, 1940) ने इसमें संशोधन किया।

इस मत में माना गया है कि फ़्लैजेलेट अर्थात कशाभी प्राणी ही मेटाज़ोअनों का सर्वाधिक संभव पूर्वज समूह हैं। इस मत के समर्थन में दिए जाने वाले प्रमाण इस प्रकार हैं :

1) कशाभयुक्त शुक्राणु समस्त मेटाज़ोआ में पाए जाते हैं।

2) एककशाभ-युक्त कोशिकाएं (जिनमें एक अकेला कशाभ होता है) निम्नतर मेटाज़ोआ (विशेषकर स्पंजों तथा सीलेंटरेटों) में सामान्यतः पायी जाती हैं।

3) वास्तविक शुक्राणु तथा अण्डे (इनका होना मेटाज़ोआनों का लक्षण है) फ़ाइटोफ़्लैजेलेटों में पाए जाते हैं।

4) फ़ाइटोफ़्लैजेलेटों में एक प्रकार की कॉलोनीय (निवही) संगठन भी होती पायी जाती है, इस कॉलोनीय संगठन से बहुकोशिक संरचना प्राप्त हो सकती थी। वास्तव में दैहिक तथा जनन-कोशिकाओं के बीच का विभेद *वॉल्वॉक्स* में प्राप्त हो चुका है। *वॉल्वॉक्स* को अक्सर कशाभी कॉलोनीय पूर्वज के निदर्श के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन कदाचित यह मेटाज़ोअनों का पूर्वज नहीं हैं। परा-संरचना के अध्ययन से संकेत मिलता है कि ऐसे संभावित पूर्वज कोएनोफ़्लैजेलेट अर्थात कीपकशाभी हो सकते हैं (कोएनोफ़्लैजेलेट कशाभियों के जैसे प्राणियों का ही एक छोटा सा समूह है)। कोएनोफ़्लैजेलेटों में भी बहुत कुछ उसी प्रकार के माइटोकॉण्ड्रिया एवं कशाभी संरचनाएं पायी जाती हैं जैसी कि मेटाज़ोअन कोशिकाओं में पायी जाती हैं। साथ ही, कोएनोसाइट (कीप-कोशिकाएं) अर्थात ऐसी कोशिकाएं जिनमें माइक्रोविलाई (microvilli) का बना एक कॉलर होता है, अनेक मेटाज़ोआ में और खास तौर से स्पंजों में पायी जाती हैं।

कॉलोनीय मत के अनुसार पूर्वज मेटाज़ोअन का उदय किसी गोल अथवा अण्डाकार खोखले कॉलोनीय कशाभी-प्राणी से हुआ है (चित्र 3.17b)।

इस आदिम मेटाज़ोअन में ये बातें रही होंगी :—

i) बाहरी सतह की कोशिकाएं एककशाभ युक्त थीं (जैसे *वॉल्वाक्स* में)।

ii) एक स्पष्ट अग्र-पश्च अक्ष बन चुका था और प्राणी अग्र सिरे को ही सामने की ओर रखते हुए तैरता था।

iii) दैहिक तथा जनन-कोशिकाओं के बीच विभेदन भी आ चुका था।

इस परिकल्पित जीव को **हीकेल** ने **ब्लास्टीया** (blastaea) का नाम दिया था तथा सामान्यतः इस जीव को मेटाज़ोआ के परिवर्धन में ब्लास्टुला अवस्था के रूप में प्रतिदर्शित हुआ माना जाता है।

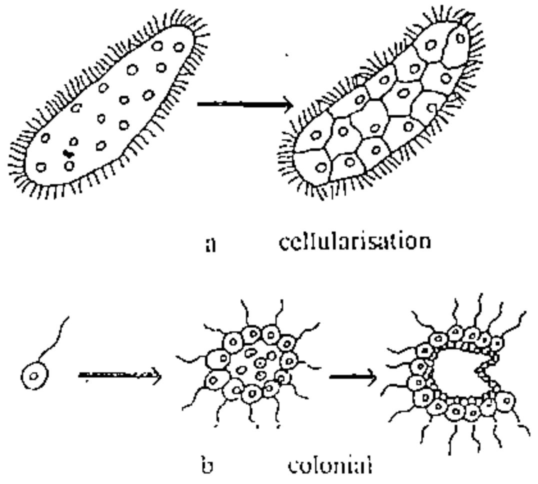

चित्र 3.17: प्राणियों के उद्भव के संभाविक मार्ग।

दैहिक कोशिकाओं में और आगे श्रम-विभाजन होने से अधिकाधिक परस्परनिर्भरता बनती गयी और ऐसा होते-होते अंत में एककोशिक जीवों की वह कॉलोनी एक बहुकोशिक जीव बन गयी। इस अधिजीव ने एक नए संगठन-स्तर की ओर परिवर्तन ला दिया जिसमें विशेषीकरण कोशिकाओं के विभेदीकरण के रूप में होने लगा न कि कोशिका के भीतर पाए जाने वाले कोशिकांगों का विभेदीकरण।

हीकेल के अनुसार ब्लास्टीया में अंतर्वलन होकर (अर्थात पश्च अर्धांश का अग्र अर्धांश में को मुड़ जाना) एक दोहरी भित्ति वाला **गैस्ट्रीया (gastraea)** बन गया जो भ्रूणीय गैस्ट्रूला अवस्था के तुल्य था। यह गैस्ट्रीया भी आज के दोहरी-भित्ति एवं एकल गुहा वाले हाइड्रोज़ोअन सीलेंटरेटों एवं कुछ स्पंजों के समान था।

मगर मेट्श्निकॉफ़ ने हीकेल की विचारधारा का विरोध किया। उसने कहा कि निम्नतर मेटाज़ोअनों में पाचन अंतःकोशिक एवं अक्षिकोशिकीय प्रकार का होता है अतः उन्हें किसी पाचन थैले अथवा मुख की आवश्यकता नहीं थी। उसका मानना था कि ब्लास्टीया की कुछ कोशिकाएं अपने स्थान से हटकर भीतर को चली गयी होंगी (अंतःक्रमण, ingression) और ब्लास्टोसील भर गयी होगी जिससे एक ठोस गैस्ट्रूला बन गया (चित्र 3.18)।

गुहा के बनने में अंतर्वलन को एक द्वितीयक प्रक्रिया माना जाता है। इस प्रकार मेट्श्निकॉफ ने तर्क प्रस्तुत किया कि गैस्ट्रीया एक ठोस जीव था न कि खोखला।

मेट्श्निकॉफ की विचारधारा का अनुसरण करते हुए आधुनिक कार्यकर्त्ता भी मानते हैं कि मेटाज़ोआ का विकास हीकेल के ब्लास्टीया से ही आरम्भ हुआ और उसके बाद कोशिकाओं का, खोखले भीतर में को अंतःक्रमण होने से एक ठोस परिकल्पित जीव का विकास हो गया जिसमें निम्न लक्षण आ गए थे—

i) शरीर अण्डाकार तथा अरतः समभित था।

ii) बाहरी कोशिकाएं एककशाभी थी और वे संचलन एवं संवेदी प्रकार्य करती थी।

iii) भीतरी कोशिकाओं की संहति ने पोषण एवं जनन का प्रकार्य किया।

iv) मुख नहीं था, और आहार का परिग्रहण बाहरी सतह पर कहीं से भी हो सकता था और वह भीतर को पहुंचा दिया जाता था।

यह परिकल्पित स्वरूप सीलेंटरेटों के स्वच्छंद तैरने वाले **प्लैनुला (planula)** लार्वा के सामन था, इसलिए इसे **प्लैनुलाभ (planuloid)** पूर्वज कहा जाता है।

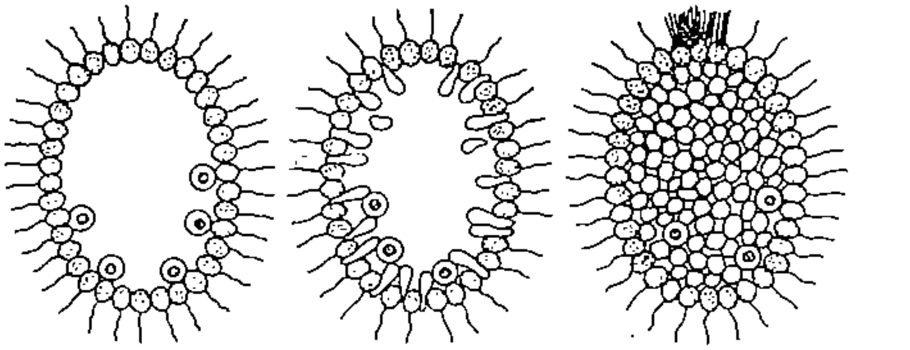

चित्र 3.18: ठोस गैस्ट्रीया का निर्माण।

इस प्रकार स्वच्छंद तैरने वाले अरीयतः सममित प्लैनुलाभ पूर्वज से ही निम्नतर मेटाजोआ का उदय हुआ होगा। सीलेंटरेटों की प्राथमिक अरीय सममिति सीधे प्लैनुलाभ पूर्वज से ही प्राप्त हुई होगी और चपटे कृमियों में द्विपार्श्व सममिति द्वितीयक रूप में बनी होगी और उन्हीं से आगे चलकर शेष मेटाज़ोआ बने।

हाइमन (1951) ने विचार रखा था कि पूर्वज प्लैनुलाभ भण्डार में से कुछ-एक समुद्र की तली में जीवन बिताने लग गए होंगे, जिसके परिणामस्वरूप उनमें रेंगने वाली गति का विकास हो गया होगा। इससे एक विभेदन हुआ पृष्ठ (dorsal) एवं आधार (ventral) सतहों का, और एक अधर मुख बन गया। जीवन की विधि में होने वाले इस परिवर्तन से असीलोमी चपटे कृमियों का बनना संभव हुआ होगा जिन्हें आज के सभी द्विपार्श्व फ़ाइलमों का पूर्वगामी माना जाता है।

3.9.3 बहुस्रोतोद्भवी मत

इस मत को ग्रीनहाइग (Greenheig, 1959) तथा कुछ अन्य कार्यकर्ताओं ने प्रस्तुत किया था। इसके अनुसार स्पंज, सीलेंटरेट, टेनोफ़ोर तथा चपटे कृमि ये चारों प्रकार के प्राणी प्रोटोज़ोअनों से अलग-अलग स्वतंत्र रूप में विकसित हुए हैं।

स्पंजों तथा सीलेंटरेटों का विकास कदाचित कॉलोनीय कशाभियों में से हुआ जबकि टेनोफ़ोरों तथा चपटे कृमियों का विकास सिलिएटों और यहां तक कि मीज़ोज़ोअनों में से हुआ। स्पष्ट है कि यह मत सिन्सीशियमी तथा कॉलोनीय मत के बीच का एक मध्यमार्ग है।

3.9.4 मेटाज़ोआ का विकास

स्पंज जो फ़ाइलम पोरिफेरा में आते हैं प्रोटिस्टा के सबसे ज़्यादा निकट हैं। यहां तक हो सकता है कि इन्हें बहुकोशिक न मानकर प्रोटिस्टों की कॉलोनी माना जाए। इनमें से और किसी वर्ग का विकास नहीं हुआ है।

सीलेंटरेटों में आनेवाले नाइडेरिया तथा टेनोफ़ोरा जो दोनों ही द्विजनस्तरीय (डिप्लोब्लास्टिक) एवं प्राथमिक रूप में अरीय सममित वाले होते हैं, को ही वास्तव में सबसे आदिम मेटाज़ोआ माना जा सकता है। ये पूर्वज प्लैनुलाभ मेटाज़ोअनों से एक पार्श्व शाखा के रूप में विकसित हुए हैं।

प्लेटीहेल्मिन्थीज़ (चपटे कृमि) भी प्लैनुलाभ पूर्वज से ही विकसित हुए हैं। इनमें सीलोमी गुहा नहीं होती (असीलोमी) वरन मीज़ोडर्म कोशिकीय होती है, ये त्रिजनस्तरीय (ट्रिप्लोब्लास्टिक) एवं द्विपार्श्वतः सममित होते हैं। इस वर्ग और इसके साथ सभी उच्चतर मेटाज़ोआ को एक-साथ मिलाकर **बाइलेटेरिया** के स्तर में समूहित किया जा सकता है। (अनुभाग 3.8 में दिया गया चार्ट देखिए)।

स्यूडोसीलोमेट (कूटसीलोमी) फ़ाइलमों, जिनमें नेमैटोड तथा रोटिफ़र आते हैं, को चपटे कृमियों से एक पार्श्व शाखा के रूप में विकसित हुआ माना जाता है।

यूसीलोमेटा (सुसीलोमी-प्राणियों) में शेष मेटाज़ोआ आते हैं। असीलोमी चपटे कृमि जैसे पूर्वजों से दो मुख्य वंश-मूल निकले :

i) मोलस्क—ऐनेलिड—आर्थ्रोपोड वंशमूल जिसमें सीलोम दीर्णसीलोमी प्रकार की होती है।

ii) एकाइनोडर्म—हेमिकॉर्डेटा—कॉर्डेट वंशमूल जिसमें सीलोम आंत्रसीलोमी प्रकार की होती है। अधिक आदिम सीलोमेटों में यह सीलोम कंकाल के रूप में कार्य करती है जैसे कि पौलीकीट कृमियों, केंचुओं आदि में। आर्थ्रोपोडों तथा मोलस्कों में यह सीलोम ह्रासित होकर केवल गोनडों की गुहा के रूप में सीमित रह गयी है। आर्थ्रोपोडों के शरीर में पायी जाने वाली दूसरी गुहा हीमोसील (**haemocoel**) अर्थात रक्तगुहा होती है जो मात्र ऊतकों की ही गुहा होती है जिसमें रक्त भरा रहता है। मेटाज़ोओ का जातिवृत्त चित्र 3.19 में संक्षेप में दर्शाया गया है।

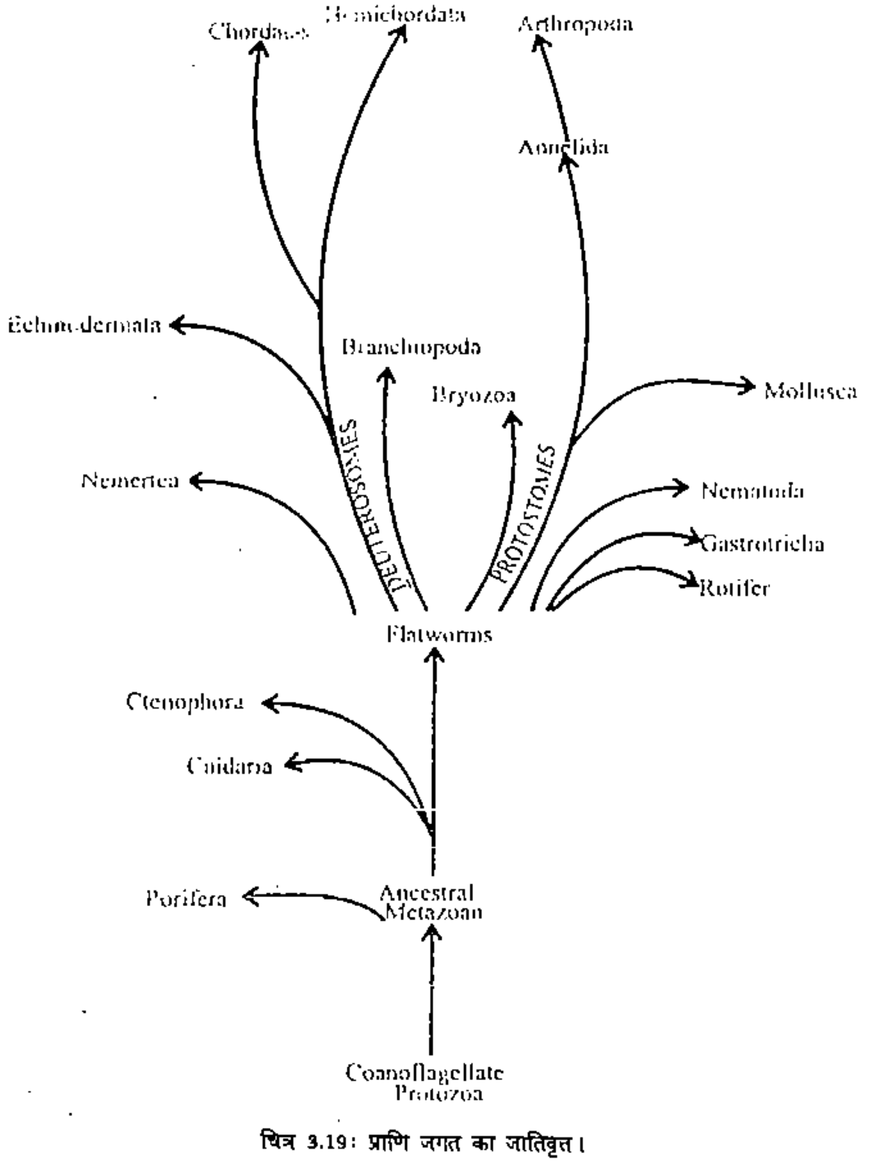

चित्र 3.19: प्राणि जगत का जातिवृत्त।

बोध प्रश्न 4

दिए गए विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए :

1) ऐनिमैलिया जगत के अंदर शामिल होने वाले अनेक फाइलमों में से एक अकशेरुकी/कशेरुकी फाइलम है।

2) अधिकांश आरम्भिक मेटाज़ोआ का एक बहुत ही टूटा-फूटा/सम्पन्न जीवाश्म रिकार्ड है।

3) "मेटाज़ोआ का उदय एक बहुकेंद्रकी सिलिएट से कोष्ठीकरण के द्वारा हुआ है" ऐसा कहना मेटाज़ोआ के उद्‌भव के कॉलोनीय/सिन्सीशियमी मत का सार है।

4) सिन्सीशियम में सहवर्ती केंद्रकों के बीच-बीच झिल्लियां होती हैं/नहीं होती।

5) बहुस्रोतोद्‌भवी मत में कहा गया है कि मेटाज़ोआ का उदय जीवों के एक/अनेक वर्गों से हुआ है।

6) हीकेल द्वारा प्रस्तावित परिकल्पित मेटाज़ोअन का नाम ब्लास्टीया/गैस्ट्रीया रखा गया था।

3.10 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा :

1) मेटाज़ोआ शब्द का आजकल कोई औपचारिक जैविकीय स्थान नहीं है, फिर भी इसका इस्तेमाल उन जीवों के संदर्भ में किया जाता है जो पांच-जगत के वर्गीकरण में ऐनिमैलिया जगत में रखे जाते है। जीवों में बढ़ती जाती जटिलता प्राणियों के जातिवृत्त का एक स्पष्ट लक्षण है। उदाहरण के लिए, हम देखते हैं कि प्रोटोज़ोआनों में पायी जाने वाली प्रोटोप्लाज़्मी स्तर की देह-संगठना सबसे सरल प्रकार की है। कोशिकीय स्तर स्पंजों (पोरिफेरा) में पाया जाता है। नाइडेरिया तथा टेनोफोरा में ऊतक स्तर की संगठना आ गयी है तथा उनमें से कुछ में अंग तक बन गए हैं जबकि शेष प्राणियों अर्थात प्लेटीहेल्मिन्थीज़ से लेकर स्तनियों तक में अंग-तंत्र स्तर की सर्वाधिक विकसित देह-संगठना आ गयी है।

2) मेटाज़ोआ की विशेषता है कि उनमें एक सम्मिश्र संरचनात्मक संगठन पाया जाता है। ये विषमपोषी लैंगिक रूप में जनन करने वाले द्विगुणित (डिप्लॉइड) जीव होते है। इनमें से अनेक जीव अलैंगिक विधि से भी जनन करते हैं। इनके भ्रूणों में वृद्धि एवं परिवर्धन की अगामी अवस्थाएं बनती जाती हैं।

3) प्राणियों का शरीर एक आधारभूत योजना के अनुसार बना होता है जिसका सममिति के आधार पर वर्णन किया जाता है। सममिति के आधार पर इन्हें कई रूपों में पहचाना जाता है जैसे असममित, गोल सममित, अरीय रूप में सममित, द्विअरीय तथा द्विपार्श्वतः सममित। यह अंतर इस बात पर निर्भर है कि प्राणी को कितने समतलों पर समान अर्धांशों में विभाजित किया जा सकता है: कोई नहीं (असममित), अनेक (गोलीय तथा अरीय), एक (द्विपार्श्व) तथा दो (द्विअरीय)।

प्लेटीहेल्मिन्थीज़ में देह-भित्ति तथा आहार-नाल के बीच की जगह मीज़ोडर्मी पैरेंकाइमा कोशिकाओं से भरी रहती है, इन प्राणियों में देह-गुहा नहीं होती। प्लेटीहेल्मिन्थीज़ के ऊपर के स्तर के प्राणियों में देह-गुहा होती है।

4) देह-गुहा दो प्रकार की हो सकती है : कूटसीलोम तथा वास्तविक सीलोम। कूटसीलोम ब्लास्टोसील का ही एक अवशेष होती है तथा उसका सीलोमी एपिथीलियम का कोई अस्तर नहीं बना होता। यह नेमैटोडों में पायी जाती है। मगर वास्तविक सीलोम में मीज़ोडर्मी सीलोमिक एपिथीलियम का अस्तर बना होता है। ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों तथा मोलस्कों में यह दीर्णसीलोमी होती है तथा एकाइनोडर्मों एवं समस्त कॉर्डेटों में यह आंत्रसीलोमी होती है।

5) प्राणियों मे दो बिल्कुल भिन्न विदलन प्रतिरूप पाए जाते हैं। इन विदलनों के आधार पर प्राणियों के विकास के दो आधारभूत विभाजन दिखायी पड़ते हैं। प्रोटोस्टोम भ्रूणों में प्ररूपतः सर्पिल विदलन पाया जाता है जिसमें मोज़ेक प्रकार का परिवर्धन होता है, तथा ड्यूटेरोस्टोम भ्रूणों में अरीय विदलन पाया जाता है जिसमें नियमनकारी भ्रूण-परिवर्धन होता है।

6) प्राणी मूलतः या तो द्विजनस्तरीय (डिप्लोब्लास्टिक) होते हैं अर्थात एक्टोडर्म एवं एंडोडर्म नामक दो जनन परतों के बने हुए (उदाहरण पोरिफेरा तथा नाइडेरिया प्राणी) या वे त्रिजनस्तरीय (ट्रिप्लोब्लास्टिक) होते हैं अर्थात एक्टो-, एंडो- तथा मीज़ोडर्म नामक तीन जनन परतों के बने हुए (उदाहरण : प्लेटीहेल्मियीज़ से लेकर स्तनियों तक)। समस्त शरीर की विभिन्न संरचनाएं इन्हीं तीन मूलभूत जनन परतों से बनती हैं, ये परतें केवल भ्रूण अवस्थाओं में ही देखी जा सकती हैं।

7) शिरोभवन जिसमें शीर्ष-प्रदेश में संवेदी अंगों तथा तंत्रिका-तंत्र का संकेंद्रण होता है, द्विपार्श्व प्राणियों की विशिष्टता है। इसके आधार पर प्राणी के शरीर में एक अग्र-पश्च अक्ष स्थापित हो जाता है। द्विपार्श्व प्राणियों में खंडीभवन अथवा विखंडता से देह-क्षेत्रों में विशेषीकरण के लिए एक ढांचा उपलब्ध हो जाता है ताकि वे क्षेत्र अलग-अलग प्राकार्य करने के योग्य हो जाएं। वास्तविक खंडीभवन ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों तथा कॉर्डेटों में पाया जाता है।

बहुकोशिक मेटाज़ोआ एककोशिक जीवों से बने हैं। इनके विकास का स्पष्टीकरण करने की दिशा में तीन मतों का प्रस्ताव रखा गया है : a) सिन्सीशियमी मत b) कॉलोनीय मत c) बहुस्रोतोद्भवी मत

अधिकतर प्राणिवैज्ञानिक सामान्यतः स्वीकार करते हैं कि मेटाज़ोअनों का उदय कॉलोनीय कोएनोफ़्लैजेलेट प्राणियों से हुआ है। परिकल्पित पूर्वज मेटाज़ोआन कदाचित एक प्लैनुला-सरीखा जीव था जिसमें से एक पृथक शाखा के रूप में स्पंज बन गए। नाइडेरियन तथा टेनोफ़ोर कदाचित सबसे आदिम मेटाज़ोअन है, ये रेडिएटा समूह बनाते हैं जबकि प्लेटीहेल्मिन्थीज़ तथा अन्य सभी उच्चतर समूह जो चपटे कृमियों से विकसित हुए हैं बाइलेटेरिया समूह बनाते हैं।

3.11 अंत में कुछ प्रश्न

1) द्विजनस्तरी (डिप्लोब्लास्टिक) तथा त्रिजनस्तरीय (ट्रिप्लोब्लास्टिक) शब्दों से आप क्या समझते हैं? उदाहरण देकर समझाइये।

....

....

2) इस इकाई में हमने तीन अलग-अलग प्रकार की जनन परतों का वर्णन किया है। इनमें से हर प्रकार की जनन परत से व्युत्पन्न होने वाले किन्हीं **तीन-तीन** संरचनाओं के नाम लिखिए :

....

....

3) सीलोम किसे कहते हैं? वास्तविक तथा अवास्तविक सीलोम में अंतर बताइए।

....

....

4) द्विपार्श्व, अरीय तथा द्विअरीय सममितियों में विभेद कीजिए :

....

....

5) दीर्णसीलोमी तथा आंत्रसीलोमी सीलोम में अंतर बताइए।

....

....

6) ड्यूटेरोस्टोम तथा प्रोटोस्टोम प्राणियों में लक्षणों की तुलना करते हुए एक तालिका बनाइए।

....

....

3.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (क) (v)

   (ख) (ii)

   (ग) (iv)

   (घ) (iii)

   (च) (i)

2. (i) गैस्ट्रुला, आहार-नाल

   (ii) मीज़ोग्लीया, द्विजनस्तरीय/डिप्लोब्लास्टिक

   (iii) तीन, त्रिजनस्तरीय/ट्रिप्लोब्लास्टिक

   (iv) एक्टोडर्म

   (v) मीज़ोडर्म

   (vi) एंडोडर्म

3. (i) गलत

   (ii) गलत

   (iii) सही

   (iv) गलत

   (v) सही

   (vi) गलत

4. 1. कॉर्डेटा

   2. टूटा-फूटा

   3. सिन्सीशियमी

   4. नहीं होती

   5. अनेक

   6. ब्लास्टीया

अंत में कुछ प्रश्न

	द्विजनस्तरीय (डिप्लोब्लास्टिक)	:	ऐसे प्राणी जो दो जनन परतों के बने होते हैं, जैसे पोरिफेरा, नाइडेरिया तथा टीनोफोरा
1)	त्रिजनस्तरीय (ट्रिप्लोब्लास्टिक)	:	ऐसे प्राणी जो तीन-जनन परतों के बने होते हैं, जैसे प्लेटीहेल्मिन्थीज़ से लेकर कॉर्डेटा तक
2)	एक्टोडर्म	:	एपिडर्मिस, मस्तिष्क, बाल तथा नाखून।
	एंडोडर्म	:	थाइरॉइड की एँपिथीलियम, आहार-नाल की एपिथीलियम, श्रवण नलिका।
	मीज़ोडर्म	:	डर्मिस, पेशियां, रक्त संवहन तंत्र।
3)	सीलोम	:	यह एक देह-गुहा है जो देह-भित्ति (एक्टोडर्म) तथा आहार-नाल (एंडोडर्म) के बीच स्थित होती है तथा दोनों ओर इसका अस्तर मीज़ोडर्म का बना होता है। इसे वास्तविक सीलोम कहा जाता है। यह ऐनेलिडा से लेकर कॉर्डेटों तक में पायी जाती है।
	अवास्तविक अथवा कूटसीलोम	:	यह एक देह-गुहा है जो देह-भित्ति तथा आहार-नाल के बीच पायी जाती है तथा मीज़ोडर्म से इसके अस्तर नहीं बनता वरन् मीज़ोडर्म अलग-अलग टुकड़ों में पायी जाती है। जैसे नेमैटोडा में।
4)	द्विपार्श्व	:	प्राणी स्पष्ट अग्र, पश्च, पृष्ठ, अधर तथा पार्श्व दिशाएं होती हैं। यह केवल दो अभिन्न अर्धांशों में काटा जा सकता है। काटने का समतल अग्र-पश्च दिशा में मध्य बिंदु से गुज़रना चाहिए। इस प्रकार पृथक हुए दाहिने और बायें भाग एक-दूसरे के दर्पण-प्रतिबिंब होने चाहिए। जैसे कॉर्डेटा।
	अरीय	:	प्राणी में दो स्पष्ट सतहें होती हैं—मुखीय तथा अपमुखीय। इसे 3, 5 अथवा 8 अभिन्न अर्धांशों में काटा जा सकता है। काटने का समतल प्राणी के केंद्र बिंदु से गुज़रना चाहिए। जैसे नाइडेरिया तथा एकाइनोडर्म।
	द्विअरीय	:	यह एक विशेषित अरीय सममित होती है। इसमें प्राणी को 3, 5 अथवा 8 अभिन्न अर्धांशों में काटा जा सकता है जब काट-समतल केंद्र-बिंदु से गुज़रती हो। इसकी विशेषता यह है कि केवल सम्मुखी अर्धांशों ही अभिन्न होंगे, सहवर्ती नहीं।
5)		:	दीर्णसीलोम वास्तविक सीलोम होती है तथा यह प्रोटोस्टोमों में पायी जाती है, यह टेलोब्लास्टिक पट्टी के विपाटन से बनती है। आंत्रसीलोम भी वास्तविक सीलोम है तथा यह ड्यूटेरोस्टोमों में पायी जाती है। यह आहार-नाल से निकले एंडोडर्मी कोष्ठों से बनी होती है।

6)

	प्रोटोस्टोम	ड्यूटेरोस्टोम
1.	सर्पिल विदलन	अरीय विदलन
2.	एंडोमीज़ोडर्म 4d ब्लास्टोमीयरों से	एंडोमीज़ोडर्म आद्यंत्र के बाहर को निकले कोष्ठों से
3.	सीलोमी प्रोटोस्टोमों में सीलोम सीलोम का निर्माण मीज़ोडर्मी शाखाओं में विपाटन होकर होता है। दीर्णसीलोमी	सभी में आंत्रसीलोमी सीलोम
4.	मुख ब्लास्टोपोर पर अथवा उसके समीप बनता है	ब्लास्टोपोर पर अथवा उसके निकट गुदा बनती है, मुख एक अलग निर्मित होती है।

शब्दावली

1. **अंतस्त्वचा** (Endoderm) : आद्यांत्र भित्ति बनाने वाले भ्रूणीय जनक कोशिकाओं की परत।
2. **अकोशिका** (Acelluar) : कोशिका विहीन, जो कोशिकाओं से न बना हो।
3. **अनुकूलन** (Adaptation) : समायोजन की प्रक्रिया जिसके द्वारा जीव किसी पर्यावरण में जीवित रहने की अपनी क्षमता में वृद्धि करता है।
4. **अपचय** (Catabolism) : विनाशात्मक उपापचय जिसमें ऊर्जा के विमोचन से सम्मिश्र अणु सरल अणुओं से खंडित हो जाते हैं।
5. **अरीय सममिति** (Radial symmetry) : केन्द्रीय मुख अपमुखी अक्ष के चारों ओर समान अंगों की व्यवस्था।
6. **अवपक्ष्माभन्यास** (Infraciliature) : पक्ष्माभ आधार पिण्ड अथवा काइनोटोसोम का संपूर्ण समुच्चयन और, उससे आपस में जुड़े हुए तंतु, जो पक्ष्माभी प्रणियों (सीलिएट) में वल्कुट में होते हैं।
7. **आंत्रगुहा** (Enterocoel) : भ्रूणीय आद्यंत्र के बाह्य कोटरिका के रूप में निर्मित प्रगुही गुहा।
8. **ऑक्सीकरण** (Oxidation) : किसी पदार्थ से इलेक्ट्रॉनों को निकालने की प्रक्रिया।
9. **उद्दीपक** (Stimulus) : सन्निकट चारों ओर होने वाला भौतिक अथवा रासायनिक परिवर्तन, जो जीवों में अनुक्रिया प्रारंभ करता है।
10. **उपचय** (Anabolism) : रचनात्मक उपापचय जिसमें सरल पदार्थ से सम्मिश्र पदार्थों का संश्लेषण होता है।
11. **काइनेटोप्लास्ट** : DNA का समूह/द्रव्यमान जो ट्रिपेनोसोम प्रोटोजोआ के एकत्र दीर्घ लम्बाकार माइटोकॉन्ड्रिया में स्थित होता है।
12. **काइनेटोस्टोमेटा** : पक्ष्माभी अथवा कशाभी आधार पिण्ड।
13. **कोशिकांग** (Organelle) : बहुकोशिकीय प्राणी के अंग के तुल्यरूप किसी कोशिका का विशिष्टकृत भाग (अर्थात् माइटोकॉन्ड्रिया, प्लैस्टिड आदि)।
14. **कोशिकागुद** (Cytoproct) : कुछ पक्ष्माभी प्राणियों का स्थायी कोशिकीय गुदा।
15. **कोशिकाग्रसनी** (Cytopharynx) : कोशिका झिल्ली द्वारा कोशिकाद्रव्य से पृथक किया गया पक्ष्माभी प्राणियों का स्थायी मुखनाल।

16. कोशिकीय (Cellular) : कोशिकाओं से बना हुआ।

17. खंडजाणु (Merozoite) : स्पोरोजोआ पोषजीवाणु के बहुखंडन से उत्पन्न व्यष्टियाँ

18. चलयुग्मज (ऊओकिनीट) : एपिकॉम्प्लेक्सिया में गतिशील युग्मजनज।

19. जठरचर्म (गैस्ट्रोडर्मिस) : नाइडेरिया, टेनोफोर के जठरवाही गुहा रेखा और द्विपार्श्विक सममित प्राणियों की मध्यांत्र गुहा में पायी जाने वाली कोशिकीय उपकला की परत।

20. जालिकापादाभ (Reticulapodium) : वह पादाभ जो सूत्रवत शाखन जालाक्षि बनाता है और प्राणी सूक्ष्मनलिकाओं से युक्त होता है।

21. जातिवृत्त (Phylogeny) : किसी स्पीशीज़ का विकासात्मक इतिहास।

22. ड्यूटेरोस्टोम : प्राणि जगत की मुख्य शाखा के सदस्य जिसमें कोरक रंध्र (ब्लास्टोपोर) का स्थान पश्च भाग अर्थात् मुख से बहुत दूर होता है इनमें मुख छिद्र अग्र सिरे पर बनता है।

23. तनुत्वक (Pellicle) : कोशिका झिल्ली, साइटोपंजर और अन्य अंगकों द्वारा निर्मित प्रोटोजोआ देह भित्ति।

24. दीर्णगुहय (Schizocoelom) : मध्यजनस्तर कोशिकाओं की ठोस संहति के अंदर कोशिकाओं के प्रथक होने से बनी प्रगुही गुहा (सीलोमी गुहा)।

25. निर्धारी विदलन (Determinate clevage) : प्रवर्धन क्रिया जिससे विदलन प्रक्रम के प्रारंभ में ही कोरकखंडों (ब्लास्टोमियर) की नियति निर्धारित होती है इसे मोज़ेक परिवर्धन भी कहते हैं।

26. पालिपाद (लोबोपोडियम) : गोल अथवा कुंठित सिरे वाला चौड़ा पादाभ जिसमें बहिर्द्रव्य (एक्टाप्लाज्म) और अंतर्द्रव्य (एन्डोप्लाज्म) ही होता है।

27. पेरिटोनियम : स्तरित प्रगुही उपकला की अन्तरतम, अकुंचनशील परत जो प्रगुही तरल से पोशीन्यास को अलग रखती है।

28. पोषजीवाणु (Trophozoite) : परपोषी में स्पोरोजोआइट (बीजाणुज) के बाद पायी जाने वाली अवस्था। यह एपिकाम्प्लेक्सिया समूह की विशेषता है।

29. प्रगुही (Coelomate) : वास्तविक देहगुहा या प्रगुहा वाले प्राणी।

30. प्रोकैरयोट : ऐसी जीव जिनकी कोशिका में केन्द्रक नहीं पाया जाता है किंतु इसमें केवल केन्द्रकाभ होता है

31. प्लैनुलाभ पूर्वज (Planulorid ancestor) : नाइडेरिया और प्लेटीहेल्मिन्थीज़ के पूर्वजों का प्रतिनिधित्व करने वाला परिकल्पनात्मक रूप।

32. फिलिपोडियम : पतला और पारदर्शी पादाभ जो शाखित भी हो सकता है।

33. बाह्यत्वचा (Ectoderm) : गैस्ट्रुला की बाह्य भित्ति बनाने वाले भ्रूणीय कोशिकाओं की परत।

34. बीजाणुज (Sporozoite) : एपिकॉम्प्लेक्सिया समूह में अर्धसूत्री विभाजन द्वारा युग्मनज से निर्मित बीजाणु की तरह की संक्रामक अवस्था।

35. बीजाणु उद्भवन (Sporogony) : परपोषी में घटित एपिकॉम्प्लेक्सिएन के जीवन चक्र का एक चरण जिसमे युग्मकपुटी से अर्धसूत्री विभाजन द्वारा बीजाणुज बनते हैं।

36. मेसेन्टरी (Mesentry) : ऊतकों की एक लम्बी परत जो द्विपार्श्व-सममित प्राणियों की देहगुहा को विभाजित करती है।

37.	**मोज़ेक परिवर्धन** (Mosaic development)	:	भ्रूणीय नियति का निर्धारण जिसमें प्रारंभिक परिवर्धन की अवस्था में कोशिका नियति का निर्धारण किया जाता है। यह उन विशिष्ट कारकों की क्रिया के फलस्वरूप होता है जो अविदलित अंड के कोशिका द्रव्य में मोजेक के खंडों की तरह असमान रूप से वितरित रहते हैं।
38.	**संयुग्मक** (Conjugant)	:	आनुवंशिक सामग्री के विनिमय की प्रक्रिया में संगलित पक्ष्माभी प्राणियों युग्म में से एक।
39.	**समजात अंग** (Homologous organ)	:	ऐसे अंग जिनका विकासात्मक उद्भव एक समान होता है और जिनकी संरचना, भ्रूणीय परिवर्धन संबंध में मौलिक समानता पायी जाती है।
40.	**समवृत्ति अंग** (Analogous organs)	:	समान प्रकार्य करने वाला अंग जो सतही रूप से समान दिखाई देता है लेकिन उसका विकास उद्भव भिन्न होता है।
41.	**समस्थापन** (Homeostasis)	:	जीवों के आंतरिक पर्यावरण में स्थिरता का अनुरक्षण।
42.	**युग्मकजनन** (Gametogony)	:	प्रक्रिया जिसके द्वारा परपोषी में खंडजाणु से युग्मक अथवा युग्मकजनक बनते हैं।
43.	**यूकैरियोट** (Eukaryote)	:	ऐसे जीव जिनकी कोशिकाओं में व्यवस्थित केन्द्रक पाए जाते हैं।
44.	**रंध्राग्री** (Protostome)	:	प्राणी जगत की शाखा के सदस्य जिनमें कोरकरंध्र (ब्लास्टोपोर) से मुख का निर्माण होता है।
45.	**विखंडनीजनन** (Schizogony)	:	ऐसी प्रक्रिया जिसमें बहु खंडन द्वारा परपोषी में खंडजाणु का विकास होता है।
46.	**विखंडावस्था** (Metamerism)	:	समान भागों अथवा खंडों की रैखिक श्रृंखला में किसी प्राणिशरीर का विभाजन।
47.	**कूटगुहिका** (Pseudocoelom)	:	तरल से भरी देहगुहा पेरिटोनियम से आस्तरित नहीं होती है और जो पाचन तथा रुधिर संवहन तंत्र का भाग नहीं होती है। यह हीमोसील से भिन्न होती है क्योंकि इसमें हृदय नहीं होता है।
48.	**ह्रास (न्यूनीकरण)** (Reduction)	:	किसी पदार्थ में इलेक्ट्रॉन मिलाने की प्रक्रिया।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. R.D. Barnes (1980) **Inverteberate Zoology**, Saunders
2. Kimbal J.W. Biology, Oxford and IBH
3. Pond C.M.C. **Diversity of Organisms**; British Open University

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -01
प्राणि-विविधता

खंड

2

प्राणि-जीवन की विविधता-II (वर्गीकरण)

इकाई 4.

बहुकोशिक प्राणियों का वर्गीकरण - I 5

इकाई 5

बहुकोशिक प्राणियों का वर्गीकरण - II 46

इकाई 6

बहुकोशिक प्राणियों का वर्गीकरण - III 115

इकाई 7

ंकाल तथा बहुरूपता 160

खंड-2 प्राणी-जीवन की विविधता-II (वर्गीकरण)

इस खण्ड में आप अकशेरूकियों के जीवन-चक्रों का अध्ययन करेंगे, जो बहुकोशिक, गतिशील, विषमपोषी जीवधारी होते हैं तथा जो अपने आरम्भिक भ्रूण परिवर्धन के दौरान एक ब्लास्टुला अवस्था से होकर गुज़रते हैं। यद्यपि इनमें से कुछ प्राणी जैसे कि स्पंज़ तथा प्रवाल स्थानबद्ध होते हैं, फिर भी उनके जीवन-चक्र में गतिशील लार्वा स्वरूप पाया जाता है। मेटाज़ोअनों की किन्हीं एककोशिक जीवधारियों से समान पूर्वजता रही है, ऐसा माना जाता है। निवह (कॉलोनी) मत के अनुसार मेटाज़ोआ एक कशाभी निवह के मार्ग से विकसित होते हुए व्युत्पन्न हुए हैं। इस मत में कहा जाता है कि कशाभी शुक्राणु-कोशिकाएं समस्त मेटाज़ोआ में मौजूद होती पायी जाती हैं। कोशिकाओं में विभेदन का पाया जाना मेटाज़ोआ-शरीर का एक विभेदक लक्षण है। मेटाज़ोआ-प्राणी द्विगुणित (डिप्लॉइड) ज़ीवधारी होते हैं जिनमें अर्धसूत्रण (मीयोसिस) का पाया जाना अगुणित युग्मकों (गेमीटों) तक ही सीमित होता है। द्विगुणित अवस्था निषेचन के बाद युग्मनज़ (ज़ाइगोट) में पुनः प्राप्त होती है। इस खण्ड में चार इकाइयां दी गयी हैं। हमने प्रत्येक फ़ाइलम के वर्गीकरण का वर्णन क्लास के स्तर तक ही किया है क्योंकि ऑर्डर या उससे आगे वर्गीकरण करने का अर्थ होगा स्नातक स्तर पर इस पाठ्यक्रम को बहुत भारी बना देना।

इकाई 4 में कुछ असीलोमी फ़ाइलमों, जिनमें पोरिफ़ेरा, नाइडेरिया, टेनोफ़ोरा, प्लैटिहेल्मिंथीज़, नेमैटोडा तथा रोटिफ़ेरा शामिल हैं, के विभेदक लक्षणों तथा वर्गीकरण का वर्णन किया गया है। प्रत्येक क्लास के मुख्य लक्षण, उदाहरणों के साथ वर्णित किए गए हैं।

सीलोमी वर्ग के प्राणियों का अध्ययन इकाई 5 से प्रारम्भ होता है। इस इकाई में दो वर्गों - ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडों - का विवेचन किया गया है। शरीर का खंडीभवन (segmentation) इन दो फ़ाइलमों की विशिष्टता है। इस प्रकार के खंडीभवन जिसे विखंडता (मेटामेरिज़्म) भी कहते हैं, में शरीर एक श्रृंखलाबद्ध रूप में खण्डों में विभाजित हुआ होता है जिनमें से प्रत्येक खण्ड का नियमन न्यूनाधिक रूप में अन्य खण्डों से स्वतंत्र होता है। इस इकाई में आप ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडों की संघटना एवं उनकी जटिलता का अध्ययन करेंगे। इन दोनों ही वर्गों में विविध पर्यावरणों में जीवन के लिए अनुकूलन हो चुका है, हालांकि ऐनेलिडों को अब भी आर्द्र पर्यावरणों की आवश्यकता होती है क्योंकि अक्सर उनकी त्वचा श्वसन अंग का भी कार्य करती है। आप यह भी पढ़ेंगे कि अकशेरूकियों में आर्थ्रोपोड ही सर्वाधिक सफल प्राणी हैं और पृथ्वी पर पायी जाने वाली समस्त जीवित स्पीशीज़ का लगभग 75% भाग इन्हीं का है।

इकाई 6 में मृदु शरीर वाले प्राणी मौलस्कों तथा कंटकीय त्वचा वाले प्राणी इकाइनोडर्मों का अध्ययन दिया गया है। मौलस्क प्राणी, जिनके अंतर्गत घोंघे, सीपी, शुक्तियां, स्क्विड तथा ऑक्टोपस आते हैं, जीवित स्पीशीज़ की संख्या की दृष्टि से अकशेरूकियों में दूसरा सबसे बड़ा समूह हैं। अधिसंख्य मौलस्क ज़लीय होते हैं तथा कुछ थोड़े से जलस्थलचर होते हैं। इस इकाई में आप मौलस्कों के छह विभिन्न क्लासों की संघटना तथा उनके अभिलक्षणों के विषय में पढ़ेंगे। इस इकाई में इकाइनोडर्म प्राणियों की संघटना तथा वर्गीकरण का विवेचन किया गया है, ये प्राणी केवल समुद्री आवास में ही पाए जाते हैं। इस इकाई के अंत में आपको एक सारणी मिलेगी जिसमें अनेक ऐसे फ़ाइलमों के नाम दिए गए हैं जिनका विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है। इनमें से प्रत्येक फ़ाइलम में बहुत ही थोड़ी सी स्पीशीज़ आती हैं और चूंकि इनका ज़ातिइतिहासीय महत्व अनिश्चित है इसलिए इन्हें गौण फ़ाइलम (minor phyla) कहते हैं। आपको इन फ़ाइलमों का विस्तृत अध्ययन नहीं करना है, केवल उनके नामों को ही जानना है।

इकाई 7 में मेटाज़ोअनों के कंकाल एवं बहुरूपता का वर्णन किया गया है। आप सीख सकेंगे कि मेटाज़ोअनों का कंकाल एक ऐसी संरचना है जो सुरक्षा एवं आलम्ब प्रदान करने के साथ-साथ शरीर की आकृति को भी बनाए रखती है। ये कंकाल मूलतः दो प्रकार के होते हैं - अंतःकंकाल (endoskeleton) और बाह्यकंकाल (exoskeleton)। इनके अतिरिक्त इस इकाई में आप बहुरूपता (polymorphism) की परिघटना के विषय में पढ़ेंगे जो मेटाज़ोअनों के दो समूहों नाइडेरियनों तथा कीटों में बहुत विकसित होती है।

उद्देश्य

इस खण्ड के अध्ययन के उपरांत आप

- असीलोमी, कूटसीलोमी तथा सुसीलोमी (सीलोमयुक्त) फ़ाइलमों के विशिष्ट लक्षणों की सूची बना सकेंगे।
- विभिन्न फ़ाइलमों का वर्गीकरण कर सकेंगे एवं उनके उदाहरण दे सकेंगे।
- असीलोमी तथा कूटसीलोमी प्राणियों के बीच तथा कूटसीलोमी एवं सुसीलोमी प्राणियों के बीच परस्पर संबंधों की रूपरेखा दे सकेंगे।
- बहुकोशिक प्राणियों के कंकालों का वर्णन कर सकेंगे।
- नाइडेरियनों तथा कीटों में बहुरूपता की परिघटना का वर्णन कर सकेंगे।

इकाई 4 बहुकोशिक प्राणियों का वर्गीकरण-I

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 मेटाज़ोअन शाखाएं : मेसोज़ोआ, पैराज़ोआ तथा यूमेटाज़ोआ
4.3 पैराज़ोआ - फ़ाइलम पोरिफ़ेरा - स्पंज़
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
4.4 फ़ाइलम नाइडेरिया
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
प्रवाल भित्तियां
4.5 फ़ाइलम टेनोफ़ोरा
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
4.6 फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिंथीज़
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
4.7 स्यूडोसीलोमैटा (कूटसीलोमी प्राणी) - फ़ाइलम नेमैटोडा
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
4.8 स्यूडोसीलोमैटा - फ़ाइलम रोटिफ़ेरा
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
4.9 सारांश
4.10 अंत में कुछ प्रश्न
4.11 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा था कि बहुकोशिक प्राणियों (ऐनिमैलिया) का किस प्रकार सरलतर प्रोटोज़ोअन प्रोटिस्टों से उद्भव हुआ। आपने यह भी सीखा कि सरलतर बहुकोशिक प्राणियों में आगे विकास होकर किस प्रकार प्राणी जीवन की वह समस्त विविधता पैदा हुई जो आज पृथ्वी पर विद्यमान है।

इस इकाई में इसी प्राणी-विविधता को बनाने वाले कुछ फ़ाइलमों जैसे कि **पोरिफ़ेरा**, **नाइडेरिया**, **टेनोफ़ोरा**, **प्लैटिहेल्मिंथीज़**, **नेमैटोडा** तथा **रोटिफ़ेरा** के विशिष्ट लक्षणों का अध्ययन करेंगे और साथ ही साथ इनके आगे के क्लासों में वर्गीकरण का भी अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

- इस इकाई में वर्णित किसी भी एक फ़ाइलम की अन्य फ़ाइलमों से पृथक पहचान करने वाले लक्षणों को जान सकेंगे;

- इस इकाई में वर्णित प्रत्येक फ़ाइलम के अंतर्गत आने वाले प्राणियों के विभिन्न क्लासों के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे;
- इस इकाई में बताए गए प्राणियों के विभिन्न क्लासों के उदाहरण दे सकेंगे;
- इस इकाई में वर्णन किए गए विभिन्न क्लासों के अंतर्गत आने वाले प्राणियों की देह-संघटना की एक आधारभूत कल्पना प्रस्तुत कर सकेंगे;
- तथा प्रवाल-भित्तियों की निर्माण-विधि एवं उनके महत्व का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।

4.2 मेटाज़ोआ की शाखाएं : मेसोज़ोआ, पैराज़ोआ तथा यूमेटाज़ोआ

हम पहले ही जान चुके हैं कि ऐनिमैलिया जगत् में सभी बहुकोशिक प्राणी (मेटाज़ोआ) आते हैं। इन्हें तीन शाखाओं में विभाजित किया जाता है : 1) मेसोज़ोआ; 2) पैराज़ोआ तथा 3) यूमेटाज़ोआ। मेसोज़ोआ में केवल एक ही छोटा फ़ाइलम आता है (फ़ाइलम मेसोज़ोआ); पैराज़ोआ में दो फ़ाइलम आते हैं : एक छोटा अकेला फ़ाइलम प्लैकोज़ोआ (Placozoa) और शेष का दूसरा फ़ाइलम पोरिफ़ेरा जिसमें सभी स्पंज़ आते हैं। अधिकतर मेटाज़ोअन प्राणी मुख्य शाखा यूमेटाज़ोआ में आते हैं। यहाँ आपको ध्यान रखना होगा कि पोरिफ़ेरा (स्पंज़ों) की कोशिकीय परतें यूमेटाज़ोआ की जनन स्तरों के समजात नहीं होती। इनका परिवर्धन प्रतिरूप भी यूमेटाज़ोआ के परिवर्धन प्रतिरूप से बिल्कुल भिन्न होता है। पैराज़ोआ को प्राणि जगत की एक ऐसी आरम्भिक विकासीय पार्श्व शाखा के रूप में माना जाता है जिससे और आगे किसी भी प्राणि समूह का उदय नहीं हुआ।

फ़ाइलम पोरिफ़ेरा तथा यूमेटाज़ोआ के विभेदकारी लक्षण

	फ़ाइलम पोरिफ़ेरा	यूमेटाज़ोआ
1.	प्राणी स्थानबद्ध होते हैं; अनियमित आकृति, सममिति अधिकतर नहीं होती।	प्राणी अधिकतर गतिशील होते हैं, नियमित आकृति तथा किसी न किसी प्रकार की सममिति होती है।
2.	ऊतक नहीं होते अथवा कम सुनिश्चित होते हैं।	ऊतक सुनिश्चित होते हैं।
3.	अंग नहीं बने होते।	सुनिश्चित अंग होते हैं।
4.	मुख तथा पाचन पथ दोनों नहीं होते।	प्राणियों में मुख तथा पाचन पथ दोनों होते हैं।
5.	देह-सतह संरध्र होती है।	देह-सतह संरध्र नहीं होती।
6.	न संवेदी कोशिकाएं होती हैं; न तंत्रिकाएं, समन्वय न के बराबर।	संवेदी कोशिकाएं तथा तंत्रिकाएं होती हैं; समन्वय श्रेष्ठतर होता है।
7.	भीतरी गुहाओं का अस्तर कीपकोशिकाओं (choanocytes) का बना होता है।	भीतरी गुहाओं का अस्तर कीपकोशिकाओं का नहीं बना होता।
8.	शरीर क्रियात्मक श्रम-विभाजन सुस्पष्ट नहीं होता।	शरीर क्रियात्मक श्रम-विभाजन सुस्पष्ट होता है।
9.	कोशिकीय परतें जनन-स्तरों के समजात नहीं होती।	कोशिकीय परतें जनन-स्तरों के समजात होती हैं।

यूमेटाज़ोआ शाखा में, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं वे मेटोज़ोआ-प्राणी आते हैं जिनमें अंग तथा एक मुख एवं पाचन गुहा होती है। इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : रेडिएटा (Radiata) तथा बाइलेटेरिया (Bilateria)। रेडिएटा की विशिष्टता है अरीय (radial) अथवा द्विअरीय (biradial) सममिति का पाया जाना; इनमें स्पर्शक (tentacles) होते हैं तथा एक सीमित संख्या में अंग बने होते हैं। इनमें एक पाचन गुहा भी होती है जिसका बाहर को खुलने वाला एक मुख होता। रेडिएटा में दो फ़ाइलम आते हैं :

नाइडेरिया (Cnidaria) तथा टेनोफ़ोरा (Ctenophora)। बाइलेटेरिया के प्राणी द्विपार्श्वत: समभित (bilaterally symmetrical) होते हैं और शेष सभी मेटाज़ोआ-प्राणी इसी के अंतर्गत आते हैं।

4.3 पैराज़ोआ - फ़ाइलम पोरिफ़ेरा - स्पंज़

आपने अभी पढ़ा कि पैराज़ोआ में दो फ़ाइलम आते हैं : एक तो छोटा सा फ़ाइलम प्लैकोज़ोआ और दूसरा स्पंज़ों का फ़ाइलम पोरिफ़ेरा। इन दो फ़ाइलमों में से यहाँ हम केवल एक ही फ़ाइलम पोरिफ़ेरा का वर्णन करेंगे जिसमें स्पंज़ आते हैं। अंग्रेजी का शब्द "पोरिफ़ेरा, porifera" लैटिन भाषा के शब्द "pore" (रंध्र) तथा "fera (धारक)" से बना है जिसका अर्थ है रंध्र-धारक जीवधारी। पोरिफ़ेरा बहुकोशिक प्राणी होते हैं जो चल-फिर नहीं सकते क्योंकि वे एक पौधे की भांति अध:स्तर से चिपके होते हैं। नानाविध स्वरूप वाले इस पोरिफ़ेरा में 5000 या उससे अधिक वर्णित स्पीशीज हैं। ये स्पीशीज प्यालेनुमा, तश्तरी नुमा, कुकुरमुत्तेनुमा, पालियुक्त, उंगलीनुमा, विशाखित अथवा अनियमित प्रकार की हो सकती हैं। नियमत: आकृति अत्यन्त परिवर्तनशील होती है यहाँ तक कि एक ही स्पीशीज के भीतर भी एक सी नहीं होती, अत: पहचान करने में आकृति का कोई उपयोग नहीं है। ये प्राणी सदैव अन्य वस्तुओं पर चिपके रहते हैं। अलवणजलीय फ़ेमिली स्पंजिलिडी (Spongillidae) को छोड़कर शेष सभी स्पंज़ समुद्र में पाए जाते हैं जहाँ वे सभी कम या ज्यादा गहराइयों में रहते होते हैं। फेमिली क्लायोनिडी (Clionidae) के स्पंज़ सीपी-घोंघे आदि के कवचों तथा पत्थरों में बिल या सूराख बना कर रहते हैं।

4.3.1 विशिष्ट लक्षण

जैसा कि इस वर्ग के नाम से ही विदित होता है, इनके देह की सतह पर बड़ी संख्या में सूक्ष्म रंध्र बने होते हैं जिन्हें **आस्टियम (ostium)** कहते हैं। इन ऑस्टियमों में से गुज़रती हुई जल-धारा देह गुहा में प्रवेश करती है। ये रंध्र वास्तव में एक प्रणाल-तंत्र में को खुलते हैं, ये प्रणाल (channels) लगभग समस्त शरीर में से होते हुए ऑसकुलम (osculum) नामक एक या एक से अधिक संख्या में बड़े आकार के बहिर्वाही छिद्रों द्वारा बाहर को खुलते हैं। अंतर्वाही रंध्रों अथवा ऑस्टियमों को बहिर्वाही ऑसकुलमों के साथ जोड़ने वाली गुहाओं की व्यवस्था को **नाल-तंत्र (canal system)** कहते हैं। यह नाल-तंत्र या तो सरल हो सकता है जैसा कि ऐस्कॉनाभ (asconoid) प्रकार में या अधिक जटिल प्रकार का हो सकता है जैसा कि साइकॉनाभ (syconoid) या ल्यूकोनॉभ (leuconoid) प्रकार में (चित्र 4.1)। कशाभों की क्रिया के द्वारा नाल-तंत्र के भीतर एक सतत जल-धारा बहती जाती है। इस प्रकार ऑस्टियमों में से होकर जल नाल-तंत्र में प्रवेश करता है तथा ऑसकुलमों के द्वारा बाहर निकल जाता है।

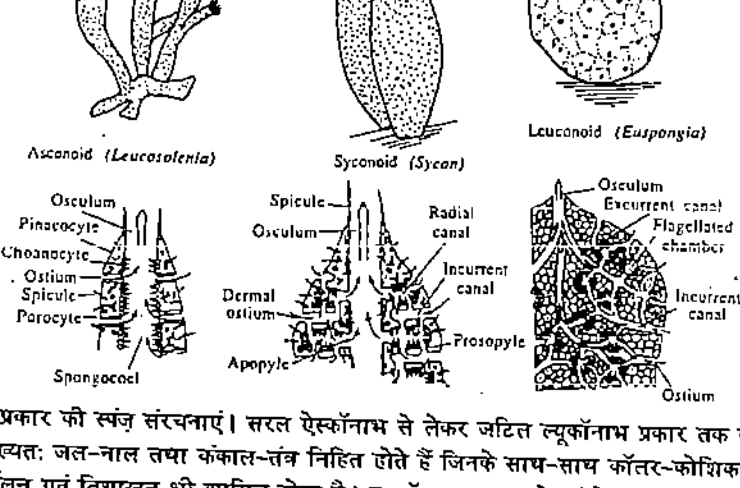

चित्र 4.1 : तीन प्रकार की स्पंज़ संरचनाएं। सरल ऐस्कॉनाभ से लेकर जटिल ल्यूकॉनाभ प्रकार तक की जटिलता में मुख्यत: जल-नाल तथा कंकाल-तंत्र निहित होते हैं जिनके साथ-साथ कॉलर-कोशिका परत का बहिर्वलन एवं विशाखन भी शामिल होता है। ल्यूकॉनाभ प्रकार को स्पंज़ों की मुख्य योजना माना जाता है। क्योंकि इसी के द्वारा स्पंज़ों का अधिक बड़ा आकार तथा उनमें अधिक कारगर जल-परिसंचरण होना संभव हो पाता है।

स्पंज़-शरीर पर बाहर की ओर एक एपिथीलियमी परत बनी होती है जिसे पिनैकोडर्म (pinacoderm) कहते हैं। यह परत **पिनैकोसाइट (pinacocyts)** नामक चपटी कोशिकाओं की बनी होती है। (चित्र 4.2)। कुछ पिनैकोसाइट रूपांतरित होकर **पोरोसाइट (porocyte)** बन जाते हैं जिनके भीतर एक अंतः कोशिक नाल बनी होती है जो बाहर की ओर ऑस्टियम पर खुलती है (चित्र 4.1)। कुछ कोशिकाएं संकुंचनशील मायोसाइटों (myocytes) के रूप में बदल जाती हैं जो ऑसकुलमों को घेरती हुई व्यवस्थित होती हैं।

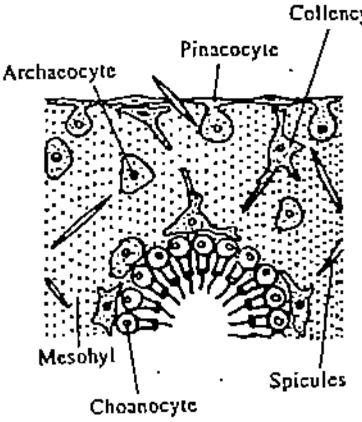

चित्र 4.2 : **स्पंज़-भित्ति में से गुजरता हुआ छोटा सेक्शन, जिसमें चार प्रकार की कोशिकाएं दिखायी गयी हैं। पिनैकोसाइट सुरक्षाकारी तथा संकुचनशील होते हैं; कीपकोशिकाएं जलधाराएं पैदा करतीं तथा खाद्य कणों को परिग्रहित करती हैं; आद्यकोशिकाओं के नानाविध कार्य होते हैं, कॉलेनसाइटों से कोलैजेन का स्रवण होता है।**

नाल-तंत्र के कशाभी कोष्ठों का भीतरी अस्तर अण्डाकार कॉलर-कोशिकाओं अर्थात कीपकोशिकाओं (choanocytes) का बना होता है (चित्र 4.3)। संरचना की दृष्टि से ये कीपकोशिकाएं कोएनोफ्लैजेलेट प्रोटोज़ोआ-प्राणियों के सामान होती हैं। इन कोशिकाओं में एक संकुंचनशील कॉलर से घिरा हुआ एक कशाभ होता है, यह कॉलर और कशाभ स्पंज़ की गुहा में को निकले हुए होते हैं। ये ही कोशिकाएं नाल-तंत्र की जल-धारा को पैदा करती हैं तथा आहार-प्रग्रहण भी इन्हीं के द्वारा होता है। छोटे आहार कणों का प्रग्रहण कीपकोशिकाएं करती है जब कि बड़े कणों को आगे आद्यकोशिकाओं (archeocytes) एवं अमीबीकोशिकाओं (amoebocytes) को सौंप दिया जाता है (चित्र 4.3), ये ही दो कोशिकाएं पाचन का मुख्य स्थान होती हैं।

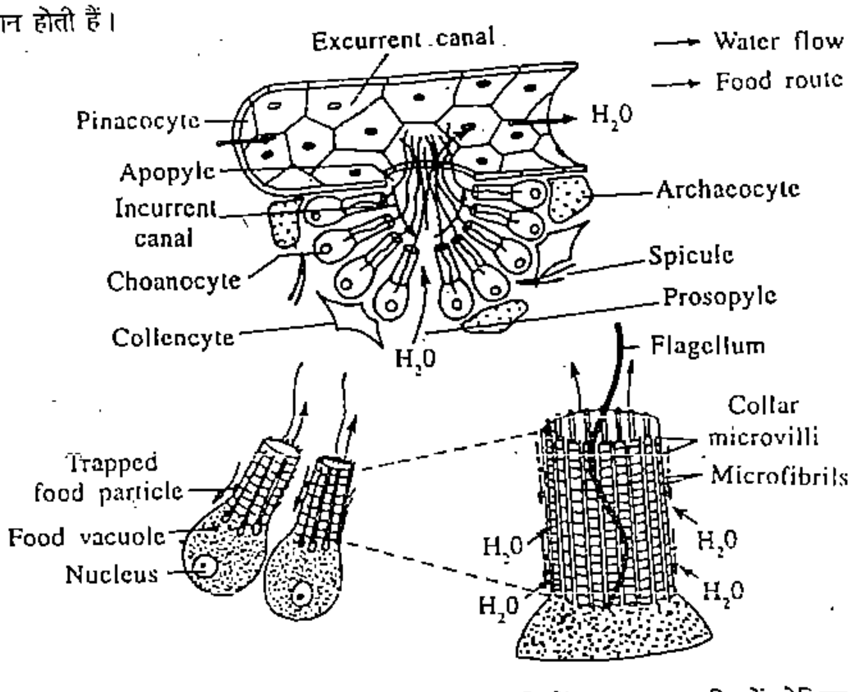

चित्र 4.3 : **स्पंज़ कोशिकाओं के द्वारा भोजन का पकड़ना A-सारणियों का काट-दृश्य जिसमें कोशिका संरचना तथा जल-प्रवाह की दिशा दर्शाई गयी है। B-दो कीपकोशिकाएं तथा, C-कालर की संरचना। छोटे लाल तीर के निशान आहार के कणों की गति दर्शाते हैं।**

एपिथीलियम-परत तथा कीपकोशिका-परत के बीच एक मेसोहायल (mesohyal) परत होती है, यह परत एक जिलेटिनी प्रोटीन मैट्रिक्स की बनी होती है जिसमें अमीबी कोशिकाएं (आद्यकोशिकाएं, archoaeocytes) तथा कंकाल संरचनाएं पड़ी होती हैं। आद्यकोशिकाएं वास्तव में अमीबीय कोशिकाएं ही होती हैं जो विभिन्न कार्यों के करने के वास्ते रूपांतरित हो गयी होती हैं। ये आहार कणों का ग्रहण करती हैं अत: इनका काम पाचनसंबंधी होता है जैसा कि आप पहले ही देख चुके हैं। स्क्लेरोसाइट (कंकाल कोशिकाएं, sclerocytes) (चित्र 4.4) कंकाल की कंटिकाओं (spicules) के स्रवण के लिए विशेषित होती है; स्पांज़ोसाइटों से स्पंजिन तंतुओं का तथा कॉलेनसाइटों (collencytes) और लोफ़ोसाइटों (lophocytes) से कोलैजेन का स्राव होता है।

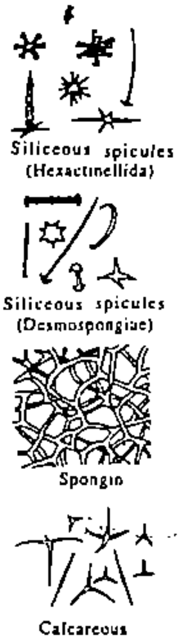

चित्र 4.4 : A, स्पंजों में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की कंटिकाएं। अनेक नानाविध प्रकार की कंटिकाओं में विस्मयकारी विविधता एवं सम्मिश्रता के साथ-साथ सौंदर्य भी है। B, एक केल्सियमी स्पंज का सेक्शन।

स्पंज शरीर को आलम्ब प्रदान करने वाले कंकाल में मुख्यत: कंटिकाएं (spicules) होती हैं जो विविध साइज़ों एवं आकृतियों की होती हैं। ये कंटिकाएं (चित्र 4.4) सिलिकामय (siliceous) हो सकती हैं अथवा केल्सियम कार्बोनेट की बनी हो सकती हैं। कंकाल में कोलैजेन तथा स्पंजिन भी होते हैं। कंटिकाओं में एक, तीन, चार अथवा छ: अरें (rays) निकली होती हैं। कंटिकाओं की संरचनात्मक विभिन्नता का वर्गीकरण में बहुत महत्व है।

शुक्राणुओं की उत्पत्ति कीपकोशिकाओं से होती है; अंडकोशिकाएं (oocytes) या तो कीपकोशिकाओं से या आद्यकोशिकाओं से बनती हैं। इनके अलावा भीतरी मुकुल या जेम्यूल (gemmules) आद्यकोशिकाओं से बनते हैं।

स्पंज़ों के ऊतक विज्ञान (हिस्टोलॉजी) के संबंध में आपको एक बात बहुत स्पष्ट जान लेनी चाहिए कि स्पंज शरीर की परतें अर्थात पिनैकोडर्म, मेसोहायल तथा कीपकोशिका परत उच्चतर प्राणियों की एक्टोडर्म, मेसोडर्म तथा एंडोडर्म के तुल्य नहीं हैं।

4.3.2 वर्गीकरण (Classification)

अब जब कि हमने पोरिफ़ेरा के विशिष्ट लक्षणों का अध्ययन कर लिया है, आइए पोरिफ़ेरा के वर्गीकरण पर चर्चा करें तथा उसके विभिन्न क्लासों के उदाहरण प्रस्तुत करें।

फ़ाइलम पोरिफ़ेरा को चार क्लासों में विभाजित किया गया है, ये क्लास हैं - कैल्केरिया, हेक्सैक्टिनेलिडा, डेमोस्पंज़ी तथा स्क्लेरोस्पंज़ी।

1. क्लास कैल्केरिया (Calcarea) (अथवा केल्सिस्पंज़ी, Calcispongiae) : इनकी विशिष्टता है कि इनमें कैल्सियम कार्बोनेट की बनी कंटिकाएं पायी जाती हैं। ये कंटिकाएं सुई की आकृति की अथवा तीन-या-चार अरों वाली होती हैं। ये सभी स्पंज़ समुद्री होते हैं तथा छोटे, अधिकतर 10 cm ऊंचाई से कम के होते हैं। उदाहरण ल्यूकोसॉलेनिया (Leucosolenia) (चित्र 4.5), साईकान (Sycon) (चित्र 4.1)

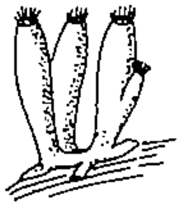

चित्र 4.5 ल्यूकोसॉलेनिया (Leucosolenia)।

2. क्लास हेक्सैक्टिनेलिडा (Hexactinellida) (अथवा हायेलोस्पंज़ी, Hyalospongiae) : इनको सामान्यत: कांच-स्पंज़ (glass sponges) कहते हैं। इनका कंकाल छ: अरों वाली सिलिकामय (siliceous) कंटिकाओं का बना होता है। ये स्पंज़ अधिकतर गहरे समुद्रों में पाए जाते है, इनमें अरीय सममिति (radial symmetry) पायी जाती है, तथा इनका शरीर फूलदान-नुमा या कीप-सरीखा होता है जो अधःस्तर से वृंतों (stalks) द्वारा संलग्न रहता है। उदाहरण यूप्लेक्टेला (Euplectella) जिसे "वीनस फ़्लावर बास्केट" भी कहते हैं (चित्र 4.6), हायेलोनेमा (चित्र 4.7)। ये अधिकतर साइकॉनाभ होते हैं। पिनैकोसाइट नहीं होते परंतु इनकी बाहरी परत एक जाल-सदृश सिनसिशियम की बनी होती है और यह सिनसिशियम अमीबी कोशिकाओं के परस्परयोजी कूटपादों से बना होता है।

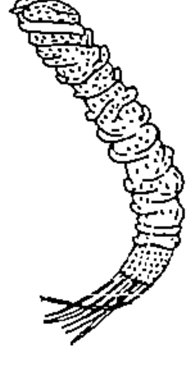

चित्र 4.6 : यूप्लेक्टेला (Euplectella)।

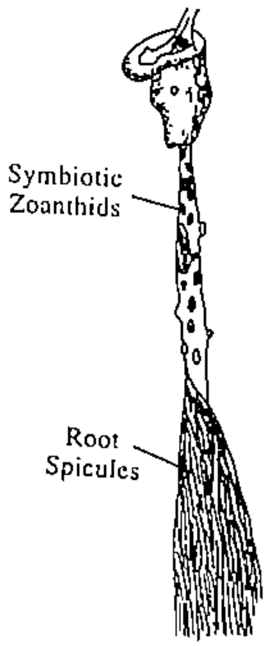

चित्र 4.7 : हायेलोनेमा (Hyalonema) ।

3. क्लास डेमोस्पंज़ी (Demospongiae) : यह स्पंज़ों का सबसे बड़ा क्लास है जिसमें इनकी 90% से भी ज़्यादा स्पीशीज़ आती हैं। इनका कंकाल कंटिकाओं का बना होता है, ये कंटिकाएं या तो स्पंजिन की बनी हो सकती हैं या सिलिका की या दोनों ही की। कंटिकाएं छ: अरों वाली नहीं होतीं। फ़ेमिली स्पंजिडी (spongidae) में आने वाले स्पंज़ों जैसे कि स्पंजिया (spongia) में केवल स्पंजिन का बना कंकाल पाया जाता है। सभी डेमोस्पंजिया ल्यूकॉनाभ होते है। कुछ का साइज़ 1m तक का हो जाता है, तथा ये स्पंज़ प्राय: चटकीले रंगदार होते हैं। कुछ अलवणजलीय होते हैं, जैसे कि स्पंजिला (sponsiglla) (चित्र 4.8)। कुछ उदाहरण प्रवालों में सूराख बना कर रहते होते हैं।

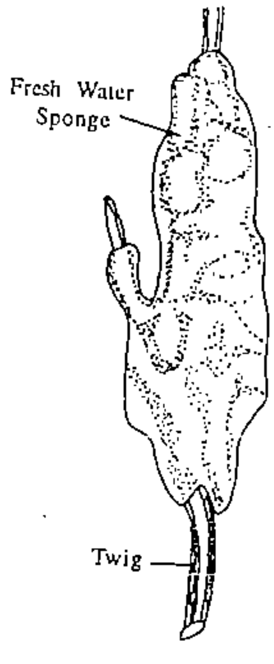

चित्र 4.8 : स्पंजिला (Spongilla) ।

4. **क्लास स्क्लेरोस्पंजी (Sclerospongiae) : यह स्पंजों का एक बहुत ही छोटा सा वर्ग है, इसके स्पंज एक विशाल कैल्सियमी कंकाल का स्राव करते हैं (चित्र 4.4)। कभी-कभी सिलिकामय कंटिकाओं तथा स्पंजिन तंतुओं का एक मिश्रित कंकाल भी पाया जाता है। इनका जीवित ऊतक केवल कंकाल की पतली सतही परतों तक ही सीमित होता है। सभी उदाहरण ल्यूकॉनाभ होते हैं। ये प्रवाल-भित्तियों में दरारों, गुफ़ाओं तथा सुरंगों में छिपे हुए रहते हैं, उदाहरण मर्लिया (Merlia)।**

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों में उचित शब्द भर कर वाक्य पूरे कीजिए :

1. पोरिफ़ेरा .... कोशिक प्राणी होते हैं जो .... के अक्षम होते हैं क्योंकि वे अध:स्तर से एक .... की तरह .... रहते हैं।
2. स्पंज शरीर के ऊपर .... का बना एक बाहरी एपिथीलियम परत का आवरण चढ़ा होता है।
3. वे स्पंज जिनका कंकाल केल्सियम कार्बोनेट की कंटिकाओं का बना होता है .... क्लास में आते है।
4. हेक्सेक्टिनेलिडा की विशेषता उनमें .... कंटिकाओं का पाया जाना है।
5. स्पंजों के नाल-तंत्र के कशाभी कक्षों का भीतरी स्तर .... का बना होता है।

4.4 फ़ाइलम नाइडेरिया (PHYLUM CNIDARIA)

आप ऊपर पढ़ चुके हैं कि फ़ाइलम पोरिफ़ेरा के अंतर्गत आने वाले स्पंजों की संघटना किस प्रकार की होती है। अब आप फ़ाइलम नाइडेरिया के अंतर्गत आने वाले प्राणियों की संघटना के विषय में पढ़ेंगे। फ़ाइलम नाइडेरिया और फ़ाइलम टेनोफ़ोरा दोनों मिलकर रेडिएटा (Radiata) बनाते हैं, और इन्हें कभी-कभी एक साथ मिलाकर सीलेंटेरेटा (Coelenterate) भी कहा जाता है। नाइडेरिया में 9000 से अधिक स्पीशीज़ आती हैं जो सभी जलीय होती है; इनमें भी अधिकतर समुद्री होती हैं परंतु कुछ उदाहरण अलवणजलीय होते हैं। इनके जीवाश्म (फ़ॉसिल) बहुत प्राचीन, 70 करोड़ वर्ष पुराने समय तक के पाए जाते हैं। ये प्राणियों का एक सफल वर्ग हैं; हालांकि मेटाज़ोआ में संरचना एवं कार्य की दृष्टि से ये बहुत सरल होते हैं। इनमें आने वाले प्राणी हैं हाइड्राइड, जेली-फ़िशें, समुद्री ऐनीमोन, प्रवाल, आदि।

4.4.1 विशिष्ट लक्षण

1. सभी प्राणी जलीय होते हैं।
2. एक मुख-अपमुख (oro-aboral) अक्ष के गिर्द अरीय अथवा द्विअरीय सममिति, परंतु शीर्ष नहीं होता।
3. द्विजनस्तरीय (डिप्लोब्लास्टिक), इनमें एक एपिडर्मिस तथा एक गैस्ट्रोडर्मिस होती है; तथा दोनों के बीच में एक कम कोशिकीय अथवा अकोशिकीय जिलेटिनी मेसोग्लीया (mesoglea) होती है।
4. एक जठरवाही गुहा जिसका एक अकेला छिद्र मुख होता है, और स्पर्शक मुख प्रदेश को घेरे होते हैं।
5. सीलोम नहीं होती और न ही उत्सर्गी अथवा श्वसन तंत्र होते हैं।
6. तंत्रिका जाल होता है जिसके द्वारा केवल विसरित संचरण ही होता है, कुछ संवेदी अंग भी होते हैं।
7. अलग से कोई स्पष्ट पेशी-तंत्र नहीं होता, मगर एपिथीलियम-पेशीय (epitheliomuscular) तंत्र पाया जाता है।
8. इनमें दो प्रकार की व्यष्टियां पायी जाती हैं - एक तो नितलस्थ (benthic) पौलिप तथा दूसरे वेलापवर्ती (pelagic) मेडुसे। लैंगिक जनन सभी मेडुसों तथा कुछ पौलिपों में पाया जाता है जिसमें

युग्मकों का योगदान होता है। विदलन पूर्णभंजी तथा अनिर्धारित (indeterminate) प्रकार का होता है। एक स्वच्छन्द तैरने वाला प्लैनुला (planula) लार्वा पाया जाता है।

नाइडेरिया में दो प्रकार की व्यष्टिया पायी जाती हैं। - पौलिप तथा मेडुसा। पौलिप नलिकाकार होता है, इसका मुख-सिरा मुक्त होता है जिस पर स्पर्शकों का एक चक्र बना होता है तथा अपमुख सिरा आधार डिस्क (basal disc) के द्वारा अधःस्तर से चिपका होता है। पौलिप स्थानबद्ध नितलस्थ स्वरूप होता है। मेडुसा स्वच्छंद तैरने वाला छत्र-सरीखा वेलापवर्ती स्वरूप होता है जिसका मुख अवछत्रीय (subumbrellar) दिशा पर बने मैनुब्रियम (manubrium) के सिरे पर बना होता है। यद्यपि पौलिप तथा मेडुसा एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न आकृति के दिखते हैं; मगर उनमें एक आधारभूत समान योजना दिखायी देती है - इस योजना में एक बाहरी परत एपिडर्मिस की तथा जठरवाही गुहा को घेरती हुई एक परत गैस्ट्रोडर्मिस की होती है और उन दोनों के बीच एक जिलेटिनी परत मेसोग्लीया होती है। मगर मेडुसा में यह मेसोग्लीया अधिक मोटी होती है (इसलिए शब्द जेलीफिश दिया गया) तथा सिद्धांततः एक स्वरूप को दूसरे स्वरूप से प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि चित्र 4.9 द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। जठरवाही गुहा आहार नाल का कार्य करती है जो बाहर को केवल एक ही छिद्र मुख द्वारा खुलती है।

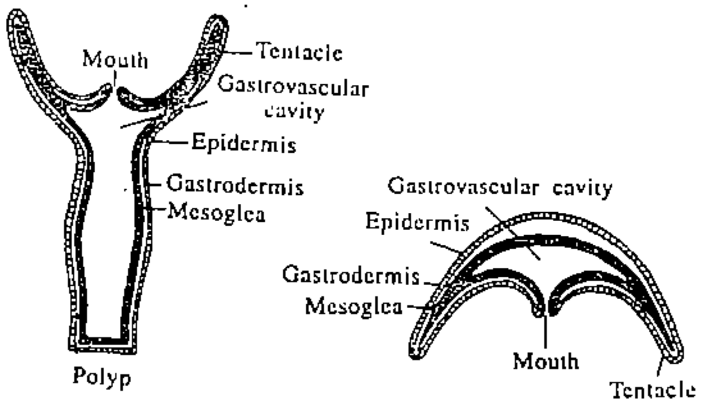

चित्र 4.9 : पौलिप तथा मेडुसा की तुलना।

देहभित्ति (Body wall)

नाइडेरियनों की देह-भित्ति की संरचना को हाइड्रा के अनुप्रस्थ सेक्शन के एक अंश (चित्र 4.10) के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। बाहरी एपिडर्मिस की परत पांच प्रकार की कोशिकाओं की बनी होती है।

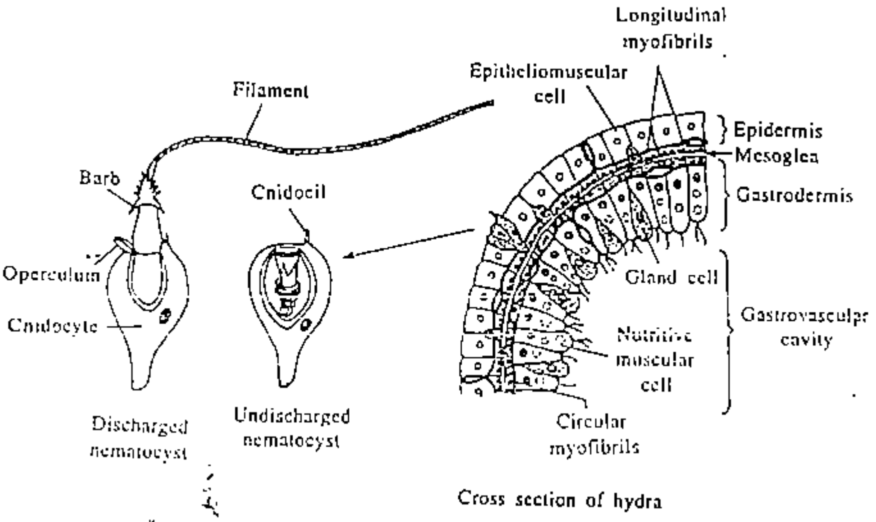

चित्र 4.10 : बायीं ओर एक दंश-कोशिका की संरचना। दायीं ओर, एक हाइड्रा की देह-भित्ति का अंश। दंशकोशिकाएं (cnidocytes) जिनके भीतर दंशपुटियां (nemotocysts) होती है, एपिडर्मिस के भीतर अंतराली कोशिकाओं से उत्पन्न होती है।

एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएं (Epitheliomuscular cells) - ये स्तम्भाकार कोशिकाएं होती हैं जिनके भीतर संकुंचनशील मायोफाइब्रिल होते हैं जो मुख-अपमुख अक्ष के समांतर फैले होते हैं अत: वे अनुदैर्घ्य तंतु होते हैं। इनके संकुंचन के परिणामस्वरूप प्राणी लम्बाई में छोटे हो जाते हैं।

अंतराली कोशिकाएं (Interstitial cells) - ये कोशिकाएं अविभेदित प्रकार की होती हैं जो एपिथीलियम-पेशी कोशिकाओं के आधारों के बीच-बीच में पायी जाती हैं। इनसे अन्य प्रकार की कोशिकाओं की उत्पत्ति होती है।

दंशकोशिकाएं (Cnidocytes) - परिवर्धन के दौरान इन्हें दंशकोरक (cnidoblast) कहते हैं। पूरी तरह बन चुकने के बाद दंशकोशिका के भीतर एक दंशन केप्सूल होता है जिसे दंशपुटी (नीमेटोसिस्ट, nematocyst) कहते हैं, इस दंशपुटी के भीतर एक कुंडलित नलिका होती है (चित्र 4.11)। जब प्राणी चाहे तब वह इस नलिका का बहिर्वलन किया जा सकता है। नलिका के आधार पर तीव्र कांटे (barbs) बने होते हैं। कैप्सूल के ऊपर एक ढक्कन होता है। दंशकोशिका में एक बाल जैसा दंश प्रवर्ध (cnidocil) भी होता है जो एक ट्रिगर का काम करता है। दंशपुटी के भीतर उच्च परासरण दाब पर बना एक तरल पदार्थ भरा रहता है। शिकार का दंशप्रवर्ध से स्पर्श होने पर दंशपुटी की आवरक झिल्ली की पारगम्यता बदल जाती है तथा अचानक बाहर का जल दंशपुटी के भीतर को प्रविष्ट हो जाता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप भीतर की कुंडलित नलिका बहिर्वर्तित होकर बाहर को फूट पड़ती है जो इस प्रक्रिया में लम्बी फैल जाती है। कुंडलित नलिका का उलट जाना उसी तरह होता है जैसे किसी कमीज़ की आस्तीन का अंदर से बाहर को पलट जाना। एक बार शिकार में दंशपुटी के फूट जाने के बाद दंशकोशिका अवशोषित हो जाती है, तथा उसके स्थान पर एक नयी दंशकोशिका बन जाती है। नाइडेरियनों में नानाविध प्रकार की दंशपुटियां पायी जाती हैं, इनका इन प्राणियों के वर्गीकरण में महत्व है। ये संरचनाएं इस वर्ग में आक्रमण एवं बचाव के हेतु शस्त्रसमान हैं, इनमें से कुछ चिपचिपी होती हैं और वे आहार पकड़ने के काम आती है।

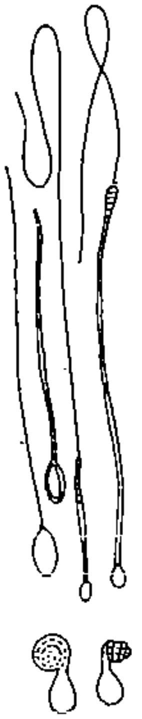

चित्र 4.11 : विस्फोट के उपरांत की दिखाई गयी अनेक प्रकार की दंशपुटियां। नीचे की ओर एक ऐसे प्रकार के दो दृश्य दिखाए गए हैं जो शिकार को छेद नहीं करता वरन् वह एक स्प्रिंग के समान लिपटता जाता है, और धागे को लपेटते जाते होने की प्रक्रिया में वह शिकार के किसी छोटे भाग से लिपटकर उसे जकड़ लेता है।

श्लेष्म ग्रंथि-कोशिकाएं (Mucous gland cells) : ये ग्रंथि कोशिकाएं होती हैं जो एक श्लेष्म का स्रवण करती हैं यह श्लेष्म सुरक्षा, चिपकना तथा शिकार के पकड़ने में काम आता है।

संवेदी एवं तंत्रिका कोशिकाएं (Sensory and nerve cells) : संवेदी कोशिकाएं एपिडर्मिसी कोशिकाओं के बीच-बीच में छितराई हुई होती हैं तंत्रिका कोशिकाएं सामान्यतः बहुध्रुवी होती हैं तथा उनके प्रवर्ध संवेदी कोशिकाओं एवं अन्य तंत्रिका कोशिकाओं के प्रवर्धों के साथ सिनैप्स (अंतर्ग्रंथन) बनाती हैं। ये कोशिकाएं एपिडर्मिस में एक जाल बनाती हैं।

गैस्ट्रोडर्मिस (Gastrodermis) में तीन प्रकार की कोशिकाएं आती हैं : 1) **पोषण पेशी कोशिकाएं** - ये कोशिकाएं आहार कणों का परिग्रहण करके उन्हें पचा लेती हैं। इनमें इनके आधारों पर पेशीय प्रवर्ध भी होते हैं जो मुख-अपमुख अक्ष से समकोण बनाए हुए होते हैं जिस कारण इन्हें वृत्तकार पेशी तंतु भी कहते हैं, इनके संकुंचन से शरीर का व्यास कम हो जाता है। 2) **ग्रंथि कोशिकाएं** एंजाइमों का स्रवण करके उन्हें जठरवाही गुहा में छोड़ती है। 3) **श्लेष्म स्रावी कोशिकाएं**

4.4.2 फ़ाइलम नाइडेरिया का वर्गीकरण

मुख्यतः इस पर निर्भर करते हुए कि जीवन चक्र में प्रभावी स्वरूप पौलिप है या मेडुसा, नाइडेरिया को चार क्लासों में विभाजित किया जाता है - 1) हाइड्रोज़ोआ, 2) स्काइफ़ोज़ोआ, 3) क्यूबोज़ोआ, 4) ऐंथोज़ोआ।

1. **क्लास हाइड्रोज़ोआ (Class Hydrozoa) - ये एकल अथवा निवही (कॉलोनीय) प्राणी होते हैं। इनमें अलैंगिक पौलिप होते हैं तथा लैंगिक मेडुसे, हालांकि हो सकता है कि दोनो में से कोई एक प्रकार न भी विकसित हुआ हो। आहार करने वाले ज़ूऑइडों (हाइड्रैंथों, hydranths) में मेसेंटरियां नहीं होतीं। मेडुसा जब भी होता है तब उसमें एक वीलम (velum) बना होता हैं यह रचना छत्र के सीमांत के एक शेल्फ के रूप में भीतर को निकले होने के रूप में होती हैं। इसके प्राणी या तो समुद्रवासी हो सकते हैं या अलवणजलीय।**

   हाइड्रा (चित्र 4.12) एक सामान्य अवलणजलीय प्ररूप है परंतु यह एक प्रतिरूपी उदाहरण नहीं है क्योंकि यह एकल प्राणी है तथा इसमें मेडुसॉभ स्वरूप नहीं पाया जाता। ओबीलिया (Obelia, चित्र 4.13) एक निवही प्राणी है। इसमें स्पर्शकों से युक्त आहार करने वाले पौलिप (गैस्ट्रोज़ूऑइड अथवा ट्रोफ़ोज़ूऑइड) तथा स्पर्शकरहित जनन ज़ूऑइड (गोनोज़ूआइड, gonozooid) होते हैं जिनसे मुकुलन होकर मेडुसे निकलते जाते हैं। ये सभी-व्यष्टियां एक वृंत जैसे हाइड्रोकौलस के साथ जुड़े होते हैं और यह हाइड्रोकौलस नीचे जड़-सरीखे हाइड्रोराइज़ा के माध्यम से अधःस्तर से संलग्न रहता है। गोनेज़ूऑइडो से मुकुलन द्वारा छोटे-छोटे मेडुसे बनकर निकल जाते हैं जिनमें एपिडर्मिसी गोनड होते हैं। वृषण तथा अण्डाशय अलग-अलग मेडूसों में बने होते है (इस दशा को लिंगभेदन gonochorism कहते हैं)। मेडूसों में प्रकाश-संवेदी नेत्रक (ocelli) तथा गुरूत्व के लिए संवेदी स्टैटोसिस्ट (statocysts) होते हैं (चित्र 4.14)। *ट्यूबुलेरिया (Tubularia)* जो एक अन्य निवही उदाहरण है, में गोनोज़ूऑइडों से मेडुसा बाहर नहीं निकलते। ये मेडुसा गोनोज़ूऑइडों से ही जुड़े रहते हैं और वहीं से उनसे युग्मकों का विमोचन होता है। उस स्थिति में गोनोज़ूऑइडों को गोनोफ़ोर (gonophore) कहते हैं। आर्डर साइफ़ोनोफ़ोरा (Siphonophora) में आने वाले प्राणियों में सर्वाधिक बहुरूपता पायी जाती है। ये तिरते हुए या तैरते हुए निवह होते हैं जो अनेक प्रकार के रूपांतरित मेडुसों तथा पौलिपों के बने होते हैं। *फ़ाइसेलिया (Physalia)* (पुर्तगाली युद्ध-पोत, Portugese man-of-war) (चित्र 4.15) एक ऐसा ही निवह है जिसमें एक बड़ा चटकीला उत्प्लावक (float) होता है तथा विविध कार्यो के लिए अलग-अलग प्रकार से रूपांतरित पोलिपों के समूहों से नीचे को लटकते हुए लम्बे स्पर्शक होते हैं। *वेलेला (Velella)* (चित्र 4.16) भी एक ऐसा ही अन्य उदाहरण है जिसमें एक छोटा तश्तरीनुमा उत्प्लावक (रूपांतरित गैस्ट्रोज़ूऑइड) होता है जिसमें से गोनोज़ूऑइड तथा डैक्टिलोज़ूआइड (dactylozooid) निकले होते हैं, डैक्टिलोज़ूऑइड मुद्गराकार पौलिप होते हैं जिन पर रक्षात्मक कार्य के लिए बनी दंशकोशिकाओं के समूह बने होते हैं।

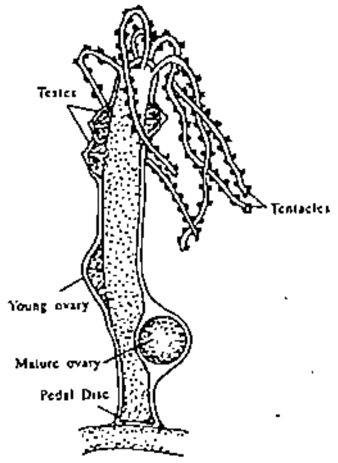

चित्र 4.12 : हाइड्रा।

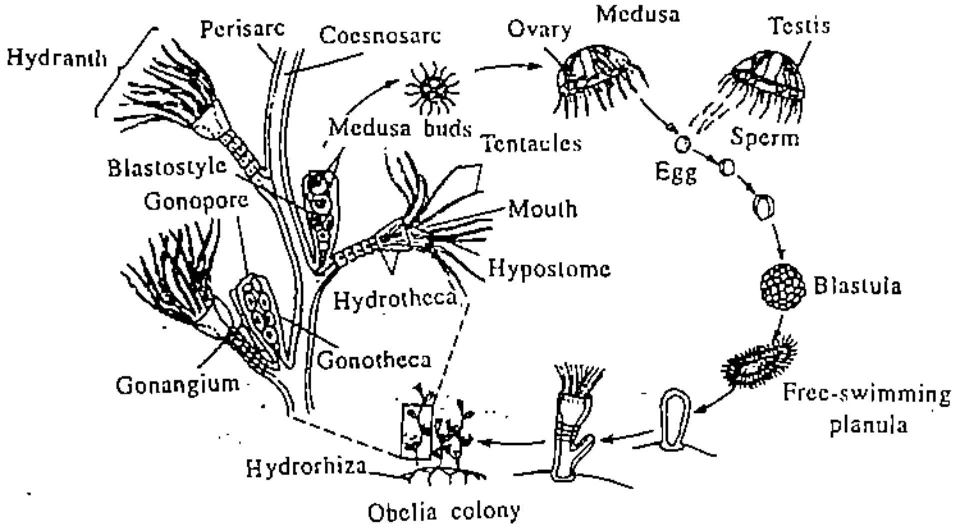

चित्र 4.13 : *ओबीलिया* का जीवन-चक्र जिसमें पौलिप (अलैंगिक) तथा मेडुसा (लैंगिक) अवस्थाओं का पीढ़ी-एकांतरण (alternation) होता पाया जाता है। ओबीलिया एक केलिप्टोब्लास्टिक हाइड्रॉइड है, अर्थात इसके पौलिप तथा स्तम्भ दोनों पर सुरक्षाकारी पेरिसार्क जारी रहता है।

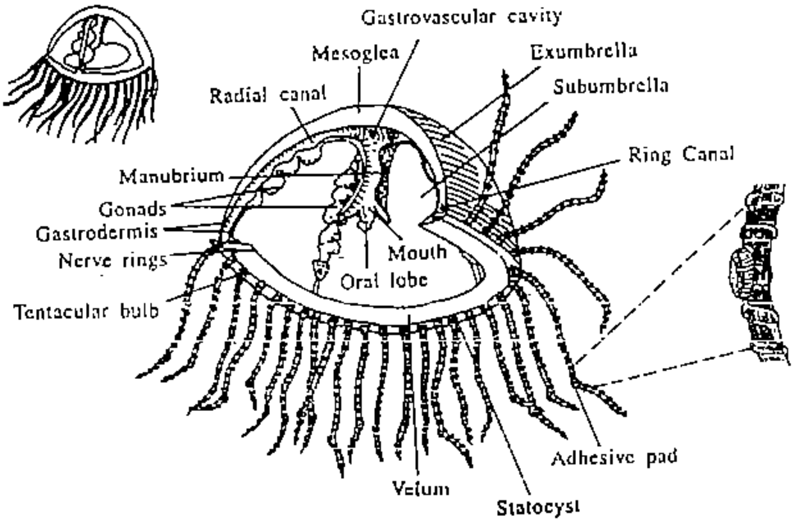

चित्र 4.14 : *गोनियोनीमस* (*Gonionemus*) की संरचना। A. मेडुसा, जिसमें प्रतिरूपी चतुष्मयी व्यवस्था पायी जाती है। B. काट दृश्य जिसमें आकारिकी दर्शायी गयी है। C. स्पर्शक का एक अंश जिसमें उसका आसंजी (चिपकाने वाली) गद्दी तथा दंशपुटियों के कटक-उभार बने होते हैं।

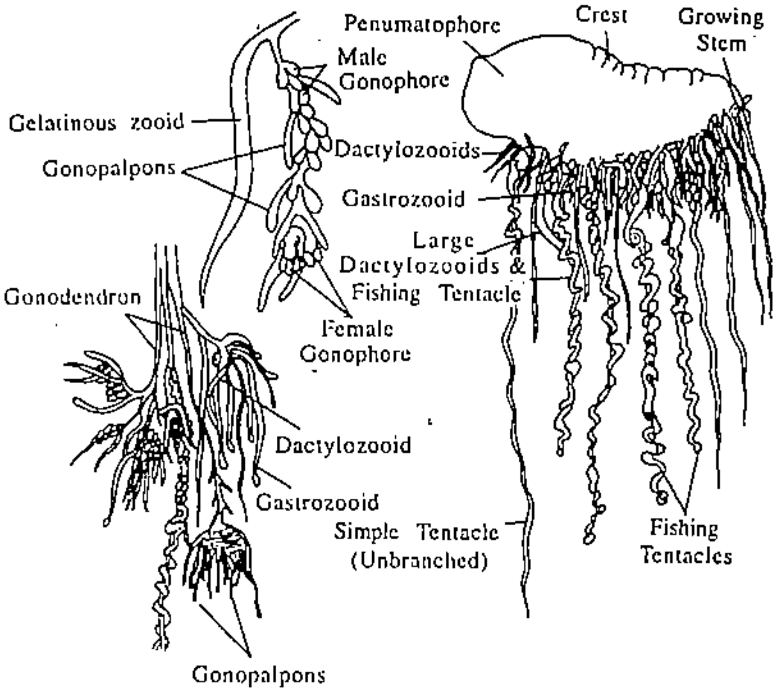

चित्र 4.15 : फ़ाइसेलिया (Physalia) A – तरूण; B – गोनोडेण्ड्रॉन का भाग; तथा C – लैंगिक दृष्टि से परिपक्व फ़ाइसेलिया की व्यष्टियों का एक समूह।

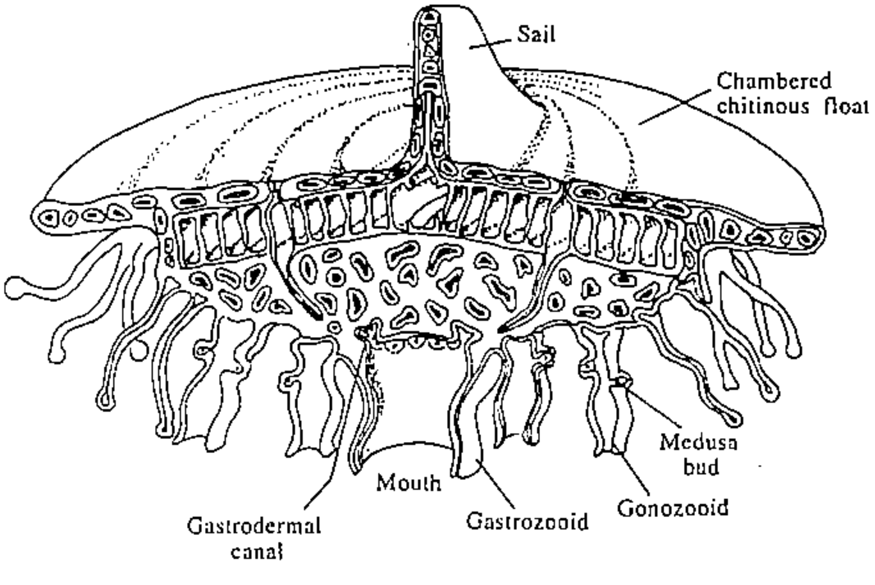

चित्र 4.16 : वेलेला (वायु-सहारे पाल-जहाजी), एक वेलापवर्ती हाइड्रॉइड। ये वेलापवर्ती हाइड्रॉइड सतह के समीप तिरते हैं तथा इनकी अपमुख सतह पर एक पाल बना होता है।

निचली हाइड्रोजोअनों में हाइड्रोकोरल (आर्डर मिलेपोराइना, Milleporina तथा स्टाइलेस्टेराइना, Stylasterina) भी कहते हैं जो एक भीतरी एपिडर्मिसी केल्सियमी कंकाल का स्राव करते हैं, यह कंकाल बहुत बड़े-बड़े आकार का हो सकता है। चूंकि इनमें डैक्टिलोज़ूऑइड होते हैं और ये पीड़ादायक डंक भी मार सकते हैं, इसलिए इन्हें दंशन प्रवाल भी कहते हैं।

2. क्लास स्काइफ़ोज़ोआ (Class Scyphozoa) : ये एकल नाइडेरिया होते हैं जिनमें पौलिप अवस्था या तो घट गयी होती है या होती ही नहीं। मेडुसों में वीलम नहीं होता। जिलेटिनी मेसोग्लीया बहुत ज़्यादा बढ़ गयी होती है। छत्र के सीमांत में सामान्यत: आठ खांचे बनी होती है। जिनके भीतर संवेदी अंग होते हैं। सभी उदाहरण समुद्रवासी हैं।

औरीलिया (*Aurelia*) एक प्रतिरूपी उदाहरण है। मेडुसा मुख्य व्यष्टि होता है जो 10-30 cm व्यास का होता है। सीमांतीय मुद्गराकार संवेदी अंग होते हैं। जिन्हें रोपैलियम (rhopalium, चित्र 4.17) कहते हैं, इनमें तंत्रिका-कोशिकीय संकेन्द्रण, स्टैटोसिस्ट तथा नेत्रक होते हैं। ज़ाइगोट (युग्मनज) में परिवर्धन होकर एक प्लैनुला लार्वा बनता है जो अधःस्तर से चिपक जाने के बाद एक पौलिपनुमा स्काइफ़िस्टोमा (scyphistoma) बन जाता है (चित्र 4.17)। स्काइफ़िस्टोमा से टूट-टूट कर एफिरा (ephyra) लार्वा निकलते जाते हैं जो किशोर मेडुसा होते हैं। एक अन्य उदाहरण *राइजोस्टोमा* (*Rhizostoma*) का है।

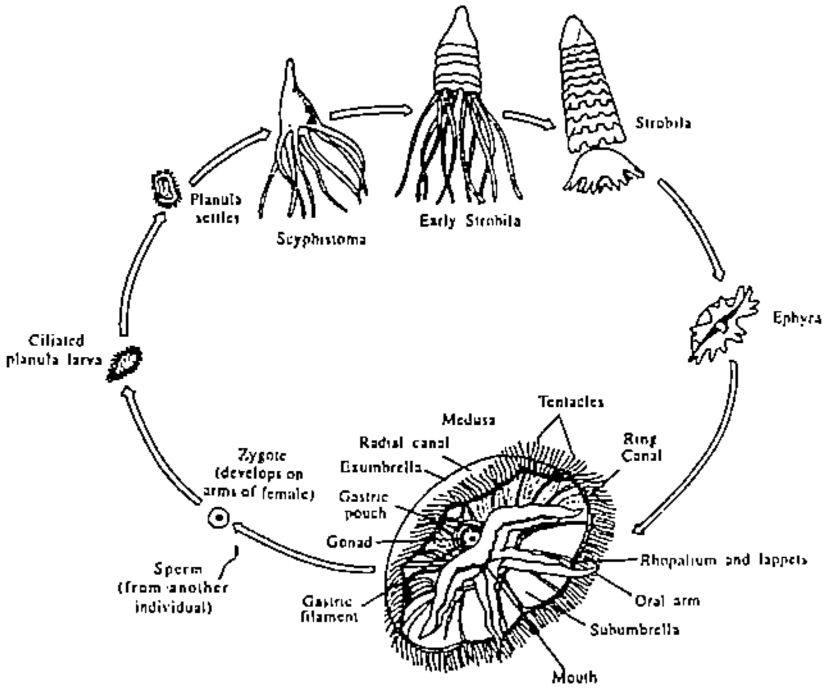

चित्र 4.17 : औरीलिया का जीवन चक्र; यह एक स्काइफ़ोज़ोअन मेडुसा है।

3. क्लास क्यूबोज़ोआ (Class Cubozoa) : ये भी एकल मेडुसाभ प्राणी होते हैं जिनमें पौलिप अवस्था का ह्रास हो गया होता है। परंतु अनुप्रस्थ काट में ये वर्गाकार होते हैं। स्पर्शक अथवा स्पर्शकों के समूह छत्र के कोनों पर बने कठोर चपटे पेडैलियमों (pedalia) से नीचे को लटके रहते हैं। ये सभी समुद्रवासी होते हैं। उदाहरण *कैरिब्डीया* (*Carybdea*) (चित्र 4.18)।

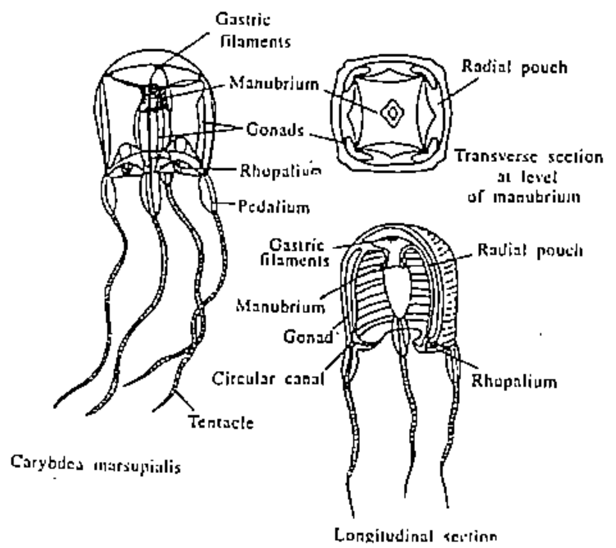

चित्र 4.18 : केरिब्डीया, एक क्यूबोज़ोअन मेडुसा।

4. **क्लास ऐंथोज़ोआ (Class Anthozoa) : ये सभी पौलिप होते हैं। ये एकल अथवा निवही होते हैं। मीज़ेंटरियां अथवा पट आंत्र को उपविभाजित किए हुए होते हैं। पटों पर दंशपुटियां बनी होती हैं। गोनड गैस्ट्रोडर्मिस में बने होते हैं। सभी समुद्रवासी होते हैं।**

ऐंथोज़ोआ के पौलिप अधिक बड़े तथा अधिक जटिल होते हैं। (चित्र 4.19)। चपटी मुख डिस्क पर स्पर्शक तथा एक झिरी-जैसा मुख बना होता है। मुख एक चपटे मुख-पथ (स्टोमोडियम) में खुलता है। साइफ़ोनोग्लिफ़ (Siphonoglyph) नामक एक सिलियायुक्त खांच मुख से चलती हुई मुख-पथ के एक अथवा दोनों किनारों में को चलती जाती है। साइफ़ोनोग्लिफें तथा चपटा झिरी जैसा मुख इन प्राणियों में द्विअरीय सममिति (biradial symmetry) पैदा कर देता है। मीज़ेंटरियां, जो गैस्ट्रोडर्मिस के वलनों के रूप में होती हैं जिनके बीच में मेसोग्लीया भरी होती है, जठरवाही गुहा में निकली होती हैं। **सम्पूर्ण (complete)** मीज़ेंटरियां स्तम्भ की बाहरी दीवार तथा मुख-पथ के बीच पूरी तरह फैली होती है। परंतु **असम्पूर्ण (incomplete)** मीज़ेंटरियां मुख पथ से नहीं जुड़ी होती। मीज़ेंटरियों के भीतरी सिरें सूत्राकार बन जाते हैं जिन पर दंशकोशिकाएं तथा एंज़ाइम-स्रावी कोशिकाएं बनी होती है। इन पटों पर धागे अथवा ऐकांशियम (acountium) होते हैं जिनसे शिकार को मारा जाता है। इन प्राणियों की मेसोग्लीया मोटी, कोशिकीय एवं तंतुकी होती है। मीजेंटरियों पर प्रतिकर्षी पेशियों के सुविकसित अनुदेर्ध्य खण्ड बने होते हैं। गोनड भी मीज़ेंटरियों में ही बने होते हैं। निषेचन तथा परिवर्धन होकर एक प्लैनुला लार्वा बनता है।

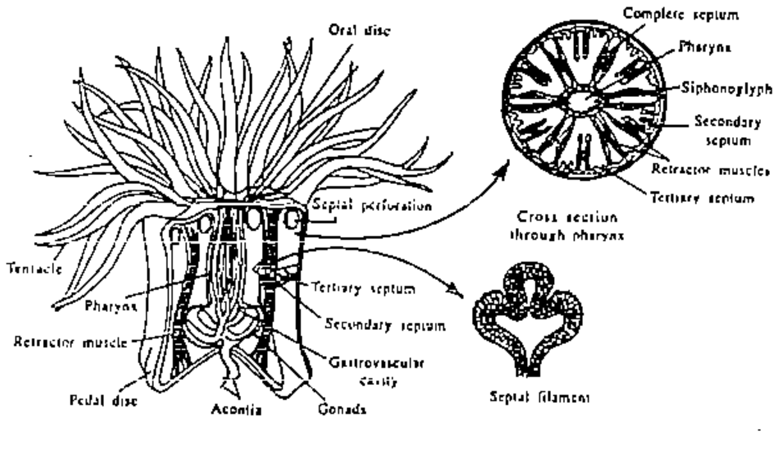

चित्र 4.19 : समुद्री ऐनीमोन की संरचना। पटों के मुक्त सीमांतों तथा ऐकांशियम धागों पर दंशपुटियां बनी होती हैं जिनके द्वारा शिकार पर स्पर्शकों द्वारा प्रारम्भ किया गया अशक्त करना पूरा किया जाता है।

उदाहरण : समुद्री ऐनीमोन सामान्य उदाहरण है। ये एकल होते हैं तथा वेलांचली (littoral) क्षेत्र में समुद्र तट के सहारे-सहारे चट्टानों से चिपके हुए पाए जाते हैं। *मेट्रिडियम* (*Metridium*) तथा *टीऐलिया* (*Tealia*) प्रतिरूपी उदाहरण हैं। इस क्लास के अन्य उदाहरण हैं *सीरिऐंथस* (*Cerianthus*), *ऐंटीपेथीयस* (*Antipathes*), *ट्यूबिपोरा* (*Tubipora*), *ऐलसायोनियम* (*Alcyonium*), *गार्गोनिया* (*Gorgonia*), *रेनिल्ला* (*Renilla*), आदि (चित्र 4.20, 4.21, 4.22, 4.23)।

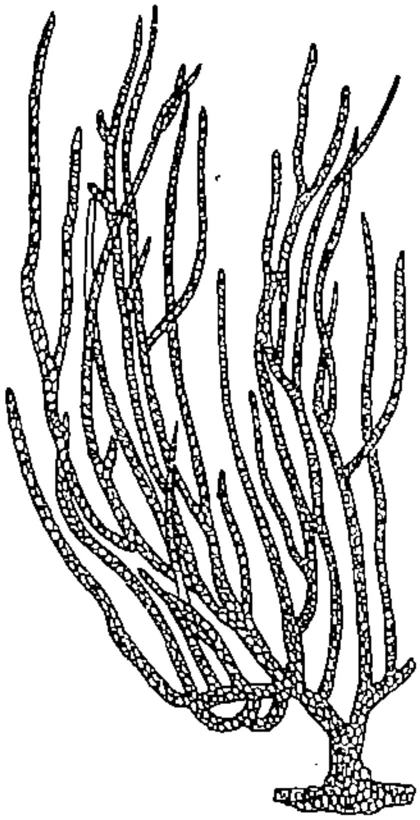

चित्र 4.20 : गार्गोनिया (Gorgonia)।

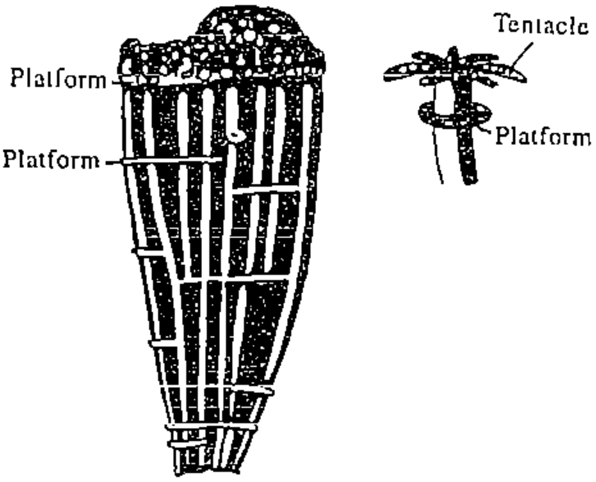

चित्र 4.21 : *ट्यूबिपोरा म्यूजिका* (*Tubipora musica*) A - पूरे निवह का कंकाल, B -नलिका के साथ एक अकेला पौलिप तथा मंच (प्लैटफार्म) का बनना आरम्भ होना।

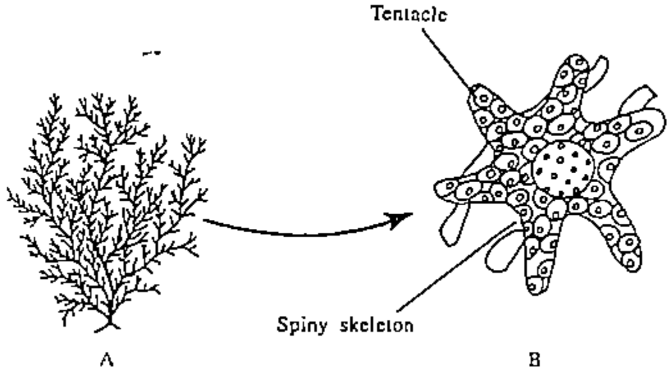

चित्र 4.22 : A – ऐंटीपेथीस (*Antipathes*) का कंकाल; यह एक काला अथवा कंटकीय प्रवाल होता है (आर्डर ऐंटीपेथेरिया, क्लास ऐंथोज़ोआ)। B – ऐंटीपेथेरिया के पौलिपों में छः साल अप्रतिकर्षी स्पर्शक होते हैं। इनके कंकाल पर बने कंटकीय प्रवर्धों के कारण इन्हें कंटीले प्रवालों का सामान्य नाम दिया गया है।

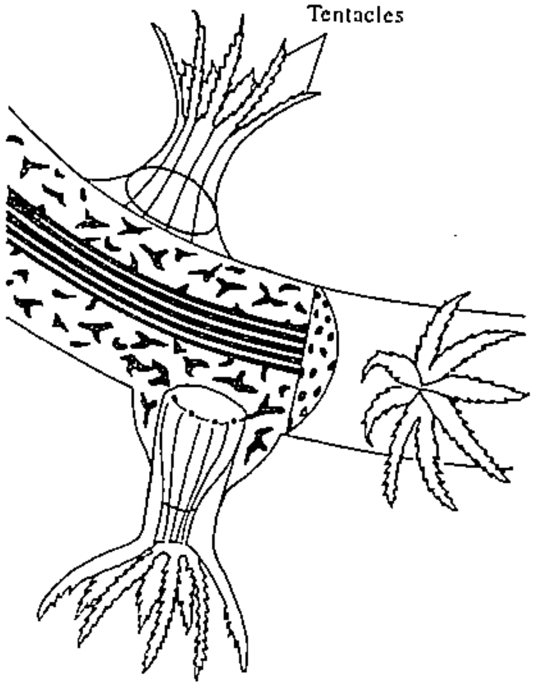

चित्र 4.23 : एक ऐल्सायोनेरियन प्रवाल (अष्टप्रवाल) के पौलिप। इनमें इन तीन रचनाओं पर ध्यान दीजिए : आठ पिच्छाकर स्पर्शक, सीनेंकाइम तथा सॉलीनिया। इनमें चूनेदार कंटिकाओं का अंत:कंकाल होता है, इन कंटिकाओं में एक श्रृंगीय प्रोटीन होता है जो एक अक्षीय शलाका के रूप में हो सकता है।

इस क्लास के अंतर्गत आने वाले कुछ प्राणी निवही एवं प्रवाल बनाने वाले होते हैं। वास्तविक प्रवालों अर्थात अरमीय स्क्लेरेक्टीनिया वर्ग के प्रवालों में पौलिप एक दूसरे के साथ पार्श्वत: संयोजित होते तथा वे अपने द्वारा बाहर को स्रवित कैल्सियमी प्यालों में जमे रहते हैं। इनमें कंकाल का स्रवण स्तम्भ के आधार की एपिडर्मिस द्वारा जीवित ऊतक के भीतर को न होकर उसके नीचे को स्रवित होता है। इस प्रकार यह बाह्यकंकाल होता है। पौलिप कंकाल में सिकोड़ लिए जा सकते हैं। निवही प्रवालों का कंकाल समय बीतने के साथ-साथ विशाल होता चला जाता है तथा जीवित ऊतक एक चादर के रूप में इसे बाहर से ढक लेता है। ऐल्सायोनेरियन प्राणी भी जिन्हें सामान्यत: ऑक्टोकोरल (अष्टप्रवाल) कहा जाता है क्योंकि इनमें आठ स्पर्शक होते हैं, निवही होते हैं जो एक विशाखित स्वरूप में पार्श्वत: संयोजित रहते हैं (चित्र 4.23)। इनमें मेसोग्लीया की अमीबीकोशिकाओं से कैल्सियम कार्बोनेट का कंकाल स्रवित होता है जो आंतरिक होता है। *कोरैलियम* (*Corallium*) मूल्यवान लाल मूंगा होता है जिसका कंकाल मूंगे के आभूषण बनाने में काम आता है। ऐल्सायोनेरियन कोमल प्रवाल होते हैं। जिनके भीतर कैल्सियम कार्बोनेट की कंटिकाएं कम संख्या में होती हैं। ऐंटीपैथेरियन कंटीले अथवा काले प्रवाल होते हैं।

4.4.3 प्रवाल-भित्तियां (Coral reefs)

आपमें से कुछ को प्रवाल-भित्तियां देखने का अवसर अवश्य मिला होगा। प्रवाल-भित्तियां मुख्यत: पथरीले प्रवालों (स्क्लेरेक्टीनियन अथवा मैड्रेपोरेरियनों) की बनी होती हैं। इनके कुछ उदाहरण हैं *फंजिया (Fungia)*, *डिप्लोरिया (Diploria)* मस्तिष्क-प्रवाल, *मॉन्टैस्ट्रीया (Montastrea)*, *ऐगैरिसिआ (Agaricia)* लेट्यूस-प्रवाल, *फ़ाविया (Favia)*, *पोराइटीस (Porites)* आदि (80 से अधिक जीनसें)। किंतु प्रवालभित्ति के निर्माण में और भी अनेक जीवों का योगदान होता है। कुछ तेज़ी से वृद्धि करने वाले केल्सियमी लाल तथा हरे शैवाल जिनमें चूने का समावेश होता है, प्रवाल निवहों पर उगते हैं तथा भित्तियों के निर्माण में बहुत ज़्यादा योगदान देते हैं। फ़ोरेमिनीफ़ेरा के कवच, केल्सियमी स्पंज़, ऐलसायोनेरियन, गौर्गोनियन, *मिलेपोरा, ट्यूबीपोरा* तथा *हीलियोपोरा*, आदि इस प्रकार की प्रवाल भित्तियों का एक बड़ा भाग होते हैं। प्रवाल भित्ति एक अति उत्पादनशील परितंत्र होता है तथा यह उथले समुद्र में चूना पत्थर की बनी हुई बड़ी निर्मित होती है। यह जीवधारियों के द्वारा हज़ारों-हज़ारों साल में जाकर बनती है लेकिन जीवित पौधे तथा प्राणी प्रवाल भित्ति की केवल सबसे ऊपरी परत में ही होते हैं जहाँ वे पहले से ही निक्षेपित केल्सियमी संहति के ऊपर और अधिक संहति जमाते जाते हैं।

अधिकतर भित्ति-निर्माणकर्ता प्रवालों (मूर्तिस्वरूप, hermatypic) की पोषण आवश्यकताएं दो प्रकार से पूरी होती हैं एक तो अंशत: उन्हीं के द्वारा पकड़े जाने वाले प्लवक (plankton) से और दूसरे अंशत: अनेक सहजीवी शैवालों (ज़ूज़ैंथेलों, zooxanthellae) से है। ये शैवाल प्रवाल पौलिपों की गैस्ट्रोडर्मिस कोशिकाओं के भीतर रहते होते हैं। इन शैवालों को प्रकाश-संश्लेपण के वास्ते सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। इनके द्वारा स्थिरीकृत किया हुआ कार्बन आगे प्रवालों में पहुँचा दिया जाता है। शैवालों के साहचर्य से प्रवालों को प्रवाल-कंकाल के निक्षेप में भी सहायता मिलती है क्योंकि इस क्रिया में वे उस कार्बन डाइऑक्साइड का भी इस्तेमाल कर लेते हैं जो श्वसन के दौरान पैदा होती है और इसे ये केल्सियम कार्बोनेट के रूप में स्रवित करते हैं। प्रवालों के द्वारा पकड़ा गया प्लवक आहार शैवालों द्वारा भी इस्तेमाल कर लिया जाता है। नाइट्रोजन तथा फॉसफोरस का मुख्य स्रोत यही आहार होता है, तथा ये तत्व शैवालों एवं प्रवाल पौलिपों के बीच परस्पर अदला-बदला जाता रहता है और उन्हीं के बीच इनका चक्र चलता रहता है। इसके अतिरिक्त प्रवालभित्तियों में बनी बड़ी दरारों एवं गुफ़ाओं में तरह तरह के अकशेरूकी एवं मछलियां बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। खुले सागरों की प्रवालभित्तियों पर अपेक्षाकृत कम पोषक तत्वों वाली जल तरंगे बहती हैं। मगर ये एक अपेक्षाकृत बंद एवं स्व-पर्याप्त लेकिन कारगर रूप में परस्परक्रिया करता हुआ तंत्र होता है जिसमें से पोषकों की हानि न के बराबर ही होती है। अत: प्रवाल भित्तियों में भरपूर स्पीशीज़-विविधता एवं उत्पादकता बनी रहती है।

उपरियुक्त कारकों के कारण मूर्तिस्वरूप प्रवालों को उथले समुद्रों की आवश्यकता होती है जो सतह से 10-60 m तक की गहराई के हों, जिसके साथ सूर्य का प्रकाश हो, ऊष्मता तथा उच्च लवणता हो। प्रवाल भित्तियां सामान्यत: 30° उत्तर तथा 30° दक्षिण अक्षांशों के बीच पायी जाती हैं। मुख्य प्रवाल भित्तियां केरिबियन तथा हिंद-प्रशांत में पायी जाती हैं।

प्रवाल भित्तियों के प्रकार

प्रवाल भित्तियां सामान्यत: तीन प्रकार की होती हैं – तटीय प्रवालभित्तियां (fringing reefs), रोधिका प्रवालभित्तियां (barrier reefs) तथा अडल (atolls) (चित्र 4.24)।

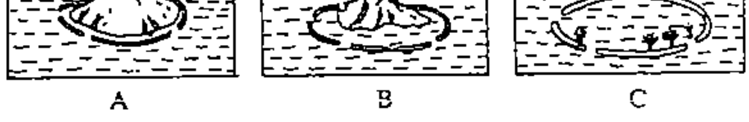

चित्र 4.24 : प्रवाल-भित्तियों का निर्माण। A -एक महासागरीय द्वीपिका के चारों ओर पनपती जाती तटीय प्रवालभित्ति; B – द्वीप से काफ़ी हटकर बनी एक छोटी रोधिका प्रवालभित्ति; तथा C – एक अडल (ऐटॉल) का निर्माण जिसके मध्य में एक लैगून बना है।

(i) **तटीय प्रवालभित्ति (Fringing अथवा Shore Reef)** - यह प्रवालभित्ति की एक मंच-जैसी संरचना होती है जो समुद्र तट के सहारे-सहारे बनी होती है और समुद्र में अपेक्षाकृत एकदम से समाप्त हो जाती है। समाप्ति होने के इस स्थान से यह एक गहरे ढाल के रूप में समुद्र की तली में पहुँच जाता है (चित्र 4.25)। हो सकता है कि इन प्रवालभित्तियों तथा समुद्रतट के बीच कोई लैगून न हो और अगर हुआ भी तो बहुत ही संकीर्ण होता है।

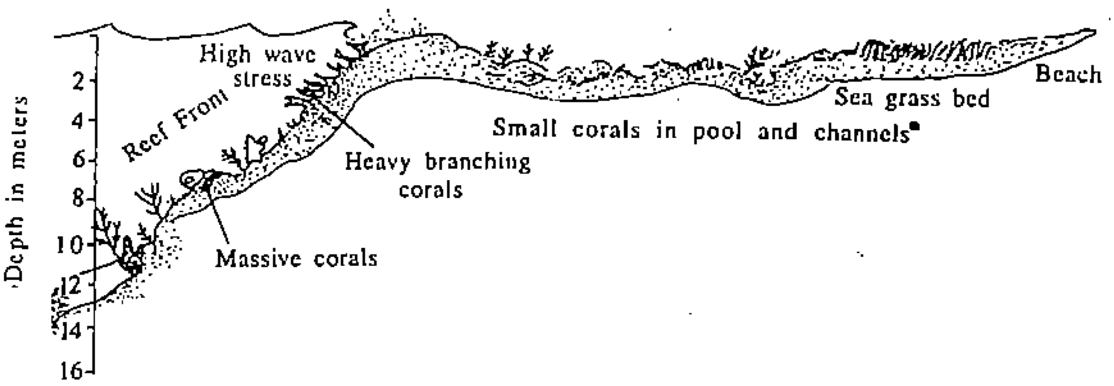

चित्र 4.25 : तटीय प्रवालभित्ति का एक सामान्यीकृत पार्श्वचित्र।

(ii) **रोधिका प्रवालभित्ति (Barrier reef)** - रोधिका प्रवालभित्ति समुद्रतट के समांतर चलती जाती है तथा तटीय प्रवालभित्ति के ही समान होती है, बस अंतर इतना है कि इसके तथा समुद्र तट के बीच एक चैनल (जलमार्ग) होती है जो अक्सर बहुत चौड़ी तथा गहरी होती है। ऑस्ट्रेलिया के उत्तर पूर्वी तट के पार तट से 145 Km दूर 2000 Km लम्बी ग्रेट बेरियर रीफ़ (Great Barrier Reef) वास्तव में एक सम्मिश्र प्रकार की प्रवालभित्ति है।

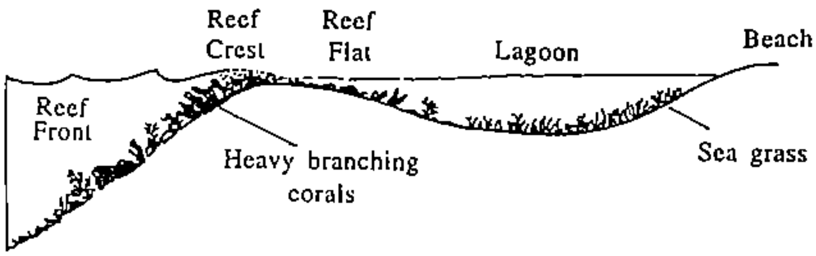

चित्र 4.26 : रोधिका प्रवालभित्ति का पार्श्वचित्र।

(iii) **अडल (Atolls)** - अडल एक वलयाकार प्रवालभित्ति होती है जो अपने बीच एक खुला लैगून घेरे रहती है मगर यह अडल एक द्वीप नहीं होता (चित्र 4.24)।

(iv) **खंड प्रवालभित्ति (Patch Reefs)** - खंड प्रवालभित्तियां छोटी अनियमित प्रवालभित्तियां होती हैं जो लैगूनों के फर्श के ऊपर को उठ जाती हैं और ये बहुसंख्यक हो सकती हैं। ऊपर बताए गए सभी तीनों मामलों में प्रवालभित्ति का यह पार्श्व जो समुद्र की ओर मुख किए रहता है। भित्ति-अग्रांत (reef front) कहलाता है। भित्ति अग्रांत के शीर्ष पर भित्ति शिखर (reef crest) होता है। भित्ति सम स्थल, भित्ति शिखर से लैगून की ओर नीचे ढलता चला जाता है। भित्ति समस्थल टूटे प्रवालों तथा प्रवालीय शैवालों एवं अन्य समुद्री घासों - जैसे उगने वाले पौधों का बना होता है।

प्रवालभित्ति निर्माण

प्रवालभित्तियां बाहर को समुद्र की तरफ बिना अधिक कठिनाई के बनती बढ़ती जा सकती हैं। परंतु इनकी उदग्र वृद्धि (vertical growth) उपलब्ध प्रकाश द्वारा सीमित होती है। गहराई के बढ़ते जाने के साथ-साथ प्रकाश का पहुँच पाना कठिन होता जाता है तथा प्रदीप्ति की तीव्रता तेज़ी से घटती जाती है। इसके साथ प्रवाल-स्पीशीज़ की संख्या भी घटती जाती है। इस प्रकार अधिकांश प्रवाल सतह से लगभग 10-30 m तक की गहराई तक सीमित होते हैं। यथापि, अधिकतर आधुनिक प्रवालभित्तियों की मोटाई 1000 m या

उससे भी अधिक तक पहुँच गयी है। ऐसा धीरे-धीरे हुआ है तथा इसका संभवतः इन दो में से कोई एक कारण रहा है - एक तो यह कि हिमनदों के पिघलने से समुद्र का तल ऊपर को उठ गया हो या फिर अधःस्तर नीचे को बैठ गया हो, या यह भी हो सकता है कि ये दोनों ही कारण हुए हों। यह भली भांति विदित है कि हिमनद कल्पों (glacial periods) के दौरान बहुत सा समुद्र जल ध्रुवीय प्रदेशों और यहाँ तक कि शीतोष्ण प्रदेशों तक में बर्फ़ बन कर बंध गया था। आज समुद्र से ढकी बहुत सी धरती उस समय खुली हुई थी। तापमान के बढ़ने और बर्फ़ के पिघलने से समुद्र का स्तर धीरे-धीरे बढ़ता गया यहाँ तक कि कभी-कभी 1 cm प्रति वर्ष तक बढ़ा। समुद्र-जल के बढ़ते जाते हुए स्तर को छूते रहने के लिए प्रवालों में भी ऊपर को वृद्धि होती गयी। यह वृद्धि हजारों-हजारों साल तक होती रही जिसके परिणामस्वरूप प्रवालभित्तियों में उदग्र (ऊपर) को वृद्धि हो गयी। बहुत ही ज़्यादा मोटाई वाली प्रवालभित्तियों के निर्माण में अधःस्तर का नीचे बैठते जाना (अवतलन, subsidence) भी शामिल था। इनके उदाहरण हैं रोधिका प्रवालभित्तियां जैसे कि ग्रेट बैरियर रीफ़ तथा अनेक अडल। अडल सामान्यतः समुद्र के ज्वालामुखीय पर्वतों की चोटी पर बने होते हैं। प्रवालभित्तियों से युक्त ज्वालामुखीय पर्वतों के धीरे-धीरे नीचे को बैठते जाने की क्षतिपूर्ति प्रवालभित्तियों की ऊपर को वृद्धि से होती जाती है जिससे प्रवालभित्ति की मोटाई 1000 m या उससे भी ज्यादा तक हो जाती है। प्रशांत के एनिवेटॉक अडल की गहराई 1250 m से भी ज़्यादा है। अन्य अडलों की तरह यह अडल भी अवतलन (subsidence) यानी अधःस्तर के नीचे को बैठते जाने और साथ ही साथ समुद्र के स्तर में होने वाले परिवर्तनों का ही परिणाम है।

4.5 फ़ाइलम टेनोफ़ोरा (PHYLUM CTENOPHORA)

इन्हें आम तौर से "कोम्ब-जेली (Comb jelly), "समुद्री-अखरोट" (sea walnuts) अथवा समुद्री गूज़बेरी कहते हैं। इनकी संख्या लगभग 100 स्पीशीज़ के हैं तथा ये सभी समुद्रवासी होते हैं। इनका यह नाम "कोम्ब-पलेटों" अर्थात कंकत यानी कंघी जैसी प्लेटों के आधार पर पड़ा है। जिनका उपयोग ये अपने संचलन में करते हैं।

4.5.1 विशिष्ट लक्षण

1. सभी मेडुसाभ होते हैं। बहुरूपता नहीं होती।
2. अन्यथा होने वाली अरीय सममिति द्विअरीय सममिति बन गयी है क्योंकि इनमें केवल दो ही स्पर्शक पाए जाते हैं।
3. मेसोग्लीया अमीबी कोशिकाओं तथा अरेखित पेशी तंतुओं से युक्त होती है।
4. दंशपुटियां नहीं होतीं। इनके बजाए इनमें आसंजी (adhesive) कोशिकाएं होती हैं - कॉलोब्लास्ट (colloblasts) अथवा लासो-कोशिकाएं (lasso cells)।
5. संचलन कंकत प्लेटों (comb plates) के द्वारा होता है, ये प्लेटें कंघी जैसी संलयित सिलियायुक्त प्लेटें होती हैं जो 8 देशांतरीय पंक्तियों (कंकत-पंक्तियां comb rows) में व्यवस्थित रहती है।
6. अवएपिडर्मिसी तंत्रिका जाल (subepidermal nerve plexus) : कंकत पंक्तियों के नीचे संकेंद्रित होता है। एक अपमुख संवेदी अंग जिसे स्टेटोसिस्ट कहते हैं, पाया जाता है।
7. जठरवाही गुहा में ये भाग होते हैं - मुख, ग्रसनी, आमाशय, एक नाल-श्रृंखला तथा गुदा छिद्र (anal pores) मांस भक्षी।
8. उभयलिंगी - गोनड गैस्ट्रोडर्मिस से व्युत्पन्न, तथा कंकत-पंक्तियों के नीचे जठरवाही नालों की दीवारों पर स्थित होते हैं। विदलन मोज़ेक और एक साइडिपिड (cydippid) लार्वा।
9. सभी समुद्रवासी अधिकतर वेलापवर्ती (पेलैजिक) तथा संदीप्तिशील (luminescent)।

प्ल्यूरोब्रैकिया (Pleurobrachia) एक उदाहरण है (चित्र 4.27)। पारदर्शी शरीर 1.5-2 cm व्यास का होता है। मौलिक रूप में नाइडेरियन मेडुसा के समान। तथापि अपमुख ध्रुव से प्रारम्भ होकर मुख ध्रुव

तक फैली हुई आठ देशांतरीय पटि्टयां सतह पर बनी होती हैं। इनमें से प्रत्येक पट्टी में कंघी जैसी अनुप्रस्थ प्लेटें होती हैं जो संलयित सिलिया की बनी होती हैं, इन्हें कंकत-प्लेटें कहते हैं। इन कंकत-प्लेटों के सिलिया के विस्पंदन से संचलन होता है। इन कंकत-प्लेटों के नीचे स्थित तंत्रिका जाल तथा अपमुख स्टैटोसिस्ट इन प्राणियों के क्रिया कलापों का समन्वय करते हैं। दो लम्बे ठोस स्पर्शक आकुंचित होकर स्पर्शक आच्छदों (tentacle sheaths) में सिकोड़ लिए जा सकते हैं। स्पर्शकों की सतह पर कॉलोब्लास्ट बने होते हैं जिनमें एक चिपकदार पदार्थ का स्राव निकलता है जो सूक्ष्म प्राणियों को पकड़ने में काम आता है। मोटी मेसोग्लीया अथवा कॉलेन्काइमा में अमीबी कोशिकाएं तथा पेशी तंतु होते हैं। ये पेशी-तंतु एक्टोडर्म से व्युत्पन्न होते हैं फिर भी ये पृथक स्पष्ट होते हैं। ये एपिथीलियम पेशी कोशिकाओं के अंश नहीं होते। मुख ग्रसनी में खुलता है जो आगे एक जठर में जारी रहती है। जठर जठवाही नालों के एक तंत्र से जुड़ा होता है ये नालें मेसोग्लीया में विशाखित होती हैं। जठर से निकली अपमुख नाल स्टैटोसिस्ट के निकट दो नन्हीं गुदा-नालों (anal canals) में विभाजित हो जाती है तथा ये गुदानालें आगे बढ़ कर गुदा छिद्रों के द्वारा बाहर को खुल जाती हैं, इन गुदा-छिद्रों में से अनपचा पदार्थ बाहर को निकाल दिया जाता है। अपमुख संवेदी अंग एक स्टैटोसिस्ट होता है (चित्र 4.27)। प्राणी उभयलिंगी होता है, प्रत्येक गोनड में दो पटि्टयां होती हैं : एक अण्डाशय की तथा दूसरी वृषण की। ये गोनड कंकत-प्लेटों के नीचे जठरवाही नालों के भीतरी अस्तर पर स्थित होते हैं। निषेचित अण्डे जल में छोड़ दिए जाते हैं। विदलन मोज़ेक (निर्धारित) प्रकार का होता है जो नाइडेरियनों से भिन्न है। इसके परिवर्धन के फलस्वरूप साइडिपिड लार्वा बनता है जो बाहर से वयस्क के समान दिखायी पड़ता है, और सीधे ही वयस्क में विकसित हो जाता है।

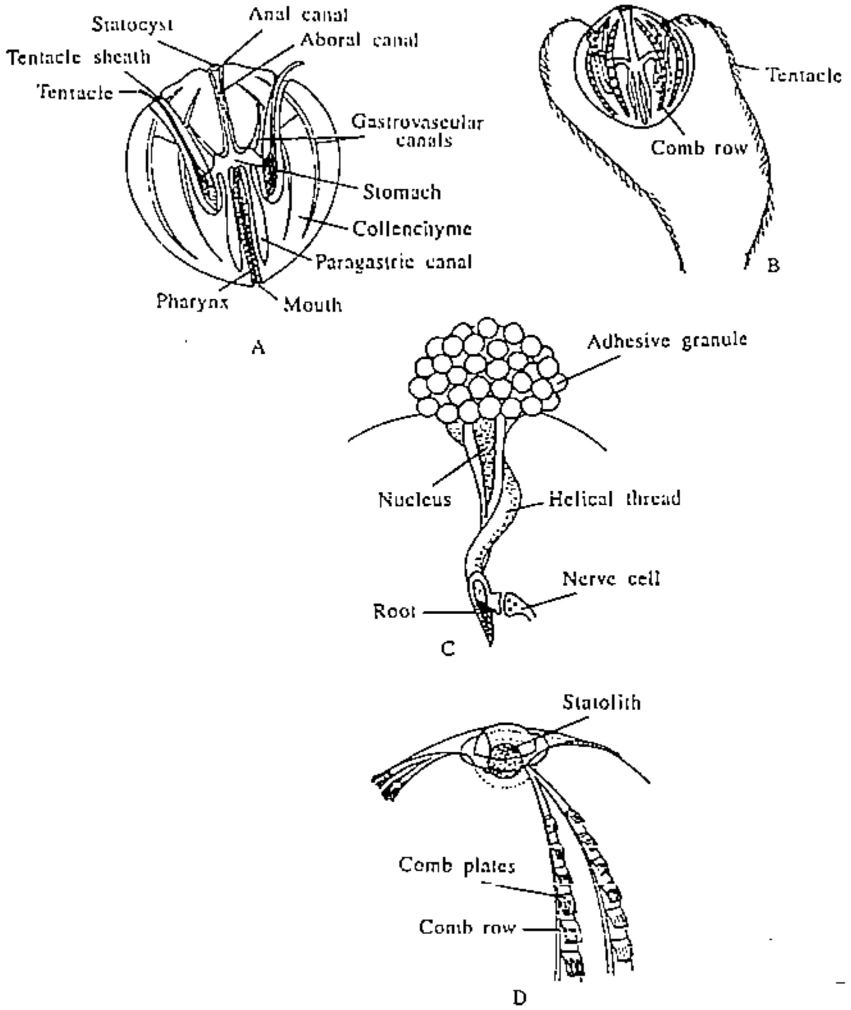

चित्र 4.27 : कंकत जेली *प्ल्यूरोब्रैकिया*, एक टेनोफ़ोर। A -अर्धसेक्शन, B -वाह्य दृश्य, C -कॉलोब्लास्ट, एक आसंजी कोशिका जो टेनोफ़ोरा की विशेषता होती है, D -कंकत पंक्तियों का अंश जिसमें कंकत-प्लेटें दर्शायी गयी हैं, प्रत्येक कंकत प्लेट लम्बे संलयित सिलिया की अनुप्रस्थ पंक्तियों की बनी होती है।

4.5.2 वर्गीकरण

फ़ाइलम टेनोफ़ोरा दो क्लासों में विभाजित किया जाता है :

1. *क्लास टेंटेकुलैटा (Class Tentaculata)* : इनमें दो स्पर्शक होते हैं। उदाहरण : *प्ल्यूरोब्रैकिया (Pleurobrachia)* (चित्र 4.27), *वीलेमेन (Valemen)*। शरीर पार्श्वत: इतना अधिक चपटा हो गया होता है कि यह एक पारदर्शी रिबन-जैसा दिखायी पड़ता है। *टेनोप्लाना (Ctenoplana)* (चित्र 4.28) मुख-अपमुख अक्ष पर चपटा हो गया होता है।

2. *क्लास न्यूडा (Class Nuda)* : स्पर्शक नहीं होते, चौड़ा मुख होता है तथा प्रसारित मुख-पथ होता है। कुछ-कुछ शंक्वाकार, उदाहरण *बेरोई (Beroe)* (चित्र 4.29)।

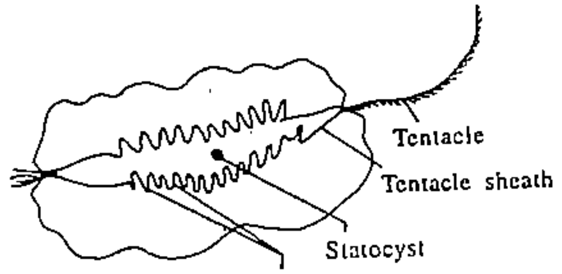

चित्र 4.28 : टेनोप्लाना (Ctenoplana)।

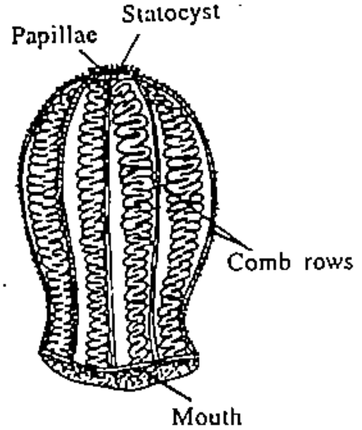

चित्र 4.29 : बेरोई (Beroe)।

बोध प्रश्न 2

(i) क) नाइडेरिया के दो महत्वपूर्ण लक्षण बताइए।

ख) टेनोफ़ोरा के दो महत्वपूर्ण लक्षण बताइए।

ग) नाइडेरिया की एपिडर्मिस परत में पायी जाने वाली पांच प्रकार की कोशिकाओं के नाम लिखिए।

घ) नाइडेरिया के चार क्लासों के नाम लिखिए।

ङ) टेनोफ़ोरा के दो क्लासों के नाम लिखिए।

(ii) रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :-

क) यद्यपि जीवित प्रवाल केवल 30 m या उसके लगभग की गहराई तक ही पाए जाते हैं, मगर विश्व की अधिकतर प्रवाल भित्तियां इससे कहीं ज़्यादा उदग्र मोटाई की होती पायी गई हैं। ऐसा .... के तथा .... के होने के कारण समुद्र के स्तर में क्रमिक वृद्धि के कारण हुआ है।

ख) टेनोफ़ोरा में .... सममिति पायी जाती है।

4.6 फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिंथीज़ (PHYLUM PLATYHELMINTHES)

आपने अभी-अभी प्राणियों के दो फ़ाइलमों (नाइडेरिया तथा टेनोफ़ोरा) के विषय में पढ़ा जो दोनों ही द्विजन स्तरीय (डिप्लोब्लास्टिक) होते हैं यानी उनका शरीर दो जनन स्तरों एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म का बना होता है। इन दोनों स्तरों के बीच की गुहा अधिकांशतः एक जेली-सदृश पदार्थ की बनी होती है जिसमें कोशिकाएं बहुत ही थोड़ी होती हैं।

अब आप त्रिजनस्तरीय प्राणियों के विषय में पढ़ना शुरू करेंगे जिनमें एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के अतिरिक्त एक और तीसरी परत मेसोडर्म भी (mesoderm) होती है। इनमें सबसे पहला फ़ाइलम है फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिंथीज़।

फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिंथीज़ के अंतर्गत कोमल शरीर वाले, द्विपार्श्वतः सममित प्राणी आते हैं। जिन्हें साधारण भाषा में चपटे कृमि (flat worms) कहते हैं। इनकी संख्या 15,000 स्पीशीज़ से ऊपर है। इनमें नाइडेरियनों की जिलेटिनी मेसोग्लीया के स्थान पर एक मेसोडर्मी, कोशिकीय पैरेंकाइमा बन जाती है; यह पैरेंकाइमा एक प्रकार को भराव ऊतक होती है जिसमें मेसोग्लीया की अपेक्षा अधिक कोशिकाएं एवं तंतु होते हैं। इस व्यवस्था से अंगों एवं अंग-तंत्रों से युक्त अधिक सम्मिश्र संघटना की नींव पड़ गयी है। इन प्राणियों में एक मिलीमीटर से लेकर कुछ मीटर तक के साइज़ पाए जाते हैं। इनमें स्वच्छंदजीवी तथा परजीवी दोनों प्रकार के प्राणी हैं। इनमें से अनेक थल पर रहते हैं तथा कुछ अलवण जल अथवा समुद्र में जहाँ वे खरपतवारों तथा अवसाद पर रेंगते रहते हैं।

4.6.1 विशिष्ट लक्षण

1. द्विपार्श्वतः सममित, और अग्र एवं पश्च सिरे।
2. देह पृष्ठ अधरतः चपटी।
3. त्रिजनस्तरीय, तीन जनन स्तरों से युक्त।
4. असीलोमी, भीतरी गुहा नहीं होती। अंगों के बीच का अवकाश मेसेन्काइम से व्युत्पन्न पैरेंकाइमा नामक एक प्रकार के योजी ऊतक से भरा होता है।
5. पाचन-तंत्र या तो कुछ में होता ही नहीं और जब होता है तब उसमें मुख तो होता है मगर गुदा नहीं होती।
6. तंत्रिका-तंत्र सीढ़ीनुमा होता है जिसमें संवेदी अंग भी होते हैं।
7. उत्सर्गी-तंत्र प्रोटोनेफ्रीडियल (प्राक्वृक्ककी) प्रकार का।
8. न श्वसन-तंत्र, न परिसंचरण तंत्र और न ही कंकाल तंत्र।
9. उभयलिंगी, सम्मिश्र जनन-तंत्र से युक्त।
10. अण्डों में सर्पिल विदलन, जो बहुत ही रूपांतरित हो सकता है।
11. परिवर्धन स्वच्छंदजीवी उदाहरणों में सामान्यतः सीधा होता है, कुछ में स्वच्छंद तैरने वाले लार्वा होते हैं (मुलेर-लार्वा अथवा गोटे-लार्वा)। कुछ परजीवियों में परिवर्धन अधिक सम्मिश्र प्रकार का हो सकता है जिसमें जीवन चक्र के दौरान अनेक लार्वा अवस्थाएं होती हैं।

द्विपार्श्व सममिति पहली बार इस वर्ग में विकसित हुई है। तथा यह सभी उच्चतर वर्गों में वापस रखी गयी है इसी कारण ये सभी फ़ाइलम एक साथ मिलाकर बाइलेटरिया (Bilateria) कहे जाते हैं। यह सममिति तथा इसके साथ-साथ पाया जाने वाला शीर्षीकरण (cephalisation), ये दोनों लक्षण जीव के एक ही दिशा में संचलन करने के अनुक्रिया स्वरूप विकसित हुए हैं - प्राणी का वह सिरा जो संचलन में आगे बना रहता है शीर्ष बन गया। जैसा कि आवश्यकता थी संवेदी अंग भी इसी सिरे पर केंद्रित हो गए। इन प्राणियों में शरीर का चपटा होना इनमें परिसंचरण-तंत्र के अभाव एवं श्वसन, उत्सर्जन तथा अन्य कार्यों

के लिए मात्र देह सतह से सीधे विसरण पर निर्भर रहने का परिणाम है। इस वर्ग के प्राणियों का एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण इनमें एपिडर्मिस तथा गैस्ट्रोडर्मिस के बीच पैरेंकाइमा का पाया जाना है, न कि सीलेंटेरेटों की तरह जिलेटिनी अकोशिकीय मेसोग्लीया का होना।

प्लैटिहेल्मिंथीज का एक अन्य विशिष्ट लक्षण इनमें लौ-कोशिकाओं (flame cells) से युक्त आदिवृक्ककों (protonephridia) का पाया जाना है (चित्र 4.30)। लौ-केशिका वास्तव में दो कोशिकाओं — एक गोपक कोशिका (cap cell) तथा एक नलिका कोशिका (tubule cell) की बनी होती है। प्यालानुमा गोपक कोशिका में, प्याले की भीतरी सतह से कशाभों (flagella) का एक गुच्छा निकलता है जो मोमबत्ती की थिरकती लौ के समान इस कोशिका की गुहा में स्पंदन करता रहता है (इसीलिए यह नाम लौ-कोशिका पड़ा)। गोपक कोशिका तथा नलिका कोशिका अपने अंगुलियों जैसे प्रवर्धों के एक-दूसरे में फंसे होने से परस्पर जुड़ी रहती हैं। जिस स्थान पर इन दोनों कोशिकाओं में जहाँ इस प्रकार की अंतरागुलिक संधि बनी होती है वहाँ पर बीच-बीच में कुछ खाली जगहें रह जाती हैं। कशाभों के स्पंदन से शरीर का द्रव इन्हीं खाली जगहों गवाक्षों के माध्यम से लौ कोशिका की अवकाशिका के भीतर पहुँचता है तथा उसका प्रवाह वाहिनी-तंत्र की ओर बढ़ाया जाता रहता है। इस प्रक्रम के दौरान, अनेक आयन तथा विविध अणु पुन: अवशोषित कर लिए जाते हैं। इस प्रकार की अनेक लौ-कोशिकाएं परस्पर जुड़कर एक वाहिनी-तंत्र बनाती हैं जो वृक्ककछिद्रों (nephridiopores) के द्वारा बाहर को खुलता है। यद्यपि इस तंत्र को प्राय: उत्सर्गी कहा जाता है, किंतु जान पड़ता है कि यह मुख्यत: परासरणनियमनी (osmoregulatory) है क्योंकि समुद्री उदाहरणों में यह या तो बहुत ह्रासित होता है या होता ही नहीं। नाइट्रोजनी अपशिष्ट वास्तव में देह की सतह से विसर्जित किए जाते हैं।

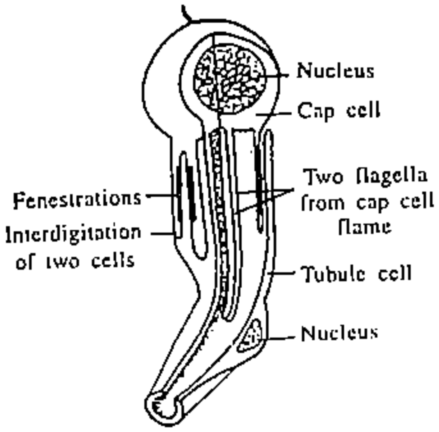

चित्र 4.30 : प्राक्वृक्कक-तंत्र जिसमें एक लौ-कोशिका की विस्तृत संरचना दिखायी गयी है।

प्लैटिहेल्मिंथीज़ का एक और पहलू है अंग-तंत्रों जैसे कि प्राक्वृक्कको, अशन, जनन-तंत्रिका, संवेदी आदि अंगों का पहली बार अधिक विशद एवं स्पष्ट विकास होना।

प्लैटिहेल्मिंथीज़ के आहार नाल में केवल एक ही छिद्र, मुख पाया जाता है। स्वभावत: ये प्राणी अन्य प्राणियों के ऊतकों का आहार करते हैं हालांकि कुछ ऐसे भी हैं जो शैवालों को खाते हैं। अधिसंख्य स्पीशीज़ परजीवी होती है, जिनमें अपने परपोषी पर चिपकने के लिए कुछ विशेषित अंग बने होते हैं। आहार-नाल के परजीवी चूंकि अपने परपोषी के आंशिक पचे भोजन से घिरे होते हैं इसलिए उनमें अपनी आहार-नाल बिल्कुल ही नहीं होती। परंतु इस प्रकार के प्लैटिहेल्मिंथ परजीवियों के शरीर की सतह, घेरे रहने वाले पचे भोजन का अवशोषण करने के वास्ते उपयुक्त रूप में अपरिवर्तित रहती है। जनन-तंत्र इन प्राणियों में विस्तृत रूप में बना होता है तथा इसमें बहुत अधिक संख्या में अण्डे बना सकने की क्षमता होती है।

4.6.2 वर्गीकरण (Classification)

फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिंथीज़ को चार क्लासों में विभाजित किया जाता है - **टर्बेलैरिया, मॉनोजीनिया, ट्रिमैटोडा** तथा **सेस्टोडा**।

1. **क्लास टर्बेलैरिया (Class Turbellaria) – ये अधिकांशत: स्वच्छंदजीवी एवं समुद्रवासी होते हैं। कुछ स्थलीय होते हैं जो आर्द्र क्षेत्रों तक ही सीमित होते हैं। इन प्राणियों का शरीर सिलियायुक्त एपिडर्मिसी कोशिकाओं द्वारा ढका रहता है, इन कोशिकाओं में रेब्डॉइड होते हैं। मुख अधर दिशा पर होता है।**

इन प्राणियों का आकार कुछ मिलीमीटर से कुछ सेंटीमीटर तक होता है। ये अपने शरीर पर बने सिलिया द्वारा गति करते हैं। बड़े आकार के प्राणियों में शरीर के ऊर्मिलनों से भी संचलन में सहायता मिलती है। अनुप्रस्थ सेक्शन (चित्र 4.31) में आप सिलियायुक्त एपिडर्मिसी कोशिकाओं के बने बाहरी आवरण को देख सकेंगे जिसमें इन कोशिकाओं के भीतर रेब्डॉइड (rhabdoids) नामक शलाका जैसी संरचनाएं बनी हैं। सिलिया पृष्ठ सतह पर अविद्यमान हो सकते हैं। यदि आप प्राणी को छेड़ेंगे तो ये रेब्डॉइड बाहर को फूट पड़ते हैं। अत: ये रक्षात्मक हैं। रेब्डॉइडों से एक श्लेष्म भी निकलता है जो शरीर पर लिपटा रहता है। एपिडर्मिस के नीचे वृत्ताकार, तिरछे तथा अनुदैर्घ्य पेशी तंतु बने होते हैं। ये तंतु अरेखित होते हैं। आपको पैरेंकाइमा में पड़ी श्लेष्म ग्रंथि-कोशिकाएं भी दिखायी देंगी। ये कोशिकाएं बाहर को खुलती हैं। भीतरी अंगों के बीच की गुहा में एक अदृढ़ प्रकार का संयोजी ऊतक भरा होता है, यह ऊतक अनियमित आकृतियों वाली कोशिकाओं का बना होता है शीर्ष पर सरल नेत्र भी दिखायी देंगे। शीर्ष में तंत्रिका-ऊतक गुच्छिकाओं (गैंगलियनों, ganglia) के रूप में सकेंद्रित होता है, और ये गुच्छिकाएं मस्तिष्क होती हैं। आहार-नाल तीन प्रकार की हो सकती है - ठोस सिंसिशियमी संहति, साधारण थैली अथवा बहुसंख्यक पार्श्व अंधवर्धों के रूप में। टर्बेलैरियनों में एक सुविकसित जनन-तंत्र होने के अतिरिक्त, इनमें विशेषत: अनुप्रस्थ द्विविभजन द्वारा अलैंगिक जनन की अपार क्षमता होती है। इनमें पुनरुद्भवन की भी विस्तृत क्षमता पायी जाती है। उदाहरण *ड्यूगीसिया* (*Dugesia*) है जो एक प्लैनेरिया, *माइक्रोस्टोमम* (*Microstomum*) तथा *प्लैनोसेरा* (*Planocera*) (चित्र 4.32, 4.33)।

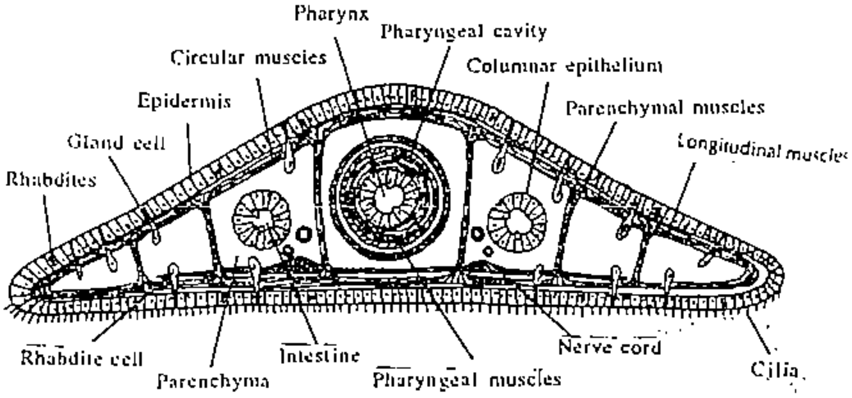

चित्र 4.31 : प्लैनेरियन का ग्रसनी प्रदेश में से अनुप्रस्थ सेक्शन, जिसमें देह संरचनाओं के बीच के संबंध दर्शाए गए हैं।

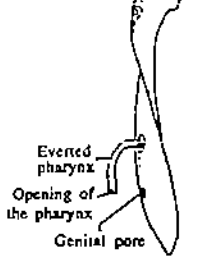

चित्र 4.32 : प्लैनेरिया, पार्श्व दृश्य।

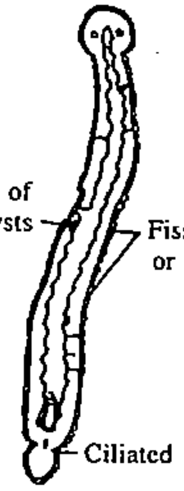

चित्र 4.33 : माइक्रोस्टोमम।

2. **क्लास मॉनोजीनिया (Monogenea) – इन प्राणियों का शरीर एक सिलियारहित सिनसिशियम से ढका रहता है जिसे टेग्यूमेंट (tegument) कहते हैं। ये प्राणी पत्ती जैसी आकृति से लेकर सिलिंडराकार तक होते हैं। ये परजीवी होते हैं, और प्राय: मछलियों की त्वचा अथवा उनके गिलों पर रहते हैं। इसके लिए उनके शरीर के पश्च भाग में संलगनी अंग होते हैं जो हुकों, चूषकों, कलैम्पों, आदि के रूप में होते हैं। इन प्राणियों का परिवर्धन सीधा होता है, और परपोषी केवल एक ही होता है। इनका प्राय: एक सिलियायुक्त लार्वा होता है।**

ये एकपोषीय (monogenetic) पर्णाभ (फ़्ल्यूक) होते हैं। टर्बेलेरियनों से ये कई मुख्य बातों में भिन्न होते हैं। इनमें सिलियायुक्त एपिडर्मिस के बजाए एक सिलियारहित सिनसिशियमी टेग्यूमेंट पाया जाता है। इनमें एक पेशीय ग्रसनी होती है जिसके द्वारा परपोषी से सक्रिय रूप में आहार का अंतर्ग्रहण करके उसे आहार नाल में पहुँचाती है। आहार नाल दो भागों में को विशाखित हो जाती है। वयस्क में संवेदी अंग नहीं होते। उदाहरण : *गाइरोडैक्टिलस* (*Gyrodactyus*) (चित्र 4.34), *पौलीस्टोमा* (*Polystoma*) (चित्र 4.35) जो मेंढकों के मूत्राशय में पाया जाता है।

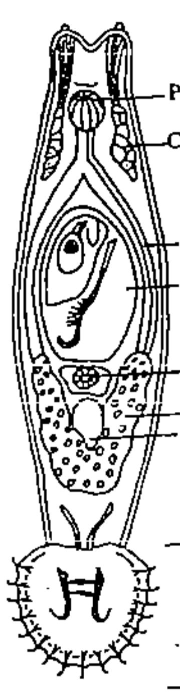

चित्र 4.34 : गाइरोडेक्टिलस सिलिंडरीफॉर्मिस (Gyrodactylus cylindriformis) अधर दृश्य।

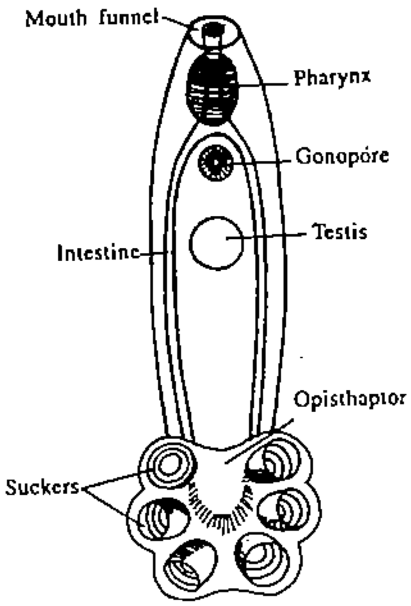

चित्र 4.35 : पौलीस्टोमा (Polystoma)

3. **क्लास ट्रिमैटोडा (Class Trematoda) – इन प्राणियों का शरीर भी पत्ती-सदृश से लेकर सिलिंडराकार तक हो सकता है जिस पर टेग्यूमेंट नामक सिलियारहित सिनसिशियम का आवरण बना होता है। तथापि, इनमें मुख चूषक तथा अधर चूषक होते हैं, लेकिन हुक नहीं होते। परिवर्धन परोक्ष होता है। अन्त्य परपोषी (definitive host) अर्थात् वह परपोषी जिसके भीतर लैंगिक जनन होता है, सदैव कोई कशेरूकी होता है। इनका प्रथम अथवा मध्यस्थ परपोषी जिसके भीतर अलैंगिक जनन होता है, मौलस्क होता है।**

ये द्विपोषीय (digenetic) पर्णाभ होते हैं जो अंत: परजीवी हैं और जिनमें से अधिकतर मानव तथा पालतू जानवरों में रोग उत्पन्न करते हैं। एक प्रतिरूपी उदाहरण *फैसियोला (Fasciola)* चित्र 4.36 है। *फैसियोला हिपैटिका (Fasciola hepatica)* भेड़ में यकृत गलन पैदा करता है। इसका वयस्क यकृत की पित्त वाहिनी में रहता है। अंडे परपोषी की विष्ठा के साथ बाहर निकल जाते हैं। अंडे से एक लार्वा निकलता है जिसे मिरैसिडियम (miracidium) कहते हैं। यह मिरैसिडियम एक घोंघे में प्रवेश करता है जो द्वितीयक परपोषी (secondary host) होता है। घोंघे में मिरैसिडियम अगली अवस्था स्पोरोसिस्ट (sporocyst) बन जाता है। प्रत्येक स्पोरोसिस्ट में जननिक संहतियां होती हैं जिनमें माइटोसिस हो-होकर बहुसंख्यक प्राथमिक रीडिया (redia) बन जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक प्राथमिक रीडिया में से बहुसंख्यक द्वितीयक रीडिया बन जाते हैं। इसी प्रकार द्वितीयक रीडिया में से बहुसंख्यक सर्केरिया (cercaria) बन जाते हैं। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि किस तरह एक ही अण्डे से कितनी बड़ी संख्या में संततियां बन जाती हैं। सर्केरिया किसी वनस्पति पर अपने को एक पुटी (cyst) के रूप में बना लेती है तथा इस अवस्था में इसे मेटासर्केरिया (metacercaria) कहते हैं। ऐसे मेटासर्केरियाओं को रोगी प्राणी वनस्पति के साथ-साथ खा जाते हैं। उनके पेट के भीतर ये मेटासर्केरिया पुटियां फूट जाती हैं और उनसे एक नया बाल-पर्णाभ (juvenile fluke) बन जाता है, एवं इस प्रकार जीवन-चक्र पूरा होता है।

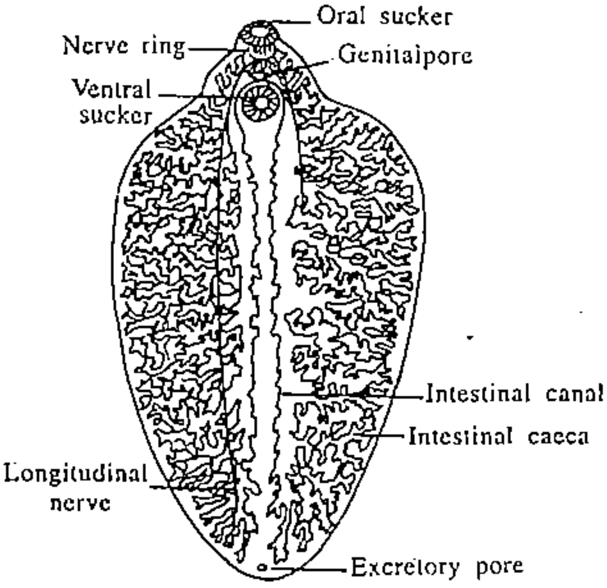

चित्र 4.36 : फैसियोला (Fasciola) ।

एक अन्य उदाहरण *शिस्टोसोमा* (*Schistosoma*) (चित्र 4.37) का है जिसे रक्त पर्णाभ (blood fluka) भी कहते हैं। इसकी तीन स्पीशीज *एस. मैंसोनाई* (*S.mansoni*), *एस. जैपोनिकम* (*S. japonicusm*) तथा *एस. हीमैटोबियम* (*S. haematobium*) से मनुष्यों में शिस्टोसोमता पैदा होती है। आप देखेंगे कि शिस्टोसोमैटिड प्राणी लिंगभेदी (gonochoristic) अर्थात एकलिंगाश्रमी (dioecious) होते हैं जिनमें नर और मादा अंग अलग-अलग व्यष्टियों में होते हैं। इस लक्षण में ये इस फ़ाइलम की अन्य सभी स्पीशीज़ से भिन्न होते हैं। परिपक्व नर और मादा एक दूसरे के साथ निकट साहचर्य बनाते हुए पाए जाते हैं। चित्र 4.37। नर प्राणी में एक अधर खांच होती है जिसके भीतर पतली मादा पकड़ी थामी रहती है।

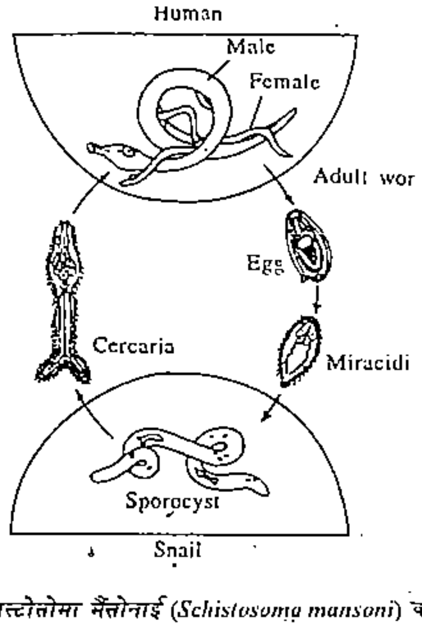

चित्र 4.37 : *शिस्टोसोमा मैंसोनाई* (*Schistosoma mansoni*) का जीवन-चक्र।

4. **क्लास सेस्टोडा (Class Cestoda) – ये फीता-कृमी हैं जो विविध कशेरूकियों के पाचन-मार्गों के भीतर परजीवी रूप में पाए जाते हैं। इन प्राणियों में भी शरीर के ऊपर एक सिलियारहित सिनसिशियमी टेग्यूमेंट होता है, परंतु इनका शरीर फ़ीतानुमा होता है जिसके अग्र सिरे पर एक स्कोलेक्स (scolex) होता है, और स्कोलेक्स में परपोषी ऊतकों से चिपके रहने के वास्ते चूषक एवं हुक बने होते हैं। इनका शरीर बहुसंख्यक प्रोग्लौटि्डों में विभाजित रहता है। आप देखेंगे कि इन प्राणियों में पाचन अंग नहीं होते। परिवर्धन परोक्ष प्रकार का होता है जिसमें दो या अधिक परपोषी होते हैं।**

एक प्रतिरूपी उदाहरण **टीनिया (Taenia)** है। चूंकि ये प्राणी अपने परपोषी के पचे हुए आहार पदार्थ के भीतर डूबे हुए होते हैं अतः इनमें मुख या गुदा नहीं होते। आहार सीधे ही अति अपरिवर्तित टेग्यूमेंट में से अवशोषित हो जाता है (चित्र 4.38)। स्कोलेक्स-सिरे से नए अपरिपक्व खण्ड अथवा प्रोग्लौटिड एक के बाद एक बनते जाते हैं जो धीरे-धीरे अपने भीतर जनन-तंत्र विकसित करते हुए परिपक्व हो जाते हैं। जैसे-जैसे ये प्रोग्लौटिड पीछे को बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे आगे से और नए प्रोग्लौटिड बनते जाते हैं (ध्यान दीजिए कि ऐनेलिडों से यह बिल्कुल विपरीत स्थिति है जिनमें नए खण्ड पश्च दिशा में बनते हैं जिसके उपरांत परिपक्व होते हुए वे खण्ड आगे को चलते जाते हैं)। विपरीत सिरे के परिपक्व प्रोग्लौटिडों में अण्डे ही अण्डे भरे होते हैं - मानो वे मात्र अण्डों के थैले हों, इसी कारण उन्हे अण्डपूर्ण (gravid) प्रोग्लौटिड कहते हैं। परिपक्व अण्डों से भरे प्रोग्लौटिड अंततः टूट कर अलग हो जाते हैं और परपोषी के शरीर से बाहर निकल जाते हैं। मनुष्यों में पाए जाने वाले पूर्ण विकसित, वयस्क गो-मांस फीता कृमि *टीनिया सैजिनैटा* (*Taenia saginata*) में 700-1000 या उससे भी ज़्यादा प्रोग्लौटिड हो सकते हैं। यह फीता-कृमि हर रोज़ 3-10 प्रोग्लौटिड बाहर को छोड़ता रह सकता है, तथा ऐसे प्रत्येक प्रोग्लौटिड में 1,00,000 तक अण्डे भरे हो सकते हैं। मल के साथ विसर्जित होने वाले प्रोग्लौटिड वनस्पति पर रेंगते-ऐंठते रहते हैं जहाँ से वे चारा चरते मवेशियों (गाय-बैलों) द्वारा खा लिए जा सकते हैं। इन मवेशियों के आहार-नाल में अण्डों का स्फुटन होता है और छः हुकों वाला एक लार्वा निकल आता है जिसे ऑन्कोस्फ़ीयर (oncosphere) कहते हैं। यह ऑन्कोस्फ़ीयर आंत्र की दीवार को वेधकर रक्त वाहिनियों में पहुँच जाता है और वहाँ से रक्त धारा में बहता हुआ ऐच्छिक पेशियों में पहुँच जाता है। यहाँ इनमें पुटीभवन होकर ये ब्लैडरवर्म (bladder worm) बन जाते है। जिन्हें सिस्टिसर्कस (cysticercus) कहा जाता है, इस अवस्था में एक अंतर्वलित स्कोलेक्स बन गया होता है। जब इस प्रकार के ब्लैडरवर्म-युक्त गोमांस को कोई मानव खाता है तब उस मानव परपोषी की अंतड़ियों में ऐसे ब्लैडरवर्म की पुटी-भित्ति घुल जाती है, स्कोलेक्स बहिर्वलित होकर अंतड़ी की दीवार से चिपक जाता है, नए प्रोग्लौटिड बनने लगते हैं और इस प्रकार वह मानव परपोषी के भीतर अपना जीवन-चक्र प्रारम्भ कर देता है।

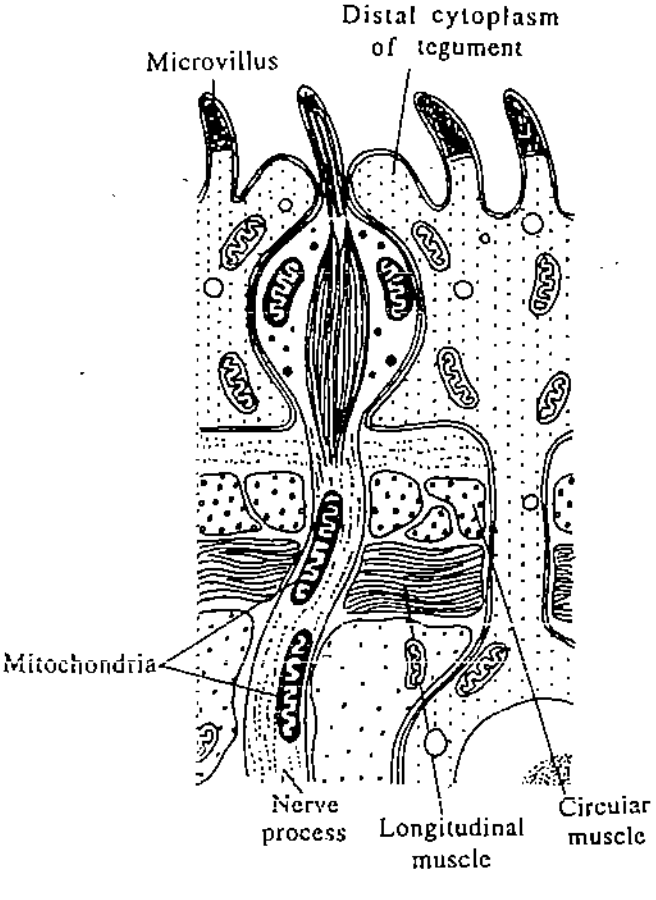

चित्र 4.38 : इकाइनोकॉक्कस ग्रैनुलोसस (Echinococcus granlosus) के टेग्यूमेंट के संवेदी सिरों में से गुजरते हुए अनुदैर्ध्य सेक्शन का योजना आरेख।

अन्य उदाहरणों मे सूअर के मांस का फीता कृमि *टीनिया सोलियम* (*Taenia solum*) (चित्र 4.39) तथा मछली फीता-कृमि *डाइफ़िल्लोबॉथ्रियम लैटम* (*Diphyllobothrium latum*) आते हैं। *इकाइनोकॉक्कस ग्रैनुलोसस* (चित्र 4.40A) कुत्ता-फीताकृमि है, इस फीता-कृमि की बाल्यावस्थाएं मानव सहित अनेक स्तनी स्पीशीज़ में होती पायी जाती हैं। इस उदाहरण में मानव द्वितीयक अथवा मध्यस्थ परपोषी है। बाल्यावस्था एक विचित्र प्रकार की सिस्टिसर्कस होती है जिसे हाइडैटिड सिस्ट (hydatid cyst) कहते हैं (चित्र 4.40B)। यह लम्बे समय तक बढ़ती जाती तथा बहुत बड़े आकार की हो जाती है। मुख्य सिस्ट में एककोष्ठकी कक्ष होता है, जिसमें से दीवार में से मुकुलित हुई अन्य संतति सिस्टें बन सकती है तथा ऐसी प्रत्येक सिस्ट में हजारों-हजारों स्कोलेक्स बन जा सकते हैं। कुत्ते द्वारा खा लिए जाने पर प्रत्येक स्कोलेक्स से एक फीता कृमि बन जाता है।

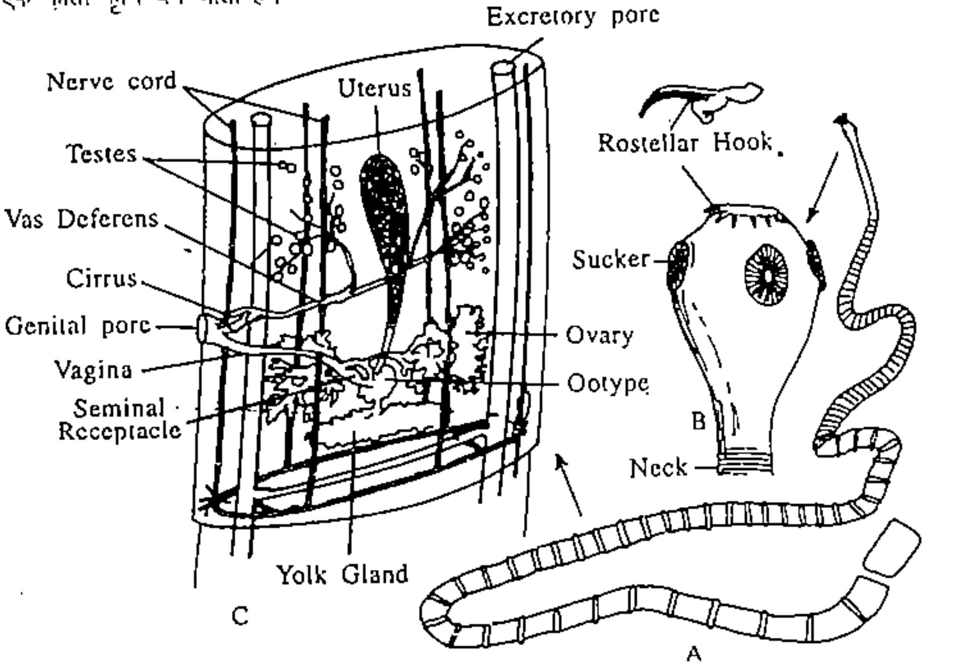

चित्र 4.39 : टीनिया सोलियम : A - पूर्ण प्राणी; B - इसी का आवर्धित स्कोलेक्स; C - एक आवर्धित परिपक्व प्रोग्लौटिड।

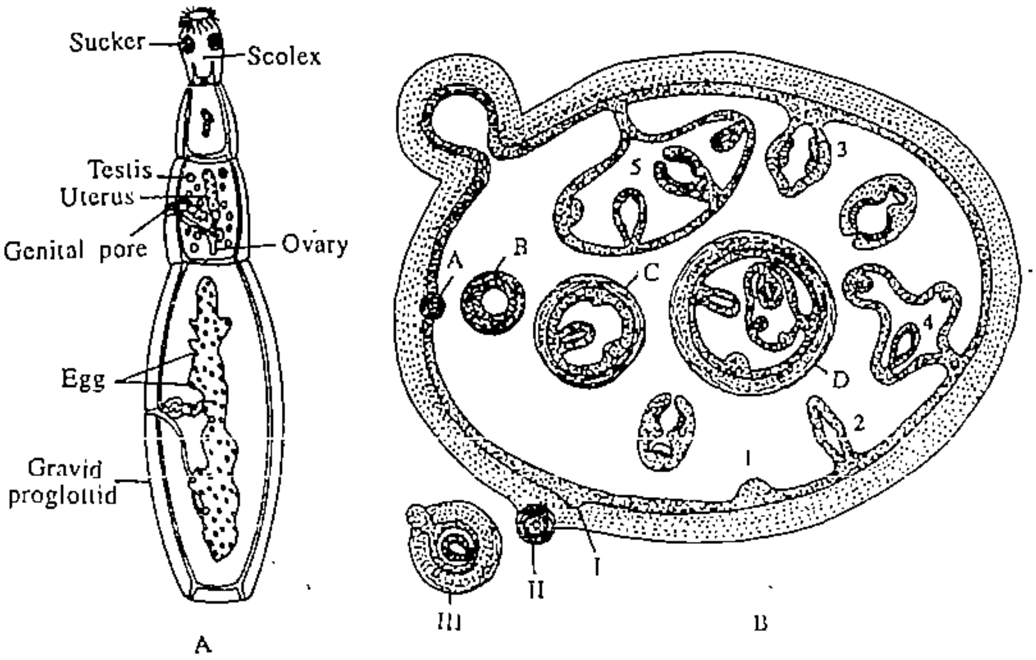

चित्र 4.40 : इकाइनोकॉक्कस ग्रैनुलोसस : A -वयस्क फीता-कृमि कुत्ते अथवा अन्य कार्निवोरा-प्राणियों की अंतड़ी में रहता है। B -हाइडैटिड सिस्ट – 1–5 जनन स्तर से स्कोलेक्स के विकास की अवस्थायें, A-D अंतर्जात स्तर के मुकुलन (budding) की अवस्थायें, I-III संतति पुटी (daughter cyst) के मुकुलन की अवस्थायें।

बोध प्रश्न 3

1. कोष्ठकों में दिया गया कौन-सा शब्द सही है?
   प्लैटिहेल्मिंथीज़ में लौ-कोशिकाओं का कार्य .... है। (उत्सर्गी / परासरणनियमनी)
2. प्लैटिहेल्मिंथीज़ के कोई ऐसे तीन महत्वपूर्ण लक्षण बताइए जिनके आधार पर इस वर्ग को नाइडेरियनों से अधिक उन्नत माना जाता है।
3. दिए गए लक्षणों को प्लैटिहेल्मिंथीज़ के उन क्लासों के साथ जोड़िए जिनके साथ वे सही-सही मेल खाते हैं :

	क्लास		लक्षण
a)	टर्बेलेरिया	i)	स्कोलेक्स का पाया जाना
b)	मॉनोजीनिया	ii)	मुखीय तथा अधर चूषकों का होना, परंतु हुक नहीं होते
c)	ट्रिमैटोडा	iii)	पश्च हुकों, चूषकों तथा कलैम्पों का होना
d)	सेस्टोडा	iv)	शरीर पर आवरण बनाती सिलियायुक्त एपिडर्मिसी कोशिकाएं

4.7 स्यूडोसीलोमैटा - फ़ाइलम निमैटोडा (PSEUDOCOELOMATA - PHYLUM NEMATODA)

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं स्यूडोसीलोमैटा की देहगुहा कूटसीलोम होती है। यह भ्रूण की वह मूल ब्लास्टोसील होती है जो आहार-नाल तथा देह-भित्ति के बीच विद्यमान बनी रहती है। इसके अस्तर में किसी प्रकार की मेसोडर्मी पेरिटोनियम परत नहीं होती। इस प्रकार का अस्तर होना यथार्थ सीलोम का लक्षण है जो सीलोमैटा-प्राणियों की देहगुहा होती है।

स्यूडोसीलोमैटा वर्ग में ये फ़ाइलम आते हैं - गैस्ट्रोट्राइका (Gastrotricha), काइनोरिंका (Kinorhyncha) लोरिसिफेरा (Loricifera), प्रिएपुलाइडा (Priapulida), नेमैटोमार्फा (Nematomorpha), एकैंथोसेफैला (Acanthocephala), एंटोप्रॉक्टा (Entoprocta), नेमैटोडा, तथा रोटिफेरा। ये सभी समूह बहुजाति इतिहासीय हैं - यानी ये विभिन्न पूर्वजों से निकले हैं। ये विषमांग हैं। इनमें हम केवल दो फ़ाइलमों का अध्ययन करेंगे - ये फ़ाइलम हैं नेमैटोडा तथा फ़ाइलम रोटिफेरा।

4.7.1 फ़ाइलम नेमैटोडा

फ़ाइलम नेमैटोडा को सामान्य भाषा में गोल-कृमि (round worms) कहा जाता है। यह एक बहुत ही सफल प्राणि-वर्ग है जिसमें लगभग 12000 ज्ञात स्पीशीज़ आती है लेकिन आशा है कि अज्ञात स्पीशीज़ की संख्या इससे भी कहीं ज्यादा होगी (लगभग 5,00,000)। ये मृदा में पाए जाते हैं, सभी प्रकार के जलीय पर्यावरणों, प्राणियों तथा पौधों में, परजीवी रूप में अथवा अपरजीवी रूप में पाए जाते हैं। इनमें ये रोग पैदा करते हुए भी पाए जाते हैं। तथापि, इनमें संरचनात्मक विविधता बहुत ही कम होती पायी जाती है, ये सभी एक ही आधारभूत योजना के अनुसार बने होते हैं।

4.7.2 विशिष्ट लक्षण

1. कृमिरूप शरीर, द्विपार्श्वत: सममित, परंतु, इनमें अनुदैर्ध्य अक्ष पर अरीय सममिति होने की प्रवृत्ति होती है। अनुप्रस्थ काट में वृत्ताकार, खण्ड नहीं होते और न ही उपांग होते हैं।
2. एक सम्मिश्र क्यूटिकल होता है।
3. शरीर में दो से अधिक कोशिका परतें होती हैं, ऊतक एवं अंग होते हैं।
4. देह-भित्ति में वृत्ताकार पेशियां नहीं होतीं।

5. देह-गुहा कूटसीलोम होती है, जिसके भीतर शारीरिक द्रव्य उच्च दाब पर होता है।
6. आहार-नाल अग्र सिरे पर मुख से आरम्भ होकर पीछे उपांत स्थित गुदा पर समाप्त होती है। ग्रसनी पेशीय होती है।
7. एक अधर, एक पृष्ठीय तथा दो पार्श्वीय एपिडर्मिसी रज्जुएं और इनके बीच-बीच बने चतुर्थांशों में व्यवस्थित अनुदैर्ध्य पेशियां।
8. अनुदैर्ध्य तंत्रिकाएं पृष्ठ तथा अधर एपिडर्मिसी रज्जुओं में होती है जिनका पेशी कोशिकाओं से सीधा सम्पर्क होता है।
9. देहभित्ति की पेशियों में कुछ विचित्र लक्षण होते हैं।
10. परिसंचरण-तंत्र नहीं होता। लौ-कोशिकाएं नहीं होतीं और न ही वृक्कक होते हैं। न सिलिया होते हैं और न ही कशाभ। उत्सर्गी नलिकाएं एक या सीमित संख्या में रेनेट कोशिकाओं (renette cells) के रूप में होती हैं।
11. अत्यधिक निर्धारी (determinate) प्रकार का विदलन।
12. यूटेली (Eutly) - वृद्धि में कोशिका-आकार बढ़ता है न कि कोशिका-संख्या।

नेमैटोडों की क्यूटिकल इस वर्ग में विशिष्ट प्रकार की होती है। यह निर्जीव एवं बहुपरती होती है जिसमें एक परत के सर्पिल तंतु दूसरी परतों के तंतुओं को आड़ा पार करते हुए बने होते हैं। (चित्र 4.41A)। इस प्रकार की क्यूटिकल संघटना इतनी पर्याप्त शक्ति प्रदान कर देती है जिससे वह देह गुहा के भीतर भरे तरल की उच्च जलस्थैतिक दाब को सह लेती है।

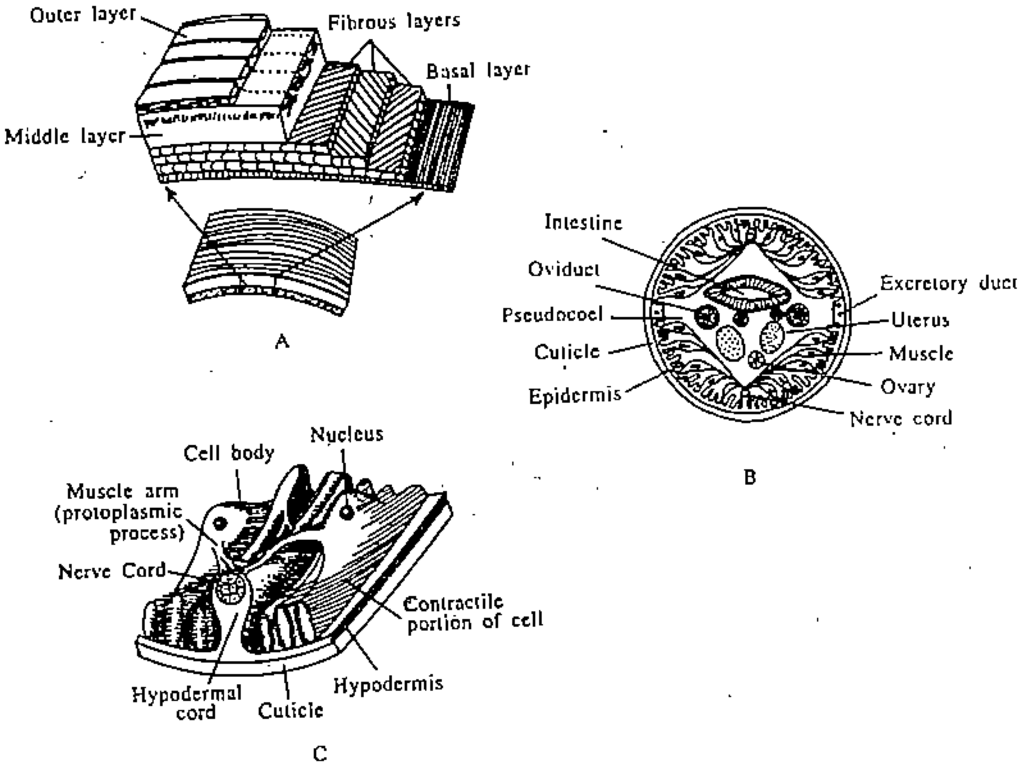

चित्र 4.41 : A - नेमैटोड क्यूटिकल की संरचना। क्यूटिकल में एक बाहरी रेखित परत, एक भीतरी समांग परत तथा तंतुमय परतों का एक सम्मिश्र होता है। B तथा C - नेमैटोड की संरचना जैसी कि वह ऐस्केरिस की मादा में दिखायी पड़ती है। B -अनुप्रस्थ सेक्शन। C -एकल पेशी कोशिका, स्पिंडल हाइपोडर्मिस से सटी-जुड़ी होती है, पेशी भुजा पृष्ठ अथवा अधर तंत्रिका तक प्रसारित रहती है।

देह-भित्ति के अनुप्रस्थ सेक्शन (चित्र 4.41B) में क्यूटिकल के नीचे एपिडर्मिस परत दिखायी पड़ती है। एपिडर्मिस में चार अनुदैर्ध्य रज्जुएं पायी जाती हैं - एक मध्य अधर, एक मध्यपृष्ठ तथा दो पार्श्वीय। पृष्ठ

तथा अधर रज्जुओं में अनुदैर्ध्य महातंत्रिकाएं होती हैं तथा पार्श्व रज्जुओं में उत्सर्गी नाल होती है। पेशी तंतु इस फ़ाइलम में विचित्र होते हैं। ये तंत्रिका-चालक इकाइयां बनाते हैं। इनके संकुंचनशील अवयव एपिडर्मिस पर टिके होते हैं (चित्र 4.41C)। एक तंत्रिका संभरण प्रक्रम पेशी-कोशिका से प्रारम्भ होकर तंत्रिका-रज्जु में चलता जाता है। इसके द्वारा सभी पेशी-कोशिकाओं का एक साथ संकुंचन संभव होता है। आप यहाँ देखेंगे कि पेशी-तंतुओं के तंत्र से तंत्रिका-तंतु में प्रवर्धों का पहुँचना एक असाधारण स्थिति है। सामान्य रूप में तंत्रिका तंतुओं से ही प्रवर्ध निकलते हैं जो पेशी तंतुओं में पहुँच जाते हैं।

आहार-नाल मुख्यत: अपेशीय आंत्र ही की बनी होती है। मगर ग्रसनी पेशीय होती है जिसका कार्य आहार को आहार-नली में पम्प करते रहना होता है। मलाशय छोटा होता है जो गुदा पर बाहर को खुलता है। देह गुहा लगभग पूरी तरह युग्मित जननांगों से भरी होती है। (चित्र 4.42)। नर-मादा अलग-अलग होते हैं। निषेचन आंतरिक होता है। शरीर से बाहर निकाले जाने के समय अण्डे या तो युग्मनज (ज़ाइगोट) होते हैं या परिवर्धन की आरम्भिक अवस्था पर भ्रूण तक हो सकते हैं। ये अत्यधिक प्रतिरोधी होते हैं।

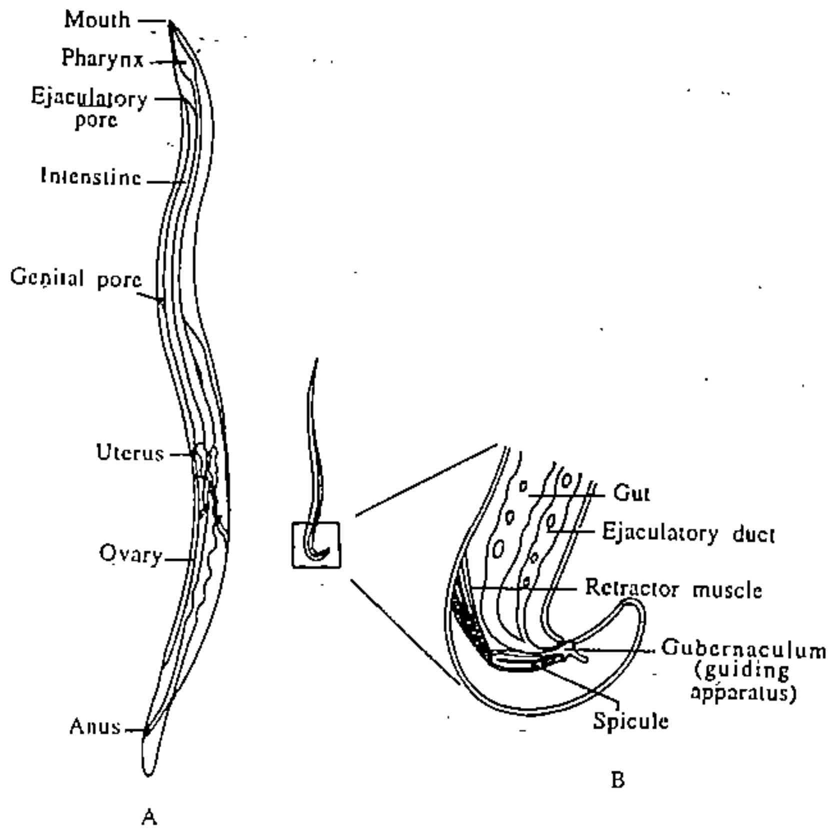

चित्र 4.42 : A-मादा ऐस्कैरिस, B-नर ऐस्कैरिस (पश्च भाग)।

4.7.3 वर्गीकरण

फ़ाइलम नेमैटोडा का क्लासों में वर्गीकरण कुछ ऐसे लक्षणों पर आधारित है जिन्हें किसी अविशेषज्ञ के लिए पहचान सकना आसान नहीं है। इस फ़ाइलम को दो क्लासों में विभाजित किया जाता है: 1. क्लास फैज्मिडिया (Phasmidia) अथवा सेसेमेन्टिया (Secementea), 2. क्लास एफैज्मिडिया (Aphasmidia) अथवा ऐडेनोफोरीया (Adenophorea)।

उदाहरण :

ऐस्कैरिस लम्ब्रीकॉयडीस (Ascaris lumbricoides) मानवों में पाया जाने वाला आंत्र गोल-कृमि है। *ऐस्कैरिस मैगैलोसेफेला (Ascaris megalocephala)* घोड़ों की आंत्र में पाया जाता है। ऐस्कैरिस की मादा

लगभग 2,00,000 अण्डे प्रतिदिन तक दे सकती है। अण्डे बरसों-बरसों तक मिट्टी में जीवित बने रहते हैं। ये संदूषित आहार के साथ अपने परपोषी की आहार-नाल में पहुँच जाते हैं। वहाँ उनमें से सूक्ष्म बाल्यावस्थाएं (juveniles) निकलती हैं। उसके बाद ये आंत्र की दीवार को वेधती हुई शिराओं एवं लसीका-वाहिनियों में प्रवेश कर जाती हैं जहाँ से वे हृदय, और हृदय से फेफड़ों में पहुँच जाती है। वहाँ वे वायुकोशों में वेधकर श्वासनली में पहुँच जाती हैं। यदि ग्रस्तता गंभीर हुई तो इस अवस्था में इनके द्वारा निमोनिया का प्रकोप बन सकता है। जब ये अवस्थाएं ग्रसनी में पहुँच जाती हैं तब इन्हें निगल लिया जा सकता है और आमाशय में से गुजरते हुए ये परिपक्व होती जाती हैं। अण्डों के अंतर्ग्रहण से लेकर उनके परिपक्वन तक में लगभग दो महीने का समय लग जाता है। आंतों में पहुँचने पर ये आंत्र अंतर्वस्तु को खाते हैं और तरह-तरह के रोगलक्षण पैदा करते हैं जिनमें यदि इनकी संख्या अधिक हुई तो अंतड़ियों में अवरोध पैदा होना तक भी शामिल है।

हुक-वर्म *ऐंकाइलोस्टोमा डुओडिनेल* (*Ancylostoma duodnenale*) मानव का एक परजीवी है (चित्र 4.43)। इसका अग्र सिरा एक हुक की तरह पृष्ठ दिशा में घुमाव देकर मुड़ गया होता है। इनके मुख में बड़ी-बड़ी प्लेटें होती हैं जिनके द्वारा से मानव परपोषी की आंत्र श्लेष्मा को चीर, फाड़ देते हैं और रक्त को अपनी आंत्र में को पम्प कर देते हैं। ऐसा होने के फलस्वरूप परपोषी में रक्ताल्पता आ जाती है। अण्डे मल के साथ बाहर निकलते हैं तथा बाल्यावस्थाएं मृदा में स्फुटित हो जाती हैं। ये त्वचा को वेधकर रक्त में पहुँच जाती हैं और वहाँ से फेफड़ों में तथा अंतत: अंतड़ियों में पहुँच जाती हैं जैसा कि ऐस्केरिस में भी होता है।

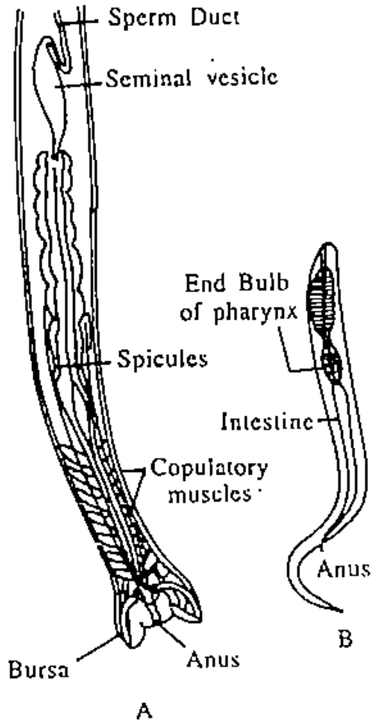

चित्र 4.43 : A- नर ऐंकाइलोस्टोमा डुओडिनेल का पश्च सिरा, B-प्रथम अवस्था रैब्डीफॉर्म।

अन्य उदाहरणों में ये सब शामिल हैं : पिनवर्म (चित्र 4.44) *एंटरोबियस वर्मिकुलेरिस* (*Enterobius vermicularis*), ट्राइकिना-कृमि *ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस* (*Trichinella spiralis*) (चित्र 4.45), ह्विप-वर्म *ट्राइक्यूरिस ट्राइक्यूरा* (*Trichuris tricura*) (चित्र 4.46), फाइलेरिया के दो कृमि *वुचेरेरिया बैंक्रॉफ्टाई* (*Wuchereria bancrofti*) तथा *ब्रूगिया मलेई* (*Brugia malai*) जो लसीका-तंत्र में रहते हुए उसमें अवरोध एवं शोथ पैदा कर देते हैं। फाइलेरिया कृमि की मादाएं सूक्ष्म माइक्रोफिलेरी (microfilariae) को रक्त एवं लसीका-तंत्र में को छोड़ देती हैं। ये रक्त के माध्यम से मच्छर में पहुँचते हैं। मच्छर की भीतर इनमें परिवर्धन होकर ये संक्रामक अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। उसके बाद ये मच्छर के काटने से एक अन्य परपोषी में पहुँच जाते हैं।

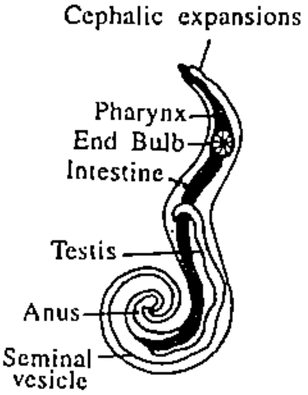

चित्र 4.44 : एंटरोवियस वर्मिकुलेरिस (Enterobius Vermicularis); नर।

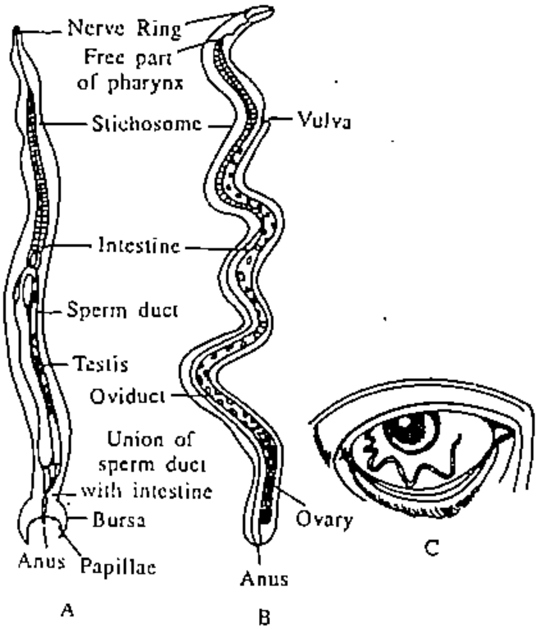

चित्र 4.45 : A - ट्राइकाइना कृमि ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस (Trichinella spiralis) नर, B - मादा, C - कॉर्निया के भीतर नेत्र-कृमि।

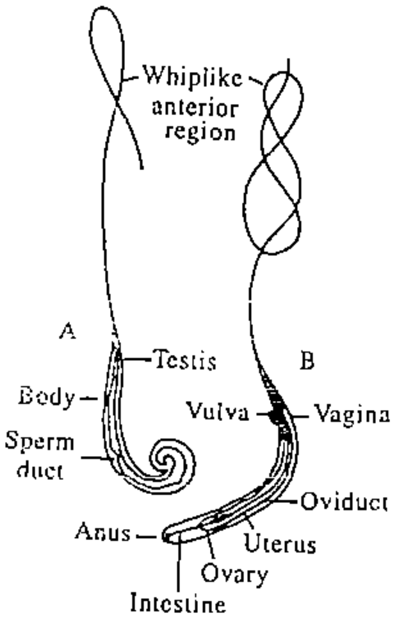

चित्र 4.46 : ट्राइक्यूरा ट्राइक्यूरा (Trichura trichura) A - नर; B - मादा।

4.8 स्यूडोसीलोमैटा – फ़ाइलम रोटिफ़ेरा (PSEUDOCOELOMATA - PHYLUM ROTIFERA)

ये बहुत छोटे-छोटे प्राणी होते हैं जिनमें एक सिलियायुक्त ताज बना होता है। जब सिलिया में स्पंदन होता है तब यह ताज एक पहिए जैसा घूमता हुआ दिखायी देता है। ये अधिकतर 100-500 μm के बीच के आकार के होते हैं और सारे विश्व में पाए जाते हैं, हालांकि कुल ज्ञात स्पीशीज़ की संख्या लगभग 1800 है। इनमें अधिसंख्य स्पीशीज़ अलवण जलीय है, कुछ जलवासी हैं तथा कुछ अधिजान्तवी (epizoic) हैं जो अन्य प्राणियों के शरीर पर रहती हैं तथा कुछ परजीवी भी हैं।

4.8.1 विशिष्ट लक्षण

1. शरीर सूक्ष्म, द्विपार्श्वत: सममित, दो कोशिका-परतों से अधिक मोटा, जिसमें ऊतक तथा अंग बन गए हैं। ये प्राणी सखण्ड नहीं होते।
2. सिलिया की एक मुखपूर्वी तथा एक मुखपश्चीय पट्टी से शरीर के अग्र भाग पर एक ताज अथवा किरीट (crown) सा बन जाता है। सिलिया के विस्पंदन करते रहने पर इस किरीट में एक घूमते हुए पहिए-जैसी आकृति प्रकट होती है और उसी आधार पर इन प्राणियों का यह नाम रोटिफ़र पड़ा (चित्र 4.47)।

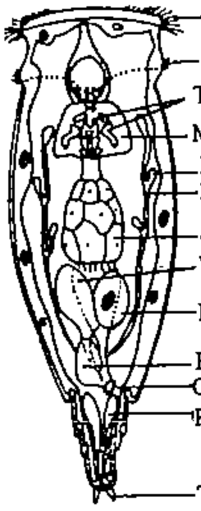

चित्र 4.47 : रोटिफ़ेर शरीर के सामान्य लक्षण : अधर दृश्य।

3. आहार-नाल में एक मुख, जबड़ा उपकरण, पेशीय ग्रसनी होते हैं। पश्च गुदा एक अवस्कर में खुलती है।
4. एपिडर्मिस में एक अंतराकोशिकीय क्यूटिकल होती है। यह प्राय: मोटी होकर एक लोरिका (lorica) बनाती है।
5. आदिवृक्कक (protonephridia) पाए जाते हैं।
6. देहगुहा कूटसीलोम होती है।
7. कोई परिसंचरण अथवा श्वसन तंत्र नहीं होता।
8. लिंग पृथक् होते हैं। यथापि, प्राय: नर नहीं होते लेकिन जब होते हैं तो विरल एवं बौने होते हैं।
9. परिवर्धन सीधा, जिसमें विदलन सर्पिल प्रकार का होता है।
10. अधिकांश संरचनाएं सिनसिशियमी होती हैं जिनमें प्रत्येक स्पीशीज़ में केंद्रकों की संख्या स्थिर होती है (यूटेली, eutely)।

शरीर सामान्यत: एक तक्षित (डिज़ाइन युक्त) प्यालेनुमा क्यूटिकल के भीतर बंद रहता है जिसे लोरिका (lorica) कहते हैं। लोरिका के खुले सिरे पर किरीट तथा मुख बना होता है। किरीट को प्याले के भीतर को सिकोड़ लिया जा सकता है। लोरिका पीछे की ओर को संकरा होता जाता और एक पाद बना देता है जो छल्लेदार होता है। इस व्यवस्था के कारण लोरिका की आकृति सखंड सी प्रतीत होने लगती है। ये कूटखंड एक-दूसरे के भीतर को घुसते जा सकते हैं अंत:सर्पी और तब पाद अकुंचित हो सकता है। पाद के सिरे पर एक जोड़ी पादांगुलियां होती हैं जो प्राणी को अध:सतर पर गड़ा सकती हैं।

इन प्राणियों में अपेक्षाकृत सरल भीतरी संघटना होती है। मगर मुखांग जटिल होते हैं (चित्र 4.48)। अशन उपकरण (मैस्टैक्स, mastax) में कुछ कड़े भाग होते हैं जिन्हें ट्रोफाई (trophi) कहते हैं। इनमें से एक भाग मध्य फल्क्रम यानी आलम्ब दो शाखाओं (rami) को संभाले रहता है। अंकस (अंकुश) तथा मैनुब्रियम (हस्तक) शाखाओं पर टिके-जुड़े होते हैं। आहार-नाल के साथ लार-ग्रंथियां तथा जठर-ग्रंथियां भी संबंधित होती हैं।

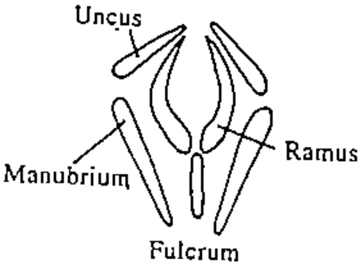

चित्र 4.48 : रोटिफ़ेरा के मुखांग।

आदिवृक्ककों की नलिकाओं के पथ में अनेक लौ-कोशिकाएं होती है। यह तंत्र परासरणनियमनकारी होता है। ये नलिकाएं एक ऐसे आशय में को खुलती हैं जो पुन: स्पंदन करता तथा अपनी अंतर्वस्तु को एक अवस्कर में छोड़ देता है। अवस्कर में आंत्र तथा अंडवाहिनियां भी खुलती हैं। लिंग अलग-अलग होते हैं तथा नर अपेक्षाकृत छोटे होते हैं, और यहाँ तक कि नहीं भी होते। इस वर्ग में अनिषेकजनन होना सामान्य है।

4.8.2 वर्गीकरण

फ़ाइलम रोटिफ़ेरा को तीन क्लासों में विभाजित किया जाता है :

1. **क्लास सीसोनिडा (Class Seisonida) – समुद्रवासी, दीर्घित, अवशेषी किरीट से युक्त। नर-मादा आकार तथा आकृति में अभिन्न। मादा में एक जोड़ी अण्डाशय होते हैं तथा विटेलेरियम नहीं होते। उदाहरण : *सीसॉन* (*Seison*) (चित्र 4.49) जो क्रस्टेशियन *नेबैलिया* के क्लोमों (गिलों) पर रहनेवाला एक अधिजान्तवी प्राणी है।**

2. **क्लास डेलॉयडिया (Class Bdelloidea) – तैरने वाले अथवा रेंगने वाले। अग्र सिरा आकुंचनी। किरीट चक्रीय डिस्कों से युक्त। नर नहीं पाए गए। अनिषेकजननी। दो अण्डाशय तथा विटेलेरिम पाए जाते हैं। उदाहरण : *फ़िलोडाइना* (*Philodina*) (चित्र 4.50)**

3. **क्लास मॉनोगोनैटा (Class Monogonata) – तैरने वाले अथवा स्थानबद्ध। एकल अण्डाशय एवं विटेलेरियम। नर लघुतर। अण्डे तीन प्रकार के : द्विगुणित, अगुणित तथा प्रसुप्त (dormant)। उदाहरण : *ऐस्प्लैंकना* (*Asplanchna*) (चित्र 4.51)।**

चित्र 4.49 : सीसॉन (Seison)।

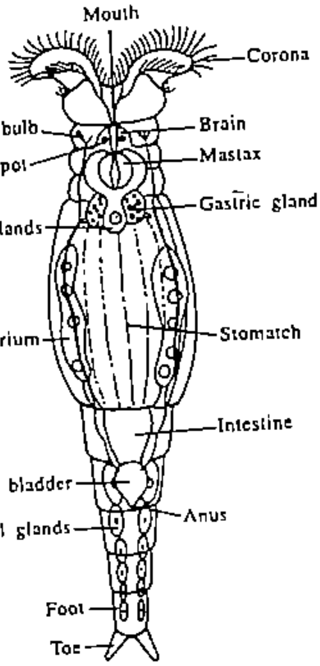

चित्र 4.50 : फिलोडाइना (Philodina) रोटिफ़र की संरचना।

चित्र 4.51 : ऐस्प्लैंकना (Asplanchna)।

बोध प्रश्न 4

कॉलम A में दिए गए प्राणियों को कॉलम B में दिए गए विशिष्ट लक्षणों के साथ सही-सही मिलाइए :

	A		B
(a)	नेमैटोडा	(i)	अग्र सिरे पर सिलिया के मुखपूर्वी एवं मुखपश्चीय पट्टियों के किरीट का पाया जाना, जिससे कि जब सिलिया में विस्पंदन होता है तो एक घूमते हुए पहिए के जैसा प्रकट होता है।
(b)	रोटिफ़ेरा	(ii)	सम्मिश्र, निर्जीव बहुपरती क्यूटिकल जिसमें एक परत के सर्पिल रेशे दूसरी परत के रेशों को काटते-पार करते जाते हैं।

4.9 सारांश

इस इकाई में आपने इन फ़ाइलमों के विशिष्ट लक्षणों के विषय में पढ़ा - पोरिफ़ेरा, नाइडेरिया, टेनोफ़ोरा, प्लैटिहेल्मिंथीज़ नेमैटोडा तथा रोटिफ़ेरा। अब आप जान गए हैं कि इनमें से किसी एक फ़ाइलम को अन्य किसी फ़ाइलम से किस प्रकार पृथक पहचाना जा सकता है। आपने पढ़ा कि इनमें से प्रत्येक फ़ाइलम को क्लासों तक किस प्रकार विभाजित किया जा सकता है तथा आपने इन क्लासों के पहचान-लक्षणों को और साथ ही उनके उदाहरणों के बारे में भी पढ़ा। आपने इन क्लासों में आने वाले विविध-प्राणियों की आधारभूत संघटना अथवा देह-योजना के विषय में भी पढ़ा। इन फ़ाइलमों में आने वाले प्राणियों के विविध तंत्रों की संघटना के विषय में एवं उनके प्रकार्यगत महत्व के विषय में और अधिक विस्तार से आप अगली इकाईयों में पढ़ेंगे।

4.10 अंत में कुछ प्रश्न

1. पोरिफ़ेरा के प्रमुख लक्षण क्या-क्या हैं? इस वर्ग को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है?

....

....

....

....

2. प्रवाल-भित्तियां किन्हें कहते हैं? ये किस प्रकार बनती हैं?

....

....

....

....

3. नाइडेरिया तथा प्लैटिहेल्मिंथीज़ में मुख्य अंतर क्या-क्या हैं?

....

....

....

....

4.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) बहुकोशिक, गति, पादप, संलग्न
   (ii) पिनैकोसाइट
   (iii) कैल्केरिया
   (iv) छः किरणों से युक्त/षड्रिक
   (v) कीपकोशिकाएं

2. (i) (a) द्विजनस्तरीय, दंशपुटियों का पाया जाना
   (b) द्विजनस्तरीय, कंकत प्लेटों का पाया जाना
   (c) एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएं, अंतराली कोशिकाएं दंशकोशिकाएं, श्लेष ग्रंथि कोशिकाएं, संवेदी-तंत्रिका कोशिकाएं
   (d) हाइड्रोज़ोआ, स्काइफ़ोज़ोआ, क्यूबोज़ोआ तथा ऐंथोज़ोआ
   (e) टेंटेकुलैटा, न्यूडा
   (ii) (a) हिम गलन, अवनमन
   (b) द्विअरीय

3. (i) परासरणनियमनी
   (ii) (a) द्विपार्श्व सममिति जिसके साथ शिरोभवन होता है
   (b) कोशिकीय पैरेंकाइमा से युक्त त्रिजनस्तरीय प्रकृति
   (c) अनेक अंग तंत्रों का पाया जाना
   (iii) a - (iv), b-(iii), c-(ii), d-(i)

4. (a) - (ii), (b) - (i)

अंत में कुछ प्रश्न

1. पोरिफ़ेरा निम्न संघटता वाले प्राणी होते हैं। उनमें संचलन की क्षमता नहीं होती तथा उनमें सतह पर बहुसंख्यक छोटे-छोटे छिद्र होते हैं जिन्हें ऑस्टियम कहते हैं। इन छिद्रों में से बहकर जलधार स्पंज़ोसील में और फिर वहाँ से एक या अधिक संख्या में अधिक बड़े आकार के छिद्रों (ऑस्कुलमों) के द्वारा बाहर को निकल जाती है। इनमें एक बाहरी परत पिनैकोसाइटों की होती है। कालर-कोशिकाएं (जिन्हें कीपकोशिकाएं भी कहते हैं) स्पंज़ोसील का अस्तर बनाए होती हैं, मगर ये कोशिका परतें जननिक परतों के समजात नहीं होतीं। इन प्राणियों में ऊतक या तो होते ही नहीं या हुए भी तो बहुत ही कम विकसित होते हैं तथा स्वाभाविक है कि अंग तथा अंग-तंत्र तो होंगे ही नहीं।

   पोरिफ़ेरा को मुख्यतः उनके कंकाल के आधार पर चार क्लासों में विभाजित किया जाता है : 1) नाइडेरिया, 2) हेक्सेक्टिनेलाइडा, 3) डेमोस्पंज़ी तथा 4) स्क्लेरोस्पंज़ी।

2. प्रवाल-भित्तियां मुख्यतः पथरीले प्रवालों की बनी होती हैं परंतु उनके निर्माण में कई अन्य जीवों का भी भारी योगदान होता है। प्रवाल-भित्तियां तीन प्रकार की हो सकती है - तटीय प्रवाल-भित्तियां, रोधिका प्रवाल-भित्तियां अथवा अडल। अधिकतर प्रवाल-भित्तियां धीरे-धीरे या तो हिमनद सक्रियता के कारण समुद्र-तल के ऊपर उठते जाने से या अधःस्तर के अवतलन से अथवा इन दोनों के कारण होता है।

3.

	नाइडेरिया	प्लैटिहेल्मिंथीज़
जननिक परतें	द्विजनस्तरीय, अकोशिकीय मेसोग्लीया के सथ	त्रिजनस्तरीय, मेसेन्काइम से प्राप्त कोशिकीय पैरेंकाइमा के साथ
अंग	नहीं होते, हुए भी तो बहुत कम विकसित	सुविकसित, और साथ में अंग-तंत्र
दंशकोशिकाएं	होती हैं	नहीं होतीं
तंत्रिका-तंत्र	सर्वत्र फैला हुआ तंत्रिका-जालक	शीर्ष में मस्तिष्क तथा शरीर में फैली हुई रज्जुओं के रूप में संकेन्द्रित
आदिवृक्कक अथवा लौ-कोशिकाएं	नहीं होती	होती हैं

अतिरिक्त पठनीय सामग्री

Invertebrate Zoology, Rupert/Barnes, Sixth International Edition, 1994.
Integrated Principles of Zoology, Ninth Edition, Hickman, Roberts, Larson, 1995.

इकाई 5 बहुकोशिक प्राणियों का वर्गीकरण - II

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
5.2 सीलोमेटा/यूसीलोमेटा - फ़ाइलम ऐनेलिडा
सीलोम
विखंडता
विशिष्ट लक्षण
वर्गीकरण
5.3 फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा
ट्राइलोबाइटोमॉर्फा
कीलिसेरेटा
क्रस्टेशिया
यूनिरेमिया
5.4 फ़ाइलम ओनाइकोफ़ोरा
5.5 सारांश
5.6 अंत में कुछ प्रश्न
5.7 उत्तर

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम मेटाज़ोआ का और आगे अध्ययन करेंगे। इसमें तथा इससे अगली इकाई में भी आप सीलोम मौजूद होने वाले फ़ाइलमों के विषय में पढ़ेंगे। सीलोम को एक ऐसी गुहा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका अस्तर, भ्रूण-मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न कोशिकाओं की एपिथीलियम का बना होता है। इस इकाई में आप सबसे पहले फ़ाइलम ऐनेलिडा का अध्ययन करेंगे। इस फ़ाइलम के खंड युक्त कृमि आते हैं और सबसे पहला सीलोमयुक्त फ़ाइलम भी यही है। इसके बाद आप फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा के विषय में पढ़ेंगे जो संधियुक्त टांगों वाले अकशेरुकियों का एक सफल वर्ग है। जैसा कि हमने पिछली इकाई में किया था, उसी प्रकार इस इकाई में भी हम प्रत्येक फ़ाइलम के लक्षणों का वर्णन करेंगे, फ़ाइलम का क्लासों तक वर्गीकरण करेंगे एवं उदाहरण देंगे, तथा क्लास के लक्षणों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- फ़ाइलम ऐनेलिडा तथा आर्थ्रोपोडा के लक्षण गिना सकेंगे, इन फाइलमों के अंतर्गत आनेवाले क्लासों के नाम बता सकेंगे तथा उनके प्रमुख लक्षण बता सकेंगे,
- आर्थ्रोपोडों की सफलता के विभिन्न कारणों का विवेचन कर सकेंगे,
- आरेखों की सहायता से वर्णन कर सकेंगे कि कीटों के मुखांग किस प्रकार उनके विविध अशन-स्वभावों के लिए अनुकूलित हो गए हैं,
- फ़ाइलम ओनाइकोफ़ोरा के लक्षणों का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे तथा इस फ़ाइलम की बंधुताओं का उल्लेख कर सकेंगे।

5.2 सीलोमेटा / यूसीलोमेटा – फ़ाइलम ऐनेलिडा [COELOMATA/ EUCOEEOMATA - PHYLUM ANNELIDA]

फ़ाइलम ऐनेलिडा के अंतर्गत आने वाले प्राणी वास्तविक सीलोमी प्राणी होते हैं तथा इन्हें यूसीलोमेटा भी कहते हैं। सामान्यतः, ऐनेलिडों की एक लम्बी देह होती है जो बाह्यतः अनेक वलयों में विभाजित हुई होती है, और ऐसा प्रत्येक वलय भीतरी भागों के भी क्रमिक विभाजनों का प्रतिदर्श होता है। ऐसे प्रत्येक विभाजन अथवा खंड को विखंड (मेटामीयर) कहते हैं। निम्न उपभागों में आप सीलोमेट-प्राणियों के विभिन्न लक्षणों का कुछ विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2.1 सीलोम (Coelom)

आप पहले पढ़ चुके हैं कि प्राणियों में कूटसीलोम के बन जाने से उन्हें कुछ विशेष वरणात्मक (selective) लाभ प्राप्त हो गए थे। अन्य चीजों के अलावा इनमें एक बात यह भी थी कि इनकी द्रव से भरी गुहा एक द्रवस्थैतिक कंकाल (hydrostatic skeleton) का काम करने लगी जिससे इन्हें बिल बनाने या बिल के भीतर घुसने में अधिक दक्षता प्राप्त हो गयी। फिर भी, कूटसीलोमी प्राणियों में उनके विभिन्न अंग सीलोम अर्थात् देह-गुहा के भीतर अदृढ़ अर्थात् ढीले-ढाले रूप में पड़े होते थे (चित्र 5.1)। इस कमी को पूरा करने के लिए सीलोम मीज़ोडर्म के भीतर विकसित हुई। परिणामतः नयी देह-गुहा जिसे सीलोम कहा गया, का अस्तर मीज़ोडर्म परत (पेरिटोनियम परत) का बनने लगा। साथ ही, विभिन्न अंग मीज़ोडर्मी परत के सहारे सीलोम के भीतर सधने लगे। इन मीज़ोडर्मी परतों को **मीज़ेंटरी (mesentery)** अथवा आंत्रयोजनी कहते हैं। इससे यह हुआ कि सीलोम भित्ति अर्थात् देह-भित्ति की अनुदैर्ध्य एवं वृत्ताकार पेशियां अधिक विकसित हो गयी और भित्ति अधिक पेशीय हो गई। इस प्रकार अब देह-गुहा ने एक अधिक कारगर द्रवस्थैतिक कंकाल का रूप ले लिया। आहारनाल भी अधिक पेशीय और अधिक विशेषित हो गयी। अब शरीर के भीतर विभिन्न अंग अधिक स्थिर रूप में व्यवस्थित हो गए और उनका एक-दूसरे में बाधा उपस्थित करना समाप्त हो गया। मीज़ेंटरियां अब एक ऐसा बेहतर माध्यम बन गयी जिनके भीतर अलग-अलग अंगों से संबंधित रक्त वाहिकाएं ठीक से स्थित हो सकती थीं। इस प्रकार सीलोम का बनना विकास की सीढ़ी में एक ऐसा महत्वपूर्ण चरण था जिसके द्वारा अधिक सम्मिश्र तथा अधिक बड़ा शरीर बन सकना संभव हुआ। ध्यान में रखिए कि जिन फ़ाइलमों का नीचे विस्तार से वर्णन किया जा रहा है वे सभी सीलोम युक्त प्राणी हैं।

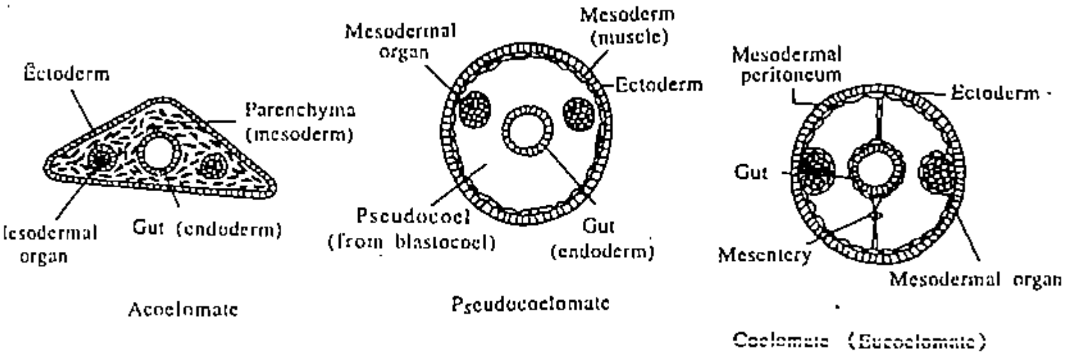

चित्र 5.1 : अलीलोमी, कूटसीलोमी तथा सुसीलोमी देह-योजनाएं।

5.2.2 विखंडता (खंडीभवन)

आरम्भिक सीलोमी प्राणियों में सीलोम का खंडों मे विभाजन नहीं हुआ था और सम्पूर्ण देहगुहा सारी-की-सारी एक अकेली ही गुहा थी। अतः देह गतियां परिशुद्ध नहीं होती थीं। मगर विकास के

साथ-साथ मीज़ोडर्मी अस्तरों (पेरिटोनियम) के बने पर्दों अथवा पटों (septa) के द्वारा सीलोम अनेक कक्षों में विभाजित हो गयी। इससे देह-गतियां और कारगर रूप में होने लगीं, क्योंकि अब हर अलग-अलग खंड को एक ही क्रिया विधि से अर्थात् द्रवस्थैतिक अथवा द्रवचालित दाब के द्वारा अधिक परिशुद्धता के साथ चलाया जा सकता था। साथ ही, प्रत्येक खंड में कई अन्य अंग-तंत्रों जैसे कि परिसंचरण, उत्सर्गी, जनन एवं तंत्रिका-तंत्र की खंडगत पुनरावृत्ति होने लगी। इस प्रकार प्रत्येक देह-खंड दूसरे देहखंड का न्यूनाधिक रूप में दोहराया गया स्वरूप होता है और यदि कुछ खंड टूटकर अलग हो जाएं तब भी प्राणी जीवित बना रहता है तथा सामान्य रूप में कार्य करता रहता है। शरीर के इस प्रकार के न्यूनाधिक अभिन्न खंडों में, जिनमें लगभग सभी अंग-तंत्रों का समावेश होता है, विभाजन की परिघटना को खंडीभवन (segmentation) अथवा विखंडता (metamerism) कहते हैं तथा शरीर के ऐसे प्रत्येक भाग को खंड अथवा विखंड (मेटामीयर) कहा जाता है। प्राणि जगत में विखंडता का विकास कम से कम दो बार अलग-अलग स्वतंत्र रूप में हुआ है - एक बार प्रोटोस्टोमों (ऐनेलिडा-आर्थ्रोपोडा) में और दूसरी बार ड्यूटेरोस्टोमों (कशेरूकियों) में।

फ़ाइलम ऐनेलिडा में खंडयुक्त कृमि आते हैं। इस फ़ाइलम में लगभग 15,000 स्पीशीज़ आती हैं जिनमें केंचुए, जोंक तथा पॉलीकीट आदि शामिल हैं।

5.2.3 विशिष्ट लक्षण

1. शरीर कृमिरूप, द्विपार्श्वत: सममित तथा विखंडता से युक्त।
2. ट्रिप्लोब्लास्टिक (त्रिजनस्तरीय), जिनमें ऊतक, अंग तथा अंग-तंत्र पाए जाते हैं; देह-भित्ति में बाहरी वृत्ताकार तथा भीतरी अनुदैर्ध्य पेशी परतें होती हैं; एपिथीलियम से एक बाहरी पारदर्शी आर्द्र क्यूटिकल का स्राव हुआ होता है।
3. काइटिन के बने शूक (seta) होते हैं (जोंकों को छोड़कर)।
4. दीर्णसीलोमी सीलोम (schizocoelic coelom) - यह सीलोम मीज़ोडर्म में विपाटन होने पर एक गुहा के रूप में बनती है।
5. रक्त वाहिका-तंत्र बंद प्रकार का होता है; रक्त में अक्सर श्वसन वर्णक होते हैं; प्लाज्मा में अमीबी कोशिकाएं होती हैं।
6. आहार-नाल पेशीय होती है, जिसमें मुख तथा गुदा दोनों बने होते हैं।
7. एक खंडपूर्वी प्रोस्टोमियम (पुरोमुख) तथा एक खंडपश्चीय पाइगिडियम होता है।
8. तंत्रिका-तंत्र में एक अधिग्रसिका गैंग्लियॉन (प्रमस्तिष्क गैंग्लियॉन), एक परिग्रसिका वलय तथा एक अधर तंत्रिका रज्जु होता है जिसमें खंडीय गैंग्लिया बने होते हैं।
9. शिरोभवन अलग-अलग मात्राओं में होता पाया जाता है।
10. संवेदी अंग-तंत्र में कई संरचनाएं होती हैं - आंखें, प्रकाश-संवेदी कोशिकाएं, स्टैटोसिस्ट, स्वाद कलिकाएं तथा स्पर्श-अंग।
11. उत्सर्गी तंत्र में प्ररूपत: प्रत्येक खंड में एक जोड़ी नेफ़्रीडिया (वृक्कक) होते हैं।
12. श्वसन की क्रिया त्वचा, गिलों तथा पार्श्वपादों (पैरापोडिया) द्वारा होती है।
13. सेक्स अलग-अलग हो सकती हैं, या फिर प्राणी उभयलिंगी हो सकते हैं। विदलन सर्पिल, मोज़ेक परिवर्धन के साथ होता है। लार्वा यदि होता है तो ट्रोकोफ़ोर होता है। कुछ प्राणियों में मुकुलन द्वारा अलैंगिक जनन होता है।

आइए, अब ऐनेलिडों के देह-प्रतिरूप का अध्ययन करें (चित्र 5.2)। आप देखेंगे कि ऐनेलिड देह-प्रतिरूप में आधारभूत रूप में सामने की ओर एक प्रोस्टोमियम तथा उसके पीछे एक सखंड शरीर बना होता है जिसके आखिर में एक पाइगिडियम होता है। प्रोस्टोमियम तथा पाइगिडियम को खंड नहीं माना जाता। मुख पहले खंड में भीतर का खुलता है तथा गुदा पाइगिडियम पर खुलती है। कुछ अग्र खंड प्रोस्टोमियम के

साथ समेकित होकर शीर्ष बनाते हैं। नए खण्ड पाइगिडियम के सामने से बन-बन कर देह में जुड़ते जाते हैं। अतः सबसे नए बने खंड पश्च् दिशा पर सर्वप्रथम पाइगिडियम के सामने स्थित होते हैं तथा सबसे पुराने खंड सबसे आगे की ओर स्थित होते है।

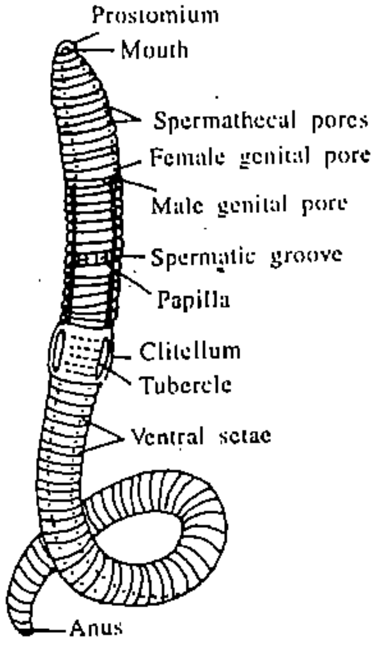

चित्र 5.2 : *लम्ब्राइकस*।

देह-भित्ति में सुविकसित और शक्तिशाली अनुदैर्ध्य पेशियां एवं वृत्ताकार पेशियां होती हैं, पेशी-परत को ढकती हुई एपिडर्मल एपिथीलियम होती है जिससे एक अकाइटिनी क्यूटिकल का स्राव होता है। देह-भित्ति के भीतर कम या ज़्यादा संख्या में शूक बने होते हैं, मगर जोंकों को छोड़कर।

सीलोम भ्रूणीय मीज़ोडर्मी कोशिका-संहति से दाएं-बाएं दोनों ओर एक विपाटन अथवा गुहा के रूप में बनती है जिस कारण इसे दीर्णसीलोम कहा जाता है। अंततः सीलोम का एक अस्तर मीज़ोडर्मी परत का बन जाता है जिसे पेरिटोनियम कहते हैं। दोनों पार्श्वों की पेरिटोनियम परतें मध्य रेखा पर परस्पर मिल कर मीज़ेंटरी बनाती हैं, जिनके सहारे आहार-नाल तथा अनुदैर्ध्य रक्त वाहिकाएं स्थित रहती हैं। अन्य अंग भी पेरिटोनियम अस्तर के सहारे स्थित रहते हैं। दो सहवर्ती खंडों के पेरिटोनियम अस्तर आपस में जहां मिलते हैं वहां अनुप्रस्थ पट बनाते हैं। ये पट हर दो खंडों के बीच के विभाजक बन जाते हैं। पटों को वेधती हुई आहार-नाल तथा अनुदैर्ध्य रक्त वाहिकाएं चलती जाती हैं। इनके अलावा नेफ़्रीडिया नामक उत्सर्गी अंग भी होते हैं जो प्ररूपतः अंतराखंडीय तरीके से पटों पर मध्य रेखा के प्रत्येक पार्श्व पर स्थित होते हैं। नेफ़्रीडियम की मुख्य देह पिछले खंड में स्थित होती है तथा इनके भीतरी छिद्र अर्थात् **नेफ़्रोस्टोम (nephrostome)** (वृक्ककमुख) पट के सामने की ओर स्थित होते हैं, और सीलोम में खुलते हैं। प्ररूपतः प्रत्येक खंड में एक सीलोम-कक्ष होता है, द्रवस्थैतिक दाब के कारण, जब अनुदैर्ध्य पेशियों में संकुचन होता है तब खंड फूल कर चौड़ा हो जाता है, और वृत्ताकार पेशियों के संकुचन होने पर खंड लम्बा हो जाता है। इस प्रकार खंड की पेशियों के संकुचन तथा शिथिलन से होने वाले प्रभाव, मात्र उसी खंड तक सीमित रहते हैं। दूसरे शब्दों में, ये प्रभाव स्थानीकृत होते हैं। क्रमिक रूप में होने वाले संकुचनों एवं शिथिलन चक्रों के फलस्वरूप क्रमांकुचन तरंग (peristaltic wave) बन जाती है। इसी को प्रभावकारी रूप में इस्तेमाल करके ऐनेलिड-प्राणी बिल में घुसने, तैरने अथवा रेंगने की क्रियाएं करते हैं।

5.2.4 वर्गीकरण

इस फ़ाइलम को सामान्यत: तीन क्लासों में विभाजित किया जाता है – पौलीकीटा, ओलाइगोकीटा तथा हिरूडिनिया।

1. क्लास पॉलीकीटा (Class Polychaeta)

ये अधिकतर समुद्री प्राणी होते हैं जिनके सुस्पष्ट सिर में आंखें और स्पर्शक होते हैं। इनके खंडों में देह-भित्ति के पार्श्व प्रवर्धन होते हैं जिन्हें पार्श्वपाद (Parapodia) कहते हैं। पार्श्वपादों पर शूकों के गुच्छे-से बने होते हैं। इन प्राणियों में क्लाइटेलम (clitellum) नहीं होता। सेक्स अलग-अलग होती हैं (एकलिंगाश्रयी)। इनमें कोई स्पष्ट स्थायी लैंगिक अंग नहीं होते, मगर इनके गोनड, वृद्धिशील गैमीटों की संहतियों से निर्मित पेरिटोनियम के उत्फूलनों के रूप में होते हैं। अंडे परिवर्धित होकर प्राय: ट्रोकोफ़ोर लार्वा बनाते हैं। इस क्लास के अनेक जीवों में मुकुलन द्वारा अलैंगिक जनन होता है।

अधिकतर पौलीकीट 5-10 से. मी. लम्बे होते हैं। ये चट्टानों के नीचे, दरारों में अथवा कीचड़ में बिल बना कर रहते हैं। कुछ नलिकाएं बनाकर उनके भीतर रहते हैं। अन्य कुछ वेलापवर्ती (pelagic) होते हैं। इन प्राणियों को मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जाता है एक तो (1) **भ्रमणशील प्राणी (errant forms)** जो स्वच्छंद रूप में घूमने-फिरने वाले, वेलापवर्ती, सक्रिय रूप में बिलकारी, रेंगने वाले होते हैं, या फिर ऐसे नालिका-कृमि होते हैं जो विभिन्न कार्यों के लिए अपनी नलिकाओं से निकल कर बाहर आ जाते हैं। दूसरे इनके विपरीत (2) **स्थानबद्ध प्राणी (sedentary forms)** जो अपनी नलिकाओं अथवा अपने बिलों से बाहर नहीं आते वरन् अक्सर केवल अपने शीर्ष को ही बाहर को निकाले रहते हैं। भ्रमणशील पॉलीकीटों की संरचना को सामान्यीकृत पॉलीकीट की प्ररूपी संरचना माना जा सकता है। प्रोस्टोमियम सुविकसित होता है जिस पर आंख, ऐंटेना पैल्प तथा न्यूकल अंगों जैसे विविध संवेदी अंग बने होते हैं। प्रोस्टोमियम पृष्ठत: और मुखपूर्वी स्थित होता है एवं मुख को ऊपर से ढके हुए होता है। पहले खंड पेरिस्टोमियम में मुख बना होता है। परभक्षी उदाहरणों मे मुख में जबड़े बने होते हैं। यदाकदा पेरिस्टोमियम अगले एक या अधिक खंडों के साथ समेकित होकर एक शीर्ष बना लेता है (चित्र 5.3)। इन खण्डों पर प्राय: संवेदी संरचनाएं भी बनी होती हैं, लेकिन इनके पार्श्वपादों पर शूकीय कोष में स्थित काइटिनी शूकों के बंडल भी बने होते हैं। *नेरीस (Nereis)* (चित्र 5.3) एक प्ररूपी उदाहरण है। चित्र 5.4 में इसके शरीर के मध्य भाग के एक खण्ड के अनुप्रस्थ काट (cross section) को दर्शाया गया है जिसमें इसकी भीतरी संघटना भली भांति दिखायी पड़ती है।

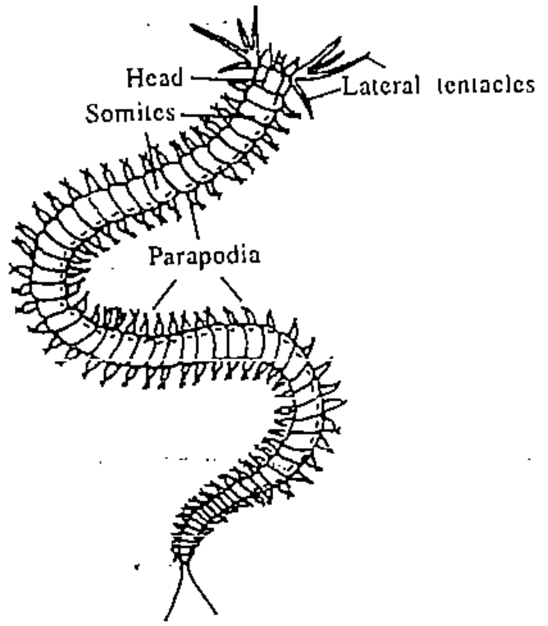

चित्र 5.3 : *नेरीस।*

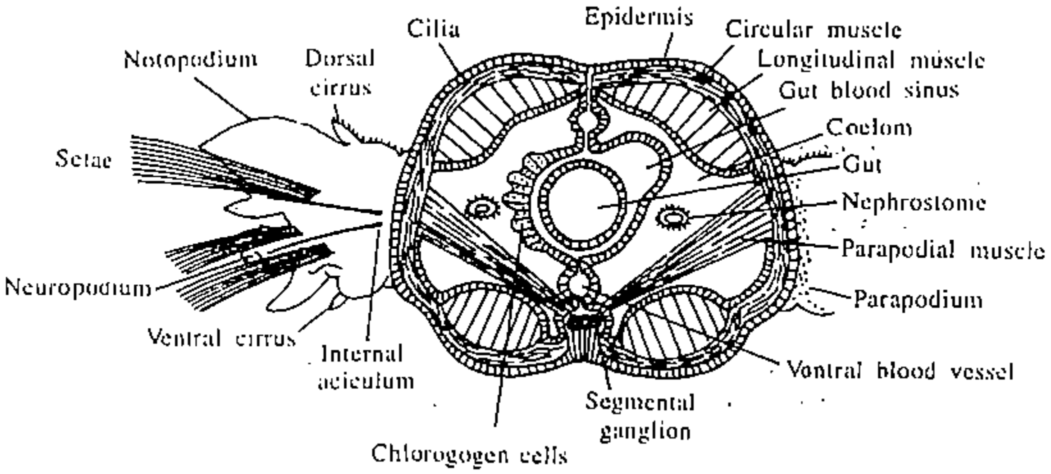

चित्र 5.4 : पॉलीकीट संघटना। A, B, पृष्ठ दृश्य, C धड़ का अनुप्रस्थ सेक्शन (मूल रूप में *नेरीस* पर आधारित)।

ऐम्फ़ीट्राइट (Amphitrite) ऐसे स्थानबद्ध पॉलीकीटों का एक उदाहरण है जो कीचड़ अथवा रेत में बनी नलिकाओं के भीतर रहते हैं (चित्र 5.5)। यह छोटे-छोटे आहार-कणों को अपने बिल से बाहर निकले हुए शीर्ष के ऊपर बने लम्बे प्रसारशील स्पर्शकों से पकड़-पकड़ कर खाता है। इसमें तीन जोड़ी विशाखित गिल (क्लोम) भी बने होते हैं। *साबेला (Sabella)* (चित्र 5.6) एक अन्य स्थानबद्ध पॉलीकीट है। यह अपने स्पर्शकों (रेडियोलों, radioles) के ताज को अपनी चर्मीय नलिका के बाहर को निकाले रहता है, इस नलिका को यह स्वयं स्रावित करता है तथा उसमें रेत आदि भी जोड़ कर उसे कड़ा बना लेता है। रेडियोल आहार पकड़ने का कार्य करते हैं। *कीटॉप्टेरस (Chaetopterus)* (चित्र 5.7) भी एक स्थानबद्ध पॉलीकीट होता है जो U-आकृति की एक पार्चमेंट जैसी नलिका के भीतर रहता है। यह तीन पंखों के द्वारा पानी को नलिका के भीतर से पम्प करता रहता है। जलधारा के साथ आने वाले भोजन के कण एक श्लेष्म (mucus) में चिपकते फंसते जाते हैं। यह श्लेष्म 12वें खंड के पंख-सदृश नोटोपोडियमों द्वारा स्रावित होता है। *ऐरेनिकोला (Arenicola)* अथवा लगवर्म (lug worm) (चित्र 5.8 A) एक "L" की आकृति के बिल के भीतर रहता है (चित्र 5.8 B)। यह अपनी क्रमांकुंचनी गतियों के द्वारा जल को बिल के भीतर प्रवाहित करता रहता है। यह अपने सामने के रेत का अंतर्ग्रहण कर लेता है, इस रेत में छन कर आते हुए आहार के कण एकत्रित हो गए होते हैं। इसके कुछ बीच के खण्डों पर गिल भी बने होते हैं।

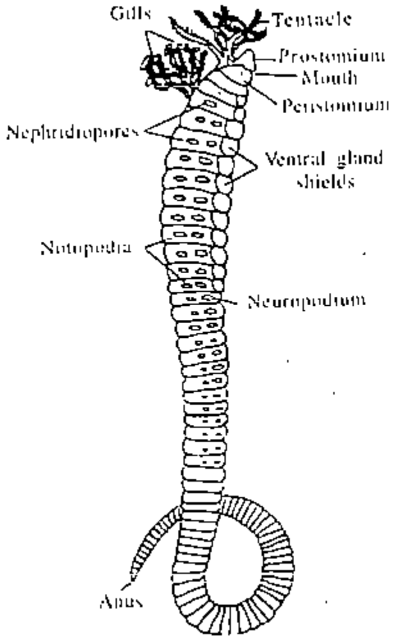

चित्र 5.5 : ऐम्फ़ीट्राइट *(Amphitrite)*।

चित्र 5.6 : साबेला *(Aabella)* ।

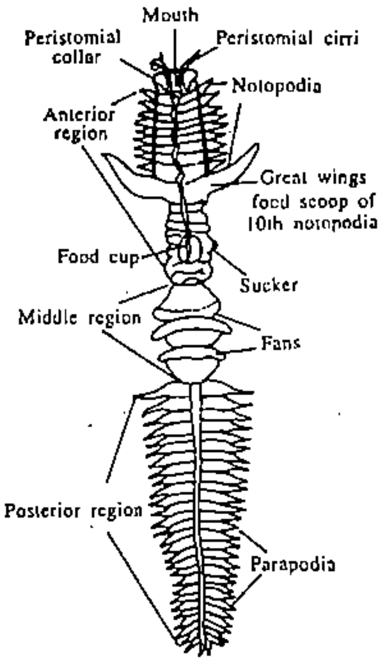

चित्र 5.7 : कीटॉप्टेरस *(Chaetopterus)* ।

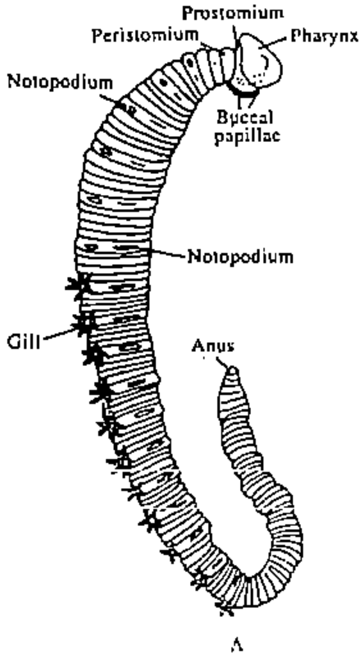

A
चित्र 5.8 A : ऐरेनिकोला *(Arenicola)* ।

यूनिस विरिडिस (Eunice Viridis) (चित्र 5.9), जिसे पैलोलो-कृमि भी कहते हैं, एपिटोकी (epitoky) का एक उदाहरण है। यह अपने बिल के भीतर अधिकांश समय लैंगिक दृष्टि से अपरिपक्व अवस्था (एटोकस, atokous अवस्था) में रहता है। प्रजनन ऋतु के दौरान कुछ विशेष खण्डों में लैंगिक परिपक्वता आ जाता है

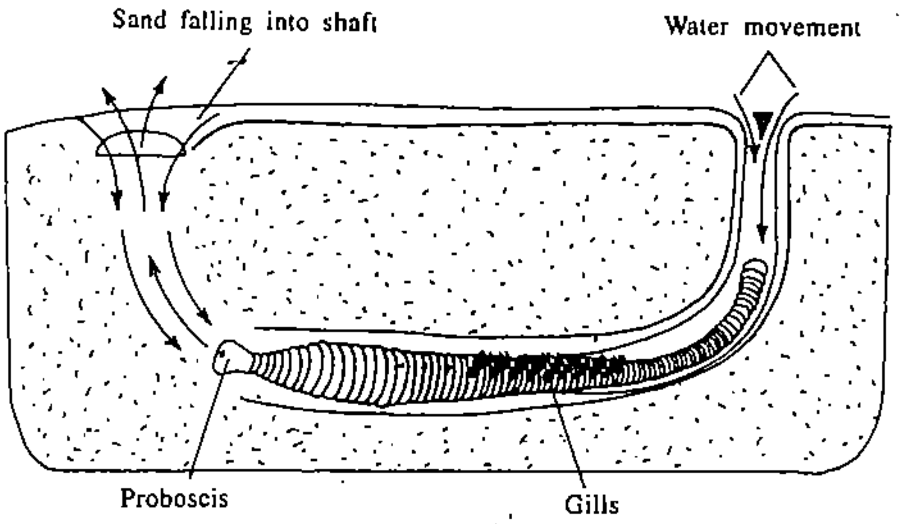

चित्र 5.8B : *ऐरेनिकोला,* जिसे लगवर्म भी कहते हैं एक "L" के आकार के बिल में रहता है जिसे वह अंतराज्वारीय कीचड़ में बनाता है। यह अपनी शुंडिका को बार-बार बाहर निकाल और भीतर खींचकर बिल में घुसता है। क्रमांकुंचनी गतियों के द्वारा यह रेत में से पानी को छानता जाता है। तदुपरांत कृमि इस आहार भरे रेत को अंतर्ग्रहीत कर लेता है।

और वे भीतर भरे गैमीटों के कारण फूल जाते हैं। यह भाग (एपिटोक, epitoke) वृंदन के समय टूट कर अलग हो कर, तैर कर सतह पर आ जाते हैं और फिर फूट जाते हैं। इससे इनके भीतर के शुक्राणु तथा अण्डे समुद्र में मुक्त होकर बिखर जाते हैं ताकि आसानी से निषेचन हो सके। यह घटना सूर्योदय के तुरंत पहले होती है जब समुद्र पर इन एपिटोकों का भारी संख्या में जमघट बन गया होता है। कृमि के आगे के अंश (एटोक, atoke) में पुनरुद्भवन होकर पश्च भाग फिर से बन जाता है।

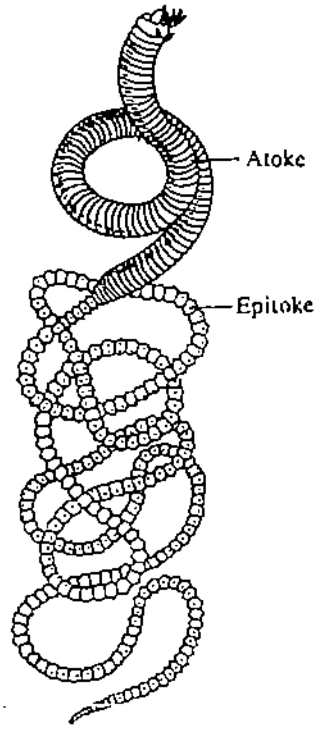

चित्र 5.9: *यूनिस विरिडिस,* जिसे सेमोआ का पैलोलो कृमि भी कहते हैं। इसके पश्च खंडों से ऐपिटोक क्षेत्र बना होता है जिसके भीतर गैमीटों (युग्मकों) से ठसा-ठस भरे खंड होते हैं। प्रत्येक खंड में उसकी अधर दिशा पर एक नेत्रबिंदु होता है। वर्ष में एक बार कृमियों का वृंदन होता है, तथा एपिटोक टूट कर अलग हो जाते तथा तैर कर सतह पर आ जाते और अपने परिपक्व युग्मकों को विसर्जित कर देते हैं, जिससे पानी दूधिया हो जाता है। अगली प्रजनन ऋतु आने तक एपिटोकों का पुनरूद्भवन हो जाता है।

2. क्लास ओलाइगोकीटा (Class Oligochaeta)

अधिकतर मिट्टी में अथवा अलवण जल में रहने वाले, देह का खंडीभवन सुव्यक्त, मगर स्पष्ट शीर्ष नहीं बना होता, शरीर में खण्डों की संख्या कम या ज़्यादा होती है। प्रत्येक विखंड में शूकों की संख्या कम होती है। पार्श्वपाद नहीं होते। सीलोम बड़ी होती है एवं अंतराखंडीय पटों द्वारा विभाजित हुई होती है, उभयलिंगी (उभयलिंगाश्रयी)। जनन तंत्र अधिक जटिल, अण्डाशय एवं वृषण संहत, मगर संख्या में कम। क्लाइटेलम होता है। लार्वा नहीं होता, परिवर्धन सीधा।

इस वर्ग के सबसे ज़्यादा जाने-पहचाने प्राणी केंचुए हैं। ये मिट्टी में बिल बनाते, उसे अधिक उपजाऊ बना देते तथा कृमि-बीट बाहर निकालते रहते हैं। केंचुए काफ़ी बड़े, प्राय: 12-30 सेमी लम्बे होते हैं और इनमें 150-250 या उससे भी ज़्यादा खण्ड होते हैं। ये रात के समय अपने बिलों से बाहर आते है। ओलाइगोकीटों का एक अन्य समूह जलीय होता है जो मुख्यत: अलवण जलीय होते तथा आकार में बहुत छोटे होते हैं।

केंचुओं में संचलन क्रमांकुंचनी गति के द्वारा होता है जिसमें शूकों द्वारा देह को अधःस्तर से स्थिर किया जाता है। केंचुओं की देह-योजना विलक्षण रूप में स्थिर प्रकार की है। देह की अनुप्रस्थ सेक्शन (चित्र 5.10) में एक पतली मगर जलरोधी क्यूटिकल एपिडर्मिसी परत के ऊपर बनी हुई दिखायी पड़ती है। एपिडर्मिस के नीचे पेशी-तंतुओ की एक वृत्ताकार परत होती है जिसके नीचे फिर अनुदैर्ध्य पेशियों के बड़े-बड़े बंडल होते हैं। कड़े बाल - जैसे शूक देह-भित्ति के भीतर बने कोषों या थैलों में अंतर्विष्ट होते हैं। ये थोड़े से देह-भित्ति के बाहर को निकले होते हैं। शूकों को उनकी ही पेशियों के द्वारा हिलाया-डुलाया जा सकता है। आहार-नाल को घेरती हुई सीलोम का अस्तर बाहरी और एक भीतरी पेरिटोनियम परतें बनाती हैं। सहवर्ती खण्डों को पृथक करते हुए पट बने होते हैं। आहार-नाल के एण्डोडर्मी अस्तर को आहार नाल की भित्ति की पेशी परतें घेरती हैं।

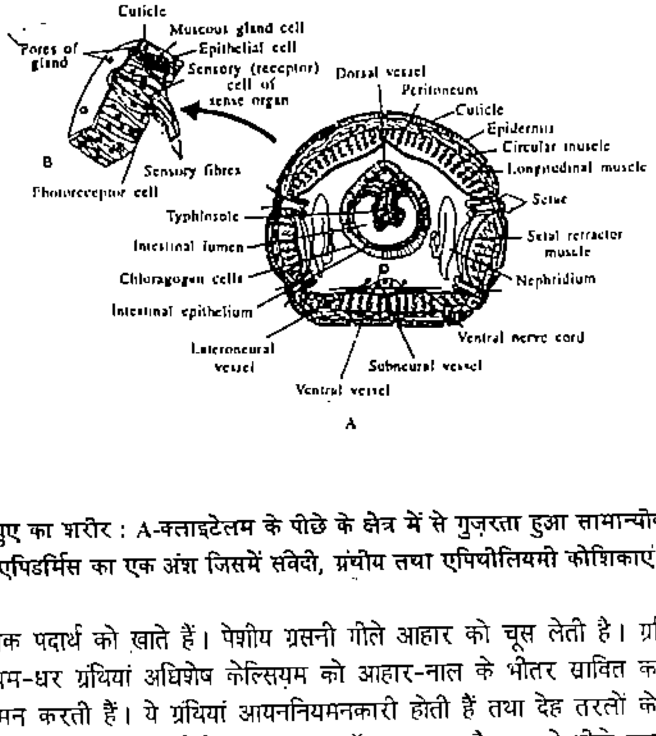

चित्र 5.10 : केंचुए का शरीर : A-क्लाइटेलम के पीछे के क्षेत्र में से गुज़रता हुआ सामान्यीकृत अनुप्रस्थ सेक्शन। B-एपिडर्मिस का एक अंश जिसमें संवेदी, ग्रंथीय तथा एपिथीलियमी कोशिकाएं दर्शायी गयी हैं।

ये सड़े-गले जैविक पदार्थ को खाते हैं। पेशीय ग्रसनी गीले आहार को चूस लेती है। ग्रसिका के सहारे-सहारे बनी हुई केल्सियम-धर ग्रंथियां अधिशेष केल्सियम को आहार-नाल के भीतर स्रावित करके रक्त के केल्सियम आयनों का नियमन करती हैं। ये ग्रंथियां आयननियमनकारी होती हैं तथा देह तरलों के pH का नियंत्रण करती हैं। ग्रसिका के पीछे पतली भित्ति वाला एक क्रॉप (crop) और उसके पीछे एक गिजर्ड (gizzard अथवा पेषणी) होता है। गिज़र्ड आहार को पीसता है। आहार का पाचन तथा अवशोषण आंत्र में होते हैं। आंत्र में उसकी दीवार के अंतवर्लन से बने टिफ्लोसोल से पाचन एवं अवशोषण के लिए सतही क्षेत्रफल बढ़ जाता है। पृष्ठ रक्त वाहिका को घेरता हुआ क्लोरेगोजन ऊतक होता है। यह ऊतक पेरिटोनियम से व्युत्पन्न होता है और इसी के भीतर ग्लाइकोजन एवं वसा का संश्लेषण होता है। यह उत्सर्जन का कार्य भी करता है।

सीलोमी तरल तथा रक्त आहार, वर्ज्य पदार्थ तथा श्वसन गैसों का अभिगमन करते हैं। रक्त वाहिका तंत्र बंद प्रकार का होता है, इसमें पांच मुख्य अनुदैर्ध्य रक्त वाहिकाएं तथा एक केशिका-तंत्र होता है। रक्त में रंगहीन

अमीबाभ कणिकाएं होती हैं तथा हीमोग्लोबिन प्लाज़्मा में घुला हुआ होता है। उत्सर्गी अंग नेफ्रीडिया के रूप में होते हैं। प्रत्येक प्ररूपी नेफ्रीडियम (वृक्कक) में एक सिलियायुक्त कीप अथवा नेफ्रोस्टोम (वृक्ककमुख) होता है जो अंतराखंडीय पट के सामने की ओर से खंड में खुलता है तथा उस नेफ्रीडियम का मुख्य भाग पिछले खंड के भीतर पड़ा होता है। नेफ्रोस्टोम से एक नलिका निकलती है जो पट को वेधती हुई नेफ्रीडियम की देह में पहुंचती है, जिसके भीतर उसके अनेक पाश (लूप) बन जाने के बाद वह अंततः एक नेफ्रीडियोपोर (वृक्ककछिद्र) के द्वारा बाहर को खुल जाती है। तंत्रिका-तंत्र में ग्रसनी के ऊपर स्थित एक मस्तिष्क होता है। जिसमें एक जोड़ी प्रमस्तिष्क गैंग्लिया होते हैं। एक जोड़ी परिग्रसनी संयोजक मस्तिष्क को दोहरे अधर तंत्रिका-रज्जु के पहले गैंग्लियान से जोड़ते हैं (इस गैंग्लियॉन को अधोग्रसिका गैंग्लियॉन कहते हैं)। यह रज्जु प्राणी के पूरे शरीर में पीछे तक चलता जाता है और प्रत्येक खण्ड में इसमें एक गैंग्लियॉन बना होता है।

केंचुए उभयलिंगी होते हैं। फिर भी, इनमें दो केंचुओं के बीच मैथुन-क्रिया होती है (चित्र 5.11B), जिसके फलस्वरूप केंचुओं के बीच शुक्राणुओं का परस्पर विनिमय हो जाता है। मैथुन के बाद क्लाइटेलम के चारों ओर एक ककून का स्राव होता है। क्लाइटेलम कुछ सहवर्ती खण्डों को घेरती हुई एक सुव्यक्त मेखला अथवा पेटी होती है, यह फूली हुई ग्रंथियों की बनी होती है जिससे श्लेष्म एवं ककून का स्राव होता है। इसीलिए यह क्षेत्र मोटा हो जाता है। सामान्यतः क्लाइटेलम शरीर के अग्र अर्धांश में स्थित होता है। जब ककून आगे-आगे को खिसकाया जा रहा होता है तब अण्डवाहिनी से आने वाले अण्डे ककून में छोड़ दिए जाते हैं जिसके भीतर निषेचन सम्पन्न होता है। अंततः ककून शरीर पर से उतरता हुआ बाहर निकल जाता है और उसके दोनों सिरे बंद हो जाते हैं। अण्डों में से बच्चे केंचुए निकलते हैं। *लम्ब्राइक्स* (चित्र 5.2), *फ़ेरेटिमा (Pheretima)* (चित्र 5.11) तथा *मेगास्कोलेक्स (Megascolex)* केंचुओं के तीन प्ररूपी उदाहरण हैं।

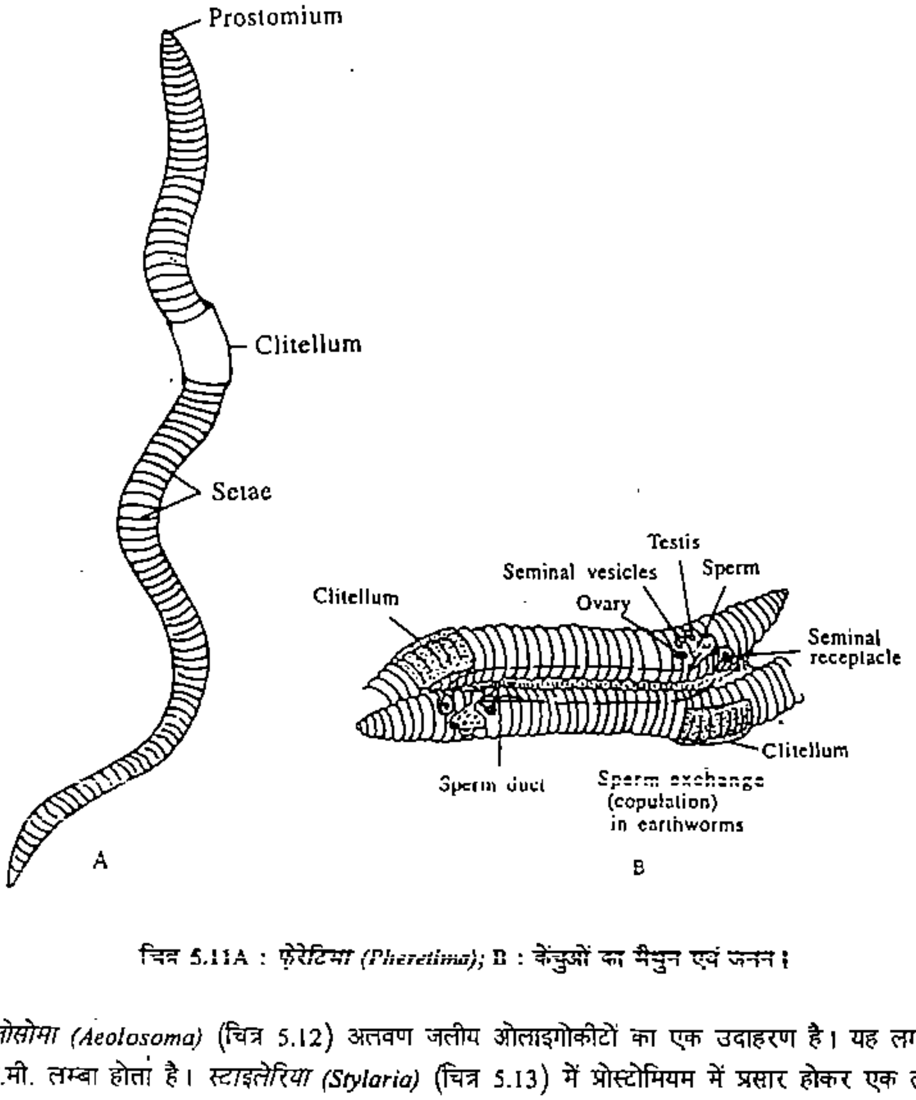

चित्र 5.11A : *फ़ेरेटिमा (Pheretima)*; B : केंचुओं का मैथुन एवं जनन।

इओलोसोमा (Aeolosoma) (चित्र 5.12) अलवण जलीय ओलाइगोकीटों का एक उदाहरण है। यह लगभग 1 मि.मी. लम्बा होता है। *स्टाइलेरिया (Stylaria)* (चित्र 5.13) में प्रोस्टोमियम में प्रसार होकर एक लम्बा

प्रवर्ध बन जाता है। *डेरो (Dero)* (चित्र 5.14) नलिकाओं में रहता है तथा उसमें 3-4 जोड़ी गिल होते हैं। *ट्यूबिफेक्स (Tubifex)* (चित्र 5.15) का शीर्ष सामान्यतः तालाबों में कीचड़ में धंसा रहता है और उसका शरीर एक तरंग जैसी गति करता रहता है। यह कुछ-कुछ लाल रंग का होता है। ये सभी उदाहरण जलीय ओलाइगोकीट हैं।

चित्र 5.12 : *इओलोसोमा (Aeolosoma)* ।

चित्र 5.13 : *स्टाइलेरिया (Stylaria)* ।

चित्र 5.14 : *डेरो (Dero)* ।

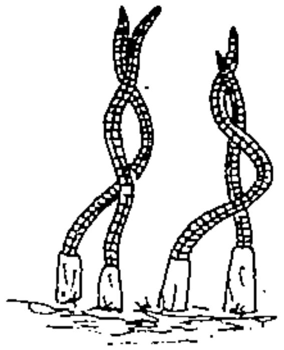

चित्र 5.15 : *ट्यूबिफेक्स (Tubifex)* ।

3. क्लास हिरूडिनिया (Class Hirudinea)

ये जोंक होते हैं। इन प्राणियों में शरीर के खण्डों की संख्या स्थिर होती है, सामान्यतः 34 खण्ड होते हैं, कुछ समूहों में केवल 31 या 17 तक ही होते हैं। खण्डों पर अनेक वलय (annuli) बने होते हैं। अग्र तथा पश्च चूषक होते हैं, और क्लाइटेलम भी होता है। पार्श्वपाद और शूक नहीं होते। सीलोम में संयोजी ऊतक तथा पेशियां भरी होती हैं। उभयलिंगी, परिवर्धन सीधा, स्थलीय अलवण-जलीय और यहां तक कि समुद्री भी होते हैं।

जोंके अलग-अलग साइज़ की 2-6 सेमी तक लम्बी होती हैं (चित्र 5.16), तथा पृष्ठ-अधर दिशा में चपटी होती हैं। क्लाइटेलम होता है मगर केवल प्रजनन ऋतु में ही प्रकट होता है। इनकी आहार-नाल रक्त का भण्डारण करने के वास्ते विशेष रूप में अनुकूलित होती है। यद्यपि इनमें केवल 34 खण्ड ही होते हैं फिर भी

बाहर से बहुत बड़ी संख्या में छल्ले या वलय दिखायी पड़ते हैं जो खण्डों पर बाहर से बनी अनुप्रस्थ खांचों के कारण होते हैं। सीलोम से पट समाप्त हो गए हैं तथा सीलोम में एक बोट्रॉयडल (botryoidal) ऊतक भरा होता है। शेष गुहाएं जिन्हें रिक्तिकाएं (lacunae) कहते हैं सीलोमी तरल से भरी होती हैं (चित्र 5.17)।

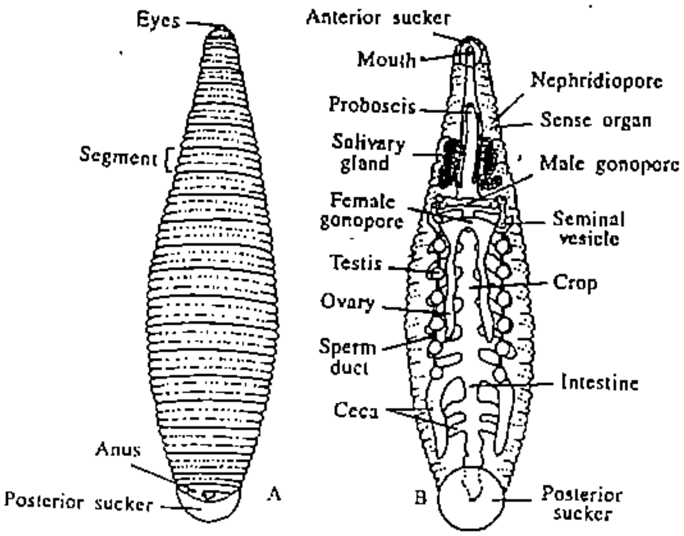

चित्र 5.16 : प्लैकॉब्डेला *(Placobdella)* जोंक की संरचना, A-बाहरी दृश्य, पृष्ठ दिशा, B-भीतरी संरचना, अधर दृश्य।

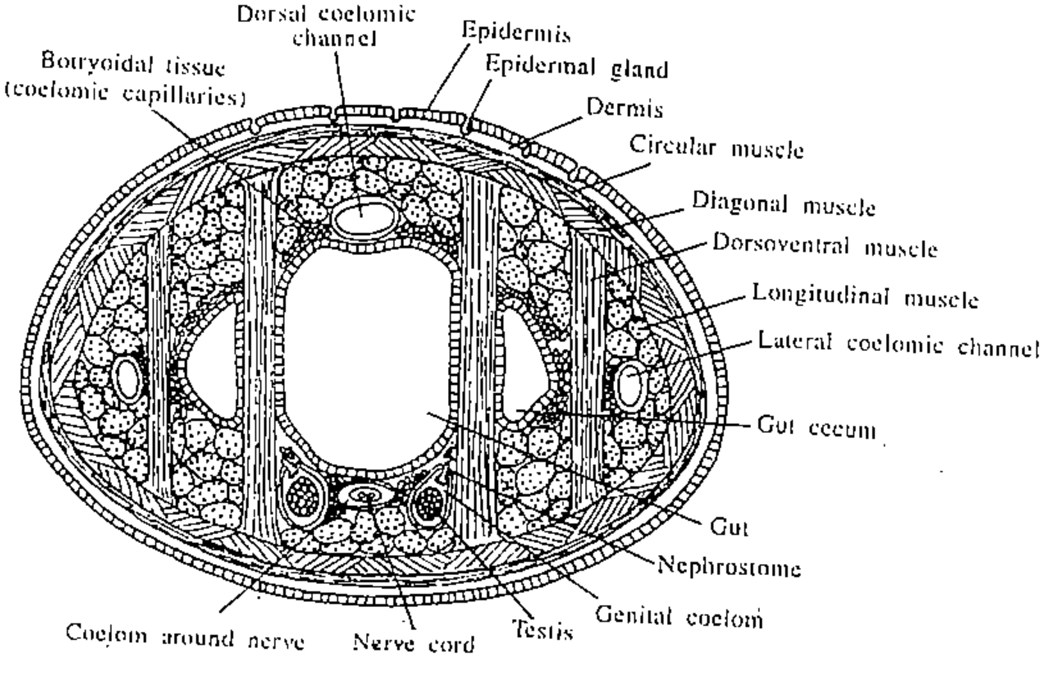

चित्र 5.17 : आरिंकॉब्डेलिड जोंक *हिरूडो (Hirudo)* का अनुप्रस्थ सेक्शन। आरिंकॉब्डेलिड जोंकों में रक्त वाहिका-तंत्र के स्थान पर पूरी तरह रूपांतरित सीलोमी परिसंचरण तंत्र बना होता है।

संचलन या तो दो चूषकों के द्वारा लूप-गति के रूप में होता है या फिर जल के भीतर लहरदार गतियों के द्वारा होता है। ये प्राणी अधिकतर रक्त का आहार करते हैं और दोनों अर्थात् समतापी कशेरुकियों और असमतापी कशेरुकियों के रक्तचूषी होते हैं तथा ऊतकों को काटने के लिए इनमें जबड़े बने होते हैं। मुख्य उत्सर्गी अंग नेफ्रीडिया होते हैं। इनका मस्तिष्क ग्रसनी को घेरता हुआ गैंग्लियानों का एक वलय होता है तथा एक दोहरा अधर तंत्रिका-रज्जु होता है जिसमें अनेक गैंग्लियान बने होते हैं। ये उभयलिंगी तो होते हैं परंतु निषेचन दो जोंकों के ही बीच होता है। क्लाइटेलम से स्रावित ककून में अण्डे तथा शुक्राणु दोनों ही आ जाते हैं। यह ककून कीचड़ में छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण : *हिरूडो मेडिसिनेलिस (Hirudo medicinalis)* (चित्र 5.18), जिसे अंग्रेजी में "इलाजी जोंक" भी कहते है, *ग्लॉसीफोनिया (Glossiphonia)* (चित्र 5.19), *हीमैडिप्सा (Haemadipsa)* (चित्र 5.20) जो रक्तचूषी थल जोंक होती है, *पिसिकोला (Piscicola)* (चित्र 5.21), जो मछली की परजीवी होती है।

चित्र 5.18 : इलाजी जोंक *हिरूडो मेडिसिनेलिस* का वाहरी अधर दृश्य।

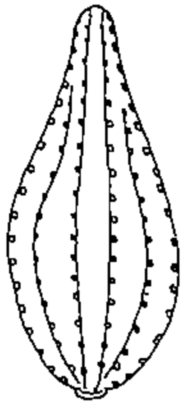

चित्र 5.19 : *ग्लॉसिफोनिया (Glossiphonia)* ।

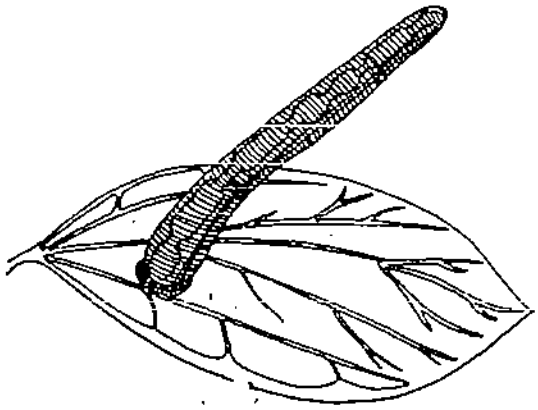

चित्र 5.20 : *हीमैडिप्सा (Haeemadipsa)* ।

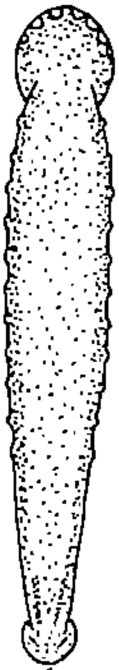

चित्र 5.21 : *पिसिकोला (Piscicola)*।

बोध प्रश्न 1

ऐनेलिड की दी गयी विशिष्टताओं के आधार पर बताइए कि वह किस क्लास में आता है?

ऐनेलिड	पार्श्वपाद	क्लाइटेलम	चूषक	शूक	क्लास
(i)	नहीं होते	केवल प्रजनन ऋतु में होता है।	दो चूषक होते हैं	नहीं होते	?
(ii)	होते हैं	नहीं होता	नहीं होते	बंडलों के रूप में होते हैं।	?
(iii)	नहीं होते	स्पष्ट, प्रजनन ऋतु में और अधिक स्पष्ट	नहीं होते	प्रति खंड थोड़े से ही शूक होते हैं	?

5.3 फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा (PHYLUM ARTHROPODA)

पिछले भाग में आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि सीलोम का किस प्रकार विकास हुआ तथा सीलोमेट प्राणियों के शरीर में किस प्रकार खंड बने जिससे खंडीभवन अथवा विखंडता की दशा विकसित हुई। विखंडता से प्राणियों को मिलने वाले लाभ के विषय में भी आपको बताया गया। आपने यह भी देखा कि इस लक्षण को ऐनेलिडों ने अपने सर्वाधिक लाभ के लिए किस प्रकार इस्तेमाल किया जिससे कि वे विविध प्रकार के निकेतों में विशेषकर जलीय निकतों में सफलतापूर्वक फैल गए।

अब हम आरम्भ करते हैं प्राणियों के सबसे बड़े फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा का अध्ययन। इस फ़ाइलम में अभी तक वर्णन की जा चुकी 10,00,000 से अधिक स्पीशीज़ आती हैं। यह संख्या उन तमाम अन्य स्पीशीज़ की संख्या से तिगुनी है जो जीवमंडल में पायी जाती हैं। सभी प्रकार के जलीय आवासों मे पहुंच जाने के बाद आर्थ्रोपोडा ही वह पहला प्रधान प्राणि-वर्ग है जो स्थल पर्यावरण में सफलतापूर्वक रहने लग गया है जहां उसके प्राणी हर संभव निकेत में पहुंच गए हैं। ऐनेलिडों की तरह आर्थ्रोपोड भी सीलोम युक्त तथा खंडयुक्त होते हैं। कदाचित ये दोनों फ़ाइलम किसी एक समान पूर्वज से ही विकसित हुए हैं।

विशिष्ट लक्षण

1) शरीर द्विपार्श्वतः सममित तथा विखंडतः खंडयुक्त, इन खंडों में परस्पर जुड़ कर अथवा समेकित

होकर कार्यात्मक इकाइयों के बनाने की प्रवृत्ति होती है, इन इकाइयों को *टैग्मैटा (tagmata,* खण्डैकक) कहते हैं, जैसे शिरोवक्ष तथा उदर; शीर्ष तथा धड़ अथवा शीर्ष, वक्ष एवं उदर बन जाते हैं।

2) खंडो पर संधि युक्त उपांग बने होते हैं।
3) बाह्यकंकाल एक कड़े क्यूटिकल के रूप में होता है, यह क्यूटिकल काइटिन, प्रोटीन तथा लिपिड का बना होता है पर कभी-कभी इसमें केल्सियम कार्बनेट के समावेश होने से यह अधिक कड़ा हो जाता है। नीचे पड़ी एपिडर्मिस से स्रावित होने वाली यह क्यूटिकल समय-समय पर उतार फेंक दी जाती है ताकि शरीर की वृद्धि संभव हो सके।
4) सिलिया नहीं होते।
5) सीलोम होती है लेकिन वयस्क में अति ह्रासित तथा विरूपित हो जाती है। मुख्य देह-गुहा हीमोसील होती है, यह हीमोसील अंगों तथा ऊतकों के बीच रक्त से भरी एक विशिष्ट गुहा होती है।
6) परिसंचरण-तंत्र खुले प्रकार का होता है।
7) सुविकसित पेशी तंत्र होता है जिसमें बाह्य कंकाल से संलग्न रेखित पेशियां, तथा आंतरांगों में अरेखित पेशियां होती हैं।
8) मुखांग, उपांगों से रूपांतरित हुए होते हैं, आहार-नाल सुविकसित होती है।
9) श्वसन-अंग सामान्यत: ट्रैकिया (वातिकाएं), बुक्लंग (पुस्तफुफ्फुस) अथवा गिल होते हैं।
10) उत्सर्गी अंग या तो माल्पीझी नलिकाएं होती हैं या कॉक्सल ग्रंथियां, या ऐंटनल ग्रंथियां या मेक्सिलरी ग्रंथियां।
11) तंत्रिका-तंत्र ऐनेलिड योजना पर बना होता है।
12) सेक्स अलग-अलग होता है, निषेचन भीतरी, परिवर्धन में अक्सर कायांतरण शामिल होता है।

चित्र 5.22 : दो खण्डों के बीच संधि झिल्ली।

आर्थ्रोपोडों की एक खास पहचान-लक्षण क्यूटिकल नामक कड़े काइटिनी बाह्यकंकाल का पाया जाना है जो समूची देह सतह को ढके रखता है। यह अध:स्थित एपिडर्मिस के स्रवण से बनता है। क्यूटिकल सामान्यत: मोटी एवं दृढ़ होती है। किंतु लचीलापन प्रदान करने के वास्ते दो खण्डों के बीच की तथा जोड़ों (संधियों) पर बनी क्यूटिकल अत्यंत पतली एवं लचीली होती है, और ऐसे स्थानों पर उसको संधि-झिल्ली (articular membrane) कहते हैं (चित्र 5.22)। प्रत्येक खण्ड में क्यूटिकल से बने पृष्ठ प्लेट को **टर्गम (tergum)** अथवा पृष्ठक अधर प्लेट को **स्टर्नम (sternum)** अथवा अँधरक तथा पार्श्व संरचनाओं को प्ल्यूरा (pleura, एकवचन pleuron) अथवा पार्श्वक कहते हैं। (चित्र 5.23)।

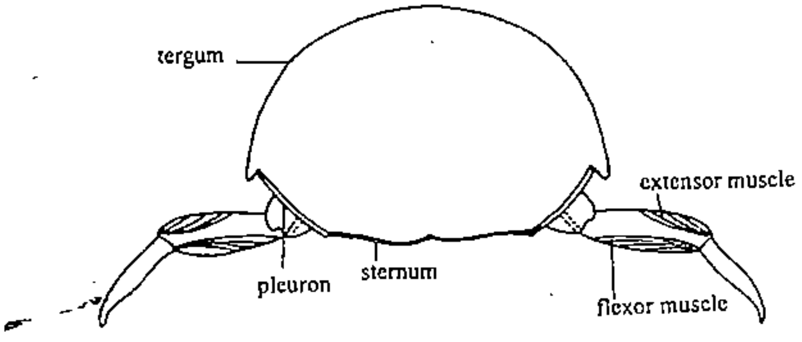

चित्र 5.23 : सामान्यीकृत खण्ड की संरचना।

अन्य सभी भागों में खण्डों में परस्पर कुछ हद तक समेकन होने की प्रवृत्ति होती है जिसके फलस्वरूप *टैग्मेटा* (एकवचन टैग्मा) नामक प्रकार्यात्मक समूह बन जाते हैं। खण्डों में इस प्रकार के परस्पर समेकन हो जाने से देह-क्षेत्र बन जाते हैं जैसे कि शीर्ष तथा धड़, या शीर्ष, वक्ष तथा उदर, या शिरोवक्ष और उदर। क्यूटिकल के अंतर्वलनों से अंत:कंकाली संरचनाएं बन जाती है जिन्हें ऐपोडीम (apodeme) कहते हैं (चित्र 5.24)। इन ऐपोडीमों पर पेशियां संलग्न रहती हैं।

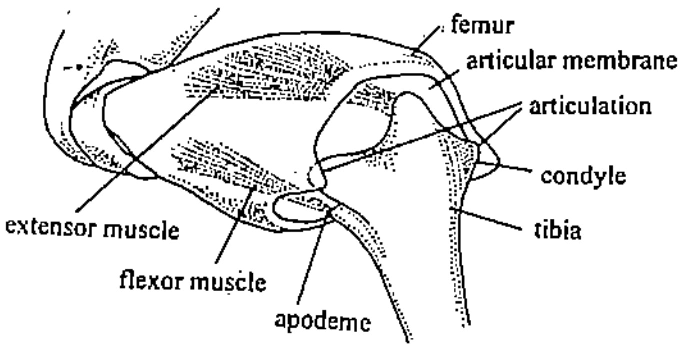

चित्र 5.24 : ऐपोडीम जहाँ पेशियां संलग्न रहती हैं।

आर्थ्रोपोडों के अध्यावरण (integument) अर्थात् त्वचा में एक एपिडर्मिस परत होती है जो एक आधार झिल्ली (basement membrane) के ऊपर टिकी होती है। इसी एपिडर्मिस से क्यूटिकल का स्राव होता है जैसा कि हम ऊपर पढ़ आए है। क्यूटिकल अनिवार्यत: एक काइटिन-प्रोटीन सम्मिश्र होती है। आर्थ्रोपोडों का रंग सामान्यत: क्यूटिकल के भीतर भूरे, पीले, नारंगी तथा लाल वर्णकों के जमा हो जाने से पैदा होता है। इन भौतिक रंगों का बनना क्यूटिकल की सूक्ष्म सतही बनावट (तक्षण, sculpturing) के कारण होता है। सूक्ष्म बनावट की वजह से सतह ऊंची-नीची हो सकती है जिससे प्रकाश का विवर्तन (diffraction) होकर रंगों का बोध होता है। शुरू-शुरू में बनी क्यूटिकल लचीली होती है, परंतु शीघ्र ही एक सम्मिश्र रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा, जिसे "टैनिंग" अथवा स्क्लेरोटाइज़ेशन (sclerotisation) कहते हैं, यह कड़ी हो जाती है। एक बार ऐसा हो जाने पर शरीर में वृद्धि नहीं हो सकती। अत: प्राणी को समय-समय पर क्यूटिकल को उतार फेंकना होता है ताकि उसका शरीर बढ़ सके। पुरानी क्यूटिकल को उतार फेंकने की प्रक्रिया को निर्मोचन (moulting अथवा ecdysis) कहते हैं। निर्मोचन एक हार्मोन-नियंत्रित प्रक्रिया होती है। निर्मोचन के दौरान पुरानी क्यूटिकल का कुछ भाग को पुन:शोषित करके नई क्यूटिकल के बनाने में उसका फिर से उपयोग कर लिया जाता है (चित्र 5.25)।

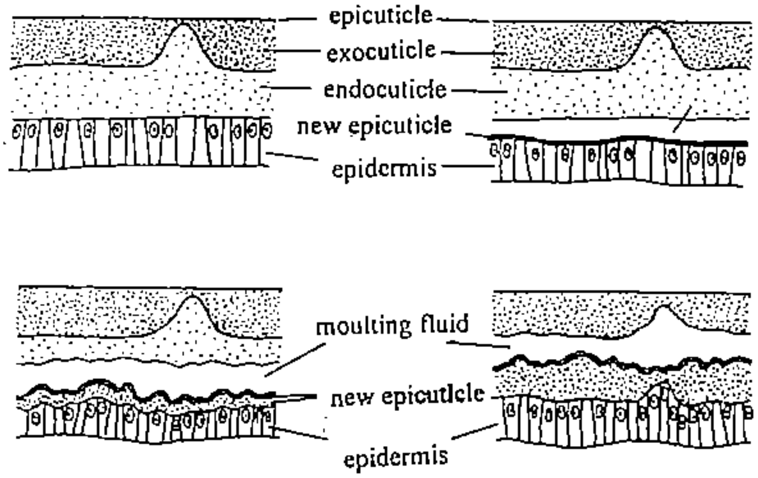

चित्र 5.25 : आर्थ्रोपोड में निर्मोचन। A) पूरी तरह बनी क्यूटिकल; B) एपिडर्मिस का अलगाव तथा निर्मोचन, तरल और नई क्यूटिकल का स्राव; C) पुरानी एंडोक्यूटिकल का पाचन तथा नई प्रोक्यूटिकल का स्राव; D) नई बनी क्यूटिकल तथा उतार फिंकने से पहले की पुरानी क्यूटिकल।

आर्थ्रोपोडों में ऐनेलिडों की अपेक्षा सीलोम में अत्यंत ह्रास हो गया है। इनमें सीलोम प्राय: कुछ उत्सर्गी अंगों में बनी गुहा अथवा गोनडों को घेरती हुई गुहा के रूप में पायी जाती है। आर्थ्रोपोडों की प्रधान देह-गुहा सीलोम नहीं बल्कि हीमोसील होती है। *हीमोसील*, जो कि विभिन्न संरचनाओं के बीच रक्त से भरी गुहा होती है, आर्थ्रोपोडा संरचना का विशेष लक्षण है। आर्थ्रोपोडों के रक्त संवहन-तंत्र में एक नलिकाकार हृदय, एक पृष्ठ महाधमनी तथा रक्त-भरी गुहा हीमोसील होती है (चित्र 5.26)। नलिकाकार हृदय एक परिहृद (pericardium) के भीतर बंद होता है एवं संकुचनशील होता है, और रक्त के चलाने का पम्पिंग केंद्र भी यही होता है। रक्त-कोशिकाएं नहीं होतीं तथा यह तंत्र खुले प्रकार का होता है। रक्त-प्लाज़्मा में श्वसन वर्णक हीमोसिऐनिन होता है तथा कुछ स्पीशीज़ में यह हीमोग्लोबिन के रूप में होता है, तथा कुछ में (कीटों में) होता ही नहीं।

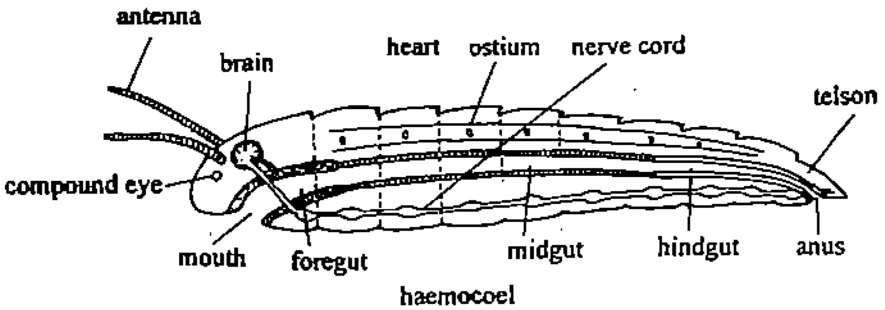

चित्र 5.26 : सामान्यीकृत आर्थ्रोपोड की संरचना।

उत्सर्जन **माल्पीघी नलिकाएं (malpighian tubules)** नामक संरचनाओं द्वारा होता है जो सामान्यत: स्थलीय आर्थ्रोपोडों में पायी जाती हैं। ये नलिकाएं आहार-नाल के नलिकाकार प्रसार के रूप में हीमोसील में मुक्त पड़ी रहती हैं और बाहरी सिरे पर बंद होती हैं। जलीय उदाहरणों में सामान्यत: युग्मित **कॉक्सल ग्रंथियां, ऐंटेनरी ग्रंथियां** अथवा **मैक्सिलरी ग्रंथियां** होती हैं जो ऐनेलिडों की विखंडीय नेफ्रीडिया के समजात होती हैं (चित्र 5.27)।

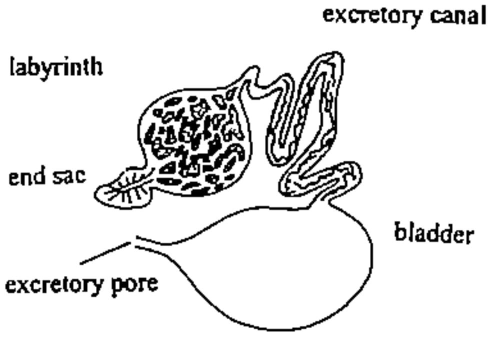

चित्र 5.27 : जलीय आर्थ्रोपोड का उत्सर्गी अंग।

आर्थ्रोपोडों के पाचन पथ में सामान्यत: तीन भाग होते हैं - *अग्रांत्र* (foregut अथवा stomodaeum), मध्यांत्र (midgut अथवा mesenteron) *पश्चांत्र* (hindgut अथवा proctodaeum) (चित्र 5.28)। अग्रांत्र तथा पश्चांत्र एक्टोडर्मी उद्भव वाली होती हैं और उनका भीतरी अस्तर एक पतली काइटिनी परत का बना होता है। मध्यांत्र एंडोडर्म से बनी होती है। लार-ग्रंथियां, यकृदग्न्याशय (हिपैटोपैंक्रियाज) तथा आंत्र अंधनाल (enteric caeca) कुछ विभिन्न पाचन ग्रंथियां हैं जो अलग-अलग आर्थ्रोपोड समूहों में पायी जाती हैं।

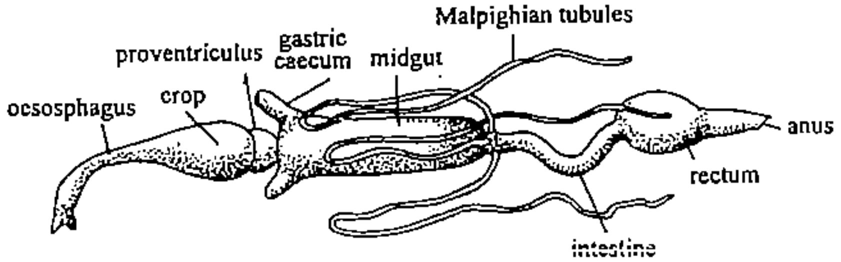

चित्र 5.28 : आर्थ्रोपोड का सामान्यीकृत पाचन पथ।

आर्थ्रोपोडों का तंत्रिका-तंत्र ऐनेलिड योजना पर ही बना होता है (चित्र 5.29)। पृष्ठत: एक मस्तिष्क होता है जो परिग्रसिका संयोजकों द्वारा अधोग्रसिका गैंग्लियॉन से जुड़ा होता है। दोहरे अधर तंत्रिका-रज्जु में खंडश: गैंग्लिया बने होते हैं, ये गैंग्लिया अलग-अलग वर्गों में अलग-अलग प्रकार से समेकित हो सकते हैं। आर्थ्रोपोडों में विविध प्रकार के संवेदी अंग पाए जाते हैं। आर्थ्रोपोडों के संवेदग्राही मूलत: विविध प्रकार की संवेदिकाएं (sensilla) होती हैं। ये संवेदिकाएं भांति-भांति प्रकार की हो सकती हैं, जैसे बाल, दृढ़रोम (bristles), शूक (setae) आदि (चित्र 5.30)। इनके साथ संवेदी तंत्रिकाकोशिकाएं एवं वे अनेक कोशिकाएं भी होती हैं जिनसे

ग्राही क्यूटिकली उपकरण भी बनता है। कीटों तथा क्रस्टेशियनों में संयुक्त आंखें (compound eyes) होती हैं। ऐसी आंखें बहुसंख्यक लम्बी, सिलिंडराकार इकाईयों की बनी होती हैं जिन्हें *ओमैटिडिया (ommatidian,* नेत्रांशक) कहते हैं। इन ओमैटिडिया में प्रकाश के अपवर्तन एवं ग्रहण करने के सभी तत्व मौजूद होते हैं (चित्र 5.31)।

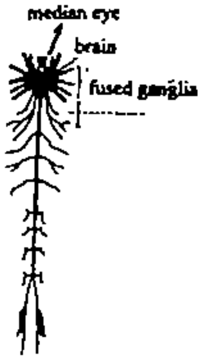

चित्र 5.29 : आर्थ्रोपोड के तंत्रिका तंत्र की सामान्यीकृत संरचना।

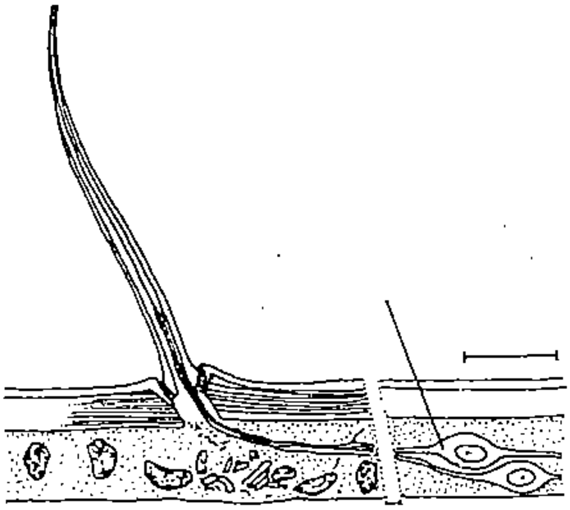

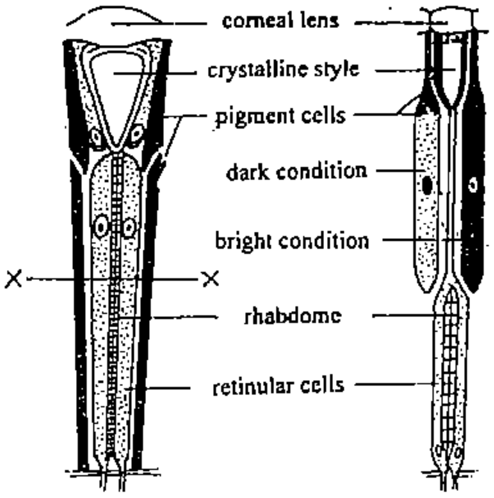

चित्र 5.30 : आर्थ्रोपोड का एक रसायन चलनी संवेदी बाल।

चित्र 5.31 : कीट की ओमैटीडियम।

अधिकतर जलीय आर्थ्रोपोडों में श्वसन संरचनाएं गिलों के रूप में होती हैं। स्थलीय आर्थ्रोपोडों में श्वसन संरचनाएं वातिका (trachea) नामक वायु नलियां होती हैं। कुछ वर्गों में श्वसन के लिए पुस्त-फुपफुस (बुक-लंग) भी होते हैं (चित्र 5.32)।

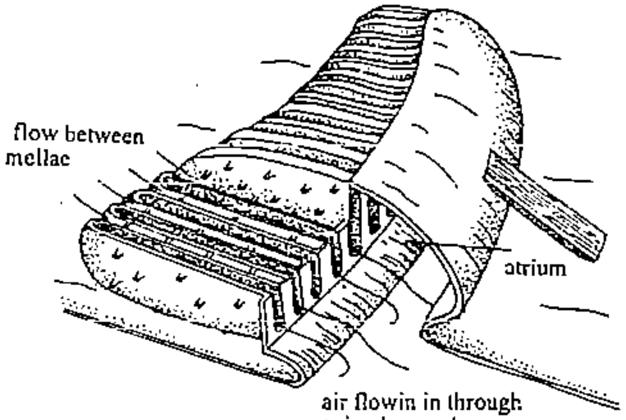

चित्र 5.32 : ऐरेक्निडा का बुक लंग (आरेखित चित्र)।

सामान्य आर्थ्रोपोड एकलिंगाश्रयी (dioecius) होते हैं। आमतौर पर मैथुन द्वारा शुक्राणुओं को भीतर पहुंचाया जाता है तथा इस उद्देश्य के लिए उपांग रूपांतरित होते हैं। निषेचन सभी स्थलीय आर्थ्रोपोडों में और कुछ जलीय उदाहरणों में भी, भीतरी प्रकार का होता है लेकिन कुछ खास जलीय आर्थ्रोपोडों में बाहरी निषेचन होना भी असामान्य नहीं है। आर्थ्रोपोडों में भरपूर पीतक से युक्त केंद्रपीतकी (centrolecithal) अण्डे होते हैं। विदलन सतही प्रकार का होता है। परिवर्धन में एक या अधिक लार्वा अवस्थाएं हो सकती हैं। कुछ आर्थ्रोपोड प्राणियों में शिशुप्रजता (viviparity) होती पायी जाती है।

आर्थ्रोपोडों में ये सब आते हैं - क्रस्टेशिया-प्राणी जिनके सामान्य उदाहरण झींगे, लॉब्स्टर तथा केकड़े हैं, ऐरेक्निडा-प्राणी जिनमें बिच्छू, मकड़ियां, किलनियां (ticks) चिंचड़िया (mites) आदि आती हैं, मिरिएपौड प्राणी जिनमें मुख्यत: कांतर (कानखजूरे) तथा मिलिपीड (गिजाइयां) आते हैं, तथा कीट, जैसे कि टिड्डे, मत्कुण, बीटल, मॉथ तथा तितलियां, मक्खियां, मच्छर, चीटियां, मधुमक्खियां एवं ततैये, आदि।

हमने ऊपर आर्थ्रोपोडा फ़ाइलम के कुछ सामान्य लक्षणों का वर्णन किया। आर्थ्रोपोडा का चार प्रमुख दिशा रेखाओं में विकास हुआ है। इनमें से प्रत्येक दिशारेखा को एक उपफ़ाइलम का स्थान दिया गया है। इन चार उपफ़ाइलमों में से उपफ़ाइलम **ट्राइलोबाइटोमॉर्फ़ा (Trilobitomorpha)** में केवल विलुप्त प्राणी ही आते हैं और उनका आज कोई भी जीवित सदस्य बाकी नहीं बचा है। उपफ़ाइलम **कीलिसेरेटा (chelicereta)** में अधिकतर स्थलीय उदाहरण आते हैं जैसे कि बिच्छू, मकड़ियां तथा किलनियां एवं चिंचड़ियां तथा जलीय आर्थ्रोपोड आते हैं जैसे कोपीपोड्स, बार्नेकल्स, श्रिम्प, लॉब्सटर, तथा केंकड़े। उपफ़ाइलम **यूनिरेमिया (Uniramia)** में अधिकतर स्थलीय उदाहरण हैं जैसे कि कांतर (कानखजूरे), मिलिपीड (गिजाइयां) तथा विभिन्न कीट। यद्यपि इस फ़ाइलम का उद्भव समुद्र में हुआ था मगर यूनिरेमियन तथा अनेक कीलिसेरेट-प्राणी थल पर विकसित हुए जान पड़ते हैं।

विविध उपफ़ाइलमों का विस्तार से अध्ययन करने से पूर्व आइए निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

बोध प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों में उचित शब्द भरिए :

1) फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा में संख्या की दृष्टि से प्राणियों की कुल लगभग .... स्पीशीज़ आती हैं।

2) आर्थ्रोपोडा शब्द का अर्थ है .... ।

3) विभिन्न आर्थ्रोपोडों के अलग-अलग खंडीय उपांगों को .... अंग कहा जाता है।

4) क्रस्टेशियनों के विशाखित उपांगों को .... अंग कहा जाता है जबकि कांतरों, गिजाइयों तथा कीटों के अविशाखित अंगों को .... कहते हैं।

5) आर्थ्रोपोडों के प्रत्येक खंड की पृष्ठ काइटिनी प्लेट को .... तथा अधर प्लेट को .... कहते हैं।

6) क्रस्टेशियनों में गोनडों तथा उत्सर्गी अंगों के अंत्य थैलों को घेरती हुई गुहा .... होती हैं।

7) .... तथा .... आर्थ्रोपोडों के उत्सर्गी अंग होते हैं।

8) संयुक्त आंख की घटक इकाई को .... कहते हैं।

9) फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा के चार उपफ़ाइलम इस प्रकार हैं - (1) .... (2) .... (3) .... (4) .... ।

10) फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा के कोई **पांच** पहचान लक्षण बताइए :

1)

2)

3)

4)

5)

फाईलम आर्थ्रोपोडा का वर्गीकरण

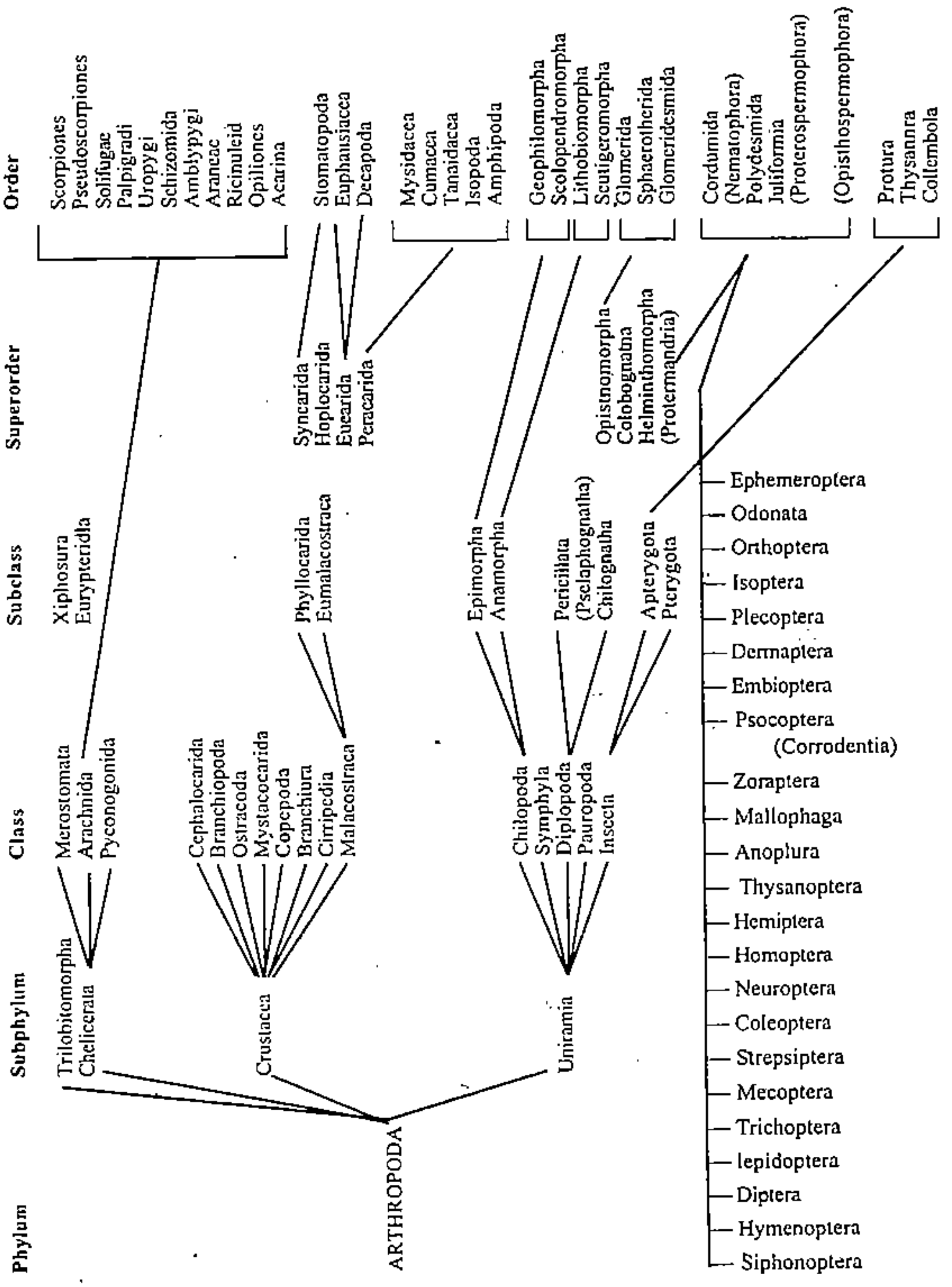

5.3.1 उपफ़ाइलम ट्राइलोबाइटोमॉर्फ़ा (Subphylum Trilobitomorpha)

उपफ़ाइलम ट्राइलोबाइटोमॉर्फ़ा में टाइलोबाइट आते हैं (चित्र 5.33)। इनकी समस्त स्पीशीज़ विलुप्त हो चुकी हैं, तथा इनके जीवाश्मों से पता चलता है कि ये सभी समुद्री प्राणी थे और ये पेलियोजोइक महाकल्प में हुआ करते थे। समस्त आर्थ्रोपोडों में से आदितम हैं। इनका शरीर दो अनुदैर्घ्य (लम्बी) खांचों द्वारा तीन पालियों (lobes) में विभाजित हो गया था। इनमें स्पष्ट शीर्ष, वक्ष एवं उदर होते थे। उपांग द्विशाखी थे। लगता है कि ट्राइलोबाइटों में विविध स्वभाव बन चुके थे, इनमें बिलकारी, अधिनितलस्थ (epibenthic) रेंगने वाले, प्लवक तथा तैरने वाले उदाहरण थे।

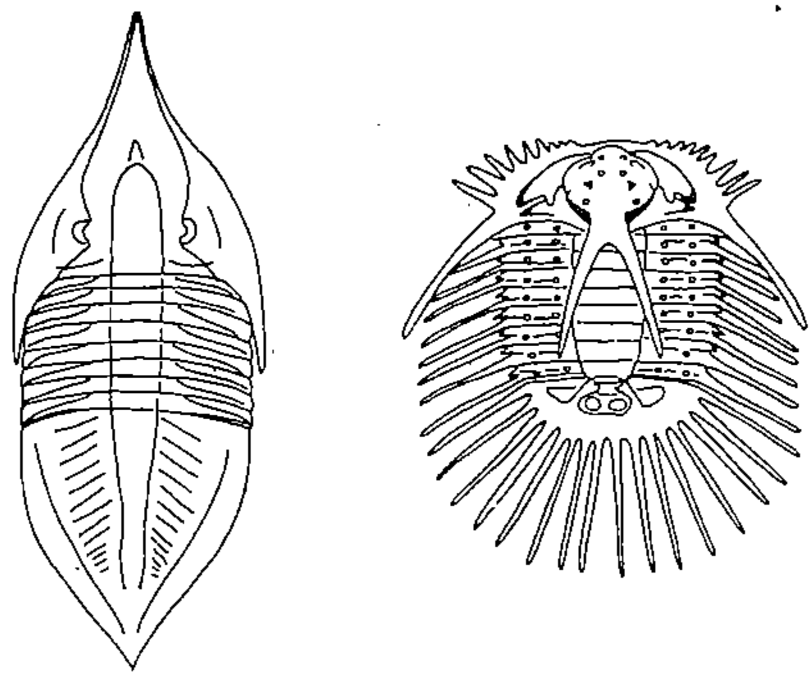

(a) (b)

चित्र 5.33 : विलुप्त ट्राइलोबाइट; A) मेगालैस्पिस जाति-बिलकारी; B) रेडियास्पिस जाति-प्लवक।

5.3.2 उपफ़ाइलम कीलिसेरेटा (Subphylum Chelicerata)

कीलिसेरेट शरीर दो भागों में बंटा होता है एक अग्र **शिरोवक्ष** अथवा **प्रोसोमा (Prosoma)** और एक पश्च उदर अथवा **ओपिस्थोसोमा (Opisthosoma)**। एंटैना नहीं होते। प्रथम जोड़ी के उपांगों को **कीलिसेरी (chelicerae)** कहते हैं - ये आहार पकड़ने वाली संरचनाएं हैं। दूसरी जोड़ी के उपांग **पैडिपैल्प (pedipalp)** होते हैं जो अलग-अलग वर्गों में अलग-अलग प्रकार्य करते हैं। पैडिपैल्पों के बाद वक्ष क्षेत्र में चार जोड़ी **गमन टांगें (walking legs)** होती हैं।

उपफ़ाइम कीलिसेरेटा में तीन क्लास आते हैं : मीरोस्टोमेटा, ऐरेक्निडा तथा पिक्नोगोनिडा।

क्लास 1 : मीरोस्टोमेटा (Merostomata)

ये जलीय कीलिसेरेटा हैं जिममें पांच या छः जोड़ी उदर उपांग श्वसन के लिए गिलों के रूप में बदल गए हैं। शरीर के अंत में एक कांटे जैसा टेल्सॉन होता है।

इस वर्ग में दो उपक्लास आते हैं : (1) **जाइफ़ोस्यूरा,** अश्वनाल केकड़े, तथा (2) **यूरिप्टेराइडा** जो अब विलुप्त है।

उपक्लास I जाइफ़ोस्यूरा (Xiphosura) : जाइफ़ोस्यूरा-प्राणी केम्ब्रियन युग से विद्यमान पाए गए हैं। अधिसंख्य स्पीशीज़, विलुप्त हो चुकी हैं। केवल चार स्पीशीज़ ऐसी हैं जो केम्ब्रियन युग से आज तक चली आ रही हैं। इनमें सर्वाधिक सामान्य जीनस अश्वनाल केकड़े की जीनस **लिमुलस (Limulus)** (चित्र 5.34)। यह नरम तली वाले उथले जल में रहता है। ये प्राणी 60 सेमी तक लम्बे हो जाते हैं तथा इनका रंग गहरा भूरा होता है। इसके शिरोवक्ष को ढकती हुई ढाल जैसी अथवा अश्वनाल की आकृति की एक उत्तल बाह्यकंकाली प्लेट **कैरापेस (carapace)** होती है जो इस जीव को रेत के भीतर आगे-आगे बढ़ने से सहायता प्रदान करती है। यह कैरापेस अधर उपांगों को भी सुरक्षा प्रदान करने के लिए आवरण बनाती है। शीर्ष पर एक जोड़ी संयुक्त नेत्र तथा जोड़ी सरल मध्य आंखें भी होती हैं। प्रोसोमा में एक जोड़ी कीलिसेरी तथा पांच जोड़ी संयुक्त नेत्र तथा एक जोड़ी सरल मध्य आंखें भी होती हैं। प्रोसोमा में एक जोड़ी कीलिसेरी तथा पांच जोड़ी गमन-टांगें होती हैं। उदर अथवा ओपिस्थोसोमा में खंड नहीं बने होते तथा उसमें छः जोड़ी उपांग होते हैं। पहली जोड़ी के उपांग समेकित होकर एक जनन आच्छद बना लेते हैं जिसमें दो जनन-छिद्र बने होते हैं। शेष पांच जोड़ी रूपांतरित होकर गिल बन गए हैं। प्रत्येक गिल में लगभग 150 पत्ती जैसे वलन अथवा पटलिकाएं बन जाती हैं जो पुस्तक के भीतर के पन्नों के जैसे व्यवस्थित होती हैं। इसलिए उन उपांगों को कभी-कभी **पुस्तगिल (book gills)** भी कहा जाता है। अश्वनाल केकड़े सर्वभक्षी होते हैं। इनमें सुविकसित पाचन एवं परिसंचरण-तंत्र होते हैं। उत्सर्जन चार जोड़ी कॉक्सल ग्रंथियों द्वारा होता है। ये सभी ग्रंथियां आखिरी जोड़ी की गमन-टांगों के आधार पर बने एक सम्मिलित उत्सर्गी छिद्र द्वारा बाहर हो खुलती हैं। मस्तिष्क अनेक गैंग्लियानों के समेकन से बनता है जिसमें पहले सात खंडों के गैंग्लिया भी सम्मिलित हैं। उदर में पांच गैंग्लिया होते हैं। नर-मादा अलग-अलग होते हैं। मादा *लिमुलस* 2000 से लेकर 30,000 तक अण्डे देती है। विदलन सम्पूर्ण होता है एवं परिवर्धन के भीतर एक ट्राइलोबाइट लार्वा अवस्था पायी जाती है (चित्र 5.35)। यह लार्वा ट्राइलोबाइट से मिलता-जुलता होता है। लैंगिक परिपक्वता आने में 3 वर्ष अथवा उससे कुछ ज़्यादा समय लगता है और पूरी जीवनावधि लगभग 19 वर्ष की होती है। चूंकि ज़ाइफ़ोस्यूरन-प्राणी पृथ्वी पर 20 करोड़ वर्ष से भी ज़्यादा समय से रहते आ रहे हैं और उनमें कोई ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ है इसलिए ये एक विकासीय स्मृति चिन्ह हैं और इन्हें कभी-कभी सजीव जीवाश्म (living fossil) कहा जाता है।

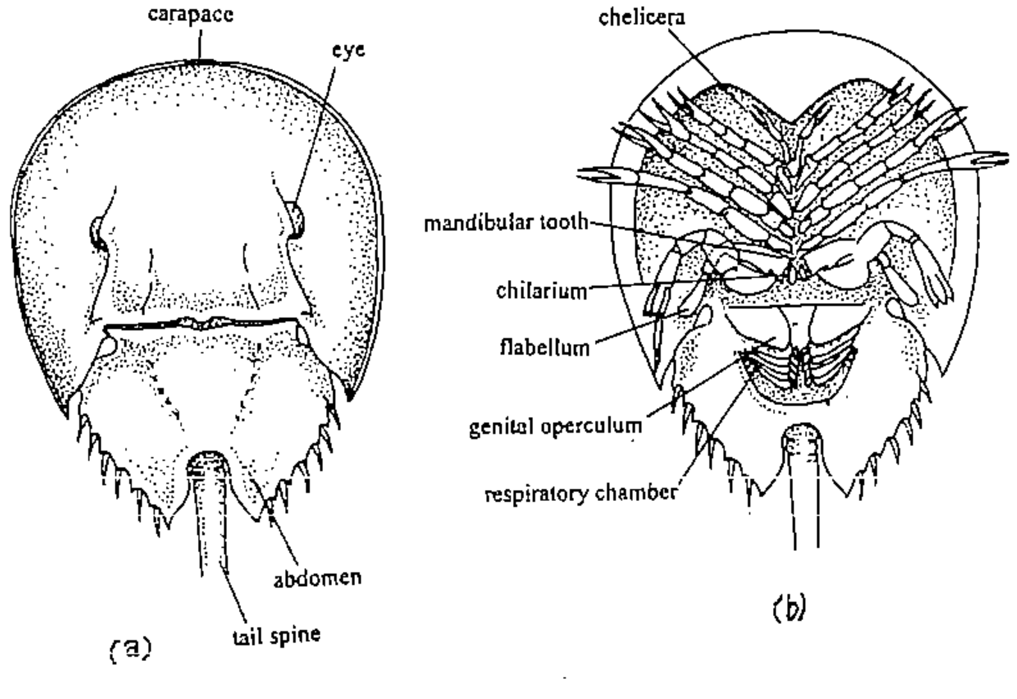

चित्र 5.34 : लिमुलस A) पृष्ठीय दृश्य; B) अधरीय दृश्य।

उपक्लास 2 यूरिप्टेरॉइडा (Subclass Eurypterida) : यूरिप्टेराइडा वर्ग में विशालकाय विलुप्त मीरोस्टोम प्राणी आते हैं। ये जलीय प्राणी थे तथा इनकी अस्तित्व ऑर्डोवीशियन से लेकर पर्मियन काल तक बना रहा। *टेरिगोटस (Pterigotus)* नामक जीनस की एक स्पीशीज़ लगभग तीन मीटर लम्बी थी। यूरिप्टेरिड प्राणियों की देह-योजना जाइफ़ोस्यूरन के जैसी ही थी। ये बिच्छुओं से भी मिलते-जुलते थे। मगर इनका शिरोवक्ष अपेक्षाकृत छोटा था। उदर में पृथक खंड बने होते थे, और उपांगों से युक्त सात खंडों वाला एक पूर्व उदर (preabdomen) (मीसोसोमा) होता था तथा पांच खंडों वाला उपांगरहित पश्च उदर (post-abdomen) (मेटासोमा) होता था। ऐसा लगता है कि समुद्री पर्यावरण के अलावा ये न्यूनखरे जल, अलवण जलीय तथा स्थलीय पर्यावरणों में भी रहते थे। यह विचार भी रखा गया है कि हो सकता है कि यूरेप्टेरिड प्राणी ऐरेक्निडों के पूर्वज रहे हों; उदाहरण : *यूरिप्टेरिस (Eurypteris)* (चित्र 5.36)।

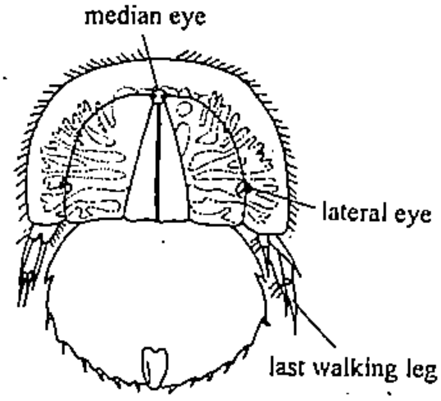

चित्र 5.35 : ट्राइलोबाइट लार्वा।

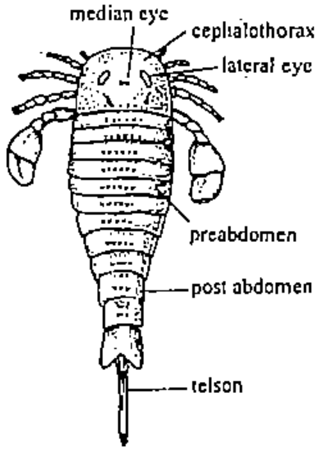

चित्र 5.36 : *यूरिप्टेरिस*।

क्लास 2 : ऐरेक्निडा (Class Arachnida)

शरीर शिरोवक्ष तथा उदर में विभाजित। शिरोवक्ष में चार जोड़ी टांगें, उदर खंडयुक्त अथवा बिना खंडों वाला, जिसमें उपांग हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते। श्वसन अंग या तो वातिकाएं होती हैं या पुस्तफुफ्फुस होते हैं। उत्सर्गी अंग या तो माल्पीघी नलिकाएं होती हैं या कॉक्सल ग्रंथियां। मस्तिष्क दो पालियों वाला होता है तथा वह अधर गैंग्लियानी संहति से जुड़ा होकर एक वलय बना लेता है। आंखे सरल मुख्यत: अंडप्रजक; कार्यांतरण नहीं होता।

ऐरेक्निडा क्लास, कीलिसेरेटा में सबसे बड़ा क्लास है तथा इसमें कुछ सर्वाधिक जाने पहचाने उदाहरण आते हैं जैसे मकड़ियां, किलनियां, चिंचड़िया, बिच्छू, कूटबिच्छू (seudoscorpions), ह्विप बिच्छू (whipscorpions), हार्वेस्टमैन (harvestmen) आदि। ऐरेक्निड-प्राणी आर्थ्रोपोडों के सबसे पुराने क्लासों में से एक हैं। इनके जीवाश्म बहुत पुराने सिलूरियन काल तक के प्राप्त हुए हैं। परिणामत: एपिक्यूटिकल मोमिया बन गयी है जिससे जल-हानि कम हो गयी, पुस्तगिल रूपांतरित होकर वायु में उपयोग में आने वाले पुस्तफुफ्फुस बन गए, तथा उपांग स्थलीय संचलन के लिए अधिक बेहतर तरीके से अनुकूलित हो गए।

ऐरेक्निडों के शरीर (चित्र 5.37) में तीन स्पष्ट क्षेत्र दिखायी पड़ते है : पहला, **प्रोसोमा** जिसमें खंड नहीं बने होते तथा उसके ऊपर एक कैरापेस चढ़ा होता हे, दूसरा, **मीसोसोमा** अथवा पूर्व उदर तथा तीसरा, **मेटासोमा** अथवा पश्च उदर। बिच्छुओं को छोड़कर शेष ऐरेक्निडों के उदर के ये दो विभाजन सुव्यक्त नहीं होते तथा खण्ड समेकित हो गए होते हैं। उपांग सामान्यत: केवल प्रोसोमा तक ही सीमित होते हैं जिनमें एक जोड़ी कीलिसेरी, एक जोड़ी पेडिपैल्प तथा चार जोड़ी गमन टांगें होती हैं। ऐंटेना तथा मेंडिबल नहीं होते।

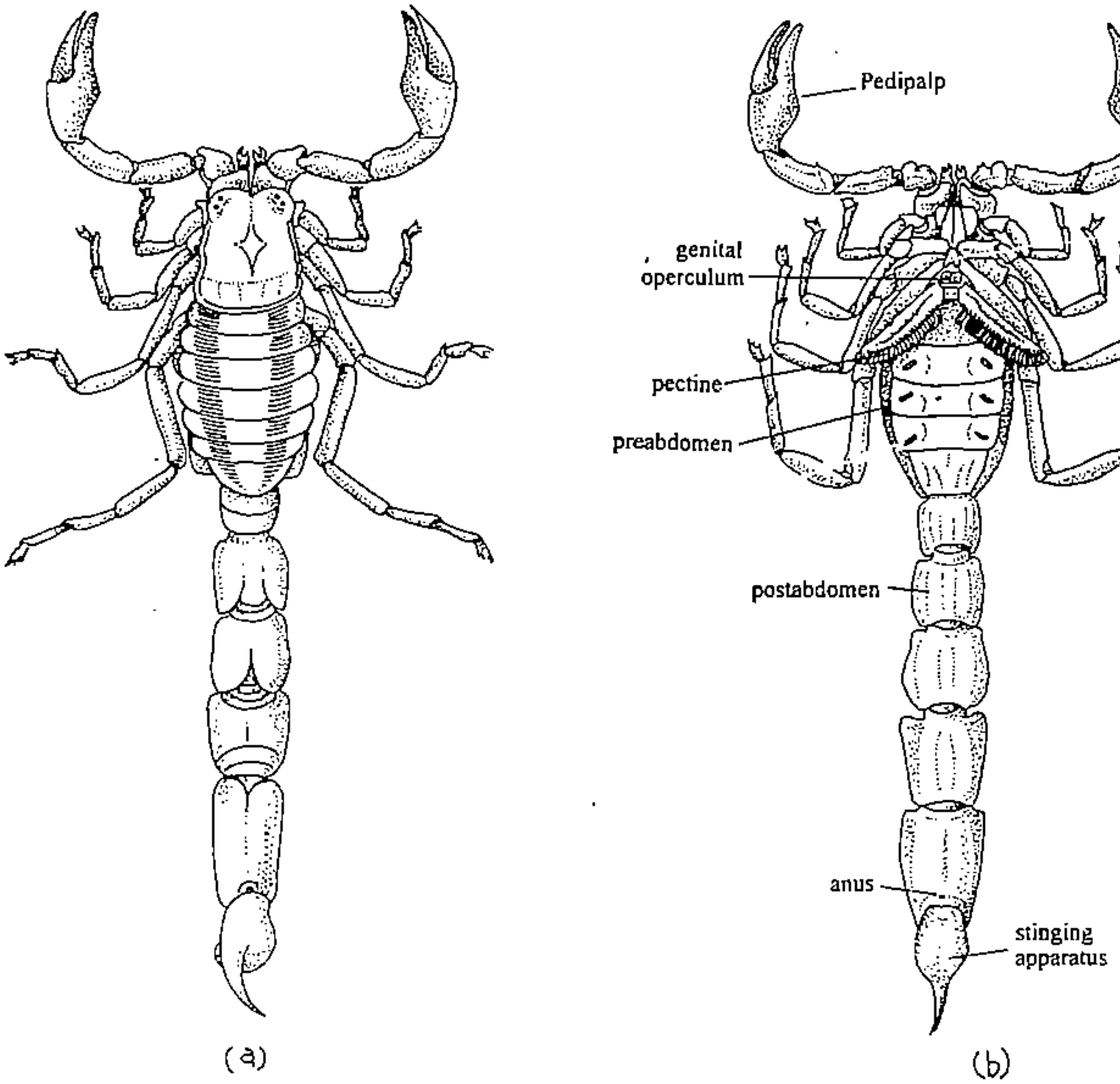

चित्र 5.37 बिच्छू; A) पृष्ठीय दृश्य; B) अधरीय दृश्य।

ऐरेक्निड सामान्यत: मांसभक्षी होते हैं तथा आहार का आंशिक पाचन प्राणी के शरीर के बाहर होता है। छोटे-छोटे आर्थ्रोपोडों को शिकार की तरह पकड़ कर पेडिपैल्प एवं कीलिसेरी द्वारा मार दिया जाता है। कीलिसेरी द्वारा पकड़े रखे गए शिकार के ऊपर मध्यांत्र के एंजाइम बाहर को उगल दिए जाते हैं। तदुपरांत शक्तिशाली पेशीय ग्रसनी के द्वारा चूसने से अंशत: पचा हुआ तरल आहार मुख के भीतर से होता हुआ अंदर पहुंच जाता है। मध्यांत्र एक विशेषित संरचना है जिसमें एक केंद्रीय नलिका और उससे पार्श्वत: निकले हुए अंधवर्ध बने होते है (चित्र 5.38)। प्रोसोमा तथा उदर में स्थित अंधवर्ध अंशत: पचे हुए आहार से भर जाते हैं और आगे का पाचन इन्हीं के भीतर होता है। मध्यांत्र उदर के पश्च भाग में चलती जाती है जहां वह रेक्टम (मलाशय) का रूप ले लेती है और फिर गुदा के द्वारा बाहर को खुल जाती है।

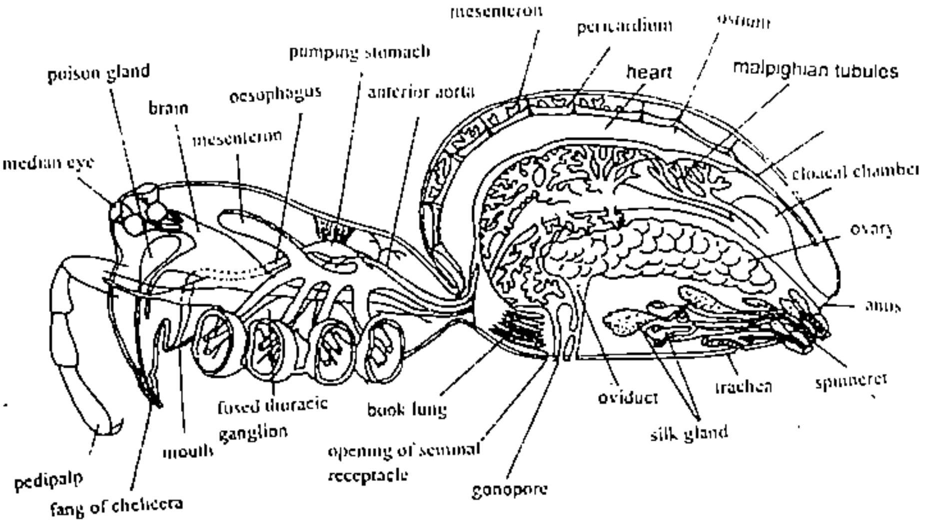

चित्र 5.38 : मकड़ी की आंतरिक संरचना।

तंत्रिका-तंत्र (चित्र 5.39) अत्याधिक सकेंद्रित होता है। मस्तिष्क दो भागों, प्रोटोसेरीब्रम (protocerebrum) अर्थात् आद्यप्रमस्तिष्क तथा ट्राइटोसेरीब्रम (tritocerebrum) अर्थात् तृतीयमस्तिष्क का बना होता है। अनेक आर्डरों में अधिकतर अथवा सभी वक्ष एवं उदर गैंग्लिया आगे की ओर आकर अद्योग्रसिका गैंग्लियॉन से समेकित हो जाते हैं। इस प्रकार ग्रसिका को घेरता हुआ तंत्रिका-तंत्र प्राय: एक वलय-जैसा दिखायी पड़ता है। संवेदी अंगों में आते हैं - संवेदी रोम, आंखें तथा झिरी (slit) संवेदी अंग। संवदी रोमों का प्रकार्य रसग्राहीय अथवा घ्राणीय (सूंघने का) होता है। अकेले अथवा समूहों में पाए जाने वाले झिरी-अंगों में इन सबके लिए अनुक्रिया होती है - बाह्यकंकाल में तनाव के परिवर्तन, संचलन के दौरान भार-प्रतिबल, गुरुत्व, एवं वायु द्वारा आने वाले कम्पन। समूहों के रूप में पाए जाने वाले झिरी-अंगों को **लाइरिफ़ार्म अंग (lyriform organs)** कहते हैं। बिच्छुओं में एक जोड़ी विचित्र कंघीरूपी संवेदी अंग पाए जाते हैं जिन्हें **पेक्टीन (pectines)** कहते हैं (चित्र 5.37)। ये अधर दिशा में जनन-प्लेटों के पीछे स्थित होते हैं तथा दूसरे उदर खंड से संलग्न होते हैं। कुछ चिंचड़ियों (वरूथियों) में **कूटस्टिग्मैटिक (pseudostigmatic) अंग** नामक एक विशेष प्रकार के संवेदी अंग पाए जाते हैं जिनसे उन्हें वायु प्रवाहों का पता चलता है।

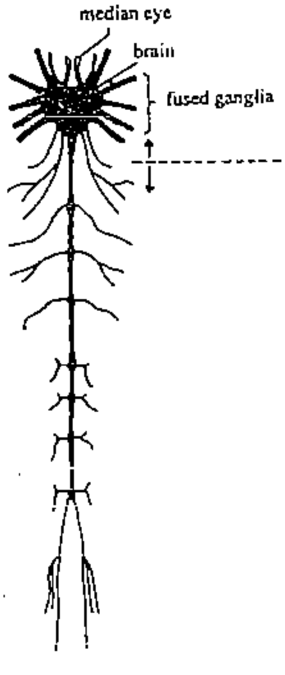

चित्र 5.39 : बिच्छू का तंत्रिका तंत्र।

ऐरेक्निडों में श्वसन अंगों के रूप में पुस्तफुफ्फुस (चित्र 5.32) अथवा वातिकाएं अथवा ये दोनों ही होते हैं।

पुस्तफुफ्फसों को रूपांतरित पुस्तगिल माना जाता है और संरचना में भी वे उन्हीं के समान होते हैं। परंतु ये अधर उदर-भित्ति की कोटरिकाओं के रूप में पाए जाते हैं। इनकी एक दीवार में वलन बन कर पटलिकाएं बन जाती हैं जिनके भीतर रक्त का परिसंचरण होता है। इन पटलिकाओं के बाहर वायु का परिसंचरण होता है जिससे श्वसन क्रिया हो जाती है। हृदय उदर के अग्र अर्धांश में स्थित होता है। बिच्छुओं में सात जोड़ी ऑस्टियम होते हैं, और प्रत्येक जोड़ा एक खंड के अनुरूप होता है। परंतु अन्य ऐरेक्निड ऑडरों में ऑस्टियमों की संख्या में न्यूनाधिक कमी आ जाती है। उत्सर्जन की क्रिया कॉक्सल ग्रंथियों (चित्र 5.27) तथा माल्पीघी नलिकाओं द्वारा सम्पन्न होती है। कॉक्सल ग्रंथियां सीलोमी थैलों से व्युत्पन्न हुई होती हैं उनकी वाहिनियां टांग के कॉक्साओं पर खुलती हैं। माल्पीघी नलिकाएं पतली नलियां होती हैं जो मध्यांत्र से निकल कर फिर उसी में खुल जाती हैं।

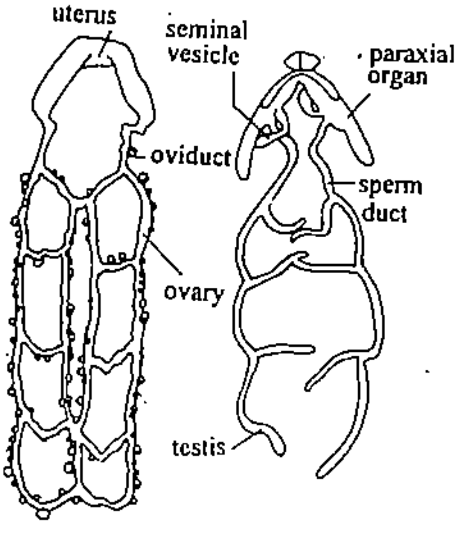

चित्र 5.40 : बिच्छू का जनन तंत्र A) नर; B) मादा।

गोनड (चित्र 5.40) या तो एकल होता है अथवा वे युग्मित होते हैं। जनन-छिद्र दूसरे उदर खंड पर बना होता है। शुक्राणु का पहुंचना शुक्राणुधर (spermatophore) द्वारा होता है जो शुक्राणुओं से भरा एक थैला होता है। नर प्राणी अपना शुक्राणुधर एक जगह पर निकाल कर रख देता है और मादा उसकी ओर आकर्षित होती है। अधिकतर ऐरेक्निडों में मैथुन से पहले एक सम्मिश्र प्रणय अथवा मैथुनपूर्व व्यवहार होता पाया जाता है। अनेक ऐरेक्निड अपने अण्डों को अपने जनन-पथों में ही पनपाते हैं और सजीव परिवर्धित बच्चों को जन्म देते हैं। इस प्रकार की शिशुप्रजता ऐरेक्निडों में आम पायी जाती हैं।

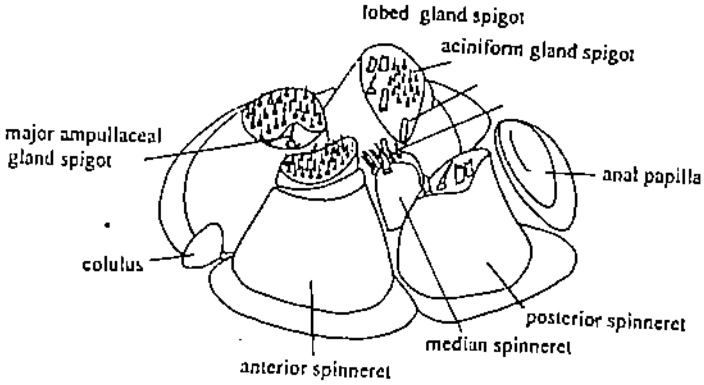

चित्र 5.41 : मकड़ी के वयित्र।

अनेक मकड़ियों में पायी जाने वाली **रेशम ग्रंथियां** तथा उनसे संबद्ध **वयित्र** (spinnerets) खास महत्व की संरचनाएं हैं। वयित्र अर्थात् कातने वाले अंग (चित्र 5.41) रूपांतरित उपांग होते हैं जो उदर पर अधर दिशा में गुदा के सामने बने होते हैं। इनके ऊपर बहुसंख्यक **स्पिगॉट** (spigot) होते हैं जो रेशम-ग्रंथियों के छिद्र होते हैं। रेशम-ग्रंथियां बड़े आकार की होती है और उनका एक आकार होता है जिससे निकलने वाली एक वाहिनी वयित्र पर आकर खुलती है। मकड़ियों के जीवन में इस रेशम का बहुत बड़ा योगदान है। जाले का इस्तेमाल शिकार पकड़ने के लिए किया जाता है। अनेक मकड़ियां अपने रेशम के धागे को वैसी ही एक "ड्रैग-लाइन" अर्थात् सुरक्षा-रस्सी की तरह से इस्तेमाल करती हैं जैसी कि पर्वतारोही किया करते हैं। रेशम के जाल को वे अपना विश्राम ग्रह जैसा भी इस्तेमाल कर लेती हैं। इनके अण्डे सामान्यतः रेशमी ककूनों में लिपटे होते हैं।

उदाहरण :

ऑर्डर 1 **स्कॉर्पियोनीज़ (Scorpiones) :** इसमें बिच्छु आते हैं; उदाहरण : *बूथस (Buthus)*, *पैलेम्नियस (Palamneus)* (चित्र 5.42); *ऐंड्रोक्टोनस (Androctonus)*, *सेंट्रॉयडीज़ (Centruroides)*; *हेटेरोमीट्रस (Heterometrus)*। इनके उदर के अंत पर एक दंशन-उपकरण बना होता है।

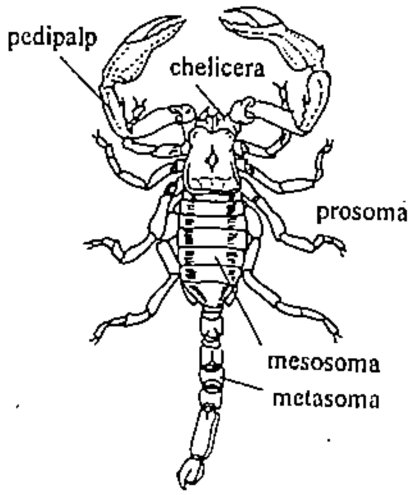

चित्र 5.42 : *पैलेम्नियस*।

ऑर्डर 2 **पैल्पिग्रैडाई (Palpigradi) :** ये पैल्पिग्रेड प्राणी हैं; उदाहरण : *यूकोनेनिया (Eukoenenia)* (चित्र 5.43)।

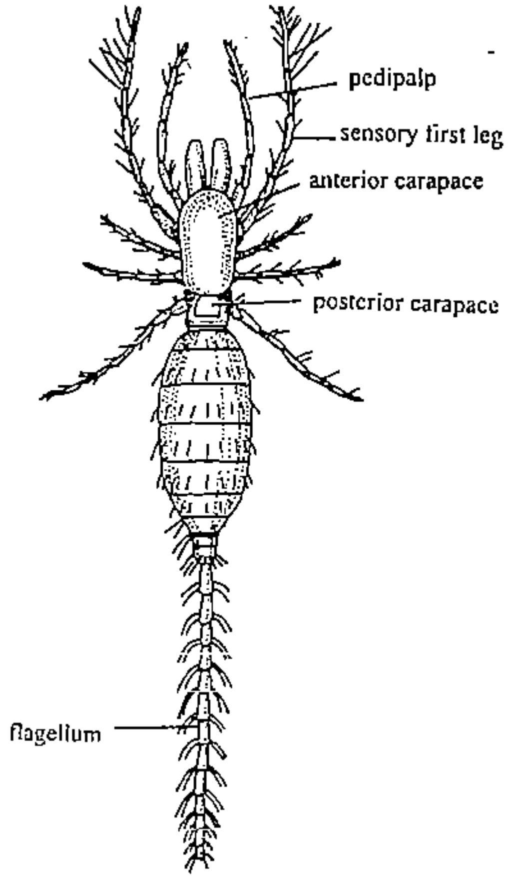

चित्र 5.43 : *युकोनेनिया*।

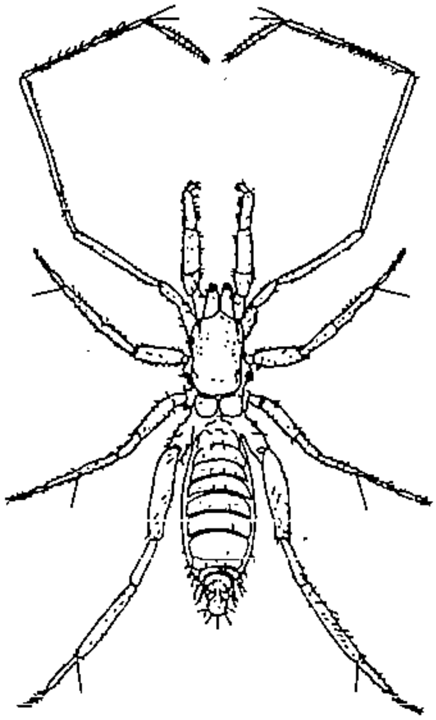

चित्र 5.44 : *शाइज़ोमस*।

ऑर्डर 3 **शाइज़ोमाइडा (Schizomido)** : इनमें बिना पूंछ वाले द्विपद-बिच्छू आते हैं। उदाहरण : *शाइज़ोमस (Schizomus)* (चित्र 5.44)।

ऑर्डर 4 **यूरोपाइगी (Europygi)** : ये द्विपद बिच्छू होते हैं; उदाहरण : *थेलिफोनस (Thelyphonus)* (चित्र 5.45)।

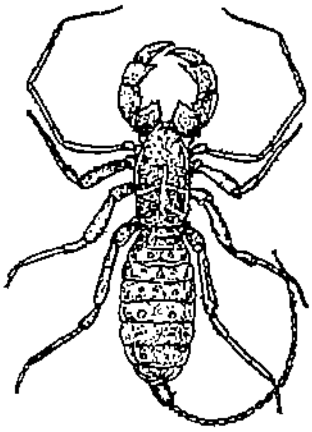

चित्र 5.45 : द्विपद बिच्छू।

ऑर्डर 5 **ऐरेनिया (Aranea)** : इसमें मकड़िया आती हैं; उदारण *लैट्रोडैक्टस (Latrodectus)*; काली "विडो मकड़ी" (चित्र 5.46); *साइनेमा (Synema)* केकड़ा मकड़ी।

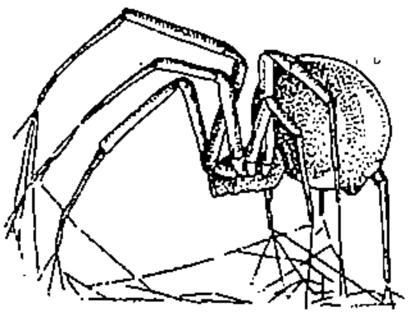

चित्र 5.46 : काली विडो मकड़ी।

ऑर्डर 6 **ऐम्बिलपाइगी (Amblypygi)** : ये लट्ठों, पेड़ की छालों, पत्थरों, पत्तियों आदि के नीचे रहते पायी जाती है; उदाहरण *टैरेंटुला (Tarantula)*, *कैराईनस (Charinus)* (चित्र 5.47)।

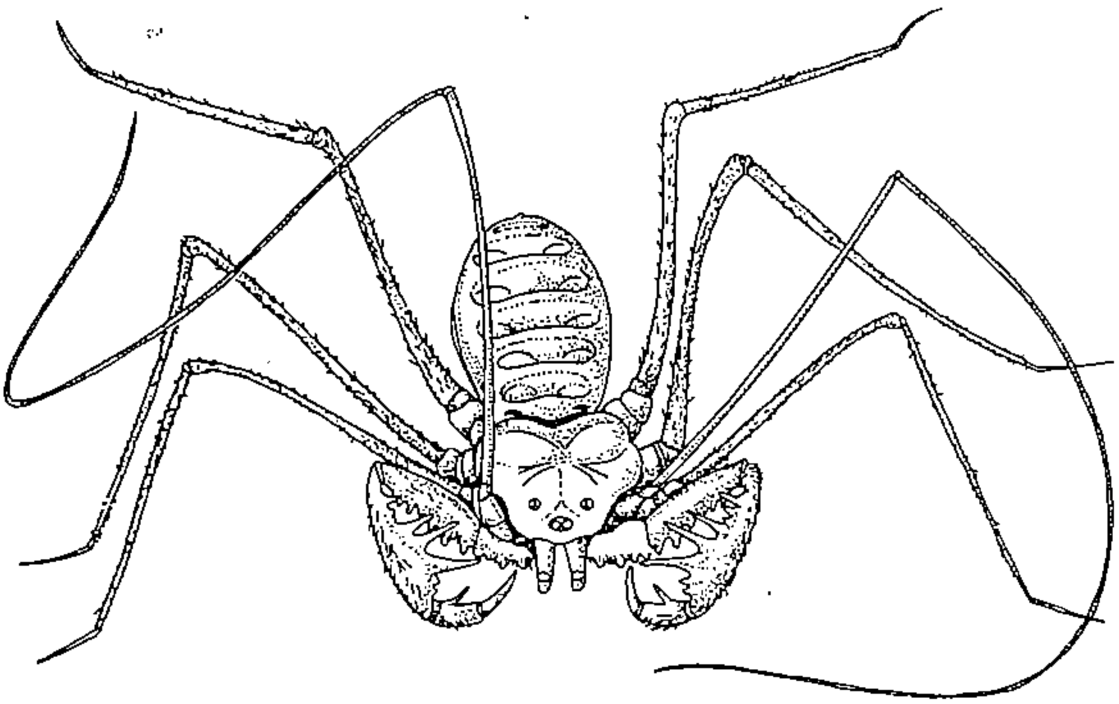

चित्र 5.47 : *कैराईनस*।

ऑर्डर 7 **रिसिनुलिआई (Ricinulei)** : इन्हें "टिक-स्पाइडर" कहते हैं जो केवल अफ्रीका तथा अमेरिका में ही पाए जाते हैं; उदाहरण : *क्रिप्टोसेलस (Cryptocellus)*, *रिसिनॉयडीस (Ricinoides)* (चित्र 5.48)।

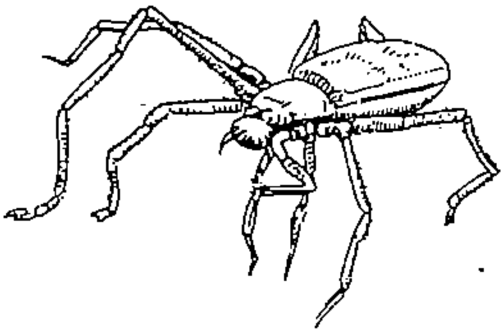

चित्र 5.48 : *रिसिनॉयडिस*।

ऑर्डर 8 **स्यूडोस्कॉर्पियोनीज़ (Pseudoscorpiones)** : इसमें कूटविच्छू आते हैं जो पेड़ों की छालों तथा पत्थरों आदि के नीचे रहते पाए जाते हैं; उदाहरण : *कीलिफ़र (Chelifer)* (चित्र 5.49)।

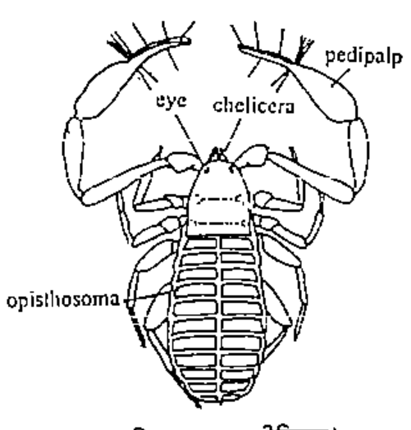

चित्र 5.49 : *कीलिफ़र*।

ऑर्डर 9 **सॉलिफ्यूजी (Solifugae)** : इन्हें "सन-स्पाइडर्स" अथवा "विंड-स्कॉर्पियन" कहा जाता है। ये पत्थरों के नीचे अथवा दरारों के भीतर रहते हैं तथा इनमें से अनेक बिलकारी होते हैं; ये अधिक से अधिक 7 सेमी लम्बे होते हैं; उदाहरण : *गैलॉयडीज़ (Galoides)* (चित्र 5.50)।

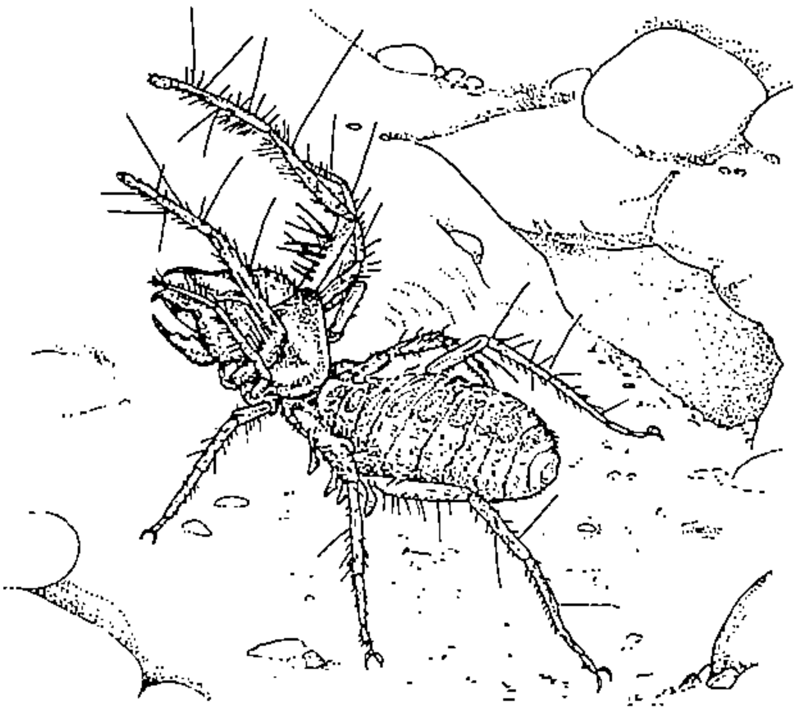

चित्र 5.50 : *गैलॉयडीज़*।

ऑर्डर 10 **ओपिलियोनीस (Opiliones)** अथवा **फैलेंजिडा (Phalangida)** : ओपिलियोनीस अथवा फैलेंजिड प्राणी जिनका सामान्य नाम "हार्वेस्टमैन" अथवा "डैडी लांग लेग्स" है, शीतोष्ण तथा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में आर्द्र स्थानों में रहते हैं। फैलेंजिड वनों के फर्श पर, वृक्षों के तनों पर, नीचे पड़े लट्ठों तथा ह्यूमस में पाए जाते हैं। इनकी लम्बाई सामान्यत: 5 से 10 सेमी होती है। ओपिलियोनीस-प्राणियों की टांगें लम्बी और पतली होती हैं और शरीर से भी कई-कई गुना लम्बी होती हैं। उदारण : *लीओब्यूनम (Leiobunum)* (चित्र 5.51)।

चित्र 5.51 : *लीओब्यूनम*।

ऑर्डर 11 **ऐकैराइना (Acarina)** : ऐकैराइना बहुत ही विविध ऐरेक्निडों का समूह है, जिसमें किलनियां तथा चिचड़ियां आती हैं (चित्र 5.52 तथा 5.53)। इनकी अनेक स्पीशीज़ मनुष्यों, पालतू जानवरों तथा फसलों पर बाह्यपरजीवी होती हैं। ये हमारे साज-समान तथा आहार तक को क्षति पहुंचाती हैं। स्वच्छंदजीवी चिचड़ियों के आवास विविध होते हैं जैसे कि वे घास, पौधों, नीचे गिरी पत्तियों, ह्यूमस, मिट्टी, गली-सड़ी लकड़ी तथा कचरे आदि पर रहती हैं।

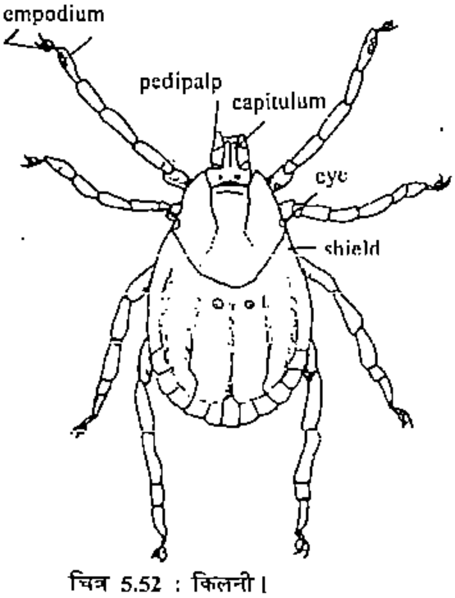

चित्र 5.52 : किलनी।

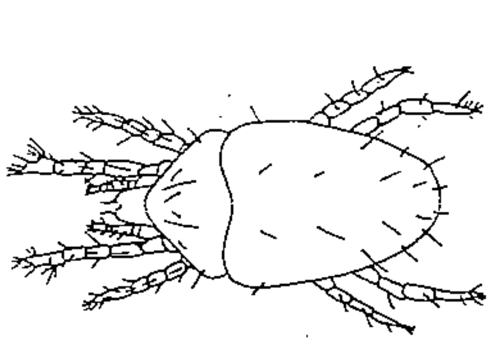

चित्र 5.53 : चिंचड़ी।

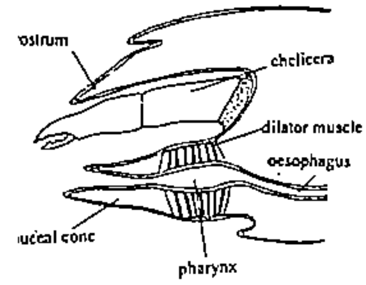

चित्र 5.54: चिंचडी का केपिटुलम।

ये जलीय भी होती हैं तथा अलवणजल और समुद्र दोनों में पायी जाती हैं। इनकी अब तक लगभग 30,000 स्पीशीज़ का वर्णन किया जा चुका है मगर अब भी बहुत सी बिन पहचानी स्पीशीज़ का वर्णन करना शेष है। इनकी लम्बाई सामान्यत: 0.25 से 0.75 मिमी होती है। किलनियां थोड़ी बड़ी होती हैं, कुछ स्पीशीज़ तो 3 सेमी तक लम्बी होती हैं। इनका छोटा आकार इन्हें अनेक तरह-तरह के सूक्ष्मआवासों में रह-सकने के लिए सक्षम बना देता है जैसे कि कीटों की वातिकाओं के भीतर, बीटलों के पंखों पर, पक्षियों के पंख पिच्छों पर तथा स्तनियों के रोमों पर। मुखांगों से युक्त शीर्ष-क्षेत्र को **केपिटुलम (capitulum)** (चित्र 5.54) अथवा **नैथोसोमा (gnathosoma)** कहते हैं। **मुख-शंकु (buccal cone)** नाम की एक संरचना शरीर की एक "सॉकेट" जैसे अग्र क्षेत्र में संलग्न रहती है, और उसे बाहर को निकाला तथा भीतर को सिकोड़ा जा सकता है। कीलिसेटी तथा पेडिपैल्प मुख-शंकु से जुड़े होते हैं। किलनियां परपोषियों पर चिपकी रहती हैं तथा वे मानव सहित सभी स्थलीय कशेरूकी वर्गों पर पायी जा सकती हैं। किलनियों द्वारा होने वाले रोगों में से कुछ हैं - टुलेरीमिया नामक "अमेरीकी रॉकी पर्व स्पाटेड ज्वर", टेक्सस मवेशी ज्वर, रिलैप्सिंग ज्वर, तथा "लाइम" रोग। चिंचड़ी एक एक स्पीशीज़ *सार्कोप्टीज़ स्केबिआई (Sarcoptes scabei)* से खुजली का रोग होता है जिसमें यह एपिडर्मिस के भीतर सुरंगें बनाकर रहती है।

अण्डों से छ: टांगों वाला एक लार्वा निकलता है जो कि तीन अवस्थाओं **प्रोटोनिम्फ़, ड्यूटोनिम्फ़** तथा **ट्राइटोनिम्फ़** में से गुज़रने के बाद वयस्क बनता है।

क्लास 3 : **पिक्नोगोनिडा (Pycnogonida)**

प्राय: 3-4 मिमी लम्बे; देह मुख्यत: शिरोवक्ष का बना, उदर बहुत ही छोटा; सामान्यत: चार जोड़ी गमन-टांगें; लम्बी शुंडिका जिस पर मुख बना होता है; सरल नेत्र चार की संख्या में; उत्सर्गी तथा श्वसन अंग नहीं होते।

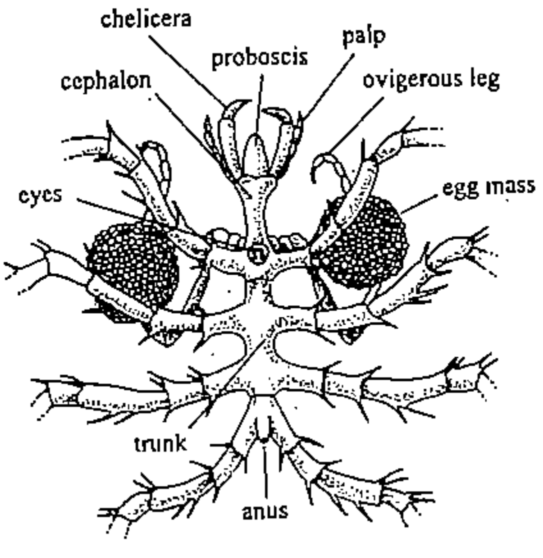

चित्र 5.55 : समुद्री मकड़ी।

इन्हें सामान्यत: समुद्री मकड़ियां कहते हैं (चित्र 5.55) तथा ये सभी समुद्रों में पायी जाती हैं। इनके संकरे शरीर में अनेक स्पष्ट खण्ड बने होते हैं। प्रोसोमा (शिरोवक्ष) शरीर का सुप्रकट भाग होता है जबकि ओपिस्थोसोमा (उदर) बहुत ह्रासित होता है। शीर्ष अथवा सेफेलॉन पर स्थित एक गुलिका की पृष्ठ सतह पर चार सरल नेत्र टिके होते हैं; तथा इनमें एक सिलिंडराकार शुंडिका होती है। इस पर एक जोड़ी अपेक्षाकृत छोटे कीलिसेरी तथा एक जोड़ी पेडिपैल्प भी बने होते हैं। धड़ चार सिलिंडराकार खण्डों का बना होता है जिनमें से पहला खण्ड शीर्ष से समेकित हो गया होता है। इन चार में से प्रत्येक खण्ड से एक जोड़ी पार्श्व प्रवर्ध निकले होते हैं जिन पर लम्बी गमन-टांगें जुड़ी होती हैं। प्रत्येक टांग में आठ खण्ड होते हैं और ये टांगें सामान्यत: शरीर से अधिक लम्बी होती हैं। उदर एक छोटा शंकुरूपी प्रवर्ध जैसा दिखायी पड़ता है।

पिक्नोगोनिड अधिकतर मांसभक्षी होते हैं तथा ये अपने आहार में नरम सीलेंटेरेटों, ब्रायोज़ोअनों, पौलीकीटों तथा स्पंजों को खाते हैं। अधिकतर परजीवी उदाहरण मौलस्कों पर रहते हैं। ग्रसनी एक पम्प जैसा कार्य

करती है तथा इसके भीतर पाए जाने वाले कड़े बाल आहार को चीरते-फाड़ते हैं (चित्र 5.56)। अंतड़ी (मध्यांत्र) काफ़ी बड़ी होती है तथा इससे निकले हुए अंधनाल उपांगों तक के अंदर को फैले होते हैं। परिसंचरण-तंत्र में एक हृदय, पृष्ठ वाहिका तथा हीमोसील होती है। विशेष श्वसन एवं उत्सर्गी अंग नहीं होते तथा गैस-विनिमय सीधा देह-सतह के माध्यम से होता है। तंत्रिका-तंत्र अन्य कीलिसेरेटों के जैसा होता है।

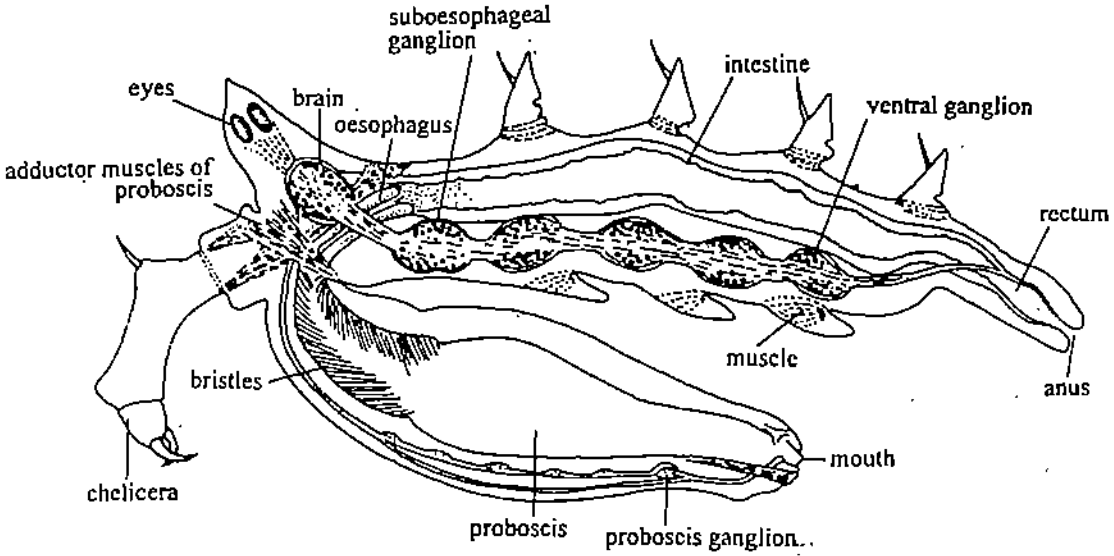

चित्र 5.56 : समुद्री मकड़ी की आंतरिक संरचना दर्शाते हुए सममितार्धी काट।

पिक्नोगोनिडों में नर-मादा अलग-अलग होते हैं। जनन-छिद्र बहुत हैं जो नर में दूसरी तथा चौथी टांगों के तथा मादा में सभी टांगों के कॉक्साओं की अधर दिशा पर स्थित होते हैं। गोनड धड़ के भीतर स्थित होते हैं; परंतु उनकी पार्श्व शाखाएं टांगों के भीतर तक होती हैं। मादा द्वारा बाहर छोड़े गए अण्डे नर के अण्डधर थैलों में एकत्रित कर लिए जाते हैं। इनकी एक लार्वा-अवस्था *प्रोटोनिम्फ़ॉन (protonymphon)* (चित्र 5.57) होती है जो या तो नर की अण्डधर टांगों में रहते हुए अथवा हाइड्रॉइडों एवं मूंगों (प्रवालों) के बीच रहते हुए परिवर्धित होते हैं। ये लार्वा कुछ क्रमिक निर्मोचनों के साथ परिवर्धन होने पर अंततः वयस्क बन जाते हैं।

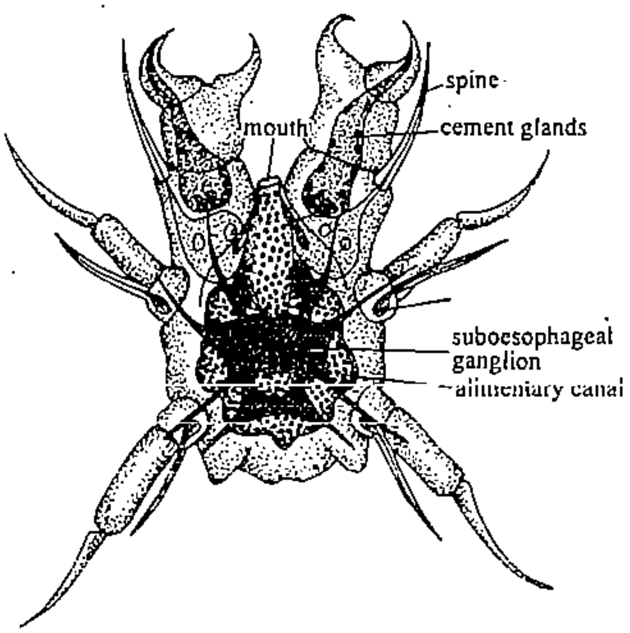

चित्र 5.57 : समुद्री मकड़ी का प्रोटोनिम्फ़ॉन लार्वा।

पिक्नोगोनिडों का वर्गीकरण स्थान स्पष्ट नहीं है। तंत्रिका-तंत्र की संरचना, संवेदी अंगों की प्रकृति तथा कीलिसेरी का पाया जाना, ये सभी लक्षण इन्हें कीलिसेरेटा प्राणियों में शामिल करने की ओर संकेत देते हैं। परंतु इनमें बहुत जनन छिद्रों अण्डधर टांगों तथा खण्डयुक्त उदर का पाया जाना इन्हें कीलिसेरेटा से पृथक करता है। यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता कि पिक्नोगोनिड ऐरेक्निडों से संबंधित हैं या नहीं।

बोध प्रश्न 3

I. दिए गए विकल्पों में से सही शब्द चुनिए :-

1. ट्राइलोबाइट-वर्ग आदिम/उन्नत आर्थ्रोपोडों का वर्ग है।
2. कीलिसेरेटों का एक विशिष्ट लक्षण है इनमें ऐंटेनाओं की उपस्थति/अनुपस्थिति।
3. कीलिसेरेटों के दूसरी जोड़ी के उपांगों को कीलिसेरी/पेडिपैल्पाई कहते हैं।
4. क्लास मीरोस्टोमा में स्थलीय/जलीय कीलिसेरेट आते हैं।
5. क्लास ज़ाइफ़ोस्यूरा/ऐरेक्निडा को सजीव जीवश्म माना जाता है।
6. मकड़िया, किलनियां, चिचड़ियां तथा विच्छू क्लास यूरिप्टेराइडा/ऐरेक्निडा में आते हैं।
7. बिच्छुओं में उदरपश्चीय क्षेत्र को मीज़ोसोमा/मेटोसोमा कहते हैं।
8. कातने वाले अंग अथवा वयित्र विशिष्टत: ऐरेनी/एकैराइना में पाए जाते हैं।
9. आर्डर सॉलिफ़्यूजी/एकैराइना में चिंचड़ियां आती हैं।

II. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :-

1. उपफ़ाइलम कीलिसेरेटा के तीन क्लास हैं........ .... तथा .... ।
2. अश्वनाल केकड़े उपक्लास .... में आते हैं।
3. ज़ाइफ़ोस्यूरनों को .... कहा जाता है क्योंकि वे दस करोड़ से अधिक वर्ष पूर्व से बिना कोई परिवर्तन हुए एक विकासीय स्मृतिचिन्ह की तरह पृथ्वी पर बने चले आ रहे हैं।
4. ऐरेक्निडों के श्वसन-अंग समूहों के रूप में पाए जाते हैं, इन समूहों को .... कहते हैं।
5. बिच्छुओं के कंघी जैसे संवेदी अंग .... कहलाते हैं।
6. .... नामक प्राणी ऐरेक्निड होते हैं जिन्हें सामान्यत: "डैडी लॉन्ग लेग्स" अथवा "हार्वेस्टमैन" कहते हैं।
7. एकैराइना के अनेक सदस्य मानवों, पालतू जानवरों तथा फसलों पर .... होते हैं।
8. किलनियों द्वारा मनुष्यों में होने वाले कुछ रोग हैं .... तथा .... ।
9. .... अंग चिचड़ियों का संवेदी अंग होता है जिसके द्वारा वे वायु धाराओं का पता चला सकती हैं।
10. समुद्री मकड़ियां क्लास .... में आती हैं।

5.3.3 उपफ़ाइलम क्रस्टेशिया

क्रस्टेशिया अधिकतर जलीय आर्थ्रोपोड होते हैं जिनमें श्वसन के लिए गिल (क्लोम) होते हैं। शिरोवक्ष में सामान्यत: एक कैरापेस होता है; उपांग द्विशाखी परंतु विविध प्रकार्यों के लिए रूपांतरित होते हैं। शीर्ष पर एक जोड़ी ऐंटेन्यूल (antennules), एक जोड़ी ऐंटेना, एक जोड़ी मैंडिबल तथा दो जोड़ी मैक्सिला होते हैं। परिवर्धन में एक नौप्लियस (nauplius) अवस्था आती है, मगर उच्चतर उदाहरणों में यह नहीं भी हो सकती।

क्रस्टेशिया के अंतर्गत आने वाले आर्थ्रोपोड अधिकतर जल में रहने वाले होते हैं। इस समूह में स्पीशीज़ की भारी विविधता पायी जाती है जो कि बायोमास (जैव संहति) का एक बड़ा भाग बनाती हैं। इसमें आनेवाले प्राणी हैं केकड़े, श्रिम्प, लॉब्स्टर, झींगे, काष्ट-जूं (woodlice), आदि। यद्यपि ये अधिकतर जलीय होते हैं, मगर इनमें कुछ अर्धस्थलीय तथा कुछ स्थलीय स्पीशीज़ भी हैं। स्थल पर इनमें कोई ख़ास सफलता नहीं आयी।

आइए क्रस्टेशियनों की कुछ संरचना-संबंधी विचित्रताओं का संक्षेप में अवलोकर करें (चित्र 5.58)। क्रस्टेशियनों का शरीर तीन क्षेत्रों में विभाजित रहता है - शीर्ष, वक्ष तथा उदर। शीर्ष तथा वक्ष खण्ड समेकित भी हो सकते हैं जिससे एक संयुक्त भाग **शिरोवक्ष (cephalothorax)** बन जाता है। कुछ उदाहरणों में वक्ष तथा उदर एक साथ मिलकर एक धड़ (trunk) बना लेते हैं। वक्ष खण्डों के ऊपर एक पृष्ठ ढाल का आवरण बना होता है जिसे **कैरापेस (carapace)** कहते हैं। यह कैरापेस शीर्ष की देह-भित्ति से पश्च दिशा में निकला हुआ एक वलन होता है जो अपने से पीछे के कम या ज़्यादा संख्या में खण्डों से समेकित हो जाता है। कैरापेस शरीर के पार्श्वों पर भी कुछ हद तक फैला-लटका हो सकता है या फिर कुछ उदाहरणों में पूरे शरीर को अपने भीतर घेर लेता है।

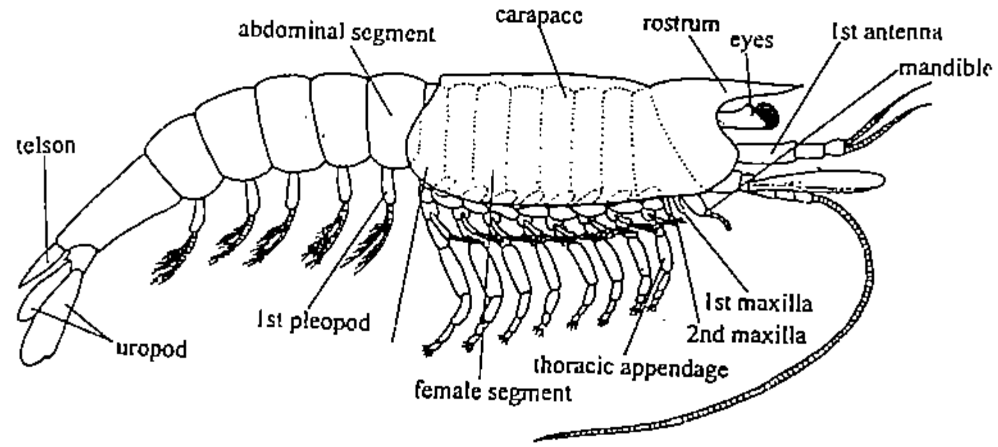

चित्र 5.58 : सामान्यीकृत क्रस्टेशियन।

शीर्ष पर पांच जोड़ी उपांग होते हैं जो उसके पांच खण्डों के अनुरूप होते हैं। पहले दो उपांग (चित्र 5.59) होते है; ऐंटेन्यूल (प्रथम जोड़ी के ऐंटेना) और *ऐंटेना* (दूसरी जोड़ी के ऐंटेना)। इस प्रकार क्रस्टेशियन ऐसे मात्र आर्थ्रोपोड हैं जिनमें दो जोड़ी ऐंटेना पाए जाते हैं। इनके बाद एक जोड़ी मैंडिबल आते हैं। ये छोटी एवं मोटी-मोटी संरचनाएं होती हैं जिनमें एक दूसरे के सम्मुखी पीसने वाली सतहें बनी होती हैं। इन मैंडिबलों के बाद दो सहायक अशन उपांग आते हैं जिनमें **पहली जोड़ी के मैक्सिला** तथा **दूसरी जोड़ी के मैक्सिला** आते हैं। ये सभी उपांग और ये सब भी जो वक्ष पर तथा उदर पर बने होते हैं **द्विशाखी (biramous)** होते हैं। प्रत्येक द्विशाखी उपांग में एक बड़ा **प्रोटोपोडाइट (protopodite)** होता है जिसमें दो अंश-एक **कॉक्सा (coxa)** तथा एक **बेसिस (basis)** होते हैं। बेसिस से जुड़ी हुई एक भीतरी शाखा **एंडोपोडाइट (endopodite)** तथा एक बाहरी शाखा **एक्सोपोडाइट (exopodite)** होती हैं और इन दोनों ही में एक-एक या अधिक खण्ड बने हो सकते हैं। अलग-अलग उपांग विभिन्न प्रकार्यों के लिए रूपांतरित हो गए होते हैं जैसे कि आहार को संभालना, रेंगना, चलना, तैरना, पकड़ना, शुक्राणुओं का स्थानांतरण तथा अण्डों को संभालना और सेना (चित्र 5.60)। क्रस्टेशियनों में खण्ड की संख्या अलग-अलग हो सकती है, अधिकतर में 16-20 खण्ड होते हैं। क्रस्टेशिया के सर्वाधिक विकसित क्लास मैलाकॉस्ट्राका में, जिसमें लॉब्स्टर, झींगें, श्रिम्प, केकड़े, आदि आते हैं, शीर्ष के अतिरिक्त आठ खण्डों वाला वक्ष तथा छह खण्डों वाला उदर होता है। इसके अलावा शीर्ष पर एक अखण्ड रॉस्ट्रम तथा पश्च सिरे पर एक अखण्ड टेल्सॉन होता है। टेल्सॉन, अंतिम उदर खण्ड और उसके यूरोपॉड (पुच्छपाद) परस्पर मिल कर पुच्छ फिन बना लेते हैं। छोटे क्रस्टेशियन सामान्यत: तैर सकने वाले होते हैं। बड़े आकार के क्रस्टेशियन नितलस्थ (benthic) क्षेत्रों में रहने लगे हैं और उनके उपांग रेंगने एवं बिल बना कर रहने वाले जीवन के लिए रूपांतरित हो गए हैं।

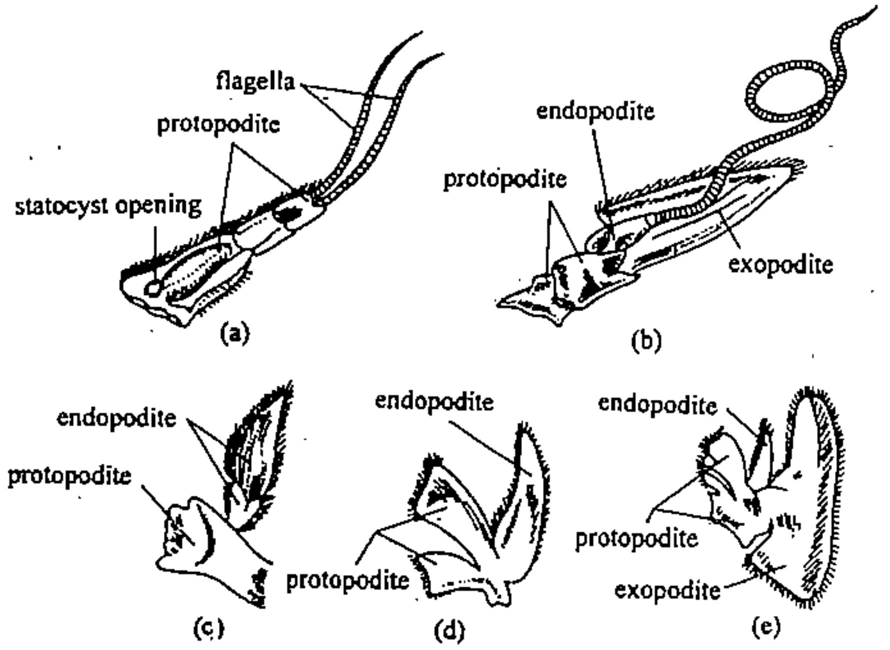

चित्र 5.59 : झींगे के शिरीय उपांग।

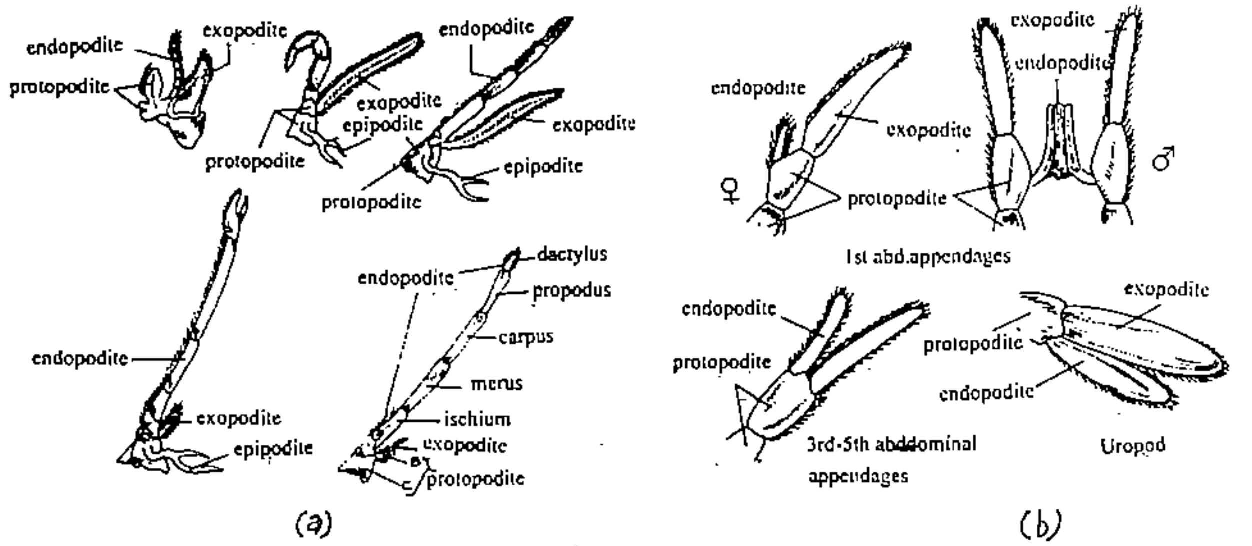

चित्र 5.60 : झींगे के वक्ष तथा उदर खण्डों के उपांग।

क्रस्टेशियनों की क्यूटिकल में सामान्यत: कैल्सियम के लवण होते हैं। कुछ रंगदार प्रोटीन तथा वर्णक भी मौजूद हो सकते हैं। अधिकतर क्रस्टेशियनों में अपने पर्यावरण के अनुकूल बनने के लिए अपना रंग बदलने की भी क्षमता होती है। यह रंग परिवर्तन वे अपनी कुछ ख़ास कोशिकाओं में मौजूद वर्णकों का सकेंन्द्रण या फैलाव करके करते हैं। इन कोशिकाओं को क्रोमैटोफ़ोर (Chromatophore) (वर्णकधर) कहते हैं और ये एपिडर्मिस के नीचे स्थित होती हैं। अधिकतर क्रस्टेशियन परभक्षी (predator) होते हैं। अनेक फ़िल्टर-अशन के लिए भी अनुकूलित होते हैं, जो प्लवकों एवं अपरद (detritus) को छान-छान कर खाते हैं। इस कार्य के लिए आमतौर से कुछ धड़ उपांग रूपांतरित होते हैं, और ये उपांग *मैक्सिलिपीड (maxillepede)* होते हैं (चित्र 5.60)। मुख अधर दिशा में होता हैं, तथा पाचन-पथ एक सीधी नलिका के रूप में होता है। **हिपैटोपैंक्रियाज़ (hepatopancreas)** (यकृदग्न्याशय) एक स्पंजीय पाचन-ग्रंथि है जो मध्यांत्र से एक अंधवर्ध की तरह निकली होती है। परिसंचरण-तंत्र खुले प्रकार का होता है तथा मूलत: आर्थ्रोपोड प्रकार का होता है, हालांकि हृदय की संरचना विविध प्रकार की हो सकती है जैसे कि एक लम्बी नलिका की आकृति से लेकर एक संहत आशय (थैले) के जैसी तक। रक्त में बड़ी-बड़ी **अमीबकोशिकाएं (amoebocytes)** होती हैं जो कोशिकभक्षण तथा रक्त स्कंदन की क्रियाओं में भाग लेती हैं। श्वसन-अंगों के रूप में गिल होते हैं, जो

सामान्यत: खंडीय उपांगों से संबद्ध होते हैं। उपांगों के स्पंदन से जलधाराएं पैदा होकर गिलों के ऊपर से बहती हैं जिससे गैसों का विनिमय हो जाता है।

उत्सर्गी अंग कीलिसेरेटों की कॉक्सल ग्रंथियों के समान होते हैं तथा इनमें एक अंत्य थैला (end sac), एक उत्सर्गी नलिका (excretory canal) तथा एक छोटी निर्गम वाहिनी (exit canal) होती है (चित्र 5.24)। उत्सर्गी अंगों को उनके स्थान के आधार पर **ऐंटैना-ग्रंथि (antennal gland)** अथवा **मैक्सिला ग्रंथि (maxillary gland)** कहा जाता है। तंत्रिका-तंत्र में अलग-अलग मात्रा में गैंग्लियानों का सकेंद्रण एवं समेकन हुआ होता है। क्रस्टेशियनों के संवेदी अंग अनेक प्रकार के होते हैं जैसे संयुक्त नेत्र, स्टेटोसिस्ट (संतुलनपुटियां), संवेदी रोम, आदि। संयुक्त नेत्र बहुत विकसित होते हैं और उनकी तुलना कीटों के नेत्रों से की जा सकती है।

अधिकतर क्रस्टेशियन एकलिंगाश्रयी (dioecious) होते हैं अर्थात् उनमें नर-मादा अलग-अलग होते हैं। कुछ उपांग रूपांतरित होकर मैथुन के दौरान मादा को पकड़े रहने एवं उसमें शुक्राणु पहुंचाने का काम करते हैं। कुछ क्रस्टेशियन शुक्राणुधर भी बनाते हैं। अनेक क्रस्टेशियनों में अकशाभी शुक्राणु होते हैं। अनेक क्रस्टेशियन स्वयं अपने अण्डों को खुद ही संभालती-सेती हैं, जिसके लिए उनके शरीर के विविध भागों पर प्रजनन-कक्ष बन गए होते हैं अथवा कुछ अन्य प्रकार की क्रियाविधियां भी हो सकती हैं। क्रस्टेशियनों में अनेक लार्वा-अवस्थाएं होती हैं जिनमें *नॉप्लियस, मेटानॉप्लियस, प्रोटोजोइआ, ज़ोइआ, माइसिस* तथा *मेगालोपा* आदि कुछ उदाहरण हैं (चित्र 5.61)। आदिम क्रस्टेशियनों में अपेक्षाकृत कम लार्वा अवस्थाएं होती है; अधिक विकसित उदाहरणों में अनेक लार्वा अवस्थाएं होती हैं।

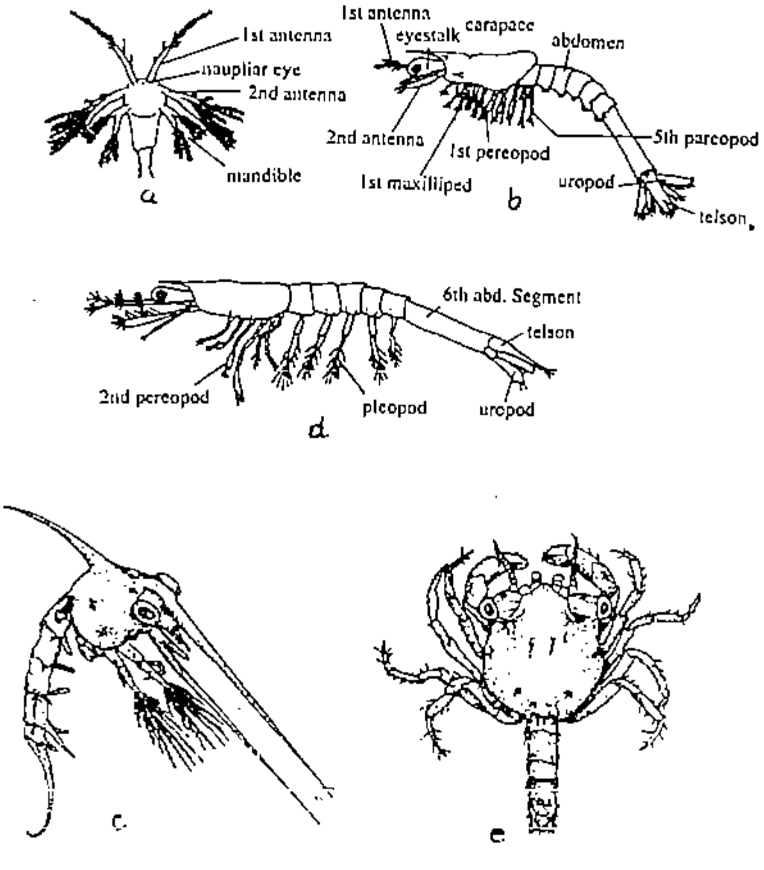

चित्र 5.61 : क्रस्टेशियन की कुछ लार्वा अवस्थाएं, A) नाप्लियस, B) प्रोटोजोइया, C) जोइया, D) माइसिस, E) मेगालोपा

क्रस्टेशिया में आने वाले जीवों में इतनी अधिक विविधता है कि वर्गीकरण का, ठीक-ठीक न्यायोचित तरीके से और साथ ही विद्यार्थी को बिना किसी अस्पष्टता या भ्रामकता के सुसंगत रूप में वर्णन कर पाना बहुत कठिन है। यहां हम वर्गीकरण की उसी योजना का अनुसरण करेंगे जिसमें हम समूह को क्लासों तक ही

वर्गीकृत करते हैं मगर यह भी प्रयत्न रहेगा कि विभिन्न प्रमुख आर्डरों के प्रतिनिधि उदाहरण भी देते रहें। क्रस्टेशिया को छह मुख्य क्लासों में रखा गया है। ये इस प्रकार हैं :

1. ब्रैंकियोपोडा (Branchiopoda)
2. ऑस्ट्रेकोडा (Ostracoda)
3. कोपीपोडा (Copepoda)
4. ब्रैंकियूरा (Branchiura)
5. सिर्रिपीडिया (Cirripedia)
6. मैलाकॉस्ट्राका (Malacostraca)

क्लास 1: ब्रैंकियोपोडा

ये छोटे आकार के अलवणजलीय क्रस्टेशियन हैं। धड़ के उपांग चपटे तथा पत्ती-सदृश होते हैं और ये संचलन तथा श्वसन दोनों में उपयोगी होते हैं। इसी आधार पर यह नाम ब्रैंकियोपोडा पड़ा। पहली जोड़ी ऐंटेना तथा दूसरी जोड़ी मेक्सिला बहुत ह्रसित होते हैं। गुदा-खंड पर एक जोड़ी बड़े अंतस्थ प्रवर्ध होते हैं जिन्हें सर्कोपॉड (cercopod) कहते हैं, उदाहरण : टेडपोल श्रिम्प *ट्राइऑप्स,* (चित्र 5.62), फेअरी श्रिम्प *ब्रैंकिनेक्टा (Branchinecta)* (चित्र 5.63), जल-पिस्सू *डैफ़निया (Daphinia)* (चित्र 5.64), लवण-जल श्रिम्प *आर्टीमिया (Artemia)* (चित्र 5.65) जो खारी झीलों एवं तालाबों में रहती है।

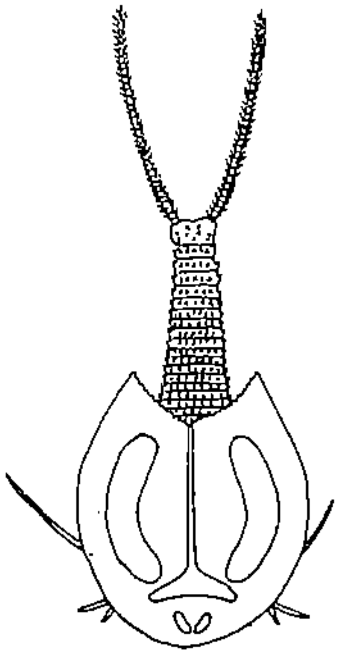

चित्र 5.62 *ट्राइऑप्स*।

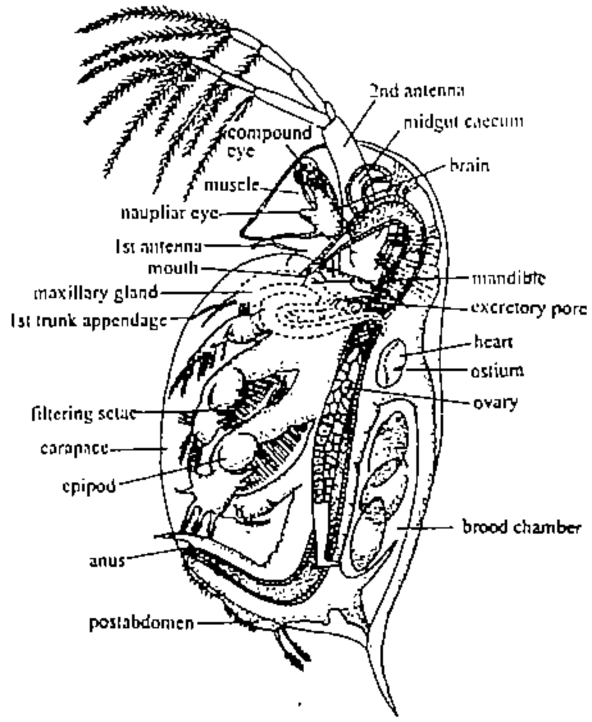

चित्र 5.64 : *डैफ़निया*।

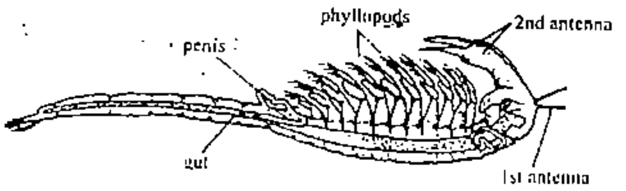

चित्र 5.63 : *ब्रैंकिनेक्टा*।

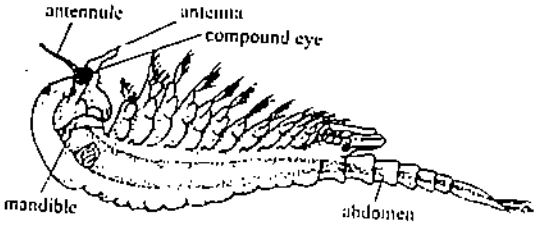

चित्र 5.65 : *आर्टीमिया*।

क्लास 2 : ऑस्ट्रेकोडा

इन्हें सामान्यत: मसेल-श्रिम्प अथवा "सीड श्रिम्प" कहते हैं। इस वर्ग में अलवण जलीय तथा समुद्री दोनों ही प्रकार के उदाहरण आते हैं। यह छोटे-छोटे क्रस्टेशियन होते हैं जो कुछ ही मिलीमीटर बड़े होते हैं। इनका शरीर एक कैरापेस में बंद होता है जो दो दीर्घवृत्तीय कपाटों (वाल्वों) का बना होता है। शरीर का प्रधान भाग शीर्ष होता है जिसमें सुविकसित उपांग होते हैं। धड़ बहुत ह्रासित तथा अखंड होता है। उपांग केवल दो जोड़ी होते हैं। एक एकल सरल नेत्र सभी ऑस्ट्रेकोडा में समान रूप में पाया जाता है पर कुछ में अवृंत संयुक्त नेत्र होते हैं। कुछ अलवण जलीय उदाहरण अनिषेकजननी होते हैं। उदाहरण : *सिप्रिसर्कस (Cypricercus)* (चित्र 5.66), *जाइगैंटोसाइप्रिस (Gigantocypris)*, *साइप्रिस (Cypris)*, *पौंटीसाइप्रिस (Ponitcypris)*, *कैंडोना (Candona)* (चित्र 5.67)।

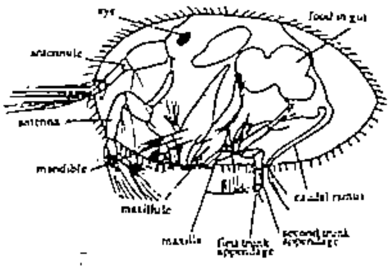

चित्र 5.66 : *सिप्रिसर्कस*।

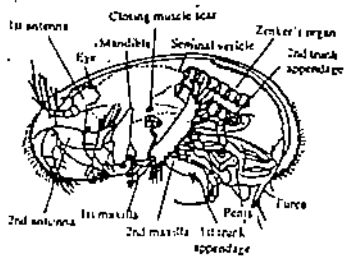

चित्र 5.67 : *कैंडोना*।

क्लास 3 : कोपीपोडा

कोपीपोडा छोटे-छोटे (1-5 मिमी) क्रस्टेशियनों का एक बड़ा क्लास है जो समुद्री तथा अलवणजल दोनों ही पर्यावरणों में पाए जाते हैं। किसी भी प्लवक संग्रह में सर्वाधिक प्रचुरता वाले एवं सबसे सुव्यक्त सदस्य, ये कोपीपोड ही होते हैं। अनेक सदस्य परजीवी तथा होते हैं। अधिकतर कोपीपोड चटकीले रंगों वाले होते हैं तथा इनकी कुछ स्पीशीज़ में जीवसंदीप्ती (bioluminescence) पायी जाती है। शरीर सिलिंडराकार होता है तथा अग्र-पश्च दिशा में नुकीला बनता जाता है। धड़ दो भागों, वक्ष तथा उदर में विभाजित होता है। पहला तथा कभी-कभी दूसरा वक्ष खंड भी शीर्ष के साथ समेकित हुए रहता है। मध्य नेत्र होता है। प्रथम जोड़े के ऐंटेना बड़े तथा एकशाखी होते हैं। पहली जोड़ी के वक्ष उपांग अशन में काम आने वाले मैक्सिलिपीड होते हैं। उदर में पांच खंड होते हैं मगर उपांग नहीं होते। अंतिम उदर खंड में एक जोड़ी पुच्छ शाखाएं होती हैं। प्लवक कोपीपोड या तो मृतोपजीवी प्रकार का भोजन करने वाले होते हैं या फिर वे पादपप्लवक अथवा अपरद पर आहार करते हैं। कुछ मांसभक्षी होते हैं। लार्वा-अवस्था नौप्लियस होती है। उदाहरण : **कैलेनस (calanus)** (चित्र 5.68); *डाएप्टोमस (Diaptomus)*, *मोन्सट्रिला (Monstrila)*, *हीमोसेरा (Haemocera)* ये आखिरी दोनों पोलीकीटों पर परजीवी है; *साल्मिनकोला (Salmincola)* तथा *पेनेला (Penella)* (चित्र 5.69) इनके वयस्क अलवणजीय तथा समुद्री अकशेरूकियों पर परजीवी होते हैं। *साइक्लॉप्स* (चित्र 5.70) तथा *डोरोपाइगस*। *एरगैसिलस (Ergasilus)* (चित्र 5.71) तथा *कॉण्ड्रैकैंथस (Chondracanthus)* समुद्री मछलियों तथा अकशेरूकियों में रहने वाले परजीवी कोपीपोड हैं।

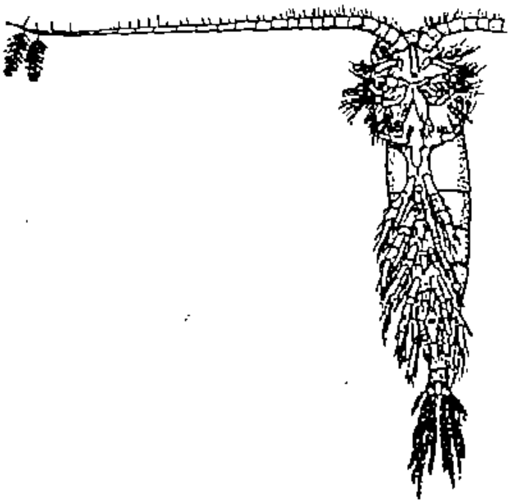

चित्र 5.68 : *कैलेनस*।

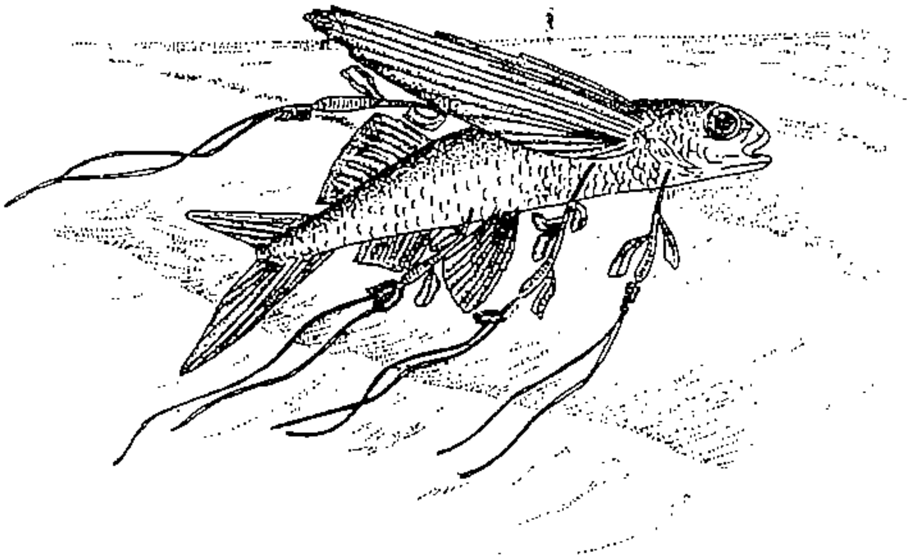

चित्र 5.69 : फ्लाइंग फिश से संलग्न पेनेला।

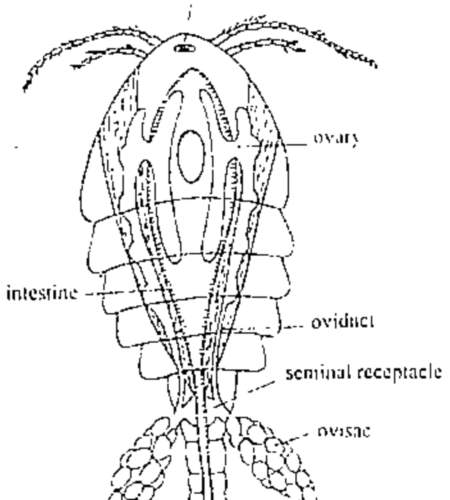

चित्र 5.70 : *साइक्लॉप्स*।

क्लास 4 : ब्रैंकियूरा

ब्रैंकियूरा में केवल लगभग 130 स्पीशीज़ ऐसे बाह्यपरजीवी क्रस्टेशियनों की आती हैं जो अधिकतर अलवणजलीय तथा समुद्री मछलियों की त्वचा पर अथवा उनकी गिल-गुहाओं के भीतर रहती हैं जहां वे अपने परपोषी के म्यूकस एवं रक्त को खाती-पीती रहती हैं। ब्रैंकियूरा की आकारिकी के प्रमुख विभेदक लक्षणों में एक तो इनकी अवृंत आंखें हैं और दूसरे शीर्ष एवं वक्ष को ढकती हुई एक बड़ी शील्ड (ढाल) है। उदर छोटा, अखण्ड तथा दो पालियों का बना होता है। दोनों जोड़ी ऐंटेना बहुत ह्रासित हो गए हैं। पहली जोड़ी के ऐंटेनों में एक बड़ा सा नखर बना होता है जिसके द्वारा प्राणी अपने परपोषी पर संलग्न रहता है। पहली जोड़ी के मेक्सिला भी रूपांतरित होकर बड़े आकार के चूषक बन गए हैं जो परपोषी पर संलग्न रहने में सहायता करते हैं। मैक्सिलीपीड नहीं होते, और अगर हुए भी तो अवशेषी होते हैं। मुखांग परपोषी के म्यूकस तथा रक्त का आहार करने के लिए अनुकूलित हो गए हैं। चार जोड़ी वक्ष उपांग सुविकसित होते हैं, इनके द्वारा ये ब्रैंकियूरा-प्राणी जल में तैर कर एक परपोषी से दूसरी परपोषी पर पहुँच सकते हैं। अण्डे जल की तली में रख दिए जाते हैं। अण्डों से निकलने वाले लार्वा भी परजीवी होते हैं। उदाहरण : *आर्गुलस (Argulus)* (चित्र 5.72), *प्रोसेफ़ैलस (Procephalus)*।

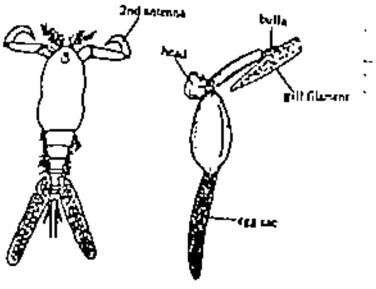

चित्र 5.71 : *एरगैसिलस*।

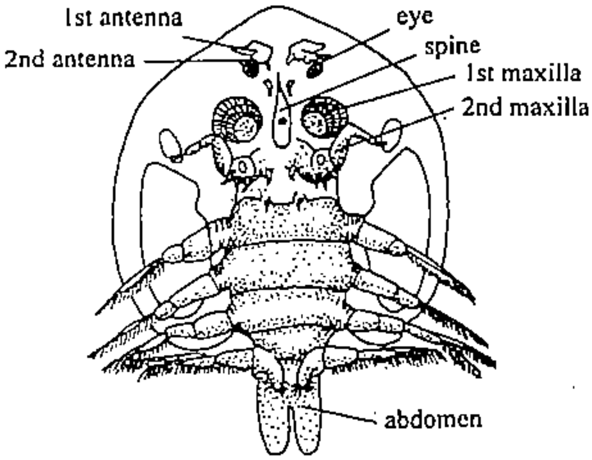

चित्र 5.72 : *आर्गुलस*।

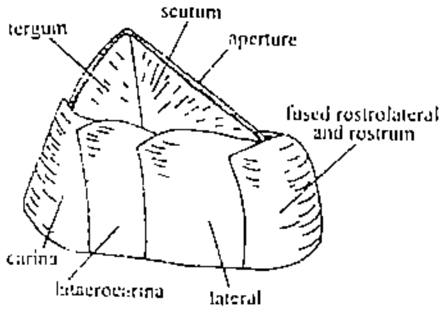

चित्र 5.73 : *बैलानस* – एक अवृंत बार्नेकल।

क्लास 5 : सिर्रिपीडिया

ये सभी क्रस्टेशियन बिना अपवाद समुद्री होते हैं। इनमें बार्नेकल नामक प्राणी आते हैं। अधिकतर स्पीशीज़ स्वच्छंदजीवी होती हैं जो चट्टानों, कवचों, मूंगों, लकड़ी-लट्ठों तथा अन्य वस्तुओं से चिपके रहते हैं। कुछ सहभोजी के रूप में ह्वेलों, मछलियों, कछुओं तथा अन्य जीवों के शरीर के ऊपर रहते हैं। कुछ परजीवी होते हैं। स्वच्छंदजीवी उदाहरण यानी वृंतयुक्त होते हैं अथवा अवृंत। वृंतयुक्त उदाहरण (जैसे कि "गूज़-बार्नेकल") कुछ मिमी से लेकर 75 सेमी तक लम्बे होते हैं। अवृंत उदाहरण कुछ सेंटीमीटर लम्बे होते हैं। वृंत युक्त उदाहरणों में एक पेशीय लचीला वृंत अथवा **पिंडकल (peduncle)** होता है जिसका निचला सिरा अधःस्तर से चिपका रहता है तथा उसके दूसरे सिरे पर शरीर के मुख्य अंग होते हैं जिन्हें

कुल मिलाकर **केपिटुलम (capitulum)** कहते हैं। पिंडकल, प्राणी का मुखपूर्वी सिरा होता है और उस पर लार्वा के प्रथम ऐंटेनों के अवशेष एवं सीमेंट ग्रंथियां बनी होती हैं। सीमेंट ग्रंथि का स्राव आसंजी होता है। केपिटुलम में मुखपूर्वी भागों को छोड़कर बाकी सारा शरीर शामिल होता है। शरीर पर एक कैरापेस अथवा **मेंटल (mantle)** (प्रावार) चढ़ा होता है। मेंटल के ऊपर पांच प्लेटें बनी होती हैं (चित्र 5.73) : पश्च पृष्ठ प्लेट **केराइना (carina)**, एक जोड़ी **टर्गम (tergum)** तथा एक जोड़ी **स्कुटम (scutum)**। अवृंत बार्नेकल अधःस्तर से एक झिल्लीदार अथवा केल्सियमी **बेसिस (basis)** द्वारा संलग्न रहते हैं। यह भाग प्राणी का मुखपूर्वी क्षेत्र होता है और उसके भीतर सीमेंट ग्रंथि होती है। प्राणी को घेरती हुई प्लेटों की दीवार बनी होती है और इस दीवार के भीतर प्राणी एक आच्छद (ऑपरकुलम) द्वारा ढका रहता है। यह आच्छद गतिशील टर्गमों तथा स्टर्नमों से बना होता है।

कवच के भीतर कोमल शरीर, शीर्ष के संलग्न बिंदु से 90° पर मुड़ा हुआ व्यवस्थित होता है। वक्ष उपांग (सिर्रस) का रुख ऊपर को रहता है। शरीर मुख्यतः शीर्ष तथा वक्ष का ही बना होता है। खंडीभवन का कोई बाहरी चिन्ह नहीं होता। प्रथम जोड़ी के ऐंटेना बहुत ह्रासित होते हैं तथा दूसरी जोड़ी के ऐंटेना वयस्क में नहीं होते। इनमें छह जोड़ी लम्बे, द्विशाखी वक्ष उपांग होते हैं जिन्हें **सिर्रस (cirrus)** कहते हैं. इन्हीं सिर्रसों (अंग्रेजी बहुवचन cirri) के आधार पर इस वर्ग का नाम सिर्रिपीडिया (cirripedia) पड़ा (चित्र 5.74)। सिर्रसों पर अनेक लम्बे शूक बने होते हैं तथा ये निलम्बन-अशन (suspension feeding) में काम आते हैं।

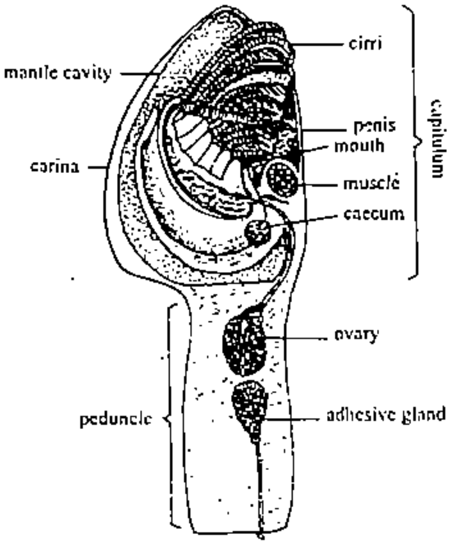

चित्र 5.74 : लीपस : वृंतयुक्त बार्नेकल - आंतरिक संरचना।

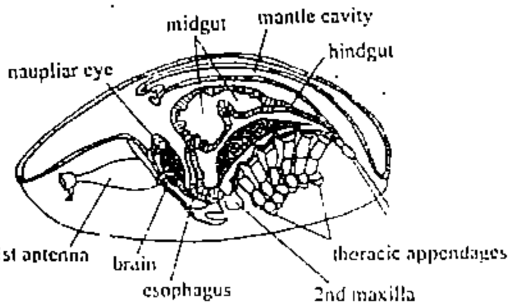

चित्र 5.75 : साइप्रिस लार्वा।

नर-मादा अलग-अलग हो सकते हैं अथवा कुछ प्राणी उभयलिंगी भी होते हैं। शुक्राणुओं का स्थानांतरण सीधे ही हो जाता है। अण्डे में से अनअशनकारी **साइप्रिस** लार्वा (चित्र 5.75) के बाहर आने से पहले छह नौप्लियस *इंस्टार (instars)* अवस्थायें हो चुकी होती हैं। साइप्रिस लार्वा अधःस्तर पर आकर टिक जाता है तथा कायांतरित होकर वयस्क बन जाता है। उदाहरण : *ऐस्कोथोरैक्स (Ascothorax)*, *डेंड्रोगैस्टर (Dendrogaster)* जो अकशेरुकियों पर परजीवी होते हैं; *ट्राइपेटेसा (Trypetesa)*, *बर्नोटिया (Bernotia)* कवचों तथा मूंगों जैसे केल्सियमी अधःस्तर में को बिल बनाकर रहते हैं। *लीपस (Lepas)* (चित्र 5.76), *स्कालपेल्लम (Scalpellum)*, *वेरुक्का (Verruca)* ये सभी स्वच्छंदजीवी बार्नेकल होते हैं अथवा सहभोजी होते हैं; *सैकुलाइना (Sacculina)* (चित्र 5.77), *पेल्टोगैस्टेरेला (Peltogasterella)* आर्डर राइजोसेफेला में आते हैं; ये परजीवी बार्नेकल हैं जो अधिकतर डेकापोड क्रस्टेशियनों अर्थात् केकड़ों के भीतर रहते हैं। कुछेक ट्यूनिकेटों में परजीवी होते हैं। उपांग तथा पाचन-तंत्र नहीं होते। पिंडकल में से अवशोषी प्रवर्ध निकल आते हैं जिनके द्वारा परपोषी से पोषण प्राप्त किए जाते हैं।

चित्र 5.76 : लीपस।

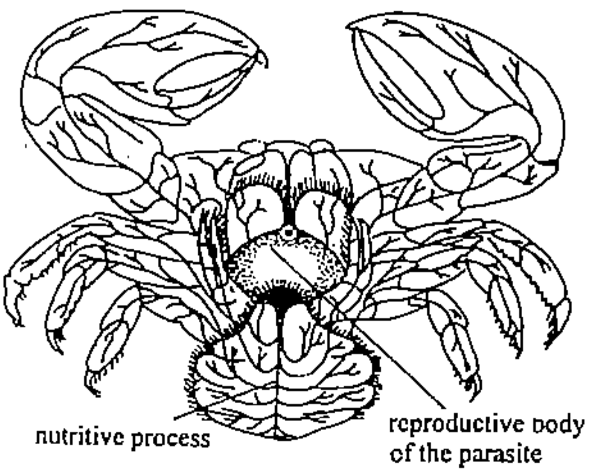

चित्र 5.77 : *सैकुलाइना*।

क्लास 6 : मैलाकॉस्ट्राका

मैलाकॉस्ट्राका में अधिकतर बड़े आकार के उदाहरण आते हैं जैसे केकड़े, लॉब्स्टर, श्रिम्प आदि तथा अधिकसंख्या क्रस्टेशियन स्पीशीज़ इस क्लास में आती हैं। शीर्ष क्षेत्र पांच खण्डों के समेकन से बना होता है; धड़ में पांच वक्ष खण्ड तथा छह उदर खण्ड होते हैं। इनके अतिरिक्त एक उदरपश्चीय टेल्सॉन होता है जो पुच्छफिन का भाग बन गया होता है। वक्ष को ढकता हुआ कैरापेस हो भी सकता है तथा नहीं भी। वक्ष उपांगों, जिन्हें **पेरिओपोड (paraeopod)** अथवा गमन-टांगें कहते हैं, में सुविकसित एंडोपोडाइट होते हैं, जो कि रेंगने तथा पकड़ने में काम आते हैं। वक्ष-टांगों पर गिल बने होते हैं जो वास्तव में रूपांतरित एपिपोडाइट होते हैं। अनेक मैलाकॉस्ट्राका-प्राणियों में पहली जोड़ी के वक्ष उपांग रूपांतरित होकर **मैक्सिलिपीड** बने जाते हैं जो अशन में काम आते हैं। पहली पांच जोड़ी के उदर-उपांग जिन्हें प्लीओपॉड कहते हैं, तैरने वाली टांगें होती हैं। तैरने के अलावा इन्हें अन्य कामों में भी लाया जाता है जैसे कि बिल बनाना, मादाओं के अण्डे संभालना तथा कभी-कभी गैस विनिमय भी। नर में पहली जोड़ी के उदर उपांग रूपांतरित होकर-मैथुन-अंग बन गए हैं।

मैलाकॉस्ट्राका-प्राणियों में अग्रांत्र में रूपांतरण होकर दो कोष्ठों वाला एक जठर बन जाता है जिसके भीतर आहार को चीरने-तोड़ने वाले दांत तथा कंघी जैसे छानने वाले शूक बने होते हैं। मादा जननछिद्र, छठे वक्ष खंड पर बने होते हैं तथा नर जनन-छिद्र आठवें खंड पर होता है। मैलाकॉस्ट्रेकनों के जीवन चक्र में अनेक लार्वा-अवस्थाएं होती हैं, मगर नौप्लियस अवस्थाएं सामान्यत: अण्डे के भीतर ही गजरती हैं।

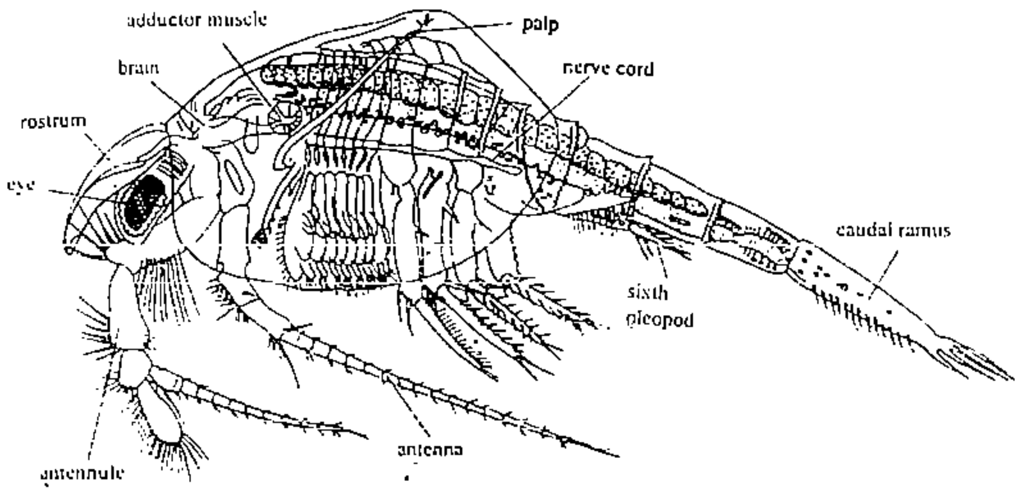

चित्र 5.78 : *नेबैलिया*।

नेबैलिया (*Nebalia*) (चित्र 5.78) अधिकतर अन्य मैलाकॉस्ट्रेकनों से अनेक बातों में भिन्न होता है और उसे ऐसी ही कुछ समान स्पीशीज़ के साथ मिलाकर उपक्लास फ़िल्लोकेराइडा (Phyllocarida) (आर्डर लेप्टोस्ट्राका, Leptostracca) में रखा जाता है। इसमें आठ उदर खंड होते हैं। इस समूह को आज के मैलाकॉस्ट्रेकनों में आदितम माना जाता है। इनका पहला वक्ष-खंड शीर्ष के साथ समेकित होता है। *ऐनैस्पिडीस (Anaspides)* (चित्र 5.79); अलवणजलीय उदाहरण : *यूफ़ौज़िया (Euphausia)* (चित्र 5.80); एक क्रिल है जो समुद्र जल में वेलावर्ती होती है। द्विशाखी वक्ष उपांग; इनमें से अग्र उपांग मैक्सिलिपीडों में रूपांतरित नहीं हुए होते। गिल कैरापेस के भीतर कसकर बंद नहीं होते।

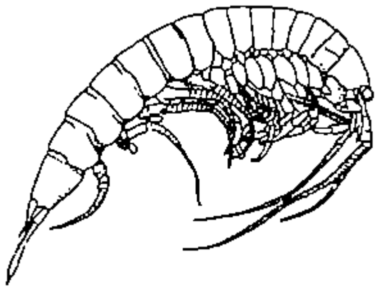

चित्र 5.79 : *ऐनैस्पिडीस*।

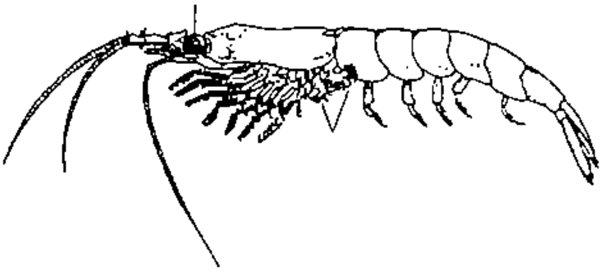

चित्र 5.80 : *यूफ़ौज़िया*।

आर्डर *डेकापोडा* में पहले तीन जोड़ी वक्ष उपांग रूपांतरित होकर आहार पकड़ने वाला उपकरण अर्थात् मैक्सिलीपीड बना लेते हैं। गिल कैरापेस के भीतर कसकर बंद हुए रहते हैं। इस समूह में अलवणजलीय तथा नुनखरे जल और समुद्र जल में रहने वाले उदाहरण आते हैं जिन्हें सामान्यतः इस प्रकार कहते हैं : श्रिम्प : उदाहरण : *पीनियस (Peneus)* (चित्र 5.81) तथा *पेलीमॉनेटीज (Palaemonetes)*, (चित्र 5.82); *पेलीमॉन (Palaemon); मैक्रोब्रेकियम (Macrobrachium)*, (चित्र 5.83); *क्रफ़िश (Crayfish)* : उदाहरण *ऐस्टेकस (Astacus); लॉब्स्टर (Lobsters)* : उदाहरण : *होमैरस (Homarus), पेलिन्यूरस (Palaenurus), हर्मिट केकड़े (Hermit crabs)* : उदाहरण *क्लिबैनेरियस (Clibanarius);* छछुंद केकड़े (Mole crabs) : उदाहरण *हिप्पा (Hippa)* (चित्र 5.84); *ऐल्बुनिया (Albunia);* तथा केकड़े (Crabs : उदाहरण *पौर्टुनस (Portunus), पोटैमॉन (Potamon), यूका (Uca), ओसिपोड (Ocypode)*, आदि।

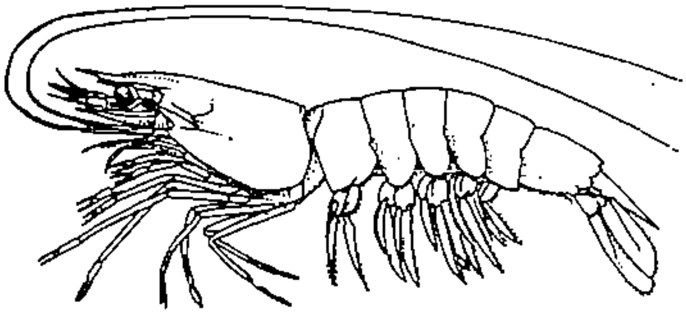

चित्र 5.81 : *पीनियस*।

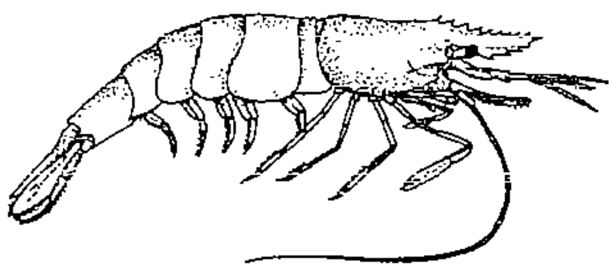

चित्र 5.82 : *पेलीमॉनेटीज*।

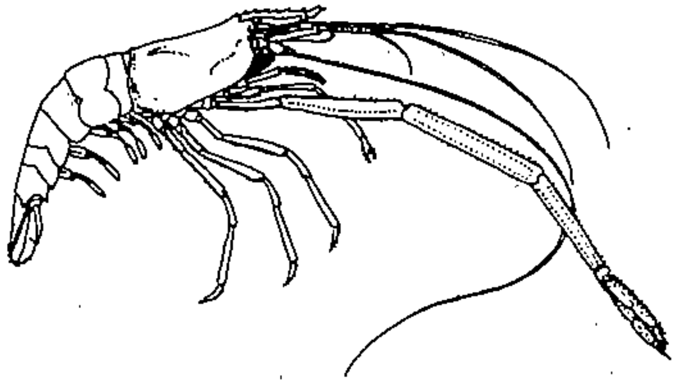

चित्र 5.83 : *मैक्रोब्रेकियम*।

अन्य मैलाकॉस्ट्राकन उदाहरण इस प्रकार हैं:

माइसिस, डायस्टिलिस (Diastylis) (चित्र 5.85), *ओर्केस्टॉयडीस (Orchestoides), आर्मीडिलिडियम (Armadillidium)* तथा *लिगिया (Ligia)* (चित्र 5.86) पृष्ठ अधरत: चपटे तथा स्थलीय जिन्हें "काष्ट-जूं" कहा जाता है ये आर्डर आइसोपोडा में आते हैं; *टैनेइस (Tanais), लेप्टोकीलिया (Leptochelia)*।

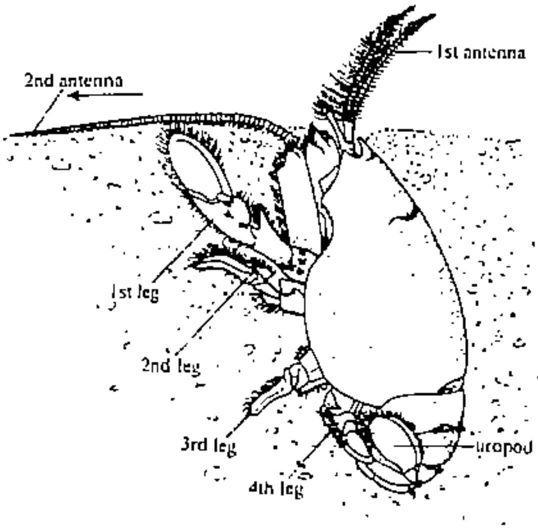

चित्र 5.84 : *हिप्पा*।

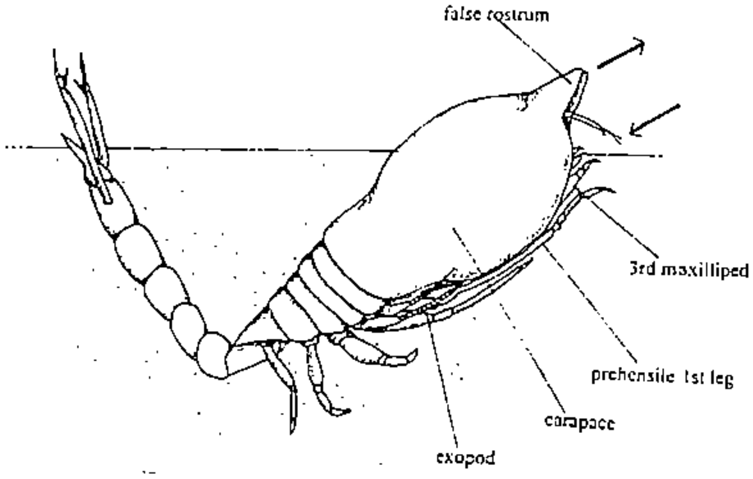

चित्र 5.85 : *डायस्टिलिस*।

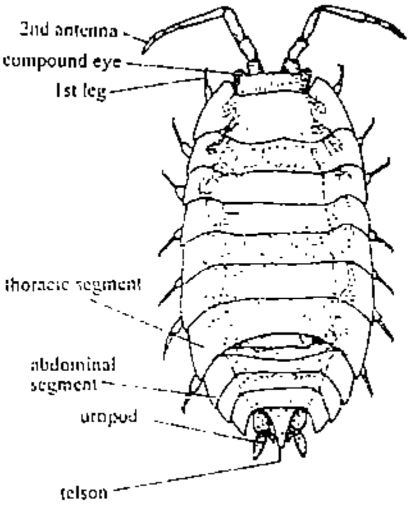

चित्र 5.86 : *लिगिया*।

बोध प्रश्न 4

I- बताइए कि निम्न कथन सही हैं (T), अथवा गलत है (F) :-

1. अधिकतर क्रस्टेशियनों में शीर्ष तथा वक्ष का समेकन होकर शिरोवक्ष बन जाता है। (T/F)
2. क्रस्टेशियनों के शीर्ष में छह जोड़ी उपांग होते हैं जो छह खण्डों के अनुरूप होते हैं। (T/F)
3. प्रोटोपोडाइट, एक्सोपोडाइट तथा एण्डोपोडाइट क्रस्टेशियन उपांगों के तीन विभाजन हैं। (T/F)
4. क्रस्टेशियनों में मैक्सिलिपीड धड़ उपांग होते हैं जो फिल्टर-अशन के लिए रूपांतरित हो गए हैं। (T/F)
5. वातिकाएं क्रस्टेशियनों की श्वसन संरचनाएं होती हैं। (T/F)
6. क्रस्टेशियनों के उत्सर्गी अंगों को उनके स्थान के अनुसार ऐंटिनरी, अथवा मैक्सिलरी ग्रंथियां कहते हैं। (T/F)
7. अधिकतर क्रस्टेशियन उभयलिंगी होते हैं। (T/F)
8. क्रस्टेशियनों में अधिकतर सीधा परिवर्धन होकर वयस्क बन जाते हैं और वे लार्वा-अवस्थाओं से नहीं गुजरते। (T/F)
9. मैलाकॉस्ट्रेकन-प्राणी समस्त क्रस्टेशियनों का 60% से भी अधिक भाग बनाते हैं। (T/F)
10. केकड़े, छछुंदकेकड़े तथा अश्वनाल केकड़े, ये सभी उपफ़ाइलम क्रस्टेशिया के सदस्य हैं। (T/F)

II. कॉलम A में दिए गए मदों को कॉलम B में दिए गए मदों से मिलाइए:

कॉलम A	कॉलम B
A. ब्रैकियोपोडा	(i) मसेल श्रिम्पस
B. आस्ट्रैकोडा	(ii) बार्नेकल्स
C. कोपीपोडा	(iii) आर्गुलस
D. ब्रैकियूरा	(iv) लाब्स्टर
E. सिर्रिपीडिया	(v) जल-पिस्सू
F. मैलाकॉस्ट्राका	(vi) साइक्लॉप्स

5.3.4 उपफ़ाइलम यूनिरेमिया

यूनिरेमिया, फाइलम आर्थ्रोपोडा का सबसे बड़ा उपफ़ाइलम है, इसमें मिरिऐपौड तथा कीट आते हैं। चूंकि इस उपफ़ाइलम के सदस्यों के उपांग अविशाखित होते हैं इसलिए इस उपफ़ाइलम को यूनिरेमिया कहा गया है जब कि दूसरी ओर क्रस्टेशियनों तथा आदिम कीलिसेरेटों में ये उपांग विशाखित होते हैं जिसके आधार पर इन उपांगों को द्विशाखी कहा जाता है। यूनिरेमियनों में मैंडिबल होते हैं जो असंधित एवं अविशाखित, बिना पैल्प वाले उपांग होते हैं। इनमें ऐंटनों की केवल एक जोड़ी होती है जो दूसरे शीर्ष खण्ड (दूसरे ऐंटनों) के अनुरूप होते हैं। यूनिरेमियन प्राणियों ने स्थलीय जीवन-विधि अपना ली थी इसलिए इनमें गैस विनियम के हेतु वातिकाएं बन गयीं, तथा इस कारण से इस उपफ़ाइलम को ट्रेकिऐटा (Tracheata) भी कहा जाता है। माल्पीझी नलिकाएं इनके उत्सर्गी अंग हैं। यूनिरेमिया में आर्थ्रोपोडों की दस लाख से अधिक स्पीशीज़ आती हैं जिनमें से लगभग 10 लाख कीटों की हैं। लगभग 10,500 स्पीशीज़ इन चार अन्य क्लासों में आती हैं : **काइलोपोडा (Chilopoda), डिप्लोपोडा (Diplopoda), पौरोपोडा (Pauropoda)** तथा **सिम्फ़ाइला (Symphyla)**। बाद के इन चार समूहों को एक साथ मिलाकर मिरिऐपोडी आर्थ्रोपोड कहते हैं। आइए उपफ़ाइलम यूनिरेमिया के इन क्लासों में से प्रत्येक के क्लास लक्षणों का संक्षेप में अध्ययन करें।

क्लास 1 : काइलोपोडा

काइलोपोडा में कांतर (कनखजूरे) आते हैं (चित्र 5.87)। इस क्लास में अभी तक वर्णन की जा चुकी लगभग 2500 स्पीशीज़ आती हैं। ये संसार के उष्णकटिबंधीय तथा शीतोष्ण कटिबंधीय दोनों ही क्षेत्रों में रहते पाए जाते हैं, जहां वे मिट्टी तथा ह्यूमस में, पत्थरों के नीचे, छालों तथा लट्ठों आदि पर रहते हैं।

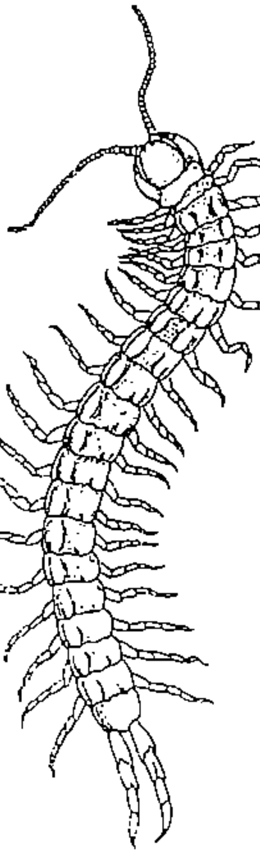

चित्र 5.87 : एक कांतर।

इनका शरीर चपटा होता है तथा ये सामान्यत: 3-20 सेमी लम्बे होते हैं और रंग में लाल, भूरे, हरे, नीले, पीले अथवा इन सबके मिले जुले रंगों के हो सकते हैं। शीर्ष के उपांग एक जोड़ी **ऐंटेना,** एक जोड़ी **मैंडिबल** तथा दो जोडी **मैक्सिला** होते हैं। इन मुखांगों को ऊपर से ढकते हुए एक जोड़ी बडे मैक्सिलीपीड होते हैं (जिन्हें फॉर्सिप्यूल, forcipules, अथवा विष-नखर भी कहते हैं), ये धड़ के पहले खंड के उपांग होते हैं। प्रत्येक फॉर्सिप्यूल के अंत में एक नुकीला डंक होता है जिसमें से विष-ग्रंथि से आती हुई एक नलिका खुलती है। प्रथम धड़ खण्ड के पीछे 15 या अधिक धड़ खंड हो सकते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक जोड़ी टांग होती है। अंतिम जोडी की टांगें संवेदी अथवा सुरक्षाकारी कार्य करती हैं। अंतिम दो धड़ खंडों में सामान्यत: उपांग नहीं होते। ये प्राणी सामान्यत: दोड़ने के लिए अनुकूलित होते हैं। इस उद्देश्य के लिए टांगें लम्बी तथा सभी एक ही लम्बाई की होती हैं। कनखजूरे परभक्षी होते हैं तथा अधिकतर अन्य आर्थ्रोपोडों को ही खाते हैं। ये शिकार को फॉर्सिप्यूलों द्वारा अचेतन कर देते हैं। कुछ उदाहरणों में आहार का अंतर्ग्रहण करने से पूर्व उसका आंशिक पाचन बाहर ही कर लिया जाता है। पाचन-तंत्र एक सीधी नलिका के रूप में होता है (चित्र 5.88) तथा लार-ग्रंथियां मुख क्षेत्र में खुलती हैं। गैस-विनिमय वातिका-तंत्र द्वारा सम्पन्न होता है तथा सामान्यत: प्रत्येक खंड में एक जोड़ी स्पाइरेकल पाए जाते हैं। स्पाइरेकल बंद नहीं किए जा सकते। अनेक काइलोपोडों में केवल एक जोड़ी माल्पीघी नलिकाएं होती हैं।

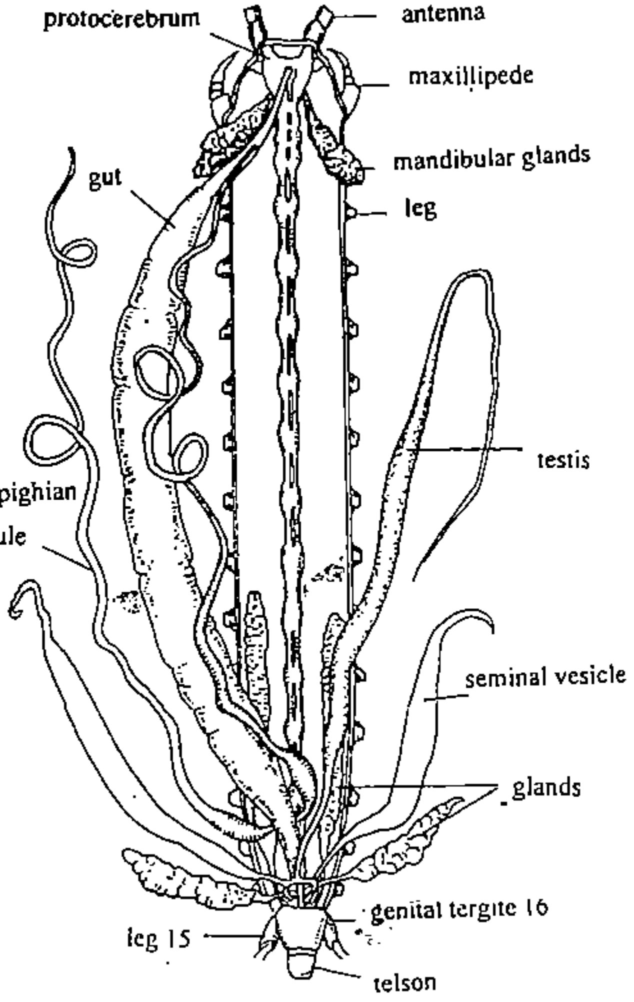

चित्र 5.88 : कांतर की आंतरिक संरचना।

तंत्रिका-तंत्र प्ररूपत: आर्थ्रोपोड प्रकार का होता है। अनेक में आंखें नहीं होतीं, किंतु कुछ उदाहरणों में कुछ से लेकर अनेक तक नेत्रक (ocelli) पाए जा सकते हैं। अनेक काइलोपोडों में शीर्ष में ऐंटेनों के आधार पर **टोमोसवेरी-अंग (organ of Tomosvary)** नामक एक संवेदी अंग पाया जाता है, जिसका प्रकार्य अभी तक स्पष्ट नहीं है। इसका संबंध कम्पनों को ग्रहण करने से हो। अण्डाशय एक अयुग्मित, नलिकाकार संरचना होती है जो आहार-नाल के ऊपर स्थित होती है अंडवाहिनी बाहर की ओर, पश्च टांगरहित खंड की अधर सतह पर बने एक छिद्र पर खुलती है। वृषण युग्मित होते हैं तथा उनकी एक समान जनन वाहिनी भी पश्च जनन खंड की अधर सतह पर बने एक मध्यम जननछिद्र द्वारा बाहर को खुलती है। नर-मादा दोनों मे जनन खंड पर छोटे-छोटे जननपाद (गोनोपौड) बने होते है। शुक्राणु स्थानांतरण परोक्ष रूप में शुक्राणुधरों द्वारा होता है। कनखजूरों में एक विशद प्रणय व्यवहार होता देखा जाता है। अण्डे से निकले बच्चों में या तो सभी खंड पूरी संख्या में हो सकते हैं (एरिमॉर्फिक परिवर्धन) या कुछ स्पीशीज़ में बच्चों में सीमित संख्या में खंड होते हैं (ऐनॉमार्फिक परिवर्धन); शेष खंड बाद में बनते जाते हैं।

उदाहरण :

जीओफिलस (Geophilus), *स्ट्रिगैमिया (Strigamia)*, *स्कोलोपेण्ड्रा (Scolopendra)*, *थीएटॉप्स (Theatops)* जिसमें अण्डे से जन्म लेने पर बच्चों में खण्डों की पूरी संख्या होती है; *लिथोबियस (Lithobius)* (चित्र 5.89); *स्कुटिजेरा (Scutigera)* (चित्र 5.90), जिसमें तुरंत के जन्में बच्चों में खण्डों की पूरी संख्या नहीं होती। वयस्कों में 15 जोड़ी टांगें होती हैं।

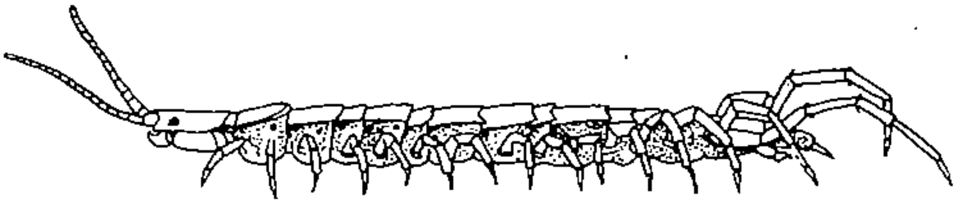

चित्र 5.89 : *तिर्येवियस*।

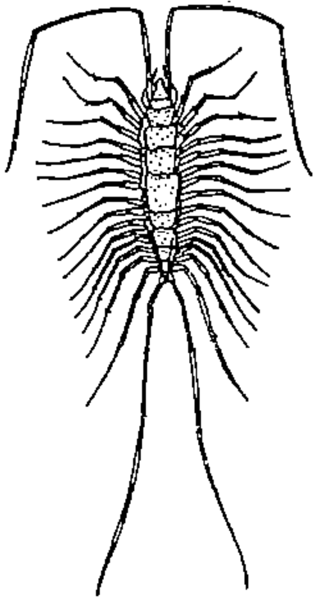

चित्र 5.90 : *स्कुटिजेरा*।

क्लास 2 : डिप्लोपोडा

डिप्लोपोडा में मिलिपीड (millipedes) अर्थात् गिजाइयां आती हैं। ये प्राणी रात्रिचर होते हैं तथा पत्तियों, पत्थरों, छाल और लट्ठों के नीचे और साथ ही मिट्टी के भीतर एवं गुफाओं में भी रहते हैं। जैसा कि नाम से ही व्यक्त होता है इनमें टांगें बहुत ज़्यादा संख्या में होती हैं। ये प्राणी अधिकतर सिलिंडराकार होते हैं तथा उष्णकटिबंधों में बहुतायत से पाए जाते हैं। इनका साइज 2 मिमी से लेकर, जो *पोलीज़ीनस (Polyxenus)* में होता है, 30 सेमी तक जो *सोराइरोस्ट्रेप्टस (Sorirostreptus)* में होता है, अलग-अलग पाया जाता है। डिप्लोपोडों का विभेदक लक्षण इनमें **द्विखंडों (diplosegments)** (चित्र 5.91) का पाया जाना है जो मूलतः दो पृथक खंडों के समेकन से बनते हैं। प्रत्येक द्विखंड में दो जोड़ी अधर गैंग्लिया, दो

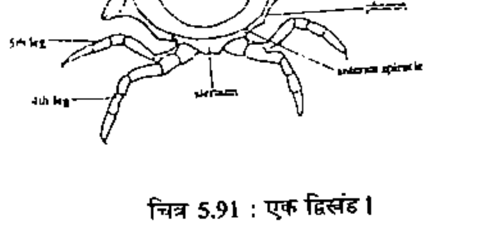

चित्र 5.91 : एक द्विखंड।

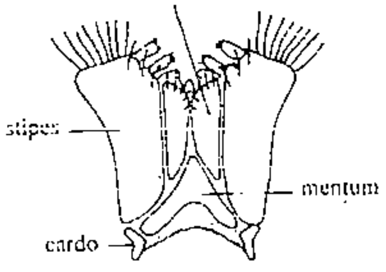

चित्र 5.92 : नैथोकाइलेरियम।

जोड़ी टांगें, हृदय में दो जोड़ी ऑस्टियम, तथा दो जोड़ी स्पाइरेकल होते हैं। शीर्ष पर एक जोड़ी बड़े काइटिनी मैंडिबल और एक जोड़ी समेकित मेक्सिला होते हैं जिन्हें **नैथोकाइलेरियम (Gnathochilarium)** कहते हैं (चित्र 5.92)। दूसरी जोड़ी के मेक्सिला नहीं होते। शीर्ष के पीछे का पहला खंड टांगरहित होता है तथा उसे **कौलम (Collum)** कहते हैं। कौलम द्विखंड नहीं होता। दूसरे, तीसरे तथा चौथे खंड पर केवल एक-एक जोड़ी टांगें होती हैं। कुछ मिलीपीडों में आखिरी पांच खंड भी टांगरहित हो सकते हैं। धड़ के अंत में एक टेल्सॉन होता है जिसके आधार पर गुदा बाहर को खुलती है। अधिकतर मिलिपीडों के बाह्यकंकाल में कैल्सियम कार्बोनेट का जमाव होता पाया जाता है।

मिलिपीड सामान्यत: शाकभक्षी होते हैं और वे अपघटन होती हुई वनस्पति को खाते हैं। अपने आहार को लार-स्रावों से गीला करके फिर ये अपने मैंडिबलों से खुरच-खुरच कर खाते हैं। कुछ मिलीपीड पौधों के रसों का आहार करते हैं। कुछ उदाहरण मांसभक्षी होते हैं और कीटों, केंचुओं तथा कनखजूरों का परभक्षण करते हैं। श्वसन वातिका-तंत्र द्वारा होता है। प्रत्येक द्विखंड में दो जोड़ी स्पाइरेकल स्टर्नम में बने होते हैं। एक नलिकाकार हृदय होता है जो पश्चत: बंद होता है मगर अग्रत: एक महाधमनी में जारी रहता है। उत्सर्जन एक जोड़ी माल्पीघी नलिकाओं के द्वारा होता है। आंखें सामान्यत: नहीं होतीं लेकिन कुछ उदाहरणों में नेत्रक (औसेलाई) होते है। जिनकी संख्या 2 से लेकर 80 तक हो सकती है। ऐंटेनों पर स्थित स्पर्श रोम तथा शंक्वाकार प्रवर्ध रसग्राहियों (chemoreceptors) के रूप में कार्य करते हैं। कनखजूरों की तरह मिलिपीडों में भी टोमोसवेरी अंग होता है।

एक जोड़ी लम्बे समेकित नलिकाकार अंडाशय होते हैं। दो अंडवाहिनियां अलग-अलग स्वतंत्र रूप में एक थैली जैसे एट्रियम में खुलती है जो जनन खंड नामक तीसरे खंड में बना होता है। वृषण युग्मित संरचनाएं जैसे प्रतीत होते हैं जिनमें अनुप्रस्थ संयोजन बने होते हैं। नर में शुक्र-वाहिनियां दूसरी जोड़ी की टांगों के आधार पर खुलती हैं। शुक्राणु स्थानांतरण के लिए मिलिपीडों में भी शुक्राणुधर बनाए जाते हैं। कनखजूरों की तरह इनमें भी मैथुन के पूर्व प्रणय व्यवहार होता पाया जाता है। अधिकतर मिलिपीडों में अनिषेकजनन होता है। परिवर्धन ऐनामॉर्फिक प्रकार का होता है। अण्डों से कई सप्ताह बाद जब बच्चे निकलते हैं तब उनमें केवल तीन जोड़ी टांगें तथा सात खंड बने होते हैं।

उदाहरण :

पौलीज़ीनस (Polyxenus), (चित्र 5.93); *लोफोप्रौक्टस (Lophoproctus)* छोटे तथा कोमल अध्यावरण वाले। अध्यावरण में शल्क - जैसे शूक होते हैं, 13-17 जोड़ी टांगें होती हैं। जननपाद नहीं होते। वितरण विश्वव्यापी; *ग्लोमेरिडेस्मस (Glomeridesmus)*; *स्फीरोथीरियम (Sphaerotherium)* (चित्र 5.94), तथा

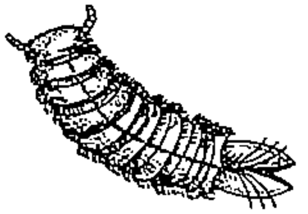

चित्र 5.93 : *पौलीज़ीनस*।

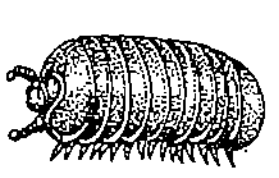

चित्र 5.94 : *स्फीरोथीरियम*।

"पिल-मिलिपीड" *ग्लोमेरिस (Glomeris)* (चित्र 5.95) ऐसे उदाहरण है जिनमें टर्गम-प्लेटें चापाकार होती है; अंतिम दो जोड़ी टांगें दबोचने के लिए रूपांतरित होती हैं; *पौलीज़ोनियम (Polyzonium)* (चित्र 5.96), *नार्सियस (Narceus)*, *राइनोक्राइकस (Rhinocricus)*, स्पाइरोस्ट्रेप्टस (चित्र 5.97), *आर्थोपोरस जूलस (Julus)*, *ब्लैन्यूलस (Blaniulus)*, *कॉर्ड्यूमा (Chordeuma)* (चित्र 5.98) में सातवें खंड पर स्थित एक या दो जोड़ी टांगें जननपादों में रूपांतरित हो गयी हैं जिनसे शुक्राणु स्थानांतरण किया जाता है, *पौलीडेस्मा (Polydesma)*, *ऑक्सीडस (Oxydus)* में चपटी पीठ होती है एवं पार्श्व टर्गम नौतल बने होते हैं; जननपाद होते हैं; *क्लाइडोगोनो (Cleidogono)* *कार्ड्यूमा (Chorduma)*।

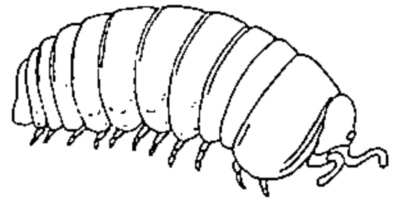

चित्र 5.95 : *ग्लोमेरिस*।

चित्र 5.96 : *पौलीज़ोनियम*।

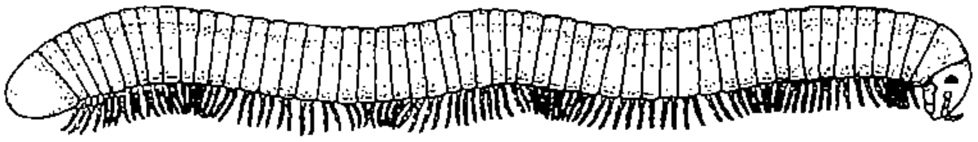

चित्र 5.97 : *स्पाइरोस्ट्रेप्टस*।

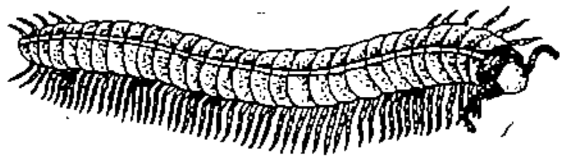

चित्र 5.98 : *कॉर्ड्यूमा*।

क्लास 3 : पौरोपोडा

यूनिरेमियनों का एक छोटा समूह; इसमें अभी तक 500 स्पीशीज़ का वर्णन किया गया है। इसके सूक्ष्म जीव जो लगभग 1.5 मिमी लम्बे होते हैं पत्ती की खाद अथवा मिट्टी में रहते हैं। शरीर में ग्यारह खंड़ होते हैं तथा उनमें से नौ में प्रत्येक में एक जोड़ी टाँगें होती है। पहले और ग्याहरवें खंडों में टाँगें नहीं होती। टर्गल प्लेटें बहुत बड़ी तथा सहवर्ती खंडों पर अतिव्यापी होती हैं। पौरोपोडों का कौलम (collum) पृष्ठत: अस्पष्ट होता है परंतु अधरत: फैला हुआ होता है। शीर्ष के प्रत्येक पार्श्व पर एक संवेदी अंग होता है जो टोमोसनैरी-अंग के समान होता है। ऐंटेना द्विशाखी होते हैं। एक शाखा के अंत पर एक अकेला कशाभ बना होता है तथा दूसरी शाखा के अंत में दो कशाभ तथा एक मुद्‌गराकार संवेदी संरचना बनी होती है। पौरोपौड अधिकतर अपघटनशील पादप ऊतकों को खाते हैं। हृदय तथा वातिकाएं सामान्यत: मौजूद नहीं होते क्योंकि ये जीव बहुत छोटे आकार के होते हैं। तीसरा धड़ खंड जनन खंड होता है। शुक्राणु स्थानांतरण परोक्ष रूप में शुक्राणुधर के माध्यम से होता है। परिवर्धन *ऐनामार्फ़िक* (अधिकायांतरणी) प्रकार का होता है। उदाहरण : *पौरोपस (Pauropus)* (चित्र 5.99), *ऐलोपौरोपस (Allopauropus)* ।

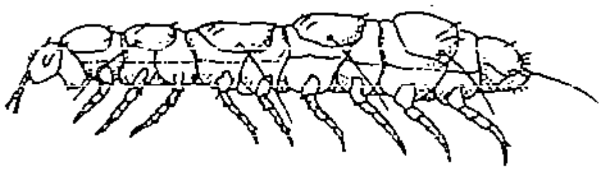

चित्र 5.99 : *पौरोपस*।

क्लास 4 : सिम्फ़ाइला

सिम्फ़ाइला भी मिरिएप्रोडों का एक छोटा-सा समूह है जिसमें लगभग 150 स्पीशीज़ आती हैं। ये भी मिट्टी में रहने वाले होते हैं तथा पत्तियों की खाद में भी पाए जाते हैं। ये करीब 1-8 मिमी लम्बे होते हैं;

और इनके धड़ में 13 खंड होते हैं परंतु टर्गल प्लेटें 15-22 होती हैं। केवल 12 खंडों में प्रत्येक में एक जोड़ी टांगें होती हैं तथा 13वें खंड में एक जोड़ी सर्काई अथवा वयित्र होते हैं। इसी 13वें खंड पर **ट्राइकोबॉथ्रिया (Trichobothria)** नामक एक जोड़ी संवेदी अंग भी बने होते हैं। ये प्राणी ह्यूमस में तेज़ी से दौड़ सकते हैं। धड़ के अंत पर एक छोटा टेल्सॉन होता है। मुखांगों में एक जोड़ी मैंडिबल, दो जोड़ी मैक्सिला जिनमें से दूसरी जोड़ी में समेकन होकर लेबियम बन जाता है। एक जोड़ी स्पाइरेकल शीर्ष पर दाएं-बाएं खुले होते हैं जहां से निकली हुई वातिकाएं केवल पहले तीन खंडों में ही आपूर्ति करती हैं। आंखें नहीं होती लेकिन एक जोड़ी टोमोसवैरी-अंग पाए जाते हैं। सिम्फ़ाइलनों में एक विचित्र प्रकार का मैथुन व्यवहार होता है। नर 150-450 शुक्राणुघर बाहर निकाल कर रख देता हैं जिन्हें मादा निगल जाती है। मादा अपने भीतर विशेष मुख कोष्ठों में इन्हें भंडारित कर लेती है। उसके बाद अपने अण्डों को चौथे खंड की अधर दिशा में बने एक एकल जननछिद्र द्वारा बाहर को निकालती है। अण्डे अधःस्तर पर चिपका दिए जाते हैं और फिर मादा उन पर शुक्राणुओं का लेप करती हुई उन्हें निषेचित कर देती है। परिवर्धन ऐनामॉर्फ़िक प्रकार का होता है। सिम्फाइलनों में अनिषेकजनन भी सामान्य है। उदाहरण : *स्कुटिजेरेल्ला (Scutigerella)* (चित्र 5.100)।

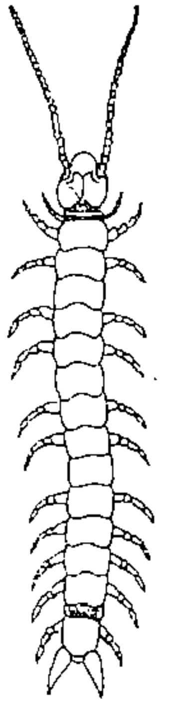

चित्र 5.100 : स्कुटिजेरेल्ला।

बोध प्रश्न 5

निम्न प्रश्नों के छोटे-छोटे उत्तर लिखिए :

1. कनखजूरों, मिलिपीडों तथा कीटों को यूनिरेमिया नाम क्यों दिया गया?
2. उपफाइलम यूनिरेमिया के अंतर्गत आने वाले पांच क्लासों के नाम लिखिए।
3. काइलोपोडों के शीर्ष उपांगों के नाम लिखिए।
4. डिप्लोसेग्मेंट (द्विखंड) किसे कहते हैं?
5. (a) मिलिपीडों के समेकित जोड़ी के मेक्सिला को .... कहते हैं।
   (b) मिलिपीडों का टांगरहित प्रथम धड़ खंड .... होता है।
6. पौरोपोडों के ऐंटेनों की क्या विचित्रता है।
7. सिम्फ़ाइलनों में शुक्राणु, स्थानांतरण की क्या क्रियाविधि है?

क्लास 5 : इन्सेक्टा

क्लास इन्सेक्टा में लगभग 10 लाख वर्णन की जा चुकी स्पीशीज़ हैं। शेष सभी प्राणियों को मिलाकर जितनी स्पीशीज़ होंगी उसमें ज़्यादा अकेले कीटों की हैं। कीटों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण ये हैं - शरीर का तीन टैग्मेटा यानी शीर्ष, वक्ष तथा उदर में विभाजित होना; शरीर के वक्ष क्षेत्र में तीन जोड़ी टांगों का तथा दो जोड़ी पंखों का होना हालांकि कुछ कीटों में पंख नहीं होते।

कीटों ने स्थलीय पर्यावरण को इतनी सम्पूर्णता के साथ जीत लिया है कि वे हर संभव निच में रहते पाए जाते हैं। ये जलीय आवासों में भी पहुंच गए हैं हालांकि समुद्री स्पीशीज़ बहुत थोड़ी हैं। कीटों ने परिस्थितिकी एवं मानव जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। ये मानव के दोस्त भी हैं और दुश्मन भी। उड्डयन का विकास, एक अपारगम्य क्यूटिकल का होना तथा वातिकीय श्वसन, ये कुछ ऐसे कारक हैं जिन्होंने थल पर कीटों की सफलता में योगदान दिया है।

कीटों का शीर्ष एक मिश्र संरचना है। इस पर एक जोड़ी ऐंटेना तथा एक जोड़ी संयुक्त नेत्र पाए जाते हैं। साथ ही सामान्यत: तीन नेत्रक भी होते हैं। तीन जोड़ी उपांग मिलकर मुखांग बनाते हैं; ये हैं एक जोड़ी **मैंडिबल** तथा दो जोड़ी **मैक्सिला** जिनमें से दूसरी जोड़ी के मेक्सिला समेकित होकर **लेबियम** बना लेते हैं। मैंडिबलों को सामने की ओर से ऊपरी होठ अथवा लेब्रम ढके रहता है। मुख-गुहा के अग्र भाग में एक मध्यक पालि-सदृश प्रवर्ध **हाइपोफेरिन्क्स** निकला होता है, यह हाइपोफेरिंक्स लेब्रियम के आधार से निकला हुआ होता है।

शीर्ष के पीछे तीन खंड वाला वक्ष होता है, ये खंड है **अग्रवक्ष (prothorax)**, **मध्यवक्ष (mesothorax)** तथा **पश्चवक्ष (metathorax)** (चित्र 5.101)। कीटों के वक्ष खंडों के टर्गम को **नोटम (notum)** का नाम दिया जाता है। दो जोड़ी पंख मध्यवक्ष तथा पश्चवक्ष से जुड़े होते हैं। जबकि एक ओर कुछ आदिम कीटों (एप्टेरिगोटों) में पंख नहीं होते, वहीं दूसरी ओर कुछ उच्चतर उदाहरणों में पंखद्वितीयक रूप में समाप्त हो गए। तीनों वक्ष खंडों पर एक-एक जोड़ी टांगें लगी होती हैं। प्रत्येक टांग एक संधित संरचना होती है जो इन पांच भागों की बनी होती है - **कॉक्सा (coxa)**, **ट्रोकैन्टर (trochanter)**, **फ़ीमर (femur)**, **टिबिया (tibia)** तथा **टार्सस (tarsus)**। विभिन्न कीटों की टांगें विभिन्न प्रकार्यों के लिए अलग-अलग प्रकार से रूपांतरित हुई होती हैं जैसे चलने, आहार-संग्रह आदि के लिए। उदर 9 से 11 खंडों का बना होता है। उदर में 11वें खंड पर एक जोड़ी

संवेदी संरचनाएं **गुदा-सर्काई** (anal cerci) होते हैं। कीटों के जनन-खंडों में, नर में शुक्राणुओं के स्थानान्तरण के लिए एक प्रवेशी-अंग (intromittant organ) तथा मादा में अंडों के देने के वास्ते एक अंडनिक्षेपक (ovipositor) होता पाया जाता है।

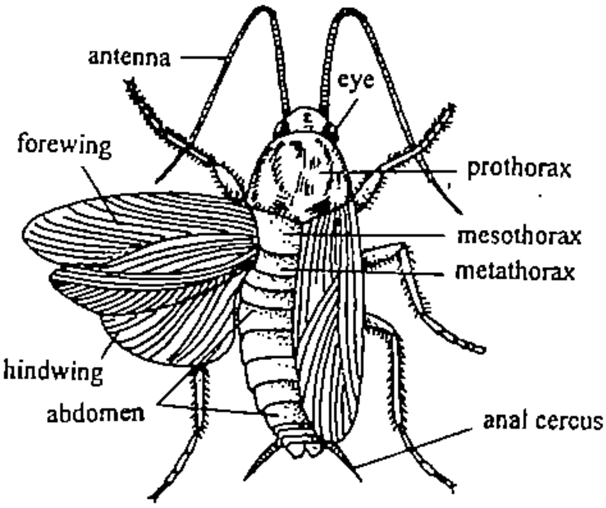

चित्र 5.101 : कॉकरोच की वाह्य संरचना।

मुखांग

कीट अनेक प्रकार के आहार-स्वभावों के लिए अनुकूलित हो गए हैं। फलतः उनके मुखांग यानी आहार करने वाले अंग भी अनेक प्रकार रूपांतरित हो गए।

इन्हें मोटे तौर पर दो प्रकारों में बांट सकते हैं : 1. ठोस आहार को काटने-चबाने (कर्तन-चर्वण) के लिए अनुकूलित मुखांग, वे अधिक आदिम माने जाते हैं तथा 2. तरल आहार को चूसने (चूषण) के लिए अनुकूलित, ये पहले प्रकार से ही व्युत्पन्न हुए हैं जिसमें मुखांगों कुछ घटक तो लम्बे हो गए तथा कुछ अन्य घटक समाप्त हो गए।

1. **कर्तन-चर्वण प्रकार** (Biting and chewing type) : ये अनेक कीटों में पाए जाते हैं जैसे आदिम ऐप्टेरिगोटों, झींगुरों, टिड्डों, काकरोचों, आदि में। इनमें एक अयुग्मित **लेब्रम** अथवा ऊपरी ओष्ठ मुख के सामने की ओर होता है, पार्श्वों पर एक जोड़ी **मैंडिबल** तथा एक जोड़ी **मैक्सिला** और निचला ओष्ठ (चित्र 5.102) बनाता हुआ एक **लेबियम**। मुख के पीछे एक मध्यक हाइपोफेरिंक्स भी होता है।

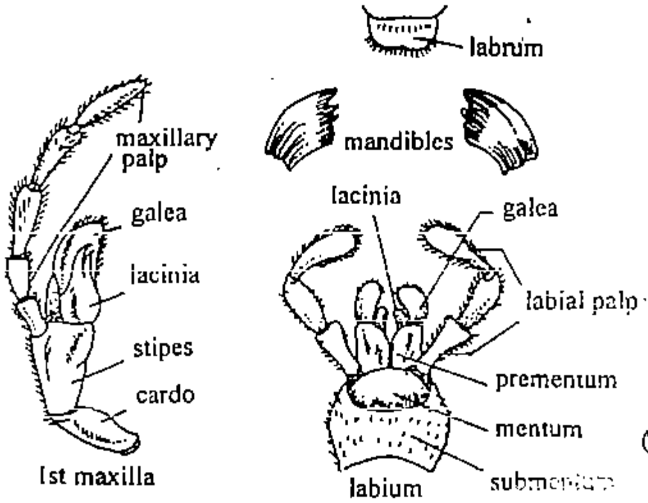

चित्र 5.102 : कॉकरोच के मुखांग।

मैंडिबलों में अधिक स्क्लेरॉटाइजेन होकर वे कड़े बन गए हैं। इनमें से प्रत्येक में दो क्षेत्र बने होते हैं - एक तो काटने वाला कर्तन (incisor) क्षेत्र और दूसरा चबाने वाला चर्वण (molar) क्षेत्र। इनमे शक्तिशाली पेशियां लगी होती हैं और ये क्रेनियम के साथ संधि बनाए होते हैं।

मैक्सिला अनेक भागों के बने होते हैं। समीपस्थ भाग में एक आधारीय कार्डो (cardo) होता है तथा दूरस्थ में एक चपटा स्टाइप्स (stipes) होता है। स्टाइप्स से दो पालियां निकली होती है : भीतरी लैसीनिया (lacinia) तथा बाहरी गेलिया (galea); स्टाइप्स में एक बाहरी संधित पैल्प (palp) होता है। पैल्प संवेदी होता है जिससे कीट अपने आहार की गुणवत्ता को जांच लेता है। लैसीनिया तथा गेलिया के द्वारा मुख में आहार को छीला-कुरेदा जाता है तथा इन्हें सफ़ाई करने में भी काम में लाया जाता है।

लेबियम की संरचना मैक्सिलाओं की संरचना के ही समान है, मगर ये मध्य रेखा पर समेकित हो गए हैं। इसमें एक आधारीय पश्चमेंटम (postmentum) होता है जो उपमेंटम (submentum) तथा एक दूरस्थ मेंटम (mentum) का बना होता है। मेंटम में आगे एक पूर्वमेंटम (prementum) बना होता है। पूर्वमेंटम में सामने की ओर चार पालियां होती है - मध्य में दो ग्लॉसा (glossae) तथा पार्श्वत: दो पैराग्लॉसा (paraglosae) होते हैं। ग्लॉसों और पैराग्लॉसों को मिलाकर लिगुला (ligula) कहते हैं। प्रीमेंटम में भी पार्श्वत: एक जोड़ी संधियुक्त पैल्प होते हैं। हाइपोफेरिंक्स मुख के पीछे एक पालि के रूप में होता है, इसके आधार पर लार-ग्रंथि की वाहिनी खुलती है।

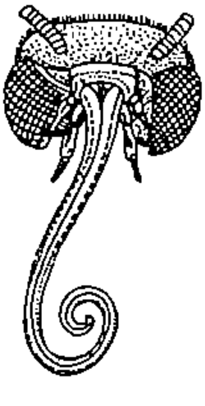

चित्र 5.103 : तितली के मुखांग।

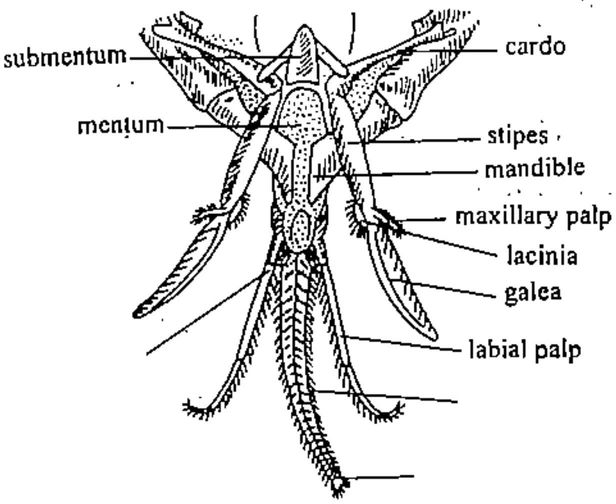

चित्र 5.104 : मधुमक्खी के मुखांग।

2. **चूषण प्रकार (Sucking type) :** : मॉथों (शलभों) तथा तितलियों में मुखांग फूलों से मकरंद चूसने के लिए अनुकूलित होते हैं (चित्र 5.103)। इनमें दो गेलिया मिलकर एक लम्बी नली (शुंडिका procis) बना लेते हैं। जब कीट अशन नहीं कर रहा होता तब यह शुंडिका कुंडलित रखी जाती है।

मधुमक्खियों में (चित्र 5.104) गेलिये तथा लेबियल पैल्प लम्बे समेकित ग्लॉसी को घेरती हुए एक नली बना लेते हैं। लेब्रम तथा मैंडिबल चर्वण दशा में ही बने रहते हैं जिनके द्वारा वे पराग तथा मोम को पकड़ते-संभालते हैं।

वेधक मुखांग (piercing mouth parts) पादप रस चूसने वाले पादप मत्कुण तथा एफिडों में और साथ ही मच्छरों जैसे रक्त-चूषक कीटों में पाए जाते हैं। इन कीटों में मुखांग लम्बे होकर अलग-अलग प्रकार की एक लम्बी चोंच बना लेते हैं। मत्कुणों में दोनों मैंडिबल तथा दोनों मैक्सिला परस्पर-सम्मुखी स्टाइलेट (सुइयां) बना लेते हैं। ये लेबियम में पड़े होते हैं, और उसके लिए लेबियम में एक खांच बनी होती है। युग्मित स्टाइलेट पृथक-पृथक लार-नली तथा आहार-नली बना लेते हैं। मगर मच्छरों (चित्र 5.105) में लेब्रम और लेबियम दोनों मिलकर आहार-नली बनाते हैं, तथा लारनली हाइपोफेरिंक्स में से चलती जाती है।

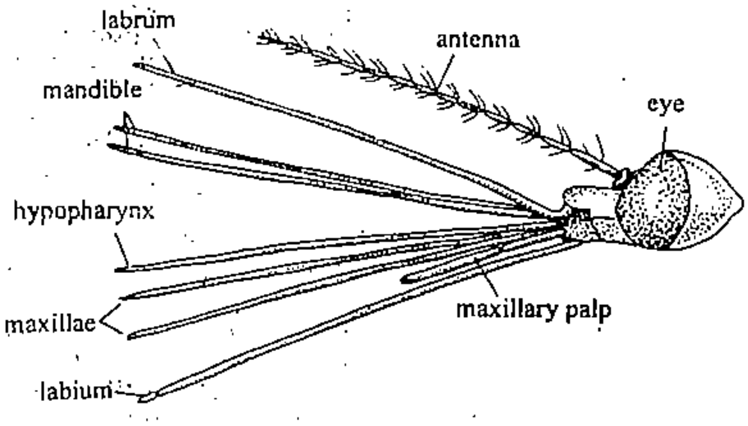

चित्र 5.105 : मच्छर के मुखांग।

कर्तन मक्खियों में इनके पैने मैंडिबल एक घाव बनाते हैं, और तब जो रक्त निकलता है उसे मक्खी का स्पंज जैसा लेबियम चूस लेता है। फिर वहां से यह रक्त हाइपोफेरिंक्स एवं लेब्रम के एक भाग (एपिफेरिंक्स) से बनी नलिका के द्वारा मुख में को पहुंचा दिया जाता है। गृह-मक्खियों (चित्र 5.106) में स्पंज जैसा लेबियम ही पूरा कार्य कर देता है, उनमें मैंडिबल ह्रासित होते हैं। चूषण प्रकार के मुखांगों से संलग्न प्राय: एक अशन-पम्प, तरल आहार को खींचने के लिए तथा एक लार-पम्प लार को भीतर डाल देने के लिए भी पाए जाते हैं।

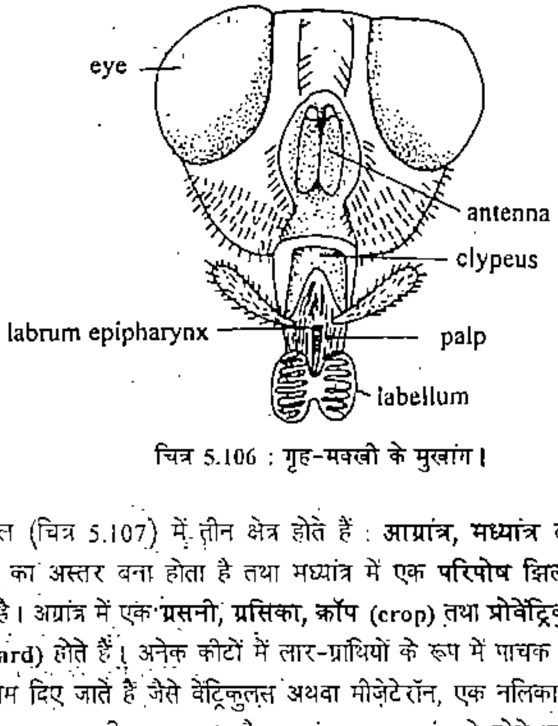

चित्र 5.106 : गृह-मक्खी के मुखांग।

कीटों की आहार-नाल (चित्र 5.107) में तीन क्षेत्र होते हैं : **अग्रांत्र, मध्यांत्र तथा पश्चांत्र**। अग्रांत्र तथा पश्चांत्र में क्यूटिकल का अस्तर बना होता है तथा मध्यांत्र में एक **परिपोष झिल्ली** (**peritrophic membrane**) होती है। अग्रांत्र में एक **ग्रसनी, ग्रसिका, क्रॉप** (**crop**) तथा **प्रोवेंट्रिकुलस** (**proventriculus**) अथवा **गिज़र्ड** (**gizzard**) होते हैं। अनेक कीटों में लार-ग्रंथियों के रूप में पाचक ग्रंथियाँ होती हैं। मध्यांत्र, जिसे अलग-अलग नाम दिए जाते हैं जैसे वेंट्रिकुलस अथवा मीज़ेंटेरॉन, एक नलिकाकार संरचना होती है तथा एंजाइम-स्रवण एवं पाचन का यही मुख्य स्थान है। अग्रांत्र तथा मध्यांत्र के जोड़े पर उंगली-जैसे प्रवर्ध निकले होते हैं जिन्हें जठर अंधनाल (gastric caeca) अथवा यकृत अंधनाल (hepatic caeca) कहते हैं। पश्चनाल तीन भागों में विभाजित होती है : इलियम (क्षुद्रांत्र), कोलन (वृहदांत्र) तथा रेक्टम (मलाशय)।

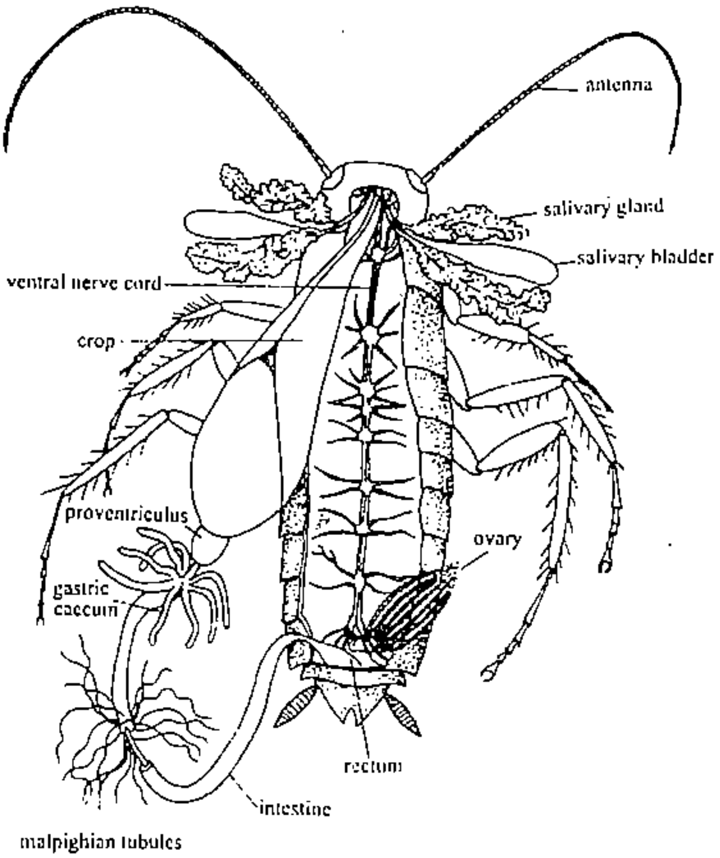

चित्र 5.107 : कॉकरोच की आन्त्र।

कीट की देहगुहा में रक्त भरा होता है, इसे **हीमोसील (haemocoel)** कहते हैं। वसा-पिंड नामक संरचनाएं हीमोसील में पायी जाती हैं। कीटों में वसा पिंड भण्डारण का कार्य करते हैं और प्रकार्य की दृष्टि से ये कशेरूकियों के यकृत (जिगर) के तुल्य होते हैं।

परिसंचरण-तंत्र में एक नलिकाकार हृदय होतां है जो एक परिहृद (पेरिकार्डियम) के भीतर बंद होता है (चित्र 5.108)। नलिकाकार हृदय उदर के पहले नौ खंडों में चलता जाता है। आगे की ओर हृदय एक महाधमनी का रूप ले लेता है। रक्त के भीतर विविध प्रकार की रक्त-कोशिकाएं होती हैं। गैस-विनिमय में इन कोशिकाओं की अत्यंत अल्प भूमिका होती है। गैस-विनिमय एक सुविकसित **वातिका-तंत्र** के द्वारा सम्पन्न होता है (चित्र 5.109)। स्पाइरेकल आठ से दस ज़ोड़ी की संख्या में होते हैं तथा ये पार्श्व सतह पर प्ल्यूरल झिल्ली में बने होते हैं। स्पाइरेकल के भीतर से एक वातिका अंदर को निकलती है जो विशाखित हो होकर अंततः **ट्रेकियोलों** (वातिककों) **(tracheoles)** (चित्र 5.110) को बना देती है। गैस-विनिमय विसरण द्वारा होता है। जलीय कीटों में, जो जल मे घुली ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं, गिल नामक संरचनाएं होती हैं (उदाहरण : ड्रैगनफ़्लाइयों तथा मेफ़्लाइयों के लार्वों में)। ऐसे जलीय कीट, जो अपनी ऑक्सीजन आवश्यकता के लिए वायुमंडलीय वायु पर निर्भर होते हैं, वे हवा को एक बुदबुदे अथवा एक परत के रूप में समेट कर अपनी देह-सतह से चिपकाए हुए रखते हैं, और इस चिपकाए रखने में न भीग सकने वाले जलापकर्षी रोमों का इस्तेमाल किया जाता है।

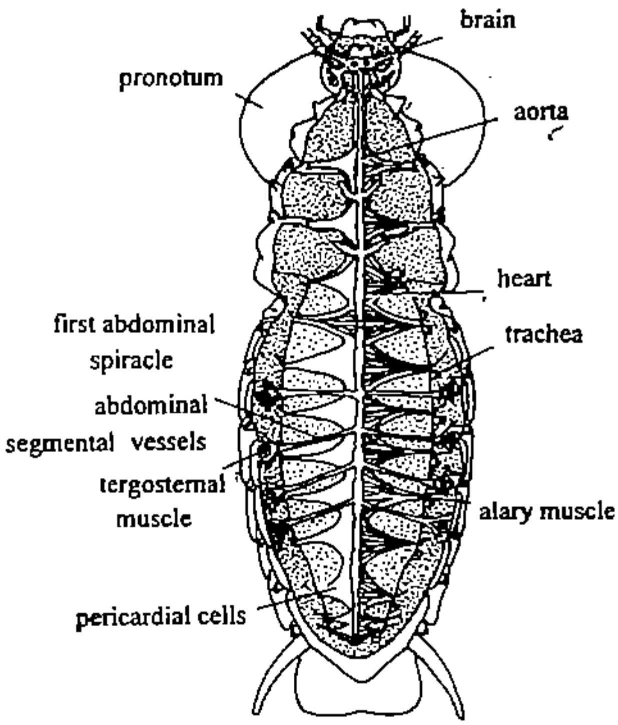

चित्र 5.108 : कॉकरोच का परिसंचरण-तंत्र।

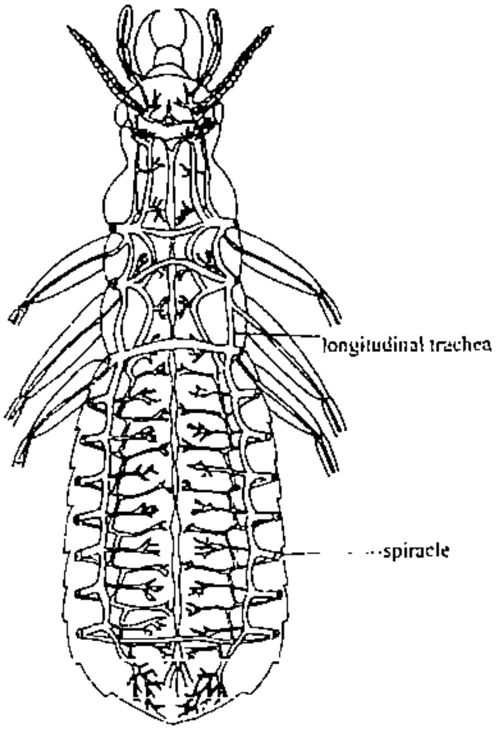

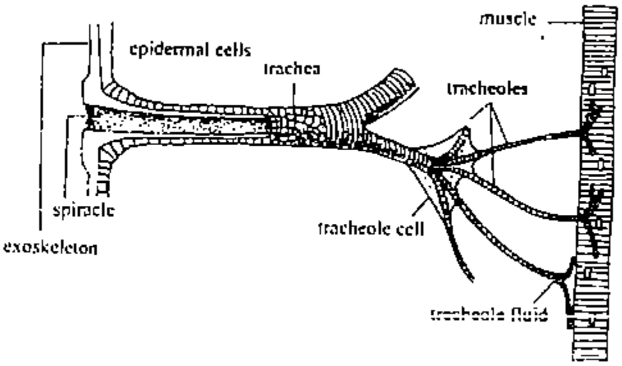

चित्र 5.109 : कॉकरोच का वातिका तंत्र।

चित्र 5.110 : ट्रेकियोल और ऊतकों में अंतत: विशाखन।

अधिकतर कीटों में उत्सर्जन का कार्य माल्पीझी नलिकाएं करती हैं। माल्पीझी नलिकाएं मध्यांत्र एवं पश्चांत्र की संधि पर जुड़ी होती हैं तथा उनके दूरस्थ सिरे हीमोसील में मुक्त रूप में पड़े होते हैं। माल्पीझी नलिकाओं की संख्या 2 से लेकर 250 तक अलग-अलग हो सकती है।

कीटों में तंत्रिका-तंत्र प्ररूपत: आर्थ्रोपोड प्रकार का होता है। इसमें ये सब आते हैं : मस्तिष्क, अधोग्रसिका गैंग्लिया, दोहरा अधर तंत्रिका-रज्जु और खंडीय गैंग्लिया। कुछ कीटों में गैंग्लिया का समेकन आमतौर से उदर में होता है। मस्तिष्क की अधर दिशा में स्थित **कॉर्पोरा कर्डियाका (corpora cardiaca)** तथा **कॉर्पोरा ऐलैटा (corpora allata)**, और अग्रवक्ष की ग्रंथियां कीटों की अंत:स्रावी ग्रंथियां होती हैं जो वृद्धि, कायांतरण तथा जनन का नियमन करती हैं।

अधिकतर कीटों में सुविकसित आंखें होती हैं। इनके अतिरिक्त विविध प्रकार के सेंसिला (sensilla) (संवेदीकाएं) सारे शरीर पर पाए जाते हैं। कुछ खास-खास जगहों पर ये सेंसिला अधिक संख्या में पाए जाते हैं जहां वे विशेष अंग बनाकर विविध प्रकार्य करते हैं। उदाहरण के लिए **टिम्पैनिक-अंग (tympanic organs)** (कर्णपटह-अंग) टिड्डों, साइकडों तथा झींगुरों में पाए जाते हैं।

मादाओं मे जनन अंगों में एक जोड़ी **अंडाशय** (चित्र 5.111A) होते हैं। प्रत्येक अंडाशय **अंडाशयक (overioles)** नामक नलिकाकार संरचनाओं का बना होता है। अंडाशय से निकली युग्मित अंडवाहिनियां होती हैं जो आपस में जुड़ कर एक सार्व अंडवाहिनी (common oviduct) बनाती हैं। यह सार्व अंडवाहिनी 7वें, 8वें अथवा 9वें खंड में अधरत: खुलती है। **शुक्रग्राहिकाएं (spermathecae)** अथवा **शुक्र-धानियां (seminal receptacles)** भी पायी जाती हैं जो शुक्र-भंडारण संरचनाएं होती हैं। नर जनन अंगों में एक जोडी वृषण, एक जोड़ी पार्श्व वाहिनियां तथा एक मध्यक वाहिनी होती है जो 8वें खंड में स्थित **ईडिएगस (aedeagus)** (चित्र 5.111B) नामक एक अधर शिश्न (penis) में से होकर खुलती है।

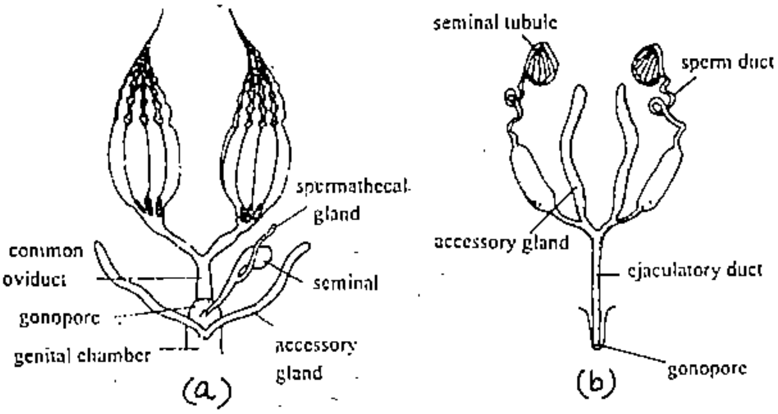

चित्र 5.111 : कीट का जनन तंत्र A) मादा B) नर।

शुक्राणु-स्थानांतरण सीधा हो सकता है या शुक्राणुधरों के रूप में। परिवर्धन बिना कायांतरण के सीधा हो सकता है जैसे कि सिल्वरफ़िश में या असम्पूर्ण कायांतरण के साथ जैसा कि मत्कुणों में, जिनमें बच्चे केवल पंखों और जनन अंगों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार से वयस्कों के समरूप होते हैं। सम्पूर्ण कायांतरण (चित्र 5.112) अनेकों में पाया जाता है जैसे कि तितलियां, बीटलों तथा गृह-मक्खियों में। इन कीटों में लार्वा वयस्क के समरूप नहीं होता और वयस्क बनने से पहले एक शांत, आहार न करने वाली अवस्था प्यूपा में से गुजरता है। उदाहरण : वर्गीकरण चार्ट (चित्र 5.113) देखिए।

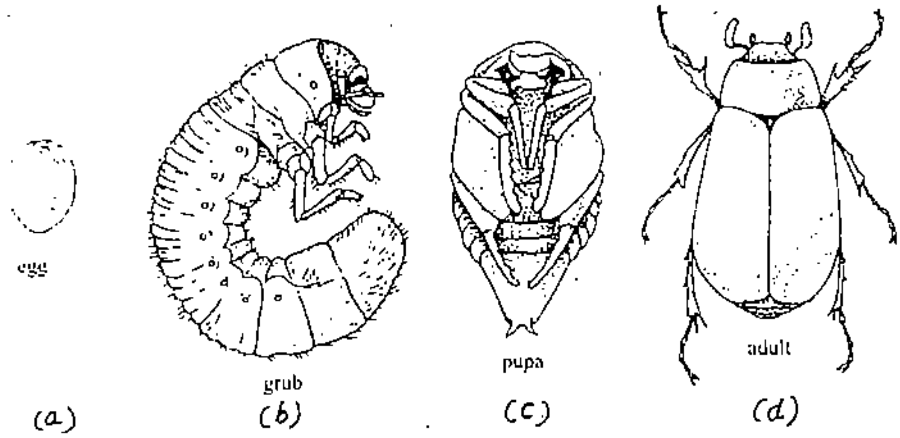

चित्र 5.112 : बीटल में सम्पूर्ण कायांतरण A) अंड B) ग्रब C) प्यूपा D) वयस्क।

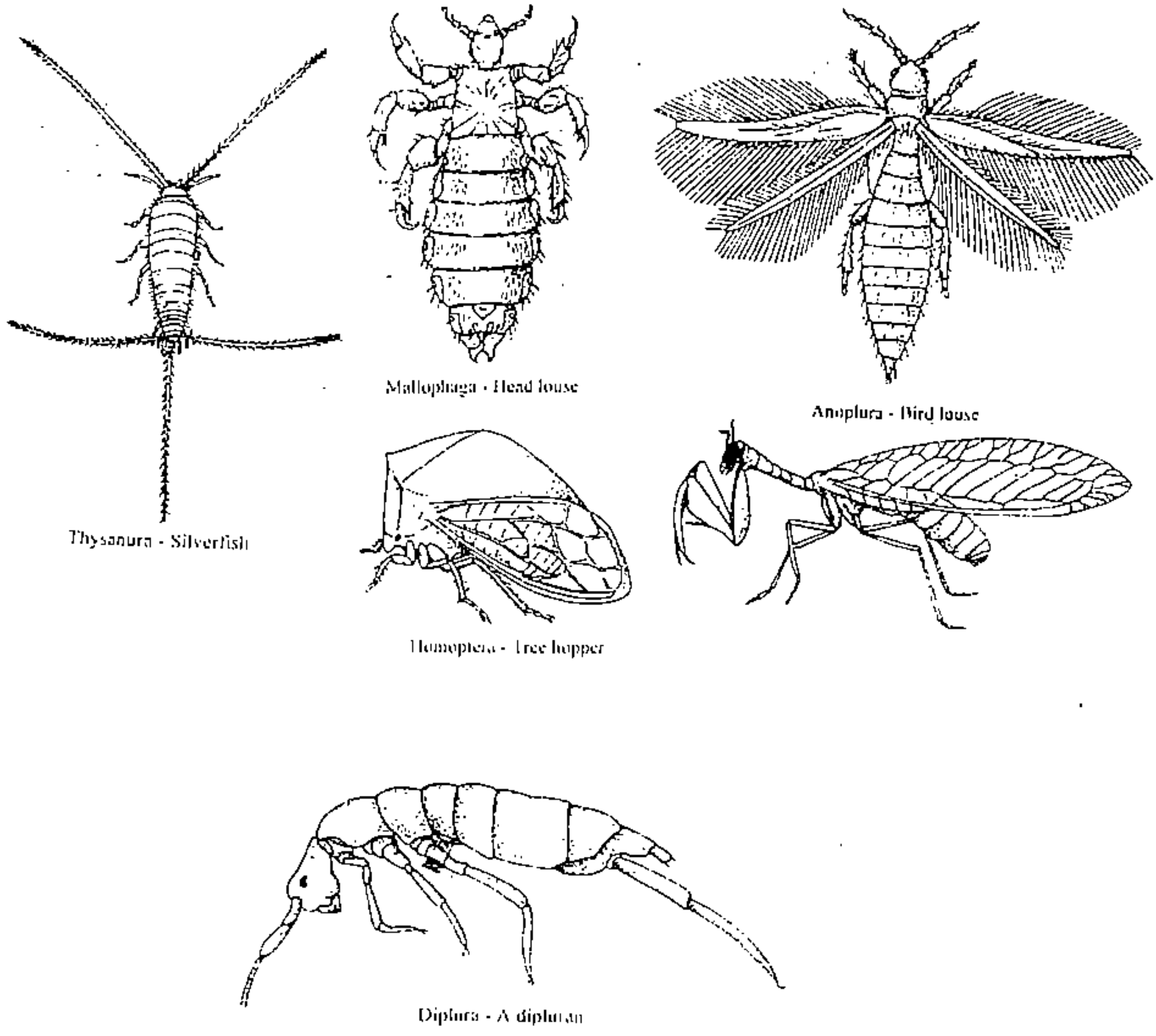

चित्र 5.113 : कीटों के उदाहरण।

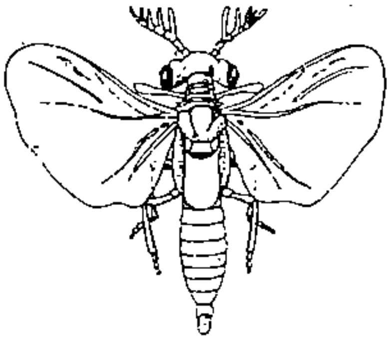
Strepsiptera - Twisted wing parasite

Trichoptera - Caddis fly

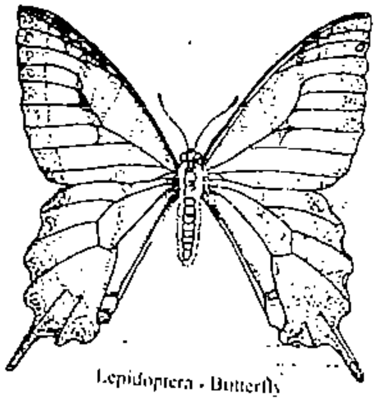
Lepidoptera - Butterfly

Diptera - House fly

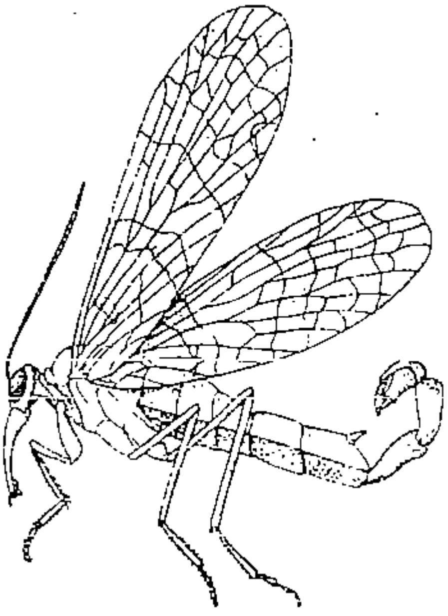
Mecoptera - Scorpion fly

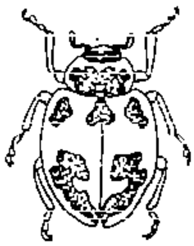
Coleoptera - Beetle

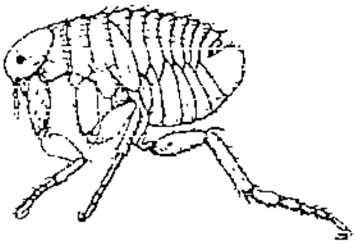
Siphonoptera - Flea

कीटों के उदाहरण (क्रमश:)

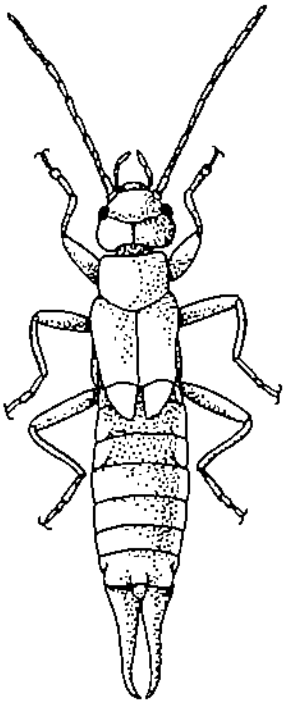

Dermaptera - Earwig

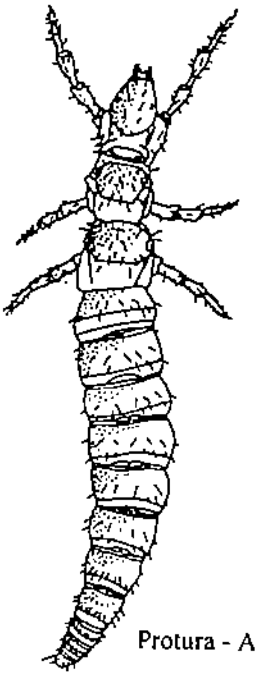

Protura - A proturan

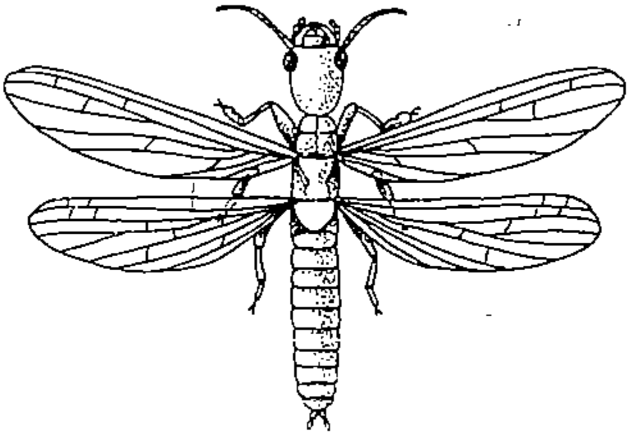

Isoptera - Termite

कीटों के उदाहरण (क्रमशः)

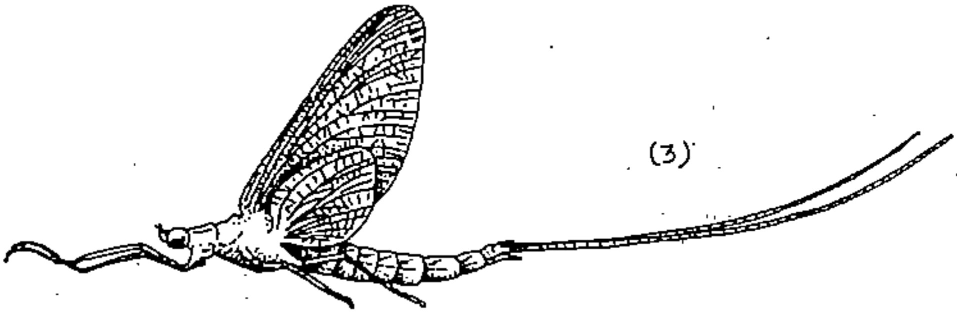

(3)

Ephemeroptera - Mayfly

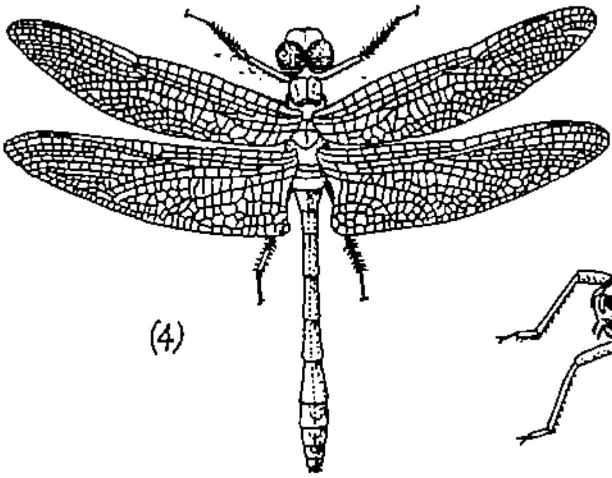

(4)

Odonata - Dragonfly

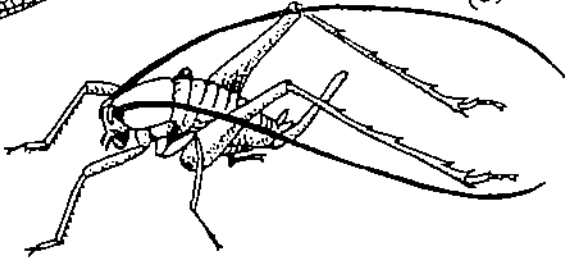

(5)

Orthroptera - Cricket

कीटों के उदाहरण (क्रमशः)

बोध प्रश्न 6

1. बताइए कि निम्नलिखि सही हैं (T) या गलत हैं (F)
   1. प्राणी जगत में क्लास इंसेक्टा सबसे बड़ा क्लास है। (T/F)
   2. तीन जोड़ी टांगें, मुख्य पाचन-तंत्र, तथा मुखांगों का मौजूद होना : इन्हीं कारणों से कीट स्थलीय पर्यावरण में सफल हो सके हैं। (T/F)
   3. कीटों का शरीर तीन टैग्मैटा का बना होता है। (T/F)
   4. कीटों के दो जोड़ी पंख होते हैं जो अग्रवक्ष तथा मध्यवक्ष से जुड़े होते हैं। (T/F)
   5. सभी वयस्क कीटों के मुखांग एक सी ही संरचना के होते हैं, भले ही उनके अशन स्वभाव अलग-अलग क्यों न हों। (T/F)
   6. कीटों में हीमोसील मध्यवर्ती उपापचय का स्थान होती है। (T/F)
   7. कीटों के वातिका-तंत्र में गैसों का विनिमय विसरण के द्वारा होता है। (T/F)
   8. सभी जलीय कीट अपनी श्वसन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जल के भीतर घुली ऑक्सीजन पर निर्भर करते हैं (T/F)
   9. अग्रवक्ष ग्रंथियों का स्राव कीटों में कायांतरण का नियमन करता है। (T/F)

II. A में सूचीबद्ध कीटों को B में सूचीबद्ध उनके आर्डरों से मिलाइए :-

	A		B
1.	सिल्वरफिश	a.	लेपिडॉप्टेरा
2.	टिड्डा	b.	कोलियोप्टेरा
3.	पादप मत्कुण	c.	हाइमेनॉप्टेरा
4.	ड्रैगन फ़्लाई	d.	एफ़ेमेरॉप्टेरा
5.	नेफ़्लाई	e.	थाइसैन्यूरा
6.	गृह-मक्खी	f.	हेमिप्टेरा
7.	बीटल	g.	ओडोनाटा
8.	मॉथ (शलभ)	h.	ऑर्थाप्टेरा
9.	ततैया	i.	आइसॉप्टेरा
10.	दीमकें	j.	डिप्टेरा

5.4 फ़ाइलम ओनाइकोफ़ोरा (PHYLUM ONYCHOPHORA)

विशिष्ट लक्षण

1. स्वच्छंदजीवी, स्थलीय।
2. शरीर द्विपार्श्वत: सममित, लम्बा, सिलिंडाकार, कृमिरूप, जिसमें ऊतक तथा अंग होते हैं।
3. देह भित्ति में एपिडर्मिस के ऊपर पतली, लचीली क्यूटिकल होती है; उसके नीचे वृत्ताकार, तिर्छी तथा अनुदैर्ध्य अरेखित पेशियां होती हैं।
4. 14-43 जोडी छोटी, असंधित, मांसल टांगें जो देह-भित्ति के खोखले बहिर्वलन होती हैं तथा जिनके अंत में गद्दी (पैड) एवं नखर होते हैं।
5. आहार-नाल सीधी, सम्पूर्ण तथा एक जोड़ी नखर - जैसे मैंडिबलों से युक्त, अग्रांत्र तथा पश्चांत्र में क्यूटिकल का अस्तर; पाचन अंधवर्ध नहीं होते।
6. देह गुहा सुविकसित हीमोसील के रूप में।
7. खुला परिसंचरण तंत्र जिसमें नलिकाकार हृदय होता है, मगर कोई अन्य रक्त वाहिकाएं नहीं होती; युग्मित ऑस्टिया होते हैं।

8. उत्सर्गी अंगों के क्रमिक जोड़े होते हैं; अग्रत: इनसे लार-ग्रंथियां बन गयी होती हैं और पश्चत: जनन-वाहिनियां।
9. श्वसन वातिकाओं के द्वारा जो सरल एवं नलिकाकार होती हैं, परंतु गुच्छों के रूप में प्रतीत होती हैं तथा ये बाहर को छोटे-छोटे बहुसंख्यक स्पाइरेकलों द्वारा खुलती हैं जो सारे शरीर पर छितराए रहते हैं।
10. तंत्रिका-तंत्र में एक मस्तिष्क तथा सीढ़ी नुमा अधर तंत्रिका रज्जु होता है जिसके दो सूत्र दूर-दूर पृथक होते हैं। संवेदी अंगों में एक जोड़ी ऐंटेना तथा सरल नेत्र पाए जाते हैं।
11. नर-मादा अलग-अलग होते हैं, गोनड युग्मित, शुक्राणुधर बनता है। निषेचन आन्तरिक; परिवर्धन सीधा।

ओनाइकोफ़ोरा अकशेरुकियों का एक छोटा सा समूह है जो आर्थ्रोपोडों से निकटत: संबंधित हैं। केम्ब्रियन युग से लेकर आज तक इनकी संरचना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इनकी सर्व साधारण जीनस *पेरिपैटस (Peripatus)* (चित्र 114) है। इस वर्ग का वितरण असंतत है और ये अधिकतर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों तक ही सीमित है तथा पत्थरों, लट्ठों तथा पत्तियों के बीच अथवा जलधाराओं के किनारे-किनारे पाए जाते हैं।

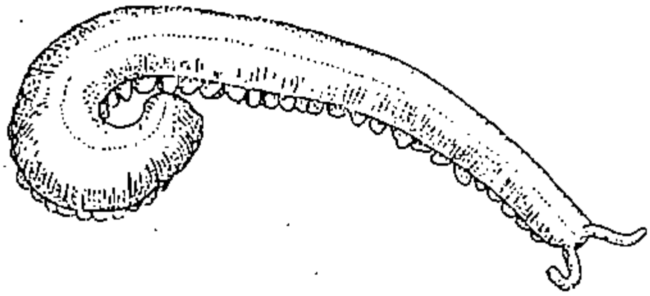

चित्र 5.114 : *पेरिपैटस*।

इनका सिलिंडाकार शरीर 1.5 सेमी से 15 सेमी तक लम्बा होता है। अग्र सिरे पर एक जोड़ी बड़े वलयित ऐंटेना और एक अधर मुख होता है (चित्र 5.115)। मुखांगों के रूप में एक जोड़ी मैंडिबल तथा एक जोड़ी शंक्वाकार पेपिला पाए जाते हैं। टांगों की संख्या 14 से 43 जोड़ी तक अलग-अलग होती है। विखंडता के नाम पर बस ये टांगें ही एकमात्र बाहरी संकेत होती हैं। टांगें देह से बाहर को निकले हुए असंधित उभार होती हैं जिनके अंत पर एक जोड़ी नखर बने होते हैं। शरीर की पूरी सतह पर छोटी-बड़ी गुलिकाएं होती हैं जो धड़ तथा टांगों पर सभी तरफ होती हैं। इन गुलिकाओं के ऊपर शल्क बने होते हैं।

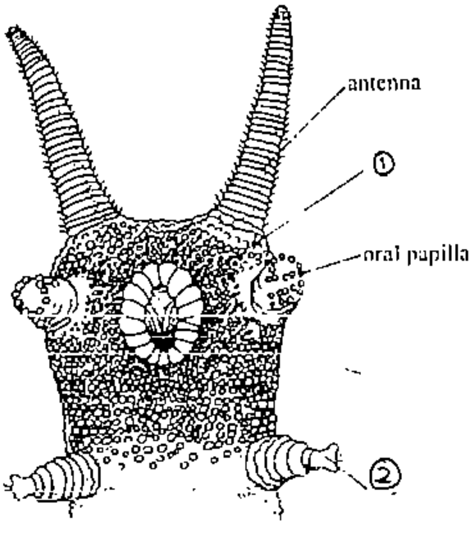

चित्र 5.115 : ओनाइकोफ़ोरन का अग्र भाग।

शरीर को ढकता हुआ एक बाह्यकंकाल क्यूटिकल होता है। इस क्यूटिकल की संघटना आर्थ्रोपोडों के क्यूटिकल की जैसी होती है। लेकिन यहां पर पतली, लचीली, पारगम्य तथ अरंजित (अस्क्लेरोटिनीकृत) होती है। क्यूटिकल के नीचे एक परत एपिडर्मिस की तथा अरेखित पेशी तंतुओं की वृत्ताकार, विकर्ण एवं अनुदैर्ध्य परतें होती हैं (चित्र 5.116)। इस प्रकार यह देह-भित्ति ऐनेलिडों की देह-भित्ति के समान होती है, किंतु ऐनेलिडों के असमान इनमें सीलोम ह्रासित होकर केवल गोनड-गुहाओं तथा नेफ्रीडिया (वृक्ककों) में पायी जाती है। हीमोसील आर्थ्रोपोडों की तरह की होती है।

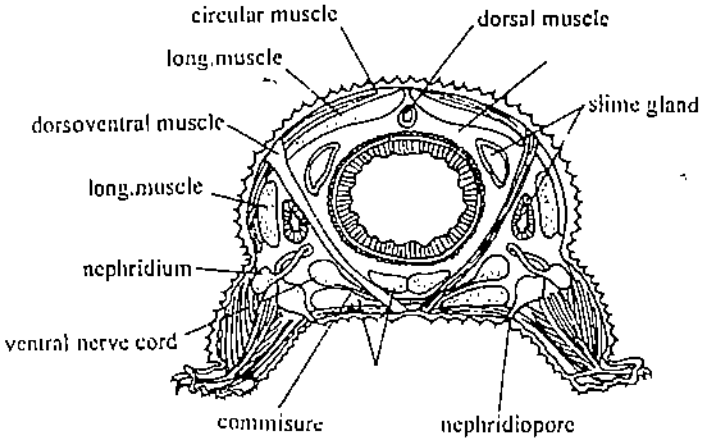

चित्र 5.116 : ओनाइकोफ़ोरन की देह भित्ति की अनुप्रस्थ काट।

ओनाइकोफ़ोरन परभक्षी होते हैं तथा छोटे घोंघों, कीटों एवं कृमियों को खाते हैं। एक जोड़ी **श्लेष्माभ ग्रंथियां (slime glands)** (चित्र 5.117) मुख-पैपिलों पर खुलती हैं। इनसे श्लेष्म बनता है जो दूर 15 सेमी तक पिचकारी की तरह बाहर को निकाला जाता है। यह श्लेष्म कड़ा हो जाता और शिकार को अपने में लपेट लेता है। मुख अंग्रात्र में को खुलता है जिसका अस्तर काइटिनी होता है। इस अग्रांत्र में ग्रसनी और ग्रसिका होते हैं, और इसके पीछे शुरू हो जाती है एक बड़ी सीधी आंत्र (चित्र 5.117)। मलाशय शरीर के पश्च सिरे पर स्थित गुदा के द्वारा बाहर को खुलता है।

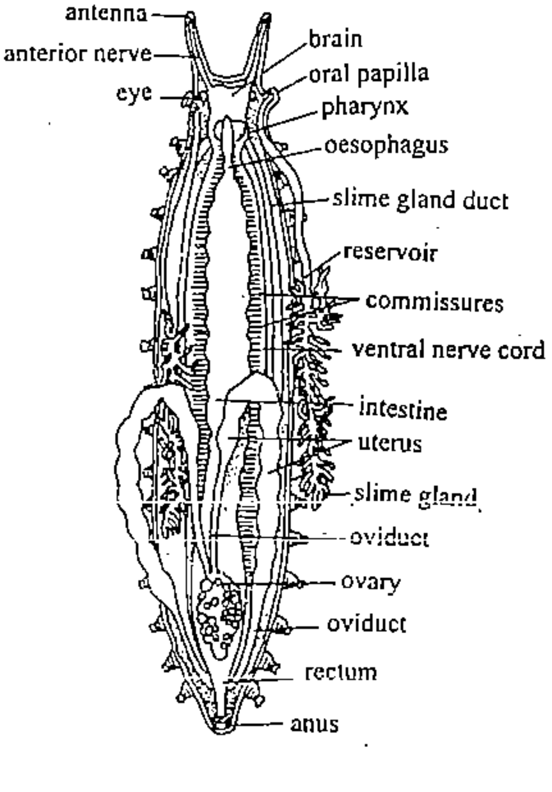

चित्र 5.117 : ओनाइकोफ़ोरन की आन्त्र।

परिसंचरण-तंत्र खुले प्रकार का होता है। इसमें एक नलिकाकार हृदय, युग्मिक पार्श्व आस्टिया, परिहृद साइनस तथा हीमोसील होती है। रक्त रंगहीन होता है और उसमें भक्षिकोशिकीय अमीबकोशिकाएं होती हैं। उत्सर्जन नेफ्रीडिया द्वारा होता है जो क्रमवत एक-के-बाद एक स्थित होते हैं। नेफ्रीडियोपोर (वृक्ककछिद्र) प्रत्येक टांग के आधार पर बना होता है। श्वसन वातिका-तंत्र द्वारा होता है तथा स्पाइरेकल पूरे शरीर की सतह पर बड़ी संख्या में पट्टियों और गुलिकाओं के बीच स्थित होते हैं। तंत्रिका-तंत्र में एक द्विपालियुक्त मस्तिष्क तथा एक सीढ़ी जैसा तंत्रिका-रज्जु होता है जिसमें अनेक समयोजी (commissures) होते हैं। ऐंटने तथा सरल आंखें ओनाइकोफ़ोरा की संवेदी संरचनाएं हैं। नर-मादा अलग-अलग होते हैं। कुछ स्पीशीज़ शुक्राणुओं को शुक्राणुधर के रूप में स्थानांतरित करती हैं। ओनाइकोफ़ोरन या तो अंडप्रज, या शिशुप्रज, या अंडशिशुप्रज होते हैं।

बंधुताएं (Affinities)

ओनाइकोफ़ोरनों मे ऐनेलिड एवं आर्थ्रोपोड दोनों प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं। आर्थ्रोपोड लक्षणों में यह आते हैं - ह्रासित सीलोम, काइटिनी क्यूटिकल, निर्मोचन, अशन के लिए रूपांतरित उपांगों का पाया जाना, परिसंचरण के लिए नलिकाकार हृदय एवं हीमोसील। ऐनेलिड लक्षणों की झलक इनमें मिलती है - देह-भित्ति की संरचना, नेफ्रीडिया तथा पतली एवं लचीली क्यूटिकल और असंधित उपांग। साथ ही ओनाइकोफ़ोरन भ्रूण-परिवर्धन में भी ऐनेलिडों के समान होते हैं। ओनाइकोफ़ोरनों को किसी समय ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडा के बीच की अप्राप्त कड़ी माना जाता था। अब ऐसा माना जाता है कि कदाचित ओनाइकोफ़ोरनों का आर्थ्रोपोडों के साथ कोई समान पूर्वज रहा होगा।

5.5 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित बातें सीखीं :

- कूटसीलोमेटों में तरल से भरी गुहा एक द्रव स्थैतिक कंकाल का कार्य करती है। जिससे बिल बनाने में कुशलता आ जाती है तथा विभिन्न अंग देहगुहा के भीतर अदृढ़ रूप में पड़े रहते हैं। इस अलाभ को दूर करने के लिए सीलोम में एक मीज़ोडर्मी परत अर्थात् पेरिटोनियम का अस्तर बनने लगा। परिणामतः विभिन्न अंग सीलोम के भीतर मीज़ेंटरियों (आंत्रयोजनियों) के सहारे स्थित होने लगे। इस परिवर्तन से देह-भित्ति में पेशी-व्यवस्था अधिक उन्नत होने लगी जिसमें अनुदैर्घ्य तथा वृत्ताकार पेशियां अधिक विकसित हो गयीं। जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे-वैसे मीज़ोडर्मी परदों अथवा पटों के द्वारा सीलोम अनेक कक्षों में विभाजित होने लगी। प्रत्येक कक्ष अथवा खंड में अनेक अंगों की पुनरावृत्ति होने लगी, जैसे कि परिसंचरण, उत्सर्गी, जनन एवं तंत्रिका-तंत्र की। शरीर के प्रत्येक खंड को खंड अथवा विखंड (मेटामीयर) कहा जाने लगा। इस फ़ाइलम में तीन क्लास आते हैं जो इस प्रकार है - पौलीकीटा, ओलाइगोकीटा तथा हिरूडिनिया।
- फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा जिसमें दस लाख से अधिक स्पीशीज़ हैं, एनिमैलिया जगत का सबसे बड़ा फ़ाइलम है। इस फ़ाइलम में चार उपफ़ाइलम आते हैं - ट्राइलोबाइटोमार्फा, क्रस्टेशिया, कीलिसेरेटा तथा यूनिरेमिया। ट्राइलोबाइटोमॉर्फ़ा एक विलुप्त समूह है। कीलिसेरेटा में तीन क्लास आते हैं - ज़ाइफोस्यूरा (अश्वनाल केकड़े), ऐरेक्निडा (बिच्छू, मकड़ियां, कूटबिच्छू, फैलैंजिड, आदि) तथा पिक्नोगोनिडा (समुद्री मकड़ियां)। उपफ़ाइलम क्रस्टेशिया में छह क्लास आते हैं - क्लास ब्रैंकियोपोडा (श्रिम्प और जल पिस्सू), क्लास ऑस्ट्रेकोडा (मसेल श्रिम्प), क्लास कोपीपोडा (साइक्लाप्स), क्लास ब्रैंकियूरा (*आर्गुलस* जैसे बाह्यपरजीवी), क्लास सिर्रिपीडिया (बार्नेकल) तथा क्रस्टेशिया का सबसे बड़ा क्लास मेलाकॉस्ट्राका (झींगे, लाब्स्टर तथा केकड़े)। उपफ़ाइलम यूनिरेमिया में पांच क्लास आते हैं : काइलोपोडा (कनखजूरे), डिप्लोपोडा (मिलिपीड), पौरोपोडा (*पौरोपस*), सिम्फ़ाइला (*स्कूटिजेरेला*) तथा प्राणियों का सबसे बड़ा क्लास इन्सेक्टा जिसमें लगभग दस लाख स्पीशीज़ आती हैं (काकरोच, टिड्डे, मत्कुण, ऐंटलायन, मॉथ, तितलियां, गृहमक्खी, चींटियां, मधुमक्खियां, ततैये, बीटल आदि)।
- आर्थ्रोपोडों के शीर्ष उपांग आहार पकड़ने वाली युक्तियां बन गये हैं तथा शीर्ष-पश्चीय उपांग संचलन का प्रकार्य करने लगे हैं। पाचन-तंत्र में क्षेत्रगत विशेषीकरण हो गया है जिसमें अग्रांत्र साधारणतया

भंडारण एवं चर्वण का कार्य करती है, मध्यांत्र पाचन एवं अवशोषण का क्षेत्र है और पश्चांत्र क्षेत्र का कार्य अनपचे वर्ज्य पदार्थ को स्वरूप देकर उसे बाहर निकाल देना है। श्वसन जलीय उदाहरणों में गिलों तथा पुस्तगिलों से होता है। और स्थलीय उदाहरणों में वातिकाओं अथवा पुस्तफुपफुसों से होता है।

- उत्सर्जन कॉक्सल ग्रंथियों द्वारा होता है, संरचना की दृष्टि से ये ग्रंथियां ऐनेलिडों की पश्चनेफ्रीडिया के समजात होती हैं। स्थलीय आर्थ्रोपोडों में नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने के वास्ते माल्पीग्ज़ी नलिकाओं का विकास हुआ है। आर्थ्रोपोडों में परिसंचरण खुले प्रकार का होता है तथा हीमोलिम्फ नामक तरल से भरी हुई देह-गुहा को हीमोसील कहते हैं। तंत्रिका-तंत्र में एक द्विपालियुक्त मस्तिष्क, खंडगत गैंग्लिया तथा एक दोहरा अधर तंत्रिका रज्जु होता है। अनेक आर्थ्रोपोडों में खंडीय गैंग्लिया का समेकन हो जाता है। आर्थ्रोपोडों में प्रकाश संवेदन, रससंवेदन तथा यांत्रिकसंवेदन के प्रकार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के संवेदी अंग होते पाए जाते हैं। नर-मादा अलग-अलग होते हैं। शुक्राणु-स्थानांतरण या तो सीधा होता है या शुक्राणुधर के माध्यम से। निषेचन भीतरी होता है। परिवर्धन कायांतरण से होकर होता है और इनमें एक से अधिक लार्वा अवस्थाएं होती हैं।
- फ़ाइलम ओनाइकोफ़ोरा में ऐनेलिड तथा आर्थ्रोपोड दोनों प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं। ओनाइकोफ़ोरनों का भ्रूण-परिवर्धन ऐनेलिडों के जैसा होता है। किसी समय ऐनेलिडा तथा आर्थ्रोपोडा के बीच की कड़ी माना जाने वाले फ़ाइलम ओनाइकोफ़ोरा तथा आर्थ्रोपोडों के पूर्वज कदाचित एक थे।

5.6 अंत में कुछ प्रश्न

1. नीमैटोडा तथा ऐनेलिडा के बीच कुछ मुख्य अंतर गिनाइए।

....
....
....
....

2. फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा के लक्षणों की सूची बनाइए।

....
....
....
....

3. (a) उपवर्ग ज़ाइफ़ोस्यूरा के लक्षणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
   (b) ज़ाइफ़ोस्यूरा को निकासीय स्मृति-चिन्ह क्यों कहा जाता है?

....
....
....
....

4. निम्न पर उपयुक्त आरेख बनाते हुए संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :
   (a) ऐरेक्निडा के पुस्तफुपफुस (b) बिच्छुओं के पेक्टीन
   (c) ऐरेक्निडा की कॉक्सल ग्रंथियां

....
....

....
....
....

5. निम्न पर वर्णनात्मक टिप्पणियां लिखिए :

(a) क्लास कोपीपोडा (b) बार्नेकल

....
....
....
....

6. मैलाकॉस्ट्राका की संघटना का संक्षेप में वर्णन कीजिए। डैकापोड मैलाकॉस्टैकनों के कुछ उदाहरण दीजिए।

....
....
....
....

7. यूनिरेमिया के अंतर्गत कौन-कौन से क्लास आते हैं? प्रत्येक क्लास की कुछ जीनसों के उदाहरण दीजिए।

....
....
....
....

8. द्विखंड किसे कहते हैं? क्लास डिप्लोपोडा के लक्षणों की सूची बनाइए।

....
....
....
....

9. स्थलीय पर्यावरण में कीटों का प्रभुत्व रहा है। वे कौन-कौन से कारण है जिनसे कीटों को स्थलीय पर्यावरण में सफलता मिली?

....
....
....
....

10. निम्नलिखित कीट किन-किन आर्डरों में आते हैं; उनके नाम लिखिए :

(a) सिल्वरफ़िश (b) टिड्डा (c) पादप मत्कुण (d) ड्रैकन फ़्लाई
(e) ऐंटलायन (f) सिर की जूं (g) मॉथ (h) गृहमक्खी
(i) ततैया (j) बीटल।

5.7 उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) हिरूडिनिया

(ii) पौलीकीटा

(iii) ओलाइगोकीटा

बोध प्रश्न 2

I. 1. दस लाख 2. संधित टांगें 3. समजात 4. द्विशाखी, एकशाखी
5. टर्गम, स्टर्नम, प्लयूरान 6. सीलोम 7. कॉक्सल ग्रंथियां तथा माल्पीज़ी नलिकाएं
8. नेत्रांशक 9. ट्राइलोबाइटोमार्फा, क्रस्टेशिया, कीलिसेरैटा, यूनिरेमिया

II. 1. खंडों का समेकन होकर टैग्मैटा नामक कार्यात्मक इकाइयां बन जाती हैं।
2. खंडों में संधित उपांग बने होते हैं।
3. सिलिया नहीं होते।
4. सीलोम ह्रासित होती है और वह केवल उत्सर्गी अंगों तथा गोनडों के भीतर बंद गुहाओं के रूप में सीमित होती है।
5. परिवर्धन में अक्सर कार्यांतरण होता पाया जाता है।

बोध प्रश्न 3

I. 1. आदिम 2. अनुपस्थित 3. पेडिपैल्पाई 4. जलीय 5. ज़ाइफोस्यूरा 6. ऐरेक्निडा
7. मेटासोम 8. ऐरेनी 9. एकैराइना

II. 1. मेरोस्टोमेटा, ऐरेक्निडा, पिक्नोगोनिडा 2. ज़ाइफोस्यूरा 3. जीवित जीवाश्म 4. लाइरिरूप अंग
5. पेक्टीन 6. फ़ैलेंजिड 7. बाह्यपरजीवी 8. टुलेरीमिया, रिलैप्सिंग ज्वर तथा लाइम रोग
9. कूटस्टिग्मैटिक अंग 10. पिक्नैगोनिडा

बोध प्रश्न 4

I. 1. T 2. F 3. T 4. T 5. F 6. T 7. F 8. F 9. T 10. F

II. A - v; B - i; C-vi; D - iii, F - ii; F - iv

बोध प्रश्न 5

1. मिलीपीडों, कनखजूरों तथा कीटों के सभी उपांग एकशाखी होते हैं, इसीलिए यूनिरेमिया नाम पड़ा।
2. काइलोपोडा, डिप्लोपोडा, पौरोपोडा, सिम्फ़ाइला तथा इन्सेक्टा
3. एक जोड़ी ऐंटेना, एक जोड़ी मैंडिबल तथा दो जोड़ी मैक्सिला
4. द्विखंड डिप्लोपोडा का खंड होता है जो मूलत: दो पृथक खंडों के समेकन से बनता है।
5. (a) नैथोकाइलेरियम (b) कौलम
6. पौरोपोडों के ऐंटेना द्विशाखी होते हैं।
7. सिम्फ़ाइला के नर 150-450 शुक्राणुधर निकाल कर रखते हैं, जिन्हें मादा निगल जाती है। ये मुख-प्रकोष्ठों में जमा कर लिए जाते हैं। तदुपरांत मादा अपने निकाले हुए अण्डों के ऊपर शुक्राणुओं को लेप देती है।

बोध प्रश्न 6

I. 1. T 2. F 3. T 4. F 5. F 6. T 7. T 8. F 9. T

II. 1. e; 2. h; 3. f; 4. g; 5. d; 6. i; 7. b; 8. a; 9. c; 10. j.

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1.

	नीमैटोडा	ऐनेलिडा
क्यूटिकल..................	सम्मिश्र.....................	सरल
देह गुहा....................	कूटसीलोम.................	सीलोम
विखंडता..................	नहीं होती..................	होती है
पेशियां....................	देह-भित्ति विशेष प्रकार की पेशीकोशिकाएं-तंत्रिका प्रेरक इकाइयां वृत्ताकार पेशियां नहीं	देह-भित्ति तथा आहार नाल के लिए सुविकसित वृत्ताकार तथा अनुदैर्ध्य पेशियां
शिरोभवन...........	कम विकसित..	सुविकसित
रक्त संवहनी तंत्र..............	नहीं होता......................	सुविकसित
तंत्रिका तंत्र...............	अल्प विकसित...............	सुविकसित
उत्सर्जन तंत्र.................	अल्प विकसित.	सुविकसित

2. अनुभाग 6.2 देखिए।
3. उपफ़ाइलम कीलिसेरैटा के अंतर्गत देखिए क्लास 3 ऐरेक्निडा (6.22)।
4. a) तथा b) भाग 6.2.2 के नीचे उपक्लास ज़ाइफ़ोस्यूरा देखिए।
5. भाग 6.2.3 के नीचे क्लास 3 कोपीपोडा तथा क्लास 5 : सिरीपीडिया देखिए।
6. उपफ़ाइलम क्रस्टेशिया (6.2.3) के अंतर्गत क्लास 6 मैलाकॉस्ट्राका देखिए।
7. क्लास काइलोपोडा, क्लास डिप्लोपोडा, क्लास पौरोपोडा, क्लास सिम्फ़ाइला तथा क्लास इन्सेक्टा

   काइलोपोडा : *स्कोलोपेंड्रा, लिथिबियस* तथा *स्कुटिजेरा*

   डिप्लोपोडा : *स्पाइरोस्ट्रेप्टस, स्फ़ीरोथीरियम, ग्लोमेरिया*

   पौरोपोडा : *पौरोपस, ऐलोपौरोपस*

   सिम्फाइला : *स्कुटिजेरेला*

   इन्सेक्टा : *पेरिप्लैनेटा, मस्का, एपिस*

8. द्विखंड, जो क्लास डिप्लोपोडा में पाया जाता है दो मूलत: पृथक खंडों के समेकन से बनता है। प्रत्येक द्विखंड में दो जोड़ी अधर गैंग्लिया, दो जोड़ी टांगें, दो जोड़ी आस्टिया, तथा दो जोड़ी स्पाइरेकल होते हैं। क्लास डिप्लोपोडा के लिए भाग 6.2.4 के अंतर्गत देखिए।

9. भाग 6.2.4 के क्लास इन्सेक्टा के अंतर्गत देखिए।

10. a) थाइसैन्यूरा b) ऑर्थोप्टेरा c) हेमिप्टेरा d) ओडोनाटा
    e) न्यूरॉप्टेरा f) ऐनॉप्ल्यूरा g) लेपिडॉप्टेरा
    h) डिप्टेरा i) हाइमेनॉप्टेरा j) कोलियोप्टेरा

इकाई 6 बहुकोशक प्राणियों का वर्गीकरण-III

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
6.2 फ़ाइलम मौलस्का
मोनोप्लैकोफ़ोरा
पोलीप्लैकोफ़ोरा
एप्लैकोफ़ोरा
गैस्ट्रोपोडा
बाइवैल्विया
स्कैफोपोडा
सेफ़ैलोपोडा
6.3 प्रोटोस्टोमिया तथा ड्यूटेरोस्टोमिया
6.4 इकाइनोडर्मेटा
ऐस्टेरॉइडिया
ओफ़ियूरॉइडिया
इकाइनॉइडिया
होलोथुरॉइडिया
क्रिनॉइडिया
6.5 अन्य फ़ाइलम
6.6 सारांश
6.7 अंत में कुछ प्रश्न
6.8 उत्तर

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम सीलोमी अकशेरुकियों का और आगे अध्ययन करेंगे। हमने यह जाना कि सीलोम एक ऐसी गुहा होती है जिसका अस्तर भ्रूणीय मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न एपिथीलियम कोशिकाओं का बना होता है। इसमें सबसे पहले आप फ़ाइलम मौलस्का के विषय में पढ़ेंगे जिसके अंतर्गत कवचयुक्त कोमल शरीर वाले प्राणी आते हैं, और उसके बाद आप इकाइनोडर्मों का अध्ययन करेंगे जिनमें कंटिकायुक्त त्वचा वाले प्राणी आते हैं और जो केवल समुद्रों में ही पाए जाते हैं। साथ ही आपको दो शब्दों प्रोटोस्टोमिया तथा ड्यूटेरोस्टोमिया से भी परिचित कराया जाएगा जिनके द्वारा बाइलेटरिया का वर्गीकरण स्पष्ट होता है, और यह वर्गीकरण उस छिद्र पर आधारित है जिससे मुख बनता है। इस इकाई के अंत में आप कुछ गौण (छोटे) फ़ाइलमों के नाम सीखेंगे जिनमें से प्रत्येक में बहुत ही सीमित संख्या में स्पीशीज़ आती हैं तथा जिनका वर्गीकरण स्थान बहुत स्पष्ट नहीं है। जैसा कि पिछली इकाई में किया था, इस इकाई में भी हम प्रत्येक फ़ाइलम के लक्षणों का वर्णन करेंगे, फ़ाइलम का क्लासों तक उदाहरण सहित वर्गीकरण करेंगे और उस वर्ग की संघटना का वर्णन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- फ़ाइलम मौलस्का के सामान्य लक्षणों को इस फ़ाइलम के मुख्य क्लासों के साथ जोड़ कर उन्हें अच्छी तरह समझ सकेंगे,
- प्रोटोस्टोमों तथा ड्यूटेरोस्टोमों में विभेद कर सकेंगे,
- फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा के विशिष्ट लक्षण बता सकेंगे, उनकी संरचनात्मक संघटना का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे तथा इस फ़ाइलम के अंतर्गत आने वाले क्लासों के महत्वपूर्ण लक्षणों का उल्लेख कर सकेंगे।

6.2 फ़ाइलम मौलस्का (PHYLUM MOLLUSCA)

फ़ाइलम मौलस्का अकशेरूकियों के सबसे बड़े फ़ाइलमों में से एक है, इसमें 50,000 से अधिक जीवित स्पीशीज़ और लगभग 35,000 जीवाश्म स्पीशीज़ आती हैं। इनमें शामिल है घोंघे, सीपियां, स्क्विड आदि। इस फ़ाइलम का इतना अधिक सम्पन्न जीवश्म रिकार्ड इसलिए उपलब्ध है क्योंकि अनेक स्पीशीज़ में खनिजयुक्त कवच होता पाया जाता है। अधिसंख्य मौलस्क जलीय हैं, जो अलवण जल तथा समुद्री जल दोनों ही में पाए जाते हैं मगर कुछ स्पीशीज़ थल पर भी रहती पायी जाती हैं। सर्वप्रथम हम इस फ़ाइलम के सामान्य लक्षणों का अध्ययन करेंगे और उसके बाद प्रत्येक क्लास का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

विशिष्ट लक्षण

1. द्विपार्श्वत: सममित।
2. सामान्यत: एक स्पष्ट शीर्ष तथा एक पेशीय पाद (पैर) होता है; पृष्ठ देह-भित्ति से प्रावार वलन (mantle folds) बन जाते हैं जिनके बीच एक प्रावार गुहा बंद हो जाती है।
3. श्वसन के लिए प्राय: गिल अथवा फेफड़े (फुपफुस) होते हैं जो रूपांतरित प्रावार से बने होते हैं।
4. एक कड़ा कैल्सियमी कवच आम तौर से पाया जाता है, यह कवच प्रावार से स्रवित होता है, तथा कोमल शरीर को सुरक्षा प्रदान करता है।
5. सीलोम केवल हृदय को घेरती हुई गुहाओं (परिहृद गुहा), गोनडों में तथा वृक्कों में ही सीमित होती है।
6. अधिसंख्य उदाहरणों में परिसंचरण-तंत्र खुले प्रकार का होता है, जिसमें हृदय, रक्त वाहिकाएं तथा साइनस (कोटर), पाए जाते हैं।
7. उत्सर्गी अंग-मेटोनेफ्रिडिया (पश्चवृक्कंक) होते हैं जो थैली जैसे वृक्क हैं; ये समीपस्थत: परिहृद में तथा दूरस्थत: प्रावार गुहा में खुलते हैं।
8. तंत्रिका-तंत्र में सुविकसित गैंग्लिया होते हैं (प्रमस्तिष्क, पाद, पार्श्वक तथा अंतरंग गैंग्लिया) जिनमें से अधिकतर सकेंद्रित होकर एक वलय (छल्ला) बना लेते हैं जिसके साथ संयोजी एवं समयोजी बने-जुड़े होते हैं।
9. पाचन-तंत्र सम्मिश्र प्रकार का होता है, जिसमें एक विशिष्ट रेतन अंग रेडुला (radula) होता है; गुदा प्रावार-गुहा में को खुलती है।
10. सर्पिल विदलन, और सामान्यत: परोक्ष परिवर्धन जिसमें पहले एक ट्रोकोफ़ोर लार्वा (trochophore larva) और बाद में कभी-कभी एक दूसरा लार्वा वेलिजर (veliger) भी पाया जाता है।

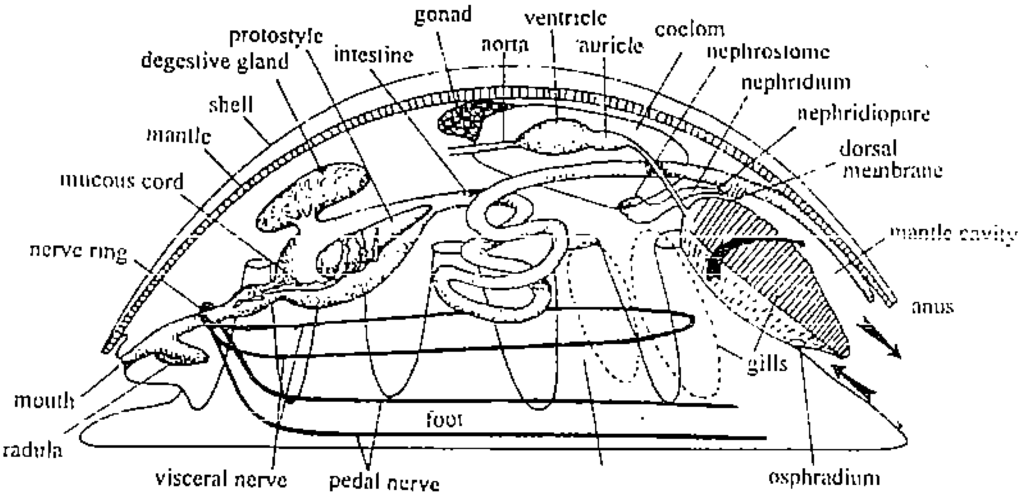

चित्र 6.1 : सामान्यीकृत मौलस्क की संरचना।

मौलस्का सामान्यतः कई-कई सेंटीमीटर लम्बे होते हैं। यद्यपि मौलस्क बहुत विषम प्राणियों का समूह जान पड़ता है, फिर भी उनमें एक आधारभूत देह योजना पायी जाती है। आइए इसे एक परिकल्पित पूर्वज मौलस्क (चित्र 6.1) की सामान्यीकृत देह-योजना से समझें। शरीर की अधर सतह चपटी और पेशीय होती है जो एक संचलन अंग, **पाद (foot)** का रूप लिए हुए है। इसके निकट ही एक सिरे पर शीर्ष है। शरीर की पृष्ठ दिशा लगभग अण्डाकार है जिसके अंदर भीतरी अंग हैं और जिसे *अंतरंग संहति (visceral mass)* कहते हैं। अंतरंग संहति के ऊपर एक एपिडर्मिस ढकी होती है जिसे प्रावार अथवा *पैलियम (pallium)* कहते हैं। प्रावार एक गुहा को घेरे रहता है जिसे *प्रावार गुहा (mantle cavity)* कहते हैं। इसी प्रावार से बाहरी ढकने वाले सुरक्षाकारी कवच का स्राव हुआ होता है तथा कवच के स्रवण में प्रावार के सीमांत ही सर्वाधिक सक्रिय होते हैं।

कवच में तीन परतें होती हैं (चित्र 6.2) : (1) बाहरी श्रृंगीय परत जो **कॉन्कियोलिन (conchiolin)** नामक एक रूपांतरित प्रोटीन की बनी होती है, इस परत को **पेरिऑस्ट्रेकम (periostracum)** कहते हैं। यह अपने से नीचे से स्थित परतों को सुरक्षा करती है तथा इसका स्रवण केवल प्रावार सीमांत के वलन द्वारा ही होता है। (2) मध्यवर्ती *प्रिज़्मीय परत (prismatic layer)* कैल्सियम कार्बोनेट के प्रिज़्मों की बनी होती है जो पृष्ठतः एक प्रोटीन मैट्रिक्स में भरे रहते हैं। यह परत भी प्रावार के ग्रंथीय सीमांत से ही स्रावित होती है। (3) सबसे भीतरी परत मुक्ताभ परत (nacreous layer) होती है। यह एक कैल्सियमी पदार्थ है जो लगातार प्रावार की सतह से परत-दर-परत रूप में नीचे जमाया जाता रहता है। यही भाग है जो अनेक मौलस्कों की रंगदीप्त (iridescent) मुक्ता (mother-of-pearl) यानी सीप होती है। जब कभी कोई बाहरी कण प्रावार तथा कवच के बीच फंस जाता है तब उसके चारों ओर ये मुक्ता परतें उसे घेर लेती हैं, और इस प्रकार मोती बन जाता है।

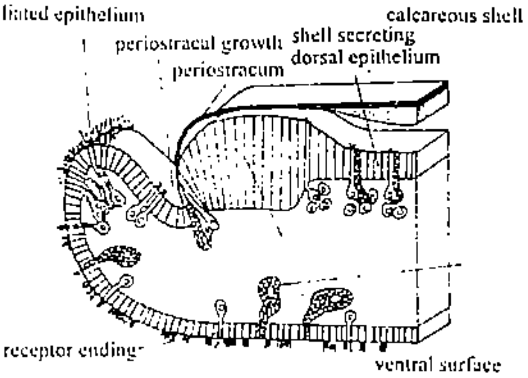

चित्र 6.2 : गैस्ट्रोपोडा के कवच के प्रावार सीमांत।

मौलस्कों में श्वसन संरचनाएं सामान्यतः *गिल अथवा टेनिडिया (ctenidia)* होते हैं (एकवचन ctenidium) (चित्र 6.3)। प्रावार-गुहा में प्रत्येक पार्श्व पर एक-एक टेनिडिया होते हैं। प्रत्येक गिल में एक लम्बा चपटा अक्ष होता है जो प्रावार-गुहा की अग्र दीवार की ओर से उभरा हुआ होता है। अक्ष के भीतर पेशियां, तंत्रिकाएं तथा रक्त वाहिकाएं होती हैं। अक्ष की चौड़ी सतह के पार्श्वों पर त्रिभुजाकार गिल-तंतु लगे होते हैं, कुछ कुछ इसी प्रकार जैसे कि किसी कंघी में "दांते" बने होते हैं। जब ये तंतु अक्ष के केवल एक ही पार्श्व पर बने होते हैं तब इस प्रकार के टेनिडियम को *एककंकती (मोनोपेक्टिनेट, monopectinate)* कहते हैं, तथा जब ये तंतु दोनो पार्श्वों पर हों तब *द्विकंकती (बाइपेक्टिनेट, bipectinate)* कहते हैं। जल प्रावार-गुहा के निचले भाग में पश्च सिरे से प्रवेश करता है, फिर ऊपर को पहुंच कर और फिर पुनः पीछे को चलता हुआ गुहा से बाहर निकल जाता है। गिलों के पार्श्व, ललाट (frontal) एवं अपललाट (abfrontal) क्षेत्रों पर सिलिया बने होते हैं (चित्र 6.4)।

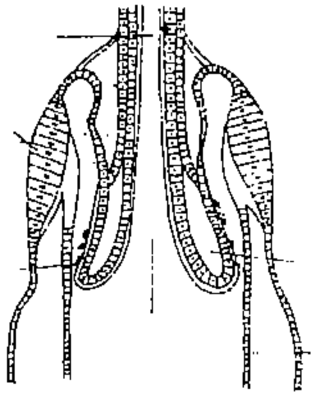

चित्र 6.3 : गिल के अग्रभाग की काट।

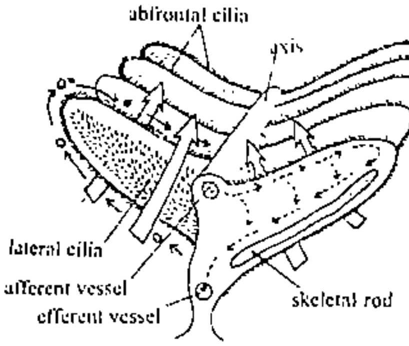

चित्र 6.4 : गिल की अनुप्रस्थ काट।

अक्ष के भीतर दो रक्त वाहिकाएं होती हैं - *अभिवाही वाहिका (afferent vessel)* जो रक्त को गिल के भीतर ले जाती है, और दूसरी *अपवाही वाहिका (efferent vessel)* जो गिल में से रक्त को एकत्रित करती है। रक्त का प्रवाह अभिवाही वाहिका में से गिल में को और फिर गिल में से अपवाही वाहिका में को होता है। इस प्रकार रक्त का प्रवाह उस जल के साथ प्रतिधारा (counter current) बनाता है जो ललाट सीमांत से अपललाट सीमांत की दिशा में बहता है। इस व्यवस्था से रक्त अधिकाधिक ऑक्सीजन प्राप्त करता है।

अनेक मौलस्क शाकाहारी होते हैं तथा शैवालों एवं पौधों को खाते हैं। मुख भीतर मुख-गुहा में को खुलता है जिसका अस्तर क्यूटिकल का बना होता है। मुख-गुहा के फ़र्श पर एक संरचना *ओडोंटोफ़ोर (odontophore)* (दंतधर) बनी होती है। ओडोंटोफ़ोर एक लम्बी पेशीय तथा कार्टिलेजी संरचना होती है जिसके ऊपर एक झिल्लीदार पट्टी *रेडुला (radula)* बनी होती है (चित्र 6.5)। रेडुला एक रेडुला-कोश के भीतर होता है तथा उस पर दांतों की अनुप्रस्थ पंक्तियां बनी होती हैं। रेडुला तथा ओडोंटोफ़ोर दोनों मिलकर आहार को खुरचने तथा आहार-संग्रहण का कार्य करते हैं। बार बार खुरचने की क्रिया के कारण रेडुला के दांत घिसते-घिसते खत्म होते रहते हैं। रेडुला के पश्च सिरे पर नए दांतों का लगातार स्रवण होता रहता है। मौलस्कों की मुख-गुहा के भीतर कम से कम एक जोड़ी लार-ग्रंथियां खुलती होती हैं। मुख-गुहा पीछे ग्रसिका में खुलती है और उसके बाद आता है जठर (चित्र 6.1)। जठर के अग्र भाग में एक छोटे से स्थान को छोड़कर शेष में एक काइटिनी अस्तर बना होता है। जठर में यह छूटा हुआ स्थान सिलियायुक्त होता है तथा उस पर कटक बने होते हैं, इस स्थान को छंटाई-क्षेत्र कहते हैं। हिपैटोपैंक्रियाज़ (यकृदग्न्याशय) के रूप में पाचन ग्रंथियां होती हैं, तथा इन ग्रंथियों की वाहिनियां जठर में खुलती हैं। जठर के पीछे लम्बी एवं कुंडलित आंत्र होती है। आंत्र का पश्च भाग मलाशय का कार्य करता है जिसके भीतर विष्ठा गुटिकाएं सकेंद्रित होती जाती हैं। विष्ठा प्रावार-गुहा के पश्च सीमांत पर स्थित गुदा के द्वारा बाहर निकल जाता है तथा बाहिर्वाही जलधारा के साथ बाहर बह जाता है (चित्र 6.1)।

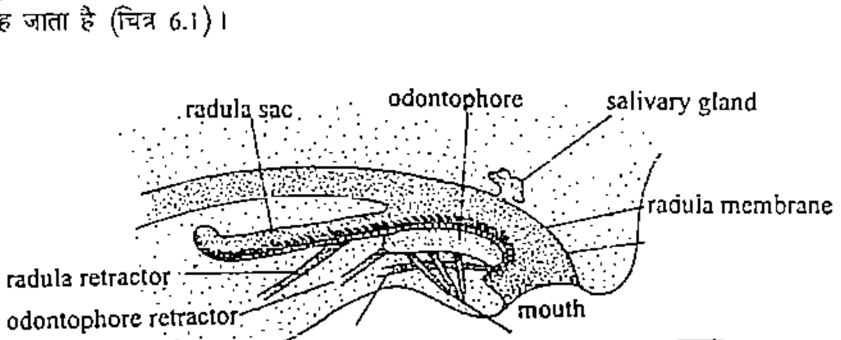

चित्र 6.5 : मौलस्क रेडुला उपकरण की अंतर संरचना।

सीलोमी गुहा अत्याधिक ह्रासित होती है और वह मुख्यत: दो भागों में सीमित होती है एक तो पृष्ठत: हृदय को

घेरती हुए परिहृद के भीतर तथा दूसरे अधरत: आंत्र के एक भाग को घेरती हुई। मौलस्कों का हृदय त्रिकक्षीय होता है जिसमें एक अयुग्मित अग्र निलय (वेंट्रिकल) तथा एक जोड़ी पश्च अलिंद (औरिकल) (चित्र 6.1) होते हैं। निलय से महाधमनी निकलती है जो विशाखित होकर रक्त को रक्त-कोटरों में पहुँचाती है। इन कोटरों (साइनसों) से रक्त उत्सर्गी अंगों तथा गिलों में से होता हुआ वापिस हृदय में आ जाता है। सेफ़ैलोपोडों (स्क्विडों तथा ऑक्टोपसों) में रक्त, वाहिकाओं में बंद रहता है तथा साइनस (कोटर) नहीं होते। रक्त में श्वसन वर्णक हीमोसाएनिन होता है तथा अमीबकोशिकाएं होती हैं।

मौलस्कों में उत्सर्जन की क्रिया दो नेफ़्रिडिया (वृक्ककों) अथवा गुर्दों (वृक्कों) द्वारा होती है। प्रत्येक गुर्दा एक *मेटानेफ़्रिक नलिका (metanephric tubule)* के रूप में होता है जिसका एक सिरा नेफ़्रोस्टोम (वृक्ककमुख) सीलोम में खुलता है तथा दूसरा सिरा नेफ़्रिडियोपोर (वृक्ककछिद्र) प्रावार-गुहा में खुलता है। अनेक मौलस्कों में नेफ़्रिडियन एक बंद थैला होता है। मूत्र नेफ़्रिडियोपोर द्वारा प्रावार-गुहा में को निकाल दिया जाता है (चित्र 6.1)।

मौलस्कों के तंत्रिका-तंत्र में एक तंत्रिका-वलय ग्रसिका को घेरता हुआ पाया जाता है। इस वलय से दो जोड़ी तंत्रिका रज्जु निकल कर पीछे की ओर को चलते जाते हैं। इन दो में से एक जोड़ी रज्जु(**पाद तंत्रिका रज्जु, pedal nerve cord**) पाद एवं उसकी पेशियों में चले जाते हैं। दूसरी जोड़ी **अंतरंग रज्जुओं (visceral cords)** की होती है जो प्रावार-गुहा तथा अंतरंगों में तंत्रिका-संभरण करते हैं। इनमें से प्रत्येक जोड़ी के तंत्रिका-रज्जुओं के बीच अनुप्रस्थ संयोजन बने होते हैं। मौलस्कों के संवेदी अंगों में एक जोड़ी **स्पर्शक**, एक जोड़ी नेत्र, *स्टैटोसिस्ट (statocyst)* नामक संतुलन अंग, तथा रससंवेदग्राही *ऑस्फ़ैडिया (osphradia)* होते हैं (चित्र 6.1)।

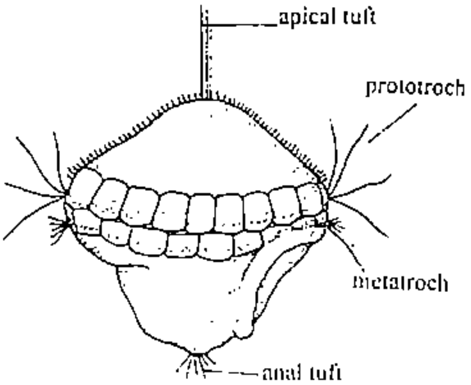

चित्र 6.6 : गैस्ट्रोपोडा का ट्रोकोफ़ोर लार्वा।

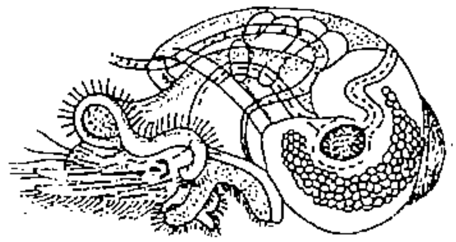

चित्र 6.7 : वेलिजर लार्वा।

मौलस्क उभयलिंगी हो सकते हैं अथवा उनमें सेक्स अलग-अलग भी हो सकती हैं। परिपक्व गैमीट (युग्मक) जल में छोड़ दिए जा सकते हैं और उस स्थिति में निषेचन बाहरी होता है। जिन उदाहरणों में निषेचन भीतरी होता है उनमें या तो शुक्राणु सीधे ही पहुंचा दिए जाते हैं या शुक्राणुओं को एक शुक्राणुधर में भर कर उसे स्थानांतरित किया जाता है। विदलन सर्पिल होता है तथा गैस्ट्रुला से एक स्वच्छंदजीवी ट्रोकोफ़ोर लार्वा बनता है (चित्र 6.6)। अनेक मौलस्कों में ट्रोकोफ़ोर के बाद एक अन्य लार्वा-अवस्था *वेलिजर (veliger)* लार्वा की बनती है (चित्र 6.7) जिसमें पाद, कवच तथा अन्य संरचनाएं बनने लगती हैं। वेलिजर लार्वा में कायांतरण होकर वयस्क बन जाता है।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :

a) मौलस्कों में निम्न प्रमुख समूह आते हैं जिन्हें सामान्यतः
 तथा के नामों से पुकारते हैं।

b) मौलस्कों का भरपूर फ़ॉसिल (जीवाश्म) रिकार्ड अनेक जीवों में के पाए जाने के कारण है।

c) मौलस्कों के देह की अण्डाकार पृष्ठ दिशा जिसमें भीतरी अंग भरे होते हैं कहलाती है।

d) ... अंतरंग संहति के ऊपर बना एपिडर्मिती आवरण होता है।

e) मौलस्कों के गिलों को ... कहते हैं।

मौलस्का का वर्गीकरण

अभी तक हमने मौलस्का के कुछ प्रमुख लक्षणों का वर्णन किया है। फ़ाइलम मौलस्का में सात क्लास आते हैं। ये इस प्रकार हैं :-

क्लास मोनोप्लैकोफ़ोरा (Monoplacophora)
क्लास पौलीप्लैकोफ़ोरा (Polyplacophora)
क्लास एप्लैकोफ़ोरा (Aplacophora)
क्लास गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda)
क्लास बाइवैल्विया (Bivalvia)
क्लास स्कैफ़ोपोडा (Scaphopoda)
क्लास सेफ़ैलोपोडा (Cephalopoda)

इन सात क्लासों में से क्लास मोनोप्लैकोफ़ोरा मौलस्कों में एक आदि समूह है। क्लास मोनोप्लैकोफ़ोरा का पहला सजीव प्रतिदर्श काफ़ी देर से 1952 में खोजा गया था। यह जीनस *नीओपिलाइना (Neopilina)* है जिसे कॉस्टारिका के प्रशांत महासागर के समुद्र तट के पास से समुद्र में से प्राप्त किया गया था। आइए अब इन क्लासों का विस्तार से अध्ययन करें।

6.2.1 क्लास मोनोप्लैकोफ़ोरा

द्विपार्श्वत: सममित, चौड़ा चपटा पाद तथा एकल कवच; प्रावार-गुहा में पांच से छह जोड़ी गिल, छह जोड़ी नेफ़्रिडिया जिनमें से दो जोड़ी जनन वाहिनियों के रूप में कार्य करती हैं; रेडुला होता है; सेक्स (नर-मादा) अलग-अलग होते हैं; इसकी विद्यमान स्पीशीज़ तीन जीनसों में आती हैं, ये समुद्र की बहुत ज़्यादा गहराइयों में पायी जाती हैं। साथ ही अनेक जीवाश्म स्पीशीज़ पायी गयी हैं जो केम्ब्रियन तथा डिवोनियन युगों से प्राप्त हुई हैं। मोनोप्लैकोफ़ोरनों को सभी मौलस्कों का पूर्वज माना जाता है।

मोनोप्लैकोफ़ोरनों में निम्न मुख्य लक्षण पाए जाते हैं :

- कवच की आकृति चपटी ढाल से लेकर छोटे शंकु तक अनेक प्रकार की होती है; प्राणियों की लम्बाई 3 मिमी से 3 सेमी तक होती है (चित्र 6.8)।

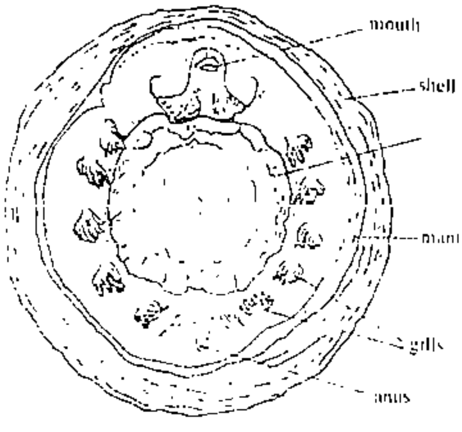

चित्र 6.8 : मोनोप्लैकोफ़ोरन *नीओपिलाइना* (अधरीय दृश्य)।

- पाद चौड़ा तथा चपटा होता है।
- मुख पाद के सामने बना होता है तथा गुदा पश्चत: प्रावार-गुहा में खुलती है। मुख के सामने एक मुखपूर्व वलन होता है जो पार्श्वत: फैला होता है जहां वह एक बड़ा सिलियायुक्त पैल्प-सदृश संरचना बना देता है। एक अन्य वलन मुख के पीछे प्रत्येक पार्श्व पर निकला होता है जो मुखपश्चीय स्पर्शक का रूप ले लेते हैं।
- प्रावार-गुहा में 5 या 6 जोड़ी एककंकती गिल होते हैं। छह जोड़ी वृक्क होते हैं।
- हृदय में दो जोड़ी अलिंद तथा एक जोड़ी निलय होते हैं (चित्र 6.9) तथा उसके चारों ओर परिहृद सीलोम होती हैं।

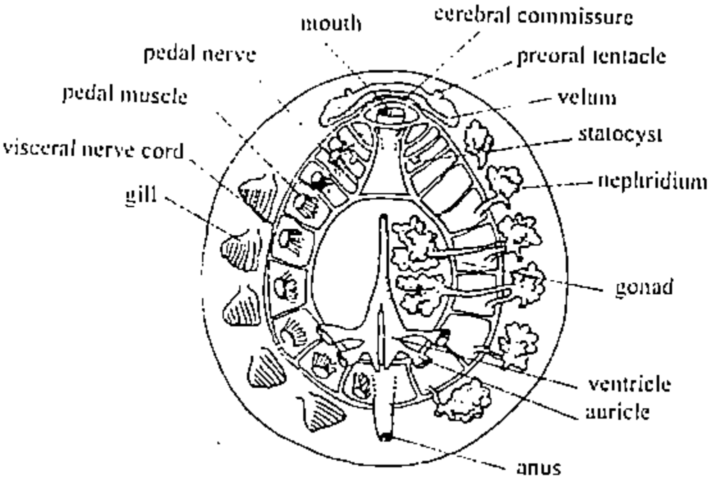

चित्र 6.9 : *नीओपिलाइना* की आंतरिक संरचना।

- मुख-गुहा में एक रेडुला तथा एक अवरेडुला (subradular) अंग होता है। जठर के भीतर एक क्रिस्टलीय स्टाइल (शूक) होता है। एक लम्बी एवं कुंडलित आंत्र होती है।
- तंत्रिका-तंत्र प्ररूपी होता है जिसमें एक जोड़ी प्रमस्तिष्क गैंग्लिया, परिमुख तंत्रिका-वलय, एक जोड़ी अंतरंग तंत्रिकाएं तथा एक जोड़ी पाद तंत्रिकाएं होती हैं।
- लिंग अलग-अलग होते हैं। दो जोड़ी गोनड देह के मध्य भाग में बने होते हैं। निषेचन बाहरी होता है। उदाहरण *नीओपिलाइना*।

6.2.2 क्लास पौलीप्लैकोफ़ोरा

द्विपार्श्वत: सममित लम्बा, पृष्ठ-अधरत: चपटा शरीर, शीर्ष ह्रासित रेडुला से युक्त, कवच आठ पृष्ठ प्लेटों के रूप में, पाद चपटा और चौड़ा, शरीर के पार्श्व पर बहुत सारे गिल, लिंग अलग-अलग। जीवन-चक्र में ट्रोकोफ़ोर लार्वा, वेलिजर लार्वा नहीं होता।

क्लास पौलीप्लैकोफ़ोरा में काइटॉन (chitons) आते हैं (चित्र 6.10)। ये चट्टानों पर चिपके पाए जाते हैं। शरीर पृष्ठ अधरत: चपटा होता है तथा कवच आठ अनेरछादी कवच प्लेटों का बना होता है तथा इसी आधार पर इस वर्ग का यह नाम पौलीप्लैकोफ़ोरा पड़ा। इनके महत्वपूर्ण सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं :-

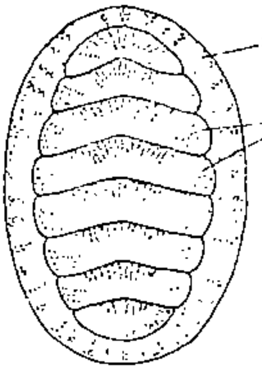

चित्र 6.10 : काइटॉन।

- इनका आकार लगभग 3 से 12 सेमी लम्बा होता है और ये अंतरज्वारीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं।
- इनमें प्रावार से ढकी हुई आठ कवच प्लेटें पायी जाती हैं। परिधि पर प्रावार एक मोटी कड़ी **मेखला (girdle)** जैसा बन जाता है जहां पर उसमें शल्क कड़े बाल अथवा कंटिकाएं बनी हो सकती हैं अथवा वह चिकना भी हो सकता है।
- चौड़ा चपटा पाद प्राणी की लगभग समूची अधर सतह को समेटे होता है तथा इसके द्वारा कड़े अधःस्तर से चिपके रहने का काम लिया जाता है। आठ कवच प्लेटें अनुप्रस्थतः विभाजित होती हैं एवं एक दूसरे से संधित रहती हैं। यह व्यवस्था संचलन में तो सहायता करती ही है, साथ ही जब कभी प्राणी को कोई ख़तरा होता है तब उसे सुरक्षा हेतु गोल-मटोल हो जाने में भी सहायक होती है। शीर्ष पर आंखें अथवा अन्य कोई सुविकसित संवेदी अंग नहीं होते।
- काइटॉन शैवालों तथा अन्य संलग्न जीवों को खाते हैं। मुख भीतर की ओर एक काइटिनीकृत मुख-गुहा में खुलता है जिसके भीतर एक लम्बा रेडुला होता है। मुख-गुहा, ग्रसिका के माध्यम से जठर में खुलती है। ग्रसनी-ग्रंथियां ग्रसिका में खुलती हैं (चित्र 6.11)। जठर के पीछे आंत्र आती है जो एक पाश (लूप) बनाती हुई पश्च आंत्र में को जारी रहती है तथा पश्च-आंत्र में विष्ठा-गुटिकाएं बनती हैं। गुदा पाद के पश्च सीमांत के पीछे मध्य रेखा पर स्थित होती है।

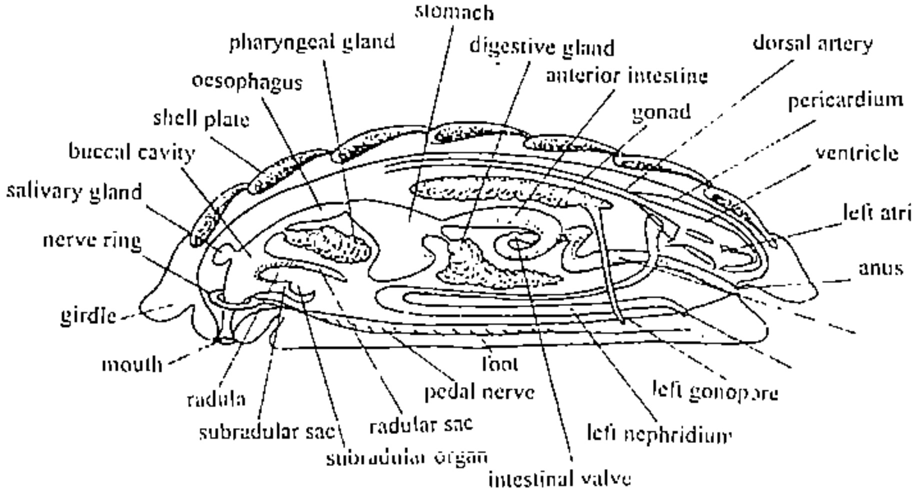

चित्र 6.11 : काइटॉन की आंतरिक संरचना।

- गिल एक रेखीय श्रृंखला के रूप में बने होते हैं। गिलों की संख्या तथा साइज अलग-अलग हो सकते हैं।
- हृदय अंतिम दो कवच प्लेटों के नीचे स्थित होता है और एक परिहृद गुहा के भीतर बंद होता है। इसमें एक जोड़ी अलिंद तथा एक अकेला निलय होता है। बड़े आकार के U-आकृति वाले वृक्कों के

नेफ्रोस्टोम (वृक्ककमुख) परिहृद गुहा के भीतर खुलते हैं। नेफ्रिडियोपोर पेलियल खांच में खुलता है।

- तंत्रिका-तंत्र प्ररूपत: मौलस्कन प्रकार का होता है (चित्र 6.12)। मगर गैंग्लिया नहीं होते, और हुए भी तो बहुत ही अल्पविकसित। परिग्रसिका तंत्रिका-वलय से पाद तंत्रिकाएं तथा प्रावारान्तरंग (pallioviscoral) तंत्रिकाएं निकलती हैं। संवेदी अंगों के अंतर्गत ये आते हैं - अवरेडुला अंग, मेखला रोम और अज्ञात संवेदी प्रकार्य वाली एस्थेटीज़ (esthetes) नामक प्रावार संरचनाएं।

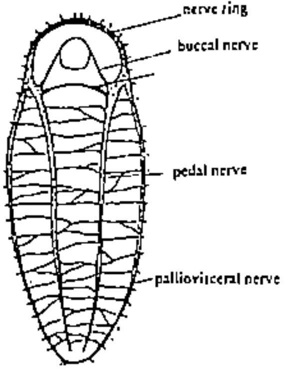

चित्र 6.12 : काइटॉन का तंत्रिका तंत्र।

- अधिसंख्य काइटॉन एकलिंगाश्रयी होते हैं। अकेला मध्यवी गोनड मध्य कवच प्लेटों के नीचे परिहृद-गुहा के आगे स्थित होता है। जनन वाहिनियां प्रावार खांच में स्थित जनन-छिद्रों द्वारा बाहर को अलग-अलग खुलती हैं। गैमीट (युग्मक) समुद्र में छोड़ दिया जाते हैं तथा निषेचन या तो बाहरी प्रकार का जल में सम्पन्न होता है या फिर मादा की प्रावार-गुहा के भीतर सम्पन्न होता है।
- परिवर्धन में एक स्वच्छंदजीवी तैरने वाली लार्वा अवस्था होती है।

6.2.3 क्लास एप्लैकोफ़ोरा

कृमि-सदृश, कवच नहीं होता और न ही शीर्ष अथवा उत्सर्गी अंग होते हैं, प्रावार पर काइटिनी क्यूटिकल अथवा शल्क अथवा कंटिकाएं होती हैं, प्रावार-गुहा पश्चीय।

एप्लैकोफ़ोरा वर्ग में छोटे आकार के कृमि-सदृश मौलस्क आते हैं जिनमें कोई कवच नहीं होता (चित्र 6.13), इन्हें सॉलीनोगैस्टर (solenogasters) कहते हैं। ये अधिक गहराइयों में पाए जाते हैं हालांकि कुछ स्पीशीज़ उथले जल में भी होती हैं। इनकी जैविकी भली भांति मालूम नहीं है। आप बहुत ही संक्षेप में इनके मुख्य लक्षणों का अध्ययन करेंगे।

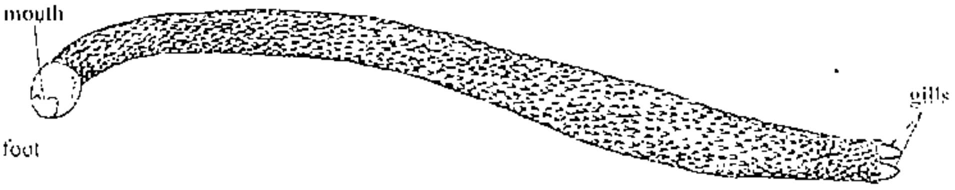

चित्र 6.13 : एप्लैकोफोरन।

- ये 5 सेमी से कम लम्बे होते हैं तथा इनमें एक अल्पविकसित शीर्ष तथा क्यूटिकल से ढकी त्वचा होती है जिसके भीतर कैल्सियमी शल्क गडे होते हैं। प्रावार के सीमांत ऊपर को मुड़ कर लिपट गए हैं जिससे ये प्राणी रेंगते राम्य कृमि - जैसे दिखायी पड़ते हैं। बिलकारी उदाहरणों में पाद बहुत

ह्रासित हो गया है। शरीर के पश्च सिरे पर एक कोष्ठ के रूप में प्रावार-गुहा होती है जिसमें गुदा खुलती है। कुछ उदाहरणों में गिल प्रावार-गुहा के भीतर स्थित होते हैं। कवच नहीं होता।

- बिलकारी उदाहरण छोटे जीवों पर तथा जम गए पदार्थ पर आहार करते हैं तथा रेंगने वाली स्पीशीज नांइडेरियनों पर आहार करती हैं। रेडुला मौजूद हो सकता है और नहीं भी हो सकता।
- अधिकतर उदाहरण उभयलिंगी होते हैं तथा जनन वाहिनियां प्रावार-गुहा में को खुलती हैं। अण्डों में या तो सीधे ही परिवर्धन होकर वयस्क बन जाएं या फिर ट्रोकोफ़ोर लार्वा अवस्था के माध्यम से वयस्क बनते हैं।

इस प्रकार अभी तक आपने मोलस्का के तीन आदिम क्लासों के बारे में पढ़ा, अर्थात् एक अकेली कवच-प्लेट वाले जीव मोनोप्लैकोफोरा, अनेक कवच-प्लेटों वाले जीव पौलीप्लैकोफोरा तथा बिना कवच-प्लेटों वाले जीव एप्लैकोफोरा के विषय में। इससे पहले कि हम अगले क्लासों का अध्ययन करें, आप नीचे दिए जा रहे बोध-प्रश्न को हल करने का प्रयास करें

बोध प्रश्न 2

कॉलम A में दिए गए क्लासों को कॉलम B में दिए गए उनके लक्षणों से मिलाइए :

A	B
(i) एप्लैकोफ़ोरा	(a) एस्थेटीज
	(b) हृदय में दो जोड़ी अलिंद तथा एक जोड़ी निलय
(ii) मोनोप्लैकोफ़ोरा	(c) शरीर के ऊपर एक क्यूटिकल के आस्तर वाला अध्यावरण जिसमें कैल्सियमी शल्क अथवा कंटिकाएं गड़ी होती हैं।
(iii) पौलीप्लैकोफ़ोरा	(d) 8 कवच प्लेटों का होना जो एक दूसरे से संधित होती हैं
	(e) कृमि-सदृश जीव जिनमें कोई कवच-प्लेट नहीं होती।
	(f) 5 से 6 जोड़ी एककंकती गिल्स।
	(g) चौड़ा चपटा पाद होना जिसका उपयोग कड़ी चट्टानों तथा कवचों से चिपकने में किया जाता है।
	(h) एकल चपटे कवच का पाया जाना।
	(i) रेडुला मौजूद हो सकता है या नहीं भी हो सकता।

6.2.4 क्लास गैस्ट्रोपोडा

देह सममित, मरोड़ (torsion) या उसके प्रभाव प्रकट होते पाए जाते हैं, अधिकतर में कवच कुंडलित होता है (सुविकसित शीर्ष, रेडुला से युक्त; बड़ा चपटा पाद; गिल एक या दो या उनके साथ फुफ्फुस-गुहा (फेफड़ा); अधिकतर में एकल अलिंद तथा एकल वृक्क। तंत्रिका-तंत्र में प्रमस्तिष्क, पाद, पार्श्व एवं अंतरंग गैंग्लिया, सामान्यतः ट्रोकोफ़ोर तथा वेलिजर लार्वा होते हैं।

गैस्ट्रोपोड प्राणी मौलस्का का सबसे बड़ा क्लास है, इस क्लास में बहुत व्यापक अनुकूलन विकिरण पाया जाता है। ये समुद्र की हर प्रकार की तली में रहते पाए जाते हैं तथा ये वेलापवर्ती एवं वेलांतली भी हैं। ये अलवण जल में भी पहुंच गए हैं तथा इनमें से अनेक थल पर भी सफलतापूर्वक रहने लग गए हैं। इस उपभाग में आप इनके शरीर की संघटना का अध्ययन करेंगे।

अभी तक जिन अन्य समूहों के बारे में आपने पढ़ा है, उनसे गैस्ट्रोपौड चार मुख्य बातों से भिन्न हैं :

1. एक स्पष्ट शीर्ष बन गया है;
2. शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में लम्बा हो गया है;
3. प्लेट सदृश कवच एक सर्पिल असममित कवच बन गया है, यह कवच सुरक्षा प्रदान करता है, खतरे के समय प्राणी इसके भीतर सिमट जाता है;
4. अंतरंग संहति में 90° से लेकर 180° तक की ऐंठन आ गयी है, इस परिघटना को मरोड़ (torsion) कहते हैं।

गैस्ट्रोपोडा की संघटना में आए चार प्रमुख परिवर्तनों में से सबसे ज़्यादा विभेदक लक्षण मरोड़ का पाया जाना है। याद रखिए कि मरोड़ कवच का कुंडलित होना नहीं है वरन् इसमें शरीर का ऐंठना होता है (देखिए बॉक्स 6.1)। इस प्रक्रिया में शीर्ष के पीछे का अधिकतर भाग जिसमें अंतरंग संहति, प्रावार तथा प्रावार-गुहा शामिल हैं वामावर्त (anticlockwise) दिशा में 180° ऐंठ जाता है जिसके फलस्वरूप पृष्ठ दिशा से देखने पर गिल, प्रावार-गुहा, गुदा तथा वृक्ककछिद्र शरीर के अगले भाग में शीर्ष के पीछे स्थित दिखाई देते हैं। इस मरोड़ के ही कारण पाचन-पथ का पाश बन जाता तथा तंत्रिका-तंत्र भी "8" की आकृति में ऐंठ जाता है। केवल शीर्ष और पाद ही दो भाग हैं जो मरोड़ से बच गए हैं। कवच सामान्यत: शंकुसर्पिल (conospiral) होता है।

बॉक्स 6.1

मरोड़, गैस्ट्रोपोडों का सर्वाधिक विभेदक लक्षण है, यह परिघटना किसी भी अन्य मौलस्क वर्ग में नहीं पायी जाती। यहां आपको फिर से याद कराना होगा कि पकिल्पित पूर्वज मौलस्क की आधारभूत देह-योजना द्विपार्श्वत: सममिति वाली थी, उसमें एक सरल कूबड़-जैसी अंतरंग संहति थी तथा उसके ऊपर एक उथले शंकु का एक दम फिट होने वाला कवच था तथा नीचे एक चपटा पाद रेंगने के लिए था। इसके अलावा सामने एक मुख था तथा पीछे एक प्रावार-गुहा थी जिसमें गिल थे और जिसके भीतर गुदा एवं वृक्ककछिद्र खुलते थे। गैस्ट्रोपोडों के विकास के दौरान अंतरंग पृष्ठ-अधर दिशा में लम्बा हो गया है। साथ ही, इन में मरोड़ परिघटना घटी जो कुंडलित होने से बिल्कुल पृथक है (नीचे देखिए)। मरोड़ की इस प्रक्रिया के दौरान देह का पश्च सिरा (पृष्ठ दिशा से देखने पर) अपने साथ प्रावार-गुहा तथा प्रावार-गुहा के भीतर के अंगों को भी लेता हुआ 180° वामावर्त दिशा में घूम गया। इससे अंतरंग संहति और उसके भीतर के अंग भी प्रभावित हो गए। परिणाम यह हुआ कि प्रावार-गुहा और उसके भीतर के अंग जो अभी तक पीछे की दिशा में स्थित थे अब आगे की दिशा में मुख के ऊपर आ गए (चित्र 6.14)।

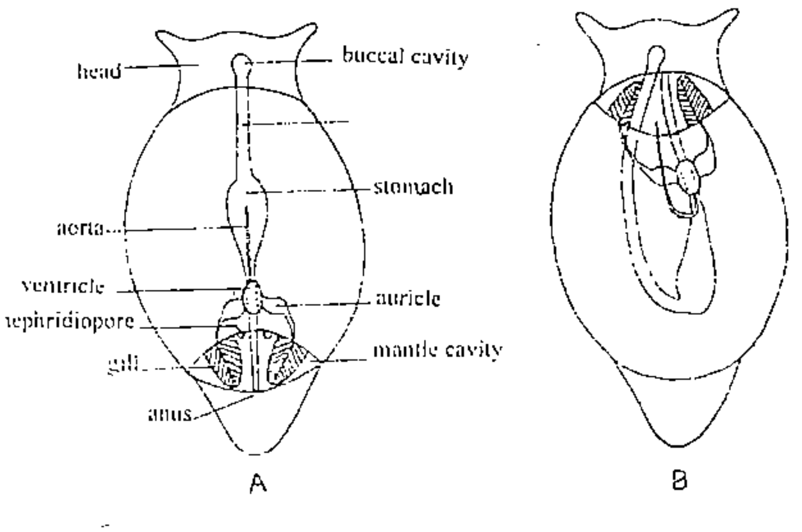

चित्र 6.14 : गैस्ट्रोपोड में मरोड़। A: मरोड़ से पहले B: मरोड़ के बाद।

गिल और वृक्क जो मूलत: दाहिनी दिशा में स्थित थे अब बायीं ओर आ गए। आंत्र "U" की आकृति में मुड़ गयी तथा गुदा सामने की ओर शीर्ष के ऊपर आकर खुलने लगी। तंत्रिका-तंत्र का अग्र भाग जिसमें वलय शामिल है मरोड़ से अप्रभावित रहा; केवल पश्च भाग ही इस प्रक्रिया में आए। अत: दो अंतरंग तंत्रिका रज्जु जो पार्श्व गैंग्लियॉन तथा अनुरूप दिशा के अंतरंग गैंग्लियॉन को जोड़ते हैं, "8" की आकृति में ऐंठ गए (चित्र 6.15)।

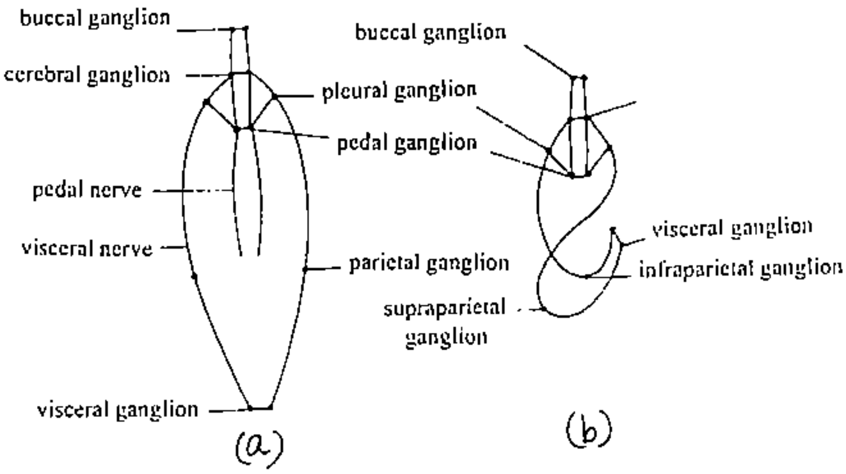

चित्र 6.15 : A: मरोड़ से पहले तंत्रिका B: मरोड़ के बाद तंत्रिका तंत्र।

इस प्रक्रिया के दौरान मूलत: दाहिनी ओर का पेराइटल (भित्तीय) गैंग्लियॉन बायीं ओर तथा अंतरंग संहति के ऊपर आ जाता है और इसलिए इसे अधिपेराइटल गैंग्लियॉन कहा जाता है, और मूलत: बायीं ओर का गैंग्लियॉन दाहिनी ओर आ जाता है और इसलिए उसे अध:पेराइटल गैंग्लियॉन कहते हैं। विकास के दौरान इस मरोड़ की आवश्यकता क्यों पड़ी, इसकी ठीक-ठीक जानकारी नहीं है। किंतु इससे एक बात ख़राब हुई, इसके कारण प्रावार-गुहा के भीतर का पानी दूषित हो गया क्योंकि विष्ठा तथा उत्सर्गी उत्पाद गिलों के समीप ही छोड़े जाने लगे। मरोड़ वास्तव में गैस्ट्रोपोडों की लार्वा अवस्था में होता है, और कवच तथा पाद को जोड़ने वाली दाहिनी एवं बायीं आंकुचन पेशियों की असममित अथवा असमान वृद्धि के कारण होता है।

ऊपर वर्णन की गयी दशा आदिम गैस्ट्रोपोडों (उपक्लास प्रोजोब्रैंकिया) में देखी जाती है और अधिसंख्य गैस्ट्रोपोड-प्राणी इसी श्रेणी में आते हैं। पल्मोनेटों में, जिनमें थल-घोंघे आते हैं, गिल समाप्त हो गए हैं तथा प्रावार-गुहा में रूपान्तरण होकर एक फुप्फुस-कक्ष अथवा फेफड़ा बन गया है। उपक्लास ओपिस्थोब्रैंकिया में इसके विपरीत प्रक्रिया हुई है इस प्रक्रिया को विमरोड़ (detorsion) कहते हैं, और इन प्राणियों में द्वितीयक रूप में फिर से द्विपार्श्व-सममित आ गयी है। इनमें कवच तथा प्रावार-गुहा ह्रासित हो गयी अथवा समाप्त हो गयी है। उदाहरण : समुद्री शशक (सी-हेयर) तथा न्यूडिब्रैंक-प्राणी।

ऊपर वर्णन किए गए मरोड़ से बिल्कुल भिन्न, गैस्ट्रोपोडों में कुंडलन (coiling) भी हुआ है। आदिम गैस्ट्रोपोडों में कवच का एक द्विपार्श्वत: सममित समतल-सर्पिल कुंडलन हुआ है जिसमें सभी चक्र एक ही असममित समतल में बने होते हैं। चूंकि इस प्रकार का कवच संहत नहीं होता इसलिए वह शंकु-सर्पिल प्रकार का विकसित हुआ। (चित्र 6.16) इस प्रकार के कुंडलन में हर अगला चक्र पहले के पार्श्व में तो होता ही है, साथ ही वह एक ही केंद्रीय अक्ष के चारों ओर बनता है। इस प्रकार के कुंडलन से कुछ समस्याएं भी पैदा हुईं। ये समस्याएं शंकु-सर्पिल के संतुलन से संबंधित थीं क्योंकि शरीर की एक दिशा में बहुत ज़्यादा वज़न हो गया था। इसका समाधान हुआ कवच के ऊपर एवं पश्च दिशा में खिसकने से, जिसमें कवच का अक्ष पाद अक्ष से तिरछी (तिर्यक, oblique) स्थिति में आ गया। कवच तथा शरीर की इस नयी स्थिति से प्रावार-गुहा अधिकतर शरीर की बायीं ओर को सममित हो गयी, और लगभग समस्त अंतरंग संहति देह की दाहिनी ओर प्रावार-गुहा को दबाती रहती है। इसके परिणाम से शरीर की दाहिनी ओर से गिल, वृक्क तथा अलिंद

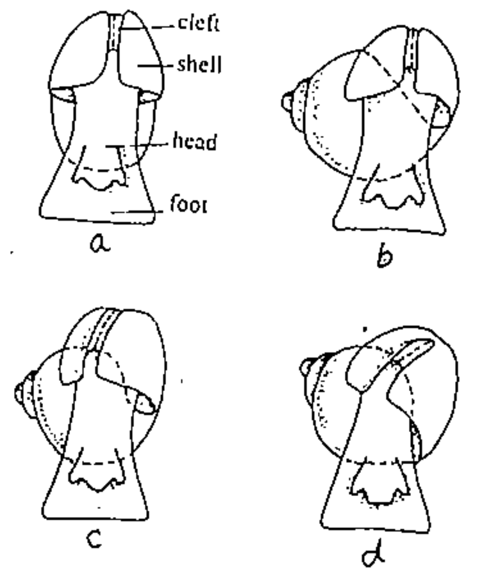

चित्र 6.16 : असममित गैस्ट्रोपोडों कवच का विकास A) आदिम समतल-सर्पिल कवच B) कवच के शिखरस्त हिस्से के बाहर आ जाने पर कवच अधिक संहत हो जाता है। C) शरीर के ऊपर कवच की स्थिति बदल जाती है जिससे भार अधिक समान रूप मे बंट जाता है। D) शरीर के ऊपर अंततः कवच की स्थिति; जैसे कि अधिकतर जीवित गैस्ट्रोपोडों में दिखाई देती है।

का ह्रास हो गया अथवा वे विलीन हो गए। इससे जल के गंदा होने की समस्या भी दूर हो गयी। अब जल प्रावार-गुहा में बायीं ओर से प्रवेश करता, वहां वह गिलों के ऊपर से बहता हुआ तथा प्रावार-गुहा के दाहिनी ओर स्थित गुदा से निकली विष्ठा एवं वृक्ककछिद्र से निकले उत्सर्गी पदार्थों को साथ में लेता हुआ प्रावार-गुहा की दाहिनी ओर से बाहर निकल जाता है।

बॉक्स 6.2

अधिकतर मौलस्कों में कवच होता है। गैस्ट्रोपोड कवच एक "साथ में उठाया शरणस्थल" होता है। ये कवच आकार एवं आकृति में बहुत विविध होते हैं, और ऐसा होना कोई आश्चर्य नहीं हैं क्योंकि इस क्लास में आने वाली स्पीशीज़ की संख्या तथा विविधता भी इतनी विशाल है। इनका आकार सूक्ष्मदर्शीय से लेकर 60 से.मी. लम्बाई तक का हो सकता है जैसे कि विशाल समुद्री घोंघा *प्ल्यूरोप्लोका जाइगैंटिया (Pleuroploca gigantea)*। इनमें से अनेक अत्यंत सुंदर होते हैं। इनमें भांति-भांति के रंग, आकृति तथा सतह पर बनी तरह-तरह की पच्चीकारी,धारियां, उभार, खांचे, गुटिकाएं आदि बने होते हैं।

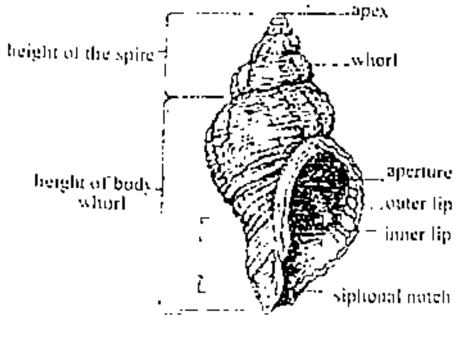

चित्र 6.17 : प्ररूपी गैस्ट्रोपोड शंखाकार सर्पिल कवच।

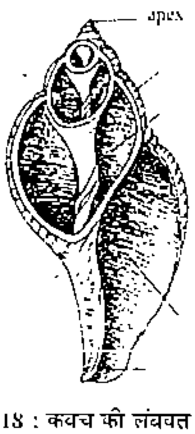

चित्र 6.18 : कवच की लंबवत काट।

प्ररूपी गैस्ट्रोपोड कवच असममित, शंखाकार सर्पिल होता है (चित्र 6.17) जो एक अक्ष (कॉलुमेला) के चारों ओर बना होता है (चित्र 6.18)। यह आदिम समतलसर्पिल कवच से मरोड़ के फलस्वरूप विकसित चक्र एक-दूसरे से... सर्पिल घुमाव-चक्र बन गए हैं। चक्रों की सीमाएं सीवनों से प्रकट होती हैं, तथा ये ... आने वाला पहले वाले से बड़ा चक्र पूर्वतर

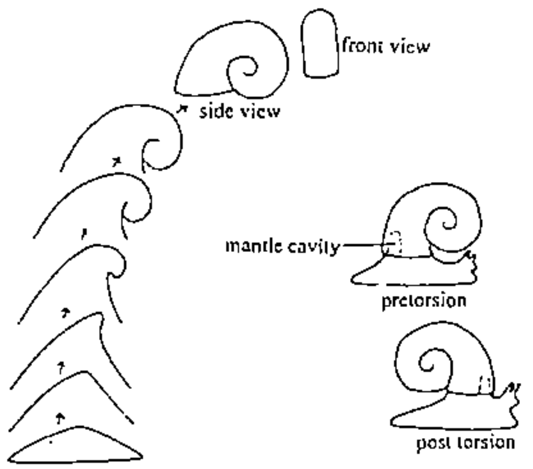

चित्र 6.19 : सममित सर्पिल कवच A) मरोड़ से पहले B) मरोड़ के बाद।

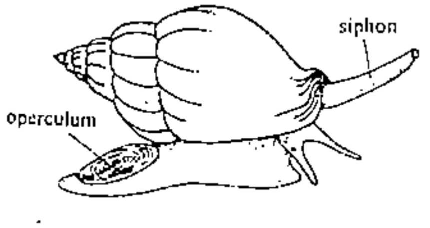

चित्र 6.20 : कवच और उसका प्रच्छद।

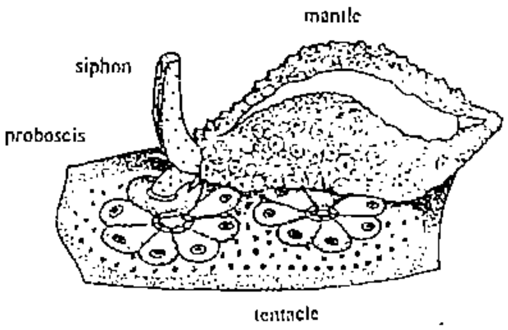

चित्र 6.21 : *कॉरीस* (ट्यूनीकेट पर भोजन करता हुआ)।

छोटे चक्र को अंशत: ढके रहता है। सबसे बड़ा चक्र अंतिम चक्र होता है, और वही होता है देह-चक्र। शेष छोटे चक्र एक साथ मिलकर संसर्पिल (spire) बनाते हैं। संसर्पिल में एक नुकीला शिखरक होता है। मगर ऐसा भी हो सकता है कि चक्र किसी कृमि की नलिका के समान एक-दूसरे से अलग-अलग हों जैसे कि वर्मिटिडों में। इसका एक उदाहरण है *टेनैगोडस (Tenagodus)*, इसमें देह-चक्र में एक बड़ा छिद्र होता है जिसमें से पाद तथा शीर्ष बाहर को आ जाते हैं। छुए-छेड़े जाने पर समूचा पाद तथा शीर्ष देह-चक्र में को सिकोड़ लिया जा सकता है, तथा अनेक स्पीशीज़ में छिद्र के ऊपर एक स्वतंत्र ढक्कन-जैसा कवच-अंश जिसे प्रच्छद (ऑपर्कुलम) कहते हैं, कसकर बंद कर लिया जा सकता है, यह प्रच्छद पाद पर बना होता है, जैसे कि एक उदाहरण "पगड़ी-शंख" *टर्बो (Turbo)* (चित्र 6.20) में। देह-चक्र तथा छिद्र कभी-कभी सामने को एक टोंटी जैसी शक्ल में लम्बा हो गया होता है जिससे एक साईफन-नली बन जाती है इस नली के भीतर साइफ़न होता है। इसका उदाहरण है *कॉरीस (Cowries)* (चित्र 6.21)। कुछ उदाहरणों में, जैसे कि "ओलिव शेल" में, एक इसी प्रकार की किंतु छोटी पश्च नली पायी जाती है।

यदि आप किसी शंक (कवच) को अपने हाथ में इस तरह पकड कर रखें कि उसका छिद्र ऊपर को हो तथा उसका शिखरक आपसे दूर को हो तो आप देखेंगे कि छिद्र आपके दाहिने हाथ की ओर होगा। यदि ऐसा है तो कवच में दाएं हाथ वाला (right handed) सर्पिल बना होता है और उसे दक्षिणावर्ती (dextral) कहते हैं। कभी-कभार, आपको कोई वामावर्ती (sinistral) कवच मिल सकता है जिसमें बाएं (उल्टे) हाथ का सर्पिल हो। ऐसी दशा में छिद्र बायीं ओर होता पाया जाएगा। कुंडली का बनना, अर्थात् वह दक्षिणावर्ती होगी या वामावर्ती, आनुवंशिक आधार पर निर्भर होता है।

ऊपर वर्णन की गयी प्ररूपी आकृति के अलावा अनेक सुव्यक्त बदले रूप भी दिखाई पड़ते हैं। जैसे एक ओर *ट्यूरीटेला (Turitella)* (चित्र 6.22) में लम्बा और पतला मीनार नुमा कवच जिसमें चक्रों की संख्या बहुत ज़्यादा है, तथा दूसरी ओर *लाओमा (Laoma)* (चित्र 6.23) का छोटा चौड़ा चिकना कवच जिसमें देह-चक्र बड़ा होता है मगर संसर्पिल छोटा-सा। *सिलिन्ड्रेला (Cylindrella)* (चित्र 6.24) के कवच में तो संसर्पिल दिखता तक नहीं है। लिम्पेटों (फिसुरेला, *Fissurella*) (चित्र 6.25) में भी एक चौड़ा शंक्वाकार कवच होता है जिसमें चौड़ा छिद्र होता है मगर प्रकटत: कोई संसर्पिल नहीं होता। कौडियों में सिकता है और यहां गया है तथा उनके क्रमिक चक्र पुराने चक्रों को ढंक लिया...

तक कि वह ह्रासित भी हो सकता है और अंततः वयस्क में विलीन भी हो गया हो सकता है जैसे कि न्यूडिब्रैंकों में।

कवच की संरचना में मूलतः एक बाहरी पेरिऑस्ट्रैकम (periostracum) तथा कम-ज़्यादा संख्या में भीतरी कैल्सियमी परतें बनी होती हैं। मगर कवच की संघटना में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों दृष्टि से बहुत विविधता पायी जाती है। पेरिऑस्ट्रैकम घिस-घिस कर उतरता जाता है या जब कवच प्रावार के भीतर बंद होता है तब वह पूर्णतः अनुपस्थित तक हो सकता है। भीतरी परतों की संख्या एवं उनकी संघटना में भी अंतर पाए जाते हैं; मूलतः वे अधिकतर कैल्सियम कार्बोनेट की बनी होती हैं परंतु वे या तो केल्साइट प्रकार की होती हैं या ऐरेगोनाइट प्रकार की, जिनमें वे एक-दूसरे से क्रिस्टलीय गुणधर्मों में भिन्न होती हैं। कैल्सियम कार्बोनेट अक्रिस्टलीय (amorphous) रूप में भी पाया जा सकता है।

चित्र 6.22 : *ट्यूरीटेला*।

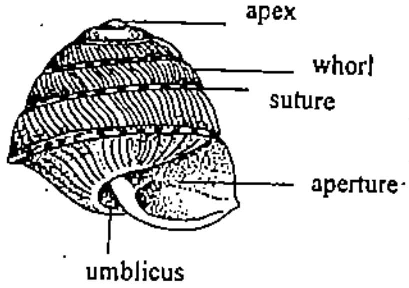

चित्र 6.23 : *लाजोमा*।

चित्र 6.24 : *सिलिन्ड्रेला*।

चित्र 6.25 : *फ़िसुरेला*।

कवच का रंग अनेक प्रकार के वर्णकों के द्वारा होता है जैसे कि विभिन्न पिर्रोल, मिलैनिन, पौरफ़ाइरिन, आदि के द्वारा। ये रंग या तो मौलस्कों द्वारा अपने आहार में से प्राप्त किए हुए होते हैं या फिर स्वयं उनके ही उपापचयी उत्पाद होते हैं जिन्हें शरीर से बाहर निकाल फेंकने की एक विधि के रूप में इन्हें कवच में को स्रवित कर दिया जाता है। उच्चतर गैस्ट्रोपोडों में क्रोमोप्रोटीन होते पाए जाते हैं।

गैस्ट्रोपोडों का पाद एक चपटा रेंगने वाला तलवा होता है जो नानाविध अधःस्तरों पर संचलन के लिए अनुकूलित होता है। पाद का तलवा सिलियायुक्त होता है तथा पाद में स्थित ग्रंथि कोशिकाओं से श्लेष्म (म्यूकस) का स्रवण होता है जिसके ऊपर ये प्राणी चलते जाते हैं। घोंघों के चलने में पाद में पेशी संकुंचन की एक लहर चलती जाती है जो उन्हें आगे-आगे को चलाती जाती है। बिलकारी उदाहरणों में पाद एक हल तथा लंगर जैसा कार्य करता है। लिम्पेटों, ऐबेलीनों तथा स्लिपर घोंघों में चट्टानों तथा कवचों से चिपकने-लटकने के लिए अनुकूलन होते हैं। टेरोपोडों (pteropods) (समुद्री तितलियां) में पाद से रूपांतरित होकर फ़िन-सरीखे कारगर तरण-अंग बन गए होते हैं (चित्र 6.26); यह वर्ग वेलापवर्ती गैस्ट्रोपोडों का है।

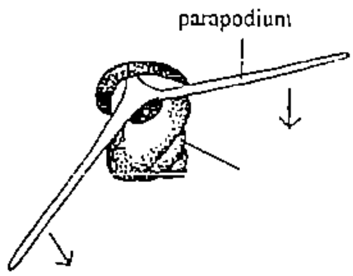

चित्र 6.26 : समुद्री तितलियां।

गैस्ट्रोपोडों के गिल (टेनिडिया) या तो एककंकती हो सकते हैं या द्विकंकती। अधिकतर गैस्ट्रोपोडों में केवल एक टेनिडियम होता है। गैस्ट्रोपोडों में शामिल थल-घोंघों का प्रावार बहुत ज़्यादा रक्तवाहिनी युक्त हो जाता है तथा गैस-विनिमय के उद्देश्य के लिए एक फेफड़ा बन जाता है।

गैस्ट्रोपोडों में तरह-तरह का अशन-स्वभाव होता पाया जाता है। इनमें ये सब प्रकार पाए जाते हैं - शाकभक्षी, मांसभक्षी, अपमार्जक, अवसाद भोजी, निलम्बन-भोजी तथा परजीवी। मरोड़ के फलस्वरूप जठर 180° घूम गया होता है और ऐसा होने के कारण ग्रसिका जठर के पश्च सिरे पर जुड़ती प्रकट होती है तथा आंत्र जठर के अग्र सिरे से निकलती दिखायी देती है (चित्र 6.27)। अनेक निलम्बन-एवं अवसाद-भोजियों में क्रिस्टलीय स्टाइल नामक एक संरचना होती है जिससे ऐमाइलेज़ एंज़ाइम का स्राव होता है। इस क्रिस्टलीय स्टाइल के विषय में आप और अधिक विस्तार से द्विकपाटी (बाइवैल्व) मौलस्कों के अंतर्गत पढ़ेंगे।

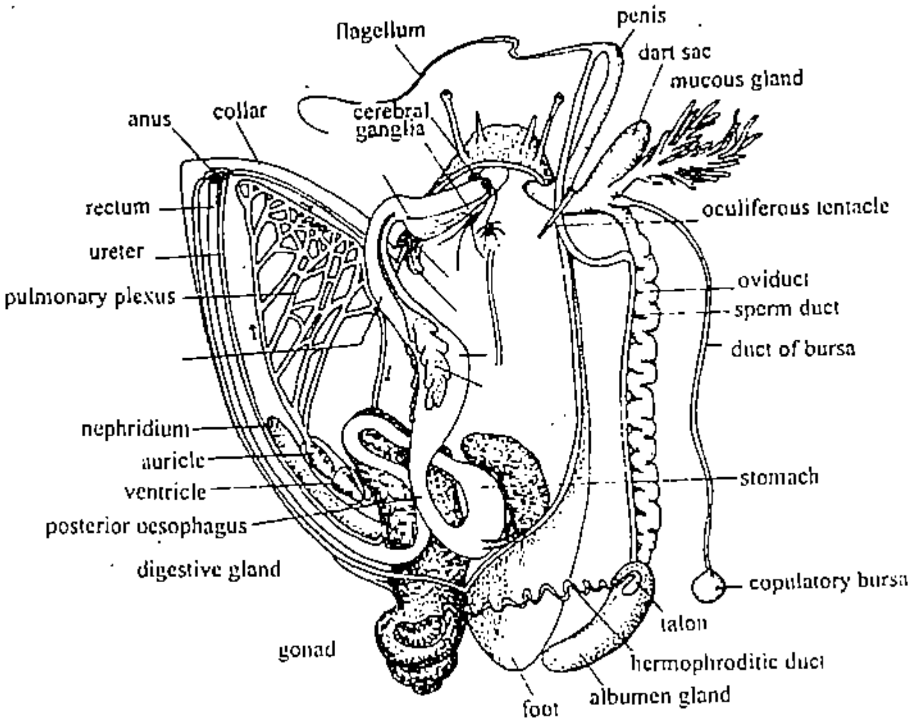

चित्र 6.27 : थल घोंघे की आंत्र।

हृदय अंतरंग संहति में अग्रत: पड़ा होता है। अधिसंख्य गैस्ट्रोपोडों में दाहिना अलिंद ह्रासित अथवा अनुपस्थित तक होता है। निलय में से एक अग्र महाधमनी तथा एक पश्च महाधमनी निकलती हैं। अग्र महाधमनी शीर्ष तथा पाद में रक्त सप्लाई करती है तथा पश्च महाधमनी अंतरंग संहति में। पाद तथा शीर्ष क्षेत्र में रक्त वापिस एक साइनस (कोटर) में एकत्रित होता है। रक्त गुर्दों में से जाने के बाद श्वसन संरचनाओं में प्रवेश करता है (चित्र 6.28)।

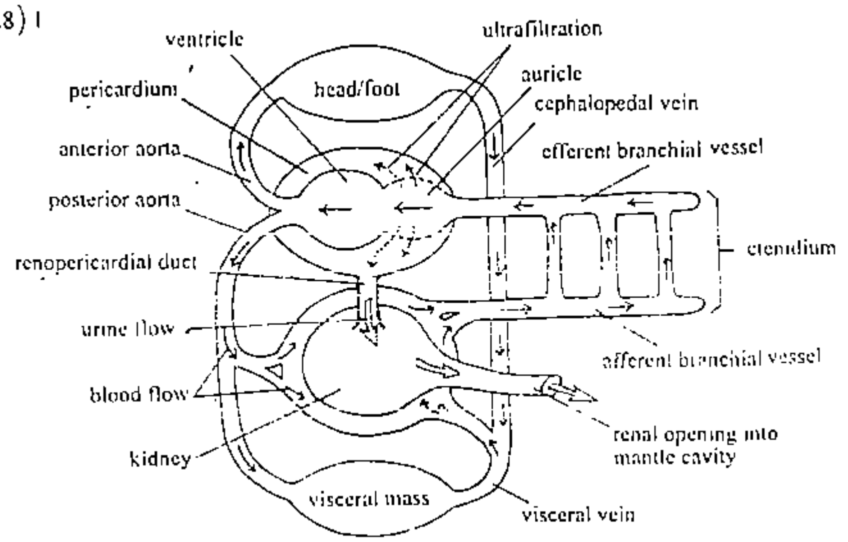

चित्र 6.28 : गैस्ट्रोपोडा में रक्त संचरण।

तंत्रिका-तंत्र में एक जोड़ी प्रमस्तिषक गैंग्लिया होते हैं जो ग्रसिका के ऊपर स्थित होते हैं। आंखों, स्पर्शकों, स्टैटोसिस्टों तथा मुख-गुहा में पहुंचने वाली तंत्रिकाएं प्रमस्तिष्क गैंग्लियॉन से निकलती हैं। अन्य गैंग्लिया हैं - पार्श्व (प्लूरल), पाद, मुख-गुहा, भित्तीय (पेराइटल) तथा अंतरंग गैंग्लिया जो अपने-अपने संबद्ध अंगों में तंत्रिका पहुंचाते हैं, इन सबके संयोजी तथा समयोजी चित्र 6.15 में दर्शाए गए हैं।

गैस्ट्रोपोड उभयलिंगी हो सकते हैं अथवा प्रथकलिंगी और उनमें एक अयुग्मित गोनड पाया जाता है। निषेचन अधिकतर भीतरी होता है। निषेचित अण्डे कम या ज़्यादा संख्या में अंड-केप्सूलों में बंद किए हुए हो सकते हैं। वेलिजर लार्वा पाया जा सकता है या फिर लार्वा अवस्था अंड-केप्सूल के भीतर ही व्यतीत हो सकती है जिससे प्राणी बच्चों के रूप में बाहर आते हैं।

उदाहरण :

हेलियोटिस (haliotis), (चित्र 6.29); *फिशुरेला (Fissurella)*, *पैटेला (Patella)*, *ट्रोकस (Trochus)*, *नेरिटा (Nerita)*, ये सभी आदिम उदाहरण है; *पाइला (Pila)*, *क्रपिड्यूला (Crepidula)*, *स्ट्रोम्बस (Strombus)* (चित्र 6.30); *म्यूरेक्स (Murex)*, (चित्र 6.31); *न्यूसेला (Nucella)*, ये सब उपक्लास प्रोज़ोब्रैंकिया के उदाहरण हैं। इनमें मरोड़ होता पाया जाता है, मगर गिल होते हैं।

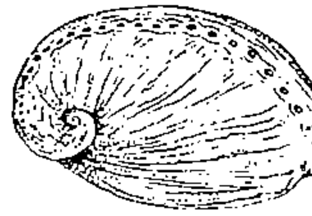

चित्र 6.29 : *हेलियोटिस*।

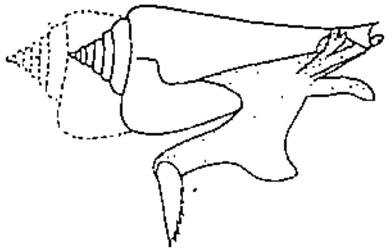

चित्र 6.30 : *स्ट्रोम्बस*।

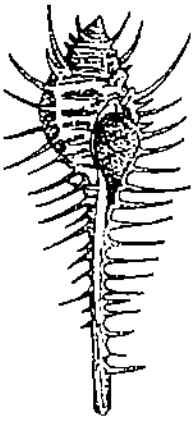

चित्र 6.31 : *म्यूरेक्स*।

उपक्लास ओपिस्थोब्रैंकिया में ऐसे गैस्ट्रोपोड होते हैं जिनमें विमरोड़ हो गया है। अनेक स्पीशीज़ में कवच ह्रासित हो गया है या वह होता ही नहीं, तथा एक ह्रासित प्रावार-गुहा होती है। विमरोड़ के कारण अनेक उदाहरणों में द्विपार्श्व सममिति पुन: द्वितीयक रूप में प्राप्त हो गयी है। इनके उदाहरण हैं - *ऐक्टियॉन (Acteon)*, *हाइडैटिना (Hidatina)* (चित्र 6.32), *ओडोस्टोमिया (Odostomia)*, जो एक बाह्यपरजीवी ओपिस्थोब्रैंक है, जिसमें मुख-गुहा के भीतर एक रेडुला के बजाय एक सुई के समान स्टाइलेट होता है जिसे परपोषी के अंगों में घुसा कर आहार भीतर खींच लिया जाता है; *ऐप्लीसिया (Aplysia)* (चित्र 6.33) एक बड़ा ओपिस्थोब्रैंक होता है जिसे सामान्यत: "सी हेयर" (समुद्री शशक) कहा जाता है, इसमें इसकी बाहरी आकारिकी में द्विपार्श्व सममिति पायी जाती है। कवच बहुत ज़्यादा ह्रासित हो गया होता है तथा प्रावार के भीतर छिपा होता है। गिल तथा प्रावार गुहा दोनों उपस्थित होते हैं। प्राणी के पाद से प्रसार निकले होते हैं जिन्हें पार्श्व परापाद कहते हैं। *प्ल्यूरोब्रैंकस (Pleurobranchus)* (चित्र 6.34), *क्लायो (Clio)*, *कैवोलाइना (Cavolina)*, (चित्र 6.35) : इनमें कवच होता है, परंतु पाद में से बड़े प्रसार निकले होते हैं जिन्हें परापाद (parapodia) कहते हैं, यही कारण है कि इन्हें टेरोपोड कहते हैं तथा सामान्य तौर पर ये समुद्री-तितलियां कहलाते हैं, *न्यूमोडर्मा (Pneumoderma)*,

क्लायोप्सिस (Cliopsis) (चित्र 6.36) बिना कवच वाले टेरोपोड हैं, इन जीवों में प्रावार-गुहा नहीं होती। इनमें परापाद-फिन नामक संरचनाएं संचलन में सहायता करती हैं, इन्हें सामान्यत: "समुद्री स्लग" कहा जाता है जिनमें प्रावार-गुहा तथा कवच दोनों ही नहीं होते। शरीर में द्वितीयक रूप में द्विपार्श्व सममिति प्राप्त हो गयी है। *डोरिस (Doris)* (चित्र 6.37) में गुदा के चारों ओर बने हुए द्वितीयक गिल होते हैं।

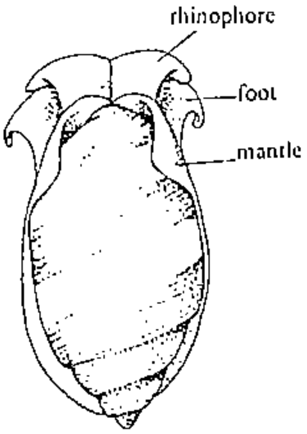

चित्र 6.32 : *हाइडैटिना*।

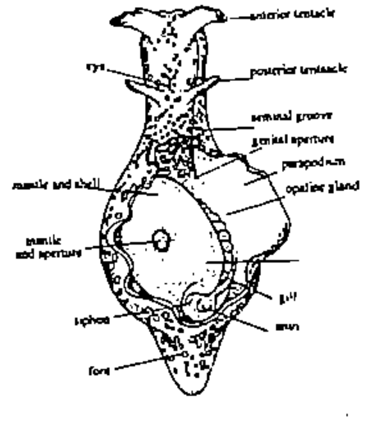

चित्र 6.33 : *ऐप्लीसिया*।

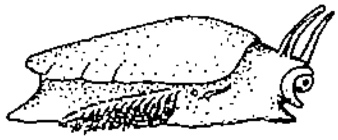

चित्र 6.34 : *प्ल्यूरोब्रैंकस*।

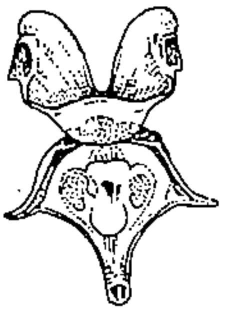

चित्र 6.35 : *कैवोलाइना*।

उपक्लास पल्मोनैटा ऐसे गैस्ट्रोपोड हैं जिनमें एक अलिंद तथा एक निलय होता है, इस वर्ग में अनेक थलवासी प्राणी आते हैं। थलीय जीवन के लिए उपयुक्त होने के वास्ते प्रावार-गुहा में रक्तवाहिकायन हो जाता है ताकि गैस-विनिमय वायु में तथा द्वितीयक रूप में जल में भी हो सके।

उदाहरण इस प्रकार है : *ऑन्किडियम (Onchidium)* (चित्र 6.38), स्लग। अन्य पल्मोनेटों, जिनमें गुदा पार्श्वत: खुलती है, से भिन्न इनमें गुदा पश्चत: खुलती है। *लिम्नीया (Lymnea)*, *प्लैनॉर्बिस (Planorbis)* दोनों अलवणजलीय प्राणी हैं। इनमें आंखे एक जोड़ी शीर्ष-स्पर्शकों के ऊपर बनी होती हैं। विशालकाय अफ्रीकी घोंघा *एकैटिना (Achatina)*, *हेलिक्स (Helix)*, *लाइमैक्स (Limax)* स्थलीय पल्मोनेट होते हैं जिनमें दो जोड़ी शीर्ष-स्पर्शक होते हैं। आंखे ऊपरी स्पर्शकों के सिरे पर बनी होती हैं।

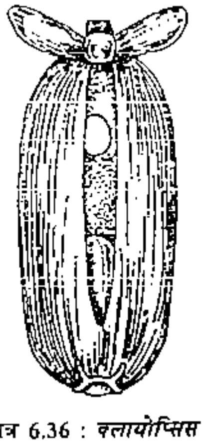

चित्र 6.36 : *क्लायोप्सिस*।

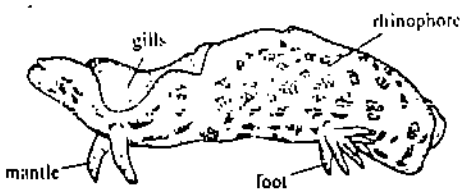

चित्र 6.37 : *डोरिस*।

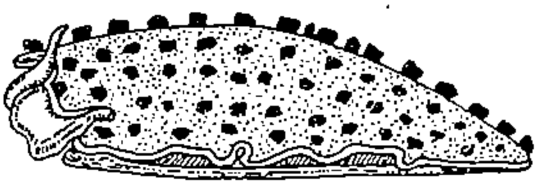

चित्र 6.38 : *ऑन्किडियम।*

6.2.5 क्लास बाइवैल्विया

शरीर एक द्विपालियुक्त प्रावार के भीतर होता है और ये दोनों मिलकर एक द्विकपाटी कवच के भीतर बंद होते हैं, शीर्ष हासित होता है : मुख में दो लेबियल पैल्प होते हैं लेकिन रेडुला नहीं होता, पाद फ़नाकार (wedge-shaped), गिल प्लेटनुमा, सेक्स पृथक, ट्रोकोफ़ोर तथा वेलिजर लार्वे।

क्लास बाइवैल्विया को *पीलेसिपोडा (Pelecypoda)* अथवा *लेमेलिब्रैंकिआ (Lamellibranchia)* भी कहते हैं। इसमें *सीपी (clam)*, शुक्तियां (oysters) तथा मसेल (mussel) आते हैं। इन मौलस्कों का शरीर पार्श्वत: सम्पीडित होता है तथा कवच में दो कपाट होते हैं जो पृष्ठत: हिंज-संधित होते हैं। कवच देह को पूरी तरह ढके रहता है। प्राणी का पाद भी पाश्वर्त: संपीडित होता है। मौलस्कों में सर्वाधिक स्थान वाली प्रावार गुहा बाइवैल्वों में ही पायी जाती है। प्रावार-गुहा के भीतर बंद गिल गैस-विनिमय के अंगों का कार्य तो करते ही हैं, साथ ही ये आहार संग्रहण उपकरण का भी कार्य करते हैं क्योंकि इनसे बनने वाली सिलियरी जलधाराएं फ़िल्टर-अशन में सहायता करती हैं। बाइवैल्वों में कोई स्पष्ट शीर्ष अथवा रेडुला नहीं होता। अधिसंख्य बाइवैल्व अलवण जलाशयों अथवा समुद्र में उनकी तली में बिल बनाते हुए घुसे होते हैं तथा उनका शरीर इस प्रकार के आवास के लिए उपयुक्त रूप में रूपांतरित हुआ होता है। मगर कई अन्य ऐसे उदाहरण भी हैं जो अन्य प्रकार के आवासों में भी रहने लग गए हैं।

बॉक्स 6.3

बाइवैल्वों का कवच दो लगभग समान अण्डाकार कपाटों का बना होता है (चित्र 6.39)। प्रत्येक कपाट में एक पृष्ठ उभार बना होता है जिसे *अम्बो (umbo)* कहते हैं। यह भाग कवच का सबसे पुराना भाग होता है, और इसके गिर्द जो रेखाएं बनी होती हैं वे कवच की वृद्धि का संकेत देती हैं। दोनों कपाटों को बंद रखने का कार्य एक जोड़ी अभिवर्तनी पेशियां (adductor muscles) करती हैं। दोनों कपाट पृष्ठ दिशा में एक हिंज-स्नायु द्वारा संलग्न एवं संधित होते हैं। हिंज-स्नायु एक लचीली प्रोटीन पट्टी होती है जो अभिवर्तनी पेशियों के शिथिल होने की दशा में कपाटों को खोल देती है। कवच के ऊपर कटक और खांचे बनी होती हैं जिनके द्वारा कवच कसकर बंद हो जाता है।

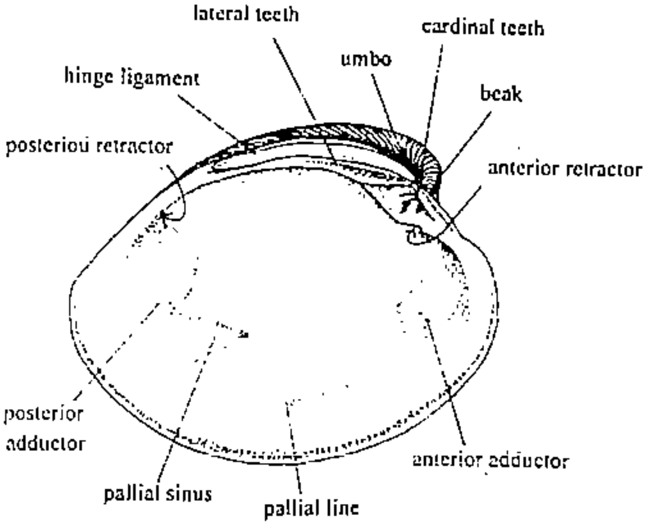

चित्र 6.39 : बाइवैल्व के बाएं कपाट की अंतर सतह।

बाइवैल्व कवच की संरचना एवं संघटन मूलतः मोलस्कन प्रकार की ही होती है, जैसी कि पहले ही वर्णन की जा चुकी है, जिसमें पेरिऑस्ट्रैकम और कैल्सियम कार्बोनेट की परतें बनी होती हैं। कैल्सियमी परतें ऐरेगोनाइट तथा कैल्साइट की बनी होती हैं। ये पदार्थ प्रिज्मों एवं चादरों के रूप में बने होते हैं जो एक कार्बनिक पदार्थ के मेट्रिक्स (आधात्री) में पड़े होते हैं, और इन्हें नेक्रे (nacre) अथवा मुक्ताभ का नाम दिया जाता है। आकृति, रंग तथा सतही रूप-सज्जा में कवचों में बहुत विविधता पायी जाती है। आकार में ये 1 मिमी. से लेकर 1 मी. तक के होते हैं।

उत्तम गुणवत्ता तथा व्यापारिक महत्व के मोती तब बनते हैं जब कोई बाहरी पदार्थ, जैसे की बालू का कण अथवा कोई परजीवी, कवच तथा प्रावार के बीच आ जाता है और उसके ऊपर नेके यानी मुक्ताभ की संकेंद्रित परतें एक के ऊपर एक जमती जाती हैं। मोती बनाने वाली शुक्तियां *पिंक्टाडा मार्गेरिटिफ़ेरा (Pinctada margaritifera)* तथा *पिंक्टाडा मर्टोसी (Pinctada mrtorsi)* सर्वोत्तम गुणवत्ता के प्राकृतिक मोती बनाती हैं। शुक्तियों में कृत्रिम तरीके से प्रेरण करके भी मोती बनाए जा सकते हैं।

बाइवैल्वों का आकार 2 मि मी लम्बे से लेकर विशालकाय तक हो सकता है जैसे कि एक मीटर से भी ज़्यादा लम्बा *ट्राइडैक्ना (Tridacna)*। कवच के भीतरी सतह पर जहां प्रावार संलग्न होता है वहां एक रेखा का चिन्ह होता है जिसे *पेलियल रेखा* कहते हैं।

बाइवैल्वों ने अपने आप को फ़िल्टर-अशन के लिए अनुकूलित कर लिया है। जल सामान्यतः प्रावार-गुहा में पश्च दिशा पर अधरतः अंतःधारा साइफ़न (incurrent siphon) से प्रवेश करता है और प्रावार-गुहा में से पश्चतः पृष्ठ दिशा में बने बाह्यधारा साइफ़न (excurrnt siphon) में से निकलता हुआ बाहर चला जाता है। आदिम बाइवैल्वों में एक जोड़ी द्विकंकती गिल पश्च-पार्श्व दिशा में बने होते हैं (चित्र 6.40)। इन प्राणियों में मुंख के सीमांत लम्बे हो जाते हैं और संस्पर्शक नामक संरचनाएं बनाते हैं। प्रत्येक स्पर्शक के साथ एक बड़ा वलन होता है जो दो पल्लों का बना होता है, इस वलन को *लेबियल पैल्प* कहते हैं। उच्चतर बाइवैल्वों में गिल फिल्टरों का काम करते हैं तथा गिल के सिलिया एक धारा पैदा करते हैं जो श्लेष्म में फंसे आहार-कणों का मुख पैल्पों तथा मुख में को ले जाती है।

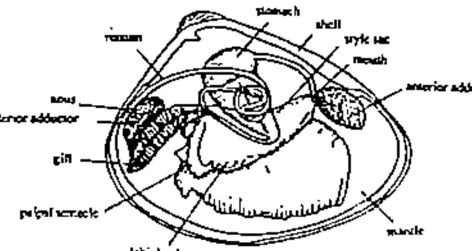

चित्र 6.40 : बाइवैल्व की आंतरिक संरचना

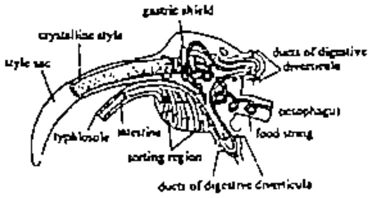

चित्र 6.40a : क्रिस्टलीय स्टाईला

लैमेलिब्रैंकों के जठर (चित्र 6.40a) में एक संरचना *क्रिस्टलीय स्टाइल* होती है जो एक संहत एवं लम्बी जिलेटिनी शलाखा के रूप में होती है, इससे एमाइलेज़ जैसे एंज़ाइमों का स्राव होता है। हृदय तीन-कक्षीय होता है और वह मलाशय को घेरता हुआ वलनित होता है, तथा इस हृदय को घेरती हुई परिहृद गुहा होती है। इस प्रकार परिहृद-गुहा हृदय को तथा पाचन-पथ के पश्च भाग के एक अंश को घेरे रहती है। गिलों का कार्य गैस-विनिमय का भी है (चित्र 6.41)। युग्मित नेफ़्रिडिया अथवा वृक्क उत्सर्गी अंग होते हैं। ये परिहृद-गुहा के नीचे तथा गिलों के ऊपर स्थित होते हैं। तंत्रिका-तंत्र द्विपार्श्वतः समभित होता है, इसमें तीन जोड़ी गेंगलिया होते हैं जो संयोजकों तथा समयोजियों द्वारा जुड़े होते हैं (चित्र 6.42)। बाइवैल्वों में संवेदी अंगों के रूप में स्टैटोसिस्ट, नेत्रक तथा ऑस्फ्रेडियम पाए जाते हैं। लिंग अधिकतर बाइवैल्वों में पृथक होते हैं लेकिन कुछ स्पीशीज़ उभयलिंगी भी पायी गयी हैं। परिवर्धन में ट्रोकोफ़ोर तथा वेलिजर अवस्थाएं होती पायी जाती हैं (चित्र 6.43)। कुछ क्लेमों (सीपियों) में *ग्लोकीडियम (glochidium)* लार्वा अवस्था भी होती है (चित्र 6.44)।

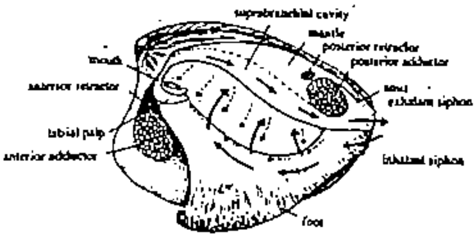

चित्र 6.41 : गैस विनियम के लिए जल के प्रवेश तथा निकासी का पथ।

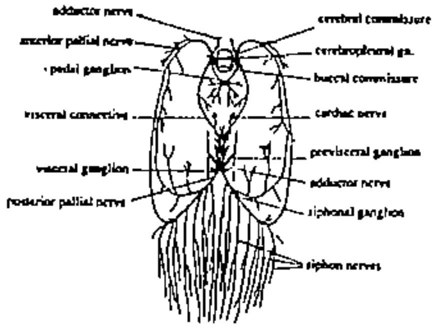

चित्र 6.42 : वाइवेल्व का तंत्रिका तंत्र।

उदाहरण : *न्यूकुला,* इसमें कवच के कपाट समान होते हैं तथा उनमें हिंज के सहारे-सहारे एक पंक्ति दांतों की बनी होती है। *आर्का (Arca)* (चित्र 6.45), *मिटिलस (Mytilus)* (चित्र 6.46), *पिन्ना (Pinna)*, *टेरिया (Pteria)*, "लेखनी शंख" तथा "पंखयुक्त शक्तियां"। *पेक्टेन (Pecten)* (चित्र 6.47), (स्कैलप), *स्पांडाइलस (spondylus)* (कंटीली शुक्ति), *ऑस्ट्रीया (Ostrea)* (शुक्ति), *प्लैकुमा (Placuma)* ("विंडो-पेन" सीपी), *लाइमा (Lima)*, *यूनियो (Unio)*, *लैमेलिडेन्स (Lamellidens)*, अलवणजलीय उदाहरण है, *सॉलेन (Solen)* (चित्र 6.48), *एंटोवाल्वा (Entovolva)*, ये दो बिलकारी उदाहरण है जिनमें पतले कवच तथा सुविकसित साइफन होते हैं, *माया (Mya)* (सीपी), *टेरेडो (Teredo)*, *बैंकिया (Bankia)* (ये लकड़ी में छेद करने वाले उदहारण हैं), *फोलास (Pholas)*।

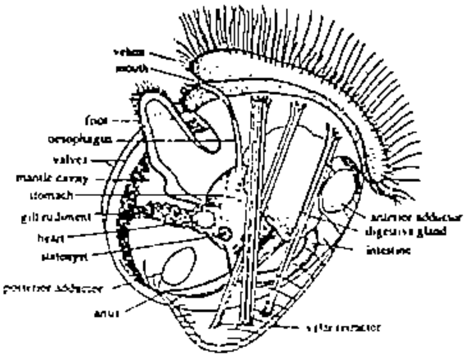

चित्र 6.43 : *वेलिजर लार्वा।*

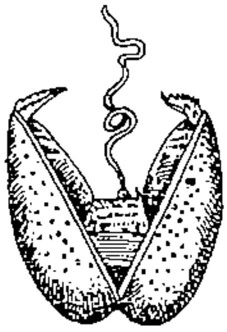

चित्र 6.44 : *ग्लोकीडियम।*

चित्र 6.45 : *आर्का*।

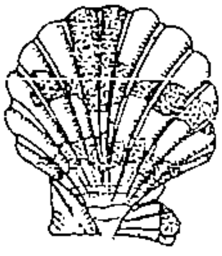

चित्र 6.46 : *मिटिलस*।

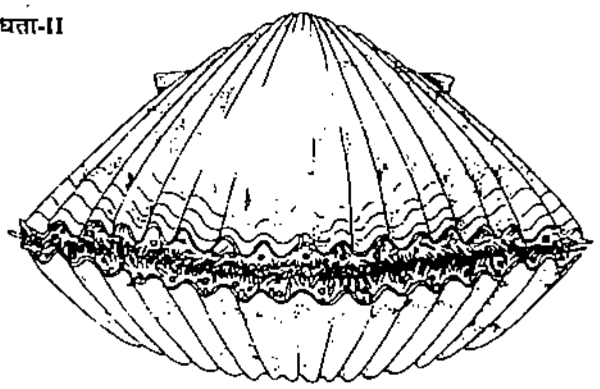

चित्र 6.47 : पेक्टेन।

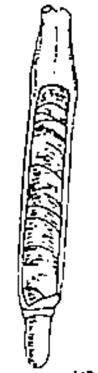

चित्र 6.48 : सॉलेन।

6.2.6 क्लास स्कैफ़ोपोडा

शरीर एक एकल गजदंतरूपी कवच के भीतर बंद होता है जिसके दोनों सिरे खुले होते हैं, पाद शंक्वाकार होता है; मुख में रेडुला होता है तथा स्पर्शक होते हैं; शीर्ष नहीं होता; गिल नहीं होते; सेक्स पृथक; ट्रोकोफ़ोर लार्वा।

क्लास स्कैफ़ोपोडा में समुद्री बिलकारी उदाहरण आते हैं जिन्हें सामान्यत: गजदंत-शंख (tusk shells) अथवा दंत-शंख कहते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि इनकी शक्ल हाथीदांत की तरह दिखायी देती है, इन कवचों का साइज़ आमतौर से औसतन 3 से 6 सेमी तक अलग-अलग होता है (चित्र 6.49a)। कवच अधिकतर सफेद या पीले होते हैं। नली के दोनों सिरे खुले होते हैं।

स्कैफ़ोपोडों का शरीर लम्बा होता है तथा शीर्ष और पाद कवच के अपेक्षाकृत बड़े अग्र छिद्र से बाहर को निकले होते हैं (चित्र 6.49b)। प्रावार अंतरंग को ढकता हुआ एक नलकी के रूप में होता है। स्कैफ़ोपोडा में एक बड़ी प्रावार-गुहा होती है जो अधर सतह की पूरी लम्बाई में फैली होती है। गिल नहीं होते तथा प्रावार की सतह श्वसन संरचना का कार्य करती है। अपनी ही प्रकार के अलग धागे-जैसे स्पर्शक जिन्हें *केप्टेक्यूला (captacula)* कहते हैं और जिनके अंतिम सिरों पर सिलियायुक्त घुंडियां होती हैं, आहार पकड़ने में सहायता करते हैं। इनमें प्ररूपी मौलस्क प्रकार का तंत्रिका-तंत्र पाया जाता है जिसमें प्रमस्तिष्क पाद, पार्श्व तथा अंतरंग गैंगलिया होते हैं। आंखें, संवेदी स्पर्शक तथा ऑस्फ्रैडिया नहीं होते। एक जोड़ी नेफ्रिडिया उत्सर्गी अंगों का कार्य करती हैं। सेक्स पृथक-पृथक। परिवर्धन में एक स्वतंत्र तैरने वाला ट्रोकोफ़ोर तथा द्विपार्श्वत: सममित वेलिजर लार्वा होता है (चित्र 6.49c), उदाहरण *डेंटेलियम (Dentalium), केडुलस (Cadulus)*।

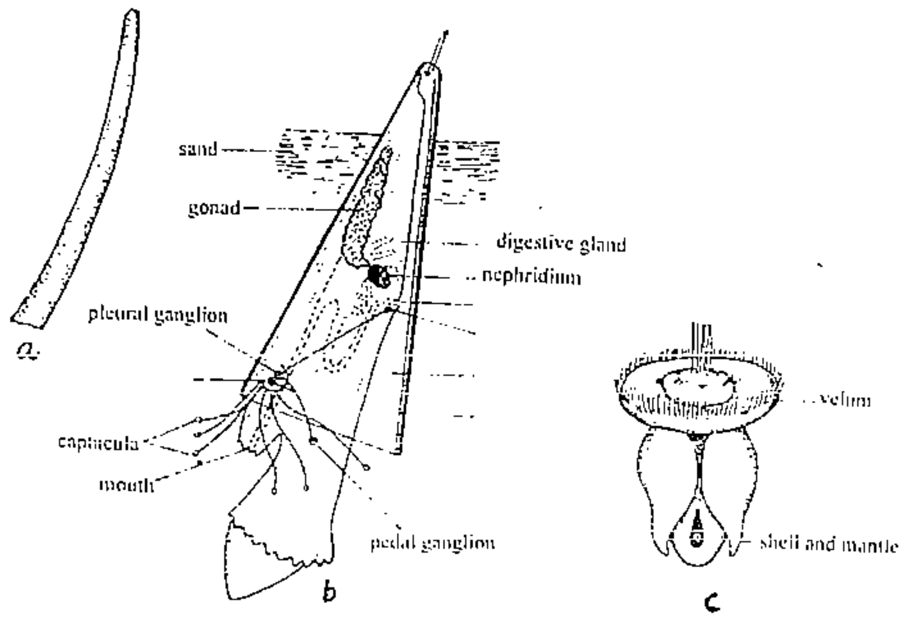

चित्र 6.49a : डेंटेलियम का कवच b) डेंटेलियम की संरचना c) वेलिजर लार्वा

6.2.7 क्लास सेफ़ैलोपोडा

कवच ह्रासित अथवा अनुपस्थित मगर *नौटिलस (Nautilus)* में होता है जो एक अपवाद है, शीर्ष सुविकसित जिसमें सुविकसित आंखें होती हैं, शीर्ष पर स्पर्शक होते हैं, पाद का रूपांतरण होकर साइफ़न बन गया है, सुविकसित मस्तिष्क जिसमें गैंग्लिया समेकित होते हैं, सेक्स पृथक, परिवर्धन सीधा।

स्कैफोपोडा समस्त मौलस्का में सबसे अधिक सक्रिय तथा अत्यधिक सुसंघटित हैं जो वेलापवर्ती एवं स्वच्छंद जीवन के लिए अनुकूलित हैं। इस वर्ग में कटलफ़िश (चित्र 6.50a), स्क्विड, ऑक्टोपोड (चित्र 6.50b) तथा *नौटिलस* (चित्र 6.50c) आते हैं। शरीर पृष्ठ-अधर अक्ष में लम्बा हो गया होता है और वास्तव में यह अक्ष बदल कर अग्र-पश्च अक्ष बन गया है। प्रावार-गुहा अधरीय होती है। शीर्ष सामने की ओर को बढ़ गया है जिस पर अग्र क्षेत्र में बड़े आकार के परिग्राही स्पर्शकों अथवा भुजाओं का एक किरीट बना होता है। ये स्पर्शक पाद के अग्र भाग के समजात होते हैं। सेफ़ैलोपोड औसतन 6 से 70 सेमी के बीच अलग-अलग लम्बाई के होते हैं। 15 मीटर से अधिक के विशालकाय उदाहरण भी पाए गए हैं *(आर्केट्यूथिस, Archeteuthis)*। अधिकतर सैफ़ैलोपोडों में संचलन तैरने के प्रकार का होता है। तैरने की क्रिया शरीर के जेट-प्रणोदन के द्वारा होती है, इसमें जल को प्रावार-गुहा में से फ़नल (कीप) नामक अधर नलिकीय संरचना में से तेजी से बाहर को निकाला जाता है, फ़नल पाद का रूपांतरित भाग होती है। बाहरी कवच केवल *नौटिलस* की चार स्पीशीज़ में पाया जाता है, जो हिंद-पश्चिम प्रशांत महासागर में पायी जाती हैं। अन्य जीनसों में कवच का सर्वथा अभाव होता है। सेफ़ैलोपोड गैस-भरे कवचों का उपयोग करके जल में उत्प्लावन बनाए रखते हैं।

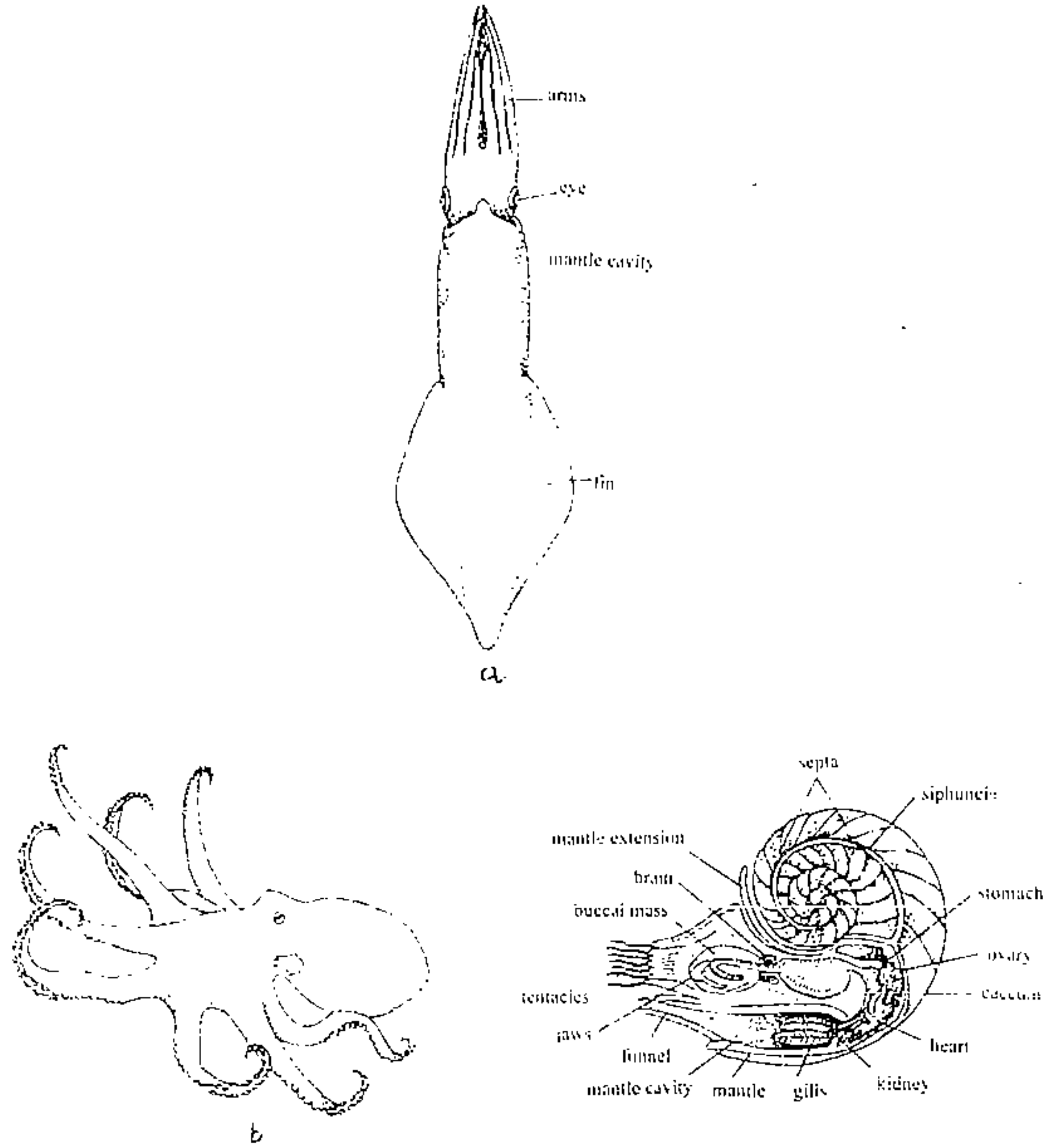

चित्र 6.50 : कुछ सेफ़ैलोपोडा a) कटलफिश सीपिया b) ऑक्टोपस c) नौटिलस

बॉक्स 6.4

नौटिलस का कवच समतल-सर्पिल होता है। भीतर चक्र अंतिम दो चक्रों से ढके होते हैं। कवच अनुप्रस्थ पटों द्वारा विभाजित रहता है तथा प्राणी अंतिम कक्ष में रहता है। पटों में केंद्र पर एक सूराख होता है जिसमें से एक साइफंकल (siphuncle) गुज़रता है। साइफंकल से गैस का स्राव होता है जो कक्षों में भर जाती है। इससे कवच उत्प्लावी हो जाता है। कवच में एक बाहरी मोती समान सफेद चिकनी परत होती है जो एक कार्बनिक मैट्रिक्स में गड़े कैल्सियम कार्बोनेट के प्रिज़्मों की बनी होती है। एक भीतरी मुक्ताभ परत भी होती है।

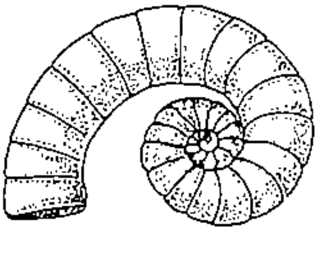

चित्र 6.51 : स्पाइरूला का कवच।

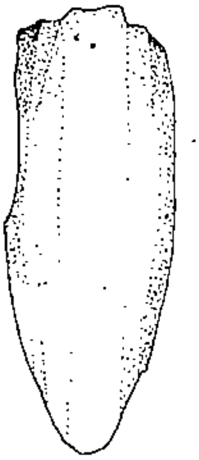

चित्र 6.52 : सीपिया का कवच।

स्पाइरूला (Spirula) नामक कटलफ़िश (चित्र 6.51) में भीतरी कवच कुंडलित होता है। *लोलाइगो (Loligo) और सीपिया* नामक स्क्विड में कवच ह्रासित होकर एक "लेखनी" बन गया है (चित्र 6.52)।

सेफ़ैलापौड मांसभक्षी होते हैं और अपने शिकार को स्पर्शकों अथवा भुजाओं द्वारा पकड़ते हैं। स्क्विडों तथा कटलफ़िशों में दस भुजाएं होती हैं जिनमें से एक जोडी ज़्यादा लम्बी होती है, इन्हें स्पर्शक कहते हैं। ऑक्टोपोडों में आठ भुजाएं होती हैं। प्रत्येक भुजा की भीतरी सतह पर आसंजी डिस्कें बनी होती हैं जो शक्तिशाली चूषकों का कार्य करती हैं। *ऑक्टोपस* मे चूषक वृंतयुक्त होते हैं। मुख-गुहा में एक रेडुला तथा एक जोड़ी चोंच-सरीखे जबड़े होते हैं। दो जोड़ी लार-ग्रंथियां मुख-गुहा में खुलती हैं (चित्र 6.53)। पाचन-ग्रंथियों में एक तो विसरित "अग्न्याशय" होता है और एक "यकृत"। गुदा का स्थान फ़नल के समीप होता है तथा उत्सर्गी अपशिष्ट बहिर्वाही जल धारा के साथ बाहर को निकाल दिए जाते हैं। श्वसन गिलों के द्वारा होता है। प्रावार-गुहा के भीतर परिसंचरित होता हुआ जल गिलों के लिए ऑक्सीजन का स्रोत होता है।

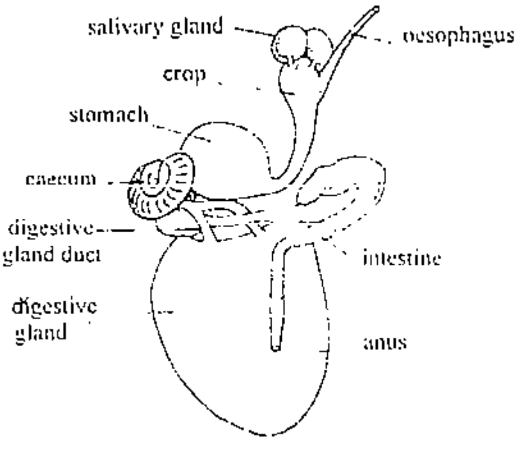

चित्र 6.53 : आक्टोपस का पाचन तंत्र।

नेफ्रिडिया उत्सर्गी अंग होते हैं (चित्र 6.54)। परिसंचरण-तंत्र सेफैलोपोडों में बंद प्रकार का होता है। इसमें एंडोथीलियम का अस्तर बनी हुई वाहिकाओं एवं कोशिकाओं का एक विस्तृत तंत्र पया जाता है जो कशेरूकियों से बहुत मिलता-जुलता होता है। हृदय त्रिकक्षीय होता है जिसमें दो अलिंद तथा एक निलय होता है (चित्र 6.55)। इनके अलावा एक जोड़ी गिल-हृदय (branchial heatrts) भी होते हैं जो र॰ त को गिलों में से प्रवाहित करते हैं। रक्त में हीमोसाएनिन वर्णक होता है जो ऑक्सीजन को गिलों से ले जाकर ऊतकों में पहुंचाता है।

तंत्रिका-तंत्र भी सुविकसित होता है जिसमें उच्च स्तर का शिरोभवन पाया जाता है। मस्तिष्क कदाचित समस्त अकशेरूकियों में सर्वाधिक विकसित है। यह मौलस्कों के सभी प्ररूपी गैंग्लिया के समेकन से बना है। इनके अलावा *भुजा-गैंग्लिया (branchial ganglia)* होते हैं जिनसे निकली हुई तंत्रिकाएं भुजाओं में जाती हैं, प्रत्येक पार्श्व पर प्रावार-भित्ति में एक *तारक (stellate)* गैंग्लियॉन होता है जिससे निकली तंत्रिकाएं प्रावार-पेशियों में जाती हैं। संवेदी अंगों में सुविकसित आंखें हैं जो मछलियों के बहुत की समान हैं, तथा स्टैटोसिस्ट्स एवं ऑस्फ्रेडिया होते हैं। शरीर की रंग-व्यवस्था क्रोमैटोफोरो नामक वर्णक कोशिकाओं के द्वारा होती है जो अध यावरण में मौजूद होते हैं। ये प्राणी तेजी से अपना रंग बदल लेते हैं और ऐसा करना इनमें आपसी संरचण का तरीका है। *नौटिलस* को छोड़ कर अन्य सेफैलोपोडों में एक बड़ी स्याही थैली (ink sac) होती है (चित्र 6.54) जिससे मिलैनिन वर्णकों का बना एक तरल अथवा स्याही जैसा स्राव निकलता है। स्याही-थैली मलाशय में को खुलती है। जब कभी प्राणी विक्षुब्ध होता है तब यह स्याही बाहरी पानी में को छोड दी जाती है। इस तरह स्याही के घने बादल से आक्रमणकारी प्राणियों अथवा परभक्षियों को भ्रम में डाल/कर यह स्वयं बच कर निकल भागता है।

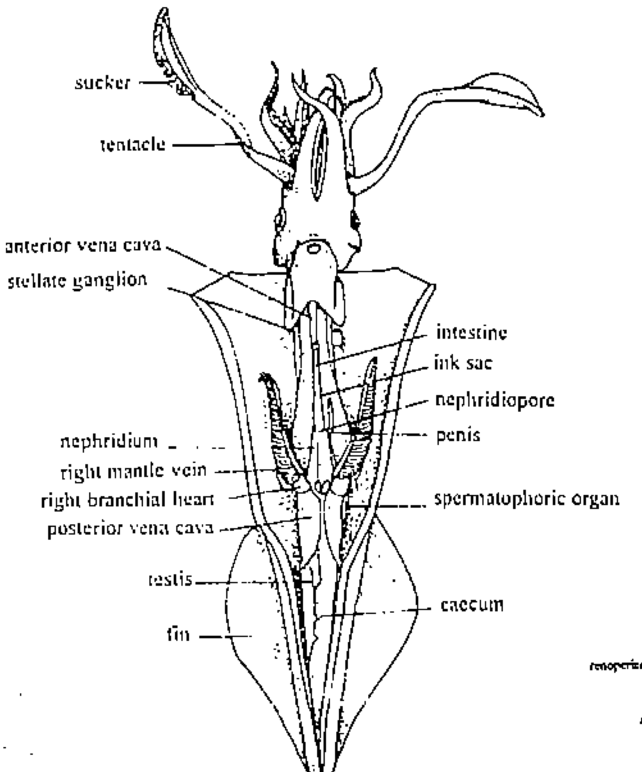

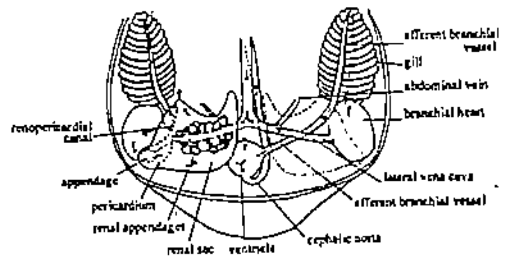

चित्र 6.54 : स्क्विड की आंतरिक संरचना। चित्र 6.55 : ऑक्टोपस का उत्सर्गी तथा परिसंचरण तंत्र।

सेक्स अलग-अलग होती हैं। शुक्राणु स्थानांतरण के लिए नर विशद शुक्राणुधर बनाता है। वयस्क नर की एक भुजा रूपांतरित होकर एक प्रवेशी अंग बन जाती है और उसे *हेक्टोकोटिलस (hectocotylus)* कहते हैं।

सेफैलोपोडों में तीन उपक्लास आते हैं : *ऐमोनॉयडीय (Amonoidea)*, *नौटिलॉयडीया (Nautiloidea)* तथा *कोलिऑइडिया (Coleoidea)*।

उपक्लास ऐमोनॉयडीया विलुप्त है तथा नौटिलॉयडीया में केवल एक ही जीवित जीनस *नौटिलस* बची है, शेष सभी विलुप्त हो चुकी हैं। अतः अधिकतर सेफ़ैलोपौड उपक्लास कोलिऑइडिया में ही आते हैं।

उदाहरण :

नौटिलस : इसमें एक कुंडलित बाहरी कवच होता है तथा अनेक पतले चूषकविहीन स्पर्शक होते हैं। गिल तथा नेफ़्रिडिया के दो-दो जोड़े होते हैं।

उपक्लास कोलिऑइडिया : इसमें जीवित तथा विलुप्त दोनों प्रकार के प्राणी आते हैं। भीतरी कवच कुछ उदाहरणों में होता है। अन्य में कवच ह्रासित हो सकता है अथवा अनुपस्थित हो सकता है। भुजाओं में चूषक होते हैं। एक-एक जोड़ी गिल तथा नेफ़्रिडिया होते हैं। सर्वप्रथम मिसिसिपियन काल से रिकार्ड किया गया है; इसमें पांच आर्डर है।

सीपिया (Sepia), स्पाइरूला : ये कटलफिशें हैं; आठ भुजाएं तथा दो स्पर्शक। कवच में पट बने होते हैं, कवच बहुत ही ह्रासित एवं भीतरी। कुछ उदाहरणों मे कवच नहीं होता : *आर्किट्यूथिस (Architeuthis)*, *लोलाइगो* : ये स्क्विड हैं : कवच एक चपटा ब्लेड-जैसा दिखायी पड़ता है जिसे "लेखनी" कहा गया है। लम्बा शरीर, 8 भुजाएं, तथा दो छोटे सूत्र। आठ भुजाएं एक जाल-जैसा बनाती हुई समेकित। *ऑक्टोपस* : आक्टोपसों में फ़िन होते हैं, तथा गिल नहीं होते। सभी उदाहरणों में शरीर गोल होता है तथा भुजाएं आठ होती हैं।

बोध प्रश्न 3

I. निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

(i) एक ओर गैस्ट्रोपौड तथा दूसरी ओर एप्लैकोफ़ोरा, मोनाप्लैकोफ़ोरा एवं पौलीप्लैकोफ़ोरा में कोई चार मुख्य अंतर बताइए।

(ii) मरोड़ का क्या अर्थ हैं?

(iii) मौलस्क कवच की संघटना क्या होती है?

(iv) पल्मोनेटों के श्वसन अंग का नाम बताइए।

(v) क्लास गैस्ट्रोपोडा के तीन उपक्लासों के नाम लिखिए।

(II) बताइए कि निम्न कथन सही (T) हैं या गलत (F) हैं :-

(A) क्लास बाइवैल्विया में घोंघे, स्लग, लिम्पेट तथा ऐवेलोन आते हैं। (T/F)

(B) बाइवैल्वों में, मौलस्का में सबसे छोटी प्रावार-गुहा होती है। (T/F)

(C) बाईवैल्वों के कवचों की भीतरी सतह चमकीली होती है। (T/F)

(D) बाइवैल्वों में फिल्टर-अशन विधियों के लिए अनुकूलन हो गया है। (T/F)

(E) बाइवैल्वों को क्रिस्टलीय स्टाइल से पाचन एंजाइम निकलते हैं। (T/F)

(F) क्रिस्टलीय स्टाइल एक लम्बी जिलेटिनी शलाका होती है। (T/F)

(G) बाइवैल्वों में फ़िल्टर-अशन क्रियाविधि में गिलों की अहम भूमिका होती है। (T/F)

(H) सेफ़ैलोपोडों के रक्त में हीमोसाएनिन होता है। (T/F)

(I) सेफ़ैलोपोडों में शेष सभी अकशेरूकियों की अपेक्षा सर्वाधिक विकसित तंत्रिका-तंत्र होता है। (T/F)

(J) बाइवैल्वों के परिवर्धन में एक ट्रोकोफ़ोर तथा एक वेलिजर लार्वा होते हैं। (T/F)

III. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :

(A) गजदंत कवच .... क्लास में आते हैं।

(B) .... नामक संरचनाएं स्कैफ़ोपोडों के स्पर्शक होते है जिनके अंतिम सिरों पर एक सिलियायुक्त घुंडी बनी होती है।

(C) नौटिलॉइडिया उपक्लास के अंतर्गत .... ही एक मात्र जीवित जीनस आती है।

(D) कुछ सेफ़ैलोपोडों में .... से भरे कवच होते हैं जिससे जल के भीतर उनकी .... बनी रहती है।

(E) सेफ़ैलोपोडों में एक जोड़ी .... हृदय, रक्त को गिलों में से प्रवाहित करते हैं।

(F) सेफ़ैलोपोडों में रक्त वाहिकाओं तथा कोशिकाओं का अस्तर .... का बना होता है जैसा कि कशेरूकियों में होता है।

(G) प्रावार में .... गैंग्लिया से निकली तंत्रिकाएं फैली होती हैं।

(H) नर सेफ़ैलोपोड शुक्राणु स्थानांतरण के लिए विशद .... का निर्माण करते हैं।

6.3 प्रोटोस्टोमिया तथा ड्यूटेरोस्टोमिया

अभी तक जिन बाइलेटरिया कि विषय में आपने पढ़ा (अर्थात् चपटे कृमियों, ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों एवं मौलस्कों के विषय में), ये सब **प्रोटोस्टोमिया** वर्ग में आते हैं। इन प्राणियों में मुख मूल ब्लास्टोपोर से बना होता है (अर्थात् प्रथम छिद्र से बना मुख)। इसके विपरीत इकाइनोडर्मों तथा कॉर्डेटों में मुख ब्लास्टोपोर से दूर एक नए छिद्र के रूप में बनता है (अर्थात् मुख दूसरे छिद्र से) - ये सब **ड्यूटेरोस्टोमिया वर्ग** में आते हैं। आपको ध्यान में रखना होगा कि प्रोटोस्टोमों तथा ड्यूटेरोस्टोमों में कुछ अन्य छोटे फ़ाइलम भी आते हैं। ड्यूटेरोस्टोमों में कॉर्डेट भी आते हैं। प्रोटोस्टोमों तथा ड्यूटेरोस्टोमों में मुख्य अंतर नीचे दिए जा रहे हैं।

	प्रोटोस्टोमिया	ड्यूटेरोस्टोमिया
1.	ब्लोस्टोपोर में विभाजन होकर मुख तथा गुदा बनते हैं, **मुख ब्लास्टोपोर से व्युत्पन्न**	ब्लास्टोपोर गुदा बन जाता है, या कम से कम गुदा बंद हो गए ब्लास्टोपोर के स्थान से प्रकट होती है **मुख्य ब्लास्टोपोर से दूर एक नए छिद्र के रूप में प्रकट होता है।**
2.	निर्धारी विदलन; ब्लोस्टोमीयरों की नियति परिवर्धन में बहुत पहले ही निर्धारित हो जाती है।	अनिर्धारित विदलन, ब्लास्टोमीयरों की नियति परिवर्धन में बाद में निर्धारित होती है।
3.	सर्पिल विदलन, ब्लोस्टोमीयरों की सर्पिल व्यवस्था, एक ब्लोस्टोमीयर के ऊपर या नीचे स्थित दो ब्लोस्टोमीयर होते हैं।	अरीय विदलन; ब्लास्टोमीयर ठीक एक-दूसरे के नीचे या ऊपर स्थित होते हैं।
4.	एंटोमीजोडर्म केवल एक कोशिका से बनती है	एंटोमीज़ोडर्म आंत्रसीलोमी कोष्ठों से बनती है।
5.	सीलोम दीर्णसीलोमी; यह मीज़ोडर्मी कोशिका-संहति में एक विपाटन के द्वारा बनी गुहा के रूप में प्रकट होती है।	सीलोम आंत्रसीलोमी; आद्यंत्र की दीवार वहिर्वलित होकर कोष्ठ बनाती है जो आद्यंत्र से पृथक हो जाते हैं। इसकी गुहा सीलोम बनती है, तथा इसकी दीवारें मीजोडर्म बन जाती हैं।

6.4 फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा (PHYLUM ECHINODERMATA)

फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं -

1. वयस्कों में अधिकतर पंचयती (pentamerous) सममिति; सभी समुद्रवासी।
2. शरीर विखंडत: खंडित नहीं होता; गोल, सिलिंडराकार अथवा तारा-सदृश, शीर्ष नहीं होता।
3. मस्तिष्क नहीं होता। थोड़े से ही विशेषित संवेदी अंग। केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र परितंत्रिका वलय (circumneural ring) तथा अरीय (radial) तंत्रिकाओं के रूप में।
4. पाचन-तंत्र समूचा।

5. सीलोम आंत्रसीलोमी एवं विस्तृत। यह एक तो परिअंतरंग गुहा बनाती है और दूसरे अद्वितीय जल-संवहनी तंत्र।
6. रक्त-संवहनी तंत्र (रक्त-तंत्र) बहुत ज़्यादा ह्रासित तथा परिरक्त साइनसों (सीलोम के प्रसारों) द्वारा घिरा होता है।
7. वाह्य कंकाल अधिकतर उदाहरणों में असाधारण कैल्सियमी अस्थिकाओं और साथ में कंटकों के रूप में, या कुछ में कैल्सियमी कंटिकाओं के रूप में। कुछ में पेडिसेलेरी (वृंतपद) पाए जाते हैं।
8 संचलन अधिकतर नालपादों (ट्यूब-फुटों) द्वारा, कुछ में कंटकों के द्वारा अथवा भुजाओं की गति के द्वारा।
9. श्वसन डर्मल ब्रैंकी (dermal branchiae), (चर्म-क्लोमों), नालपादों, श्वसन-वृक्षों अथवा प्रपुटियों (बर्साओं bursae) द्वारा होता है।
10. घ्राण-अंग नहीं होते।
11. लिंग सामान्यत: पृथक् होते हैं, गोनड बड़े, एकल जनन वाहिनियां, निषेचन बाहरी।
12. परिवर्धन अनिर्धारी, अरीय विदलन, परिवर्धन में प्राय: स्वच्छंद तैरने वाली द्विपार्श्वत: सममित लार्वा-अवस्थाएं होती हैं।
13. ऑटोटोमी (autotomy) अर्थात् स्वविच्छेदन एवं पुनरुद्भवन व्यापक रूप में पाए जाते हैं।

अब आप इकाइनोडर्मों का अध्ययन प्रारंभ करेंगे। इस फ़ाइलम में लगभग 6000 स्पीशीज़ आती है, जो सभी समुद्रवासी हैं और इनमें शामिल हैं सी-स्टार (समुद्री तारे), समुद्री अर्चिनें, समुद्री लिली तथा समुद्री खीरे (सी कुकुम्बर)। अधिसंख्य इकाइनोडर्म तलीवासी होते हैं तथा माप में कई-कई सेंटीमीटर व्यास के होते हैं।

इस वर्ग का एक विचित्र लक्षण यह है कि इसमें **पंचयती (pentamerous) सममिति** पायी जाती है। इसका अर्थ यह है कि इनके शरीर को मुख-अपमुख अक्ष पर से गुज़रते हुए किन्ही भी पांच त्रिज्याओं (radii) अथवा अरों पर से काटने पर शरीर के दो समान भाग प्राप्त होते हैं। लेकिन व्यस्क इकाइनोडर्मों की यह अरीय सममिति मौलिक नहीं होती बल्कि बाद में प्राप्त होने वाली होती है। इकाइनोडर्मों के लार्वा द्विपार्श्वत: सममित होते हैं। कायान्तरण के दौरान लार्वा की द्विपार्श्व सममिति वयस्क की अरीय सममिति में बदल जाती है। और यह भी सही है कि अन्य अरीयत: सममित अकशेरुकियों के साथ इकाइनोडर्मों का कोई संबंध नहीं है। इकाइनोडर्मों का एक और विशेष लक्षण है इनमें **कैल्सियमी अस्थिकाओं** (calacareous ossicles) का बना भीतरी कंकाल का पाया जाना। ये अस्थिकाएं एक-दूसरे से चल-संधि बनाए हुए हो सकती हैं अथवा वे एक दूसरे से सीवनों द्वारा स्थायी तौर पर जुड़ी हो सकती हैं। गुलिकाओं के कंटम, देह की सतह से बाहर को निकले होते हैं जिससे प्राणी को कंटीला या मस्सों वाला स्वरूप प्राप्त हो जाता है और इसी से मिला है इस फ़ाइलम का यह नाम इकाइनोडर्मेटा जिसका अर्थ है कंटकीय त्वचा। इकाइनोडर्मेटा का तीसरा विशिष्ट लक्षण इनमें एक सबसे अलग प्रकार के तंत्र, जल-संवहनी तंत्र (water vascular system) का पाया जाना है। यह तंत्र सीलोमी नालों तथा कुछ विशेष सतही उपांगों का बना होता है। आहार एकत्र करने तथा गैस अभिगमन तंत्र के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त यह इन प्राणियों को संचलन में भी सहायता प्रदान करता है। सीलोम आंत्रसीलोमी प्रकार की होती है। सीलोमी तरल में अमीबकोशिकाएं होती हैं। इकाइनोडर्मों में रक्त-संवहनी तंत्र बहुत ह्रासित हो गया है तथा परिसंचरण में इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। **डर्मल ब्रैंकी** नामक संरचनाएं तथा जल-संवहनी तंत्र के **नाल पाद** श्वसन अंग होते हैं। क्लास होलोथुरॉइडिया में एक संरचना श्वसन वृक्ष (respiratory tree) होती है जो गैस-विनियम में सहायता करती है। एक अन्य क्लास ओफ़ियूरॉयडिया में बर्सा या प्रपुटी नामक संरचना से श्वसन होता है। इकाइनोडर्म स्वविच्छेदन द्वारा अपने देह-भाग तोड़ कर अलग कर सकते हैं, और ऐसे भागों के पुनरुद्भवन की भी क्षमता उनमें है। फ़ाइलम इकानोडर्मेटा में पांच क्लास आते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. **क्लास ऐस्टेरॉइडिया (Asteroidea)**
2. **क्लास ओफ़ियुरॉइडिया (Ophiuroidea)**
3. **क्लास इकाइनॉइडिया (Echinoidea)**
4. **क्लास होलोथुरॉइडिया (Holothuroidea)**

5. क्लास क्रिनॉइडिया (Crinoidea)

आप क्लास ऐस्टेरॉइडिया के लक्षणों को विस्तार से तथा अन्य क्लासों के लक्षणों को संक्षेप में पढ़ेंगे।

6.4.1 क्लास ऐस्टेरॉइडिया

तारे-जैसी आकृति; भुजाएं केंद्रीय डिस्क से स्पष्टत: पृथक सीमित नहीं; वीथि खांचे (ambulacral grooves) खुली; नालपाद मुख दिशा पर तथा चूषकों से युक्त। भुजाएं तथा मैड्रेपोराइट अपमुख दिशा पर; पेडिसेलेरी होती हैं।

इस क्लास में समुद्री तारे अथवा स्टारफ़िशें आती है (चित्र 6.56)। ये स्टारफ़िशें तरह-तरह के रंगों वाली स्वच्छंदजीवी होती हैं जो पथरीले समुद्र तटों के सहारे-सहारे पायी जाती हैं। ये समुद्र की तली में पायी जाती हैं जहां वे चट्टानों अथवा मूंगों पर रेंगती होती हैं अथवा रेत में या कीचड़ मे रहती होती हैं।

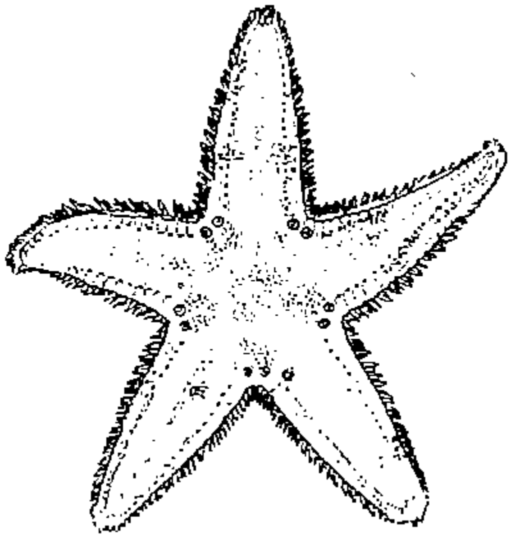

चित्र 6.56 : समुद्री तारे का अपमुखी दृश्य।

शरीर में एक केंद्रीय डिस्क होती है जिसमें से पांच भुजाएं निकली होती हैं, और इन्हीं भुजाओं से प्राणी को पंचतयी अरीय सममिति मिली होती है। ये प्राणी औसतन 12 से 24 सेमी के साइज़ के होते हैं। इनकी भुजाएं केंद्रीय डिस्क से बिल्कुल स्पष्ट पृथक नहीं हुई होतीं वरन् उसमें से धीरे धीरे बन जाती हैं। मुख डिस्क के केंद्र में नीचे की दिशा में बना होता है, इसीलिए इस सतह को मुख सतह (oral surface) कहते हैं। (चित्र 6.57)। मुख में से निकली एक एक खांच जिसे वीथि खांच (ambulacral groove)

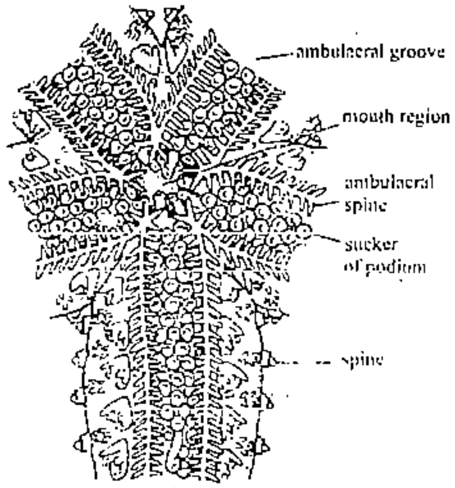

चित्र 6.57 : स्टारफिश *ऐस्टेरियस* की केन्द्रीय डिस्क तथा मुख सतह पर एक भुजा का हिस्सा।

कहते हैं प्रत्येक भुजा में अरीय रूप में चलती जाती है। इस खांच में छोटे छोटे नलिकाकार प्रवर्धों जिन्हें **नालपाद (tube feet)** अथवा **पोडिया (podia)** कहते हैं, की दो से चार पंक्तियां बनी होती हैं। इन खांचों के सीमांतों पर बने गतिशील कंटकों के द्वारा ये खांचे अंशत: बंद हुई हो सकती हैं। प्रत्येक भुजा की अंतिम नोक पर एक या अधिक स्पर्शक जैसे संवेदी नालपाद तथा एक लाल वर्णक बिंदु होता है। प्राणी की ऊपरी सतह को **अपमुखी सतह (aboral surface)** कहते हैं (चित्र 6.58) तथा इस पर केंद्र में गुदा बनी होती है। अपमुख सतह पर ही एक बड़ी बटन जैसी संरचना **मैड्रेपोराइट (madreporite)** भी केंद्रीय डिस्क पर दो भुजाओं के बीच स्थित पायी जाती है।

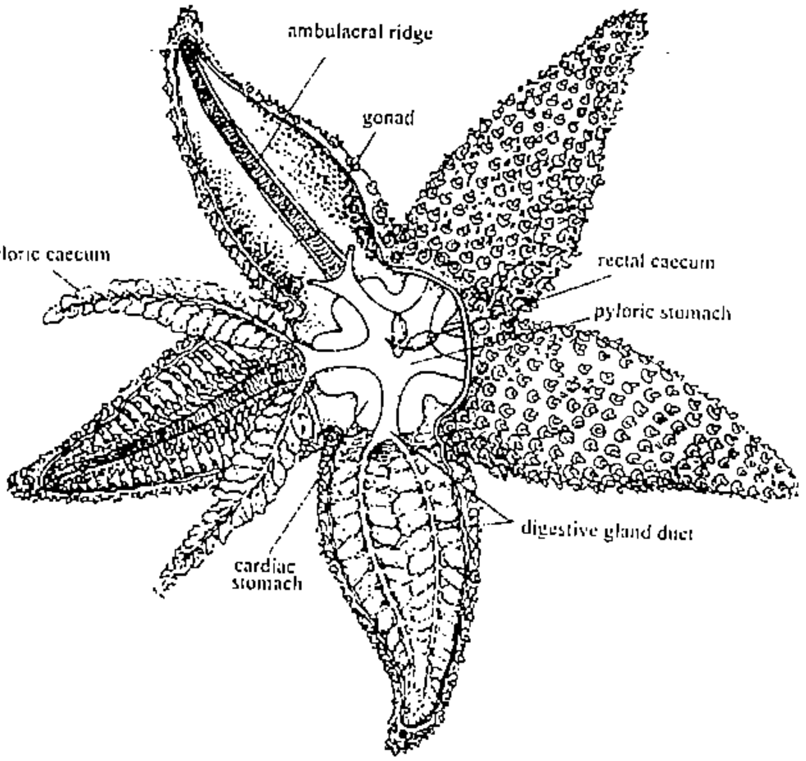

चित्र 6.58 : आंतरिक संरचना दर्शाते हुए स्टारफिश की अपमुखी सतह।

देह-भित्ति में दो परतें होती हैं - बाहरी एपिडर्मिस तथा भीतरी डर्मिस। एपिडर्मिस एकसिलियायित एपिथीलियल कोशिकाओं, श्लेष्म ग्रंथि कोशिकाओं, तथा संवेदी कोशिकाओं की बनी होती है। एपिडर्मिस के नीचे बनी डर्मिस मोटी होती है तथा वह संयोजी ऊतक की बनी होती है जिसके भीतर कड़े कंकालीय टुकड़े जिन्हें **अस्थिकाएं** (ossicles) कहते हैं, समाए होते हैं। ये अस्थिकाएं विविध आकृतियों की होती हैं जैसे शलाकाओं, सलीब अथवा प्लेटों के रूप में और ये संयोजी ऊतक से जुड़ी होकर एक जाल-जैसा (lattice) बना लेती हैं। अस्थिकाएं मैग्नीसियम से परिपूर्ण केल्साइट की बनी होती हैं। डर्मिस के बाद नीचे पेशियां आती हैं जो भुजाओं के मुड़ने में सहायता करती हैं। सीलोम का अस्तर एक सिलियायुक्त पेरिटोनियम झिल्ली का बना होता है। कुछ स्टारफिशों में उनकी देह सतह के ऊपर विशेष प्रकार के जबड़े अथवा चिमटी - जैसे उपांग पेडिसेलेरिया बने होते हैं (चित्र 6.59) जिनका कार्य प्राणी को उन छोटे-छोटे प्राणियों तथा लार्वों से बचाना होता है जो इन स्टारफिशों की बाहरी सतह पर आकर टिक जाने का प्रयत्न करते हैं। पेडिसेलेरी वृंतयुक्त हो सकती हैं अथवा अवृंत।

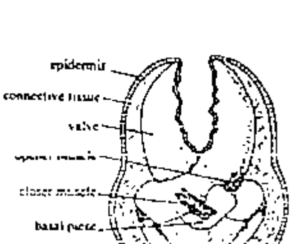

चित्र 6.59 : स्टार फिश के चिमटी जैसे पेडिसेलेरिया।

जल-संवहनी तंत्र (Water vascular system)

इकाइनोडर्मों में एक अद्वितीय तंत्र होता है जिसमें नालें तथा देह-भित्ति के उपांग शामिल हैं, इसे जल-संवहनी तंत्र कहते हैं (चित्र 6.60)। यह तंत्र सीलोमी व्युत्पाद है, इसका अस्तर सिलियायुक्त एपिथीलियम का बना होता है तथा इसमें तरल भरा रहता है। एस्टेरॉइडों में जल-संवहनी तंत्र सुविकसित होता है तथा इसका प्रकार्य मुख्यत: संचलन एवं आहार-संग्रहण है। साथ ही, यह श्वसन तथा उत्सर्जन का भी काम करता है।

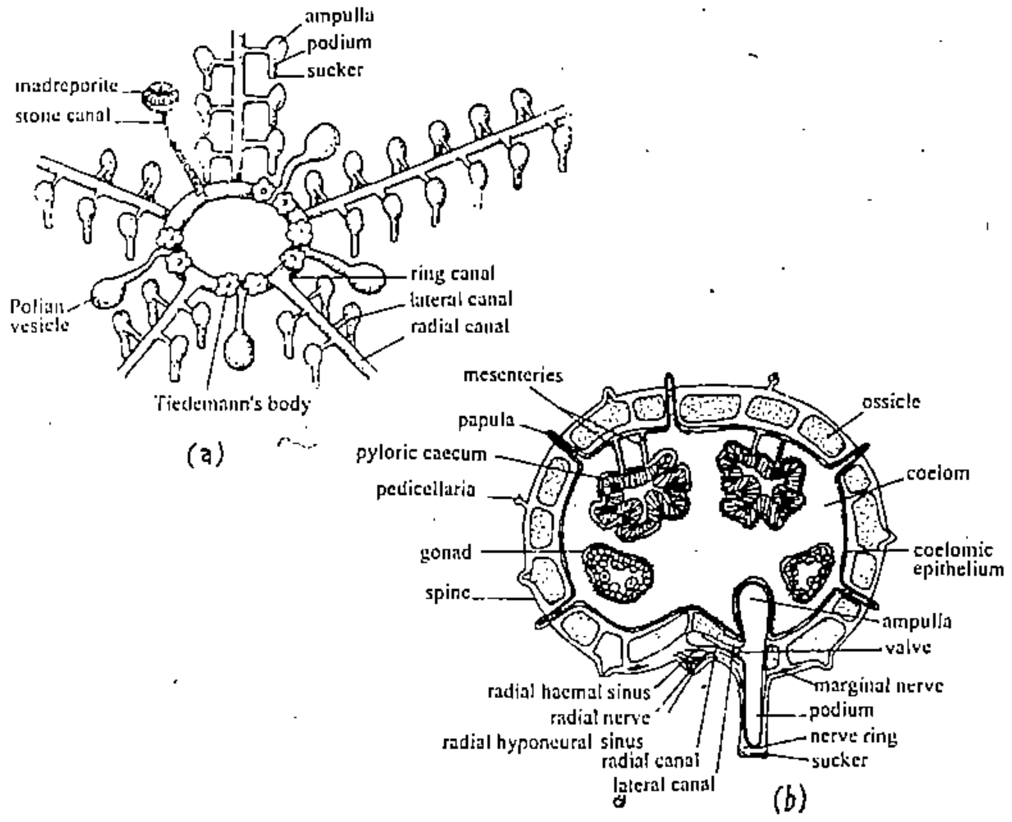

चित्र 6.60 : a) स्टारफिश का जल संवहनी तंत्र b) स्टारफिश की एक भुजा की अनुप्रस्थ काट।

जल-संवहनी तंत्र अपमुख सतह पर स्थित मैड्रेपोराइट द्वारा बाहर को खुलता है। मैड्रेपोराइट में बहुसंख्यक छिद्र बने होते हैं। ये छिद्र एक **अश्म-नाल (stone canal)** में खुलते हैं, यह नाल ऊपर अपमुख दिशा से चलती हुई नीचे मुख दिशा तक पहुंचती है जहां वह एक **वलय नाल (ring canal)** में आकर मिल जाती है जो मुख को घेरती हुई होती है। वलय नाल से अरीय नालें निकलती हैं जो प्रत्येक भुजा में ठीक वीथि खांच के नीचे चलती जाती है। अरीय नाल से उसकी पूरी लम्बाई में दोनों पार्श्वों पर **पार्श्व नालें (lateral canals)** निकलती हैं। प्रत्येक पार्श्व नाल में एक बल्ब-जैसा **ऐम्पुला (ampulla)** तथा एक नालपाद अथवा पोडियम बना होता है। ऐम्पुला एक छोटा पेशीय थैला होता है जो परिअंतरांग सीलोम में को उभरा होता है। ऐम्पुला नालपाद अथवा पोडियम से जुड़ा होता है। पोडियम वीथि खांच में स्थित होता है तथा यह देह-भित्ति के एक छोटे, नलिकाकार बाहरी प्रवर्ध के रूप में होता है जिसका अंतिम सिरा चपटा होकर **चूषक (sucker)** बन जाता है। जल-संवहनी तंत्र के भीतर एक तरल भरा होता है जिसकी संघटना समुद्र के जल के जैसी होती है तथा इस तरल के भीतर सीलोमकोशिकाएं एवं प्रोटीन होते हैं। वलय नाल से अंतरारीय स्थित में एक तो **पोलियन आशय (polian vesicles)** निकले होते हैं, जो लम्बे पेशीय थैले होते हैं तथा दूसरे युग्मित कोष्ठ **टाइडेमान पिंड (Tiedemann's bodies)** निकले होते हैं।

पाचन-तंत्र

अधिकतर ऐस्टेरॉइड अपमार्जक (scavengers) अथवा मांसभक्षी होते हैं तथा ये इन सबका आहार करते हैं - घोंघे, बाइवेल्वों, पोलीकीटों अन्य इकाइनोडर्मों, मछलियों, स्पंजों, समुद्री ऐनीमोनों तथा हाइड्राइडों एवं मूंगों के पोलिपों का। कुछ उदाहरण प्लवकों तथा अपरदों को खाते हैं। समुद्री तारों का पाचन-तंत्र मुख सिरे तथा अपमुख डिस्क के बीच फैला होता है। मुख एक पेशीय परिमुख झिल्ली के बीच स्थित होता है। मुख के बाद एक छोटी ग्रसिका आती है और फिर यह ग्रसिका एक बड़े जठर में खुलती है। जठर डिस्क के अधिकतर भीतरी भाग को अपनाए रहता है और वह एक क्षैतिज संकीर्णन के द्वारा दो भागों में बंट जाता है - एक बड़ा अण्डाकार **आगमी जठर (cardiac stomach)** तथा एक छोटा चपटा **निर्गमी जठर (pyloric stomach)**।

आगामी जठर की दीवारों में से कोष्ठ निकले होते हैं। प्रत्येक भुजा में एक जोड़ी पाचन-ग्रंथियों अथवा निर्गम जठर अंधनालें होती हैं तथा उनकी वाहिनियां निर्गम जठर में को खुलती हैं। निर्गम जठर आगे अपमुख दिशा पर एक छोटी नलिकाकर आंत्र में को खुलता है। अंतड़ी बाहर को एक गुदा द्वारा खुलती है, यह गुदा डिस्क की अपमुख सतह के केंद्र पर बनी होती है। आंत्र में से अनेक छोटे-छोटे बहिकोष्ठ निकले होते हैं जिन्हें मलाशय अंधनाल कहते हैं।

परिसंचरण, श्वसन तथा उत्सर्जन

गैसों तथा कुछ पोषकों के अभिगमन के वास्ते ऐस्टेरॉइड अपने सीलोमी तरल के परिसंचरण पर निर्भर करते हैं। रक्त-संवहनी तंत्र जिसे इकाइनोडर्मों में **हीमल (haemal)** तंत्र कहते हैं ऐस्टेरॉइडों में बहुत सुविकसित नहीं होता। इसकी सरणियों में कोई अस्तर नहीं बना होता। तथापि इन सरणियों को घेरते हुए सीलोम के प्रसार बने होते हैं जिन्हें **परिहीमल साइनस (perihaemal sinuses)** कहते हैं। ऐस्टेरॉइडों में चार सीलोमी परिसंचरण तंत्र पाए जाते हैं (चित्र 6.61) :

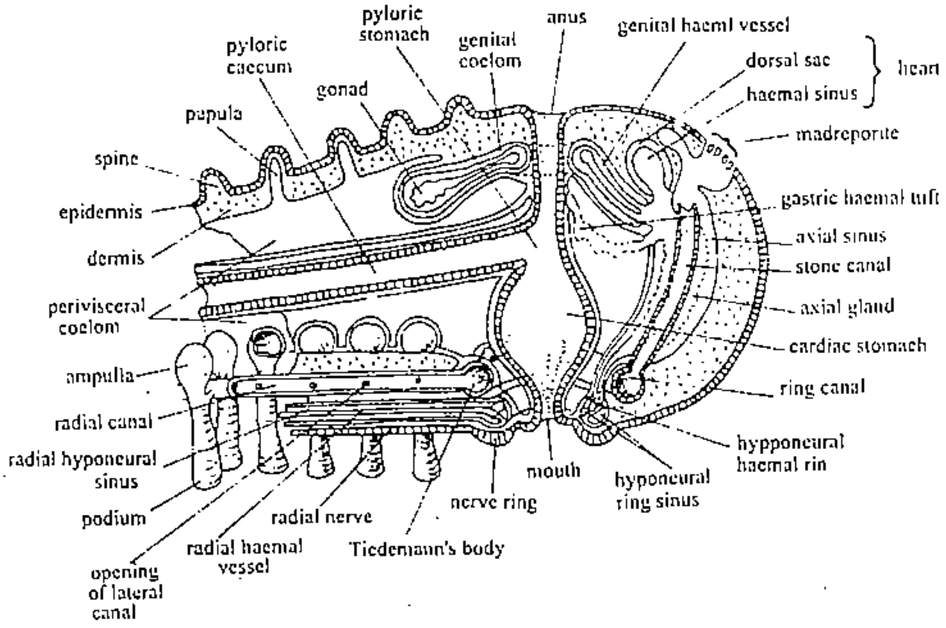

चित्र 6.61 : स्टारफिश के रक्त संवहनी तंत्र तथा सीलोमी तंत्र को दर्शाता हुआ चित्र।

(1) **परिअंतरंग सीलोम** और उसके भीतर परिसंचरित होने वाला तरल अंतरंग में आपूर्ति करता है, (2) **जल-संवहनी तंत्र** जो संचलन में सहायक नालपादों की पेशियों में आपूर्ति करता है, (3) **अवतंत्रिका साइनस तंत्र (hyponeural sinus system)** जो तंत्रिका तंत्र में आपूर्ति करता है, (4) **जनन-सीलोम (genital coelom)** जो जनन अंगों में आपूर्ति करता है। इकाइनोडर्म केवल समुद्री जल में ही रहते हैं जिसके साथ उनका देह-तरल समपरासारी (isotonic) होता है। नाइट्रोजनी अपशिष्ट देह-सतह के पतले क्षेत्रों से विसरण द्वारा बाहर निकाल दिए जाते हैं जैसे कि पादों तथा पेपुलों से। इनके अतिरिक्त सीलोमकोशिकाएं भी सीलोम में से उपापचयी अपशिष्टों को शरीर से बाहर निकालने का काम करती हैं।

ऐस्टेरॉइडों में गैस-विनिमय का काम पैपुला (डर्मल ब्रैकी) करते हैं, ये रचनाएं सीलोमी गुहा के बाहरी ओर को निकले हुए नरम प्रवर्ध होते हैं जो अस्थिकाओं के बीच-बीच की जगहों में से बाहर को उभरे रहते है। नालपाद भी मुख्य श्वसन अंग होते हैं।

तंत्रिका-तंत्र

ऐस्टेरॉइडों के तंत्रिका-तंत्र में गैंग्लिया नहीं होते तथा यह एपिडर्मिस से निकट सम्पर्क बनाए रखता है। इसमें मुख्यतः एक **परिमुख तंत्रिका वलय (circumoral nerve ring)** होता है जो मुख को घेरे रहता है। इस

तंत्रिका वलय में से अरीय तंत्रिकाएं प्रत्येक भुजा में को निकली होती हैं। अरीय तंत्रिका से निकली हुई शाखाएं पादों तथा ऐम्पुलों में को जाती हैं, और यह स्वयं अधोएपिडर्मिसी तंत्रिका जाल में मिली हुई रहती है। ऐस्टेरॉइडों के संवेदी अंगों में दृक-बिंदु (eye spots) होते हैं जो भुजा की अंतिम नोक पर बने होते हैं। एपिडर्मिस में संवेदी कोशिकाएं भी होती हैं जो कदाचित प्रकाशसंवेदियों, रससंवेदियों तथा यांत्रिकसंवेदियों की तरह कार्य करती हैं। एपिडर्मिस की संवेदी कोशिकाएं नाल पादों के चूषकों, स्पर्शक-समान सवेदी नालपादों तथा विधि खांचों के सीमांतों के सहारे-सहारे अधिक संख्या में पायी जाती हैं।

जनन-तंत्र

अधिकतर ऐस्टेराइडों में सेक्स अलग-अलग होती हैं। गोनड दस होते हैं, दो-दो प्रत्येक भुजा में। ये अंगूर के गुच्छों जैसे दिखायी पड़ते हैं। परिपक्व होने पर गोनड भुजा को लगभग पूरी तरह भरे रहते हैं। जननछिद्र का स्थान भुजाओं के आधारों के बीच होता है। अधिसंख्य समुद्री-तारों में शुक्राणु और अण्डे बाहर समुद्री जल में छोड़ दिए जाते हैं तथा निषेचन बाहरी होता है। एक अकेली मादा बहुत संख्या में, यहां तक कि 25 लाख तक अण्डे देती है। परिवर्धन में एक लार्वा-अवस्था आती है जिसे **बाइपिन्नेरिया (bipinnaria)** लार्वा कहते हैं (चित्र 6.62)। इस स्वच्छंद तैरने वाले लार्वा में सिलियायुक्त पट्टियां होती है तथा भुजाएं होती हैं और ये दोनों संचलन एवं अशन में कार्य करती हैं। उसके बाद बाइपिन्नेरिया बदल कर **ब्रेकियोलेरिया (brachiolaria)** लार्वा बन जाता है (चित्र 6.63) जिसमें अग्र सिरे पर अतिरिक्त भुजाएं बन जाती हैं। तदुपरांत बाइपिन्नेरिया में कार्यांतरण होकर वयस्क बन जाता है।

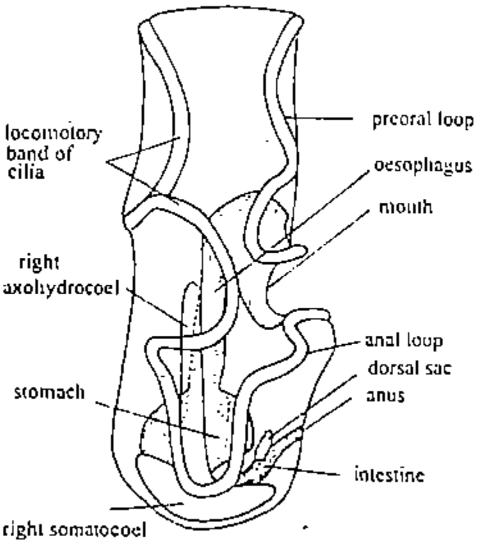

चित्र 6.62 : बाइपिन्नेरिया लार्वा।

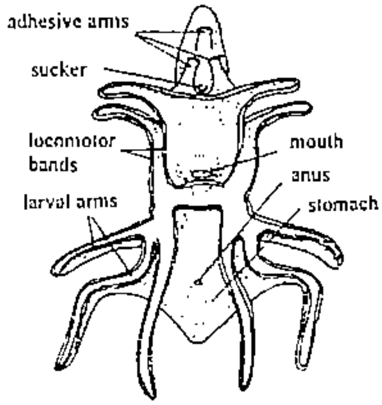

चित्र 6.63 : ब्रेकियोलेरिया लार्वा।

तो अब आपने ऐस्टेरॉइडों की संघटना का विस्तृत अध्ययन कर लिया है। चूंकि फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा के अन्य क्लासों के सदस्यों की संघटना मूलतः ऐस्टेरॉइडों की संघटना के ही समान होती है इसलिए हम अगले भाग में अन्य क्लासों के विषय में उनके केवल प्रमुख लक्षणों की ही चर्चा करेंगे और उन खास अंतरों को बताएंगे जो ऐस्टेरॉइडों की तुलना में उनमें पाए जाते हैं। मगर इससे पहले कि आप इकाइनोडर्मों के अन्य क्लासों का अध्ययन आरम्भ करें, आइए निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल कीजिए :

बोध प्रश्न 4

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :

a) वयस्क इकाइनोडर्मों में .... सममिति तथा उनके लार्वों में .... सममिति होती पायी जाती है।

b) अधिकतर इकाइनोडर्मों का अंतःकंकाल .... का बना होता है।

c) इकाइनोडर्मों में सीलोमी नालों तथा नालपादों के तंत्र को .... तंत्र कहते हैं।

d) इकाइनोडर्मों के श्वसन संरचाएं .... तथा .... होती हैं।

e) ऐस्टेरॉइडों के देह की सतह पर पायी जाने वाली जबड़े जैसी संरचनाएं जिनका कार्य सुरक्षा प्रदान करना है .... कहलाती हैं।

f) ऐस्टेरॉइडों की लार्वा अवस्थाएं .... तथा .... होती हैं।

6.4.2 क्लास ओफ़ियूरॉइडिया

देह तारे की आकृति का, मगर भुजाएं केंद्रीय डिस्क से विल्कुल स्पष्ट सीमांकित होती हैं; वीथि खांचे अस्थिकाओं द्वारा ढकी होती हैं; नालपादों में चूषक नहीं होते; पेडिसेलेरी नहीं होती; गुदा नहीं होती।

क्लास ओफ़ियूरॉइडिया में ब्रिटिल-स्टार (brittle star) (भंगुर-तारे) (चित्र 6.64) आते हैं और स्पीशीज़ की संख्या की दृष्टि से यही इकाइनोडर्मों का सबसे बड़ा क्लास है। ये प्राणी समुद्र में नितलस्थ क्षेत्र में रहते हैं। ओफ़ियूरॉइड नानाविध वस्तुओं का भोजन करते हैं जिन्हें वे या तो चारण (चरना, browsing) द्वारा या फ़िल्टर-अशन द्वारा खाते हैं। ये प्राणी स्राव निकालकर और उसमें आहार को फंसा कर भी आहर करते हैं।

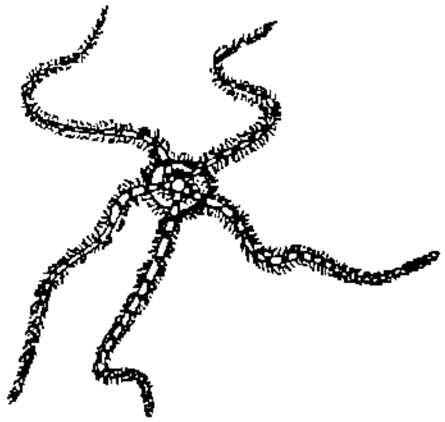

चित्र 6.64 : ब्रिटिल स्टार।

यद्यपि ब्रिटिल-सटारों में भी ऐस्टेराइडों की तरह पांच अरीय भुजाएं होती हैं, मगर ये भुजाएं पतली होतीं तथा केंद्रीय डिस्क से स्पष्टत: सुसीमित होती हैं। पेडिसेलैरी ब्रिटिल-स्टारों में नहीं होती। वीथि खांचे अस्थिकाओं से ढकी रहती हैं। नालपादों में चूषक नहीं होते और इसलिए वें अशन में सहायक होते हैं लेकिन संचलन में उनकी कोई भूमिका नहीं होती। ओफ़ियूरॉइडों में, ऐस्टेरॉइडों से भिन्न, मैड्रेपोराइट मुख की सतह की एक शील्ड, अस्थिका पर बना होता है। नालपादों में ऐम्पुले भी नहीं होते। प्राणी की प्रत्येक भुजा में अस्थिकाएं एक स्तम्भ के रूप में संचित होती है। ये अस्थिकाएं प्लेटों से ढकी होती हैं और पेशियों द्वारा जुड़ी होती हैं, इन्हें कशेरूक अस्थिकाएं (vertebral ossicles) कहते हैं। (चित्र 6.80)। संचलन भुजाओं की गति से संभव होता है। मुख के इर्द-गिर्द गतिशील प्लेटें होती हैं जिन्हें जबड़े कहते हैं। प्राणी का अध्यावरण चर्मीय होता है और उसमें डर्मल प्लेटें एवं कंटक बने होते हैं। अंतरंग संहति केवल केंद्रीय डिस्क में ही सीमित रहती है। एक थैली-जैसा जठर होता है, आंत्र नहीं होती। गुदा नहीं होती। अनपचा आहार मुख के ही द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। तंत्रिका-तंत्र तथा हीमल तंत्र ऐस्टेरॉइडों की तरह के होते हैं। केंद्रीय डिस्क के भीतर पांच जोड़ी थैली जैसी संरचनाएं होती हैं जिन्हें प्रपुटी या बर्सा (bursa) कहते हैं, ये रचनाएं, इकाइनोडर्मों में केवल ओफ़ियूरॉइडों में ही पायी जाती हैं। ये प्रपुटियां मुख सतह की ओर भुजाओं के आधार पर जनन-दरारों पर खुलती हैं। जब पानी इनमें से अंदर-बाहर जाता है, उससे गैस विनिमय हो जाता है। गोनड छोटे आकार के होते हैं और वे प्रपुटियों की सीलोमी भित्तियों में स्थित होते हैं, ये युग्मकों (गैमीटों) को प्रपुटियों में छोड़ देते हैं जहां से वे जनन-दरारों में से होकर जल में पहुंच जाते हैं। सेक्स सामान्यत: अलग-अलग होती हैं। निषेचन बाहरी होता है। परिवर्धन में एक लार्वा-अवस्था **ओफ़िओप्लूटियस** (ophiopluteus) होती है (चित्र 6.65)। अलैंगिक जनन पुनरुद्भवन के रूप में होता पाया जाता है। उदाहरण : *ओफ़ियूरा (Ophiura)*, *ओफ़िओडर्मा (Ophioderma)*।

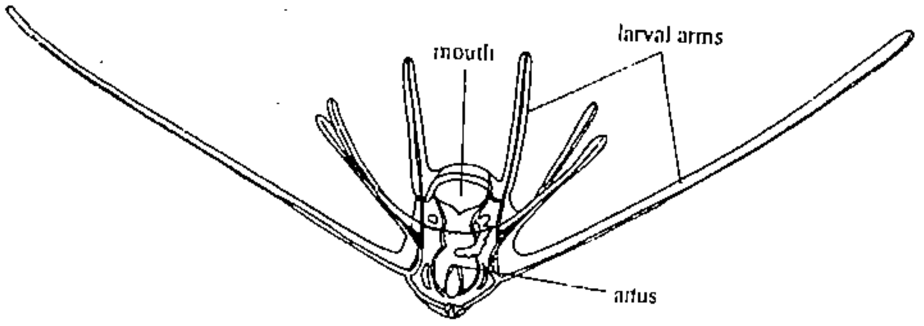

चित्र 6.65 : ओफिओप्लूटियस लार्वा।

6.4.3 क्लास इकाइनॉइडिया

गोल अथवा डिस्क की आकृति, बिना भुजाओं के। कंकाल संहत होता है जो एक दूसरे से निकटत: फिट हुई डर्मल अस्थिकाओं का बना होता है। कंटक गतिशील; वीथि खांचे बन्द; नालपादों में चूषक; पेडिसेलेरी होती हैं।

क्लास इकाइनॉइडिया में समुद्री अर्चिनें (चित्र 6.66), सैंड-डालर (sand-dollars) (चित्र 6.67) तथा हृद् अर्चिनें आती हैं। इकाइनॉइडों में एक संहत शरीर होता है जो एक अंत:कंकाली टेस्ट (चोल) अथवा कवच के भीतर बंद होता है। टेस्ट डर्मल अस्थिकाओं का बना होता है जो एक दूसरे के साथ सीवन रूप में जुड़ी होकर एक संहत संरचना बनाती हैं। प्लेटों पर कड़े गतिशील कंटक (spines) बने होते हैं। पांच जोड़ी वीथि पंक्तियों में छिद्र बने होते हैं तथा ये पंक्तियां स्टारफ़िशों की भुजाओं के समजात होती हैं। छिद्रों में से लम्बे नालपाद बाहर को निकले होते हैं। इकाइनॉइडों में पेडिसिलेरी भी होती हैं जो प्राणी को अपना शरीर साफ़ रखने में तथा छोटे-छोटे जीवों को पकड़ने में काम करती रहती हैं।

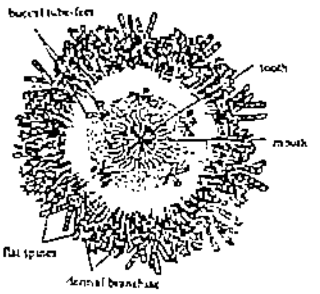

चित्र 6.66 : समुद्री अर्चिन।

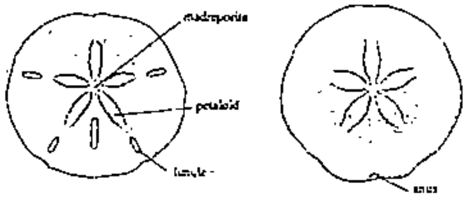

चित्र 6.67 : सैंड डालर।

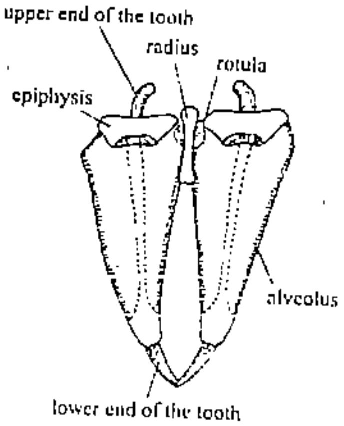

चित्र 6.68 : अरस्तू की लालटेन।

समुद्री अर्चिनों का मुख पांच अभिसारी दांतों के केंद्र में बना होता है। दांत एक सम्मिश्र चर्वण अंग के अंश होते हैं जिसे अरस्तू की लालटैन (Aristotle's lantern) कहते हैं, (चित्र 6.68)। समुद्री अर्चिनें शैवालों तथा अन्य जैविक पदार्थों पर आहार करती हैं। टेस्ट के भीतर एक कुंडलित पाचन-तंत्र होता है जिसमें एक ग्रसिका एक सिलियायुक्त साइफ़न के द्वारा सीधी आंत्र में खुलती है जिसके द्वारा पानी जठर को छोड़ते हुए सीधा आंत्र में ही पहुंच जाता है। (चित्र 6.68a)। इस प्रकार प्राणी आंत्र के भीतर पचाने के लिए आहार का सकेंद्रण करता रहता है। गुदा अपमुख सतह पर होती है। परिसंचरण तथा तंत्रिका तंत्र ऐस्टेरॉइडों के जैसे होते हैं। वीथि खांचे बंद होती हैं तथा जल-संवहन तंत्र की अरीय नालें वीथि अरों पर टेस्ट के तुरंत नीचे स्थित होती है।

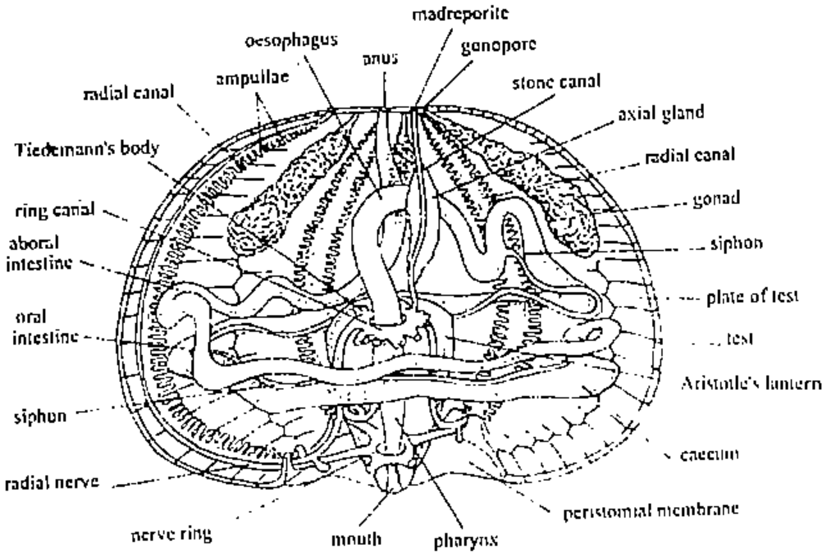

चित्र 6.68a : समुद्री अर्चिन की आंतरिक संरचना।

नालपादों में ऐम्पुले बने होते हैं जो टेस्ट के भीतर स्थित होते हैं। श्वसन पोडिया के द्वारा होता है इकाइनॉइडों में सेक्स अलग-अलग होती हैं। युग्मक पानी में छोड़ दिए जाते हैं तथा निषेचन बाहरी होता है। कुछ उदाहरणों में अण्डों को कंटकों के बीच-बीच में बने गढ़ों में रखकर परिवर्धित किया जाता है। परिवर्धन में एक लार्वा-अवस्था आती है जिसे **इकाइनोप्लूटियस (echinopluteus)** कहते हैं (चित्र 6.69)। लार्वा कई-कई महीनों तक प्लावक जीवन व्यतीत करने के बाद कायांतरण करके वयस्क बनता है। सामान्य जीनसें इस प्रकार हैं - *अर्बेसिया (Arbacia)*, *स्ट्रांगाइलोसेंट्रस (strongylocentrous)* (समुद्री अर्चिनें), *डेण्ड्रेस्टर (Dendraster)* (सैंड-डालर)।

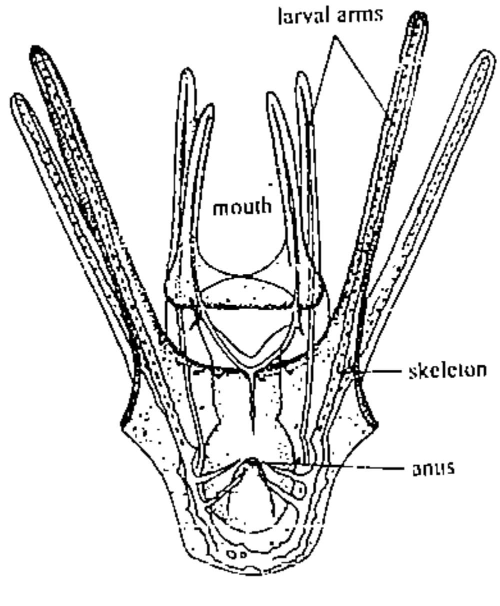

चित्र 6.69 : इकाइनोप्लूटियस लार्वा।

6.4.4 क्लास होलोथ्यूरॉइडिया

शरीर खीरे जैसा; भुजाएं नहीं, कंटक नहीं, पेडिसेलैरी नहीं, अस्थिकाएं सूक्ष्म तथा पेशीय भित्ति में गढ़ी हुई, गुदा होती है, नाल पाद चूषकों सहित, वीथि खांचे बन्द, रूपांतरित नालपादों से परिमुख स्पर्शक बन गए हैं; मैड्रेपोराइट भीतरी।

होलोथ्यूँराइडों को सामान्यतः समुद्री खीरे कहते हैं क्योंकि इनकी शक्ल खीरों जैसी होती है (चित्र 6.70)। ये अन्य इकाइनोडर्मो से अनेक बातों में भिन्न होते हैं। होलोथ्यूरॉइड अपने मुख-अपमुख अक्ष में बहुत ज़्यादा लम्बे हो गए हैं। अस्थिकाएं (चित्र 6.71) अत्याधिक ह्रासित हो गयी हैं तथा वे पेशीय, मोटी एवं चर्मीय देहभित्ति के भीतर गड़ी होती हैं जिसके फलस्वरूप ये प्राणी नरम शरीर वाले हो गए हैं। ये समुद्र की तली में या तो बिलकारी रूप में घुसे होते हैं या वहां रेंगते रहते हैं या चट्टानों के नीचे रहते पाए जाते हैं। चूंकि ये प्राणी सामान्यतः एक ही पार्श्व पर पड़े होते हैं इसलिए संचलनी नालपाद देह की केवल उसी दिशा में होते पाए जाते हैं और वे केवल तीन वीथि खांचों तक ही सीमित होते हैं। इस दिशा को **तलवा (sole)** कहते हैं। मगर कुछ स्पीशीज़ में नालपाद पांचों वीथि खांचों में अर्थात् समस्त शरीर पर वितरित हुए हो सकते हैं। दस से तीस तक की संख्या में आकुंचनी मुख स्पर्शक होते हैं जो रूपांतरित नालपाद होते हैं। समुद्री खीरे बड़े सुस्त प्राणी होते हैं। मुख स्पर्शकों से निकला हुआ श्लेष्म निलम्बित आहार कणों को अपने में फांस लेता है। उसके बाद ये स्पर्शक एक-एक करके मुख के भीतर से ग्रसनी में ठूंस लिए जाते और आहार कण चूस लिए जाते हैं।

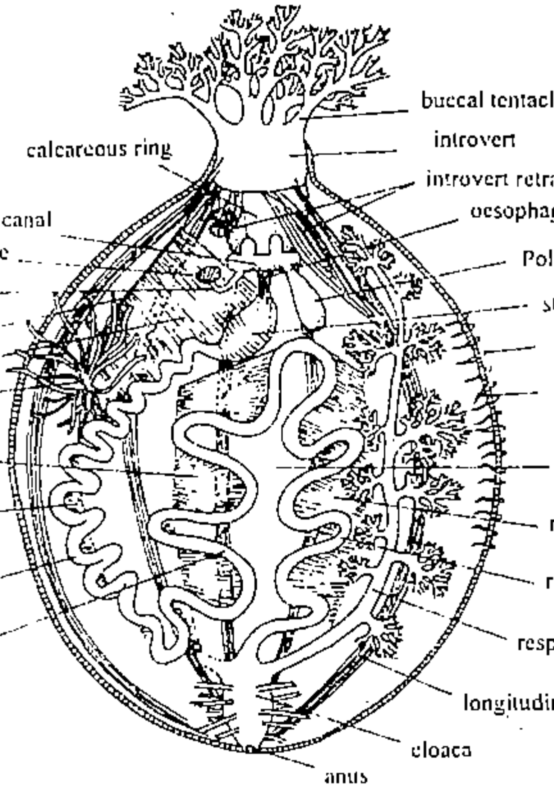

चित्र 6.70 : समुद्री खीरे की आंतरिक संरचना।

होलोथ्यूरियनों में तरल से भरी सीलोमी गुहा पायी जाती है। पाचन-तंत्र में ग्रसिका, आमाशय तथा आंत्र होती हैं। आंत्र एक अवस्कर (Doaca) के द्वारा बाहर को खुलती है (चित्र 6.70)। सीलोमी गुहा में एक विचित्र प्रकार श्वसन वृक्ष (चित्र 6.71) होता है, जिसमें दो लम्बी बहुत ज़्यादा विशाखित नलिकाएं होती हैं। यह अवस्कर में खुलता है। अवस्कर पेशियां अवस्कर को संकुचित कर-कर के जल को भीतर लेती और निकालती जाती हैं जिससे गैस-विनिमय होता है। गैस-विनियम त्वचा तथा नालपादों के द्वारा भी होता है। श्वसन-वृक्ष का कार्य उत्सर्जन में भी होता है। हीमल अथवा परिसंचरण तंत्र और साथ में जल संवहनी तंत्र भी मौजूद होता है। मैड्रेपोराइट विचित्र है क्योंकि वह सीलोम में स्थित होता है। सेक्स कुल मिलाकर अलग-अलग होती हैं। होलोथुरियनों में एक अयुग्मित गोनड होता है जो नलिकाओं के बने एक या दो गुच्छों के रूप में दिखायी देता है।

युग्मक पानी में छोड़ दिए जाते हे तथा निषेचन बाहरी होता है। निषेचित अण्डे में एक स्वच्छंद तैरने वाला लार्वा बनता है जिसे **औरिकुलेरिया (auricularia)** कहते हैं (चित्र 6.72) जिसमें कायांतरण होकर वयस्क बन जाता है। समुद्री खीरे आत्म-सुरक्षा के लिए अपने शरीर को स्वयं ही तोड़ डालते हैं। विक्षुब्ध होने पर ये अपने देह-भित्ति को फोड़ कर अपने अंतरंग को बाहर निकाल फेंक सकते हैं। ये अपने भीतरी भागों को गुदा के माध्यम से भी बाहर निकाल दे सकते है उसके बाद हानि हुए अंगों का पुनरुद्भवन हो जाता है। उदाहरण : *होलोथूरिया, लेप्टोसाइनैप्टा (Leptosynapta), साइनैप्टा (Synapta)*।

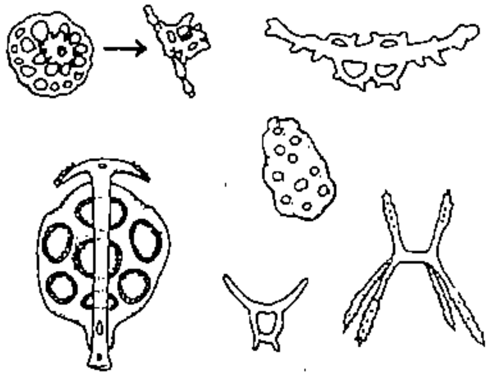

चित्र 6.71 : समुद्री खीरे की अस्थिकाएं।

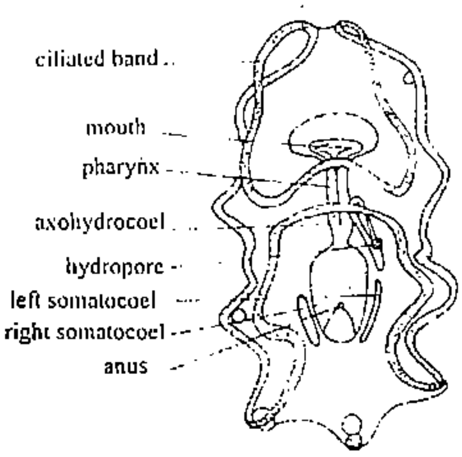

चित्र 6.72 : औरिकुलेरिया लार्वा।

6.4.5 क्लास क्रिनॉइडिया

पांच भुजाएं, मगर आधार पर विशाखित, इनमें पिन्यूल (pinnules, पिच्छिकाएं) बने होते हैं, मुख सतह पर वीथि खांचे बनी होती है जिनमें नालपाद होते हैं। स्पर्शक नहीं होते। कंटक नहीं, मैड्रेपोराइट नहीं, पेडिसेलेरी नहीं।

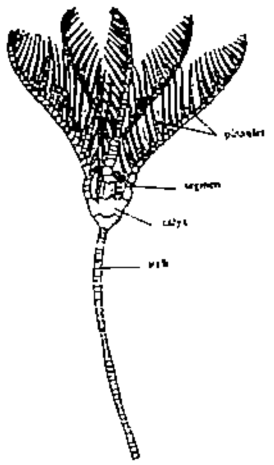

चित्र 6.73 : समुद्री लिली।

क्लास क्रिनॉइडिया में समुद्री लिली (चित्र 6.73) तथा फैदर-स्टार (feather stars, "पिच्छ-तारे") आते हैं। ये इकाइनोडर्मों में सर्वाधिक आदिम होते हैं। जीवित उदाहरणों की तुलना में जीवाश्म उदाहरण अधिक संख्या में पाए जाते हैं। जीवित क्रिनॉइड 15-30 से.मी. के बीच अलग-अलग लम्बाई के होते हैं। समुद्री-लिलियों के शरीर की आकृति एक फूल-जैसी होती है जो एक संलग्न वृंत के ऊपर बना होता है। फैदर-स्टार स्वच्छंद जीवी होते हैं और उनमें लम्बी एवं बहुशाखी भुजाएं होती है, हालांकि ये बहुत-बहुत लम्बे कालों तक एक ही स्थान पर बने रहते हैं। साथ ही फैदर-स्टार जो कायांतरण के दौरान अवृंत अथवा वृंतयुक्त होते हैं, अपने को वृंत से तोड़कर स्वच्छंदजीवी बना लेते हैं। अनेक क्रिनॉइड बहुत-बहुत गहराइयों पर पाए जाते हैं मगर कुछ फैदर-स्टार उथले जल में रहते हैं।

क्रिनॉइडों की देह डिस्क जिसे **केलिक्स (caylx)** कहते हैं, एक चर्मीय त्वचा **टेग्मेन (tegmen)** से ढकी रहती है। टेग्मेन में केल्सियमी प्लेटें होती हैं। पांच लचीली भुजाएं होती हैं जिनमें विशाखन होकर और अधिक भुजाएं बन जाती हैं। प्रत्येक भुजा पर अनेक पार्श्व पिच्छिकाएं (पिन्नयूल) बनी होती हैं। केलिक्स तथा भुजाएं मिलकर बनी सम्पूर्ण रचना को **क्राउन** (crown, किरीट) कहते हैं। संलग्न उदाहरणों में शरीर की अपमुख सतह पर एक लम्बा वृंत होता है। यह वृंत भी अनेक संधित प्लेटों का बना होता है और उन पर सिर्रस (cirri) बने हो सकते हैं। क्रिनॉइडों में मैड्रेपोराइट, कंटक तथा पेडिसेलेरी नहीं होते।

मुख भीतर को एक छोटी ग्रसिका में खुलता है और ग्रसिका के पीछे लम्बी आंत्र होती है (चित्र 6.74)। आंत्र में से अंधवर्ध निकले होते हैं, और फिर वह अपमुख की तरह थोड़ी दूर तक चलने के बाद एक पूरा घुमाव लेकर बाहर गुदा पर खुलती है, गुदा एक उभरे शंकु पर स्थित होती है। क्रिनॉइड छोटे-छोटे जीवों को खाते हैं जिन्हें वे अपनी वीथि खांचों में नालपादों एवं श्लेष्म जालों से पकड़ते हैं। सिलियायुक्त वीथि खांचे आहार को मुख में को पहुंचा देती हैं। जल-संवहनी तंत्र प्ररूपी इकाइनोडर्म योजना वाला होता है हालांकि मैड्रेपोराइट नहीं होता। तंत्रिका-तंत्र में एक मुखीय तंत्रिका वलय होता है जिसमें से एक-एक अरीय तंत्रिका प्रत्येक भुजा में को चलती जाती है। संवेदी अंग थोड़े ही एवं आदिम प्रकार के होते हैं। क्रिनॉइडों में सेक्स अलग-अलग होती हैं। गोनड जनन गुहा में कोशिका संहतियों में प्रकट होते हैं। शुक्राणु तथा अण्डे भित्ति को फोड़ कर बाहर निकल जाते हैं। निषेचन बाहरी होता है। परिवर्धन में एक स्वच्छंद तैरने वाली लार्वा अवस्था **डोलियोलेरिया (doliolaria)** होती है, यह लार्वा बाद में किसी अध:स्तर पर चिपककर कायांतरण करके वयस्क बन जाता है। उदाहरण **ऐंटीडॉन (Antedon), हेटेरोमीट्रा (Heterometra)।**

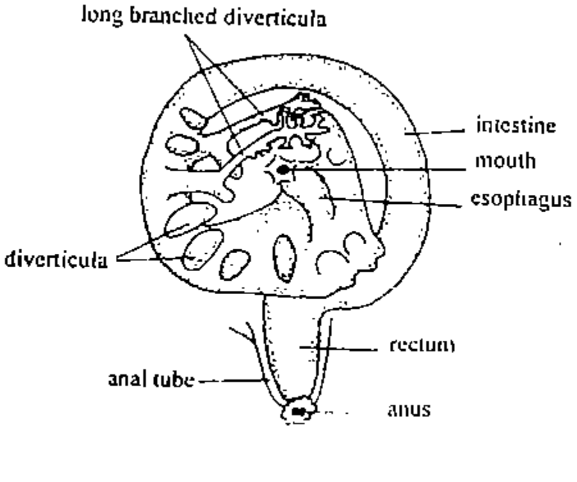

चित्र 6.74 : समुद्री लिली का पाचन तंत्र।

बोध प्रश्न 5

1. बताइए कि निम्न कथन सही हैं (T) अथवा गलत (F)
   1. ब्रिटिल-स्टार वेलापवर्ती होते हैं। (T/F)
   2. ओफ़ियूरॉइडों में प्रपुटियों (वर्सो) का प्रकार्य श्वसन करना है। (T/F)

3. ब्रिटिल-स्टारों में नालपाद संचलन में सहायता करते हैं। (T/F)
4. इकाइनॉइड कवच संहत होता है तथा डर्मल प्लेटों के निकटत: सीवनित हो जाने से बनता है। (T/F)
5. अरस्तू की लालटेन समुद्री अर्चिनों का एक संहत चर्वण अंग होती है। (T/F)
6. होलोथ्यूरियनों में आकारिकीय एवं कार्यिकीय दोनों दृष्टि से अन्य इकाइनोडर्मों से बहुत निकट की समानता होती है। (T/F)
7. होलोथ्यूरियनों का श्वसन वृक्ष श्वसनी तथा उत्सर्गी दोनों प्रकार का प्रकार्य करता है। (T/F)
8. समुद्री लिली तथा फ़ैदर-स्टार सर्वाधिक उन्नत इकाईनोडर्म होते हैं। (T/F)
9. क्रिनॉइडों में मैड्रेपोराइट नहीं होता। (T/F)

II. A के नीचे दिए गए मदों को B के नीचे दिए गए मदों के साथ मिलाइए:

	A		B
1.	होलोथ्यूरॉइडिया	a)	डोलियोलेरिया
2.	क्रिनॉइडिया	b)	बाइपिन्नेरिया
3.	ऐस्ट्रेरॉइडिया	c)	इकाइनोप्लूटियस
4.	इकाइनॉइडिया	d)	ओफ़िओप्लूटियस
5.	आफ़ियूरॉइडिया	e)	औरिकुलेरिया

6.5 अन्य फ़ाइलम (OTHER PHYLA)

इस तरह आपने अब तक अकशेरूकियों के सभी मुख्य फ़ाइलमों का अध्ययन कर लिया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य अकशेरूकी फ़ाइलम भी हैं। इनमें से प्रत्येक में बहुत ही सीमित संख्या में प्राणी-स्पीशीज़ आती हैं। इनमें से अधिकतर फ़ाइलमों की जानकारी बहुत ही कम है इसलिए अन्य प्राणियों के साथ इनकी बंधुताओं को ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता है। अत: प्राणि-जगत में इन्हें सही-सही स्थान पर रखना अत्यन्त कठिन है।

यहां इन फ़ाइलमों का विस्तार से वर्णन करना संभव नहीं है क्योंकि यह इस पाठ्यक्रम की सीमाओं से बाहर है। अत: उसकी बजाए यहां उनकी मात्र सूची ही दी जा रही है। प्रत्येक फ़ाइलम की स्पीशीज़ की लगभग संख्या कोष्ठकों में दी गयी है। प्राणि-जगत में इनका मोटा-मोटा स्थान भी उनके सामने दिया गया है। इनकी देह-संरचना आगे दिए गए आरेखों में दर्शायी गयी है। इस वर्णन से आपको इन फ़ाइलमों के विषय में एक संक्षिप्त कल्पना प्राप्त हो सकेगी।

फ़ाइलम का नाम	स्पीशीज़ की संख्या	स्थान	
प्लैकोज़ोआ (Placozoa)	1	पैराज़ोआ	
मीज़ोज़ोआ (Mesozoa)	50	प्रोटोस्टोमिया	एसीलोमैटा
नीमर्टिना (Nemertina) (निमर्टिया)	650	वही	वही
नैथोस्टोमुलिडा (Gnathostomulida)	80	वही	वही
गैस्ट्रोट्राइका (Gastrotricha)	400	वही	स्यूडोसीलोमैटा
काइनोरिंका (Kinorhyncha)	100	वही	वही

नीमैटोफ़ोरा (Nematophora)	230	वही	वही
एकैंथोसेफ़ैला (Acanthocephela)	500	वही	वही
एंटोप्रोक्टा (Entoprocta)	60	वही	वही
लोरिसिफ़ेरा (Loricifera)	(बिल्कुल हाल ही में वर्णित)	वही	दीर्णसीलोमी सीलोमैट-प्राणी
प्राएपुलिडा (Priapulida)	9	वही	वही
साइपनकुलिडा (Sipunculida) *(साइपनकुला)*	300	वही	वही
एक्यूरा (Echiura)	100	वही	वही
पोगोनोफ़ोरा (Pogonophora)	80	वही	वही
टार्डिग्रेडा (Tardigrada)	400	वही	वही
पेंटास्टोमिडा (Pentastomido)	90	वही	वही
फ़ोरोनिडा (Phoronida) (लोफ़ोफ़ोरयुक्त)	10	वही	वही
एक्टोप्रोक्टा (Ectoprocta) (लोफ़ोफ़ोरयुक्त)	60	वही	वही
ब्रैकेयोपोडा (Brachiopoda) (लोफ़ोफ़ोरयुक्त)	280	वही	वही
कीटोग्नैथा (Chaetognatha)	50	ड्यूटेरोस्टोमिया	आंत्रसीलोमी
हेमिकॉर्डेटा (Hemichordata)	80	वही	वही

6.6 सारांश

इस इकाई में अपने निम्न चीजें सीखीं :

- फ़ाइलम मौलस्का कोमल शरीर वाले प्राणियों का एक बड़ा फ़ाइलम है जिसमें 50,000 से अधिक जीवित स्पीशीज़ आती हैं। इन द्विपार्श्वतः सममित कोमल शरीर वाले प्राणियों में सामान्यतः एक बाहरी कैल्सियमी कवच पाया जाता है जिससे उन्हें सुरक्षा मिलती है। एक अधर पेशीय पाद संचलन में सहायता करता है। पृष्ठतः प्राणी का शरीर जिसे अंतरंग संहति कहते हैं देह-भित्ति से ढकी रहती है, तथा प्रावार-नामक इसी भित्ति के भीतर एक गुहा, प्रावार गुहा, घिरी रहती है। प्रावार गुहा के भीतर स्थित गिल अथवा टेनिडयम प्रवसन संरचनाएं होती हैं। अनेक मौलस्क शाकभक्षी होते हैं जो शैवालों तथा अन्य पौधों को खाते हैं। आहार संग्राहक अंग - ओडोण्टोफ़ोर तथा रेडुला मुख गुहा के भीतर स्थित होते हैं। सीलोम पृष्ठतः परिहृद से घिरे अवकाश तथा अधरतः आंत्र के अंश तक ही सीमित होती है। परिसंचरण

तंत्र में एक त्रिकक्षीय हृदय, रक्त वाहिकाएं तथा रक्त साइनस होते हैं। उत्सर्जन नेफ्रिडिया तथा वृक्कों द्वारा होता है। तंत्रिका-तंत्र में एक मस्तिष्क, पार्श्व, पाद एवं अंतरंग गैंग्लिया तथा उनसे संबद्ध समयोजी एवं संयोजी होते हैं। मौलस्क उभयलिंगी हो सकते हैं अथवा पृथकलिंगी। निषेचन बाहरी हो सकता है या भीतरी। भीतरी निषेचन वाले इन प्राणियों में शुक्राणु-स्थानांतरण या तो सीधा ही होता है या शुक्राणुधरों के माध्यम से। परिवर्धन में एक या दो लार्वा अवस्थाएं हो सकती हैं जो ट्रोकोफ़ोर तथा वेलिजर होती हैं।

- फ़ाइलम मौलस्का में सात क्लास आते हैं। इनमें से क्लास मोनोप्लैकोफ़ोरा में सबसे आदिम मौलस्क आते हैं। क्लास पौलीप्लैकोफ़ोरा में काइटॉन आते हैं जिनका पृष्ठ अधरतः चपटा हो गया शरीर आठ कोरछादी प्लेटों से ढका होता है। क्लास एप्लैकोफ़ोरा में कवचविहीन मौलस्क आते हैं जिन्हें सॉलीनोगैस्टर कहते हैं। शेष चार क्लास हैं - गैस्ट्रोपोडा, बाइवैल्विया, स्कैफ़ोपोडा तथा सेफ़ैलोपोडा। गैस्ट्रोपोडा मौलस्कों का सबसे बड़ा क्लास है, इसके सदस्य समुद्र, अलवण जल तथा स्थलीय पर्यावरणों में रहते पाए जाते हैं। इनमें घोंघे तथा स्लग शमिल हैं। घोंघों में एक शंक्वासर्पिल कवच होता है तथा अंतरंग संहति में 90° से 180° का घुमाव आ गया है जिसे मरोड़ (टॉर्शन) कहते हैं। पाद, जो एक चपटा रेंगने वाला तलवा होता है, इनका प्ररूपी संचलन अंग होता है। बाइवैल्विया में, जैसा कि इस नाम से ही प्रकट होता है, कवच दो कपाटों का बना होता है तथा शरीर पार्श्वतः चपटा हो गया होता है। सेफ़ैलोपोडों में, नौटिलस को छोड़कर, कोई बाहरी कवच नहीं होता। सेफ़ैलोपोडों को समस्त अकशेरूकियों में सर्वाधिक विकसित माना जा सकता है क्योंकि इनमें एक सुविकसित तंत्रिका-तंत्र और साथ में परिसंचरण तंत्र भी होता है।
- इकाइनोडर्म सबसे बड़े ड्यूटेरोस्टोम वर्ग होते हैं तथा ये ही एकनिष्ट समुद्र-आवासी हैं। वयस्कों में अरीय सममिति होती है हालांकि लार्वो में द्विपार्श्व सममिति पाई जाती है। यह समुद्र में नितलस्थ में पाए जाते हैं तथा ये कण-आहारक, चारण करने वाले, अपमार्जक अथवा परभक्षी होते हैं। इकाइनोडर्मों में सामान्यतः एक केंद्रीय डिस्क को घेरती हुई पांच भुजाएं होती हैं। शीर्ष तथा विशेषित संवेदी अंग नहीं होते। जिस दिशा में मुख बना होता है वह मुख-सतह होती है और गुदा सामान्यतः अपमुख सतह पर खुलती है। इनमें अंतःकंकाल के रूप में डर्मल अस्थिकाएं होती पाई जाती हैं, श्वसन के लिए पैपुले होते हैं तथा वीथि क्षेत्र खुले होते हैं। पेडिसेलेरी नामक संरचनाएं मौजूद हो सकती हैं, जिनका कार्य सुरक्षा करना है। केवल इकाइनोडर्मों में ही पाया जाने वाला सबसे अलग जल-संवहनी तंत्र कुछ सीलोमी गुहाओं से व्युत्पन्न हुआ होता है। यह कई अलग-अलग कार्य करता है जैसे कि संचलन, आहार-संग्रहण, श्वसन तथा परिसंचरण। इकाइनोडर्मों में हीमल तंत्र होता है जो एक अनिश्चित प्रकार का कार्य करता है। सेक्स अलग अलग होती हैं तथा जनन तंत्र सरल प्रकार के होते हैं। परिवर्धन में एक लार्वा अवस्था तो होती ही होती है। इस फ़ाइलम में पांच क्लास आते हैं - ऐस्टेरॉइडिया, ओफ़ियूरॉइडिया, इकाइनॉइडिया, होलोथ्यूरॉइडिया तथा क्रिनॉइडिया।

6.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. फ़ाइलम मौलस्का के पहचान लक्षण क्या क्या हैं?

....

....

....

2. काइटॉनों की संघटना के विषय में संक्षेप में लिखिए।

....

....

....

3. मरोड़ (टॉर्शन) किसे कहते हैं? गैस्ट्रोपोडा मे मरोड़ की प्रक्रिया का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

....

....

....

4. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :
   a) बाइवैल्विया का कवच
   b) क्रिस्टलीय स्टाइल

....

....

....

5. इकाइनोडर्मों के वे सबसे अलग प्रकार के लक्षण कौन से हैं जो अन्य फ़ाइलमों में नही पाए जाते?

....

....

....

6. समुद्री-तारा (sea star) के जल-संवहनी तंत्र का वर्णन कीजिए।

....

....

....

7. फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा के विभिन्न क्लासों के नाम लिखिए तथा प्रत्येक क्लास का एक-एक उदाहरण दीजिए।

....

....

....

6.8 उत्तर

बोध प्रश्न 1

a) घोंघे, सीपी तथा स्क्विड
b) खनिज युक्त कवच
c) अंतरंग संहति
d) प्रावार
e) टेनिडिया
f) ओडोंटोफोर तथा रेडुला
g) परिहृद् गुहा
h) हीमोसाएनिन
i) ट्रोकोफ़ोर, वेलिजर

बोध प्रश्न 2

(i) c, e, i (ii) a,b, f, h (iii) d, g

बोध प्रश्न 3

I (i) 1. स्पष्ट शीर्ष का बनना 2. शरीर का पृष्ठ-अधरतः लम्बा हो जाना
3. गैस्ट्रोपोडों में मरोड़ का होना 4. प्लेट सदृश कवच का सर्पिल असममित कवच में बदल जाना।

(ii) मरोड़ में शीर्ष तथा पाद के सापेक्ष अंतरंग संहति 180° घूम जाती है। शीर्ष के पीछे होने वाले इस वामावर्ती घुमाव के परिणामस्वरूप, पृष्ठ दिशा से देखने पर गिल, प्रावार गुहा, गुदा तथा नेफ्रिडियोपोर शरीर के अग्र भाग में शीर्ष के पीछे आ जाते हैं।

(iii) मौलस्क कवच में तीन परतें पायी जाती हैं – बाहरी श्रृंगीय परत जो एक रूपांतरित प्रोटीन कोंकियोलिन की बनी होती है। मध्य परत प्रिज़्मीय परत होती है जो प्रोटीन के एक मैट्रिक्स में भरे कैल्सियम कार्बेनेट के प्रिज़्मों की बनी होती है। और तीसरी मुक्ताभ परत कैल्सियमी परत होती है।

(iv) बाइवैल्वों में बड़ी प्रावार गुहा के भीतर स्थित बड़े आकार के गिल इनके श्वसन अंग होते हैं।

(v) प्रोज़ोब्रैंकिया, ओपिस्थोब्रैंकिया, पल्मोनैटा

II A-F, B-F, C-T, D-T, E-T, F-T, G-T, H-T, I-T, J-T.

III A) स्कैफ़ोपोडा B) केप्टेक्यूला C) नौटिलस D) गैस, उत्प्लावकता E) गिल F) एंडोथीलियम G) ताराकार H) शुक्राणुधर

बोध प्रश्न 4

a) अरीय, द्विपार्श्व b) डर्मल अस्थिकाएं c) जल संवहनी d) नालपाद डर्मल ब्रैंकी
e) पेडिसेलेरी f) बाइपिन्नेरिया, ब्रैकियोलेरिया

बोध प्रश्न 5

I- 1-F, 2-F, 3-T, 4-T, 5-T, 6-F, 7-T, 8-F, 9-T.

II- 1-e, 2-a, 3-b, 4-c, 5-d.

"अंत में कुछ प्रश्न" के उत्तर

1. देखिए अनुभाग 6.2

2. देखिए अनुभाग 6.2.2

3. देखिए अनुभाग 6.2.4

4. (a) देखिए अनुभाग 6.2.5
(e) क्रिस्टलीय स्टाइल, लैमेलिब्रैंकों के जठर में पायी जाने वाली संरचना है। यह एक संहत एवं लम्बी जिलेटिनी शलाका होती है जिससे ऐमाइलेज़ तथा लाइपेज़ एंजाइमों का स्राव होता है।

5. i) पंचतयी अरीय सममिति का पाया जाना।
ii) कैल्सियमी अस्थिकाओं के रूप में अंतःकंकाल का पाया जाना
iii) जल-संवहनी तंत्र का पाया जाना जो संचलन, श्वसन तथा पोषकों के अभिगमन का कार्य करता है
iv) स्पष्ट शीर्ष तथा मस्तिष्क का अभाव

v) डर्मल ब्रैंकी, नालपादों तथा श्वसन वृक्ष (होलोथूरॉइडिया में) तथा प्रपुटियों (ओफियूरॉइडिया में) के द्वारा

vi) उत्सर्गी अंगों का न होना

vii) लार्वा अवस्थाओं में द्विपार्श्व सममिति का पाया जाना

6. I देखिए अनुभाग 6.5.1

II

1.	ऐस्टेरॉइडिया	समुद्री तारा
2.	ओफियूरॉइडिया	ब्रिटिल-स्टार
3.	इकाइनॉइडिया	समुद्री अर्चिन
4.	होलोथ्यूरॉइडिया	समुद्री खीरा
5.	क्रिनॉइडिया	समुद्री लिली

इकाई 7 कंकाल और बहुरूपता

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
7.2 कंकाल
बाह्यकंकाल
अंत:कंकाल
द्रवकंकाल
7.3 बहुरूपता
नाइडेरिया
कीट
7.4 सारांश
7.5 अंत में कुछ प्रश्न
7.6 उत्तर

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम अकशेरुकी मेटोज़ोअनों के दो पहलुओं का अध्ययन करेंगे - (i) कंकाल (Skeleton) तथा (ii) बहुरूपता (polymorphism)। अनुभाग 7.2 में आप कंकाल के विषय में पढ़ेंगे अर्थात् किसी भी ऐसी संरचना के विषय में जो आकृति को बनाए रखती, शरीर को आलम्ब अथवा सुरक्षा प्रदान करती तथा बलों का संचरण संभव बनाती है। इसमें आप अकशेरुकियों में पाए जाने वाले तीन प्रकार के कंकालों का उदाहरण सहित भी अध्ययन करेंगे, जो इस प्रकार हैं - (a) बाह्यकंकाल (exoskeleton) (b) अंत: कंकाल (endoskeleton) तथा (c) द्रवस्थैतिक कंकाल (hydrostatic skeleton)।

अनुभाग 7.3 में आप बहुरूपता के विषय में पढ़ेंगे, एक ऐसी परिघटना जिसके अंदर एक ही स्पीशीज़ के भीतर दो या अधिक स्वरूप होते पाए जाते हैं। बहुरूपता विभिन्न प्राणी समूहों में अनेक प्रकार की होती पायी जाती है। हम इस परिघटना का अध्ययन दो प्राणी-वर्गों में करेंगे, जिनमें यह सुविकसित होती एवं भली भांति वर्णन की गयी है, ये वर्ग हैं (1) नाइडेरिया तथा (2) आर्थ्रोपोडा।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- कंकाल की परिभाषा कर सकेंगे तथा बाह्यकंकाल, अंत:कंकाल एवं द्रवस्थैतिक में विभेद कर सकेंगे,
- अकशेरुकियों के विभिन्न फ़ाइलमों में पाए जाने वाले अलग-अलग प्रकार के बाह्य एवं अंत: कंकालों का वर्णन कर सकेंगे,
- बहुरूपता की परिभाषा कर सकेंगे,
- नाइडेरियनों तथा कीटों में बहुरूपता का वर्णन कर सकेंगे,
- पीढ़ी-एकांतरण का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।

7.2 कंकाल

आप सभी जानते हैं कि कंकाल वह चीज़ है जो प्राणी जगत के विभिन्न जीवों के शरीर का एक ढांचा होता है। यह प्राणी को आकृति तो प्रदान करता ही है साथ ही आलम्ब एवं सुरक्षा भी देता है और पेशियों के संलग्न होने का बिंदु भी प्रस्तुत करता है। केवल कशेरुकियों में ही नहीं वरन् अकशेरुकियों में भी

कंकाल के अनेक स्वरूप पाए जाते हैं, यदि कंकाली संरचनाए प्राणी के शरीर कें भीतर गड़ी-दबी होती है तब उसे अंत:कंकाल (endoskeleton) कहते हैं और जब ऐसी संरचनाएं प्राणी के शरीर की सतह पर बनी होती एवं बाहर से दृश्यमान होती है तब वे बाह्यकंकाल बनाती हैं। ये दोनों ही कंकाल दृढ़ प्रकार के होते हैं। मगर कुछ अकशेरूकी प्राणी अपने शरीर के द्रवों को भीतरी द्रवस्थैतिक कंकाल के रूप में भी उपयोग करते हैं।

तो आइए अकशेरूकियों के विभिन्न फ़ाइलमों में पाए जाने वाले तीन प्रकार के कंकालों का अध्ययन करें।

7.2.1 बाह्यकंकाल

अधिकतर अकशेरूकी फ़ाइलमों में कंकाल शरीर के बाहर बना होता है और इसलिए बाहर से ही दिखाई दे जाता है। विभिन्न अकशेरूकियों में आप एक-एक फ़ाइलम में बाह्यकंकाल का अध्ययन करेंगे।

1) **नाइडेरिया (Cnidaria)** - नाइडेरियनों में बाह्यकंकाल का पाया जाना अनेक ऐंथेज़ोआ (Anthozoa) तथा कुछ हाइड्रोज़ोआ (Hydrozoa) का एक प्ररूपी लक्षण है। ऐंथोज़ोआ के सदस्यों में उनके शरीर सिलिंडराकार स्तम्भ-सरीखे होते हैं जिन्हें पौलिप कहते हैं। ये स्थानबद्ध होते हैं तथा समुद्र में अध:स्तर से संलग्न रहते हैं। ये अक्सर कॉलोनी (निवह) के रूप में होते पाए जाते हैं और अपने चारों ओर एक कड़ा कंकाल स्रावित कर लेते है जैसे *मैड्रेपोरा (Madrepora)* (आर्डर मैड्रेपोरैरिया अथवा स्क्लेरेक्टिनिया) (चित्र 7.1)। इन्हें सामान्यत: वास्तविक पथरीले प्रवाल (मूंगे) कहते हैं। एकल पौलिपाइड हाइड्रोज़ोअनों में ठोस बाह्यकंकाल नहीं होता। अधिकतर कॉलोनियों में एक बाह्यकंकाल कम से कम आंशिक रूप में तो होता ही है जिससे वे कहीं पर जुड़े-चिपके रहते हैं एवं उससे उन्हें आलम्ब भी प्राप्त होता है। मगर कॉलोनीय हाइड्रोज़ोअनों का कम से कम एक वर्ग, हाइड्रोकोरलों का वर्ग, तो ऐसा है ही जिनमें कॉलोनियों को घेरता हुआ कैल्सियम कार्बोनेट का बना एक सम्पूर्ण ठोस बाह्यकंकाल स्रावित होता है जैसे कि *मिलेपोरा (Millepora)* (आर्डर हाइड्रोकोरैलाइना) (चित्र 7.2) में। एक प्रवाल के कंकाल को कोरेलाइट (प्रवालक) कहते हैं। इसका स्राव एपिडर्मिस से होता है तथा यह कैल्सियम कार्बोनेट का बना होता है। कोरेलाइट की आकृति प्याले जैसी होती है और उसके भीतर पौलिप का अपमुख भाग बंद रहता है। प्याले की भित्ति को थीका (theca) कहते हैं तथा इसके आधारीय भाग को **आधार-प्लेट (basal plate)** कहते हैं। इस प्याले की भीतरी सतह से बहुत से उदग्र (खड़े) पट जिन्हें दृढ़पट (sclerosepta) कहते हैं अरीय रूप में निकलकर केंद्र की ओर को बढ़ते जाते हैं। इन दृढ़पट के भीतरी सिरे, हो सकता है कि परस्पर समेकित होकर एक अनियमित आकृति की केंद्रीय कंकाल-संहति बना लें जिसे कॉलुमेला (columnella) कहते हैं (चित्र 7.3)।

चित्र 7.1 : *मैड्रेपोरा* का दृढ़ बाह्यकंकाल।

चित्र 7.2 : *मिलेपोरा* का दृढ़ बाह्यकंकाल जो कैल्सियम कार्बोनेट का बना होता है।

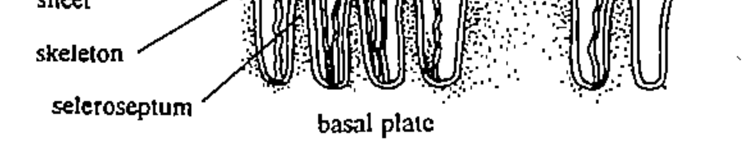

चित्र 7.3 : कॉलोनीय स्क्लेरेक्टीनियन प्रवाल जिनमें एक पौलिप को उसके कंकाल प्याले के भीतर दर्शाया गया है (अनुदैर्ध्य सेक्शन)।

कॉलोनीय प्रवालों में, व्यष्टिगत पौलिपों के कोरेलाइट एक साथ समेकित होकर एक कंकाल-संहति बना ले सकते हैं जिसे कोरेलियम (corallium) कहते हैं। प्रवाल कॉलोनियों के आकार की वृद्धि नए-नए पौलिपों के मुकुलन होते जाने से होती है और वे प्रवाल-कंकालों अर्थात् कोरेलाइटों के बहुत बड़े-बड़े पिंड से बना लेते हैं। इसी प्रक्रिया से बड़ी-बड़ी विशाल संरचनाएं बन जाती हैं जिन्हें प्रवाल-भित्तियां (coral reefs) कहा जाता है। इनके निर्माणकारी प्राणी पथरीले प्रवाल होते हैं अर्थात् क्लास ऐंथोज़ोआ के आर्डर स्क्लेरेक्टिनिया (मैड्रेपोरेरिया) के सदस्य।

प्रवालों के बाह्यकंकाल सामान्यतः सफेद रंग के होते हैं किंतु वे नाना प्रकार के चटकीले रंगों के भी हो सकते हैं जैसे लाल, हरे अथवा नीले। इन्हीं में से एक है लाल प्रवाल *कोरैलियम रूब्रम (Corrallium rubrum)* (मूंगा) जो भारत तथा चीन में एक मूल्यवान पत्थर माना जाता है और साथ ही शुभ भी माना जाता है।

2) **आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)** – अधिकांश आर्थ्रोपोडों में, जिनमें केकड़े, कीट तथा मकड़ियां भी शामिल हैं, बाह्यकंकाल एक दृढ़ एवं सम्मिश्र क्यूटिकल का बना होता है और यह क्यूटिकल पौलीसैकेराइड तथा प्रोटीन के बंधन से बनी काइटिन (chitin) की बनी होती है। इसके अतिरिक्त, केकड़ों तथा अन्य क्रस्टेशियनों के बाह्यकंकाल में कैल्सियम कार्बोनेट भी शामिल हो गया होता है।

आर्थ्रोपोडों में क्यूटिकल का स्राव नीचे स्थित एपिडर्मिस द्वारा होता है। इसकी बनावट में दो भाग होते हैं, एक तो पतला सतही एपिक्यूटिकल (epicuticle) का भाग और दूसरा अधिक मोटा प्रोक्यूटिकल (procuticle) का भाग। (एपिक्यूटिकल में, और वह भी ख़ास तौर से स्थलीय स्पीशीज़ की एपिक्यूटिकल में विविध मोम पाए जाते हैं; जब ये मोम नहीं होते तब बाह्यकंकाल जल एवं गैसों के लिए अपेक्षाकृत अधिक पारगम्य होता है।) प्रोक्यूटिकल के और आगे दो उपविभाजन होते हैं – एक तो बाहरी बाह्यक्यूटिकल (exocuticle) और दूसरा भीतरी एंडोक्यूटिकल (endocuticle)। एपिक्यूटिकल अन्य भागों की अपेक्षा अधिक दृढ़ होती है क्योंकि इसमें "टैनिंग" (विशेष रंगदार पदार्थों का जमाव) हो गया होता है। इसकी आण्विक संरचना एक तो फीनॉलों (phenols) के साथ अभिक्रिया द्वारा स्थायी हो गयी होती है तथा दूसरे प्रोटीन अणुओं में अतिरिक्त अनुप्रस्थ बंधन बन गए होते हैं। बाह्यकंकाल में से संवेदी प्रवर्ध निकले होते हैं। इसमें अन्दर त्विग्रंथियों की वाहिनियां चलती जाती होती हैं जिनमें से होकर उनके स्राव बाहर को निकलते हैं (चित्र 7.4a)।

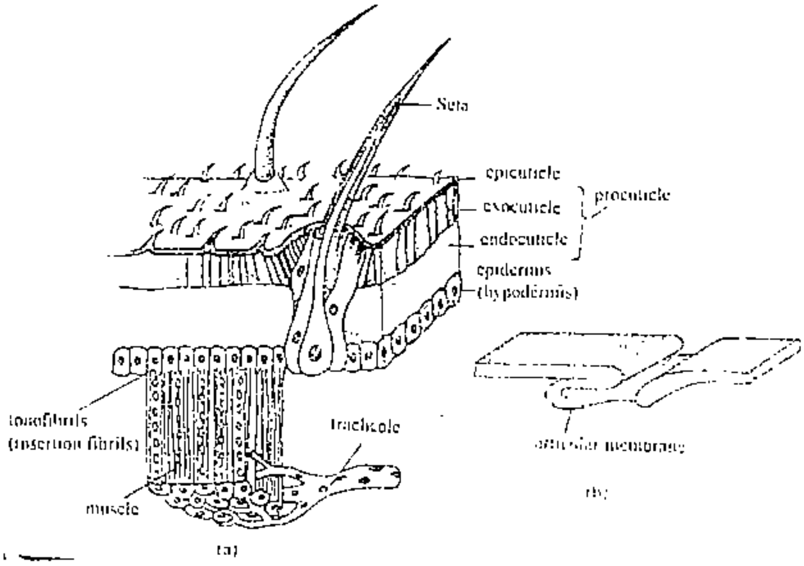

चित्र 7.4 : (a) आर्थ्रोपोड अध्यावरण का त्रिविम सेक्शन (b) एक अंतराखंडीय संधि। संधि-झिल्ली खंडीय समतल के नीचे मुड़ गयी है।

आर्थ्रोपोड बाह्यकंकाल शीर्ष एवं धड़ पर प्लेटों अथवा स्क्लेराइटों (कठकों) के रूप में तथा उपांगों पर दृढ़ नलिका-सरीखे खंडों की श्रृंखला के रूप में विभाजित हो गया होता है। इन नलिका-सरीखे खंडों को परस्पर जोड़ती हुई पतली, वलित, लचीली एवं अकैल्सिकृत झिल्लीदार संरचनाएं होती हैं जिन्हें संधिकारी झिल्ली (arthrodial membrane) कहते हैं (चित्र 7.4b)। इन झिल्लियों के ही कारण गति एवं लचीलापन संभव हो पाता है। फाइलम आर्थ्रोपोडा के विभिन्न क्लासों में वक्ष तथा उदर स्क्लेराइट तीन प्रकार की प्लेटों में विभाजित हो सकते हैं : एक तो पृष्ठ प्लेट जिसे टर्गम (tergum पृष्ठक) कहते हैं, एक अधर प्लेट जिसे स्टर्नम (sternum अधरक) कहते हैं और दोनों पार्श्वों पर बनी पल्ले-जैसी प्लेटें जिन्हें प्ल्यूरा (pleura पार्श्वक) कहते हैं (चित्र 7.5)। क्यूटिकलीय बाह्यकंकाल से जहां एक ओर सुरक्षा प्रदान होती है वहीं दूसरी ओर प्राणी के अन्यथा अत्यन्त कोमल शरीर को दृढ़ता भी प्राप्त होती है। इसी बाह्यकंकाल पर पेशियों के संलग्न होने के वास्ते स्थल बिंदु भी प्रदान होते हैं।

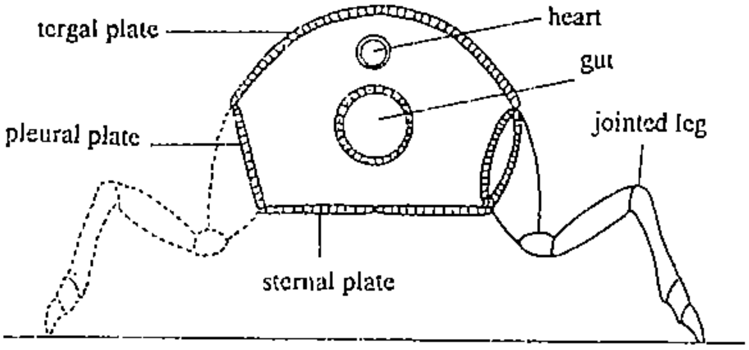

चित्र 7.5 : सामान्यीकृत आर्थ्रोपोड के वक्ष अथवा उदर क्षेत्र से लिया गया अनुप्रस्थ सेक्शन, जिसमें एक स्क्लेराइट के टर्गम, स्टर्नम तथा प्ल्यूरा दर्शाए गए हैं।

3) **मौलस्का (Mollusca)** - फाइलम मोलस्का के अंतर्गत आने वाले प्राणियों में बाह्यकंकाल सर्वाधिक स्पष्ट एवं दृश्यमान होता है। इनका बाह्यकंकाल एक दृढ़ कवच के रूप में होता है। यह मानों एक घर जैसा होता है जिसके भीतर प्राणी रहता है (चित्र 7.6)। यह कैल्सियम कार्बोनेट के प्रिज़्मों (prism) अथवा प्लेटों की परतों के बने होते हैं जो एक कार्बनिक आधार में जमते जाते हैं। कवच की बाहरी सतह पर एक श्रृंगीय प्रोटीन कॉन्कियोलिन (conchiolin) चढ़ा रहता है। कवच का आकार गोल हो सकता है या सर्पिल (Spiral) जैसे कि *पाइला (Pila)* में (चित्र 7.6a) या यह दो उत्तल अर्धांशों का बना हो सकता है जो एक मजबूत हिंज स्नायु द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं जैसे कि *यूनियो (Unio)* में (चित्र 7.6b)।

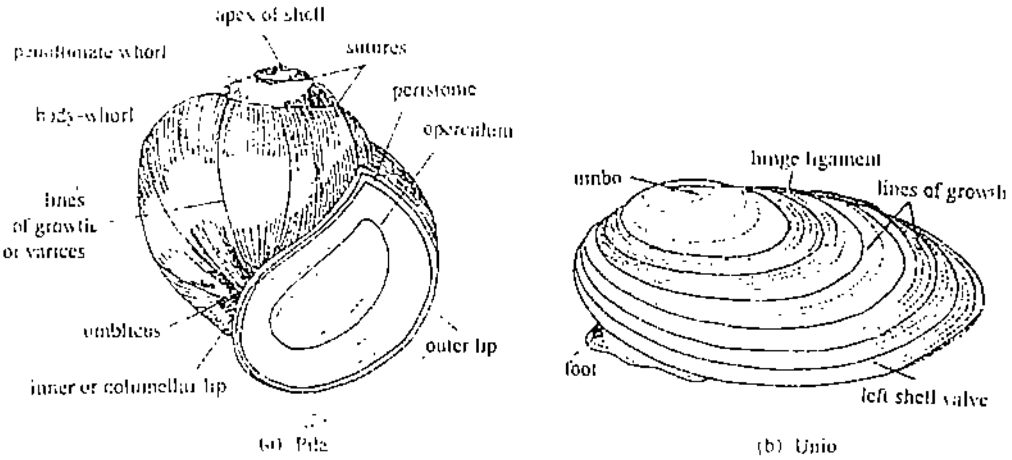

चित्र 7.6 : मौलस्कों में कवचों (बाह्यकंकालों) की विभिन्न आकृतियां।

कवच का स्राव मैंटल (प्रावार) नामक एक त्वचा-पल्ले से होता है जो पूरे प्राणी को ढके रहता है तथा कवच का भीतरी अस्तर बनाता है। चित्र 7.7 में एक मौलस्क में कवच तथा मैंटल का स्थान दर्शाया गया है। कवच की सतह पर बहुसंख्यक वृद्धि रेखाएं बनी होती हैं जैसा कि चित्र 7.6 में दिखायी दे रही हैं।

7.2.2 अंत:कंकाल

अब हम अकशेरुकियों के अंत:कंकाल का अर्थात् उनके भीतरी आलम्बकारी कंकाल का अध्ययन करेंगे।

1) **पोरिफेरा (Porifera)** - लगभग सभी पोरिफेरनों अर्थात् स्पंजों में एक अंत:कंकाल होता है जो उनके शरीर को आलम्ब प्रदान करता तथा उनकी आकृति बनाए रखता है। यह अंत:कंकाल सुई-सरीखी खनिज कंटिकाओं का बना होता है, अथवा कार्बनिक स्पंजिन (spongin) तंतुओं के जालक का अथवा इन दोनों का मिला जुला बना होता है, और ये दोनों प्रकार के अंश विशेष कोशिकाओं द्वारा स्रवित होते हैं। इस प्रकार यह अंत:कंकाल तीन प्रकार का हो सकता है : (i) कैल्सियम कार्बोनेट का जैसे कि *साइफा (Scypha)* में (चित्र 7.8a) अथवा (ii) सिलिका का जैसे कि *यूप्लेक्टेला (Euplectella)* में (चित्र 7.8b) अथवा (iii) स्पंजिन तंतुओं का, जैसे *यूस्पांजिया (Euspongia)* में (चित्र 7.8c); कुछ में इन दोनों का मिला जुला कंकाल पाया जा सकता है अर्थात् कंटिकाओं एवं स्पंजिन तंतुओं का जैसे *क्लायोना (Cliona)* में (चित्र 7.8d)। इस अंत:कंकाल में अतिरिक्त रूप में अथवा इसे और अधिक दृढ़ बनाने के हेतु बाहर के कणों जैसे कि रेत के

कणों, सूक्ष्म जीवों के कंकालों अथवा अन्य स्पंजों की कंटिकाओं को भी शामिल कर लिया जा सकता है जो वे अपने परिवेश में से ले लेते हैं।

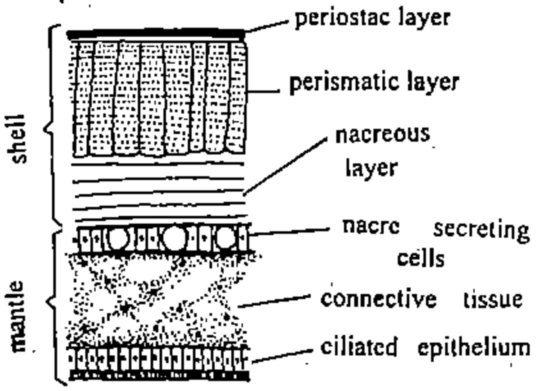

चित्र 7.7 : मौलस्क कवच का T.S. जिसमें कवच तथा प्रावार का एक अंश दर्शाया गया है।

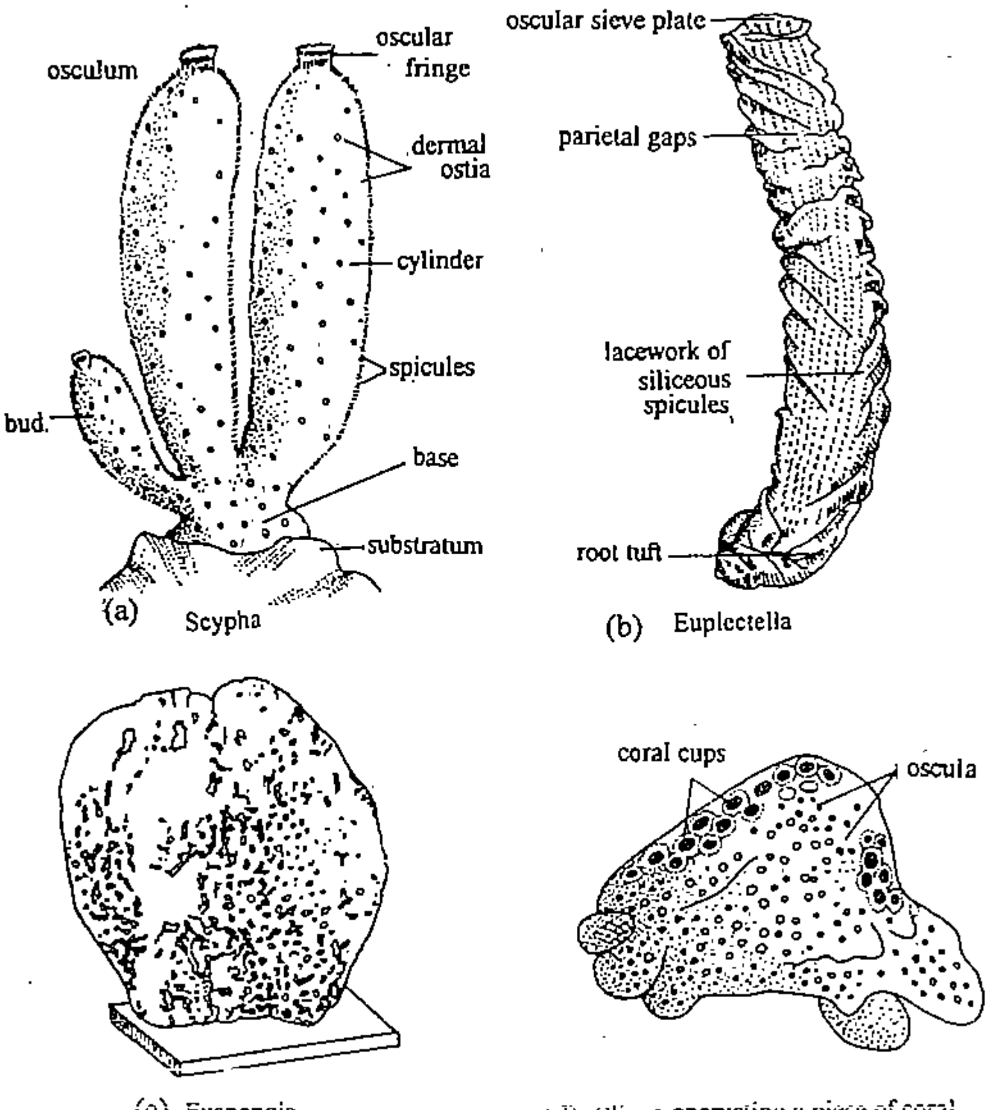

चित्र 7.8 : कुछ पोरिफ़ेरनों के अंत:कंकाल जो अलग-अलग प्रकार की सामग्रियों के बने होते हैं :
(a) साइफ़ा (*Scypha*) में कैल्सियम कार्बोनेट का अंत:कंकाल, (b) युप्लेक्टेला (*Euplectella*) में सिलिका का अंत:कंकाल, (c) यूस्पॉंजिया (*Euspongia*) में स्पंजिन तंतुओं का अंत:कंकाल, (d) क्लायोना (*Cliona*) में कंटिकाओं तथा स्पंजिन तंतुओं का मिला जुला अंत:कंकाल।

चित्र 7.9 स्पंजिन तंतु।

स्पंजिन (चित्र 7.9) - एक कार्बनिक प्रत्यास्थ पदार्थ होता है जो रासायनिक दृष्टि से सल्फ़र से युक्त एक स्क्लेरोप्रोटीन होता है (यह एक अघुलनशील प्रोटीन होता है जो उच्चतर प्राणियों के कंकालों, बालों, नाखूनों तथा नखटों आदि में पाया जाता है)। यह प्रोटीन-पाचक एंजाइमों के प्रति प्रतिसेधी होता है। स्पंजिन तंतु एक जाल के रूप में बने हो सकते हैं जिसमें बीच-बीच में सिलिकामय (सिलिका की बनी) कंटिकाएं गड़ी होती हैं जैसे *क्लायोना* में। *यूस्पंजिया* जैसे प्राणियों में कंटिकाएं अनुपस्थित होती हैं और कोमल शरीर के वास्ते केवल स्पंजिन से ही एक संतत, विशाखित दृढ़ आलम्बकारी प्राधार बन गया होता है। *यूस्पंजिया* का यही दृढ़ तंतुमय कंकाल है जिसे सुखा कर व्यापारिक "बाथ-स्पंज" के रूप में बेचा जाता है।

कंटिकाएं (spicules) - कंटिकाएं छोटे सुई-जैसी क्रिस्टलीय पिंड होती हैं जिनके द्वारा शरीर कड़ा हो जाता है और वह जल की धाराओं से अधिक टूटता बिगड़ता नहीं है। ये कंटिकाएं कैल्सियम कार्बोनेट अथवा सिलिकॉन डाइऑक्साइड की बनी होती हैं। कैल्सियमी स्पंजों में ये कंटिकाएं कैल्सियम कार्बोनेट की बनी होती हैं जो कैल्साइट के रूप में होता है, और उनमें सोडियम, मैग्नीशियम तथा सल्फ़ेट के अंश भी होते हैं, जैसे कि *ल्यूकोसॉलीनिया (Leucosolenia)* तथा *साइफ़ा* में।

सिलिकामय स्पंजों में ये कंटिकाएं साफ़, कांच जैसे जलयोजित अथवा कोलॉयडीय सिलिका जिसे "ओपल" कहते हैं, की बनी होती हैं, जैसे *यूप्लेक्टेल* (हैक्सैक्टिनेलिडा, Hexactinellida) में जिसमें ये कंटिकाएं एक बड़े ही सुन्दर जाल के रूप में एक निश्चित प्रतिरूप में व्यस्थित पायी जाती हैं। अन्य स्पंजों में ये सारे शरीर में छितरायी हो सकती हैं।

आकृति के अनुसार कंटिकाओं को अलग-अलग नाम दिए जाते हैं :

i) **एकाक्षक (Monaxons)** - ये सरल शलाका अथवा सुई जैसी कंटिकाएं होती हैं जिनका बनना एक अकेले अक्ष पर एक अथवा दोनों दिशाओं में वृद्धि होने के द्वारा होता है (चित्र 7.10)।

ii) **त्रिअक्षक (Triaxons)** - त्रिअक्षक अथवा षडरिक (hexactinal) कंटिका में तीन बराबर के अक्ष होते हैं जो एक दूसरे को समकोण पर काटते होते हैं जिससे कुल छह अरें (किरणें rays) बन जाती हैं (चित्र 7.10b)। इन अरों में ह्रास होकर, उनकी समाप्ति होकर, विशाखन द्वारा, अथवा उनमें वक्रता आने से या फिर उन पर कांटे या घुंडियां बन जाने से तरह-तरह से रूपांतरण हो जाते हैं।

iii) **चतुर्क्षक (Tetraxons)** - ये कंटिकाएं चार-अरों वाली होती हैं; ये चारों अरें एक ही समतल में नहीं होती वरन एक सामान बिंदु से भिन्न-भिन्न दिशाओं में को निकली होती है। इन्हें चतुररिक (tetraradiate अथवा quadriradiate) भी कहा जाता है। इनमें सामान्यतः एक अर अधिक लम्बी होती है और कभी-कभी वह समाप्त भी हो गयी होती है तथा उस दशा में ऐसी कंटिका त्रिअरीय बन जाती है (चित्र 7.10c)।

iv) **बहुअक्षक (Polyaxons)** - इस प्रकार की कंटिकाओं में एक ही केंद्रीय बिंदु से निकली हुई अनेक अरें होती हैं। जब ये अरें एक साथ समूहित हो जाती हैं तब इनकी आकृति तारे जैसी बन जाती है (चित्र 7.10d)।

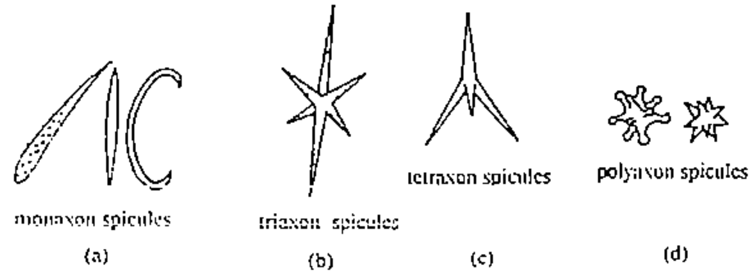

चित्र 7.10 : स्पंजों में पायी जाने वाली कंटिकाओं की विभिन्न आकृतियां।

2) **इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata)** - इकाइनोडर्मों का अंतःकंकाल मीज़ोडर्मी होती है। स्टारफ़िशों (starfish), समुद्री अर्चिनों (sea urchin) तथा अन्य अधिसंख्य इकाइनोडर्मों में देह-भित्ति की डर्मिस में कैल्सियम कार्बोनेट की बनी छोटी-छोटी भीतरी अस्थिकाओं का आलम्ब बना होता है। ये अस्थिकाएं

(ossicles) इन समुद्री तारों (सी-स्टारों) की देह-भित्ति में परस्पर जुड़कर एक जालक जैसी व्यवस्था बना लेती हैं (चित्र 7.11) परंतु समुद्री अर्चिनों मे परस्पर जुड़कर एक लगभग ठोस कवच अथवा चोल (टैस्ट) बना लेती हैं। इस चोल में बहुत से छोटे छिद्र बने होते हैं जिनमें से विभिन्न अंग निकले होते हैं। इनके कंकाल का स्रवण डर्मिस में से होता है और इनकी आकृतियां अनेक हो सकती हैं जैसे कि कांटे, शलाकाएं, शंकु अथवा प्लेटें। अस्थिकाएं अपमुख दिशा पर अनियमित रूप से व्यवस्थित होती हैं। मुख सतह पर मुख को घेरती हुई पांच मुख अस्थिकाएं पायी जाती हैं।

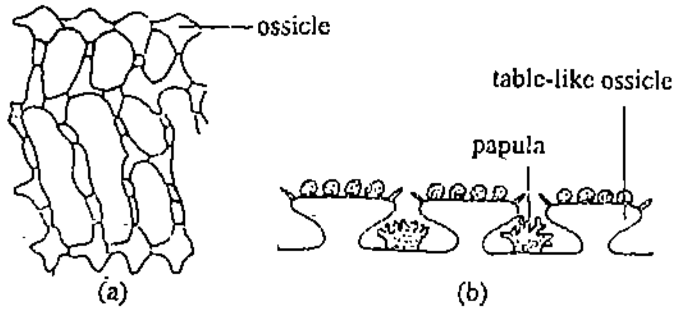

चित्र 7.11 : (a) एक समुद्री तारों (सी-स्टारों) की भुजा में कंकालीय अस्थिकाओं की जाल जैसी व्यवस्था। (b) लुइडिया (*Luidia*) के अनेक पैक्सिलों (paxillae) का अरीय अनुप्रस्थ सेक्शन। इनमें उभरी हुई मेज़ की आकृति की अस्थिकाओं में सतह पर छोटे, गोल हो गए कांटे बने होते हैं तथा सीमांत पर चपटे गतिशील कांटे बने होते हैं। तृतीय पेपुले पैक्सिलों के प्रक्षेपी सीमांतों तथा संबंधित कांटों के बीच बीच की जगहों में स्थित होते हैं।

7.2.3 द्रवकंकाल

द्रवकंकाल जिन्हें द्रवस्थैतिक (hydrostatic) कंकाल भी कहते हैं, तथा जिन्हें द्रवचालित कंकाल कहना अधिक उचित होगा, कुछ प्राणियों में प्राथमिक कंकालीय आलम्ब प्रदान करने वाले हो सकते हैं। केंचुए का सीलोमी तरल एक ऐसे ही प्राथमिक द्रवकंकाल का उदाहरण और इसी तरह है किसी क्लैम (सीपी) के पाद में को बहता हुआ रक्त जो इस पाद को रेत अथवा कीचड़ में को धकेलने में सहायक होता है। कूदने वाली मकड़ियों में केवल आकोचनी पेशियां होती हैं जिनसे बस टांगों को मोड़ा जा सकता है। कूदने के दौरान टांगों का बलपूर्वक फैला दिया जाना टांग में तेजी से देह तरल के पहुंचा दिए जाने के द्वारा सम्पन्न होता है। (अधिक विस्तृत जानकारी के लिए इकाई 3 देखिए)।

बोध प्रश्न 1

निम्न को परस्पर मिलाइए।

1)	कैल्सियमी कंकाल	a)	मौलस्का
2)	अस्थिकाएं	b)	आर्थ्रोपोडा
3)	काइटिन	c)	इकाइनोडर्मेटा
4)	कवच	d)	पोरिफ़ेरा

7.3 बहुरूपता

प्राणी एकचारी हो सकते हैं, कुछ छोटे-छोटे समूहों में रहते होते हैं और कुछ कॉलोनियों (निवहों) में रहते हैं। प्राणियो की कॉलोनियां (समूह) दो प्रकार की हो सकती हैं : (i) एक ही स्पीशीज की अनेक व्यष्टियां एक साथ आ जाती हैं, संरचना की दृष्टि से वे काफी समान होती हैं लेकिन उनके कार्य अलग-अलग होते हैं, जैसे मधुमक्खियों का समूह; (ii) एक ही स्पीशीज़ के अनेक सदस्य एक साथ आ जाते हैं, वे विभिन्न आकृतियां ग्रहण कर लेते (यह उनकी सबसे अलग विशेषता है) जो अलग-अलग कार्य प्रकार्य करते हैं और वे सामूहिक रूप में एक सम्पूर्ण कार्यात्मक जीवधारी बन जाते हैं। वे व्यष्टिगत रूप में अकेले जीवित नहीं रह सकते। इन दोनों ही प्रकार की कॉलोनियों को "बहुरूपी कॉलोनियां" कहते हैं। कॉलोनी की व्यष्टियों को ज़ूऑइड (zooids - जीवक) अथवा जातियां (castes) कहते हैं।

जैसा कि नाम से ही प्रकट होता है "बहु" (poly) का अर्थ है अनेक, तथा रूप (morphe) का अर्थ है आकृति, अर्थात् "अनेक आकृतियां"। उन स्पीशीज़ को बहुरूपी कहा जाता है, जिनमें उनकी व्यष्टियां अलग-अलग आकृतियों की होतीं तथा भिन्न प्रकार्य करती हैं। इस परिघटना को बहुरूपता कहते हैं। कुछ प्राणियों में यह लक्षण बड़ा ही विस्मयकारी होता है। आप इस परिघटना का अध्ययन नाइडेरियनों तथा आर्थ्रोपोडों में करेंगे क्योंकि यह परिघटना स्पष्टत: इन्हीं के सदस्यों में होती पायी जाती है।

पौलिप (polyp) एकल हो सकता है अथवा कॉलोनीय।

7.3.1 नाइडेरियनों में बहुरूपता

सामान्यत: सभी नाइडेरियन स्वरूप दो आकारिकीय प्ररूपों में होते पाए जाते हैं: एक तो हाइड्रा-जैसा पौलिप अथवा हाइड्रॉइड (hydroid) स्वरूप जो स्थानबद्ध अस्तित्व के लिए अनुकूलित होता है, और दूसरा छतरी जैसा मेडुसा (medusa) अथवा जेली-फिश स्वरूप जो एक तिरने अथवा स्वच्छंद तैरने के जीवन के लिए अनुकूलित होता है (चित्र 7.12)।

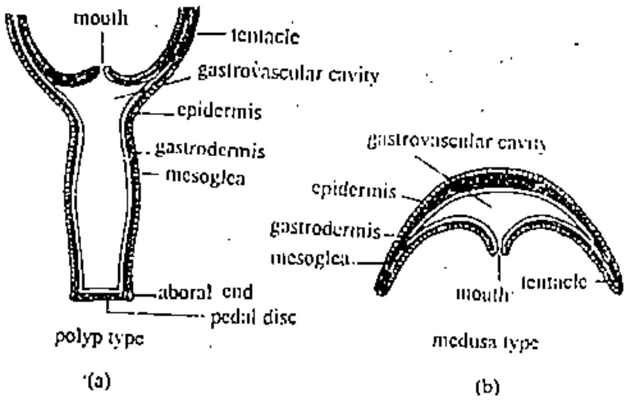

चित्र 7.12 : (a) एक प्ररूपी पौलिप जिसका शरीर नलिकाकार है और इस शरीर के एक सिरे पर स्पर्शकों से घिरा एक मुख होता है। आधारीय अथवा अपमुख सिरा सामान्यत: एक पाद डिस्क अथवा अन्य किसी एक युक्ति द्वारा अधःस्तर से संलग्न रहता है। (b) एक प्ररूपी मेडुसा जो घंटी के अथवा छतरी के आकार का होता है और जिसमें चतुष्टयी (tetramerous) सममिति पायी जाती है, अर्थात् जिसमे देह-भाग चार-चार की व्यवस्था में होते पाए जाते हैं। मुख सामान्यत: अवतल दिशा पर होता है और स्पर्शक छतरी के सीमांत (किनारे-किनारे) में लटके फैले होते हैं। मेडुसा सामान्यत: स्वच्छंद तैरने वाले होते हैं।

बहुरूपता अनेक कॉलोनीय प्राणियों की विशेषता है, मगर सभी कॉलोनीय प्राणियों की नहीं।

क्लास हाइड्रोज़ोआ (Hydrozoa) के अनेक हाइड्रॉइडों में बहुरूपता होती पायी जाती है जिसका संबंध उनकी कॉलोनीय संघटना से है। अधिकत्तर हाइड्रॉइड द्विरूपी (dimorphic) अथवा बहुरूपी (polymorphic) होते हैं जिनमें एक ही स्पीशीज़ में कम से कम दो या कभी-कभी दो से अधिक प्रकार की संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक दृष्टियों से भिन्न प्रकार की व्यष्टियां पायी जाती हैं। वे जीवन के किसी न किसी भाग में पौलिप बने रहते हैं।

पौलिप तथा मेडुसा ऊपर से देखने पर बहुत भिन्न जान पड़ते हैं मगर इन दोनों ही में वही एक जैसी थैलीनुमा देह योजना पायी जाती है जो इस फ़ाइलम की आधारभूत है। (चित्र 7.12)। मेडुसा अनिवार्यत: एक असंलग्न ऊपर-नीचे उलट गया हुआ पौलिप है जिसका नलिकाकार भाग चौड़ा एवं चपटा होकर घंटी की आकृति का हो गया है।

पौलिप तथा मेडुसा दोनों ही में नाइडेरियनों की ही प्ररूपी देह परतें पायी जाती हैं - (क) बाहरी एक्टोडर्म (ख) भीतरी एंडोडर्म तथा (ग) बीच की जेली-जैसी परत मीज़ोग्लीया। मेडुसा में मीज़ोग्लीया अधिक मोटी होती है, और इन प्राणियों का स्थूल भाग भी यही होती है जिससे प्राणी अधिक उत्प्लावक (buoyant) हो जाता है।

आइए , अब कुछ-एक नाइडेरियनों में बहुरूपता का अध्ययन करें।

ओबीलिया

ओबीलिया (Obelia) एक पादप-सरीखा समुद्री प्राणी है जो अधःस्तर से संलग्न रहता है। यह फ़ाइलम नोडेरिया का एक कॉलोनीय एवं विशाखीय हाइड्रोज़ोअन है (चित्र 7.13)। यह व्यापक रूप में रहता पाया जाता है और समुद्र की सतह से 250 फुट नीचे तक की गहराई में रहता है।

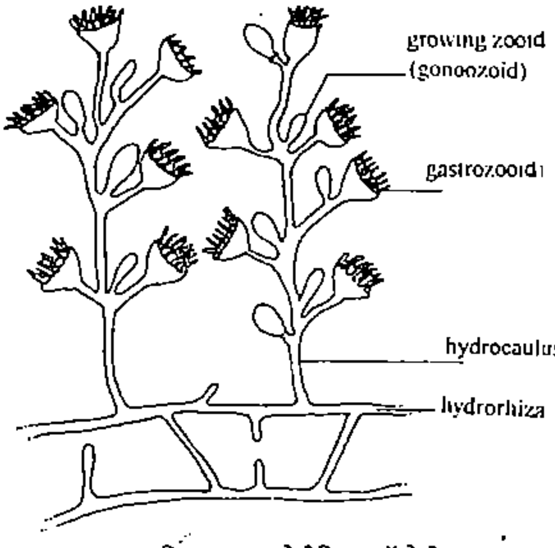

चित्र 7.13 : ओबीलिया कॉलोनी।

ओबीलिया जेनिकुलेटा (Obelia geniculata) सर्वाधिक सामान्यतः समुद्री खरपतवारों, डूबे हुए जहाज़ों, चट्टानों और यहां तक कि अन्य समुद्री प्राणियों के कवचों तक के ऊपर रहता पाया जाता है। यह लगभग 1-4 इंच तक का लम्बा हो जाता है। इसका रंग हल्का भूरा होता है तथा इसे "समुद्री फर (Seafur)" का सामान्य नाम दिया जाता है।

यह एक रोचक तथ्य है कि *ओबीलिया* कॉलोनी, जो देखने में एक छोटा पौधा सा दिखायी पड़ती है, वास्तव में एक प्राणी है जो साथ-साथ रह रहीं मगर भिन्न आकृतियों एवं भिन्न कार्य करने वाली व्यष्टियों का बना होता है। यह कॉलोनी मूल ज़ूऑइड में मुकुलन द्वारा अलैंगिक जनन के फलस्वरूप बनी रहती है।

ओबीलिया कॉलोनी में तीन प्रकार की व्यष्टियां अथवा ज़ूऑइड होते हैं;

i) पोषक ज़ूऑइड जिन्हें कई नामों से पुकारते हैं-हाइड्रैंथ (hydranth) अथवा गैस्ट्रोज़ूऑइड (gastrozooids) अथवा ट्रोफ़ोज़ूऑइड (trophozooid) (इनका कार्य अशन करना है)
ii) मुकुलनशील ज़ूऑइड अथवा गोनैंजिया (gonangla) अथवा ब्लास्टोस्टाइल (blastostyle)
iii) मेडुसा अथवा लैंगिक ज़ूऑइड

अतः *ओबीलिया* कॉलोनी त्रिरूपी (trimorphic) हुई। *ओबीलिया* कॉलोनी में एक सर्वनिष्ट वृंत हाइड्रोकौलस (hydrocaulus) होता है जिससे एक या एक से अधिक वृंत निकले होते हैं। हाइड्रोकौलस नीचे एक जड़-सदृश स्टोलन (stolon) अथवा हाइड्रोराइज़ा (hydrorhiza) से जुड़ा होता है। हाइड्रोकौलस का जीवित कोशिकीय अंश नलिकाकार सीनोसार्क होता है जो तीन प्ररूपी नाइडेरियन प्रस्तरों का बना होता है और सीलेंटेरॉन (जठर-वाही गुहा, gastrovascular cavity) को घेरे रहता है। हाइड्रोकौलस का पेरिसार्क (perisarc) सुरक्षाकारी आवरण एक निर्जीव पीले काइटिनी आच्छद का बना होता है जिसका स्राव एक्टोडर्म से हुआ होता है (चित्र 7.14)। इस हाइड्रोकौलस पर अलग-अलग पौलिप अथवा ज़ूऑइड जुड़े होते हैं। सभी ज़ूऑइड एक संतत एंटेरॉन (आंत्र) अथवा जठरवाही गुहा के द्वारा एक दूसरे से जुड़े संपर्क बनाए रहते हैं। अधिकतर ज़ूऑइड अशनकारी पौलिप होते हैं जिन्हें गैस्ट्रोज़ूऑइड अथवा हाइड्रैंथ कहते हैं।

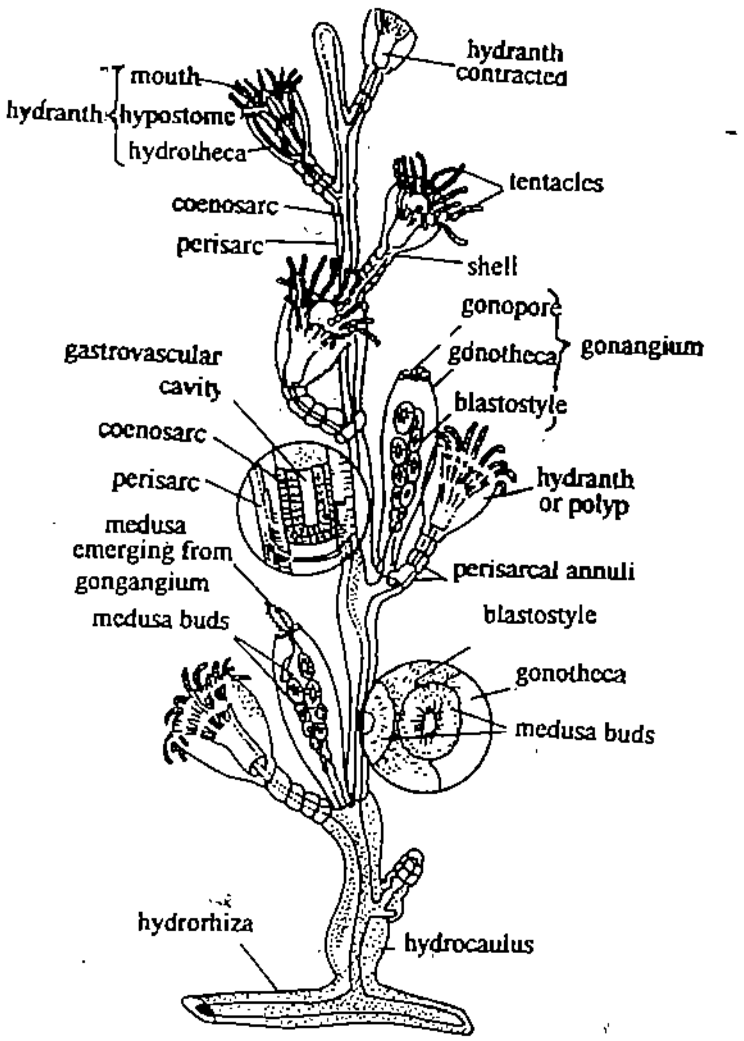

चित्र 7.14 : *ओबीलिया* कॉलोनी जिसमें उसके भीतर पाए जाने वाले विविध जूआइडों को विस्तार से दिखाया गया है।

क) गैस्ट्रोज़ूऑइड अथवा हाइड्रैंथ - प्रत्येक *ओबीलिया* कॉलोनी में अनेक हाइड्रैंथ अथवा गैस्ट्रोज़ूऑइड होते पाए जाते हैं। प्रत्येक हाइड्रैंथ एक लघु हाइड्रा जैसा होता है। इसका शरीर सिलिंडराकार, नलिकाकार, बोतल जैसा अथवा फूलदान की आकृति जैसा होता है जिसमें स्पर्शकों से घिरा हुआ एक अंतस्थ मुख होता है। प्रत्येक ज़ूऑइड के भीतर एक आंत्र गुहा होती है जो मुख के द्वारा बाहर को खुलती है। ज़ूऑइड हाइड्रोकौलस से संलग्न रहता है। यह लघु हाइड्रा एक प्यालेनुमा हाइड्रोथीका के भीतर बंद रहता है (चित्र 7.15a)। *ओबीलिया* छोटे-छोटे जलीय प्राणियों जैसे कि कृमियों, क्रस्टेशियनों तथा अन्य आर्थ्रोपोडों का आहार करता है। शिकार को पकड़ने में हाइड्रैंथों के स्पर्शक मदद करते हैं। आहार को आंत्र अथवा जठर संवहनी गुहा के भीतर पचाया जाता है। पोषकों को आंत्र नालों के द्वारा समूची कॉलोनी में पहुंचा दिया जाता है।

यथार्थ पौलिप को घेरे रहने वाली हाइड्रोथीका से युक्त हाइड्राइडों को थीकेट (thecate) तथा बिना हाइड्रोथीका वालों को एथीकेट (athecate) कहा जाता है।

ख) गोनैंजियम - (gonangium, gonos = बीज, *angeion* = पात्र) *ओबीलिया* में गोनैंजियम नामक जनन पौलिप से मुकुलन हो-होकर मेडुसा निकलते जाते हैं। यह पौलिप अथवा ज़ूआइड मुद्गराकार तथा लम्बा होता है। यदाकदा अपरिपक्व गोनैंजियम मूल *ओबीलिया* से टूट कर अलग हो जाता है तथा कहीं और पहुंचकर टिक जाता है जहां उसमें वृद्धि होकर एक नयी *ओबीलिया* कॉलोनी बन जाती है। यह अलैंगिक अथवा कायिक जनन-विधि होती है। यदि वह मूल जनक से टूट कर अलग नहीं होता तब इसमें वृद्धि होकर एक परिपक्व गोनैंजियम बन जाता है जिसके भीतर एक केंद्रीय मातृ ब्लास्टोस्टाइल होता है (चित्र 7.15b) जिसके ऊपर छोटी-छोटी वृद्धियां अथवा मुकुल बन जाते हैं। धीरे-धीरे इन मुकुलों का आकार बढ़ता जाता तथा इनमें वृद्धि होकर ये नर एवं मादा मेडुसों अथवा गोनोफोरों (gonophores) का रूप ले

लेते हैं। इस सम्पूर्ण संरचना को घेरते हुए पेरिसार्क का एक पारदर्शी प्रसार इसके ऊपर बन जाता है जिसे गोनोथीका (gonotheca) कहते हैं (चित्र 7.15b)। इस ज़ूऑइड में न स्पर्शक होते हैं न मुख, इनके बजाए इसमें एक जननछिद्र (gonopore) होता है जिससे मेडुसा बाहर निकलते हैं। अत: *ओबीलिया* कॉलोनी एक अलैंगिक पीढ़ी होती है।

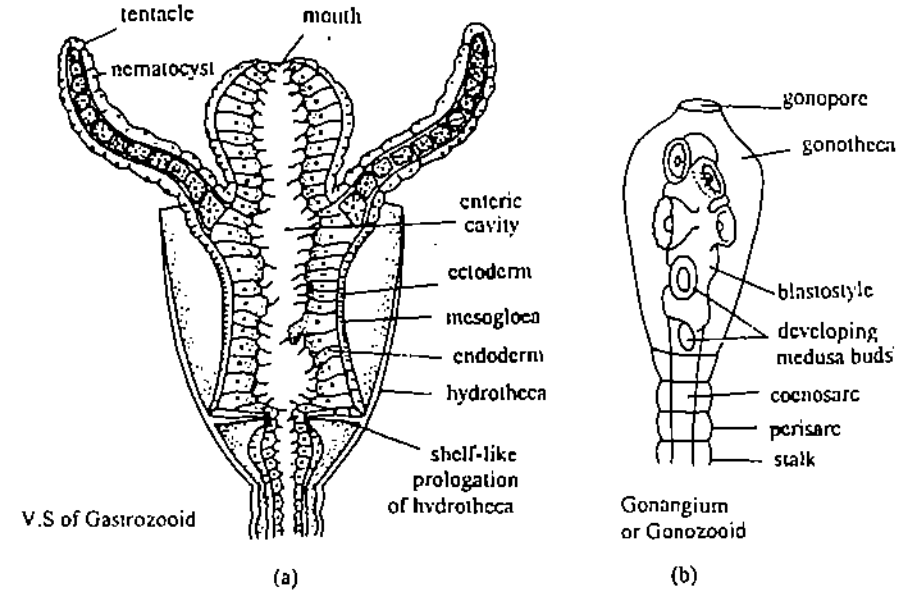

चित्र 7.15 : *ओबीलिया* कॉलोनी में पाए जाने वाले विविध पौलिप (a) गैस्ट्रोज़ूऑइड का V.S., (b) गोनैंजियम की संरचना।

ग) मेडुसा : ये जनन ज़ूऑइड होते हैं जो नर अथवा मादा हो सकते हैं। मेडुसा लैंगिक विधि से जनन करते हैं अत: यह लैंगिक पीढ़ी होती है। प्रत्येक मेडुसा *ओबीलिया* का स्वच्छंद तैरने वाला ज़ूऑइड होता है तथा इसके परिपक्व हो जाने पर इसमें गैमीट अर्थात युग्मक (अण्डे अथवा शुक्राणु) बनते हैं। मेडुसा छतरी जैसा होता है। इसकी बाहर उत्तल सतह को बाह्यछत्र (exumbrella) तथा भीतरी अवतल सतह को अवछत्र (subumbrella) कहते हैं। छतरी के सीमांत पर स्पर्शक बने होते हैं। पोषण के हेतु इन मेडुसों में मुख तथा जठर गुहा होती है। यदि यह नर हुआ तो इसमें चार वृषण होते हैं और यदि मादा हुआ तो इसमें चार अण्डाशय होते हैं (चित्र 7.16)।

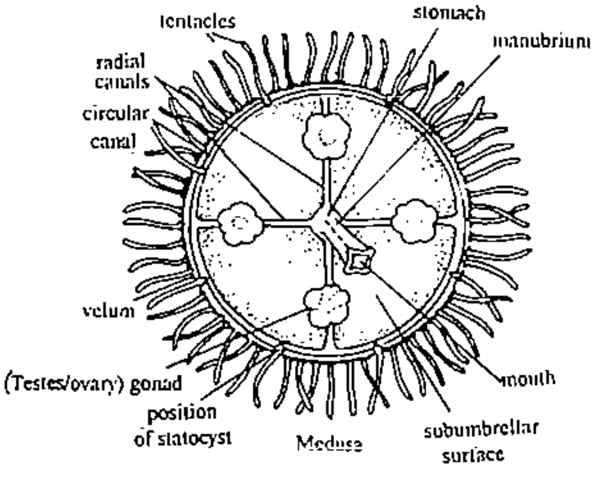

चित्र 7.16 : *ओबीलिया* का मेडुसा।

ओबीलिया तथा अन्य विविध कॉलोनीय नाइडेरियनों के जीवन इतिहास में दो दैहिक स्वरूपों का पाया जाना, जो अलैंगिक तथा लैंगिक पीढ़ियों के बीच एकांतर क्रम में आते हैं, मेटाजेनेसिस (metagenesis) अथवा पीढ़ी एकांतरण (alternation of generations) कहलाता है।

ओबीलिया तथा विभिन्न कॉलोनीय नाइडेरियनों में पौलिप तथा मेडुसा दोनों ही द्विगुणित (डिप्लॉइड diploid)

होते हैं और केवल युग्मक (गैमीट) ही अगुणित होते हैं। इस प्रकार अलैंगिक पौलिप मुकुलन द्वारा अलैंगिक विधि से जनन करता है और कभी-कभी ही ऐसे मुकुल अथवा लैंगिक मेडुसा बनाता है (यह भी अलैंगिक विधि से ही) जो नर अथवा मादा हो सकते हैं। लैंगिक मेडुसा में नर अथवा मादा युग्मक बनते हैं जिनमें निषेचन होकर अलैंगिक कॉलोनियां बनती हैं।

इस प्रकार *ओबीलिया* में जीवन की लैंगिक तथा अलैंगिक प्रावस्थाओं में एकांतरण होता है (अर्थात् वे एक के बाद दूसरी के क्रम में चलती जाती हैं)। इस प्रक्रिया को मेटाजेनेसिस (metagenesis) अथवा पीढ़ी एकांतरण कहा गया है। इसे चित्र 7.17a तथा b द्वारा समझाया जा सकता है।

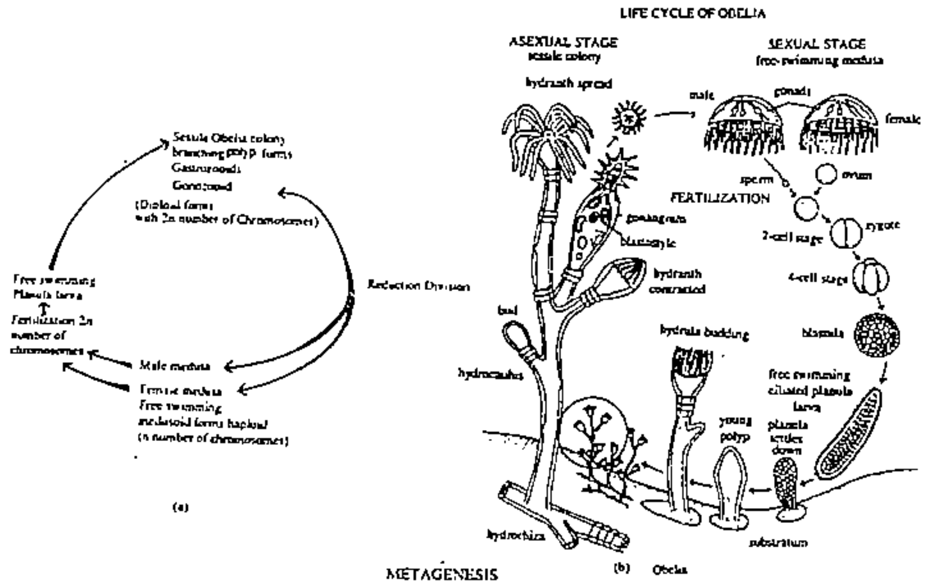

चित्र 7-17 : *ओबीलिया* में पीढ़ी एकांतरण (मेटाजेनेसिस) को दर्शाने वाले दो साधन
(a) प्रवाह-चार्ट तथा (b) *ओबीलिया* के जीवन-चक्र का आरेख।

इस उप अनुभाग को पढ़ चुकने के बाद अब आप समझ गए होंगे कि *ओबीलिया* निम्न बातों में विचित्र है:-

i) यह भिन्न प्रकार की व्यष्टियों की कॉलोनी होता है।
ii) इन व्यष्टियों को ज़ूऑइड कहते हैं तथा इनका स्वरूप एवं प्रकार्य दोनों ही अलग-अलग होते हैं।
iii) इस प्रावस्था के दौरान कॉलोनी मुकुलन द्वारा अलैंगिक विधि से प्रजनन करती है तथा स्थानबद्ध बनी रहती है।
iv) यह अलैंगिक रूप में जनन करके नर तथा मादा मेडुसे बनाता है जो स्वच्छंद तैरने वाले स्वरूप होते हैं।
v) मेडुसों अथवा लैंगिक व्यष्टियों से युग्मक (अंडे/शुक्राणु) बनते हैं।
vi) अण्डों तथा शुक्राणुओं में निषेचन होकर युग्मनज (ज़ाइगोट) बनता है जिसमें परिवर्धन होकर प्लैनुला (planula) लार्वा बन जाता है, और फिर यह लार्वा एक स्थान पर चिपक जाता और मुकुलन (अलैंगिक विधि) द्वारा अलैंगिक कॉलोनी बना लेता है।

बोगेनविलिया

एक अन्य नाइडेरियन ***बोगेनविलिया (Bougainvillea)*** (चित्र 7.18) में भी *ओबीलिया* के जैसी बहुरूपता पायी जाती है।

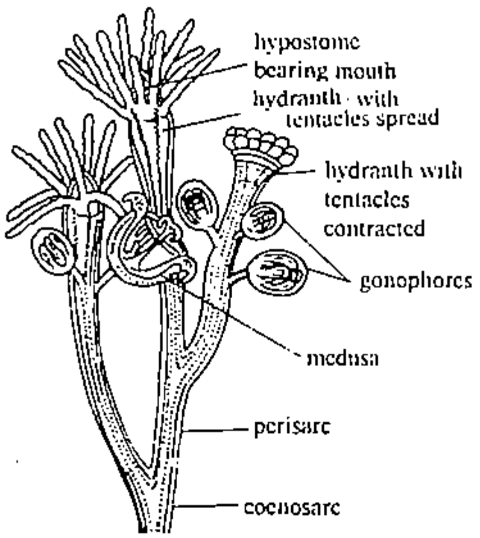

चित्र 7.18 : *बोगेनविलिया* कॉलोनी।

हाइड्रैक्टिनिया

इससे भी उच्चतर श्रेणी की बहुरूपता, पपड़ी बनाने वाले प्राणी *हाइड्रैक्टिनिया (Hydractinia)* में पायी जाती है (चित्र 7.19)। यह प्राणी सामान्यत: उन घोंघा-कवचों के ऊपर उगता है जिनके भीतर कुछ खास हर्मिट-केकड़े रहते होते हैं। इसमें पांच प्रकार के पौलिप एक पर्पटी बनाते हुए आधार अथवा स्टोलन से अलग-अलग तथा अनियमित रूप में निकले हुए होते हैं, यह आधार अथवा स्टोलन जड़ों अथवा "रनरों (runners)" का बना होता है जिन्हें सामूहिक रूप में हाइड्रोराइज़ा (hydrorhiza) कहते हैं।

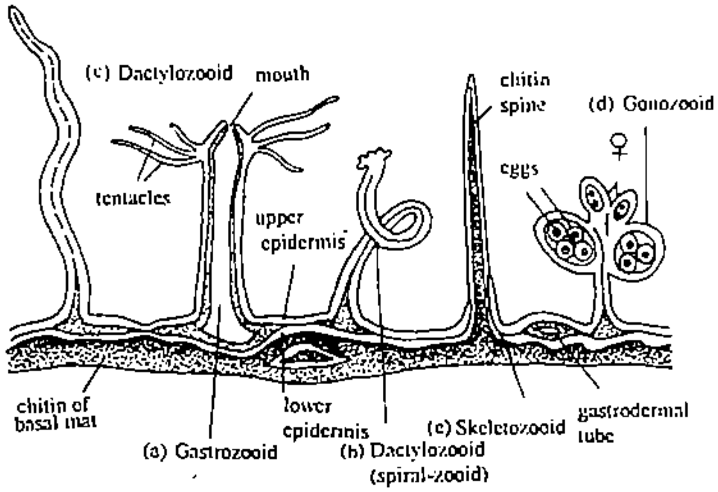

चित्र 7.19 : *हाइड्रैक्टिनिया* में दीख पड़ने वाली बहुरूपता। इसकी कॉलोनी में पांच प्रकार के पौलिप होते हैं।

प्रत्येक प्रकार के पौलिप का कॉलोनी के भीतर तक विशेष प्रकार्य होता है। ये पांच प्रकार के पौलिप इस तरह होते हैं :-

i) **गैस्ट्रोज़ूऑइड** अथवा अशन पौलिप, ऐसे प्रत्येक पौलिप में मुख को घेरते हुए अनेक स्पर्शक होते हैं तथा एक अपेक्षाकृत बड़ी जठरवाही गुहा होती है (चित्र 7.19a)।

2) दो प्रकार के **डैक्टिलोज़ूऑइड** अथवा सुरक्षाकारी व्यष्टियां। इनमें मुख नहीं होता तथा स्पर्शक भी नहीं होते लेकिन इनमें दंशपुटियों (नीमैटोसिस्टों) के समूह बने होते पाए जाते हैं। दो प्रकार के डैक्टिलोज़ूऑइड ये हैं (i) एक तो सर्पिल ज़ूआइड (चित्र 7.19b) और (ii) दूसरे बड़े प्रकार के डैक्टिलोज़ूऑइड (चित्र 7.19c) जो एक लंबे एकल स्पर्शक जैसे दिखते हैं तथा हर्मिट-केकड़े के कवच के किनारे-किनारे के समीप पाए जाते हैं।

3) **गोनोज़ूऑइड अथवा ब्लास्टोस्टाइल** (चित्र 7.19d) जनन व्यष्टियां होती हैं जिन पर मेडुसा मुकुल बने होते हैं और ये मुकुल कभी वहां से टूटकर कर अलग नहीं होते। मुकुल अथवा गोनोफ़ोर के भीतर गोनड बनते हैं और अण्डे तथा शुक्राणु अंततः समुद्र में को छोड़ दिए जाते हैं।

ध्यान देने बात है कि ये कॉलोनियां और साथ ही अधिकतर हाइड्रॉइड कॉलोनियां पृथकलिंगाश्रयी होती हैं, जिसका अर्थ है कि कॉलोनी में या तो नर मेडुसा-मुकुल होते हैं या मादा मेडुसामुकुल-मुकुल होते हैं। मगर दोनों एक साथ नहीं होते।

4) **अंततः कंकालज़ूआइड** (skeletozooids) होते हैं, ये पर्पटकारी आधार को काइटिनी संहति से निकले हुए काइटिन के कंटीले प्रवर्धों के ऊपर चढ़े हुए मात्र पतले ऊतक-आवरण होते हैं (चित्र 7.19e)।

बहुरूपता की परिघटना का होना फ़ाइलम नाइडेरिया के अंतर्गत आने वाले कई अन्य प्राणियों का भी एक स्पष्ट लक्षण है। साइफ़ोनोफ़ोरा इसकी पराकाष्ठा है। इस अपनी ही प्रकार की पृथक परिघटना का मूल तत्व यह है कि विभिन्न प्रकार्यों का सम्पन्न होना एक ही प्राणी के अलग-अलग अंगों के सुपुर्द न होकर इस व्यवस्था में उन्हें अलग-अलग व्यष्टियों को सौंप दिया गया होता है जो देखने में भी पृथक दिखायी पड़ते हैं। दूसरे शब्दों में बहुरूपी कॉलोनी में विभिन्न व्यष्टियां विभिन्न प्रकार्य करती हैं। बहुरूपता का चरम बिंदु साइफ़ोनोफ़ोरा में पहुंच गया है।

साइफ़ोनोफ़ोरा

साइफ़ोनोफ़ोरा की कॉलोनियां अत्यन्त सुंदर होती हैं। ये कोमल, पारदर्शी, स्वतंत्र तिरने वाली कांच सरीखी समुद्री कॉलोनियां होती हैं। इनमें व्यष्टियों का विशेषीकरण परम सीमा पर पहुंच गया है। इनके उदाहरण हैं *फ़ाइज़ेलिया (Physalia), हेलिस्टेमा (Halistemma), वैलेला (Valella), स्टीफ़ेलिया (Stephalia), डाइफ़ीइस (Diphyes)* (चित्र 7.20)।

किसी प्ररूपी साइफ़ोनोफ़ोर कॉलानी को एक सामान्यीकृत योजना में दर्शाया जा सकता है (चित्र 7.21) अन्य नाइडेरियन कालोनियों की ही तरह यह भी दो प्रकार के ज़ूआइडों - पौलिप तथा मेडुसों की बनी होती है :-

इसमें पौलिपॉइड ज़ूऑइड इस प्रकार पाए जाते हैं :-

1. गैस्ट्रोज़ूऑइड (gastrozooids)
2. डैक्टिलोज़ूऑइड (dactylozooids)
3. गोनोज़ूऑइड (gonozooids)

मेडुसॉइड ज़ूऑइड इस प्रकार पाए जाते हैं :-

1) न्यूमैटोफ़ोर (pneumatophores)
2) फ़िल्लोज़ूऑइड (phyllozooids)
3) नेक्टोकेलिक्स (nectocalyces) अथवा नेक्टोफ़ोर (nectophores)
4) गोनोफ़ोर (gonophores)

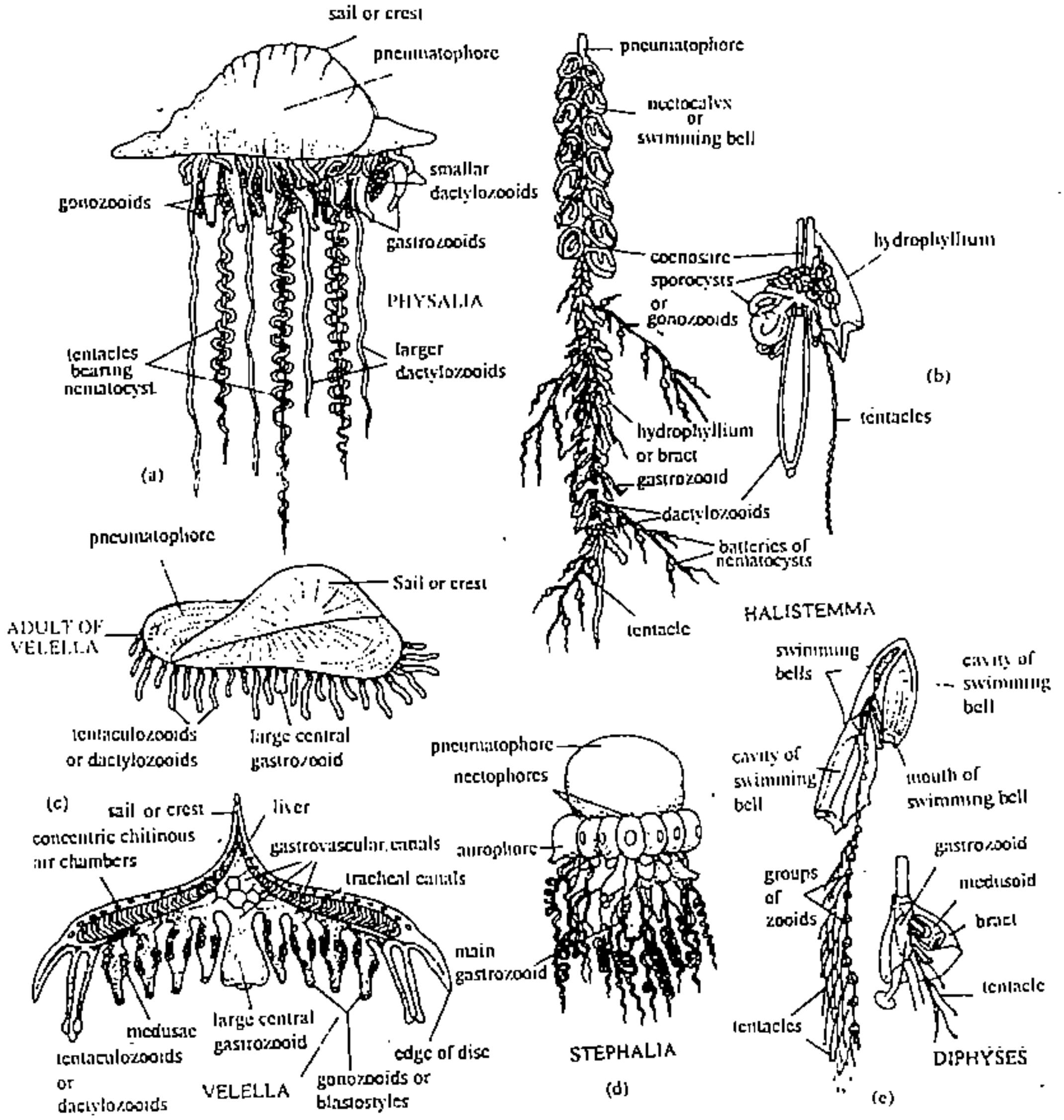

चित्र 7.20 : विभिन्न साइफोनोफोरों की कॉलोनियों a) फाइज़ेलिया (*Physalia*), b) हेलिस्टेमा (*Halistemma*), c) वैलेला (*Valella*), d) स्टीफेलिया (*Stephalia*), डाइफीज़ (*Diphyes*) ।

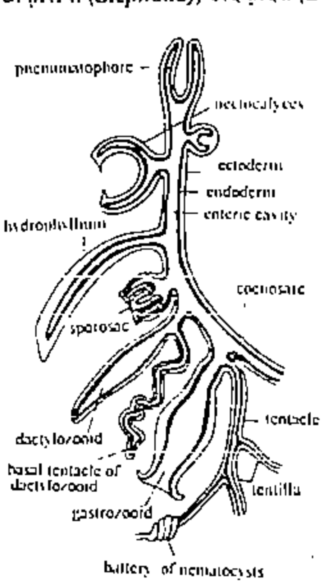

चित्र 7.21 : एक प्ररूपी साइफोनोफोर कॉलोनी की सामान्य योजना ।

1. **गैस्ट्रोज़ूऑइड :**

वे ज़ूऑइड जो आहार को पकड़ते तथा पचाते हैं और इस प्रकार पोषण प्रदान करते हैं गैस्ट्रोज़ूऑइड कहलाते हैं (इन्हें साइफ़न, siphons, भी कहते हैं)। इनका पौलिप प्रकार का स्वरूप होता है। इनमें मुख होता है जो हो सकता है स्पर्शकों से घिरा हुआ हो (जैसे कि *ओबीलिया* में) या हो सकता है न घिरा हुआ हो। कभी-कभी बस केवल एक लम्बा स्पर्शक गैस्ट्रोज़ूऑइड के आधार से निकला हो सकता है जिसमें बहुसंख्यक चिपकदार टेंटिला (tentilla) बने होते हैं, और यह स्पर्शक दंश कोशिकाओं से भरा होता है (चित्र 7.22a)।

2. **डैक्टिलोज़ूऑइड:**

इनके और भी कई नाम हैं जैसे टेंटेकुलोज़ूऑइड (tentaculozoid), पैल्पॉन (palpons), फेलर्स (fellers) तथा "टेस्टर्स" (tasters)। इनका कार्य सुरक्षा प्रदान करना है। इनमें मुख नहीं होता। ये बंद थैले-जैसी संरचनाएं होती हैं जिनके भीतर दंश-कोशिकाएं भरी रहती हैं। इस थैले के आधार पर से एक लम्बा, अविशाखित आधारीय स्पर्शक निकला होता है (चित्र 7.22b)। ये ज़ूऑइड लम्बे होते हैं तथा समुद्र के जल में लहराते रहते हैं ताकि पता लगा सकें कि आस-पास कोई उनका परभक्षी तो नहीं आ रहा। ये सुरक्षाकारी पौलिप शिकार पकड़ने में भी सहायक होते हैं।

3. **गोनोज़ूऑइड :**

जैसा कि इनके नाम से ही प्रकट होता है, गोनोज़ूऑइड जनन-ज़ूऑइड होते हैं (इन्हें ब्लास्टोस्टाइल भी कहते हैं)। इनमें न तो मुख होता है और न ही स्पर्शक होते हैं, ये अंगूर के गुच्छे के समान लटके रहते हैं (चित्र 7.22c)। ये अंडाकार संरचनाएं हैं जो दो प्रकार की होती हैं, इनमें या तो नर या मादा गोनड अर्थात गोनोफ़ोर होते हैं।

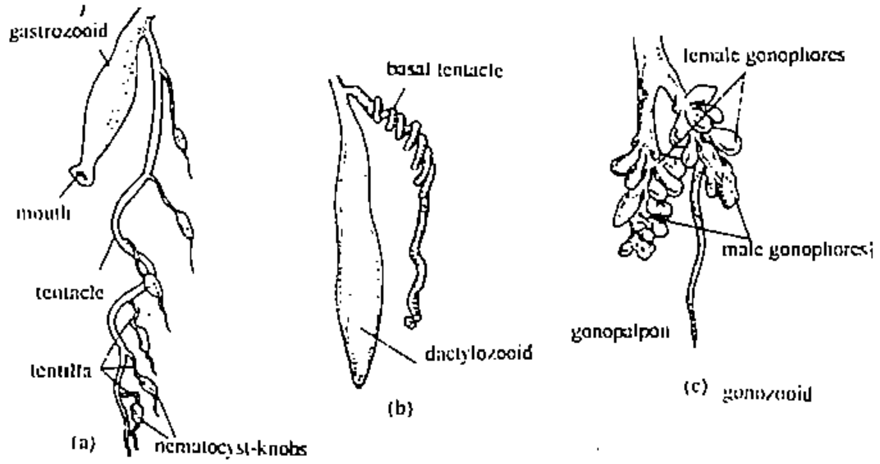

चित्र 7.22 : साइफ़ोनोफ़ोर कॉलोनी के प्ररूपी पौलिप (a) गैस्ट्रोज़ूऑइड (b) डैक्टिलोज़ूऑइड (c) गोनोज़ूऑइड।

मेडुसॉइड स्वरूप

1) **न्यूमैटोफ़ोर** (वातधर अथवा हवा यानी गैस के थैले) : यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि बहुरूपी साइफ़ोनोफ़ोर प्राणी स्वच्छंद तिरने वाली कॉलोनियां होती हैं। इनके भीतर वायु से भरी संरचनाएं होती हैं जो इन्हें ऊपर को उतराती रहती हैं। न्यूमैटोफ़ोर गैस से भरे आशयों के जैसी संरचनाएं होती हैं। ये रूपांतरित मेडुसा है जिनके भीतर मीज़ोग्लीया समाप्त हो गयी है। इन आशयों की दीवारें दोहरी परतों वाली एवं पेशीय होती हैं। दो दीवारों के बीच की गुहा जठर वाली गुहा होती है (चित्र 7.23)। विभिन्न साइफ़ोनोफ़ोरों में उनके प्लव (floats) अलग-अलग आकृतियों, साइज़ों तथा संरचनाओं वाले होते हैं। (चित्र 7.20)।

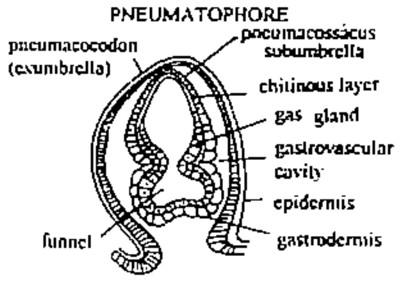

चित्र 7.23 : बहुरूपी साइफ़ोनोफ़ोर कालोनी के न्यूमैटोफ़ोर का सेक्शन।

2) **नेक्टोकेलिक्स (Nectocalyx)** बहुवचन (nectocalyces) (तरणचषिकाएं) : मुख्य प्लव न्यूमैटोफ़ोर के साथ-साथ सामान्यत: कुछ सहायक छोटे-छोटे प्लव भी होते हैं जिन्हें नेक्टोफ़ोर (nectophore) अर्थात तरणधर या नेक्टोज़ूऑइड (nectozooides), या नेक्टोकेलिक्स, या मात्र प्लव घंटियां (*floating bells*) कहते हैं। ये संरचनाएं *हेलिस्टेमा* तथा *स्टीफ़ेलिया* (चित्र 7.20b तथा d) में स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। नेक्टोकेलिक्स भी मेडुसॉइड व्यष्टियां होती हैं जिनमें मुख तथा स्पर्शक नहीं होते। इन्हें कॉलोनी की आंत्र नालों के द्वारा पोषण प्राप्त होता है। इनका कार्य केवल कॉलोनी को ऊपर तिराते रहना तथा तैराते रहना है।

3) **फ़िल्लोज़ूऑइड** : इन्हें ब्रैक्ट (bracts) या हाइड्रोफ़िलिया, (hydrophyllia) भी कहते हैं। इनमें प्रतिरूपी मेडुसॉइड लक्षण नहीं होते पाए जाते (चित्र 7.20b तथा c)। इनकी आकृति प्रिज़्म, शील्ड, पत्ती अथवा हेल्मेट के जैसी होती है। इनके भीतर एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच मोटी मीज़ोग्लीया होती है। इनका कार्य अन्य अत्यावश्यक ज़ूऑइडों (विशेषत: गोनोज़ूआइडों/गोनोफ़ोरों) को सुरक्षा प्रदान करना है जिसमें ये उनके ऊपर एक हुड अथवा छत्र-जैसा ढकने वाला भाग बना लेते हैं।

4) **गोनोफ़ोर** : ये लैंगिक मेडुसॉइड होते हैं। ये ब्लास्टोस्टाइलों के ऊपर अकेले-अकेले अथवा गुच्छों के रूप में बने होते हैं (चित्र 7.24)। ये अल्पविकसित मेडुसा होते हैं जिनमें मुख अथवा स्पर्शक नहीं बनते हैं। *फ़ाइज़ैलिया* (चित्र 7.20) में मादा गोनोफोर मेडुसा जैसा तथा नर गोनोफ़ोर थैले जैसा होता है। ये गोनोफ़ोर या तो कॉलोनी से संलग्न बने रहते हैं जैसे *फ़ाइज़ैलिया* में (जिसके भीतर ये लैंगिक कोशिकाएं बनाते रहते हैं) या ये मुक्त होकर अलग हो जाते हैं जैसे *पौरपिटा (Porpita)* तथा *वेलेला (Velella)* (चित्र 7.20c) में। एक बार जब गोनोफ़ोरों से लिंग कोशिकाएं निकल चुकती हैं तब ये मर जाते हैं क्योंकि ये अशन यानी आहार नहीं कर पाते।

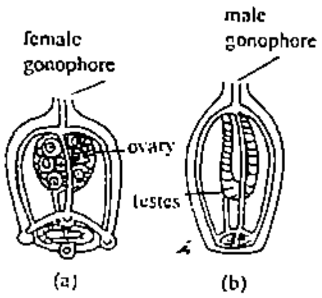

चित्र 7.24 : गोनोफ़ोर (a) मादा (b) नर।

तो अब आप समझ गए होंगे कि फ़ाइलम नाइडेरिया के अनेक कॉलोनीय प्राणी जो बाहर से इतने सरल से दिखायी पड़ते हैं वास्तव में अनेक व्यष्टियों के एक साथ जुड़कर एवं परस्पर ताल मेल बनाकर रहते हुए एक मिली जुली व्यवस्था का परिणाम है। बहुरूपता की परिघटना अनिवार्यत: एक श्रम विभाजन की परिघटना है जो कॉलोनी की प्रत्येक व्यष्टि के लिए लाभप्रद है। बहुरूपी कॉलोनियां छोटी-छोटी व्यष्टियों की

बनी होती हैं परंतु सामूहिक रूप में वे बड़ी प्रकट होती हैं तथा वे अपने अधिक कारगर रूप में अशन कर सकती, जनन कर सकती और अपने परभक्षियों से टक्कर ले सकती है।

नाइडेरियनों में मेटाजेनेसिस के लाभ

आपने यह भी पढ़ा कि ये नाइडेरियन कॉलोनियां बहुरूपी होती हैं और इनमें पीढ़ी-एकांतरण भी होता पाया जाता है। इस पीढ़ी-एकांतरण अथवा मेटाजेनेसिस से स्पीशीज़-विशेष को अत्यन्त लाभ प्राप्त होता है।

क) आगामी (तात्कालिक) लाभ :

i) मेटाजेनेसिस से जनन की दो वैकल्पिक विधियां उपलब्ध रहती हैं, लैंगिक तथा अलैंगिक; यदि एक निष्फल हो जाए तो दूसरी कार्य कर सकती है।

ii) स्थानबद्ध (अध:स्तर से चिपके हुए) स्वरूप जैसे कि *ओबीलिया* मेटोजेनेसिस चक्र के एक भाग में मुक्त गतिशील मेडुसा पैदा करते हैं। इससे स्पीशीज़ का अधिक व्यापक वितरण संभव होता है और स्वयं इस वितरण से आश्रय, आहार तथा पर्यावरण की अधिक अच्छी परिस्थितियां खोजने-ढूंढने का बेहतर अवसर मिलता है।

iii) मेटोजेनेसिस होने वाले प्राणियों को प्रतिकूल परिस्थितियों से भी बचने का अवसर मिल जाता है जिसके दौरान वे एक देह स्वरूप से दूसरे देह स्वरूप में परिवर्तन कर लेते हैं।

ख) चरम (अंतिम) लाभ :

लगातार अलैंगिक जनन होते रहने से आनुवंशिक समांगता आ जाती है। इसे रोकने के वास्ते, विकल्पी लैंगिक स्वरूपों के द्वारा परनिषेचन संभव हो पाता है जिसके द्वारा आनुवंशिक पदार्थ का मिश्रण होता है एवं विभिन्नता आती है जो स्पीशीज़ की उत्तरजीविता एवं उसके विकास के लिए अच्छी होती है।

नाइडेरियनों के अतिरिक्त फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा के क्लास इन्सेक्टा (Insecta) के कुछ आर्डरों (Orders) के प्राणियों में बहुरूपता सबसे अच्छी होती पायी जाती है।

बोध प्रश्न 2

प्रत्येक कथन के सामने दी गयी जगह पर सही (✓) तथा गलत (×) का निशान लगाइए :

i) *ओबीलियया* कॉलोनी के गोनैंजियम में मुख तथा स्पर्शक होते हैं। ☐

ii) बहुरूपता एक अद्वितीय परिघटना है जो साइफ़ोनोफोरा में सबसे अच्छी तरह होती दिखायी पड़ती है। ☐

iii) मूंगे बहुरूपी होते हैं। ☐

iv) न्यूमैटोफ़ोर का कार्य कॉलोनी को जल की सतह पर उतराते रहना है। ☐

v) मेटाजेनेसिस में नर रूप मादा रूप के साथ एकांतर क्रम में आते हैं। ☐

7.3.2 कीटों में बहुरूपता

विकास की दृष्टि से प्रत्येक जीव का मूल संबंध उन जैविकीय आवश्यकताओं को पूरा करते रहने से है जिनके द्वारा प्राणी जीवित बना रहता तथा जनन करता रहता है। दो या अधिक व्यष्टियों के बीच कोई भी ऐसी परस्पर क्रिया जो उन दोनों के लिए पारस्परिक लाभकारी हो सामाजिक व्यवहार का ही भाग है। इस प्रकार के साहचर्य कभी-कभी मात्र सीधे किसी सरल समूह (एक साथ एकत्रित होने) के रूप में हो सकते हैं जैसे कि प्रकाश, उष्मा, जल, आहार तथा संगमनी आदि के एक सर्वनिष्ठ साधन के चारों ओर। कुछ लेपिडॉप्टेरन Lepidepteran समूह बनाकर प्रवास करते हैं, ईयरविग तथा पैसेलिड बीटलों में उनकी व्यष्टियां साथ रहकर घोंसले बनाती तथा अपने लार्वों का पालन-पोषण करती हैं और फिर बाद में पृथक हो जाती हैं। इस प्रकार के सभी उदारहण सही-सही सामाजिक अथवा बहुरूपी नहीं होते। समूहन (aggregation) व्यष्टियों का एक अस्थायी एकत्रीकरण है जबकि सामाजिक बहुरूपी समूह स्थायी हुआ करते हैं। इस

जातियों का निर्धारण अंशत: निषेचन के द्वारा तथा अंशत: उस भोजन के द्वारा जो लार्वा को खिलाया जाता है, होता है। ड्रोन अनिषेचित अण्डों से पैदा होते हैं और इसलिए वे अगुणित (हैप्लॉइड) होते हैं। रानी तथा कर्मी निषेचित अण्डों से बनते हैं और इसलिए वे द्विगुणित (डिप्लॉइड) होते हैं। मगर इन्हें भिन्न प्रकार का भोजन मिला होने के कारण ये अलग प्रकार के होते हैं।

प्रकार के वास्तविक समाज जिनमें बहुरूपता पायी जाती है कीटों के केवल दो आर्डरों हाइमेनॉप्टेरा (Hymenoptera) (मधुमक्खी तथा चींटियों) और आइसॉप्टेरा (Isoptera-दीमकों) में पाए जाते हैं। इन प्राणियों में उनके समाज का निरंतर जारी रहना एक या अधिक जननशील व्यष्टियों पर निर्भर होता है जो, और कुछ कार्य न करते हुए लगातार आजीवन नए सदस्यों को जन्म देते रहते हैं। इन जननशील व्यष्टियों की देख-भाल एवं उनको आहार कराना आदि ये सब कार्य उनकी संतानें करती हैं जो घोंसले के भीतर न्यूनाधिक रूप में कर्मियों की तरह रहते होते हैं। ये कर्मी घोंसले की सफ़ाई करते, मरम्मत करते तथा सुरक्षा करते हैं, आहार इकट्ठा करते हैं एवं नए जन्मे भाई-बहनों का पालन-पोषण करते हैं। इस प्रकार के सभी प्राणियों (मधुमक्खी, चींटियों, दीमकों) में से प्रत्येक के सामाजिक समूह में एक सुरचित कॉलोनी (निवह) होती है, जिसके भीतर विभिन्न स्वरूप एवं संरचना वाली व्यष्टियां अलग-अलग समाज-प्रकार्य करती हैं।

A. मधुमक्खी (मक्षिका)

कीटों की दुनिया में मधुमक्खियों की सामाजिक संघटना सर्वाधिक सम्मिश्र प्रकार की है। केवल एक ही ऋतु तक सीमित होने की बजाए ये लगभग अनिश्चित काल तक चलती रह सकती हैं। एक अकेले छत्ते में बहुत संख्या में, यहां तक कि 60,000 से लेकर 70,000 तक मधुमक्खियां रहती पायी जाती हैं।

मधुमक्खी की कॉलोनी की व्यष्टियां तीन प्रकार की जातियों में से किसी एक जाति की हो सकती हैं। ये तीन जातियां हैं (i) एक अकेली लैंगिकत: परिपक्व जननक्षम मादा अथवा रानी, (ii) कुछ सौ लैंगिकत: परिपक्व नर अथवा ड्रोन और (iii) शेष वध्य अथवा लैंगिकत: अक्रिय मादाएं अथवा कर्मी होते ह (चित्र 7.25)।

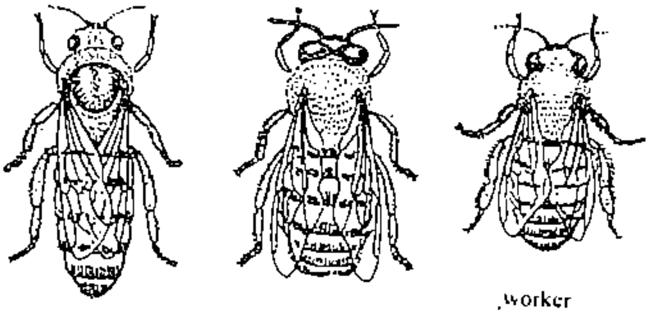

चित्र 7.25 : मधुमक्खी के विभिन्न बहुरूपी स्वरूप।

रानी निर्धारण के लिए रायल-जेली में जो घटक अनिवार्य हैं उनकी अभी तक पहचान नहीं हो पायी है।

रानी के प्रकार्य : रानी का परिवर्धन एक बड़े कोष में निषेचित अण्डे से होता है। रानी वाले लार्वों को विशेष तौर पर, रॉयल जेली -(royal jelly) (अर्थात् शहद+पराग+परिचारी कर्मियों (nurse bees) का ग्रंथि स्राव) का भोजन कराया जाता है। अंतत: केवल एक ही रानी जीवित बचती है और केवल वह ही अण्डे देती है और छत्ते के अन्य सभी सदस्यों की मां होती है। वह करीब 7-8 वर्षों तक जीवित बनी रहती है और पूरे जीवन काल में 15,00,000 के लगभग अण्डे देती है। परिपक्व रानी का उदर अधिक फूल गया होता है क्योंकि उसके भीतर बहुत संख्या में अंडे भरे होते हैं। यही रानी अन्य जातियों के प्रकार्यों एवं उनकी संख्या का नियंत्रण करती है।

ड्रोनों के प्रकार्य : ड्रोन कोई काम नहीं करते, वे कर्मियों से शहद प्राप्त करते रहते हैं। इनका परिवर्धन रानी द्वारा दिए गए अनिषेचित अण्डों से अनिषेकजनन द्वारा होता है। इनका अस्तित्व मात्र नयी रानी के साथ मैथुन करने के हेतु होता है। ड्रोनों के लार्वों को "बी-ब्रेड" (bee bread अर्थात् शहद+पराग) खिलायी जाती है।

कर्मियों के प्रकार्य : कर्मी मक्खियों को भी "बी-ब्रेड" खिलाई जाती है। ये बंध्य मादाएं हैं जो रानी द्वारा दिए गए निषेचित अंडों में से बनती हैं। इन्हें अल्पपोषित रखा जाता है तथा इन्हें एक छोटे कोष्ठ में पाला-पोसा जाता है अत: ये छोटे बने रहते हैं। इन्हें लैंगिक दृष्टि से भी परिपक्व नहीं होने दिया जाता, और उसका साधन है रानी की मेंडिबुलर ग्रंथि से निकलने वाले "रानी पदार्थ" में मौजूद फेरोमोनों (pheromones) का होना। इस प्रकार कर्मी लैंगिक जनन के लिए अक्षम होते हैं। ये कर्मी तमाम प्रकार के कार्य करते हैं - छत्ते के भीतर भी और बाहर भी। ये कर्मी बाहर से एकत्र किए हुए मकरन्द, पराग, गोंद तथा जल को लाद-लाद कर लाते हैं जो छत्ते में प्राप्त कर लिए जाते तथा उचित रूप में भंडारित कर लिए जाते हैं। इनमें से कुछ कर्मी रानी की देखभाल करते तथा उसे खाना खिलाते हैं जब कि अन्य कर्मी शिशु-शालाओं में बच्चों को आहार कराते हैं। "भवन निर्माता" मोम तैयार करते तथा नए कोष्ठ करंड (comb) तैयार करते हैं। मरम्मत करने वाले छत्ते की मरम्मत करते, सफाई-कर्मी कूड़ा करकट तथा शवों को हटाते रहते हैं। पंखा झलने वाले अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए छत्ते के भीतर हवा का प्रवाह बनाए रखते हैं। इनमें "स्टोर-कीपर" होते हैं, और होती हैं चौकीदार मक्खियाँ जो एक बहुत ही व्यस्त मगर सुव्यवस्थित नगर के मुख्य द्वार की चौकीदारी करती रहती है।

वृंदंन के समय के आने पर या यूं कहें कि पुरानी रानी की क्षमता कम हो जाने पर रानी के फीरोमोन कम हो जाते हैं। फीरोमोन के संदमनकारी प्रभाव के अभाव में परिचारी कर्मी मक्खियाँ रॉयल कोष्ठ बनाती हैं और इन कोष्ठों के भीतर अंडे, रायल जेली, तथा बहुत मात्रा में आहार रख दिया जाता है। जो लार्वा रॉयल जेली खाते हैं वे रानियां बन जाते हैं। उसी समय जब रानियां बन रही होती हैं अनिषेचित अंडे उन कोष्ठों में दिए जाते हैं जो कर्मियों के कोष्ठ जैसे होते हैं। इनसे ड्रोन बनते हैं।

जनन व्यवहार

कभी-कभी मधुमक्खियाँ बहुत भारी संख्या में छत्ते से बाहर निकल आती हैं। इसे वृंदन (swarming) कहते हैं। रानी इस छत्ते को छोड़ती है ताकि वह और कहीं एक नया छत्ता स्थापित कर सके और उसके साथ बहुत बड़ी संख्या में पुराने कर्मी तथा ड्रोन भी निकल पड़ते हैं। अधिकतर रानी माँ या पुरानी रानी ही नयी कॉलोनी (छत्ता) बनाने के लिए पृथक होती है। पीछे छत्ते में रह जाते हैं नए बने कर्मी और अनेक नई रानियाँ जो अभी भी अपने कोष्ठों में बंद होती हैं मगर उनका प्रकट होना नज़दीक ही होता है। जो भी नई रानी सबसे पहले कोष्ठ से बाहर आती है वही उस जनक छत्ते की रानी बनती है। प्रकट हुई यह रानी अपनी छोटी बहनों को उनके पूरी तरह प्रकट होने से पहले ही डंक मार कर उन्हें मौत के घाट उतार देती है।

कामद (nupital) अथवा विवाह उड़ान (marriage flight) : प्रकट होने के लगभग एक सप्ताह बाद नई बनी कुंवारी रानी अपनी पहली उड़ान पर छत्ते से बाहर आती है। इस उड़ान के दौरान उसके पीछे-पीछे बहुत से ड्रोन भी उड़ते चले आते हैं। संगमन वायु में उड़ते-उड़ते ही सम्पन्न हो जाता है। संगमन उड़ान के दौरान एक ड्रोन या कभी-कभी एक से अधिक ड्रोन रानी को निषेचित कर देते हैं और इस संगठन में रानी के शुक्र ग्राही (seminal recepticle) में शुक्राणु पर्याप्त संख्या में भंडारित हो जाते हैं जो उसके जीवन पर्यंत काम आते रहते हैं। तदुपरांत मैथुन रत जोड़ा ज़मीन पर आ गिरता है। संगमन के बाद एक या अधिक संगमनकारी नर मर जाते हैं। और फिर रानी अपने आप को खींच कर छुड़ा लेती तथा वापिस छत्ते में लौट आती है। संगमन के तीन-चार दिन के बाद यह नई रानी अण्डे देना प्रारंभ कर देती है। निषेचित अण्डे कर्मियों के अथवा रानी के कोष्ठों में दिए जाते रहते हैं तथा अनिषेचित अण्डे ड्रोनों के कोष्ठों में दिये जाते हैं। रानी पांच ऋतुओं के लंबे काल तक जीवित रह सकती है, और इस दौरान हजारों अण्डे देती है। ड्रोन जिनके डंक नहीं होते, सामान्यत: गर्मियों के बाद कर्मियों द्वारा खदेड़े या मार दिये जाते हैं। जैसा कि आप जान ही चुके हैं अण्डों से निकले लार्वा रानी बनेंगे या कर्मी, यह लार्वों को मिलने वाले आहार और रानी द्वारा स्त्रावित फेरोमोनों पर निर्भर करता है (चित्र 7.26)।

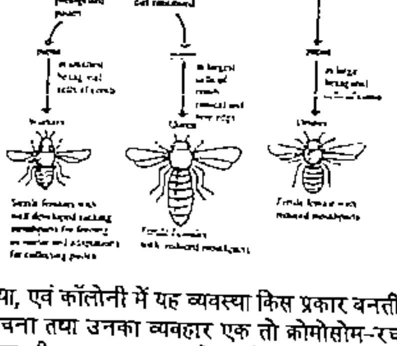

चित्र 7.26 : मधुमक्खी की जाति व्यवस्था, एवं कॉलोनी में यह व्यवस्था किस प्रकार बनती है, इन दोनों का संक्षेप। प्रत्येक प्रकार के प्राणियों की संरचना तथा उनका व्यवहार एक तो क्रोमोसोम-रचना द्वारा निर्धारित होता है और दूसरे कुल मिलाकर समुदाय की क्या आवश्यकता है उसके अनुसार इनके होने वाले पालन-पोषण द्वारा।

B. चीटियां

चीटियों में बहुरूपता चरम सीमा पर पहुंच गयी है। चीटियों की कॉलोनियां दीमकों की जैसी होती हैं और ये सामान्यत: मिट्टी के भीतर अथवा लकड़ी के भीतर या पत्थर के नीचे सुरंगों में रहती होती पायी जाती हैं। चींटियों के किसी प्ररूपी घोंसले के भीतर मुख्य जातियाँ चार होती हैं— रानियां, नर, सैनिक तथा कर्मी (चित्र 7.27)।

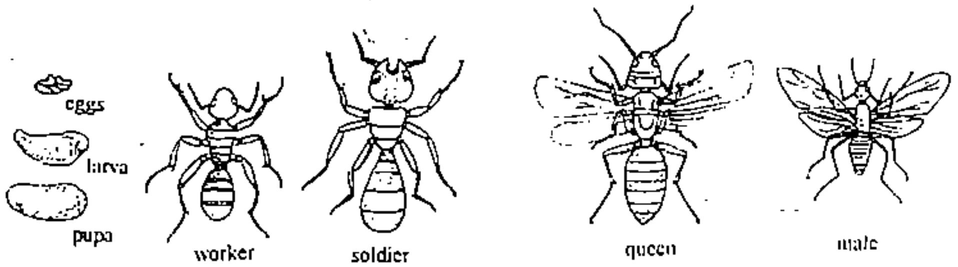

चित्र 7-27 : चींटियों के बहुरूपी स्वरूप।

i) कर्मी (workers) अथवा अर्गेटीज़ (ergates)

ये वंध्य मादाएं होती हैं। मधुमक्खियों की तरह इन्हें भी पूरा आहार न देकर इन्हें वंध्य बनाया जाता है। ये घोंसले की सबसे छोटी सदस्य हैं। इनकी संख्या बहुत होती है तथा घोंसले की रानी इनके लिए अलग-अलग कार्य सुपुर्द कर देती है। ये भवन-निर्माता हो सकते हैं, आहार ढूंढने-इकट्ठा करने वाले हो सकते हैं, मरम्मत करने वाले, परिचारिकाएं अथवा रानी की निजी देखभाल करनें वाले हो सकते हैं। ये व्यष्टियां आकारिकी की दृष्टि से समान होती हैं, उनके केवल प्रकार्य ही भिन्न होते हैं। चित्र 7.28 में एक विशेषित चींटी कर्मी दिखाया गया है।

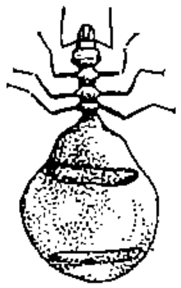

Honey ants (worker) also
collect honeydew
They store it in part of
their body

चित्र 7-28 : एक विशेषित कर्मी चींटी।

ii) सैनिक (Soldiers)

ये ऐसे कर्मी हैं जो आकारिकी एवं प्रकार्य की दृष्टिं से रूपांतरित हो गए हैं। इनके शीर्ष बड़े होते हैं। तथा मैंडिबल बहुत शक्तिशाली हो गए हैं। इनके शक्तिशाली जबड़ों के दो स्पष्ट प्रकार्य हैं (i) ये बीजों तथा अन्य कड़े आहार को चूरा कर देते हैं, और (ii) शत्रुओं से लड़ते तथा घोंसले की रक्षा करते हैं। कभी ध्यान दिया होगा तो इन्हें आपने अपने-ही घर में देखा होगा और इनके जबरदस्त काटने से आपको डर सा बना रहता है।

स्पीशीज़ में सैनिक चींटियां अन्य ...ति के घोंसलों पर आक्रमण ...रती हैं और उनके लार्वों तथा प्यूपों को उठा ले जाती है जिन्हें वे पाल पोस कर "दास" बना लेती हैं।

iii) रानियां (queens) अथवा मादाएं

जैसा कि मधुमक्खियों में नहीं होता, चींटी की कॉलोनी में कई-कई रानियां होती हैं। ये जननक्षम मादाएं होती हैं जिनके भीतर जनन अंग सुविकसित होते हैं। समूह के अन्य सदस्यों की अपेक्षा रानी अधिक लम्बी होती है। इसके उपांग अपेक्षाकृत छोटे तथा अधिक मजबूत होते हैं। इनमें पंख केवल तभी तक होते हैं जब

तक कि ये मैथुन नहीं कर चुकी होतीं। इनके आरंभिक कार्यों में तीन बातें आती हैं -
(i) कोष्ठ-निर्माण, (ii) संतान-पालन तथा (iii) रक्षा। अतः जब तक ये अण्डे नहीं देने लग जातीं तब तक इनमें व्यवहार-संबंधी अभिनय-आगार बहुत व्यापक होता है। तदुपरांत ये केवल अण्डे देती रहती और आहार करती रहती हैं।

iv) नर (males)

ये छोटे, जननक्षम, पंखधारी व्यष्टियां होते हैं जिनमें संवेदी अंग तथा जनन अंग सुविकसित होते हैं। मैथुन क्रिया विवाह-उड़ान में ही सम्पन्न हो जाती है। व्यस्क नर तथा मादा चींटियां पंखधारी होती हैं। मैथुन उड़ते-उड़ते हो जाता है। मैथुन के बाद नर सामान्यतः मर जाते हैं जब कि मैथुन हो चुकी मादाएं अपने पंख गिरा देती हैं और नई कॉलोनी का प्रारंभ करने के वास्ते स्थान ढूंढने लग जाती हैं। कुछ समय बाद रानियां अण्डे देती हैं; अण्डे से लार्वा निकलते हैं। रानियां इन लार्वों को अपनी लार खिलाती हैं और तब तक खिलाती जाती हैं जब तक कि उनसे प्यूपा नहीं बन जाते। उसके बाद बढ़ते जाते बच्चों की देखभाल का काम कर्मी अपने ऊपर ले लेते हैं और रानियां बस अण्डे देती रहतीं तथा आहार करती रहती हैं।

C. दीमकें (termites)

दीमकें अत्यन्त सामाजिक कीट हैं; ये बड़ी-बड़ी कॉलोनियां अथवा घोंसले बना कर रहती है जिन्हें ये सामान्यतः मिट्टी में बनाती हैं। अनेक स्पीशीज़ में घोंसला बहुत विशाल एवं संरचना में अति सम्मिश्र होता है। दीमकों की कालोनियों में अनेक जातियां होती हैं जिनमें जननक्षम व्यष्टियां (नर और मादा दोनों), तथा बंध्य व्यष्टियां होती पायी जाती हैं (चित्र 7.29)। जैसा कि आप पढ़ेंगे कुछ जननक्षम व्यष्टियों में पंख बने हो सकते हैं, और वे कॉलोनी के बाहर आ जातीं, संगमन करतीं, अपने पंख गिरा देतीं और उसके बाद राजा और रानी बन कर एक नई कालोनी स्थापित करती हैं। पंखविहीन जनन क्षम व्यष्टियां भी कुछ ख़ास परिस्थितियों में राजा और रानी का स्थान ले लेती हैं। बंध्य सदस्य पंखविहीन होते हैं और वे कर्मी एवं सैनिक बन जाते हैं। जनक नर कालोनी का स्थायी सदस्य होता है। सामाजिक हाइमेनॉप्टेरा से दीमकें इस बात में भिन्न हैं कि दीमक की कॉलोनी के कर्मी दोनों ही सेक्सों (नर तथा मादा) की व्यष्टियां होते हैं और वे बाल्यावस्था के हो सकते हैं अथवा वयस्क अवस्था के।

आइये अब हम दीमकों की सामाजिक संरचना को सविस्तार देखते हैं।

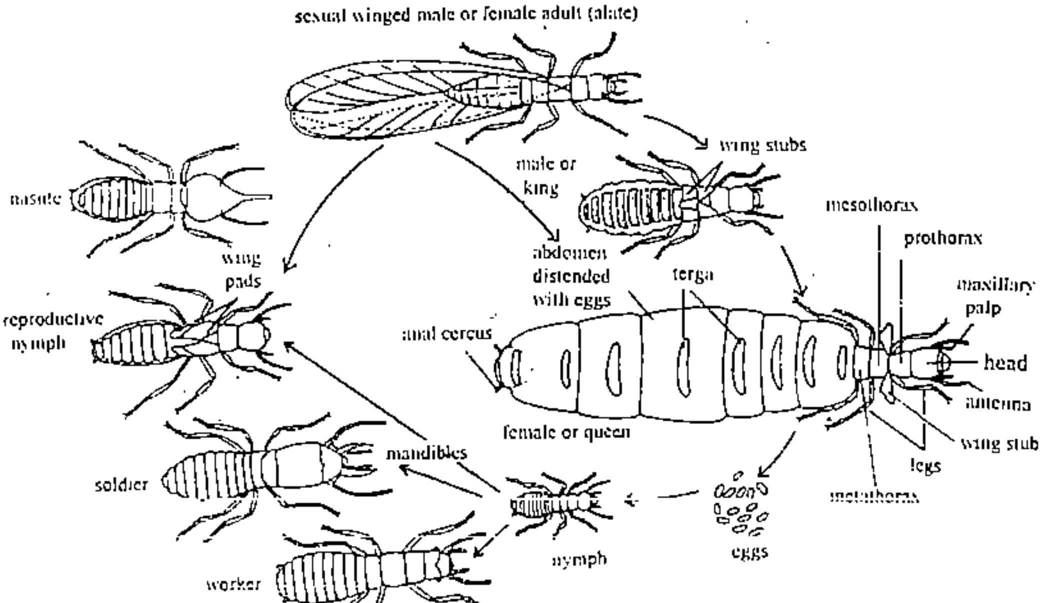

चित्र 7-29 : दीमकों के बहुरूपी स्वरूप।

दीमकों में जाति व्यवस्था

प्रमुख जातियां दो श्रेणियों में आती हैं - 1. जननक्षम जातियां तथा 2. बंध्य जातियां

1. जननक्षम जातियां

इनमें ये आती हैं।

क) दीर्घपंखी (Macropterous) अर्थात् लंबे पंखों वाले स्वरूप

ख) लघुपंखी (Brachypterous) अर्थात् छोटे पंखों वाले स्वरूप

ग) अपंखी (Apterous) अर्थात् बिना पंखों वाले स्वरूप

क) दीर्घपंखी अर्थात् लंबे पंखों वाले स्वरूप

ये सामान्य पंखों से युक्त व्यष्टियां हैं जो वास्तविक राजा एवं रानियां बनती हैं। ये शाही कक्ष में रहते हैं। इनका शरीर वर्णकयुक्त पीला, भूरा अथवा काला होता है। इनकी आंखें बड़ी होती हैं तथा एक-दूसरे से ज़रा दूर-दूर हट कर होती हैं। पंखों की दो जोड़ियां होती हैं और ये पंख शरीर से ज्यादा लंबे होते हैं। विवाह-उड़ान तथा संगमन (मैथुन) के बाद पंख अंततः टूट कर अलग हो जाते हैं। सफलतापूर्वक मैथुन हुई मादा, रानी बन जाती है और उसमें अत्यन्त नाटकीय ढंग से परिवर्तन होते हैं। उसके उदर का आकार बहुत ज्यादा बढ़ता जाता है।

ख) लघुपंखी अर्थात् छोटे पंखों वाले स्वरूप

इन्हें कभी कभी पूरक (supplementary) अथवा प्रतिस्थापी (substitute) अथवा चिरलार्वीय (नीओटेनिक-neotenic) राजा एवं रानियां भी कहते हैं। इनका शरीर कम वर्णकयुक्त होता है। इनके दो जोड़ी पंख छोटे, अवशेषी तथा पैड (pad) जैसे होते हैं। आंखें छोटी होती हैं।

ग) अपंखी अर्थात् बिना पंखों वाले स्वरूप

ये कर्मी-सरीखे प्रतिस्थायी राजा और रानियां होते हैं जो अधिक आदिम स्पीशीज़ में होते पाए जाते हैं। शरीर में वर्णक नहीं होता।

2) बंध्य जातियां (sterile castes)

ये पंखविहीन स्वरूप होते हैं जिनमें जनन अंग अल्पवर्धित होते हैं। ये जातियां तीन स्वरूपों में पायी जाती हैं:-

क) कर्मी (workers)

कर्मियों की संख्या अन्य किसी भी जाति से अधिक होती है। केवल जनन को छोड़कर कॉलोनी के भीतर के सभी अन्य कार्य करना इन्हीं के सपुर्द होता है। ये अण्डों और बच्चों की देखभाल करते हैं, रानी को आहार कराते और उसकी देखभाल करते हैं, आहार एकत्रित करते तथा सुरंगें एवं घोसला बनाते हैं। इनके शरीर का वर्णक बहुत कम अथवा होता ही नहीं। आंखें सामान्यतः नहीं होतीं।

अल्पायु व्यष्टियों, सैनिकों तथा राजा-रानी को ये ही कर्मी अपने ही भीतर के उगले हुए आहार एवं लार का भोजन कराते हैं।

ख) सैनिक (Soldiers)

ये सर्वाधिक विशेषित व्यष्टियां होते हैं। इनका संबंध कॉलोनी की सुरक्षा से है। इनके सिर बड़े होते हैं जिनमें जबड़े (मैंडिबल) होते हैं या इनके शीर्ष पर एक ललाट प्रबर्ध (frontal process) निकला होता है जिसमें से सुरक्षाकारी स्राव बाहर को छोड़े जाते हैं। इनके शीर्ष असाधारण रूप में सुव्यक्त होते हैं तथा जबड़े अत्याधिक शक्तिशाली होते हैं, परंतु आश्चर्य की बात है कि इनमें आंखें नहीं होतीं।

ग) नैस्यूट (Nasutes)

कुछ जीनसों में, सैनिकों के स्थान पर विचित्र प्रकार के सूंड (nasus) अथवा तुंड-धारी स्वरूप पाए जाते हैं जिन्हें शुंडधारी अथवा प्रोबोसिडियन्स कहते हैं। इनमें जबड़े अवशेषी होते हैं। इनका शीर्ष लम्बा होकर एक रॉस्ट्रम (तुंड) बना होता है जिसके शिखाग्र पर एक बड़ी ललाट (frontal) ग्रंथि का छिद्र बना होता है।

वर्षा ऋतु में दीर्घ पंखी स्वरूप (राजा और रानियां) बहुत बड़ी संख्या में अपने घोंसलों से बाहर आ जाते हैं और वृंदन (swarming) प्रारंभ करते हैं। थोड़ा सा उड़ने के बाद ये पंखदार राजा-रानी ज़मीन पर आ जाते, और अपने पंखों को अलग कर गिरा देते हैं। इनकी उड़ान वास्तव में विवाह उड़ान नहीं होती, वरन मात्र प्रकीर्णन उड़ान होती है, ऐसा इसलिए क्योंकि इनमें मैथुन की क्रिया उड़ते समय नहीं होती, ये ज़मीन पर आकर मैथुन करते हैं। इनमें से अधिकतर तो मर ही जाते हैं पर जो कुछ एक भाग्यशाली बच जाते हैं वे नई कॉलोनियां आरम्भ करते हैं। शाही जोड़ा जमीन में एक छोटी सी गुफा खोद लेता है जिसे विवाह-कक्ष कह सकते हैं। शुरू-शुरू के दिए गए अण्डों से कर्मी बनते हैं और जब उनकी संख्या काफी हो जाती है तब ये कर्मी शाही दम्पति को आहार कराने तथा घोंसले को बढ़ाने का काम भी करने लग जाते हैं।

जैसा कि पहले ही कह चुके हैं, रानी के शरीर में अत्याधिक परिवर्तन आते हैं। उसके अण्डाशय तथा वसा बहुत ज़्यादा बढ़ जाते हैं। उसक पेट बहुत फूल जाता है तथा उसका नन्हा सा शीर्ष इस मोटे पेट से आगे को एक काली पिन जैसा निकला होता है। जिस क्षण रानी की अण्डे देने की क्षमता न्यून हो जाती है उसको कर्मियों द्वारा आहार कराना समाप्त कर दिया जाता है। वह भूख से मर जाती है तथा उसके शरीर के वसायुक्त अवशेष को कॉलोनी के शेष सदस्य बड़ा स्वाद लेकर चट कर जाते हैं।

दीमकों में जाति-निर्धारण की क्रियाविधि फीरोमोन नाम रासायनिक पदार्थों के नियंत्रण में निहित होती है। यह फीरोमोन शाही जोड़े के शरीर में से बनता है, तथा ट्रोफैलिक्सिस (trophallaxis) नामक पारस्परिक अशन प्रक्रिया के द्वारा यह पदार्थ समस्त कॉलोनी में फैलता हुआ निम्फों में पहुंच जाता है, जिससे ये निम्फ बंध्य कर्मी बन जाते हैं।

बोध प्रश्न 3

उपयुक्त शब्दों को रिक्त स्थान में भरिए :-

i) .... की कॉलोनी में अनेक रानियां पायी जाती हैं।
ii) मधुमक्खी की कॉलोनी में रॉयल जेली का बनना .... में से होता है।
iii) मधुमक्खियों में सामान्यतः मैथुन के बाद .... की मृत्यु हो जाती है।
iv) दीमकों की कॉलोनियों में दीर्घपंखी जाति से .... तथा .... बनते हैं।

7.4 सारांश

इस इकाई में आपने निम्नलिखित बातें पढ़ीं :

- विभिन्न अकशेरूकियों में कंकाल अंतःकंकाली तथा बाह्यकंकाली संरचनाओं का बना होता है। कुछ अकशेरूकी जैसे कि केंचुएं तथा मौलस्क अपने देह-तरलों को आलम्ब के रूप में इस्तेमाल करते हैं।
- बाह्यकंकाल नाइडेरिया, आर्थ्रोपोडा तथा मोलस्का में पाया जाता है।
- अंतःकंकाल कुछ पोरीफेरा तथा इकाइनोडर्मेटा में पाया जाता है।
- कॉलोनी बनाने वाले प्राणी विभिन्न प्रकार के होते हैं; इनमें सबसे विचित्र हैं बहुरूपता दर्शाने वाले।
- बहुरूपी कॉलोनी ऐसी व्यष्टियों की बनी होती है जो एक-दूसरे से आकृति में भिन्न होने के साथ-साथ भिन्न प्रकार्य भी करते हैं। अकेले-अकेले ये जीवित नहीं रह पाते मगर सामूहिक रूप में ये कॉलोनी की एक सम्पूर्ण कार्यात्मक इकाई बना लेते हैं।

- बहुरूपता का सर्वाधिक विशद रूप में पाया जाना हाइड्रोज़ोआ (नाइडेरिया) तथा इन्सेक्टा (आर्थ्रोपोडा) के कुछ समूहों में होता पाया जाता है।
- अनेक बहुरूपी हाइड्रोज़ोअनों में पीढ़ियों का एकांतरण होता पाया जाता है।
- प्ररूपी बहुरूपी नाइडेरियन कॉलोनी मूलत: दो प्रकार के ज़ूऑइडों - पोलिप एवं मेडुसा, की बनी होती है।
- *ओबीलिया (नाइडेरिया)* की कॉलोनी में (i) पॉलिपॉइड ज़ूऑइड - गैस्ट्रोज़ूऑइड तथा गोनेंजिया और (2) गैर-पौलिपॉइड लैंगिक स्वरूप मेडुसा होते हैं।
- साइफ़ोनोफ़ोर (नाइडेरिया) कॉलोनी में अनेक प्रकार के पौलिपॉइड ज़ूऑइड पाए जाते हैं जैसे गैस्ट्रोज़ूऑइड, डैक्टिलोज़ूऑइड तथा गोनोज़ूऑइड तथा अनेक प्रकार के मेडुसॉइड ज़ूऑइड जैसे- न्यूमैटोफ़ोर, फ़िल्लोज़ूऑइड, नेक्टोकेलिक्स तथा गोनोफ़ोर।
- बहुरूपता तथा पीढ़ियों के एकांतरण से स्पीशीज़ को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।
- कीटों में बहुरूपी स्वरूप सबसे अच्छी तरह मधुमक्खियों, दीमकों तथा चींटियों में होते देखे जा सकते हैं।
- मधुमक्खियों में तीन प्रकार के जाति स्वरूप पाए जाते हैं - रानी, ड्रोन तथा कर्मी।
- चींटियों में रानियां, नर, सैनिक तथा कर्मी पाए जाते हैं।
- दीमकों में नैस्यूट, सैनिक, कर्मी तथा जनन-निम्फ़ (दीर्घपंखी, लघुपंखी, अपंखी आकार) जो रानी और राजा बनते है पाए जाते हैं।

7.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) अंत: तथा बाह्यकंकाल में अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

2) कंकाल के क्या-क्या प्रकार्य हैं?

....

....

....

....

....

3) पोरिफ़ेरा में किस प्रकार की कंटिकाएं पायी जाती हैं?

....

....

....

....

4) बहुरूपता से आप क्या अर्थ समझते हैं?

....

....

....

5) साइफ़ोनोफ़ोरों के विविध बहुरूपी स्वरूपों के प्रकार्यों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

6) दीमकों में पायी जानेवाली विभिन्न जातियों के नाम लिखिए।

....

....

....

7.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) 1. d
   2. c
   3. b
   4. a

2) (i) - F
   (ii) - T
   (iii) - F
   (iv) - T
   (v) - F

3) (i) चींटी (ii) परिचारी कर्मी (iii) ड्रोन/नर (iv) राजा तथा रानियां

अंत में कुछ प्रश्न

1) जब कंकाली संरचनाएं प्राणियों के शरीर के भीतर गड़ी होतीं तथा बाहर से पूरी तरह दिखायी नहीं पड़ती तब ऐसे कंकाल को अंत:कंकाल कहते है। जब कंकाली संरचनाएं प्राणी की सतह पर मौजूद होती हैं, हालांकि वे अंशत: शरीर के भीतर गड़ी होती और बाहर दिखायी पड़ती हैं तब इन्हें बाह्यकंकाल कहते हैं।

2) कंकाल मुख्यत: प्राणी के शरीर का ढांचा होता है और वह प्राणी को आकृति एवं आलम्ब प्रदान करता है। परंतु यह शरीर की सुरक्षा भी करता है तथा पेशियों को संलग्नता भी प्रदान करता है।

3) फ़ाइलम पोरिफ़ेरा का अंत:कंकाल मुख्यत: कंटिकाओं के रूप में होता है। ये कंटिकाएं शलाका जैसी अथवा सुई-जैसी संरचनाएं होती हैं। ये निम्नलिखित प्रकार के पदार्थों की बनी हो सकती हैं :-

i) कैल्सियम कार्बोनेट, जैसे कि क्लास कैल्केरिया के अंतर्गत आने वाले प्राणियों में, उदाहरण *साइफ़ा*

ii) सिलिका (सिलिकॉन डाइऑक्साइड), जैसे क्लास हेक्सैक्टिनेलाइडा के प्राणियों में, उदाहरण *यूप्लेक्टेला*।

कंटिकाएं अनेक आकृतियों की हो सकती हैं जैसे कि केवल एक किरण से युक्त एकाक्षक (मॉनऐक्सॉन), या तीन किरणों वाली त्रिअक्षक ट्राइऐक्सॉन, या चार किरणों वाली चतुर्क्षक (टेट्राऐक्सॉन) या अनेक किरणों वाली बहुअक्षक (पौलीऐक्सॉन)।

4) बहुरूपता वह परिघटना है जिसमें एक ही स्पीशीज़ की व्यष्टियां विभिन्न स्वरूपों में प्रकट हो सकती हैं

जिनमें से प्रत्येक स्वरूप अलग-अलग प्रकार्य करता होता है। यह अनेक हाइड्रोज़ोअनों, साइफ़ोनोफ़ोरा (नाइडेरियनों) तथा अनेक कीटों में स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

5) प्ररूपी साइफ़ोनोफ़ोर में दो स्वरूप पाए जाते हैं - पौलिप तथा मेडुसा। पौलिपॉइड स्वरूप में निम्नलिखित ज़ूऑइड पाए जाते हैं :-

a. गैस्ट्रोज़ूऑइड : आहार पकड़ना तथा पचाना और पूरी कॉलोनी को पोषण प्रदान करना।
b. डैक्टिलोज़ूऑइड : कॉलोनी की सुरक्षा करना।
c. गोनोज़ूऑइड : ये जनन ज़ूऑइड होते हैं तथा इनमें नर और मादा गोनड बनते हैं।

मेडुसॉइड स्वरूप में निम्नलिखित ज़ूऑइड पाए जाते हैं :-

a. न्यूमैटोफ़ोर - ये कॉलोनी के मुख्य प्लव होते हैं।
b. नेक्टोकेलिक्स - ये छोटे सहायक प्लव होते हैं।
c. फ़िल्लोज़ूऑइड - ये विभिन्न ज़ूऑइडों के ऊपर उन्हें घेरते हुए एक सुरक्षाकारी आवरण बनाकर उन्हें सुरक्षा प्रदान करते है।
d. गोनोफ़ोर - ये लैंगिक मेडूयूसॉइड होते हैं और इनका प्रकार्य जनन है।

6) दीमकों के सामाजिक समूह में दो मुख्य जातियां होती हैं (a) जननक्षम जातियां और (b) बंध्य जातियां :-

जननक्षम जातियों में आती हैं--

क) दीर्घपंखी ख) लघुपंखी ग) अपंखी व्यष्टियां

बंध्य जातियों में आते हैं :-

क) कर्मी ख) सैनिक ग) नैस्यूट

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Invertebrate Zoology by Rupert/Barnes, Sixth International Edition, 1994.
Integrated Principles of Zoology, Ninth Edition, by Hickman, Roberts, Larson, 1995.

शब्दावली

अपमुख (aboral)	:	क्षेत्र जो मुख के विपरीत दिशा में होता है।
अडल प्रवाल (atoll coral)	:	प्रवाल जो जलमग्न ज्वालामुखी के शीर्ष पर टिका होता है।
द्विविभजन (binary fission)	:	अलैंगिक जनन जिसमें दो समान व्यष्टियां बन जाती हैं।
मुकुल (bud)	:	प्रोटोज़ोआ में : द्विविभजन के परिणामस्वरूप बनी दो कोशिकाओं में से छोटी संतति कोशिका मेटाज़ोआ में : अलैंगिक विधि से पैदा हुई संतति जो या तो एक कॉलोनीय ज़ूऑइड के रूप में अपने जनक से ही जुड़ी रहती है या उसमें विभेदन होकर एक पृथक व्यष्टि के रूप में वह अलग मुक्त हो जाती है।
जाति (caste)	:	कीट समाज बनाने वाले बहुरूपी स्वरूपों में से कोई एक ऐसी प्रत्येक जाति विशिष्ट कार्य करती है; जैसे रानी, कर्मी, सैनिक आदि।
काइटिन (chitin)	:	श्रृंगीय पदार्थ जो आर्थ्रोपोडों की क्यूटिकल का अंश होता है और जो अन्य अकशेरूकियों में विरलता ही पाया जाता है; एक नाइट्रोजनी पौलीसैकेराइड जो जल, ऐल्कोहॉल, तनु अम्लों तथा अधिकार प्राणियों के पाचन रसों में अविलेय होता है।
नाइडोसिल (cnidocil)	:	एक छोटा कड़ा दृढ़रोम-जैसा सिलियम जो एक नाइडोसाइट पर बना होता है।
नाइडोसाइट (cnidocyte)	:	नाइडेरियन कोशिका जिसके भीतर एक बहिर्वतनशील पतली लम्बी तथा पैनी नलिका बनी होती है।
सीलेंटेरॉन (coelenteron)	:	नाइडेरियनों तथा टीनोफ़ोरों की आहार-नाल, जठरवाही गुहा।
सीलोम (coelom)	:	देह गुहा, जिसका अस्तर मीज़ोडर्म से व्युत्पन्न एपिथीलियम का बना होता है।
कॉलोब्लास्ट (colloblast)	:	एक आसंजी कोशिका जो टीनोफ़ोरों के स्पर्शकों पर स्थित होती है।
कॉलोनी (निवह) (colony)	:	प्राणियों का ऐसा पिंड जो संरचनात्मक रूप में जुड़े ऐसे ज़ूऑइडों का बना होता है जो संसाधनों को आपस में बांटते इस्तेमाल करते हैं।
क्यूटिकल (cuticle)	:	एक सुरक्षाकारी, अकोशिकीय, जैविक परत जिसका स्राव भीतरी एपिथीलियम (हाइपोडर्मिस) से निकलता है। उच्चतर प्राणियों मे यह शब्द एपिडर्मिस अथवा बाहरी त्वचा का बोध देता है।
डैक्टिलोज़ूऑइड (dactylozooid)	:	उंगली जैसी आकृति का सुरक्षाकारी हाइड्रोज़ोअन पौलिप।
द्विरूपता (dimorphism)	:	एक ही स्पीशीज़ के भीतर दो पृथक स्वरूपों का पाया जाना जो रंग, सेक्स, साइज़, अंग-संरचना आदि के अनुसार भिन्न होते हैं। कॉलोनीय जीवों मे दो प्रकार के ज़ूआइडों का पाया जाना।
पृथक्लिंगाश्रयी (diocious)	:	वह व्यवस्था जिसमें नर तथा मादा लिंग अलग-अलग व्यष्टियों में पाए जाते हैं।
एपिडर्मिस (epidermis)	:	एक्टोडर्मी स्रोत की बाहरी अदाहिकीय परत; अकशेरूकियों में एक्टोडर्मी एपिथीलियम की एकल परत।
यूटेली (eutely)	:	आनुवंशिकत : निश्चित संख्या में कोशिकाओं के होने की दशा।

तटीय प्रवाल भित्ति (fringing reef)	:	ऐसी प्रवाल भित्ति जो सीधे समुद्र से प्रारम्भ होकर समुद्र की ओर को फैली होती है।
गैस्ट्रोज़ूऑइड (gastrozooids)	:	नाइडेरियनों का पोषण-संबंधी अथवा अशनकारी पौलिप।
गोनैंजियम (gonangium)	:	हाइड्राइड कॉलोनी (नाइडेरिया) का जनन ज़ूआइड।
जननछिद्र (gonopore)	:	अनेक अकशेरूकियों में पाया जाने वाला जनन संबंधी छिद्र।
उभयलिंगी (hermaphroditic)	:	एक ही व्यष्टि में नर तथा मादा दोनों जनन तंत्रों का पाया जाना।
समजातता (homology)	:	समान उद्भव वाली संरचनाएं जो भिन्न प्रकार्य करती रहती हैं।
हाइड्रैंथ (hydranth)	:	हाइड्रा कॉलोनी का पोषण ज़ूआइड।
हाइड्रॉइड (hydroid)	:	नाइडेरियन का मेडुसा स्वरूप से भिन्न पौलिपॉइड स्वरूप। क्लास हाइड्रोज़ोआ आर्डर हाइड्रॉइडा का कोई नाईडेरियन।
द्रवकंकाल (hydroskeleton)	:	इसे द्रवस्थैतिक (hydrostatic) कंकाल भी कहते हैं किसी पेशीय भित्ति के भीतर या किसी एक देह गुहा के भीतर बंद स्फीति द्रव की संहति अथवा सुनम्य पैरेंकाइमा जो किसी जीव को अथवा उसके किसी एक भाग को आलम्ब अथवा दृढ़ता प्रदान करता है और जो परस्पर विरोधी पेशी क्रिया के वास्ते आवश्यक है, उदाहरणत: अलीलोमी प्राणियों में पैरेंकाइमा तथा कूटसीलोमियों (pseudocoelomates) में परिअंतरंग तरल द्रवस्थैतिक कंकाल का कार्य करते हैं।
मैड्रेपोराइट (madreporite)	:	इकाइनोडर्मों में चलनी जैसी संरचना जो जल-संवाहक तंत्र के लिए प्रवेश-मार्ग होती है।
मेडुसा (medusa)	:	जेली-फिश, अथवा नाइडेरियनों के जीवन-चक्र की स्वच्छंद तैरने वाली अवस्था।
अस्थिकाएं (ossicles)	:	इकाइनोडर्म अंत:कंकाल के छोटे-छोटे पृथक अंश।
अनिषेकजनन (parthenogenesis)	:	एक लिंगी जनन, जिसमें नर द्वारा निषेचन किए बिना बच्चा बनता है। अनिषेक
पैक्सिला (paxilla)	:	इकाइनोडर्म अस्थिका जिसके ऊपर गतिशील शूल बने होते हैं।
बहुरूपता (polymorphism)	:	किसी स्पीशीज़ में एक से अधिक संरचनात्मक स्वरूपों का पाया जाना।
रॉस्ट्रम (rostrum)	:	शीर्ष से निकला हुआ थूथन जैसा प्रवर्ध।
स्क्लेराइट (sclerite)	:	आर्थ्रोपोडों के बाह्यकंकाल में क्यूटिकल का मोटा हो गया क्षेत्र।
स्थानबद्ध (sedentary)	:	स्थिर, एक स्थान पर अक्रिय रहना, एक स्थान पर टिके रहना।
वृंतहीन (sessile)	:	आधार पर जुड़ा हुआ, एक स्थान पर चिपका हुआ, इधर उधर न चल सकने वाला।
सिलिकामय (siliceous)	:	सिलिका से युक्त।
कंटिका (spicule)	:	स्पंजों, रेडियोलेरियनों, कोमल मूंगों तथा "समुद्री-खीरों" में पाए जाने वाले सूक्ष्म कैल्शियमी अथवा सिलिकामय कंकाली पिंड।
स्पंजिन (spongin)	:	तंतुमय, कोलैजनी पदार्थ जो श्रृंगीय स्पंजों का कंकाली जाल बनाता है।
स्टर्नम (sternum)	:	आर्थ्रोपोड देह खण्ड की प्राथमिक अधर प्लेट, कशेरूकियों की उरोस्थि।

टर्गम (tergum)	:	प्रत्येक आर्थ्रोपोड देहखण्ड की प्राथमिक पृष्ठीय बाह्यकंकाल प्लेट।
टेस्ट (test)	:	कवच अथवा कड़ा हो गया बाहरी आवरण।

NOTES

NOTES

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -01
प्राणि विविधता-1

खंड

3

तुलनात्मक स्वरूप तथा कार्य

इकाई **8**

संचलन **5**

इकाई **9**

पोषण, उत्सर्जन तथा परासरणनियमन **43**

इकाई **10**

श्वसन , परिसंचरण तंत्र **82**

11

का तंत्र तथा संवेदी अंग **111**

इकाई **12**

अंत: स्रावी तंत्र **139**

इकाई **13**

अकार्डेटों में जनन **158**

खण्ड 3 तुलनात्मक स्वरूप तथा कार्य

ब्लॉक 2 में आपने कुछ कुछ असीलोमी तथा कूटसीलोमी फ़ाइलमों जैसे कि पोरीफ़ेरा, नाइडेरिया, टीनोफ़ोरा, प्लैटीहेल्मिंथीज़, नीमैटोडा तथा रोटीफ़ेरा के विशिष्ट लक्षणों तथा उनके वर्गीकरण के विषय में अध्ययन किया था। आपने ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडा से आरम्भ करके सीलोमेट समूह के प्राणियों तक के बारे में भी सीखा। साथ ही आपने कोमल शरीर वाले प्राणियों जिनमें मौलस्क तथा कंटीली त्वचा वाले प्राणी इकाइनोडर्म आते हैं, की भी जानकारी की। इस खण्ड में कुल 6 इकाईयां दी गयी हैं।

इस खण्ड की इकाई 8 में आप संचलन के विषय में पढ़ेंगे, जिसमें पूरे शरीर की एक स्थान से दूसरे स्थान में गति निहित होती है। इस इकाई में विभिन्न अकॉर्डेट प्राणियों में पायी जाने वाली विविध संचलन-शैलियों का तथा उनमें काम आने वाली संचलन यांत्रिकी के संरचनात्मक घटकों का वर्णन किया गया है।

इकाई 9 में बहुकोशिकीय अकॉर्डेटों में पोषण, उत्सर्जन तथा परासरणनियमन के विभिन्न पहलुओं को लिया गया है क्योंकि इन प्राणियों के अशन-स्वभावों में भारी विविधता पायी जाती है। इस इकाई के पहले भाग में आप पोषण के विषय में पढ़ेंगे यानी अकॉर्डेटों में अशन और पाचन के लिए विविध अनुकूलनों के विषय में, जबकि दूसरे भाग में आप उत्सर्जन के विषय में पढ़ेंगे यानी इस क्रिया के विषय में जिनका संबंध ऊर्जा-सम्पन्न यौगिकों के ऑक्सीकरण के परिणामस्वरूप एवं प्रोटीन तथा न्यूक्लिइक अम्ल के उपापचयन के फलस्वरूप बनने वाले उपापचयी अपशिष्टों को शरीर से बाहर निकालने से है। इस इकाई में लिए गए तीसरे पहलू का संबंध अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में शरीर के भीतर जल तथा आयनों की मात्रा का नियमन करने से है।

इकाइ 10 में श्वसन तंत्र को तथा श्वसन में सहायता करने वाले अनेक प्रकार के अंगों की चर्चा की गयी है। आप इसमें पढ़ेंगे कि छोटे आकार के प्राणियों में किस प्रकार मात्र निष्क्रिय विसरण से ही श्वसन-उद्देश्य पूरा हो जाता है जबकि बड़े आकार के प्राणियों में गैसों को परिवेशी माध्यम से लेकर उन्हें उपापचय क्रिया के स्थानों तक पहुँचाना होता है जिसके लिए बीच में परिसंचरण तंत्र काम में आता है। इस इकाई में विभिन्न अकॉर्डेट फ़ाइलमों में पाए जाने वाले विविध परिसंचरण तंत्रों को भी लिया गया है।

इकाई 11 में आप पढ़ेंगे कि शरीर के विभिन्न अंगों का तंत्रिका-तंत्र द्वारा किस प्रकार कारगर एवं उद्देश्यपूर्ण विधि से समन्वय होता है। प्राणी को पर्यावरण में होने वाले हर परिवर्तन का बोध प्राप्त कर लेना होता है, उसके बाद उन परिवर्तनों का आकलन करना और फिर अंत में इन आकलनों को इस प्रकार कार्यरूप देना होता है कि प्राणी को सर्वाधिक लाभ पहुँचे और उसे अनुकूल बनाया जा सके। आप पढ़ेंगे कि तंत्रिका तंत्र में कई घटक आते हैं जैसे संवेदी अंगों के रूप में ग्राही, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में बने समन्वय केंद्र तथा प्रेरक तत्वों के नियंत्रणकारी प्रेरक घटक।

इकाई 12 में अंत:स्रावी तंत्र को लिया गया है जिसमें प्राणी की विविध क्रियाओं के समाकलन एवं समन्वय के लिए प्राणी के शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में रसायनों के द्वारा संदेशों का प्रेषण होता है इसमे आप पढ़ेंगे कि अंत: स्रावी तंत्र उन हार्मोनों नामक रासायनिक पदार्थों के द्वारा संचारण करता है जिनका उत्पादन अंत: स्रावी ग्रंथियों में होता है।

इस खण्ड की इकाई 13 में आप जनन के विषय में पढ़ेंगे जो, जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिघटना है क्योंकि इसी के द्वारा कोई स्पीशीज़ पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती जाती है। इस इकाई में आप अकॉर्डेटों में जनन-विधियों के विषय में पढ़ेंगे जो जीव के सीधे दो में विभाजित होने की सरल विधि से लेकर लैंगिक जनन, अनिषेकजनन, पीढ़ी एकांतरण आदि की अति जटिल विधियों तक अलग-अलग प्रकार की पायी जाती है।

उद्देश्य

इस खण्ड को पढ़ चुकने के बाद आप

- विभिन्न अकॉर्डेटों के विविध संचलन प्ररूपों की, तथा उनमें पायी जाने वाली संचलन यांत्रिकी के सरंचनात्मक घटकों की सूचियां बना सकेंगे,
- अलग-अलग प्रकार के आवासों में रहने वाले विभिन्न अकॉर्डेट जीवधारियों में अशन, उत्सर्जन तथा परासरणनियमन से संबंधित संरचनाओं का वर्णन कर सकेंगे एवं उनके कार्य करने की विधि बता सकेंगे,
- अकॉर्डेट प्राणियों के विभिन्न फ़ाइलमों में विविध प्रकार के श्वसन एवं परिसंचरण तंत्रों का वर्णन कर सकेंगे,
- तंत्रिका-तंत्र की मूल इकाई का एवं अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में इस तंत्र के उद्भव तथा विकास का वर्णन कर सकेंगे,
- तंत्रिकीय तथा हार्मोनी समाकलन में अंतर बता सकेंगे तथा तंत्रिकास्रवण की अवधारणा, प्रमुख अंत:स्रावी संरचनाओं के नामों और अकॉर्डेटों में हार्मोनों के महत्व का उल्लेख कर सकेंगे,
- अकॉर्डेटों में विविध प्रकार के अलैंगिक जनन, पुनर्जनन, अनिषेकजनन की परिघटना, लैंगिक जनन और उसके प्ररूप एवं महत्व का स-उदाहरण वर्णन कर सकेंगे।

इकाई 8 संचलन (Locomotion)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
8.2 संचलन - इसके विविध रूप
8.3 निम्नतर मेटाज़ोअनों तथा ऐनेलिडों में संचलन
संचलन में द्रवचालित दाब का महत्व
सीलेन्टेरेटों में संचलन
चपटे कृमियों में संचलन
नीमैटोडों में संचलन
ऐनेलिडों में संचलन
शरीर की पेशी व्यवस्था
द्रवस्थैतिक कंकाल
संचलन संरचनाएं
संचलन की यांत्रिकी
8.4 आर्थ्रोपोडों में संचलन
8.5 मौलस्का में संचलन
पाद-रिंगी तथा विसर्पी अंग के रूप में
पाद-बिलकारी अंग के रूप में
पाद-कुदान अंग के रूप में
पाद-तरण अंग के रूप में
8.6 इकाइनोडर्मों में संचलन
8.7 सारांश
8.8 अंत में कुछ प्रश्न
8.9 उत्तर

8.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों में अपने अकॉर्डेट प्राणियों की संरचनात्मक संघटना के विषय में पढ़ा। आपने यह भी देखा के निम्न प्राणियों से उच्चतर प्राणियों की ओर जाते हुए किस प्रकार संघटना की जटिलता अधिकाधिक बढ़ती जाती है। मगर संघटना के इस अंतर के बावजूद सभी प्राणी, चाहे वे सरल हों चाहे सम्मिश्र जटिलता वाले, सब के सब अपने आवश्यक शारीरिक कार्यों को करने में सक्षम होते हैं। इन्हीं में से एक कार्य है, संचलन यानी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच सकना।

हर प्रकार के जीव जंतुओं में गति का पाया जाना जीवन की विशिष्टताओं और आधारभूत लक्षणों में से ही एक है। यह प्रोटोप्लाज़्म का एक सामान्य गुणधर्म है। इसके अनेकानेक उदाहरण हैं जैसे साइटोप्लाज़्म के भीतर अंतःकोशिकीय धारा गतियां कोशिका-विभाजन के दौरान क्रोमोसोमों की गति, मेटाज़ोअनों के भीतर विशेष प्रकार की कोशिका गतियां जैसे आंत्रांकुरों (intestinal villi) की गति, एक्सॉनों में पदार्थों का परिवहन, श्वसन नलिकाओं के भीतर सिलियरी गतियां, आदि। मगर संचलन (locomotion) में पूरे शरीर की गति आती है जिसके द्वारा वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचता है। यह अलग-अलग प्राणियों में अलग-अलग प्रकार से होता है और इसमें विभिन्न प्राणियों में भिन्न प्रकार की संरचनाएं काम करती हैं। इस इकाई में आप विभिन्न अकॉर्डेट प्राणियों में पाए जाने वाले विभिन्न संचलन स्वरूपों एवं उनमें निहित संचलन यांत्रिकी के संरचनात्मक घटकों का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- अकॉर्डेटों में विविध संचलन-विधियों का वर्णन कर सकेंगे,
- ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों तथा मौलस्कों में विविध संचलन-अंगों तथा उनकी कार्यविधि का वर्णन कर सकेंगे, और
- इकाइनोडर्मों में संचलन किस प्रकार होता है, समझा सकेंगे।

8.2 संचलन – इसके विविध रूप

कुछ प्राणी स्थानबद्ध होते हैं जो किसी न किसी अधःस्तर पर संलग्न यानी चिपके रहते हैं। ये प्राणी अपने शरीर के भागों को तो हिला डुला सकते हैं मगर इनके परिणामस्वरूप प्राणी एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं पहुंच सकता। इसके विपरीत अधिकतर प्राणी धीमें-धीमें अथवा फुर्ती से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ जा सकते हैं।

इसमें कई प्रकार के संचलन आते हैं जैसे रेंगना (रिंगन), फिसलना (विसर्पण), कूदना, पांवों पर चलना(पादचलन), तैरना(तरण) अथवा उड़ना (उड्डयन)। जैसाकि पहले ही आप इस पाठ्यक्रम की इकाई 2 में अध्ययन कर चुके हैं, प्रोटोज़ोअनों में संचलन विशिष्ट अंगकों के द्वारा सम्पन्न होता है। यह अंगक या तो अस्थायी निर्मितियां हो सकती हैं जैसे कि अमीबा के पादाभ (pseudopodium) या कोशिका के स्थायी विभेदन हो सकते हैं जैसे सिलिया (पक्ष्माभ) एवं कशाभ (flagella)। मगर मेटाज़ोआ की विशेषता है कि उनमें इस उद्देश्य के लिए संकुंचनशील ऊतक के रूप में पेशियां बन गयी हैं। मेटाज़ोअनों में गति प्रदान करने वाली यांत्रिकी में सरल अथवा विशेषित संचलन-अंग हो सकते हैं और यह यांत्रिक संबद्ध पेशियों के संकुंचन (contraction) एवं शिथिलन (relaxation) के आधार पर काम करती है। हालांकि एक ओर प्रोटोज़ोअनों की संचलन यांत्रिकी दूसरी ओर मेटाज़ोअनों की यांत्रिकी से बिल्कुल भिन्न जान पड़ती है, मगर वास्तव में दोनों में निहित मूलभूत घटक समान होते हैं। इनमें शामिल हैं रेशीय धागे जो बहुलकीकरण (polymerisation) द्वारा विशाल प्रोटीन अणु बन गए हैं। इन धागों में संकुंचनी गुणधर्म पाए जाते हैं। जब भी ऐसे धागे कंकालीय संरचनाओं के साथ संबंधित होते हैं, तब उनसे गति पैदा होती है। पेशी की कार्यिकी के विषय में प्राणि-कार्यिकी-II (LSE-05, खण्ड 2) की इकाई-6 में वर्णन किया गया है। यहां हम केवल इस पर चर्चा करेंगे कि पेशियों से प्राणियों में संचलन किस प्रकार होता है। इस इकाई में हम मुख्यतः पेशीय संकुंचन से होने वाले संचलन का विवेचन करेंगे।

8.3 निम्नतर मेटाज़ोअनों तथा ऐनेलिडों में संचलन

सीलेंटेरेटों, चपटे कृमियों तथा नीमैटोडों, में संचलन

उच्चतर मेटाज़ोअनों में संकुंचनशील पेशीय घटकों के अंदर और आगे विकास होने से इन प्राणियों में और अधिक कारगर संचलन-क्रिया की क्षमता आ गयी। स्यूडोसीलोमेटों (जैसे नीमैटोडों) में एक देह-गुहा तरल से भरी होती है; यह देह-गुहा कूटसीलोम होती है जिसे घेरती हुई देह भित्ती पेशियों से युक्त होती हैं। इससे एक द्रवस्थैतिक (hydrostatic) कंकाल बन जाता है जो संचलन में काम आता है। प्रत्यास्थ क्यूटिकल इनके संचलन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार नीमैटोडों में देह-भित्ती के अनुदैर्ध्य पेशी रेशों में संकुंचन लहर चलती जाती है जिससे उनके शरीर में ऊर्मिलन गतियां पैदा होती हैं। उच्चतर सीलोमेट अकशेरूकियों में सीलोम एक द्रवस्थैतिक कंकाल बनाती है। विखंडीय खण्डीभवन (metameric segmentation) के विकास तथा अनेक विशेषित संरचनाओं के बन जाने से और अधिक संचलन कारगरता आ गयी। आइए, अब हम इन उच्चतर मेटाज़ोअन समूहों में संचलन यांत्रिकी का विवेचन करें।

आप पहले ही इस पाठ्यक्रम के खण्ड 1 की इकाई 2 में प्रोटोज़ोअनों की संचलन विधियों एवं उसकी यांत्रिकी के विषय में पढ़ चुके हैं। नाइडेरियनों में देह-वृंत तथा स्पर्शक फैलकर लम्बें हो सकते, संकुंचन कर सकते तथा किसी एक पार्श्व में झुक सकते हैं। हाइड्रा के शरीर के अधिकतर भाग में गैस्ट्रोडर्मल रेशे इतने अल्पविकसित होते हैं कि शरीर में होने वाली गति पूर्णतः अनुदैर्ध्य एपिडर्मल रेशों संकुंचनों से ही सम्पन्न होती है। गैस्ट्रोवस्कुलर (जठरसंवहनी) गुहा के भीतर का तरल एक द्रवचालित कंकाल की तरह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गैस्ट्रोडर्मल कशाभों के स्पंदन के फलस्वरूप मुख के द्वारा बाहर का जल भीतर खींच लिया जाता है। शिथिल अवस्था में हाइड्रा 20 mm तक लम्बा हो जाता है, मगर एपिडर्मल रेशों के संकुचन से उसका आकार बहुत छोटा 0.5 mm तक हो जाता है। हाइड्रा अपने स्थान से छूट सकता है और कलाबाज़ी अथवा उतराते हुए अपना स्थान बदल सकता है। स्वतंत्र तिरने वाले मेडू से हालांकि समुद्र की धाराओं के द्वारा यहां-वहां निष्क्रिय रूप में खिसकते हैं, मगर उनमें भी घंटी के समन्वित संकुंचन होते पाए जाते हैं। इनमें समन्वित तरण गतियों के होने तथा तिरते-तिरते आहार को पकड़ सकना यह दर्शाते हैं कि इनमें हाइड्रोपौलिपों की अपेक्षा कहीं बेहतर प्रकार का विशेषित पेशी-तंत्र एवं अधिक विकसित तंत्रिका-तंत्र अवश्य होगा।

टीनोफ़ोरों में संचलन शक्ति अधिकतर कंकतों (combs) से ही प्रदान होती है। सिलियरी स्पंदन से पंक्ति के अपमुख सिरे से गतियां प्रारम्भ होती हैं। प्रत्येक कंकत का प्रभावकारी धक्का अपमुख ध्रुव की ओर होता है, जिसके फलस्वरूप प्राणी अपना मुख-सिरा आगे को किए हुए गति करता जाता है, मगर सिलिया की स्पंदन दिशा उलटी दिशा में भी की जा सकती है।

बहुत छोटे चपटे कृमि अपने सिलियरी नोदन के द्वारा तैरते अथवा तली के कचरे पर रेंगते हैं। पेशी परत के संकुंचनों से ये प्राणी अपने शरीर को घुमा सकते, ऐंठ सकते अथवा वलनित कर सकते हैं। वृहत्तर टर्बेलेरियनों की गति में भी पेशी संकुंचन की कोमल ऊर्मिलन लहरें पैदा होती हैं। शरीर की पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा हो जाना कदाचित संचलन के ही लिए एक अनुकूलन है। आकार में बड़ा हो जाने से, चपटी आकृति एक अधिक बड़ा सतही क्षेत्र प्रदान करती है जिसके ऊपर से शरीर को चलाया जा सकता है। एपिडर्मिस में स्थित ग्रंथियों तथा उसके तुरंत भीतर स्थित ऊतक से एक श्लेष्म-परत का स्राव निकलता है जिसके ऊपर प्राणी विसर्पण (फिसलना) कर सकता है। अनेक स्पीशीज़ में यह श्लेष्मा (mucus) एपिडर्मल ग्रंथि कोशिकाओं से उत्पन्न रैब्डाइट (rhabdites) नामक शलाकाकार पिंडों के विघटन से व्युत्पन्न होती है।

अनेक छोटे टर्बेलेरियनों में दो विशेष ग्रंथि तंत्र पाए जाते हैं जिनका काम अस्थायी संलग्नता (चिपक जाना) प्रदान करना है। एक ग्रंथि-तंत्र से एक आसंजी पदार्थ का स्रवण होता है और दूसरा तंत्र इस आसंजी बंधन को समाप्त करने वाला स्राव निकालता है जिससे प्राणी संलग्नता से छूट जाता है। द्रवस्थैतिक कंकाल जिन्हें सीधे ही द्रवकंकाल (hydroskeleton) भी कह देते हैं शरीर को प्राथमिक कंकालीय आलम्ब अथवा दृढ़ता प्रदान करते हैं। सभी कंकाल दृढ़ नहीं होते, अनेक अकशेरुकी समूह अपने देह तरलों को आंतरिक द्रवस्थैतिक कंकाल की तरह इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए , केंचुए की देह-भित्ति में पेशियों के संलग्न के लिए कोई दृढ़ आधार नहीं होता मगर सीलोमी तरल के प्रति संकुंचन करते हुए ये एक पेशी-बल पैदा कर लेती हैं, क्योंकि यह सीलोमी तरल एक सीमित गुहा के भीतर बंद होता है जिसके कारण यह असम्पीडनीय (incompressible) होता है लगभग उसी तरह जैसे कि किसी मोटर गाड़ी में द्रवचालित ब्रेक प्रणाली होती है। देह-भित्ति की वृत्ताकार तथा अनुदैर्ध्य पेशियों के एकांतर संकुंचनों से केंचुआ पतला या मोटा बनाया जा सकता है, जिनके द्वारा पीछे को जाती हुई गति तरंगें पैदा होती हैं जिनसे प्राणी के शरीर को आगे को चलाया जाता है। (चित्र 8.1)। केंचुओं तथा अन्य ऐनेलिडों में बने पट (septa) भी इस गति में सहायक होते हैं, ये पट पूरे शरीर को स्वतंत्र कक्षों में विभाजित कर देते हैं। इसका यह लाभ है कि यदि केंचुए के शरीर में किसी एक स्थान पर सूराख भी कर दिया जाए या उसे टुकड़ों में काट दिया जाए तब भी प्रत्येक भाग में दाब बना कर गति की जा सकती है। उदाहरण के लिए, लगवर्म (lugworm) ऐरेनिकोला जिसमें भीतरी कक्ष नहीं बने होते, यदि जख्मी हो जाए और उसका देह-तरल निकल जाए तो वह चलने से लाचार हो जाता है।

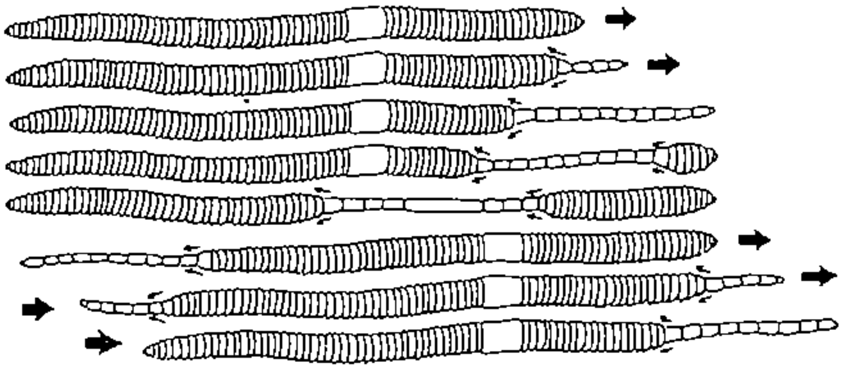

चित्र 8.1 : केचुआ आगे को किस प्रकार चलता है। वृत्ताकार पेशियों के संकुचन और उसके साथ-साथ भीतरी तरल दाब के कारण अनुदैर्ध्य पेशियां फैल जातीं और केचुआ आगे को लम्बा हो जाता है। उसके बाद अनुदैर्ध्य तथा वृत्ताकार पेशियों के एकांतर क्रम में संकुचित होने से एक संकुंचन तरंग आगे की ओर से पीछे की ओर को चलती जाती है। दृढ़रोम जैसे शूक बाहर को निकल कर प्राणी को कसकर जमा देते और उसे फिसलने से रोकते हैं।

ऐनेलिडों में संचलन

इससे पहले कि हम ऐनेलिडों के संचलन का विस्तार से विवेचन करें, आइए एक बार फिर से दोहरा लें कि फ़ाइलम ऐनेलिडा के मुख्य उपविभाजन क्या-क्या हैं। फ़ाइलम ऐनेलिडा में आते हैं तीन विभाजन पौलीकीटा, ओलाइगोकीटा तथा हिरूडिनिया। पौलीकीटा वर्ग में, जिसका एक प्रतिनिधि उदाहरण, समुद्री दृढ़रोमी कृमि नीरीस आता है, बहुसंख्यक शूकों से युक्त परापाद (parapodia) होते हैं। ओलाइगोकीटा में, जिसमें अधिकतर केचुए तथा कुछ जलीय स्पीशीज़ आती हैं, परापाद नहीं होते तथा शूक बहुत थोड़े से ही होते हैं। हिरूडिनिया में, जिसमें जोंकें आती हैं, परापाद तथा शूक दोनों ही नहीं होते वरन उनके शरीर के अगले और पिछले दोनों छोरों पर चूषक (sukers) होते हैं। इन चूषकों को संचलन में काम में लाया जाता है। अत: ऐनेलिडों में संचलन घटक इस प्रकार होते हैं- (a) शरीर की पेशियां, (b) द्रवस्थैतिक कंकाल, तथा (c) संचलन संरचनाएं। इस प्रकार संचलन इन सभी संरचनाओं का एक समन्वित प्रयास होता है।

8.3.1 शरीर पेशीन्यास (Body Musculature)

सीलोम को घेरती हुई पेशी परतों की व्यवस्था ऐनेलिडों के सभी मुख्य क्लासों में अनिवार्यत: एक सी ही होती है। देह-भित्ति में ऐपिडर्मिस के नीचे वृत्ताकार पेशियों की एक परत होती है। (चित्र 8.2)। फिर इसके नीचे एक परत अनुदैर्ध्य पेशियों की होती है। पौलीकीटों में वृत्ताकार पेशियां पतली होती हैं तथा अनुदैर्ध्य पेशियां चार खण्डों में व्यवस्थित होती हैं- दो पृष्ठ-पार्श्व खण्ड तथा दो अधर-पार्श्व खण्ड; कुछ पौलीकीटों में प्रत्येक खण्ड में पृष्ठ तथा अधर दिशाओं की वृत्ताकार

पेशियों के बीच-बीच में तिवर्यक (तिरछे) देशी सूत्र आड़े फैले हो सकते हैं। ओलाइगोकीटों में वृत्ताकार पेशी परत के नीचे अनुदैर्ध्य पेशियों की एक सतत परत बन जाती है तथा उनके लम्बे रेशे 2-3 खंडों में फैले हो सकते हैं, सुविकसित तिवर्यक पेशियां देह खंडों के स्थानिक संकुचनों तथा प्रसारों में सहायता करती हैं। इन दोनों ही समूहों में अनुप्रस्थ पट सीलोम को भीतर से विभाजित किए होते हैं। ये पट उस तनाव का प्रतिरोध करने में सहायता करते हैं जो सीलोमी तरल के द्रवस्थैतिक दाब में परिवर्तनों के कारण पैदा होता है। मगर हां, पौलीकीटों में पट कम विकसित होते और भंग हो जाते हैं जिसके कारण खंडों के बीच सीलोम संबंध बनाए रखती है। देह पेशीविन्यास हिरूडिनिया में सबसे अच्छा विकसित हुआ होता है जिसमें वृत्ताकार तथा अनुदैर्ध्य पेशियों के बीच में तिर्यक पेशियों की एक दोहरीपरत के अतिरिक्त पेशियों के उदग्र स्तम्भ भी यानी पृष्ठ-अधर पेशियां बनी होती हैं। पृष्ठ-अधर पेशियों के संकुंचन से प्राणी का शरीर चपटा हो जाता है तथा शरीर में प्रभावकारी ऊर्मिलन पैदा होता है जिससे तैरना होने लगता है। मगर जोंकों में सीलोम बहुत ही कम विकसित होती है।

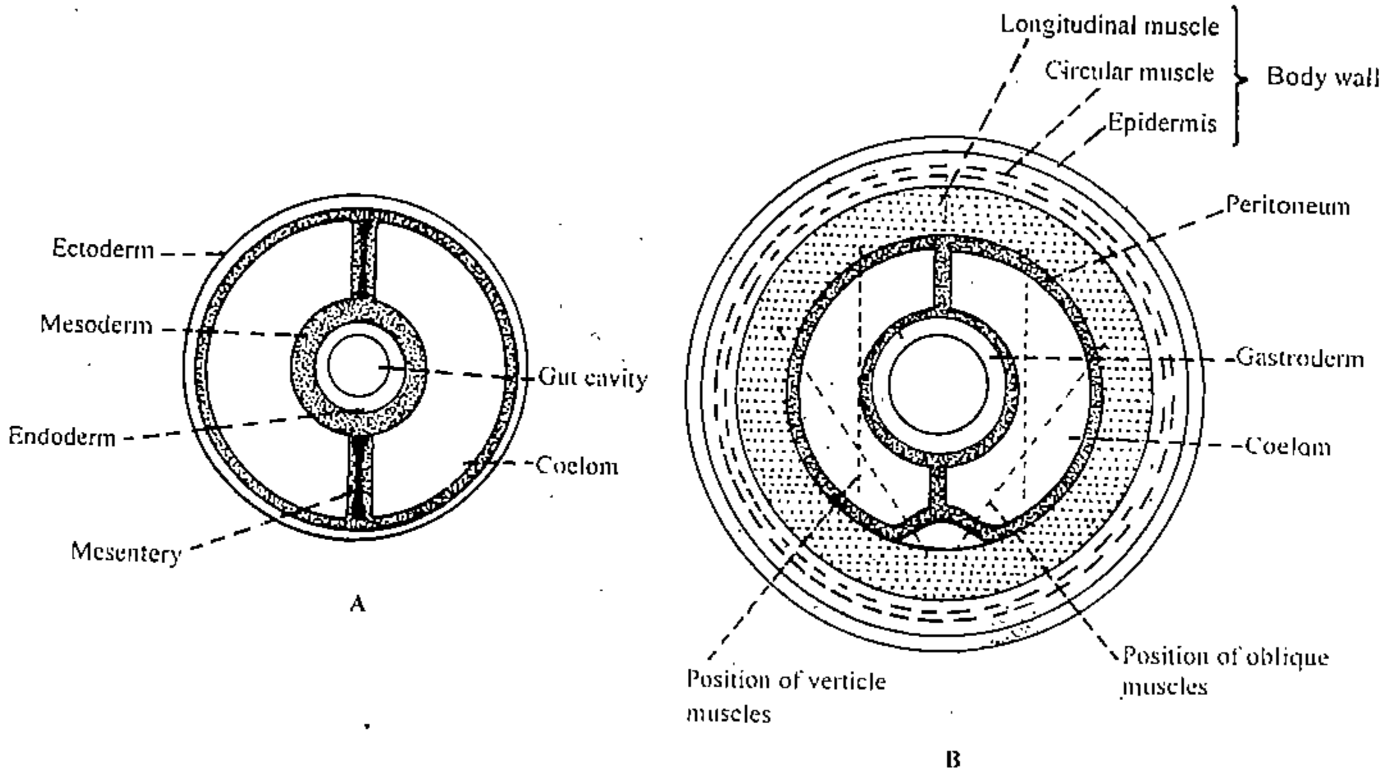

चित्र 8.2 : कृमिसंघटना का प्रतिरूप। A-अनुप्रस्थ सेक्शत जिसमें आधारभूत त्रिजनस्तरीय सीलोमेट योजना दर्शायी गयी है। B-एक सामान्यीकृत ऐनेलिड का अनुप्रस्थ सेक्शन जिसमें कुछ पौलीकीटों तथा समस्त हिरूडिनिया में देह-भित्ति की परतें तथा अतिरिक्त पेशियां दर्शायी गयी हैं।

प्रत्येक खंड में पेशियों तथा तंत्रिकाओं का एक पूरा सेट बना होता है और सहवर्ती खण्डों में विखंडत: दोहराए जाते तंत्रिका संयोजनों से परस्पर संबंध बना रहता है, ये तंत्रिका संयोजन एक समन्वित तालबद्ध संचलन क्रिया को संभव बनाते हैं।

8.3.2 द्रवस्थैतिक कंकाल (Hydrostatic skeleton)

किसी प्राणी के भीतर द्रवस्थैतिक कंकाल का कार्य कर सकना इस बात पर निर्भर होता है कि उसके भीतर चारों ओर से बंद तरल आयतन को घेरते हुए पेशीन्यास बना हो। ऐसा होने पर ही कुछ पेशियां तरल पर दाब डाल सकती हैं और फिर यह दाब शेष शरीर पर सब दिशाओं में प्रेषित किया जा सकता है।

ऐनेलिडों में सीलोम जिसमें सीलोमी गुहा (अथवा गुहाओं) से भरा तरल और उसके साथ-साथ चारों ओर घेरता हुआ पेशीन्यास, ये सब एक साथ मिलकर द्रवस्थैतिक कंकाल बनाते हैं। सीलोमी तरल का आयतन स्थिर रहता है। सामान्य रूप में हम कह सकते हैं कि ऐनेलिड की देह-भित्ति की किसी भी पेशी के संकुंचन से द्रवस्थैतिक दाब में वृद्धि होगी और स्वयं यह वृद्धि ढीली पेशियों को फैला देगी। ऐनेलिडों में वृत्ताकार तथा अनुदैर्ध्य पेशियाँ होती हैं, इनमें से एक पेशी-सेट के संकुंचन के साथ दूसरा पेशी-सेट फैलता जाता है।.

पौलीकीटों में देह की पेशियाँ कम मज़बूत होती हैं। इनकी बड़ी सीलोम, अनुप्रस्थ पटों के बने होने के कारण कक्षों में विभाजित हुई होती हैं। मगर अनुप्रस्थ पटों में छिद्र बने होने के कारण कक्षों के बीच सीलोमी तरल अविच्छिन्न बना रहता है। अतः पौलीकीटों में द्रवस्थैतिक कंकाल सुविकसित नहीं होता। ओलाइगोकीटों में देह पेशीन्यास सुविकसित होता है और संचलन के दौरान अनुप्रस्थ पटों में छिद्र नहीं बने होते। सहवर्ती खण्डों की सीलोम अधिकतर पृथक हुई रहती है। जिस समय खंड की अनुदैर्ध्य पेशियां संकुंचन करती हैं उस समय वृत्ताकार पेशियों में शिथिलन रहता है, और चूंकि सीलोमी तरल असंपीडनशील होता है इसलिए खंड छोटा लेकिन फूलकर मोटा हो जाता है। उसी के साथ-साथ शूक बाहर को उभर आते हैं जो कृमि को अधःस्तर से जकड़ने में मदद देते हैं (चित्र 8.6)। जब विपरीत क्रिया होती है, यानी वृत्ताकार पेशियाँ संकुंचन करतीं तथा अनुदैर्ध्य पेशियां ढीली रहती हैं तब खंड लम्बा और पतला हो जाता है, शूक भीतर को आ जाते हैं तथा शरीर आगे को बढ़ता जाता है। परंतु संकुंचन तथा शिथिलन के ये क्रियाकलाप स्थानिक होकर देह के कुछ ही खंडों तक सीमित हुआ करते हैं, तथा संकुंचन एवं शिथिलन की लहर एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलती जाती है। परिणामतः प्राणी आगे को चलता जाता है।

पौलीकीट तथा ओलाइगोकीट ऐनेलिडों की तुलना में हिरूडिनिया में शरीर का पेशीन्यास बेहतर विकसित होता है, सीलोम बहुत ह्रासित हो गयी है, सीलोमी गुहा कटी-कटी नहीं होती क्योंकि अनुप्रस्थ पट नहीं होते तथा सीलोमी तरल के स्थान पर अधिकतर बोट्रॉइडल ऊतक (botryoidal tissue) बन गया है। प्राणी के दोनों अंतिम सिरों पर चूषक होते हैं जिनके द्वारा वह अधःस्तर से संलग्न हो सकता है। पश्च चूषक अधःस्तर से चिपका दिया जाता है। वृत्ताकार संकुंचन की लहर से शरीर लम्बा हो जाता है जो आगे की ओर को फैल जाता है। अब अग्र चूषक चिपका लिया जाता है तथा पश्च चूषक छुड़ा लिया जाता है। अनुदैर्ध्य संकुंचन से शरीर छोटा होता और पश्च चूषक आगे को लाया जाता है। यह क्रम बार-बार दोहराया जाता है और उससे पैदा होती हैं रिंगन (रेंगने वाली) गतियां जो जोंकों की ख़ास विशेषता है (चित्र 8.3)।

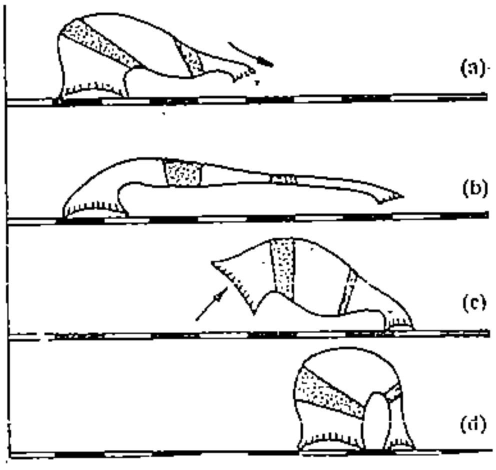

चित्र 8.3 : जोंक के छलांगी अथवा रिंगन संचलन की क्रमिक अवस्थाएं। वृत्ताकार पेशियों के पूरी तरह संकुचित होने पर, जोंक पतली और लम्बी हो जाती है। अनुदैर्ध्य पेशियों के संकुचन से वह छोटी और मोटी हो जाती है।

8.3.3 संचलनी संरचनाएं

ऐनेलिडों में तीन प्रकार की संचलनी सरंचनाएं होती हैं-परापाद, शूक तथा चूषक।

परापाद **(Parapodia)** (चित्र 8.4) शरीर के खंडशः व्यवस्थित, पार्श्वीय खोखले प्रसार होते हैं, जिनमें सीलोमी गुहा भी पहुंची हुई होती है। प्रत्येक परापाद में मूलतः दो पालियां (lobes) होती हैं- एक पृष्ठ पालि नोटोपोडियम **(notopodium)** और दूसरी अधर पालि नयूरोपोडियम **(neuropodium),** तथा दोनों पालियों में शूकों का पुंज बना होता है एवं एक मोटा सुई-जैसा एसिकुलम **(aciculum)** उन्हें आलम्ब प्रदान करता है। प्रत्येक परापाद के साथ तिर्यक पेशियों का एक-एक पृष्ठ और अधर सेट संबंधित रहता है, तथा साथ ही आंतरिक अपाकंचनी (protractor) तथा आकुंचनी (retractor) पेशियां भी होती हैं। गति करते समय एक ही खंड के दो परापाद विपरीत गति-प्रावस्था में होते हैं और इस तरह जल के भीतर वे मानों पतवार

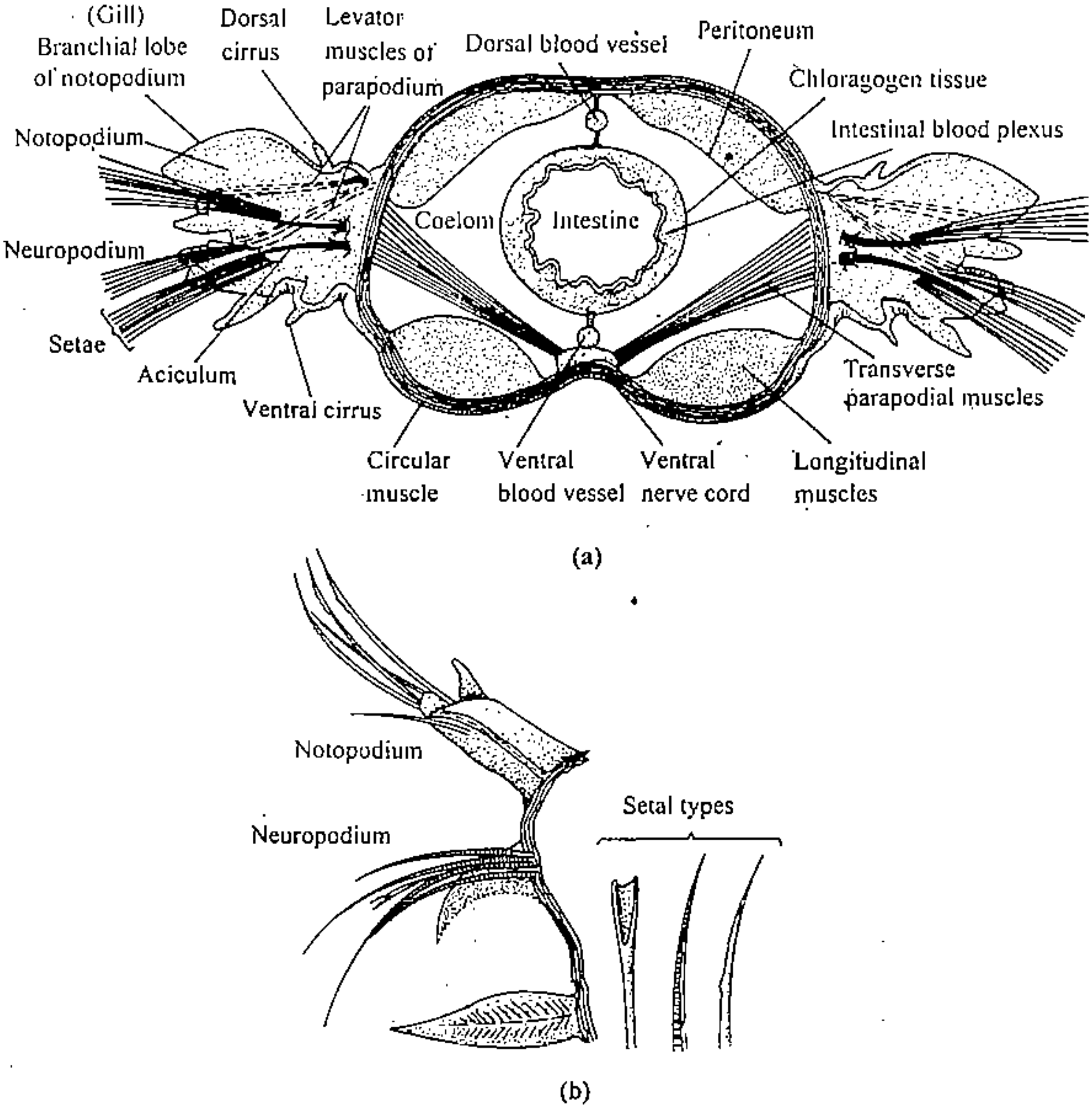

चित्र 8.4 : a) नीरीस का आंत्र के स्तर पर अनुप्रस्थ सेक्शन, जिसमें एक जोड़ी परापाद दिखायी पड़ रहे हैं। b) स्कोलोप्लॉस रूब्रा (scoloplos rubra) का परापाद और उसमें बने शूक गौर कीजिए कि सभी शूक एक ही प्रकार के नहीं हैं।

जैसा काम करते हैं। प्रशूक तथा ऐसिकुलम आंतरिक पेशियों की क्रिया द्वारा बाहर को निकाले अथवा भीतर को खींचे जाते रहते हैं। परापाद ही पौलीकीटों के मुख्य संचलन अंग होते हैं। विभिन्न पौलीकीटों में अलग-अलग कार्यों को करने के अनुरूप परापादों में विभिन्नताएं पायी जाती

हैं। (चित्र 8.5)। रेंगने वाले तथा तैरने वाले उदाहरणों में परापाद सुविकसित होते हैं। बिलकारी तथा नलिकावासियों में परापाद कम विकसित होते हैं, ख़ासतौर से शरीर के पश्च भाग में।

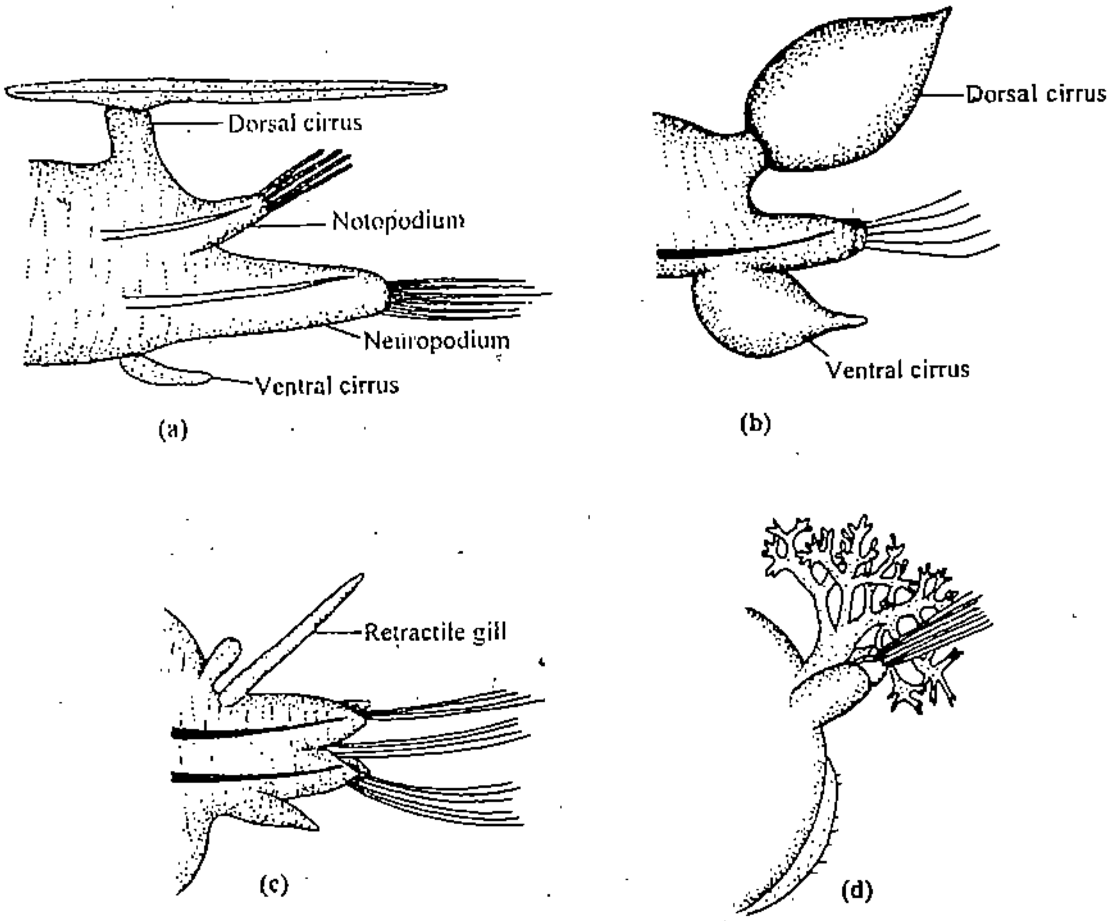

चित्र 8.5 : पौलीकीटों में परापादों के रूपांतरण। A-*लेपिडोनोटस*, B-*फ़िल्लोडसी*, C-*ग्लाइसेरा*, D-*ऐनेरिकोला*

शूक आलोइगोकीटों की प्रमुख संचलन संरचनाएं हैं, किंतु जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं ये पौलीकीटों में भी पाए जाते हैं। ओलाइगोकीटों में ये अधिकतर शरीर के अधर क्षेत्र में पाए जाते हैं। शूकों का स्रवण शुक-कोशों द्वारा होता है (चित्र 8.6)। इन्हें चलाने के लिए अपाकुंचनी तथा आकुंचनी पेशियां होती हैं। परापादों की ही तरह शूकों की आकृति में भी विभिन्नताएं पायी जा सकती हैं जिसमें उनका कार्यात्मक महत्व झलकता है (चित्र 8.7)। बिलकारी उदाहरणों में छोटे, सरल तथा कुंद शूक होते हैं (चित्र 8.7 D,E,F,G,H)। जबकि तैरने वाले उदाहरणों में विशिष्टतः लम्बे द्विशाखित अथवा पिच्छाकार शूक पाए जाते हैं (चित्र 8.7 A,B,C)।

चूषकों **(suckers)** का पाया जाना हिरूडिनिया की विशेषता है जिनमें शूक और परापाद दोनों ही नहीं होते। एक चूषक शरीर के अग्र सिरे पर तथा दूसरा चूषक पश्च सिरे पर बना होता है। ये दोनों ही चूषक शरीर के कई-कई खंडों के संलयन से बनते हैं। शक्तिशाली अनुदैर्ध्य पेशियां चूषकों पर अभिसरित होती हैं। चूषकों की वृत्ताकार पेशियां संकेंद्रित रूप में व्यवस्थित होती हैं। संबंधित ऐपिडर्मल ग्रंथियों के स्राव से चूषकों के अधःस्तर से चिपक जाने में भी सहायता मिलती है।

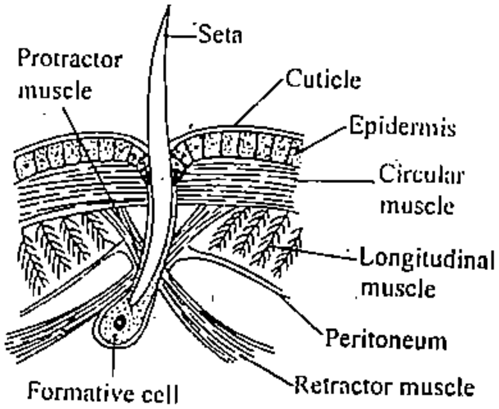

चित्र 8.6 : शूक और उसके साथ लगी पेशियां जिनका सहवर्ती सरंचनाओं के साथ संबंध दर्शाया गया है।

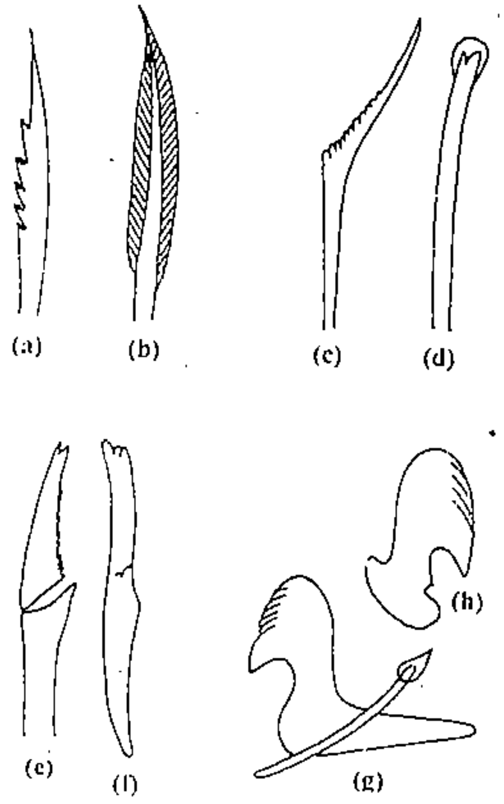

चित्र 8.7 : शूकों के विभिन्न प्रकार।

8.3.4 संचलन की यांत्रिकी (Mechanics of Locomotion)

ऐनेलिडों में पौलीकीट अन्य दो समूहों से अधिक आदिम हैं फिर भी इनमें संचलन विधि अधिक सम्मिश्र प्रकार की पायी जाती है। अनिवार्यत: पौलीकीटों के संचलन दो पार्श्वों की पेशियों के एक-दूसरे के विपरीत क्रिया करने पर निर्भर होती है। जब किसी खंड के एक पार्श्व की

अनुदैर्घ्य पेशियां संकुचन करती हैं तब विपरीत दिशा में पेशियां पूर्णत: फैली अर्थात शिथिल अवस्था में होती हैं। इस प्रकार प्राणी की पूरी देह की लम्बाई में तरंग-क्रम बन जाता है। पौलीकीटों में अनेक प्रकार के संचलन होते पाए जाते हैं (चित्र 8.8)।

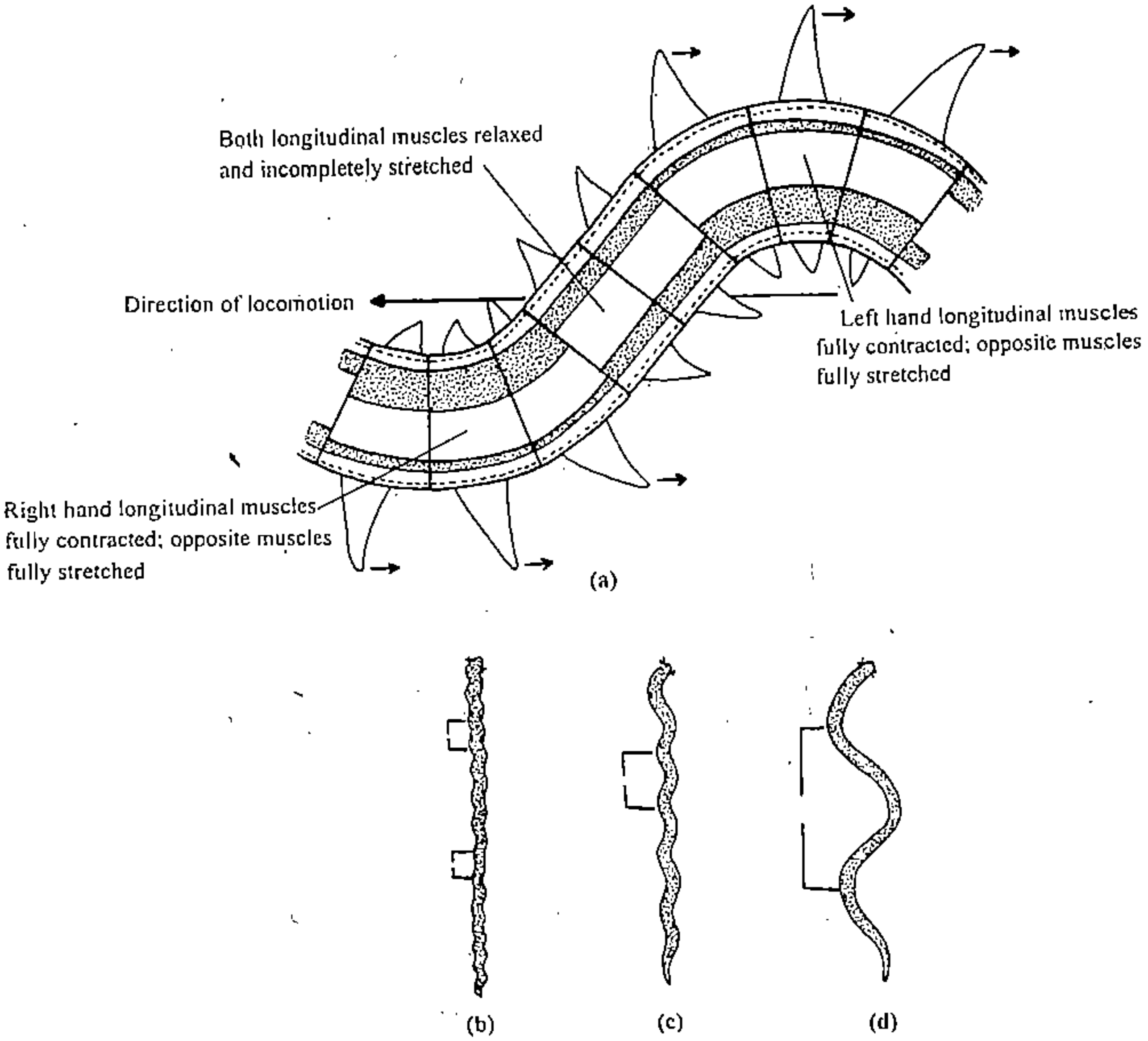

चित्र 8.8 : पौलीकीटों में संचलन। A-तेज़ी से रेंगते नीरीस में अनुदैर्घ्य पेशियों तथा परापादों की स्थिति। खंड की बायीं और दाहिनी ओर की अनुदैर्घ्य पेशियां एक-दूसरे के विपरीत कार्य करती हैं। उन खंडों में जिनमें अनुदैर्घ्य पेशियां पूरी तरह संकुचित होती हैं, परापाद अधिकतम आकुंचित होते हैं; दाहिनी ओर की अनुदैर्घ्य पेशियां पूरी तरह फैली होती हैं तथा परापाद अधिकतम अनाकुंचित होते हैं। B-धीमा पादचलन। C-तीव्र रेंगना। D-तैरना। ध्यान दीजिए कि धीमे पादचलन से तैरने की क्रिया में तरंग दैर्घ्य बढ़ता जाता है।

i) धीमा पादचलन ("पैरों पर चलना") अथवा रेंगना

यह संचलन तब देखा जाता है जब प्राणी अध:स्तर पर गति करता होता है। इसमें परापादों की अनुक्रमिक तालबद्धता पायी जाती है। शरीर के एक पार्श्व के हर पांच या छह खंड एक ही चक्र-अवस्था में होते हैं। यानी उस चक्र की अवस्था में जिसमें वे एक बार आगे को पुन: प्राप्ति वार करते हैं और दूसरी बार एक साथ पीछे को प्रभावकारी वार करते हैं। प्रत्येक प्रभावकारी वार (शक्ति वार) में एक पार्श्व का परापाद नीचे को अधर दिशा में अध:स्तर के ऊपर मोड़ा

जाता है, और इस गति के दौरान परापाद तथा उसके शूक दोनों ही अपाकुंचित होते हैं। अब दूसरे पार्श्व के परापाद ऊपर पृष्ठ दिशा में उठाए जाते हैं तथा आगे को पुन: प्राप्ति वार में लाए जाते हैं जिसके दौरान शूक भीतर को सिकोड़े रखे जाते हैं। इसके बाद परापाद अपनी भूमिका को पलट देते हैं, यानी जो परापाद पीछे को प्रभावकारी वार पूरा कर चुके होते हैं अब आगे का पुन:प्राप्ति वार करते हैं और जो इसके विपरीत थे वे इससे उल्टा करते हैं। पौलीनॉइड़ अथवा शल्क-कृमि (scale worms) बहुत कुशल पादचलनी ऐनेलिड होते हैं। मगर वे इन्हें चप्पुओं की तरह इस्तेमाल नहीं करते।

ii) तीव्र रेंगना

यह गति मुख्यत: देह-भित्ति की अनुदैर्घ्य पेशियों के संकुचन की प्रतिपार्श्विक तरंगों पर निर्भर होती है, जिनके द्वारा शरीर के पार्श्व ऊर्मिलन (लहर) पैदा होते हैं। ऊपर वर्णन की गयी परापाद क्रिया भी देह ऊर्मिलनों में योगदान देती है। इससे तीव्र रेंगना संभव हो जाता है। रेंगने वालों में अनेक फ़ैमिलियों के ऐनेलिड आते हैं, जैसे नीरिड-प्राणी, सिल्लिड़-प्राणी तथा फ़िल्लोडोसिड-प्राणी, आदि।

iii) तैरना

तैरने में काम आने वाली गतियां मूलत: वैसी ही होती हैं जैसी कि ऊपर उल्लेख की गयी तीव्र रेंगने में होती हैं मगर तैरने में तरंगे थोड़ी मगर बृहत्तर एवं अधिक जल्दी-जल्दी होने वाली होती हैं। ये प्राणी वेलापवर्ती (pelagic) होते हैं जिनका अध:स्तर से कोई सम्पर्क नहीं रहता। अनेक रिंगक तैरते भी हैं मगर कुछ जैसे कि ऐल्सियोपिड (चित्र 8.9 A तथा B) और टोमोप्टेरिड (चित्र 8.9C) पूर्णत: वेलापवर्ती ही होते हैं।

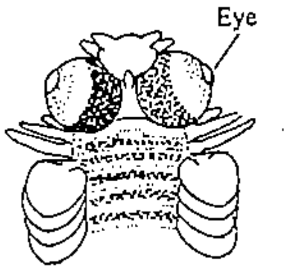

(a)

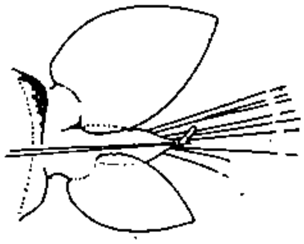

(b)

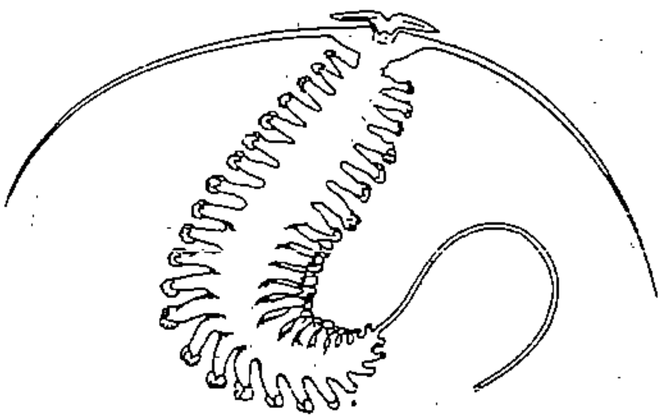

(c)

चित्र 8.9 : वेलापवर्ती पौलीकीट। A-एक ऐल्सियोपिड का पृष्ठ दृश्य, तथा B-इसका परापाद, C-एक टोमोप्टेरिड (*टोमोप्टेरिस रीनेटा*)।

iv) बिल बनाकर रहना

कुछ पौलीकीट बिलकारी होते हैं। उनके परापाद छोटे होते हैं। बिल बनाने का काम शुंडिका (proboscis) अर्थात मुखगुहा एवं ग्रसनी संयुक्त रूप में, द्वारा किया जाता है। बाद में शुंडिका को शरीर के भीतर वापिस खींच लिया जाता है, तथा प्राणी उस जगह के भीतर को रेंगकर चला जाता है। पौलीकीटों में बिल बनाना ओलाइगोकीटों के बिल बनाने से भिन्न होता है।

ओलाइगोकीटों में रेंगने, खोदने तथा बिल बनाकर उसमें रहने की गतियां पायी जाती हैं। सीलोमी तरल के ऊपर अनुदैर्ध्य तथा वृत्ताकार पेशियों की क्रिया होती है, और उस दौरान शूक जो कि इन प्राणियों में कम संख्या में और छोटे होते हैं, अधःस्तर पर पकड़ जमाने में सहायता करते हैं (चित्र 8.10)। तंत्रिकाओं के संयोजनों से, पेशियों के एकांतर क्रम में फैलने और संकुचित होने के द्वारा क्रमांकुचनी क्रिया का समन्वय होता है। खोदना अथवा बिलकारी क्रिया अग्र खंडों को आगे को मृदा कणों के बीच-बीच की गुहाओं को फैलाने से सम्पन्न होती है। उसके बाद द्रवस्थैतिक दाब से गुहा चौड़ी हो जाती है। उसके बाद प्राणी शरीर के पश्च भाग को आगे को खींच लेता है।

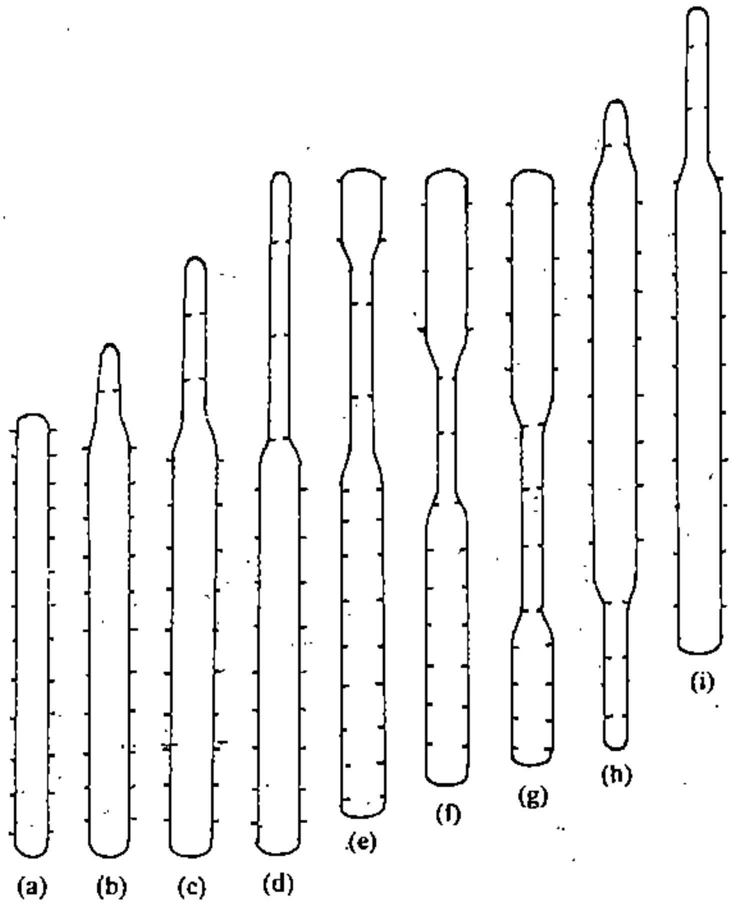

चित्र 8.10 : केंचुए के रेंगने के संचलन में अनुदैर्ध्य तथा वृत्ताकार पेशियों के संकुचन तथा शूकों की गतियां।

हिरुडिनिया (जोंकों) में रेंगने (कूदने) और तैरने की गतियां होती हैं। रेंगने अथवा कूदने के दौरान जोंक लूप (पाश) बनाती हुई गतियां करती है, और इन गतियों को वह अग्र तथा पश्च चूषकों को एकांतर क्रम में चिपकाती जाती है (चित्र 8.3)। जब पश्च चूषक अधःस्तर से चिपकता है उस समय अग्र चूषक छूट जाता है, शरीर की वृत्ताकार पेशियां संकुंचन करती हैं और इसके साथ विपरीत रूप में अनुदैर्ध्य पेशियां फैलती हैं, जिससे जोंक लम्बी हो जाती है। तब अग्र चूषक चिपकाया जाता है और पिछला छुड़ाया जाता है, अब अनुदैर्ध्य पेशियां संकुंचन

करती तथा वृत्ताकार पेशियां फैलती हैं जिससे शरीर छोटा और मोटा हो जाता है। तदुपरांत पिछला चूषक आगे को खींच लिया जाता है और अगले चूषक के बहुत निकट चिपकाया जाता है। तब अगला चूषक दोबारा दुड़ाया जाता और सारी प्रक्रिया दोहरायी जाती है। तिर्यक पेशियां अन्य पेशियों की क्रिया को बल देती हैं और द्रवस्थैतिक दाव को बढ़ाने में सहायता करती हैं जिससे जोंक इस गति के दौरान अपने पश्च चूषक पर सीधी ऊपर को खड़ी हो सकती है। मगर तैरने की गतियों के दौरान पृष्ठ-अधर पेशियां संकुचित बनी रहती हैं जिससे देह चपटा और रिबन-जैसा बना रहता है। अनुदैर्ध्य पेशियों की संकुचन तरंगों से शरीर में पृष्ठ-अधर सर्पीय गतियां पैदा होती हैं। इसके कारण जोंक को जल में कारगर तरण गति प्राप्त हो जाती है।

बोध प्रश्न 1

a) सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

i) टीनोफ़ारों में .... ही अधिकतर संचलन शक्ति प्रदान करते हैं।

ii) ऐनेलिड में .... सीलोम और उसके साथ सीलोमी गुहा के भीतर का तरल और साथ में उसे घेरता हुआ पेशीन्यास भी, तीनों मिलकर .... कंकाल बनाते हैं।

iii) ओलाइगोकीटा जिनमें अधिकतर केचुए तथा कुछ थोड़ी सी जलीय स्पीशीज़ आती हैं, में .... नहीं होते तथा शूक कम संख्या में होते हैं।

iv) पृष्ठ-अधर पेशियों के संकुचन से प्राणी का शरीर चपटा हो जाता है और शरीर में कारगर ऊर्मिलन होता है जिससे .... की गति उत्पन्न होती है।

v) ओलाइगोकीटा में शूक ही प्रमुख संचलन संरचनाएं होती हैं मगर वे .... में भी होती हैं।

vi) रेंगने अथवा फांदने के दौरान .... में उसके अग्र तथा पश्च .... के एकांतर क्रम में संलग्न हो जाने के द्वारा पैदा होती पाश (लूप) गतियां होती हैं।

b) ऐनेलिडों में पायी जाने वाली तीन प्रकार की गतियों के नाम लिखिए।

....

....

....

8.4 आर्थ्रोपोडा में संचलन

आर्थ्रोपोडा की विशिष्टता कुछ ऐसे खास लक्षणों का पाया जाना है जिन्हें इन प्राणियों की सफलता की कुंजी माना जा सकता है। इनमें आने वाले लक्षण हैं काइटिनी क्यूटिकल का बना एक दृढ़ बाह्यकंकाल जो विकृति का रोधी है, विखंडी खंडी भवन का पाया जाना, और संधियुक्त उपांग जो लीवर-प्रणालियों से बने होते हैं। संधियुक्त आर्थ्रोपोड पाद तथा उससे संबद्ध पेशियां अति सम्मिश्र प्रकार की गतियां संभव बनाते हैं। इसके अलावा इनमें ऐनेलिडा की पटयुक्त सीलोमी गुहा के स्थान पर हीमोसील बन गयी है। पेशीय देह भित्ति स्पष्ट पृथक पेशियों में टूट गयी है। इस परिवर्तन से बिल्कुल सही-सही स्थानिक संकुंचन संभव बन गए हैं। और स्वयं इस परिवर्तन के होने से संचलन के लिए द्रवस्थैतिक कंकाल पर निर्भरता बहुत कम हो गयी है और संचलन की कुशलता बढ़ गयी है।

आर्थ्रोपोड उपांग जो प्ररूपत: एक जोड़ी प्रति विखंड होते पाए जाते हैं अक्सर अपने स्थान से हट गए होते हैं। ऐसा युक्तखंडता (tagmosis) अर्थात शरीर के कई-कई खण्डों का संलयित होकर कुछ सुस्पष्ट क्षेत्रों के बन जाने से होता है, ऐसे क्षेत्रों को टैग्मैटा (tagmata) अर्थात युक्तखंड कहते हैं। सामान्यत: उपांगों को कई कामों में इस्तेमाल किया जाता है जैसे स्पर्श एवं संवेदी सरंचनाएं, आहार पकड़ना, संचलन और जनन में। इसके अनुरूप वे अपने कार्य के संबंध में अति विशेषित एवं रूपांतरित हो गए होते हैं तथा उन्हें तरह-तरह के नाम दिए गए हैं जैसे ऐंटेना (श्रृंगिकाएं), मैक्सिला, मैंडिबल, मैक्सिलिपीड, पादचलनी टांगें (स्टेनोपोडिया, stenopodia)

तथा पैडल-सरीखे फिल्लोपोडिया आदि। आर्थ्रोपोडा के विभिन्न वर्गों में हम केवल उन्हीं उपांगों के विषय में चर्चा करेंगे जो संचलन कार्य में योगदान देते हैं।

आदिम आर्थ्रोपोडों यानी ओनाइकोफ़ोरा (उदाहरण: पेरिपैटस) में श्रृंखलावत युग्मित टांगें (चित्र 8.11) पायी जाती हैं जो संधियुक्त नहीं है मगर उन पर बने पंक्तिबद्ध पैपिलों से वे बाहर से वलयित दिखायी पड़ती हैं। प्रत्येक टांग में दो भाग होते हैं, एक तो समीपस्थ शंक्वाकार भाग जिसमें बाह्य पेशियां होती हैं, और दूसरा एक छोटा दूरस्थ भाग जिसमें एक जोड़ी नखर बने होते हैं। ये पाद अपाकुंचित यानी बाहर को निकाले तथा आकुंचित (यानी भीतर को सिकोड़े) जा सकते हैं। इन टांगों का उपयोग करते हुए तथा टांगों को चलाने के लिए शरीर का प्रसार तथा संकुंचन करके ये प्राणी रेंगते हैं। जब देह खंड को लम्बा फैलाया जाता है तब टांगे उठा ली जाती और आगे को ले जायी जाती हैं और उसके बाद प्रभावकारी स्ट्रोक (यानी पांव के धक्के) से प्राणी को एक धकेलने वाला बल प्राप्त हो जाता है।

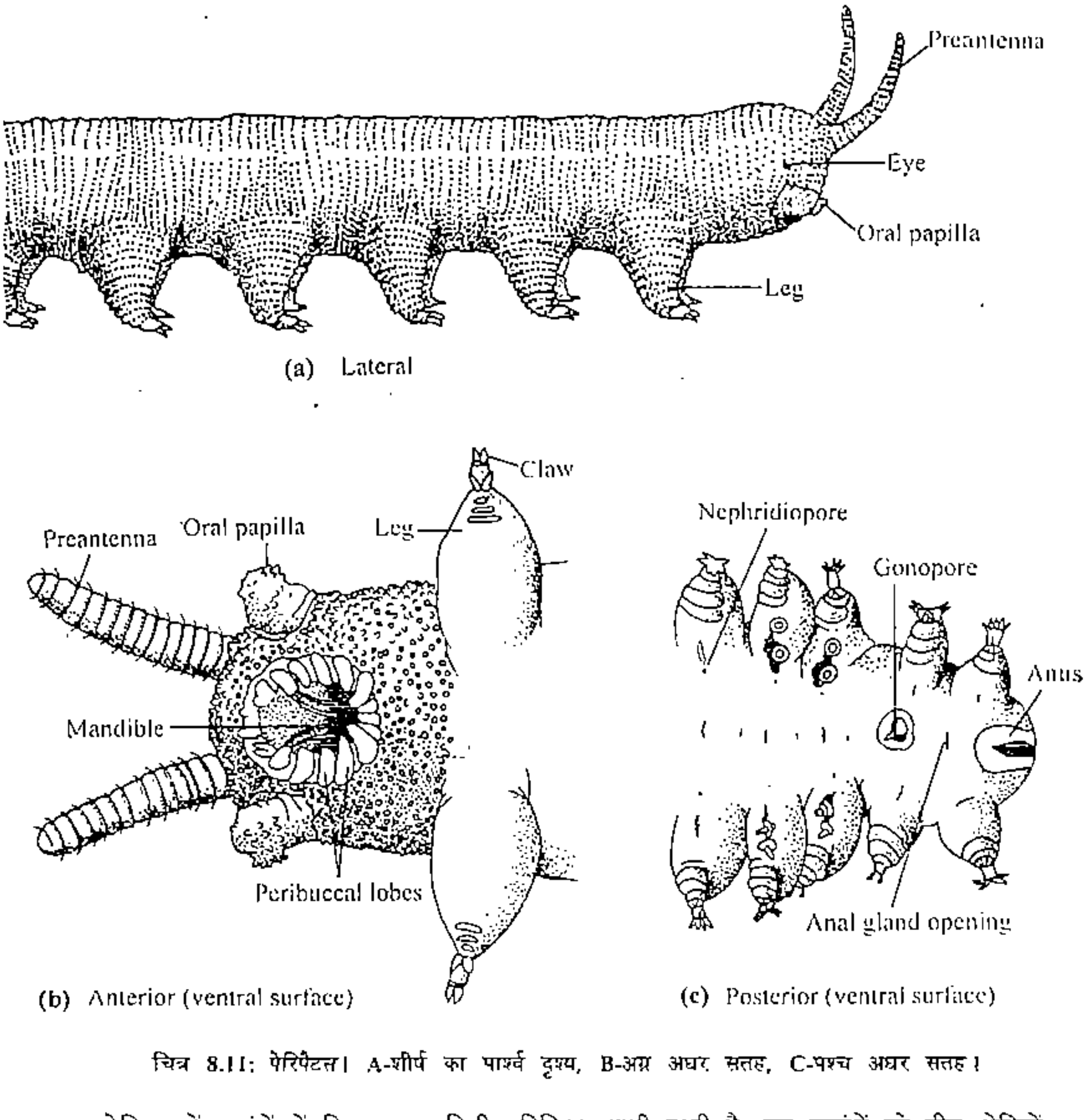

चित्र 8.11: पेरिपैटस। A-शीर्ष का पार्श्व दृश्य, B-अग्र अधर सतह, C-पश्च अधर सतह।

क्रस्टेशिया में उपांगों में विशाल आकारिकीय विविधता पायी जाती है; इन उपांगों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है - शीर्ष उपांग, वक्ष-उपांग तथा उदर-उपांग। इनके उपांग प्ररूपत: द्विशाखी (biramous) होते हैं अर्थात् इनमें दो शाखाएं होती हैं। ऐसे प्रत्येक उपांग में प्ररूपत: एक आधारीय खण्ड प्रोटोपोडाइट **(protopodite)** होता है जो दो उपखण्डों कॉक्सोपोडाइट अथवा कॉक्सा और एक बेसिपोडाइट अथवा बेसिस का बना होता है। बेसिपोडाइट पर दो शाखाएं बनी होती हैं- भीतर एण्डोपोडाइट **(endopodite)** तथा बाहरी एक्सोपोडाइट **(exopodite)** (चित्र 8.12)।

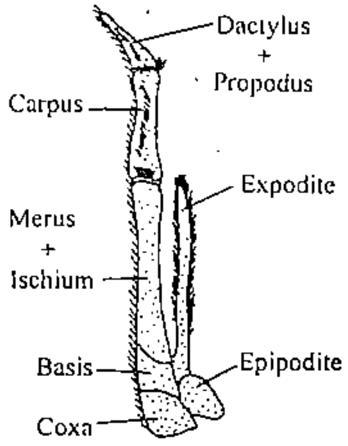

चित्र 8.12: झींगा (पेलीमौन, **Palaemon**), तीसरा मैक्सिलीपीड।

इनमें खण्डों की संख्या अलग-अलग हो सकती है। इनमें से कुछ घटक समाप्त भी हो गए हो सकते हैं तथा इनमें अनेक प्रकार के प्रवर्ध भी बने हो सकते हैं जैसे एक्ज़ाइट (exite), एंडाइट(endite), ऐपिपोडाइट (epipodite), आदि। शीर्ष उपांग जिनमें एक-एक जोड़ी ऐटेन्यूल (antennule) अथवा प्रथम ऐंटेने, दूसरे ऐंटेने तथा मैंडिबल और दो जोड़ी मैक्सिले होते हैं, में से अधिकतर का कार्य संवेदी होता है या वे आहार-पकड़ने का काम करते हैं। मगर, कुछ शीर्ष उपांग रूपांतरित होकर संचलन में भी मदद करने वाले बन जाते हैं जैसे कि कोपीपॉडों (copepods) के ऐंटेन्यूल (चित्र 8.13) तथा ब्रैंकियोपोडा के दूसरे ऐंटेना (चित्र 8.14)।

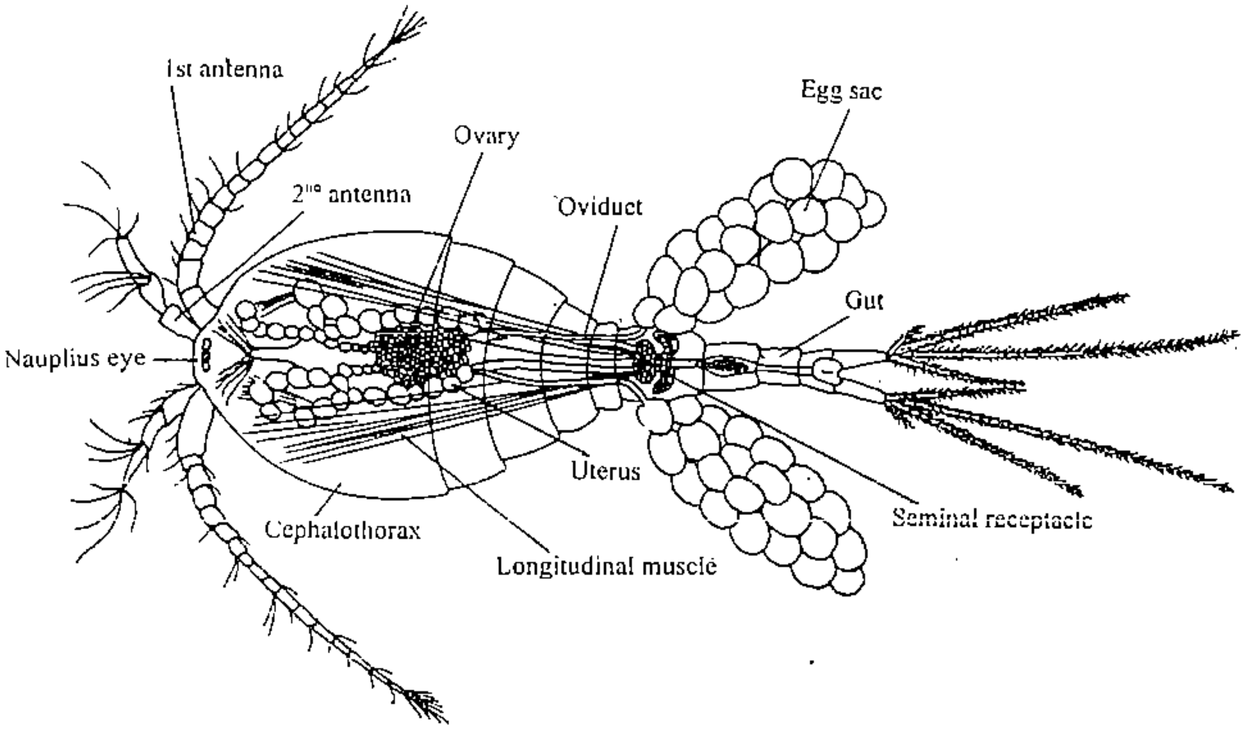

चित्र **8.13** : साइक्लोपाड कोपीपॉड, मैक्रोसाइक्लॉप्स ऐल्बिडस (*Macrocyclops albidus*) (पृष्ठ दृश्य)।

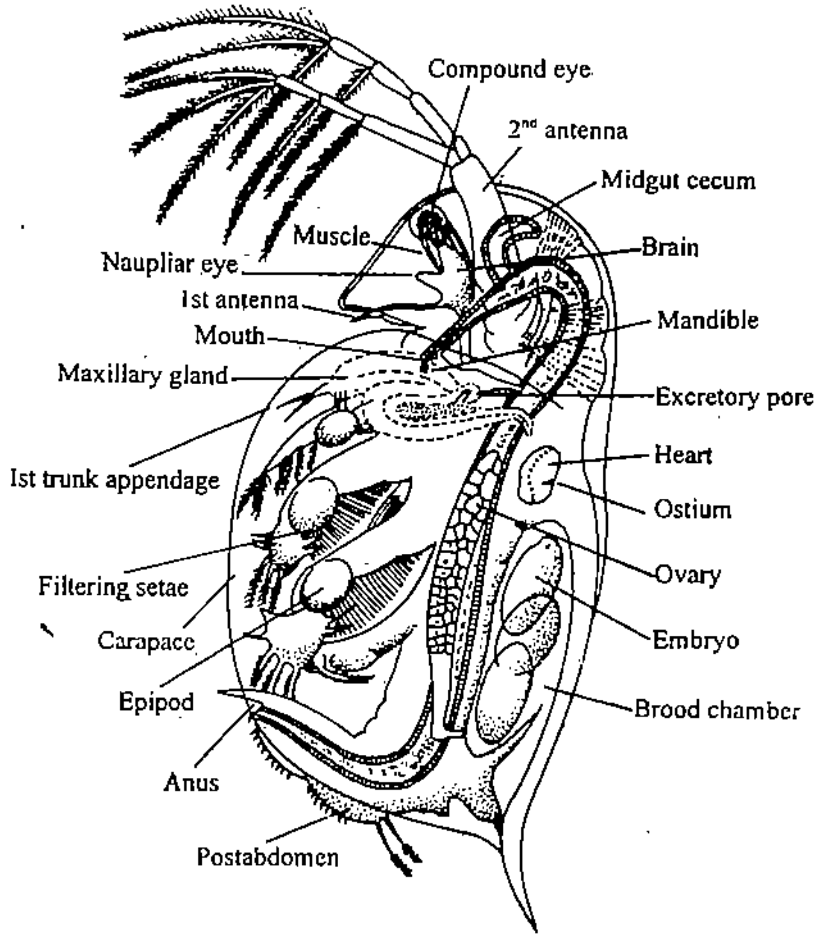

चित्र 8.14 : क्लेडोसेरन डैफ़्निया प्यूलेक्स *(Daphnia pulex)* की मादा (पार्श्व दृश्य)

वक्ष उपांगों की संख्या तथा उनके कार्य विभिन्न क्रस्टेशियनों में अलग-अलग होते हैं। एक ओर ऑस्ट्रेकोडा में 2-4 जोड़ी वक्ष उपांग होते जिनकी आकृति टांग जैसी होती है दूसरी ओर ब्रैंकियोपोडा तथा स्वच्छंद तैरने वाले कोपीपोडा में पांच जोड़ी वक्ष उपांग होते हैं। मैलाकॉस्ट्राका वर्ग में आठ जोड़ी वक्ष उपांग होते हैं (चित्र 8.15); इस वर्ग के कुछ सदस्यों में पहले कुछ जोड़े मैक्सिलीपीड यानी आहार-जबड़े बन कर सहायक अशन उपकरण के रूप में कार्य करते हैं और केवल शेष पश्च जोड़े ही पादचलनी टांगों का रूप ले लेते हैं। उदरीय उपांग प्राय: संचलन का कार्य करते हैं मगर अनेक क्रेस्टेशियनों जैसे कि कोपीपोडा, ब्रैंकियोपोडा तथा ऑस्ट्रेकोडा में ये होते ही नहीं। मैलाकॉस्ट्राका में इन उपांगों की 6-7 जोड़ियां होती हैं मगर अलग-अलग उदाहरणों में इनमें विभिन्नताएं पायी जाती हैं (चित्र 8.16)। इनमें जहां पहले तीन उपांग द्विशाखीय तरण उपांग होते हैं वहां पश्च तीन जोड़े रूपांतरित होकर कूदने वाले शूकाकार यूरोपॉड (uropod, पुच्छपाद) बन जाते हैं जैसे गैम्मैरस में (चित्र 8.16); अन्य उदाहरणों में आखिरी दो जोड़ी एकशाखीय (uniramous), हो सकते हैं जैसे *नीबैलिया (nebalia)* (चित्र 8.16) में। अंतिम जोड़ी का उपांग एक पंखे जैसा यूरोपॉड बन जाता है जैसे कि प्ररूपत: झींगा में पाया जाता है।

मिरियैपोडा **(Myriapoda)** के सदस्यों में शीर्ष और धड उपांग होते हैं, इनमें से धड़ उपांग इनकी टांगे होती हैं (चित्र 8.17)। प्रत्येक धड़खंड में संधित टांगों की या तो एक जोड़ी (जैसे कांतरों, centipedes) या दो जोड़ी (जैसे गिजाइयों, millipedes) होती हैं। नर मिलीपीडों में सातवें खण्ड की टांगे रूपांतरित होकर मैथुन अंग बन गयी हैं।

कीलिसेरेटा **(Chelicerata)** वर्ग में जिसमें अश्वनाल केकड़ा, बिच्छू, मकड़ियां, किलनियां आदि आते हैं, शिरोवक्षीय (cephalothoracic) तथा उदरीय उपांग होते हैं। उदरीय उपांग प्राय: संचलन में काम नहीं आते। अधिकतर ऐटेक्निडों में अग्र खण्ड समेकित होकर एक **प्रोसोमा**

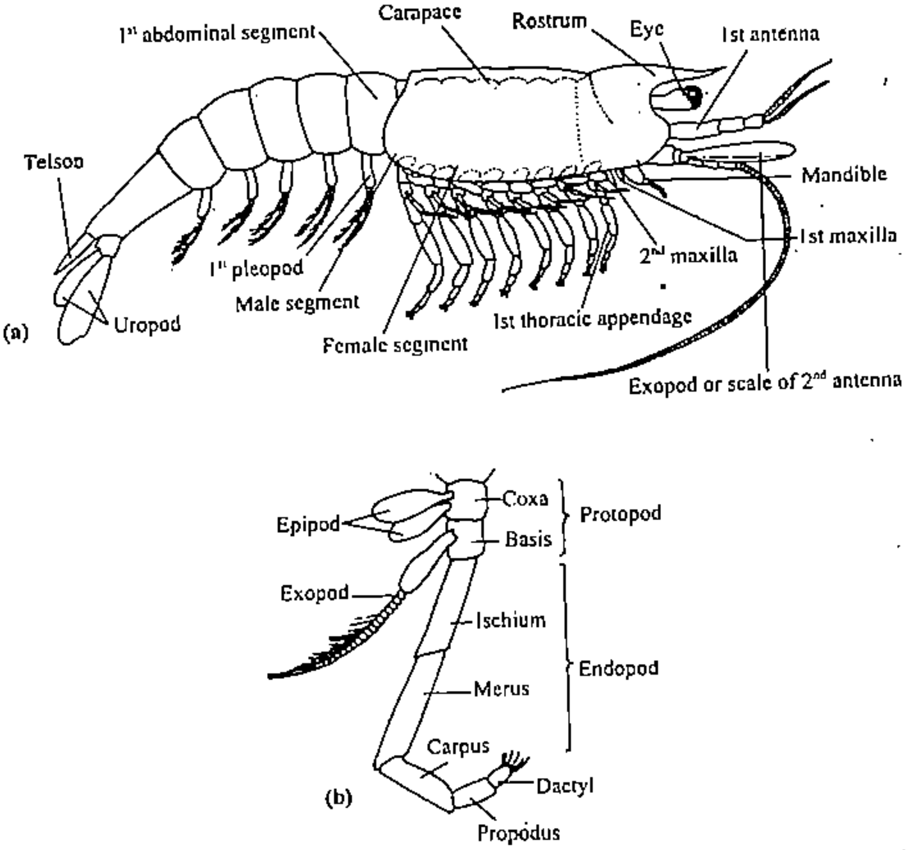

चित्र 8.15 : एक सामान्यीकृत मैलाकॉस्ट्राकन। A-शरीर का पार्श्व दृश्य, B-एक वक्ष उपांग।

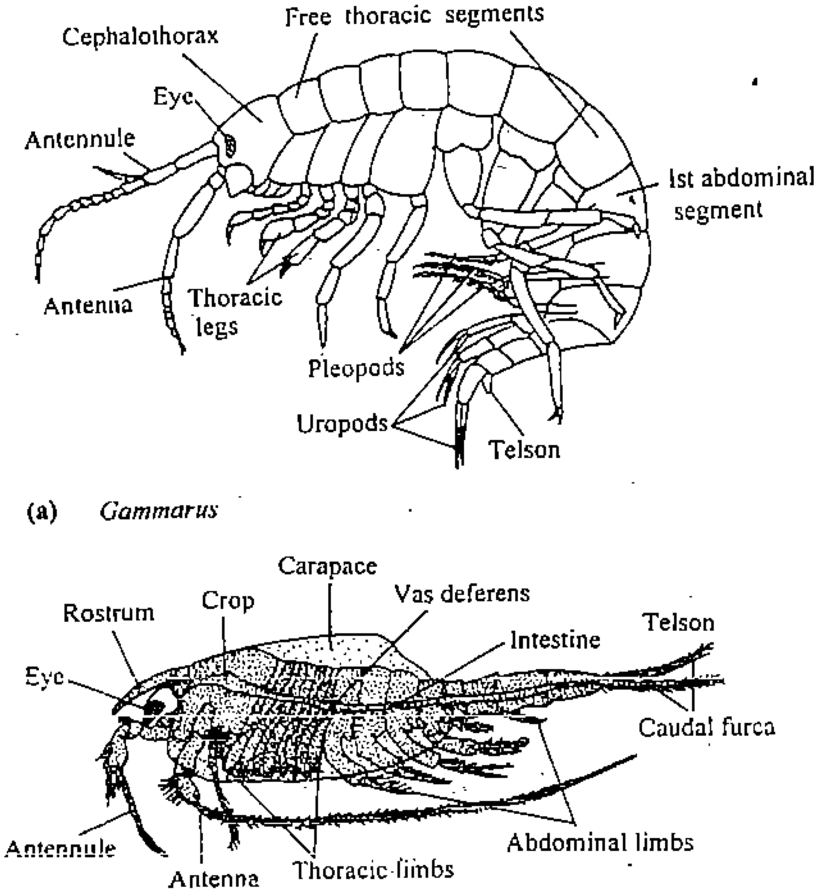

चित्र 8.16 : श्रिम्पें। A-गैम्मैरस *(Gammarus)*, B-नीबैलिया *(Nebalia)*।

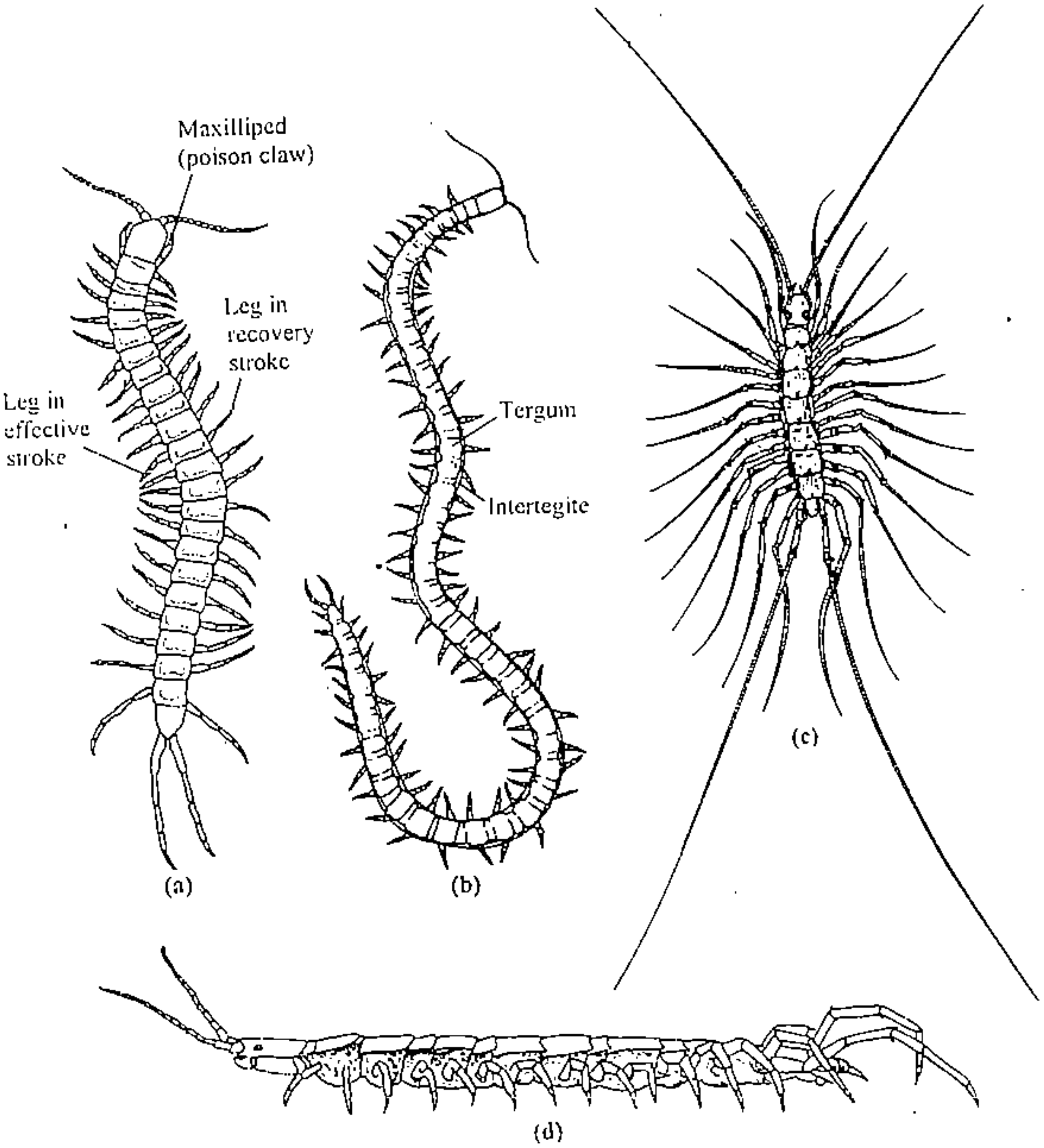

चित्र 8.17 : काइलोपोडा (chilopoda)। A-आटोक्रिप्टॉप्स सेक्सस्पिन्नोसा *(octocryptops sexpinnosa)*, एक स्कोलोपेंड्रोमार्फ़ कनखजूरा, B-एक जीओफ़िलोमार्फ़ कनखजूरा, C-स्कुटिजेरा कोलियॉपट्राटा *(scutigera coleoptrata)*। एक सामान्य घरेलू कनखजूरा,एक नकुटिजेरामार्फ़, D-लियोबियस *(Lithobins)*, एक लियोबायामार्फ़ कनखजूरा।

(prosoma) बनाते हैं और उसके अपने उपांग होते हैं। इन उपांगों में आते हैं कीलिसेरी, पेडिपैल्पाई तथा पादचलनी टांगें। ये उपांग भांति-भांति से रूपांतरित हो कर विशेष कार्य करने लग जा सकते हैं जैसे संवेदी, आहार पकड़ना, आसंजन अथवा शुक्राणु संचय आदि। ज़ाइफ़िसुरिडा (xiphisurida) (उदाहरण *लिम्युलस, Limbus*) में तीसरी से छठी जोड़ी तक के उपांग पादचलनी टांगें बन गए हैं (चित्र 8.18) जिनमें से सभी कीलायुक्त (chelate) हैं, आख़िरी टांग यानी पांचवीं के अंतिम सिरे पर कांटे बने होते हैं और यह टांग खोदने में इस्तेमाल होती है। ऐरेक्निडों में प्रोसोमा पर चार जोड़ी पादचलनी टांगें होती हैं (चित्र 8.19) और ऐसी हर टांग में 7-संधियां होती हैं (कॉक्सा, ट्रोकैण्टर, फ़ीमर, पैटेला, टिबिया, मेटाटार्सस तथा टार्सस)।

इंसेक्टा में भी मिरिऐपोडा की ही तरह उपांग एकशाखीय होते हैं (यानी विशाखित नहीं होते जैसे कि अन्यथा क्रेस्टेशियनों में होते हैं)। इनमें वक्ष प्रदेश में संचलन संरचनाएं टांगें तथा पंख होते हैं, और उदर बिल्कुल बिना उपांगों की होती है। टांगें तीन जोड़ी होती हैं- प्रत्येक वक्ष खंड पर

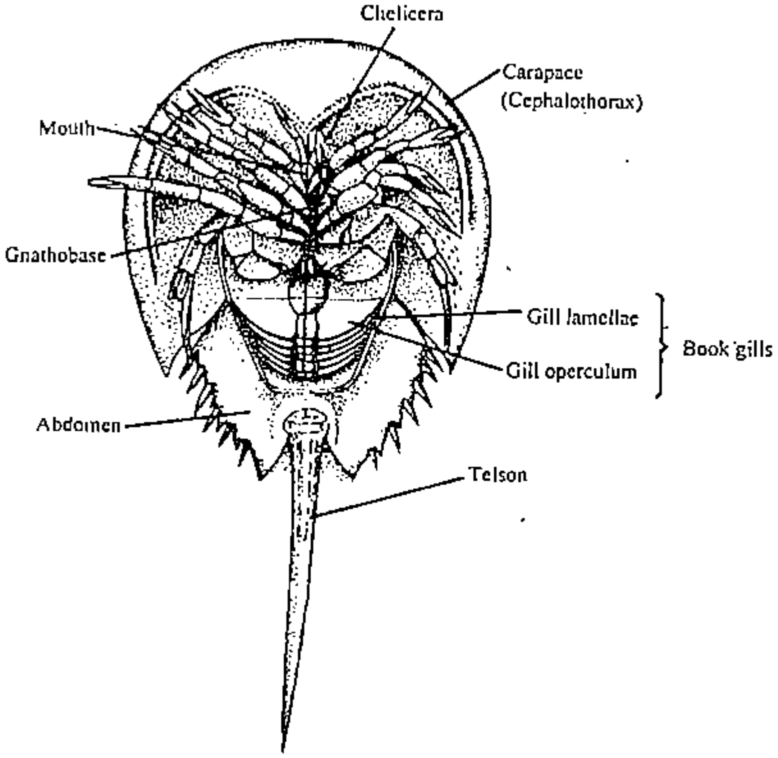

चित्र 8.18 : लिम्युलस

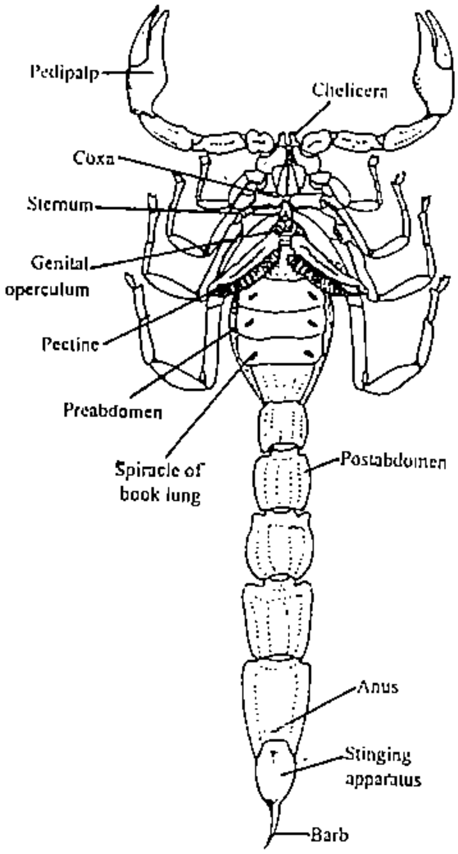

चित्र 8.19 : *ऐंड्रॉक्टोनस औस्ट्रेलिस* (अधर दृश्य)।

एक-एक जोड़ी। हर टांग में पांच संधियां होती हैं- कॉक्सा (coxa) पहला यानी आधारीय खंड होता है तथा ट्रोकेंटर (trochanter) फीमर (femur) के साथ कुछ-कुछ अगतिशील रूप में संलग्न होता है और फिर उसके बाद आते है टिबिया (tibia) तथा टार्सस (tarsus) (चित्र 8.20)। सर्वाधिक दूरस्थ टार्सस में एक एकल अथवा युग्मित नखर बना हो सकता है या गद्दी हो सकती है या चूषण डिस्क हो सकती है। कीट के स्वभाव के अनुरूप टांगों में आकारिकीय विविधता पायी जाती है। उदाहरण के लिए, पादचलनी कीटों में जैसे कि टिड्डे में टांगे पतली होती हैं। (चित्र 8.20), वल्गी (कूदने वाले) कीटों जैसे कि पिस्सू में ये लम्बी और शक्तिशाली होती हैं (चित्र 8.21) तथा तरणी उदाहरणों में जैसे कि जल-मत्कुणओं में चप्पू-जैसी (पैडल-समान) हो जाती है (चित्र 8.22)। कुछ तितलियों में अगली टांगे रोम सदृश संरचनाएं होती हैं जिनका कोई कार्यात्मक महत्व नहीं होता (चित्र 8.23) तथा अनेक लार्वो यानी केटरपिलरों में "प्रपाद, prolegs" होते हैं जो रेंगने के लिए उपयुक्त होते हैं (चित्र 8.24)।

पंख उड़ने के लिए विशेष युक्तियां हैं जो अनेक कीटों में पाए जाते हैं। ये देह-भित्ति के प्रसार होते हैं तथा संधित नहीं होते। प्ररूपतः टेरिगोट (Pterygote) कीटो में दो जोड़ी पंख पाए जाते हैं, एक मध्यवक्ष (mesothorax) पर और दूसरा पश्चवक्ष (metathorex) पर। विशाखित शिराएं जिनमें वातंक पहुंचे होते हैं, पंखों को आलम्ब प्रदान करती हैं। टांगों की ही तरह पंखों में भी उनकी संख्या तथा आकृति में भिन्न कीटों में विभिन्नताएं पायी जाती हैं। आदिम कीटों (एप्टेरिगोटा, Apterygota) में कोई पंख नहीं होते। जूँओं, पिस्सुओं तथा खटमलों में परवर्ती रूप में पंख समाप्त हो गए हैं। बीटलों में पश्चवक्ष पंख (पिछले पंख) पतले और झिल्लीनुमा होते हैं और वे ही उड़ने के काम आते हैं, इसके विपरीत इनके मध्यवक्षीय पंख (अगले पंख) जिन्हें इलाईट्रान (elytron) कहते हैं कड़े होते हैं। इन्हें उड़ने में इस्तेमाल नहीं किया जाता, वे केवल पिछले पंखों को ढके रहते हैं (चित्र 8.25)। डिप्टेरनों (dipterans) यानी मक्खियों, मच्छरों के सुविकसित मध्यवक्षीय पंख होते हैं और दूसरी जोड़ी के पंख अति छोटे होकर संतोलक (balancers) अथवा हाल्टीयर्स **(halteres)** बन गए होते हैं (चित्र 8.26)। लेपिडोप्टेरा (तितलियों तथा शलभों) में रंगदार शल्कों के द्वारा पंखों पर नानाविध आकर्षक नमूने बने होते हैं।

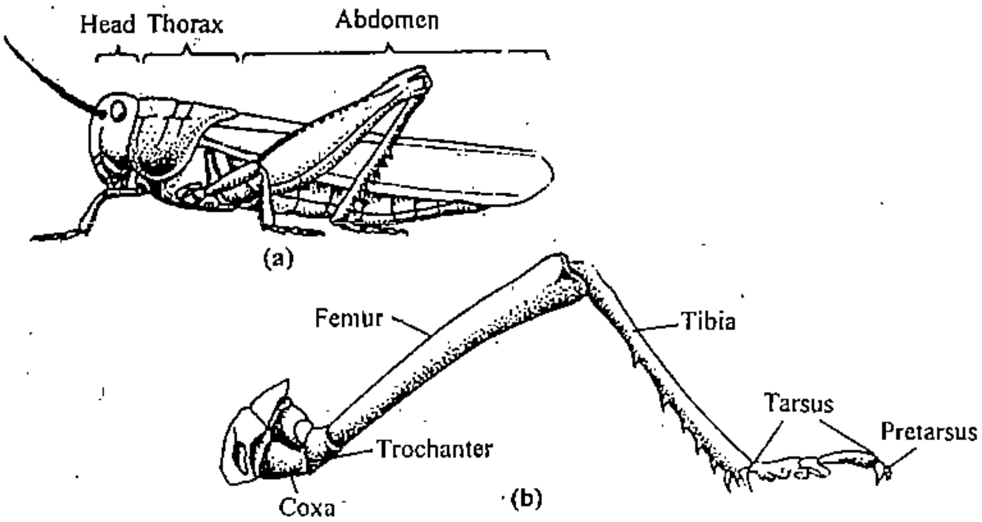

चित्र 8.20 : टिड्डा। A-शरीर का पार्श्व दृश्य, B-टिड्डे की टांग।

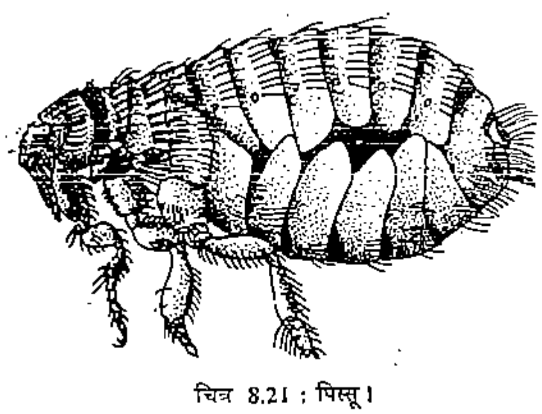

चित्र 8.21 : पिस्सू।

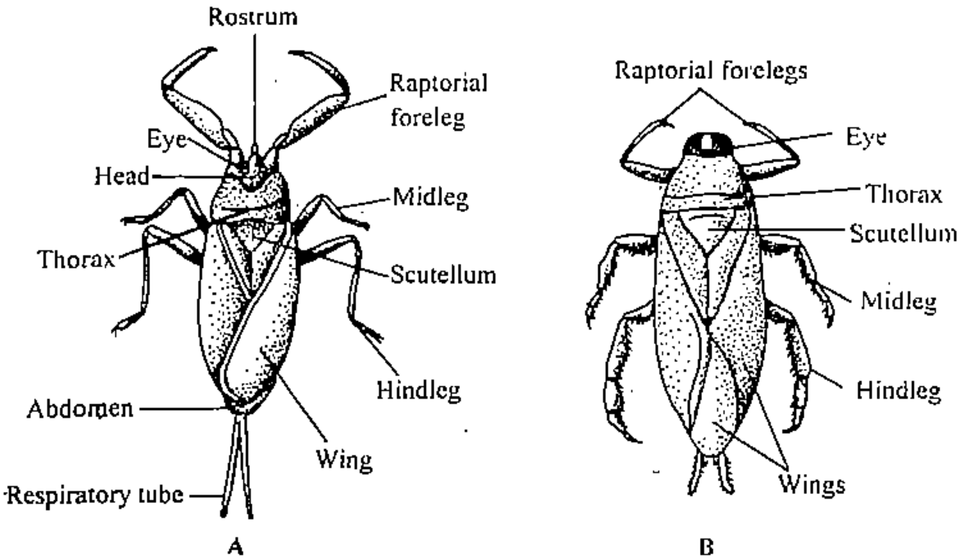

चित्र 8.22 : जल मत्कुण। A-नीपा *(Nepa)*, B-बेलोस्टोमा *(Belostoma)*।

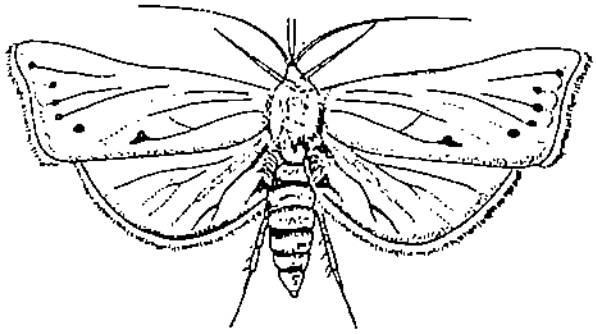

चित्र 8.23: तितली।

चित्र 8.24 : केटरपिलर।

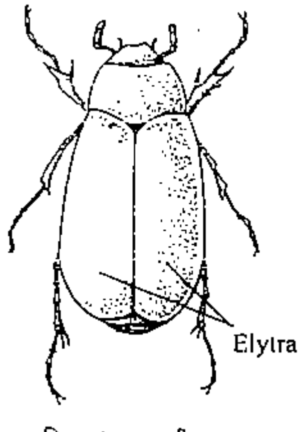

चित्र 8.25 : बीटल

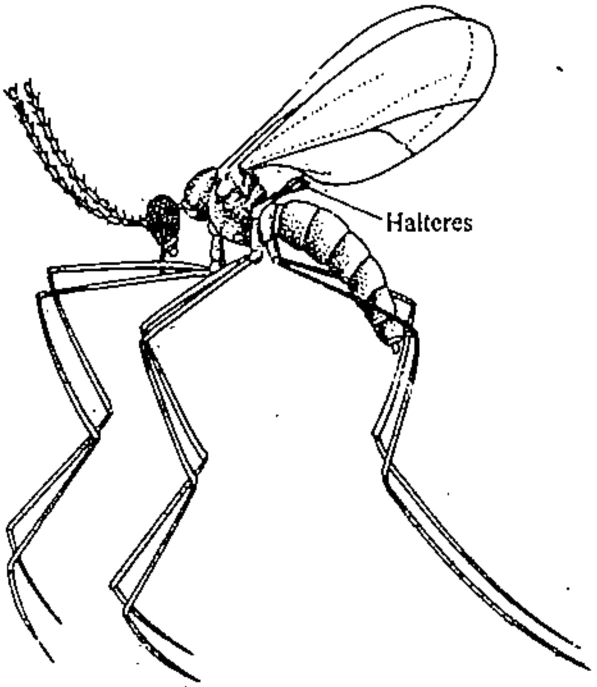

चित्र 8.26 : ऑर्डर डिप्टेरा; एक गॉल-नैट (gall gnat)।

संचलन की यांत्रिकी

जैसा कि आप पहले ही देख चुके हैं आर्थ्रोपोडों में बहुत विविध संचलन क्रियाएं पायी जाती हैं। जलीय सदस्यों की तरण गतियों में विविध उपांग काम आते हैं। क्रेफिशों के उदरीय प्लवपाद (pleopods) अथवा तरणपाद (swimmerets) (चित्र 8.27), केकड़ों के पांचवी जोड़ी के चप्पू

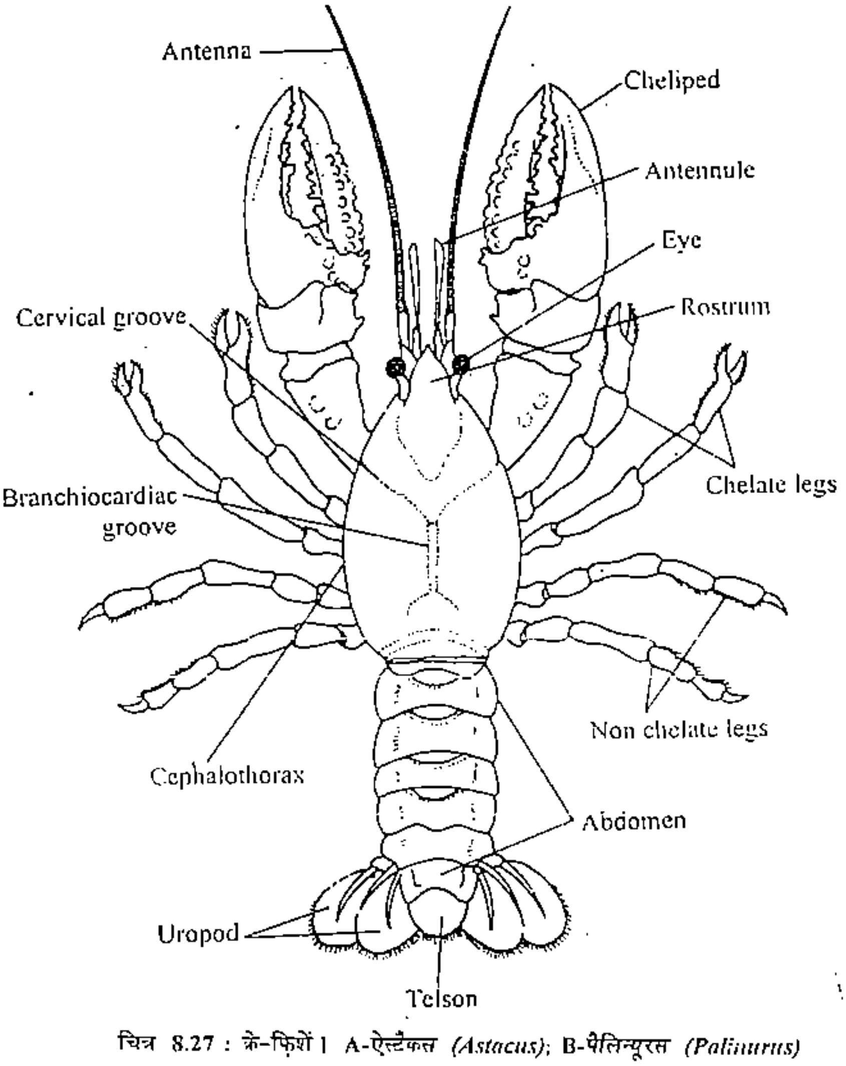

चित्र 8.27 : क्रे-फिशें। A-ऐस्टैकस *(Astacus)*; B-पैलिन्यूरस *(Palinurus)*

तरीखे वक्ष उपांग (चित्र 8.28) और कोपीपॉड़ों एवं क्लैडोसेरनों के दूसरे ऐंटेना (चित्र 8.14) तरण गतियों को सम्पन्न कराते हैं। *लिमुलस*, जो कि मूलतः एक तलीवासी है, रेत और कीचड़ की ऊपरी सतह पर रेंगता अथवा उसमें से चीरता-खोदता चलता जाता है। इसके लिए इसकी आकृति बहुत अनुकूल होती है। आखिरी (5वीं) जोड़ी की पादचलनी टांगों को नरम कीचड़ अथवा रेत में से घुसाते हुए शरीर को भीतर को धक्का देने में इस्तेमाल किया जाता है।

थल आर्थ्रोपोडों में रेंगना, चलना, तेज़ दौड़ना, कूदना, खोदना तथा चढ़ाना आदि इन सबकी क्रियाएं होती हैं। पाद के दृढ़ लम्बे खण्डों के संबंध में लचीली संधि झिल्लियों के सही-सही दिशान्यास से बहुत यांत्रिकीय कारगरता आती है एवं विविध गतियां सम्पन्न होती हैं। वास्तविक नोदन बल टांगों की संबद्ध बाह्य एवं आंतरिक पेशियों के संकुंचनों से पैदा होता है (चित्र 8.29) जिसके साथ-साथ पादों का सही-सही दिशान्यास भी होता है। शरीर की पेशियों (देह-भित्ति की अनुदैर्ध्य तथा वृत्ताकार पेशियों) को अब और आगे इस्तेमाल नहीं किया जाता जिनसे अन्यथा शरीर को आगे बढ़ाने के लिए देह ऊर्मिलन पैदा किए जाते थे। इस प्रकार संचलन के दौरान अनावश्यक ऊर्जा-बरबादी से बचत हो जाती है।

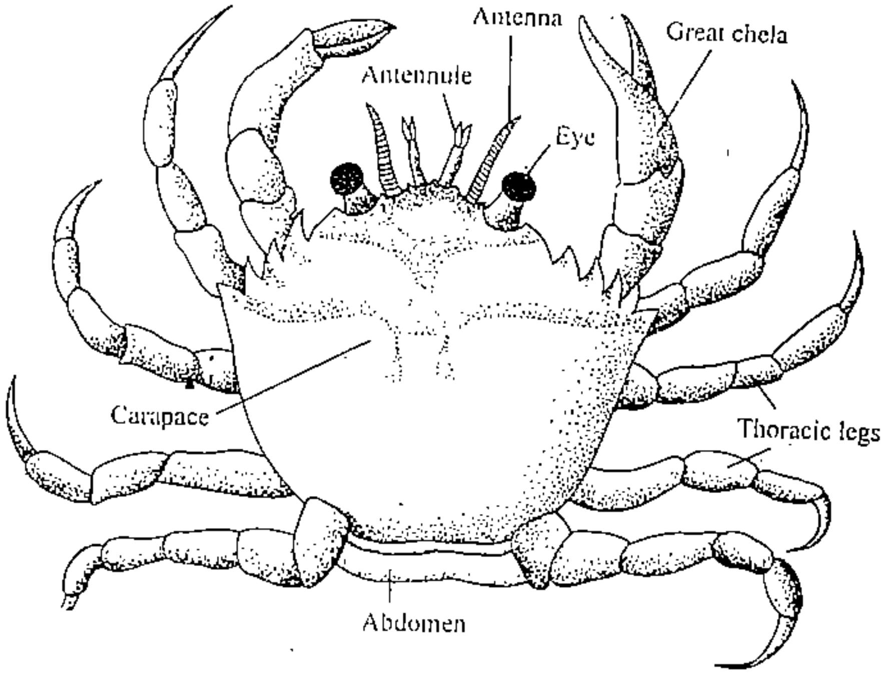

चित्र 8.28 : सामान्य केकड़ा कार्सिनस *(carcinus)*।

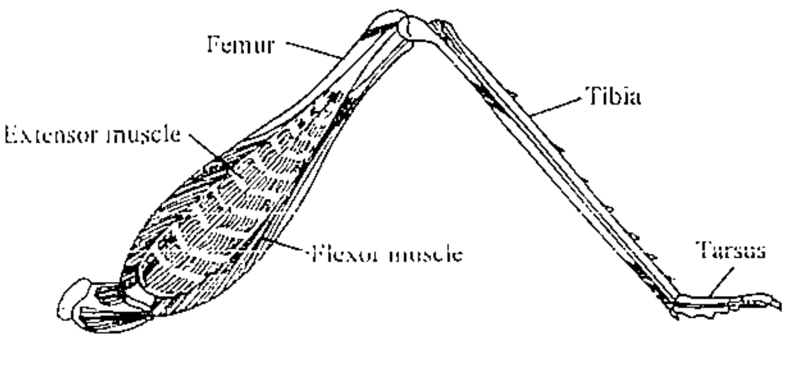

चित्र 8.29 : टिड्डे की पिछली टांग। टांग को परिचालित करने वाली पेशियां बाह्यकंकाल के खोखले सिलिंडर के भीतर होती हैं। यहां ये पेशियां भीतरी दीवार पर संलग्न रहती है जहां से वे पाद को लीवर के सिद्धांत पर चलाती हैं। "पिवट" संधि तथा प्रसारिणी (extensor) एवं आकोचनी (flexor) पेशियों पर गौर कीजिए जो एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हुए पाद को फैलाती तथा सिकोड़ती हैं।

थल आर्थ्रोपोड की बहु-टांग प्रणालियों में, जैसी कि मिलिपीडों एवं सेंटीपीडों में पायी जाती हैं, अधिकतर टांगें संचलन में भाग लेती हैं तथा पूरा शरीर इसमें भाग लेता है और इनमें कोई ऐसा स्पष्ट संचलन प्रक्षेत्र नहीं होता जैसा कि कीटों का वक्ष अथवा ऐरेक्निडों का प्रोसोमा होता है। टांगों का बहुसंख्यक तथा अपेक्षाकृत छोटे आकार का होना और साथ में छोटे एवं चौड़े खंडों का होना मिलीपीडों को धीमे चलने वाला बनाते हैं। मगर उनमें किसी एक समय पर बहुत संख्या में टांगें कारगर कर्षण धक्का दे सकने के कारण वे काफी तीव्र बल पैदा कर सकती हैं, और इस तरह शरीर को मिट्टी तथा ह्यूमस में से आगे को धक्का दे सकती हैं जिनके भीतर अक्सर वे बिल बनाते हैं। मगर सेंटीपीडों (कनखजूरों) में थोड़ी संख्या में परंतु अधिक लम्बी टांगें होती हैं जिससे वे तेज़ी से गति कर सकते हैं, मगर मिट्टी के भीतर को आसानी से बिल नहीं बना सकते।

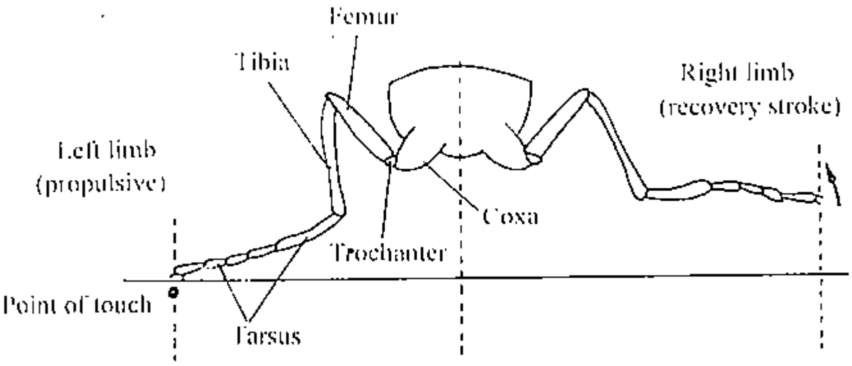

चित्र 8.30 : एक कीट में चलने के दौरान वक्ष पादों की एक जोड़ी का योजना प्रतिदर्श, जिसमें बायीं टांग नोदनी है तथा दाहिनी टांग पुनः प्राप्ति स्ट्रोक में है।

टैगमैटाइज़ेशन (खण्डों में संयुक्त होने) का अधिक मात्रा में होने और साथ में टांगों की संख्या कम होने से, मिरियेपोडों की तुलना में कीट और मकड़ियां अधिक सफल थल आर्थ्रोपोड बन गए हैं। कीटों में तीन जोड़ी टांगें तथा ऐरेक्निडों की चार जोड़ी टांगें धड़ के साथ (कीटों में वक्ष में तथा ऐरेक्निडों में प्रासोमा में) शरीर के गुरुत्व केन्द्र के समीप जुड़ी होती हैं। अतः नोदन बल शरीर पर एक अकेले केंद्र (वक्ष अथवा प्रोसोमा) के समीप लगाया जाता है। इनमें शरीर का पार्श्वतः लहराया जाना नहीं होने दिया जाता। लम्बे पतले पादों जिसमें अंतिम सिरा नुकीला होता है, के द्वारा नोदन बल अधःस्तर पर एकल स्पर्श बिंदु पर लगता है। सामान्यतः जब कीट चलते हैं तब एक जोड़ी की टांगे विपरीत प्रावस्था में गति करती हैं और किसी टांग को केवल तभी ऊपर को उठाया जाता है जब उसके पीछे की टांग अधःस्तर को छू लेती है (चित्र 8.30)। कीटों ने वायवीय गति को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया है। पंख, वक्ष बाह्य कंकाल के संरचनात्मक ढांचे के साथ और संबद्ध वक्ष पेशियों के साथ उड्डयन गतियां प्रदान कराते हैं। कीटों में उड्डयन के विषय में अधिक विस्तार से आप इसी पाठ्यक्रम की इकाई 13 में पढ़ेंगे।

8.5 मौलस्का में संचलन

मौलस्का में मुख्य संचलन अंग पद होता है जो इन प्राणियों का एक विशिष्ट लक्षण है। सरलतम रूप में पद एक चपटा अधर तलवा होता है जो सुरक्षित संलगन के लिए तथा रेंगने के द्वारा शरीर को चलाने के लिए सबसे अच्छा अनुकूलित होता है। सीलोम बहुत ज़्यादा ह्रासित होती है इसलिए इन प्राणियों के समूह में द्रवस्थैतिक कंकाल के रूप में इसका महत्व नहीं होता। और उधर दूसरी ओर पद (foot) पेशीय होता है और उसमें सिलिया तथा श्लेष्म कोशिकाएं होती

हैं। इसी के साथ-साथ रक्त तंत्र के द्रवस्थैतिक गुणधर्म इसे एक उत्कृष्ट संचलन अंग बना देते हैं। बाइवैल्वों में संचलन क्रिया में कवच की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पद में भी उसके स्वरूप में अपार विविधता पायी जाती है जो न केवल रेंगने का ही काम करता है वरन् बिल खोदने, कूदने तथा तैरने में भी सहायता करता है। ये क्रियाकलाप मौलस्का विशेष पर्यावरण एवं उसकी जीवन शैली पर निर्भर करते हैं। आइए मौलस्का के विभिन्न वर्गों में संचलन के कार्य से संबंधित पाद के विभिन्न रूपांतरणों का अवलोकन करें (चित्र 8.31)।

8.5.1 पद (Foot) एक रिंगन तथा विसर्पण अंग के रूप में

छोटे मौलस्क, ख़ासतौर से जलीय गैस्ट्रोपॉड पद की अधर सतह पर बने सिलिया के द्वारा विसर्पण करते हैं। बड़े आकार के प्राणी पद की अधर सतह पर से गुज़रती पेशीय तरंगों के द्वारा रेंगते अथवा विसर्पण करते हैं। इस प्रकार की गति में पेशीय संकुंचनों तथा हीमोसीलिक तरल के दबाव की परस्पर क्रिया कार्य करती है। पद की सतह पर श्लेष्मा का स्राव विसर्पण को सहज बना देता है (चित्र 8.32)। सरलतम प्रकार का संचलन अंग जिसमें पद में एक अधर खांच होती है तथा इस खांच के साथ उसके सिलियायित कूटक होते हैं, एप्लैकोफ़ोरन *प्रोनीओमीनिया (Proneomenia)* (चित्र 8.31A) में पाया जाता है; *कीटोडर्मा (Chaetoderma)* में यह पद भी नहीं पाया जाता। पौलीप्लैकोफ़ोरा में पद ज़्यादा अच्छा विकसित होता है जो या तो चौड़ा या चपटा हो गया है जैसे कि *काइटॉन (Chiton)* (चित्र 8.31B) में या संकरा हो गया है जैसे कि *काइटोनेला (Chitonella)* में। बाइवैल्वों में रिंगन पद त्रिभुजाकार हो सकता है जैसे कि *यूनियो (Unio)* तथा *ऐनोडॉण्टा (Anodonta)* में; *न्यूकुला (Nucula)* (चित्र 8.31C) में पार्श्वतः सम्पीडित पद होता है। गैस्ट्रोपॉडों में कुशल रिंगन गतियों के लिए पद में कौड़ियों (सिप्रिया, Cypraea) (चित्र 8.31D), *ऐक्टिऑन (Actoeon)* (चित्र 8.31E) तथा *पैटेला (Patella)* (चित्र 8.31F) में पाया जाता है। यह संकुंचनशील हो सकता है जैसा कि *ट्राइटॉन (Triton)* में, अतिग्रंथीय हो सकता है जिसके साथ-साथ एक लम्बा पीछे को मुड़ा साइफ़न होता है जैसे कि *कोनस (Conus)* (चित्र 8.31G) में अथवा एक बड़े विचित्र ढंग से पूरे शरीर को लपेटता हुआ सा हो सकता है जैसे *बुलिया (Bullia)* (चित्र 8.31H) में।

8.5.2 पद एक बिलकारी अंग के रूप में

स्कैफ़ोपोडा में प्ररूपतः बिलकारी स्वभाव पाया जाता है, और इसके लिए इनमें बिल बना सकने के लिए उपयुक्ततः रूपांतरित पद पाया जाता है। *डेंटेलियम (Dentalium)* (चि 8.31I) का शंक्वाकार एवं अपाकुंचनी पद अपने दूरस्थ सिरे पर त्रिपालिक होता है। बिल खोदते समय इसे रेत में ज़ोर से घुसाया जा सकता है। अपनी संलग्नता को अधिक मज़बूत बनाने के लिए शंकु को घेरती हुई एक पालि उभारी जा सकती है। बिलकारी बाइवैल्वों में, कुछ में जैसे कि *फ़ोलस (Pholas)* में जो कि चट्टान के भीतर को सूराख़ करता है कुंद छोटे पद को सूराख़ करने में इस्तेमाल किया जाता है। ये अपने पद की चूषक-सरीखी सतह के द्वारा चिपक जाते हैं, उसके बाद पद की पेशियां विविध गतियां पैदा करती हैं जिनसे आवश्यक कर्तन बल प्राप्त होता है, और वाल्वों (कपाटों) के अग्र सिरे तेज़ धारदार कर्तन किनारों का काम करते हैं। नौ कृमि *टेरेडो (Teredo)* भी लगभग इसी क्रियाविधि से लकड़ी में सूराख़ करता जाता है। *योल्डिया (Yoldia)* (चित्र 8.31J) में पद के दोनों पार्श्वों को वलनित करके एक पच्चर जैसी आकृति बनायी जा सकती है ताकि रेत अथवा कीचड़ में आसानी से धंसा जा सके। कुछ बिलकारी गैस्ट्रोपोडों में जैसे कि *साइगैरेटस (Sigaretus)* (चित्र 8.31K) में पद का अग्र भाग भी, जिसे *प्रोटोपोडियम* कहते हैं, विशेषित होकर पच्चर जैसा बन गया है मौलस्कों में बिलकारी क्रिया प्ररूपतः पद के फलक को रेत या कीचड़ में धंसाकर सम्पन्न करायी जाती है। अपाकुंचनी पेशियों की सहायता से पद का दूरस्थ भाग फैलाया जाता है और जब इसके साथ-साथ रक्त दाब काम करता है तब यह भाग एक लंगर की तरह काम करता है। उसके बाद आकुंचनी पेशियों के संकुचन से प्राणी और नीचे-नीचे गहराई में को खिंचता जाता है।

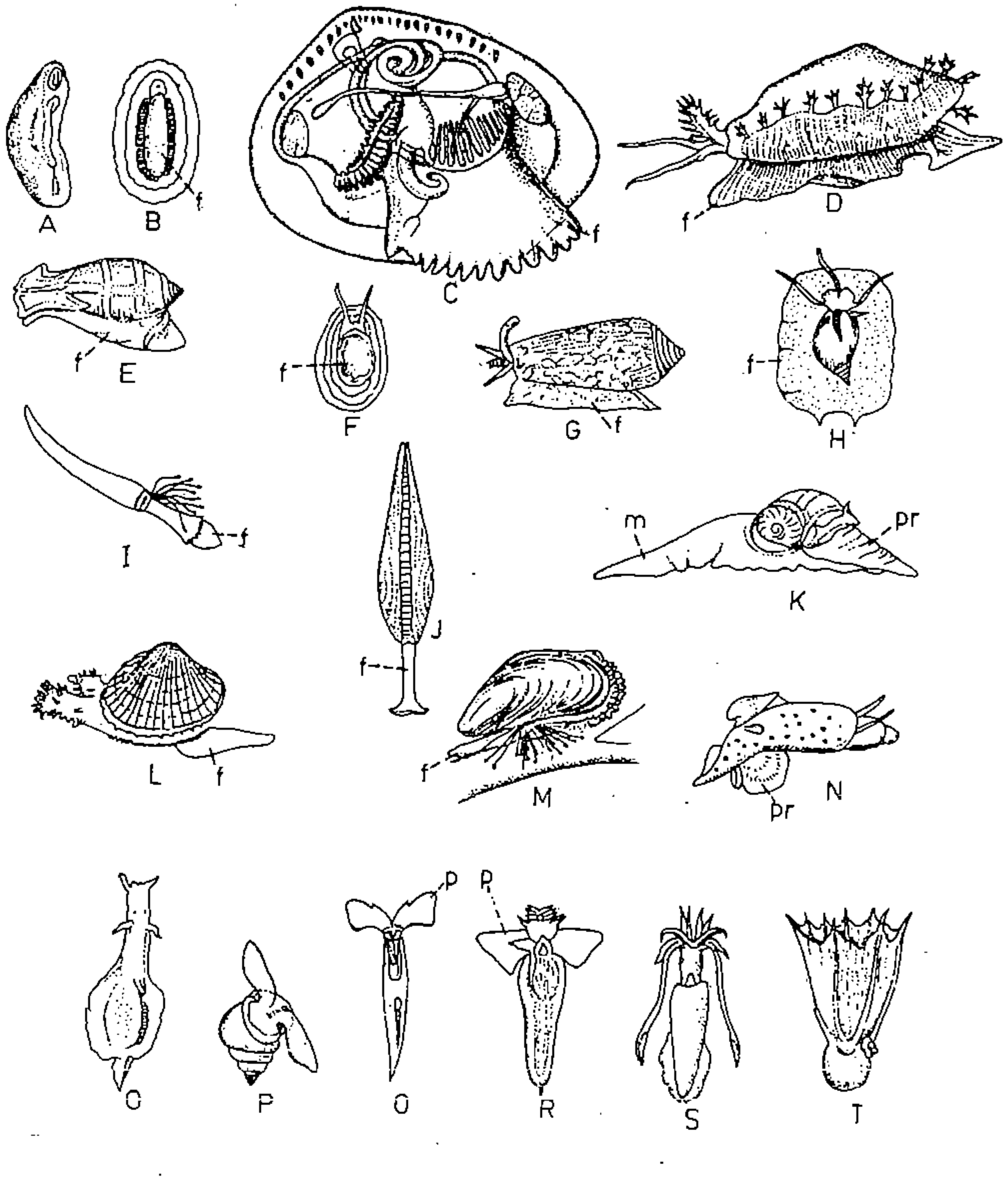

चित्र 8.31: मौलस्का में पद रूपांतरण। A-*प्रोनीओमीनिया,* B-*काइटॉन,* C-*न्यूकुला,* D-*सिप्रीया,* E-*ऐक्टीऑन,* F-*पटेला,* G-*कोनस,* H-*बुलिया,* I-*डैंटेलियम;* J-*यॉल्डिया,* K-*साइगैरेटस,* L-*कार्डियम,* M-*मिटिलस;* N-*कैरिनेरिया,* O-*ऐप्लीसिया,* P तथा Q टेरोपॉड-प्राणी; R- *एक टेरिपॉड क्लाइओन;* S-*लोलाइगो;* T-*ऐम्फिट्रेटस*। f-पद; m-मेटापोडियम, p-पैरापोरियम; pr-प्रोटोपोडियम।

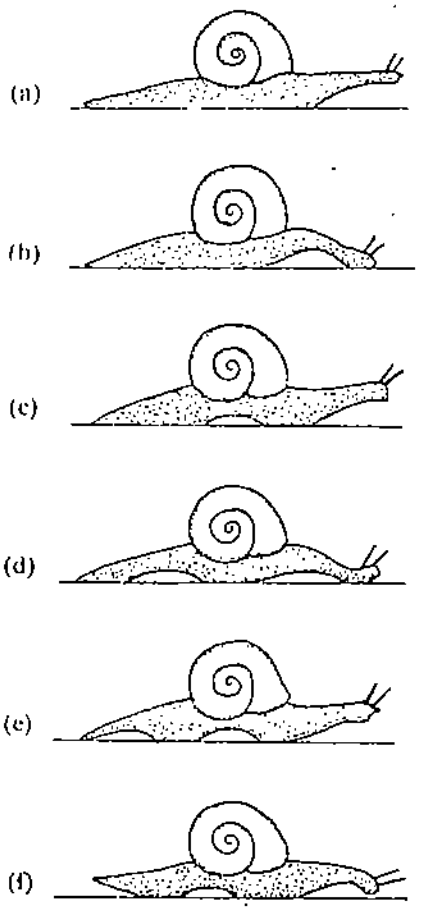

चित्र 8.32 : एक पल्मोनेट गैस्ट्रोपॉड में रिंगन गति की क्रमिक अवस्थाएं।

8.5.3 पद एक कुदान अंग के रूप में

अनेक बाइवैल्व अपने पद को एक कारगर कुदान अंग के रूप में इस्तेमाल करते हैं। *ट्राइगोनिया (Trigonia)* का अग्रपश्चत: सम्पीडित पद से एक नौतल बन जाती है। *कार्डियम (Cardium)* (चित्र 8.31L) में पद अपने ही ऊपर मुड़ गया होता है। तथा जब इस मुड़े हुए पद को एकदम से फैलाया जाता है तो यह कुदान ले लेता है। नरम रेतीले अथवा कीचड़ अधःस्तरों से जब आवास में परिवर्तन होकर खुले आवास में आ जाता है तब इसके साथ-साथ पद और उससे संबधित पेशीन्यास में ह्रास होता है एवं सहायक संरचनाएं जैसे कि बिसस उपकरण (byssus apparatus) विकसित होता है। यह उपकरण आमतौर से लार्वा अवस्थाओं में होता है मगर कुछ उदाहरणों में वयस्क अवस्था तक बना रहता है। *मिटिलस (Mytilus)* (चित्र 8.31M) में पद से संबंधित ग्रंथियों से निकले स्राव द्वारा बिसस धागे बन जाते हैं जो प्राणी को पत्थरों से कसकर चिपका देते हैं। *पेक्टेन (Pecten)* नामक स्कैलप में पद तो हासिल हो गया है मगर यह मौलस्क अपने चौड़े वाल्वों को विचित्र तरीके से फड़फड़ाता हुआ गति कर लेता है।

8.5.4 पद एक तरण अंग के रूप में

तैरने का स्वभाव गैस्ट्रोपोडों तथा सेफैलोपोडों में आम पाया जाता है। तरणी गैस्ट्रोपॉडों में अति नानाविधि पद-रूपांतरण पाए जाते हैं। वेलापवर्ती उदाहरणों में जैसे कि हेटेरोपॉड प्रोज़ोब्रैंक *कैरिनेरिया (Carinaria)* (चित्र 8.31N) में पद का मध्य भाग मीज़ोपोडियम (mesopodium) एक पतला फ़िन जैसा होता है जो ऊर्मिलन गतियों पैदा करने में सहायक होता है। फ़िन ऊपर की ओर को कर लिया जाता है तथा प्राणी उलटा पीठ नीचे किए हुए तैरता जाता है। न्यूडिब्रैंक (nudibranch) प्राणी चपटे हो गए शरीर द्वारा जिससे परापाद नामक पतले पार्श्व प्रवर्ध निकले

होते हैं, तैरता है, ये परापाद फ़िन जैसा कार्य करते हैं। *ऐप्लीसिया (Aplysia)* अथवा "समुद्री शशक (sea hares)" रेंग सकते हैं, मगर वे तैर भी सकते हैं। इनके परापाद पंखें के आकृति के होते हैं, तैरते समय वे इन्हें ऊपर-नीचे फड़फड़ाते हैं। प्ल्यूरोब्रैंक प्राणी इसी तरीके से तैरते हैं। कुछ स्पीशीज़ के परापाद एक साथ बंद होकर एक सुरंग बना लेते हैं; इस सुरंग में पीछे की ओर को पानी की एक तीव्र धारा छोड़कर वे शरीर को आगे को धक्का प्रदान करा लेते हैं। टेरोपॉड (Pteropod) प्राणी जिन्हें "समुद्री तितलियां" भी कहा जाता है, प्लवक स्वभाव की होती हैं, इनमें पंख-जैसे परापाद होते हैं (चित्र 8.31 P,Q) जैसे कि *ऑक्सीगाइरस (Oxygyrus)* तथा *क्लायोन (Clione)* (चित्र 8.31R) में।

सैफ़ैलोपोडा में पाद इस हद तक रूपांतरित हो गया है कि उसकी प्ररूपी आकृति ही समाप्त हो गयी। इसका प्रतिदर्श एक कारगर साइफ़नी उपकरण के रूप में जिसके साथ-साथ एक बड़ी प्रावार गुहा भी है, मिलता है। ये प्राणी जेट-नोदन की क्रिया से तैरते हैं जिसमें वे प्रावार गुहा के जल को कीप में से बड़े तीव्र बल के साथ बाहर को छोड़ते हैं। सेफ़ैलोपोडों में अनेक भुजाएं एवं स्पर्शक भी होते हैं जो शीर्ष को घेरे रहते हैं। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि ये संरचनाएं पद के अग्र क्षेत्र के रूपांतरण हैं। कदाचित यह सत्य नहीं है; हो सकता है कि भुजाएं तथा स्पर्शक शीर्ष संरचनाएं ही हो न कि पादीय। अलग-अलग उदाहरणों में इनकी संख्या अलग-अलग होती है। ऑक्टोपसों में आठ भुजाएं होती हैं; लोलाइगों (Logigo) (चित्र 8.31S) तथा *सीपिया (Sepia)* में आठ-आठ असंकुंचनीय भुजाएं तथा दो-दो आकंचनी स्पर्शक होते हैं। *ऐम्फ़िट्रेटस (Amphitretus)* (चित्र 8.31T) में भुजाओं को परस्पर जोड़ता हुआ एक जाल होता है जिससे एक छतरीनुमा आकृति बन जाती है। सभी सक्रिय रूप में तैरने वाले सेफ़ैलोपोडों में एक सुविकसित पेशीन्यास होता है जिसमें तीन प्रकार के पेशी रेशे होते हैं- वृत्ताकार, अरीय तथा अनुदैर्ध्य। इन पेशियों के संकुंचन से एक बहुत शक्तिशाली जल-जेट बाहर को निकलती है जिसके कारण शरीर को एक तीव्र एवं शक्तिशाली नोदन गति प्रदान होती है। इन प्राणियों में तैरने को सुगम बनाने की दिशा में शरीर का धारारेखित हो जाना है एवं स्थायीकारी फ़िनों का बन जाना है जैसे कि *लोलाइगों* में। मगर ऑक्टोपस तथा उसके साथी सदस्य अपनी शक्तिशाली भुजाओं का इस्तेमाल करके विसर्पण भी करते हैं। ये तैरने में इतने कुशल नहीं होते।

स्थानबद्ध मौलस्कों में पाद या तो ह्रासित हो गया होता है या कम विकसित हुआ होता है। न्यूनाधिक रूप में स्थानबद्ध गैस्ट्रोपोडों में जैसे कि *क्रेपिड्यूला* में पाद दुर्बल होता है अथवा ह्रासित हो गया होता है। यथार्थतः स्थानबद्ध उदाहरणों में जैसे कि "कृमि-कवचों" (worm shells) (वर्मेटिडी तथा सिलिक्वैरिआइडी) में भी नलिका जैसे कवच होते हैं, पद ह्रासित होता है। परजीवी मीज़ोगैस्ट्रोपॉडों तथा बाइवैल्वों (उदा० *एंटोवैल्वा, Entovalva*) जो प्रायः इकाइनोडर्मों में अंतःपरजीवी होते हैं, में भी ह्रासित पद पाया जाता है।

बोध प्रश्न 2

a) आर्थ्रोपोडा की संघटना के दो ऐसे लक्षण गिनाइए जो उनकी कारगर गति में महत्वपूर्ण होते हैं।

....

....

....

....

....

....

....

....

b) नीचे दिए गए कालम के प्राणि समूहों के आगे उन-उन संचलन अंगों के नाम लिखिए जो कॉलम 2 में दिए गए हैं:

कॉलम 1		कॉलम 2	
i)	इन्सेक्टा	a)	पुच्छपाद
ii)	क्रस्टेशिया	b)	पंख
iii)	ऐरेक्निडा	c)	धड़ उपांग
iv)	मिरिऐपोडा	d)	चलन टांगे
		e)	ऐन्टेन्यूल

c) मौलस्का में संचलन अंग पद है। मौलस्कों का एक-एक उदाहरण बताइए जिनमें पद निम्नलिखित प्रकार की गतियां करता है :-

i) नरम रेत में बिल बनाना

ii) विसर्पण

iii) तैरना

iv) फांदना

8.6 इकाइनोडर्मेटा में संचलन

इकाइनोडर्मों में संचलन का कार्य एक सबसे अलग प्रकार का सूक्ष्मनलिका तंत्र द्वारा किया जाता है जिसे जल-वाहिकीय तंत्र (**water vascular system**) कहते हैं। यह तंत्र केवल इकाइनोडर्मेटा की ही विशेषता है जिनमें अधिकतर में यह काफ़ी अच्छी तरह विकसित होता है। इसमें नालों का एक क्रम सा बना होता है, और ये नालें सीलोम से व्युत्पन्न हुई होती हैं। इन नालों में तरल भरा होता है। प्राणी की अपमुख सतह पर बनी मैड्रेपोरोइट (**modreporite**) नामक एक छिद्रिल चलनी प्लेट के माध्यम से समुद्र का जल इन नाल-तंत्र के साथ सीधा जुड़ा रहता और भीतर को आ-जा सकता है। इस तंत्र के भीतर का द्रव समुद्र जल जैसा ही होता है मगर उसमें पोटैशियम आयनों की मात्रा अधिक होती है। कुछ प्रोटीन तथा कई प्रकार के अमीबाणु इसमें तिरते रहते।

सभी इकाइनोडर्मों में जल वाहिकीय तंत्र की मूलभूत संचनात्मक संघटना एक ही जैसी होती है फिर भी मूल योजना से कुछ अंतर होते जाते हैं। इस तंत्र के घटकों का अध्ययन करने के लिए एक प्ररूपी उदाहरण के रूप में हम स्टारफ़िश के जल वाहिकीय तंत्र को ले सकते हैं। (चित्र 8.33)। संचलन की दृष्टि से इसका मुख्य संबंधित घटक एक पंचभुजीय परिमुखी वाहिका है जिसे वीथि वलय नाल (**ambulacral ring canal**) कहते हैं। वलय नाल से अरीय वाहिकाएं (**radial vessels**) निकलती हैं। प्रत्येक अरीय नाल भुजा के अंतिम छोर तक चलती जाती है। अपने मार्ग में इससे बहुसंख्यक पार्श्व वाहिकाएं निकलती हैं। प्रत्येक पार्श्व वाहिका एक नाल-पाद (**tube-foot**) अथवा पाद में पहुंचती है। ये नाल-पाद खोखले शंक्वाकार अथवा सिलिंडराकार प्रवर्ध होते हैं, जिनमें से हर एक में एक ऐम्पुला तथा एक अंतस्थ चूषक होता है। पार्श्व वाहिका तथा नाल पाद से संधिस्थल पर एक वाल्व बना होता है। (नालपाद के कार्य करने की विधि समझने के लिए , "संचलन की यांत्रिकी" देखिए)।

परिमुखी वलय नाल (circumoral ring canal) तथा अपमुखतः स्थित मैड्रेपोराइट के बीच उदग्र रूप में फैली एक छोटी थोड़ी वक्र नाल बनी होती है। इस नाल को मैड्रेपोरिक नाल (madreporic canal) कहते हैं इसकी दीवारों में कैल्सियमी जमाव बने होते हैं, जिनके कारण

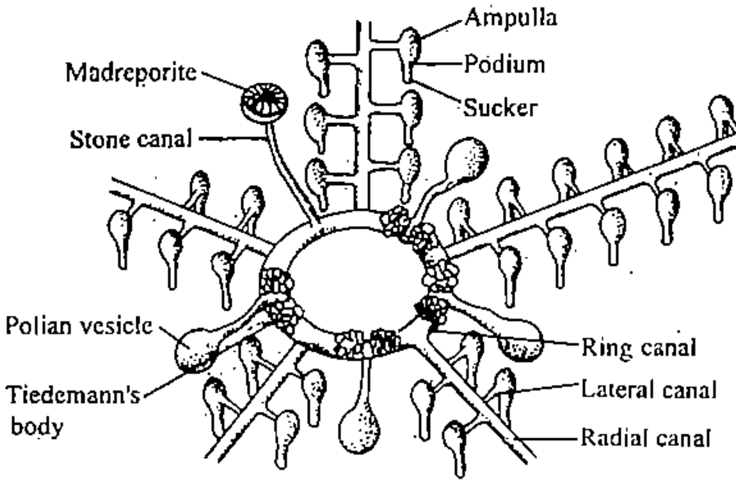

(a)

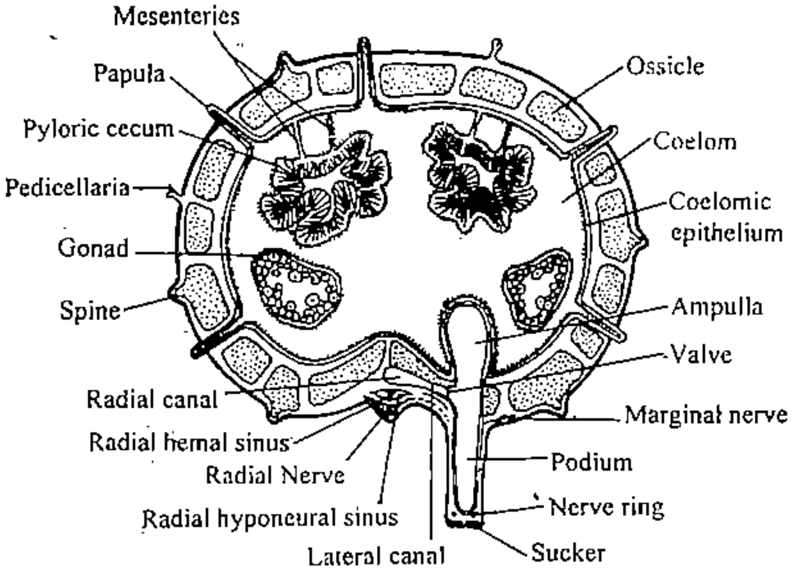

(b)

चित्र 8.33 : A-ऐस्टेरॉइड जल वाहिकीय तंत्र; B-एक सी-स्टार की भुजा का अरेखीय अनुप्रस्थ सेक्शन।

मैड्रेपोरिक नाल काफ़ी कड़ी होती है, और इसी कारण इसे अश्म-नाल (**stone canal**) का नाम भी दिया गया है। मैड्रेपोराइट, प्राणी की केंद्रीय डिस्क की अपमुख दिशा पर अंतरा अरीय स्थिति में स्थित होता है और इसमें सूक्ष्म छिद्र बने होते हैं जिन्हें मैड्रेपोरिक छिद्र कहते हैं।

जल वाहिकीय तंत्र के साथ-साथ कुछ सहायक संरचनाएं भी बनी होती हैं (चित्र 8.33)। वलय नाल के साथ अंतराऊरीय स्थितियों में नाशपाती के आकार के उपांगों की एक श्रृंखला होती है, इन्हें पोलियन आशय (**polian vesicles**) कहते हैं। इन पोलियन आशयों की लम्बी गर्दनें होती हैं तथा दीवारें पतली होती हैं, और माना जाता है कि ये एक तो इस तंत्र में द्रव-दाब को कम-ज़्यादा कर सकते हैं और दूसरे इनके भीतर अमीबा कोशिकाएं बनती हैं। पोलियन आशयों की गर्दन-क्षेत्रों के साथ टीडेमान-पिंड (**Tiedemann's bodies**) नामक एक-एक जोड़ी छोटे ग्रंथीय पिंड बने होते हैं। प्रत्येक अंतरा-अर (inter-radius) में दो-दो टीडेमान पिंड होते हैं, मगर मैड्रेपोराइट वाले अंतरा-अर में केवल एक ही टीडेमान पिंड होता है। इन पिंडों को भी किसी प्रकार की लसीका ग्रंथि ही माना जाता है।

विलुप्त इकाइनोडर्मों के अलग-अलग समूहों में इस प्ररूपी जल वाहिकीय तंत्र से कुछ विभिन्नताएं पायी जाती हैं। नालपाद कई कार्य करते हैं। इनका प्रयोग संचलन, अशन, श्वसन एवं संवेदन में किया जा सकता है। यूँ तो सामान्यत: नालपादों में एक अंतस्थ चूषक होता है और ये बहुत

पेशीय होते हैं, मगर कुछ-एक स्पाशीज़ में ये खूंटी-जैसी आकृति के हो जाते हैं। ऐस्टेरॉइड प्राणियों में जैसे कि ऐस्टीरियास, ऐस्टेराइना, सौलैस्टर में चूषणी नालपाद होते हैं, जिन्हें ये कड़ी सतहों के ऊपर-चढ़ते या नीचे उतरने में और आहार पकड़ने में भी इस्तेमाल करते हैं। नुकीले सिरे वाले खूंटी-जैसे नालपाद प्रायः उन उदाहरणों में पाए जाते हैं जो नरम कीचड़ वाली सतहों पर रहते हैं, जैसे ऐस्ट्रोपेक्टेन **(Atropecten)**, लुइडिया **(Luidia)** में, जिनमें इन्हें खोदने तथा चलने आदि के कामों में पतवार की तरह इस्तेमाल किया जाता है।

ओफ़ियुरॉयडीया **(Ophiuroidea)** जिनमें ब्रिटिल-स्टार आते हैं, में नालपाद ह्रासित होते हैं तथा वे मुख्यतः अचूषकी संवेदी स्पर्शकों की तरह कार्य करते हैं। इन इकाइनोडर्मों में संचलन की क्रिया लचीली लम्बी भुजाओं की तीव्र कोड़े-जैसी गतियों से सम्पन्न होती है (चित्र 8.34)। भुजाओं की सामान्य संख्या पांच होती है, मगर कुछ स्पीशीज़ में 6-7 भुजाएं भी हो सकती हैं। ऐस्ट्रोफ़ाइटॉन *(Astrophyton)* (जिसे "बास्केट-फ़िश, basket fish" भी कहते हैं) में भुजाएं बारंबार विशाखित होती जाती हैं।

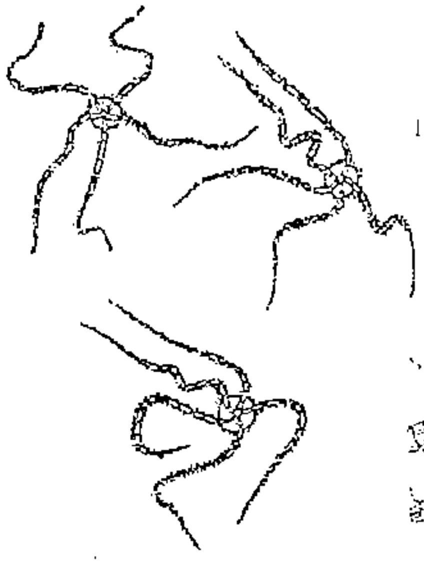

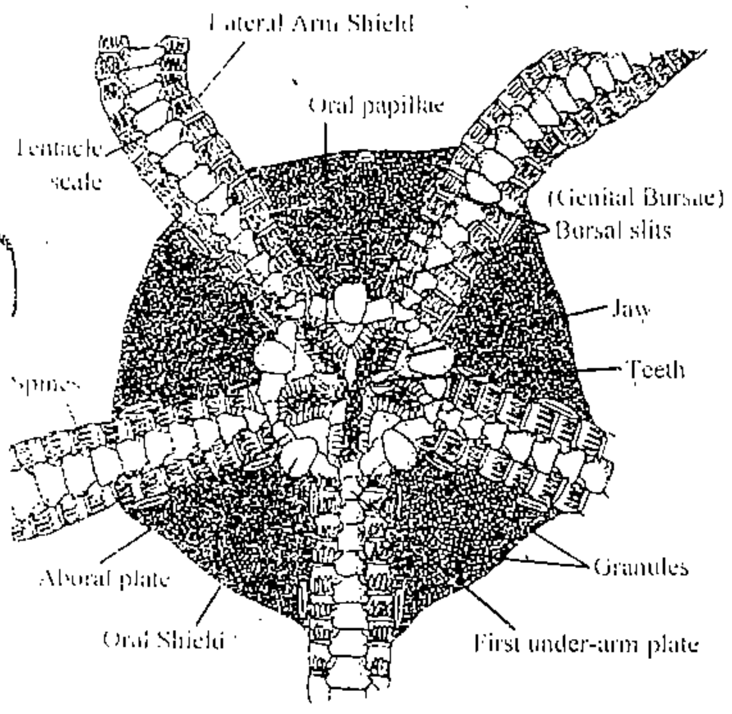

चित्र 8.34 : A-केरिबियाई "सी-स्टार", B-एक ओफ़ियुरॉइड का बाह्य शरीर।

इकाइनॉयडीया (समुद्री-अर्चिनों) में जल वाहिकीय तंत्र की व्यवस्था अनिवार्यतः ऐस्टेरॉइडों की ही जैसी होती है। (चित्र 8.35)। मगर, अरीय नालें तथा अन्य अरीय संरचनाएं कंकाल के आंतरिक होती हैं। अश्म नाल की दीवारों में कैल्सियमी जमाव नहीं होते। पोलियन आशय प्रत्येक अंतरा-अर में छोटी-छोटी बहिर्वृद्धियों के रूप में होते हैं तथा टीडेमान पिंड पांच होते हैं। परिमुखीय नालपादों को स्पर्श-अंगों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। गोलाकार अर्चिनें अपने नालपादों को लंगर की तरह एवं खड़ी सतहों पर गति करने के लिए इस्तेमाल करती हैं; संचलन के दौरान ये अपने कांटों को भी टेकनों के रूप में उपयोग में लाती हैं।

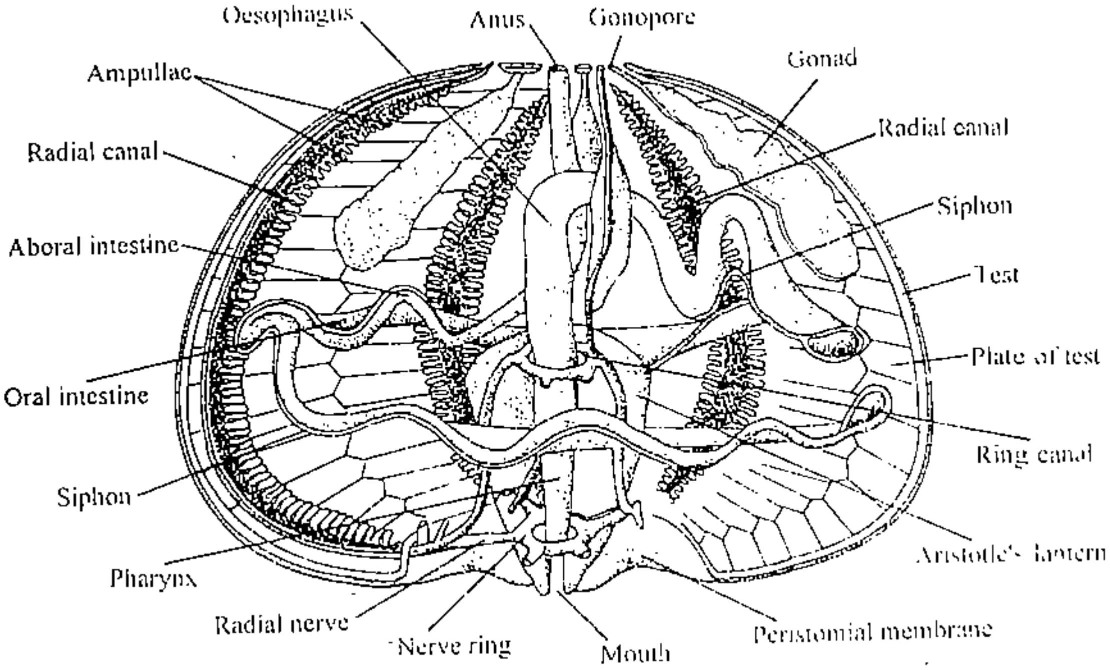

चित्र 8.35 : समुद्री-अर्चिन *अर्बेसिया (Arbacia)* भीतरी संरचना (पार्श्व दृश्य)

होलोथ्यूरॉइडीया (Holothuroidea) ("समुद्री खीरों, sea-cucumbers") में इकाइनॉइडीयो की ही तरह बंद जल वाहिकीय तंत्र पाया जाता है जिसमें अरीय नालें तथा अन्य संरचनाएं आंतरिक होती हैं। मैड्रेपोराइट भी आंतरिक होता है जो अश्म नाल के सिरे पर होता है और यह अश्मनाल देह-गुहा के भीतर युक्त रूप में अथवा देह-भित्ति के साथ संलग्न पड़ी पायी जाती है (चित्र 8.36)। वलय नाल कुछ में नहीं होती (जैसे *लेप्टोसाइनैप्टा, Leptosynapta*)। अधिकतर होलोथ्यूरियनों में केवल रेंगने वाले अधर तलवे पर चूषकों से युक्त नालपाद सुविकसित होते हैं (जैसे *कुकुमेरिया*)। अन्य नालपाद ह्रासित अथवा अनुपस्थित होते हैं (उदा० *सोलस, Psolus*)। *लेप्टोसाइनैप्टा* में नालपाद कतई नहीं होते।

क्रिनॉयडीया (जिसके प्रतिरूपी उदाहरण फ़ेदर-स्टार *ऐंटीडॉन*, समुद्री-लिलि हैं) में वलय नाल से प्रत्येक भुजा में अरीय नाल निकलती है; यह नाल भुजा की प्रत्येक शाखा तथा पिच्छिका (pinnule) में द्विशाखित होती है। अनेक सिलियायित नलिकीय संरचनाएं जो वलयनाल से संयोजित रहती हैं, सीलोम में निलम्बित रहती हैं। ये संरचनाएं जल नलिकाएं कहलाती हैं, और इनके अंतिम सिरे सीलोम में खुले होते हैं। इनके अलावा बहुसंख्यक सिलियायित नालें (सिलियायित कीपें) जिनमें सूक्ष्म छिद्र जिन्हें जलछिद्र कहते हैं, डिस्क की अधर दीवार में से गुजरती और नीचे बनी सीलोमी गुहाओं में खुलती हैं। ये नालें इकाइनॉयडों तथा ऐस्टेरॉइडों के मैड्रेपोराइट के तुल्य होती हैं। सिलियायित नलिकाएं तथा वाहिकाएं अश्म नाल के अनुरूप होती हैं जो अपने प्ररूपी स्वरूप में क्रिनॉइडों में नहीं होती हैं। इन इकाइनोडर्मों में पोलियन आशय तथा टीडेमान पिंड भी नही होते। नालपादों में ऐम्पुले नहीं होते, और उनमें अंतस्थ चूषक भी नहीं होता, मगर उन पर बहुसंख्यक संवेदी पैपिले होते हैं तथा इन्हें स्पर्शक कहा जाता है। कार्य की दृष्टि से ये स्पर्शसंवेदी अथवा श्वसनी हो सकते हैं। अपनी कशाघाती गतियों से ये स्पर्शक मुख में जलधाराएं पैदा करते हैं और इस प्रकार प्लवक आहार को पकड़ लेने में सहायता करते हैं मगर संचलन में ये किसी काम के नहीं हैं। अधिकतर क्रिनॉइड प्राणी स्थानबद्ध होते तली में संलग्न रहते हैं। मगर वृंतहीन कोमैटुलिड-प्राणी अपनी भुजाओं का परिचालन करके तैर सकते एवं रेंग सकते हैं।

संचलन की यांत्रिकी

जैसा कि आप ऊपर देख चुके हैं इकाइनोडर्मों के जल वाहिकीय तंत्र तथा सीलोम के अन्य घटकों में एंडोथीलियम का अस्तर बना होता है एवं उनमें सीलोमी तरल भरा रहता है। इकाइनोडर्मों में संचलन में इसी का सबसे अधिक महत्व होता है। तरल से भरा नालपाद और साथ में उसका

पेशीय भित्ति वाला ऐम्पुला द्रवचालित तंत्र का मूलभूत घटक होता है। नालपाद के साथ पार्श्व वाहिकाओं की संधि पर बना हुआ वाल्व कार्य की दृष्टि से नालपाद को शेष जल वाहिकीय तंत्र से पृथक करता है। नालपाद का अंतस्थ चूषक भी पेशी-चालित होता है। नालपाद की दीवारों में अनुदैर्ध्य पेशियां बनी होती हैं जबकि ऐम्पुला में उसकी अपनी ही पेशियां होती हैं। वाल्व के बंद रहने की स्थिति में ऐम्पुला-पेशियों के संकुंचन से द्रवचालित दाब कायम रहता और उससे वांछित दिशा में नालपादों को फैलाया और लंबा किया जा सकता है, तथा जब नालपाद अधःस्तर को छूता है तब चूषक निर्वात पैदा करता है जिससे आसंजन पैदा होता है। एक बार ऐसा हो जाने के बाद नालपाद की अनुदैर्ध्य पेशियां संकुंचन करती हैं। इससे नालपाद छोटा होता है जिससे तरल वापिस ऐम्पुला में पहुंच जाता है। इस क्रियाविधि का उपयोग करके इकाइनोडर्म जैसे, कि अनेक ऐस्टेरॉइड, इकाइनॉइड तथा होलोथ्यूरॉइड रेंग सकते हैं, और यहां तक कि कुछ तो

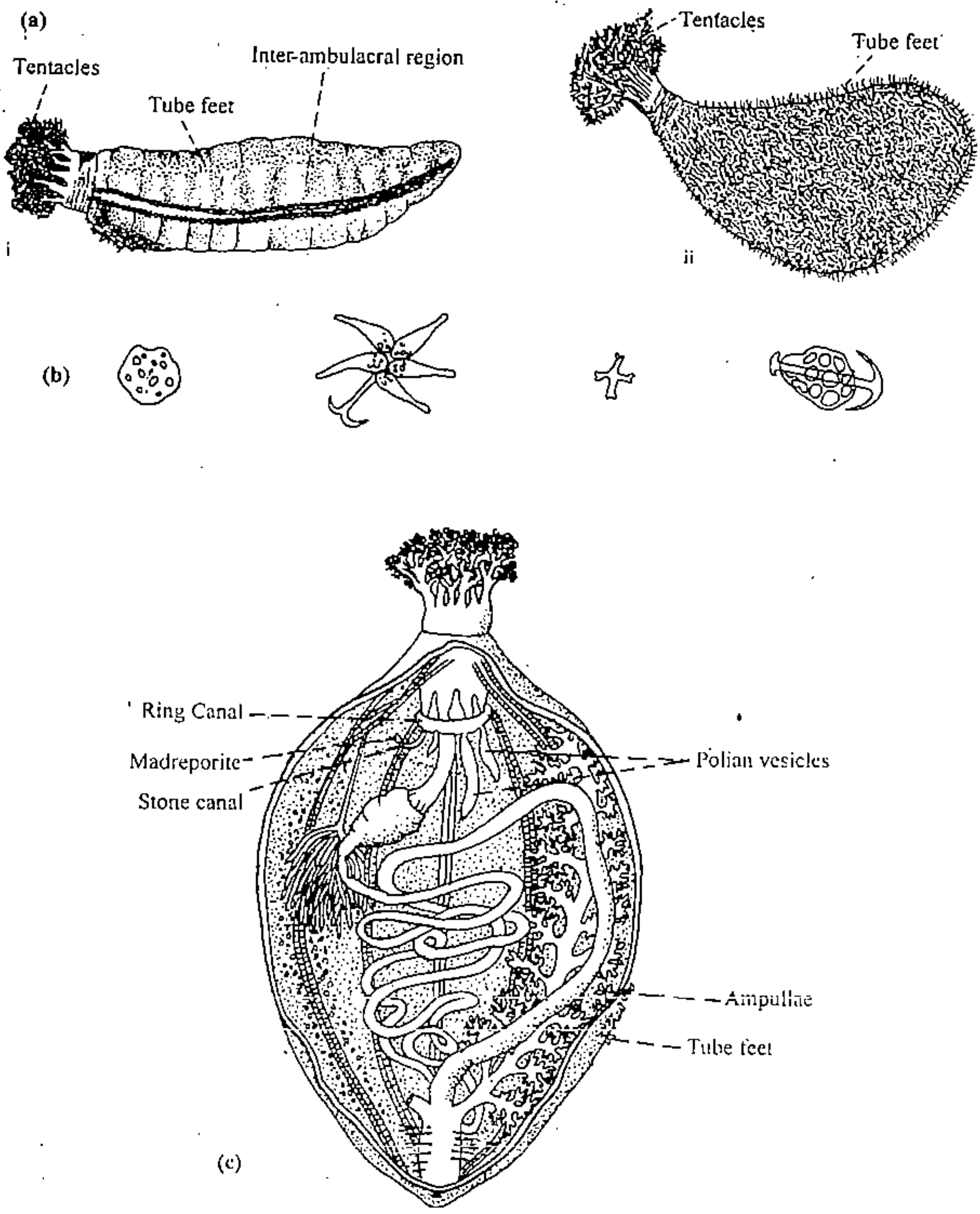

चित्र 8.36 : A-होलोथ्यूरियन प्राणी: (i) कुकुमैरिया *(cucumaria)*; (ii) थायोन *(Thyone)*। B-होलोथ्यूरियन कंटिकाएं। C-एक होलोथ्यूरियन (थायोन) का आंतरिक शरीर।

खड़ी चट्टानों पर चढ़ भी सकते हैं। इसके अलावा जलस्थैतिक यांत्रिकी का और साथ में देह पेशियों की क्रिया का इस्तेमाल करते हुए होलोथ्यूरियन प्राणी रेत अथवा कीचड़ के भीतर को धंसते जा सकते हैं। ऐस्टेरॉइड *ऐस्ट्रोपेक्टेन* जिसमें नालपादों में चूषक नहीं होते, अपने नालपादों का इस्तेमाल करके रेत अथवा कीचड़ में घुसता जा सकता है। कुछ कंकालीय तत्वों को नालपादों के परिचालन में उपयोग किया जाता है। कुछ समुद्री अर्चिन (उदा० *इकाइनोकार्डियम Echinocardium*) भी रेत में घुसते जा सकते हैं "ब्रिटल-स्टार'' (ओफ़ियूरॉइड प्राणी) नियमतः तेज़ चलने वाले होते हैं, ये अपनी कुछ भुजाओं को अधःस्तर के प्रति पतवार जैसी गतियां करते हुए तेज़ी से कूदती-फांदती चलती हैं। इकाइनॉइडों तथा ओफ़ियूरॉइडों में शरीर को आगे को धक्का देने में कंटक भी सहायक होते हैं जो संचलन में पूरक बल प्रदान करते हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि इकाइनोडर्मों में नानाविध क्रियाविधियां अपना ली गयी हैं, हालांकि अन्य प्राणियों की तुलना में ये बहुत धीमे होते हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्न वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

a) .... का पाया जाना इकाइनोडर्मों का एक पहचानकारी लक्षण है जिसका संबंध संचलन से है।

b) .... नामक संरचनाएं जल वाहिकीय तरल को नालपाद से अरीय नालों में जाने से रोकती है।

c) संचलन में उपयोग में आने वाले नालपाद प्रायः .... प्रकृति के होते हैं जबकि स्पर्शक नालपाद .... अथवा .... में उपयोग में आते हैं।

d) समुद्री अर्चिनों तथा समुद्री खीरों में एक .... जल वाहिकीय तंत्र होता है जबकि स्टारफ़िशों में यह तंत्र बाहरी होता है।

8.7 सारांश

इस इकाई में हमने जीवधारियों के एक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप संचलन के विषय में पढ़ा। "संचलन'' शब्द का अर्थ जीव के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा सकना है। हमने देखा कि अलग-अलग प्राणियों में संचलन के लिए अलग-अलग युक्तियां तथा विधियां अपनायी जाती हैं। यहां हम संचलन की उन सभी विधियों एवं उसके विभिन्न घटकों के विषय में संक्षेप में कहेंगे जो मेटाज़ोअनों के मुख्य अकशेरुकी समूहों में पाए जाते हैं

- किसी स्थान से चिपके-जुड़े रहने वाले प्राणी स्थानबद्ध (sedentary) कहलाते हैं, कभी-कभार इनके लिए अंग्रेज़ी में दूसरा शब्द "sessile" भी इस्तेमाल किया जाता है। इसके विपरीत जो प्राणी एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते-जाते हैं उन्हें गतिमान अथवा चर प्राणी कहा जाता है।

- द्रवकंकाल जिसे द्रवस्थैतिक कंकाल भी कहते हैं कुछ प्राणियों में प्राथमिक कंकाल आलम्ब प्रदान करता है। केंचुए का सीलोमी तरल एक प्राथमिक द्रवकंकाल का उदाहरण है और यही मामला क्लैम (सीपी) के पद में रक्त के प्रवाह का है जो पद को रेत अथवा कीचड़ में धंसाता जाता है। वल्गी यानी कूदने वाली मकड़ियों में केवल आकोचनी पेशियां होती हैं जो उनकी टांगों को मोड सकती हैं। टांगों का बलपूर्वक प्रसार किया जाना टांगों में देह-तरलों के तेज़ी से प्रवाह होने से होता है।

- बहुत छोटे आकार के चपटे कृमि तली के कचरे में सिलियरी नोदन द्वारा तैरते अथवा रेंगते हैं । पेशी परत के संकुंचन से शरीर का दिशा परिवर्तन, ऐंठना तथा वलनित होना संभव

होता है। बड़े आकार के टर्बेलेरियनों की गति में पेशी संकुंचन की सूक्ष्म ऊर्मिलन तरंगों का बनना शामिल होता है। शरीर का पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा होना कदाचित संचलन के लिए ही एक अनुकूलन है। नीमैटोडों में कूटसीलोम सुविकसित होती है तथा इसका तरल एक द्रवस्थैतिक कंकाल की तरह कार्य करता है। नीमैटोडों में अनुदैर्ध्य पेशी परतों में एक छोर से दूसरे छोर की ओर जाती हुई संकुंचन तरंगे ऊर्मिलन अथवा पीछे को वार करती संचलन गतियां पैदा होती हैं जो इन प्राणियों को शैवालों, रेत अथवा मृदा कणों के बीच की जगहों में से चलाती जाती हैं। पेशी-कोशिकाओं के संकुंचन प्रत्यास्थ क्यूटिकल तथा द्रवस्थैतिक दाब के विपरीत-प्रभावी होते हैं।

- ऐनेलिड प्राणी संचलन करने की क्रिया में अपने देह पेशीन्यास, द्रवस्थैतिक कंकाल तथा कुछ विशिष्ट संरचनाओं जैसे कि परापाद, शूक और चूषकों का इस्तेमाल करते हैं। पौलीकीट तथा ओलाइगोकीट प्राणी अपनी देह-भित्ति के भीतर की अनुदैर्ध्य तथा वृत्ताकार पेशियों की, सीलोमी तरल पर जो कि सम्पीडनशील होता है, परस्पर विरोधी क्रिया के द्वारा संचलन पैदा करते हैं।

- पौलीकीटा में परापाद होते हैं तथा सीलोमी पटों के ह्रास अथवा उनके न होने से कई-कई देह खंड एक साथ इकाई के रूप में कार्य करते हैं। ओलाइगोकीटों में शूक होते हैं और उनके खंडीय सीलोमी पट सीलोमी तरल के प्रवाह को सीमित करते हैं जिससे स्थानिक देह-संकुंचन एवं देह-प्रसार होते हैं। हिरूडिनिया में शूक और परापाद दोनों ही का अभाव होता है लेकिन उनमें शरीर के दोनों सिरों पर एक-एक चूषक होता है, सीलोमी पर नहीं होते तथा सीलोमी तरल के स्थान पर अधिकतर बोट्रॉयडल ऊतक बन गया है। ऐनेलिडों में धीमी रेंगने वाली, तीव्र रेंगने वाली तथा तरंग गतियां पायी जाती हैं।

- आर्थ्रोपोडा में कारगर संचलन पाया जाता है जिसका होना इन कारणों से है: दृढ़ बाह्यकंकाल जिसमें विकृति नहीं हो पाती, विखंडीय व्यवस्था, उपांगों की संधित प्रकृति एवं उनका संबद्ध पेशीन्यास। अलग-अलग वर्गों में कार्यों के अनुरूप विशेषित नानाविध प्रकार के उपांग पाए जाते हैं। क्रस्टेशियनों की विभिन्न स्पीशीज़ संचलन के लिए रूपांतरित शीर्ष उपांग,वक्ष उपांग अथवा उदर-उपांग उपयोग में लाती है। ऐरेक्निडों में चलन उपांग होते हैं जबकि मिरिएपोडों में इसी हेतु अनेक जोड़ी धड़ टांगे पायी जाती हैं। कीटों में संचलन अंग तीन जोड़ी टांगे तथा वक्ष खंडों पर मौजूद दो जोड़ी पंख होते हैं। आर्थ्रोपोडों में नानाविध संचलन क्रियाकलाप पाए जाते हैं जैसे चलना, रेंगना, दौड़ना, खोदना, कूदना, चढ़ना, तैरना और यहां तक कि उड़ना भी।

- मौलस्का में सामान्यत: संचलन अंग एक पेशीय पद होता है जिसमें अलग-अलग समूहों में उनके स्वभाव एवं उनकी जीवन-शैली से संबंधित अपार आकारिकीय विविधता पायी जाती है। तदनुसार, इनका पाद रेंगने, विसर्पण, बिल खोदने, कूदने तथा तैरने के लिए कार्य कर सकने वाला होता है। स्थानबद्ध तथा परजीवी मौलस्कों में पद कम विकसित हुआ हो सकता है अथवा पूर्णत: अविद्यमान हो सकता है।

- इकाइनोडर्मों में एक अपनी ही किस्म का सबसे अलग प्रकार का नालिकीय तंत्र जल वाहिकीय तंत्र होता है जिसकी संचलन की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस तंत्र की बंद सिरों वाली शाखाएं नालपाद होते हैं जो दो तरह से रूपांतरित होकर जैसे कि चूषणीय या स्पर्शकीय होकर संचलन में इस्तेमाल किए जाते हैं। मगर इन्हें अन्य कामों जैसे कि अशन में, श्वसन में तथा संवेदी संरचनाओं की तरह भी इस्तेमाल किया जाता है। तरल-भरे नालपाद और उनका पेशीन्यास संचलन में सहायक, द्रवचालित कंकाल तंत्र के घटकों की तरह काम करते हैं।

8.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) ऐनेलिडा की वे मुख्य संचनात्मक विशिष्टताएं गिनाइए जिनका संबंध कारगर संचलन से है। जोंक में पाया जाने वाला संचलन *नीरीस* तथा केंचुए से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) आर्थ्रोपोडों में चलन गतियों का, पादों की संख्या तथा व्यवस्था से किस प्रकार संबंध है?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) मौलस्कों में विसर्पण तथा तैरने के स्वभावों के लिए पद किस-किस प्रकार रूपांतरित हुआ होता है?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4) इकाइनोडर्मेटा में जल वाहिकीय तंत्र संचलन में किस प्रकार सहायता करता है, वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) a) (i) कंकत, (ii) द्रवस्थैतिक, (iii) परापाद
(iv) तैरने, (v) पौलीकीट, (vi) जोंक, चूषक

b) धीमे रेंगना, तीव्र रेंगना, तैरना

2) a) बाह्यकंकाल दृढ़, काइटिनी क्यूटिकल का बना होता है, संधित उपांग

b) (i) b,d. (ii) a,d,e (iii) d, (iv) c

c) (i) डेंटैलियम (ii) काइटॉन
(iii) लोलाइगों (iv) कार्डियम

3) a) जल वाहिकीय तंत्र

b) वाल्व

c) चूषणी, आहार पकड़ने, संवेदन

d) अंतरिक

अंत में कुछ प्रश्न

1. ऐनेलिडा में कारगर संचलन हेतु मुख्य लक्षण है शरीर का विखंडीय खंडीभवन, सुविकसित देह भित्ति पेशीन्यास तथा तरल से भरी सीलोमी गुहा। जोंक संचलन के लिए अपने अग्र तथा पश्च चूषकों का उपयोग करती है। जोंक की प्ररूपी तेज़ी से भागती गतियों को पैदा

करती हैं देह-भित्ति की समन्वित पेशी क्रिया तथा दो चूषकों का अध:स्तर पर एकांतर क्रम में चिपकाया जाना।

इनके संचलन में द्रवस्थैतिक कंकाल का योगदान ज़्यादा नहीं होता। *नीरीस* में परापाद तथा शूक दोनों होते हैं, केंचुए में केवल शूक होते हैं जो संचलन के लिए विशेष संरचनाएं हैं। शरीर की पेशियों की परस्पर विरोधी क्रिया जिसके साथ-साथ द्रवस्थैतिक दाब भी कार्य करता है, पौलीकीटों तथा ओलाइगोकीटों के संचलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शूकों का अपाकुंचन एवं उनका भीतर को सिकोड़ना भी संचलन में महत्वपूर्ण है।

2. जब पादों की संख्या अधिक होती है, तब वे शरीर की अधिक लम्बाई में संलग्न होते हैं, जिसके फलस्वरूप नोदन बल शरीर के अनेक संधि केंद्रों के प्रति फैल जाता है और उससे शरीर में पार्श्वगत ऊर्मिलन पैदा होते हैं। जब पादों की संख्या घटकर 3-4 जोड़ी रह जाती है। शरीर के साथ उनके संधि बिंदु एक दूसरे के निकट तथा शरीर के गुरुत्व केंद्र के समीप भी होते हैं। यह दशा कीटों तथा ऐरेक्निडों में पायी जाती हैं। चूंकि नोदन बल अब केवल एक ही केंद्र (यानी वक्ष) तक सीमित होता है इसलिए वह अधिक कारगर होता है एवं शरीर के पार्श्वगत ऊर्मिलनों को भी नहीं होने देता।

3. विसर्पण के लिए पद एक चपटे चौड़े अथवा शंक्वाकार पेशीय अंग के रूप में होता है तथा उसमें संबंधित ग्रंथियों से निकले श्लेष्म-स्राव भी सहायक होते हैं। यह तैरने वाले उदाहरणों के फ़िनों अथवा पंखों जैसा हो सकता है। सैफ़ैलोपॉडों में यह रूपांतरित होकर एक कीप जैसा बन जाता है जिसके द्वारा जेट-नोदन होता है, या फिर अग्र सिरे पर इससे भुजाएं तथा स्पर्शक बन जाते हैं जिनके द्वारा रेंगना अथवा विसर्पण संभव होता है। (मूलपाठ में से उचित उदाहरण देकर आप अपने उत्तर को थोड़ा बढ़ा दीजिएगा)।

4. जल वाहिकीय तंत्र में तरल से भरी श्रृंखलाबद्ध नालें होती हैं जिनके अंतिम सिरों पर नालपाद होते हैं। नालपादों तथा पार्श्वनालों की संधियों पर बने वाल्व नालपादों में तरल के अंदर-बाहर के प्रवाह का नियमन करते हैं। ऐम्पुला-पेशियों के संकुंचन होने पर वाल्व बंद हो जाते हैं तथा द्रवचालित दाब को बनाए रखने के लिए नालपाद लम्बे हो जाते हैं। चूषक एक निर्वात बनाता है जिसके फलस्वरूप चिपकना संभव हो जाता है। उसके बाद नालपाद की अनुदैर्ध्य पेशियों के संकुचन से नालपाद छोटा हो जाता है, जिससे तरल वापिस ऐम्पुला में पहुंचा दिया जाता है।

इकाई 9 पोषण, उत्सर्जन तथा परासरणनियमन

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
9.2 अकॉर्डेटों में पोषण
स्पंजों, सीलेंटेरेटों तथा चपटे कृमियों में अशन और पाचन
ऐनेलिडों में अशन और पाचन
मौलस्का में अशन और पाचन
इकाइनोडर्मों में अशन और पाचन
आर्थ्रोपोडों में अशन और पाचन
9.3 अकॉर्डेटों में उत्सर्जन
आदिनेफ्रीडिया तथा पश्च नेफ्रीडिया
माल्पीझीय नलिकाएं
मौलस्का की सीलोमवाहिनियां
9.4 अकॉर्डेटों में परासरणनियमन
अलवणजलीय अकॉर्डेटों में परासरणनियमन
समुद्री अकॉर्डेटों में परासरणनियमन
थलीय अकॉर्डेटों में जल संरक्षण
9.5 सारांश
9.6 अंत में कुछ प्रश्न
9.7 उत्तर

9.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की इकाई 2 में आपने प्रोटोज़ोअनों में अशन तथा पाचन की क्रियाविधियों के विषय में और साथ ही साथ उनमें उत्सर्जन एवं परासरणनियमन के विषय में भी पढ़ा था। इस इकाई में आप बहुकोशिकीय अकॉर्डेट प्राणियों में पोषण, उत्सर्जन तथा परासरणनियमन के विषय में पढ़ेंगे। इन प्राणियों के अशन स्वभाव में बहुत विविधता पायी जाती है। प्राणी जिस खूबी के साथ आहार स्रोतों का सफलतापूर्वक उपयोग करते हैं उसकी तुलना उस श्रेष्ठता एवं जटिलता से की जा सकती है जो इनकी शरीर-संरचना एवं कार्यात्मक अनुकूलनों में पायी जाती है। इस इकाई में पहले आप पोषण के विषय में पढ़ेंगे अर्थात् बहुकोशिकीय अकॉर्डेटों में अशन स्वभावों और अशन तथा पाचन के लिए विविध अनुकूलनों के विषय में। दूसरा पहलू जो इस इकाई में लिया जाएगा वह है [illegible]न।

उत्सर्जन का संबंध उन उपापचयी अपशिष्टों को शरीर से बाहर निकाल देनें से है जो ऊर्जा-सम्पन्न यौगिकों के ऑक्सीकरण तथा प्रोटीनों एवं न्यूक्लिइक अम्लों के उपापचय से बनते हैं। अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में यह कार्य दो स्पष्ट प्रकार की नलिकीय संरचनाओं द्वारा सम्पन्न होता है, एक तो नेफ्रीडिया (nephridia) तथा दूसरी सीलोमवाहिनियाँ (coelomoducts)। जटिलता तथा उनके पाए जाने के स्थान के आधार पर नेफ्रीडियमों तथा सीलोमवाहिनियों को अलग-अलग प्राणि-समूहों में अलग-अलग नाम दिए गए हैं। थलीय आर्थ्रोपोडों में एक अलग ही प्रकार के उत्सर्गी अंग माल्पीझी नलिकाएं बन गयी हैं जो संरचना की दृष्टि से नेफ्रीडियमों एवं सीलोमवाहिनियों से भिन्न होती हैं। इस इकाई में आप इन्हीं अंगों के विषय में पढ़ेंगे कि ये किस प्रकार उत्सर्जन करते हैं।

एक तीसरा पहलू जो इस इकाई में लिया जाएगा वह है अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों के शरीर में जल एवं आयनों की मात्रा का नियमन। ये प्राणी या तो परासरानुरूपी (osmoconformers) हो सकते हैं या परासरणनियंत्रक (osmoregulators)। परासरानुरूपी प्राणी अपने भीतरी देह तरल को उस जलीय पर्यावरण जिसमें वे रहते हैं, के परासरण संतुलन में बनाए रखते हैं। दूसरे शब्दों में इन

प्राणियों का भीतरी और बाहरी माध्यम का लवण सांद्रण न्यूनाधिक रूप में एक जैसा रहता है। अन्य प्राणी परासरणनियंत्रक होते हैं और वे अपने भीतरी देह-तरलों के सांद्रण को अपेक्षाकृत समान बनाए रखते हैं। जो पर्यावरण के परासारी एवं आयनी स्तर पर से भिन्न हो सकता है। इस इकाई में आप यह भी अध्ययन करेंगे कि इन प्राणियों में देह-तरलों की जल एवं आयनीय मात्रा का नियमन करने वाली क्रियाविधियां कैसे काम करती हैं।

उद्देश्य

यह इकाई पढ़ने के बाद आप :-

- विभिन्न अकॉर्डेट मेटाज़ोअन फ़ाइलमों में अशन से संबंधित सरंचनाओं तथा अशन विधियों का वर्णन कर सकेंगे,
- अकॉर्डेट मेटाज़ोअन अकशेरुकियों के विविध समूहों में उत्सर्गी अंगों की सूची बना सकेंगे एवं उनके कार्य करने का वर्णन कर सकेंगे,
- विभिन्न आवासों में रहने वाले जीवों में जल एवं आयन नियमन की क्रियाविधियों की रूपरेखा दे सकेंगे।

9.2 अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में पोषण

अकशेरूकियों की विशाल बहुलता ऐसे प्राणियों की है जो बहुत छोटे आकार के कणिकीय आहार पदार्थ का भोजन करता है। इन्हें मोटे तौर पर सूक्ष्मभक्षी (microphagous) जीवों में वर्गीकृत किया जाता है। इसके विपरीत बड़ी-बड़ी आहार-संहतियों को खाया जाना बृहतभक्षिता (macrophagy) कहलाता है। आमतौर से बड़े अकशेरूकी बृहतभक्षी होते हैं। बृहतभक्षी आहारकर्ता सक्रिय परभक्षी (predators) हो सकते हैं और जीवित पदार्थ को खा सकते हैं। उदाहरणतः सेफैलोपौड मौलस्क पूर्णतः परभक्षी होते हैं। बड़े क्रस्टेशियन तथा सामान्यतः सभी जीवित आर्थ्रोपोड बृहतभक्षी होते हैं। इस विषय को और आगे पढ़ने से पहले अच्छा होगा कि आप इस पाठ्यक्रम के खण्ड 1 की इकाई 2 "प्रोटोज़ोआ" को एक बार फिर से पढ़ लें और विविध प्रकार के प्राणि-पोषणों जैसे कि स्वपोषिता, विषमपोषिता, प्राणिसम पोषण तथा मृतजीवी पोषण" की संकल्पनाओं को दोहरा लें।

सूक्षमभक्षी प्राणी अशन के वास्ते अपने सिलिया अथवा शूकों का कारगार उपयोग करते हैं। इसलिए इन्हें प्रायः सिलियरी अशनकर्ता (ciliary feeders) कहा जाता है। सिलियरी अशनकर्ता दो श्रेणियों में आते हैं। एक प्रकार के वे होते हैं जो जल में निलम्बित सूक्ष्मजीवों तथा अन्य कणिकीय पदार्थ का आहार करते हैं और इन्हें निलम्बन-आहारक कहा जाता है। इस प्रकार के अशन में पानी को छानकर उसमें से आहार कणों को निकाला जाता है। अतः इस प्रकार के जीवों को निस्यंदी अशनकर्ता (filter feeders) कहते हैं

निस्यंदी अशनकर्ता अपने सिलिया अथवा शूकों के द्वारा परिवेशी जल की एक धारा पैदा करता है। आहार को निस्यंदन द्वारा तथा आहार को श्लेष्म में फंसा कर भी एकत्रित किया जाता है। इस प्रकार छाना हुआ बहुत सा पदार्थ हो सकता है खाने योग्य न हो या वह हानिकारक भी हो सकता है या फिर वे कण खाए जा सकने के आकार से ज़्यादा बड़े हो सकते हैं। इस प्रकार की सामग्री को प्रायः एक सुविकसित छंटनी-बहिष्कार क्रियाविधि बाहर निकाल फेंकती है। छांट लिए गए आहार कणों को तब मुख की ओर चलाया जाता है। स्थानबद्ध और स्वच्छंद तैरने वाले दोनों प्रकार के जीवों में निस्यंदन अशन क्रियाविधियां विकसित हुई हैं। स्वतंत्र तैरने वाले प्राणी उस जल में गति करते जाते हैं जिसमें आहार कण होते हैं। स्थानबद्ध प्राणी जल की प्राकृतिक धाराओं पर निर्भर होते हैं और उन धाराओं पर भी जो सिलिया एवं अन्य उपांगों द्वारा पैदा की

जाती हैं। स्थानबद्ध जीव उस जैविक पदार्थ के जमावों (निक्षेपों) का भी आहार करते हैं जो अधःस्तर पर और रेत अथवा कीचड़ में भी एकत्रित हो जाता है। निलम्बन आहारकर्त्ताओं की ही तरह निक्षेप आहारकर्त्ता भी अशन के लिए सिलिया पर भी निर्भर करते हैं। वास्तव में कुछ जीव निलम्बित तथा निक्षेपित दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थों का अशन करते हो सकते हैं। जब यह पदार्थ रेत अथवा कीचड़ में निक्षेपित हुआ होता है तब स्वयं अधःस्तर ही को निगल लिया जाता है। अन्य आहारकर्त्ता पपड़ी की तरह चिपके हुए जीवों का आहार करते हैं जैसे कि शैवाल, पौलीज़ोअन तथा स्पंज आदि का। इस प्रकार के आहारकर्त्ताओं के मुखांग रेतने और चरने के लिए रूपांतरित होते हैं। स्थानबद्ध पौलीकीट, मौलस्क-उनमें भी ख़ासतौर से लैमेलिब्रैंक, स्पंज, टेरोब्रैंक, छोटे, क्रेस्टेशियन और छोटे आकार के प्राणियों के अनेक समूह, सब के सब सूक्ष्मभक्षी निस्यंदन-अशनी जीव होते हैं। रेतन अशन (rasping feeding) अनेक गैस्ट्रोपौड मौलस्कों की ख़ास विशिष्टता है तथा इस काम के लिए वे अपने रैडुला का इस्तेमाल करते हैं। अब आप कुछ ख़ास चुनिंदा जीव-समूहों में अशन और पाचन के विषय में अध्ययन करेंगे। मगर वह सब करने से पहले आइए नीचे दिए गए प्रश्नों को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए:-

1. आहार की बड़ी-बड़ी संहतियों का आहार करने को .... कहते हैं।
2. सूक्ष्मभक्षी प्राणी कारगर अशन के लिए .... का उपयोग करते हैं।
3. .... के साथ-साथ .... क्रिया विधियां बहुत बड़े या अन्यथा अनुपयुक्त कणों को बाहर ही छोड़ देती हैं।
4. गैस्ट्रोपौड जैसे रेतन आहारकर्त्ता अशन के लिए .... का उपयोग करते हैं।

9.2.1 स्पंजों, सीलेंटेरेटों तथा चपटे कृमियों में अशन तथा पाचन

• स्पंज

स्पंज अशन, श्वसन तथा उत्सर्जन के लिए अपने नाल तंत्र का उपयोग करते हैं। स्पंजों के नाल-तंत्र के विस्तृत वर्णन के लिए इसी पाठ्यक्रम के खण्ड II की इकाई 5 देखिए।

स्पंज उस पोषण जल में से, जो सूक्ष्म छिद्रों से होकर कीपकोशिकाओं (choanocytes) के अस्तर वाली स्पंजोसील में प्रवेश करता है, कणिकीय पदार्थ को छानकर आहार करते हैं। ये छिद्र एक सरल मगर कारगर छंटनी युक्ति का कार्य करते हैं जिनमें से केवल सूक्ष्मतमकण ही भीतर प्रवेश कर पाते हैं। प्रत्येक कीपकोशिका अथवा कॉलर कोशिका (collar cell) में एक अकेला कशाभ (फ़्लैजेलम) होता है जिसे आधार पर घेरता हुआ एक प्रोटोप्लाज़्मी कॉलर होता है। ये कशाभ आधार में बाहर की ओर को आघात करते और जल को आगे को चलाते हैं। जल में से छोटे आकार के आहार-कणों को कीपकोशिकाएं अंतर्ग्रहीत कर लेती हैं, और उनसे थोड़े बड़े कणों को अमीबाणु (amoebocytes) और यहां तक कि डर्मिस कोशिकाएं भी अंतर्ग्रहीत कर लेती हैं। पाचन अंतः कोशिकीय खाद्य धानियों (food vacuoles) के भीतर होता है। (चित्र 9.1)। कीपकोशिकाओं की अंशतः पची हुई खाद्य धानियां भी समीपवर्ती अमीबाणुओं में दे दी जा सकती हैं। अमीबाणु आहार पदार्थों के भण्डारण का भी कार्य करते हैं। जटिल शरीर वाले साइकॉन प्रकार और ल्यूकॉन प्रकार के स्पंजों में कीपकोशिकाएं छोटे-छोटे कशाभित कक्षों का अस्तर बनाती हैं जिसके द्वारा अंतर्ग्रहणी एपिथीलियम का क्षेत्र बढ़ जाता है। स्पंजोसील का जल ऑस्कुलम में से होकर बाहर को पहुंचाया जाता रहता है जिससे लगातार नया पोषण-सम्पन्न जल आसानी से भीतर आता रहता है।

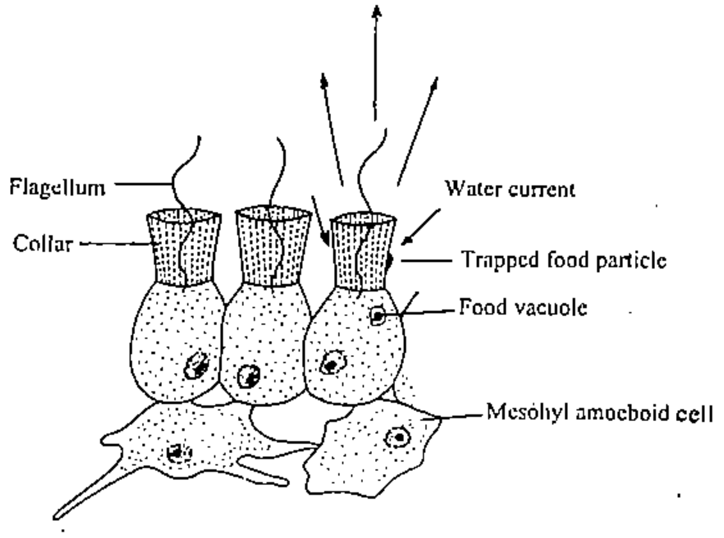

चित्र 9.1 : अलवणजलीय स्पंज में अंतःकोशिकीय पाचन।

• सीलेंटेरेट प्राणी

सीलेंटेरेटों में ऊतक स्तर की संघटना पायी जाती है इसलिए उनके अशन तथा पाचन की क्रियाविधियां भी अधिक जटिल होती हैं। सामान्य रूप में सीलेंटेरेट प्राणी बृहतभक्षी मांसाहारी होते हैं। शिकार पकड़ने के लिए वे अपने स्पर्शकों (tentacles) का इस्तेमाल करते हैं। इनके शिकार में सभी प्रकार के छोटे प्राणी आते हैं विशेषकर क्रस्टेशियन। कुछ साइफ़ोज़ोअन (इसका उच्चारण कुछ लोग स्काइफ़ोज़ोअन भी करते हैं) तथा ऐंथोज़ोअन मछलियों तक का आहार करते हैं (चित्र 9.2)। मगर कुछ ऐंथेज़ोअन तथा साइफ़ोज़ोअन सूक्ष्मभक्षी निलम्बन आहारकर्त्ता होते हैं। वे या तो स्पर्शकों से स्रावित श्लेष्म में अपने शिकार को फंसाते हैं या अपनी स्पर्शक-झालर में से बहते हुए जल में से प्लवक (plankton) को छान लेते हैं। उदाहरणत: ऐनीमोन *मेट्रिडियम (Metridium)* और जेलीफिश *औरीलिया* अपने स्पर्शकों के द्वारा एक श्लेष्म स्राव में छोटे-छोटे जीवों को एकत्रित कर लेते हैं और फिर सिलियरी क्रिया के द्वारा आहार को मुख में ले जाते हैं

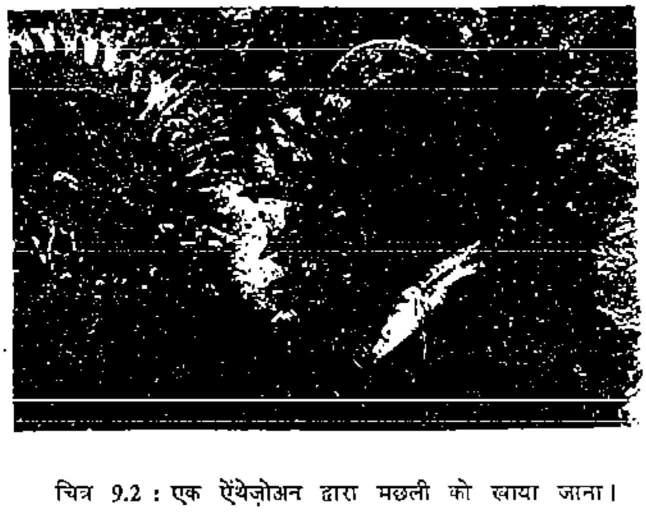

चित्र 9.2 : एक ऐंथेज़ोअन द्वारा मछली को खाया जाना।

बृहतभक्षी मांसाहारी सीलेंटेरेट अपने स्पर्शकों द्वारा आहार को पकड़ने के लिए दंशकोरकों (cnidoblasts) का इस्तेमाल करते हैं (चित्र 9.3)। दंशकोरक से प्रवर्ध के रूप में निकला हुआ दंशप्रवर्ध (cnidocil) एक संवेदी संरचना माना जाता है। प्रत्येक दंशकोरक एक सूत्रपुटी (nematocyst) को विसर्जित करता है। प्रत्येक सूत्रपुटी में एक नाशपाती के आकार का आशय होता है जिसके भीतर एक धागे की आकार की संरचना कुंडलित रूप में पड़ी रहती है। विसर्जित होने पर सूत्रपुटी शिकार के भीतर घुस जाती और उसमें विष छोड़ देती है।

सूत्रपुटी द्वारा पकड़ा और अचेतन कर दिया गया शिकार उसके बाद निगल लिया जाता है। निगलने की क्रिया में मुख को बड़ा कर लिया जाता और. जठरसंवहनी गुहा (gastrovascular cavity) को फैलाया जाता है। इन दो क्रियाओं से आहार आसानी से जठरसंवहनी गुहा के भीतर पहुँच जाता है। (चित्र 9.4) और इसी गुहा में आहार का पाचन भी होता है।

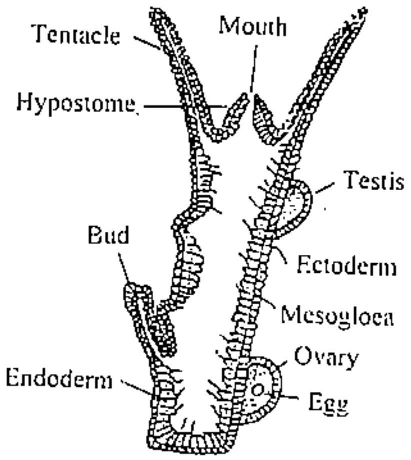

चित्र 9.4 : हाइड्रा का V.S जिसमें जठरसंवहनी गुहा तथा एंडोडर्म दिखाए गए हैं।

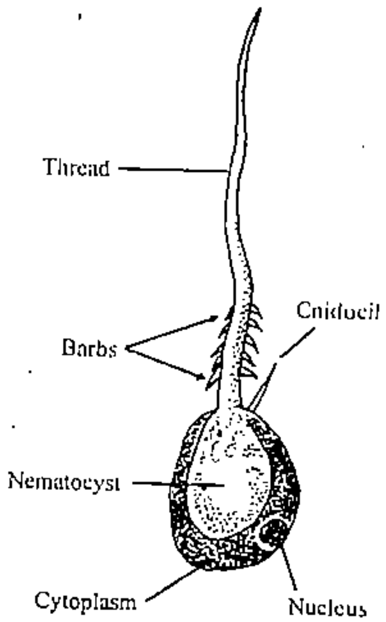

चित्र 9.3 : दंशकोरक की संरचना।

सीलेंटेरेटों में पाचन बाह्यकोशिकीय तथा अंत:कोशिकीय दोनों प्रकार का होता है बाह्यकोशिकीय पाचन के दौरान बड़े आकार का शिकार जठरसंवहनी गुहा में छोटे-छोटे कणों में तोड़ दिया जाता है। कुछ एंडोडर्म कोशिकाएं स्रावी प्रकृति की होती हैं और वे इस गुहा में एंज़ाइम छोड़ती हैं। *हाइड्रा* में *डैफ़्निया (Daphnia)* जैसा शिकार जठसंवहनी गुहा में छोड़े गए एंज़ाइमों के द्वारा अंतर्ग्रहीत होने के चार घंटे के भीतर-भीतर छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाता है। स्रावी कोशिकाओं के अतिरिक्त अवशेषी कोशिकाएं भी होती हैं जिनका काम अंत:कोशिकीय पाचन करना होता है। अंतर्ग्रहण के एक घंटे के बाद, जिस दौरान शिकार के सक्रिय रूप में तोड़ा जा रहा होता है, अवशोषी कोशिकाएं आहार कणों को अपनी छोटी धानियों में अंतर्ग्रहीत कर लेती हैं और इन्हीं कोशिकाओं के भीतर पाचन सम्पूर्ण होता है। अवशोषी कोशिकाएं आरक्षित आहार पदार्थ का भंडारण भी करती हैं और यहां तक कि अनपचे अवशेषों को भी अपने भीतर एकत्रित किए रखती हैं। यह संचित अंत:कोशिकीय अपशिष्ट अंतत: अवशोषी कोशिकाओं के खंडन द्वारा जठरसंवहनी गुहा में छोड़ दिए जाते हैं। उसके बाद जठरसंवहनी गुहा में से ये मुख के द्वारा बाहर को निकाल कर फेंक दिए जाते हैं। इस प्रकार अंत:कोशिकीय तथा बाह्यकोशिकीय पाचन द्वारा इन प्राणियों की पोषण आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं।

ऐंथोज़ोअन सीलेंटेरेटों में भी इसी प्रकार की संयोजित विधि पायी जाती है। ऐंथोज़ोअनों की संघटना के विस्तृत विवरण के लिए इसी पाठ्यक्रम की इकाई 5 देखिए। आपको याद आ जाएगा कि ऐंथोज़ोअनों की जठरसंवहनी गुहा आंत्रयोजनियों द्वारा उपविभाजित रहती है। इन आंत्रयोजनियों के मोटे हो गए सिरों में, जिन्हें आंत्रयोजनी तंतु (mesenteric filaments) कहते हैं, स्रावी एवं अवशोषी कोशिकाएं बनी होती हैं (चित्र 9.5)। बृहतभक्षी ऐंथोज़ोअनों में तंतुओं पर स्थित सूत्रपुटियों की सहायता से शिकार को कस कर पकड़ लिया जाता है और फिर इस आहार पर पाचन एंज़ाइम सीधे ही छोड़ दिए जाते हैं। इस प्रक्रिया से पाचन एंज़ाइमों की क्रिया अधिक प्रभावशाली हो जाती है। चूंकि सीलेंटेरेट मांसभक्षी होते हैं इसलिए ये अधिकतर वसालयी (lipolytic) एवं प्रोटीनलयी (proteolytic) एंज़ाइमों का ही स्रवण करते हैं। एक बहुत ही धीमी ऐमाइलेज क्रिया भी रिकार्ड की गयी है। अन्य कार्बोहाइड्रेज़ अभी तक नहीं पाए गए हैं।

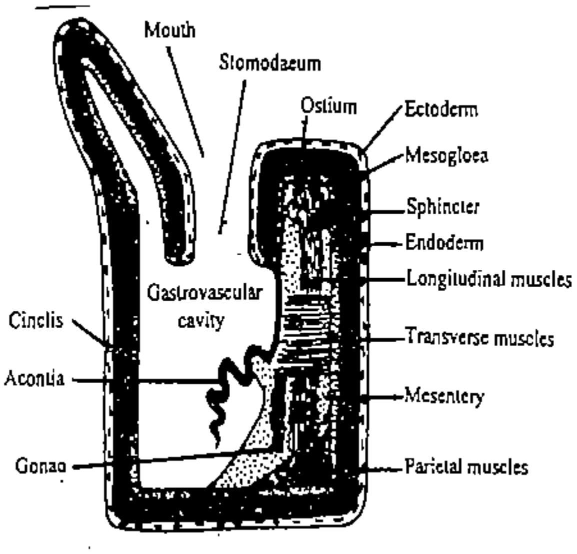

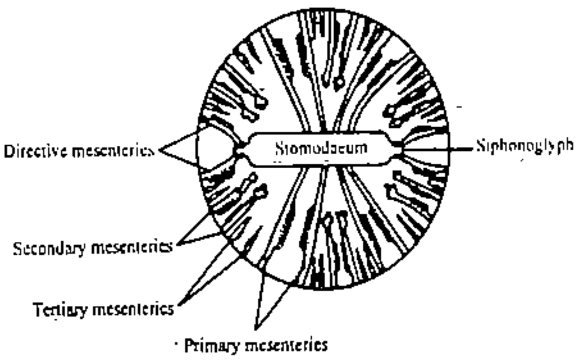

चित्र 9.5 : (a) समुद्री ऐनीमोन का L.S., (b) ग्रसनी के स्तर पर अनुप्रस्थ सेक्शन, (c) आंत्रयोजनीय तंतु का अनुप्रस्थ सेक्शन।

- चपटे कृमि

स्वच्छंद जीवी चपटे कृमियों को/तीन प्रकार से आहार पचाते पाया गया है- (1) अंत:कोशिकीय रूप में, (2) अंत:कोशिकीय तथा बाह्यकोशिकीय दोनों प्रकार से तथा (3) केवल बाह्यकोशिकीय रूप में।

i) केवल अंत:कोशिकीय पाचन एसीलन प्राणी *कॉन्वॉल्यूटा (Convolute)* में पाया जाता है। इसमें एंडोडर्म एक ठोस सिनसीशियम के रूप में होता है जो अधर मुख में से बाहर को निकाला जा सकता है। यह सिनसीशियम इस प्रकार कार्य करता है मानों एक पादाभ (pseudopodium) हो और आहार का परिग्रहण करके आहार धानियां बना लेता है। पाचन अंत:कोशिकीय विधि से होता है।

ii) ट्राइक्लैड कृमि *पौलीसेलिस (Polycelis)* में आहार, जैसे कि कोई क्रस्टेशियन, श्लेष्म स्राव में फंसा लिया जाता है। लम्बी बहि:सारी (protrusible) ग्रसनी शिकार में घुसा दी जाती है और उसके कोमल अंत: पदार्थ को खींच लाया जाता है। (चित्र 9.6)। आहार नाल में पहुंचाए जाते समय आहार को बाह्यकोशिकीय रूप में छोटे-छोटे कणों में तोड़ डाला जाता है। आहार नाल के भीतर पहुंचने पर कणिकीय आहार को पाचन कोशिकाएं परिग्रहीत कर लेती हैं और अंत:कोशिक पाचन आरम्भ हो जाता है। हालांकि पौलीसेलिस बड़े जीवों का आहार करता है मगर चूंकि अंतर्ग्रहीत आहार वास्तव में बहुत छोटे-छोटे कणों के रूप में होता है इसलिए इस प्राणी को सूक्ष्मभक्षी ही माना जाता है।

iii) पौलीक्लैड कृमि *साइक्लोपोरस (Cycloporus)* केवल ऐसीडियन कॉलोनी *बोट्राइलस (Botryllus)* तथा *बोट्रिलॉयडीस (Botrylloides)* को ही खाता है, और ऐसा करने में वह अपनी बहि:सारी ग्रसनी की सहायता से एक-एक करके जूऑइडों को खाता जाता है। ग्रसनी की दीवार झुर्रीदार और वलनित होती है। आहार लगभग समूचा ही आहारनाल के भीतर पहुंचता है। उसके विपरीत जैसाकि *पौलीसेलिस* में होता है, पाचन केवल अंत:कोशिकीय ही था, *साइक्लोपोरस* में यह केवल बाह्यकोशिकीय होता है। आहार को आहार नाल में समांगीकृत किया जाता और पचा लिया जाता है, तथा अंत:कोशिकीय पाचन बिल्कुल नहीं होता।

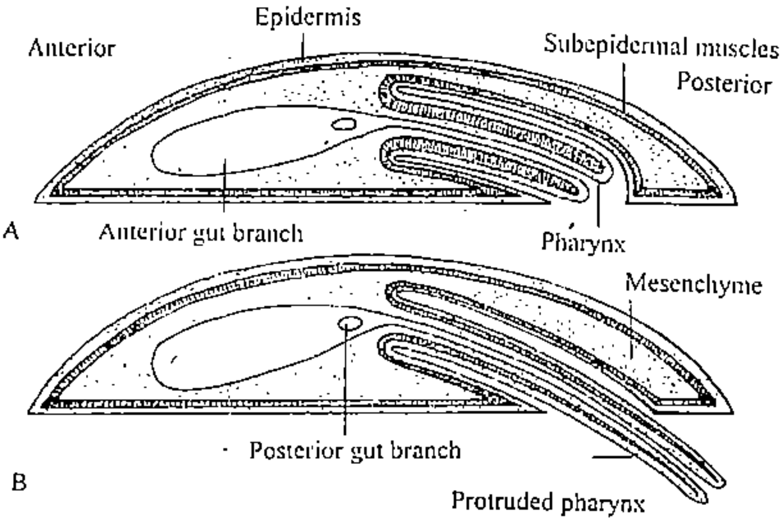

चित्र 9.6 : *पौलीसेलिस* का अरेखीय L.S. जिसमें ग्रसनी का बहि:सरण दिखाया गया है।

ट्रीमैटोडों में, जोकि परजीवी होते हैं, पाचन-तंत्र अति विशाखित होता है। मुख भीतर को एक ग्रसनी में को खुलता है, और उसके पीछे आती है एक छोटी ग्रसिका और एक विशाखित आंत्र जिसमें से बहुत से अंधवर्ध निकले होते हैं (चित्र 9.7)। अतिविशाखित अंधवर्ध शरीर के अधिकतर भाग को भरे रहते हैं। ट्रीमैटोड प्राणी जैसे कि यकृत पर्णाभ (liver fluke) परपोषी के पित्त पदार्थ का और रक्त का भी आहार करता है। पेशीय ग्रसनी आहार के चूषण में सहायता करती है। इन प्राणियों में पाचन ग्रंथियों की उपयोगिता समाप्त हो गयी है और इसलिए वे अनुपस्थित हैं। आहा ले से ही अवशोषित हो सकने की दशा में होता है। विशाखित आहार-नाल आहार को शरीर के सब भागों में पहुंचाने में सहायता करती है।

बोध प्रश्न 2

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं (T) या गलत (F):-

1) स्पंजों में आहार कणों का अंतर्ग्रहीत किया जाना कीपकोशिकाओं तथा घूमते-फिरते अमीबाणुओं द्वारा होता है। (T/F)

2) सीलेंटेरेट प्राणी सामान्यत: सूक्ष्मभक्षी एवं शाकाहारी होते हैं। (T/F)

3) दंशकोरक सीलेंटेरेटों में आहार-ग्राही कोशिकाएं होती हैं। (T/F)

4) सीलेंटेरेटों में आहार का पाचन बाह्यकोशिकीय होता है। (T/F)

5) सभी चपटे कृमि अपने आहार को अंत:कोशिकीय विधि से पचाते हैं। (T/F)

9.2.2 ऐनेलिडों में अशन तथा पाचन

- ओलाइगोकीट

ऐनेलिडों में ओलाइगोकीट, जिनमें अधिकतर केंचुए आते हैं, मृत और अपघटनशील जैव वनस्पति का आहार करते हैं। ये उस मिट्टी में मौजूद जैव पदार्थ को भी पचा लेते हैं जिसे वे बिल बनाते हुए निगलते जाते हैं। जलीय उदाहरण अपरद (detritus), शैवालों तथा सूक्ष्मजीवों को खाते हैं। अलवणजलीय उदाहरण जैसे कि ईओलोसोमा *(Aeolosoma)* अपरद को अपने प्रोस्टोमियम से एकत्रित करते हैं। आहार को आंशिक निर्वात द्वारा एकत्रित किया जाता है, इस क्रिया में प्रोस्टोमियम की सिलियायित अधर सतह अधःस्तर से लगा दी जाती है और फिर पेशीय संकुंचन के द्वारा उसके केंद्र को ऊपर को उठा लिया जाता है। बाद में इस प्रकार बना आंशिक निर्वात कणों को छोड़ता है जो सिलिया के द्वारा मुख में बहा दिए जाते हैं। कुछ ओलाइगोकीट जैसे कि *कीटोगैस्टर (Chaetogaster)*, अमीबों, सिलिएटों, रोटीफ़रों तथा ट्रीमैटोड लार्वों के ग्रसनी की चूषण क्रिया से ही पकड़ते हैं।

ओलाइगोकीटों में एक सरल और सीधी आहार-नाल होती है। (चित्र 9.7)। प्रोस्टोमियम के आधार पर स्थित मुख एक मुख-गुहा में खुलता है जो पीछे को एक बड़ी पेशीय ग्रसनी में खुलती है। जलीय उदाहरणों में ग्रसनी एक बहिर्वर्तनी अंग होती है और इस पर श्लेष्म का आवरण होता है जिसमें आहार-कण चिपक जाते हैं। केंचुओं में यह एक पम्प का कार्य करती है। ग्रसनी ग्रंथियों से श्लेष्म तथा पाचन एंज़ाइमों का भी स्रवण होता है। ग्रसनी के पीछे एक संकरी नलिकाकार ग्रसिका होती है। ग्रसिका में अलग-अलग स्तरों पर रूपांतरित होकर उससे एक गिज़र्ड (gizzard) तथा एक क्रॉप (crop) बन जाते हैं। पेशीय तथा क्यूटिकल के अस्तर वाला गिज़र्ड एक चक्की-जैसा कार्य करता है तथा आहार कणों को पीसता है। यदि क्रॉप मौजूद हुआ तो वह एक भंडारण अंग की तरह काम करता है। शेष पाचन-तंत्र जो 18वें तथा 22वें खण्ड में से कहीं से भी शुरू हो जाता है आंत्र होती है। आंत्र का आगे का आधा भाग स्रवण का कार्य करता है तथा पिछला आधा भाग अवशोषी होता है। कार्बोहाइड्रेज़ों, प्रोटीएज़ों तथा लाइपेज़ों के

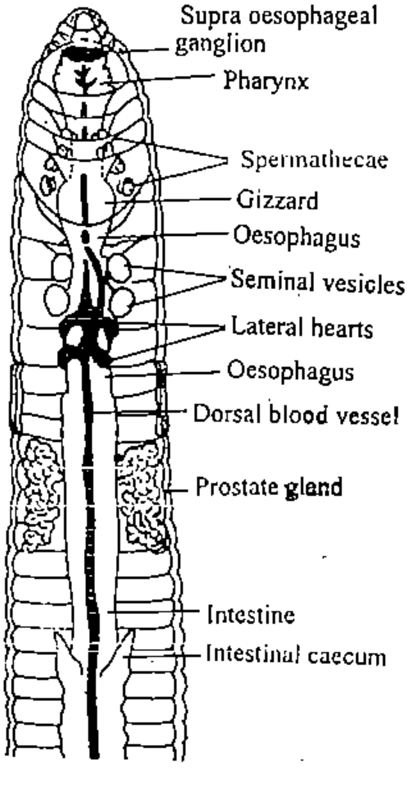

चित्र 9.7 : एक ओलाइगोकीट का पाचन-तंत्र।

अलावा केंचुए सेलुलेज़ तथा काइटिनेज़ का भी स्रवण करते हैं। आंत्र का अवशोषी क्षेत्र बढ़ाने के लिए उसकी मध्य-पृष्ठ दीवार में से ऊतकों का एक वलन टिफ़्लोसोल (typhlosole) बना होता है। ओलाइगोकीटों में क्लोरैगोजेन कोशिकाएं **(chloragogen cells)** नामक हल्की पीलें रंग की पेरिटोनियल कोशिकाओं की एक परत होती है, ये कोशिकाएं मध्यवर्ती उपापचय के स्थान मानी जाती हैं। इन कोशिकाओं का वही काम होता है जो कशेरूकियों में यकृत (जिगर) का तथा कीटों में वसा पिंडों का, और साथ ही इन्हीं में ग्लाइकोजन एवं वसा का संश्लेषण और भण्डारण दोनों ही होते हैं।

- पौलीकीट

पौलीकीटों में स्वच्छंद चलने-फिरने वाली (चलायमान, errant) और स्थानबद्ध दोनों प्रकार की स्पीशीज़ पायी जाती हैं। स्वच्छंद गतिशील स्पीशीज़, सामान्यतः बृहतभक्षी होती है और स्थानबद्ध स्पीशीज़ सूक्ष्मभक्षी। *नीरीस (Neries)* स्वच्छंद गतिशील बृहतभक्षी पौलीकीट का उदाहरण है। मगर *नीरीस* बिल भी बना सकती है और इसके लिए वह अपनी शुंडिका (proboscis) (मुख गुहा तथा ग्रसनी) का इस्तेमाल करती है (चित्र 9.8)। बहिर्वर्तनी शुंडिका अशन अंग होती है। ग्रसनी के अस्तर में हुकों से लैस जबड़े बने होते हैं, और शिकार को पकड़ने के लिए इसे बाहर को पलट दिया जाता है। जीनस *नीरीस* में मांसभक्षी स्पीशीज आती हैं। *नीरीस* की कुछ स्पीशीज़ सर्वभक्षी होती हैं जो भांति-भांति के विविध पदार्थों जैसे के शैवालों, अकशेरूकियों तथा अधःस्तर पर लगे अपरद का आहार करती हैं। कुछ स्पीशीज़ अपमार्जक (scavenger) होती हैं। मुख को घेरते हुए पाए जाने वाले स्पर्शक तथा पैल्प संवेदी कार्य करने के अलावा आहार को पकड़ने-संभालने का भी काम करते हैं।

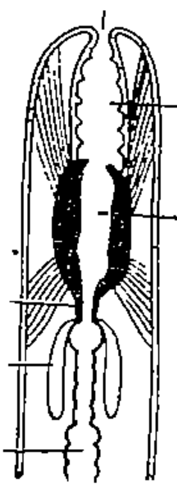

चित्र 9.8 : नीरीस का पाचन-तंत्र।

अपरद का आहार करने वाले "लगवर्म" (lugworms) (*ऐरेनिकोला* एवं संबंधित स्पीशीज़) आहारयुक्त कीचड़ को अथवा रेत को निगलते हैं। निगलने का काम आहार-नाल के शुंडिका नामक अगले भाग की चूषक क्रिया द्वारा किया जाता है। बिलकारी होने के कारण इनमें स्पर्शक नहीं होते। अन्य स्थानबद्ध पौलीकीटों में अत्यन्त सूक्ष्म सिलियटी-श्लेष्म अशन क्रियाविधि विकसित हो गयी है। उदाहरण के लिए, टेरेबेल्लिड कृमि (जैसे *ऐम्फ़िटाइट Amphitrite, टेरेबेल्ला Terebella)* मिट्टी की स्थायी नलिकाओं में रहते हैं। तथा अपरद भक्षी होते हैं (चित्र 9.9)। नलिकाओं में से वे अपने लम्बे सिलियायित प्रोस्टोमियल स्पर्शक समूहों को अधःस्तर की सतह पर फैला देते हैं। आहार कण, जिनमें अपरद होता है, श्लेष्म में चिपक जाते हैं। आहार कणों को गति देने में सिलिया सक्रिय रूप में काम करते हैं। श्लेष्म में फंसे आहार कण स्पर्शकों की सिलियायित खांचों में गुज़रते जाते और मुख में प्रवेश करते हैं।

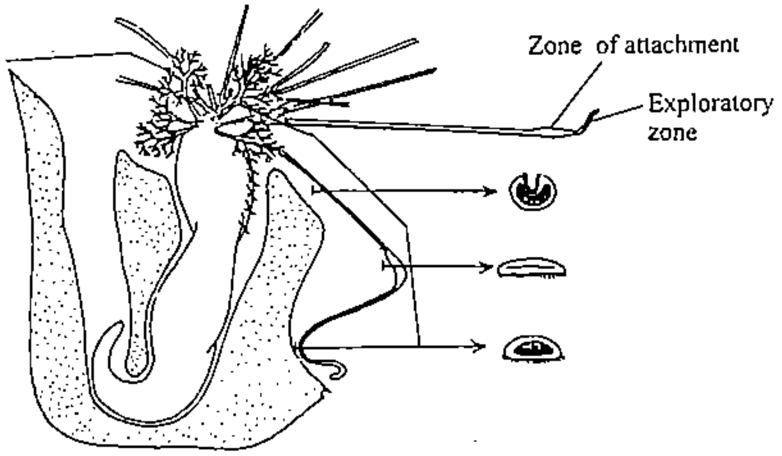

चित्र 9.9 : टेरेबेल्ला, एक अशन मुद्रा में।

साबेला *(Sabella)* एक बड़ा पौलीकीट है, यह नलिकाएं बनाता है जो मिट्टी की सतह से ऊपर को समुद्र के वेलांचली (littoral) क्षेत्र में निकली होती हैं। गिल-सदृश स्पर्शकों के मुकुट पर बने सिलिया की समन्वित क्रिया से जलधाराएं पैदा होती हैं और इन धाराओं में से आहार निकाल लिया जाता है। स्पर्शकों का गिल-मुकुट एक चौड़ी कीप बनाता है जिसके आधार पर प्राणी का मुख बना होता है। इस गिल-मुकुट के स्पर्शकों अथवा तंतुओं पर पिच्छिकाएं (pinnules) नामक बर्हिवृद्धियों की पंक्तियां बनी होती हैं। इस गिल-कीप के निचले भाग की ओर पिच्छिकाएं

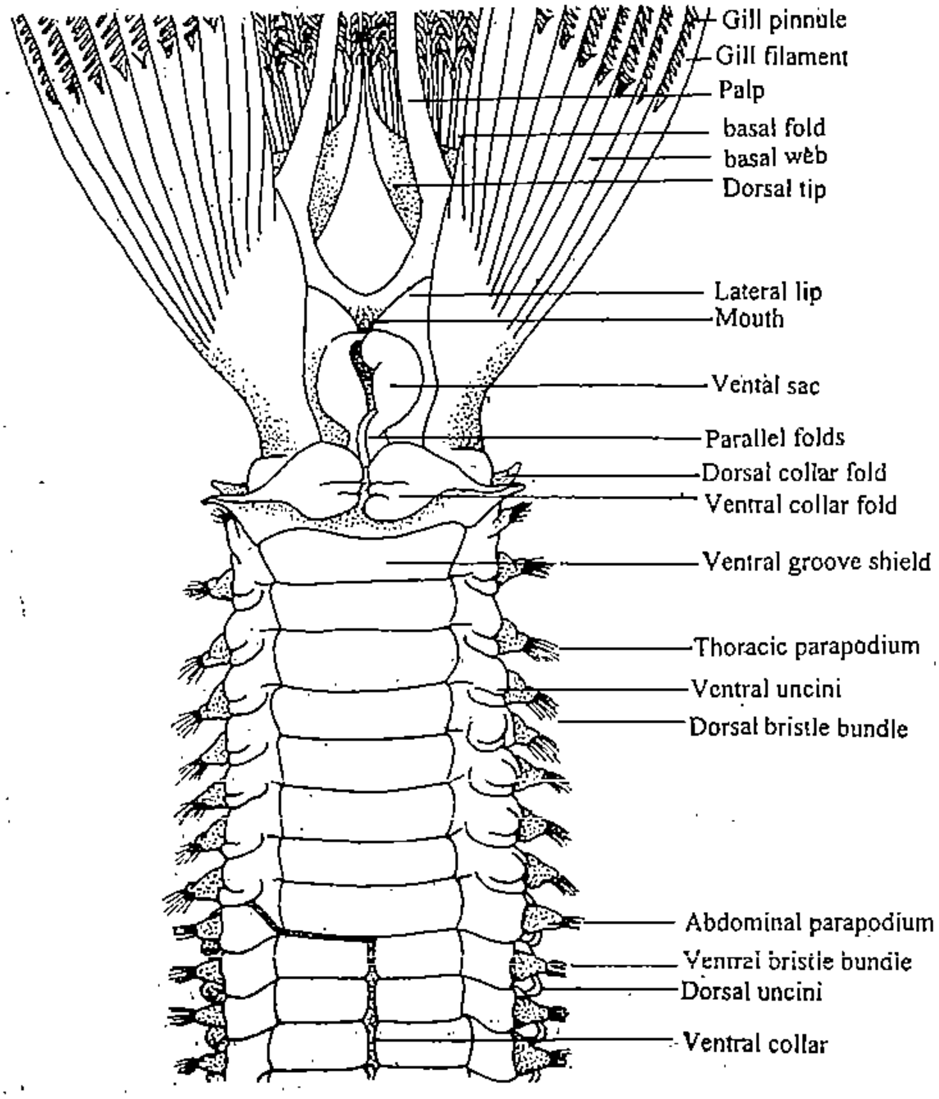

चित्र 9.10 : (a) सावेल्ला, गिल स्पर्शकों सहित।

परस्पर-ग्रथित होकर एक छलनी-तंत्र बना लेती है जिसमें आहारकण पिच्छिकाओं पर चिपक जाते हैं। पिच्छिकाओं पर तीन प्रकार के सिलिया पाए जाते हैं। ये सिलिया एक जलधारा बनाते हैं। जल की धारा के साथ कीप में प्रवेश करने वाले आहार कण उस एक खांच में पहुंचाए जाते हैं जो प्रत्येक पिच्छिका के भीतरी सीमांत के सहारे-सहारे चलती जाती है। पिच्छिका के आधार पर स्थित सिलिया आहार कणों को पिच्छिका के आधार को पहुंचाते हैं जहां से वे एक सिलियायित अनुदैर्ध्य खांच में पहुंचते हैं, या खांच तंतु की पूरी लम्बाई में चलती जाती है और उसके बाद मुंह में पहुंच जाती है।

कीटॉप्टेरस में, जो बालू अथवा मिट्टी की U-आकृति की नलिकाओं में रहता है (चित्र 9.11), गिल-मुकुट नहीं होता। पानी को भीतर ले जाया जाना एक तो परापादों से व्युत्पन्न तीन जोड़ी पंखे की आकृति की संरचनाओं के स्पंदन से होता है और साथ ही अग्रतः स्थित पंख-सदृश एक अन्य जोड़ी के स्पंदन से होता है। इन संरचनाओं द्वारा स्रावित श्लेष्म में आहार कण फंस जाते हैं और फिर एक अधर खांच में खींच लिए जाते हैं। यहां पहुंच कर यह श्लेष्म एक शंक्वाकार थैला-जैसा बना दिया जाता है और आहार कण इस थैले में से छन जाते हैं। छना हुआ भोजन पंख-जैसी संरचनाओं से निकले एक स्राव के द्वारा गोल गेंद जैसे रूप में ढाल दिया जाता है। अधर खांच के सिलिया आहार की इस गेंद को मुख में पहुंचा देते हैं।

ऐनेलिडों में आमतौर से बाह्यकोशिकीय पाचन होता है हालांकि *ऐरेनिकोला मैरिना* में आहार-नाल की एपिथीलियम द्वारा कोशिकभक्षण और भ्रमणशील अमीबाणुओं द्वारा अंतर्ग्रहीत आहार का पाचन पूरा होता हुआ बताया गया है। निस्यंदन अशनकर्त्ताओं में पाचन अधिकतर बाह्य कोशिकीय होता है। पौतीकीटों का पाचन-तंत्र इन भागों में विभेदित हो गया होता है - ग्रसिका, अग्र जठर, पेशीय पश्चजठर, और एक आंत्र। इसलिए एंज़ाइम-स्रवण केवल अग्र जठर तथा अग्र-आंत्र तक ही सीमित होता है। सामान्य रूप में पाचन की क्रिया अग्र जठर और अग्र-आंत्र में होती है। पश्च-जठर वास्तव में एक मिश्रण प्रदेश है। अवशोषण की क्रिया पश्च-आंत्र में होती है।

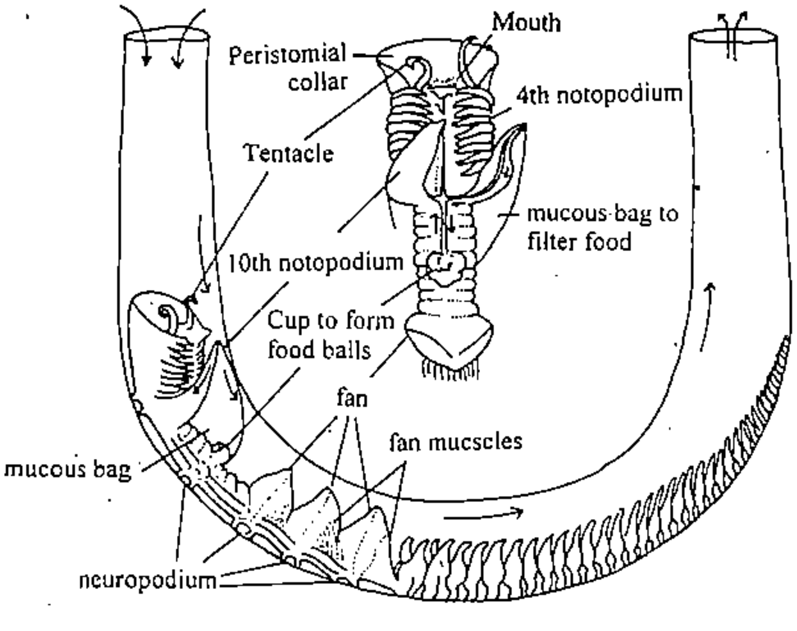

चित्र 9.11: (a) *कीटॉप्टेरस*, नलिका के भीतर; (b) विवर्धित अग्र प्रदेश जिसमें आहार-संचयी उपकरण दिखाया गया है।

- हिरूडिनिया (Hirudinea)

हिरूडिनिया में स्वच्छंदजीवी तथा बाह्यपरजीवी जोंकें आती हैं। जोंके रक्त चूसती हैं। पाचनतंत्र में एक मुखपूर्वी कक्ष होता है जिसमें एक चूषक बना होता है और इस चूषक के आधार पर एक त्रिअरीय छिद्र यानी मुख होता है। मुख की दीवारों में जबड़े गड़े होते हैं, ये जबड़े तीन होते हैं एक मध्य-पृष्ठ दिशा में और शेष दो अधर-पार्श्व दिशा में। प्रत्येक जबड़े पर सूक्ष्म दांतों की

एक पंक्ति बनी होती है। आहार नाल में एक मोटी पेशीय ग्रसनी होती है जिसके पीछे एक छोटी-ग्रसिका आती है। एककोशिकीय लार ग्रंथियां ग्रसनी के दोनों पार्श्वों पर पायी जाती हैं। ग्रसिका के पीछे एक क्रॉप (crop) आता है और फिर इसके पीछे एक बड़ा या दूर तक फैला थैला आता है जिसमें 10 से 11 कक्ष बने होते हैं, ये कक्ष एक दूसरे में जिस छिद्र से खुलते हैं वह संवरणी पेशियों (sphincters) से घिरा होता है (चित्र 9.12)। प्रत्येक कक्ष में पीछे को रुख किये हुए एक जोड़ी पार्श्व अंधनाल होते हैं। आगे से पीछे की दिशा में जाते हुए अंधनालों का साइज़ बड़ा होता जाता है, अग्र जोड़े छोटे होते हैं तथा अंतिम कक्ष का अंधनाल सबसे बड़ा होता है। क्रॉप के पीछे एक छोटा जठर आता है, जिसकी भीतरी दीवार बहुत वलनित होती है, और फिर इस जठर के पीछे एक संकीर्ण आंत्र आती है जिसकी भीतरी दीवार में क्षैतिज एवं अनुप्रस्थ वलन बने होते हैं जो अवशोषी सतह में वृद्धि कर देते हैं। आंत्र के पीछे मलाशय आता है जो गुदा द्वारा बाहर को खुलता है।

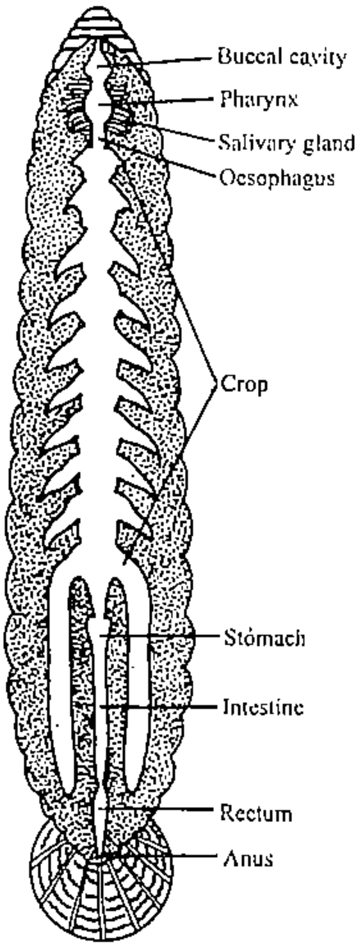

चित्र 9.12 : जोंक का पाचन-तंत्र।

जोंकें मानव तथा मवेशियों का रक्त चूसती हैं। वे अपने चूषकों द्वारा अपने शिकार की त्वचा से चिपक जाती हैं तथा अपने जबड़ों से खाल में एक काट लगाती हैं। उसके बाद इनकी पेशीय ग्रसनी रक्त चूसती है। इनके लार-स्रावों में एक प्रति-स्कंदक हिरुडिन (hirudin) मौजूद होता है जिसका काम रक्त के स्कंदन को रोकना होता है ताकि रक्त का क्रॉप के भीतर को स्वच्छंद प्रवाह सुनिश्चित हो जाए। इस प्रकार क्रॉप रक्त के भंडारण का कार्य करता है। एक बार जब जोंक का पेट पूरा भर जाता है तब उसे कई-कई महीनों तक दोबारा आहार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्रॉप के भीतर का रक्त समय-समय पर जठर में पहुंचाया जाता रहता है और जठर में उसका पाचन होता रहता है। पचा हुआ आहार आंत्र में अवशोषित हो जाता है।

बोध प्रश्न 3

कॉलम A में दी गयी बातों को कॉलम B में दी गयी बातों से सही-सही मिलाइए:

	A		B
1)	ओलाइगोकीटा	a)	बृहतभक्षी आहारकर्त्ता
2)	"एरैंट" (भ्रमणशील) पौलीकीट	b)	सिलियरी श्लेष्म आहारकर्ता
3)	स्थानबद्ध पौलीकीट	c)	क्लोरैगोमेन कोशिकाएं
4)	नलिका वासी पौलीकीट	d)	भक्षिकोशिकायन
5)	ऐरेनिकोला	e)	रक्तभक्षी आहारकर्त्ता
6)	जोंक	f)	सूक्ष्मभक्षी आहारकर्त्ता

9.2.3 मौलस्कों में अशन और पाचन

- **लैमेलिब्रैंक (Lamellibranchs)**

मौलस्कों में अशन और पाचन का अध्ययन बाइवैल्वों अर्थात लैमेलिब्रैंकों से करेंगे। लैमेलिब्रैंकों में उसी प्रकार का सिलियरी-श्लेष्म अशन पाया जाता है जैसा कि कुछ पौलीकीटों में देखा गया था। ये अर्ध-स्थानबद्ध प्राणी होते हैं जो अपने सुरक्षाकारी कवचों के भीतर-ही-भीतर सीमित पाए जाते हैं तथा कीचड़मय अथवा रेतीले अधःस्तर में रहते हैं। ये सूक्ष्मभक्षी आहारकर्त्ता होते हैं और ये अपने सिलियायित गिलों अथवा पटलिकाओं को आहार-संचयी युक्तियों के रूप में इस्तेमाल करते हैं। पटलिकाएं इस प्रकार रची हुई होती हैं कि जो जलधारा प्राणी के अंतर्वाही साइफ़न के भीतर आकर बहिर्वाही साइफ़न के द्वारा बाहर को निकल जाती है, उसमें से निलम्बित पदार्थ को अथवा उसके द्वारा आए और पटलिकाओं पर जम गए आहार पदार्थ को एकत्रित किया जा सके। इस क्रिया के दौरान गिलों पर बने सिलिया के द्वारा जलधारा कायम बनाई रखी जाती है।

प्रत्येक गिल अथवा टेनीडियम (ctenidium) दो अर्धगिलों का बना होता है जो एक केंद्रीय अक्ष से जुड़े होते हैं और प्रत्येक अर्धगिल में तंतुओं की एक समांतर पंक्ति बनी होती है। तंतु की संरचना अलग-अलग हो सकती है। आदिम प्रोटोब्रैंक (protobranch) में तंतुओं में वलन नहीं होते मगर फ़िलिब्रैंकों (fillibranchs) तथा यूलैमेलिब्रैंकों (eulamellibranchs) में तंतुओं में वलन बनकर आरोही तथा अवरोही शाखाएं बन जाती हैं (चित्र 9.13)। चित्र 9.13(2) में दर्शाया गया है कि लैमेलिब्रैंक गिल का विकास किस प्रकार हुआ। फ़िलिब्रैंक प्राणी *मिटिलस* में सहवर्ती तंतु सिलियटीसंधियों द्वारा जुड़ गए होते हैं। यूलैमेलिब्रैंकिएट प्राणी ऐनोडोण्टा में तंतु धानीयुक्त अंतरातंतु संधियों द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं। लैमेलिब्रैंकों में सिलिया गिल तंतुओं पर सामने की ओर तथा पार्श्व श्रृंखलाओं में व्यवस्थित होते हैं (चित्र 9.14 a तथा b)।

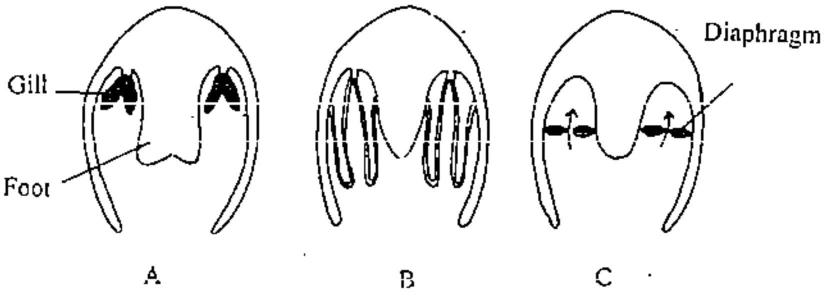

चित्र 9.13: (1) लैमेलिब्रैंकों का उदग्र सेक्शन जिसमें टेनीडियमों की संरचना में अंतर दर्शाये गए हैं। (a) प्रोटोब्रैंक; (b) फ़िलिब्रैंक तथा यूलैमेलिब्रैंक; (c) सेप्टीब्रैंक।

जल प्रावार गुहा में पार्श्व सिलिया के द्वारा लाया जाता है। जब जल तंतुओं में से गुज़रता है तब अग्र-पार्श्व सिलिया आहार को पकड़ लेते हैं और उसे अग्र सिलिया की ओर फेंका जाता है। अब

श्लेष्म में फंस गए आहार कण गिल पटलिकाओं की सतह पर से चलाए जाते और आहार खांच में पहुंचा दिए जाते हैं। अलग-अलग स्पीशीज़ में यह आहार खांच या तो अधर सीमांतीय खांच हो सकती है या गिल के अक्ष के सहारे बनी पृष्ठ खांच हो सकती है।

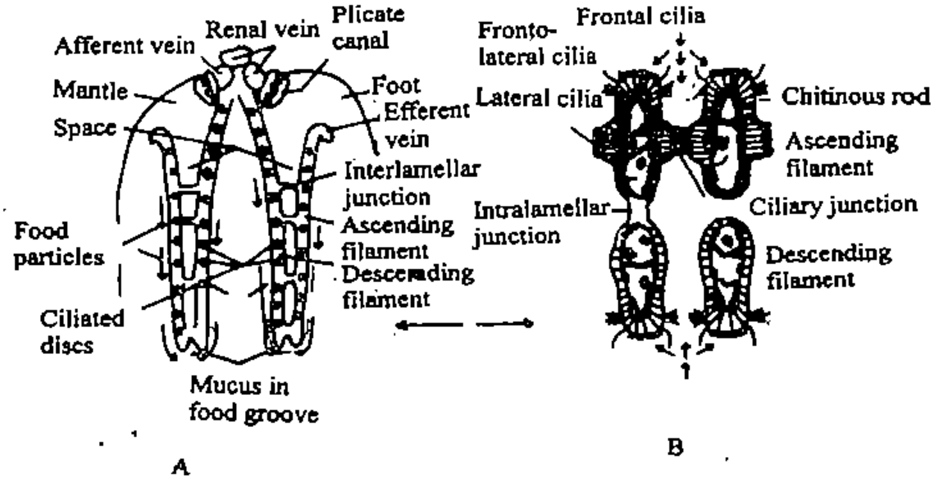

चित्र 9.14 : लैमेलिब्रैंकों में गिल की सरंचना (a) उदग्र सेक्शन (b) *मिटिलस* में गिल का उदग्र सेक्शन तथा (c) *ऐनोडाण्टा* में उदग्र सेक्शन।

तदुपरांत आहार को मुख के प्रत्येक पार्श्व पर बने दो जोड़ी लेबियल पैल्पों पर पहुंचा दिया जाता है जहां से फिर वह मुंह में ले जाया जाता है। गिलों पर बने और लेबियल पैल्पों पर बने सिलिया-पथ आहार की छंटायी करते हैं। कुछ गिल पथों पर बने सूक्ष्म सिलिया सूक्ष्म कणिकीय आहार को मुख में ले जाते हैं और अन्य पथों पर बने स्थूल सिलिया बड़े कणों को अलग हटाते यानी उन्हें अस्वीकार करते जाते हैं (चित्र 9.15)। छंटायी की क्रियाविधि कणों के भार पर निर्भर करती है। पैल्पों पर बैठ जाने वाले अधिक भारी कण शक्तिशाली सिलियरी धाराओं द्वारा दूर को बहा दिए जाते हैं। हल्के कण इस धारा से बच जाते हैं और तली में बैठते जाते हैं जहां से फिर उन्हें मुख में बहा दिया जाता है। बहिष्कृत कण श्लेष्म में फंस जाते हैं और बहिर्वाही साइफ़न में से बाहर को निकाल दिए जाते हैं।

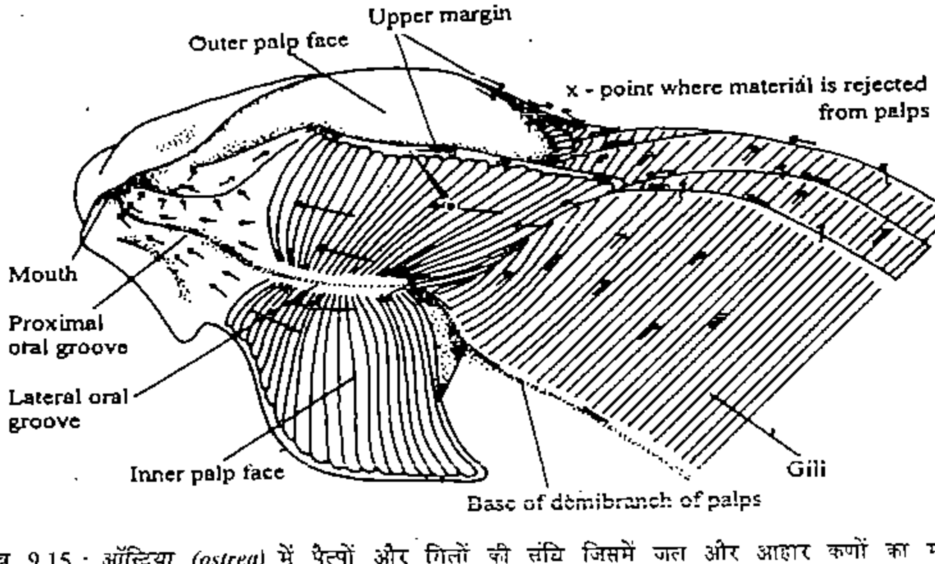

चित्र 9.15 : *ऑस्ट्रिया (ostrea)* में पैल्पों और गिलों की संधि जिसमें जल और आहार कणों का मार्ग दिखाया गया है। "X" वह स्थान है जहां से पैल्पों से पदार्थ का बहिष्कार होता है।

लैमेलिब्रैंकों का एक विशेष लक्षण है क्रिस्टलीय शलाका (crystalline style) नामक संरचना का पाया जाना, यह एक बहुत संहत एवं लम्बी छड़ होती है जो श्लेष्म के संपीडन से बनी होती है। शलाका का स्रवण शलाका कोश से होता है। शलाका कोश जठर का ही एक प्रसार होता है जो या तो सीधा जठर में ही खुला हो सकता है या जठर से पृथक हुआ होता है। शलाका-कोश में सिलिया का अस्तर बना होता है जो क्रिस्टलीय शलाका को उसके अक्ष पर घुमाता है और उसे आगे की ओर जठर में पहुंचाता है। शलाका का मुक्त सिरा क्षारीय जठर-अंतःवस्तु के द्वारा

घिसता-गलता जाता है और इस क्रिया में जठर शील्ड के साथ घर्षण भी काम करता है, यह शील्ड जठर के क्यूटिकलीय अस्तर का मोटा हो गया भाग होती है। इस प्रक्रिया के दौरान शलाका पदार्थ से एक कार्बोहाइड्रेट-पाचक एंज़ाइम ऐमाइलेज़ निकलता है। कुछ स्पीशीज़ में सेलुलेज़ भी निकलता है। इस प्रकार कार्बोहाइड्रेटों के कोशिकाबाह्य पाचन का आरम्भ जठर में ही हो जाता है। क्रिस्टलीय शलाका द्वारा श्लेष्म-आहार सूत्र का घूर्णन, और साथ ही साथ जठर का pH भी (pH 5-6) ये दोनों आहार एवं श्लेष्म को लगातार सूक्षम कणों में पृथक करते रहते हैं और उन्हें मुख्य सूत्र से अलग करते जाते हैं। अलग कर दिए गए कणों को उनके साइज़ के आधार पर जठर की दीवार अलग-अलग छांटती जाती है। बड़े एवं भारी कणों को सिलिया द्वारा अंतड़ियों में पहुंचा दिया जाता है जहां इनकी विष्ठा गोलियां बनाकर बाहर निकाल दिया जाता है। सूक्ष्मतर कणों को पाचन अंधवर्ध्र अथवा ग्रंथियों के छिद्रों की ओर पहुंचाया जाता है, इन अंधवर्धों का पाया जाना मौलस्कों के पाचन-तंत्र का एक विशेष लक्षण है। दोनों में से प्रत्येक अंधवर्ध अत्यधिक विशाखित होकर अंध-नलिकाओं का एक तंत्र बन जाता है। इन नलिकाओं का सिलियायित एपिथीलियमी अस्तर धानीयुक्त कोशिकाओं का बना होता है, ये कोशिकाएं भक्षिकोशिकीय होती हैं। ये कोशिकाएं सूक्ष्म कणिकाओं का अंतर्ग्रहण कर लेतीं और उन्हें पचाती हैं। इस प्रकार लैमेलिब्रैंकों में पाचन मुख्य रूप में अंत:कोशिकीय होता है, हालांकि शलाका कोश से निकलने वाले स्राव कार्बोहाइड्रेट-पाचन को वाह्यकोशिकीयं रूप में आरम्भ कर देते हैं।

- **गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda)**

अधिकतर गैस्ट्रोपोडों में पाचन बाह्यकोशिकीय होता है। फिर भी *क्रेपिड्यूला (Crepidula)* जैसे कुछ शाकाहारी गैस्ट्रोपोड हैं जो सिलियरी आहारकर्त्ता होते हैं और जिनमें लैमेलिब्रैंकों के जैसा ही पाचन-तंत्र होता है। इनमें ऐमाइलेज़ ही एकमात्र बाह्यकोशिकीय एंज़ाइम होता है, इनके पाचन अंधवर्धों से किसी एंज़ाइम का स्रवण नहीं होता, वे केवल अवशोषण का ही कार्य करते हैं। *क्रेपिड्यूला* में भी लैमेलिब्रैंकों की तरह ही क्रिस्टलीय शलाका होती है। टीनियोग्लौसा, रैपिडोग्लॉसा तथा *टेरोपोडा* समूहों में आने वाले कुछ शाकाहारी गैस्ट्रोपोडों में भी क्रिस्टलीय शलाका होती पायी जाती है। ये केवल उन्हीं शाकाहारी गैस्ट्रोपोडों में पायी जाती है जो सूक्ष्मभक्षी आहारकर्त्ता होते हैं और रैडुला का उपयोग करने वाले रेतनी आहारकर्त्ताओं में भी (चित्र 9.16)। *पैटेला, हैलियोटिस, ऐप्लीसिया* तथा *हेलिक्स* कुछ ऐसे शाकाहारी गैस्ट्रोपोड हैं जिनमें क्रिस्टलीय शलाका नहीं होती। अनिवार्यत: उन प्राणियों में जिनमें बाह्यकोशिकीय पाचन के स्थान पर अंत:कोशिकीय पाचन होने लगा है, क्रिस्टलीय शलाका अनुपस्थित होती है।

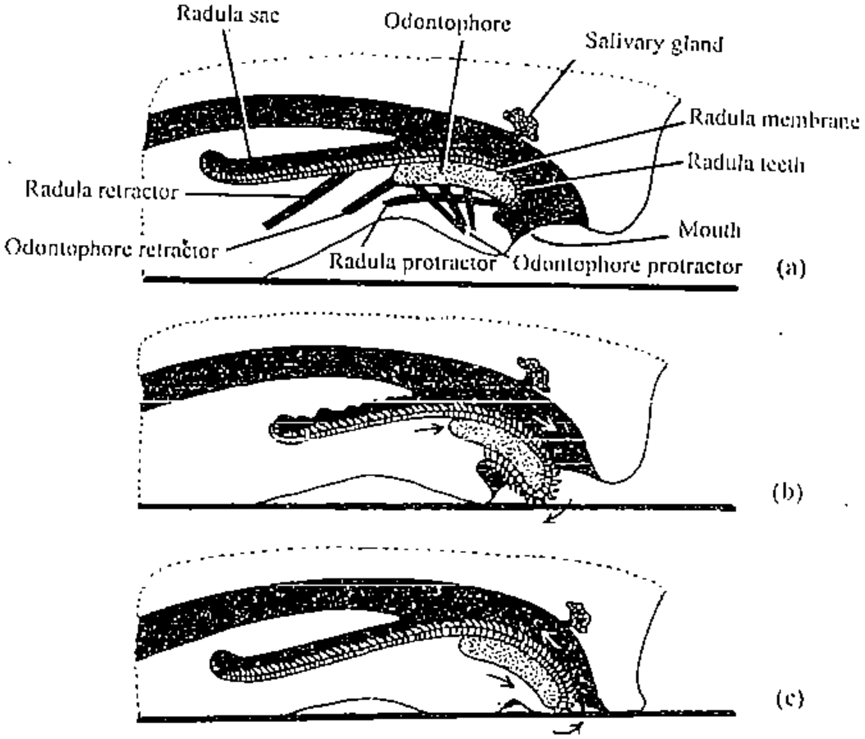

चित्र 9.16 : (a) एक गैस्ट्रोपोड का रैडुला उपकरण; (b) तथा (c) रैडुला का अपाकुंचन तथा आकुंचन।

• सेफ़ैलोपोड (Cephalopods)

सेफ़ेलोपोड प्राणी मांसाहारी होते हैं। स्पर्शक अथवा भुजाएं आहार पकड़ने वाले अंग हैं। स्पर्शकों की संख्या अलग-अलग सेफ़ैलोपोडों में भिन्न होती है। सीपिया में दस भुजाएं होती हैं, *आक्टोपस* में आठ, तथा *नौटिलस* में लगभग 90 स्पर्शक होते हैं। अन्य स्क्विडों तथा कटलफ़िशों की तरह *सीपिया* में चार जोड़ी छोटे एवं भारी-भरकम स्पर्शक होते हैं जिन्हें भुजाएं कहते हैं तथा एक जोड़ी लम्बी संरचनाएं होती हैं जिन्हें स्पर्शक कहते हैं। भुजाओं की भीतरी सतह पर चूषक बने होते हैं जो वृंतयुक्त, प्याला-जैसे और आसंजक प्रकृति के होते हैं। चूषकों में श्रृंगीय वलय एवं हुक बने होते हैं। गतिशील स्पर्शकों में चूषक केवल चपटे सिरों के ऊपर बने होते हैं। भुजाएं, पकड़े जा चुके शिकार को कसकर दबोचे रखने में सहायता करती हैं। चूषक *ऑक्टोपस* की भुजाओं पर भी बने होते हैं मगर वे वृंतहीन होते एवं उनमें श्रृंगीय वलय तथा हुक भी नहीं होते। सेफ़ैलोपोडों में रैडुला के अतिरिक्त उनकी मुख-गुहा के भीतर एक जोड़ी शक्तिशाली चोंच की आकृति के जबड़े बने होते हैं। इन जबड़ों से शिकार को काटा-फाड़ा जाता है और उसके बाद रैडुला की जीभ जैसी क्रिया आहार को भीतर को खींचती और निगलने में मदद करती है। ऑक्टोपोड प्राणी अपने जबड़ों द्वारा शिकार को काटते अथवा काटे बिना ही उसमें विष इंजेक्ट कर देते हैं, और इससे प्राणी में ढेर सारे एंज़ाइम पहुंचा दिए जाते हैं। तदुपरांत अंशत: पचा हुआ भोजन आहार-नाल में चला जाता है। कवचयुक्त गैस्ट्रोपोडों पर आहार करते समयय ऑक्टोपोड प्राणी अपने रैडुला की मदद से उनमें एक सुराख़ करते हैं और फिर इस सुराख़ में से शिकार के भीतर विष इंजेक्ट कर देते हैं। जबकि एक ओर कटलफ़िश सतहवासी जीवों जैसे कि श्रिम्प और केकड़ों पर आहार करते हैं वहां दूसरी ओर ऑक्टोपोड प्राणी नाना प्रकार के शिकार का आहार करते हैं जिनमें क्लैम (सीपियां), घोंघे और क्रस्टेशियन शामिल हैं। *नौटिलस* एक अपमार्जक-परभक्षी होता है जो विशेषत: डेकापोड क्रस्टेशियनों और उनमें भी ख़ासतौर से हर्मिट-केकड़ों को खाते हैं।

मुख-गुहा एक ग्रसिका में खुलती है जो क्रमांकुंचनी गतियों के द्वारा आहार को और आगे जठर में पहुंचाती है। *नौटिलस* तथा *ऑक्टोपस* में एक क्रॉप होता है जो ग्रसिका का ही प्रसार होता है। सेफ़ैलोपोडों का जठर अति पेशीय होता है और उसके अग्र सिरे पर जुड़ी एक अंधनाल बनी होती है। अंधनाल की दीवारें पचे आहार का अवशोषण करती हैं तथा यह अवशोषण कार्य कुछ हद तक आंत्र द्वारा भी किया जाता है। आंत्र पीछे को एक गुदा द्वारा बाहर को खुलती है (चित्र 9.17)।

सेफ़ैलोपोडों में पाचन केवल कोशिकावाह्य ही होता है। सेफ़ैलोपोडों की पाचन ग्रंथियों में लार ग्रंथियां होती हैं- इनकी दो जोड़ियां मुख-गुहा के अगल-बगल स्थित होती हैं। पश्च जोड़ी की लार-ग्रंथियों से विष निकलता है, और यह विष ग्लाइकोप्रोटीनों के रूप में होता है। ऑक्टोपस में इन लार-ग्रंथियां से प्रोटीनलयी एंज़ाइमों का भी स्रवण होता है। सेफ़ैलोपोडों में अग्न्याशय (पैंक्रियाज़) तथा यकृत भी होते हैं। स्क्विडों में ये दोनों संरचनाएं एक दूसरे से पृथक होती हैं तथा पैंक्रियाज़ से निकले स्राव यकृत की वाहिनी में छोड़ दिए जाते हैं। दोनों ग्रंथियों के एंज़ाइम जठर एवं अंधनाल की संधि पर छोड़ दिए जाते हैं। वास्तव में ऑक्टोपस का यकृत तीन कार्य करता है- स्रवण, अवशोषण और उत्सर्जन, बहुत कुछ उसी प्रकार जैसे अन्य मौलस्कों का यकृदग्न्याशय यानी हीपेटोपैंक्रियाज काम करता है।

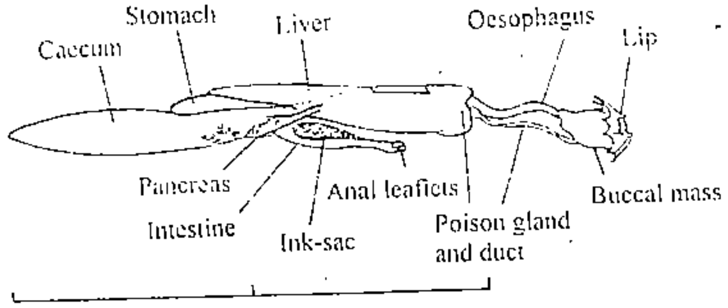

चित्र 9.17 : लालिगो का पाचन-तंत्र।

9.2.4 इकाइनोडर्मों में अशन और पाचन

इकाइनोडर्मों में नानाविध अशन-स्वभाव पाए जाते हैं। इनमें से अधिकतर मांसभक्षी होते हैं। मगर कुछ निलम्बन-अशनकारी होते हैं, कुछ निक्षेप अशनकारी, कुछ अन्य अपमार्जक होते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो चरते हैं। हम विभिन्न इकाइनोडर्म समूहों में पाचन-तंत्र तथा पोषण के विषय में संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

ऐस्टेरॉइडों में (जैसे कि स्टारफिश) में पाचनतंत्र अरीय होता है तथा शरीर के चपटा होने से रूपांतरित हो गया होता है। यह तंत्र मुख-अपमुख अक्ष में संपीडित हो गया होता है (चित्र 9.18)। मुख एक पेशीय परिमुख झिल्ली के मध्य में बना होता है और भीतर ग्रसिका में खुलता है जिसके बाद फिर जठर आता है। जठर के दो भाग होते हैं- एक बड़ा मुख कक्ष जिसे आगमी (cardiac) जठर कहते हैं और एक छोटा अपमुख कक्ष जिसे निर्गमी (pyloric) जठर कहते हैं। निर्गमी भाग में निर्गमी अंधनालों से आने वाली वाहिनियां खुलती हैं, ये अंधनालें ग्रंथीय कोशिकाओं की संहति होती हैं जो एक आंत्रयोजनी द्वारा भुजा की सीलोम में लटकी रहती हैं। निर्गमी जठर एक छोटी आंत्र में खुलता है और यह आंत्र अपमुख डिस्क पर गुदा द्वारा बाहर को खुलती है। आंत्र में एक जोड़ी अंधनालें निकली होती हैं जिन्हें मलाशय अंधनाल कहते हैं।

ऐस्टेरॉइड प्राणी अपमार्जक होते हैं तथा मांसाहारी भी, ये अनेक अकशेरूकियों का आहार करते हैं, जैसे घोंघों, बाइवैल्वों, क्रस्टेशियनों, पौलीकीटों तथा अन्य इकाइनोडर्मों का। जब कोई स्टारफिश मसेल (सीप) जैसे किसी शिकार के ऊपर से गुजरती है तो वह अपनी लचीली भुजाओं को शिकार के ऊपर झुकाती है और अपने नालपादों को उनके चूषकों के द्वारा मसेल के कपाटों पर कस कर चिपका लेती है। दो कपाटों को खींचकर खोल दिया जाता है और मसेल का कोमल शरीर खुल जाता है। उसके बाद आगमी जठर को मुख के द्वारा बाहर को उलट दिया जाता है और उसे मसेल के कोमल शरीर पर ढक दिया जाता है, जठर शिकार को अपने में लपेटता है और निर्गमी अंधनालों से निकलने वाले पाचन रसों को उस पर छोड़ा जाता है। पाचन के पूरा हो चुकने पर जठर को वापिस शरीर में खींच लिया जाता है तथा केवल उसका कवच बाहर रह जाता है। इस प्रकार पाचन कोशिकाबाह्य होता है तथा पाचन-उत्पाद निर्गमी अंधनालों की कोशिकाओं में संचित कर लिए जाते हैं या उन्हें अंधनालों में से गुज़ारते हुए वितरण के वास्ते सीलोम में पहुंचा दिया जाता है। अनपचा अपशिष्ट मलाशय अंधनालों की पम्पिंग क्रिया के द्वारा गुदा से बाहर को निकाल दिया जाता है।

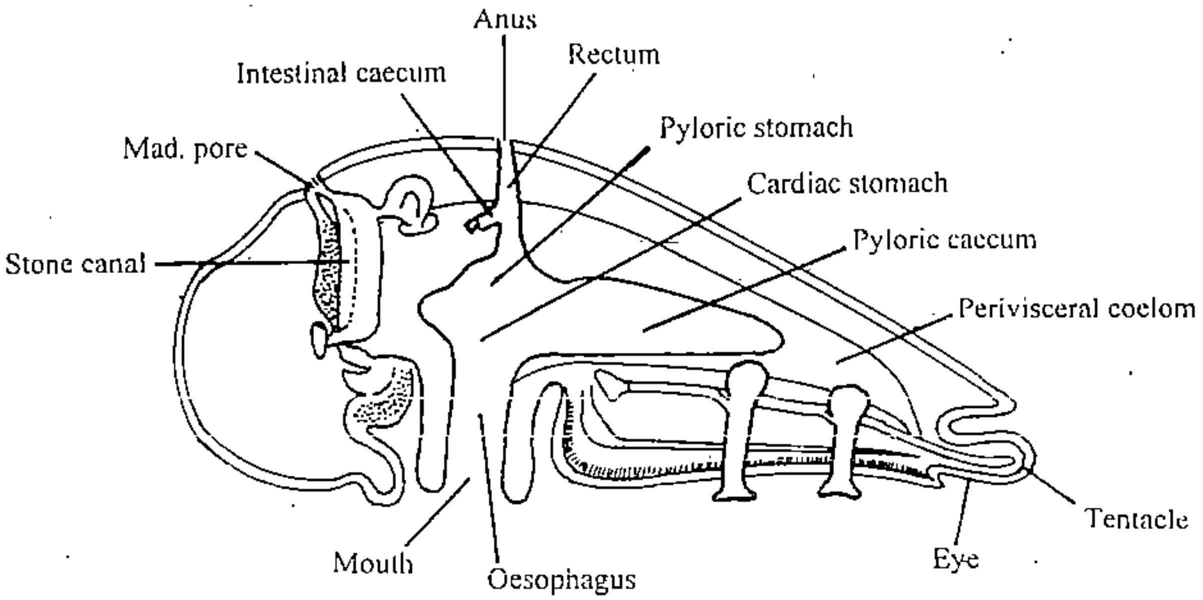

चित्र 9.18 : एक स्टारफ़िश का पाचन-तंत्र।

ओफ़ियूरॉइड प्राणी भी, जिनके उदाहरण ब्रिटल स्टार हैं, मांसाहारी होते हैं और वे अपमार्जक हो सकते हैं, निक्षेप अशनकर्त्ता अथवा निस्यंदक अशनकर्त्ता हो सकते हैं। इनके आहार में आते हैं

पौलीकीट, मौलस्क तथा छोटे क्रस्टेशियन। आहार को भुजाओं की मदद से सरलता से पकड़ लिया जाता और मुंह में ले आया जाता है, भुजाएं आसानी से मुड़ सकती और लपेट सकती हैं। आहार नाल में एक मुख, एक छोटी ग्रसिका तथा एक थैलेनुमा जठर होता है जो पीछे से बंद होता है। जठर बहिर्वर्तनी होता है। कोई आंत्र अथवा गुदा नहीं होती, और यह तंत्र भुजाओं में फैला नहीं होता। बाह्यकोशिकीय तथा अंतःकोशिकीय पाचन तथा अवशोषण भी अधिकांश जठर में ही होता है। निस्यंदक अशन के दौरान भुजाओं को जल में लहराया जाता है और प्लवक एवं अपरद उन श्लेष्म सूत्रों में फंस जाता है जो सहवर्ती भुजाओं की कंटिकाओं के बीच फैल गए होते हैं। इस प्रकार पकड़ लिए गए आहार कण एक ह्रासित कंटिका जिसे स्पर्शक शल्क कहा जाता है, की सिलियरी क्रिया के भुजा के आधार की ओर लाया जाता है। या फिर प्रत्येक भुजा पर मुख के निकट स्थित दो जोड़ी नालपादों द्वारा आहार कण इकट्ठे किए जाते हैं। उसके बाद इन नालपादों को स्पर्शक शल्कों पर खुरचा जाता है। एकत्रित आहारकणों को शल्क के सामने की ओर जमा कर दिया जाता है, उसे एक निवाले के रूप में संहत कर दिया जाता है तथा सिलियरी क्रिया के द्वारा भुजा के मध्य पृष्ठ रेखा पर मुख की ओर पहुंचाया जाता है।

इकाइनॉइड प्राणी (Echinoids) जिनमें- अर्चिनें, हृद-अर्चिनें तथा सैंड-डॉलरें आती हैं, चरने वाले होते हैं और जहां वे रह रहे होते हैं वहीं के अधःस्तर से अपने दांतों से खुरच-खुरच कर खाते हैं। इनके आहार में तरह-तरह का प्राणि- एवं पादप पदार्थ होता है, मगर शैवाल (algae) इनका सबसे महत्वपूर्ण भोजन है। मुख भीतर मुख-गुहा में खुलता है और उसके बाद होती है ग्रसिका तथा इन दोनों भागों को घेरता हुआ एक चर्वण उपकरण होता है जिसे अरस्तू की लालटैन (Aristotle's lantern) कहते हैं। ग्रसनी के बाद आती है ग्रसिका जो सीधी उदग्रतः अपमुख सिरे के समीप चलती जाती और जठर में खुलती है। थैलेनुमा जठर पहले तो नीचे को चलता हुआ लगभग मुख सिरे तक पहुंच जाता है और फिर ऊपर को मुड़कर वामावर्त दिशा में चलता है और इस दौरान वह चोल (टेस्ट) की भीतरी दिशा से सटा रहता है। उसके बाद जठर आंत्र में जारी रहता है और यह आंत्र दक्षिणावर्त रूप में जठर के समांतर रहती है (चित्र 9.19)। आंत्र के बाद मलाशय आता है। ग्रसिका, जठर तथा आंत्र ये सब की सब आंत्रयोजनियों द्वारा लटकी रहती हैं। जठर से संलग्न, उसके दोनों सिरों पर एक संकरी नलिका होती है जिसे सहायक आंत्र अथवा आंत्र साइफ़न कहते हैं। इस साइफ़न का एक सिरा जठर में, जठर और ग्रसिका के संधि पर खुलता है और दूसरा सिरा आंत्र को चला जाता है। पाचन बाह्यकोशिकीय होता है तथा जठर में आरम्भ होकर आंत्र में पूरा होता है। साइफ़न का कार्य आहार में से अतिरिक्त जल को निकालना होता है और उसके बाद ही जठर के भीतर पाचन क्रिया आरम्भ होती है।

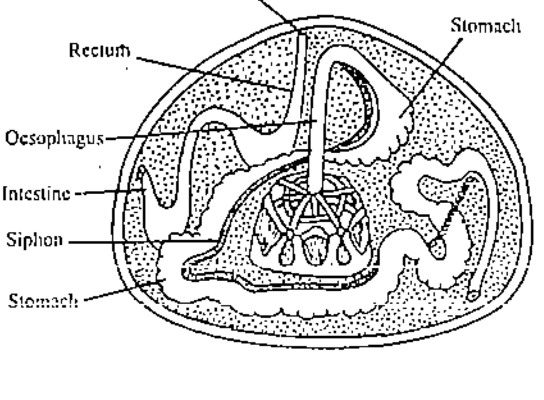

चित्र 9.19 : समुद्री अर्चिन का पाचन तंत्र।

अरस्तू की लालटैन जो कि एक चर्वण उपकरण है पास-पास सटी-जुड़ी पांच प्लेटों अथवा जबड़ों की बनी होती है जो एक उल्टे पिरामिड की शक्ल में होती हैं (चित्र 9.20)। प्रत्येक प्लेट एक त्रिभुजाकार ढांचा होती है जिसके भीतर एक लम्बा नुकीला दांत होता है। चूंकि जबड़े पांच होते हैं इसलिए दांत भी पांच होते हैं। इस ढांचे के भीतर पेशी क्रिया द्वारा दांत ऊपर-नीचे को

चलाए जा सकते हैं। इन जबड़ों और दांतों के अलावा अरस्तू की लालटैन में अनेक छोटे शलाकाकार अंश अपमुख सिरे पर भी होते हैं। पेशियों की क्रिया द्वारा इस लालटैन को मुख में से बाहर को निकाला जा सकता है। आहार खुरचने के अलावा यह लालटैन आहार को खींचने तथा उसे चीरने में भी काम आती है। हृद अर्चिनों में लालटैन नहीं होती।

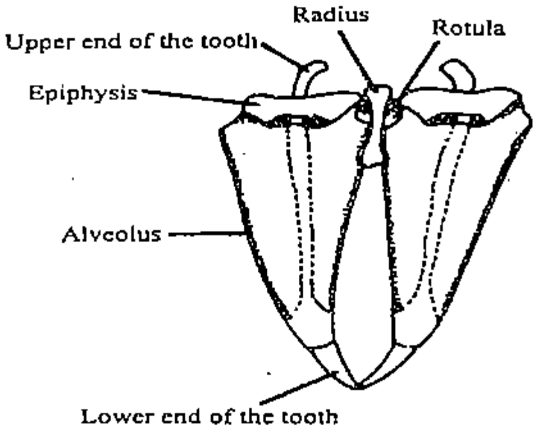

चित्र 9.20 : एक समुद्री अर्चिन की अरस्तु की लालटैन।

समुद्री खीरे जो क्लास होलोथ्यूरॉइडिया (Holothuroidea) में आते हैं निलंबन अथवा निक्षेप अशनकर्त्ता होते हैं। इनकी आहार नाल में आते हैं मुख, मुख कक्ष, एक चौड़ी ग्रसिका, एक अस्पष्ट जठर, एक लम्बी आंत्र और एक अवस्कर जो बाहर को खुलता है (चित्र 9.21)। मुख, स्पर्शक मुकुट के आधार पर बनी एक मुख झिल्ली के बीच स्थित होता है। छुए-छेड़े जाने पर प्राणी अपने मुख तथा स्पर्शकों को शरीर के अग्र सिरे में पूरी तरह सिकोड़ लेता है। विशाखित स्पर्शक आहार पकड़ने वाले अंग होते हैं। उन्हें या तो सतह पर फेरते चलायां जाता है या समुद्र के जल में खड़े तान लिया जाता है। दोनों ही स्थिति में आहार कण स्पर्शकों की सतहों पर स्थित आसंजक पैपिलाओं में चिपक जाते हैं। स्पर्शकों को एक-एक करके ग्रसनी में ठूंसा जाता है और आहार कण उतार लिए जाते हैं यहां तक कि जब स्पर्शकों को मुख से बाहर को खींचा जाता होता है तब भी ये कण उतरते जाते हैं।

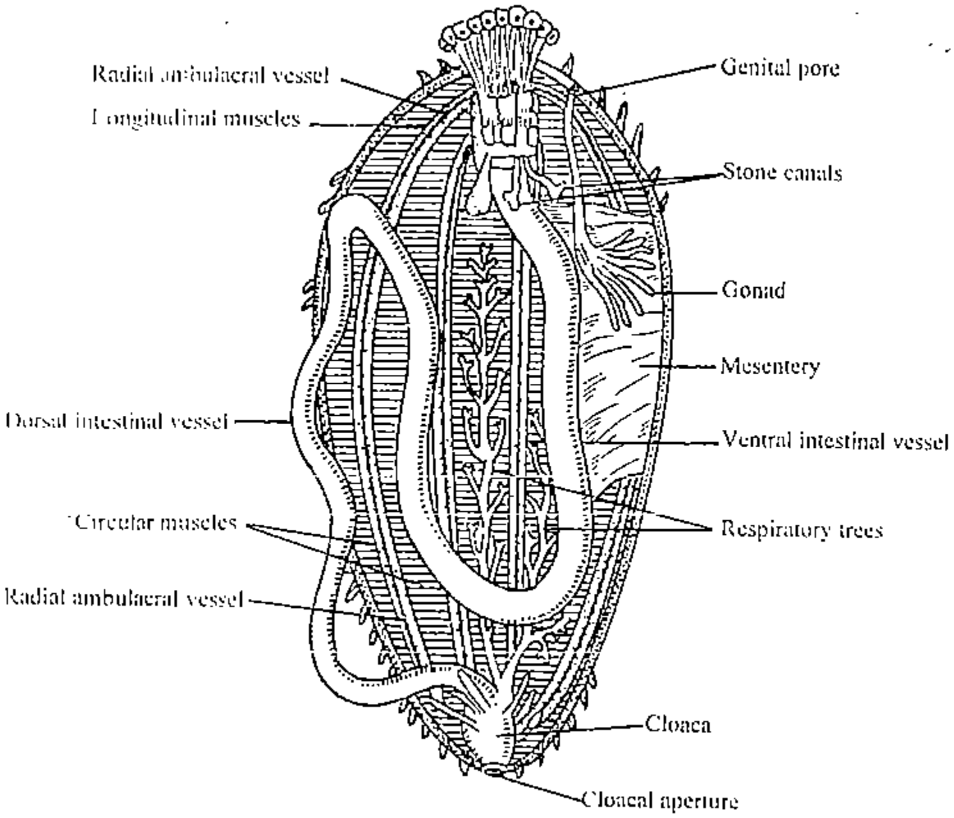

चित्र 9.21 : एक होलोथ्यूरियन का पाचन-तंत्र।

पेल्मैटोज़ोअन इकाइनोडर्म यानी क्रिनॉइड (Crinoids) निलंबन अशनकर्त्ता होते हैं। इनकी आहार नाल में होते हैं एक मुख, एक चौड़ी ग्रसिका, एक बड़ा सा जठर जिसके साथ एक अंधवर्ध बना होता है, एक कुंडलित आरोही आंत्र जो गुदा द्वारा बाहार को खुलती है। अशन के दौरान भुजाएं तथा पिच्छिकाएं बाहर को खुली-तनायी रखी जाती हैं तथा नालपाद खड़े होते हैं। नालपाद छोटे-छोटे स्पर्शक से दिखायी पड़ते हैं, और उनकी पूरी लम्बाई में उनके ऊपर श्लेष्म-स्रावी पैपिला होते हैं। नालपादों में उलझ गए आहार कण सिलियरी धाराओं द्वारा मुख में पहुंचा दिए जाते हैं।

9.2.5 आर्थ्रोपोडों में अशन और पाचन

आर्थ्रोपोडों में सिलिया का अभाव पाया गया है। इनमें अशन का कार्य विभिन्न उपांगों द्वारा सम्पन्न होता है। आर्थ्रोपोडों में उनके किसी एक अथवा अन्य समूह में लगभग प्रत्येक उपांग अशन के लिए रूपांतरित हुआ होता है। एक ओर जबकि थलीय आर्थ्रोपोड सामान्यतः बृहतभोजी और परभक्षी होते हैं (कीटों में अनेक शाकभक्षी होते हैं), दूसरी ओर जलीय आर्थ्रोपोड और उनमें भी मुख्यतः क्रस्टेशियन निस्यंदक अशन के लिए अनुकूलित हो गए हैं।

- **क्रस्टेशिया (Crustacea)**

ब्रैंकियोपोड (एनाकॉस्ट्राका) निस्यंदक अशन क्रियाविधि के एक अच्छे उदाहरण हैं। इनके उपांग पर्णाकार प्ररूप (पत्ती-जैसे) के होते हैं जिन्हें पर्णपाद (phyllopodia) कहते हैं, ये उपांग अनुक्रमिकतः स्पंदन करते हैं। इन उपांगों के भीतरी सिरे पर एंडाइटों (endites) की एक श्रृंखला बनी होती है, सबसे आधारीय एंडाइट शेष से अधिक बड़ा होता है। पीछे को रुख़ लिए हुए एंडाइटों पर बड़े-बड़े शूक बने होते हैं और ये शूक भी पीछे को रुख़ किए होते हैं। पाद के बाहर के सीमांत पर कई पालियां बनी होती हैं। इनमें से सबसे दूरस्थ पालि एक्सोपोडाइट (exopodite) (यानी बाह्यपादांश) होता है और आधारीय पालियों को एपिपोडाइट (epipodite) तथा प्रोटोपोडाइट (protopodite) कहते हैं।

पाद विभिन्न कार्य करते हैं। ये संचलनी होते हैं, अशनकारी होते हैं और अपनी कोमल संरचना के कारण श्वसन अंगों का भी कार्य करते हैं। पादों के स्पंदन से बाहर के जल में धाराएं बनती हैं और वे आहार कणों को पास में लाती हैं। एक पार्श्व पर मौजूद पादों के बीच-बीच में एक अंतरापाद स्थान (interlimb space) होता है (चित्र 9.22 तथा 9.23)। आहार पदार्थ एंडाइटों के शूकों पर फंस जाते हैं, ये रचनाएं आहार पकड़ने की क्रियाविधि में निस्यंदन तत्वों का कार्य करते हैं, निस्यंदित आहार पदार्थ मुख में ले लिए जाते हैं।

कोपीपोड जैसे कि *कैलेनस (Calanus)* मैक्सिलरी निस्यंदन अशन करते हैं। इन प्राणियों में अशन धारा एक तरण वॉर्टेक्स द्वारा पैदा की जाती है। मैक्सिलरी शूक फ़िल्टर की तरह काम करते हैं और जब जल उनमें से होकर बहता है तो आहार एकत्रित कर लेते हैं। मैक्सिल्यूली के एंडाइटों के शूक तथा मैक्सिलीपीड आहार को मैक्सिलरी शूकों से हटाते और उसे मुख में पहुंचाते हैं।

क्रस्टेशियनों में भी अन्य आर्थ्रोपोडों की ही तरह आधार मुख होता है जो भीतर, एक लगभग बिल्कुल सीधी आहार नाल में खुलता है। अग्रांत्र अनिवार्यतः, बड़ा हो गया जठर होती है। जिसके भीतर एक संपेषणी उपकरण (triturating appratus) होता है। यह उपकरण सामान्यतः काइटिनी कूटकों, दंतिकाओं तथा कैल्सियमी अस्थिकाओं का बना होता है जो सबके सब जठर की दीवार पर स्थित होते हैं। मध्यांत्र की लम्बाई क्रस्टेशियनों के विभिन्न समूहों में अलग-अलग होती है और उसमें एक या अनेक जोड़े अंधनालों के होते हैं जिनके द्वारा मध्यांत्र की अवशोषण सतह बढ़ जाती है। यकृदग्न्याशय (hepatopancreas) स्पंजी पाचन ग्रंथियों का बना होता है और ये ग्रंथियाँ स्रावी नलिकाओं तथा वाहिनियों की बनी होती हैं जिनसे प्रोटीनेज़ो तथा लाइपेज़े का स्रवण होता है। अग्रांत्र तथा मध्यांत्र दोनों ही पाचन के स्थान होती हैं। अवशोषण मध्यांत्र की दीवार तथा नलिकाओं में से होता है। यकृदग्न्याशय एक संचयी अंग का भी कार्य करता है। मध्यांत्र

पीछे मलाशय में खुलती है जो गुदा द्वारा बाहर को खुलता है। आइए अब हमें क्रस्टेशियनों के विभिन्न समूहों में पाचन तंत्र तथा पोषण का अवलोकन करें।

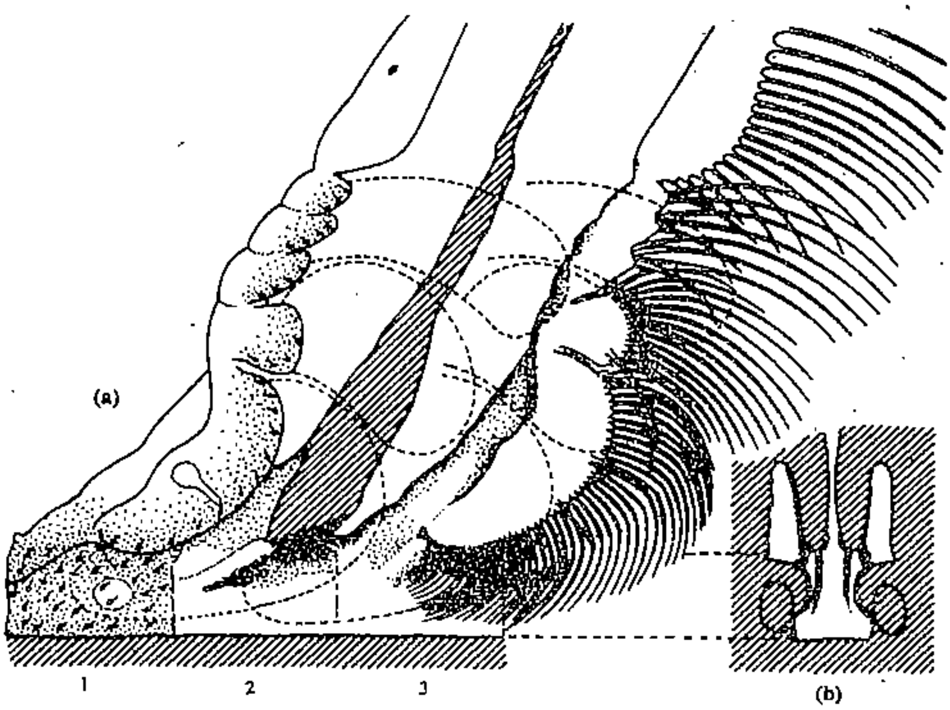

चित्र 9.22 : एक ब्रैंकियोपोड के तीन अनुक्रमिक पादों का मध्यक दृश्य जिसमें अंतरापाद गुहा, शूक (setae) और शूकक (setules) दिखाए गए हैं। पाद 1 में शूक हटा दिए गए हैं। शूककों को क्षेत्र में विन्दुओं द्वारा दिखाया गया है। पाद 2 में एंडाइट हटा दिए गए हैं ताकि पाद गुहा और वह सरणी जिसमें वह खुलती है, देखी जा सकें। पाद 3 में एंडाइट पूरे शूकों के साथ दिखाए गए हैं।

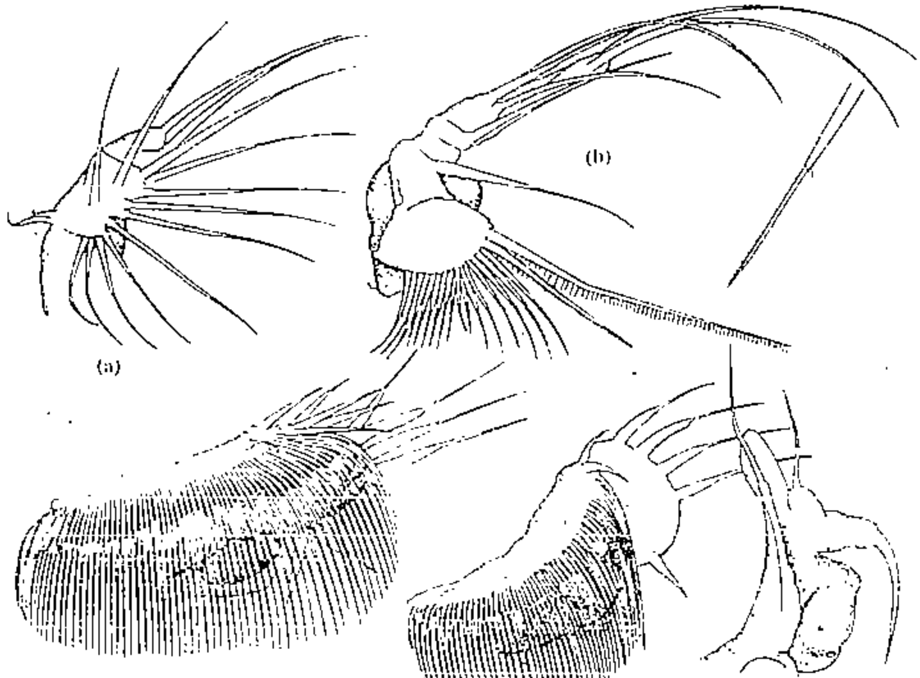

चित्र 9.23 : A से E ; *डैफ्निया* के पहले से लेकर पांचवे जोड़े तक के धड़ पाद; दूसरी जोड़ी के पादों के ग्नैथोबेस पर एक लम्बा शूक होता है जो तीसरी तथा चौथी जोड़ी के पादों के निस्यंदक शूकों से आहार कणों को हटाता है।

मैलाकॉस्ट्रैकनों में आहार पकड़ने का काम कीलिपैड (Chelipeds, वक्ष उपांग) करते हैं और फिर उसे तीसरे मैक्सिलीपीडों पर पहुंचा दिया जाता है और फिर वे पुनः इस आहार को मुखांगों के बीच पहुंचा देते हैं। आहार को मुख में पहुंचाने से पहले मैडिबल तथा मैक्सिला उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में खंडित कर देते हैं। अग्रांत्र में आने वाले भाग हैं एक ग्रसिका, आगमी जठर तथा एक निर्गमी जठर और इन सभी में एक काइटिनी अस्तर होता है। विविध डेकापौड क्रस्टेशियनों में जठर तरह-तरह से स्थूलित होकर उसमें अस्थिकाएं अथवा दांत बन जाते हैं जो सब एक साथ मिलकर एक जठर चक्की बना लेते हैं। जठर चक्की (gastric mill) और उसके साथ में होने वाली जठर गतियां आहार का चूरा करती जाती हैं। निर्गमी जठर दो भागों में विभाजित होता है, एक तो पृष्ठ भाग जो सीधा आंत्र में खुलता है और दूसरा अधर भाग जो एक द्विपालिक ग्रंथि-फ़िल्टर होता है पीछे को दो बड़ी वाहिनियों के द्वारा यकृदग्न्याशय में खुलता है। यकृदग्न्याशय एक बड़ी द्विपालिक संरचना होती है। पाचन एंजाइमों के स्रवण के अलावा यकृदग्न्याशय और भी कई कार्य कर सकता है जैसे कणदार आहार का अंतःकोशिकीय पाचन, पचे हुए आहार पदार्थ का अवशोषण, पोषक तत्वों का भंडारण तथा अपाच्य अपशिष्टों का आशयी पैकेजिंग एवं बहिःकोशिकायन (exocytosis) द्वारा उनका परित्याग।

डेकापोड प्राणी दो प्रकार से मिलाजुला अशन करते हैं, एक तो परभक्षिता और दूसरे अपमार्जन (scavenging)। बड़े आकार के अकशेरूकियों का जैसे कि इकाइनोडर्मों तथा वाइवैल्वों का परभक्षण केकड़े तथा नृपकेकड़े (king crabs) करते हैं। उधर अलवणजलीय तथा समुद्री श्रिम्प अपमार्जन-अपरद अशनकर्त्ता होते हैं। कुछ केकड़े पथरीली चट्टानों से शैवालों को खुरच-खुरच कर खाते हैं जब कि अन्य केकड़े रेत की सतह पर से अपरद को खाते हैं। फ़िडलर-केकड़े (Fiddler crabs) निस्यंदन अशन करते हैं। यही बात अनेक बिलकारी श्रिम्पों, मटर-केकड़ों (Pea crabs) तथा पोर्सलीन केकड़ों (Porcelain crab) तथा छछूंदर केकड़ों (Nole crabs) पर भी लागू होती है। काष्ठवेधक समुद्री आइसोपोड मैलाकॉस्ट्रैकन लकड़ी खाते हैं और उनका यकृदग्न्याशय सेलुलेज़ का स्रवण करता है जिससे लकड़ी के सेलुलोज़ का पाचन होता है।

ब्रैकियोपोड क्रस्टेशियन निलम्बन अशनकर्त्ता होते हैं और आहार कणों को एकत्रित करने का काम उनके धड़ उपांगों के शूकों द्वारा किया जाता है। आहार कणों को एक मध्य-अधर आहार खांच में पहुंचाया जाता है जहां वे श्लेष्म में फंस जाते और मुख में पहुंचाये जाते हैं। ब्रैंकियोपोडों में ग्रसिका ही अग्रांत्र होती है और जठर कहा जाने वाला भाग फूली हुई मध्यांत्र होती है। आंत्र में एक या अनेक कुंडलियां बन जाती हैं।

ऑस्ट्रैकोड क्रस्टेशियनों में विविध आहार-स्वभाव पाए जाते हैं। वे या तो मांसाहारी होते हैं या शाकाहारी; उनमें से कुछ अपमार्जक होते हैं और कुछ अन्य निस्यंदक-अशनकारी होते हैं। पादप आहार में अधिकत्तर शैवाल होते हैं तथा प्राणि-आहार में अन्य क्रस्टेशियन, छोटे घोंघे तथा ऐनेलिड शामिल हैं।

कोपीपोड क्रस्टेशियनों में भी विविध आहार स्वभाव पाए जाते हैं। प्लवक कोपीपोड निलम्बन-आहारकर्त्ता होते हैं जो पादपप्लवक को खाते हैं। कुछ प्लवक उदाहरण सर्वभक्षी होते हैं तथा परभक्षी भी। तलीवासी कोपीपोड सूक्ष्मजीवों तथा रेत के कणों पर चिपके अपरद को, शैवालों को अथवा समुद्री घासों को खाते हैं।

सिरीपीड (Cirriped) क्रस्टेशियन निलम्बन आहारकर्त्ता अथवा परभक्षी होते हैं। निलम्बन आहारकर्त्ताओं में सिर्रसों के स्पंदन से जलधाराएं पैदा होती हैं तथा आहार के कण शूकों में फंस जाते हैं। प्रथम जोड़ी के सिर्रस अन्य सिर्रसों पर बने शूकों पर चिपके आहार कणों को खुरचते और फिर उन्हें मुखांगों में पहुंचाते हैं। मैंडिबल तथा मैक्सिला दोनों ही आहार को चीरने-फ़ाड़ने में सहायता करते हैं। वृंतयुक्त बार्नेकल (Barnacles) जैसे कि लीपैस (Lepas) कोपीपोडों, ऐम्फ़िपोडों तथा अन्य अपेक्षाकृत बड़े जीवों को भी पकड़ लेते हैं और इसलिए वे परभक्षी होते हैं। राइज़ोसेफ़ैलन सिर्रीपीड परजीवी होते हैं तथा सामान्यतः केकड़ों पर परजीवी होते हैं।

- कीट

थलीय आर्थ्रोपोडों में कीट ऐसे प्राणी हैं जिनमें भांति-भांति के आहार स्वभावों के अनुकूल मुखांगों में नानाविध प्रकार के अनुकूलन बन गए हैं। कीटों के मुखांगों का विस्तृत विवरण इसी पाठ्यक्रम की इकाई 5 में दिया गया है। संक्षेप में इनके मुखांगों में आने वाले भाग हैं लेब्रम, मैंडिबल तथा प्रथम और द्वितीय मैक्सिला और ये भाग उस-उस प्रकार के अशन के लिए रूपांतरित होते हैं जिसके लिए कीटों का कोई वर्ग-विशेष विशेषित हो गया है। कीटों के मुखांग दो श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं- मैंडिबलीय प्ररूप यानी चबानेवाले और दूसरे चूषणी प्ररूप यानी चूसने वाले। ऑर्थोप्टेर्रन, डिक्टियोप्टेरन, कोलियोप्टेरन जैसे कुछ वर्गों में मैंडिबली मुखांग होते हैं। तितलियां और मच्छर चूषणी मुखांगों वाले कीटों के उदाहरण हैं। मैंडिबली प्ररूप (चित्र 9.24) में मैंडिबल सुविकसित होते हैं तथा मैक्सिला अपने प्ररूपी अरूपांतरित रूप में होते पाए जाते हैं। ये मुखांग आहार को काटने, चबाने तथा चूरा करने के लिए अनुकूलित होते हैं।

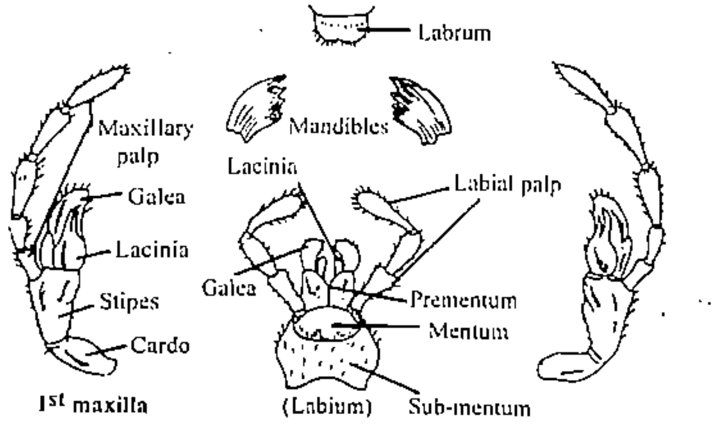

चित्र 9.24 : मैंडिबलीय प्रकार के मुखांग।

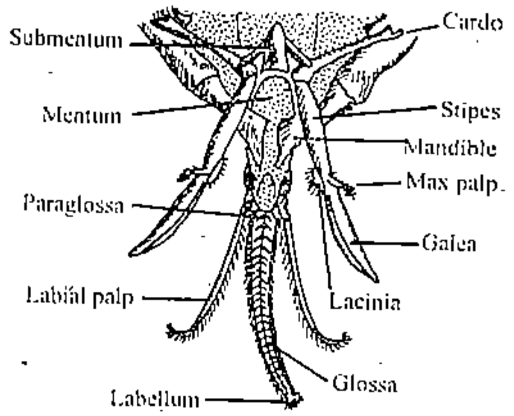

चित्र 9.25 : चूषणी प्रकार के मुखांग।

चूषणी प्ररूप (चित्र 9.25) में मैंडिबल न्यूनाधिक रूप में ह्रासित होते हैं तथा मैक्सिला सूचिकाओं (stylets) यानी सुइयों जैसे रूप ले लेते हैं जिन्हें वेधन अंगों के रूप में उपयोग किया जाता है। लेबियम भी जिसे दूसरा मैक्सिला भी कहा जाता है, वेधन एवं चूषण के लिए अनेक प्रकार से रूपांतरित हुआ होता है। इन दो मोटी-मोटी श्रेणियों को और आगे पांच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (1) कर्तन (biting) प्ररूप जिसमें दंतयुक्त मैंडिबल होते हैं, जैसे कि काकरोचों में पाए जाने वाले; (2) चूषण प्ररूप (sucking type) जिसमें रूपांतरित मैक्सिलाओं की बनी एक शुंडिका होती है, जैसे कि तितलियों में जो फूलों से मकरंद प्राप्त करने के लिए अनुकूल बनी होती है; (3) वेधन एवं चूषण प्ररूप (piercing and sucking type) जो प्राणियों तथा पादपों के ऊतकों में वेधन करने के लिए अनुकूल बनी होती है जैसे कि प्राणियों से रक्त तथा पादपों से रसों को चूसने के लिए, तथा इस प्रकार के मुखांग उदाहरणत: मच्छरों एवं मत्कुणों में पाए जाते हैं, (4) कर्तन एवं चूषण प्ररूप (biting and sucking type) जैसे कि मधुमक्खियों में तथा (5) स्पंजनी एवं चूषणी प्ररूप (sponging and sucking type) जैसे कि घरेलू मक्खियों में पाए जाते हैं।

कीटों की आहारनाल सामान्यत: तीन क्षेत्रों में विभाजित होती है- मुखपथ (स्टोमोडियम) अथवा अग्रांत्र, मध्यांत्र (मीज़ेंटेरॉन) तथा गुदपथ (प्रोक्टोडियम) अथवा पश्चांत्र (चित्र 9.26)। अग्रांत्र एक अग्र एक्टोडर्मी अंतर्वलन के रूप में तथा गुदपथ एक पश्चअंतर्वलन के रूप में प्रकट होते हैं। ये दोनों क्षेत्र काइटिन के अस्तर से युक्त होते हैं। मध्यांत्र ऐंडोडर्मी व्युत्पाद होती है। अग्रांत्र में ये भाग होते हैं- एक छोटी ग्रसिका, एक थैले जैसे क्रॉप तथा एक प्रोवेंट्रिकुलस यानी गिज़र्ड होता है जिसके भीतर विशेषकर ठोस अशनकर्त्ताओं में एक चर्वण उपकरण बना होता है। काकरोचों तथा टिड्डों में गिज़र्ड सुविकसित होता है तथा मधुमक्खियों में इसे मधु-जइर (honey stomach) कहते हैं। तरल आहारकर्त्ताओं में एक आगार पाया जा सकता है जो प्राय: ग्रसिका के साथ जुड़ा होता

है जैसा कि डिप्टेरा, लेपिडॉप्टेरा तथा हाइमेनॉप्टेरा में होता है। मध्यांत्र अक्सर नलिकाकार होती है और पाचन तथा अवशोषण का प्रमुख स्थान भी यही है। मध्यांत्र का एपिथीलियमी अस्तर तीन प्रकार की कोशिकाओं का बना होता है। एक प्रकार स्रावी कोशिकाओं का होता है जिनसे पाचन एंज़ाइमों का स्रवण होता है, दूसरा प्रकार जननिक कोशिकाओं का होता है जिनके द्वारा उन स्रावी कोशिकाओं का प्रतिस्थापन होता रहता है जो स्रवण के दौरान नष्ट हो जाती हैं, और तीसरा प्रकार कलशिका कोशिकाओं (goblet cells) का होता है जिनके कार्य के विषय में ठीक-ठीक जानकारी नहीं है। कई कीटों में मध्यांत्र में एक परिपोष झिल्ली (peritrophic membrane) का अस्तर बना होता है, यह झिल्ली अदृढ़ काइटिन रेशों की बनी होती है। यह झिल्ली मध्यांत्र एपिथीलियम को आहार कणों के स्पर्श से होने वाली खरोंच एवं आघात से बचाती है। मध्यांत्र तथा पश्चांत्र की संधि पर बनी माल्पीग्नी नलिकाओं के स्थान से पश्चांत्र का आरम्भ होना प्रकट होता है। पश्चांत्र में तीन क्षेत्र होते हैं : एक संकीर्ण क्षुद्रांत्र (इलियम), एक कुंडलित वृहदांत्र (कोलन) तथा एक चौड़ा मलाशय (रेक्टम)। अनेक कीटों में मलाशय के साथ जुड़ी मलाशय ग्रंथियां पायी जाती हैं। विष्ठा को गुदा द्वारा बाहर निकालने से पूर्व उसमें से जल के पुन: अवशोषण में मलाशय तथा मलाशय ग्रंथियों, इन दोनों की मुख्य भूमिका होती है।

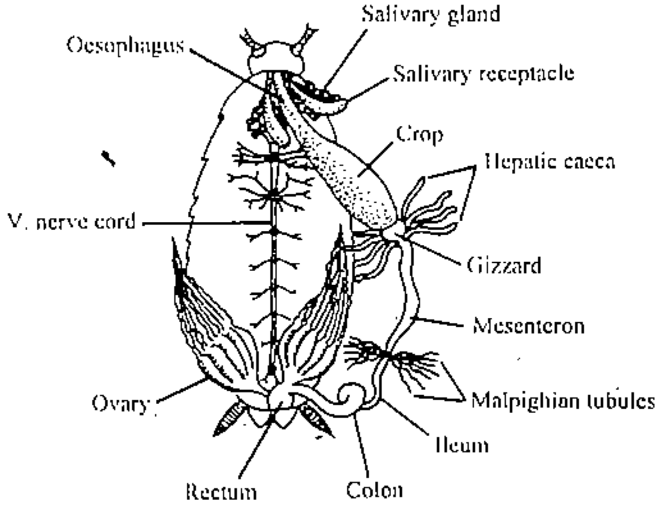

चित्र 9.26 : एक कीट का पाचन-तंत्र।

कीटों के अनेक समूहों में लार ग्रंथियां होती हैं तथा ये ग्रंथियां विविध स्वरूप और संरचना ग्रहण किये हुए होती है। ऑर्थोप्टेरा में लार ग्रंथियां बड़ी होती हैं और उनमें चार पालियां तथा आगार होते हैं। लेपिडॉप्टेरेनों में लार ग्रंथियां नलिकाकार तंतुओं के रूप में होते हैं। हेमिप्टेरस कीटों में लार ग्रंथियों में चार पालियां और आगार होते हैं। रक्तभोजी कीटों में जैसे कि मच्छरों में लार में एक प्रति-स्कंदक होता है जो रक्त को क्रॉप में निर्बाध रूप में आते देने में सहायता करता है। मधु मक्खियों में लार स्रावों के कई कार्य होते हैं- शर्कराओं का परिवर्तन, फ़ॉर्मिक एसिड जैसे परिरक्षकों का उत्पादन तथा पराग के पाचन में सहायता करना।

• मिरिएपोडा तथा ऐरेक्निड-प्राणी

आप बहुत संक्षेप में अन्य थलीय आर्थ्रोपोडों के पाचन-तंत्र के विषय में पढ़ेंगे। मिरिएपोडा क्लास के अंतर्गत आने वाले सेंटीपीडों (कांतरों) तथा मिलीपीडों (गिज़ाइयों) में प्ररूपी आर्थ्रोपोडन पाचन-तंत्र पाया जाता है। सेंटीपीडों की आहार-नाल में एक छोटी अग्रांत्र; एक बहुत लम्बी मध्यांत्र जो लगभग शरीर की पूरी लम्बाई में चलती जाती होती है और एक छोटी पश्चांत्र होती है (चित्र 9.27)। एक जोड़ी लार-ग्रंथियां अग्रांत्र में खुलती हैं। अधिकतर सेंटीपीड परभक्षी होते हैं तथा छोटे आकार के नानाविध आर्थ्रोपोडों को खाते हैं। कुछ काइलोपोडों (Chilopods) को छोटे-छोटे मेंढकों, टोडों, सांपों, पक्षियों तथा चूहों को खाते देखा गया है। विलकारी सेंटीपीड केंचुओं, घोंघों तथा नीमैटोडों को खाते हैं। इनमें मैंडिबल, प्रथम मैक्सिले, द्वितीय मैक्सिले तथा लेब्रिम इनके मुखांग हैं (चित्र 9.28)।

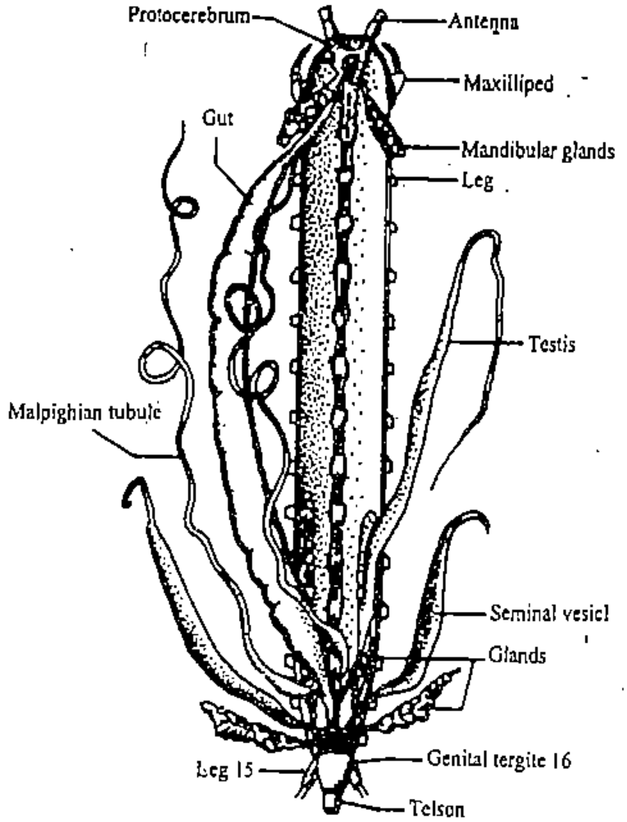

चित्र 9.27 : एक सेंटीपीड (कातर) का पाचन-तंत्र।

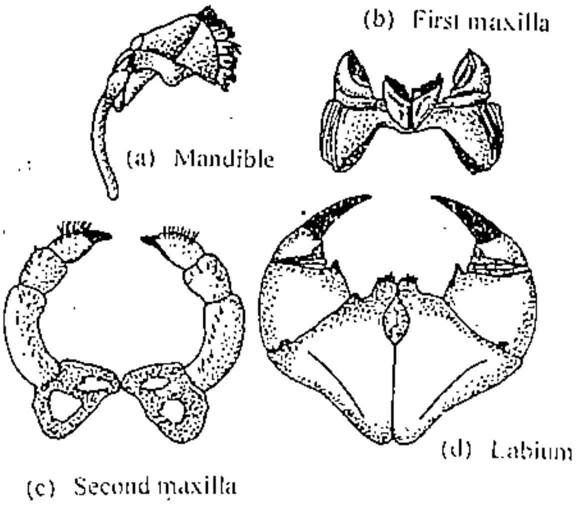

चित्र 9.28 : सेंटीपीट के मुखांग।

मिलीपीडों में आहारनाल लगभग बिल्कुल सेंटीपीडों के ही समान होती है। मगर सेंटीपीडों से भिन्न मिलीपीड शाकभक्षी होते तथा सड़ती-गलती वनस्पति का आहार करते हैं। मुखांगों में एक छोटा सात-खंडीय ऐंटेना के अतिरिक्त एक मैंडिबल तथा एक अन्य सरंचना ग्नैथेकाइलेरियम (gnathochilarium) होती है (चित्र 9.29)। मैंडिबल तीन भागों के बने होते हैं- एक समीपस्थ कार्डो (cardo), एक मध्य स्टाइप्स (stipes) तथा एक दूरस्थ मैला मैंडिबुलेरिस (mala mandibularis)। दूरस्थ अंश पर एक बड़ा गतिशील दांत और दंतुरित कूटकों से युक्त एक चर्वणकारी प्लेट होती है। ग्नैथोकाइलेरियम कीटों के लेबियम के समान होता है और यह वास्तव में दोनों ओर के मैक्सिलाओं के संलयन से बना हुआ है।

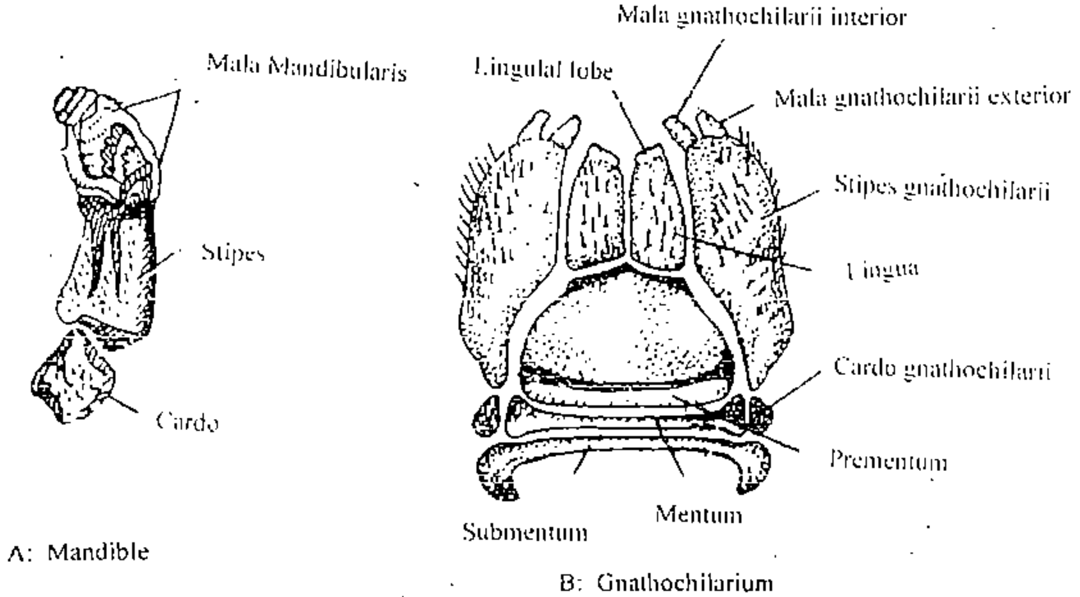

चित्र 9.29 : एक मिलीपीड का ग्नैथोकाइलेरियम।

ऐरेक्निड आमतौर से मांसाहारी तथा परभक्षी होते हैं। ये छोटे-छोटे आर्थ्रोपोडों को खाते हैं। शिकार को पकड़ने का काम शीर्ष उपांग कीलिसेरी तथा पेडिपैल्पाई करते हैं। पाचन का कुछ अंश प्राणी के शरीर के बाहर होता है। जिस समय कीलिसेरी शिकार को पकड़े रहते हैं तब मध्यांत्र के पाचक एंज़ाइम शिकार के ऊपर उड़ेले जाते हैं। अंशतः पचा अर्धठोस आहार मुख तथा ग्रसनी में से गुज़रता हुआ अग्रांत्र की ग्रसिका में पहुंच जाता है। तदुपरांत आहार मध्यांत्र में पहुंचता है जिसमें एक केंद्रीय नलिका होती है तथा बहुत से पार्श्व अंधवर्ध होते हैं। सभी अंधवर्धों में अंशतः पचा भोजन भर जाता है। आगे का पाचन मध्यांत्र के अंधवर्धों में होता है। इन्हीं अंधवर्धों की अवशोषी कोशिकाएं पचे भोजन का अवशोषण करती हैं। मध्यांत्र उदर की पूरी लम्बाई में चलती जाती है और अपने अंतिम भाग में यह स्क्लेरोटित होकर पश्चांत्र बनाती है। पश्चांत्र पीछे गुदा द्वारा बाहर को खुलती है।

बोध प्रश्न 4

दिए गए विकल्पों में सही उत्तर चुनिए:-

1) लैमेलिब्रैंक सिलियरी-श्लेष्म/रेतन मुखांग होते हैं।
2) यूलैमेलिब्रैंकों में गिल तंतु अवलनित/वलनित होते हैं।
3) जब जल गिल तंतुओं में से होकर निकलता है तब आहार पार्श्व-आननी/आननी सिलिया द्वारा एकत्रित किया जाता है।
4) क्रिस्टलीय शलाका म्यूकोप्रोटीन/ग्लाइकोप्रोटीन की बनी होती है।
5) गिल पथों पर सूक्ष्म/स्थूल सिलिया बड़े आकार कणों को एक तरफ़ को हटाते हैं।
6) क्रिस्टलीय शलाका से कार्बोहाइड्रेट/प्रोटीन पाचक एंज़ाइम निकलते हैं।
7) अधिसंख्य गैस्ट्रोपोडों में पाचन बाह्यकोशिकीय/अंतःकोशिकीय होता है।
8) शाकाहारी सूक्ष्मभक्षी गैस्ट्रोपोडों में क्रिस्टलीय शलाका होती है/नहीं होती।
9) सक्रियतः तैरने वाले इकाइनोडर्म परभक्षी बृहतभक्षी/सिलियरी-श्लेष्म आहारकर्त्ता होते हैं।
10) क्रस्टेशियन सिलियरी-श्लेष्म/निस्यंदन आहारकर्त्ता होते हैं।

9.3 अकॉर्डेटों में उत्सर्जन

जैसा कि इस इकाई के आरम्भ में ही कहा गया है उत्सर्जन का अर्थ है उपापचय के वर्ज्य उत्पादों को बाहर निकाला जाना यानी ऊर्जा-सम्पन्न यौगिकों के ऑक्सीकरण से निकलने वाली कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल को और प्रोटीनों एवं न्यूक्लिइक अम्लों के उपापचन से निकलने वाले नाइट्रोजनी अपशिष्टों को बाहर निकाला जाना। तथापि यहां हम अपने इस विवरण को नाइट्रोजनी अपशिष्टों के निष्कासन तक ही सीमित रखेंगे। छोटे आकार के, और ख़ास तौर से जलीय प्राणियों में नाइट्रोजनी अपशिष्टों के मात्र विसरण के द्वारा निष्कासन में शरीर की सतह की ही मुख्य भूमिका होती है। और तो और बृहत्तर आकार के जलीय प्राणियों में भी कुछ विसरण तो देह-सतह से होता ही है, मगर उनमें उत्सर्जन के लिए विशेषित अंगों का विकास हुआ है तथा नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थ के निष्कासन में इन्हीं अंगों की मुख्य भूमिका होती है। फिर भी एक बात याद रखने की यह है कि इनमें से अनेक अंग मूल रूप में परासरणनियमनकारी (osmoregulatory) कार्य करते हैं न कि उत्सर्गी। सुनिश्चित रूप में उत्सर्जन में कार्य करने वाले उत्सर्गी अंग कूटसीलोमी प्राणियों तथा उनके ऊपर के स्तरों के प्राणियों में पाए जाते हैं। अनेक मेटाज़ोअन समूहों में उत्सर्गी अंगों के रूप में नेफ्रीडिया होते हैं। नेफ्रीडियम का परिवर्धन एक्टोडर्म से अभिकेंद्रीयतः होता है। नेफ्रीडियम की अवकाशिका नेफ्रीडियल कोशिकाओं में गुहा बन जाने के द्वारा बनती है। अतः नेफ्रीडिया अंतःकोशिकीय होते हैं। आदिम प्राणियों में अवकाशिका भीतर की ओर बंद होती है लेकिन आगे चलकर यह सीलोम में एक सूराख प्राप्त कर लेते हैं। इस छिद्र को नेफ्रीडियल कीप (nephridial funnel) अथवा नेफ्रीडियममुख (nephrostome) कहते हैं। बाहर की ओर को इसके छिद्र को नेफ्रीडियमछिद्र (nephridiopore) कहते हैं (चित्र 9.30)।

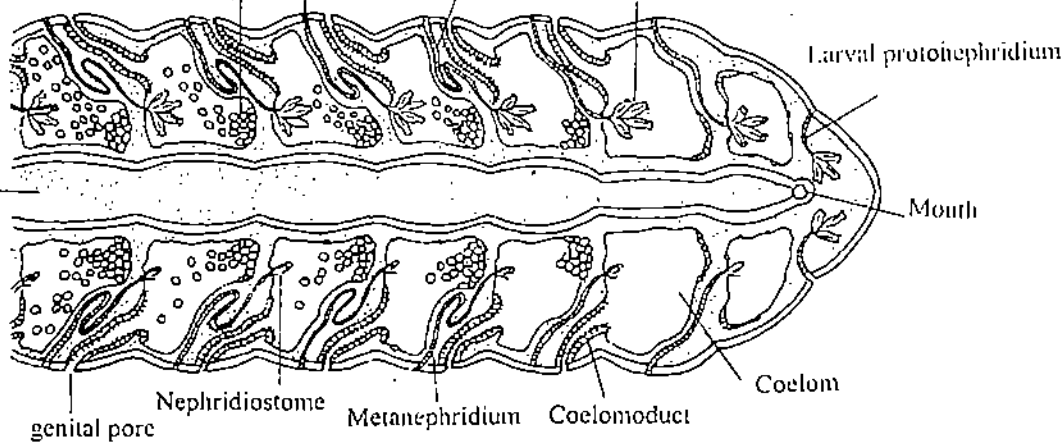

चित्र 9.30 : एक आदिम ऐनेलिड का अनुदैर्घ्य सेक्शन जिसमें बायीं ओर आदिनेफ्रीडियम तथा दाहिनी ओर पश्चनेफ्रीडियम दिखाए गए हैं।

9.3.1 आदिनेफ्रीडिया (protonephridia) तथा पश्चनेफ्रीडिया (metanephridia)

नेफ्रीडिया के दो प्रमुख रूप पाए जाते हैं- आदिनेफ्रीडिया (protonephridia) तथा पश्चनेफ्रीडिया (metanephridia)। आदिनेफ्रीडिया चपटे कृमियों में पाए जाते हैं। आदिनेफ्रीडिया नालें भीतर की ओर बंद रूप में ज्वाला कोशिकाओं (flame cells) अथवा सॉलीनोसाइटों (solenocytes) नामक संरचनाओं में समाप्त होती हैं। ज्वाला कोशिकाओं में केंद्रीय गुहाएं होती हैं जो नलिकाओं की गुहाओं के साथ जारी रहती हैं, और स्वयं इन के भीतर सिलिया का एक गुच्छा होता है जिसे ज्वाला (flame) कहते हैं (चित्र 9.31)। वास्तव में ज्वाला कोशिका, नलिका की प्रथम कोशिका के साथ उंगली जैसे प्रवर्धों के द्वारा अंतरांगलित (interdigitated) होती है। सॉलीनोसाइटों में कोशिका-अवकाशिका एक कोमल नलिका के रूप में लम्बी हो गयी होती है तथा ज्वाला में ह्रास होकर वह मात्र एक अकेला कशाभ (फ्लैजेलम) बनी रह जाती है। चपटे कृमियों में सामान्यत:

बहुत बार एक बिल्कुल अलग प्रकार की नलिकाएं होती हैं जिन्हें सीलोमवाहिनियां कहते हैं, ये सीलोम को बाहरी पर्यावरण से जोड़ देती हैं। ये अपकेंद्रीय रूप में बनती हैं, और मीज़ोडर्मी उत्पाद होती हैं। ये सीलोमी गुहा की दीवार की बहिर्वृद्धियों के रूप में पायी जाती हैं। इस नलिका का अस्तर कोशिका-परत का बना होता है और इसलिए वह अंत:कोशिकीय नहीं वरन अंतराकोशिकीय होती है। यह सीलोम में एक सिलियायित कीप के द्वारा खुलती है। इस कीप को सीलोममुख (coelomostone) कहते हैं। सीलोमवाहिनी• का मूल कार्य जनन कोशिकाओं को बाहर निकालना होता है, मगर द्वितीयक रूप में इनकी संरचना तथा कार्य समाप्त हो गए हो सकते हैं।

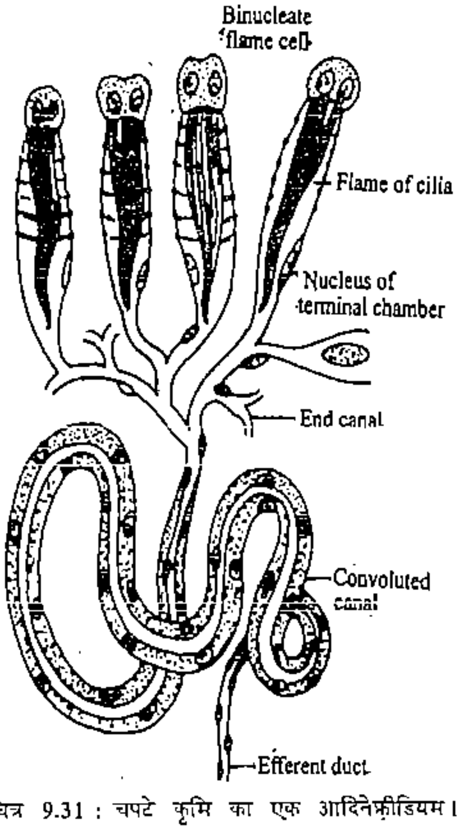

चित्र 9.31 : चपटे कृमि का एक आदिनेफ्रीडियम।

एक जोड़ी आदिनेफ्रीडिया होते हैं। आदिनेफ्रीडिया नालें बहुत विशाखित होती हैं और प्रत्येक शाखा के अंत पर ज्वाला कोशिकाएं होती हैं। ज्वाला कोशिकाएं समस्त पैरेंकाइमा में छितरायी रहती हैं। ज्वाला-कोशिकाएं निस्यंदन (छानने का) कार्य करती हैं, और छना हुआ तरल कशाभों द्वारा आगे-आगे चलाया जाता है। नेफ्रीडियमी ऐपिथीलियम का काम अवशोषण करना तथा स्रवण करना होता है। ये कार्यिकीय क्रियाविधियां उसी प्रकार की होती हैं जैसी कि कशेरूकी वृक्क (गुर्दे) में होती हैं। ऐनेलिडों में नेफ्रीडिया में उनके भीतरी सिरों पर अक्सर सिलियायित कीपें बनी होती हैं और तब इन्हें पश्चनेफ्रीडिया कहते हैं। पश्चनेफ्रीडिया दोनों सिरों पर खुले होते हैं। सीलोम में स्थित इनका नेफ्रीडिया मुख अपने सिलिया द्वारा वर्ज्य पदार्थों को धक्का दे देकर उन्हें नेफ्रीडियल नलिकाओं में पहुंचाता है जहां से वे नेफ्रीडियम छिद्रों के द्वारा बाहर को निकाल दिए जाते हैं मगर कुछ पौलीकीटों के ट्रोकोफोर (trochophore) लार्वा में एक जोड़ी सरल प्ररूपी आदिनेफ्रीडिया होते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक ज्वाला कोशिका होती हैं जिसके भीतर एक अकेला कशाभ होता है। मगर वयस्कों में खंडश: व्यवस्थित पश्चनेफ्रीडिया होते हैं जिनमें खुली सिलियायित सरणियां होती हैं। कुछ वयस्क पौलीकीटों जैसे कि *नेफ़्थिस (Nephthys)* तथा *फ़िल्लोडसी (Phyllodoce)* में सॉलीनोसाइटों से युक्त केवल आदिनेफ्रीडिया होते हैं। केवल एक पौलीकीट फ़ैमिली कैपिटेलिडी (Capitellidae) को छोड़कर जिसमें नेफ्रीडिया तथा सीलोम वाहिनियां अलग-अलग होती हैं, शेष फ़ैमिलियों में वे दोनों एक साथ आकर एक संयुक्त अंग नेफ़्रोमिक्सियम (nephromixium) बनाते हैं। नेफ़्रोमिक्सियम में शामिल नेफ्रीडियम या तो आदिनेफ्रीडियम हो सकता है या पश्चनेफ्रीडियम। आदिनेफ़्रोमिक्सियम (चित्र 9.32a) में परिवर्धनशील सीलोमवाहिनी आदिनेफ्रीडियल नाल के सहारे-सहारे पीछे को बढ़ती जाती है और लैंगिक परिपक्वता आने पर इन दोनों के बीच के खुला संबंध बन जाता है। पश्चनेफ़्रोमिक्सियम में (चित्र 9.32b) नेफ्रीडियल घटक एक पश्चनेफ्रीडियम होता है (चित्र 9.32c)। ऐरे*निकोला* में पुन:संयोजित संरचना एक मिक्सोनेफ्रीडियम बनाती है जो उत्सर्जन का तथा जनन कोशिकाओं के परिवहन का, ये दोनों काम करता है।

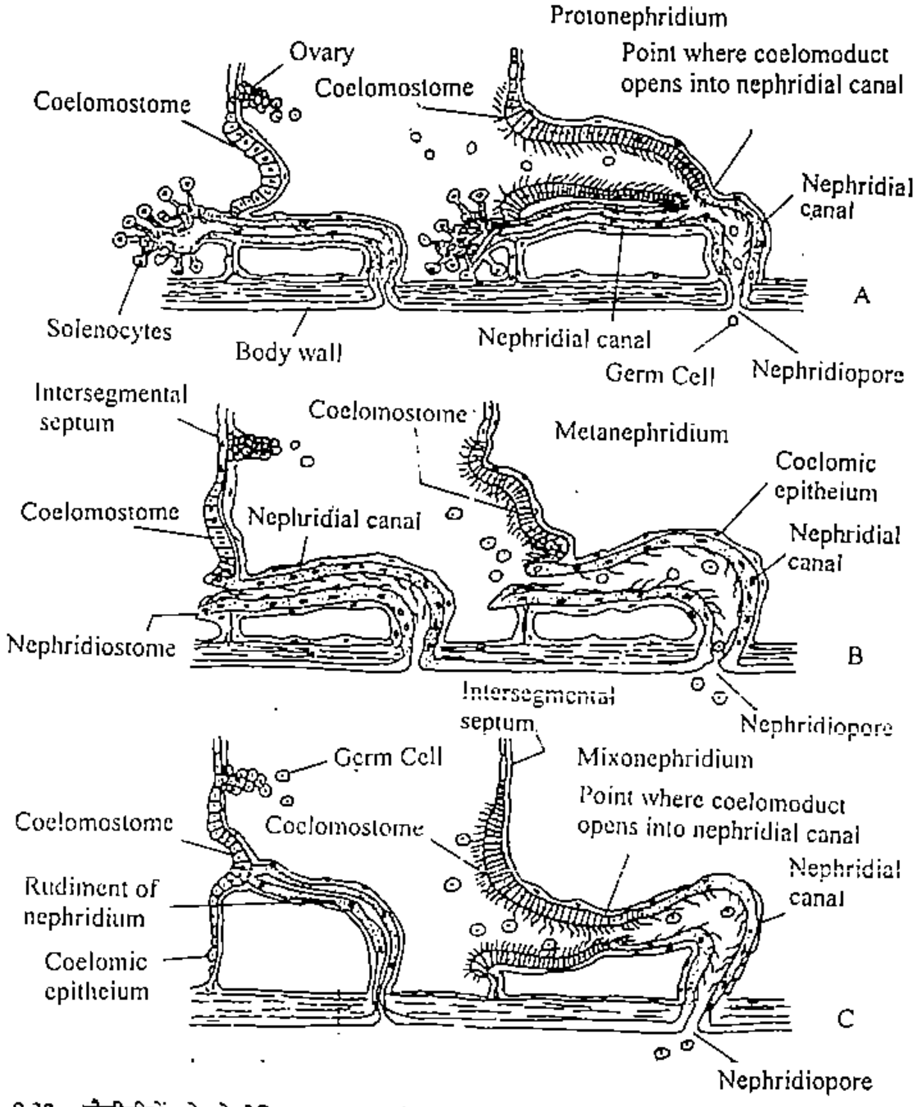

चित्र 9.32 : पौलीकीटों के नेफ्रीडिया। a) आदिनेफ़्रोमिक्सियम; b) पश्चनेफ़्रोमिक्सियम; c) मिक्सोनेफ्रीडियम।

ओलाइगोकीटों में सभी नेफ्रीडिया पश्चनेफ्रीडियम प्रकार के होते हैं। सीलोमवाहिनियां भी होती हैं, लेकिन वे केवल जनन खण्डों तक ही सीमित होती हैं, जिसमें प्रत्येक गोनड से संबंधित एक-एक वाहिनी होती है। इसी प्रकार की व्यवस्था जोंकों में भी पायी जाती है।

9.3.2 कॉक्सल ग्रंथियां (Coxal Glands)

ओनोइकोफोरा (पेरिपेटस) में लगभग प्रत्येक खण्ड में एक-एक जोड़ी कॉक्सल ग्रंथियां होती हैं। (चित्र 9.33a)। परिवर्धन होने में, प्रत्येक खण्ड में एक खोखला फ़ॉलिकल अथवा सोमाइट प्रारम्भ होता है और धड़ प्रदेश में ये फ़ॉलिकल पृष्ठ तथा अधरपार्श्व भागों में विभाजित हो जाते हैं। अधरपार्श्व भाग उपांगों में बढ़ जाता है और उसकी गुहा कॉक्सल ग्रंथि का अंत्य थैला बन जाती है। अंत्य थैला एक सिलियायित नाल जिसे सीलोमोस्टोम कहते हैं, एक कुंडलित उत्सर्गी नाल में खुलता है। नाल का अंतिम भाग फैलकर एक आशय बना लेता है। कॉक्सल ग्रंथियां सीलोमवाहिनियों से व्युत्पन्न हुई होती हैं। आर्थ्रोपोडों में सीलोमवाहिनियों से कॉक्सल ग्रंथियों के बनने और गोनडों तथा उनकी वाहिनियों के बनने में समानता है।

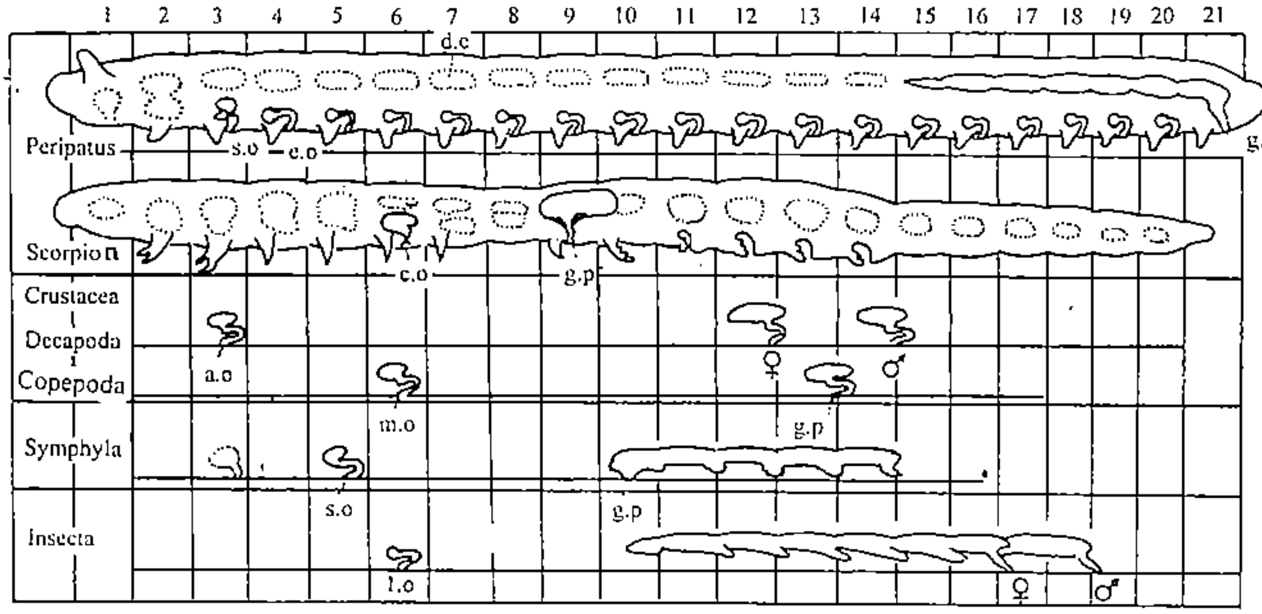

a.o; of coxal organ c.o; of excretory organ e.o; of lingual gland l.o; of maxillary organ m.o; of salivary organ s.o; Dorsal coelom d.c; genital pore g.p; (both sexes indicated in Decapoda and Insecta)

चित्र 9.33 : विभिन्न आर्थ्रोपोडों में उत्सर्गी तथा जनन सीलोमवाहिनियां a) पेरिपेटस; b) बिच्छू; c) क्रस्टेशिया; d) सिम्फ़ाइला; e) इन्सेक्टा।

ऐरेक्निडों तथा क्रस्टेशियनों में भी इसी प्रकार की कॉक्सल ग्रंथियां पायी जाती हैं, बस केवल इतना अंतर है कि इनकी संख्या बहुत कम हो गयी है (चित्र 9.33b तथा c)। क्रस्टेशियनों में ये तीसरे तथा छठे खण्डों में पायी जाती हैं और बाहर को उनके खुलने के स्थान के आधार पर उन्हें नाम दिए जाते हैं। जो ग्रंथि तीसरे खण्ड में ऐंटेना के आधार पर खुलती है उसे ऐंटेनल ग्रंथि (antennal gland) कहते हैं (चित्र 9.34)। जो ग्रंथि छठे खण्ड में दूसरे मैक्सिला के आधार पर खुलती है उसे **मैक्सिलरी ग्रंथि (maxillary gland)** कहते हैं। ऐंटेनल ग्रंथि इन वर्गों के लार्वों में पायी जाती है- ब्रैंकियोपोडा, ऑस्ट्रैकोडा, कोपीपोडा, ब्रैंकियूरा, सिरीपीडिया तथा निम्नतर मैलाकॉस्ट्राका लेकिन इन सबके वयस्कों में मैक्सिलरी ग्रंथियां होती हैं। वयस्क ऐम्फ़िपोड तथा डेकापोड क्रस्टेशियनों में ऐंटेनल ग्रंथियां होती हैं। क्रस्टेशियनों के आदिम समूह माइसिडेसी में ऐंटेनल तथा मैक्सिलरी दोनों ही ग्रंथियां कार्यशील होती हैं।

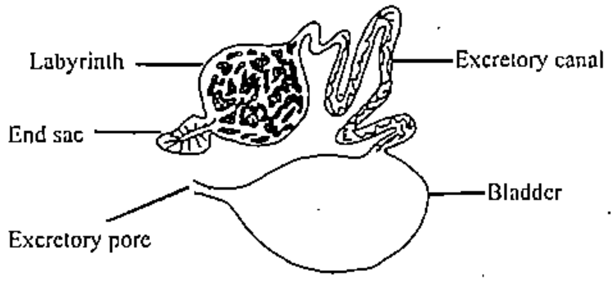

चित्र 9.34 : एक क्रस्टेशियन की ऐंटेनल ग्रंथि।

अधिकतर ऐरेक्निडों में एक जोड़ी कॉक्सल ग्रंथियां जो छठे खण्ड में खुलती हैं तीसरी जोड़ी पदचलनी टांगों के आधार पर खुलती हैं (चित्र 9.35b)। *लिमुलस* में चार जोड़ी कॉक्सल ग्रंथियां होती हैं।

9.3.3 माल्पीझी नलिकाएं (Malpighian Tubules)

अन्य आर्थ्रोपोडों में जैसे कि कीटों तथा मिरिएपोडों में उत्सर्गी अंगों के रूप में माल्पीझी नलिकाएं होती हैं जो आहार नाल की बहिर्वृद्धियां होती हैं। माल्पीझी नलिकाएं बिल्कुल ही नई सरंचनाएं हैं जिनकी नेफ्रीडिया अथवा सीलोमवाहिनियों से कोई समानता नहीं होती। सामान्यतः माल्पीझी नलिकाएं एकल परती एपिथीलियम की बनी होती हैं और वे हीमोसील के रक्त में डूबी रहती हैं। सक्रिय स्रवण क्रिया के द्वारा नाइट्रोजनी अपशिष्टों तथा घुले लवणों के साथ-साथ जल माल्पीझी नलिका की अवकाशिका में पहुंच जाता है। यह स्रवण अनिवार्यतः नलिकाओं में दूरस्थ भागों में होता है। नलिका का समीपस्थ भाग और साथ ही मलाशय भी अवशोषण के स्थान होते हैं। अधिकतर थलीय आर्थ्रोपोड यूरिक अम्ल का उत्सर्जन करते हैं। जल के पुनः अवशोषण से नाइट्रोजनी अपशिष्ट के रूप में यूरेट क्रिस्टल बन जाते हैं, और इसीलिए इन प्राणियों को **यूरिकोत्सर्गी (uricotelic)** कहते हैं। अकशेरूकियों के उत्सर्गी उत्पादों के विवरण के लिए LSE-05 "प्राणि कार्यिकी" पाठ्यक्रम के खण्ड 1 की इकाई 4 देखिए।

पेरिपैटस हालांकि थलवासी है मगर उसमें माल्पीझी नलिकाएं नहीं होतीं। फिर भी यह यूरिकोत्सर्गी है। यूरिक अम्ल का उत्सर्जन आंत्र एपिथीलियम द्वारा आंत्र की अवकाशिका में होता है। यह आंत्र में से एक परिपोश झिल्ली में बंद होकर बाहर निकाला जाता है, यह झिल्ली हर 24 घंटे में उतार फेंक दी जाती है। इसमें खण्डशः व्यवस्थित सीलोमी उत्सर्गी अंग होते हैं। *पेरिपैटस* की सीलोमवाहिनी को जलीय पूर्वजपरम्परा का अवशेषी अंग माना जा सकता है, जिसमें बहुत ह्रासित क्रिया होती है।

9.3.4 मौलस्का की सीलोमवाहिनियां

मौलस्का में भी क्रस्टेशिया की ही तरह नेफ्रीडिया नहीं होते। मगर कुछ लार्वीय पल्मोनैटों में निश्चय ही आदिनेफ्रीडिया होते हैं जिससे लगता है कि मौलस्कों में ये परवर्ती रूप में समाप्त हो गए हैं। मौलस्का के सभी वर्गों में उत्सर्गी तंत्र लगभग एक समान होते हैं। माना जाता है कि मौलस्कों में दो सीलोमी गुहाएं पृष्ठ दिशा में पहुंचकर परस्पर मिल जाती हैं जिससे हृदय इनके भीतर बंद हो जाता है और इनकी दीवारों से जनन कोशिकाओं का प्रचुरोद्भवन होता है। इनकी गुहाओं में और आगे विभेदन होकर आगे की ओर गोनड, मध्य में परिहृद् नाल (pericardial canal) और पश्चतः गोनडवाहिनी (gonoduct) बन जाती है। इनके अलावा अंतिम खण्ड का एक उत्सर्गी कार्य भी था (चित्र 9.35a)। एप्लेकोफोरा (Aplacophora) में वयस्कों की सीलोमवाहिनियाँ एक जोड़ी नलिकीय सरंचनाओं की तरह होती हैं जो सीलोमी गुहा से

चलकर बाहर को खुलती हैं तथा आदिम रूप में ये ही जनन वाहिनियां थीं (चित्र 9.35b)। मगर अन्य मौलस्कों में पाए जाने वाले रूपांतरण निम्न दिशाओं में होता है:-

i) कुछ मात्रा में असममिति आ जाती है

ii) जनन तथा उत्सर्गी अंग अलग-अलग हो जाते हैं

पौलीप्लैकोफ़ोरा में सीलोममुख के क्षेत्र में सीलोमवाहिनियां लम्बाई में चिर जाती हैं और गोनड-गुहाएं परिहृद-सीलोम से कट जाती हैं। उत्सर्गी सीलोम परिहृद सीलोम से जुड़ी रहती है (चित्र 9.35c)। गैस्ट्रोपोडों में सीलोमी सम्मिश्र में एक स्पष्ट असममिति पायी जाती है। बायां गोनड विलीन हो गया है तथा दाहिना गोनड सीलोमवाहिनी में खुलता है जिसका वृक्कीय कार्य समाप्त हो गया और परिहृद सीलोम के साथ इसका संयोजन भी जाता रहा। उत्सर्गी अंग केवल एक ओर (बांया वृक्क) पाया जाता है तथा वट्ट बड़ा एवं मोटी दीवार वाला होता है। प्रोज़ोब्रैंकों में उत्सर्गी छिद्र प्रावार गुहा के पश्च भाग में स्थित होता है और पल्मोनैटों में यह प्रावार गुहा के बाहर खुलता है।

लैमेलिब्रैंकों में यद्यपि गैस्ट्रोपोडों के जैसी असममिति में जटिलताएं नहीं होतीं, मगर जनन और वृक्क वाहिनियां पृथक होती हैं। आदिम समूह प्राटोब्रैंक में सम्पूर्ण सीलोमवाहिनी का कार्य उत्सर्गी ही होता है गैमीट (युग्मक) वृक्क अंगों में छोड़े जाते हैं (चित्र 9.35d)। फ़िलिब्रैंकों में सीलोमवाहिनी "U" आकृति की सरंचना के रूप में मुड़ गयी होती है। इसमें निचुली शाखा ग्रंथीय होती है। अधिक दूरस्थ ऊपरी शाखा एक आशय के रूप में होती है (चित्र 9.35e)। संयोजन अपनी जगह से हटकर वृक्क के पिछले सिरे पर पहुंच जाता है। यूलैमेलिब्रैंकों में इन दो अंगों के अलग-अलग छिद्र बन गए हैं (चित्र 9.35f)।

सेफ़ैलोपोडों में भी सीलोमी सम्मिश्र के जनन तथा उत्सर्गी घटक अलग-अलग हो जाते हैं। जनन वाहिका अब वृक्कपरिहृद नाल तथा वृक्क से अलग होने लगती है (चित्र 9.35g)।

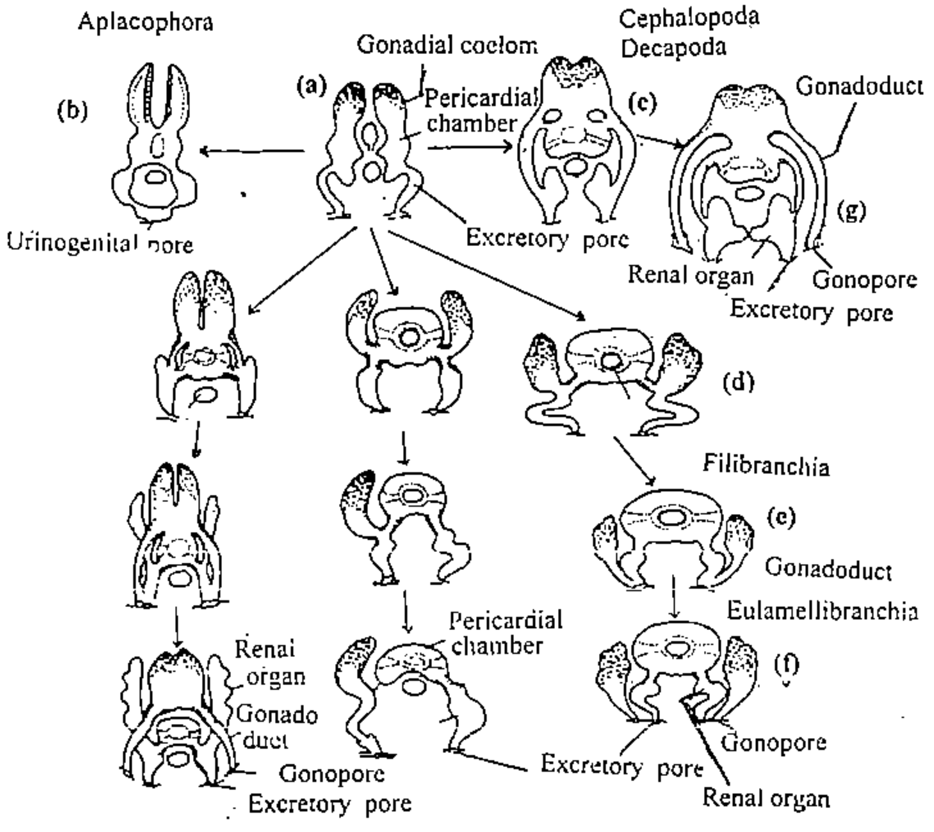

चित्र 9.35 : मौलस्का की सीलोम तथा सीलोमवाहिनियां: (a) आदिम मौलस्का; (b) एप्लैकोफ़ोरा; (c) पौलीप्लैकोफ़ोरा; (d) प्रोटोब्रैंक; (e) फ़िलिब्रैंक; (f) यूलैमेलिब्रैंक; (g) सेफ़ैलोपोड।

बोध प्रश्न 5

निम्न को परस्पर मिलाइए

a)	चपटे कृमि	1)	माल्पीझी नलिकाएं
b)	ऐनेलिडा	2)	पश्चनेफ्रीडिया
c)	क्रस्टेशियन	3)	सीलोमवाहिनियां (वृक्क)
d)	कीट	4)	कॉक्सल ग्रंथियां
e)	मौलस्क	5)	आदिनेफ्रीडिया

9.4 अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में परासरणनियमन

इकाई 2 में आप पढ़ चुके हैं कि प्रोटोज़ोआ में, और ख़ासतौर से अलवणजलीय प्रोटोज़ोआ में, शरीर में जल की मात्रा का नियमन करने में संकुंचनशील धानियां (contractile vacules) की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अलवणजलीय जीवों को अक्सर एक समस्या का सामना करना पड़ता है, वह यह कि उनके शरीर पानी की भारी मात्रा भीतर पहुंचती जाती है और उन्हें लगातार अपने शरीर की जल मात्रा को नियमित करना होता है। समुद्री प्राणी हालांकि जिस माध्यम में वे रहते हैं उससे समपरासरी (isotonic) होते हैं फिर भी उन्हें अपने देह-तरलों की आयनी संघटना बनाए रखनी होती है जो उनके लिए अपनी अपनी ख़ास होती है। थलीय जीवों के सामने जल-सरंक्षण की समस्या होती है और उनमें ऐसे अनुकूलन बन गए हैं जो शरीर से पानी की हानि को रोकते हैं। जीव के परासरणी संबंधों को उसके शरीर के तरलों की आयनी संघटना के संबंध में देखा-समझा जाना ज़रूरी है। आयनी नियमन को परिभाषित करने में हम कह सकते हैं कि यह देह-तरलों में आयनों के उन सांद्रणों को कायम बनाए रखना होता है जो अन्यथा उनके माध्यम से निष्क्रिय संतुलन के कारण बदल सकते हैं। इस अनुभाग में हम विभिन्न आवासों में रहने के लिए अनुकूलित मेटाज़ोअन प्राणियों में पायी जाने वाली परासरणी एवं आयनी नियमन क्रियाविधियों का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

9.4.1 अलवणजलीय मेटाज़ोअनों में परासरणनियमन

अलवणजलीय तथा नुनखरे (brackish) जल के प्राणी एक अल्पपरासारी (hypoosmotic, कम परासरण दाब वाले) पर्यावरण में रहते हैं तथा उन्हें अपने देह-तरलों की अधिपरासारी (hyperosmotic, उच्चतर परासारी) दाब पर बनाए रखना होता है। वे अपने निवास के माध्यम से लवणता में थोड़े से ही अंतरों का सहन कर सकते हैं। ऐसे प्राणियों को तुनुलवणी (stenohaline) प्राणी कहते हैं। यदि वे लवणता के भारी अंतरों को सहन करने योग्य होते हैं तो उन्हें पृथुलवणी (euryhaline) प्राणी कहा जाता है। परासरण सांद्रण की दृष्टि से उनके आवास के पर्यावरण उनके देह तरलों से कम सांद्रित होते हैं। उन्हें जल के लगातार शरीर के भीतर को प्रवेश करने और शरीर के लवणों का शरीर से बाहर निकलते जाने की समस्या का सामना करना होता है। आपने इस पाठ्यक्रम के खण्ड 1 की इकाई 2 में अलवणजलीय प्रोटोज़ोअनों के परासरणनियमन में उनकी संकुंचनशील धानियों का जल-पम्पों के रूप में कार्य करने के विषय में अध्ययन कर रखा है। इस प्रकार की धानियां अलवण जलीय स्पंजों में भी पायी जाती हैं। अलवणजलीय चपटे कृमियों के आदि नेफ्रीडिया, ऐनेलिडों के मेटानेफ्रीडिया तथा क्रस्टेशियनों की कॉक्सल ग्रंथियां ऐसे ही अन्य जल-पम्प हैं जिनमें देह-तरलों की बड़ी-बड़ी मात्राओं को शरीर से बाहर निकाल देने की क्षमता होती है। वास्तव में इन अंगों का प्राथमिक कार्य जल-संतुलन करना ही होता है न कि नाइट्रोजनी अपशिष्टों का उत्सर्जन।

कुछ प्राणियों में जल को शरीर से बाहर निकालने के लिए कोई विशेष अंग नहीं होते। *हाइड्रा* एक ऐसा ही उदाहरण है। *हाइड्रा* में जल और लवण दोनों का नियमन सोडियम के सक्रिय परिवहन के द्वारा सम्पन्न होता है। पर्यावरण में कैल्सियम अथवा सोडियम के अभाव से हाइड्रा की परासरणनियमनकारी प्रक्रिया भंग हो जाती है। सोडियम को आहार-नाल में पम्प किया जाता

है और उसके बाद जल का परासरण-प्रवणता के अनुरूप जल का बाहर निष्क्रिय प्रवाह होता है। मीज़ोग्लीया एक बाह्यकोशिकीय तरल गुहा के रूप में कार्य करती है। ऐसा माना जाता है कि हाइड्रा में दो पम्प कार्य करते हैं, एक तो वह जो Na को मीज़ोग्लीया में पहुंचाता है और दूसरा वह जो उसे आहार-नाल में पहुंचाता है। परासरण द्वारा भीतर पहुंचता हुआ जल मुख द्वारा बाहर को निकाल दिया जाता है। सोडियम का सक्रिय परिवहन परासरण और आयतन दोनों नियमनों को संभाल लेता है। इस प्रकार बाहरी सतह से जल लगातार शरीर के भीतर को प्रवेश करता रहता है और अधिशेष जल लगातार जठर वाहिकीय गुहा से मुख द्वारा बाहर को निकाला जाता रहता है। इस प्रकार जठरवाहिकीय गुहा को एक बड़ी संकुंचनशीलधानी के रूप में माना जा सकता है।

तनु मूत्र पैदा करने की क्षमता अधिक उन्नत फ़ाइलमों के प्राणियों में पायी गयी है जैसे कि आर्थ्रोपोडों, केंचुओं तथा अलवणजलीय मौलस्कों में। माइक्रोपंकचर की तकनीक का प्रयोग करके तथा पश्चनेफ़्रिक नलिकाओं में से नलिकीय तरल निकालकर निस्यंदन एवं सक्रिय परिवहन दोनों ही दर्शाए गए हैं। उदाहरणत: अलवणजल की क्रेफ़िश की ऐंटेनल ग्रंथि में अंत्य कोश में निस्यंदन होता हैं जब मूत्र लम्बी नलिका में से गुज़र रहा होता है तब क्लोराइड का पुन: अवशोषण होता है जिससे लवणों का सरंक्षण तथा जल का पुन: अवशोषण होता है (चित्र 9.36)। आर्थ्रोपोडों तथा मौलस्कों में निस्यंदन क्रिया अनिवार्यत: रक्त के जलस्थैतिक दाब द्वारा की जाती है। आर्थ्रोपोडों में सीलोमी थैले की दीवार अति वाहिकीय होती है। मौलस्कों में हृदय, निस्यंदन गुहा अथवा परिहृद कोश में से होकर गुज़रता है। हृदय की दीवार में से परिहृद गुहा में निस्यंदन होता है। परिहृद गुहा से निस्यंदन नेफ़्रीडियम मुख में से होकर वृक्क में पहुंचता है। सीलोमी कोश सामान्यत: हृदय के समीप अथवा उच्च रक्त दाब के क्षेत्र के निकट स्थित होता है।

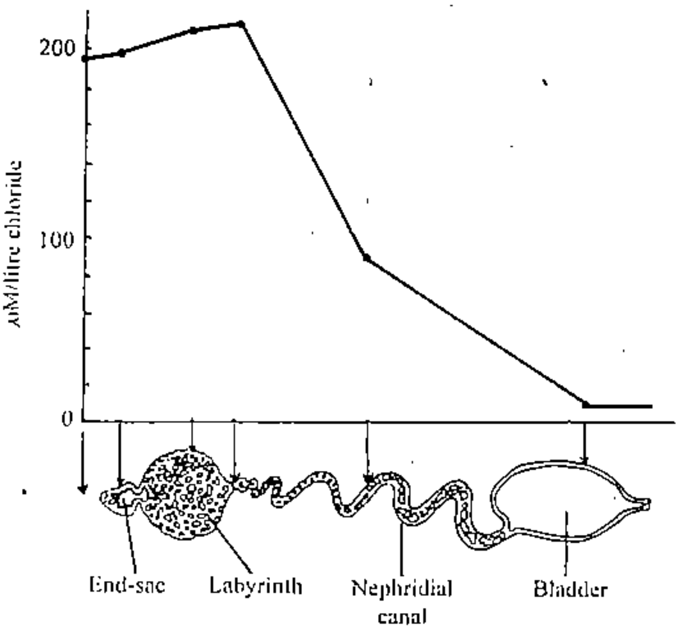

चित्र 9.36 : क्रेफ़िश ऐस्टेकस में अल्पपरासारी मूत्र के बनने में कॉक्सल ग्रंथि के विभिन्न खंडों की भूमिका।

दूरस्थ नलिका तथा मूत्रनली में देखा गया तनुकरण कदाचित पानी के जुड़ जाने से होता है या फिर वहां से लवणों के पुन: अवशोषण के कारण होता है। लेकिन ऐसे उपापचयी विषों का उपयोग करके जो सक्रिय अवशोषण को रोक देते हैं, स्पष्ट प्रदर्शित हो गया कि अल्पपरासारी मूत्र के उत्सर्जन के लिए विलेयों का अवशोषण ही उत्तरदायी है। कहा जा सकता है कि अल्पपरासारी मूत्र बना सकने की उत्सर्गी अंगों की क्षमता तथा प्रवाहरत तरल में से आयनों को ग्रहण कर लेने की क्षमता इन दोनों ने ही अलवणजलीय पर्यावरण में जीवों के बसने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

9.4.2 समुद्री अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में परासरणनियमन

समुद्री जीवों के देह-तरलों के परासारी दाबों के अध्ययनों से पता चला है कि इन प्राणियों का भीतरी परासारी दाब लगभग उसी समुद्री जल के दाब के बराबर होता है जिसमें वे रहते हैं। समुद्री अकशेरूकी उस समुद्रीजल के, जिसमें वे रहते हैं, समपरासारी होते हैं मगर उनके देह-तरलों की आयनी संघटन सामान्य समुद्री जल की आयनी संघटना से काफ़ी भिन्न हो सकती है। उदाहरणत: सीलेंटेरेटा की मीज़ोग्लीया में जिस समुद्रजल में वे रहते हैं उसकी तुलना में पोटैशियम की उच्चतर तथा सल्फ़ेट की निम्नतर संघटना पायी जाती है। यही बात पौलीकीटों तथा इकाइनोडर्मों पर भी लागू होती है।

समुद्री तथा नुनखरे जल के प्राणियों का देह-तरल या तो समपरासारी होता है या मामूली या अतिपरासारी। समपरासारी अथवा मामूली से अतिपरासारी मूत्र से हो सकता है कि मूल्यवान विद्युत-अपघट्यों (electrolytes) की हानि हो जाए। अत: देह तरलों से विद्युत-अपघट्यों का सतत नियमन होता रहता है।

इस प्रकार का नियमन कई विधियों द्वारा होता है। सतह क्षेत्र जो जल के लिए पारगम्य होते हैं घटकर न्यूनतम हो गए हैं। संकुंचनशील धानियों तथा नेफ्रीडियल नलिकाओं के रूप में जल पम्प पाए जाते हैं। परंतु प्रत्येक कोशिका की सर्वाधिक महत्वपूर्ण यांत्रिकी सक्रिय परिवहन है। कुछ अंशों में, जैसे कि क्रस्टेशियनों के गिलों में, अति विशेषित ऊतकों में लवणों की भारी मात्राओं के सक्रिय परिवहन की क्षमता का अधिकाधिक उपयोग किया जाता है।

डेकापोड क्रस्टेशियनों तथा सेफ़ैलोपोडों में आयनी नियमन प्रत्येक आयन पर लागू होता पाया जा सकता है। उदाहरणत: इन प्राणियों में उनके बाहरी माध्यम की तुलना में उनके देह तरलों में कैल्सियम तथा पोटैशियम अधिक सांद्रित होते हैं जबकि मैग्नीशियम, सल्फेट तथा क्लोराइड कम सांद्रित होते हैं। सल्फेट जैसे ऐनायन के सांद्रण में ह्रास की क्षतिपूर्ति सोडियम सांद्रण में बढ़ोतरी से होती है। उदाहरणत: सीलेंटेरेटों सहित समुद्री अकशेरूकियों में भीतरी माध्यम में एक ऐसी विशेषित आयनी संघटना होती है जो बाहरी माध्यम की संघटना से स्पष्टत: भूमिका होती है।

9.4.3 थलीय पर्यावरण में जल-संबंध

मेटाज़ोअनों में सबसे बड़ा वर्ग कीटों का है जो थलीय पर्यावरण में बहुत सफलता पूर्वक छा गए हैं। इनके अलावा अधिकतर ऐरेक्निड, मिरियेपौड तथा आइसोपौड क्रस्टेशियन जीवित बने रहने के लिए जलीय पर्यावरण पर निर्भर नहीं रहते। थल पर जीवन बिता सकने की दिशा में थलीय आर्थ्रोपोडों की सफलता का श्रेय उनकी अपारगम्य क्यूटिकल को जाता है जो शरीर से जल के वाष्पन को रोकती है। इनकी क्यूटिकल एक काइटिन-प्रोटीन सम्मिश्र है जिसमें उसकी बाहरी सतह पर एक मोमिया परत बनी होती है, और इस प्रकार यह क्यूटिकल एक जलरोधी संरचना का कार्य करती है।

क्यूटिकल एक महत्वपूर्ण संरचना है जिसके कारण ही बहुत हद तक थल पर सफलतापूर्वक बसना संभव हो सका। स्पाइरेकल-छिद्रों द्वारा जल की हानि को, जब भी अंत:श्वसन न हो रहा हो, तब उन्हें बंद रखकर, न्यूनतम स्तर पर रखा जाता है। माल्पीघी नलिकाओं का समीपस्थ भाग और इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण मलाशय, ये दोनों ही भाग जल के पुन:अवशोषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है तथा इनके द्वारा केवल सूखी विष्ठा गोलियां ही बाहर को निकाली जाती हैं जिनमें नाइट्रोजनी अपशिष्ट अघुलनशील यूरिक अम्ल के रूप में होते है। पल्मोनेट मौलस्कों, जिन्होंने थलीय आवास ग्रहण कर लिया है, में एक कैल्सियमी कवच होता है जो शरीर के कोमल भीतरी भागों के शुष्कन को रोकता है। कार्यिकीय अनुकूलन जैसे कि ग्रीष्मनिष्क्रियता (aestivation) इन प्राणियों को प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से बचाव करने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न 6

बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत :-

1) परासरानुरूपी प्राणियों में उनके देह-तरलों की आयनी संघटना उस माध्यम की आयनी संघटना से बहुत भिन्न होती है जिसमें वे रहते हैं। (T/F)

2) पृथुलवणी प्राणी केवल लघुपरास लवणताओं को ही सहन कर सकते हैं। (T/F)

3) समुद्री प्राणी अल्पपरासारी मूत्र का उत्सर्जन करते हैं। (T/F)

4) जल का पुन: अवशोषण समुद्री उदाहरणों की अपेक्षा अलवणजलीय मेटाज़ोअनों में अधिक स्पष्ट होता है। (T/F)

5) कीट मूत्र के रूप में सूखी विष्ठा का उत्सर्जन करते हैं (T/F)

9.5 सारांश

इस इकाई में आपने ये बातें सीखीं-

- मेटाज़ोअनों में नानाविध अशन स्वभावों का विकास हुआ है जो इस बात पर निर्भर है कि ये प्राणी किस पर्यावरण में रहते हैं एवं उस पर्यावरण में किस प्रकार का आहार उपलब्ध है। ये सूक्ष्मभक्षी हो सकते हैं अथवा वृहतभक्षी। यदि सूक्ष्मभक्षी हुए तो उनमें भी निस्यंदन अशनकर्त्ता हो सकते हैं या वे निक्षेपित आहार पदार्थों पर भोजन करने वाले होते हैं। निस्यंदन आहारक या तो सिलियरी-श्लेष्म अशन क्रियाविधि का इस्तेमाल करते हैं या आहार एकत्र करने के लिए वे शूकों का इस्तेमाल करते हैं।

- स्पंज कणिकीय आहार पदार्थ के निस्यंदन अशन के लिए नाल-तंत्र का उपयोग करते हैं। पाचन अंत:कोशिक होता है। सीलेंटेरेटों में वृहतभक्षी तथ मांसभक्षी आहारकर्त्ता अपने शिकार को पकड़ने के लिए अपने स्पर्शकों एवं दंशकारकों का इस्तेमाल करते हैं। पाचन अंत:कोशिकीय तथा बाह्यकोशिकीय दोनों प्रकार का होता है। चपटे कृमि या तो केवल अंत:कोशिकीय विधि से आहार पचाते हैं जैसे कि पौलीसेलिस में, या केवल बाह्यकोशिकीय विधि से जैसे कि *साइक्लोपोरस* में।

- *ओलाइगोकीट* ऐनेलिड मृत जैविक पदार्थ को खाते हैं। इन प्राणियों की अंतड़ियों से सेलुलेज़ तथा काइटिनेज़ जैसे एंजाइमों का स्राव निकलता है। पौलीकीटों में स्वच्छंदजीवी उदाहरण वृहतभक्षी होते हैं तथा स्थानबद्ध उदाहरण सूक्ष्मभक्षी होते हैं। वृहतभक्षी आहारकर्त्ताओं में आहार पकड़ने के लिए बहिर्वर्तनी शुंडिका होती है। स्थानबद्ध पौलीकीटों को सिलियरी-श्लेष्म अशन का सहारा लेना पड़ता है। स्थानबद्ध उदाहरणों में एक गिलनुमा स्पर्शक किरीट होता है जिसमें पिच्छिकाएं बनी होती हैं, जो परस्पर फंस-जुड़ कर एक जाल जैसी निस्यंदन युक्ति बना लेते हैं। इसमें पिच्छिकाओं पर बने सिलिया आहार को मुख की तरफ को चलाते हैं नलिकावासी पौलीकीट कुशल सिलियरी-श्लेष्म आहारकर्त्ता होते हैं। ऐनेलिडों में सामान्यत: बाह्यकोशिकीय पाचन होता है।

- मौलस्कों में लैमेलिब्रैंक सिलियरी-श्लेष्म आहारकर्त्ता होते हैं। सिलियायित गिल अथवा पटलिकाएं और उनके साथ-साथ लेबियल पैल्प आहार एकत्रित करने वाली युक्तियां होते हैं। स्थूल सिलिया बड़े आकार के आहार-कणों को हटाते जाते तथा सूक्ष्म सिलिया आहार को मुख की ओर को गति देते हैं। लैमेलिब्रैंकों में पाचन अधिकतर अंत:कोशिकीय होता है। एक सबसे भिन्न प्रकार की संरचना क्रिस्टलीय शलाका होती है जिससे कार्बोहाइड्रेट पाचक

एंज़ाइमों का विमोचन होता है। कुछ शाकभक्षी कणिका-अशनकर्ता गैस्ट्रोपोडों में भी क्रिस्टलीय शलाका होती है। गैस्ट्रोपोडों तथा सेफ़ैलोपोडों दोनों में पाचन बाह्यकोशिकीय होता है।

- आर्थ्रोपोडों में सिलिया नहीं होते। अशन के लिए रूपांतरित उपांग आहार प्राप्त करने में सहायता करते हैं। उपांगों पर शूक बने होते हैं जिन्हें निलम्बित कणिकीय आहार को इकट्ठा करने में निस्यंदन युक्ति के रूप में काम में लाया जाता है। जलीय क्रस्टेशियनों में निस्यंदन अशन प्रक्रिया में काम में आने वाली संरचनाएं इस प्रकार हैं- वक्ष उपांगों की अनुक्रमित गतियां, एंडाइटों पर बनी शूक-झालरें, पादांतर गुहाएं, पादांतर गुहाओं तथा मैक्सिलीपीडों द्वारा बनी मध्य-अधर प्रणाल तथा शीर्ष उपांगों के मैक्सिला। उधर दूसरी ओर कीटों में अशन के लिए विशेषित मुखांग बन गए हैं जैसा कि इस पाठ्यक्रम के खंड 2 की इकाई 5 में वर्णन किए गए हैं।

- मेटाज़ोअनों में विविध प्रकार की ''उत्सर्गी'' सरंचनाएं विकसित हो गयी हैं। मगर इनमें से अनेक मूलत: परासरणनियमनी होती हैं। नेफ़्रीडिया जोकि एक्टोडर्मी व्युत्पाद है, अंत:कोशिकीय होते हैं, और ये नेफ़्रीडियल कोशिकाओं के भीतर से खोखले हो जाने से बनते हैं। आदिनेफ़्रीडियल नाल जो अंतिम सिरे पर बंद होती है उनमें वहां या तो नलिकोशिकाएं (सॉलीनोसाइट) होती हैं या ज्वाला कोशिकाएं , ये रचनाएं तरल को अवकाशिका के भीतर स्रावित करती हैं तथा पदार्थों को नेफ़्रीडियम छिद्र की ओर धक्का देती हैं। विशेषतौर पर ऐनेलिडों में पाये जाने वाले पश्चनेफ़्रीडिया सीलोमवाहिनियों से निकटत: संबंधित रहते हैं। कॉक्सल ग्रंथि कहलाने वाली सीलोमवाहिनियां अनेक आर्थ्रोपोडों की उत्सर्गी संरचनाएं होती हैं। आदिम आर्थ्रोपोडों में कॉक्सल ग्रंथियां खण्डश: पायी जाती है, मगर उच्चतर आर्थ्रोपोडों में ये एक या दो खण्डों में ही पायी जाती हैं। अपने पाए जाने के स्थान के आधार पर इनके अलग-अलग नाम दिए जाते हैं जैसे ऐंटेनरी ग्रंथियां अथवा मैक्सिलरी ग्रंथियां। कीटों में उत्सर्गी सरंचनाओं के रूप में माल्पीघी नलिकाएं होती हैं। ऐपिथीलियल कोशिकाओं के अस्तर वाली ये नलिकाएं अपने दूरस्थ क्षेत्र में तरल को अवकाशिका में स्रावित करती हैं तथा इनका समीपस्थ क्षेत्र पुन:अवशोषी होता है। उत्सर्गी पदार्थ का बहुत सा जल माल्पीघी नलिकाओं तथा मलाशय दोनों के द्वारा अवशोषित किया जाता है तथा सूखा अघुलनशील यूरिक अम्ल उत्सर्जित होता है। मौलस्कों में वृक्कों के रूप में सीलोमवाहिनियां पायी जाती हैं तथा ये जनन वाहिनियों से निकटता संबंधित होती हैं। सीलोमी सम्मिश्र की अतिस्पष्ट असममिति का लक्षण तथा उत्सर्गी एवं जनन संरचनाओं का धीरे-धीरे पृथक हो जाना ये दो लक्षण मौलस्कन सीलोमवाहिनियों के बहुत महत्वपूर्ण हैं।

- जलीय पर्यावरण में जीवित बने रहने के लिए आवश्यक अनुकूलन है शरीर के जल तथा आयनी घटकों का नियमन। अलवणजलीय जीवों को अल्पपरासारी पर्यावरण में रहना होता है और उन्हें अपने शरीर के तरलों को अधिपरासारी बनाए रखना होता है। ये अल्पपरासारी मूत्र निकालते हैं और उनका उत्सर्गी तंत्र शरीर के लिए जरूरी महत्वपूर्ण आयनों का पुन: अवशोषण करता है। समुद्री प्राणी न्यूनाधिक रूप में अपने आवास-माध्यम के साथ समपरासारी होते हैं; फिर भी उनके देह-तरलों की आयनी संघटना माध्यम के अनुसार बदलती रहती है। ये अपने देह-तरल की आयनी संघटना बनाए रखने के लिए आयनों का सक्रिय अवशोषण करने लग जाते हैं। थलीय मेटाज़ोअनों को शरीर से ज़ल का हानि की समस्या से जूझना होता है, और इस समस्या का समाधान वे अनेक प्रकार के जल संरक्षण उपायों का विकास करके करते हैं, जैसे अपारगम्य अध्यावरण, सूखे नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थों का उत्सर्जन और श्वसन रंध्रों को बंद रखकर ताकि उनमें से जल की हानि कम से कम हो सके।

9.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) दंशकोरक की संरचना और उसके कार्य करने का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2) *पौलीसेलिस* तथा *साइक्लोपोरस* नामक चपटे कृमियों में पाचन की विधि का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

3) स्थानबद्ध पौलीकीटों में सिलियरी-श्लेष्म अशन की क्रियाविधि का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

4) लैमेलिब्रैंक में पटलिका की सरंचना तथा आहार-ग्रहण युक्ति के रूप में इसके कार्य करने का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

5) मौलस्कों के विभिन्न समूहों में सीलोमवाहिनियों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

6) उपयुक्त उदाहरण देकर वर्णन कीजिए कि अलवणजलीय जीवों में शरीर की जल एवं आयनी मात्रा को किस प्रकार कायम बनाए रखा जाता है।

....

....

....

....

....

....

....

9.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1. 1) बृहतभक्षिता, 2) सिलिया, 3) निलम्बन, निस्यंदन; 4) छांटना और बहिष्कार; 5) रैडुला

2. 1) T, 2) F, 3) T, 4) F, 5) F.

3. 1) c 2) a 3) f 4) b 5) d 6) e.

4. 1) सिलियरी-श्लेष्म,

   2) वलनित होते हैं,

   3) पार्श्वआननी,

   4) म्यूकोप्रोटीन,

   5) स्थूल,

   6) कार्बोहाइड्रेट,

   7) बाह्यकोशिकीय,

   8) होती है.

   9) परभक्षी बृहतभक्षी

   10) निस्यंदक आहारकर्त्ता

5. a) 5 b) 2 c) 4 d) 1 e) 3

6. 1) F 2) F 3) F 4) T 5) T

अंत में कुछ प्रश्न

1. अनुभाग 9.2.1 देखिए
2. अनुभाग 9.2.1 देखिए
3. अनुभाग 9.2.2 देखिए
4. अनुभाग 9.2.3 देखिए
5. अनुभाग 9.2.3 देखिए

इकाई 10 श्वसन तथा परिसंचरण तंत्र

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
10.2 श्वसन तंत्र
श्वसन-अंग
श्वसन प्रक्रिया
श्वसन वर्णक
10.3 परिसंचरण तंत्र
खुले प्रकार तथा बंद प्रकार के परिसंचरण तंत्र
10.4 सारांश
10.5 अंत में कुछ प्रश्न
10.6 उत्तर

10.1 प्रस्तावना

इससे पिछली इकाई में आपने अकॉर्डेटों के विभिन्न वर्गों में विभिन्न पोषण-विधियों, परासरणनियमन तथा उत्सर्जन के विषय में एक सामान्य एवं तुलनात्मक अध्ययन किया। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि श्वसन तंत्र क्या होता है और यह भी देखेंगे कि अकॉर्डेटों के विविध वर्गों में श्वसन में सहायक अंग कितने प्रकार के होते हैं। छोटे जंतुओं में निष्क्रिय विसरण से ही काम पूरा हो जाता है। इसके विपरीत जब प्राणी बड़े आकार का हो जाता है तब श्वसन गैसों को एक ओर परिवेश-माध्यम तथा दूसरी ओर उपापचय क्रिया के क्षेत्र के बीच परिवहित किया जाना होता है जिसके लिए परिसंचरण तंत्र सुलभ सहायक हो जाता है। इस प्रकार आप देखेंगे कि एक सरल प्रकार से आरम्भ होकर एक जटिल सम्मिश्र और अत्यन्त विकसित प्रकार के श्वसन एवं परिसंचरण तंत्र का उदय हुआ। यह अध्ययन दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में श्वसन, श्वसन-प्रक्रिया में निहित अंगों और श्वसन वर्णकों के विषय में पढ़ेंगें। शेष भाग में विभिन्न प्रकार के परिसंचरण तंत्रों की चर्चा की जाएगी जैसे कि वे अकार्डेटों के अलग-अलग फ़ाइलमों में पाए जाते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर चुकने पर आप ये सब बातें कर सकेंगे :

- श्वसन क्या है, बता सकेंगे,
- अकॉर्डेटों के विभिन्न वर्गों में श्वसन-प्रक्रिया में श्वसन अंगों की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे,
- श्वसन में श्वसन वर्णकों के महत्व का विवेचन कर सकेंगे,
- अकॉर्डेटों के विभन्न वर्गों में श्वसन अंगों की संरचनात्मक संघटना का वर्णन कर सकेंगे,
- अकॉर्डेटों में खुले तथा बंद परिसंचरण तंत्र में भेद कर सकेंगे।

10.2 श्वसन तंत्र

सभी सजीव जीवधारियों में श्वसन एक अनिवार्य कार्यिकीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा वे शरीर की उपापचयी क्रियाओं को करते रहने के लिए ऊर्जा प्राप्त करते हैं। "Respiration" (यानी श्वसन) शब्द के कई अर्थ हैं। लैटिन भाषा में जिससे यह शब्द लिया गया है, उसमें इसका अर्थ है "सांस भीतर लेना" और "सांस बाहर छोड़ना" और इस अर्थ में "Respiration" शब्द को शुरु-शुरू में जीव और उसके पर्यावरण के बीच गैसों के विनिमय के लिए इस्तेमाल किया गया। इसका अर्थ सांस लेना (श्वसन, breathing) से था। बीतते जाते समय के साथ यह स्पष्ट हो गया कि आधारभूत विनिमय कोशिकीय

स्तर पर होता है इसलिए गैसीय विनिमय की इस प्रावस्था के लिए एक और शब्द "आंतरिक श्वसन" (internal respiration) दिया गया। उसके बाद से शरीर की सतह तथा पर्यावरण के बीच गैसों के विनिमय को बाह्य श्वसन (external respiration) कहा जाने लगा। यह विभाजन आज भी काफी उपयोगी है। मगर इन दिनों श्वसन को अक्सर उन्हीं कोशिकीय प्रक्रियाओं के लिए ईस्तेमाल किया जाता है जो ऊर्जा-उत्पादन से संबंधित हैं अर्थात कोशिका के भीतर घटित होने वाली उन रासायनिक प्रक्रियाओं से, जिनसे ऊर्जा निकलती है। यहां हमारा उद्देश्य केवल बाह्य श्वसन से तथा ऊतकों एवं श्वसन स्थान के बीच होने वाले गैस-परिसंचरण से है।

अपने दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि श्वसन की लाक्षणिक विशेषता है ऑक्सीजन को भीतर लेना तथा कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकालना। भीतर ले जायी गयी ऑक्सीजन का उपयोग कोशिका के भीतर पचे आहार का ऑक्सीकरण करके ऊर्जा का विमोचन करना है। कार्बन डाइऑक्साइड का उत्पादन आहार पदार्थों के ऑक्सीकरण का परिणाम होता है। शरीर के भीतर इसकी मौजूदगी हानिकारक होती है, अतः इस प्रक्रिया में इसे शरीर से बाहर निकालना होता है।

निम्नतर जीवों में जैसे कि प्रोटोज़ोअनों, स्पंजों तथा प्लैटिहेल्मिंथों में ऑक्सीजन' सीधे ही परिवेशी जल माध्यम से भीतर ले ली जाती और कार्बनडाइऑक्साइड भी सीधे ही बाहरी माध्यम को निकाल दी जाती है। बड़े आकार के प्रणियों में उनकी जटिल संरचना और बड़े साइज़ का होने के कारण उनकी अधिकतर कोशिकाएं बाहरी पर्यावरण के साथ सीधे सम्पर्क से वंचित होती हैं। अतः उन्हें श्वसन तथा परिसंचरण तंत्र की सहायता की आवश्यकता होती है ताकि गैसों के आदान-प्रदान एवं शरीर के सभी भागों में ऑक्सीजन के वितरण में आसानी हो सके। इन प्राणियों मे श्वसन की प्रक्रिया में निम्नलिखित प्रावस्थाएं आती हैं :-

i) बाहरी श्वसन को सामान्यतः श्वसन (breathing) यानी सांस लेने के रूप में वर्णन किया जाता है। इसमें वे अंग आते हैं जो पर्यावरण की ऑक्सीजन को शरीर की श्वसन सतह के सम्पर्क में लाते हैं। साथ ही यही तंत्र शरीर की कार्बन डाइऑक्साइड को भी बाहर पर्यावरण में निकालने का कार्य करता है। श्वसन सतह अकसर प्राणी के शरीर के भीतर भी हो सकती है। यह श्वसन सतह कई रूप में हो सकती है जैसे त्वचा (अध्यावरण), गिल, वातक अथवा फेफड़े।

ii) श्वसन की दूसरी प्रावस्था में श्वसन सहत से ऑक्सीजन को देह-ऊतकों में तथा कार्बन डाइऑक्साइड को ऊतकों से श्वसन सतह तक ले जाना होता है। उच्चतर प्राणियों में श्वसन गैसों का परिवहन अक्सर रक्त द्वारा होता है।

iii) इस प्रावस्था में ऑक्सीजन का कोशिकाओं द्वारा इस्तेमाल कर लिया जाना और कार्बनडाइऑक्साइड का न होना होता है जो ऑक्सीकारी प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होता है और ये प्रक्रियाऐं शरीर के कायिकीय कार्यकलापों के लिए ऊर्जा निकालती हैं। यह ऑक्सीकारी तथा अनॉक्सीकारी दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं में काम करने वाली एंज़ाइमी अभिक्रियाओं का योगफल है जिनके द्वारा जीवनचालक क्रियाकलापों को बनाए रखने के लिए ऊर्जा उपलब्ध करायी जाती है।

10.2.1 श्वसन अंग

ये वे अंग हैं जिनका संबंध गैस-विनिमय यानी ऑक्सीजन के भीतर लेने तथा कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकालने से है। सामान्य देह सतह की अपेक्षा इन अंगों में प्रति इकाई क्षेत्रफल गैस विनिमय की दर साधारणतः ज़्यादा होती है। अतः श्वसन अंग शरीर का एक भाग अथवा विशेष क्षेत्र हो सकता है या फिर इसी उद्देश्य के लिए विशेष तौर पर बना अंग हो सकता है जैसे कि फेफ़ड़ा।

अकॉर्डेटों में विविध प्रकार के श्वसन अंग पाए जाते हैं। इन अंगों की संरचना भिन्न तो हो सकती है मगर सभी में एक तो बड़ी सतह प्रदान की हुई होती है जो पर्यावरण के सम्पर्क में आती है और दूसरे इनमें रक्त वहिकाओं तथा केशिकाओं की विशाल आपूर्ति होती है ताकि बाहरी पर्यावरण और तंत्र के बीच

तीव्र गैस-विनिमय सुनिश्चित हो सके। बाह्य पर्यावरण आम तौर से जल होता है। और यहां तक कि जब यह पर्यावरण वायु होता है, तब भी श्वसन सतह के ऊपर एक पतली जल परत होती है और इसी जल परत के माध्यम से गैसों का विनिमय होता है। जल में कार्य करने वाले श्वसन अंगों को गिल (अथवा क्लोम) (gills) कहते हैं, और जो वायु में काम करते हैं उन्हे फेफड़े । ये रचनाएं बाहर को प्रवर्धित हो सकती हैं (गिल) या भीतर को अंतर्वलित हो सकती हैं (फेफड़े)। अकॉर्डेटों के विभिन्न फ़ाइलमों में पाए जाने वाले विविध श्वसन अंग इस प्रकार है:-

i) सामान्य देह सतह

प्रोटोज़ोअनों में श्वसन विसरण द्वारा होता है। ऑक्सीजन सामान्य देह सतह में से भीतर को विसरित हो जाती है और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर को विसरित हो जाती है। स्पंजों में श्वसन के लिए कोई विशेष अंग नहीं होते, उनमें एक नाल-तंत्र (canal system) होता है जिसके द्वारा जल शरीर के भीतर को आता है। गैसों का विसरण कोशिकाओं की सतह से हो जाता है। स्पंज उन स्थानों में रहना पसंद करते हैं जहाँ पर जल में ऑक्सीजन अधिक होती है। यदि स्पंजों को गंदे अथवा कम आक्सीजन वाले जल में रखा जाए तो उनका आकार घटता जाता और अंतत: वे मर जाते हैं। यही नतीजे तब भी सामने आते हैं जब चर्मीय छिद्र बंद हो जाते हैं जिससे जल धारा रुक जाती है। ऑक्सीजन की खपत जल-धारा की दर पर निर्भर होती है (चित्र 10.1)। उदाहरणत: यदि ऑस्कुलम अंशत: बंद हों तो यह दर कम हो जाती है मगर जब ऑस्कुलम पूरी तरह खुल जाते हैं तब इसकी क्षतिपूर्ति हो जाती है। सीलेंटेरेटों में भी कोई निश्चित श्वसन अंग नहीं होते। मगर इन प्राणियों में एक जठरसंवाहक गुहा (gastrovascular cavity) होती है जिसमें से जल की धारा बहती है। अत: उनकी एपिडर्मिस तथा गैस्ट्रोडर्मिस अनिवार्यत: जल के साथ सम्पर्क बनाए रखती है। श्वसन के लिए आवश्यक गैस का आदान-प्रदान विसरण द्वारा होता है (चित्र 10.1)।

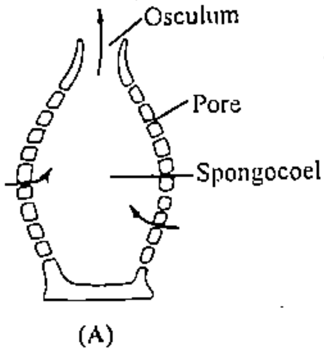

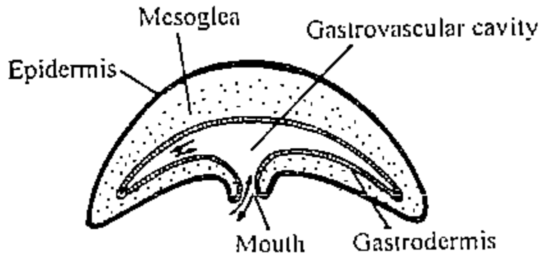

चित्र 10.1: एक स्पंज और एक सीलेंटेरेट की देह के आरेखीय प्रतिदर्श। (A) एक ऐस्कॉनाम (Asconoid) स्पंज का अरीय सेक्शन। तथा (B) एक सीलेंटरेट मेडुसा का अरीय सेक्शन। (A) तथा (B) में तीर के चिन्ह शरीर के भीतर श्वसन जल धाराओं को दर्शा रहे हैं।

स्वच्छंदजीवी चपटे कृमि प्राय: छोटे आकार के होते हैं और वे अपनी देह-सतह से मात्र विसरण द्वारा ही श्वसन कर लेते हैं। हेल्मिंथ पराजीवियों में श्वसन बिल्कुल भिन्न होता है। वे प्राय: ऐसे पर्यावरण में रहते हैं जिसकी ऑक्सीजन की मात्रा या तो बहुत कम होती है या होती ही नही जैसे कि आहार नाल के परजीवियों में। अत: उन्हें वायु अथवा ऑक्सीजन का कोई सम्पर्क नहीं मिलता। ये अवायुजीवी (anaerobes) होते हैं। इसी प्रकार अधिकतर नीमैटोडों को भी अवायवीय श्वसन के ही लिए मजबूर होना पड़ता है। सामान्य रूप में हम कह सकते हैं कि अंत:परजीवी कितनी ऑक्सीजन का इस्तेमाल करते हैं यह इसकी उपलब्धता पर निर्भर होता है।

ऐनेलिडों में श्वसन पूरी देह सतह से होता है और अनेक पौलीकीटों में (जैसे *नीरीस, Nereis,* में) चपटे हो गए परापादों (parapodia) से यह सतह और भी बहुत ज़्यादा बढ़ गयी होती है। परापदों के

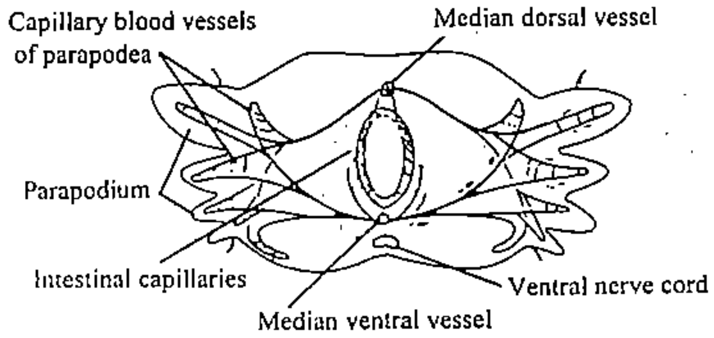

चित्र 10.2: *नीरीस* का अरेखीय सेक्शन जिसमें मुख्य खंडीय रक्त वाहिकाओं का मार्ग दिखाया गया है।

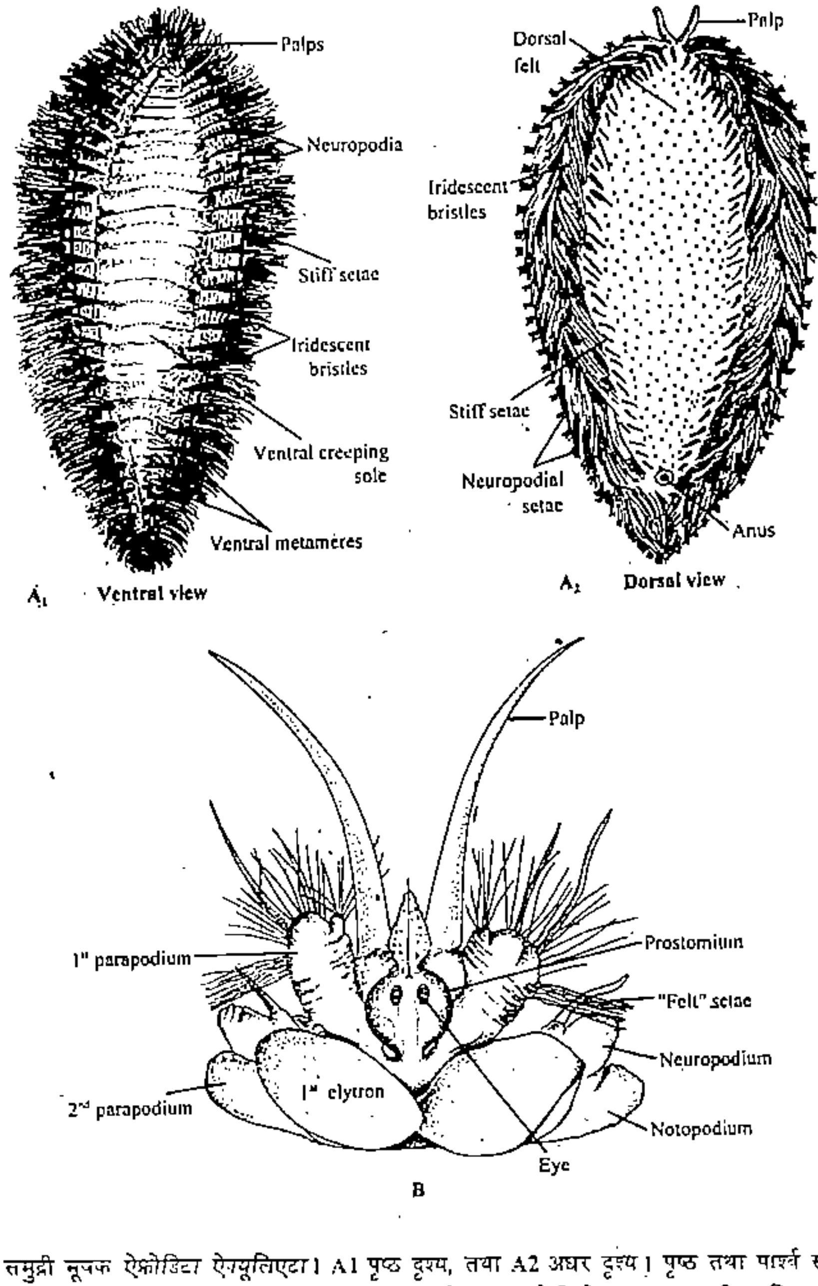

चित्र 10.3 : समुद्री मूषक *ऐफ्रोडिटा ऐक्यूलिएटा*। A1 पृष्ठ दृश्य, तथा A2 अधर दृश्य। पृष्ठ तथा पार्श्व सतहें नमदा शूकों से ढकी होती है। B. अग्र सिरा जिसमें प्रथम जोड़ी के पृष्ठ शल्क भी शामिल हैं। ये तट से दूर रहते हैं जहां वे तली की नरम कीचड़ में बिल बना कर रहते हैं और वे केवल अपने पश्च सिरे को ही सतह पर खुला रखते हैं। अधर सतह पर नमदा नहीं होता और एक चपटा पेशीय तलवा बन जाता है। अपनी अधर सतह को ऊँचा उठा कर अपने बिल में संप्रवाहन करते हैं जिससे सतह का पानी बिल में पम्प होता और तलवे के सहारे अग्र सिरे तक पहुंचता जाता है। उसके बाद तलवे को नीचे को दबाया जाता है जिससे जल बलपूर्वक पीछे को, पृष्ठ भाग और उसे ढ़के रहने वाले शल्क द्वारा बनी एक सरणी में से बाहर को निकाला जाता है। शल्कों की गति भी निकास-प्रवाह पैदा करने में सहायता करती है।

भीतर एक विशाल केशिका-जाल (capillary network) बना होता है। देह की पृष्ठ तथा अधर दीवारों में भी ऐसे बहुसंख्यक कोशिका जाल बने होते हैं जो सतह के बहुत निकट होते हैं (चित्र 10.2)। इनके भीतर से गुज़रता हुआ रक्त बाहर घेरे हुए जल से ऑक्सीजन ले लेता तथा ऊतकों से एकत्रित करके लायी हुई कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर को निकाल देता है। अनेक ऐनेलिडों के रक्त की ऑक्सीजन-वहन क्षमता हीमोग्लोबिन के अथवा ऐसे ही किन्ही अन्य रक्त वर्णकों के होने से बढ़ जाती है। ये रक्त वर्णक प्रायः प्लाज़्मा (तरल) अंश में होते हैं न कि कोशिकाओं के भीतर। गिल पौलीकीटों में आम तौर से पाए जाते हैं मगर अपनी संरचना तथा स्थान दोनों की दृष्टि से बहुत विविध होते हैं जिससे लगता है कि ये अंग इस क्लास में अलग-अलग विकसित हुए हैं। गिल सुरक्षाकारी कक्षों के भीतर कभी बंद नही होते। अनेक स्पीशीज़ के प्राणी जिनमें गिल होते हैं, पहले से ही सुरक्षित होते हैं क्योंकि वे सूराखों और बिलों के भीतर रहते हैं। उन पौलीकीटों में जो बहुत छोटे होते अथवा जिनमें लम्बा धागे-जैसा शरीर होता है जैसे कि लुम्ब्रिनेरिडी (Lumbrineridae), अरबेलिडी (Arabellidac) तथा कैपिटेलिडी (Capitellidae) में, गिल होते ही नहीं। शल्क कृमियों (scale worms) में गैस-विनिमय अधिकतर पृष्ठ देह-सतह तक ही सीमित होता है, इस सतह के ऊपर एक खोल इलाइट्रॉन ढका होता है। पृष्ठ सतह पर स्थित सिलिया (पक्ष्माभ) एक जल धारा पैदा करते हैं जो इलाइट्रॉन की नीचे-नीचे से पश्चतः बहती जाती है। "समुद्र-मूषक" (sea mouse) *(एफ्रोडिटा), (Aphrodita)* में पीठ पर एक नमदा सा बना होता है जिसमें सिलिया नहीं होते (चित्र 10.3), लेकिन जल्दी-जल्दी एक क्रमवत तरीके से ऊपर-नीचे लाकर एक पृष्ठ जल धारा पैदा की जाती है। आमतौर से गिल परापादों से संबंधित होते हैं और अनेक उदाहरणों में ये गिल परापादों के ही रूपांतरित भाग होते हैं। नोटोपोडियम में कभी-कभी एक चपटी गिल पालि होती है जैसे नीरिड प्राणियों (nereids) में (चित्र 10.4)। आम तौर से परापाद का पृष्ठ सिर्रस रूपांतरित होकर गिल की तरह कार्य करता है (चित्र 10.5) या पृष्ठ सिर्रस के आधार से गिल निकले हो सकते हैं। सिर्रेटुलिडों (Cirratulids) में लम्बे, संकुंचनशील धागे जैसे गिल होते हैं (चित्र 10.6), और ऐसा प्रत्येक गिल नोटोपाडियन के आधार पर संलग्न होता है।

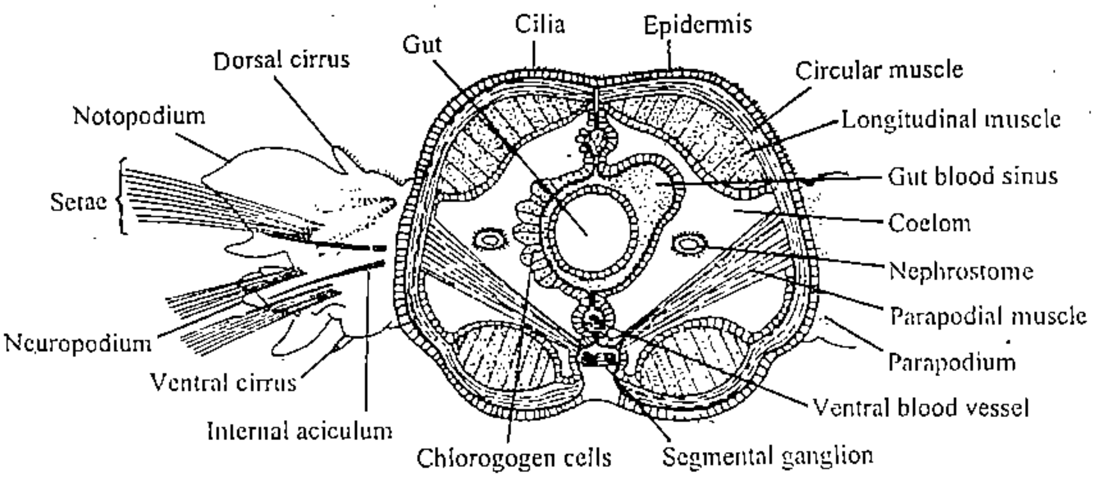

चित्र 10.4 : पौलीकीट के छड़ का अनुप्रस्थ सेक्शन।

गिल हमेशा ही परापादों से संबधित होते हों, ऐसा नही है। अनेके स्थानबद्ध स्पीशीज़ में गिल अग्र सिरों पर, नलिकाओं अथवा बिलों के मुख के समीप होते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ टेरेबिलिडों जैसे कि ऐम्फिट्राइट **(Amphitrite)** के गिल वृक्षाभ (शाखीय) होते हैं और अग्र खण्डों की पृष्ठ सतह पर स्थित होते हैं (चित्र 10.7)। "पंखा-कृमि" नामक सैबेलिड प्राणी सैबेला (**sabella**, चित्र 10.8) में द्विपिच्छाकार रेडियोल (radioles) बनाने वाले पंखें गैस-विनिमय का स्थान होते हैं। इन पर जल का बहना या तो गिल के सिलिया द्वारा होता है या गिल के संकुचनों द्वारा (चित्र 10.5)। मगर अनेक बिलकारी तथा नलिका-वासी पौलीकीट जल को, अपने शरीर की ऊर्मिलन अथवा क्रमांकुंचनी गतियों के द्वारा अपने बिलों या नलकियों में ले जाते हैं जैसे *ऐरेनिकोला (Arenicole*,चित्र 10.9) *कीटॉप्टेरस (Chaetopterus*, चित्र 10.10)। पेशीय क्रिया द्वारा जल का संप्रवाह (ventilation) पैदा करने वाले कृमि एक स्वतःजात संप्रवाह ताल पैदा करते हैं जिसमें संप्रवाहन काल एक शांत काल के साथ एकांतर क्रम में आते हैं। यह प्रदर्शित क्रिया जा चुका है कि संप्रवाह क्रिया से कृमि की ऑक्सीजन आवश्यकता 15 गुनी अधिक तक बढ़

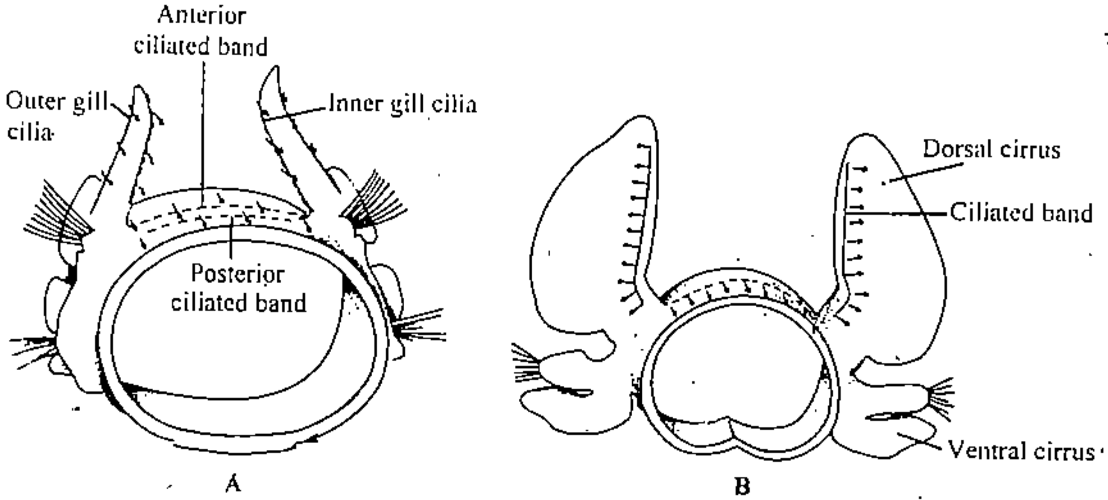

चित्र 10.5 : दो पौलीकीटों में सतह की सिलिया-व्यवस्था। तीर के निशान जलधाराओं की दिशा दर्शाते हैं। धड़ की सतह पर प्रवाह पीछे की ओर को होता है। A. *स्कोलेलेपिस स्क्वैमैटा* B. *फ़िल्लोडसी लैमिनोसा*।

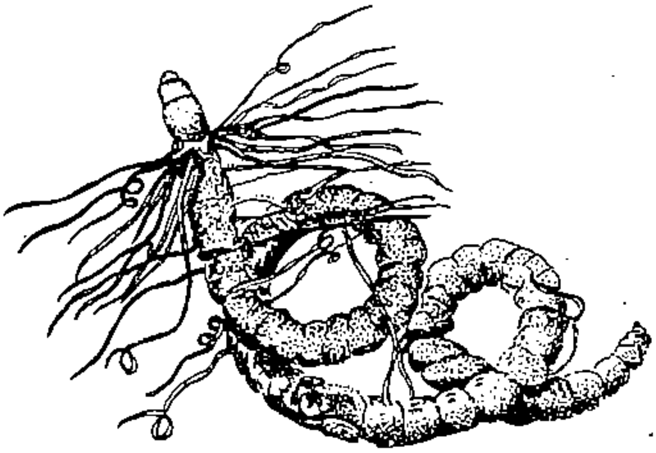

चित्र 10.6 : सिर्रैट्यूलस सिर्रैटस, एक पौलीकीट जिसमें लम्बे, धागे सरीखे, पृष्ठ सिर्रस (गिल) होते हैं।

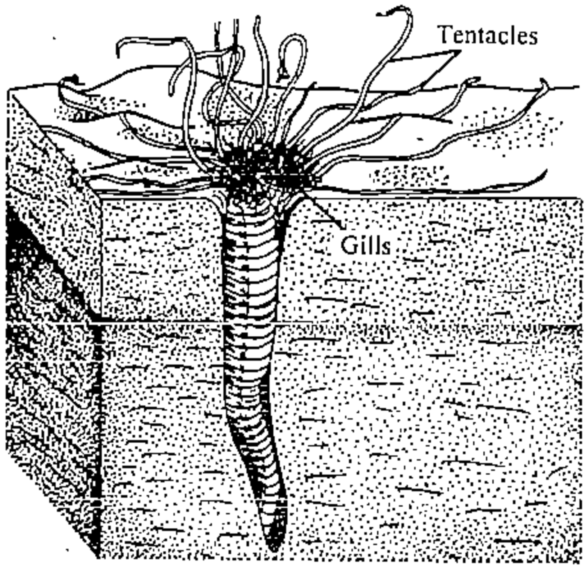

चित्र 10.7 : ऐम्फिट्राइट, जो अपने U-आकृति के बिल के मुख पर स्थित है और उसके स्पर्शक अधःस्तर पर बाहर को फैले हैं।

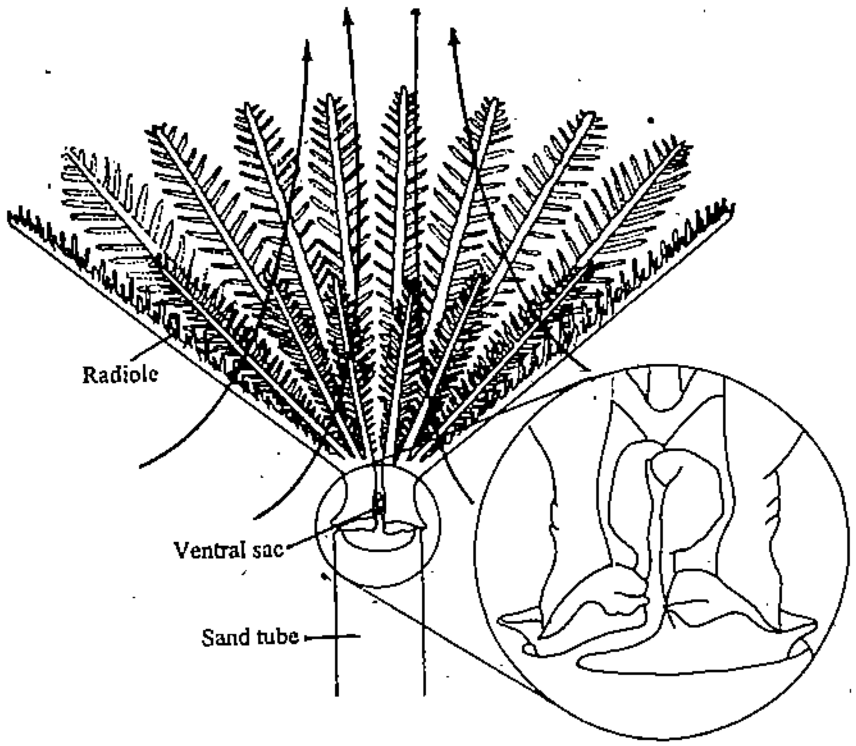

चित्र 10.8 : पंखा कृमि *साबेल्ला* का अग्र सिरा, जिसमें फिल्टर-अशनी धाराएं एवं नलिका-निर्माण दिखाए गए हैं।

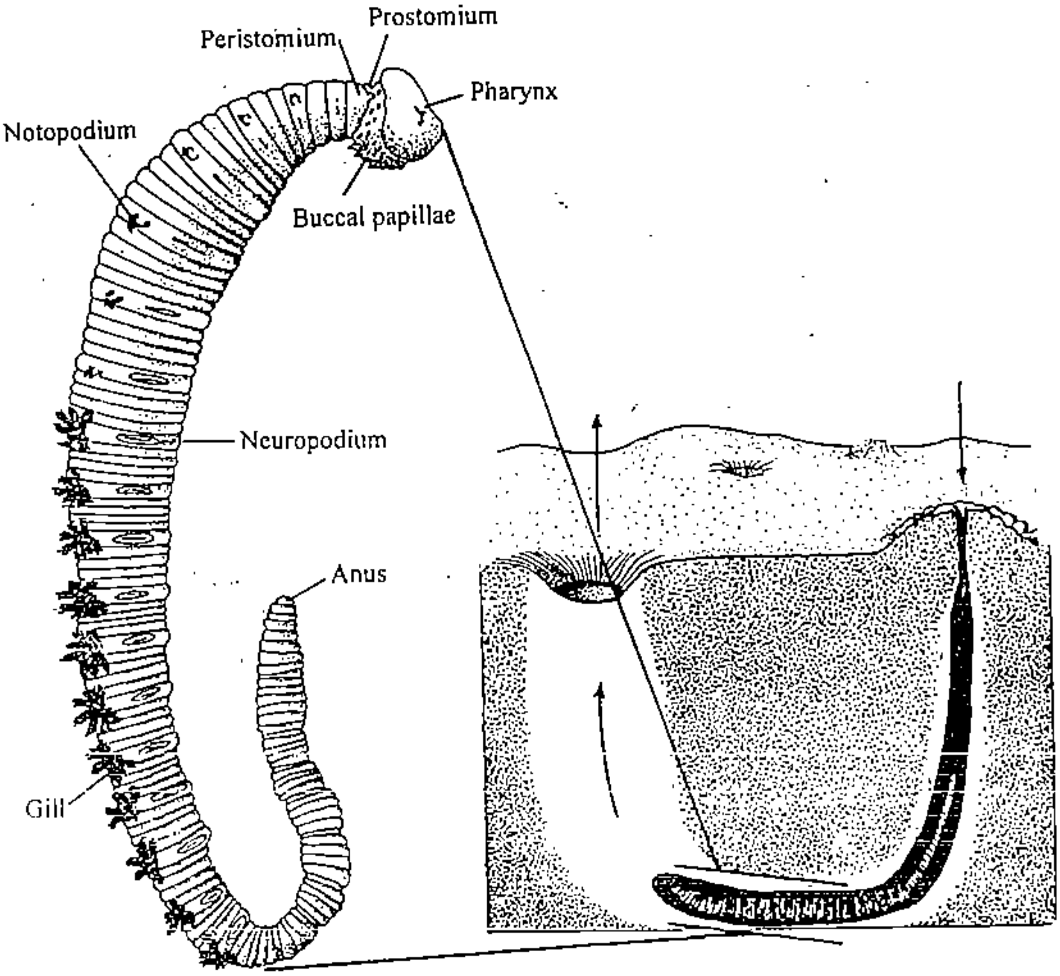

चित्र 10.9 : लगवर्म *ऐरेनिकोला*, अपने बिल के भीतर। तीर के निशान कृमि द्वारा पैदा किए गए जल-प्रवाह की दिशा दर्शा रहे हैं। बायीं ओर, कृमि रेत के स्तम्भ का अंतर्ग्रहण कर रहा है जिसमें से जल छन कर भीतर जाता है। बिल के सूराख पर रेत का ढेर विसर्जित मल है।

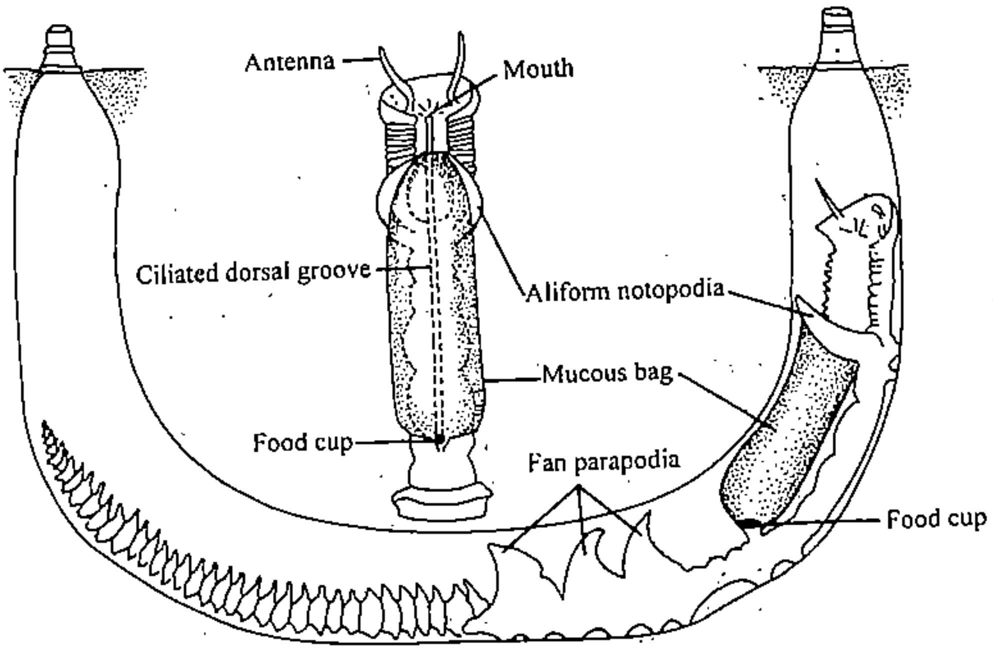

चित्र 10.10 : *कीटॉप्टेरस* अशन करते हुए। A. शरीर का अग्र भाग (पृष्ठ दृश्य)। B-कृमि, नलिका के भीतर (पार्श्व दृश्य)। तीर के निशान नलिका में से जलधारा की दिशा दर्शा रहे हैं।

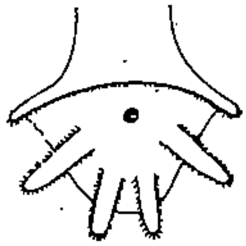

चित्र 10.11 : डेरो का पश्च सिरा जिसमें गुदा को घेरते हुए गिलों का चक्र दिखाया गया है।

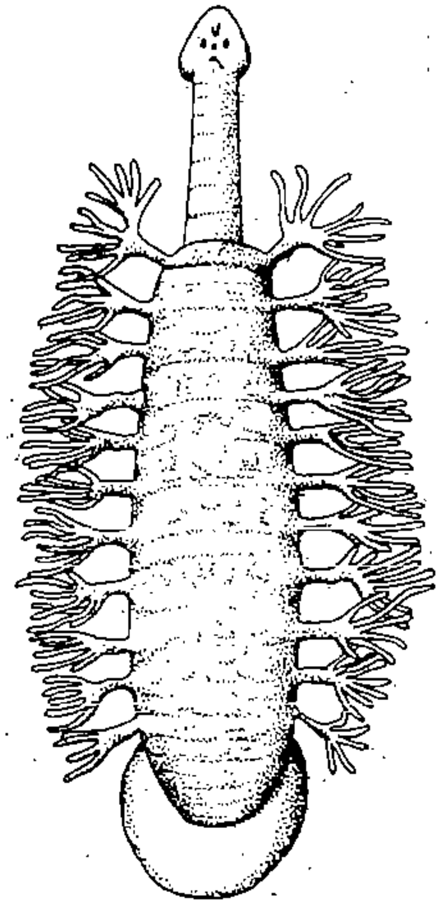

चित्र 10.12 : मछली की जोंक (पाइसिकोलिडी) *ओज़ोब्रैंकस*, पार्श्व गिलों को दर्शाते हुए।

जाती है लेकिन ऑक्सीजन-ग्रहण में तो लगभग 20 गुना वृद्धि होती है। केंचुओं तथा जोंकों में भी विशेषित श्वसन अंगों का अभाव होता है। मगर कुछ जलीय ओलाइगोकीटों में जैसे कि *डीरो* (*Dero*, चित्र 10.11) तथा *औलोफ़ोरस* (*Aulophorus*) में गिल शरीर के पश्च सिरे पर बने होते हैं। मछली की जोंक *ओज़ोब्रैंकस* (*Ozobhranchus*, चित्र 10.12) में पार्श्व गिल होते हैं। गैस-विनिमय के लिए इनकी त्वचा में भी भरपूर रक्त आपूर्ति होती है।

इकाइनोडर्मेटा मे सीलोमी गुहा की उंगली-जैसी बहिर्वृद्धियां जिन्हें डर्मल पेपुली (dermal papulae) कहते हैं या इन्हें "डर्मल ब्रैंकी" अथवा "गिल-पेपुली" भी कहते हैं जिनका काम श्वसन अंगों की तरह कार्य करना है (चित्र 10.13)। इकाइनॉइडों में श्वसन का एक बड़ा अंश दस विशाखित गिलों द्वारा सम्पन्न होता है, ये गिल मुख को घेरे हुए क्षेत्र में स्थित होते हैं (इन्हे परिमुख गिल, peristomial gills) कहते हैं। ये गिल वीथि प्लेटों के बीच के कोणों में एक-एक जोड़ी (चित्र 10.14) स्थित होते हैं। इकाइनाडर्मों के नाल पाद भी श्वसन कार्य करते हैं।

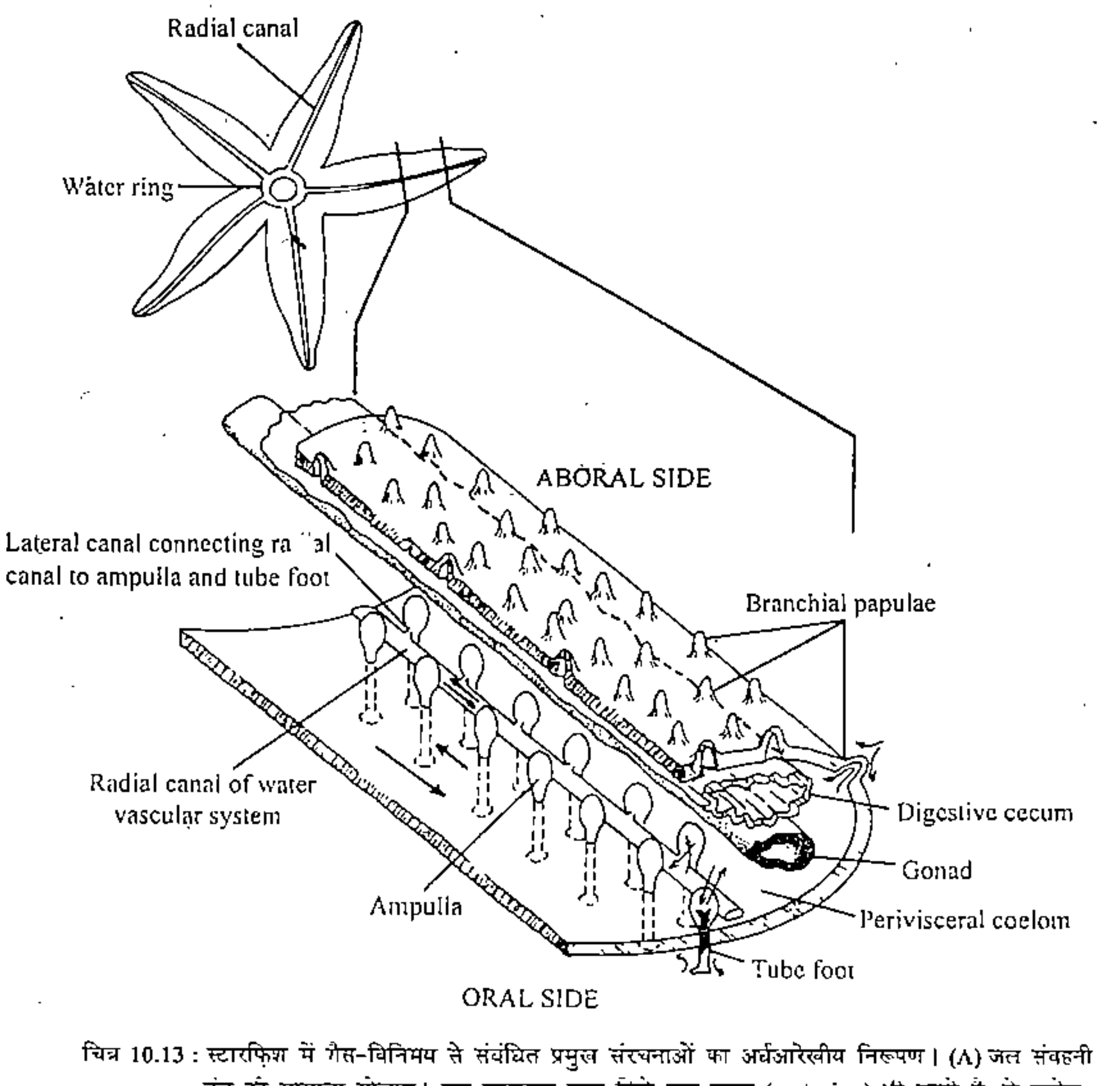

चित्र 10.13 : स्टारफ़िश में गैस-विनिमय से संबंधित प्रमुख संरचनाओं का अर्धआरेखीय निरूपण। (A) जल संवहनी तंत्र की सामान्य योजना। एक वृत्ताकार नाल जिसे जल-वलय (watering) भी कहते हैं, से प्रत्येक भुजा की पूरी लम्बाई में जाती हुई एक अरीय नाल (radial canal) निकलती है। जल वलय तथा अरीय नालें देह गुहा की मुख-दिशा में स्थित होती है। (B) भुजा के एक अंश का आरेख जिसमें एक पार्श्व से अपमुख-पार्श्व अध्यावरण को काट कर हटा दिया गया है। ऐम्पुले परिअंतरंग सीलोम में पड़े होते हैं तथा नाल पादों से संयोजित रहते हैं, ये नालपाद अध्यावरण में से बाहर को मुख दिशा में निकले होते है। प्रत्येक ऐम्पुला भुजा की अरीय नाल से एक वाल्वयुक्त पार्श्व नाल से जुड़ा होता है। दो पाचन (पाइलोरिक) अंध नाल तथा दो गोनडी शाखाएं परिअंतरंग सीलोम में प्रत्येक भुजा की लम्बाई में चलती जाती हैं, चित्र में इनमें से प्रत्येक की केवल एक ही शाखा दिखायी गयी है। गिल-पैपुले परिअंतरंग सीलोमी दीवार की पतली दीवार वाली बहिर्वृद्धियां होते हैं जो बाहर की ओर के सूक्ष्म उंगली जैसे प्रवंध होते हैं। ठोस तीर के निशानों से प्रवाहित जल, जल संवहनी तरल तथा सीलोमी तरल दिखाए गए हैं। टूटे तीर के निशानों के द्वारा ऐम्पुली-तरल तथा परिअंतरंग सीलोमी तरल के बीच विसरण को दर्शा रहे हैं।

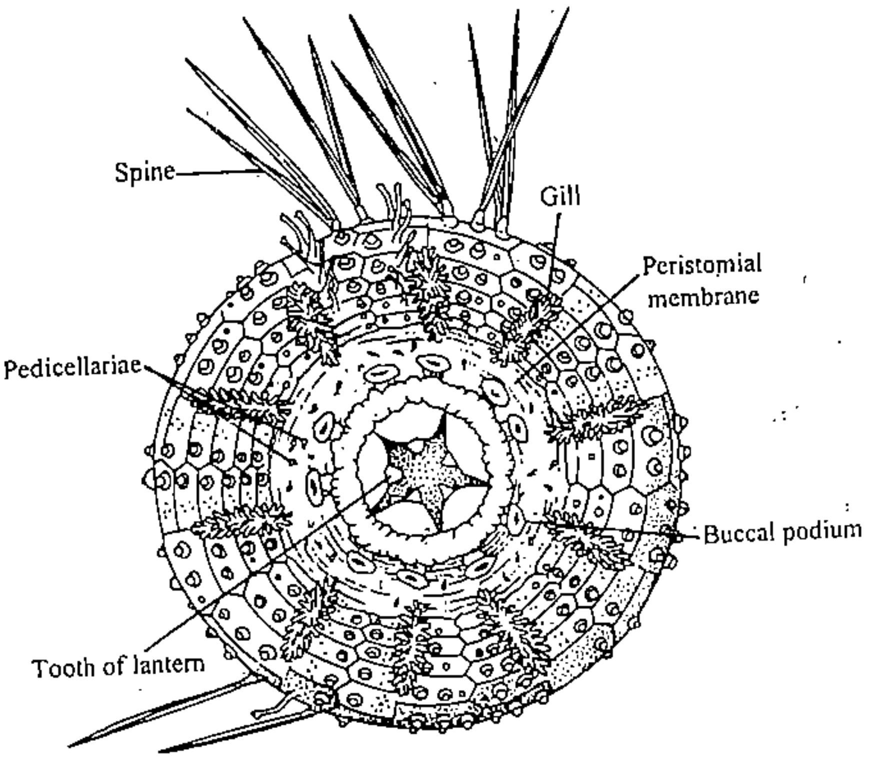

चित्र 10.14 : सामान्य अर्चिन अर्बेसिया पंक्टुलैटा (*Arbacia punctulata*) मुख दृश्य जिसमें गिलों की विद्यमानता दिखायी गयी है।

ii) फेफड़े (फुफ्फुस, Lungs)

ऐरेक्निड आर्थ्रोपोडों में जैसे कि बिच्छुओं तथा मकड़ियों में, श्वसन पुस्त-फुफ्फुसों (book lungs) द्वारा सम्पन्न होता है (चित्र 10.15)। बिच्छू में ऐसी चार जोड़ी संरचनाएं होती हैं जो अधर स्टर्नम पर बने झिरी-जैसे चार जोड़ी स्टिग्मैटा (stigmata) पर बाहर को खुलते हैं। प्रत्येक पुस्त-फुफ्फुस एक छोटा खोखला थैला (फुफ्फुस कोश, pulmonary sac) जैसा होता है जिसके भीतर 130-150 की संख्या में पटलिकाओं का गुच्छा होता है। ये पटलिकाएं इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं जैसे कि किसी पुस्तक के भीतर के पन्ने। पन्ने एक अक्ष पर लगे होते हैं। प्रत्येक पन्ना खोखला होता है और ऑक्सीजनित किया जाने वाला सम संकरी झिरी-जैसी गुहा के भीतर बहता है जो बाहरी हवा से बस झिल्ली जैसी दीवारों द्वारा पृथक हुआ रहता है। स्पाइरेकल एक एट्रियल कक्ष में को खुलता है। प्रत्येक फेफड़ा एक फुफ्फुस गुहा के भीतर बंद होता है। पटलिकाओं में एट्रियम से आयी हुई श्वसन वायु होती है तथा रक्त इन पटलिकाओं के बीच की गुहाओं में परिसंचरित होता है। यही वह स्थान है जहां पटलिकाओं की पतली दीवारों में से गैसों का विनिमय होता है। पटलिकाओं में वायु विसरण के द्वारा पहुंचती है मगर कुछ स्पीशीज़ में पेशियों के माध्यम से एट्रियम संप्रवाही क्रिया भी करता पाया गया है।

iii) वातक (Tracheae)

वातकीय श्वसन (Tracheal respiration) कीटों की विशिष्टता है। ओनाइकोफ़ोरन, ऐरेक्निड, डिप्लोपॉड तथा काइलोपॉड-प्राणी भी श्वसन के लिए वातकों का ही उपयोग करते हैं। इस प्रकार के श्वसन में वायु सीधे ही, बिना रक्त की मध्यस्थता के, ऊतकों में पहुंचायी जाती है। वातिका तंत्र में प्ररूपतः बहुत बड़ी संख्या में पायी जाने वाली परस्परसंयोजित छोटी-छोटी नलिकाएं जिन्हें वातक कहते हैं, पायी जाती हैं (चित्र 10.16)। ये स्पाइरेकल (spiracle) नामक सूक्ष्म छिद्रों द्वारा बाहर को खुलती हैं, स्पाइरेकल शरीर के प्रत्येक पार्श्व पर बने होते हैं। शरीर की संप्रवाही गतियों के द्वारा वायु इन स्पाइरेकलों में से वातकों के अंदर और बाहर को पम्प की जाती है तथा गैस-विनिमय सीधे व्यष्टिगत कोशिका में ही होता है। एक ही

स्पाइरेकल अंत:श्वसन तथा बाह्यश्वसन दोनों के लिए कार्य कर सकता होता है, मगर प्राय: अनेक स्पाइरेकल होते हैं जिनमें से कुछ वायु के अंत:प्रवाह के लिए और कुछ बाह्यप्रवाह के लिए होते हैं।

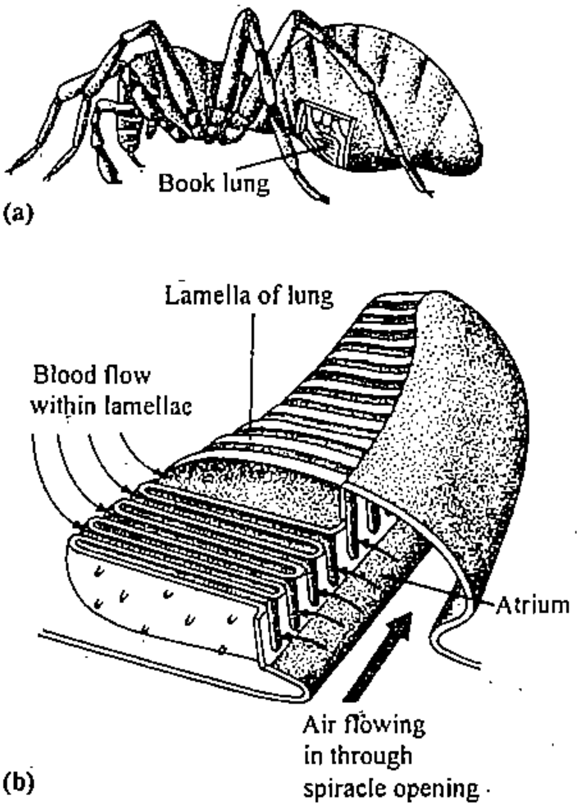

चित्र 10.15 : मकड़ी का पुस्त-फुफ्फुस एक प्रकार का विसरण फेफड़ा है। (a) मकड़ी के अंदर के भीतर पुस्त-फुफ्फुसों के जोड़े के एक सदस्य का स्थान। (b) एक पुस्त-फुफ्फुस को आरेखीय सेक्शन जिसमें पटलिकाओं के बीच गैसों का विसरण अथवा वायु-प्रवाह दिखाया गया है।

आंतरिक वातिका तंत्र का प्रतिरूप अलग-अलग होता है लेकिन सभी में पार्श्व संयोजन से युक्त एक जोड़ी अनुदैर्घ्य कांड (longitudinal trunks) बने होते हैं (चित्र 10.16)। वातकों की दीवार में क्यूटिकल के मोटे हो गए सर्पिल वलयों, जिन्हें टीनीडिया *(taenidia)* कहते हैं, का आलम्ब बना होता है। ये वलय सपीडन (यानी पिचक जाने) को रोकते हैं लेकिन नलिकाओं को फैलने तो देते हैं। ये वातक बार-बार शाखित-विशाखित होते जाते हैं जिससे अंत में सूक्ष्म शाखाएं वातकक *(tracheoles)* बन जाते हैं। ये वातकक सारे शरीर के विभिन्न ऊतकों में शाखान्वित हो जाते हैं। कुछ कीटों में वातक-नलिकाएं फैल कर *वायु कोश* (*air sacs*) बन जाते हैं (चित्र 10.16 D)। एक अकेली वातक-कोशिका से अनेक वातकक बन सकते हैं। कुछ कीटों की उड्डयन पेशियों में वाततक पेशियों के रेशकों तक के भीतर को पहुंच गए होते हैं। निर्मोचन (moulting) के दौरान वातकक की क्यूटिकल उतार-फेंकी नहीं जाती और ऐसा ही वातकों के मामले मे भी होता है, तथा निर्मोचन के बाद पुराने वातककों के साथ नए वातक जुड़ जाते हैं।

वातकों के माध्यम से गैसों का विनिमय मूलत: विसरण द्वारा होता हुआ कहा जाता है। मगर स्पाइरेकल अधिकांश समय बंद रहते हैं तथा यह विनिमय कदाचित विसरण और संवातन दोनों विधियों से होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि स्पाइरेकल बहुत थोड़े समय के ही लिए खुलते हैं और वह भी सारे के सारे एक ही समय पर नहीं, और यह खुलना हीमोलीली दाब के स्थानिक घट जाने के कारण होता है। स्पाइरेकल शब्दश: चूस कर खोला जाता है और वायु का "एक घूंट भीतर को पी" लिया जाता है दाब में कमी का होना अंतराखंडीय पेशी-संकुचनों के परिणामस्वरूप होता है एवं तंत्रिका तंत्र के नियंत्रणाधीन होता है जो स्वयं भी रक्त के ऑक्सीजन/कार्बन डाइऑक्साइड तनाव द्वारा नियमनित होता है। अत: उड़ने के

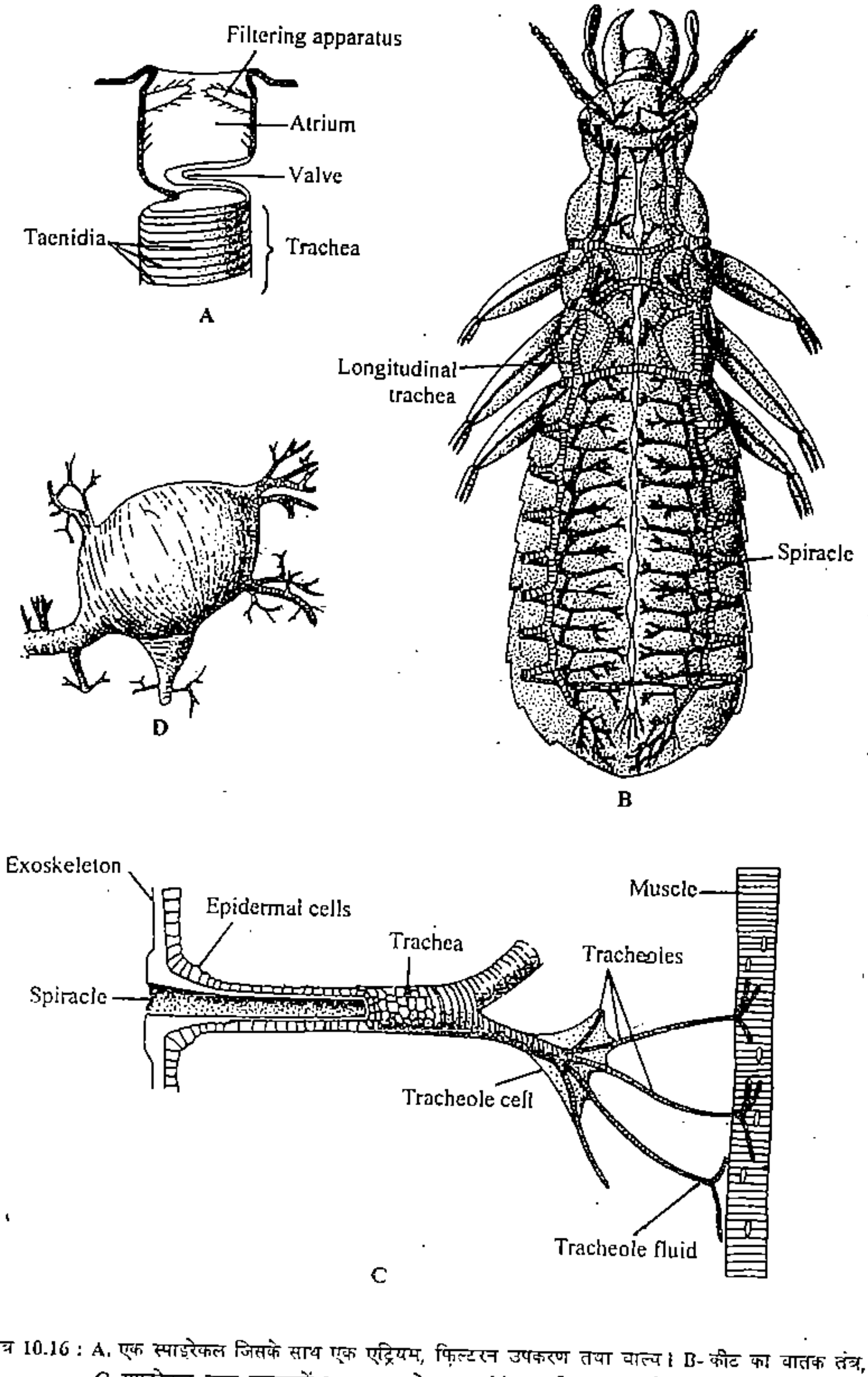

चित्र 10.16 : A. एक स्पाइरेकल जिसके साथ एक एट्रियम, फिल्टरन उपकरण तथा वाल्व। B- कीट का वातक तंत्र, C- स्पाइरेकल तथा वातककों का वातक के साथ संबंध दर्शाता हुआ आरेख, D- एक वायु कोश।

दौरान उससे ज़्यादा संख्या में स्पाइरेकल खुले होते हैं जितने कि अन्यथा कीट की विश्राम दशा में संप्रवाह दाब-प्रवणताएं (ventilating pressure gradients) शरीर की गतियों से पैदा होती हैं, और उनमें भी खास तौर से उदर की गतियों से जो वायु कोशों का संपीडन करतीं तथा वातकों का अनुदैर्ध्य प्रसार और संकुंचन करती हैं। स्पाइरेकलों के खुलने और बंद होने के क्रम द्वारा संप्रवाहन (वायु के भीतर आने जाने) में सहायता मिलती है। गैसों का विनिमय सांद्रण-प्रवणता का नीचे की ओर को आने से विसरण द्वारा होता है। वातकक तरलों के लिए पारगम्य होते हैं और अधिकतर कीटो में इनके अंतिम सिरों में तरल भरा

होता है। यही तरल गैसों के अंतिम परिवहन में काम करता जान पड़ता है। छोटे आकार के कुछ कीटों में जैसे कि कोलेम्बोलनों तथा प्रोट्यूरनों में जो कि नमी वाले परिवेश में रहते हैं, वातक नहीं होते और उनमें गैसों का विनिमय सामान्य देह सतह से होता है। कुछ अपरिपक्व जलीयकीटों में भी वातक नहीं होते, विशेषकर परिवर्धन की आरम्भिक अवस्थाओं में। वातक अक्सर उन वयस्क कीटों में भी होते हैं जो जल के भीतर रहते हैं। इनके वयस्क बस उन वायु बुदबुदों अथवा उस वायु परत से वायु का उपयोग करते हैं जो विशिष्ट "न भीग सकने वाले(जलविरागी, hydrofuge)" रोमों द्वारा देह की सतह से चिपकी रहती है। मगर कुछ वर्गों तथा निम्फों में जल में गैस-विनिमय हेतु कुछ विशेष अनुकूलन पाए जाते हैं।

डैमज़ेल फ़्लाई (Damselfly) के निम्फ़ तथा मे-फ़्लाई (Mayfly) के निम्फों में उदर गिल पाए जाते हैं (चित्र 10.17 तथा 10.18)। इन गिलों में बंद वातक होते हैं तथा जल और वातकों के बीच गैसों का विनिमय गिल की सतह के माध्यम से होता है। ड्रैगन-फ़्लाई के निम्फ़ जल को मलाशय से बलपूर्वक पम्प करते और बाहर निकालते हैं, इनके मलाशय में मलाशय गिल (rectal gills) होते हैं (चित्र 10.19) जिनके भीतर वातक होते हैं। सामान्यतः अपरिपक्व कीटों मे वातकों तथा जल के बीच होने वाला गैस-विनिमय सामान्य अध्यावरण से होता है। कुछ लार्वो में, जैसे कि मच्छरों के लार्वो में कुछ थोड़े से कार्यशील स्पाइरेकल होते हैं जो एक या एक से अधिक श्वसन नलिकाओं (breathing tubes) से संबंधित रहते हैं। लार्वा बीच-बीच में पानी की सतह पर आता और इन नलियों से वायु प्राप्त कर लेता है।

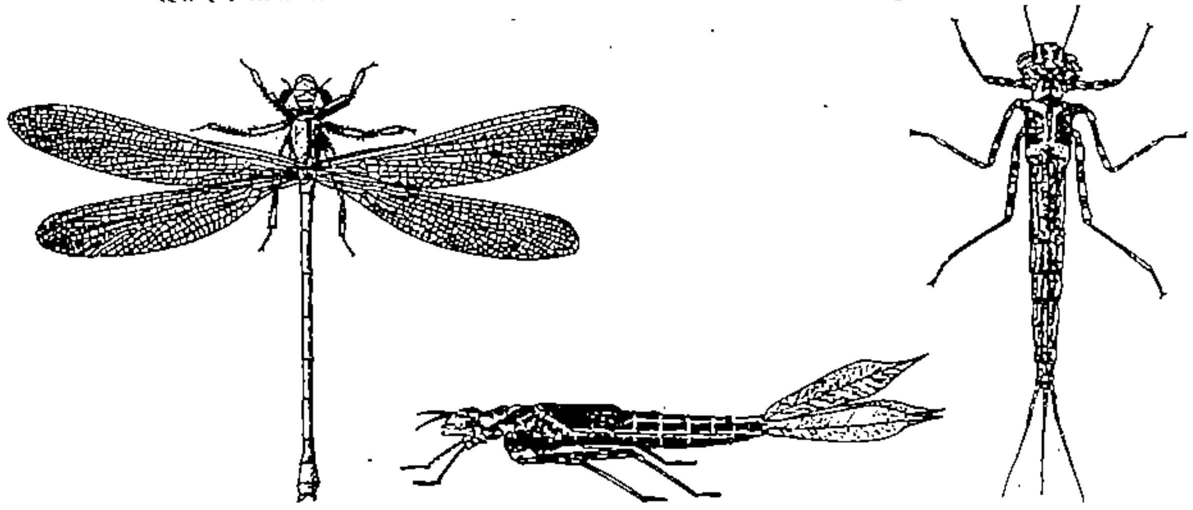

चित्र 10.17 : डैमज़ेल-फ्लाई इश्न्यूरा सर्व्यूला (*Ischneura cervula*) (Coenagrionidae)। A- व्यस्क नर तथा B,C- निम्फ़ के पृष्ठ एवं पार्श्व दृश्य।

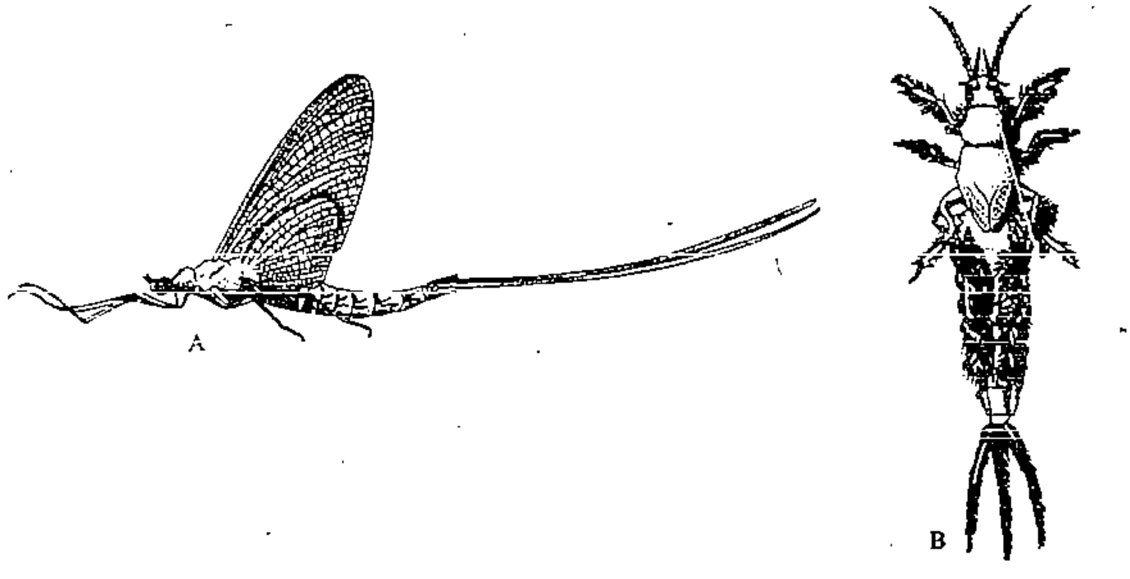

चित्र 10.18 : मे-फ़्लाई हेक्सेजीनिया लिम्बाटा (*Hexagenia limbata*) (Ephemeridae)। A- व्यस्क तथा B- निम्फ़।

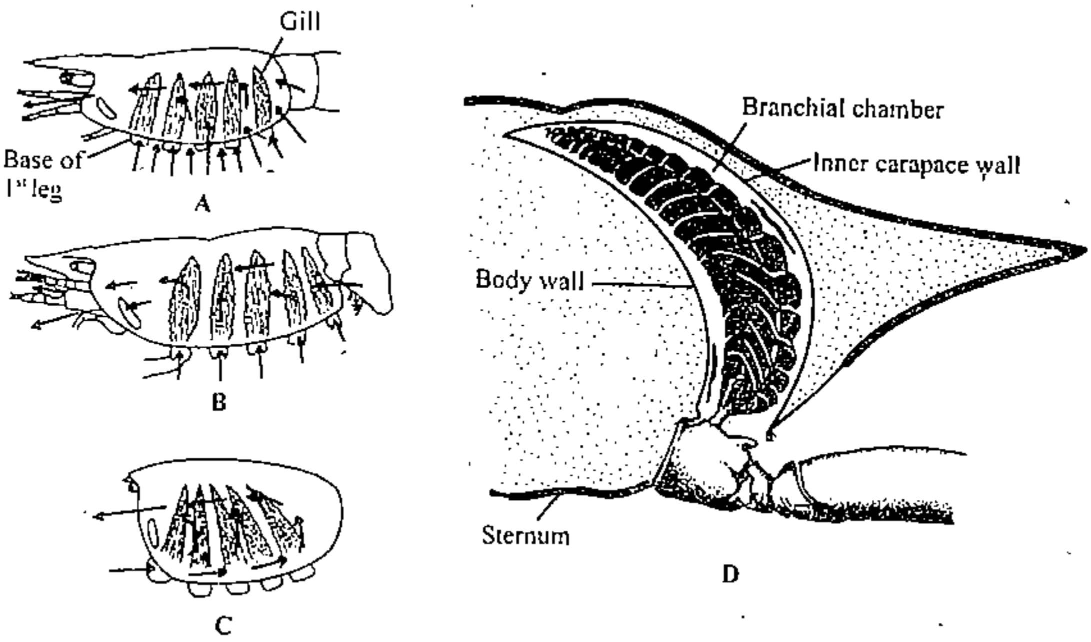

चित्र 10.19 : तीन डेकापोडों के गिल-कक्ष में से जल परिसंचरण के मार्ग जिनमें छिद्रों का उत्तरोत्तर कक्ष के भीतर सीमित होना दिखायी पड़ रहा है। A - श्रिम्प; कैरापेस के समूचे अधर तथा सीमांतों के सहारे जल प्रवेश करता है। B- क्रेफ़िश, टांगों के आधार पर तथा कैरापेस के पश्च सीमांत पर जल भीतर प्रवेश करता है। C- केकड़ा; जल केवल कीलिपीड के आधार पर से ही प्रवेश करता है। D- केकड़े के गिल-कक्ष पर से लिया गया अनुप्रस्थ सेक्शन।

ओनाइकाफ़ोरनों (Onychophorans) में भी गैस-विनिमय के अंग वातक होते हैं। स्पाइरेकल सूक्ष्म छिद्र होते हैं जो गुलिकाओं की पट्टियों के बीच-बीच देह की पूरी सतह पर बहुत संख्या में होते हैं। प्रत्येक स्पाइरेकल एक छोटे एट्रियम में खुलता है, जिसके भीतरी सिरे से सूक्ष्म वातकों का एक गुच्छा निकलता है। प्रत्येक वातक एक सरल सीधी नलिका होती है जो सीधी उसी ऊतक में पहुंच जाती है जिसमें वह आपूर्ति करती है।

iv) गिल (Gills) (जिन्हें क्लोम भी कहते हैं)

गिल अनेक जलीय प्राणियों के विशेषित श्वसन अंग होते हैं। ये मौलस्कों में तथा अनेक क्रस्टेशियनों में भी पाए जाते हैं। प्ररूपतः गिल सूत्राकार संरचनाएं होती हैं जिनमे भरपूर रक्त सप्लाइ होती है। जो गिल शरीर के भीतर होते हैं उन्हें "आंतरिक गिल" तथा जो शरीर के बाहर बने होते हैं उन्हें "बाह्य गिल" कहते हैं। इन दोनों ही का काम श्वसन है।

क्रस्टेशियनों मे गिल प्रायः उपांगों के साथ संबंधित होते हैं। मगर आकृति, उद्‌भव तथा स्थान के विषय में वे भिन्न-भिन्न होते हैं।

क्रेफ़िश,लॉब्स्टर, केकड़े आदि में गिल कुछ ख़ास वक्ष उपांगों जैसे कि एपिपोडाइटों से निकली सूत्राकार बहिर्वृद्धियां होती हैं, तथा ये एक कक्ष में जो कैरापेस से ढका होता है, बंद होते हैं (चित्र 10.19)। इन गिलों में संप्रवाह आम तौर से स्कैफोग्नैथाइट जैसे विशेष उपांगों की पैडल जैसी गतियों से होता है। अनेक जलीय कीटों में गिल होते हैं। ये ओडोनाटा, ट्राइकॉप्टेरा, तथा कुछ बीटल-लार्वों में पाये जाते हैं। इन गिलों में रक्त केशिकाओं की जगह सूक्ष्म वातक पहुंचे होते हैं। ड्रैगन-फ़्लाई ईस्नाना *(Aeshna)* के निम्फ़ों में वातक गिल मलाशय के भीतर बने होते हैं (चित्र 10.20)।

मौलस्कों में नानाविध प्रकार के गिल पाए जाते हैं जिन्हें टेनीडिया (ctenidia) कहते हैं। लैमेलिब्रैंको में दो जोड़ी टेनीडिया होते हैं जिनमें अनेक प्रकार के रूपांतरण पाए जाते हैं (चित्र 10.21)। काइटॉन में प्रत्येक पैलियल खांच मे 6 से 80 गिल होते हैं। गैस्ट्रोपोडों में गिल अपेक्षाकृत सरल युग्मित पिच्छाकार और प्रावार गुहा (mantle cavity) के भीतर स्थित होते हैं (चित्र 10.22) किंतु सेफ़ैलोपोडों में गिल बड़े तथा खूब ज्यादा रक्तवाहिकामय होते हैं (चित्र 10.23)।

चित्र 10.20 : एक कीट के मलाशय गिल।

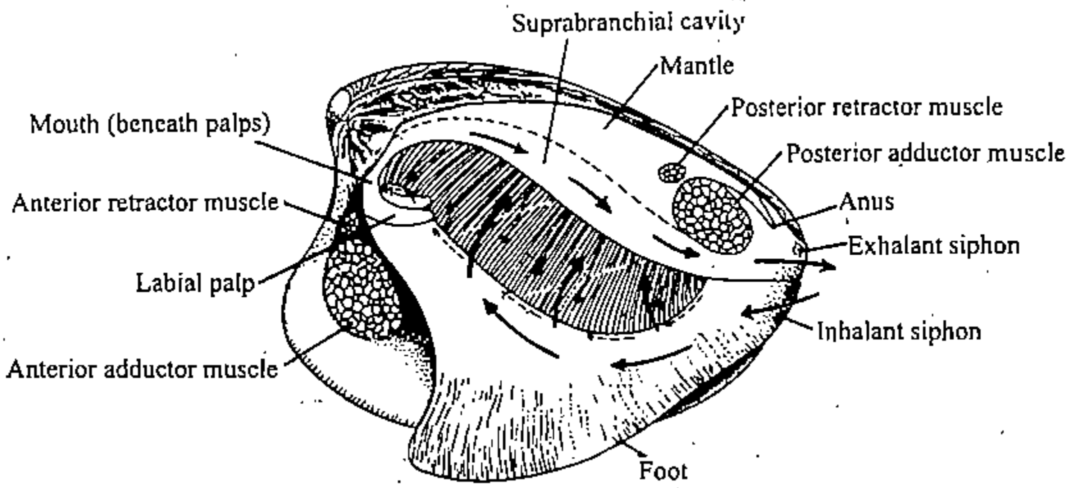

चित्र 10.21 : यूलैमेलिब्रैंक क्लैमों (सीपियों) में जैसे कि अलवण जल के मसेल ऐनोडॉण्टा *(Anodonta)* में गिल संरचना तथा संप्रवाह। ऐनोडॉण्टा का एक नमूना जिसमें वायीं ओर का कवच निकाल दिया गया है। (अर्घ-आरेखीय)। चार में से एक गिल-पटलिका को प्रावार गुहा में निलम्बित दिखाया गया है। इसे शरीर के पृष्ठ संलगन के समीप अनुदैर्घ्यतः काटा गया है ताकि भीतर की जल सरणियां दिखायी पड़ सकें।

गैस-विनिमय प्रावार तथा गिल दोनों से होता है। अधिकतर बाइवाल्वों के गिल फ़िल्टर अशन की विधि के लिए अति रूपांतरित होते हैं। ये आदिम टेनिडियन गिलों से विकसित हुए जिनमें सूत्रीय अक्ष के दोनों ओर सूत्र लम्बे हो गए हैं (चित्र 10.24)। जैसे जैसे लम्बे सूत्रों को सिरे उल्टे केंद्रीय अक्ष की तरफ़ को वलनित होते गए (मुड़ गए) वैसे वैसे टेनिडियम सूत्रों की आकृति लम्बे पतले "W" के जैसी होती गयी। अगल-बगल पड़े हुए सूत्र सिलियरी संधियों तथा ऊतक-संलयन से परस्पर जुड़ गए और इस प्रकार प्लेट जैसी पटलिकाएं बन गयीं जिनके भीतर अनेक उदग्र जल नलिकाएं प्रकट हो गयी थीं। सिलिया की क्रिया द्वारा पैदा की गयी जल-धारा का जल अंतःवाही साइफ़न में प्रवेश करता, वहां से वह पटलिकाओं के सूत्रों के बीच-बीच बने छिद्रों में से होता हुआ जल-नलिकाओं में जाता और फिर पृष्ठतः एक सम्मिलित गिलोपरिक कक्ष (suprabranchial chamber) में पहुंचता है (चित्र 10.25) तथा बाह्य वाही छिद्र द्वारा बाहर को निकल जाता है।

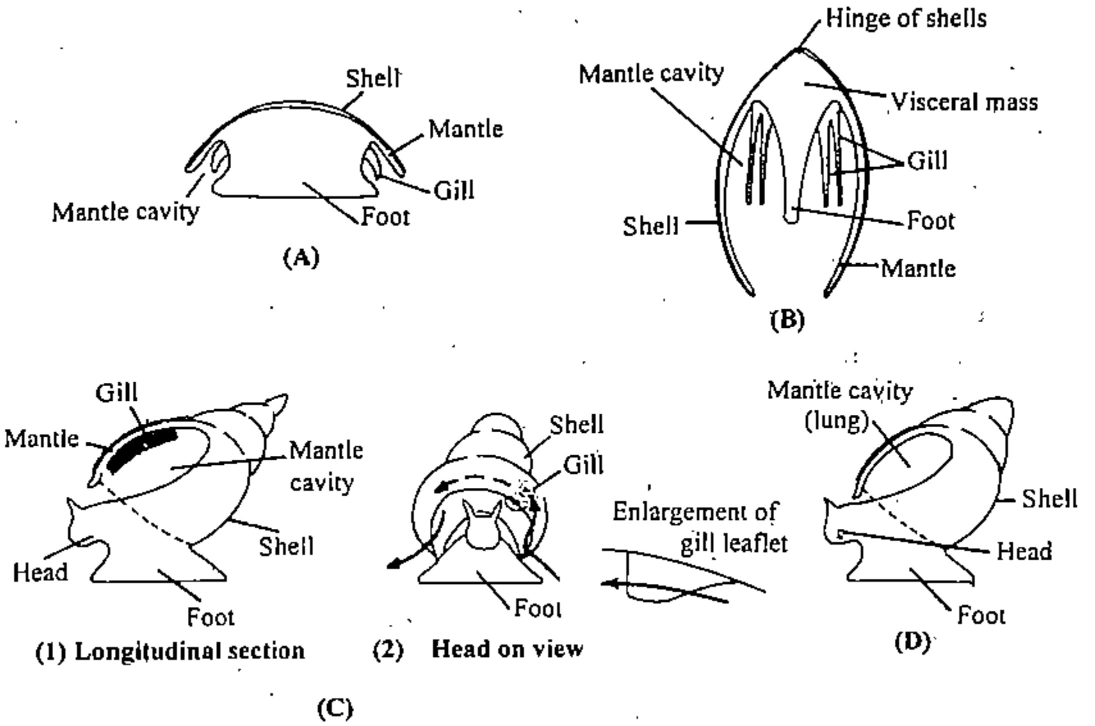

चित्र 10.22 : अनेक मौलस्क-वर्गों में प्रावार, प्रावार गुहा तथा गिलों की व्यवस्था का योजना निरूपण। A- एक काइटॉन का अनुप्रस्थ सेक्शन, B- एक लैमेलिब्रैंक सीपी (क्लैम) का अनुप्रस्थ सेक्शन, इनमें प्रावार गुहा अपेक्षाकृत खूब बड़ी होती है और गिल गुहा के भीतर निलम्बित रहते हैं। C- अनेक प्रोज़ोब्रैंक गैस्ट्रोपोडों में पायी जाने वाली दशा के आरेख। इनमें केवल एक गिल, बायां होता है और यह रूपांतरित हो गया है तथा प्रावार से समेकित होकर अनेक त्रिभुजाकार गिल-पत्रक (gill leaflets) बना लेता है जो प्रावार गुहा के भीतर पुस्तक के पन्नों के जैसे लटके होते हैं। D- एक थलीय पल्मोनेट गैस्ट्रोपोड का अनुदैर्घ्य सेक्शन। गिलों का अभाव है, तथा प्रावार गुहा को एक वायु-श्वासी फेफड़ा बना देती हैं। प्रावार गुहा बाहर की ओर को केवल एक छोटे छिद्र जैसे द्वार द्वारा ही बाहर को खुलती है। जब प्रावार गुहा में संप्रवाह होता है तब वायु इसी छिद्र में से अंदर और बाहर दोनों ओर आती-जाती है।

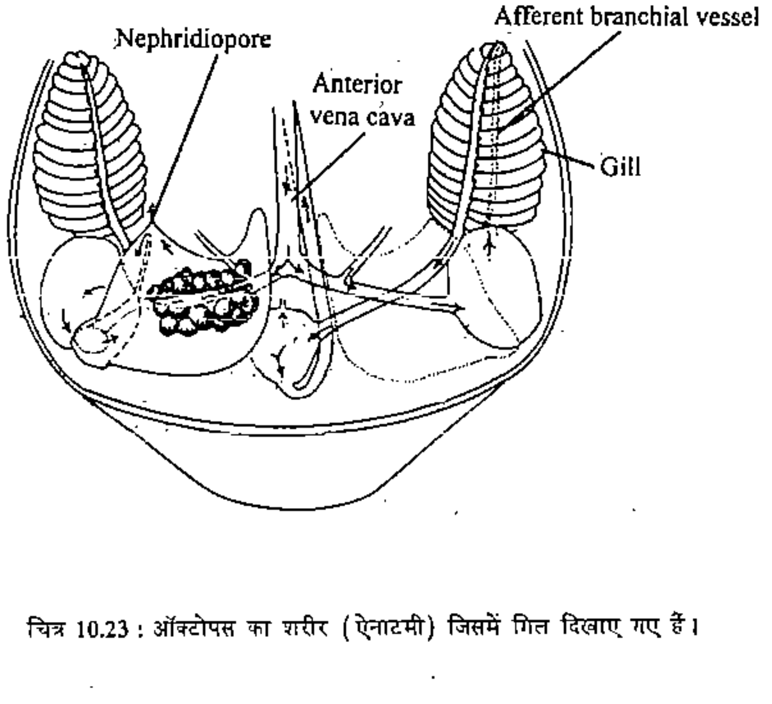

चित्र 10.23 : ऑक्टोपस का शरीर (ऐनाटमी) जिसमें गिल दिखाए गए हैं।

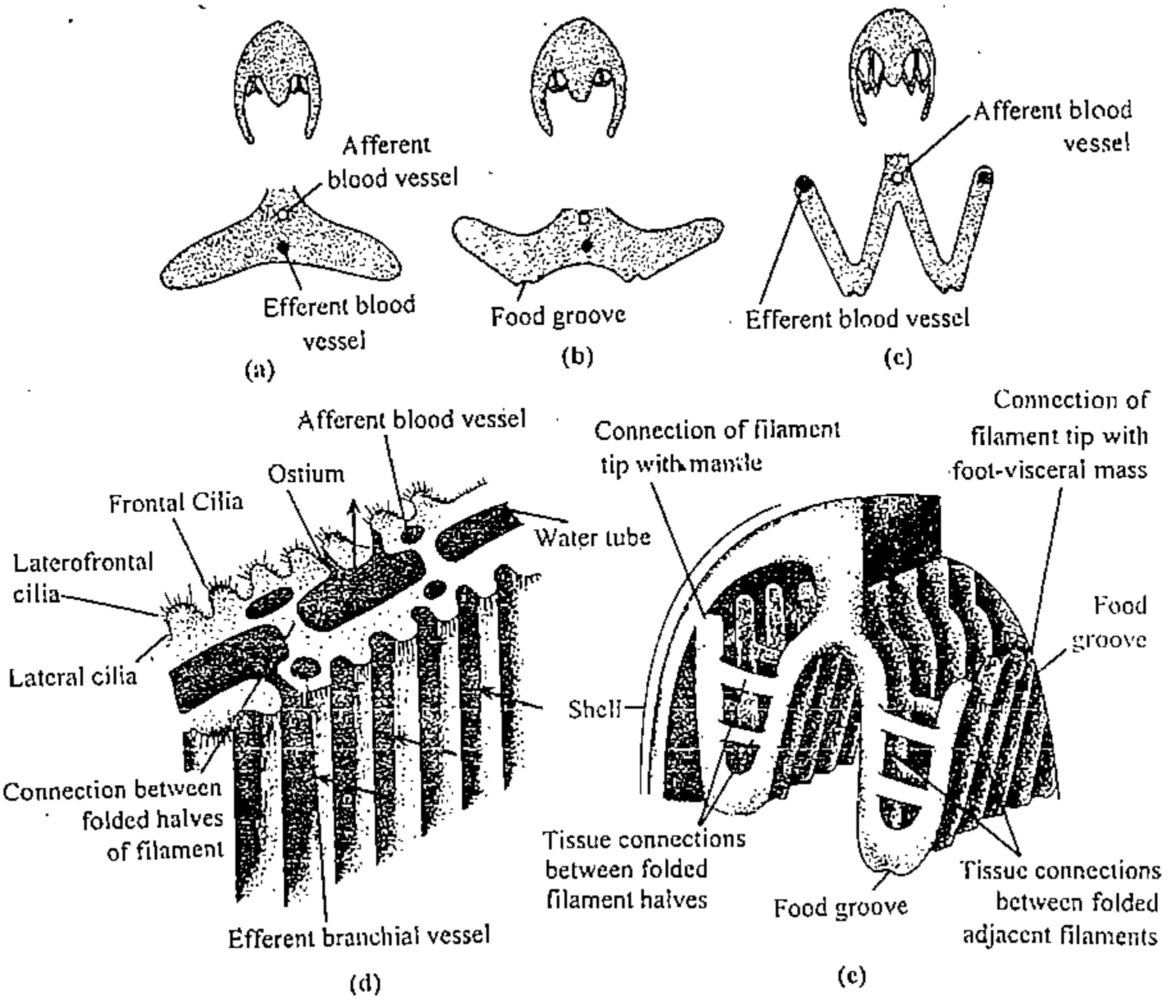

चित्र 10.24 : लैमेलिब्रैंक गिल का विकास। (a) आदिम प्रोटोब्रैंक गिल (पाद-अंतरंग संहति और प्रावार के सापेक्ष स्थिति अनुप्रस्थ सेक्शन में दिखायी गयी, है। (b) आहार खांच का विकास जिससे लैमेलिब्रैंक दशा बनी। (c) अहार खांच पर सूत्रों को वलनित होना जिससे लैमेलिब्रैंक दशा बन गयी है। (d) लैमेलिब्रैंक गिल का एक छोटा भाग; तीर के निशान जल-प्रवाह की दिशा बता रहे हैं (e) वलनित लैमेलिब्रैंक सूत्रों को आलम्ब प्रदान करने वाले ऊतक संयोजन।

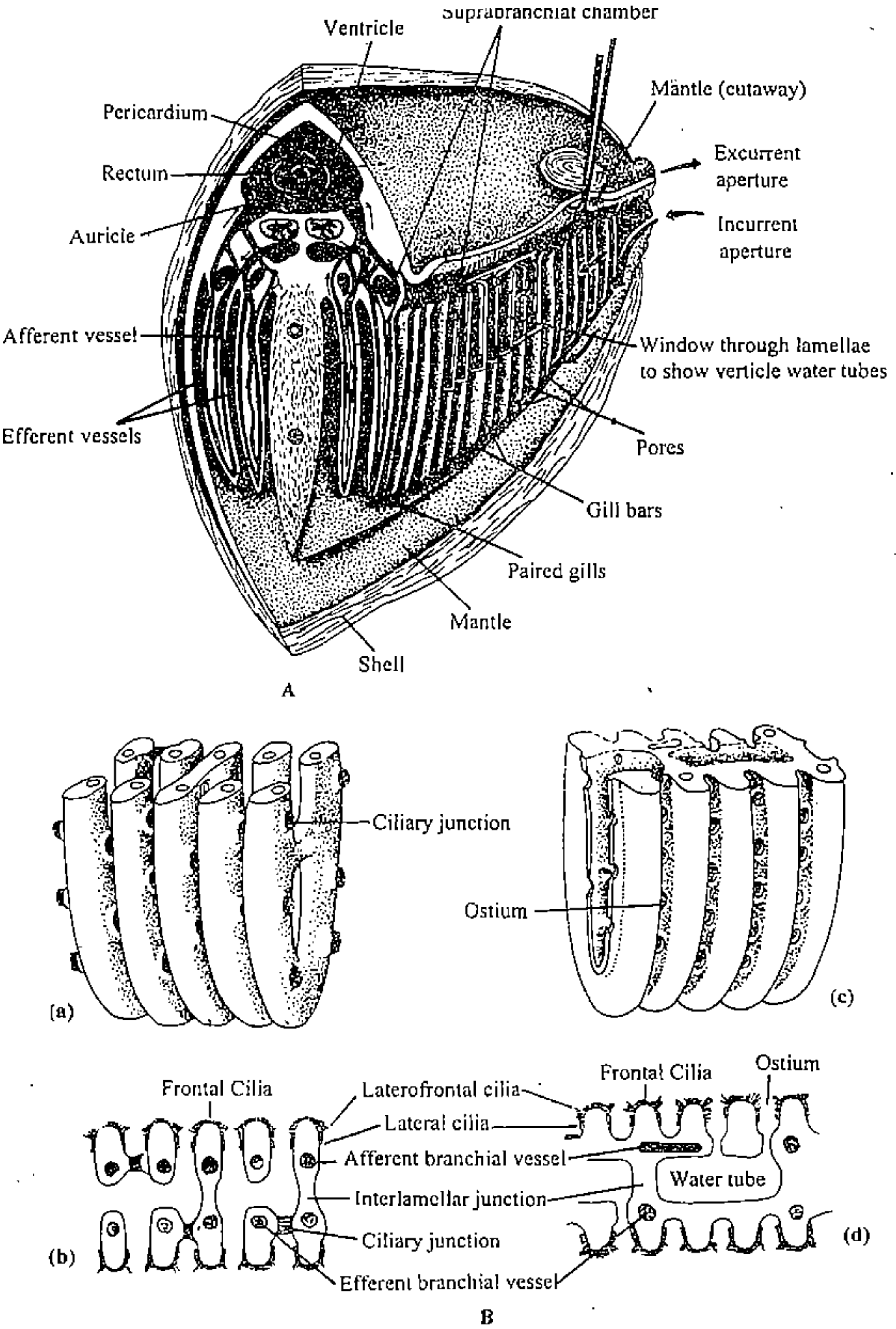

चित्र 10.25 : एक अलवणजलीय सीपी के हृदय क्षेत्र से लिया गया सेक्शन जिसमें परिसंचरण तथा श्वसन तंत्रों का परस्पर संबंध दिखाया गया है। श्वसनी जल-धाराएं: सिलिया द्वारा जल भीतर को खींचा जाता है, गिल-छिद्रों में प्रवेश करता है और फिर जल-नलिकाओं में से होता हुआ ऊपर गिलोपरिक कक्ष में पहुंचता और अंत में, बाह्य वाही छिद्र से होता हुआ बाहर निकल जाता है। गिलों का रक्त कार्बनडाईऑक्साइड को निकाल कर ऑक्सीजन ले लेता है। रक्त परिसंचरण: निलय रक्त को आगे को पम्प करता हुआ उसे पाद तथा आंतराग में पहुंचाता है तथा पीछे की ओर प्रावार कोटरों में पहुंचता है। प्रावार से लौटता हुआ रक्त अलिंदों में आता है; आंतराग से वह वृक्क में आता है और फिर गिलों में पहुंचता तथा अंत में अलिंदों में पहुंच जाता है। (B) फिलिब्रैंक गिल: (a) पांच सहवर्ती सूत्र (सतही त्रिविम दृश्य), (b) आननी दृश्य, (c-d) यूलैमेलिब्रैंक गिल, (c) पांच समेकित सहवर्ती सूत्र (सतही त्रिविम दृश्य) (d)- आननी सेक्शन।

10.2.2 श्वसन-प्रक्रिया

गैस-विनिमय अर्थात ऑक्सीजन का भीतर लेना और कार्बनडाइऑक्साइड का बाहर निकालना श्वसन सतह पर होता है क्योंकि इस सतह पर रक्त वाहिकाएं भारी मात्रा में आयी होती हैं। श्वसन सतह या तो सामान्य अध्यावरण, या फेफड़ा या गिल हो सकता है। विविध प्रकार की संप्रवाहन क्रियाविधियों द्वारा भीतर आने वाला ऑक्सीजन का स्रोत (वायुमण्डलीय वायु अथवा घुली ऑक्सीजन से युक्त जल) श्वसन सतह के सम्पर्क में आता है तो गैस-विनिमय होने लग जाता है यानी ऑक्सीजन रक्त में अवशोषित हो जाती है तथा रक्त के भीतर की कार्बन डाइऑक्साइड बाहर पर्यावरण में छोड़ दी जाती है।

गैसों का विनिमय बस साधारण विसरण द्वारा हो जाता है तथा ऐसा श्वसन गैसों के अंशिक दाब (partial pressure) के कारण होता है। गैसें उच्च आंशिक दाब वाले माध्यम से निम्न आंशिक दाब वाले माध्यम में पहुंचती हैं। पर्यावरण (वायु हो या जल) ऑक्सीजन की आंशिक दाब रक्त में इसके दाब की तुलना से ज्यादा होती है। अतः पर्यावरण की ऑक्सीजन श्वसन सतहों में से होकर रक्त में पहुंच जाती है। इसी प्रकार रक्त के भीतर की कार्बन डाइऑक्साइड की आंशिक दाब तात्कालिक पर्यावरण की अपेक्षा अधिक होती है। अतः वह रक्त में से श्वसन-सतह से होकर बाहर को निकल जाती है।

गैसीय मिश्रण में किसी भी गैस की आंशिक दाब मिश्रण में उसके सांद्रण के अनुपातिक होती है। उदाहरणतः ऑक्सीजन जो 760 mm की बैरोमीट्रिक दाब पर वायु का लगभग 21% भाग होती है, लगभग 160 mm Hg (0.21×760) का आंशिक दाब लगाती है। इसे वायु का "ऑक्सीजन तनाव" कहते हैं।

श्वसन गैसों का परिवहन

अधिक आदिम प्राणियों में, जो प्रायः छोटे आकार के होते हैं, श्वसन गैसें (ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड) सीधे ही शरीर तथा पर्यावरण के बीच विसरण कर लेती हैं। लेकिन उच्चतर प्राणियों में, जो सामान्यतः ज़्यादा बड़े हुआ करते हैं, श्वसन गैसों को एक परिसंचरण तंत्र की सहायता से वहन किया जाता है और इस तंत्र में परिसंचारी तरल प्रायः रक्त ही होता है।

जल में सामान्यतः केवल 0.5 आयतन प्रतिशत (अर्थात प्रति 100 cc में 0.5 cc) ऑक्सीजन होती है। इसकी अपेक्षा कार्बन डाईऑक्साइड जल में ज़्यादा घुलनशील होती है लेकिन वह भी 5 आयतन प्रतिशत (अर्थात 100 cc में 5 cc) रक्त (प्लाज़्मा) स्वयं तो श्वसन गैसों का हीन वाहक ही है। यह उन्हें मात्र उतना ही अपने में घुला सकता है जितना कि जल अथवा लवण जल। छोटे प्राणियों की आवश्यकताओं के लिए और यहां तक कि उनसे कुछ बड़े मगर स्थानबद्ध प्राणियों के लिए भी जिनकी उपापचयी क्रियाएं बहुत मंद होती हैं, यह ऑक्सीजन-मात्रा पर्याप्त होती है। अधिक बड़े अकॉर्डेटों में (तथा कार्डेटों में तो निश्चय ही) उच्चतर उपापचय क्रिया होती है और उनमें श्वसन वर्णक पाए जाते हैं। यही वर्णक, जिन्हें क्रोमोप्रोटीन भी कहा जाता है, आक्सीजन का परिवहन करते और उसका संचय भी। साथ ही, ये वर्णक (तथा कुछ अन्य पदार्थ भी) बफ़र की तरह कार्य करते हुए रक्त की कार्बन डाइऑक्साइड वहन क्षमता बढ़ा देते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड कुछ क्रोमोप्रोटीनों के साथ भी संयोजन करके कार्बमीनों यौगिक बनाती हैं और वे भी कार्बन डाइऑक्साइड के परिवहन के छोटी मगर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तो इस प्रकार आपने देखा कि रक्त स्वयं तो श्वसन गैसों का अपेक्षाकृत हीन वाहक है मगर जैसा कि काफ़ी अक्सर होता है अकॉर्डेटों में इसमें एक न एक ऐसा श्वसन वर्णक तो होता ही है जो ऑक्सीजन के वहन का कार्य करता है। ये वर्णक ऑक्सीजन को जहां वह भरपूर होती है प्राप्त कर लेते और रक्त के माध्यम से उसका परिवहन करते हुए, जहां-जहां ऊतकों में यह कम होती है, वहां-वहां उसे झट से दे देते हैं। अतः श्वसन वर्णक अथवा क्रोमोप्रोटीन जहां-जहां भी वे पाये जाते हैं श्वसन गैसों के परिवहन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मगर यह भी सच है कि सभी अकशेरुकियों मे श्वसन वर्णक पाए भी नहीं जाते। उदाहरणतः अधिकतर कीटों तथा कई अन्य आर्थ्रोपोड वर्गों में ये वर्णक मौजूद नही होते। जब भी श्वसन वर्णक मौजूद होते हैं तब-तब विभिन्न प्राणियों में श्वसन वर्णक अलग-अलग प्रकृति के होते हैं। ये या तो रक्त प्लाज़्मा में एक घोल के रूप में हो सकते हैं या कणिकाओं (corpuscles) के भीतर भरे हो सकते हैं। अब आप विभिन्न अकशेरुकियों में पाए जाने वाले श्वसन वर्णकों के विषय में संक्षेप में पढ़ेंगे।

10.2.3 श्वसन वर्णक (Respiratory pigments)

ऑक्सीजन का रक्त में अथवा अन्य देह तरलों में घुलना भौतिकी के नियमों के अनुसार होता है। घोल के प्रति इकाई आयतन में वहन की जाने वाली ऑक्सीजन मात्रा विद्यमान ऑक्सीजन तनाव के अनुपात में बढ़ती जाती है। मगर, कार्यिकीय तनावों पर देह तरलों में घुली ऑक्सीजन का सांद्रण कभी ज्यादा नहीं होता। उन प्राणियों में, जो ऑक्सीजन परिवहन के लिए देह-तरलों में परिसंचरण पर निर्भर रहते हैं तरलों की ऑक्सीजन वहन क्षमता विशिष्ट ऑक्सीजन परिवहन यौगिकों के पाए जाने से, उससे काफ़ी ज़्यादा स्तर तक बढ़ायी जा सकती है जितनी कि सामान्य घोलों में होती है। ये यौगिक या तो रक्त प्लाज़्मा में घुले हो सकते हैं या परिसंचरणशील देह तरलों में तिरती कणिकाओं के भीतर स्थित हो सकते हैं। इन परिवहन यौगिकों में ऑक्सीजन के साथ प्रत्यावर्ती (reversible) अदृढ़ संयोजन बन जाते हैं। इनका ऐसा ही एक उदाहरण कशेरुकियों में सर्वत्र पाया जाने वाला हीमोग्लोबिन है। फेफड़ों से बाहर आते समय रक्त में ले जायी जाने वाली 98% ऑक्सीजन, हीमोग्लोबिन के साथ ऑक्सीजन के अणुओं के रासायनिक संयोजन के ही कारण होती है; जबकि सामान्य घोल में इसकी मात्रा 2% से भी कम होती है।

जब हम कहते हैं कि अमुक यौगिक में ऑक्सीजन के साथ प्रत्यावर्ती संयोजन हो रहा है, तो उसका अर्थ है कि वह उच्च ऑक्सीजन तनावों के सम्पर्क में आने पर ऑक्सीजन ले लेता है और जब ऑक्सीजन तनाव कम होता हो तब ऑक्सीजन को छोड़ देता है। प्राणियों के देह-तरलों के इस प्रकार कार्य करने वाले यौगिक 4 वर्गों में आते हैं: हीमोग्लोबिन वर्ग, हीमोसायेनिन वर्ग, हीमएरिथ्रिन वर्ग तथा क्लोरोक्रुओरिन वर्ग। इन सभी यौगिकों को सामूहिक रूप में श्वसन वर्णक अथवा श्वसन प्रोटीन कहते हैं। इन्हें कभी-कभी क्रोमोप्रोटीन भी कहते हैं क्योंकि ये अक्सर रंगदार होते हैं।

ऑक्सीजन के साथ संयोजित होने की प्रक्रिया को *ऑक्सीजनीकरण (oxygenation)* कहते हैं तथा ऑक्सीजन छोड़ने की प्रक्रिया को *विऑक्सीजनीकरण (deoxygenation)* कहते हैं। जब भी किसी श्वसन वर्णक के नाम के पहले "ऑक्सी, oxy" अथवा "विऑक्सी, deoxy-" उपसर्ग लगाए जाते हैं तो उससे उस वर्णक के क्रमशः ऑक्सीजन से संयुक्त होने अथवा संयुक्त न होने की दशा का बोध होता है। उदाहरणतः ऑक्सीजन के साथ संयोजित हीमोग्लोबिन को ऑक्सीहीमोग्लोबिन (oxyhaemoglobin) (लाल रंग) तथा बंधित ऑक्सीजन से च्युत हीमोग्लोबिन को विऑसीहीमोग्लोबिन (deoxyhaemoglobin) (जामुनी रंग, purple) कहते हैं।

हीमोग्लोबिन वर्ग (Haemoglobins)

श्वसन वर्णकों में हीमोग्लोबिन ही सबसे अच्छी तरह जाना जा चुका है। हीमोग्लोबिन की आधारभूत आण्विक इकाई में एक हीम समूह (चित्र 10.26) होता है जो एक प्रोटीन यानी ग्लोबिन अर्धांश से बंधित रहता है। हीम एक धातुपौरफ़ाइरिन (metalloporphyrin) होता है और उसे ठीक-ठीक कहें तो वह फेरस प्रोटोपौरफ़ाइरिन (ferrous protoporphyrin) होता है। यह प्रोस्थेटिक (prosthetic) समूह की तरह कार्य करता है जिसके साथ प्रोटीन संलग्न होता है। अलग-अलग स्पीशीज़ के हीमोग्लोबिन अपने रसायनिक तथा भौतिक गुणधर्मों में अलग-अलग होते हैं। ये अंतर इनके ग्लोबिन अर्धांशों में भिन्नता के कारण होते हैं। प्रत्येक इकाई अणु का आण्विक भार प्ररूपतः लगभग 1600-1700 होता है। अतः कशेरुकियों के चार-इकाई हीमोग्लोबिन के आण्विक भार लगभग 6400-6800 होते हैं। अपेक्षाकृत विशाल हीमोग्लोबिन अणु कुछ ही अकॉर्डेटों में पाए जाते हैं। उदाहरणतः बहुत से ऐनेलिडों में, जिनमें केंचुए (जैसे लुम्ब्राइकस) तथा पौलीकीट *ऐरेनिकोला* शामिल हैं, रक्त हीमोग्लोबिन का आण्विक भार लगभग 30 लाख होता है। ऐसे विशाल अणुओं में अक्सर 100 या उससे भी ज़्यादा ऑक्सीजन बंधनी स्थान होते हैं।

ऐनेलिडों में हीमोग्लोबिन सामान्यतः पाए जाते हैं। इन सबमें हीमोग्लोबिन प्रायः रक्त में घुले होते हैं। तथापि, ये कभी-कभी ऊतकों में भी पाए जाते हैं। आर्थ्रोपोडों में छोटे ब्रैंकियोपॉड क्रस्टेशियनों की अनेक स्पीशीज़ (जैसे डैफ़्निया, आर्टीमिया में) में हीमोग्लोबिन पाए जाते हैं लेकिन कीटों में किसी एक-आध में ही पाए जाते हैं (*काइरोनोमस, Chironomus*, नामक मिज के लार्वा में)। इनमें भी यह प्रायः रक्त में घुली दशा में ही होता है। मौलस्कों में कुछ प्लैनॉर्बिड घोंघों में हीमोग्लोबिन रक्त में घुला हुआ पाया जाता है तथा कुछ बाइवैल्वों में रक्त कणिकाओं के भीतर होता है।

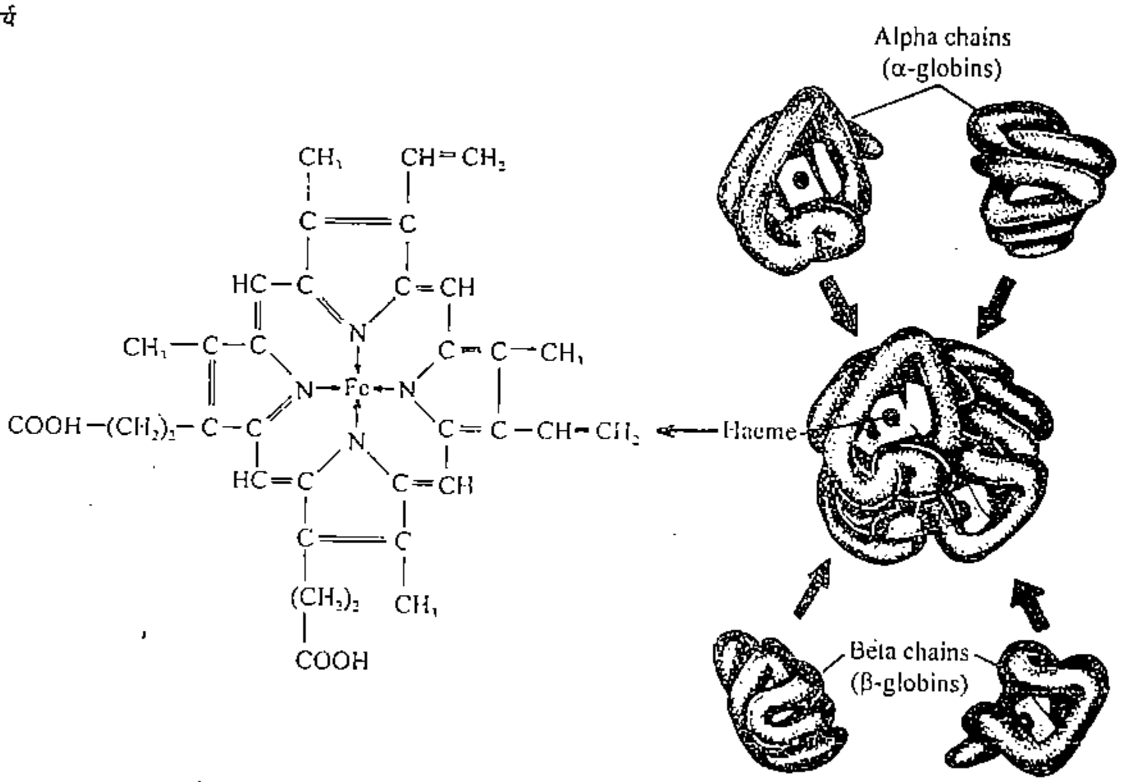

चित्र 10.26 : जब किसी प्रोटीन में दो या दो से अधिक पैलीपेप्टाइड श्रृंखलाएं होती हैं, जैसे कि हीमोग्लोबीन में, तब उसमें एक चतुष्क (quanternary) संरचना होती कही जाती हैं। हीमोग्लोबिन की चारों में से प्रत्येक पौलीपेप्टाइड में एक आयरन-युक्त अणु हीम जुड़ा होता है लेकिन अणु के इस दृश्य में केवल दो ही हीम दिखायी दे सकते हैं।

क्लोरोक्रूओरिन वर्ग (Chlorocruorins)

ये वर्णक चार पौलीकीट फ़ेमिलियों में पाए जाते हैं - साबेलिडी, सर्पुलिडी, ऐम्फ़ेरेटिडी तथा क्लोरहीमिडी में। वर्णक प्लाज़्मा विलयन में पाया जाता है तथा यह उन कोशिकाबाह्य हीमोग्लोबिनों जो इतनी सामान्यतया ऐनेलिडों के रक्त में घुला हुआ पाया जाता है, के इतनी निकट समानता वाला है। क्लोरोक्रूओरिन बड़े अणु होते हैं जिनका आण्विक भार लगभग 30 लाख होता है। तनु घोल में क्लोरोक्रूओरिन हरे-हरे से होते हैं, मगर सांद्रित घोलों में लाल होते हैं।

हीमएरिथ्रिन वर्ग (Haemerythrins)

हीमएरिथ्रिन वर्ग के वर्णक अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं। ये गौण फ़ाइलमों में आने वाले कुछ प्राणियों में पाए जाते हैं जैसे कि साइपनकुलिड कृमियों, कुछ ब्रैकियोपोडों प्राएपुलिडों तथा *मागेलोना* (*Magelona*) पौलीकीट में पाए जाते हैं। हीमएरिथ्रिन अंत:कोशिकीय तौर पर पाए जाते हैं जो प्राय: सीलोमी तरल में या रक्त कोशिकाओं में जैसे कि *मागेलोना* में, पाए जाते है। इनका यह नाम हीमएरिथ्रिन होने के बावजूद इनमें हीम समूह नहीं होते। फिर भी, इनमें फ़ेरस लोहा तो होता ही है जो सीधा प्रोटीन से बंधित रहता है। इनका आण्विक भार लगभग 7500 होता है। ये वर्णक विऑक्सीजनित दशा में रंगहीन होते हैं मगर ऑक्सीजनित होने पर लाली लिए हुए बैंगनी रंग के हो जाते हैं।

हीमोसायेनिन वर्ग (Haemocyanins)

यह वर्णक कुछ आर्थ्रोपोडों तथा मौलस्कों में पाया जाता है। हीमोसायेनिनों में हीम समूह नहीं होता। इनमें पायी जाने वाली धातु तांबा (कॉपर) होती है जो सीधा प्रोटीन से बंधित होता है। हीमोसायेनिन रक्त प्लाज़्मा में घुले हुए पाए जाते हैं तथा सदा ही बड़े आण्विक साइज़ के होते हैं। विऑक्सीजनित होने पर हालांकि रंगहीन होते हैं परंतु ऑक्सीजनित रूप में नीले होते हैं।

मौलस्को में हीमोसायेनिन सेफ़ैलोपोडों, काइटॉनों तथा अनेक गैस्ट्रोपोडों में पाए जाते हैं। आर्थ्रोपोडों में ये मैलाकॉस्ट्रैकन क्रस्टेशियनों (केकड़ों, लाब्सटरों, श्रिम्पों, झींगों), "हॉर्स-शू" केकडों, मकड़ियों तथा बिच्छुओं में होते हैं। मौलस्कन वर्णकों का आण्विक भार 40-90 लाख होता है।

श्वसन वर्णकों के कार्य

जैसा कि आपने पिछले उपअनुभागों में पढ़ रखा है वर्णक ऑक्सीजन के वाहक होते हैं। श्वसन वर्णकों के अभाव में रक्त ऑक्सीजन को केवल जल में अथवा लवण जल में घुली ऑक्सीजन को ही ले जा सकता है और इस तरह ले जायी जाने वाली ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम होती है। सभी वर्णकों में ऑक्सीजन के लिए भारी बंधुता पायी जाती है जिसके साथ वे उच्च आंशिक दाब पर संयोजित हो जाते तथा कम आंशिक दाब पर वियोजित हो जाते हैं। इस प्रकार इन वर्णकों में इनकी क्रिया में प्रत्यावर्तिता होती पायी जाती है।

$$\text{हीमोग्लोबिन + ऑक्सीजन} \underset{\text{ऊतक (ऑक्सीजन के निम्न आंशिक दाब पर)}}{\overset{\text{(ऑक्सीजन के उच्च आंशिक दाब पर) श्वसन अंग}}{\rightleftharpoons}} \text{ऑक्सीहीमोग्लाबिन}$$

ऊतकों में पाए जाने वाले श्वसन ऊतक जैसे कि पेशियों में पाए जाने वाले हैं, ऑक्सीजन के संयम का कार्य भी करते हैं। साथ ही ये बफ़रों के जैसा काम भी करते हैं जिसमें ये रक्त की कार्बन डाइऑक्साइड वहन क्षमता बढ़ा देते हैं।

बोध प्रश्न 1

a) सही कथनों के आगे सही का निशान (√) तथा गलत कथनों के आगे काटे का निशान (×) लगाइए :-

i) श्वसन एक रासायनिक क्रिया है जो मुख्यत: कोशिका के केंद्रक के भीतर होती है और इसमें ऊर्जा निकलती है।

ii) कीटों में वायु वातक तंत्र के माध्यम से सीधे ही ऊतकों में पहुंचा दी जाती है।

iii) स्पंज उन स्थानों में रहना पसंद करते हैं जिनमें ऑक्सीजन अधिक होती है।

iv) केचुओं तथा अधिकतर जोंकों में विशिष्ट श्वसन अंग नहीं होते।

v) गिल, बिच्छू तथा मकड़ी जैसे आर्थ्रोपोडों में पाए जाते हैं।

vi) इकाइनोडर्मों में नाल-पादों का कार्य श्वसन नहीं है।

b) मूलपाठ में दिए गए उचित शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

i) गैसें उच्च .... से निम्न आंशिक दाब की ओर विसरण करती हैं।

ii) हीमोग्लोबिन द्वारा वहन की जाने वाली ऑक्सीजन की मात्रा रक्त प्लाज़्मा में .... की आंशिक दाब से प्रभावित होती है।

iii) रक्त प्लाज़्मा में घुले श्वसन वर्णकों का आण्विक भार कोशिकाओं के भीतर पाए जाने वाले श्वसन वर्णकों से प्राय: .... होता है।

iv) हीमोग्लोबिन में प्रोस्थेटिक समूह के रूप में .... पाया जाता है।

v) क्लोरोक्रुओरिन .... रंग का वर्णक होता है जो .... ऐनेलिडों में पाया जाता है।

10.3 परिसंचरण तंत्र (Circulatiory systems)

स्पंजों, सीलेंटेरेटों तथा प्लैटीहेल्मिंथों में पोषक तत्व, श्वसन गैसें तथा अपशिष्ट पदार्थ अंतराकोशिकीय गुहाओं में आसानी से विसरित हो सकते हैं। मगर उच्चतर प्राणियों में परिसंचरण तंत्र एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है जिसके द्वारा पर्यावरण से आए पोषक तथा ऑक्सीजन देह के सभी ऊतकों में पहुंच सकते हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड और साथ में नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थ भी शरीर से बाहरी पर्यावरण में निष्कासित किए जा सकते हैं।

परिसंचरण तंत्र को समान कार्यों वाले अनेक घटकों में विभाजित किया जा सकता है। परिसंचरणी तरल के अतिरिक्त इनमें ये सब भी आते हैं:-

i) एक मुख्य नोदनी अंग (pumping organ) यानी प्राय: एक हृदय होता है जो रक्त को बलपूर्वक शरीर में चक्कर लगवाता है।

ii) धमनी तंत्र जो रक्त को वितरित करता एवं एक दाब-आगार के रूप में कार्य करता है।

iii) कोशिकाएं अथवा कुछ प्राणियों में रक्त गुहाएं जिनमें रक्त और ऊतकों के बीच पदार्थों का स्थानांतरण होता है, और

iv) शिरा तंत्र जो एक तो रक्त-आगार के रूप में कार्य करता है तथा दूसरे रक्त को वापिस हृदय में लौटाने वाले तंत्र का काम भी करता है। विभिन्न प्राणियों में ऊपर बताए गए घटकों में से कोई एक अथवा एक से अधिक घटक अनुपस्थित हो सकते हैं।

10.3.1 खुले और बंद प्रकार के परिसंचरण-तंत्र (Open and closed types of circulatory system)

उच्चतर मेटाज़ोअनों में दो प्रकार के परिसंचरण-तंत्र पाए जाते हैं। एक प्रकार के तंत्र में मूल ब्लास्टोसील ही मुख्य परिअतंरग गुहा के रूप में बनी रहती है। इसमें कोई वास्तविक सीलोम या तो होती ही नहीं जैसे कि स्यूडोसीलोमेटों में, या अगर हुई भी, तो अति विलुप्त अथवा ह्रसित होकर केवल गोनडों तथा उत्सर्जन अंगों तक ही सीमित होती है जैसे कि आर्थ्रोपोडों तथा अधिकतर मौलस्कों में। इन प्राणियों में धमनियों तथा शिराओं के बीच कोई बंद कोशिका-जाल नहीं होता। धमनी रक्त बड़ी गुहाओं अथवा कोटरों यानी साइनसों में (अथवा छोटी-छोटी गुहाओं में जिन्हें रिक्तिकाएं, lacunae, कहते हैं) बहता है जिनके भीतर विविध ऊतक तथा अंग रक्त में डूबे रहते हैं। इन गुहाओं से रक्त बड़ी खुली शिराओं में पहुंचता है अथवा ऑस्टियमों (ostia) में से होकर सीधे हृदय में पहुंच जाता है। इसे खुले प्रकार का परिसंचरण तंत्र कहते हैं।

दूसरे प्रकार का परिसंचरण तंत्र वह है जिसमें बंद कोशिकाएं छोटी धमनियों को शिराओं से जोड़ती हैं, तथा पोषकों से युक्त तरल कोशिकाओं की दीवारों से छन कर ऊतक गुहाओं में पहुंचता है जहाँ से फिर कोशिकाएं अपने पोषकों को प्राप्त कर लेती हैं। इसे बंद प्रकार का परिसंचरण तंत्र कहते हैं। इस प्रकार का परिसंचरणतंत्र ऐनेलिडों, सेफैलोपॉड मौलस्कों तथा कॉर्डेटों में पाया जाता है (चित्र 10.27)।

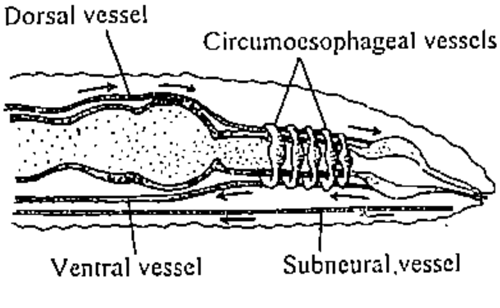

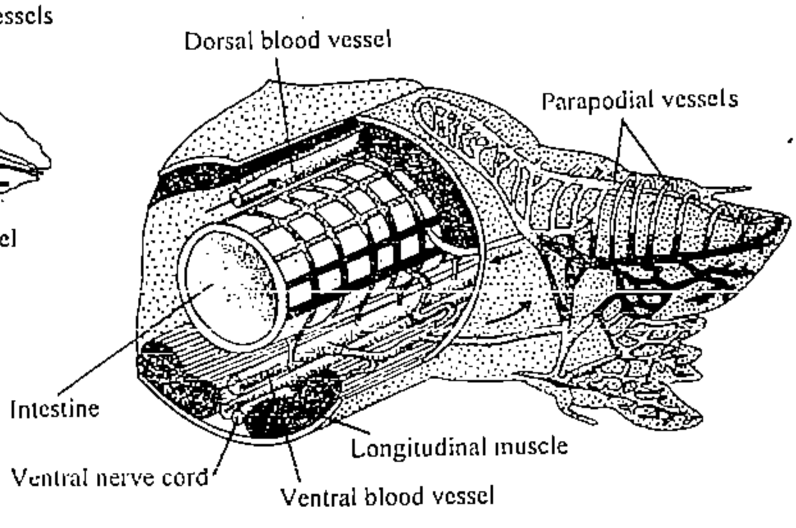

चित्र 10.27: ऐनेलिड कृमियों का परिसंचरण तंत्र। (a) केंचुए में इस तंत्र के अग्र भाग का पार्श्व दृश्य। (b) *नीरीस* के एक खंड के भीतर परिसंचरण तंत्र। तीर के निशान रक्त-प्रवाह की दिशा दर्शा रहे हैं।

a) खुला प्रकार

इस प्रकार अनेक अकॉर्डेटों में खुले प्रकार का परिसंचरण पाया जाता है, यानी एक ऐसा तंत्र जिसमें हृदय द्वारा पम्प किया गया रक्त एक धमनी में से होता हुआ रक्त से भरे एक खुले कोटर में पहुंचता है, यह कोटर एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच होता है। रक्त से भरी गुहा को हीमोसील (haemocoel) कहते हैं, और ऐसा ख़ास तौर से आर्थ्रोपोडों में पाया जाता है। हीमोसील के अंदर भरा तरल जिसे हीमोलिम्फ़ अथवा रक्त कहते हैं कोशिकाओं में से होकर नहीं बहता बल्कि सीधे ही अंगों पर छाया रहता है। चित्र 10.28 में खुले परिसंचरण वाले दो समूहों के अकॉर्डेटों, एक क्रे-फ़िश तथा एक बाइवैल्व (द्विकवची) मौलस्क की मुख्य वाहिकीओं की संघटना दिखायी गयी है।

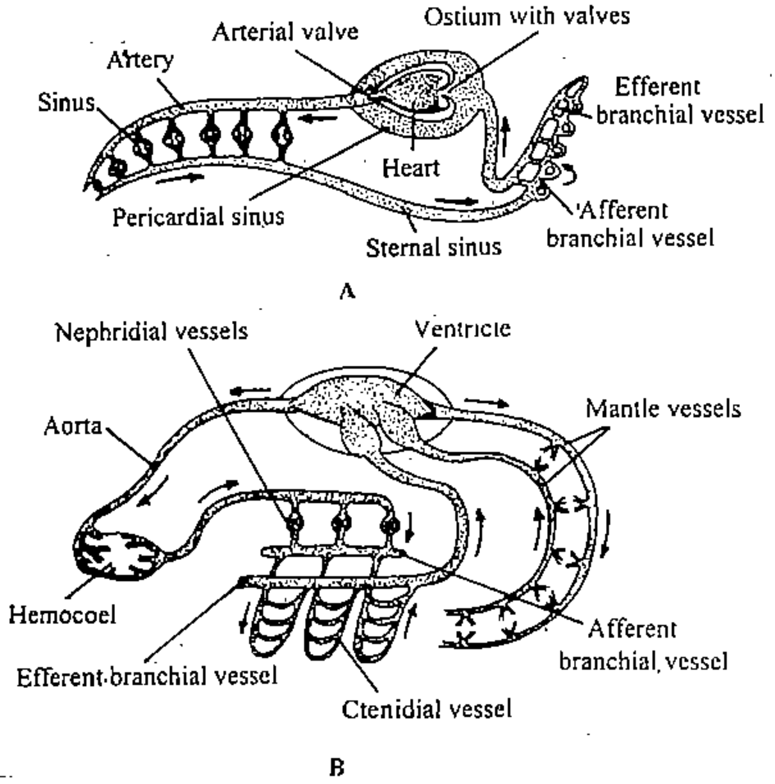

चित्र 10.28 : अकशेरुकियों के परिसंचरण। A- एक क्रे-फिश में परिसंचरण का सरलीकृत आरेख, B- बाइवैल्व मौलस्क में परिसंचरण का सरलीकृत आरेख।

अनेक प्राणि... में हीमोसील बड़ी होती है तथा शरीर के कुल आयतन का 20-40% भाग घेरे हुए होती है। इसके विपरीत कॉर्डेटों में जिनमें बंद प्रकार का परिसंचरण होता है, रक्त आयतन कुल शरीर आयतन का 5-10% भाग होता है। खुले परिसंचरण तंत्र में दाबें निम्न होती हैं जो 5-10 mm Hg से शायद ही कभी अधिक होती हैं।

जिन प्राणियों में खुला परिसंचरण तंत्र होता है उनमें सामान्यत: रक्त प्रवाह के वेग और उसके वितरण में परिवर्तन कर सकने की केवल सीमित क्षमता ही होती है। परिणामत: बाइवैल्व मौलस्कों में (चित्र 10.28B) तथा अन्य प्राणियों में जिनमें खुला परिसंचरण तंत्र होता है एवं जो गैस परिवहन के लिए रक्त का इस्तेमाल करते हैं, ऑक्सीजन ग्रहण में परिवर्तन बहुत धीमा होता है तथा प्रति इकाई भार ऑक्सीजन स्थानांतरण की दर नीची होती है। दूसरे शब्दों में उनका उपापचय बहुत निम्न होता है। तथापि कीटों ने इस समस्या को एक ऐसे वातक तंत्र का विकास करके सुलझा लिया है जिसमें ऊतकों में गैस का परिवहन सीधे ही वायु से भरी नलिकाओं यानी वातकों के द्वारा हो जाता है(चित्र 10.29) जिसमें रक्त की ज़रूरत ही नहीं होती। परिणामत: कीटों में भले ही एक खुला परिसंचरण होता है मगर उनकी उपापचय दर ऊँची होती है।

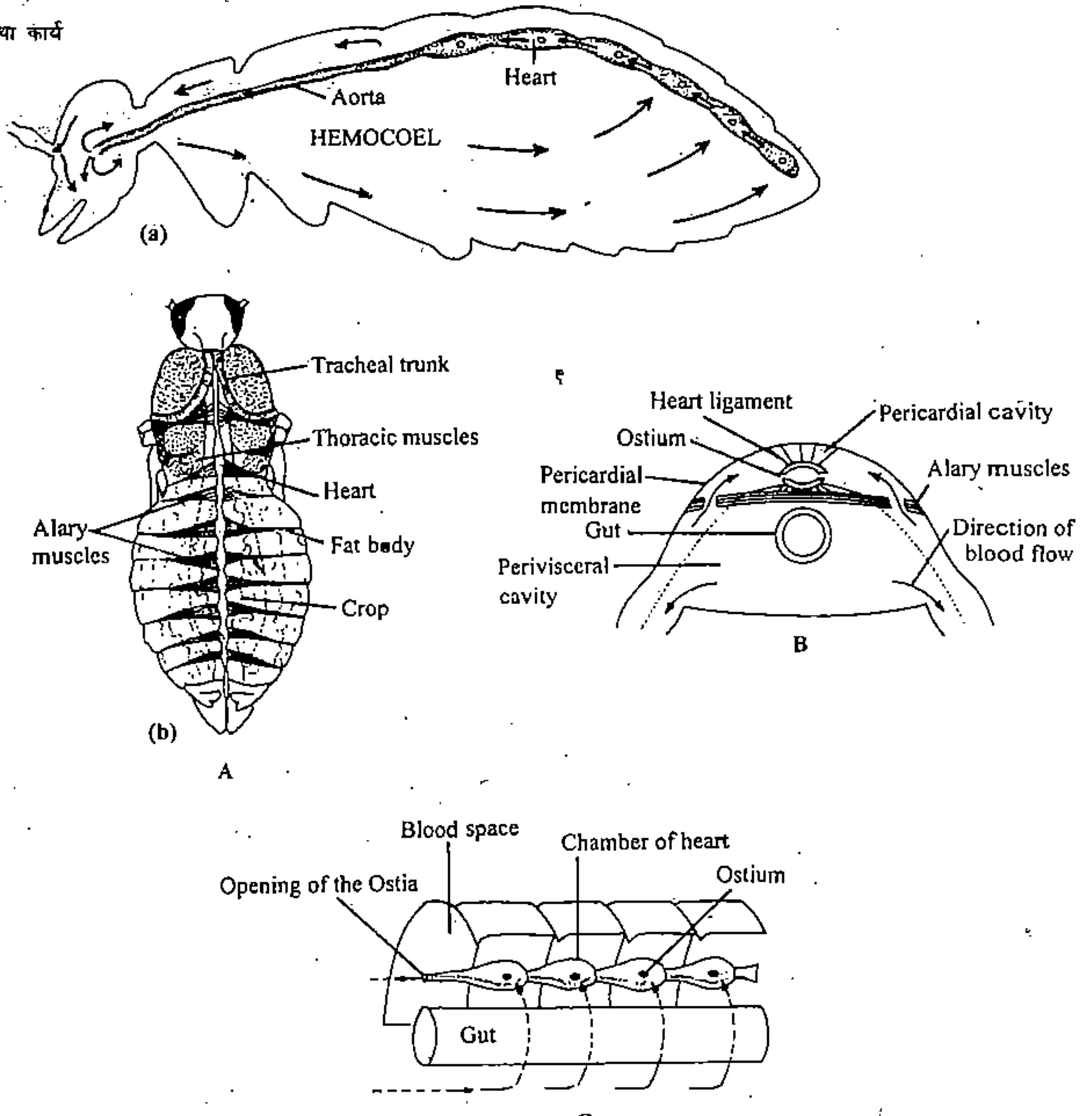

चित्र 10.29 : A- परिसंचरण तंत्र a) परिकल्पित कीट का पार्श्व दृश्य जिसमें दिशापरक रक्त-प्रवाह दर्शाया गया है, b) हृदय का पृष्ठ दृश्य B- एक कीट के खुले रक्त परिसंचरण तंत्र को दर्शाने हेतु योजनागत अनुप्रस्थ सेक्शन। C- रक्त को हृदय द्वारा रक्त गुहा में गतिशील बनाए रखा जाता है। हृदय इस रक्त को अपने पार्श्वों में बने ऑस्टियमों से भीतर खींच लेता है तथा महाधमनी में धकेलता है जो सामने की ओर खुली होती है।

b) बंद प्रकार

कुछ अकॉर्डेटों में जैसे कि सेफैलोपॉडों (अक्टेपसों, स्क्विडों), केचुओं, पौलीकीटों तथा सभी कशेरूकियों में बंद परिसंचरण होता है जिसमें रक्त नलिकाओं के एक बंद परिपथ मे बहता है - धमनियों से केशिकाओं में होता हुआ शिराओं में पहुंचता है। बंद परिसंचरण तंत्र में खुले तंत्र की अपेक्षा कार्यों का बेहतर पृथक्करण होता है। बंद परिसंचरण में जैसा कि चित्र 10.30 में दिखाया गया है हृदय ही प्रमुख नोदन अंग होता है जो रक्त को धमनी तंत्र में पम्प करता है और धमनियों में एक उच्च रक्त दाब बनाए रखता है और फिर यह धमनी तंत्र एक दाब आगार के रूप में कार्य करता हुआ रक्त को बलपूर्वक केशिकाओं में से प्रवाहित करता है। केशिकाओं की दीवारें पतली होती हैं और इस प्रकार रक्त तथा ऊतकों के बीच पदार्थों के तेज़ी से स्थानांतरण को सम्भव बनाता है।

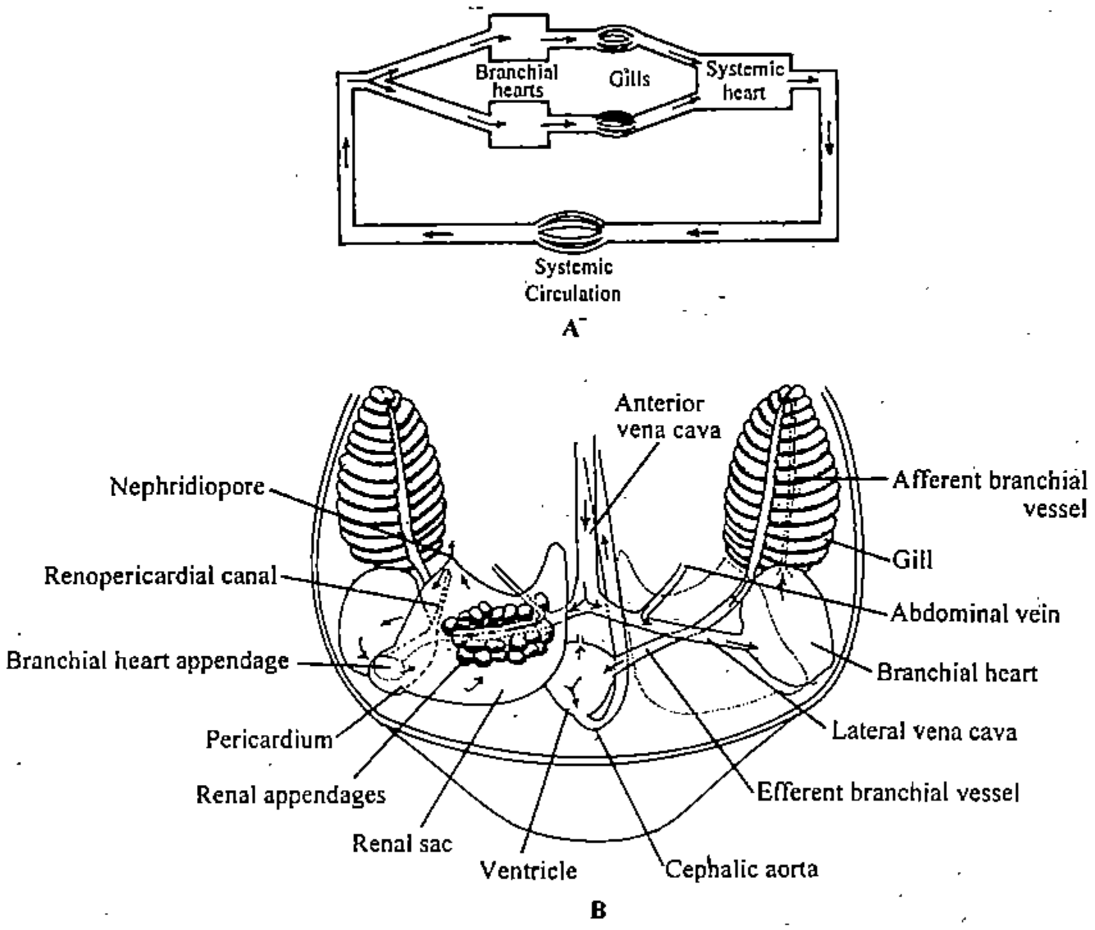

चित्र 10.30 : A- स्क्विडों तथा ऑक्टोपसों में परिसंचरण व्यवस्था का एक योजना निरूपण। बिंदुओं द्वारा दर्शाए गए भागों में अपेक्षाकृत विऑक्सीजनित रक्त वहता है। B- ऑक्टोपस के परिसंचरण तंत्र।

जैसा कि चित्र 10.30 A- में दिखाया गया है दैहिक परिसंचरण से लौटता हुआ रक्त गिलों की तरफ़ प्रवाहित किया जाता है। वापिस आता हुआ बहुत सा रक्त गिलों के आधार पर पहुंचने पहले वृक्कों में से गुज़रता हुआ दो पार्श्व महाशिराओं में से होकर बहता है। प्रत्येक गिल के आधार के समीप एक कंदुकीय सहायक स्पंदनशील अंग (pulsatile organ) होता है जिसे गिल हृदय (branchial heart) कहते हैं, इसमें दैहिक शिरा रक्त आता है। यह हृदय रक्त को अभिवाही गिल वाहिका (afferent branchial vessel) को पम्प करता है जहां से वह गिल की कोशिकाओं में से गुज़रता हुआ अपवाही गिल वाहिका (efferent branchial vessel) में पहुंचता है जहां से वह वापिस दैहिक हृदय में पहुंच जाता है।

कार्यिकी दृष्टि से सेफ़ैलोपॉडों (स्क्विड तथा ऑक्टोपस) के परिसंचरण तंत्र अन्य मौलस्कों के तंत्र की अपेक्षा कॉर्डेटों के परिसंचरण तंत्र से कहीं ज्यादा मिलते-जुलते होते हैं। उदाहरणत: सेफ़ैलोपोडों तथा कॉर्डेटों के परिसंचरण तंत्र बंद प्रकार के होते हैं; ऑक्टोपस का रक्त आयतन अपेक्षाकृत कम शरीर भार का लगभग 6% होता है। जो कशेरूकियों के रक्त आयतन के ही श्रेणी में होता है मगर असेफ़ैलोपॉड मौलस्कों से काफ़ी कम होता है।

बोध प्रश्न 2

कॉलम A में दिए गए प्राणियों को कॉलम B में दिए गए परिसंचरण तंत्र के प्रकार से मिलाइए:

A		B
i)	हेलिक्स	खुला प्रकार
ii)	ऑक्टोपस	
iii)	स्क्विड	
iv)	घोंघे	बंदप्रकार
v)	कीट	
vi)	केकड़ा	
vii)	केंचुआ	

10.4 सारांश

अंत में आपने जो कुछ इस इकाई में पढ़ा आइए उसे संक्षेप में दोहरा लें।

- श्वसन सजीव जीवधारियों की एक अनिवार्य कार्यिकीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा वे शरीर के समस्त उपापचयी क्रियाकलापों को कर सकने के लिए ऊर्जा प्राप्त करते हैं। अंग्रेज़ी शब्द रेस्पीरेशन (Respiration) शुरू-शुरू में जीव और पर्यावरण के बीच गैसों के विनिमय के लिए उपयोग में लाया जाता था (यानी ऑक्सीजन लेने तथा कार्बन डाईऑक्साइड को बाहर निकालने के लिए)। कभी-कभार इस प्रक्रिया को आजकल बाहरी श्वसन (external respiration) कहा जाता है, तथा इसके विपरीत उन रासायनिक प्रक्रियाओं को जो ऊर्जा-विमोचन के लिए कोशिका के भीतर होती हैं भीतरी श्वसन (internal respiration) कहते हैं।

- निम्नतर अकॉर्डेटों में जैसे कि प्रोटोज़ाअनों, स्पंजों तथा प्लैटिहेल्मिंथों में ऑक्सीजन को सीधे ही उस हवा से अथवा जल माध्यम से ले लिया जाता है जो उन्हें घेरे रहते हैं और इसी प्रकार कार्बन डाइऑक्साइड भी सीधे परिवेशी माध्यम में छोड़ दी जाती है।

- ऐरेक्निडों में जैसे कि बिछुओं तथा मकड़ियों में पुस्त-फुप्फुस श्वसन-अंगों का कार्य करते हैं जबकि कीटों, ओनाइकोफ़ोरनों, डिप्लोपोडों तथा काइलोपोडों में वातक श्वसन अंगों का कार्य करते हैं।

- गिल अनेक जलीय प्राणियों के जैसे कि पौलीकीटों, मौलस्कों तथा बहुत से क्रस्टेशियनों के श्वसन अंग होते हैं। ये गिल प्ररूपतः सूत्राकार संरचनाएं होती हैं जिनमें रक्त की भरपूर आपूर्ति होती है। शरीर के भीतर बने हुए गिलों को आंतरिक गिल तथा शरीर के बाहरी ओर बने गिलों को बाह्य गिल कहते हैं।

- गैस विनिमय अर्थात ऑक्सीजन को भीतर लेने और कार्बन डाइऑक्साइड को बाहर निकलने के लिए श्वसन सतह में रक्त-वाहिकाएं बहुत संख्या में आयी होती हैं।

- स्वयं रक्त तो श्वसन गैसों का अल्प वाहक होता है। मगर इसमें प्रायः श्वसन वर्णक होते हैं जैसे हीमोग्लोबिन, हीमएरिथ्रिन, हीमोसायेनिन तथा क्लोरोक्रुओरिन। ये श्वसन वर्णक अथवा क्रोमोप्रोटिन ऑक्सीजन के वाहक का कार्य करते हैं। साथ ही ये बफ़र का काम भी करते हैं जिसमें ये रक्त की कार्बन डाइऑक्साइड वहन क्षमता बढ़ा देते हैं।

- उच्चतर प्राणियों में परिसंचरण तंत्र एक ओर शरीर के विभिन्न ऊतकों और दूसरी ओर बाहरी पर्यावरण के बीच पदार्थों के विनिमय को सुनिश्चित करता है। साथ ही यह विविध पदार्थों को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में पहुंचाता भी है।

- अनेक अकॉर्डेटों में, जैसे कि केकड़ों, घोंघों कीटों आदि में खुले प्रकार का परिसंचरण तंत्र होता है, यानी ऐसा तंत्र जिसमें हृदय द्वारा पम्प किया गया रक्त एक धमनी के द्वारा रक्त से भरे एक खुले कोटर में बहा दिया जाता है। विविध ऊतक अंग इस कोटर में रक्त में डूबे पड़े रहते हैं। इन प्राणियों में धमनियों तथा शिरा को परस्पर जोड़ने वाली कोशिकाओं का बंद जाल नहीं होता है।

- कुछ अन्य अकॉर्डेटों में, जैसे कि सेफ़ैलोपॉडों (ऑक्टोपस तथा स्क्विड), ऐनेलिडों तथा समस्त कोशिकाओं में बंद परिसंचरण पाया जाता है, जिसमें रक्त लघुतर धमनियों से बंद कोशिकाओं में से होकर शिराओं में एक सतत परिपथ में प्रवाहित होता है।

10.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) अकॉर्डेटों में श्वसन के लिए विविध अंगों की सूची बनाइए। बिच्छू में श्वसन विधि का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) प्राणियों में श्वसन का क्या उद्देश्य है? मौलस्कों में श्वसन की क्रियाविधि का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

3) बहुकोशिकीय प्राणियों में श्वसन गैसों के परिवहन में निहित क्रियाविधि का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

4) खुले और बंद प्रकार के रक्त परिसंचरणों से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

....

....

10.6 उत्तर

1 a) (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) गलत
(vi) गलत

b) (i) आंशिक दाब, (ii) ऑक्सीजन (iii) उच्चतर, (iv) हीम
(v) हरे, पौलीकीट

2. खुला प्रकार (i), (iv), (v) तथा (vi)

बंद प्रकार (ii), (iii) तथा (vii)

अंत में कुछ प्रश्न

1) अकॉर्डेटों में श्वसन विविध अंगों के द्वारा होता है जैसे (i) सामान्य देह सतह, (ii) फेफड़े (iii) वातक तथा (iv) गिल। बिच्छुओं में श्वसन पुस्त-फुफ्फुस में होता है। प्रत्येक पुस्त-फुफ्फुस एक छोटा खोखला थैला (फुफ्फुस कोश) होता है जिसके भीतर पटलिकाओं का गुच्छा भरा होता है। पटलिकाओं के बीच-बीच की जगह में रक्त परिसंचरित होता है। यहीं पर पटलिकाओं की पतली दीवारों में से गैसों का विनिमय होता है। पटलिकाओं के भीतर वायु विसरण द्वारा पहुंचती है।

2) श्वसन समस्त सजीव जीवधारियों के लिए एक अनिवार्य कार्यिकीय क्रियाकलाप है जिसके द्वारा शरीर की विविध उपपाचयी क्रियाओं के वास्ते ऊर्जा प्राप्त होती है। मौलस्कों में श्वसन गिलों के द्वारा होता है।

3) उच्च उपापचयी क्रियाओं वाले बहुकोशिकीय प्राणियों में प्रायः श्वसन वर्णक होते हैं। इन वर्णकों को क्रोमोप्रोटीन भी कहते हैं। जिनका काम ऑक्सीजन का परिवहन एवं उसका संचय करना भी है। इनके अलावा ये वर्णक बफ़रों का भी काम करते हैं जिसमें वे रक्त की कार्बनडाइऑक्साइड वहन क्षमता बढ़ा देते हैं। ऑक्सीजन रक्त में तथा अन्य देह तरलों में भौतिकी के नियमों के अनुसार घुलती है। प्राणियों के देह तरलों में श्वसन यौगिक चार प्रकार के होते हैं। (i) हीमोग्लोबिन, (ii) हीमएरिथ्रिन, (iii) हीमोसायेनिन तथा (iv) क्लोरोक्रुओरिन। ऑक्सीजन के साथ संयोजन की प्रक्रिया को विऑक्सीजनीकरण कहते हैं।

4) उच्चतर मेटाज़ोअनों में दो प्रकार के परिसंचरण तंत्र पाए जाते हैं। खुले प्रकार में मूल ब्लास्टोसील ही प्रमुख परिअतरंग गुहा के रूप में बनी रहती है। इनमें न तो कोई वास्तविक सीलोम ही होती है जैसे कि स्यूडोसीलोमेटों में, और न ही सीलोम बहुत ही छोटी अथवा ह्रासित हो गयी होती है। इन प्राणियों में धमनियो तथा शिराओं के बीच संबंध बनाता हुआ कोई बंद कोशिका-जाल नहीं होता। परंतु दूसरे प्रकार के परिसंचरण में लघुतर धमनियों तथा शिराओं को जोड़ता हुआ एक बंद कोशिका जाल होता है इस व्यवस्था में पोषक तत्वों से युक्त तरल केशिका-भित्तियों से छनकर ऊतक गुहाओं में पहुंचता है और फिर स्वयं वहां से इन तत्वों को केशिकाएं प्राप्त कर लेती हैं। इसे बंद प्रकार का परिसंचरण तंत्र कहते हैं।

इकाई 11 तंत्रिका तंत्र तथा संवेदी अंग

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
11.2 तंत्रिका-तंत्र की संघटना
तंत्रिका कोशिका : मूलभूत इकाई
न्योरोग्लिया
गैंग्लियॉ
तंत्रिकाएं
11.3 आदिम तंत्रिका तंत्र : तंत्रिका जाल
11.4 उन्नत तंत्रिका तंत्र : विकास की दिशा में सामान्य प्रवृत्ति
प्लैटीहेल्मिंथीज़
ऐनेलिड तथा आर्थ्रोपोड
मौलस्क
11.5 महातंत्रिका रेशे
11.6 सूचना संसाधन
11.7 ग्राही
ग्राहियों के गुणधर्म
यांत्रिकग्राही
रसोग्राही
प्रकाशग्राही
11.8 सारांश
11.9 अंत में कुछ प्रश्न
11.10 , उत्तर

11.1 प्रस्तावना

अब तक आपने अध्ययन किया है कि अकॉर्डेट भी नानाविध क्रियाकलाप करते हैं, जैसे कि अशन, पाचन, संचलन, आदि। इन कार्यों के लिए उनमें अनुरूप अंग तथा अंग-तंत्र होते हैं जो एक समन्वित रूप में कार्य करते हैं। मगर यह भी है कि प्राणी के पर्यावरण, भीतरी और बाहरी दोनों, कभी भी स्थिर नही होते और परिवर्तनशील पर्यावरण दशाओं के साथ-साथ प्राणी को भी अपने क्रिया कलाप बदलने पड़ते हैं। इसमें नानविध क्रियाएं आती हैं जैसे प्रतिकूल जलवायु-परिस्थितियों से या पीछा करते हुए किसी परभक्षी से बच निकलना, भूख शांत करने के लिए आहार पकड़ना, ऊर्जा-आवश्यकताओं के लिए आहार पचाना, अपशिष्ट पदार्थ का उत्सर्जन, श्वसन दर का नियमन, आदि। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संबद्ध अंगों को एक कारगर एवं उद्देश्यपूर्ण तरीके से समन्वित करना होता है। यह काम मुख्यत: तंत्रिका तंत्र के द्वारा ही सम्पन्न होता है।

प्राणी को अनिवार्यत: पर्यावरण में होने वाले हर परिवर्तन का बोध करना होता है, इन परिवर्तनों का अभिकलन करना होता है और फिर इन अभिकलनों को इस विधि से आवश्यक क्रियाओं में कार्यान्वित करना होता है कि वह प्राणी के लिए अधिकतम लाभकारी तथा अनुकूलनी हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तंत्रिका-तंत्र में ग्राही घटक होते हैं जिनमें शामिल हैं संवेदी अंग, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में बने समन्वय केंद्र तथा प्रेरक अवयवों का नियंत्रण करने वाले प्रेरक घटक। यह सारे का सारा तंत्र मानों उन तंत्रिकाओं के केबलों से परस्पर जुड़ा रहता है जिनके भीतर से संदेश अथवा आवेग प्रवाहित होते हैं जैसे कि किसी टेलीग्राफ़ प्रणाली में होता है। ग्राही अंग पर्यावरण से संदेश प्राप्त करते हैं जिन्हें केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में प्रेषित कर दिया जाता है। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र निर्णय केंद्र होता है जो आवश्यक आदेशों को प्रेरक न्यूरॉनों के माध्यम से प्रेरक अंगों तक पहुंचाता है। इससे पहले कि आप इस इकाई का अध्ययन करना

शुरू करें आपको तंत्रिका-तंत्र की कार्यिकी-संबद्धी इकाई को फिर से पढ़ेंगे कि अकॉर्डेटों की विकास-प्रक्रिया के दौरान तंत्रिका-तंत्र का आधारमूल घटक न्यूरॉन किस प्रकार संवेदी अंग के रूप में विशेषित हो गया और फिर किस प्रकार कुछ-न्यूरॉन केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में संकेंद्रित हो गए ताकि कारगर रूप में नियंत्रण तथा समन्वय हो सके।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप ये सब बातें कर सकेंगे :

- तंत्रिका तंत्र की आधारभूत इकाई का नाम बता सकेंगे,
- न्यूरॉनों के तीन संरचनात्मक प्ररूपों में भेद कर सकेंगे,
- आकॉर्डेटों के यांत्रिकग्राहियों के मुख्य परिवर्तियों का वर्णन कर सकेंगे एवं वह किस प्रकार कार्य करते हैं बता सकेंगें,
- कीटों के घ्राणग्रहियों तथा स्पर्श रसोग्राहियों में विभेद कर सकेंगे,
- सेफैलोपॉड नेत्र तथा कशेरूकी नेत्र की संरचना में समांतरता दर्शा सकेंगे,
- तंत्रिका जाल क्या होता है स्पष्ट कर सकेंगे और बता सकेंगे कि इसे आदिम दशा क्यों माना जाता है,
- केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का किस प्रकार उद्भव हुआ बता सकेंगे तथा अकार्डेट मेटाज़ोअनों में इसका विकास-क्रम समझा सकेंगे,
- महा रेशा किसे कहते हैं, समझा सकेंगे, और
- सूचना का केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में किस प्रकार संसाधन होता है, इसका संक्षेप में उल्लेख कर सकेंगे।

11.2 तंत्रिका-तंत्र की संघटना

तंत्रिका-तंत्र तंत्रिका-कोशिकाओं अथवा न्यूरॉनों (neurons) तथा ग्लिया कोशिकाओं (glial cells) का बना होता है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रबल विश्वास किया जाता था कि तंत्रिका तंत्र एक सम्मिश्र संरचना है जो कोशिकाओं एवं उनके एक दूसरे के साथ जारी रहते हुए प्रोटोप्लाज़्मी प्रवर्धों का एक परस्परजारी जाल होता है। इस मत को रेटिकुलर (reticular) यानी जाल मत कहा जाता था और इसके इस मत का स्थान धीरे-धीरे **न्यूरॉन मत** (neuron doctrine) ने लिया। न्यूरॉन मत का प्रबल समर्थक था कैजाल (Cajal) जिसने संतोषजनक रूप में प्रदर्शित किया कि न्यूरॉन आपस में संरचनागत रूप में नही जुड़े होते अथवा एक-दूसरे में जारी नहीं रहते हैं वरन वे स्नैप्सों पर एक दूसरे के सान्निध्य में आ गए होते हैं। संततता बनाम सान्निध्यता पर बना मत-विवाद 1950 के दशक तक चलता रहा और तब इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी ने न्यूरॉनों के अंतिम सिरों की कोशिका-झिल्लियों को अलग-अलग प्रदर्शित करना संभव बनाया जिससे न्यूरॉनों की असंततता प्रदर्शित हो गयी। तंत्र के अवबोध की दशा में न्यूरॉन मत एक आधार स्तम्भ है। इस मत के अनुसार न्यूरॉन पृथक कोशिकाएं होती हैं जो तंत्रिका तंत्र की मूल इकाइयां हैं।

11.2.1 तंत्रिका कोशिका : आधारभूत इकाई

तंत्रिका-तंत्र की आधारभूत इकाई तंत्रिका-कोशिका (**nerve cell**) अथवा न्यूरॉन (**neuron**) होती है। तंत्रिका-तंत्र में न्यूरॉन का वही अस्तित्व होता है जो किसी इमारत में ईंट का। इसमें एक कोशिका-कार्य पेरिकैरियॉन (perikaryon) और उससे निकलने वाले एक या अधिक प्रवर्ध न्यूराइट (neurites) होते हैं। आप देखेंगे कि कार्य की दृष्टि से तीन प्रकार के न्यूरॉन होते हैं। कुछ न्यूरॉन इस तरह विशेषित होते हैं कि वे बाहरी तथा भीतरी पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों का बोध प्राप्त कर इन उद्दीपनों को तंत्रिका आवेगों (nerve impulses) में परिवर्तित कर सकते हैं। इन्हें संवेदी न्यूरॉन (sensory neurons) कहा जाता है। कुछ न्यूरॉन अन्य न्यूरॉनों से आवेगों को प्राप्त करने तथा उन आवेगों को प्रेरक अंगों में जैसे

कि पेशियों अथवा ग्रंथियों में प्रेषित करने के लिए विशेषित होते हैं, इन्हें प्रेरक न्यूरॉन (motor neurons) कहते हैं। संवेदी न्यूरॉनों तथा प्रेरक न्यूरॉनों के बीच प्राय: एक या एक से अधिक सहबंधन अथवा साहचर्य न्यूरॉन (association neurons) होते हैं। सहबंधन न्यूरॉन संवेदी न्यूरॉनों से तथा अन्य साहचर्य न्यूरॉनों के आवेग प्राप्त करते हैं। साथ ही ये इन आवेगों को अन्य साहचर्य न्यूरॉनों तथा प्रेरक न्यूरॉनों को प्रेषित करते हैं। इस प्रकार संवेदी न्यूरॉन तथा प्रेरक न्यूरॉन के बीच एक या अधिक साहचर्य न्यूरॉन स्थित हो सकते हैं। मगर ऐसा भी है कि संवेदी न्यूरॉन सीधे ही प्रेरक न्यूरॉन में आवेग पहुंचा देते हों।

आपने ऊपर अध्ययन किया कि न्यूरॉन में एक या एक से अधिक न्यूराइट हो सकते हैं। इनमें से जिन्हें डेण्ड्राइट (dendrite) यानी द्रुमाभ कहते हैं वे आवेगों को पेरिकैरियॉन की ओर पहुँचाते हैं। पेरिकैरियान से आवेग ऐक्सॉन (axon) के द्वारा आगे चलाए जाते हैं। इस तरह आप देखेंगे कि न्यूराइट को डेण्ड्राइट कहा जाए अथवा ऐक्सॉन, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आवेग चल किस दिशा में रहे हैं।

संरचना की दृष्टि से न्यूरॉनों को तीन श्रेणियों में रखा जाता है : एकध्रुवी, द्विध्रुवी तथा बहुध्रुवी (चित्र 11.1)। एकध्रुवी (unipolor) न्यूरॉन में पेरिकैरियॉन से केवल एक ही न्यूराइट निकलता है जो एक्सॉन होता है। डेण्ड्राइट इसमें संपार्श्विकों (collaterals) के रूप में आकर जुड़ जाते हैं। कुल मिलाकर अकशेरूकियों के अधिकतर न्यूरॉन इसी श्रेणी में आते हैं। ये प्रेरक न्यूरॉन हो सकते हैं अथवा सहबंधन न्यूरॉन। द्विध्रुवी (bipolor) न्यूरॉनों में दो न्यूराइट होते हैं जिनमें से एक डेण्ड्राइट और दूसरा ऐक्सॉन होता है। संवेदी न्यूरॉन द्विध्रुवी होते हैं।

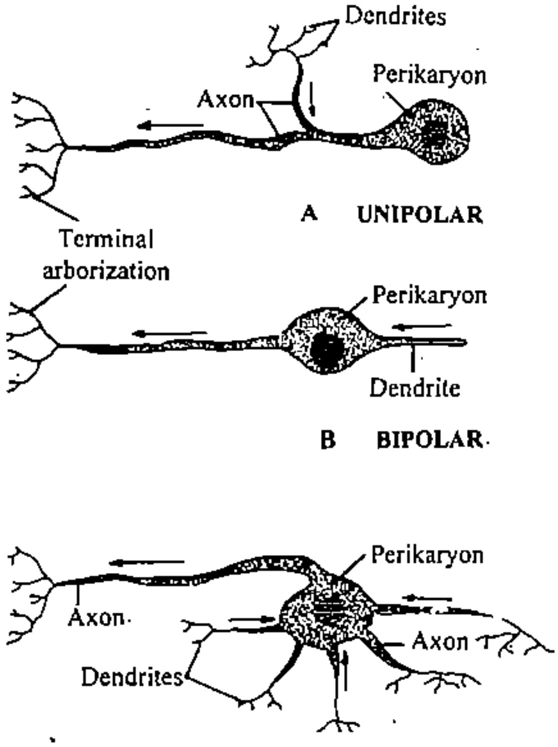

चित्र 11.1 : कीट तंत्रिका-तंत्र में पाए जाने वाले न्यूरॉन। तीरों के द्वारा आवेग के संवहन की दिशा दर्शायी गयी है।

बहुध्रुवी न्यूरॉनों में पेरिकैरियॉन से जुड़े दो से अधिक प्रवर्ध होते है, इनमें से एक प्रवर्ध ऐक्सॉन होता है तथा शेष डेण्ड्राइट होते हैं। ये सहबंधन न्यूरॉन होते हैं। अधिकतर मेटाज़ोअन एक्सॉन एक पतली आच्छद कोशिका झिल्ली (श्वान्न कोशिका झिल्ली, Schwann cell membrane) होती हैं जोकि अन्यथा कशेरूकी ऐक्सॉन की एक विशेषता होती है (चित्र 11.2)।

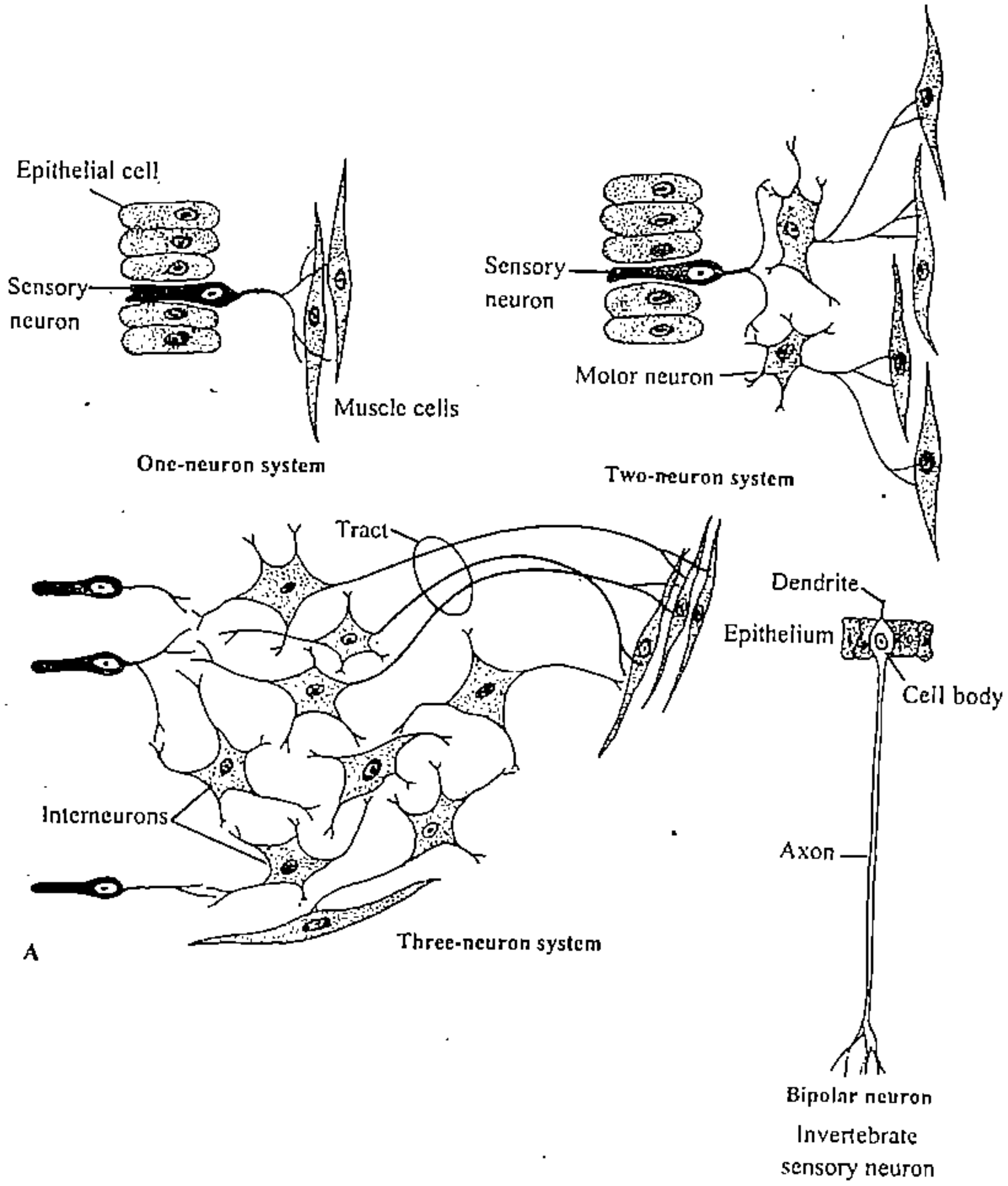

चित्र 11.2 : A- नाइडेरियनों तथा कीटों में पायी जाने वाली न्यूरॉन-संघटनाएं।

11.2.2 न्यूरोग्लिया (Neuroglia)

न्यूरोग्लिया को हम तंत्रिका-तंत्र का संयोजी ऊतक कह सकते हैं। इसमें न्यूरॉनों को छोड़कर, तंत्रिका-तंत्र के शेष सभी तत्व शामिल हैं। आप देखेंगे कि न्यूरॉग्लिया न्यूरॉनों के बीच-बीच की जगह को भरे रहते हैं तथा अपने प्रवर्धों को गैंग्लिया (ganglia) (यानी गुच्छिकाओं) के केंद्रीय क्षेत्र को पहुचाए होते हैं। इसमें गैंग्लियानों का ऊपरी आवरण (पेरिन्यूरियम, perineurium) तथा बाहरी, अकोशिकीय रेशीय न्यूरिलेमा अथवा न्यूराल भी शामिल है। ये आवरण हालांकि पतले होते हैं मगर तंत्रिकाओं तक के ऊपर जारी रहते हैं। श्वान्न कोशिकाएं भी न्यूरॉग्लिया की ही अंश होती हैं।

11.2.3 गैंग्लिया (Ganglia)

केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र से युक्त उच्चतर अकशेरूकियों में आप देखेंगे कि सहबंधन न्यूरॉन तथा प्रेरक न्यूरॉन गैंग्लिया नामक संहतियों में संकेंद्रित रहते हैं जब कि द्विध्रुवी संवेदी न्यूरॉन संवेदी अंगों के साथ संबंध बनाते हुए बाह्य परिधि में वितरित होते हैं (चित्र 11.3)। अकशेरूकी गैंग्लिया में एक कोशिकीय खोल अथवा कॉर्टेक्स होता है और उसके भीतर एक केंद्रीय संहति न्यूरोपाइल होती है (चित्र 11.4)। न्यूरोपाइल में तंत्रिका रेशों की संहति होती है जो हर दिशा में आड़े-तिरछे चलते जाते हैं। संवेदी न्यूरॉनों के एक्सॉन इसी न्यूरोपाइल में आकर समाप्त होते हैं तथा प्रेरक न्यूरॉन यहीं से निकलते हैं।

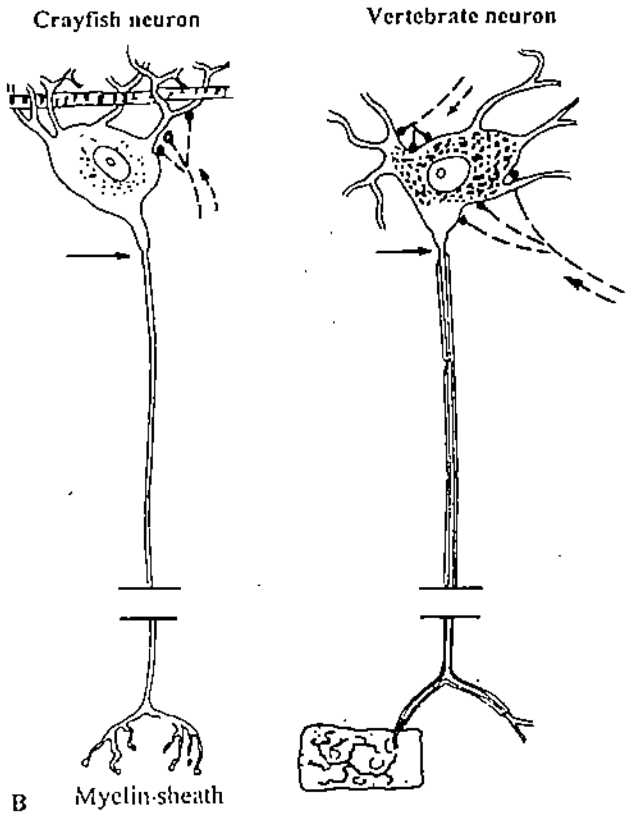

चित्र 11.2 : B-अकॉर्डेट न्यूरॉन तथा कशेरूकी न्यूरॉन।

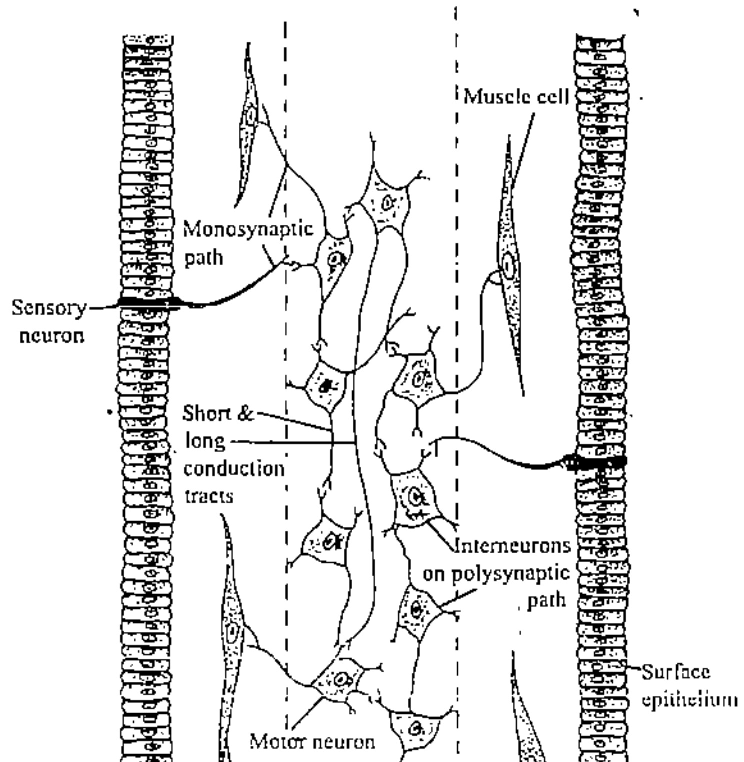

चित्र 11.3 : केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से युक्त एक आदिम कृमि की न्यूरॉनीय संघटना का आरेख।

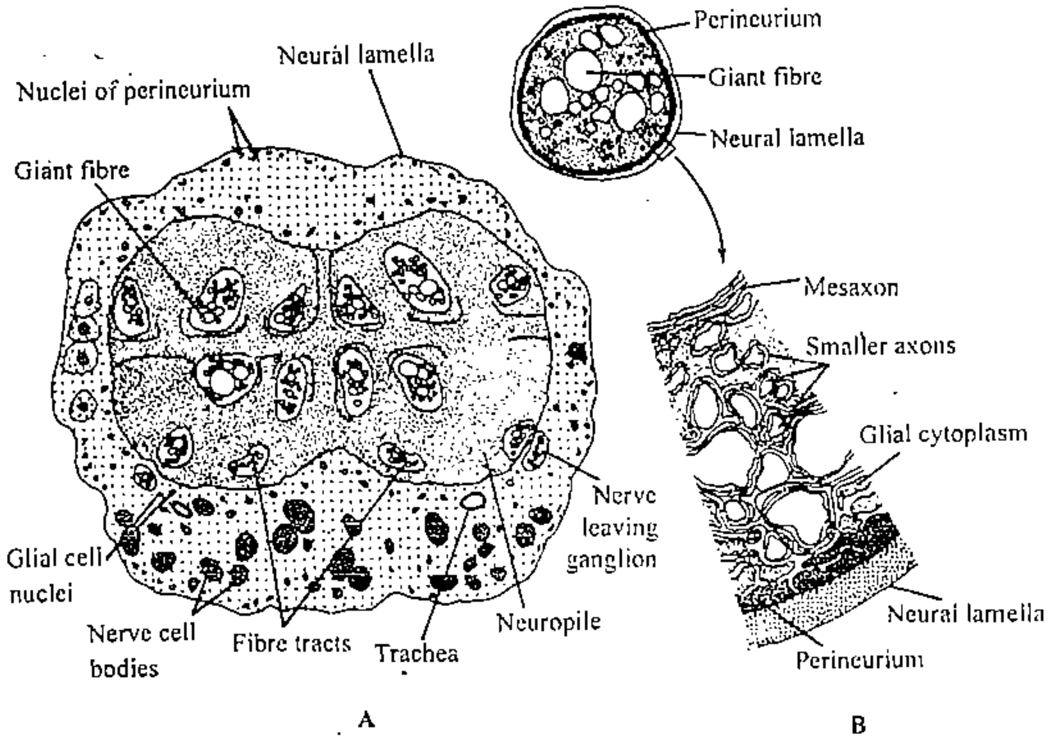

चित्र 11.4 : A- उदर गैंग्लियॉन की, तथा B- अंतरागैंग्लियानी संयोजी की सामान्य संरचना दर्शाते हुए अनुप्रस्थ सेक्शन।

11.2.4 तंत्रिकाएं (Nerves)

जैसा कि न्यूरॉनों के वितरण के प्रतिरूप का ऊपर वर्णन किया गया है, उसके अनुसार तंत्रिका रेशों के जो बंडल बनते हैं उन्हें तंत्रिकाएं कहते हैं तथा यही तंत्रिकाएं एक ओर केंद्रीय गैंग्लियानों को तथा दूसरी ओर संवेदी न्यूरॉनों.अथवा प्रेरक अंगों को आपस में जोड़ती हैं (चित्र 11.3)। तंत्रिकाओं में संवेदी, प्रेरक अथवा ये दोनों ही प्रकार के रेशे मौजूद हो सकते हैं जो इस बात पर निर्भर होता है कि ये तंत्रिकाएं क्रमश: संवेदी हैं, प्रेरक हैं अथवा मिश्रित हैं।

इसी प्रकार एक ही ओर के गैंग्लियानों के बीच में संयोजी (commisures) होते हैं। इनमें अधिकतर साहचर्य रेशे होते हैं।

बोध प्रश्न 1

एक आरेख बनाइए जिसमें संवेदी (S), प्रेरक (M) तथा साहचर्य (A) न्यूरॉनों को लेकर पर्यावरणी उद्दीपन से उत्पन्न होती हुई प्रेरक क्रिया तक आवेग प्रेषण के दिशामार्ग दिखाए गए हों।

बोध प्रश्न 2

नीचे संवेदी, प्रेरक तथा साहचर्य न्यूरॉनों की संरचनात्मक एवं वितरणात्मक विशेषताएं दी गई हैं। सर्वाधिक उचित मेल खाती हुई संरचनात्मक एवं वितरणात्मक विशेषताओं का चयन कीजिए।

	न्यूरॉन का प्रकार	संरचनात्मक लक्षण	वितरणात्मक लक्षण
i)	संवेदी न्यूरॉन	a) एक ध्रुवी	A) परिधीय
ii)	प्रेरक न्यूरॉन	b) द्विध्रुवी	B) केंद्रीय (गैंग्लियानों के भीतर)
iii)	साहचर्य न्यूरॉन	c) बहुध्रुवी	

11.3 आदिम तंत्रिका तंत्र : तंत्रिका जाल

प्राणियों के जातिवृत में तंत्रिका तंत्र पहली बार नाइडेरिया (Cnidaria) में प्रकट हुआ है। इस वर्ग में तंत्रिका कोशिकाएं एक अनियमित तंत्रिका जाल अथवा जालक (plexus) के रूप में पाया जाता है (चित्र 11.5)। हाइड्रा में एक सरल दशा पायी जाती है। यह तंत्रिका जाल या तो द्विध्रुवी या त्रिध्रुवी न्यूरॉनों का बना होता है मगर बहुध्रुवी का बहुत ही कम पाया जाता है। संवेदी तंत्रिका कोशिकाएं एपिथीलियम कोशिकाओं में वितरित होती हैं, इनसे निकले तंत्रिका तंतु अधः एपिथीलियमी तंत्रिका जालक में पहुंचे होते हैं। जालक एपिडर्मिस के नीचे स्थित होता है। हाइड्राइड पौलियों में जालक मुख के चारों ओर केंद्रित होता है, जो मानो एक केंद्रीयकृत तंत्रिका तंत्र का प्रारम्भ हो। अनेक नाइडेरियनों में अधिक जटिल तंत्रिका जाल होते हैं, उदाहरणतः उनमें एपिडर्मल तंत्रिका जाल के अतिरिक्त गैस्ट्रोडर्मल जाल बना हो सकता है जैसे कि समुंद्री ऐनीमोनों में। इस देह परत के अंदर एक दोहरा तंत्रिका जाल भी कुछ सीलेंटेरेटों में सामान्यतः पाया जाता है। इनमें काफी हद तक स्वायत्तता भी पायी जाती है, यानी इस तरह कि प्राणी के अलग-थलग किए गए भाग भी इस प्रकार आचरण करते हैं मानों देह के भाग हों। इन प्राणियों में कोई केंद्रीय नियंत्रणकारी क्रियाविधि नहीं पायी जाती जो प्रकटतः इस कारण से है कि इनमें कोई स्पष्ट केंद्रीय तंत्रिकातंत्र नहीं पाया जाता। यह तंत्र विशिष्ट उद्दीपनों के प्रति अनुविशिष्ट अनुक्रियाएं भी ठीक से नहीं कर पाता। संचरण अध्रुवीकृत होता है, जिसका यह अर्थ है कि सिनैप्स पर आवेग किसी भी दिशा में संचरित हो सकता है कि उच्चतर प्राणियों में ऐसा नहीं होता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि संचरण पदार्थ का स्राव दोनों अंत्य सिरों से होता है। इस प्रकार इस वर्ग में तंत्रिका जालक में विसृत यानी अध्रुवीकृत संचरण, देह-अंशों की स्वायत्तता एवं प्रतिवर्तों की न्यूनता पायी जाती है।

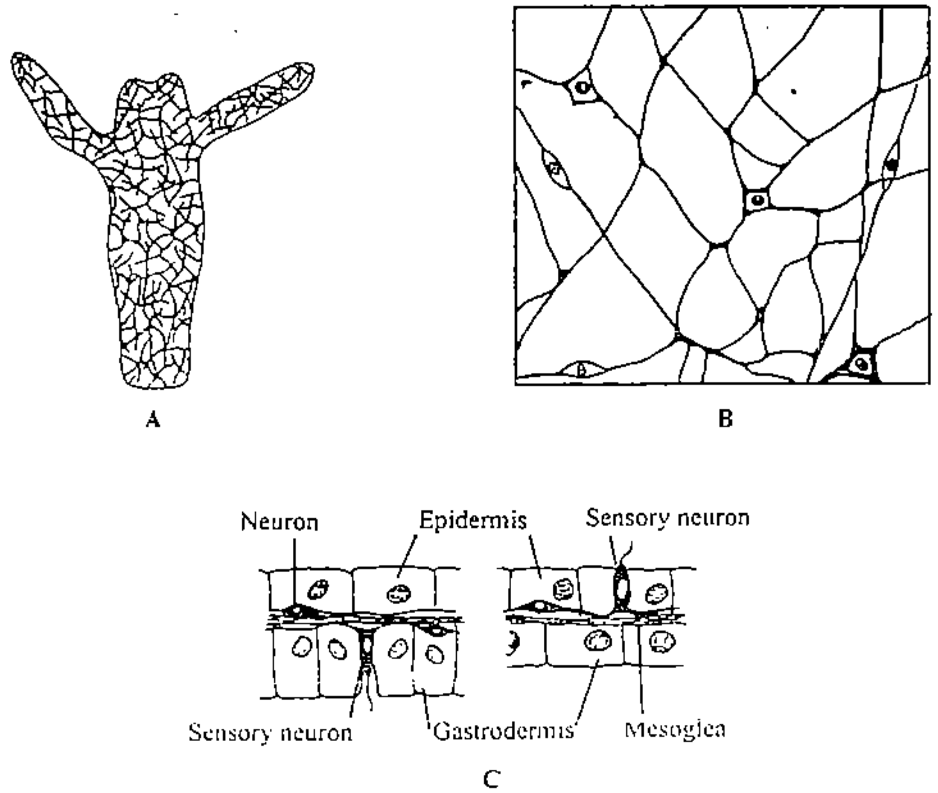

चित्र 11.5 : A- हाइड्रा तथा अन्य नाइडेरियनों का तंत्रिका जाल सरलतम संघटित तंत्रिका तंत्र है। इसमें न तो कोई केंद्रीय नियंत्रणकारी अंग होता है और न ही कोई निश्चित तंत्रिका दिशामार्ग होते हैं; B- नाइडेरियन तंत्रिका जाल का सतही दृश्य (सिनैप्सों की तफ़सीलें नहीं दिखायी गयी हैं), C- हाइड्रा की देह-भित्ति जिसमें ऐपिडर्मिस तथा गैस्ट्रोडर्मिस दोनों में तंत्रिका जाल दिखाए गए हैं। संवेदी न्यूरॉन स्तम्भ में गैस्ट्रोडर्मिस में सीमित दिखाए गए हैं (बायीं ओर) तथा स्पर्शकों में सीमित दिखाए गए हैं (दाहिनी ओर)।

इससे पहले कि आप इकाइनोडर्मों के तंत्रिका-तंत्र का अध्ययन करें आपको इन प्राणियों की विचित्र संघटना को ध्यान में रखना होगा। इनमें भी तंत्रिका तंत्र आदिम प्रकार का जालकीय प्रतिरूप वाला ही होता है जो सतही एपिथीलियम के नीचे बना होता है स्वयं एपिथीलिय में जहाँ-तहाँ संवेदी कोशिकाएं छितरायी होती हैं। तथापि जालक केवल गैंग्लियानित तंत्रिका रज्जुओं में संकेंद्रित होता है । इन रज्जुओं में भी इस प्राणि-वर्ग का सामान्य अरीय प्रतिरूप कायम बना हुआ है। इसमें आप तीन प्रकार के तंत्र देखेंगे :-

i) मुखीय (oral) अथवा ऐक्टोन्यूरल तंत्र (ectoneural system) जो मुख-एपिडर्मिस के नीचे स्थित होता है, तथा जिसमें ग्रसिका को घेरता हुआ एक वलय होता है एवं इस वलय से निकला एक-एक गैंग्लियानित सूत्र प्रत्येक भुजा को चला जाता है। (चित्र 11.6) । प्रत्येक रज्जु रेशे-पथों का बना होता है। अधिकतर इकाइनोडर्मों में यही मुख्य तंत्र होता है।

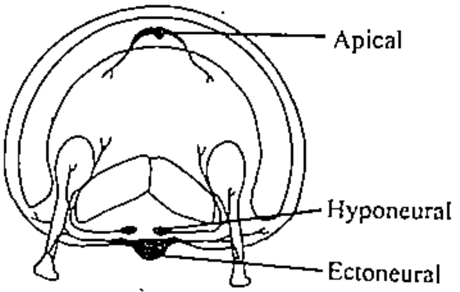

चित्र 11.6 : समुद्री-स्टार A- तंत्रिका तंत्र में एक केंद्रीय वलय होता है जिसमें से निकली मुख्य तंत्रिकाएं अरीय रूप में प्रत्येक भुजा को चली जाती हैं। B- स्टारफिश की भुजा का अनुप्रस्थ सेक्शन। एक्टोन्यूरल तंत्र से निकले तंत्रिका रेशे अवतंत्रिका तंत्र की सतह पर आकर समाप्त होते हैं मगर इन दोनों तंत्रों के बीच कोई सम्पर्क नही होता या फिर कोई सीधा सम्पर्क नहीं होता।

ii) नितल हाइपोन्यूरल तंत्र (Deep hyponeural system), तथा

iii) अपमुखी (aboral) अथवा शीर्षस्थ (apical) तंत्र अशक्तिशाली होते हैं अत: यह सरल संरचना वाला होता है जो एपिडर्मिस के साथ निकट संबंध बनाए होता है मगर जिसमें गैंग्लिया अथवा मस्तिष्क नहीं होते। फिर भी इसमें एक प्रकार का कुछ संकेंद्रण तो हुआ ही है जिसमें वृत्ताकार तथा अनुदैर्घ्य रज्जु बन गए हैं। यही हैं केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का आरम्भ।

बोध प्रश्न 3

नीचे इकाइनोडर्म तंत्रिका तंत्र के कुछ लक्षण दिए गए हैं। प्रत्येक लक्षण की सीलेन्टेरेटों के लक्षण से तुलना करके उसके आगे यदि वह उन्नत लक्षण है तो (A) लिखिए और यदि समान लक्षण है तो (S) लिखिए।

तंत्र (a) का एपिडर्मिस के साथ निकट संबंध है, (b) में गैंग्लियान तथा मस्तिष्क नही होते, c) में कुछ मात्रा में संकेंद्रण हुआ है जिसमें वृत्ताकार तथा अनुदैर्घ्य रज्जु बन गए हैं।

11.4 उन्नत तंत्रिका-तंत्र : विकास की दिशा में सामान्य प्रवृत्ति

उच्चतर प्राणि-वर्गों में आप देखेंगे कि तंत्रिका तंत्र के केंद्रीयकरण की स्पष्ट प्रवृत्ति दिखायी देती है ताकि अधिकतम कार्यकुशलता आ सके। शुरू का विसृत प्रकार का परिधीय जाल अब कम सुस्पष्ट और न पहचाना जाने वाला होकर उससे तंत्रिका रेशों की बनी तंत्रिकाएं बन जाती हैं। प्रेरक न्यूरॉन तथा साहचर्य न्यूरॉन अधिकतर संकेंद्रित हो जाते और संहतियों में केंद्रित हो जाते हैं जिन्हें गैंग्लिया कहते हैं। प्रतिवर्त दिशा मार्गों (reflex pathways) में संधि-कड़ियां बनने वाले साहचर्य न्यूरॉनों की अधिकाधिक प्रभाविता बनती जाने से अधिक सम्मिश्र केंद्रीय दिशामार्गों का बनना संभव होता है और ये ही दिशामार्ग

समाकलन में प्रगति होने के संरचनात्मक आधार हैं। संवेदी न्यूरॉन केवल परिधीय सतह पर पृथक हो जाते हैं। इसी से जन्मा न्यूराइटों के कार्यात्मक पथों एवं तंत्रिकाओं में विभेदन हुआ जिनमें से उद्दीपन केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में लाए जाते अथवा उससे बाहर को पहुंचाये जाते हैं। इसी से अभिवाही (afferent) संवेदी उद्दीपनों और उनके साथ अर्थपूर्ण प्रेरक प्रभावों के बीच बेहतर साहचर्य अथवा समाकलन संभव होता है जिसके अधिक जटिल और अधिक कारगर व्यवहारात्मक प्रतिरूप बनते हैं। पेरिकेरियान गैंग्लिया के बाहरी भाग अर्थात कॉर्टेक्स में सीमित हो जाते हैं और उनका भीतरी भाग न्यूरोपाइल नामक तंत्रिका रेशों की संहति का बना होता है जिसमें निम्नतर वर्गों में पहले से ही सुव्यक्त दिशामार्ग अथवा पथ और अधिक विकसित हो जाते हैं। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से संबंधित महा रेशा तंत्र का बनना और अधिक कारगरता ले आता है जिससे आवेग का संचरण अधिक तीव्र हो जाता है और इसलिए उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया अधिक प्रभावपूर्ण होती है। संचलन के दौरान प्राणी के शरीर का एक सिरा सदैव आगे की ओर को रख किए रहने के कारण एक तो अग्र सिरा और दूसरे द्विपार्श्व समिति (bilateral symmetry) दोनों ही स्थापित हो गए। जैसे-जैसे अधिकांश संवेदी अंग आगे के सिरे से संबंधित होते गए वैसे-वैसे अग्र सिरा और अधिक महत्वपूर्ण होता गया। स्वाभाविक है कि गैंग्लिया इसी क्षेत्र में अधिक विकसित तथा अधिक उन्नत रूप में संघटित होते गए जिससे संरचनात्मक तथा शरीर क्रियात्मक दोनों दृष्टि से अधिक जटिल मस्तिष्क बन गया जो समूचे जीवधारी के ऊपर प्रभावशाली हो गया। शिरोभवन (cephalisation) का यही सीधा परिणाम था।

आइए, अब हम अकशेरूकियों के विभिन्न फ़ाइलों में तंत्रिका तंत्र के विकास की दिशा-प्रवृत्तियों का विवेचन करेंगें।

11.4.1 प्लैटीहेल्मिंथीज़ (Platyhelminthes)

प्लैटीहेल्मिंथीज़ में आप देखेंगे कि टर्बेलेरियनों में एक मस्तिष्क तथा मस्तिष्क से पश्चसिरे तक फैले तीन से पांच जोड़ी अनुदैर्ध्य तंत्रिका रज्जु होते हैं (चित्र 11.8)। ये रज्जु पृष्ठ, पार्श्व तथा अधर दिशाओं में पड़े होते हैं। इन रज्जुओं को पार्श्वतः जोड़ते हुए संधायी होते हैं। और स्वयं ये संधायी भी एक अधःपेशीय तंत्रिका जाल से संयोजित रहते हैं। इस प्रकार यह तंत्र न केवल अधःपेशीय स्थिति में गहरा चला गया होता है, वरन यह वास्तविक आदिम जालक के भी कतई अनुरूप नही होता। प्रेरक तथा साहचर्य न्यूरॉन अधिकतर मस्तिष्क में ही तथा रज्जुओं में एक छोर से दूसरे छोर तक केंद्रीय न्यूरोपाइल को घेरते हुए उनकी परिधियों में सीमित होते हैं। इन अनुदैर्ध्य रज्जुओं में से एक जोड़ी अधिक सुव्यक्त हो जाती है शेष दुर्बल होते जाते एवं अंततः विलीन हो जाते हैं जिससे प्ररूपी सीढ़ीनुमा तंत्रिका-तंत्र बन जाता है।

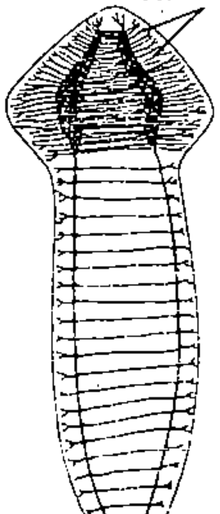

चित्र 11.7 : प्लैनेरियन चपटे कृमियों में सीढ़ीनुमा प्रकार का तंत्रिका तंत्र। शीर्ष प्रदेश के प्रमस्तिष्क (सेरीब्रल) गैंग्लिया एक सरल मस्तिष्क की तरह काम करते हैं और कुछ हद तक शेष तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के विकास के साथ-साथ गतियां अधिक समन्वित होती जाती हैं। इस समूह की अधिकतर स्पीशीज़ में प्राणी के अलग-अलग भागों में स्वजात गतियां पैदा की जा सकतीं और अनुक्रियाएं समन्वित हो सकती हैं, बस शर्त यह है कि उस भाग में तंत्रिका रज्जु का कुछ अंश अवश्य हो। इस समूह में लगता है कि मस्तिष्क ने एक प्रभुत्वकारी प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है।

11.4.2 ऐनेलिड तथा आर्थ्रोपोड प्राणी

प्लैटिहेल्मिंथीज़ के सीढ़ी सरीखे तंत्रिका तंत्र से ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडों का विखंडत: व्यवस्थित तंत्रिका तंत्र व्युत्पन्न हुआ (चित्र 11.8)। न्यूरॉन समूचे अनुदैर्ध्य। रज्जुओं की परिधि में वितरित होने की बजाए अब से उन्होंने विखंडत: सकेंद्रित होकर गैंग्लिया का रूप ले लिया है। अग्रत: रज्जु परिग्रसिका संयोजियों (circumoesophageal connectives) के रूप में जारी रहते हैं जो पृष्ठत: मस्तिष्क में समाप्त होते हैं, यह मस्तिष्क प्रमस्तिष्क गैंग्लिया का बना होता है। दो अनुदैर्ध्य सीढ़ी-सरीखे रज्जु जो कुछ ऐनेलिडों तथा कुछ आदिम क्रस्टेशियनों में पाए जाते हैं, उनमें एक दूसरे के समीप आने की प्रवृति होती है। अंतत: दोनों रज्जुओं के विखंडीय गैंग्लिया एक साथ संलयित हो जाते और परिणामत: प्रत्येक विखंड में एक-एक अकेली गैंग्लियानी संहति बन जाती है। और तो और, दोनों रज्जु एक साथ संलयित होकर एकल रज्जु बन जाता है और बाहर से देखने पर उसकी दोहरी प्रकृति के तमाम चिन्ह समाप्त हो गए हैं। प्रत्येक गैंग्लियॉन से अलग-अलग संख्या में युग्मित तंत्रिकाएं निकलती हैं। इससे भी आगे विभिन्न प्राणि-वर्गों में गैंग्लिया में भी संलयन होकर और अधिक संकेंद्रण हो सकता है।

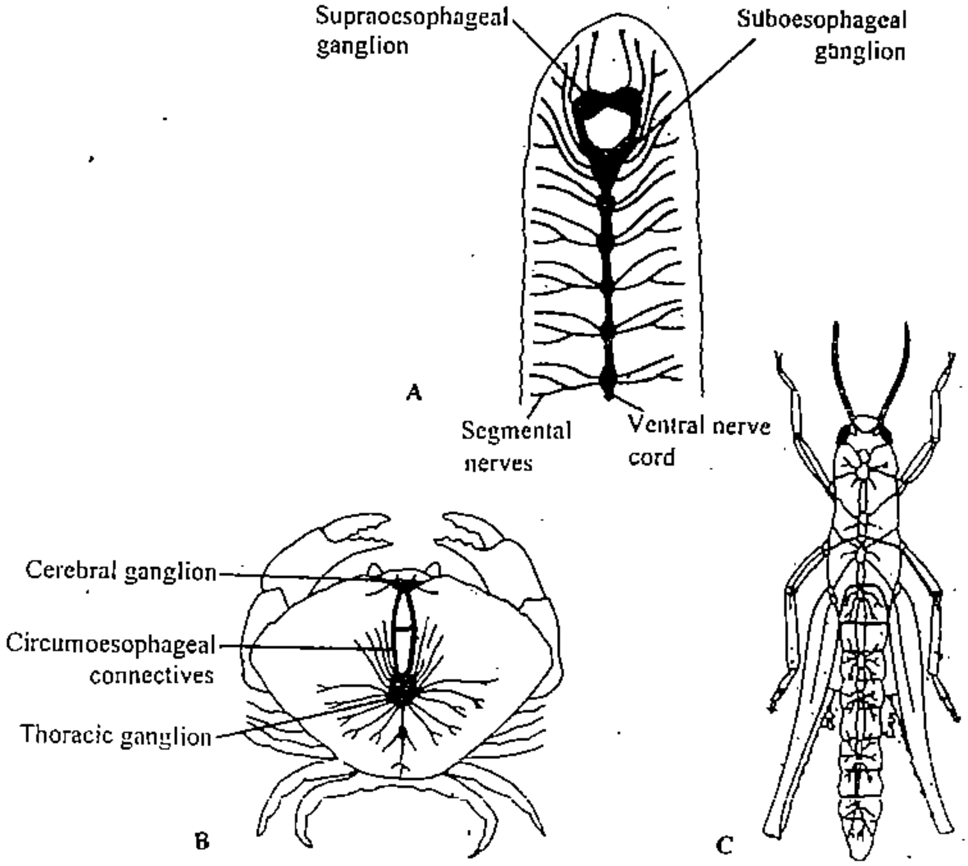

चित्र 11.8 : A- जोंकों में खंडीय अधर तंत्रिका रज्जु में सुविभेदित गैंग्लिया बने होते हैं, तथा तंत्रिका रेशों से बने संयोजी होते हैं। अध:ग्रसिका गैंग्लियॉन कई खंडीय गैंग्लिया से व्युत्पन्न हुआ होता है। B- डेकापोड क्रस्टेशियन का अति संघनित केंद्रीय तंत्रिका तंत्र। C- टिड्डे का तंत्रिका तंत्र।

पोलीकीटों में मस्तिष्क प्रोस्टोमियम के भीतर होता है और पीछे को कुछ थोड़े से अगले देह खंडों में को चलता जाता हो सकता है। अधर तंत्रिका तंत्र पूरे शरीर की लम्बाई में फैला होता है। मस्तिष्क बेहतर

विकसित होता है जिसमें संवेदन केंद्र बन गए हैं क्योंकि इन प्राणियों में पैल्पों, नेत्रों तथा कंधरा (nuchal) अंगों के समान सुविकसित संवेदी अंग बन गए हैं। फिर भी जोंको तथा केचुओं में शीर्ष पर सुविकसित संवेदी अंग नहीं होते, तथा मस्तिषक कम विकसित होता है। जोंकों में तंत्रिका वलय होता है साथ में दो अधर तंत्रिका रज्जु भी हैं मगर अधर गैंग्लिया का प्रत्येक जोड़ा संलयित हो गया है। ओलाइगोकीटों में भी मस्तिष्क कुछ खंड पीछे को खिसक गया है, मगर अधर तंत्रिका रज्जु बन गया है।

आर्थ्रोपोडों में शिरोभवन का स्तर और अधिक ऊँचा हो गया है। मस्तिष्क अपेक्षाकृत और ज्यादा बड़ा हो गया है तथा उसमें नेत्र एवं ऐंटेनाओं के जैसे संवेदी अंग अधिक विकसित हो गए हैं। मस्तिष्क के अधिकतर तीन भाग होते हैं। अग्र प्रोटोसेरीब्रम (protocerebrum), बीच का ड्यूटोसेरीब्रम (deutocerebrum) तथा पश्च ट्राइटोसेरीब्रम (tritocerebrum) जिसके साथ-साथ संवेदी, प्रेरक तथा साहचर्य केंद्र सुविकसित होते हैं।

प्रेरक नियंत्रण

ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडा में सामान्य तौर पर अधर तंत्रिका रज्जु के व्यक्तिगत विखंडीय गैंग्लिया संबंद्ध खंड के भीतर संचलन गतियां आरम्भ करने एवं उन्हें कायम बनाए रखने में सक्षम होते हैं। अध:ग्रसिका गैंग्लियॉन इन पर नियंत्रण बनाए रखता है, और वास्तव में यह प्राणी को अतिउत्तेजित अवस्था में बनाए रखता है। इसके विपरीत मस्तिष्क अध:ग्रसिका गैंग्लियॉन पर संतुलनकारी प्रभाव डालता है तथा उसमें के संबद्ध केंद्रों को मन्द करता है। इस प्रकार ऐसे अनेक प्राणियों में जब उनका मस्तिष्क निकाल दिया गया होता है तब उनमें अतिसंवेदनशीलता और तीव्रतर संचलन प्रवत्ति होती पायी जाती है। इसके विपरीत जब इनका अध:ग्रसिका गैंग्लियॉन निकाल दिया जाता है तब संचलन में बहुत ज़्यादा संचलन आ जाता अथवा वह बिल्कुल समाप्त हो जाता है।

बोध प्रश्न 4

तंत्रिका तंत्र में विकास की मुख्य प्रवृत्तियां क्या-क्या हैं? कोई चार बातें बताइए।

....

....

....

....

....

11.4.3 मौलस्क-प्राणी

आप देखेंगे कि मौलस्कों में इनके अनुकूली विकिरण के आधार पर इस समूह के प्राणियों में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का विकास अलग-अलग स्तर पर पहुँच गया है। मौलस्कों के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडों के तंत्रिका तंत्र से ख़ास भिन्नता यह है कि यह विखंडत: खंडीभूत नहीं है। आदिम प्रकार का तंत्र काइटॉन में पाया जाता है (चित्र 11.9 A)। प्लैटीहेल्मिंथीज़ की भांति इस समूह में भी हालांकि केंद्रीकरण तो हुआ है मगर तंत्रिका कोशिकाओं का गैंग्लियॉनों में संकेंद्रण बहुत ही कम हुआ। और तो और, प्रमस्तिष्क गैंग्लिया भी नही होते। मगर एक तंत्रिका वलय होता है और उसके साथ-साथ अनुदैर्ध्य तंत्रिका रज्जु होते हैं जिनमें एक तो पाद में चलते जाते पाद रज्जु (pedel cords) होते हैं दूसरे प्रावार एवं अंतरंग संहति में तंत्रिकायन करते हुए प्रावार रज्जु (pallial cords) होते हैं, तथा इन दोनों रज्जुओं के बीच अनुप्रस्थ संधायी होते हैं जिसमें सीढ़ीनुमा तंत्रिका तंत्र बन जाता है। इन प्राणियों में एकमात्र गैंग्लिया एक जोड़ी मुख गैंग्लिया (buccal ganglia) होते हैं जिनका संबंध रैडुला की गति से होता है। अन्यथा तंत्रिकाएं वलय एवं रज्जुओं में छितरायी होती हैं।

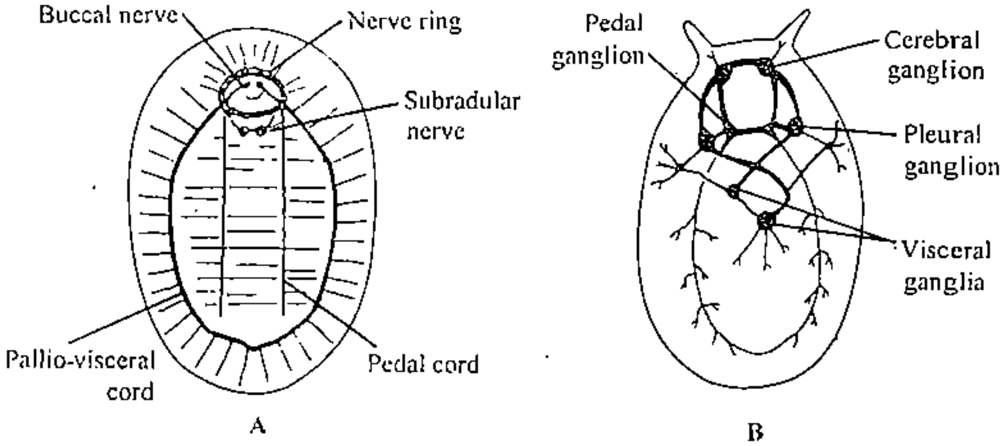

चित्र 11.9 : A-काइटॉन का तंत्रिका तंत्र, B- मौलस्क पटेला *(Patella)*, जिसमें मुख्य गैंग्लिया तथा अंतरंग संयोजियों की मरोड़ (torsion) दिखायी पड़ रही हैं।

इस दशा से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की संघटना में न तो गैस्ट्रोपोडों में और न ही बाइवैल्वों में कोई ख़ास बढ़ोतरी हुई है, ये दोनों ही प्रकार के प्राणी सुस्त होते हैं जो अपने कवचों के भीतर को सिकुड़ जाया करते हैं। गैस्ट्रोपोडों (चित्र 11.11 B) में प्रावार रज्जुओं के अग्र सिरे पर एक जोड़ी पार्श्व गैंग्लिया (pleural ganglia) बन जाते हैं। एक जोड़ी भित्तीय गैंग्लियानों (parietal ganglia) तथा अंतरंग गैंग्लियानों के साथ मिलकर प्रावार रज्जु एक अंतरंग पाश (visceral loop) बना लेते है। तंत्रिका कोशिकाओं के और अधिक संकेंद्रण से तंत्रिका वलय ने एक जोड़ी प्रमस्तिष्क गैंग्लिया तथा पद गैंग्लिया बन गए और पद रज्जु समाप्त हो गए। गैस्ट्रोपोडों में मरोड़ (torsion) से अंतरंग पाश में ऐंठन आ गयी जिससे मूल बायें तथा दाहिने गैंग्लिया अब अवांत्र (subintestinal) तथा अध्यांत्र (supraintestinal) गैंग्लिया बन गए हैं (चित्र 11.10)। उच्चतर गैस्ट्रोपोडों में गैंग्लियानों के और अधिक संकेंद्रित होते जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। अस्तु, अवांत्र गैंग्लियॉन तथा अध्यांत्र गैंग्लियॉन मुख्य तंत्रिकावलय में खींच लिए गए हैं जिसमें अंतरंग पाश छोटा हो गया है। ओपिस्थोब्रैंकिया (Opisthobranchia) में मरोड़ का उल्टा हो गया है (विमरोड़, detorision) जिससे तंत्रिका पाश की ऐंठन खुल गयी है।

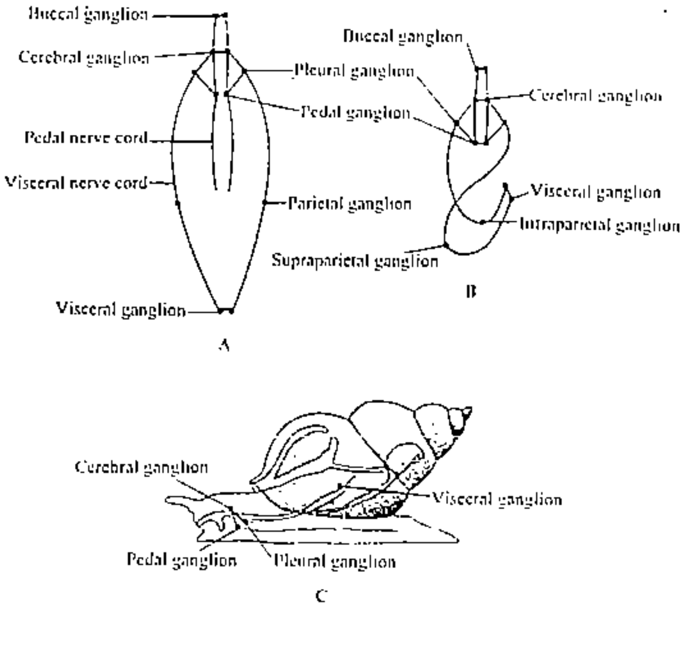

चित्र 11.10: A- परिकल्पित मरोड़ का तंत्रिका तंत्र। B- मरोड़पश्चीय तंत्रिका तंत्र। C- गैस्ट्रोपोड का पार्श्व दृश्य जिसमें तंत्रिका तंत्र का स्थान दर्शाया गया है।

सेफैलोपोडों में उनकी परभक्षी एवं सक्रिय रूप में तैरने वाली जीवन-शैली तथा संचलन में अति कुशलता के साथ इस वर्ग में शिरोभवन एक ऊँचे स्तर का हो गया है। दृष्टि एवं स्पर्श के तीव्र संवेद से मस्तिष्क में संवद्ध केंद्र बन गए हैं। सेफैलोपोडों में मस्तिष्क की संघटना कदाचित तमाम अकशेरूकियों में सबसे अलग स्तर पर पहुंची हुई हैं। (चित्र 11.11)। मोलस्क तंत्रिका तंत्र की विशिष्टता के रूप में सभी गैंग्लिया संकेंद्रित होकर एक ऐसे मस्तिष्क के रूप में न्यूनाधिक संलयित हो गए हैं जो ग्रसिका को घेरे रहता है। इसके परिणमस्वरूप, उदाहरणत: ऑक्टोपस में मस्तिष्क की लगभग तीस पालियां देखी गयी हैं, ऐसी हर पालि में तंत्रिका कोशिकाओं की एक परत होती है तथा एक केंद्रीय संहति न्यूरोपाइल की होती है, जिनमें से हर एक का अलग-अलग निश्चित कार्य होता है,

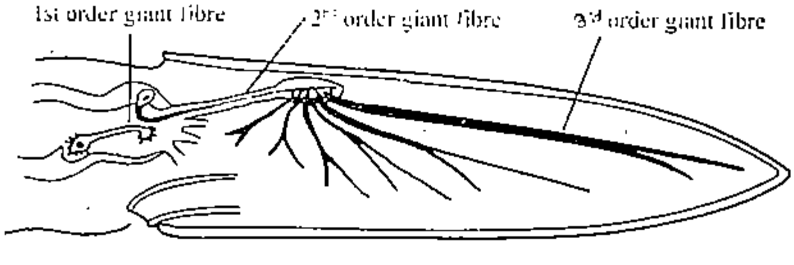

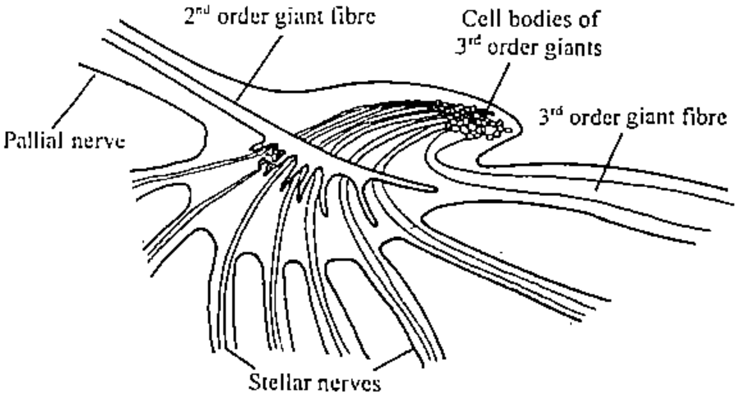

चित्र 11.11 : A- स्क्विड *लोलाइगो पीलियाई (Loligo pealeii)* में महारेशा तंत्र; B- तारक गैंग्लियॉन में सिनेप्स।

11.5 महातंत्रिका रेशे (Gaint Nerve Fibres)

अब हमें ज्ञात हो चुका है कि महातंत्रिका रेशे (चित्र 11.11) अनेक पोलीकीटों, ओलाइगोकीटों, कीटों, सेफैलोपोडों आदि के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में पाए जाते हैं। अन्य सामान्य तंत्रिका रेशों जिनका व्यास 2μm होता है, की तुलना में ये अधिक चौड़े एवं लम्बे होते हैं। स्क्विडों में इनका व्यास 700μm अथवा इससे भी अधिक हो सकता है। इनके इस आमाप के कारण ही विद्युतकार्यिकीय अध्ययनों के लिए ये एक आदर्श सामग्री हैं क्योंकि इनके एक्सॉनों में रिकार्डिंग इलेक्ट्रोडों को घुसाकर क्रिया विभव मापा जा सकता है। प्राणी के लिए ये अत्यन्त लाभकारी हैं क्योंकि ऐक्सॉन की मोटाई बढ़ जाने से क्रिया विभव के संचरण में प्रतिरोध कम हो जाता है जब कि संचरण का वेग बढ़ जाता है। ये अधिक दूरियों तक संवहन करते हैं और बीच में सिनैप्स कम होते हैं या होते ही नहीं, और इससे भी संवहन में सुगमता आ जाती है। कुल मिलाकर ये तीव्र संवहन के लिए बहुत अच्छी तरह अनुकूल होते हैं। ये रेशे प्राणी के बच निकलने की प्रतिक्रियाओं में कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, स्क्विड अपनी प्रावार गुहा से कीप में चलाता हुआ पानी को बलपूर्वक बाहर को निकालता है और इस क्रिया में वह महा रेशों द्वारा तंत्रिकायित प्रावार-पेशियों के एक साथ और तीव्रता से संकुंचन करने पर जेट-नोदन के सिद्धांत पर तेज़ी से पानी में चलता जाता है। इस विधि द्वारा प्राणी पलक झपकते ही अपने शत्रु से बचकर निकल सकता है।

11.6 सूचना संसाधन (Information Processing)

आप पहले ही देख चुके हैं कि प्राप्त होने वाली सूचना को संवेदी न्यूरॉन अपने ऐक्सॉन में से एक क्रिया विभव के रूप में संचरित करता है। इसे आवेग (impulse) कहा जाता है। तंत्रिका रेशे में से उद्दीपन की तीव्रता का संचरण, आवृत्ति में परिवर्तन करके होता है। अधिक तीव्रता के उद्दीपन से एक्सॉन में से गुजरने वाले आवेगों की आवृत्ति भी बढ़ जाती है तथा कम तीव्रता के उद्दीपनों से आवृत्ति कम हो जाती है। आइए देखें कि काकरोच की पहली जोड़ी की टांग को छूने पर क्या होता है। स्पर्श के द्वारा काकरोच की पहली टांग के यांत्रिकग्राहियों का उत्तेजित होना ऐक्सॉन के माध्यम से प्रथम वक्ष गैंग्लियॉन के न्यूरॉनों में पहुंचता है जहां सरलतम मामले में वह एक सिनैप्स के द्वारा सीधे प्रेरक न्यूरॉन से संबंध बनाता है। अधिक जटिल मामलों में यह सूचना एक या अधिक साहचर्य न्यूरॉनों के द्वारा प्रेरक न्यूरॉन में पहुंचायी जाती है। हो सकता है कि इन न्यूरॉनों में उसी समय बहुत से सिनैप्स पूर्वी रेशों द्वारा बहुत से अन्य उद्दीपन भी प्राप्त हो रहे हों। उनमें से कुछ उत्तेजनाकारी हो सकते हैं तो कुछ संदयनी और इस प्रकार परस्पर विरोधी निर्देश ले जाते होते हैं। इस प्रकार के संयोजन से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के उच्चतर केंद्र क्रिया पर नियंत्रण बना सकते हैं ताकि यदि वह क्रिया अनुचित हुई तो प्रतिवर्त को घटित होने, जैसे कि बचकर भाग जाने की क्रिया को रोका जा सकता है। इस प्रकार सिनैप्सपश्चीय कोशिका जो प्रायः परस्परविरोधी सूचनाएं प्राप्त करती है प्राप्त होने वाली समस्त सूचना के आधार पर निर्णय लेती है कि संदेश भेजा जाए या नहीं। यदि न्यूरॉन चला देने का "निर्णय" लेती है तब उद्दीपन के फलस्वरूप उस कोशिका के अंतिम सिरों से तंत्रिकाप्रेषी का विमोचन होता है जिससे संबद्ध पेशी संकुंचन करती है और इसके कारण टांग में गति होती है तथा प्राणी भाग खड़ा होता है।

इस प्रकार का ग्राही-प्रेरक पाश केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का निम्नतम स्तर का सूचना-संसाधन होता है और इसे प्रतिवर्त (reflex) कहा जाता है। निम्नतर प्राणियों में उनका सम्पूर्ण व्यवहार इसी प्रकार का होता है। मगर उच्चतर प्राणियों में, ख़ास तौर से सेफ़ैलोपोडों तथा कीटों में, जिनमें एक सुविकसित केंद्रीय तंत्रिका तंत्र होता है, प्रतिवर्तो के ऊपर कम-ज़्यादा स्तर के उच्चतर नियंत्रणों का प्रभाव पड़ता है और इसमें केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का प्रभाव अधिकाधिक होता जाता है। इन प्राणियों में अकशेरूकियों के मापदण्डों से अधिक बड़े आकार के एवं सम्मिश्र प्रकार के मस्तिष्क होते हैं, इनकी बड़ी-बड़ी आंखें तथा अन्य संवेदी अंग मस्तिष्क में विविध उद्दीपन पहुंचाते रहते हैं। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में विविध प्रेरक केंद्र होते हैं जो अंततः विविध क्रियाकलापों का नियंत्रण करते हैं। उदाहरणतः कीटों के वक्ष-गैंग्लिया अवग्रसिका गैंग्लियॉन के नियंत्रण में होते हैं, और स्वयं अवग्रसिका गैंग्लियॉन भी मस्तिष्क के नियंत्रण में होता है।

एक बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि अधिकतर प्राणियों में सीख जाने की क्षमता होती है। सीख जाना यानी शिक्षण, प्राणी को वह तमाम सूचना भण्डार प्रदान करा देता है जिससे वह निष्कर्ष निकाल सकता एवं उसके अनुसार कार्य कर सकता है। यह सारी सूचना स्मृति प्रदान कराती है और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र उस प्रेरक क्रिया को छांट सकता है जो प्राणी के जीवन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

11.7 ग्राही (Receptors)

पिछले खंडों में आपने पढ़ा कि तंत्रिका तंत्र किस प्रकार गठित होता है। अब आप ग्राहियों के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

11.7.1 ग्राहियों के गुणधर्म

विभिन्न ग्राही अंग पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के विषय में सूचना एकत्रित करते हैं, जैसे कि तापमान, प्रकाश आदि में होने वाले परिवर्तनों के विषय में। निम्नतर प्राणियों में संवेदन ग्रहण का काम अविभेदित तंत्रिकांतों द्वारा किया जाता है। यही इनके संवेदी अंग होते हैं। मगर ग्राही अथवा संवेदी अंग अधिक विशेषित और संरचना प्रधान होते जाते हैं। इस प्रकार के विशद संवेदी अंग नाइडेरिया तक में पाए जाते हैं, और उच्चतर प्राणियों में ये और अधिक जटिल होते गए। आप पहले ही देख चुके हैं कि संवेद-ग्राही एक प्रकार की ऊर्जा को एक अन्य प्रकार की ऊर्जा, यानी विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करते

हैं। इस तरह सभी ग्राही ट्रांसड्यूसर होते हैं। गंध पदार्थ का एक अकेला अणु भी रसोग्राही के भीतर छोटा सा विद्युत विक्षोभ पैदा कर सकता है। स्थानिक विद्युतधारा प्रायः प्रवर्धन का भी परिणाम होती है और वह संवेदन ग्राही के ऐक्सॉन में आगे-आगे चलती जाती है। इस प्रकार ग्राही पर्यावरण-परिवर्तनों के लिए अत्यन्त संवेदनशील होता है। आपको यह भी ध्यान में रखना है कि प्रत्येक संवेद ग्राही केवल एक ही प्रकार के उद्दीपन के लिए ही अनुक्रिया करता है। उदाहरण के लिए, रसोग्रहियों में केवल रासायनिक उद्दीपनों के लिए ही अनुक्रिया होगी, उसमें यांत्रिक अथवा प्रकाश उद्दीपन की शक्ति के बढ़ने के साथ तंत्रिका आवेग की आवृत्ति भी बढ़ती जाती है। दूसरे शब्दों में उद्दीपन की तीव्रता के संबंध में सूचना का प्रेषण आवृत्ति कूट (frequency code) द्वारा होता है। इस प्रकार सूचना का कूट सभी ग्राहियों के ऐक्सॉनों में आवेगों के रूप में चलता जाता है, वे चाहे यांत्रिकग्राही हों, या प्रकाशग्राही या रसोग्राही। परंतु चूंकि हर प्रकार का ग्राही केवल एक ही प्रकार के उद्दीपन के लिए संवेदनशील होता है, और चूंकि ये ऐक्सॉन आवेगों को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के विशिष्ट क्षेत्रों में ले जाते हैं इसलिए मस्तिष्क में पहुंचने वाली सूचना को वह सही-सही समझ-बूझ लेता है। उद्दीपन किस प्रकार का है, इस आधार पर ग्राहियों को यांत्रिकाग्रहियों, रसोग्रहियों तथा प्रकाशग्राहियों में वर्गीकृत किया जाता है।

बोध प्रश्न 5

1) शलभ (प्रत्येक क्षमता के आगे "हां" या "नहीं" लिखिए)
   (a) फूल देख सकता है
   (b) चमगादड़ द्वारा पैदा की गयी ध्वनि सुन सकता है
   (c) अपने संगमी की गंध सूंघ सकता है।

2) आप इनके विषय में क्या सोचते हैं?

i) ये तीनों सूचनाएं शलभ के मस्तिष्क में विद्युत आवेगों के रूप में पहुंचेंगी- (हाँ/नहीं)

ii) शलभ ऊपर बताई गयी तीनों वस्तुओं को तब भी पहचान लेगा जब उसकी तंत्रिकाएं मस्तिष्क से काट दी गयी हों। (हाँ/नहीं)

iii) शलभ ऊपर बताई गयी तीनों वस्तुओं को तब भी सही पहचान लेगा जब संबद्ध तंत्रिकाएं गलत तरीके से मस्तिष्क में जुड़ी हों (उदाहरणतः दृक् तंत्रिका को ऐंटेना-केंद्र से ऐंटेना-तंत्रिकाओं को दृक् केंद्र से तथा श्रवण तंत्रिका को दृक् केंद्र से जोड़ दिया जाए) (हाँ/नहीं)

11.7.2 यांत्रिकग्राही (Mechanoreceptors)

यांत्रिकाग्राहियों में वे ग्राही आते हैं जिनका संबंध स्पर्श, दाब, तनाव, श्रवण, कम्पन, गुरुत्व, पेशी तनाव आदि के संवेदग्रहण से है। पहली नज़र में ऐसा लगेगा कि ये सारे संवेदन अलग-अलग प्रकार के हैं, मगर सही अर्थ में इन सभी के संवेद ग्रहण में मूलभूत क्रियाविधि एक ही है, ये सभी ग्राही वस्तुओं के सम्पर्क के लिए संवेदनशील हैं तथा ऊपर दिए गए सभी उद्दीपनों के द्वारा इनमें अस्थायी तौर पर यांत्रिकीय विकृति आ जाती है। इनका सरलतम स्वरूप वह है जिसमें तंत्रिकाओं के मुक्त सिरे देह सतह पर पहुंचे होते हैं। मगर अक्सर यांत्रिकग्राही अधिक सम्मिश्र प्रकार के होते हैं।

अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों में जो एक बहुत व्यापक रूप में पाया जाने वाला यांत्रिकग्राही है, वह है **स्टैटोसिस्ट (statocyst)** अर्थात संतुलनपुटी (चित्र 11.12)। यह मूलतः गुरुत्व बल के बोध से संबंधित अंग होता है तथा एक संतुलनकारी अंग है। जो सीलेंटेरेटा सहित लगभग सभी फ़ाइलमों में पाया जाता है। इसका अनिवार्य भाग एक कण होता है जो कैल्सियम कार्बोनेट का बना हुआ होता है, इसे स्टैटोलिथ (statolith) अथवा संतुलनाश्म कहते हैं। स्टैटोलिथ एक आशय के भीतर बंद होता है, और इस में से रोम-सदृश्य प्रवर्ध निकले होते हैं। स्टैटोलिथ इन्हीं संवेदी कोशिकाओं के ऊपर टिका होता है। आशय में तो एक तरल अवश्य ही भरा होता है। गुरुत्व के कारण जिन संवेदी कोशिकाओं के ऊपर स्टैटोलिथ आ बैठता है उसी के द्वारा प्राणी को गुरुत्व की दिशा यानी झुकाव का बोध हो जाता है।

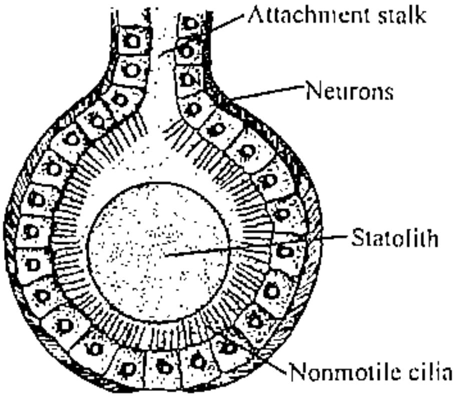

चित्र 11.12 : गुरुत्व तथा संतुलन ग्राही। A- एक मोलस्क का स्टैटोसिस्ट।

अन्य आर्थ्रोपोडों की तरह कीटों में भी चूंकि देह की सतह पर दृढ़ क्यूटिकल चढ़ी होती है, इसलिए यांत्रिक संवेदन को क्यूटिकल में से होकर देह के भीतर स्थित संवेदी कोशिका तक प्रेषित किया जाना होता है। उदाहरणतः ट्राइकॉइड सेंसिलम **(trichoid sensillum)** यानी रोमाभ संवेदिका में एक दृढ़रोम (bristle) अथवा शूक (seta) एक गर्त में संधित रहता है। एक संवेदी कोशिका का सिरा शूक के आधार से संलग्न रहता है (चित्र 11.13)। शूक की गति से संवेदी कोशिका में आवेग पैदा होता है।

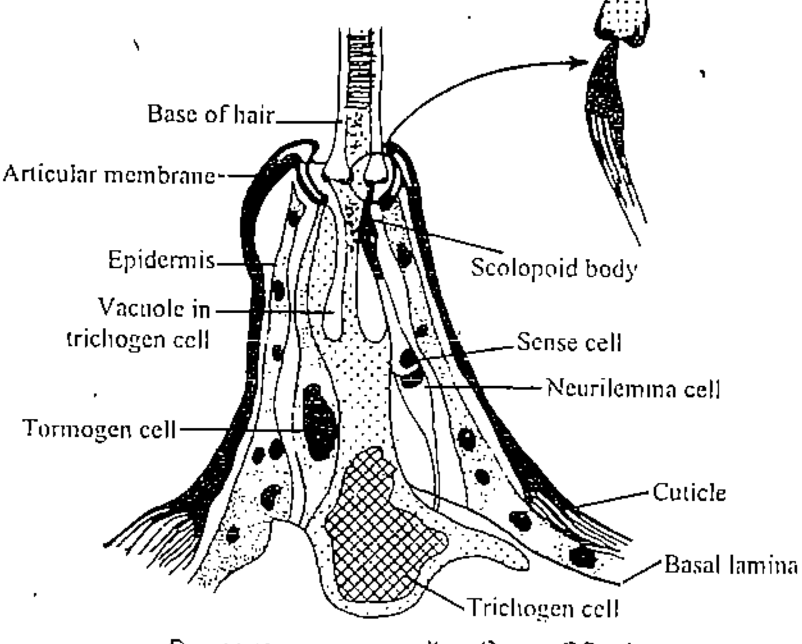

चित्र 11.13 : साधारण ट्राइकॉइड (रोमाभ संवेदिका)।

इसके विपरीत कीटों के कैम्पैनिफॉर्म सेंसिलम **(campaniform sensilium)** अर्थात घंटारूपी संवेदिका के मामले में कोई प्रवर्धी रोम नहीं होता। इसमें एक छोटा, दीर्घवृत्ताकार, पतला, गुंबद सरीखा, चापीय, क्यूटिकलीय क्षेत्र होता है जिसमें उसके लम्बे अक्ष में एक स्थूलन अथवा "पसली" बनी होती है। इस स्थूलन के मध्य बिंदु पर संवेदी कोशिका संलग्न होती है। कैम्पैनिफार्म सेंसिलम कीटों में व्यापक रूप से पाए जाते हैं जिनमें ये ख़ास तौर से समूहों के रूप में पंखों के आधार पर तथा टांगों पर बने होते हैं। क्यूटिकल की यांत्रिक विकृति हो जाने से संवेदिका की छत थोड़ी सी बाहर को उठ जाती है जिससे रोम खिंचता है और संवेदिका उत्तेजित होती है।

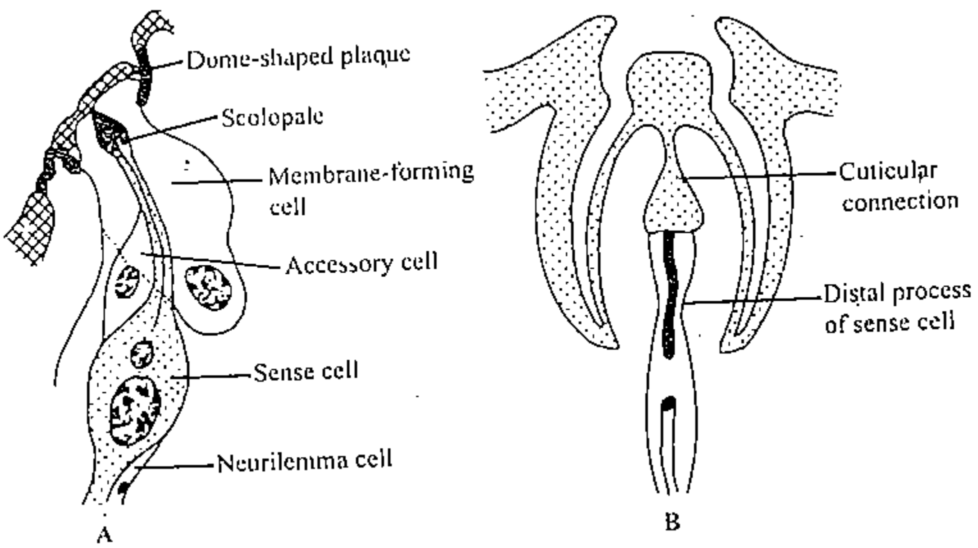

चित्र 11.14 : A- कैम्पैनिफ़ॉर्म सेंसिलम (घंटारूपी संवेदिका) तथा B- कैम्पैनिफ़ॉर्म सेंसिलम की नोक पर से लिया गया सेक्शन जिसमें कुछ स्पीशीज़ में पायी जाने वाली क्यूटिकलीय प्लेट में चलती जाती दृढ़ीकृत शलाका दर्शायी गयी है।

तनन ग्राही **(Stretch receptors)** (चित्र 11.15) पेशी तनाव अथवा तनन का बोध कराने में सक्षम होते हैं, ये संवेदग्राही अनेक प्राणि-समूहों की पेशियों से संबंधित संयोजी ऊतक में वितरित होते हैं। इस संवेदग्राही में एक बहुध्रुवी न्यूरॉन होता है जिसमें से मुक्त तंत्रिकांत निकले होते हैं जो रेशीय संयोजी ऊतक में गड़े होते हैं। पेशी के फैलने से यह ग्राही उत्तेजित हो सकता है।

अनेक कीटों में एक महीन झिल्ली अथवा ध्वनिपटह (tympanum) एक गुहा में आर-पार फैली होती है और इस झिल्ली के दोनों ओर वायु होती है। उदाहरणत: टिड्डी में (चित्र 11.16) ऐसे ही ध्वनिपटह अंगों (tympanal organs) की एक जोडी पहले उदर खंड में बनी होती है, तथा झिल्ली की भीतरी दिशा वातक तंत्र (tracheal system) के एक वायु कोश पर टिकी होती है। ध्वनिपटह की भीतरी दिशा से जुड़े यांत्रिका ग्राहियों का एक समूह पाया जाता है। 500-11000 c/s के बीच की ध्वनि तरंगें ध्वनिपटह को कम्पित करती हैं तब उनसे कर्णपटह झिल्ली में आवेग पैदा होते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि शलभों के जैसे अनेक कीटों में उन पराध्वनियों के लिए भी संवेदनशीलता पायी जाती है जिन्हें हम नहीं सुन सकते हैं।

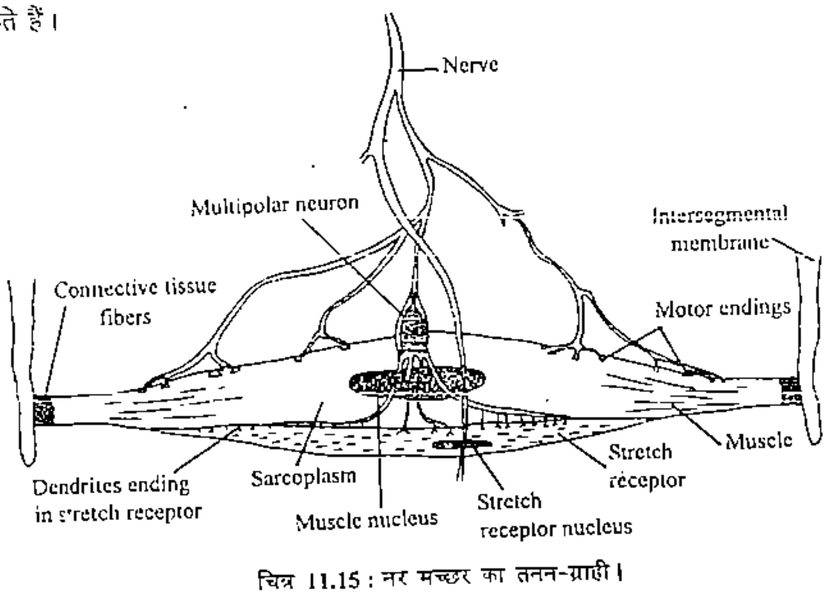

चित्र 11.15 : नर मच्छर का तनन-ग्राही।

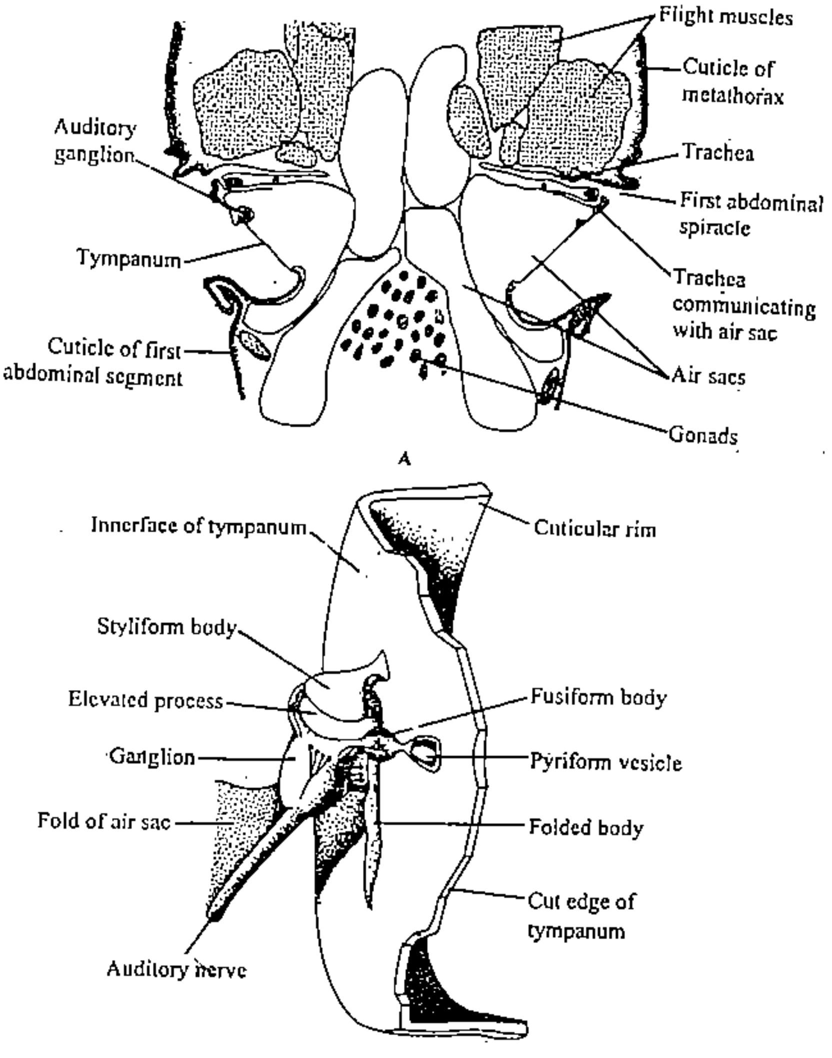

चित्र 11.16 : A- लोकस्टा (Locusta) के उदर के आधार पर से लिया गया आरेखीय क्षैतिज सेक्शन, जिसमें ध्वनिपटह झिल्लियों, वायु कोशों तथा संबंधित स्पाइरेकलों की स्थितियां दर्शायी गयी हैं। B- लोकस्टा में ध्वनिपटह की भीतरी सतह के साथ श्रवण गैंग्लियॉन की संलगन विधि दर्शाने हेतु बनाया गया आरेख। वलनित पिंड, शूकाकार पिंड तथा उभरे हुए प्रवर्ध क्यूटिकलीय संरचनाएं हैं। स्कोलोपीडिया के दिशान्यास तीर के निशानों द्वारा दिखाए गए हैं।

बोध प्रश्न 6

नीचे दिए गए संवेदन प्रकटतः अलग-अलग प्रकार के हैं :-

1) ध्वनि
2) स्पर्श
3) गुरुत्व
4) पेशी तनाव

बताइए कि अनुरूपी ग्राहियों को एक साथ यांत्रिकग्राहियों में रखना क्या सही होगा? ऐसा क्यों? (हाँ/नहीं)

....

....

11.7.3 रसोग्राही (Chemoreceptors)

इन ग्राहियों का संबंध रासायनिक उद्दीपनों के बोध से है। आप देखेंगे कि मेटाज़ोअनों में तीन प्रकार के रसोग्राही पाए जाते हैं :-

i) ऐसे रसोग्राही जिनका संबंध सामान्य रासायनिक संवेद से है जो अविभेदित तंत्रिकांतों अथवा अविशिष्ट ग्राहियों द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। ये समस्त देह-सतह पर वितरित होते हैं और निम्नतर प्राणियों में जैसे कि नाइडेरियनों, कृमियों तथा मौलस्कों में सामान्यत: पाए जाते हैं। रसोग्राहियों का सबसे आदिम प्ररूप यही है और इसके द्वारा प्राणी में बच निकलने की प्रतिक्रिया होती है।

ii) रसोस्पर्श (chemotactile) संवेदन जो स्पर्श रसोग्राहियों द्वारा प्राप्त होता है और जिसमें तनु घोल में अणुओं के साथ स्पर्श होना शामिल है। ये ग्राही प्राय: शरीर के विशिष्ट क्षेत्रों में भारी संख्या में पाए जाते हैं। स्तनियों में ऐसे ग्राही जीभ पर बने होते हैं और इस संवेदन को स्वाद का नाम दिया जाता है। लेकिन **ऑक्टोपस** में ये चूषकों के गोल किनारे पर संकेंद्रित होते हैं तथा कीटों में ये मुखांगों पर होते हैं और मक्खियों में ये पांव के टार्सल खंड पर भी भारी संख्या में पाए जाते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि मक्खियां "अपने पांवों से चखती हैं" (चित्र 11.7)।

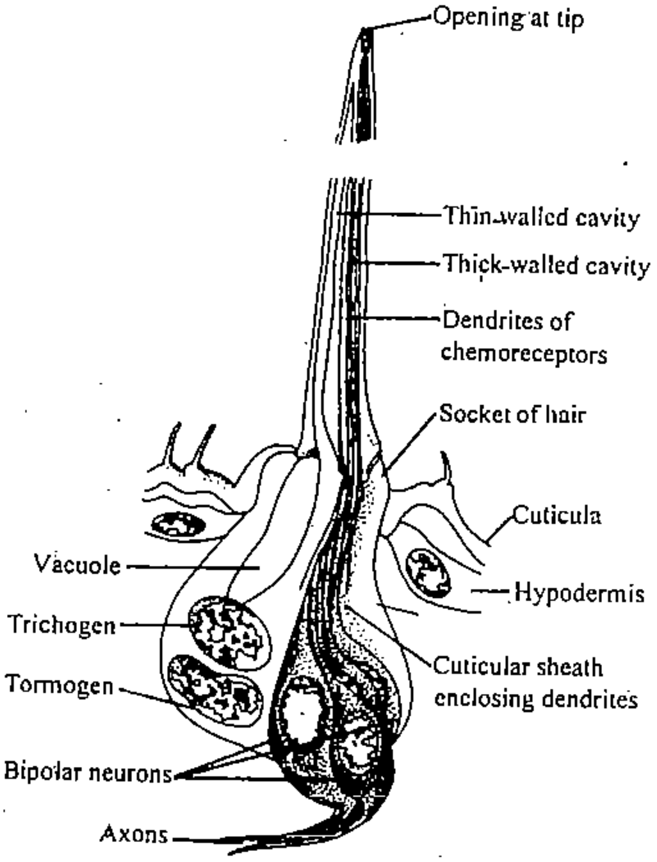

चित्र 11.17 : एक कीट के मुखांगों से लिए गए रससंवेदी रोम (स्वाद ग्राही)।

iii) घ्राणबोध (Olfaction) यानी गंध का ज्ञान होने में दूर से रसायन संवेदन का प्राप्त होना होता है और रसायन संवेदन में यही सर्वाधिक संवेदनशील होता है। घ्राण ग्राहियों में वायु में अत्यन्त न्यून सांद्रण में मौजूद अणुओं का बोध प्राप्त कर लेने की क्षमता होती है तथा इस बोध को हम प्राय: गंध कहते हैं। ये कीटों में उनके ऐंटेनाओं (शृंगिकाओं) पर बहुत संख्या में वितरित रहते हैं। गंधों के द्वारा ऐंटेनाओं के घ्राण ग्राहियों पर से बनाए गए ऐंटेनीय तंत्रिकाओं के सम्मिलित विद्युत रिकार्डिंगों को इलेक्ट्रोऐंटेनोग्राम (electroantennograms) यानी विद्युतशृंगिकालेख कहते हैं। कुछ ख़ास कीट हैं जो अपने संगमियों को दो-दो किलोमीटर की दूरी से उनके द्वारा छोड़ी जा रही गंध (फ़ीरोमोन, pheromone) के अणुओं से पहचान सकते हैं।

रसग्राहियों को आप उनकी संरचना के आधार पर आर्थ्रोपोडों में और विशेषकर कीटों में काफ़ी सरलता से पहचान सकते हैं क्योंकि इन ग्राहियों के साथ कुछ सुविभेदित क्यूटिकलीय बहिर्वृद्धियां बनी होती हैं जो प्राय: शूकों, दृढ़रोमों अथवा खूंटी जैसी संरचनाएं होती हैं। इनमें **घ्राण ग्राहियों (Olfactory receptors)** (चित्र 11.18) में अक्सर अनेक संवेदी कोशिकाएं होती हैं जिनके डेंड्राइट (द्रुमाभ) अत्यधिक विशाखित

होते तथा इनके अंतिम सिरे खूंटी की सतह के बहुत निकट एक तरल में समाप्त होते हैं, और खूंटी के साथ-साथ बहुसंख्यक सूक्ष्म छिद्र होते हैं। वायु से आने वाले गंध-अणु इस तरल में घुल जाते और डेंड्राइटों द्वारा ग्रहण कर लिए जाने पर वे उनमें आवेग पैदा करते हैं। मगर कीटों के स्पर्श रसग्राहियों में रोम के साथ संबंधित संवेदी कोशिकाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है और उनके डेंड्राइट विशाखित नहीं होते वरन वे उस रोम की अंतिम नोक पर जाकर समाप्त होते हैं जो एक छिद्र से संबंधित रहता है। प्राणियों के जीवन में रसग्राहियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जैसे कि आहार ढूंढनें, संगामी की पहचान करने, अण्डनिक्षेपण स्थल का चयन, आदि।

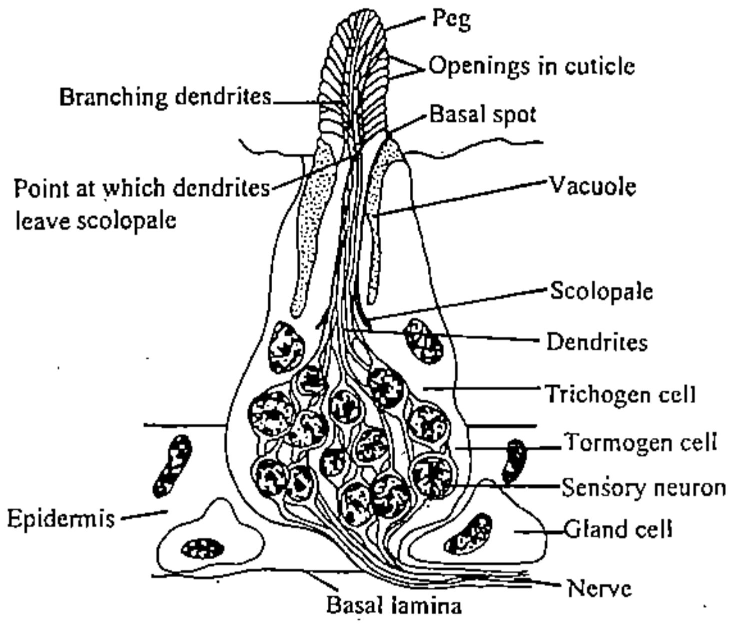

चित्र 11.18 : कीट की खूंटी की आकृति की घ्राण संवेदिका का आरेख, अनुदैर्घ्य सेक्शन में।

बोध प्रश्न 7

कीट के स्पर्श रसग्राहियों एवं घ्राण ग्राहियों में आप संरचना के आधार पर किस प्रकार विभेद करेंगे?

....

....

....

....

....

11.7.4 प्रकाश ग्राही

प्रकाशग्राहियों का काम प्रकाशसंवेदी वर्णकों के द्वारा प्रकाश के अवशोषण के साथ जुड़ा है। इस क्रिया में होने वाले रासायनिक परिवर्तन से संवद्ध तंत्रिका कोशिकाओं में आवेग पैदा होता है। इस क्रिया में काम करने वाले वर्णक केरोटिनॉइड व्युत्पाद होते हैं जिनमें एक प्रोटीन (ऑप्सिन) से संयुक्त रेटिनीन (retinine) (विटामिन A आल्डीहाइड) होता है। इनमें रोडॉप्सिन (rhodopsin) एक सामान्य वर्णक है।

सरल नेत्र बहुत सामान्यत: पाए जाते हैं; अति विभेदित संयुक्त आंखें अनेक आर्थ्रोपोडों में विकसित हो गयी हैं तथा सुविभेदित केमरा-प्ररूपी आंखें जो कशेरूकी आंखों के जैसी होती हैं सेफ़ैलोपोडों में पायी जाती हैं। अनेक अकॉर्डेटों में आपको इन दो चरम प्रकार के नेत्रों के बीच की विविध प्रकार की आँखें भी दिखायी देंगी।

प्लैटीहेल्मिंथीज़ तथा ऐनेलिडों में पायी जाने वाली सरलतम आंखें वर्णक चकत्तों (pigment spots) के रूप में होती हैं जिनमें वर्णक कोशिकाओं के साथ संबंधित संवेदी कोशिकाएं होती हैं (चित्र 11.19)। ये अंधेरे तथा प्रकाश में विभेद कर सकती हैं। अनेक पौलीकीटों में इनमें उच्चतर संघटना प्राप्त हो जाती है। प्याले में एक लेन्स का भी स्राव हो सकता है। आशयी आंख की सर्वोत्तम संरचना सेफ़ैलोपोड आंख में प्राप्त हुई है (चित्र 11.20)। वास्तव में ऑक्टोपस की आंख संरचनात्मक सम्मिश्रता की दृष्टि से कशेरूकी आंख के जैसी हो गयी है जिसमें विस्तृत संरचना उसके बहुत समान है। मगर सेफ़ैलोपोड की रेटिना प्रत्यक्ष प्रकार की है जिसमें ग्राही कोशिकाओं के संवेदी सिरे सीधे प्रकाश की ओर रख किए होते हैं, जबकि कशेरूकी प्रकार की आंख में रेटिना उल्टी होती है जिसमें संवेदी सिरे प्रकाश के स्रोत से दूसरी ओर होते हैं।

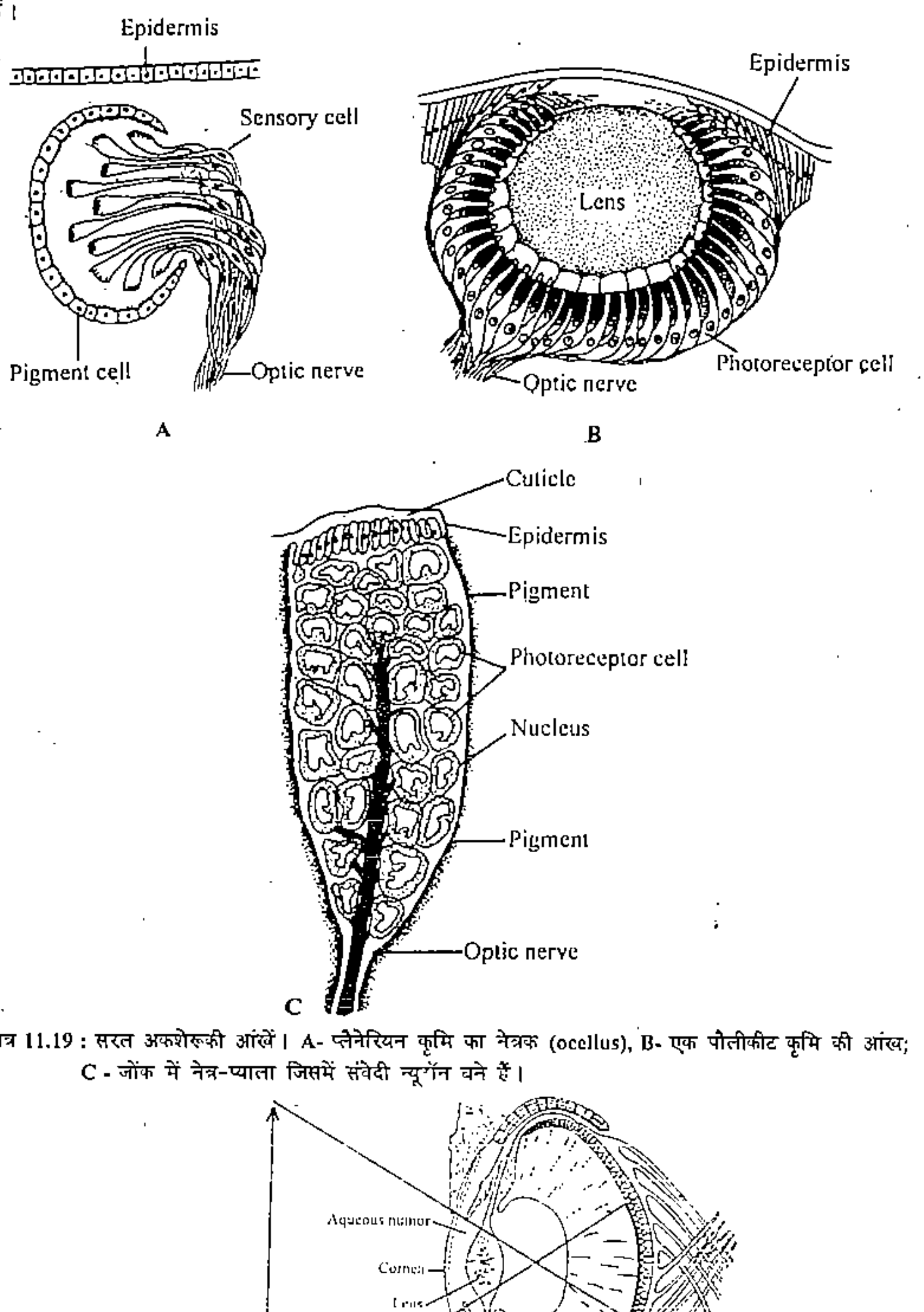

चित्र 11.19 : सरल अकशेरूकी आंखें। A- प्लैनेरियन कृमि का नेत्रक (ocellus), B- एक पौलीकीट कृमि की आंख; C - जोंक में नेत्र-प्याला जिसमें संवेदी न्यूरॉन बने हैं।

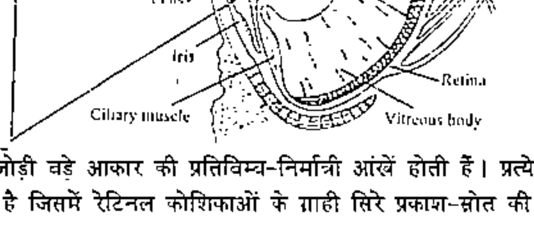

चित्र 11.20 : ऑक्टोपस मे एक जोड़ी बड़े आकार की प्रतिबिम्ब-निर्मात्री आंखें होती हैं। प्रत्येक आंख एक कैमरे जैसी संरचना होती है जिसमें रेटिनल कोशिकाओं के ग्राही सिरे प्रकाश-स्रोत की ओर रख किए होते हैं।

आर्थ्रोपोडा में तरह-तरह की आंखें पायी जाती हैं जैसे कि नौप्लियस लार्वा की मध्यक आंख, कीटों के पृष्ठ नेत्रक तथा अनेक कीट-लार्वो के स्टेम्मा जैसे सरल नेत्र और अंततः अनेक कीटों एवं क्रस्टेशियनों की अति विकसित संयुक्त आंखें। संयुक्त आंख (**compound eye**) (चित्र 11.21) बहुसंख्यक इकाइयों की बनी होती है जिन्हें नेत्रांशक (ommatidia) कहते हैं। अक्सर आप देख सकते हैं कि संयुक्त आंख की सतह पर षट्कोणीय प्रतिरूप बने होते हैं, इनमें से प्रत्येक प्रतिरूप एक नेत्राशक का प्रतिदर्श है। प्रत्येक नेत्रांशक में एक तो अपवर्तनी (dioptric) (अर्थात प्रकाशिकीय) इकाई होती है और एक संवेदी इकाई होती है। अपवर्तनी इकाई में दो भाग होते हैं- (i) एक उभयोत्तल रंगहीन क्यूटिकलीय लेन्स जो एक जोड़ी कॉर्नियाजनी कोशिकाओं द्वारा स्रावित होता है; जब इस लेन्स जो एक जोड़ी कॉर्नियाजनी कोशिकाएं अलग को हटा दी जाती और प्राथमिक वर्णक कोशिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं। (ii) एक क्रिस्टलीय शंकु (crystalline cone) जिसका स्राव चार "सेम्पर" कोशिकाओं (Semper cells) से होता है; इन दो लेन्सों से नेत्रांशक की फ़ोकस दूरी निर्धारित होती है। ये दो थे नेत्रांशक के अपवर्तनी भाग। संवेदनी घटकों में आठ ग्राही (रेटिन्यूला, retinula) कोशिकाएं आती हैं जो एक अक्ष के चारों ओर व्यवस्थित होती हैं। प्रत्येक रेटिन्यूला कोशिका एक भीतरी रेशकीय रैब्डोमीयर (rhabdomiere) बना देती है। आठ रेटिन्यूला कोशिकाओं के रेब्डोमीयर एक साथ मिलकर रैब्डोम बनाते हैं। रेटिन्यूला कोशिकाओं के आधार से एक-एक तंत्रिका रेशा निकलता है। दृष्टि वर्णक रैब्डोमीयर में स्थित होता है, और इसलिए रैब्डोमीयर कशेरूकी रेटिना की शलाकाओं एवं शंकुओं के तुल्य होते हैं। रैब्डोमीयरों के प्रकाश-उत्तेजन से तंत्रिका आवेग पैदा होता है जो तंत्रिका रेशे में से संचरित होता है। साथ ही कुछ द्विनीयक वर्णक कोशिकाएं भी होती हैं जो प्रत्येक नेत्रांशक को अपने सहवर्ती नेत्रांशकों से पृथक करती हैं। आपको एक बात ध्यान में रखनी होगी कि रैब्डोमों में वितरित जो प्रकाशवर्णक होते हैं उनसे भिन्न प्राथमिक तथा द्वितीयक वर्णक कोशिकाओं में स्थित वर्णक कणिकाएं प्रकाशवर्णक नही होतीं बल्कि उनका काम नेत्रांशक में प्रवेशकारी प्रकाश को सहवर्ती नेत्रांशक में जाने से रोकना है। रेटिन्यूला कोशिकाओं में तंत्रिका रेशे दृक् पालि में प्रविष्ट होते हैं। आंख की अनुक्रिया की विद्युत रिकार्डिंगों को इलेक्ट्रोरेटिनोग्राम (electroretinogram) कहते हैं।

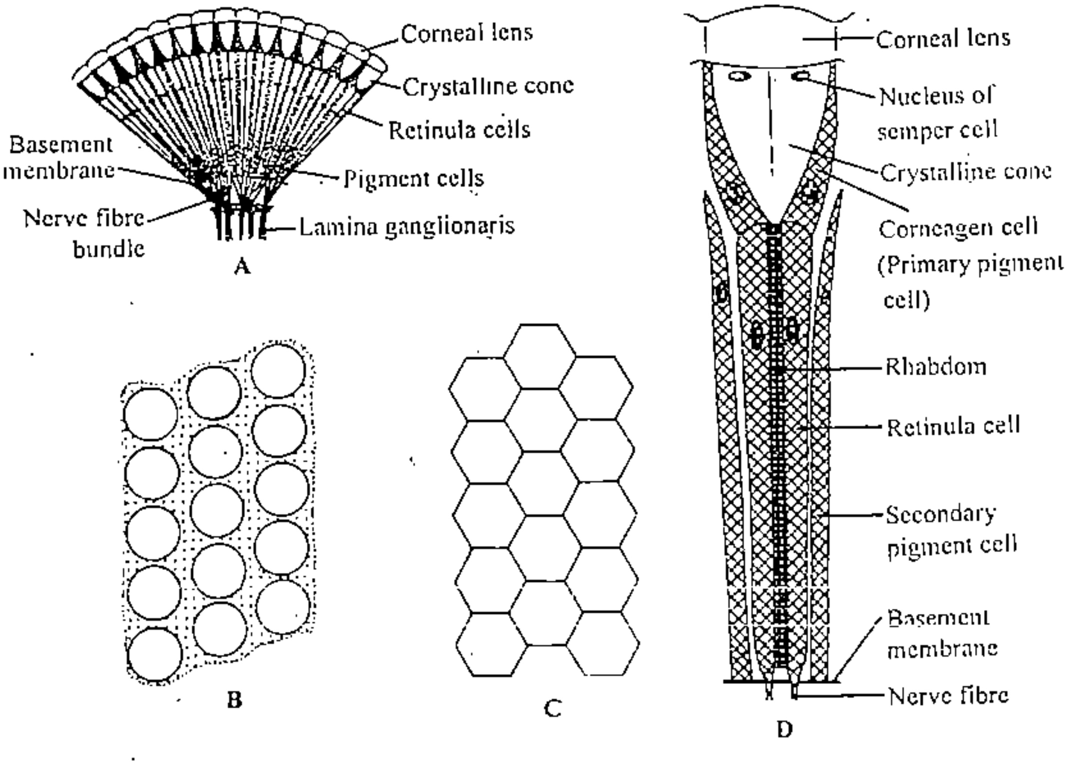

चित्र 11.21 : संयुक्त आंख की संरचना दर्शाने वाले आरेख। A- आंख के एक अंश का सेक्शन जिसमें नेत्रांशकों की व्यवस्था दर्शायी गयी हैं; B- एक एफ़िड की आंख के एक अंश का सतही दृश्य जिसमें थोड़ी ही संख्या में नेत्रांशक हैं, और जिसमें अरूपांतरित क्यूटिकल द्वारा भली भांति पृथक हुए फलक (facets) दिखायी पड़ रहे हैं; C- एक सिरफिड की आंख के अंश का सतही दृश्य, यह आंख बहुसंख्यक नेत्रांशकों की बनी होती है जिनके फलक बहुत पास-पास आ गए हैं; D- एक अकेले नेत्रांशक की विस्तृत संरचना।

संयुक्त आंखें दो प्रकार की होती हैं : स्तराधानी **(apposition)** आंखें और (ii) अध्यारोपण **(superposition)** आंखें। स्तराधानी आँखें दिवाचर स्पीशीज़ की वशिष्टता होती है। इसमें ग्राही कोशिकाएं बहुत लम्बी होती हैं जो दूरस्थत: क्रिस्टलीय शंकु तक फैली होती हैं। आंख द्वारा कुल मिलाकर बनाया जाने वाला प्रतिबिम्ब क्षेत्रों का मोज़ेक (mosaic) होता है यानी खंड जोड़-जोड़ कर बनाया गया प्रतिबिम्ब (चित्र 11.22 A)। रात्रिचर कीटों में अध्यारोपण आंख पायी जाती है (चित्र 11.22 B)। इनमें रेटिका कोशिकाएं क्रिस्टलीय शंकु से काफ़ी हटी-हटी होती हैं; प्रत्येक ग्राही कोशिका बहुत से नेत्रांशक-लेन्सों में से प्रवेश करने वाले प्रकाश द्वारा उत्तेजित होती है। इस प्रकार की आंख मंद प्रकाश के लिए उपयुक्त होती है। तथापि, अतिव्यापी प्रतिबिंबों के कारण वियोजन यानी विश्लेषण क्षमता कम होती है। तीव्र प्रकाश में प्राथमिक तथा द्वितीयक वर्णक कोशिकाओं का वर्णक खिसकता हुआ रेटिनल कोशिकाओं के पार्श्वों से ढ़क लेता है जिसके कारण अब ये रेटिनल कोशिकाएं केवल उसी प्रकाश द्वारा उत्तेजित हो सकती हैं जो सीधा नेत्रांशक अंश के सहारे ही भीतर प्रवेश कर रहा हो। इस स्थिति में आंख को प्रकाश-अनुकूलित (light-adapted) कहा जाता है जो अति तीव्र प्रकाश से अपना बचाव कर रही होती हैं। धीमें प्रकाश में वर्णक बाहर को गति करके रेटिनल कोशिकाओं को खुला बना देता है जिस पर अब अधिक व्यापक स्रोत से प्रकाश पहुंचने लगता है। इस दशा में आंख को अंधकार अनुकूलित (dark adapted) कहा जाता है।

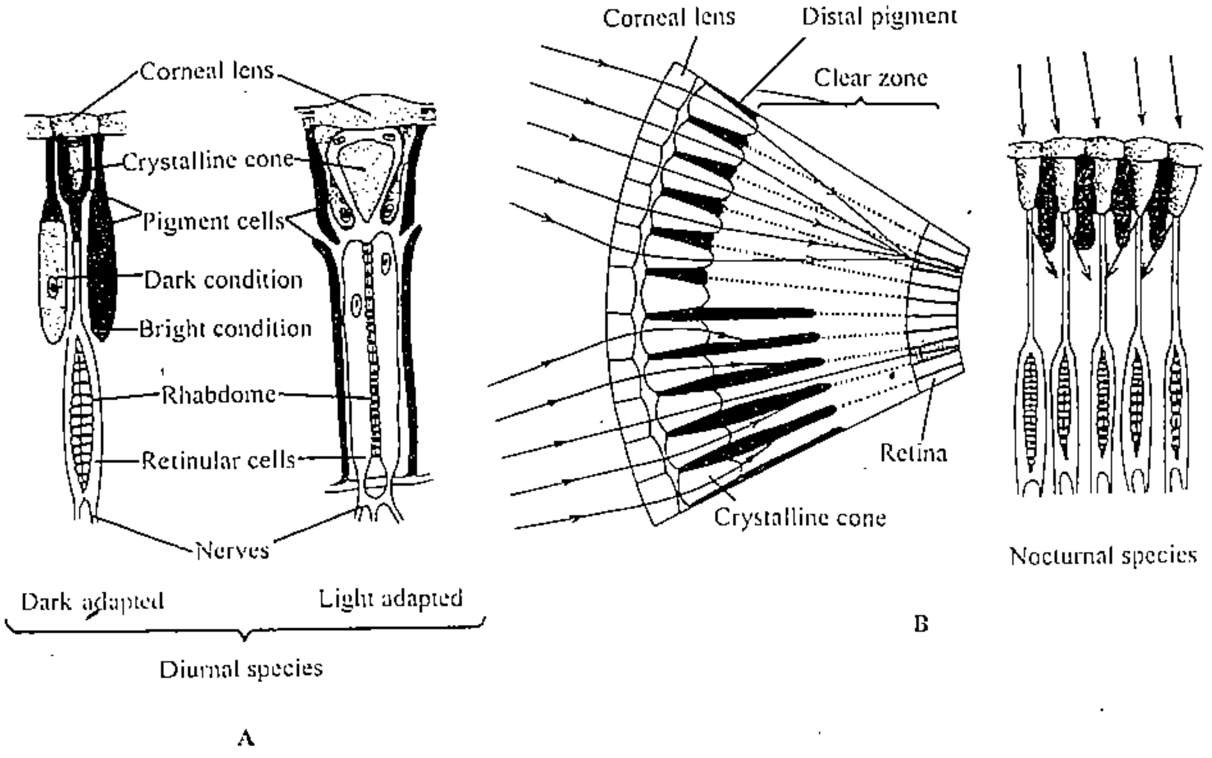

चित्र 11.22 : A- कीट का नेत्रांशक जिसमें एक दिवाचर प्ररूप (बायीं ओर) तथा एक रात्रिचर प्ररूप (दाहिनी ओर) दिखाए गए हैं दिवाचर प्ररूप में वर्णक दो स्थितियों में दिखाया गया है। बायीं ओर बहुत ज्यादा अंधेरे की दशा में और दाहिनी ओर अपेक्षकृत खुली रोशनी की दशा में दिखाया गया है। B- रात्रिचर प्रकार की आंख जो अंधियारे की दशा के लिए अनुकूलित होती हैं इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार एक ही रैब्डोम पर अनेकलेन्सों से आने वाले प्रकाश को केंद्रित किया जा सकता है। यदि वर्णक नीचे को चला आता है तो लेन्सों से आने वाले प्रकाश बाहर-बाहर ही रोक दिया जाता है।

बोध प्रश्न 8

संयुक्त नेत्र की निम्न में से किन कोशिकाओं में प्रकाशसंवेदी वर्णक पाया जाता है?

a) प्राथमिक रेटिनल कोशिका
b) द्वितीयक रेटिनल कोशिका

c) रैब्डोमीयर

....

....

....

....

....

11.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप ये सब बातें जान गए होंगे:-

- तंत्रिका तंत्र अनिवार्यत: तंत्रिका कोशिकाओं का बना होता है जिन्हें न्यूरॉन कहते हैं। ये संवेदी, प्रेरक अथवा साहचर्य नयूरॉन होते हैं और एक ध्रुवी, द्विध्रुवी अथवा बहुध्रुवी हो सकते हैं।
- तंत्रिका तंत्र नाइडेरिया से शुरू होकर ऊपर के सभी वर्गों में पाया जाता है। नाइडेरिया में यह एक अध:एपिथीलियमी तंत्रिका जाल के रूप में होता है जिसमें केंद्रीकरण बहुत ही कम होता है।
- मेटाज़ोआ के दौरान केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के बनने और उसके विकास की दिशा में स्पष्ट प्रवृत्तियां पायी जाती हैं। इनमें ये चार प्रवृत्तियां आती हैं (i) अध:एपिथीलियमी जाल का विलोप जिसके स्थान पर एक केंद्रीय तंत्रिका तंत्र बनने लगता है जिसमें प्रेरक तथा साहचर्य न्यूरॉन एक साथ समूहित होते हैं। (ii) आरम्भ में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तंत्रिका रज्जुओं के रूप में मोटे हो गए जिसमें इन रज्जुओं के परिधीय क्षेत्रों में तंत्रिका-कोशिकाएं समरूपत: वितरित रहती हैं। (iii) तदुपरांत कोशिकाएं परस्पर समूहित होकर गैंग्लिया बनाती हैं जो संधायीओं एवं संयोजियों से परस्पर संबंधित रहते हैं। (iv) अंतत: शिरोभवन के साथ-साथ मस्तिष्क का विकास हुआ जिसका धीरे-धीरे महत्व बदल गया और उसमें श्रेष्ठतर संघटना बनती गयी।
- महा रेशे अकॉर्डेट मेटाज़ोअनों के अनेक समूहों में विकसित हो गए जिनसे आवेगों के तीव्रतर संवहन में सुविधा आ गयी। ये रेशे प्राणियों की, बचकर भाग निकलने की, प्रतिक्रियाओं में काम करते होते हैं।
- ग्राही संवेदी न्यूरॉन होते हैं। ये विविध प्रकार के उद्दीपनों को ग्रहण करके उन्हें विद्युत आवेगों में परिवर्तित करते हैं। अलग-अलग प्रकार के उद्दीपनों के बोध-ग्रहण के लिए अलग-अलग प्रकार के ग्राही विशेषित हो गए होते हैं। तदनुसार ये यांत्रिकग्राही, रसोग्राही अथवा प्रकाशग्राही होते हैं।
- ग्राही व्यष्टिगत कोशिकाओं के रूप में सर्वत्र छितराए हो सकते हैं; मगर प्राय: वे संकेंद्रित हो जाया करते हैं जैसे कि आंखों, स्टैटोसिस्टों आदि में जो प्राणियों में अक्सर ही पाये जाते हैं।

11.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) आप किसी न्यूरॉन को संरचना की दृष्टि से किस प्रकार पहचानेंगे?

....

....

....

....

....

....

....
....
....
....
....

2) न्यूरोग्लिया क्या होता है?

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) तीन मुख्य प्रकार के ग्राही क्या-क्या होते हैं? इनके क्या-क्या कार्य हैं?

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

4) सेफैलोपोड आंख तथा कशेरूकी आंख में मूलभूत अंतर क्या है? एक महत्वपूर्ण अंतर बताइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

5) आप ऐपिथीलियमी तंत्रिका जाल को आदिम प्रकार का तंत्रिका तंत्र क्यों कहते है।?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6) सेफैलोपोड मस्तिष्क को आप अतिविकसित क्यों मानते है? एक अच्छा कारण बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1)

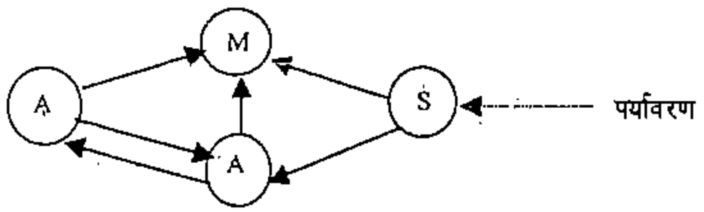

2)

	I	II
i)	b	A
ii)	a	B
iii)	c	B

3) a) S
b) S
c) A

4) 1) परिधीय अधःएपिडर्मिसी तंत्रिका जाल समाप्त हो जाता है, तंत्रिका तंत्र मुख्यतः अधःपेशीय हो जाता है और तंत्रिकाएं बन जाती हैं।

2) जब कि संवेदी न्यूरॉन परिधि पर कायम बने रहते हैं साहचर्य न्यूरॉन तथा प्रेरक न्यूरॉन केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में संकेंद्रित हो जाते हैं।

3) न्यूरॉन और आगे केंद्रित होकर गैंग्लिया बना लेते हैं जिन्हें जोड़ते हुए संयोजी एवं संधायी पाए जाते हैं।

4) शिरोभवन के साथ-साथ मस्तिष्क बन जाता है जो आगे-आगे विकास होते जाने के साथ-साथ अधिक महत्वपूर्ण होता है।

5) 1) a) हाँ
b) नहीं
c) हाँ

2) i) हाँ
ii) नहीं
iii) नहीं

6) हाँ, क्योंकि चारों प्रकार के संवेदन संबद्ध ग्राहियों में अस्थायी विकृति लाकर अपने प्रभाव पैदा करते हैं।

7)

	स्पर्श ग्राही	घ्राण ग्राही
1)	इनके साथ कम संख्या में संवेदी कोशिकाएं होती हैं।	इनके साथ बड़ी संख्या में संवेदी कोशिकाएं होती हैं
2)	डेण्ड्राइट विशाखित नहीं होते	डेण्ड्राइट अति विशाखित होते हैं
3)	संवेदिका के सिरें पर एक अकेला छिद्र होता है	समूची संवेदिका पर बहुसंख्यक छिद्र होते हैं

8) c) ‹‹टन्यूलर कोशिका (नोट: यद्यपि रैब्डोमीयर में वर्णक होता है मगर वह कोशिका नही है। वह तो रेटिन्यूलर कोशिका का एक अंश मात्र होता है।)

अंत में कुछ प्रश्न

1) न्यूरॉन में एक कोशिका काय होता है जिसे पेरिकैरियॉन कहते हैं और एक या अधिक प्रवर्ध होते हैं जिन्हें न्यूराइट कहते हैं।

2) न्यूरोग्लिया तंत्रिका-तंत्र का संयोजी ऊतक होता है जो न्यूरॉनों के बीच-बीच के स्थान को भरे रहता है। इसमें न्यूराइटों को बाहर से ढ़कती हुई श्वान्न कोशिकाएं भी हैं और पेरिन्यूरियम भी है तथा गैंग्लिया को ढ़कती हुई तंत्रिका पटलिकाएं और तंत्रिका आच्छद भी शामिल है।

3) यांत्रिकग्राही : स्पर्श, गुरुत्व, ध्वनि, तनन

रसोग्राही: स्वाद, गंध

प्रकाशग्राही: दृष्टि, प्रकाश का संवेदन

4) सेफ़ैलोपोड आंख में रेटिना की ग्राही कोशिकाएं प्रकाश-स्रोत की ओर निर्दिष्ट रहती हैं, कशेरूकी आंख में प्रकाश-स्रोत के दूसरी ओर निर्दिष्ट रहती हैं।

5) एपिथीलियमी तंत्रिका जाल सबसे आदिम मेटाज़ोअनों में पाया जाता है जिनमें मात्र यही तंत्रिका तंत्र पाया जाता है उच्चतर प्राणियों में यह नहीं होता है।

6) मस्तिष्क के विविध केंद्र (साहचर्य, प्रेरक और संवेदी) अति उन्नत होते एवं मस्तिष्क की बड़ी स्पष्ट पालियों में विशिष्ट स्थानों में बने होते हैं।

इकाई 12 अंत:स्रावी तंत्र

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
12.2 अंत:स्रावी बनाम तंत्रिकीय समाकलन
12.3 अंत:स्रावी अंग
तंत्रिस्रावी कोशिकाएं तथा तंत्रिस्रवण की संकल्पना
तंत्रिस्रावी तंत्र
अन्य अंत:स्रावी अंग
12.4 वृद्धि तथा जनन में हार्मोन
ऐनेलिडा
मौलस्का
आर्थ्रोपोडा
12.5 अन्य प्रकार्यों के नियंत्रणकारी हार्मोन
12.6 सारांश
12.7 अंत में कुछ प्रश्न
12.8 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने जाना कि तंत्रिका-तंत्र प्राणी की विविध क्रियाओं का समाकलन एवं उनका समन्वय करता है। विविध संवेदी अंगों से आने वाले अभिवाही उद्दीपन मस्तिष्क में लाए जाते हैं जो एक समन्वयकारी केंद्र होता है। मस्तिष्क से उचित उद्दीपनों को विविध प्रेरक (motor) अंगों अथवा कार्यकर (effctor) अंगों में प्रेषित किया जाता है जिससे प्राणी में समन्वित प्रेरक क्रियाएं होती हैं। आपने देखा था कि ये उद्दीपन परिपथों के ऐसे बंद तंत्र में से प्रेषित होते हैं, जिसकी तुलना टेलीग्राफ के केबलों से की जा सकती है जिन्हें यहां तंत्रिका रेशे कहते हैं, और ये उद्दीपन विद्युत विक्षोभों के रूप में प्रेषित होते हैं। वास्तव में संयोजनों के बीच-बीच में अनेक सूक्ष्म अंतराल (खाली स्थान) होते हैं जहां इन अंतरालों के बीच परिपथों को बनाने और तोड़ने वाले तंत्रिप्रेषी (neurotransmitters) होते हैं। इस इकाई में आप एक अन्य, मगर उतने ही महत्वपूर्ण तंत्र के विषय में पढ़ेंगे और यह तंत्र भी संदेशों को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में पहुंचाने का ही काम करता है जिससे प्राणी के विविध क्रिया-कलापों का समाकलन एवं समन्वय होता है। यह अंत:स्रावी तंत्र (endocrine system) है। यही अंत:स्रावी तंत्र अंत:स्रावी ग्रंथियों में बने हार्मोन नामक रासायनिक पदार्थों के द्वारा संचार सम्पन्न कराता है। हार्मोनों को उनके लक्ष्य ऊतकों अथवा अंगों में ले जाने का काम रक्तधारा द्वारा किया जाता है। तंत्रिका तंत्र तथा अंत:स्रावी तंत्र ये दोनों मिलकर प्राणी के समन्वयकारी तंत्र के समाकलित भाग हैं। वास्तव में ये दोनों तंत्र एक दूसरे से बहुत निकटत: संबंधित रहते हैं और इन दोनों निकटत: जुड़े परस्पर क्रिया करने वाले तंत्रों की अध्ययन शाखा को तंत्रिअंत:स्राविकी (neuroendocrinology) कहते हैं। इससे पहले कि आप अंत:स्रावी तंत्र का अध्ययन करें आपको जल्दी से ध्यान कर लेना चाहिए कि तंत्रिका-तंत्र में आपने क्या-क्या पढ़ा था।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप ये सब कर सकेंगे

- तंत्रिकीय तथा हार्मोनी समाकलन में अंतर बता सकेंगे,
- तंत्रिस्रवण की संकल्पना का स्पष्टीकरण कर सकेंगे,
- साधारण न्यूरॉन तथा तंत्रिस्रावी न्यूरॉन में विभेद कर सकेंगे,
- ऐनेलिडों, मौलस्कों, कीटों तथा क्रस्टेशियनों में मुख्य अंत:स्रावी संरचनाओं के नाम बता सकेंगे,

- कीटों मे निर्मोचन तथा कायांतरण के हार्मोनी नियंत्रण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे,
- क्रस्टेशियनों में रंग परिवर्तन के हार्मोनी नियंत्रण की क्रियाविधि स्पष्ट कर सकेंगे,
- अकॉर्डेटों के जीवन में हार्मोनों के महत्व का विवेचन कर सकेंगे।

12.2 अंत:स्रावी बनाम तंत्रिकीय समाकलन

आपके मन में एक प्रश्न उठ सकता है कि "आखिर दो प्रकार की समाकलनी क्रियाविधियों तंत्रिकीय तथा अंत:स्रावी क्रियाविधियों की आवश्यकता ही क्यों पड़ी?" इन दोनों तंत्रों की अपने-अपने अलग-अलग गुणधर्म और कार्य हैं और इसलिए प्राणी को इनसे अनुविशिष्ट अनुकूलन प्राप्त होते हैं। पिछली इकाई में आपने सीखा था कि तंत्रिका-तंत्र विविध उद्दीपनों के लिए बड़ी तीव्रता से अनुक्रिया करता है। अत: जब भी तीव्र क्रिया कि आवश्यकता होती है तब तंत्रिका तंत्र ही अधिक प्रभावकारी होता है। इसके विपरीत जो कार्य अंत:स्रावी तंत्र द्वारा नियंत्रित होते उनमें हार्मोन सांद्रण धीरे-धीरे बनता है, तथा किसी कोशिका अथवा ऊतक अथवा अंग का कार्य करना तभी आरम्भ होता है जब विभिन्न अनुमाप (titres) आरम्भसीमा (threshold) पर पहुंच जाते हैं।

हार्मोनों का सांद्रण अनिवार्यत: धीरे-धीरे ही बनता है, उसके बाद ही विशिष्ट कार्य पूरा होता है और कार्य के पूरा हो चुकने पर हार्मोन उपापचयित हो जाता तथा धीर-धीरे विघटित कर दिया जाता है। परिणामत: हार्मोन का प्रभाव लगातार होता रहता और एक लम्बी अवधि तक जारी रहता है। उदाहरणत: जब कभी तीव्र अनुक्रियाएं चाहिए जैसे कि किसी परभक्षी से बच निकलने के लिए तब प्राणी तंत्रिकीय क्रियाविधि का सहारा लेता है मगर जब धीमा लेकिन लगातार चलने वाला प्रभाव चाहिए जैसे कि प्राणी की वृद्धि के दौरान अथवा अंडाणु (oocyte) के बनने में हार्मोनी क्रियाविधि काम करने लग जाती है।

बोध प्रश्न 1

अकॉर्डेटों द्वारा प्रदर्शित कुछ क्रियाकलाप नीचे दिए जा रहे हैं। उनमें निहित नियमन की प्रकृति बताइए कि वह तंत्रिकीय (N) है अथवा अंत:स्रावी (E)।

i) झींगा अपने परिवेश से मेल खाने के लिए अपने शरीर की रंग-व्यवस्था बदल लेता है।

ii) काकरोच के अण्डों में पीतक का जमाव होना।

iii) छिपकली के चंगुल से बच निकलने के लिए आराम से बैठा शलभ एक दम से उड़ जाता है।

iv) मधुमक्खी फूलों पर जाती है।

v) जिस जल में घोंघा रहता है उसके दूषित हो जाने पर वह अपने कवच के भीतर को सिकुड़ जाता है।

vi) केटरपिलर का तितली में परिवर्तित हो जाना।

12.3 अंत:स्रावी अंग

जैसा कि पहले कह चुके हैं अंत:स्रावी अंग वे अंग अथवा ऊतक होते हैं जो अपने रासायनिक पदार्थों को सीधे ही रक्त में छोड़ते हैं। बाह्य स्रावी (exocrime) ग्रंथियों के विपरीत इनमें स्रावों को बाहर ले जाने के लिए कोई वाहिनिया नहीं होती और इसलिए इन्हें वाहिनीविहीन ग्रंथियां कहते हैं।

सारणी 12.1 में उच्चतर अकॉर्डेट वर्ग की अंत:स्रावी ग्रंथियों एवं उनके स्रावों के कार्यों को दर्शाया गया है।

अकॉर्डेटों में तंत्रिस्रावी कोशिकाएं (neurosecretory cells, NSCs) अंत:स्रावी तंत्र की एक महत्वपूर्ण रचक होती हैं। ये तंत्रिका कोशिकाएं ही हैं जो हार्मोन-उत्पादन के लिए विशेषित हो गयी हैं। अत: इनमें तंत्रिकीय एवं अंत:स्रावी दोनों ही प्रकार के गुणधर्मों को एक साथ पाया जाता है। इसके अलावा तंत्रिका तंत्र

से भी पूर्ण रूपांतरण होकर अंतःस्रावी ग्रंथियों का उदय हो सकता है। ऐसी ही एक ग्रंथि कीटों की कार्पस कार्डिऐकम (corpus cardiacum) होती है। अनेक अकॉर्डेटों में एपिथीलियमी अंतःस्रावी ग्रंथियां भी हो सकती हैं जो भ्रूणीय एक्टोडर्म, मीज़ोडर्म अथवा एंडोडर्म परतों से व्युत्पन्न होती हैं। ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं सेफ़ैलोपोड मौलस्कों की दृक् ग्रंथियां (optic glands), क्रस्टेशियनों की ऐंड्रोजेनिक ग्रंथियां (androgenic glands) एवं उनके "वाई" अंग (Y-organs) तथा कीटों का कार्पस ऐलैटम (corpus allatum) एवं अग्रवक्ष ग्रंथियां (prothoracic glands)। आप इनकी संरचना और कार्य के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे। मगर आगे बढ़ने से पहले आइए तंत्रिस्रवण की संकल्पना के विषय में ज़रा और विस्तार से जान लें क्योंकि अकॉर्डेटों में उपापचयी एवं जनन कार्यों के नियमन में तंत्रिस्रावों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

12.3.1 तंत्रिस्रावी कोशिकाएं एवं तंत्रिस्रवण

हम पहले कह चुके हैं कि अकॉर्डेट अंतःस्रावी तंत्र में तंत्रिस्रावी कोशिकाएं एक महत्वपूर्ण रचक हैं। निश्चय ही वे कॉर्डेटों में भी पायी जाती हैं। परंतु कॉर्डेटों से भिन्न अकॉर्डेटों में एपिथीलियमी अंतःस्रावी ग्रंथियां थोड़ी होती हैं, इसलिए इन प्राणियों को रासायनिक समन्वय के लिए तंत्रिस्रावी कोशिकाओं पर बहुत ज़्यादा निर्भर रहना होता है। बेर्टा शारेर तथा अर्न्स्ट शारेर को तंत्रिस्रावी कोशिकाओं पर बहुत ज़्यादा निर्भर रहना होता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो यह वह संकल्पना है जिसमें न्यूरॉन स्रवण क्रिया करने और हार्मोन बनाने लग जाते हैं। इन NSCs (neurosecretory cells) यानी तंत्रिस्रावी कोशिकाओं को मस्तिष्क अथवा गैंगिलया के ऊतकीय सेक्शनों में देख सकते एवं पहचान सकते हैं क्योंकि इनमें अभिरंजनीय अर्थात कोलॉयडों की भारी मात्रा मौजूद होती है जब कि सामान्य न्यूरॉनों में ऐसा नहीं होता। विश्वास किया जाता है कि ये कोलॉइड ही हार्मोनों के वाहक पदार्थ होते हैं। बहुत बार इस प्रकार की कोशिकाओं में प्रयोगों द्वारा हार्मोन सिद्धांत की विद्यमानता को सिद्ध किया जा सकता है। तंत्रिस्रावी न्यूरॉनों से भिन्न साधारण न्यूरॉनों में कोई हार्मोन नहीं होते और न ही उनमें से हार्मोन निकलते हैं। हालांकि सिनैप्सों तथा तंत्रपेशीय संधियों पर इनसे तंत्रिप्रेषी निकलते हैं, ये स्राव रक्त में नही छोड़े जाते और अल्पकालिक होते हैं जब कि NSCs से निकलने वाले हार्मोन रक्त में छोड़े जाते एवं दीर्घकालिक होते हैं। कुछ कीटों के जीवित मस्तिष्क के विच्छेदनों में "बाइनोकुलर डिसेक्शन माइक्रोस्कोप" इस्तेमाल करके इन NSCs को मस्तिष्क आच्छद में से सूक्ष्म नीलापन लिए हुए सफ़ेद बिंदुओं के रूप में देखा जा सकता है।

हार्मोनयुक्त तंत्रिस्रावी पदार्थ मुख्यतः कोशिका काय के भीतर बनता है और वह ऐक्सॉनों में से होकर उंगली-सदृश ऐक्सॉन अंत्यसिरों में पहुंचाया जाता है (चित्र 12.1)। यदि हम इन ऐक्सॉनों को एक सिरे से दूसरे तक निहारते जाएं तो देखेंगे कि न्यूरानों के कोशिका कायों से दूर ऐक्सॉन-सिरों पर अक्सर उत्फूलन बने होते हैं जिनके साथ रक्त-गुहाएं होती हैं। स्रावी पदार्थ इन उत्फूलनों में संचित हो जाता है और हार्मोन उनमें से बाहर निकल कर रक्त धारा में छोड़ दिया जाता हैं इस प्रकार के अंगों को, जो रक्त गुहाओं के साहचर्य में होते और जिनके भीतर तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के फूले तंत्रिकांत सिरे होते हैं **तंत्रिरुधिर अंग (neurohaemal organs)** कहते हैं। आप देखेंगे कि कुछ अकॉर्डेटों में तंत्रिरुधिर अंग होते हैं। क्रस्टेशियनों की कोटर ग्रंथि (sinus gland) तथा कीटों का कॉर्पस कार्डिऐकम (corpus cardiacum) ऐसे ही तंत्रिरुधिर अंगों के उदाहरण हैं। कशेरूकियों में भी उनके अपने तंत्रिरुधिर अंग होते हैं - पिट्यूटरी की तंत्रिकीय पालि ऐसे ही तंत्रिरुधिर अंगों का एक उदाहरण है।

वैज्ञानिकों ने तंत्रिस्रावी तंत्रों से हार्मोन पृथक् किए हैं। इनमें कुछ थोड़े से अम्ल होते हैं और इसीलिए इन्हें ओलाइगोपेप्टाइड कहते हैं।

एक उदाहरण कीटों के मस्तिष्क के NSCs द्वारा निर्मित प्रोथोरैसिकोट्रोपिक (protoracicotropic) हार्मोन का है। क्रस्टेशियनों का लाल वर्णक का सांद्रणकारी हार्मोन ऐसा ही एक अन्य उदाहरण है। तथापि अकॉर्डेटों से उपलब्ध जानकारी बहुत थोड़ी है, अकॉर्डेटों से हार्मोनों का पृथक्करण एवं उनकी पहचान बहुत कठिन रही है। मगर इनके तंत्रिस्रावों में हार्मोनी पदार्थ की उपस्थिति अनेक अकॉर्डेटों में प्रयोगों के माध्यम से दर्शायी जा सकी है और उनके कार्य भी मालूम हैं।

सारणी 12.1

प्राणी समूह	अंत:स्रावी ग्रंथि	पृथक निकाले गए कुछ हार्मोन	कुछ कार्य
ऐनैलिडा	मस्तिष्क NSC कोशिकाएं तथा अध:प्रमस्तिष्क ग्रंथि		वृद्धि तथा पुनरुद्भवन का उत्तेजन लैंगिक परिपक्वन तथा एपिटोकी का संदमन
मौलस्का	-दृक् ग्रंथि		नर और मादा गोनडों का उत्तेजन
(i) सेफैलोपोडा	-मस्तिष्क की NSC कोशिकाएं		वृद्धि हार्मोन द्वारा शरीर की वृद्धि का उत्तेजन
(ii) गैस्ट्रेपोडा	-पार्श्व पालि		वृद्धि निरोधक हार्मोन देह वृद्धि का संदमन करता एवं अंडों के बनने को उत्तेजित करता है।
	-पृष्ठ पिंड		जनन चक्र की नर तथा मादा प्रावस्थाओं के परिवर्धन को उत्तेजित करते हैं।
आर्थ्रोपोडा (i) क्रस्टेशिया	"एक्स" अंग-कोटर ग्रंथि तंत्र, अन्य NSC कोशिकाएं पश्च संधायी अंग परिहृद अंग	लाल वर्णक संकेंद्रणी हार्मोन	रंग-परिवर्तन; निर्मोचन संदमन; अंडाशय परिपक्वन का संदमन
	"वाई"-अंग ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि	एक्डाइसोन	हृदय-स्पंदन का नियमन करता है निर्मोचन को उत्तेजित करता है शुक्राणुजनन को तथा नर द्वितीयक लक्षणों के परिवर्धन का उत्तेजन
(ii) इन्सेक्टा (कीट)	पार्स इंटरसेरीब्रेलिस NSC कोशिकाएं	अग्रवक्षप्रभावी हार्मोन	अग्रवक्ष ग्रंथियों को उत्तेजित करता है ताकि उनमें एक्डाइसोन बनने लगे
	अग्रवक्ष ग्रंथियां	एक्डाइसोन	निर्मोचन को उत्तेजित करता है
	कॉर्पस ऐलैटम	बाल्य हार्मोन	बाल्य लक्षणों को कायम बनाए रखते हुए कायांतरण का नियमन करता है,
	कॉर्पस कार्डिऐकम	वसागतिक हार्मोन	अंडकाणु की वृद्धि एवं पीतकजनन को उत्तेजित करता है। वसा उपापचय को उत्तेजित करता है।

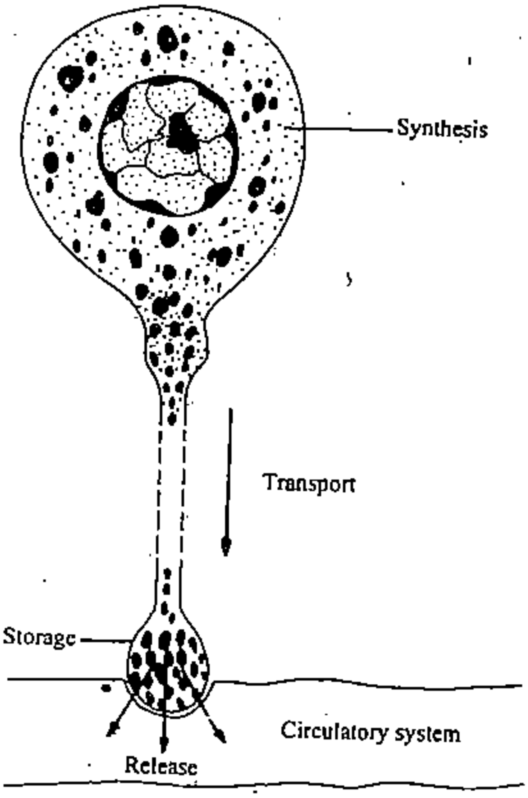

चित्र 12.1 : तंत्रिस्रवण की संकल्पना।

अकॉर्डेटों के तंत्रिस्रावी तंत्रों के विषय में अगले अनुभाग का अध्ययन करने से पूर्व आइए नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

बोध प्रश्न 2

निम्न में से कौन से कथन सही हैं?

1) सभी न्यूरॉन तंत्रिस्रावी होते हैं क्योंकि वे सभी प्रेषक पदार्थों का स्रवण करते हैं। (T/F)
2) वे सभी न्यूरॉन जिनके भीतर अभिरंजनीय कोलॉइड होते हैं तंत्रिकास्रावी होते हैं। (T/F)
3) हार्मोनों का स्रवण करने वाले न्यूरॉन तंत्रिस्रावी होते हैं। (T/F)
4) तंत्रिस्रावी कोशिकाएं वे कोशिकाएं होती हैं जो तंत्ररुधिर अंगों के साथ बनी होती हैं। (T/F)

12.3.2 तंत्रिस्रावी तंत्र (Neurosecretory systems)

बहुकोशिकीय प्राणियों के लगभग सभी वर्गों में पता लगाने के लिए खोजें की गयी हैं कि उनमें तंत्रिस्रावी कोशिकाएं हैं या नहीं। इन खोजों से पता चला है कि ये कोशिकाएं या तो मस्तिष्क में या गैंग्लियानों में स्थित होती हैं। मगर पृथक अस्तित्व वाले तंत्रिस्रावी तंत्र जो तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के बने होते और जिनके ऐक्सॉनी पथ एवं ऐक्सॉन अंत्यसिरे तंत्रिरुधिर अंग बनाते हैं, अकॉर्डेटों के कुछ ख़ास समूहों में ही पाए गए हैं। इन तंत्रों की सर्वोत्तम जानकारी आर्थ्रोपोडों और उनमें भी विशेषकर कीटों तथा क्रस्टेशियनों में हुई है।

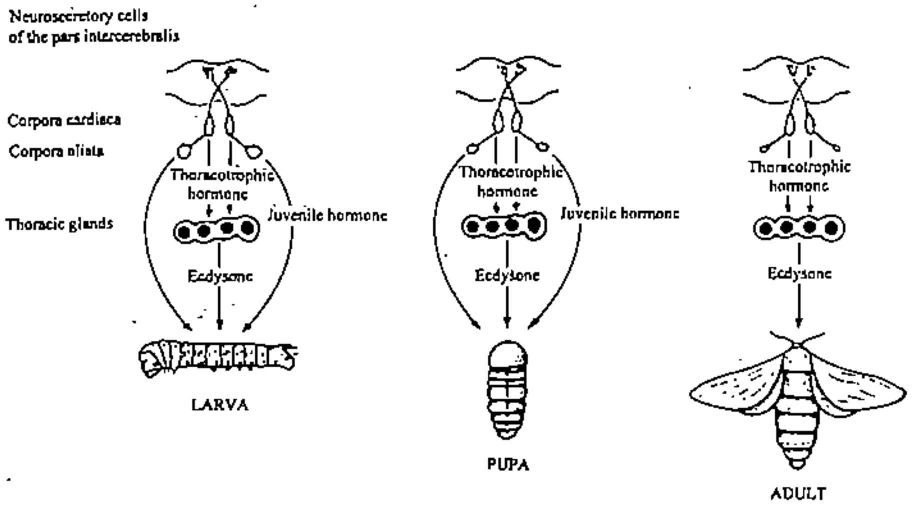

चित्र 12.2 : सामान्यीकृत कीट के मस्तिष्क की तंत्रिस्रावी कोशिका- कॉर्पस कार्डिऐकम-कॉर्पस ऐलैटम तंत्र।

कीटों में (चित्र 12.2) मस्तिष्क के प्रोटोसेरीब्रम के मध्यक क्षेत्र जिसे **पार्स इंटरसेरीब्रेलिस (pars intercerebralis)** कहते हैं, में मध्य रेखा के अगल-बगल NSCs के सुव्यक्त समूह देखे जा सकते हैं। यदि हम उनके ऐक्सॉनी पथों का अनुसरण करें तो हम देखेंगे कि वे मस्तिष्क के भीतर एक-दूसरे को काटते हुए दूसरी ओर पहुंच जाते और फिर कॉर्पस कार्डिऐकम तंत्रिकाओं (nervi corporis cardiaci) के रूप में मस्तिष्क के बाहर आ जाते हैं। ये तंत्रिकाएं कार्पस कार्डिऐकम में प्रवेश करती हैं जो मस्तिष्क के तुरंत पीछे स्थित होता है। उसके बाद उनके रेशों के तंत्रिस्रावी अंत्यसिरे शाखित और पुनःशाखित होते जाते हैं तथा महाधमनी भित्ति के समीप उनके रूप में समाप्त हो जाते हैं। मस्तिष्क के NSCs में तैयार हुआ तंत्रिस्रावी पदार्थ वहां से जाकर इन्हीं ऐक्सॉनी अंत्यसिरों में संचित हो जाता है। आवश्यकता के समय हार्मोन इन संरचनाओं में से निकलकर महाधमनी रक्त में छोड़ दिया जाता है। अत: कॉर्पोरा कार्डिऐका को तंत्रिरुधिर अंग कहा जा सकता है। कभी-कभी अन्य सु-स्पष्ट तंत्रिस्रावीतंत्र भी पाए जाते हैं जो अधर गैंग्लियानों के साथ लगे होते हैं, ये अनेक कीटों में परिअनुकम्पी तंत्र (perisympathetic system) के रूप में पाए जाते हैं (चित्र 12.3)।

क्रस्टेशियनों में (चित्र 12.4) NSCs का एक घना गुच्छा दृक् गैंग्लियानों के सीमांत पर बना होता है। इन समूहों को **एक्स-अंग (X-organs)** कहते हैं। कुछ लेखक क्रस्टेशियनों में प्रत्येक पार्श्व पर एक से अधिक एक्स-अंग बताते हैं। एक्स-अंगों के तंत्रिस्रावी ऐक्सॉन नेत्रवृंत गैंग्लियानों में से गुजरते हुए तंत्रिरुधिर अंग पर केंद्रित हो जाते हैं जिसे कोटर ग्रंथि (sinus gland) कहते हैं। यह दृक गैंग्लियान की सतह पर बनी एक सफेद रंगदीप्त संरचना होती है। जैसा कि नाम से ही प्रकट होता है कोटर ग्रंथि रक्त कोटर के समीप ही स्थित होती है। क्रस्टेशियनों में अध्ययन की गयी सर्वाधिक सामान्य व्यवस्था यही है। कोटर ग्रंथियों में सामन्यत: कोई NSCs कोशिकाएं नहीं होती।

क्रस्टेशियनों में अन्य तंत्रिस्रावी तंत्र भी आम तौर से पाए जाते हैं (चित्र 12.5)। उदाहरणत: पश्चसंधायी अंग (post-commissural organs) परिग्रसिका संयोजियों के साथ संलग्न पाए जाते हैं। ये तंत्रिरुधिर अंग भी होते हैं। इनके तंत्रिस्रावी कोशिका-पिंड मस्तिष्क में स्थित जान पड़ते हैं। इसी प्रकार से क्रस्टेशियनों के परिहृद कोटर में तिरते परिहृद अंग भी तंत्रिरुधिर अंग होते हैं। इनकी अधिकतर तंत्रिस्रावी कोशिकाएं वक्ष गैंग्लियानों में स्थित होती हैं।

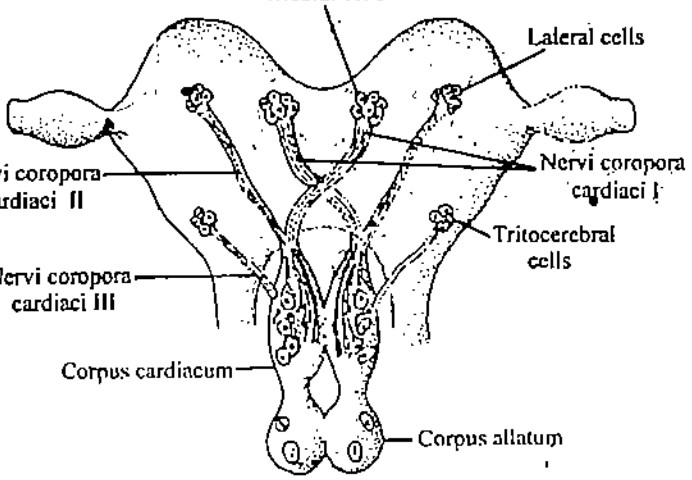

चित्र 12.3 : सामान्यीकृत कीट का मस्तिष्क तंत्रिस्रावी कोशिका-कॉर्पस कार्डिऐकम-परिअनुकम्पी तंत्र। अधर गैंग्लियानों की तंत्रिस्रावी कोशिकाएं भी दिखायी गयी हैं।

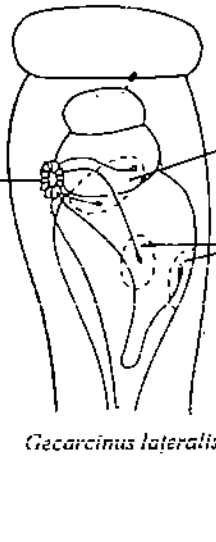

Gecarcinus lateralis

चित्र 12.4 : एक क्रस्टेशियन का एक्स-अंग–कोटर ग्रंथि-तंत्र।

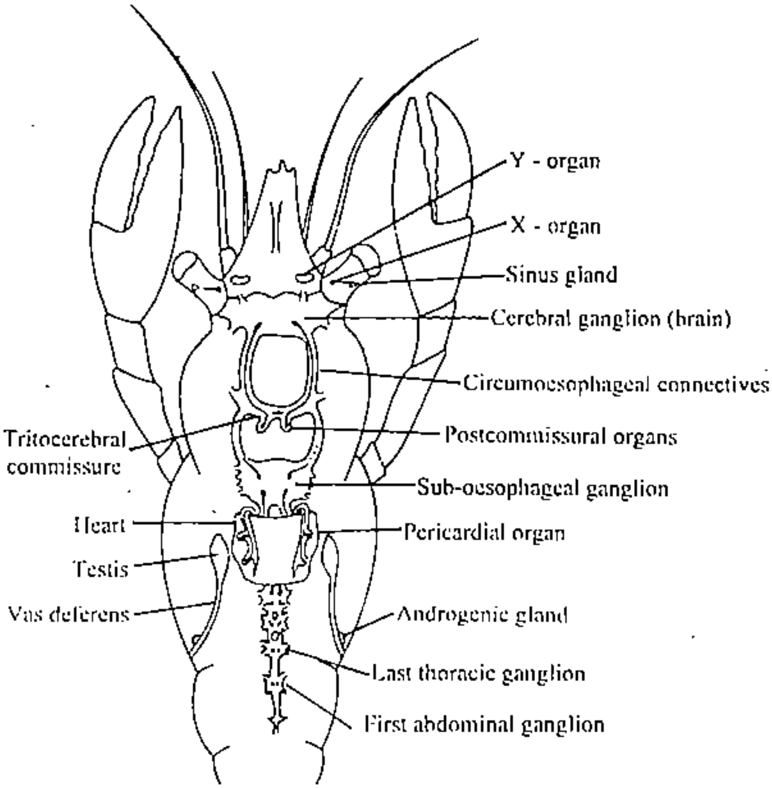

चित्र 12.5: एक सामान्यीकृत क्रस्टेशियन के अंतःस्रावी अंग। ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि तथा नर जनन तंत्र को छोड़कर, अन्य ग्रंथियां मादा में भी पायी जाती हैं।

मिलिपीडों तथा सेंटीपीडों में भी मस्तिष्क तंत्रिस्रावी कोशिकाएं पायी जाती हैं जो तंत्रिरुधिर अंग तक चलती जाती हैं जो प्रत्येक पार्श्व में प्रमस्तिष्क ग्रंथियों होती हैं (चित्र 12.6)। कुछ मिलीपीडों में, इनके अलावा एक और तंत्रिस्रावी तंत्र होता है जिसकी NSC कोशिकाएं ट्राइटोसेरीब्रम में होती हैं और संयोजी पिंड एक तंत्रिरुधिर अंग की तरह होता है। संयोजी पिंड मुखपश्चीय संयोजियों के समीप स्थित होता है जहां यह परिमुख संधायी के साथ जुड़ जाता है।

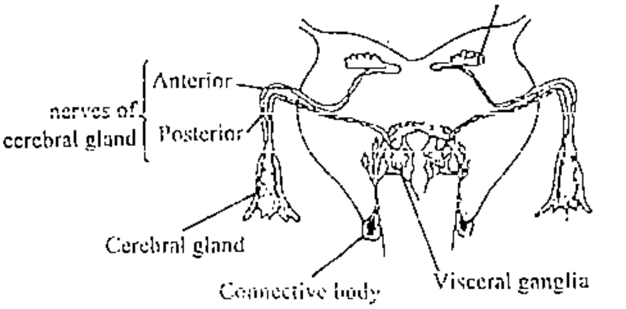

चित्र 12.6 : एक मिलीपीड का तंत्रिस्रावी तंत्र।

12.3.3 अन्य अंत:स्रावी अंग

कार्पस कार्डिऐकम **(Corpus cardiacum):** जैसा कि हम पहले ही कह आए हैं कॉर्पस कार्डिऐकम (बहुवचन corpora cardiaca) कीटों का एक तंत्रिरुधिर अंग है। यह तंत्रिकीय मूल की ग्रंथि हैं। इन्हें रूपांतरित गैंग्लिया माना जाता है। इनके अलावा इस अनुभाग में हम और भी कई अंत:स्रावी ग्रंथियों का विवेचन करेंगे। मगर उनमें से अधिकतर एपिथीलियमी उद्भव के होते हैं। कार्पोरा कार्डिआका पृष्ठत: मस्तिष्क के निकटत: पीछे स्थित होते हैं जहां वे या तो पृष्ठ महाधमनी के अगल-बगल होते या उसके साथ निकट साहचर्य बनाए होते हैं। विच्छेनों में ये सफ़ेद-नीले से अंग के रूप में दिखायी देते हैं और इसलिए इन्हें विच्छेदन माइक्रोस्कोप द्वारा आसानी से देखा जा सकता है। हालांकि कीटों में ये तंत्रिरुधिर अंग होते हैं क्यों कि इनमें मस्तिष्क के पार्स इंटरसेरीब्रैलिस में बैठी NSC कोशिकाओं के रेशीय अंत्यसिरे आए होते हैं, फिर भी इनकी अपनी कोशिकाएं भी होती हैं (चित्र 12.2), अर्थात इनमें अपनी ही आंतरिक कोशिकाएं भी होती हैं जिनमें उन हार्मोनों का संश्लेषण होता है जो पार्स इंटरसेरीब्रैलिस की NSC कोशिकाओं द्वारा बनने से भिन्न होते हैं। अत: इनका कार्य दोहरा होता है। ये तंत्रिरुधिर अंग भी हैं और साथ ही अंत:स्रावी ग्रंथियां भी हैं। इनमें प्राय: दो और कभी-कभी तीन तंत्रिकाएं सामने की ओर मस्तिष्क से आती हैं तथा पीछे की ओर ऐलैटा तंत्रिकाओं द्वारा कॉर्पोरा ऐलैटा (corpora allata, एकवचन कॉर्पस ऐलैटम) से संयोजित रहते हैं। कुछ कीटों में कॉर्पोरा कार्डिऐका में साधारण अस्रावी न्यूरोन भी हो सकते हैं।

कॉर्पस ऐलैटम **(Corpus allatum) :** कॉर्पस ऐलैटम कीटों के गर्दन क्षेत्र में स्थित होते हैं (चित्र 12.2)। यह आम तौर से एक गोल, ठोस तथा पारभासी संरचना होती है। इसके सामने की ओर स्थित कार्पस कार्डिऐकम से यह तंत्रिकाओं द्वारा जुड़ा रहता है। ऐलैटम के भीतर छोटे-छोटे केंद्रक ठसाठस भरे होते हैं जिनको घेरते हुए साइटोप्लाज़्म की मात्रा बहुत कम होती है। इसमें बाल्य हार्मोन बनता है। बाल्य हार्मोन टर्पीनॉइड (terpenoid) (एक प्रकार का लिपिड) यौगिक की सीधी श्रृंखला बनी होती है जो 16 से 19 कार्बन परमाणुओं का बना होता है।

अग्रवक्ष ग्रंथि **(Prothoracic gland):** अग्रवक्ष ग्रंथियां (चित्र 12.7) अपरिपक्व कीटों के अग्रवक्ष में प्राय: अदृढ़ कोशिका-लड़ियों के रूप में बनी होती हैं। इनसे एक्डाइसोन (ecdysone) नामक स्टेरॉइड हार्मोन निकलता है। वयस्क में ये ग्रंथियां अपघटित हो जाती हैं।

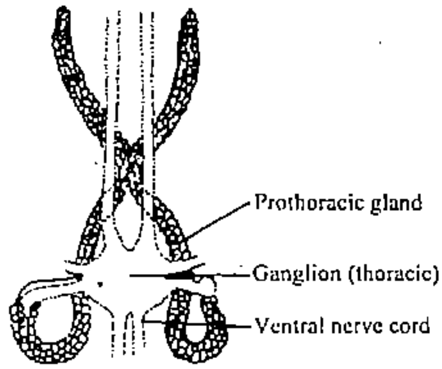

चित्र 12.7 : एक कीट की अग्रवक्ष ग्रंथियां।

"वाई" अंग **(Y-organs):** "वाई" अंग क्रस्टेशियनों में पायी जाने वाली एक जोड़ी अंत:स्रावी ग्रंथियां होती हैं (चित्र 12.5)। ये या तो ऐंटेना देहखंड में अथवा दूसरे मैक्सिलरी देहखंड में पाए जाते हैं। ये क्रस्टेशियनों में निर्मोचन हार्मोन एक्डाइसोन बनाते हैं।

ऐंड्रोजनी ग्रंथियां **(Androgenic glands):** ऐंड्रोजनी ग्रंथियां (चित्र 12.5) केवल नर क्रस्टेशियनों में पायी जाने वाली अंत:स्रावी ग्रंथियां हैं। ये शुक्रवाहिकाओं के पश्च सिरे से संलग्न रहती हैं और इनका हार्मोन पेप्टाइड अथवा प्रोटीन माना जाता है।

दृक् ग्रंथियां (Optic glands): सेफैलोपोड मौलस्कों की दृक् ग्रंथियां आंख की भीतरी दिशा में दृक् वृंत के भीतर बनी अंत:स्रावी ग्रंथियां हैं और इनमें भरपूर तंत्रिकाएं पहुंची होती हैं। मगर, यह ग्रंथि तंत्रिस्रावी तंत्र का अंश नहीं होती। (चित्र 12.8)

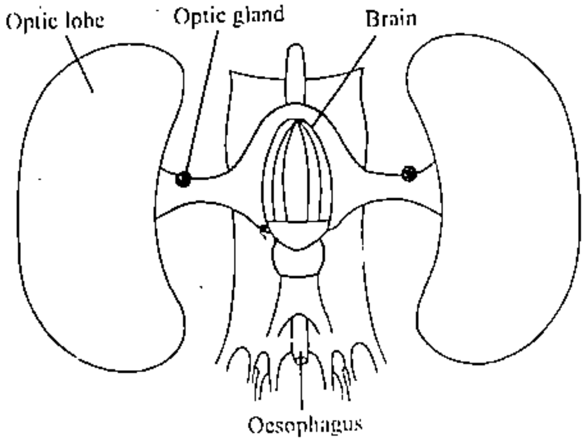

चित्र 12.8 : सेफैलोपोड मौलस्क ऑक्टोपस की दृक् ग्रंथियां।

गैस्ट्रोपोड मौलस्कों में (चित्र 12.9) जैसे कि अलवणजलीय घोंघे *लिम्नीया स्टैग्नैलिस (Limnea stagnalis)* में दो संरचनाएं पृष्ठ पिंड **(dorsal bodies)** तथा पार्श्व पालि **(lateral lobe)** होती हैं जिनके भीतर पुटक ग्रथियां (follicle glands) होती हैं और ये दोनों ही मस्तिष्क से सहसंबंधित रहती हैं। इन मौलस्कों में पौलीकीट ऐनेलिडों में मस्तिष्क के निकट एक अव:प्रमस्तिष्क ग्रंथि होती है। इस अंत:स्रावी की संरचना सम्मिश्र होती है।

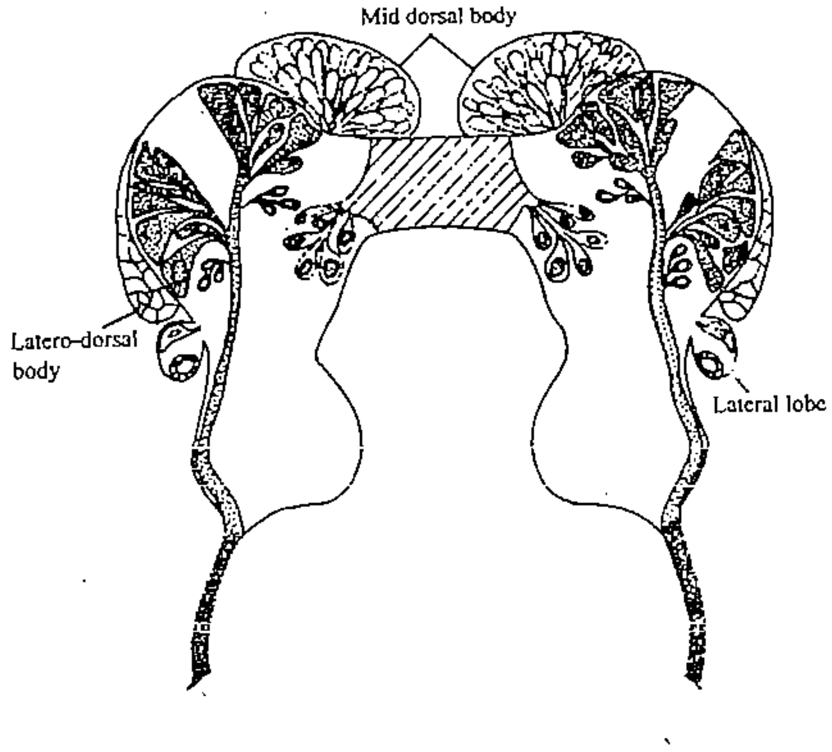

चित्र 12.9 : एक गैस्ट्रोपीड *लिम्नीया स्टैग्नैलिस* का अंत:स्रावी तंत्र, जिसमें मध्यक तथा पार्श्व पृष्ठ पिंड दिखाए गए हैं। साथ ही मस्तिष्क की तंत्रस्रावी कोशिकाएं भी दिखायी गयी हैं।

बोध प्रश्न 3

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं (T) या गलत (F)

i) तंत्रिस्रावी कोशिकाओं से प्रायः स्टेरॉइड हार्मोन स्रावित होते हैं।

ii) तंत्रिस्रावी कोशिकाओं से प्रायः पेप्टाइड अथवा प्रोटीन हार्मोन स्रावित होते हैं।

iii) अग्रवक्ष ग्रंथियों से स्टेरॉइड हार्मोनों का स्रवण होता है।

iv) बाल्य हार्मोन एक सीधी श्रृंखला का लिपिड होता है।

v) ऐंड्रोजनी ग्रंथियों से एक लिपिड हार्मोन का स्रवण होता है।

12.4 वृद्धि और जनन में हार्मोन

उच्चतर अकशेरूकियों में वृद्धि और जनन का नियमन अंतःस्रावी स्रावों द्वारा होता है। ये नियमन क्रियाविधियां ऐनेलिडों, आर्थ्रोपोडों (विशेषकर क्रस्टेशियनों तथा कीटों में) तथा मौलस्कों में भली भांति प्रदर्शित की जा चुकी हैं। हम कुछ ख़ास चुने गए अकॉर्डेट समूहों में वृद्धि तथा जनन के हार्मोनी नियमन का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

12.4.1 ऐनेलिडा

पौलीकीटों में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि वृद्धि तथा जनन में अंतःस्रावी ग्रंथि की एक मुख्य भूमिका होती है। मस्तिष्क तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के अतिरिक्त, ऐनेलिडों में एक अधःप्रमस्तिष्क ग्रंथि भी होती है (चित्र 12.10)। यह मस्तिष्क के साथ निकट साहचर्य बनाए हुए उसके तुरंत नीचे अथवा पीछे स्थित होती है। अधःप्रमस्तिष्क ग्रंथि में स्वयं अपनी ही स्रावी कोशिकाएं होती हैं। इसके अलावा मस्तिष्क की तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के रेशीय अंत्यसिरे मस्तिष्क में अधःप्रमस्तिष्क ग्रंथि के निकट होते अथवा ग्रंथि के भीतर तक पहुंचे हो सकते हैं। *नीरीस* तथा *नेफ़्थिस* इसके उदाहरण हैं।

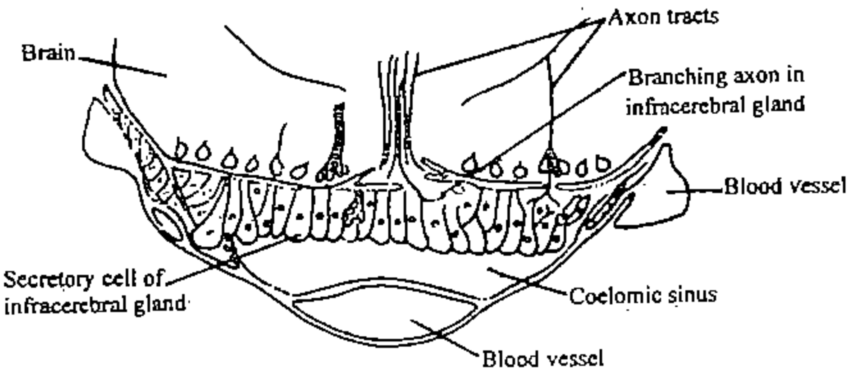

चित्र 12.10 : एक पौलीकीट ऐनेलिड की अधःप्रमस्तिष्क ग्रंथियां।

बाल्यावस्था में पैलीकीटों में तीव्र वृद्धि हो सकती है, जिसमें नए खंड तीव्रता से बनते जाते हैं। इनमें व्यापक पुनरुद्भवन क्षमता भी पायी जाती है। मगर आयु बढ़ने के साथ-साथ वृद्धि दर तथा पुनरुद्भवन क्षमता दोनों ही घटती जाती हैं। पैलीकीटों में एक रोचक परिघटना एपिटोकी (epitoky) पायी जाती है। यह कुछ नीरिड प्राणियों में लैंगिक परिपक्वन के दौरान पायी जाती हैं इनमें लैंगिक परिपक्वन के दौरान शरीर के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में परिवर्तन आते हैं। इन परिवर्तनों में शामिल हैं एक तो परापादों का बड़े आकार का हो जाना और दूसरे रूपांतरित शूकों का बन जाना। प्राणी एक "विषमनीरिड (heteronereid)" प्रावस्था में पहुंच जाता है (चित्र 12.11) जो तेज़ तैर सकने एवं यौन वृंदन के लिए अनुकूलित होती है।

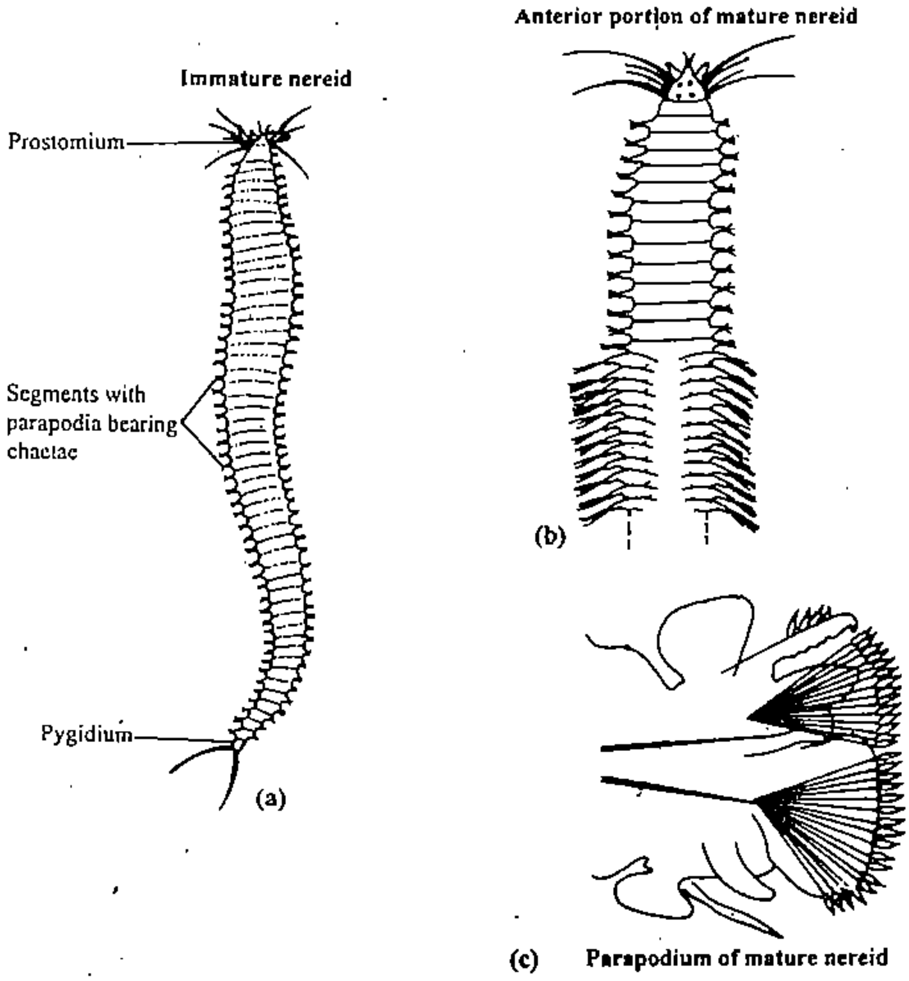

चित्र 12.11: अपरिपक्व नीरिड प्राणी में विषमनीरिड कृमि में रूपांतरित होने के दौरान होने वाले परिवर्तन।

पौलीकीटों में वृद्धि, पुनरुद्भवन और लैंगिक परिपक्वन भी जिसके साथ एपिटोकी होती है, ये सब परिवर्तन मस्तिष्क-अधःप्रमस्तिष्क ग्रंथि सम्मिश्र के एक हार्मोन से नियंत्रित होते हैं। यह हार्मोन वृद्धि तथा पुनरुद्भवन के लिए उपलब्ध होना चाहिए और प्राणी के जीवन की आरम्भिक अवस्था में जिसमें वृद्धि होती हैं, में इसका स्रवण होता है। मगर लगता है कि यही हार्मोन लैंगिक परिपक्वन तथा एपिटोकी का संदमन भी करता है। अतः इस अवस्था पर लैंगिक परिपक्वन नहीं होता। वृद्धि काल के समाप्त होने पर इस हार्मोन का स्रवण गिर जाता है तथा प्राणियों में लैंगिक परिपक्वता आ जाती है।

इन कृमियों में चांद की रोशनी से सबका एक साथ वृंदन होता है चांदनी रातों में ये परिपक्व कृमि समुद्र में भारी संख्या में वृंदन करते यानी बड़ा सा जमघट बनाते देखे जाते हैं, और उस दौरान वे अपने जनन-उत्पादों (शुक्राणुओं तथा अंडाणुओं) को लगभग साथ-साथ ही बाहर को छोड़ते हैं। इससे सफल निषेचन सम्पन्न होता है।

12.4.2 मौलस्का

अलवणजलीय घोंघे लिम्नीया स्टैगनैलिस में वृद्धि तथा जनन की अंतःस्रावी क्रियाविधि के विषय में आप भली भांति जान चुके हैं। यह एक गैस्ट्रोपोड है तथा किसी भी अन्य गैस्ट्रोपोड की तरह *लिम्नीया* भी पुंपूर्वी (नरपूर्वी) उभयलिंगी (protandric hermaphrodite) होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि इस वर्ग के प्राणियों में नर गोनड पहले परिपक्व होते हैं और उसके मादा गोनड का परिपक्वन होता है। पृष्ठ पिंडों से बनने वाले हार्मोन जनन अंगों की नर और मादा दोनों प्रावस्थाओं के परिवर्धन को आगे बढ़ाते हैं। मादा प्रावस्था में ये ग्रंथियां बहुत सुव्यक्त प्रभाव पैदा करती हैं। इनके द्वारा अण्डों का परिपक्वन, पीतक का जमाव, अण्डोत्सर्ग (ovulation) तथा अण्डनिक्षेपण (oviposition) उत्तेजित होते हैं। इनके द्वारा मादा सहायक लैंगिक अंगों की वृद्धि एवं विभेदन का भी उत्तेजन होता है। इस प्राणी में प्रमस्तिष्क गैंग्लियानों की तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के कुछ समूहों से एक हार्मोन (वृद्धि हार्मोन) निकलता है जिससे मादा सहायक लैंगिक

अंगों की वृद्धि और विभेदन उत्तेजित होते हैं। इस प्राणी में इसी प्रकार के कुछ अन्य कोशिका समूहों से वृद्धि हार्मोन निकलता है जो शरीर की वृद्धि को उत्तेजित करता है। इसके विपरीत मस्तिष्क से संलग्न पार्श्व पालियों से एक वृद्धि-संदमनी हार्मोन निकलता है। यह हार्मोन न केवल शरीर की वृद्धि को रोकता है वरन अंडों के उत्पादन को बढ़ाता भी है। सेफैलोपोड मौलस्क *ऑक्टोपस* की दृक् ग्रंथियां नर तथा मादा में जनन का नियंत्रण करती हैं लैंगिक परिपक्वता के आरम्भ होने पर इन ग्रंथियों से एक गोनडप्रभावी हार्मोन निकलता है। इससे जनन वाहनियों तथा जनन कोशिकाओं का परिवर्धन उत्तेजित होता है।

12.4.3 आर्थ्रोपोडा

आर्थ्रोपोडों में एक मज़बूत और कड़ा बाह्यकंकाल होता है जो काइटिन तथा प्रोटीन की बनी क्यूटिकल के रूप में होता है। इस क्यूटिकल के कारण प्राणी की वृद्धि पर एक प्रतिबंध लग जाता है। जब तक क्यूटिकल उतार फेंक नहीं दी जाती तब तक वृद्धि कतई संभव नहीं होती। समय-समय पर क्यूटिकल के उतार फेंकने को निर्मोचन (moulting) कहते हैं। तो इस प्रकार आर्थ्रोपोडों में वृद्धि के साथ निर्मोचन का निकट का संबंध होता है।

क्रस्टेशियनों में

क्रस्टेशियनों में दो हार्मोन निर्मोचन प्रक्रिया का नियंत्रण करते हैं। "वाई" अंग (Y-organ) निर्मोचन हार्मोन एक्डाइसोन का स्रवण करता है जो एक स्टेराइड होता है। एक्डाइसोन के प्रभाव में प्राणी निर्मोचन करता है। अत: यह एक निर्मोचन-प्रेरक हार्मोन है जिसका निर्मोचन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मगर क्रस्टेशियनों में निर्मोचन का होना एक अन्य हार्मोन के संदमनी नियंत्रण के भी आधीन होता है, यह हार्मोन "एक्स" अंग में बनता तथा कोटर ग्रंथि पर विमोचित होता है। निर्मोचन पर इस हार्मोन का नकारात्मक प्रभाव होता है। यदि रक्त में संदमनकारी हार्मोन का सांद्रण अधिक हो तो प्राणी निर्मोचन करता है। इन दोनों हार्मोनों के बीच का संतुलन ही वह चीज़ है जो क्रस्टेशियनों में निर्मोचन का निर्धारण करती है। मगर यह निश्चित नहीं है कि क्या संदमनकारी हार्मोन "वाई" अंग पर क्रिया करके निर्मोचन हार्मोन एक्डाइसोन के निर्मोचन को कम करता है, या कि वह सीधे ही उन एपिडर्मिसी कोशिकाओं के स्तर पर क्रिया करता है जिन पर एक्डाइसोन भी क्रिया करता है। जैसा भी हो, नतीजा एक ही होता है। आप देखेंगे कि अनेक प्राणियों में दो या दो से अधिक परस्परविरोधी प्रभावों वाले हार्मोन बहुत बार एक ही कार्य का नियंत्रण करते हैं; मगर नतीजा क्या होगा यह दोनों के शेषांतर पर निर्भर करता है।

क्रस्टेशियनों में जनन भी हार्मोनी नियंत्रण में होता है। "एक्स" अंग-कोटर ग्रंथि सम्मिश्र यहां भी काम करता है। क्रस्टेशियनों में "एक्स" अंग कोटर ग्रंथि तंत्र को बाहर निकाल देना आसान है, यह भाग दृक् वृंत को निकाल देने, जिसे दृक् वृंत अपक्षरण (eyestalic ablation) कहते हैं, का परिणाम अंत:स्रावी संरचनाओं का निकल जाना है। वयस्क मादा क्रस्टेशियन के दृक् वृंत को निकाल देने से अंडकाणुओं (oocytes) में पीतक का जमाव तेज़ी से होने लगता है, और इसलिए अंडाशयों का साइज़ और चौड़ाई दोनो बढ़ जाएंगे। कभी-कभार इससे अंडे दिया जाना भी समयपूर्व शुरू हो जाता है। यदि ऐसे किसी दृक् वृंत अपक्षरित प्राणी में वयस्क मादाओं के दृक् वृंतों का निकर्षण इंजेक्ट कर दिया जाए तो यह दिशा-प्रवृत्ति उलट जाती है। इस प्रकार के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि सामान्य प्राणियों में दृक् वृंत अर्थात "एक्स" अंग-कोटर ग्रंथि सम्मिश्र से निकलने वाले तंत्रिस्रावी हार्मोन द्वारा अंडाशय की वृद्धि का संदमन होता है। जब यह हार्मोन मौजूद नहीं होता तब अंडाशय बढ़ने लग जाते हैं और अंडकाणुओं में पीतक का जमाव होने लग जाता है। यद्यपि अंडाशयी तथा वृषण क्रिया का नियंत्रण करने वाले अनेक हार्मोनों की संभावना बताई गयी है, लेकिन उनके अस्तित्व का कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिला है। इस दिशा में कुछ क्रस्टेशियनों का ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि हार्मोन एक अपवाद है। ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि सामान्यत: केवल नर क्रस्टेशियनों में ही पायी जाती है और वृषणों द्वारा शुक्राणुओं के बनने के लिए इनका होना आवश्यक है। ये ग्रंथियां नर में शुक्राणुजनन को उत्तेजित करती हैं। हालांकि यह ग्रंथि मादा प्राणी में नहीं होती मगर आप ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि को मादा में अंतरोपित कर सकते हैं और इसके प्रभावों को देख सकते हैं। मादा प्राणी में ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि को अंतरोपित करने पर अण्डाशयों को वृषणों में परिवर्तित किया जा सकता है। अंतत: अण्डाशय में शुक्राणु बनने लग जाते हैं। ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि का हार्मोन नर द्वितीयक लैंगिक लक्षणों के विभेदन के लिए भी आवश्यक है। आप केकड़ों में उस वृषण-मादाकरण की परिघटना के विषय में तो पढ़

ही चुके हैं जो सैकुलाइना (Sacculina) द्वारा परजीवीकरण होती पायी जाती है। परजीवी ऐंड्रोजेनिक-ग्रंथि का अपकर्ष कर देता है। नरता को कायम बनाए रखने के लिए उत्तरदायी ऐंड्रोजेनिक-ग्रंथि हार्मोन की अनुपस्थिति में सेक्स उलट जाती हैं।

कीटों में

कीटों में हार्मोन निर्मोचन तथा कायांतरण का नियमन करते हैं। अण्डों से निकले लार्वों तथा निम्फों में नियमित निर्मोचन होते रहते हैं, और हर निर्मोचन के बाद वृद्धि होती है जैसे कि क्रस्टेशियनों में, और फिर अंततः वे वयस्क बन जाते हैं। लार्वा से वयस्क बनने में होने वाले परिवर्तन को कायांतरण कहते हैं। काकरोच तथा टिड्डे जैसे कीटों (अल्पकायांतरिक, hemimetabolous) में यह परिवर्तन क्रमिक और धीरे-धीरे होता है। मगर शलभों, तितलियों, मक्खियों आदि कुछ अन्य कीटों (पूर्णकायांतरिक, holometabolic) में जीवन-इतिहास के उत्तर काल के दौरान परिवर्तन अधिक सुवयक्त होता है और प्यूपा से प्रकट होने वाला वयस्क एकदम भिन्न होता है। क्रस्टेशियनों की ही तरह कीटों में भी निर्मोचन कराने वाला हार्मोन वही एक्डाइसोन होता है मगर कीटों में यह हार्मोन अग्रवक्ष ग्रंथियों से स्रावित होता है।

कीटों में कायांतरण किस प्रकार कराया जाता है? कीटों में प्राणी को कायांतरित होने से रोकने वाला हार्मोन बाल्य हार्मोन (juvenile hormone) है जिसका स्रवण कॉर्पस ऐलैटम से होता है। वास्तव में जैसा कि नाम से ही प्रकट होता है बाल्य हार्मोन कीट को बाल्यावस्था में ही बनाए रखता है। अतः वास्तव में यह कायांतरण को रोकता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि अपरिपक्व कीटों की अग्रवक्ष ग्रंथियों से एक्डाइसोन का स्रवण होता है। इस हार्मोन से कीट में निर्मोचन होता है। जब तक लार्वा बाल्य हर्मोन के उच्च अनुमापों की उपस्थिति में निर्मोचन करता है, तब तक वह अन्य लार्वा में ही निर्मोचित होता है (चित्र 12.12)। यदि निर्मोचन उस समय होता है जब रक्त में बाल्य हार्मोन (JH) का अनुमाप कम होता तब उससे प्यूपा बनता है। अंततः जब रक्त-परिसंचरण में बाल्य हार्मोन नही होता तब प्यूपा विमोचन होकर वयस्क बनता है। इस प्रकार रक्त में बाल्य हार्मोन का सांद्रण ही निर्धारित करता है कि बनने वाले प्राणी का प्ररूप क्या होगा। यह भी ज्ञात है कि बाल्य हार्मोन से उन जीवों का भी संदमन होता है जो वयस्क विभेदन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

चेकोस्लोवेकिया मूल के एक कीट अंतःस्राविकीविद कारेल स्लामा (Karel slama) जब संयुक्त राज्य अमेरिका में कैरोल विलियम्स की प्रयोगशाला में काम कर रहे थे, उनहोने देखा कि वे जिन मत्कुणों का अपने देश से वहां लाए थे उनमें सामान्य कायांतरण नहीं हो रहा था। उनमें से अनेक मत्कुण वयस्कता प्राप्त नहीं कर पाए और निम्फ अवस्था में ही मर गए। चूंकि इस प्रयोगशाला में हार्मोनों पर काम किया जा रहा था इसलिए उसे शक हुआ कि हो सकता है कि किसी बाल्य हार्मोन (जो कायांतरण को रोकता है) से कोई संदूषण हुआ हो। उसके बाद पूरी सावधानी बरती गयी कि कहीं कोई संदूषण न हो पाए। कांच के ढक्कन तक से लेकर हर चीज़ साफ़ रखी गयी लेकिन समस्या जस की तस बनी रही और कीटों में कायांतरण पूरा नहीं हुआ। स्लामा ने उसके बाद प्रयोगशाला की हर एक-एक सामग्री को परखा, यह पता लगाने के लिए कि मत्कुणों में कायांतरण में अवरोध पैदा करने वाला कारण आखिर है क्या। अंततः यह जानकर उसे बेहद आश्चर्य हुआ कि इस समस्या का असली कारण वे फ़िल्टर पेपर थे जिन्हें वह उन पेट्रिडिशों में बिछाया करता था जिनमें इन मत्कुणों को पाला जाता था। फिल्टर-पेपर के विश्लेषण से पता चला उसमें बाल्य-हार्मोन के जैसे पदार्थ (JH analogues, बाल्य हार्मोन समवृत्तीय) मौजूद थे। स्लामा तथा विलियम्स ने इस पदार्थ को "पेपर फैक्टर" यानी पेपर कारक का नाम दिया। मगर प्रश्न यह था कि फ़िल्टर पेपर में यह बाल्य हार्मोन क्रिया आयी कैसे? पता चला कि यह बाल्य हार्मोन क्रिया उन वृक्षों से आयी जिनके पल्प से ये पेपर बनाए गए थे। बाद में इस बाल्य हार्मोन की क्रिया के लिए अनेक वृक्षों को परखा गया और पता चला कि उनमें से अनेक में यह पदार्थ मौजूद था। यह पौधों के विकास का एक ऐसा उदाहरण है जिसमें उन्होंने कीटों के संभव आक्रमण से बचने के लिए एक ख़ास सुरक्षा क्रियाविधि विकसित कर ली थी। बाल्य हार्मोन समवृत्तियों के कारण इन वृक्षों का आहार करने वाले कीटों का वयस्कों में निर्मोचित होना रुक जाता था तथा कीट अपनी बाल्यावस्थाओं में ही मर जाते थे और इस प्रकार वृक्ष आगे होने वाले कीट-आक्रमणों से बच जाते थे।

इसके अलावा पौधों में विकसित हुई एक और बड़ी ही रोचक सुरक्षा क्रियाविधि है जिसका संबंध उनमें पाए जाने वाले प्रतिबाल्य (anti-juvenile) हार्मोन पदार्थों से हैं। प्रतिबाल्य हार्मोन (anti-JH) पदार्थों में बाल्यहार्मोन के स्रवण को निरोधित करने का गुणधर्म पाया जाता है। यदि कोई कीट निम्फ़ अथवा लार्वा एक ऐसे पौधे का आहार करता हो जिसके भीतर प्रति-JH पदार्थ मौजूद हैं तो यह पदार्थ कीट के कॉर्पस ऐलैटम का संदमन करता है जिससे रक्त में बाल्य हार्मोन का अनुमाप नीचे आ जाता है। इन परिस्थितियों में कीट में सामान्य कायांतरण होने की बजाए एक अपसामान्य अथवा कालपूर्व कायांतरण होता है। इस प्रकार के कायांतरण से बनने वाले कीट अपसामान्यत: विकसित हुए होते हैं और इन्हें वयस्काभ (adultoid) कहते हैं जो बिना जनन किए ही मर जाते हैं। कीटों में कालपूर्वी कायांतरण कराने वाले इन पादप पदार्थों को प्रीकोसीन (precocene) का नाम दिया गया है।

आइए अब हम कीटों में जनन के हार्मोनी नियंत्रण का अवलोकन करें जब हम कीटों में कायांतरण की क्रियाविधि का अध्ययन कर रहे थे तब हमने देखा था कि वयस्क विभेदन तब होता है जब रक्त में बाल्य हार्मोन नहीं होता। अनिवार्यत: प्यूपा-वयस्क निर्मोचन के समय कॉर्पस ऐलैटम निष्क्रिय होता है। एक बार वयस्क के प्रकट हो चुकने पर कार्पस ऐलैटम पुन: सक्रिय हो जाता और बाल्य हार्मोन बनाने लग जाता है। मादा कीटों में बाल्य हार्मोन को गोनडप्रभावी हार्मोन की तरह काम करते पाया गया है। बाल्य हार्मोन के प्रभाव में कुछ कीटों के वसा पिंडों में पीतक-प्रोटीन के पूर्वगामियों यानी विटेलोजेनिनों (vitellogenins) का संश्लेषण होता है जो आगे चलकर रक्तलसीका (हीमोलिम्फ़) में छोड़ दिया जाता है। साथ ही यह भी देखा गया है कि बाल्य हार्मोन परिवर्धनशील अंडकाणुओं द्वारा रक्तलसीका में से विटेलोजेनिनों के प्राप्त किए जाने का बढ़ावा देता है। अंडकाणुओं के भीतर विटेलोजेनितों का विटेलिन नामक पीतक प्रोटिनों में रूपांतरण हो जाता है। अंडकाणु परिवर्धन तथा विटेलोजेनिन के संश्लेषण एवं उसके ग्रहण किए जाने का नियमन करने के अतिरिक्त बाल्य हार्मोन को अंडनिक्षेपण (oviposition) प्रेरित करते हुए भी पाया गया है। टिड्डियों तथा टिड्डों में देखा गया है कि बाल्य हार्मोन के अलावा, मस्तिष्क के अंडकाणु के परिवर्धन एवं अंडनिक्षेपण का नियमन करते हैं।

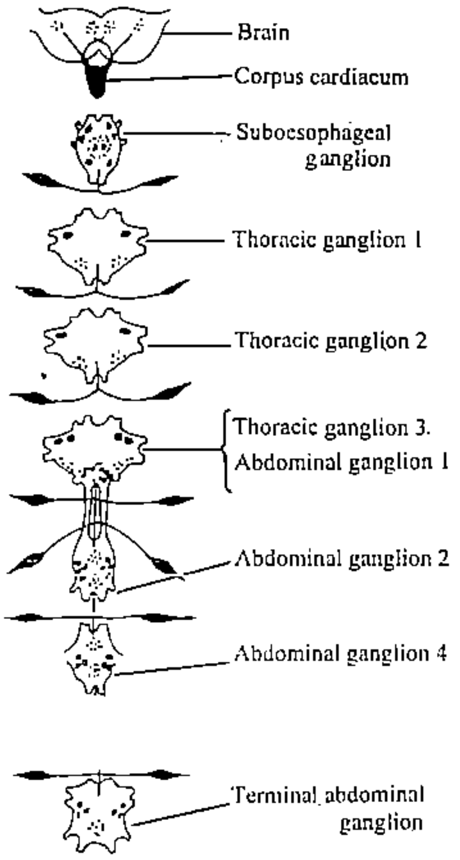

चित्र 12.12 : कीटों के निर्मोचन तथा कायांतरण की हार्मोनी क्रियाविधि।

मच्छरों में जैसे कि *ईडीस (Aedes)* में, एक्डाइसोन को गोनडप्रभावी हार्मोन होता पाया गया है। इसमें अंडाशय को एक्डाइसोन का स्रोत होते दर्शाया गया है, और यही एक्डाइसोन विटेलोजेनिन संश्लेषण को भी प्रोत्साहित करता है। हाइमेनॉप्टेरनों में जैसे कि मधुमक्खी में, बाल्य हार्मोन तथा एक्डाइसोन की परस्परक्रिया से विटेलोजेनिन संश्लेषण प्रोत्साहित होता है। जब कि बाल्य हार्मोन वसा पिंड को विटेलोजेनिन-संश्लेषण के लिए तैयार तो कर देता है मगर उसका संश्लेषण वास्तव में एक्डाइसोन पर निर्भर करता है। इस प्रकार कीटों में पीतक-प्रोटीन संश्लेषण के हार्मोनी नियमन की विविध क्रियाविधियां होती पायी जाती हैं और उनमें सब पर लागू सामान्यीकृत क्रियाविधि नहीं होती।

शुक्राणुजनन (spermatogenesis) यानी आरंभिक शुक्राणुजन कोशिकाओं से परिपक्व शुक्राणुओं का बनना हार्मोनी नियंत्रण के अंतर्गत होना नहीं पाया गया है। मगर अनेक कीटों में देखा गया है कि बाल्य हार्मोन पर सहायक ग्रंथि पदार्थों के संश्लेषण का नियमन करते हैं। ये पदार्थ जो कि मुख्यत: प्रोटीन होते हैं, मैथुन के समय शुक्र तरल के एक अंश के रूप में मादा के शरीर में पहुंचा दिए जाते हैं। ये अनेक कार्य करते हुए पाए गए हैं जैसे कि शुक्राणुधरों (spermatophores) के बनने, मैथुनित मादा में नर-स्वीकृति का संदमन, उनकी जनन क्षमता को बढ़ाना और अंडनिक्षेपण को उत्तेजित करना कुछ टिड्डों में इन्हें मादाओं में पीतक-निर्माण में योगदान देते हुए पाया गया है।

12.5 अन्य कार्यों के नियंत्रणकारी हार्मोन

क्रस्टेशियनों में कार्यकीय रंग-परिवर्तनों की काफ़ी अधिक क्षमता पायी जाती है। ऐसी जानकारी है कि क्रस्टेशिया में रंग-परिवर्तन क्रियाविधि का नियमन हार्मोनों के द्वारा होता है। प्राणियों में नानाविध प्रकार के वर्णकधर (क्रोमैटोफ़ोर) पाए जाते हैं जिनके भीतर विविध वर्णक होते हैं; मीलैनिनधरों (melanophores) में प्राय: काले वर्णक होते हैं। अनेक क्रस्टेशियन खूब चटकीले रंगों वाले होते हैं तथा उनमें अपने शरीर का रंग बदलने की क्षमता होती है। शरीर का रंग कुछ रंगदार वर्णकों के कारण होता है जो कुछ खास कोशिकाओं के भीतर होते हैं। संबद्ध कोशिकाओं को वर्णकधर कहते हैं। रंग परिवर्तन दो प्रकार से हो सकता है-

नए वर्णकों के बनने या विद्यमान वर्णकों के नष्ट होने से, यानी शरीर में वर्णकों के मात्रात्मक परिवर्तन के कारण। इस प्रकार का रंग-परिवर्तन जिसे आकारिकीय रंग-परिवर्तन कहते हैं बहुत धीमा होता है तथा उसके होने में काफ़ी लम्बा समय लगता है। (2) प्राणी अपने रंग को बिना वर्णकों का संश्लेषण किए अथवा उनका नाश किए बदल सकते हैं अर्थात विद्यमान वर्णकों की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होते, इसमें वर्णकधरों के भीतर पहले से ही मौजूद वर्णक कणों की गति होती है। जब वर्णकधरों के भीतर वर्णक कणिकाएं किसी एक बिंदु पर संकेंद्रित हो जाती हैं तब कोशिकाएं पीली-पीली अथवा सफ़ेद सी प्रकट होती हैं और जब वर्णक कणिकाएं पूरी कोशिका में छितरायी होती है तब कोशिका चटकीली रंगीन नज़र आती है। इस प्रकार की रंग परिवर्तन विधि को कार्यिकीय रंग परिवर्तन कहते हैं और आकारिकीय रंग परिवर्तन की तुलना में यह अधिक तीव्र होती है।

रंग परिवर्तन प्राणी के लिए बहुत लाभप्रद होता है। अपने परिवेश के अनुसार रंग बदल कर वह अपने शत्रुओं से बच सकता है, जब रंग लैंगिक दृष्टि से द्विरूपी होते हैं तब ये रंग विपरीत सेक्स को आकर्षित करने का काम करते हैं; कभी-कभार रंग-परिवर्तन प्राणी को अपने पर्यावरण के तापमान के साथ समंजन करने में भी सहायता करता है।

इसी प्रकार, इन प्राणियों में लाल, नारंगी, पीले तथा सफ़ेद वर्णकधर भी पाए जाते हैं। ये वर्णकधर अनेक हार्मोनों द्वारा नियंत्रित होते हैं। इन हार्मोनों का स्रोत या तो "एक्स" अंग-कोटर ग्रंथि सम्मिश्र हो सकता है या मस्तिष्क अथवा वक्ष गैंग्लिया अथवा पश्च-संधायी अंगों की अलग-थलग हुई छितरायी तंत्रिस्रावी कोशिकाएं हो सकती हैं। इनमें से कुछ हार्मोन अलग किए जा सके हैं, शोधित किए जा सके हैं तथा उनकी संरचना स्पष्ट की जा सकी है एवं उनका संश्लेषण तक किया जा सका है। *पैंडालस बोरिऐलिस (Pandalus borealis)* के लाल वर्णक संकेंद्रणकारी हार्मोन का एक अष्टपेप्टाइड (octapeptide) पाया गया है, यानी एक ऐसा पेप्टाइड जिसमें आठ ऐमिनों अम्ल होते हैं। इस हार्मोन के प्रभाव में वर्णकधरों का लाल वर्णक

संकेंद्रित हो जाता है और कोशिका पीली पड़ जाती है। अत: इस प्रकार प्राणी, जो इससे पहले लाल दिखायी दे रहा था, अब पीला दिखायी पड़ता है।

प्रश्न उठता है कि इसका विपरीत प्रभाव किस प्रकार पैदा किया जा सकता है? लाल वर्णक जो कि अब संकेंद्रित दशा में है, सामान्यत: लाल वर्णक विकीर्णक हार्मोन के प्रभाव में छितरा जाएगा। वर्णकधर अब लाल रंग के हो जाएंगे तथा प्राणी लाल रंग का हो जाता है। कभी-कभी रक्त-धारा में से इस लाल वर्णक संकेंद्रणकारी हार्मोन के गायब हो जाने से भी वर्णकों का प्रकीर्णन हो जाता है। उस स्थिति में भी वर्णकधर लाल दिखायी देते हैं और प्राणी भी लाल दिखने लग जाता हैं

तो हमने इस तरह देखा कि अकॉर्डेटों में भी अंत:स्रावी ग्रंथियां होती हैं। ऐनेलिडों, मौलस्कों, क्रस्टेशियनों तथा कीटों में वृद्धि तथा जनन हार्मोनी नियंत्रण के अधीन होते हैं। कीटों में ये कायांतरण का भी नियंत्रण करते हैं। क्रस्टेशियनों में हार्मोन रंग-परिवर्तन लाते हैं। इन कार्यों के अलावा इन प्राणियों में और भी अनेक कार्य हैं जो हार्मोनी नियंत्रण में होते हैं। इस दृष्टि से क्रस्टेशियनों और उससे भी ज्यादा कीटों में व्यापक अध्ययन किए गए हैं। कीटों में कार्बोहाइड्रेटों तथा वसाओं का उपापचय हार्मोनों से नियमित होता है। कीटों का वसागतिक हार्मोन (adipokinetic hormone) उनमें वसा उपापचय का नियामन करता पाया गया है। इसी प्रकार मस्तिष्क तथा अतिग्लूकोज़रक्तता (hyperglycemia) तथा अल्पग्लूकोज़रक्त (hypoglycemia) कारक भी कार्बोहाइड्रेट उपापचय का नियमन करते पाए गए हैं। एक्डाइसोन का स्रवण करने वाली स्वयं अग्रवक्ष ग्रंथियां भी मस्तिष्क तंत्रिस्रावी कोशिकाओं से निकले एक हार्मोन के नियंत्रण में होता है। अकॉर्डेटों में विविध कार्यों का नियंत्रण करने वाले और भी कई हार्मोन पहले से ही ज्ञात है। ऐसी संभावना कि अकॉर्डेटों में अभी भी बहुत से अनपहचाने हार्मोन हैं, इस दिशा में बहुत से प्रमाण उपलब्ध हो चुके हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अकॉर्डेटों में ऐसी बहुत सी कार्यिकीय क्रियाएं हैं जिनके समाकलन में हार्मोनों की एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है।

बोध प्रश्न 4

कॉलम **A** के नीचे दिए गए अंत:स्रावी अंगों को कालम **B** में दिए गए उनके सीधे सकारात्मक कार्यों से मिलाइए :

	A		B
1)	अग्रवक्ष ग्रंथियां	a)	निर्मोचन
2)	"वाई" अंग	b)	गोनडों का बनना
3)	दृ्ल ग्रंथि	c)	रंग-परिवर्तन
4)	ऐंड्रोजेनिक ग्रंथि	d)	पुनरुद्भवन
5)	पश्च-संधायी अंग	e)	अग्रवक्ष ग्रंथि उत्तेजन
6)	पार्स इंटरसेरीब्रेलिस NSC कोशिकाएं	f)	नर लैंगिक लक्षण
7)	मस्तिष्क-अध:मस्तिष्क सम्मिश्र		

12.6 सारांश

- इस इकाई में आपने अकॉर्डेटों की विविध अंत:स्रावी ग्रंथियों, उनसे निकलने वाले हार्मोनों तथा इन हार्मोनों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के विषय में पढ़ा। ये ग्रंथियां या तो तंत्रिस्रावी, या तंत्रिकीय या एपिथीलियमी प्रकृति की होती हैं।

- तंत्रिस्रावी कोशिकाएं बहुकोशिकीय अकॉर्डेट अंत:स्रावी तंत्र की महत्वपूर्ण रचक होती हैं क्योंकि इनमें एपिथीलियमी अंत:स्रावी ग्रंथियां अपेक्षाकृत कम होती हैं। तंत्रिस्रावी कोशिका एक न्यूरोन ही होती हैं जो हार्मोन-उत्पादन के लिए विशेषित हो गयी होती है।

- कॉर्पस कॉर्डिऐकम तथा कोटर ग्रंथि क्रमश: कीटों तथा क्रस्टेशियनों की मुख्य तंत्रिरुधिर अंग होती हैं। कॉर्पस कार्डिऐकम एक तंत्रिकीय अंत:स्रावी ग्रंथि भी है। कार्पस ऐलैटम, अग्रवक्ष ग्रंथियां, "वाई" अंग, ऐंड्रोजेनिक ग्रंथियां तथा दृक् ग्रंथियां एपिथीलियमी अंत:स्रावी ग्रंथियों में से ही कुछ उदाहरण हैं। ऐनैलिडों, मौलस्कों, क्रस्टेशियनों तथा कीटों में अंत:स्रावी ग्रंथियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इनमें ये ग्रंथियां वृद्धि, जनन, रंग-परिवर्तन तथा उपापचय का समन्वय एवं उनका नियंत्रण करती हैं।

12.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) तंत्रिकीय तथा हार्मोनी समन्वय में दो अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के दो महत्वपूर्ण लक्षण बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) तंत्रिरुधिर अंग किसे कहते हैं? अकॉर्डेटों में दो तंत्रिरुधिर अंगों के नाम बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4) कीटों में निर्मोचन तथा कायांतरण किस प्रकार नियंत्रित होते हैं, समझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5) एक सारणी बनाइए जिसमें अकॉर्डेटों की जिन-जिन अंत:स्रावी ग्रंथियों का आपने अध्ययन किया है उनके नाम, उनसे निकलने वाले हार्मोनों के नाम तथा उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य लिखिए।

12.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1.	1-E;	2-E;	3N;	4N;	5-N;	6-E	
2.	1-F;	2-F;	3-T;	4-F			
3.	1-F;	2-T;	3-T;	4-T;	5-F		
4.	1-a;	2-a,	3-b,	4-f;	5-c;	6-e;	7-d

अंत में कुछ प्रश्न

1) तंत्रिकीय समन्वय (a) तीव्र तथा (b) क्षणिक होता है जब कि हार्मोनी समन्वय (a) धीमा तथा (b) दीर्घकालिक होता है।

2) तंत्रिस्रावी कोशिकाएं न्यूरॉन होते हैं जिनसे हार्मोन निकलते हैं।

3) तंत्रिरुधिर अंग ऐसे अंग होते हैं जिनमें तंत्रिस्रावी कोशिकाओं के उंगली-सदृश, अतिविशाखित, रेशीय अंत्यसिरे होतें हैं, और जो रक्त कोटरों के समीप स्थित होते हैं तंत्रिस्रावी पदार्थ को संचित करते एवं आवश्यकता पड़ने पर हार्मोनों को रक्त में छोड़ते हैं। (a) पार्स इंटरसेरीब्रेलिस NSC- कार्पस कार्डिऐकम तंत्र (b) "एक्स" अंग कोटर ग्रंथि तंत्र।

4) अग्रवक्ष ग्रंथियों से एक्डाइसोन का स्राव निकलता है। जब एक्डाइसोन का सांद्रण एक ख़ास स्तर तक पहुंच जाता है तब निर्मोचन होता है। कॉर्पस ऐलैटम से बाल्य हार्मोन का स्राव निकलता है। जब निर्मोचन बाल्य हार्मोन के उच्च सांद्रण की उपस्थिति में होता है तब एक और लार्वा-लार्वा रूपांतरण होता है, और जब यह निर्मोचन बाल्य हार्मोन के अपेक्षाकृत निम्न सांद्रण होने पर होता है तब लार्वा-प्यूपा रूपांतरण होता है। अंतत: जब कॉकर्पस ऐलैटम पूरी तरह निष्क्रिय हो जाता है और बाल्य हार्मोन का स्राव नहीं होता तब प्यूपा-वयस्क रूपांतरण होता है। इस प्रकार कायांतरण का नियंत्रण रक्त में बाल्य हार्मोन के अनुमापों द्वारा होता है।

इकाई 13 अकार्डेटों में जनन

इकाई की रूपरेखा

13.1 भूमिका
उद्देश्य
13.2 अलैंगिक जनन
द्विविभाजन
बहुविभाजन
खंडन
मुकुलन
प्रश्रृंखलन
विशेष जनन इकाइयों का बनना-जेम्यूल
13.3 पुनर्जनन से अलैंगिक जनन
खंडन तथा पुनर्जनन
स्वभंजन तथा पुनर्जनन
एपिटोकी
ध्रुवता एवं पुनर्जनन
13.4 अलैंगिक जनन - इसकी व्यापकता एवं इसका महत्व
13.5 लैंगिक जनन
युग्मक और लैंगिक जनन में इनका महत्व
दो लिंग और लैंगिक द्विरूपता
लैंगिक जनन के प्रतिरूप
जनन अंग
सहायक लिंग ग्रंथियां
मैथुन एवं निषेचन
अंडप्रजता, सजीवप्रजता तथा अंडसजीवप्रजता
13.6 उभयलिंगता
13.7 अनिषेकजनन
13.8 पीढ़ी-एकांतरण
13.9 जनन, जीवन-चक्र तथा लार्वा-स्वरूप
13.10 सारांश
13.11 अंत में कुछ प्रश्न
13.12 उत्तर

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने अकॉर्डेटों के देह-तंत्रों एवं जीवन-प्रक्रियाओं के विषय में पढ़ा था, जो जीव को जीवित बने रहने तथा सामान्य रूप में कार्य करा सकने के लिए अनिवार्य थे। उनमें आपने देखा था कि हालांकि प्रत्येक तंत्र कुल मिलाकर कार्य तो एक ही करता है मगर अकॉर्डेटों के विभिन्न फ़ाइलमों में और यहां तक कि एक ही फ़ाइलम के अलग-अलग उपवर्गों में भी इनमें भारी अंतर पाया जाता है। ये अंतर प्रकटतः दो मुख्य बातों से संबंधित थे- एक तो जीवों की संरचनात्मक घटना से और दूसरे उस पर्यावरण से जिसमें वे रहते हैं। यही बात जनन विधियों पर भी लागू होती है। चूंकि जनन का होना जीवन की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिघटना है और क्योंकि स्पीशीज़ का पीढ़ी दर पीढ़ी जारी रहना भी इसी पर निर्भर है इसलिए स्वाभाविक है कि अकॉडेटों की जनन विधियों में भी कुछ कम विविधता नहीं पायी जाती। ये जनन विधियां मामूली एक से दो में विभाजन से लेकर अति जटिल प्रकार के लैंगिक जननों एवं अनिषेकजनन तक भांति-भांति की पायी जाती हैं आप देखेंगे कि अलैंगिक जनन तथा लैंगिक जनन दोनों ने मिल कर बड़े जटिल जीवन-चक्र बना लिए हैं एवं अनेक प्रकार के लार्वा स्वरूप बन गए हैं जो अपने वयस्क स्वरूपों से बहुत भिन्न होते हैं। इस इकाई में आपको अकॉर्डेटों में पाए जाने वाले इसी प्रकार के विविध जनन प्ररूपों से परिचित कराया जाएगा।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप :

- अकॉर्डेटों में अलैंगिक जनन के विविध स्वरूपों को उदाहरण देकर बता सकेंगे,
- पुनर्जनन की परिभाषा दे सकेंगे तथा बता सकेंगे कि अलैंगिक जनन में यह किस प्रकार योगदान देता है,
- लैंगिक जनन का वर्णन कर सकेंगे एवं इसका महत्व बता सकेंगे,
- उभयलिंगता के उदाहरण दे सकेंगे और इस परिघटना का उभयलिंगियों की जीवन-दशाओं के साथ संबंध बता सकेंगे,
- कुछ अकॉर्डेट फ़ाइलमों में पीढ़ी-एकांतरण का महत्व समझा सकेंगे,
- सीधे और परोक्ष जीवन-चक्रों में विभेद कर सकेंगे, तथा
- अकशेरूकियों में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण लार्वों का वर्णन कर सकेंगे।

13.2 अलैंगिक जनन

हम कह सकते हैं कि जनन एक प्रकार से वास्तविक प्रतिलिपियों का बनाना है। अधिकतर परिचित प्राणी ऐसे हैं जिनमें नर और मादा युग्मक (शुक्राणु तथा अण्डे) बनते हैं। ये युग्मक या गैमीट परस्पर जुड़ कर एक ज़ाइगोट (zygote) (युग्मज) बनाते हैं जो आगे चलकर वयस्क बन जाता है और यह वयस्क अपने जनकों की प्रतिलिपि होता है। इस प्रकार के जनन को लैंगिक जनन **(sexual reproduction)** कहते हैं। ऐसे भी अनेक प्राणी हैं, विशेषकर अकॉर्डेटों में, जो अपने युग्मकों से नहीं वरन शरीर के अन्य भागों से जनन करते हैं इसमें किसी प्रकार के लिंग, लिंग-कोशिकाओं अथवा मीयोसिस विभाजन का हाथ नहीं होता। इसमें अविद्यमान यानी लुप्त भाग की वृद्धि एवं उसका पुनर्जनन शामिल हैं। इस प्रकार के जनन को अलैंगिक जनन **(asexual reproduction)** कहते हैं। यह जनन सीलेंटेरेटों, प्लेनेरियनों, पोलीकीटों तथा ऑलिगोकीटों में बहुत प्रचलित है। अलैंगिक जनन को कायिक जनन **(vegetative reproduction)** भी कहते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि इसमें किसी ऐसे देह-अंश अथवा किसी विशेष इकाई का निहित होना होता है जो युग्मक उत्पादक अंगों (अण्डाशयों तथा वृषणों) से संबंधित नहीं होते। वास्तव में अलैंगिक जनन ही सर्वाधिक आदिम प्रकार का जनन है- पृथ्वी पर विकसित होने वाले प्रथम जीव प्रोटिस्टन थे और वे मात्र दो भागों में टूट जाते थे - और यही थी सरलतम अलैंगिक जनन विधि। आज भी प्रोटिस्टनों में जनन की सबसे सामान्य पायी जाने वाली विधि यही है।

अलैंगिक जनन के मुख्य प्रकार

अलैंगिक जनन के मुख्य प्रकार इस तरह हैं:-

i) द्विविभाजन

ii) बहुविभाजन

iii) खंडन

iv) मुकुलन

v) प्रश्रृंखलन

vi) विशेष इकाइयों (पिंडों) का बनना

13.2.1 द्विविभाजन (Binary fission)

द्विविभाजन ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जीव माइटोसिस विधि से दो समान व्यष्टियों में विभाजित हो जाता है और ये दो व्यष्टियां सामान्यत: एक दूसरे से अभिन्न होती हैं। प्रोटोज़ोअनों में यह विधि बहुत व्यापक है। इसके सबसे अधिक परिचित उदाहरण हैं *अमीबा, यूग्लीना* तथा *पैरामीशियम*। ये तीनों ही अलवणजलीय

उदाहरण हैं। *अमीबा* (चित्र 13.1) अनियमित आकृति का जीव है। पूर्णत: बढ़ चुकने के बाद जब परिस्थितियां अनुकूल होती हैं तब यह घूमना-फिरना कम कर देता है और इसमें छोटे-छोटे बारीक, किरणों की तरह निकले हुए, पादाभ (pseudopodia) बन जाते हैं। संकुंचनशील धानी काम करना बंद कर देती है और यहां तक कि विलीन भी हो सकती है। केंद्रक लंबा हो जाता है। कोशिका के मध्य में सिकुड़न आने लग जाती है और अंतत: दो छोटे संतति अमीबा बन जाते हैं जिनमें से हर एक में एक-एक संतति केंद्रक आ गया होता है (चित्र 13.1)। तदुपरांत प्रत्येक में पादाभ सामान्य हो जाते तथा संकुंचनशील धानी पुन: बन जाती है। अमीबा में द्विविभाजन की यही पूरी प्रक्रिया साधारण गर्मी के तापमान पर लगभग 30 मिनट में पूरी हो जाती है। इस प्रकार अमीबा लगभग हर 24 घंटों में नियमित रूप में विभाजित होता रह सकता है।

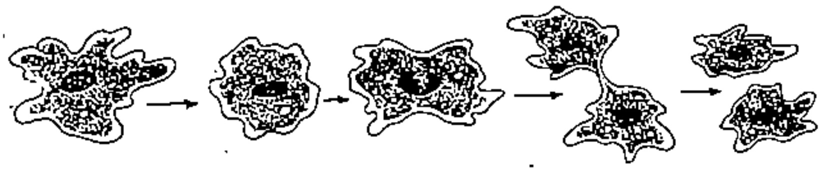

चित्र **13.1** : अलवणजलीय अमीबा में द्विविभाजन।

यूग्लीना (Euglena) एक अलवणजलीय कशाभी प्रोटोज़ोअन है। इसमें लम्बाई में विभाजन होता है (अनुदैर्घ्य द्विविभाजन, longitudinal binary fission)। इसमें पाया जाने वाला विभाजन सममितजनी **(symmetrogenic)** होता है यानी इससे बनने वाली संतति कोशिकाएं एक दूसरे की दर्पण प्रतिबिम्ब होती हैं (चित्र 13.2) पहले सेंट्रियोल दो-दो में विभाजित होते हैं और प्रत्येक सेंट्रियोल से एक नया आधारीय पिंड (basal body) पैदा होता है एवं एक कशाभ बनता है। सुंकुंचनशील धानी भी दो में विभाजित होती है। जब माइटोसिस (केंद्रकीय विभाजन) पूरा होने को आ जाता है तब कोशिकाग्रसनी (साइटोफ़ैरिक्स) अथवा ग्रसिका भी विभाजित होने लगती है। अंतत: जब सभी अंगक द्विविभाजित हो चुके होते हैं तब अग्रसिरा भी एक द्विशाखा के रूप में विभाजित होता है और यह विभाजन पीछे की दिशा में गहरा होता जाता है तथा अंतत: दो संतति *यूग्लीना* बन जाते हैं।

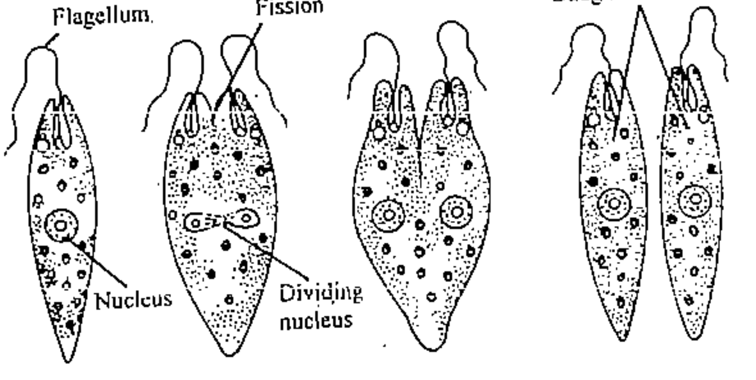

चित्र **13.2** : *यूग्लीना* में द्विविभाजन।

पैरामीशियम (चित्र 13.3) में अनुप्रस्थ रूप में एक अग्र आधा भाग और एक पश्च आधा भाग बनते हुए विभाजन होता है। इस प्रकार के विभाजन को समयीटाजनी (**homothetogenic**) कहते हैं जिसका अर्थ है ग्रीक अक्षर थीटा "θ" की तरह दीखने वाला। गुरुकेंद्रक में अमाइटोसिस विधि से विभाजन होता है तथा सूक्ष्मकेंद्रक माइटोसिस विधि से विभाजित होता है। पश्च अर्धांश में एक नई कोशिकाग्रसनी बन जाती है। दो नयी संकुंचनशील धानियां बन जाती हैं जिनमें से एक-एक प्रत्येक अर्धांश में पहुंच जाती है। इसी बीच मध्य रेखा पर एक संकीर्णन बनता है जो गहरा होता जाता है और इससे अंततः दो स्वतंत्र संतति *पैरामीशियम* बन जाते हैं। *पैरामीशियम* में द्विविभाजन की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में लगभग दो घंटे लगते हैं। एक आकलन के अनुसार इस विधि से इस प्राणी की एक वर्ष में 600 पीढ़िया बन सकती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि इन तीनों प्राणियों *अमीबा, यूग्लीना* अथवा *पैरामीसियम* में केवल एक ही मूल जनक से द्विविभाजन से बनने वाली तमाम संततियों की आनुवंशिक संघटना एक ही होगी। वे सब हर पहलू से अभिन्न होंगे। इस प्रकार की समष्टि के लिए क्लोन शब्द का इस्तेमाल किया जाता है।

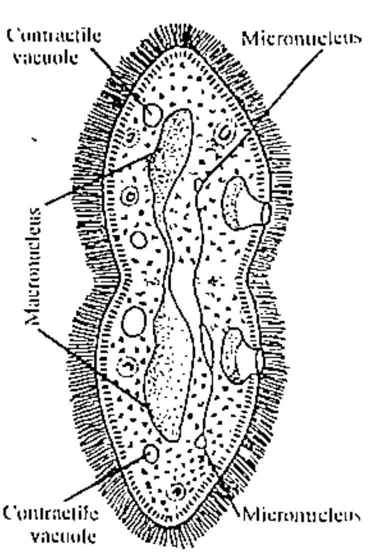

चित्र 13.3 : *पैरामीशियम* में अनुप्रस्थ द्विविभाजन।

प्लाज़्मोटोमी (plasmotomy) द्विविभाजन का ही एक परिवर्तित रूप है जो मेंढक के आमाशय में सहभोजी रूप में पाए जाने वाले सिलिएट *ओपैलाइना (Opalina)* (चित्र 13.4) में पाया जाता है। इस प्रकार के अलैंगिक जनन में यह बहुकेंद्रकी प्रोटोज़ोअन दो या अधिक भागों में विभाजित होता है जिसमें केंद्रकों में विभाजन नहीं होता वे सिर्फ़ नए प्राणियों में वितरित हो जाते हैं। नए संतति *ओपैलाइना* अब भी बहुकेंद्रकित होते हैं और जैसे-जैसे प्राणी बढ़ता जाता है वैसे-वैसे केंद्रक भी नए बनते जाते हैं।

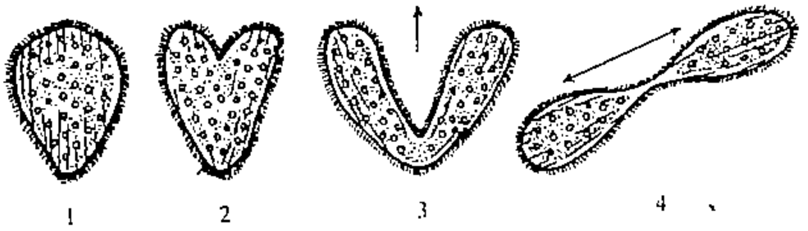

चित्र 13.4 : बहुकेंद्रकित *ओपैलाइना* जिसमें प्लाज़्मोटोमी के द्वारा अलैंगिक जनन होता है। ओपैलाइन-प्राणी सामान्यतः अनुदैर्घ्यतः विभाजित होते हैं, और यह विभाजन सिलिया की पंक्तियों के बीच होता है।

13.2.2 बहुविभाजन (Multiple Fission)

बहुविभाज... द्विविभाजन का ही दूसरा रूप है जिसमें जनक प्राणी माइटोसिस विधि से अनेक छोटी इकाइयों में विभाजित हो जाता है तथा ये इकाइयां साथ-साथ उसके संतति प्राणी ही तो हैं। इस मामले में केंद्रक बार-बार बहुत तेज़ी से विभाजित होता है। बाद में प्रत्येक संतति केंद्रक को घेरते रहने वाला साइटोप्लाज़्म भी विभाजित होता और इस प्रकार छोटी-छोटी एककेंद्रकित इकाइयां बन जाती हैं। ये इकाइयां स्वतंत्र बन जाती है। इन जनन-विधि को **शाइज़ोगोनी या विखंडनीजनन (schizogony)** कहते हैं और यह प्रतिरूपतः स्पोरोज़ोआ तथा सार्कोडिना में पायी जाती हैं। शाइज़ोगोनी को स्पोरोगोनी (sporogony) भी कहते हैं, मगर ऐसा तब जब इसका संबंध ज़ाइगोट के बनने के बाद स्पोरोज़ोआइट बनने से होता है। बहुविभाजन का एक बहुत ही अच्छा उदाहरण *प्लाज़्मोडियम* में पाया जाता है जिसमें मच्छर स्पोरोज़ोआइटों को मानव शरीर में प्रवेश करा देता है, ये स्पोरोज़ोआइट यकृत में पहुंचते हैं जहां उनमें शाइज़ोगोनी चक्र होते हैं (रक्ताणुपूर्व शाइज़ोगोनी, pre-erythrocytic schizogony)। यकृत में से मुक्त होने वाले मीरोज़ोआइट रक्ताणु में प्रवेश करते हैं जिनके भीतर शाइज़ोगोनी का एक और चक्र चलता है जिसमें मानव RBC के भीतर रह रहे शाइज़ॉण्ट में बहुविभाजन होकर मीरोज़ोआइट बनते हैं (इसी पाठ्यक्रम की इकाई 2 में देखिए)। क्या आप यहां देख पा रहे हैं कि परजीवी अपनी संख्या को बहुत तेज़ी से बढ़ाने के लिए अपने आहार संसाधन का समुपभोग कर रहा है? अलैंगिक जनन का यही एक अति महत्वपूर्ण लाभ है।

बताए गए विभिन्न प्रकार के विभाजनों के अतिरिक्त एक रूपांतरित प्रकार का विभाजन मुकुलन (budding) सक्टोरियन प्राणियों में पाया जाता है। वयस्कों में से एक या अधिक संतति कोशिकाएं जो आकार में छोटी होती हैं बाहर को मुकुलित होती हैं। जब मुकुल बाहर की ओर को निकाले जाते हैं तो इन्हें बाह्य मुकुलन (external budding) कहते हैं। जब यह एक कक्ष के भीतर होता है और मुकुल कक्ष की दीवार में से निकलता है तब इसे भीतरी अथवा आंतरिक मुकुलन (internal budding) कहते हैं (चित्र 13.5)। मुक्त होने पर इन मुकुलों में सिलियायित पट्टियां बन चुकी होती हैं और इधर-उधर तैर सकते हैं। मगर शीघ्र ही वे कहीं अधःस्तर से चिपक कर वयस्क बन जाते हैं।

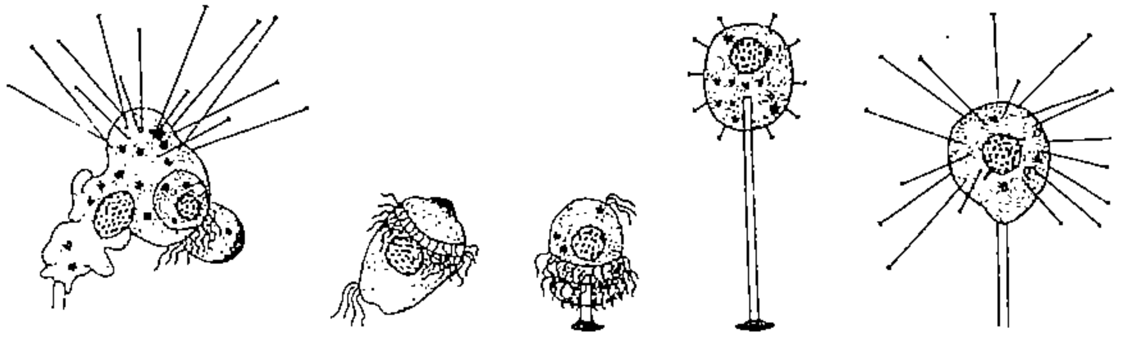

चित्र 13.5 : *टोकोफ्रिया लेम्नैरम* में सक्टोरियायी मुकुलन। मुकुल भीतरी कोष्ठ में से एक संकरे छिद्र द्वारा बाहर को निकल आता है (a), तथा तैर कर अलग हो जाता है। (b) यह किसी अधःस्तर से चिपककर एक वृंत बना लेता है। (c) सिलिया समाप्त हो जाते हैं तथा स्पर्शक बन जाते हैं। (d-e)

13.2.3 खंडन (Fragmentation)

खंडन एक ऐसी परिघटना है जिसमें जनक प्राणी स्वतः ही दो या अधिक खंडों में टूट जाता है । इस तरह टूट कर अलग हुए खंड में लुप्त भागों का पुनर्जनन करके वह एक नयी व्यष्टि बन जाता है। इस विधि को कुछ समुद्री ऐनीमोनों तथा कुछ कृमियों में होते हुए बताया गया है। कभी-कभी समुद्री ऐनीमोन अपनी पाद डिस्क से समूचे तौर पर अथवा आंशिक तौर पर अलग हो जाते हैं और मुख्य शरीर गति करता हुआ अन्यत्र पहुंच जाता है (पाद विदारण , pedal laceration)। शेष रह गयी पाद डिस्क में से पालियां बन सकती हैं जो टूट कर अलग हो जाती हैं और उनमें पुनर्जनन होकर छोटे-छोटे समुद्री ऐनीमोन बन जाते हैं। कभी-कभी समुद्री ऐनीमोन के टूट कर अलग हो जाने के बाद पाद डिस्क शेष बची रह जाती है जिसमें कुछ मीजेंटरियां भी बनी होती हैं, इस भाग में पुनर्जनन होकर एक नयी ऐनीमोन बन जाती है और जो भाग अलग हो गया था उसमें अभावगत पाद डिस्क का पुनर्जनन हो जाता है। खंडन को एक प्रकार का विभाजन ही कहा जा सकता है। और तो और, अनेक समुद्री ऐनीमोनों में अनुदैर्ध्य तथा अनुप्रस्थ विभाजन एक सामान्य अलैंगिक जनन विधि के रूप में होते पाए जाते हैं।

स्वतः पृथक्करण का एक सुंदर उदाहरण अलवणजलीय प्लैनेरियनों (प्लेटिहेल्मिंथीज़, क्लास टर्बिलेरिया) में पाया जाता है। इसका एक सामान्य उदाहरण है *ड्यूगीसिया (Dugesia)* । प्राणी जब पूरी तरह सर्वाधिक आकार प्राप्त कर बढ़ चुकता है तब विभाजन होता है। विभाजन समतल सामान्यतः ग्रसनी के पीछे बनता है। उस समय प्राणी का पिछला भाग किसी अधःस्तर से कसकर चिपक जाता है और अगला भाग चलना जारी रखता है और ऐसा वह तब तक करता जाता है जब तक कि संकरे स्थान पर अगला अंश पिछले अंश से टूट कर अलग नहीं हो जाता (चित्र 13.6)। इस तरह अलग हुए दोनों खण्डों में अब लुप्त अंशों का पुनर्जनन होकर दो नए छोटे कृमि बन जाते हैं। कुछ प्लैनेरियनों में जैसे कि *माइक्रोस्टोमम (Microstomum)* में बार बार विभाजन होते जाने से नयी व्यष्टियों की एक श्रृंखला बन जाती है। जब इन व्यष्टियों में परिवर्धन होकर कुछ हद तक विभेदन प्राप्त हो जाता है तब ये श्रृंखला में से टूट कर स्वतंत्र हो जाते हैं। (चित्र 13.7)।

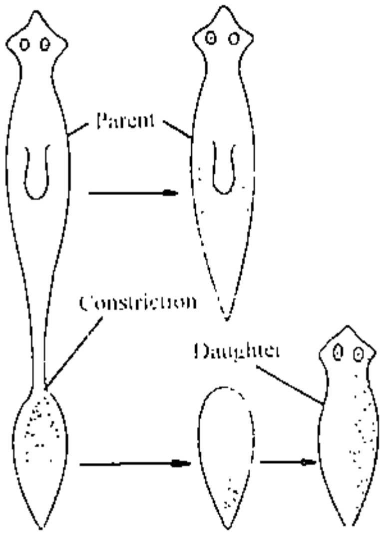

चित्र 13.6 : एक प्लैनेरियन में खंडन द्वारा अलैंगिक जनन।

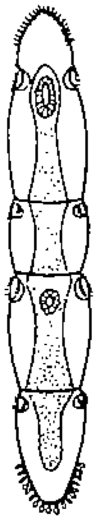

चित्र 13.7 : माइक्रोस्टोमम जिसमें जूऑइडों की श्रृंखला बन गयी है।

13.2.4 मुकुलन (Budding)

मुकुलन द्वारा जनन में प्राणी के किसी एक भाग अथवा एक से अधिक भागों में कोशिकाओं के छोटे-छोटे समूह, मुकुल बना लेते हैं। मुकुल में वृद्धि होती है, उसमें विभेदन होता है और अंततः उसका एक नया वयस्क प्राणी बन जाता है। यह वयस्क या तो जनक के साथ जुड़ा रह सकता है जैसे कि कॉलोनीय (निवह) प्राणियों में (स्पंज तथा अनेक सीलेंटेरेट) या पृथक होकर एक नया स्वतंत्र प्राणी बन जाता है जैसे कि *हाइड्रा* में। चित्र 13.8 में सामान्य अलवणजलीय *हाइड्रा* में मुकुलन दर्शाया गया है। आरम्भ में यह बाह्यचर्म के एक साधारण उभार के रूप में बनता है। उसके बाद बाह्य तथा अंतश्चर्म दोनों ही बाहर को उभर कर एक मुकुल बना लेते हैं। तदुपरांत इस उभार में आंतरगुहा भी पहुंच जाती है। मुकुल आकार में बढ़ता जाता है, उसमें स्पर्शक बनने लगते हैं और एक मुख प्रकट हो जाता है। जब इस मुकुल की आकृति एक नन्हें हाइड्रा जैसी बन जाती है तब आधार पर संकीर्णन होने लगता है जो गहरा होता हुआ एक छोटा विंदु रह जाता है और तब छोटा मुकुल-हाइड्रा पृथक होकर एक स्वतंत्र हाइड्रा के रूप में कहीं और जाकर जम जाता है।

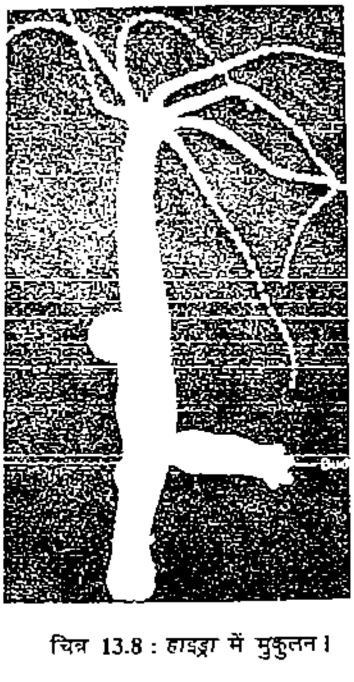

चित्र 13.8 : *हाइड्रा* में मुकुलन।

मुकुलन द्वारा अलैंगिक जनन अन्य नाइडेरियनों में भी काफ़ी प्रचलित है। यह पौलिपॉइड अवस्थाओं (जैसे हाइड्रा में) और मेडुसॉइड स्वरूपों में (जेलीफ़िशों) दोनों में पाया जाता है। कभी-कभी मुकुलन स्टोलनों **(stolons)** के रूप में होता है जो धरती के सहारे-सहारे वृद्धि करते जाते हैं और उससे सीधे खड़े वृन्त निकल आते हैं, यह विधि कॉलोनीय नाइडेरियनों में व्यापक पायी जाती है।

मुकुलन तथा विभाजन में समानताएं एवं भिन्नताएं

मुकुलन तथा विभाजन दोनों ही कम से कम एक बात में तो समान हैं ही, कि इन दोनों में जो नए बच्चे बनते हैं वे जनक के शरीर से सीधे टूट कर अलग हुए हिस्से होते हैं। मगर कुछ बातों में दोनों स्पष्टतः भिन्न भी होते हैं। इन भिन्नताओं को नीचे सारणी 13.1 में दिया गया है।

सारणी 13.1: मुकुलन तथा विभाजन में भिन्नताएं।

क्र. सं.	मुकुलन	विभाजन
1.	संतति व्यष्टि के अलग हो जाने के बाद जनक प्राणी का अस्तित्व बना रहता है।	दो या दो से अधिक संतति व्यष्टियां बनने के बाद प्राणी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है
2.	मुकुल एक छोटे से चिन्ह के रूप में आरंभ होकर धीरे-धीरे बढ़ते हुए एक सही साइज़ प्राप्त कर लेता है उसके बाद ही वह टूट कर अलग होता है, मगर तब ही वह जनक से छोटा ही रहता है।	संतति व्यष्टियां (दो हों या दो से अधिक) अभिन्न संरचना की होती हैं मगर वे सभी अपने जनक से छोटी ही होती हैं बाद में उनमें वृद्धि होकर सामान्य आमाप प्राप्त होते हैं।
3.	मुकुलन अपेक्षकृत धीमा और क्रमिक होता है।	विभाजन तीव्र और तात्कालिक होता है।

13.2.5 प्रश्रृंखलन अर्थात स्ट्रॉबिलेशन

प्रश्रृंखलन एक ऐसे प्रकार का अलैंगिक जनन है जिसमें शरीर से एक के बाद एक क्रमिक खंड पृथक होते जाते हैं। कुछ जेलीफ़िशों (स्काइफ़ोज़ोआ वर्ग) तथा फ़ीताकृमियों में ये भली भांति प्रदर्शित होता है। *औरीलिया (Aurelia)* नामक स्काइफ़ोज़ोअन में प्लैनुला लार्वा एक हाइड्रा-जैसी अवस्था हाइड्रैट्यूबा (hydratuba) में विकसित होता है जिसे स्काइफीस्टोमा (scyphistoma) भी कहते हैं। स्काइफीस्टोमा के स्टोलन से और नए स्काइफीस्टोमा बन सकते हैं। कुछ समय बिताने के बाद इस स्काइफीस्टोमा में अनुप्रस्थ विभाजन होकर मेडुसों के मुकुल बनते हैं। इससे मानों एक दूसरे के ऊपर रखी हुई चाय की प्यालियों के जैसा चट्टा बन जाता है। इस चट्टे में सबसे छोटी आयु वाली प्याली आधार की तरफ़ बनी होती है तथा सबसे बड़ी उम्र की तथा सबसे बड़े आकार वाली मुक्त सिरे पर बनी होती है। यह "प्यालियों के चट्टे" वाली अवस्था स्ट्रॉबिला (**strobila** प्रश्रृंखला) कहलाती है। अनुप्रस्थ डिस्कें अथवा नए मेडुसा मुकुल एक के बाद एक स्ट्रोबिला से अलग होते जाते हैं और उनमें से प्रत्येक से एक प्रकार का लार्वा (एफ़िरा ephyra) बनता है जिसमें धीरे-धीरे रूपांतरण होकर वयस्क औरीलिया बन जाता है। (चित्र 13.9, साथ ही इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 2 का चित्र 14.7 भी देखिए)।

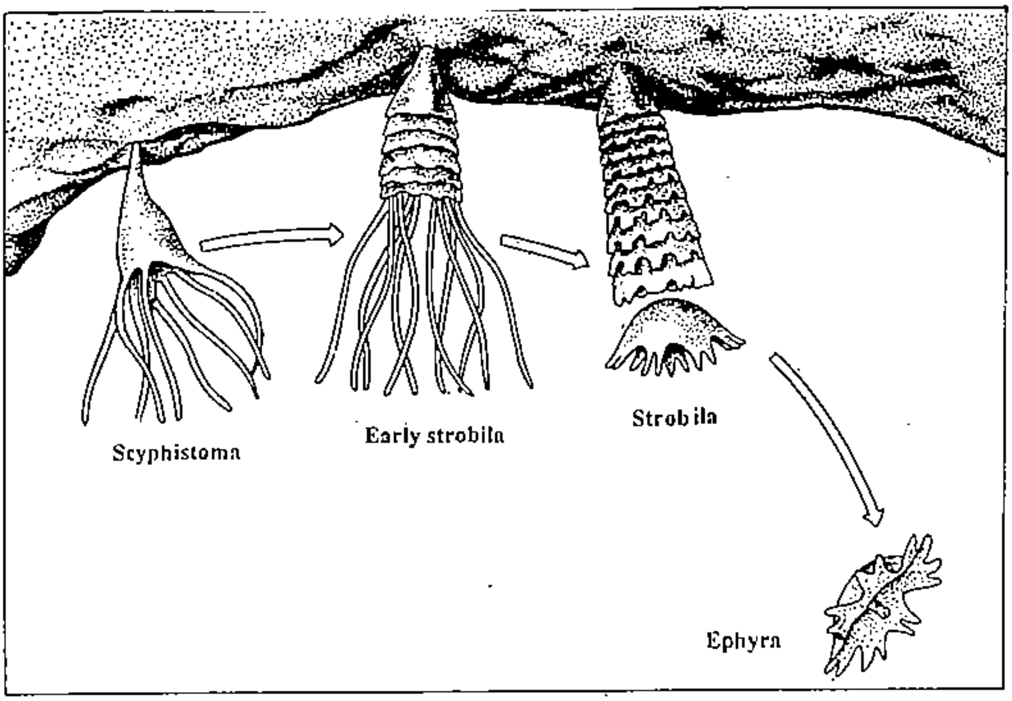

चित्र 13.9 : *औरीलिया* के स्काइफीस्टोमा का स्ट्रॉबिलेशन।

कुछ-कुछ इसी प्रकार की स्थिति फ़ीताकृमियों में भी होती है। नए खंड (प्रोग्लौटिड) गर्दन के क्षेत्र से एक प्रकार के अनुप्रस्थ विभाजनों द्वारा लगातार बनते जाते हैं। यहां भी सबसे पुराने प्रोग्लौटिड मुक्त सिरे पर होते हैं जो टूट-टूट कर अलग होते जाते हैं और यही प्रक्रिया बार-बार होती रहती है (चित्र 13.10)।

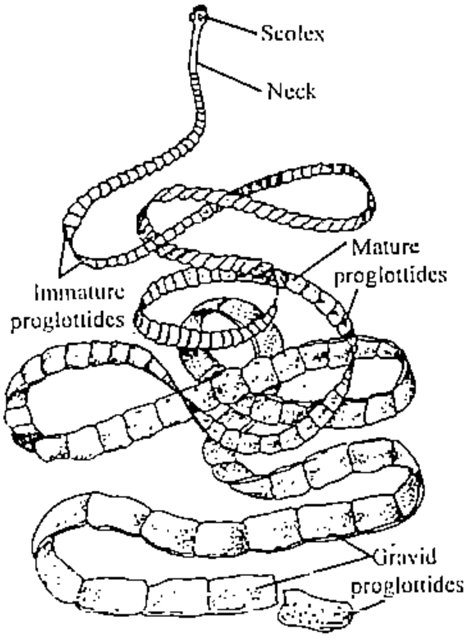

चित्र 13.10 : फीताकृमि में स्ट्रॉबिलेशन।

13.2.6 विशिष्ट जनन इकाइयाँ – जेम्यूल बनना

सभी अलवणजल स्पंजों (स्पंजिलिडी, Spongillidae) तथा कुछ समुद्री स्पंज स्पीशीज़ में शु[illegible] परिस्थितियों अथवा निम्न तापमान पर कुछ अलैंगिक पिंड बनते हैं जिन्हें जेम्यूल (gemmule) कहते हैं। ये रचनाएँ प्रतिकूल परिस्थितियों आने से पहले ही बन जाती हैं। जनक स्पंज विघटित हो जाता है बस [illegible]म्यूल ही

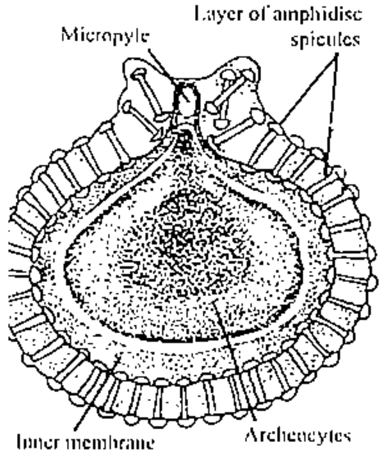

चित्र 13.11 : स्पंजिला के जेम्यूल का सेक्शन। सम्पूर्ण प्रसुप्त काल के दौरान जो कई-कई वर्ष तक चलता रह सकता है, भीतरी संहति की कोशिकाओं में सक्रिय कोशिकाओं की परिसंरचना कायम बनी रहती है। अनुकूल परिस्थितियों के आने के 24 घंटे के भीतर ही छिद्र के नीचे की झिल्ली एंज़ाइमों द्वारा पचा ली जाती है और कोशिकाएं बाहर आने लग जाती हैं।

जेम्यूल शेष रह जाते हैं। ये जेम्यूल सूखे और ठंड को सहन कर सकते हैं। वसंत ऋतु आने पर जब तापमान में कुछ वृद्धि हो जाती है तब जेम्यूलों में परिवर्धन शुरू हो जाता और प्रत्येक से एक नया स्पंज बन जाता है।

जेम्यूल-निर्माण

जेम्यूलों के बनने के दौरान खाद्य से भरपूर अमीबाणु जिन्हें आर्कियोसाइट (archeocytes) भी कहते हैं अन्य कोशिकाओं का आहार करते और अपने भीतर जमाते हैं। इनके चारों ओर स्पंजियोसाइट (spongiocytes) (एक अन्य प्रकार के अमीबाणु) एकत्रित हो जाते हैं। ये स्पंजियोसाइट एक द्विपरती कड़े आवरण का स्रवण करते हैं। इस सुरक्षाकारी कवच में एक ओर छोटा सा सुराख **माइक्रोपाइल (micropyle)** छोड़ दिया जाता है। तदुपरांत कुछ स्क्लेरोब्लास्ट (कंटिका निर्मात्री कोशिकाएं) कवच की इन दोनों परतों के बीच आकर स्थित हो जाती हैं और कंटिकाओं (spicules) का स्रवण करती हैं (चित्र 13.11)। अब जेम्यूल पूरा बन चुकता है। ऐसा हो चुकने पर जनक स्पंज विघटित हो जाता है और जेम्यूल पड़े रह जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों के पुन: आगमन पर जेम्यूलों में परिवर्धन आरम्भ हो जाता है। केंद्र स्थित आर्कियोसाइट एक संहति के रूप में माइक्रोपाइल से बाहर आ जाते हैं, और फिर इस संहति में कोशिका-विभाजन एवं विभेदन होकर एक नया स्पंज बन जाता है।

बोध प्रश्न-1

I) अलैंगिक जनन की विधि को उसके उचित उदाहरण से मिलाइए :

	जनन विधि		उदाहरण
1.	द्विविभाजन	(क)	*हाइड्रा*
2.	खंडन	(ख)	*औरीलिया*
3.	प्लाज़्मोटोमी	(ग)	*प्लाज़्मोडियम*
4.	मुकुलन	(घ)	*प्लैनेरिया*
5.	बहुविभाजन	(च)	*ओपैलाइना*
6.	जेम्यूल-निर्माण	(छ)	*पैरामीशियम*
7.	स्ट्राबिलेशन	(ज)	*स्पंजिला*

II) सही कथनों पर सही (√) का चिन्ह लगाइए:-

i) प्राणियों में सबसे आदिम प्रकार की जनन-विधि द्विविभाजन द्वारा होती है।
ii) बहुविभाजन तथा कोशिका-विभाजन एक ही चीज़ हैं।
iii) खंडन द्वारा अलैंगिक जनन पुनर्जनन क्षमता पर निर्भर होता है।
iv) मुकुलन एक धीमी तथा क्रमिक प्रक्रिया है।
v) जेम्यूलों द्वारा अलैंगिक जनन का होना सभी स्पंजों में एक नियमित विधि है।

13.3 पुनर्जनन से अलैंगिक जनन

परिभाषा के रूप में पुनर्जनन (regeneration) जीव के शरीर से निकल गए भागों के प्रतिस्थापन होने को कहते हैं। यह क्षमता लगभग सभी जीवों में पायी जाती है, मगर कुछ मामलों में, ख़ास तौर से अधिकतर कशेरूकियों तथा कुछ अकॉर्डेटा में यह क्षमता मात्र कोशिकाओं के प्रतिस्थापन तक ही सीमित होती है न कि अंगों अथवा अंगों के प्रधान भागों के। मगर अनेक अकॉर्डेटों में और विशेषकर निम्नतर उदाहरणों में यही अति विशाल होती है, जनक के शरीर के किसी एक टूटे अंश अथवा टुकड़े से एक नया सम्पूर्ण प्राणी बन सकता है और इस दृष्टि से यह भी अलैंगिक जनन की ही एक अन्य विधि हुई।

पुनर्जनन एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में जिसमें अलैंगिक जनन होता है, दो स्थितियों में घटित होता है :

1) ऐसे प्राणी जो प्राकृतिक रूप में खंडित होते हैं (स्वत: जात पृथक्करण) जिसके बाद हर पृथक हुए खंड में अभाव वाले भागों का पुर्नजनन होता है।

2) प्राणियों में किसी दुर्घटनावाश क्षति के कारण कट गए अथवा टूट गए भागों में से प्रत्येक में पुनर्जनन होकर उतने ही नए सम्पूर्ण प्राणी बन जाते हैं।

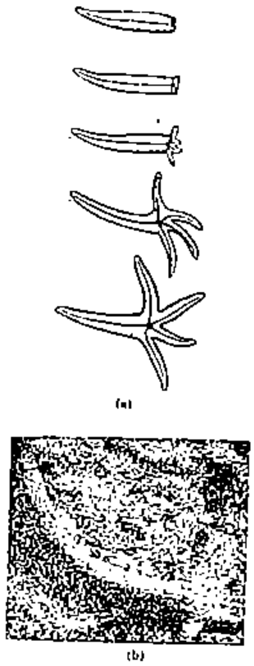

Fig. 13.12 : Regeneration in starfish *Linckia* leading to asexual reproduction (a). A single arm regenerates the central disc as well as the remaining four arms (b).

13.3.1 खंडन और पुनर्जनन (Fragmentation and regeneration)

ऊपर कही गयी दोनों स्थितियों को, यानी चाहे प्राकृतिक रूप में होती हों या दुर्घटनावश, सामान्यत: खंडन की ही श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें से पहली स्थिति यानी प्राकृतिक अथवा सहज खंडन और उसके बाद होने वाले पुनर्जनन जिससे पूर्ण प्राणी बन जाते हैं, को पहले ही इससे पूर्व के खंडों में बताया जा चुका है। यहां हम दूसरी विधि का वर्णन करेंगे जिसमें किसी दुर्घटनावश बने खंडों में सभी अनुपस्थित भागों का पुनर्जनन होकर पूर्ण प्राणी बन जाते हैं।

पुनर्जनन क्षमता इकाइनोडर्मों में सुविकसित तथा व्यापक होती है मगर अन्य विभिन्न वर्गों एवं स्पीशीज़ में अलग-अलग मात्रा में पायी जाती है। इकाइनॉइडों अर्थात समुद्री अर्चिनों में पुनर्जनन क्षमता कम पायी जाती है, मगर स्टारफ़िशों (ऐस्टेरॉइडों), ब्रिटल-स्टारों (ओफ़ियूरॉइडों) तथा समुद्री लिली (क्रिनॉइडों) में, पुनर्जनन की भारी क्षमता पायी जाती है। इनमे से अधिकतर, और ख़ास तौर से स्टारफ़िशें एवं ब्रिटल स्टार, न केवल भुजा अथवा केंद्रीय डिस्क के अंश का ही पुनर्जनन कर सकती हैं वरन एक अकेली पृथक हुई भुजा से भी एक सम्पूर्ण प्राणी का पुनर्जनन हो सकता है यानी शेष चार भुजाओं समेत केंद्रीय डिस्क तक का। कुछ स्टारफ़िशें जैसे कि *लिंकिया (Linckia)* स्वयं अपनी एक भुजा को तोड़ कर अलग कर सकती है और इस अलग हुई भुजा से एक सम्पूर्ण स्टारफ़िश बन जाती है (चित्र 13.13)। अनेक स्टारफ़िशें और कुछ क्रिनॉइडें (जैसे *ओफ़िऐक्टिस, Ophiactis*) सामान्य रूप में भी अलैंगिक विधि से जनन करती हैं। इसमें केंद्रीय डिस्क भी विभाजित हो जाती है जिससे प्राणी दो में विभाजित हो जाता है। इस विधि को फ़िसिपैरिटी (fissiparity) अर्थात विभाजनप्रजता कहते हैं। दो अर्धांशों में लुप्त भागों का पुनर्जनन हो जाता है। कुछ होलोथूरियन (समुद्री-खीरे) इस बात में सबसे विचित्र हैं कि उनमें एक सबसे अलग लक्षण विअंतरंगन (evisceration) होता पाया जाता है। किसी ज़बरदस्ती घुस आने वाले अथवा शत्रु का अचानक सामने आ जाने का तात्कालिक ख़तरा आया जानकर ये प्राणी अपने श्वसन-वृक्षों से जुड़ी "कुवियर नलिकाओं" की बड़ी-बड़ी संहतियों को और कभी-कभार अपने लगभग संम्पूर्ण अंतरंग को अपने अवस्कर में से बाहर निकाल फेंकते हैं और बाद में उनका पुनर्जनन कर लेते हैं। कुछ स्पीशीज़ में विअंतरंगन एक सामान्य ऋतुपरक परिघटना होती है।

शरीर का स्वत:जात खंडन करके उसके बाद देह-भागों में पुनर्जनन करके एक नया प्राणी बना लेना पौलीकीटों में अलैंगिक जनन की एक सामान्य विधि है। अनेक सिल्लिडों (Psyllids) में पटों का वह बिंदु जहां देह-खंड टूटना होता है, पूर्वनिर्धारित होता एवं अन्य पटों से भिन्न होता है। ऐसी स्पीशीज़ में खंडन तथा पुनर्जनन अति सुसंघटित होते हैं तथा प्रत्येक खंड से एक सम्पूर्ण प्राणी बन सकता है। कुछ उदाहरणों में मूल देह-खंड बड़े आकार का रहता है तथा उसके आगे-पीछे के सिरों पर शीर्ष और पूंछ का पुनर्जनन हो जाता है। ये दोनों सिरे टूट कर अलग हो जाते हैं और पूंछ वाले अंश में एक नया शीर्ष तथा शीर्ष वाले सिरे में एक नई पूंछ बन जाती है।

13.3.2 स्वभंजन (Autotomy) तथा पुनर्जनन

सामने आए किसी परभक्षी-शत्रु का ध्यान बंटाने के लिए आत्म-सुरक्षा हेतु अथवा अन्य किसी आपात स्थिति में अपने ही देह के किसी अंश को तोड़ फेंकना एक प्रकार का स्वभंजन (autotomy, auto- स्वयं, tomy : काटना) होता है। इसका सर्वाधिक परिचित उदाहरण है कॉर्डेटों में घरेलू छिपकली का अपनी पूंछ तोड़ डालना, मगर यह परिघटना अकॉर्डेटों में कहीं ज्यादा व्यापक है। आप पहले ही देख चुके हैं कि यह

अनेक इकाइनोडर्मों में पायी जाती है। स्टारफिशें तथा ब्रिटिल-स्टार अपनी भुजाओं को तोड़ फेंक सकते हैं जिनमें पुनर्जनन होकर सम्पूर्ण प्राणी बन सकते हैं। स्वभंजन के बाद पुनर्जनन का एक बहुत ही रोचक उदाहरण *कीटॉप्टेरस (Chaetopterus)* नामक एक पौलीकीट ऐनेलिड कृमि में पाया जाता है। यह एक उथले समुद्र की कीचड़दार तली में एक U- आकृति की पार्चमेंट नलिका के भीतर स्थायी तौर पर रहता है (चित्र 13.13a)। यदि इस कृमि के अग्र सिरे को कोई परभक्षी बाहर से खींच ले तब इसके 12वें और 13वें देह खंड के बीच के संकीर्णन पर शरीर दो टुकड़ों में टूट जाता है। कृमि का शीर्ष वाला आधा भाग परभक्षी शत्रु ले जाता है और शेष आधा U - नलिका में बचा रह जाता है। इस पिछले भाग में गोनड होते हैं और यह पुनर्जनन करके अगला भाग दोबारा बना लेता है ताकि सामान्य अशन क्रिया होती रहे। *कीटॉप्टेरस* में केवल एक अकेले पृथक हुए 14वें देहखंड से ही पूरे कृमि के दोबारा बन सकने की अति विलक्षण शक्ति पायी जाती है (चित्र 13.13b)।

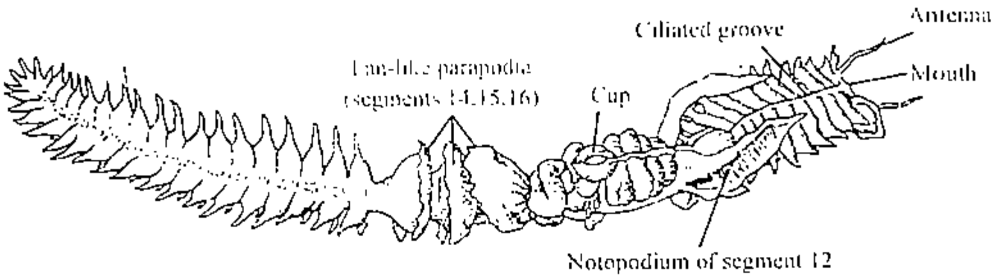

(a)

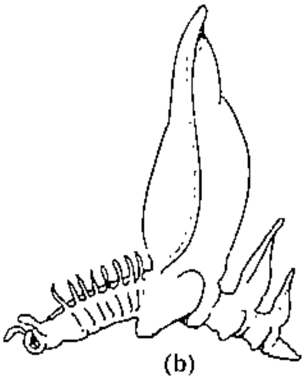

(b)

चित्र 13.13 : नलिकावासी ऐनेलिड *कीटॉप्टेरस* (a) यह देह के हानिग्रस्त अग्र सिरे का पुनर्जनन कर सकता है, और यह भी कि केवल एक ही पृथक किए हुए देहखंड से भी पूरा कृमि बन सकता है। चित्र में ऐसा अकेले पंखा देहखंड से हो रहा है (b)।

13.3.3 एपिटोकी (Epitoky)

चित्र 13.14 : हेटेरोनीरीस, नर प्राणी जिसमें एटोक तथा, एपिटोक क्षेत्र दिखाए गए हैं।

अलैंगिक जनन की यह एक अति विशेषित विधि है जिसमें अलैंगिक कृमि जिसे "एटोक (atoke)" कहते हैं, से एक लैंगिक स्वरूप मुकुलित होकर पृथक हो जाता है। कुछ पौलीकीट ऐनेलिड दो स्पष्ट प्रावस्थाओं में होते पाए जाते हैं - एक गैर-जननिक (अलैंगिक) तथा एक जननिक (लैंगिक) प्रावस्था। *नीरीस इरोरेटा (Nereis irrorata)* एक साधारण उदाहरण है। यह कृमि उथले समुद्र में तलीवासी है। अप्रजनन प्रावस्था में यह अधिकतर चट्टानों और दरारों में या नलिकीय निर्मितियों के भीतर छिपा पड़ा रहता है और आहार करने के वास्ते केवल रात में ही बाहर आता है। प्रजनन ऋतु में इसमें नर तथा मादा दोनों में बड़े स्पष्ट संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं। शरीर में दो भागों में विभेदन होता है- एक अगला अर्ध भाग तथा एक पश्च अर्धभाग - *हेटेरोनीरीस (heteronereis)* (चित्र 13.14)। अग्र अर्धांश जिसे एटोक **(atoke)** कहते हैं लगभग अपरवर्तित रहता है जब कि पश्च अर्धांश जिसे एपिटोक **(epitoke)** कहते हैं, में बड़े तीव्र परिवर्तन होते हैं। एपिटोक में होने वाले परिवर्तन मुख्यत: इस प्रकार हैं : (i) परापादों का आकार-विस्तार होकर वे पतवार सरीखे हो जाते हैं जिनमें बड़ी कुशलता पूर्वक तैरा जा सकता है तथा (ii) गोनड जो केवल इसी भाग में होते हैं; उनमें बहुत ज़्यादा वृद्धि होती है तथा पूरी देह-गुहा युग्मकों

(गैमीटों) से भर जाती है। एक ख़ास रात को जो वर्ष के एक ख़ास महीने में चाँद की रोशनी जैसे पर्यावरण कारकों द्वारा निर्धारित होती है, इस कृमि के पश्च लैंगिक भाग (एपिटोक) टूट कर अलग हो जाते और इधर-उधर तैरने लग जाते हैं। इस प्रकार के नर और मादा एपिटोक इन रातों को भारी संख्या में समुद्र की सतह पर आकर घने वृंद समूह बना लेते हैं।

तदुपरांत ये एपिटोक फूटते और विघटित हो जाते हैं और उस दौरान भीतर की लैंगिक कोशिकाएं बाहर समुद्र में मुक्त हो जाती और उनमें निषेचन हो जाता है। शरीर के गैर-वृंदन भागों (एटोकों) में हानि हुए खण्डों का पुनर्जनन होता है और अगले वर्ष फिर से यही पूरी प्रक्रिया दोहरायी जाती है। यहां पर वृंदन (swarming) शब्द का उपयोग इस तथ्य पर बल देने के लिए किया गया है कि एपिटोकों का ऊपर को समुद्र की सतह पर उठ कर आना एक सामूहिक क्रियाकलाप है जिसमें कभी-कभी ऐसी लाखों-लाखों व्याष्टियां नर और मादा, दोनों साथ-साथ आती हैं। जब ये सारी की सारी फूट कर लैंगिक कोशिकओं को बाहर छोड़ देती हैं तब निषेचन की संभावनाएं बहुत बढ़ जाती हैं।

एपिटोकि में बहुसंख्यक विभिन्नताएं पायी जाती हैं। उदाहरणत: *साइलिस विट्टैटा (Syllis vittata)* में एपिटोक में, एटोक से खंडित होने से पहले ही, शीर्ष और एक जोड़ी आंखे बन जाती हैं तथा इसी प्रकार एटोक में एपिटोक के पृथक होने से पूर्व ही पश्च भाग बनने लग जाता है।

पौलीकीट कृमि *ऑटोलाइटस (Autolytus)* में अंडे से बनने वाला अलैंगिक कृमि संकीर्ण-प्रक्रिया एवं पश्च प्रचुरोद्भवनों द्वारा नए (एक या एक से अधिक) जूऑइड बनाता है जो पृथक होने से पूर्व एक लड़ी के रूप में संयोजित हुए रहते हो सकते हैं। आगे चलकर लैंगिक जूऑइडों से परिपक्व नर और मादाएं बन जाती हैं (चित्र 13.15)।

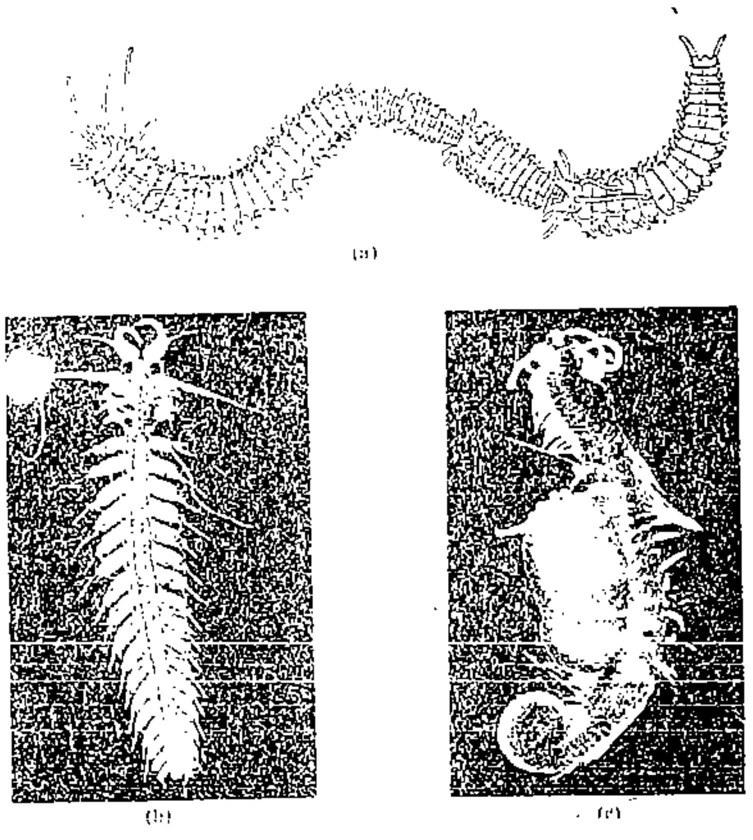

चित्र 13.15 : a) *औलिटस* में मुकुलन द्वारा एपिटोकों की श्रृंखला बन रही है, इसमें मुकुलन नर और मादा दोनों में होता है। नर एपिटोक (b) मादा एपिटोक (c)।

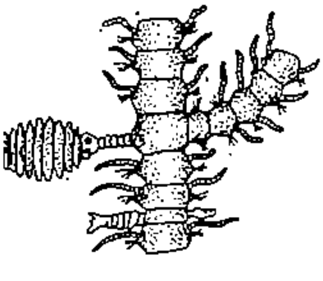

चित्र 13.16 :*साइलिस* में विशाखित होते हुए प्राणी दिखायी पड़ रहे हैं।

एक अन्य विचित्र पौलिकीट ऐनेलिड *साइलिस रैमोसा (Syllis ramosa)* है जो गहरे समुद्र के कुछ ख़ास स्पंजों की गुहाओं के भीतर रहता है। यह ऐनेलिड विविध देह खंडों से बार-बार पार्श्व मुकुल बनाता जाता है। इस तरह यह एक विशाखनी कॉलोनी का स्वरूप ले लेता है। (चित्र 13.16)। इस मुकुलन से उत्पन्न हुई व्यष्टियां पृथक हो जाती हैं। ये लैंगिक ज़ूऑइड होते हैं।

पोरिफ़ेरनों में स्पंज के प्रधान शरीर से काटा गया कोई भी टुकड़ा बढ़ कर पूरा स्पंज बन सकता है। मगर यह प्रक्रिया काफ़ी धीमी होती है और स्पंज का पूरा साइज़ प्राप्त करने में कई-कई महीनों और यहां तक कि कई-कई वर्षों तक का समय लग सकता है। कुछ स्पंजों में अलैंगिक जनन में शाखाएं स्वयं कट कर अलग हो जाती हैं जिसमें पुनर्जनन हो कर नए स्पंज बन जाते हैं। स्पंजों में पृथक की गयी अलग-थलग कोशिकाओं के समूहों से भी पुनर्जनन होकर पूरे स्पंज बन सकते हैं। जब किसी स्पंज को एक महीन कपड़े में से छाना जाता है तो इसकी कोशिकाओं के अलग-थलग समूह टूट कर बाहर छन आते हैं। ऐसा होने पर इनके अमीबाणुओं की यादृच्छिक गतियों द्वारा इनकी अलग हुई कोशिकाओं के समूह बन जाते हैं। इन्हें पुनर्योजनी संहतियां कहते हैं इनमें पुनर्जनन होकर अंततः नये स्पंज बन जाते हैं।

हाइड्रा तथा कई अन्य नाइडेरियनों जैसे कि *ट्यूबुलेरिया, ओबीलिया* और यहां तक कि समुद्री ऐनीमोन भी यदि टुकड़ों में काट दिए जाएं तो उनके टुकड़ों में पुनर्जनन होकर पूर्ण प्राणी बन सकते हैं। उदाहरणतः यदि *हाइड्रा* को तीन बराबर टुकड़ों में काट दिया जाए तो जिस टुकड़े में स्पर्शक थे वह पाद डिस्क का पुनर्जनन कर लेता है, जिसमें आधारीय डिस्क थी वह स्पर्शक मुख डिस्क का पुनर्जनन कर लेता है और बीच का टुकड़ा अपने शीर्षस्थ सिरे से मुख डिस्क का तथा समीपस्थ सिरे से पाद डिस्क का पुनर्जनन कर लेता है (चित्र 13.17)।

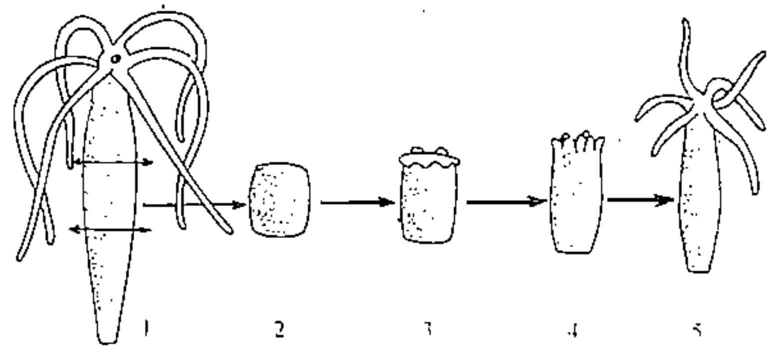

चित्र 13.17 : *हाइड्रा* के टुकड़ों में काट देने पर पुनर्जनन।

प्लैनेरियनों (फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिंथीज़) में विलक्षण पुनर्जनन क्षमता पायी जाती है। इसे दो भागों में काट देने पर हर टुकड़े में लुप्त भाग फिर से बन कर पूरा प्लैनेरियन बन जाता है। प्लैनेरियनों में पुनर्जनन पर अनेक रोचक प्रयोग किए गए हैं। मात्र शीर्ष को लम्बाई में चीर देने पर दो शीर्ष वाला प्राणी और मात्र पूंछ को चीर देने पर दो पूंछ प्राणी बन जाता है (चित्र 13.18)।

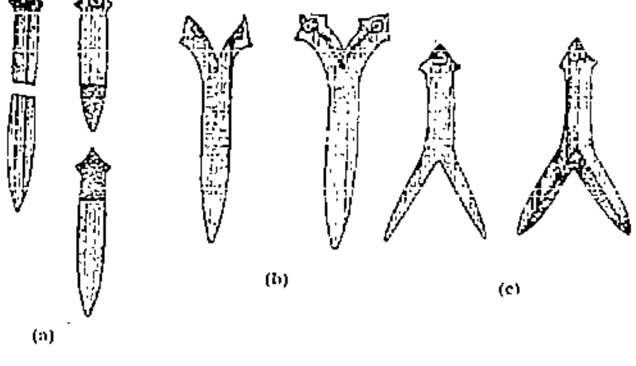

चित्र 13.18 : प्लैनेरियन में पुनर्जनन।

13.3.4 पुनर्जनन में ध्रुवता (Polarity in regeneration)

प्लैनेरियनों (तथा अन्य प्राणियों में भी) एक स्पष्ट ध्रुवता अथवा प्रवणत: (gradient) पायी जाती है। इसका अर्थ है कि देह के किसी भी खंड अथवा टुकड़े में उसका अग्र सिरा एक ध्रुव का तथा पश्च सिरा (पुच्छ सिरा) दूसरे ध्रुव का निदर्श करता है। पुनर्जनन सामान्यत: इसी ध्रुवता से संबंधित रहता है। किसी भी काटे गए टुकड़े में शीर्ष सिरे के ओर की कटी सतह से एक नया शीर्ष बनता है तथा पिछले सिरे की ओर की कटी सतह से पूछ बनती है।

शेष अकॉर्डेट फ़ाइलमों में (अर्थात ऐस्क्हेल्मिंथीज़, आर्थ्रोपोडा तथा मौलस्का में) लुप्त भागों का पुनर्जनन न के बराबर होता है तथा पुनर्जनन से जुड़ा अलैंगिक जनन नहीं होता।

13.4 अलैंगिक जनन - इसकी व्यापकता एवं इसका महत्व

अकॉर्डेटों में अलैंगिक जनन के विविध पहलुओं का अध्ययन कर चुकने के बाद अब हम कुछ सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकते हैं :-

क) अलैंगिक जनन की व्यापकता

1) अलैंगिक जनन प्राणियों के उच्चतर फाइलमों की अपेक्षा निम्नतर फ़ाइलमों में अधिक व्यापक है।

2) अलैंगिक जनन का संबंध अधिकतर पुनर्जनन क्षमता से है।

3) निम्नतर प्राणियों में कोशिकाएं एवं ऊतक अपेक्षाकृत कम विभेदित होते हैं तथा इनमें उच्चतर प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठतर पुनर्जनन क्षमता पायी जाती है, और इस तरह यह अलैंगिक जनन में योगदान देती है।

4) उच्चतर प्राणियों में पुनर्जनन क्षमता मुख्य रूप में अंग-प्रतिस्थापन तक ही सीमित होती है (कॉर्डेटों में तो यह और भी कम केवल ऊतक-प्रतिस्थापन तक ही सीमित होती है)

ख) अलैंगिक जनन का महत्व

अलैंगिक जनन स्पीशीज़ के लिए अनेक प्रकार से लाभकारी होता है:-

1) अलैंगिक जनन विधि जनन की अधिक सुनिश्चित विधि है, इसमें सामान्यत: कोई संयोग अथवा जोखिम के कारक नही होते जो कि लैंगिक जनन में निहित होते हैं।

2) अलैंगिक जनन, और उसमें भी विशेषकर विभाजन एवं मुकुलन के द्वारा होने वाला जनन संख्या में तीव्र वृद्धि का एक तरीका है जिससे समष्टि में तेज़ी से बढ़ोतरी होती है।

3) अलैंगिक विधि से जनन करने वाले प्राणी अपने अनुकूल पर्यावरण का अधिकतम लाभ तीव्र संख्या-वृद्धि द्वारा करते हैं।

4) कुछ मामलों में जैसे कि कुछ स्पंजों में जेम्यूलों से अलैंगिक जनन होना प्रतिकूल परिस्थितियों मे से गुजरने का एक साधन है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्न वाक्यों मे रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

i) स्टारफ़िशों में पृथक हुई एक अकेली भुजा से एक सम्पूर्ण .... और साथ ही शेष चार .... की पुनर्वृद्धि हो सकती है।

ii) विअंतरंगन और उसके बाद लुप्त अंतरंग का पुनर्जनन .... में अक्सर होता पाया जाता है।

iii) स्पंज, पृथक की गयी कोशिकाओं की उन संहतियों से जिन्हें .... संहतियां कहते हैं, पुनर्जनन कर सकते हैं।

iv) प्लैनेरियन में शीर्ष को अनुदैर्ध्यत: .... कर एक द्विशीर्ष प्लैनेरियन प्राप्त की जा सकती है।

v) स्पंजों में .... का बनना सूखे अथवा ठंड की स्थिति से पार पाने की विधि है।

II) एक मुख्य कारण बताइए कि क्यों अलैंगिक जनन निम्नतर अकॉर्डेटों में अधिक व्यापक है और उच्चतर अकॉर्डेटों में कम।

....

....

....

....

....

....

....

....

13.5 लैंगिक जनन

सभी मेटाज़ोआ-प्राणी, चाहे वे अलैंगिक विधि से जनन करते हों या न करते हों युग्मक (गैमीट) नामक विशेष कोशिकाएं तो बनाते ही हैं। ये युग्मक या तो नर युग्मक (शुक्राणु) होते हैं या मादा युग्मक (अण्डे) होते हैं। उसके बाद सिनगैमी (syngamy) (युग्मक संलयन) होती है जिसमें एक शुक्राणु अण्डाणु का निषेचन करता है और इससे एक ज़ाइगोट (युग्मज) बन जाता है। ज़ाइगोट में परिवर्धन होकर अंतत: एक वयस्क बन जाता है। सिनगैमी के दौरान क्रोमोसोम दोगुने हो जाते हैं, यानी ज़ाइगोट तथा उससे व्युत्पन्न कोशिकाएं द्विगुणित (डिप्लॉइड) होती हैं। बार-बार क्रोतोमोसोम का दोगुना होते जाते रहना न हो पाए, इसलिए युग्मकों के उत्पादन के दौरान मीयोसिस अर्थात न्यूनकारी विभाजन होता है। इस प्रक्रिया में क्रोमोसोम संख्या सामान्य से आधी हो जाती है (अगुणित, haploid)। यह चक्र इसी तरह दोहराया जाता रहता है और क्रोमोसोम-संख्या कायम बनायी रखी जाती है (LSE-05 तथा LSE-06 पाठ्यक्रम में लैंगिक जनन देखिए)।

13.5.1 युग्मकों और लैंगिक जनन का महत्व

प्रश्न उठता है कि यदि स्पीशीज़ में क्रोमोसोम-संख्या स्थिर ही बनाए रखनी थी तो इस सारी प्रक्रिया की, जिसमें सिनगैमी और फिर उसके बाद मीयोसिस होता है, आखिर ज़रूरत ही क्या थी? इसका उत्तर है कि ज़ाइगोट में मातृक तथा पैतृक क्रोमोसोमों का मिश्रण होता है। इससे, और इसी के साथ मीयोसिस के दौरान समजात क्रोमोसोमों के बीच हुए पुनर्योजन से, उत्पन्न होने वाले प्राणियों में आनुवंशिक विभिन्नता की बहुत बड़ी संभावना बन जाती है। इसी आनुवंशिक विभिन्नता पर वरण-प्रक्रिया कार्य करती है और विकास आगे चलता जाता है।

यहां एक बात स्पष्ट समझने की यह है कि लैंगिक जननशीलता प्रोटोज़ोअनों का भी एक मूलभूत गुणधर्म है, हालांकि उनमें और मेटाज़ोअन में कुछ जरूरी अंतर है, जैसा कि हम इसी अनुभाग में आगे पढ़ेंगे। युग्मकों की कुछ सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं :

1) विपरीत लिंग के युग्मक सामान्यत: आकार में भिन्न होते हे- इनमें सामान्यत: बड़े युग्मक अण्डे **(eggs)** अथवा मादा युग्मक होते हैं तथा अन्य छोटे आकार के युग्मक शुक्राणु **(spermatozoa** अथवा **sperms)** या वस नर युग्मक कहलाते हैं।

2) मादा युग्मकों में सामान्यत: आहार पदार्थ पीतक **(yolk)** भरा होता है जब कि नर युग्मकों में खाद्य भण्डार नहीं होता।

3) मादा युग्मक सामान्यत: गतिविहीन होते हैं (ये सक्रिय रूप में चल-फिर नहीं सकते) जब कि नर युग्मक गतिशील होते हैं।

4) दोनों प्रकार के युग्मकों में आनुवंशिक पदार्थ (DNA) की आधी मात्रा ही होती है, अर्थात दोनों में जनक के क्रोमोसोमों की तुलना में आधी-आधी संख्या में ही क्रोमोसोम होते हैं इसे व्यक्त करने के लिए कहा जाता है कि युग्मक हैप्लॉइड यानी अगुणित (n) होते हैं जिनमें स्पीशीज़ के क्रोमोसोमों के प्रत्येक जोड़े का केवल एक-एक सदस्य ही होता है, जब कि जनकों में, जिनमें ये युग्मक बनते हैं, डिप्लॉइड यानी द्विगुणित (2n) दशा पायी जाती है।

5) युग्मक सामान्यत: अकेले-अकेले परिवर्धित नहीं हो सकते। उनमें सिनगैमी (युग्मक संलयन) का होना जरूरी है जिसमें निषेचन **(fertilisation)** सम्पन्न होता है यानी नर और मादा युग्मकों का संलयन होकर ज़ाइगोट बनता है।

6) ज़ाइगोट अब एक अकेली कोशिका ही होता है जिसमें कोशिका-विभाजनों तथा विभेदन की क्रिया के होने पर धीरे-धीरे वयस्क स्वरूप और संरचना प्राप्त होती है।

7) लैंगिक कोशिकाएं अथवा युग्मक जिनसे निषेचन होकर एक नया प्राणी बनता है, आम तौर से अलग-अलग जनकों (नर और मादाओं) से आते हैं। इस प्रक्रिया में दो जनकों से आए हुए जीनों का संयोजन संभव होता है तथा इनसे बनने वाली संतान जीनों के संभाव्य संयोजनों द्वारा जीवन के लिए अधिक बेहतर रूप में अनुकूलित हो सकती है।

13.5.2 दो लिंग तथा लैंगिक द्विरूपता

दो लिंग- नर तथा मादा : अधिकतर प्राणियों में प्रत्येक स्पीशीज़ में दो प्रकार की व्यष्टियां पायी जाती हैं एक तो नर जिनमें नर युग्मक यानी शुक्राणु बनते हैं, और दूसरी मादा व्यष्टियां जिनमें अण्डाणु अथवा अण्डे बनते हैं। मगर अनेक प्राणियों में, और वह भी विशेषकर अनेक अकॉर्डेटों में दोनों प्रकार के युग्मक एक ही व्यष्टि के भीतर बनते हैं। इस प्रकार की व्यष्टियों को उभयलिंगी **(hermaphrodite)** कहते हैं (LSE-05 की इकाई 14 को याद कीजिए)। इनके विषय में और अधिक विस्तार से आप अनुभाग 13.6 में पढ़ेंगे। विभिन्न प्रकार के युग्मक बनाने के अलावा नर और मादाओं को अन्य लक्षणों से भी पहचाना जा सकता है। इसे लैंगिक द्विरूपता **(sexual dimorphism)** कहते हैं। कभी-कभी लैंगिक द्विरूपता बहुत सुस्पष्ट होती है और कभी-कभी ये अंतर बहुत ही कम स्पष्ट होते हैं। मगर नाइडेरिया के स्तर के ऊपर के लगभग सभी प्राणियों में न्यूनाधिक रूप में लैंगिक द्विरूपता ज़रूर होती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-

1) *शिस्टोसोमा* जीनस का रक्त-पर्णाभ जैसे कि *शिस्टोमा हीमैटोबियम (Schistosoma haematobium)* (फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिथीज़, क्लास ट्रीमैटोडा) मानव रक्त वाहिकाओं का परजीवी है। इसका नर बड़ा और मोटा होता है। मादा भी, लम्बी तो होती है तथा यह नर की एक अधर नाल- स्त्रीधर नाल (gynaecophoric canal) के भीतर कस कर पकड़ी रखी गयी होती है (चित्र 13.19)।

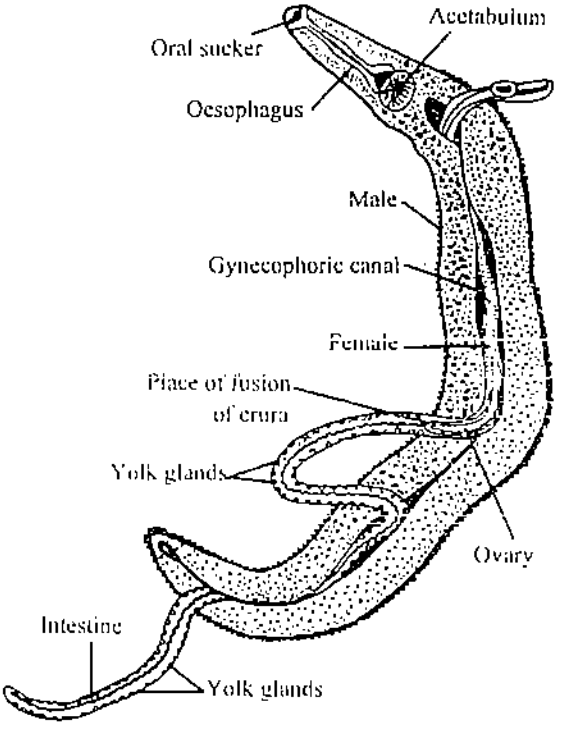

चित्र 13.19: *शिस्टोसोमा हीमैटोबियम*, नर अपनी स्त्रीधर नाल के भीतर मादा को जकड़ कर रखे हुए।

2) *ऐस्कारिस लम्ब्रीकोइडीज (Ascaris lumbricoides)* : (फ़ाइलम नीमैटोडा अथवा नीमैटहेल्मिंथीज़) मानवों का एक काफ़ी आम तौर से पाया जाने वाला आंत्र परजीवी है। नर मादाओं से छोटे होते हैं तथा उन्हें उनके हुक जैसे मुड़े पश्च सिरे से तुरंत पहचान लिया जा सकता है (चित्र 13.20 a)। मादा में पश्च सिरा सीधा होता है (चित्र 13.20 b)। नर में एक जोड़ी सुई-जैसी काइटिनी संरचनाएं शिश्न-शूक **(penial setae)** होते हैं जो अनुप्रस्थ गुदा से बाहर को निकले हुए होते हैं। गुदा जनन छिद्र का भी कार्य करती है।

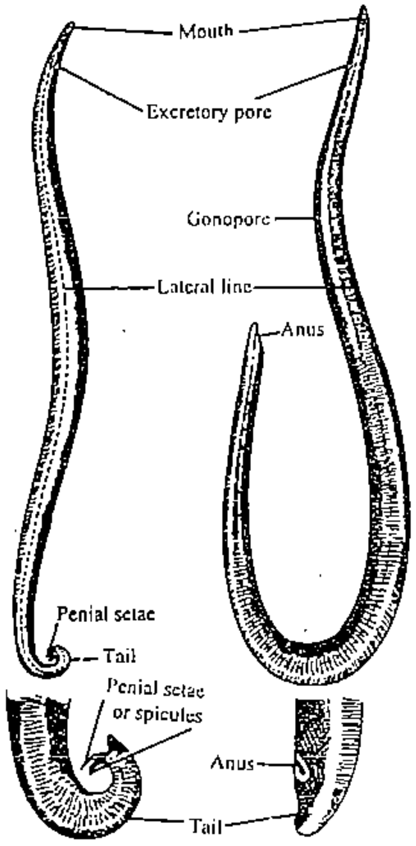

चित्र 13.20 : *ऐस्कारिस लम्ब्रिकोइडीज़* a) नर, b) मादा।

3) *बोनेलिया (Bonellia)* : ऐनेलिडों से संबंधित समुद्री कृमियों के एक वर्ग का सदस्य है। इसमें अति तीव्र लैंगिक द्विरूपता दिखायी पड़ती है। इसकी मादा का शरीर अण्डाकार लगभग 5cm या उससे ज़्यादा लम्बा होता है जो आम तौर से पत्थरों की दरारों के भीतर स्थित होता है। एक अति प्रसारशील लम्बी शुंडिका (proboscis) जो एक मीटर तक की लम्बी हो सकती है इसके मुख्य शरीर से निकली होती है। इसका नर बहुत ही छोटा मुश्किल से 1-2 mm लम्बा होता है। यह नर सब ओर सिलियायित रहता है और उसमें शुंडिका नहीं होती। जब यह बच्चा अवस्था में ही होता है तभी मादा के शरीर में प्रवेश कर जाता है और लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेने के बाद अपनी मादा साथिन के गर्भाशय के भीतर अथवा उसकी सीलोम में स्थायी तौर पर परजीवी बनकर रहने लगता है। नर की संरचना में भी बहुत भिन्नता पायी जाती है। (चित्र 13.21)

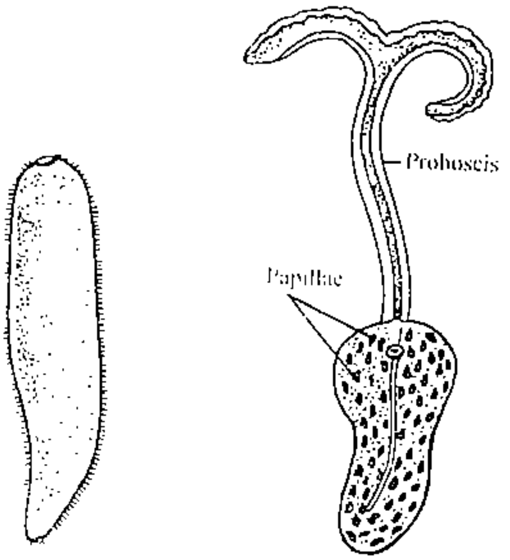

चित्र 13.21 : बोनेलिया। (a) नर, बहुत छोटा सूक्ष्मदर्शीय (0.5 mm लम्बा) जिसके अधिकांश भीतर अंग केवल जनन से संबंधित अंगों को छोड़कर अपकर्षित हो जाते हैं। (b) मादा बड़ी (5 cm लम्बी) होती है जो अपने नर साथी को अपने गर्भाशय अथवा सीलोम के भीतर धारण किए रहती है।

4) क्रेफिश पेलीमॉन *(Palaemon)* में निम्नलिखित लैंगिक अंतर पाए जाते हैं:-

i) नर मादा से छोटा होता है।

ii) नर में कीलायुक्त टांगों का दूसरा जोड़ा मादा की अपेक्षा कहीं ज्यादा लम्बा होता है एवं उसके ऊपर घने कांटे और शूक बने होते हैं।

iii) नर के दूसरे उदर उपांग में एक अतिरिक्त प्रवर्ध ऐपेंडिक्स मैस्कुलाइना (appendix masculina) बना होता है।

5) कीट: अधिकतर कीटों में लैंगिक भेद विशेषकर उसके बाह्य जननांगों में पाया जाता है। सामान्य काकरोच को सरलता से पकड़ा जा सकता और उसका परीक्षण किया जा सकता है। नर काकरोच पेरिप्लेनेटा अमेरिकाना *(Periplaneta americana)* में एक जोड़ी गुदा प्रशूक (anal styles) नौवें स्टर्नम से पीछे को निकले होते हैं। मादा में एक कहीं ज़्यादा बड़ा (नौकाकार) VII वां स्टर्नम होता है, जो एक जनन-कोष्ठ बनाता हुआ VIII वें तथा IX वें स्टर्नम को भीतर छिपाए रहता है। (चित्र 13.22a)

मच्छरों में नर के ऐंटेना अधिक रोमिल और सघनत: पिच्छकी (plumose) होते हैं (चित्र 13.22b)। बॉम्बिक्स *(Bombyx)* के नर में ये कंकती (comb-like) (चित्र 13.22c) होते हैं तथा कुछ अन्य नर शलभों (माथों) में जैसे कि सैटर्निया *(Saturnia)* में ये द्विकंकती (bipectinate) होते हैं।

अनेक डिप्टेरनों में नर में कहीं ज़्यादा बड़ी आंखें होती हैं (पूर्णदृक्) (holoptic) जो लगभग एक-दूसरे को छूती होती हैं जब कि मादाओं में वे छोटी और एक दूसरे से स्पष्टत: पृथक होती है।

6) मौलस्कों में एक सेफ़ैलोपौड आर्गोनाटा *(Argonauta)* जिसे प्रचलित तौर पर "पेपर-नौटिलस" कहते हैं, में बहुत स्पष्ट लैंगिक द्विरूपता पायी जाती है। इसका नर छोटा मात्र लगभग 2 cm होता है और उसके शरीर पर कवच नहीं होता जब कि मादा उससे लगभग 8 गुना अधिक बड़ी होती है एवं उसके शरीर पर एक पतला पारदर्शी कवच होता है (चित्र 13.23)।

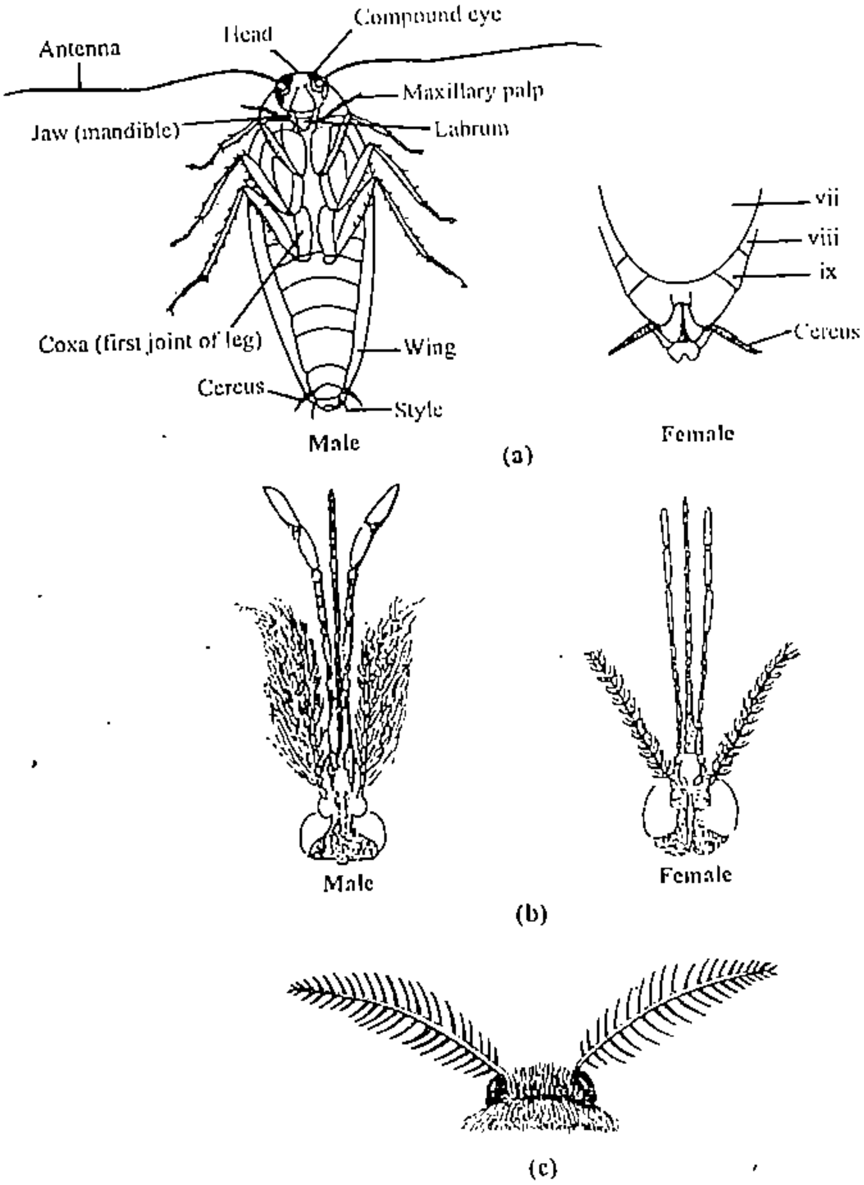

चित्र 13.22 : पेरिप्लैनेटा *अमेरिकाना* । (a) नर का अधर दृश्य, इसे IX वें स्टर्नम के पीछे को निकले हुए एक जोड़ी गुदा प्रशूकों से पहचाना जा सकता है। मादा के शरीर के अंतिम सिरे का अधर दृश्य जिसमें बड़ा हो गया VII वां स्टर्नम दिखायी पड़ रहा है तथा गुदा प्रशूक नहीं होते । (b) नर तथा मादा मच्छर के ऐंटेना। (c) - *बॉम्बिक्स* के ऐंटेना।

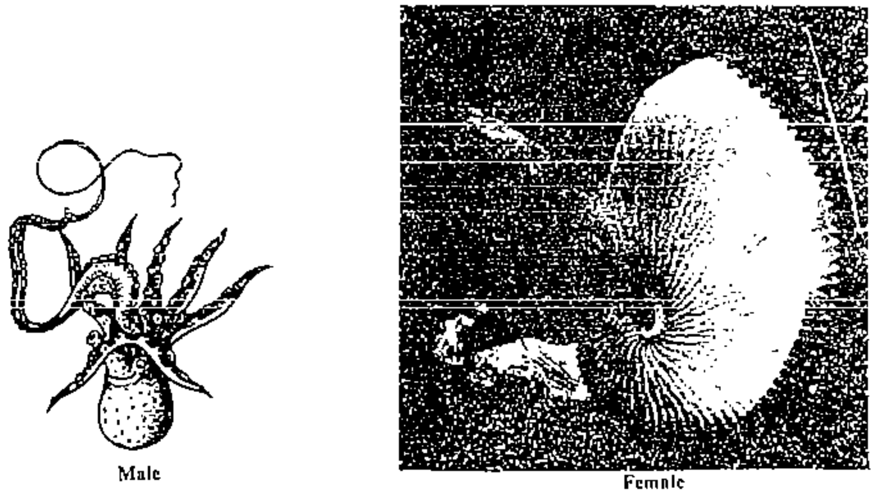

चित्र 13.23 : *आर्गोनाटा*, नर तथा मादा।

13.5.3 लैंगिक जनन के प्रतिरूप

अत्यधिक विविध अकॉर्डेट जो प्रोटोज़ोआ से इकाइनोडर्मेटा तक नाना प्रकार के होते हैं, इनमें लैंगिक जनन के प्रतिरूप भी भांति-भांति के पाए जाते हैं। इनमें से मुख्य प्ररूप इस प्रकार हैं :-

I) युग्मक-संलयन (सिनगैमी, syngamy)- शुक्राणु अण्डे के साथ संलयन करता है। इससे दो घटनाएं होती हैं, एक तो पैतृक केंद्रक का मातृक केंद्रक के साथ संयोजन होना (केंद्रकसंलयन, karyogamy) और दूसरा दोनों युग्मकों के साइटोप्लाज़्मों का संलयन (जीवद्रव्यसंलयन, plasmogamy)। युग्मक-संलयन से निषेचन सम्पन्न होकर युग्मज बन जाता है जिसमें परिवर्धन होकर नये प्राणी बन जाते हैं।

युग्मकों के आकार और उनकी आकृति पर निर्भर करते हुए युग्मक-संलयन को तीन प्रकार में उपविभाजित किया जा सकता है (चित्र 13.24)।

i) समयुग्मन (Isogamy) - आकारिकीय दृष्टि से युग्मक समान होते हैं हालांकि हो सकता है कि कार्यिकीय तथा जैवरसायन गुणधर्मों में वे भिन्न हों। उदाहरण *मॉनोसिस्टिस* के नर तथा मादा युग्मकजनकों से बनने वाले युग्मक।

ii) असमयुग्मन (Anisogamy) - युग्मक आकार और संरचना में भिन्न होते हैं तथा इन्हें सामूहिक रूप में असमयुग्मक कहते हैं। इनमें से छोटे वाले युग्मक प्रायः अधिक बहुसंख्यक और गतिमान होते हैं। इन्हें नर युग्मक कहते हैं (अथवा सूक्ष्मयुग्मक जैसे कि प्रोटोज़ोअनों में, या शुक्राणु जैसे कि मेटाज़ोअनों में)। सूक्ष्म - तथा गुरूयुग्मकों के संलयनके असमयुग्मन कहते हैं। यह प्रोटोज़ोअनों में अक्सर होता पाया जाता है जैसे कि *प्लाज़्मोडियम* तथा *वॉर्टीसेला* में । उच्चतर फ़ाइलमों में असमयुग्मन शब्द की बजाए निषेचन शब्द का प्रयोग किया जाता है।

iii) अंडयुग्मन (Oogamy) - अंडयुग्मन में एक युग्मक सदैव गतिशील तथा सामान्यतः छोटा होता है (शुक्राणु) और दूसरा सदैव गतिहीन एवं बड़ा होता है (अंडा)। सभी मेटाज़ोअनों में अंडयुग्मन ही होता है। अधिकतर पूर्णतः थलीय अकॉर्डेटों जैसे कि कीटों में कवचयुक्त अण्डे होते हैं। कवच में एक सूक्ष्म छिद्र (अंडद्वार, micropyle) होता है जो शुक्राणु के प्रवेश के लिए होता है ताकि निषेचन हो सके।

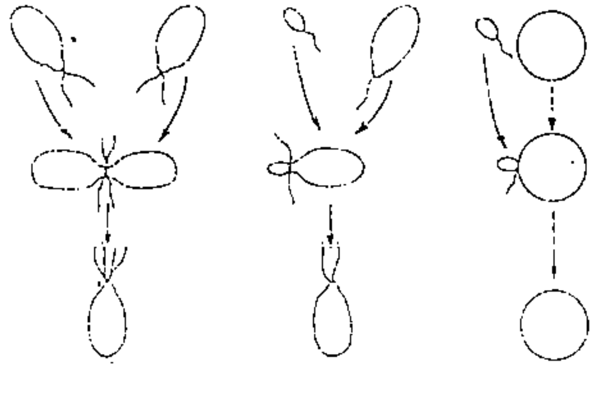

(a) (b) (c)

चित्र 13.24 : निषेचन के तीन प्ररूप। (a) युग्मक एक ही आकार के और गतिशील हो सकते हैं (समयुग्मन); (b) अलग-अलग आकार के हो सकते हैं मगर गतिमान होते हैं (असमयुग्मन) अथवा (c) भिन्न आकार के होते हैं और उनमें से एक ही गतिमान होता है (अंडयुग्मन)।

II **संयुग्मन (Conjugation)** संयुग्मन एक ही स्पीशीज के दो प्राणियों के बीच एक ऐसा अस्थायी संयोजन होता है जिसमें मूल गुरूकेंद्रक विघटित हो जाता, सूक्ष्मकेंद्रक से एक नया गुरूकेंद्रक बन जाता है तथा दोनों संयुग्मी केंद्रकीय पदार्थ का आदान-प्रदान करते हैं। एक व्यष्टि का नर केंद्रक विपरीत व्यष्टि में चला जाता है और वहां उसके स्थिर मादा केंद्रक के साथ समेकित हो जाता है। यह प्रक्रिया पारस्परिक होती है तथा संयुग्मी एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं। इसके बाद संयुग्मियों में विभाजन होते हैं। *पैरामीशियम* एक अच्छा उदाहरण है। संयुग्मन के विस्तृत विवरण के लिए खण्ड 1 के उपविभाग 2.3.7 के चित्र 2.12 को देखिए। ऐसे उदाहरणों में संयुग्मन एक प्रकार का पुनर्यौवनीकरण प्रदान करता है। लगभग 350 या उससे भी ज्यादा पीढ़ियों तक लगातार विभाजन द्वारा एक के बाद एक लगातार अलैंगिक जनन होते रहने से जीर्णता प्रारम्भ हो जाती है तथा जाति में दुर्बलता आ जाती है जिसमें अन्यथा जाति ही समाप्त हो सकती है।

III **स्वयुग्मन (Autogamy)** जाति स्वयुग्मन *पैरामीशियम* सहित अनेक सिलिएट प्रोटोज़ोअनों में पाया जाता है। स्वयुग्मन में केंद्रकों का वही आचरण होता है जो संयुग्मन में हुआ था बस अंतर इतना है कि इसमें वह सब-कुछ अकेली व्यष्टियों के बीच सूक्ष्मकेंद्रकीय पदार्थ का विनिमय नहीं होता (चित्र 13.25) क्योंकि इसमें अकेली एक ही व्यष्टि निहित होती है।

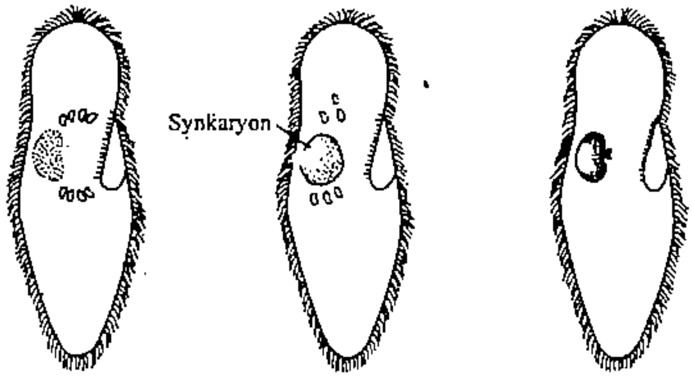

चित्र 13.25 : *पैरामीशियम* में स्वयुग्मन। गुरूकेंद्रक का अपघटन हो जाता है और सूक्ष्मकेंद्रक में मीयोसिस होकर 8 या अधिक केंद्रक बन जाते है (A)। इनमें से दो केंद्रक संलयित होकर एक युग्मज केंद्रक बनाते हैं (B)। शेष अपघटित हो जाते हैं। संकेंद्रक (सिनकेरियॉन) में विभाजन होकर एक नया सूक्ष्मकेंद्रक तथा गुरूकेंद्रक बन जाते हैं।

13.5.4 जनन अंग

अधिकांश मेटाज़ोअनों में गोनड सुस्पष्ट बने होते हैं। वृषण तथा अण्डाशय अलग-अलग आकृतियां तथा व्यवस्थाएं ग्रहण किए हुए हैं। कुछ उभयलिंगियों में (भाग 13.6 देखिए) एक ही जनन ऊतक में एक भाग से शुक्राणु और दूसरे से अंडे बनते हैं।

स्पंजों में गोनड सुनिश्चित नहीं होते। शुक्राणु तथा अण्डे कीपाणुओं (choanocytes) तथा आद्याणुओं (archeocytes) से बनते हैं जो शुक्राणुजनों (स्पर्मेटोगोनिया) में परिवर्तित होते हैं। शुक्राणु जलधाराओं के साथ स्पंज के शरीर से बाहर निकल जाते हैं। वे अन्य स्पंजो के कीपाणुओं में प्रवेश करते हैं जो इन शुक्राणुओं को अण्डे में ले जाते है इस प्रकार निषेचन की क्रिया कीपाणुओं के माध्यम से *स्व-स्थाने* सम्पन्न होती है।

नाइडेरियनों में वृषण तथा अण्डाशय स्पष्ट बने होते हैं। *हाइड्रा* की कुछ स्पीशीज़ में वृषण तथा अण्डाशय दोनों एक ही व्यष्टि में बनते हैं (उभयलिंगाश्रयी, monoecious, द्विलिंगी, bisexual) परंतु, अधिकतर नाइडेरियनों में ये अलग-अलग व्यष्टियों में पाए जाते हैं (पृथक्लिंगाश्रयी, dioecious, एकलिंगी,

unisexual)। *हाइड्रा* में अण्डाशय के भीतर बना अकेला अण्डा एक भिन्न हाइड्रा से आए हुए शुक्राणु द्वारा *स्व स्थाने* निषेचित होता है (चित्र 13.26)। कॉलोनीय नाइडेरियनों में गोनड मेडुसों पर अरीय नालों के नीचे स्थित अंतराली कोशिकाओं (interstitial cells) से बनते हैं ये अवछत्र-एपिडर्मिस (subumbrellar epidermis) से बनते हैं। निषेचन सामान्यतः बाह्य, और जल में होता है (देखिए खण्ड 2 इकाई 4, चित्र 4.14)।

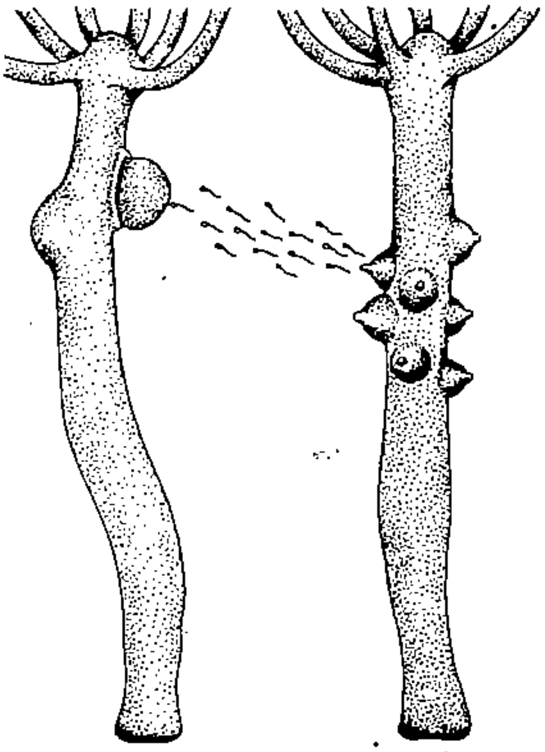

चित्र 13.26 : *हाइड्रा* में लैंगिक जनन। नर *हाइड्रा* वृषण से आए हुए शुक्राणु मादा *हाइड्रा* के एकल अण्डाणु को निषेचित करते हैं।

लगभग सभी उच्चतर अकॉर्डेटों मे जनन-तंत्र से संबंधित तीन प्रकार की संरचनाएं पायी जाती हैं- गोनड (वृषण अथवा अण्डाशय), जननवाहिनियां (शुक्रवाहिनियां अथवा अंडवाहिनियां) तथा मैथुन उपकरण। अकॉर्डेटों के नर तथा मादा जनन-अंगों के कुछ उदाहरण चित्र 13.27 से 13.32 में दिए गए हैं

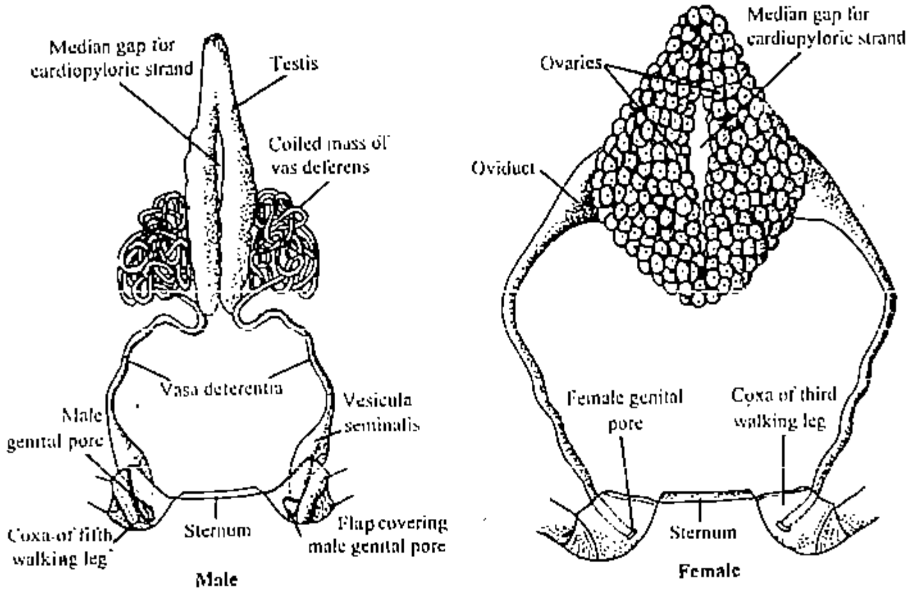

चित्र 13.27 : *पेलीमॉन* (झींगा), नर तथा मादा जनन-तंत्र।

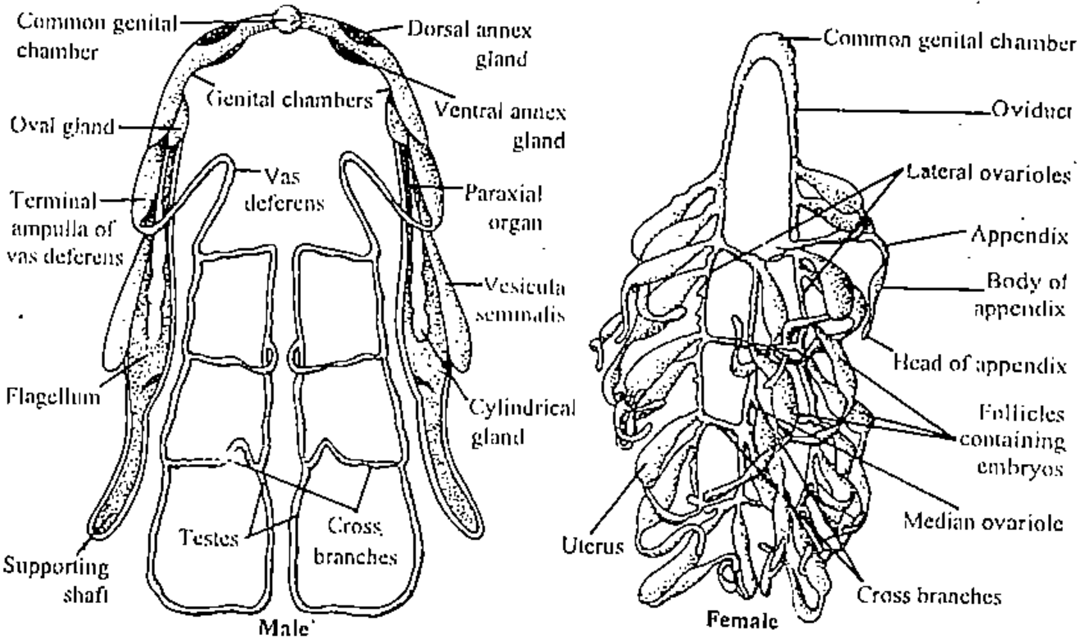

चित्र 13.28 : बिच्छू , नर तथा मादा जनन अंग।

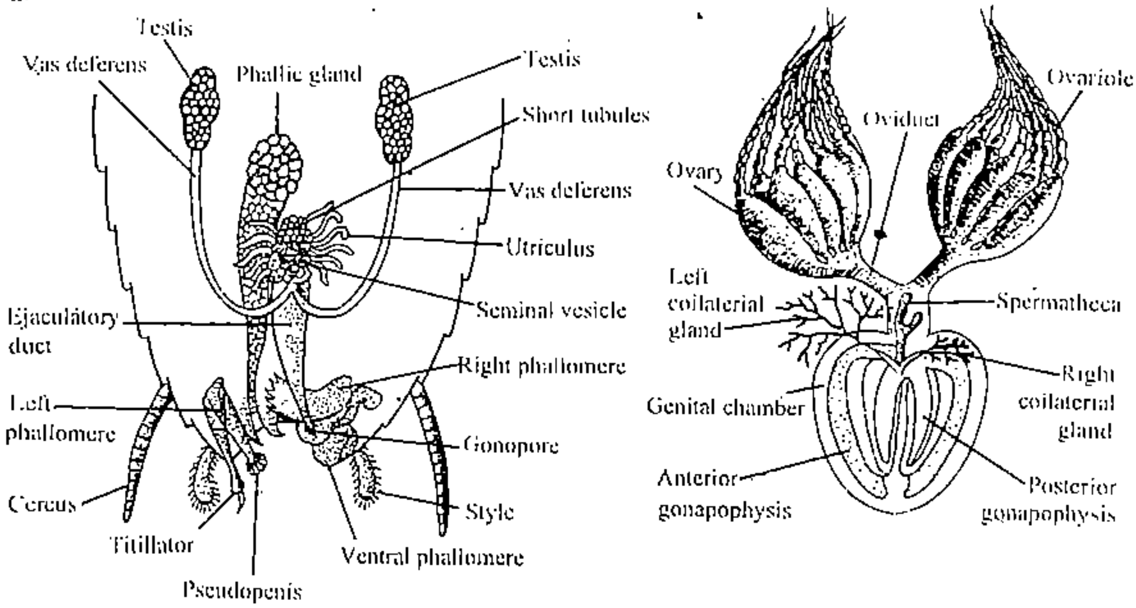

चित्र 13.29 : काकरोच, नर तथा मादा जनन अंग।

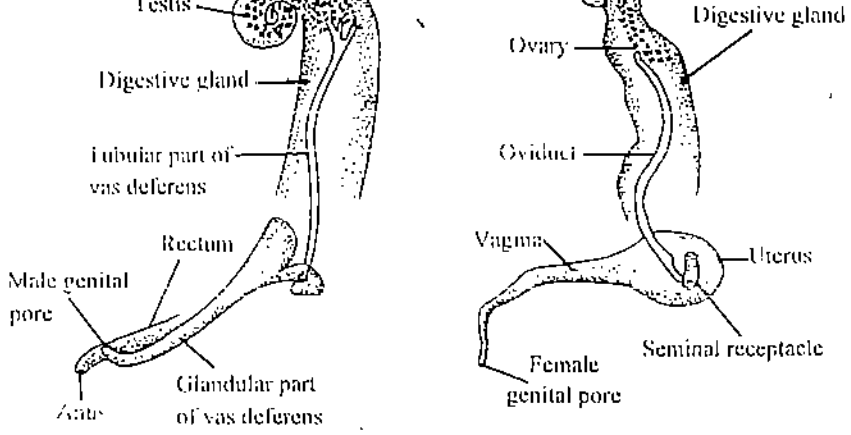

चित्र 13.30 : पल्मोनेट घोंघा, जनन अंग।

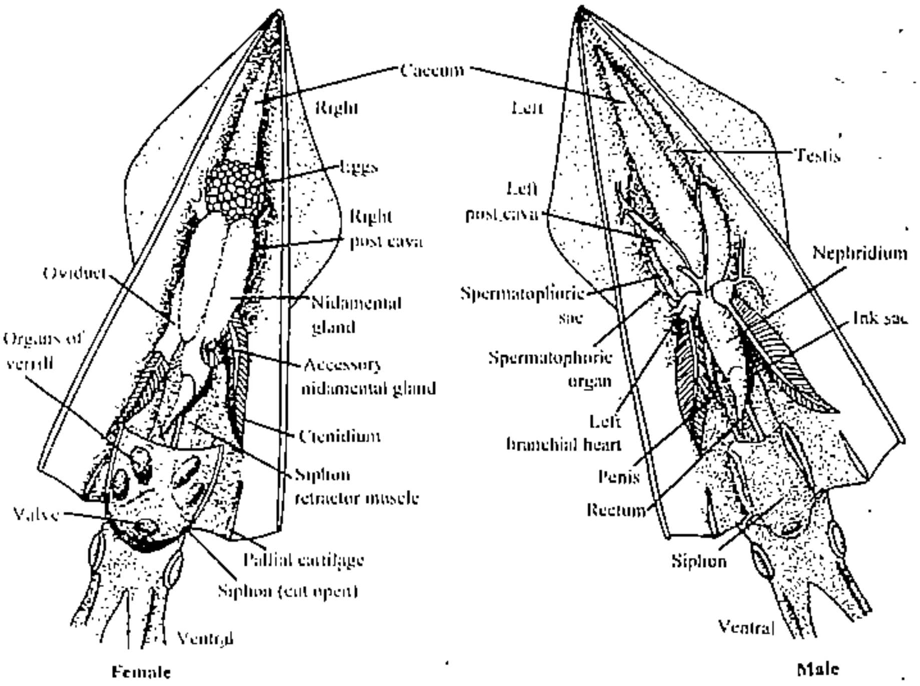

चित्र 13.31 : सेफैलोपौड, जनन अंग।

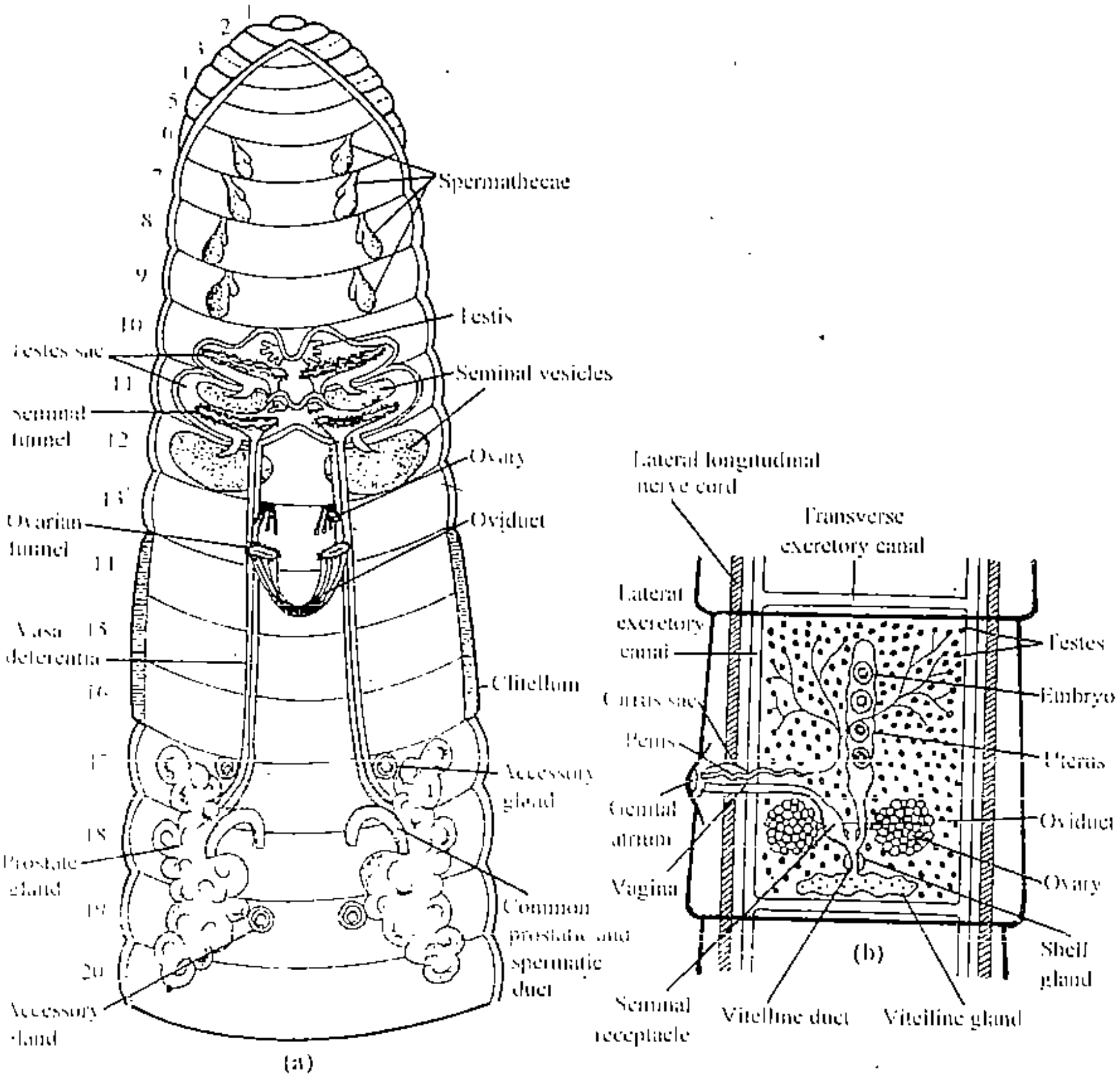

चित्र 13.32 : (a) केचुए के जनन अंग (उभयलिंगी) (b) फ़ीताकृमि, जिसमें एक परिपक्व प्रोग्लौटिड में नर और मादा दोनों जनन अंग दिखायी पड़ रहे हैं (उभयलिंगी)।

जिन स्पीशीज़ में अण्डों का निषेचन शरीर के भीतर होता है उनमें सामान्यत: सहायक अंग भी होते हैं जिनका होना उनकी जनन कार्यिकी के कुछ अति महत्वपूर्ण पहलुओं के लिए अपरिहार्य है। उदाहरणत: अण्डों के ऊपर सुरक्षाकारी तथा पोषण पदार्थों के आवरणों को बनाना, शुक्राणुओं का किसी तरल निलम्बन में अथवा केप्सूलित स्वरूप में परिवहन, और मादा में शुक्राणुओं का विशिष्ट कक्षों में भंडारण एवं शुक्राणुओं का पोषण की आपूर्ति कराना। ये सहायक ग्रंथियां सामान्यत: जनन वाहिनियों में अथवा उनके सहारे-सहारे और कुछ मामलों में गोनडों के भीतर होती है। इनमें से अनेक ग्रंथियां जनन-तंत्र के बाहर हो सकती हैं मगर वे अपने स्राव जनन वाहिनियों में छोड़ती हैं

जिन प्राणि-समूहों में युग्मक बाहर जल में छोड़े जाते हैं (नाइडेरिया तथा इकाइनोडर्मेटा) उनमें सहायक लिंग ग्रंथियां नियमत: या तो अनुपस्थित होती हैं या ह्रासित होती है। उधर दूसरी ओर भीतरी निषेचन होने वाले प्राणियों (जैसे प्लैटिहेल्मिंथीज़, मौलस्का, ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा) में ये सुविकसित होती हैं।

13.5.6 मैथुन तथा निषेचन

सभी प्राणियों में शुक्राणु गतिशील होते हैं और उन्हें ही घूम-फिर कर अण्डों को तलाशना होता और उन्हे निषेचित करना होता है। इसके लिए जलीय पर्यावरण का होना अनिवार्य है। तरल माध्यम की आवश्यकता ने दो मूलभूत मैथुन प्रतिरूपों को जन्म दिया है।

1) बाह्य निषेचन- मैथुन साथी जल में ही एक दूसरे के समीप आते हैं और अपने अंडों तथा शुक्राणुओं को एक ही समय पर जल में छोड़ते हैं।

2) आंतरिक निषेचन- मैथुन साथी शारीरिक सम्पर्क बनाते और मैथुन क्रिया करते हैं जिसके दौरान नर प्राणी अपने शुक्राणुओं को सीधे-मादा की जनन वाहिनियों में पहुंचा देते हैं। वाहिनियों में नीचे आते अंडाणु निषेचित हो जाते हैं। भीतरी निषेचन थलीय प्राणियों का एक ख़ास लक्षण है मगर कई जलीय उदाहरणों में भी होता पाया जाता है। आंतरिक निषेचन से प्राय: नर में एक अंतर्वेशी अंग अथवा शिश्न (penis) बन गया होता है। अकॉर्डेटों में इस प्रकार के मैथुन अंग नानाविध रूप में पाए जाते हैं जैसे कुछ कृमियों में सिर्रस (cirrus) तथा कॉकरोच में एक सम्मिश्र फ़ैलस शिश्न (phallus), आदि।

अनेक अकॉर्डेटों में शुक्राशय (spermathecae) होते हैं जिनमें मैथुन के दौरान प्राप्त हुए शुक्राणुओं को भण्डारित किया जाता है। जैसे-जैसे अण्डे वाहिनियों में से नीचे को आते जाते हैं वैसे-वैसे शुक्राशयों में से शुक्राणु छोड़े जाते रहते हैं जिससे अण्डों का निषेचन होता जाता है। मधुमक्खी की रानी केवल एक बार मैथुन करती है और उसी से वह इतने शुक्राणु प्राप्त कर लेती है कि उसके अपने सम्पूर्ण जनन-काल के 4-5 वर्षों तक पर्याप्त होते हैं।

शुक्रधर

अनेक अकॉर्डेट मैथुन के समय स्वतंत्र शुक्राणु नहीं निकालते। उनमें समूह बनाने की क्रियाविधि होती है और बहुत से शुक्राणुओं को एक साथ एक आच्छद के भीतर बंद कर दिया जाता है, यह आच्छद अक्सर एक जिलेटिनी पदार्थ का बना होता है। इस प्रकार के पिंडों को शुक्रधर (spermatophore) कहते हैं। अधिकतर कीट, कनखजूरे और कुछ मौलस्क शुक्रधर बनाते हैं। नर कनखजूरा एक शुक्रधर निकालता है और उसे पहले से बनाए एक जाल के ऊपर रख देता है। मादा इस शुक्रधर को उठा लेती है और उसे अपने जनन छिद्र पर रख लेती है। अनेक नर सेफ़ैलोपोडों में जैसे कि *लोलिगो (Loligo)* तथा *आर्गोनाटा (Argonauta)* में एक भुजा इस प्रकार रूपांतरित हो जाती है कि उसके द्वारा मादा के भीतर शुक्रधर पहुंचाए जा सकें। इस प्रकार की भुजा को *हेक्टोकोटिलाइज़्ड (hectocotylised)* भुजा यानी निषेचनांगी भुजा कहते हैं। मादा के भीतर शुक्रधर को छोड़ देने के बाद इसमें से शुक्राणु निकलते हैं जो मादा वाहिनियों अथवा शुक्राशय में पहुंच जाते हैं।

13.5.7 अंडप्रजता, सजीवप्रजता तथा अंडसजीवप्रजता

बाह्य निषेचन के सभी तथा आंतरिक निषेचन के कुछ मामलों में निषेचित अण्डे (युग्मज अर्थात ज़ाइगोट) का परिवर्धन मां के शरीर के बाहर होता है। अण्डा या तो जल में या मिट्टी में, पौधों पर या कुछ खास परजीवियों के मामलों में उनके परपोषियों के शरीर के भीतर दिए जाते हैं। ऐसे सभी प्राणियों को **अंडप्रज (oviparous)** यानी अंडे देने वाले कहा जाता है।

कुछ अपवादस्वरूप अकॉर्डेटों में **सजीवप्रजता (vivipary)** पायी जाती है; यानी वे ऐसे शिशुओं को जन्म देते हैं जो परिवर्धन के दौरान मादा के जनन पथों में पोषण प्राप्त करते हैं। इस व्यवस्था के कुछ उदाहरण कीटों में पाए जाते हैं जैसे कि सेट्सी मक्खी (*ग्लॉसिना, Glossina*) में।

एक तीसरी दशा **अंडसजीवप्रजता (ovoviviparity)** होती है। इसमें निषेचन के बाद युग्मज मादा के जनन-तंत्र के भीतर तो बनाए रखा जाता लेकिन पोषण प्रदान करने वाला मातृक ऊतकों तथा भ्रूण के बीच कोई सीधा संयोजन नहीं बना होता। यहां उसके भीतर परिवर्धन होता हैं अंतत: अण्डों में से मादा के शरीर के भीतर ही रहते हुए बच्चे निकलते हैं और शिशु का "जन्म" होता है। यह उदाहरणत: कुछ मक्खियों में होता है।

बोध प्रश्न 3

1) अण्डों तथा शुक्राणुओं में कोई तीन अंतर बताइए:

....

....

....

....

....

....

....

2) कॉलम क में दिए गए लक्षणों में को कॉलम ख में दिए प्राणियों से मिलाइए :-

कॉलम क (लक्षण)	कॉलम ख (प्राणी)
1) गुद प्रशूक	क) *ऐस्कारिस* (नर)
2) वक्र पुच्छ सिरा	ख) *शिस्टोसोमा* (नर)
3) कवच	ग) मच्छर (नर)
4) मादाधर नलिका	घ) काकरोच (नर)
5) पिच्छकी ऐंटेना	च) *आर्गोनाटा* (मादा)

3) निम्न में से प्रत्येक के लिए अकॉर्डेट प्राणियों में से एक-एक उदाहरण दीजिए:-

i) एपिटोकी

ii) समयुग्मन

iii) निषेचनांगी भुजा

iv) सजीवप्रज दशा

....

....

....

....

....

13.6. उभयलिंगता

अब तक आप पूरी तरह समझ गए होंगे कि लैंगिक प्रजनन निश्चित तौर पर अधिक उन्नत प्रकार का जनन होता है इसके द्वारा भिन्न आनुवंशिक भण्डारों में से जीनों का मिश्रण होता है तथा इसी के द्वारा पर्यावरण के प्रति अधिक अनुकूलन-क्षमता एवं विकास भी संभव होते हैं। इसमें निहित लैंगिक कोशिकाएं (युग्मक) अर्थात अण्डे और शुक्राणु भिन्न व्यष्टियों से यानी मादा और नर से आते हैं। जिन स्पीशीज़ में सेक्स अलग-अलग होती हैं उन्हे पृथक्लिंगाश्रयी (dioecious, di = दो, oikos = घर) कहते हैं, ऐसी स्पीशीज़ को एकलिंगी भी कहते हैं यानी इसकी व्यष्टियों में केवल एक ही सेक्स (लिंग) होती है। मगर अनेक अकार्डेटों में एक अलग ही प्रकार की दशा पायी जाती है, जिसमें दोनों प्रकार के अंग (वृषण तथा अण्डाशय) एक ही व्यष्टि में पाए जाते हैं। इस दशा को द्विलैंगिकता (bisexualism) अथवा अधिक प्रचलित शब्द उभयलिंगता (hermaphroditism) कहा जाता है, एवं ऐसी व्यष्टियों को उभयलिंगाश्रयी (monoecious) (mono: एकल, oikos: घर) कहा जाता है। अंग्रेजी का शब्द "हर्मेफ्रोडाइट" ग्रीक पुराण से आया है जिसमें "हर्मीस" एवं "ऐफ्रोडाइट" के बेटे में नर तथा मादा दोनों ही प्रकार के लैंगिक लक्षण मौजूद थे।

अकॉर्डेटों में उभयलिंगता आम पायी जाती है। सबसे आरम्भिक रूप में इसकी झलक *पैरामीशियम* जैसे सिलिएट प्रोटोज़ोअनों तक में पायी जाती हैं *पैरामीशियम* में संयुग्मन के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें नर और मादा दोनो प्रकार के पूर्व केंद्रक मौजूद होते हैं।

पैरामीशियम में स्वयुग्मन के दौरान एक अकेली व्यष्टि में भी सूक्ष्मकेंद्रक में वही परिवर्तन होते हैं जो अन्यथा संयुग्मन के दौरान दो व्यष्टियों में होते हैं। मगर यहां चूंकि दूसरी व्यष्टि बीच में नहीं आती इसलिए इस स्थिति को स्वनिषेचन के जैसा माना जा सकता है।

मेटाज़ोआ में उभयलिंगता नियमतः अनेक समूहों में पायी जाती है जैसे चपटे कृमियों (प्लैटिहेल्मिंथीज़), गैस्ट्रोपोडों में पल्मोनेट-प्राणियों, केचुओं और जोंको (एनेलिडा) आदि में। इनके अलावा उभयलिंगता कुछ अन्य प्राणियों में भी पायी जाती है जैसे बाइवैल्व मोलस्कों में।

उभयलिंगता के प्रकार

गोनडों के परिपक्वन होने के समय के आधार पर उभयलिंगता दो प्रकार की होती है:-

1) **समकालिक उभयलिंगता (Simultaneous hermaphroditism)** : इनमें नर और मादा गोनड दोनों ही एक साथ परिपक्व होते हैं। इसके कुछ सामान्य उदाहरण हैं- यकृत-पर्णाभ (ट्रीमैटोडा), फीताकृमि (सेस्टोडा), केचुए, जोंक पल्मोनेट गैस्ट्रोपौड, आदि

2) **पुंपूर्वी उभयलिंगता (Protandrous hermaphroditism)** (ग्रीक protos = पहले, andr = पुरुष/नर)। नर गोनड पहले परिपक्व होते हैं। यह दशा लिम्पेटों तथा स्लिपर-शेल *(क्रेपिड्यूला)* नामक कुछ मौलस्कों में आम पायी जाती है।

उभयलिंगियों में मैथुन तथा निषेचन

उभलिंगियों में मैथुन होना आम पाया जाता है। चपटे कृमियों में एक सिर्रस अथवा शिश्न होता है जिसे दूसरे कृमि के गर्भाशयी/योनिमार्ग छिद्र में प्रवेश कराया जाता है। मैथुन के बाद शुक्राणु शुक्राशय में संचित कर लिए जाते हैं। केचुओं में (इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 2 के चित्र 5.11 को देखिए) जनन पैपिले मैथुन में सहायता करते हैं। इनमें एक केचुए के नर जनन छिद्र से निकले शुक्राणुओं को दूसरे केचुए के शुक्राशयों में प्राप्त किया जाता और वहीं संचित कर लिया जाता है।

इसी प्रकार फ़ीताकृमियां में भी नियमत: परनिषेचन होता है जिसमें यह क्रिया परपोषी की आहार-नाल के भीतर रह रहे या तो दो सहवर्ती व्यष्टियों के बीच होती है या ऐसा भी पाया गया है कि एक ही फ़ीताकृमि के दो भिन्न प्रोग्लौटिडों के बीच स्वनिषेचन हो जाता है।

अधिकतर उभयलिंगी प्राणियों में पुंपूर्वी दशा पायी जाती है यानी नर गोनड पहले परिपक्व होते हैं और इस दशा से परनिषेचन सुनिश्चित हो जाता है। पुंपूर्वी उभयलिंगियों में गोनड (वृषण तथा अण्डाशय) हो सकता है अलग-अलग अंग हों और वे अलग समय पर परिपक्व होते हों। कुछ विरल उदाहरण हैं जैसे कि कुछ ख़ास गैस्ट्रोपोड मौलस्कों में एक ही गोनड अंडवृषण (ovotestes) होता है जिसमें अण्डे और शुक्राणु दोनों ही बनते हैं। परंतु यह गोनड शुक्राणुओं को पहले तथा अण्डों को बाद में बनाता है।

बोध प्रश्न 4

बताइए कि निम्न कथन सही है या गलत :-

i) केचुओं को द्विलिंगी, उभयलिंगी या उभयलिंगाश्रयी कहा जा सकता है

ii) *पैरामीशियम* में होने वाला स्वयुग्मन एक प्रकार का परनिषेचन है

iii) अधिकतर उभयलिंगियों में मादा गोनड पहले परिपक्व होते हैं।

13.7 अनिषेकजनन

अनिषेकजनन (parthenogenesis) का अर्थ है बिना निषेचन हुए मात्र मादा युग्मक (अण्डे) से ही परिवर्धन होना। अकॉर्डेटों में यह दशा कई प्राणि-वर्गों में पायी जाती है जैसे कुछ क्रस्टेशिया और अनेक कीटों में जैसे कि एफ़िडों (पादप यूकाओं, plant lice), थ्रिप्स (thrips), चींटियों तथा मधुमक्खियों आदि में,

अनिषेकजनन तीन प्रकार के होते हैं :-

1) अविकल्पी अनिषेकजनन **(Obligate parthenogenesis)** - यह कुछ कीटों तथा कुछ ब्रैकियोपोडों (क्रस्टेशिया) में पाया जाता है। इनमें नर होते ही नहीं और अनिषेकजनन ही जनन की एक मात्र विधि है।

2) विकल्पी अनिषेकजनन **(Facultative parthenogenesis)** - इस विधि में अण्डें दोनों तरह से परिवर्धित हो सकते हैं- निषेचित होकर और बिना निषेचन के भी। उदाहरण के लिए *डैफ़्निया (Daphnia)* नामक "अलवणजलीय पिस्सू" में कई-कई पीढ़ियों तक ऐसे अण्डे पैदा किए जाते रह स हैं जिनसे केवल मादाएं ही पैदा होती हैं। मगर कभी-कभार नर भी बन जाते हैं। ऐसा होने पर निषेचित अण्डे बनते हैं। कुछ कीटों जैसे कि एफ़िडों (पादप यूकाओं) में जनन एक जटिल व्यवस्था वाला होता है। इनमें अनिषेकजनन लैंगिक प्रावस्था के साथ एकांतर क्रम में होता रहता है।

   मधुमक्खी (*एपिस* जात, *Apis* sp.) में अनिषेचित और निषेचित दोनों प्रकार के अण्डे दिए जा सकते हैं। निषेचित अण्डों से मादाएं (कर्मी तथा रानियां) बनती हैं और अनिषेचित अण्डों से नर (ड्रोन) बनते हैं।

3) अनिषेकपुंजनन **(Arrhenotoky)** : इस विधि में अगुणित अण्डे का निषेचन नहीं होता तथा इससे केवल नर ही पैदा होता है।

4) अनिषेकस्त्रीजनन **(Thelytoky)** : अनिषेचित अण्डों से केवल मादाएं ही बनती हैं।

कृत्रिम अनिषेकजनन (Artificial parthenogenesis)

अनेक मामलों में ऐसे अण्डों को, जिनमें सामान्यत: केवल निषेचन के बाद ही परिवर्धन होता है, कुछ ख़ास उपचार करके उन्हें प्रायोगिक तौर पर अनिषेकजननीय विधि से परिवर्धित होने के लिए प्रेरित किया जा

सकता है। इसे कृत्रिम अनिषेकजनन कहते हैं। उदाहरण के लिए, समुद्री अर्चिन के अण्डों को कई प्रकार के उपचारों से अनिषेकजनन रूप में परिवर्धित किया जा सकता है जैसे कुछ ख़ास तापमानों पर रखकर, विद्युत झटके देकर, पराबैंगनी प्रकाश से अथवा ईथर, ऐल्कोहॉल, लैक्टिक एसिड से प्रभावित करके या चुभाए जाने के समान यांत्रिक उद्दीपन, आदि से प्रभावित करके।

बोध प्रश्न 5

1) निम्न के नाम लिखिए :

   i) कुछ स्पीशीज़ में पाया जाने वाला वह अनिषेकजनन जो पर्यावरण संबंधी दशाओं पर निर्भर रहते हुए हो भी सकता है या नही भी हो सकता।

   ii) वह अनिषेकजनन जिससे केवल नर प्राणी ही बनते हैं।

   iii) किन्हीं तीन अकॉर्डेटों के नाम बताइए जिनमें अनिषेकजनन बहुत सामान्यत: पाया जाता है।

....

....

....

....

....

....

13.8 पीढ़ी-एकांतरण (मेटाजेनेसिस)

पीढ़ी एकांतरण (Alternation of generation) (दूसरा नाम मेटाजेनेसिस, metagenesis)प्राणियों में उनके जीवन इतिहासों में पायी जाने वाली उस घटना को कहते हैं जिसमें अलैंगिक पीढ़ी तथा लैंगिक पीढ़ी एकांतर क्रम में यानी एक के बाद एक आती है। इसके कुछ सुपरिचित उदाहरण इस प्रकार हैं:-

प्रोटोज़ोआ

1) एक फ़ोरैमिनिफेरन प्राणी *एल्फिडियम (= पौलीस्टोमेला)* जो उथले समुद्री जल में पाया जाता है, दो स्वरूप वाला है - गुरूवेश्मी (macrospheric) तथा लघुवेश्मी (microspheric)। इन दोनों ही स्वरूपों में एक कवच होता है जिसमें अनेक कक्ष बने होते हैं (चित्र 13.33)। गुरूवेश्मी स्वरूप में एक बड़ा आरम्भिक कक्ष अथवा प्रोलॉक्यूलम (proloculum) एवं एक बड़ा केंद्रक होता है। लघुवेश्मी स्वरूप में एक छोटा प्रोलॉक्यूलम तथा बहुत से छोटे-छोटे केंद्रक होते हैं। गुरूवेश्मी व्यष्टि लैंगिक प्रावस्था का निदर्श है और इससे कशाभित असमयुग्मक (अगुणित) बनते हैं। इन असमयुग्मकों के जोड़े समेकन करके एक युग्मज (ज़ाइगोट) बनाते हैं। जो अपना जीवन एक छोटे आरम्भिक कक्ष से शुरू करता है मगर धीरे-धीरे एक बहुकक्षीय कवच बना लेता है तथा इसके एकल केंद्रक में विभाजन हो-होकर बहुत से छोटे केंद्रक बन जाते हैं। यह अवस्था अगैमॉण्ट (**agamont**) होती है। तदुपरात पूर्णविकसित लघुवेश्मी में साइटोप्लाज्मी विभाजन (अलैंगिक जनन) होता है और उससे बनने वाले एकल-केंद्रकित "अमीबुले, **amoebulae**" अथवा स्पोर (बीजाणु) बाहर निकल आते हैं। इनमें से प्रत्येक स्पोर एक आरम्भिक गुरूवेश्मी कक्ष बनाता है और आगे चलकर गुरूवेश्मी स्वरूप बन जाता है। इस प्रकार आप देखेंगे कि इस प्राणी में गुरूवेश्मी (लैंगिक) तथा लघुवेश्मी (अलैंगिक) प्रावस्थाओं का एकांतर क्रम चलता रहता है।

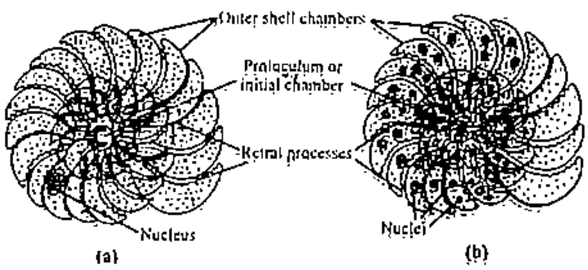

चित्र 13.33 : *एल्फिडियम* a) गुरूवेश्मी तथा (b) लघुवेश्मी स्वरूप।

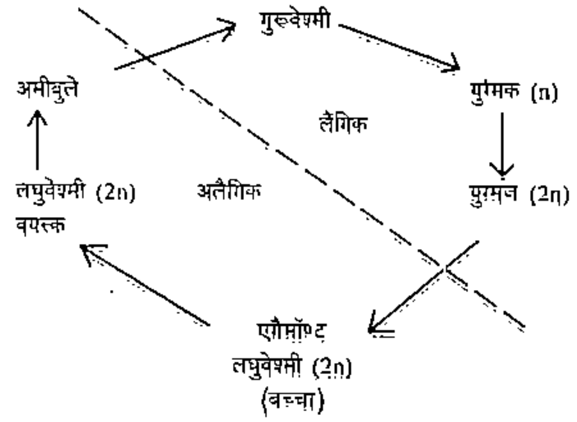

चित्र 13.34 : *एल्फिडियम*, जीवन इतिहास की योजना जिसमें लैंगिक पीढ़ी का अलैंगिक पीढ़ी से पीढ़ी-एकांतरण दर्शाया गया है।

2) मलेरिया परजीवी *प्लाज़्मोडियम (Plasmodium)* (खण्ड 1 की इकाई-2) में लैंगिक चक्र मादा मच्छर के भीतर होता है जिसका आरम्भ मानव परपोषी से प्राप्त सूक्ष्मयुग्मकों तथा गुरूयुग्मकों से होता है। इनमें संलयन होकर युग्मज बनता है। युग्मज में वृद्धि होकर स्पोरोगोनी अर्थात् स्पोरजनन (एक अ॑ चक्र) होता है जिससे स्पोरोज़ॲाइड (बीजाणुक) बनते हैं। जब मच्छर काटता है तब स्पोरोज़ूऑइट मानव परपोषी के भीतर छोड़ दिए जाते हैं। इन स्पोरोजोआइटों में पहले यकृत कोशिकाओं के भीतर शाइज़ोगोनी (विखंडीजनन) होकर मीरोज़ूऑइट (खंडजाणु) बनते हैं। इसके बाद इनमें एक और विखंडीजनन लाल रक्त कोशिकाओं के भीतर हो सकता है। इस प्रकार मच्छर में होने वाले लैंगिक-चक्र के बाद मानव परपोषी के भीतर दो प्रकार के अलैंगिक चक्र होते हैं।

नाइडेरिया

परिपक्व मेडुसाभ जेलीफिशें जैसे कि *ऑरीलिया* लैंगिक अवस्थाएं हैं। अलग-अलग व्यष्टियों (नर और मादा)में बनने वाले शुक्राणु तथा अण्डे जल में छोड़ दिए जाते हैं जो उसके बाद संलयित होकर युग्मज (ज़ाइगोट) बना लेते हैं। युग्मज में परिवर्धन होकर एक स्थानबद्ध पौलिपाभ साइफीस्टोमा बन जाता है जिसमें अनेक अनुप्रस्थ विभाजन होकर एफाइरा बनते हैं, यह प्रक्रिया प्रश्रृंखलन कहलाती है जो एक प्रकार का अलैंगिक जनन होता है। इस प्रकार वयस्क जेलीफिश की लैंगिक पीढ़ी का अलैंगिक पीढ़ी अर्थात साइफीस्टोमा के साथ एकांतर क्रम चलता है । आपको इस पाठ्यक्रम की इकाई 7 से याद होगा कि हाइड्राज़ोअनों में पीढ़ी एकांतरण बहुत सामान्यत: पाया जाता है अतिविशाखित स्थानबद्ध कॉलोनिया जैसे कि *ओबीलिया* की कॉलोनियां अलैगिक पीढ़ी होती हैं। इनसे मेडुसे निकलते हैं जो लैंगिक पीढ़ियां होती हैं । मेडुसों से कालोनियां पैदा होती हैं और कॉलोनियों से मेडुसे जो एक के बाद एक आते रहते है।

बोध प्रश्न 6

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) *एल्फिडियम* में गुरूवेश्मी व्यष्टियां ....प्रावस्था का निरूपण करती हैं जबकि सूक्ष्मवेश्मी व्यष्टियां ....प्रावस्था का निरूपण करती हैं।

ii) *प्लाज़्मोडियम* में स्पोरोगोनी के बाद ....आती है।

iii) *ऑरीलिया* के जीवन-इतिहास में प्रश्रृंखलनी .... अलैंगिक प्रावस्था का निरूपण करता है।

13.9 जनन, जीवन-चक्र तथा लार्वा स्वरूप

अब तक आप भली भांति जान चुके होंगे कि मेटाज़ोअनों में मीयोसिस यानी ह्रासी विभाजन अगुणित युग्मकों के बनने के दौरान होता है। द्विगुणित अवस्था निषेचन के बाद युग्मज (ज़ाइगोट) बनने पर पुन: प्राप्त हो जाती है। तथापि इससे पहले के अनुभागों में आप देख आए हैं कि एक नयी द्विगुणित व्यष्टि सदैव केवल लैंगिक जनन के बाद ही बनती हो, ऐसा नहीं है। अकशेरूकियों की संतानें आनुवंशिक पदार्थ के पुन: संयोजन के बिना भी बन सकती हैं। अलैंगिक जनन के साथ लैंगिक जनन की क्षमता जुड़ जाने से सम्मिश्र जीवन-चक्र बन जाते हैं।

किसी स्पीशीज़ में कौन सा जनन-प्रतिरूप अपनाया जाएगा (अलैंगिक, लैंगिक अथवा अनिषेकजनन) यह उस पर्यावरण पर निर्भर करता है जिसमें वह रहती है। उदाहरण के लिए, समुद्री अकशेरूकी अपने युग्मकों को बाहरी माध्यम में छोड़ देते हैं जहां निषेचन सम्पन्न हो सकता है मगर अलवण जलीय तथा थलीय अकशेरूकियों में ऐसा नही होता। अकशेरूकियों के बाहर निषेचित हुए युग्मकों में सामान्यत: पीतक (योक) लगभग होता ही नहीं यानी उनमें कोई संचित पोषण-स्रोत नहीं होता, और ये एक गतिशील स्वतंत्र भ्रूणपश्चीय अवस्था के रूप में परिवर्धित होते हैं जिसे लार्वा **(larva)** कहते हैं, यह लार्वा प्ररूपत: छोटा होता है एवं वयस्क से बहुत भिन्न होता है। ये लार्वा किसी बाह्य पोषण-स्रोत पर आहार करते हैं तथा अपने जनकों से वे स्वतंत्र होते हैं। प्राय: वे स्पीशीज़ के व्यापक फैलाव के साधन भी होते हैं। लार्वा कभी भी लैंगिक विधि से जनन नहीं करते तथा अक्सर यह कह सकना भी असम्भव है कि लार्वा से कौन सा लिंग या कौन सी सेक्स बनेगी जैसे कि कीटों के अधिकतर कैटरपिलरों में । कुछ समय बाद लार्वा कहीं टिक जाता है और फिर उसमें कायांतरण होकर वह वयस्क स्वरूप एवं जीवन-शैली प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार के जीवन-चक्र को जिसमें लार्वा स्वरूप आते हैं परोक्ष जीवन चक्र **(indirect life-cycle)** कहा जाता है तथा यह अधिसंख्य समुद्री अकशेरूकी स्पीशीज़ में तथा प्लैटिहेल्मिंथीज़, ऐनेलिडों तथा आर्थ्रोपोडों में पाया जाता है। इस प्रकार के जीवन-चक्र में सबसे बड़ा नुकसान यह है कि इसमें प्लावी अण्डों, भ्रूणों तथा लार्वों को भारी मृत्यु-क्षति उठानी पड़ती है। अनेक समुद्री अकशेरूकियों ने इससे पार पाने के लिए अपने अण्डों को सुरक्षाकारी आवरणों में देना विकसित कर लिया और उनमें से निकलने वाले बच्चे लार्वा अवस्था में निकलते हैं (चित्र 13.35 देखिए)। लार्वा लम्बी आयु वाले हो सकते हैं, वे डायटमों तथा अन्य सूक्ष्मजीवों का आहार करते हो सकते हैं या वे प्लावी हो सकते हैं ताकि उनका पर्याप्त प्रकीर्णन हो सके। अधिकतर अकशेरूकी फ़ाइलमों में बाह्य निषेचन होता है तथा उनके लार्वा वेलापवर्ती होते हैं। उनमें वेलापवर्ती गंभीर सागरीय जीवन-चक्र पाया जाता है। वेलापवर्ती (pelagic) लार्वों के पाए जाने की यह दशा आदिम लक्षण माना जाता है।

अन्य स्पीशीज़ ने लार्वों से पूरी तरह छुटकारा पा लिया है। इनमें सम्पूर्ण परिवर्धन सुरक्षाकारी अण्ड-आवरण के भीतर-भीतर ही होता है तथा अण्डे में से बच्चा लघुरूप वयस्कों के जैसा ही जन्मता है । इस प्रकार की स्पीशीज़ कम संख्या में अंडे देती हैं और उनके भीतर पीतक (योक) की अधिक मात्रा भरी होती है। इस प्रकार के परिवर्धन को सीधा अर्थात प्रत्यक्ष **(direct)** परिवर्धन कहते हैं तथा यह उनकी विशिष्टता के रूप में पाया जाता है। तथापि थलीय अकशेरूकियों में, अधिकतर कीटों के परिवर्धन के दौरान उनकी लार्वा अवस्था होती पायी जाती है।

पोरिफ़ेरा

अधिकतर स्पंजों में लार्वा-अवस्था जनक के शरीर के भीतर ही परिवर्धत होती है। लार्वा सामान्यतः ब्लास्टुला परिवर्धन अवस्था पर होता है। चित्र 13.36 में दो प्रकार के पोरिफ़ेरन लार्वा ऐम्फ़िब्लास्टुला (amphiblastula) तथा स्टीरियोब्लास्टुला (stereoblastula) दिखाए गए हैं जिनमें पूरी बाहरी सतह पर, बस पश्च ध्रुव को छोड़कर, एकलसिलियायित कोशिकाएं होती हैं। लार्वा के भीतरी भाग में आम तौर से वे अधिकतर सभी प्रकार की कोशिकाएं भरी होती हैं जो वयस्कों में पायी जाती हैं, बस कीपकोशिकाएं नहीं होती । लार्वा जनक की देह-भित्ति से फूट कर बाहर आ जाता है और एक अल्पावधिक मुक्त तैरने वाला जीवन बिताता है।

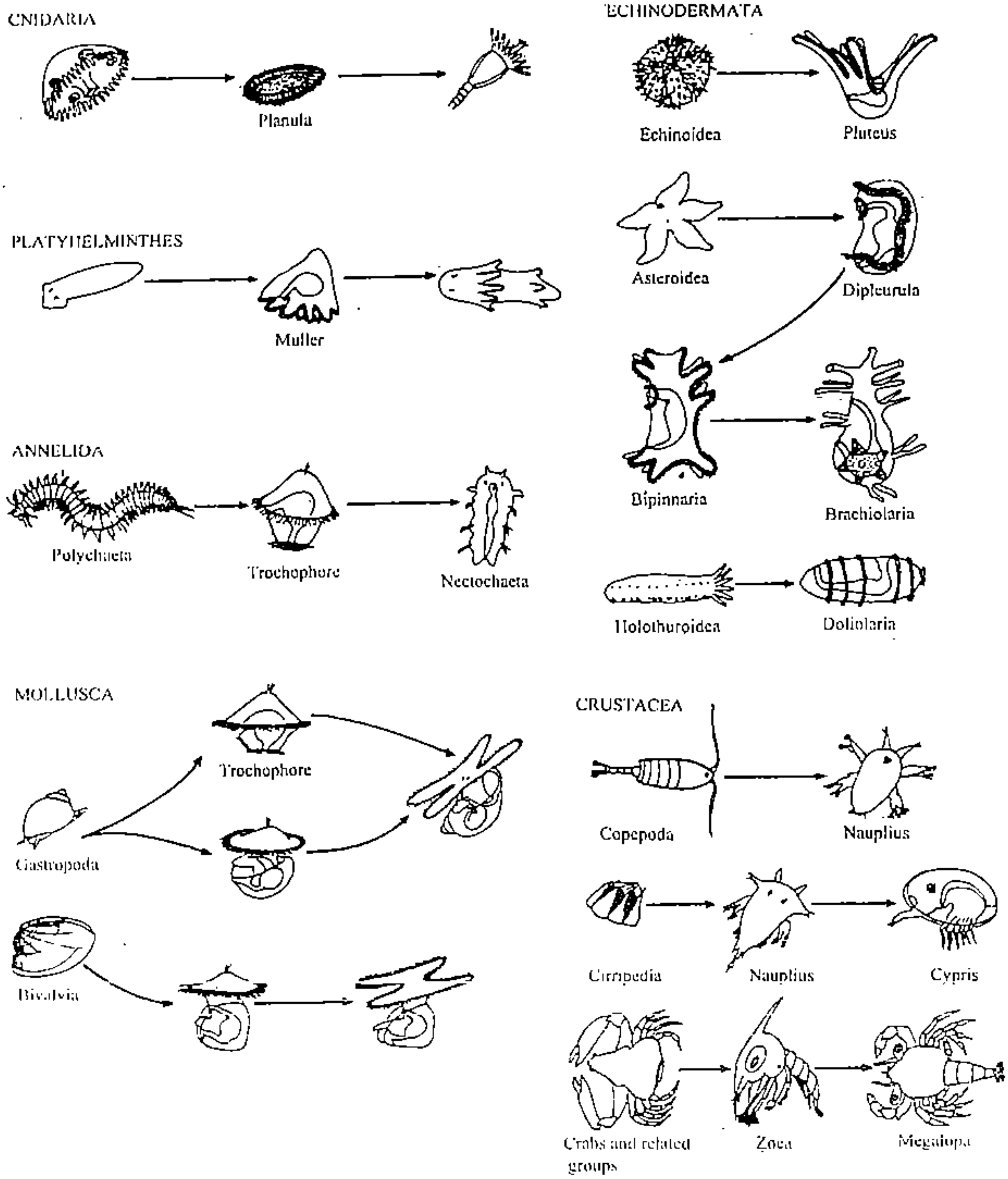

चित्र 13.35 : प्रमुख समुद्री अकशेरुकी समूहों में पायी जाने विशिष्ट लार्वा अवस्थाएं जिनके साथ-साथ उनके वयस्क स्वरूप भी दिखाए गए हैं। ध्यान दीजिए कि वयस्क स्वरूपों को उनके लार्वा स्वरूपों की तुलना में बहुत छोटे अनुपात में दिखाया गया है।

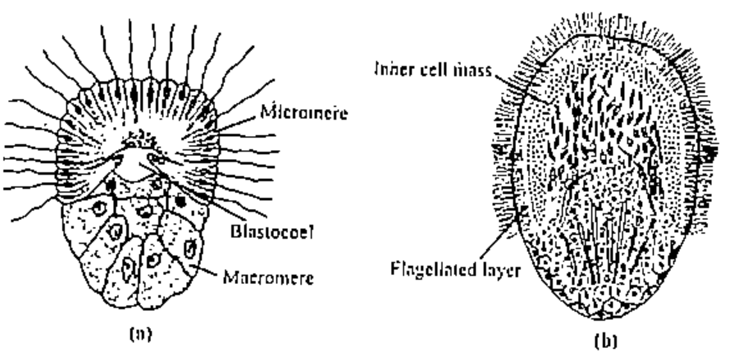

चित्र 13.36 : (a) साइकॉन का ऐम्फ़िब्लास्टुला जिसमें कशाभि लघुखंड (micromers) तथा अकाशाभित गुरुखंड (mocromeres) पाए जाते हैं। (b) डीमोस्पंजिया लार्वा-स्टीरियोब्लास्टुला।

नाइडेरिया

नाइडेरिया में सामान्यतः पायी जाने वाली लार्वा-अवस्था प्लैनुला (planula) होती है जो गैस्ट्रुलेशन के बाद बनती है। प्लैनुला लम्बा होता है तथा अग्र एवं पश्च ध्रुवों से युक्त होते हुए अरीयतः सममित होता है। सतह पर सिलियायित कोशिकाएं होती हैं। कभी-कभार लार्वा के पश्च सिरे पर मुख बना हो सकता है तथा लार्वा अपने अग्र सिरे से चिपक जाया करता है (चित्र 13.37)। प्लैनुला कहीं जम कर पौलीपॉइड साइफ़ीस्टोमा बन जाता है जिससे अंततः मेडुसा बनता है। अधिकतर हाइड्रोज़ोअनों में प्लैनुला से ऐक्टिनुला लार्वा बनता है जो मेडुसा में परिवर्तित हो जाता है।

प्लैटिहेल्मिंथीज़

परजीवी प्लैटिहेल्मिंथीज़ के परिवर्धन में कई-कई स्वच्छंद तैरने वाले लार्वा स्वरूपों से लेकर परजीवी लार्वा स्वरूपों तक होने की दृष्टि से बहुत काफ़ी जटिलता पायी जाती है (चित्र 13.35)। इसमें क्रमवत लार्वा ये होते हैं- मीरासिडियम, उसके बाद स्पोरोसिस्ट और फिर रेडिया और उसके बाद सर्केरिया। परजीवी प्लैटिहेल्मिंथीज़ के जीवन-चक्रों तथा लार्वा-स्वरूपों के लिए इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 2 की इकाई 4 देखिए।

पौलीकीट तथा मौलस्का

पौलीकीटों का लार्वा ट्रोकोफ़ोर (trochophore) होता है। प्ररूपी ट्रोकोफ़ोर लार्वा लट्टू की शक्ल का होता है, उसके शीर्षस्थ सिरे पर सिलियां का एक गुच्छा बना होता है तथा इस शीर्षस्थ गुच्छे से नीचे शरीर के लगभग एक-तिहाई से लेकर आधा दूरी तक के स्तर पर सिलिया की एक पट्टी अथवा मेखला जिसे **प्रोटोट्रॉक (prototroch)** कहते हैं पूरे शरीर को घेरे रहती है यह पट्टी तैरने का अंग होने के साथ-साथ निलम्बित आहार-कणों को भी इकट्ठा करती है। आहार नाल एक सम्पूर्ण नलिका होती है और मुख प्रोटोट्रॉक के पश्च में बाहर को खुला होता है। ट्रोकोफ़ोर लार्वा पौलीकीटों तथा मौलस्कों की विशेषता है (चित्र 13.35)।

इकाइनोडर्मेटा

इकाइनोडर्मेटा के लगभग सभी लार्वा प्लवकी (planktonic) होते हैं (चित्र 13.35)। ये लार्वा वयस्क से दो खास बातों में भिन्न होते हैं एक तो इनमें पंचतयी सममिति नहीं पायी जाती और दूसरे इनमें नाल पाद भी नहीं होते। कुछ समय के प्लवक जीवन के उपरांत इन लार्वों में कंकाल बनने लग जाता है और वे तली में बैठने लगते हैं जहां ये वयस्क आकृति एवं स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं।

आर्थ्रोपोडा

क्रस्टेशियनों के कुछ प्लवक लार्वे चित्र 13.35 में दिखाए गए हैं। क्रस्टेशियनों के लार्वा अपने जनकों से पृथक निकेतों में रहते हैं और इस प्रकार लार्वा तथा वयस्क स्वरूपों के बीच आहार की प्रतिस्पर्धा नहीं होती।

कीटों के जीवन-चक्र में हम देखते हैं कि लार्वा तथा वयस्क अवस्थाओं में भिन्न प्रकार के क्रिया कलाप होते हैं। कीटों की वृद्धि क्रमबद्ध निर्मोचनों अथवा इन्स्टारों में होती है। सरलतम जीवन-इतिहास वह है जिसमें भ्रूण से वयस्क अवस्था में पहुँचाना क्रमिक रूप में होता है और लार्वा तथा वयस्क दोनों ही एक ही आहार-स्रोत का सदुपयोग करते हैं। ये एक्सोप्टेरिगोट कीट होते हैं और इनके लार्वों में बाहर से दृश्यमान पंख-गद्दियां होती हैं हालांकि कार्यशील पंख केवल वयस्कों में ही बने होते हैं और अंतिम निर्मोचन तथा वयस्क के बीच का निष्क्रियता-काल उससे ज़्यादा लम्बा नहीं होता जितना कि दो लार्वा निर्मोचनों के बीच होता है। यह सरल जीवन-चक्र टिड्डियों में देखा जाता है (चित्र 13.37 a)।

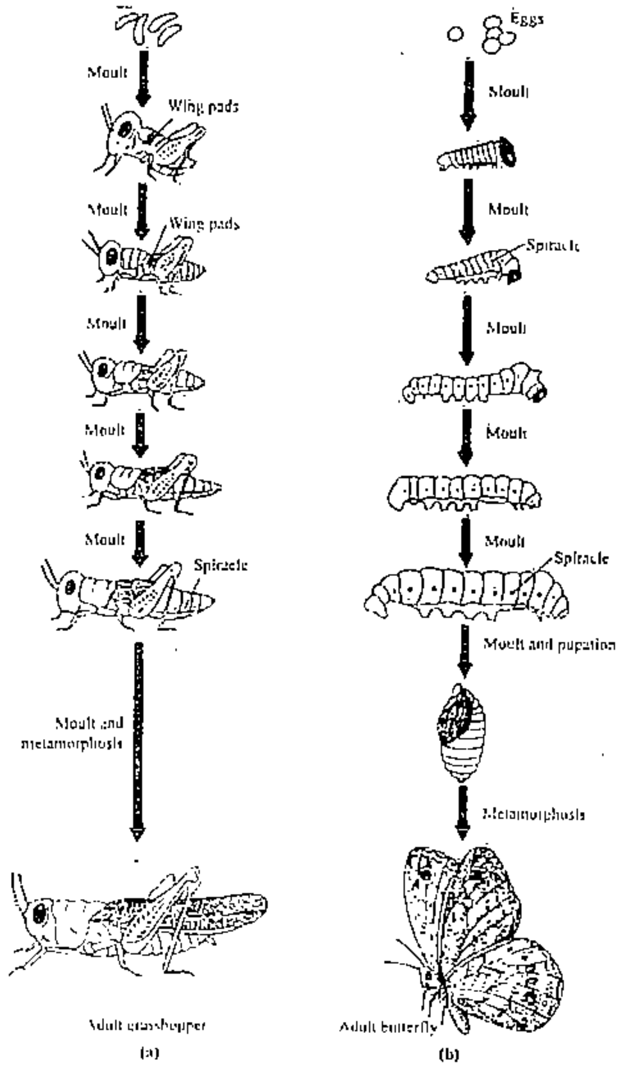

चित्र 13.37 : कीटों के जीवन-चक्र। (a) टिड्डे में एक्सोप्टेरिगोट (बाह्यपंखी) परिवर्धन (b) तितली में एंडोप्टेरिगोट (अंतःपंखी) परिवर्धन।

कीटों की 80% से अधिक जीवित स्पीशीज़ जिनमें कोलियॉप्टेरा (बीटल)। लेपिडॉप्टेरा (तितलियां और शलभ), हाइमेनॉप्टेरा (बर्रें, मधुमक्खियां और चींटियां), डिप्टेरा (मक्खियां) आते हैं, एंडोप्टेरिगोट होती हैं। इनके लार्वों में आते हैं विविध प्रकार के कैटरपिलर, ग्रब और मैगट। इनमें बाहर से दृश्यमान पंख-गद्दियां कभी नहीं पायी जातीं और अपने स्वरूप एवं आहार में ये वयस्कों से बहुत भिन्न होते हैं (चित्र 13.37 b)। प्यूपा नामक एक विश्राम-अवस्था होती है जो कुछ घंटों से लेकर कई-कई महीनों तक ऐसी ही रहने के बाद उसमें अंतिम निर्मोचन होकर वयस्क स्वरूप बाहर आता है।

इस प्रकार हमने देखा कि अकशेरूकियों में विभिन्न प्रकार के जीवन-चक्र विभिन्न जनन अनुकूलन दर्शाते हैं। लैंगिक जनन, जनन की अधिक प्रभवी विधि है और अक्सर अनेक नाइडेरियनों चपटे कृमियों, ऐनेलिडों, छोटे क्रस्टेशियनों तथा कुछ कीटों में पाये जाने वाले जटिल जीवन-चक्रों में अलैंगिक जनन के साथ एकांतर क्रम में आता है।

13.10 सारांश

इस इकाई में आपने ये सीखा

- जनन किसी भी स्पीशीज़ के पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर बने रहने को सुनिश्चित करता है। अकॉर्डेटों में जितनी विविध देह-संघटना एवं विविध जीवन शैलियां पायी जाती हैं उतनी ही विविध उनकी जनन-विधियां भी होती हैं। इनमें सबसे आदिम और सरलतम विधि द्विविभाजन की है अर्थात मात्र एक प्रकार का कोशिका-विभाजन कुछ प्रोटोज़ोआ में अनुप्रस्थ विभाजन होता है तो कुछ में अनुदैर्ध्य। बहुविभाजन में जनक कोशिका में एक साथ अनेक विभाजन होकर बहुसंख्यक संतति व्यष्टियां बन जाती हैं, यह भी एक प्रकार का अलैंगिक जनन ही है। कुछ प्राणियों में स्वत:जात खंडन हो जाता है, और प्रत्येक खंड में लुप्त भाग का पुनर्जनन होकर एक सम्पूर्ण प्राणी बन जाता है जैसे कुछ समुद्री ऐनीमोनों तथा कुछ कृमियों में। अलैंगिक जनन सामान्यत: मुकुलन द्वारा होता है जैसे कि हाइड्रा में तथा कुछ अन्य नाइडेरियनों में स्पंजों के समान कुछ अकॉर्डेटों में अलैंगिक जनन प्रतिकूल परिस्थितियों में जेम्यूलों के बनने से होता है।

- पुनर्जनन एक बहुत ही सामान्य परिघटना है जिससे अनेक अकार्डेटों में नयी व्यष्टियां बन जाती हैं। इस प्रकार यह अलैंगक जनन से निकटत: संबंधित है। लुप्त भागों का पुनर्जनन और उसके बाद प्राकृतिक खंडन अथवा आकस्मिक टूट-फूट होने से नयी व्यष्टियों का बनना भी आम पाया जाता है। अधिकतर जीवों में पुनर्जनन में ध्रुवता पायी जाती है। कुछ अकॉर्डेट मुख्यत: अपने बचाव के लिए भंजन का तरीका अपनाते हैं, तथा इनमें पुनर्जनन होना जनन में बदल जाता है।

- लैंगिक जनन में युग्मक बनते हैं जिनमें छोटे और गतिशील युग्मक शुक्राणु होते हैं तथा बड़े और गतिविहीन युग्मक अंडे होते हैं। युग्मक मीयोसिस से बनते हैं और निषेचन से पुन: सामान्य क्रोमोसोम-संख्या स्थापित हो जाती है। लैंगिक जनन का सर्वाधिक लाभ यह है कि इसमें होने वाले जीनों के मिश्रण से बेहतर अनुकूलन तथा विकास होता है। बहुत बार दो सेक्सों में स्पष्ट भेद नज़र आता है और उनमें लैंगिक द्विरूपता पायी जाती है। लैंगिक जनन कई प्रतिरूप अपनाता है जैसे समयुग्मन, असमयुग्मन, संयुग्मन, स्वयुग्मन आदि। जनन अंगों में सम्मिलित हैं गोनड, जनन वाहिनियां, सहायक ग्रंथियां तथा वे ख़ास संरचनाएं जो मैथुन में योगदान देती हैं। गोनडों की आकृतियां तथा उनकी व्यवस्था बहुत भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ अकॉर्डेट अपने युग्मकों को जल में छोड़ते हैं (बाह्य निषेचन) तथा कुछ मामलों में शुक्राणु एक शुक्रधर के रूप में छोड़े जाते हैं। निषेचित अंडा बाहर को दिया जा सकता है (अंडप्रजता), या कभी-कभी मादा के शरीर में ही रोक लिया जाता है (शिशुप्रजता अथवा अंडशिशुप्रजता) और उसका आंशिक अथवा सम्पूर्ण परिवर्धन होने के बाद ही उसे शरीर से बाहर निकाला जाता है।

- अनेक अकॉर्डेट विशेषकर सुस्त तथा परजीवी प्राणी उभयलिंगी होते हैं उभयलिंगता समकालिक हो सकती है अथवा पुंपूर्वी। अनेक अकॉर्डेट अनिषेकजनन विधि से जनन करते हैं।

- अनेक उदाहरणों में अलैंगिक जनन से लैंगिक व्यष्टियां बन जाया करती हैं। अक्सर प्राणियों के जीवन में लैंगिक तथा अलैंगिक पीढ़ी में एकांतरण पाया जाता है। इसे पीढ़ी एकांतरण अथवा मेटाजेनेसिस कहते हैं।

- अलैंगिक जनन और लैंगिक जनन मिलकर बड़े जटिल प्रकार के जीवन-चक्र बना देते हैं। जीव कौन से जनन प्रतिरूप का अनुसरण करेगा यह उसके पर्यावरण पर निर्भर करता है। समुद्री

अकशेरूकियों में अक्सर बाह्य निषेचन होता है तथा इनमें वयस्क से बहुत भिन्न एक या एक से अधिक लार्वा अवस्थाएं होती हैं। इस प्रकार के जीवन-चक्रों को परोक्ष कहा जाता है। अन्य स्पीशीज़ ने लार्वा अवस्थाओं का किस्सा ही समाप्त कर दिया और उनमें सीधा परिवर्धन होता है। कीटों के जीवन-चक्र में अलग ही परिवर्धन व्यवस्था दिखायी पड़ती है, इनमें क्रमिक निर्मोचन होते एवं इन्स्टार पाए जाते हैं।

13.11 अंत में कुछ प्रश्न

1) अकॉर्डेटों मे पायी जाने वाली कोई सी छह अलैंगिक जनन विधियां गिनाइए एवं प्रत्येक के विषय में ज्यादा से ज़्यादा दो-दो पंक्तियों में लिखिए:

....

....

....

....

....

....

....

....

2) जिन प्राणियों में अलैंगिक जनन पाया जाता है उन्हे इससे क्या लाभ हैं?

....

....

....

....

....

....

3) अकॉर्डेटों में स्पष्ट दीखने वाली लैंगिक द्विरूपता के कोई तीन उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

4) लैंगिक जनन का क्या लाभ है?

....

....

....

....

5) उभयलिंगता का अनुकूली महत्व बताइए।

6) निम्न में परस्पर विभेद कीजिए:-

i) अविकल्पी तथा विकल्पी अनिषेकजनन

ii) अनिषेकपुंजनन तथा अनिषेक स्त्रीजनन

7) मलेरिया परजीवी में पीढ़ी-एकांतरण के विषय में संक्षेप में लिखिए :-

8) स्पीशीज़ के जीवन-चक्र में समुद्री अकशेरूकी लार्वों तथा कीट लार्वों की भूमिका में एक महत्वपूर्ण अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

13.12 उत्तर

बोध प्रश्न

1. I 1-छ, 2-घ, 3-च, 4-क, 5-ग, 6-ज, 7-ख

   II सही कथन - (i), (iii), (iv)

2. I (i) केंद्रीय डिस्क, भुजाओं
   (ii) होलोथूरियन (समुद्री खीरे)
   (iii) पुनर्योजनी
   (iv) चीर/कर्तन
   (v) जेम्यूल

   II अलैंगिक जनन का संबंध अधिकतर पुनरुद्भवन क्षमता से है जो निम्नतर प्राणियों में अधिक प्रवल होती है, इन प्राणियों में कोशिकाओं और ऊतकों का कम विभेदन एवं कम विशेषीकरण हुआ होता है।

3. 1) अण्डे इस तरह के होते है! (i) अगतिशील, (ii) ज़्यादा बड़े, तथा (iii) प्राय: खाद्य पदार्थ से भरे।

   2) 1-(घ), 2-(क), 3-(च), 4-(ख), 5-(ग)

   3) (i) *हेटेरोनीरीस/नीरीस*
   (ii) *मॉनोसिस्टिस*
   (iii) *लोलाइगो/आर्गोनौटा*
   (iv) *ग्लॉसाइना* (सेट्सी मक्खी)

4. 1) (i) सही (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही

5. 1) (i) विकल्पी
   (ii) अनिषेकपुंजनन

   2) एफ़िड, मधुमक्खी, बर्र, थ्रिप्स, *डैफ़्निया* (अलवणजलीय "पिस्सू")

6. (i) लैंगिक, अलैंगिक
   (ii) राइज़ोगोनी
   (iii) साइफ़िस्टोमा

अंत में कुछ प्रश्न

1) अलैंगक जनन की छह विधियां - द्विविभाजन, बहुविभाजन, खंडन, मुकुलन, प्रश्रृंखलन, जेम्यूल-जैसे विशिष्ट पिंडों का बनना। द्विविभाजन सामान्यत: प्रोटोज़ोअनों में होता है। ये अनुदैर्घ्यत: अथवा अनुप्रस्थत: दो भागों में विभाजित हो जाते हैं। बहुविभाजन में प्राणी दो से अधिक भागों में विभाजित होता है। खंडन में मेटाज़ोअन प्राणी दो या दो से अधिक भागों में टूट जाता है और ऐसे प्रत्येक भाग में लुप्त अंश का पुनरुद्भवन होकर संपूर्ण जीव बन जाता है। मुकुलन एक प्रकार की बहिर्वृद्धि का बनना है जो जनक से टूट कर अलग हो जाती और वृद्धि करते हुए वयस्क बन जाती है। प्रश्रृंखलन एक प्रकार का श्रृंखलावत मुकुलन अथवा जनक का खण्डों में विभाजित हो जाना होता है। जेम्यूल जैसी विशेष इकाइयां प्रतिकूल पर्यावरण दशाओं से पार पाने के लिए बनती हैं।

2) अलैंगिक जनन के लाभ - तीव्र संख्या वृद्धि जिसके साथ-साथ अनुकूल पर्यावरण का निश्चित तौर पर और तीव्रता से सदुपयोग किया जाता है।

3) *रक्त पर्णाभ* - नर बड़ा और मोटा जिसमें लम्बी और पतली मादा को पकडे रखने के लिए स्त्रीधर नलिका होती है।
ऐस्कॉरिस - नर छोटा और उसमें एक वक्र पूंछ होती है जिसमें एक जोड़ी शिश्नशूक बने होते हैं
बोनेलिया - नर सूक्ष्मदर्शीय जो उससे कई गुना बड़ी मादा के नेफ़्रिडियम के भीतर परजीवी रूप में रहती है।

4) लैंगिक जनन का लाभ - विपरीत सेक्सों के युग्मक संयोजित हो जाते हैं जिससे नर और मादा जनकों की आनुवंशिक विशिष्टताओं का मिश्रण होता है। इससे संतान पर्यावरण-परिवर्तनों के प्रति बेहतर अनुकूलित होती है। लैंगिक जनन से समष्टि में पुनर्जीवन आ जाया करता है।

5) उभयलिंगता प्राय: स्थानबद्ध, सुस्त एवं परजीवी स्पीशीज़ में पायी जाती है, जिन्हें अन्यथा दूसरी (विपरीत लिंग वाली) व्यष्टियों के सम्पर्क में आने की संभावनाएं कम होती हैं। उभयलिंगता से किन्हीं भी दो व्यष्टियों से जनन-कार्य पूरा हो जाएगा।

6) अविकल्पी अनिषेकजनन वह दशा है जिससे अनिषेकजनन ही जनन की एकमात्र विधि है; विकल्पी अनिषेकजनन वह है जिसमें अण्डे अनिषेकजनन विधि से या निषेचन द्वारा किसी से भी परिवर्धित हो सकते हैं।

7) मलेरिया परजीवी में दो पीढ़ियां पायी जाती हैं - (i) शाइज़ोगोनी जो मानव लाल रक्त कोशिकाओं अथवा यकृत कोशिकाओं अथवा दोनों में सम्पन्न होती है, (ii) गैमोगोनी मच्छर में होती है। मानव शरीर में छोड़े जाने वाले स्पोरोज़ोआइट पहले यकृत कोशिकाओं में प्रवेश करते हैं जिनके भीतर रक्ताणु शाइज़ोगोनी सम्पन्न होती है। ये मीरोज़ोआइट रक्ताणु-चक्र को दोहराते रह सकते हैं और ऐसा कई बार कर लेने के बाद मच्छर इन्हें अपने भीतर ले जाता है। मच्छर में गैमोगोनी (लैंगिक चक्र) होता है। तदुपरांत ज़ाइगोट में गैमोगोनी अथवा लैंगिक प्रावस्था मच्छर के भीतर ही होती है।

8) कीटों में, वयस्क गतिशील होता है और वह अपने लार्वों की अपेक्षा दूर-दूर तक आ-जा सकता है जब कि समुद्री अकशेरूकियों के लार्वा ही मुख्य प्रकीर्णन अवस्थाएं होती हैं क्योंकि वे प्लवकीय होते हैं। वयस्क मौलस्क अथवा इकाइनोडर्म अपेक्षाकृत धीमी गति वाले अथवा स्थानबद्ध होते हैं।

शब्दावली (GLOSSARY)

वायवीय श्वसन (Aerobic respiration)	:	श्वसन जिसमें ऑक्सीजन का उपयोग शामिल होता है।
अभिवाही रक्त वाहिकाएं (Afferent blood vessels)	:	रक्त वाहिकाएं जो विऑक्सीजनित रक्त को श्वसन सतह अर्थात् गिलों (क्लोमों) में पहुंचाती है।
अभिवाही तंत्रिका (Afferent nerve)	:	तंत्रिका जो आवेगों को ग्राही से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में ले जाती है।
महाधमनी (Aorta)	:	हृदय से निकलने वाली मुख्य धमनी जो रक्त को हृदय से दूर ले जाती है।
धमनिका (Arteriole)	:	एक सूक्ष्म धमनी जो किसी मुख्य धमनी के बार-बार विशाखन से बनती है।
स्वपोषण (Autotrophy)	:	जीवधारियों की क्षमता जिसके द्वारा वे अकार्बनिक पदार्थों से कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण कर सकते हैं। सभी हरे पौधे स्वपोषी होते हैं।
ऐक्सॉन (Axon)	:	किसी तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) के जीवद्रव्यीय प्रवर्धों में से एक जो आवेगों को कोशिका काय से दूर ले जाता है।
केशिका (Capillary)	:	अत्यंत सूक्ष्म व्यास की नलिका। परिसंचरण तंत्र में केशिकाएं सूक्ष्मतम धमनियों (धमनिकाओं) के सिरों को सूक्ष्मतम शिराओं (शिरिकाओं) के सिरों से जोड़ती है।
कंकत पट्टिका (Comb plate)	:	टीनोफ़ोरों में संचलन में कार्य करने के लिए पंक्तियों में व्यवस्थित संलयित सिलिया की प्लेटों में से कोई एक।
द्रुमिका (Dendrite)	:	तंत्रिका कोशिका का एक प्रवर्ध जो आवेगों को कोशिका काय की ओर ले जाता है।
विसरण (Diffusion)	:	एक प्रक्रिया जिसमें गैस अथवा पदार्थ के अणु अपने उच्च सांद्रण से निम्न सांद्रण की ओर ले जाए जाते हैं।
अधिपादांश (Epipod, epipodite)	:	क्रस्टेशियन उपांग पर बना पार्श्व प्रवर्ध, यह अक्सर गिल की तरह रूपांतरित होता है।
एक्सॉप्टेरिगोट (Expoterygote)	:	कीट जिसमें पंख मुकुल निम्फीय इन्सटार के दौरान बाहर से विकसित होते हैं, इसमें अर्धकायांतरणी कायांतरण होता है।

कोशिकाबाह्य पाचन (Extracellular digestion)	:	पाचन क्रिया का पाचन तंत्र की गुहा के भीतर होना, यह गुहा कोशिकाओं के अस्तर से घिरी होती है। स्रावी कोशिकाओं से स्रवित होने वाले पाचन एंज़ाइम गुहा में छोड़े जाते हैं।
कशाभ (Flagellum)	:	संचलन के वास्ते कोड़े जैसा अंगक।
गैंग्लियॉन (Ganglion)	:	तंत्रिका कोशिका कायों का समूह।
रक्तभोजी आहारक (Haematophagous feaders)	:	ऐसे प्राणी जो कशेरूकियों और विशेषकर स्तनियों के रक्त का आहार करते हैं।
हीमोग्लोबिन (Haemoglobin)	:	लौहयुक्त श्वसन वर्णक जिसका संबंध रक्त द्वारा ऑक्सीजन के परिवहन से है।
हाल्टर (Halter)	:	डिप्टेरा में, छोटी मुद्गराकार संरचना जो मैटाथौरैक्स (पश्चवक्ष) के प्रत्येक पार्श्व पर बनी होती है। यह पश्च पंख का प्रतिदर्श होती है तथा इसे संतुलन का संवेदी अंग माना जाता है, इसे संतोलक भी कहते हैं।
विषमपोषण (Heterotrophy)	:	जीवों का अपनी पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य जीवों पर निर्भरता का होना। विषमपोषी स्वयं अपने भोजन का संश्लेषण नहीं कर सकते।
अधिपरासारी (Hypertonic)	:	स्थिति जिसमें जीव के देह तरल का परासरण दाब उस माध्यम, जिसमें वह जीव रहता है, के परासरण दाब से अधिक होता है।
अल्पपरासारी (Hypotonic)	:	स्थिति जिसमें जीव की देह तरल का परासरण दाब उस माध्यम, जिसमें वह जीव रहता है, के परासरण दाब से कम रहता है।
अंत:कोशिक पाचन (Intercellular digestion)	:	पाचन तंत्र की विशेषित कोशिकाओं के भीतर होने वाला पाचन; ये कोशिकाएं पाचन के लिए आवश्यक एंज़ाइमों का स्रवण करती हैं।
बृहत्भोजी आहारक (Macrophagous feeders)	:	वे जीव जो बड़े आकार के भोजन कणों का आहार करते हैं।
मैक्सिला (Maxilla)	:	आर्थ्रोपोडों के शीर्ष उपांगों में से एक।
मैक्सिलीपीड (Maxilliped)	:	क्रस्टेशियनों में शीर्ष उपांगों में से एक जोड़ी जो मैक्सिला के ठीक पीछे बने होते हैं, एक वक्ष उपांग जो आहारक मुखांगों में शामिल हो गया है।
सूक्ष्मभोजी आहारक (Microphagous feeders)	:	वे जीव जो सूक्ष्मदर्शीय आहार कणों का भोजन करते हैं।

दंशपुटियां (Nematocysts) : नाइडेरियनों में पायी जाने वाली दंश कोशिकाएं जिन्हें सुरक्षा के लिए, शिकार पकड़ने के लिए तथा लंगरन के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

तंत्रिका (Nerve) : तंत्रिका रेशों का पुंज।

तंत्रिका रेशा (Nerve fibre) : तंत्रिका कोशिका का लम्बा हो गया जीवद्रव्यीय प्रवर्ध।

न्यूटिलेमा (तंत्रिका पटलिका) (Neurilemma, neural lamella) : तंत्रिका रेशे का सबसे बाहरी आवरण।

तंत्रिका रक्त अंग (Neurohaemal organ) : वाहिकीय संरचना जो तंत्रिका स्रावी कोशिकाओं से स्रवित होने वाले हार्मोनी पदार्थ को, उसके रक्त में विमोचित होने से पूर्व, अस्थायी रूप में भंडारित करता है।

नोटोपोडियम (Notopodium) : पौलीकीट ऐनेलिडों में पृष्ठ दिशा की ओर परापाद की पालि।

परापाद (Parapodium) : पौलीकीट ऐनेलिडों में अधिकतर देह खंडों के प्रत्येक पार्श्व पर बने युग्मित पार्श्व प्रवर्धों में से कोई एक, ये भांति-भांति से रूपांतरित होते हैं - संचलन के लिए, श्वसन के लिए अथवा अशन के लिए।

पादपेल्प (Pedipalp) : ऐरेक्निडों में पाये जाने वाले दूसरी जोड़ी के उपांग।

प्लाज़्मा (Plasma) : रक्त का तरल अंश जो रक्त कोशिकाओं अथवा कणिकाओं से पृथक होता है।

तरण पाद (Pleopod) : क्रस्टेशियनों के उदर पर पाये जाने वाले तरण उपांगों में से कोई एक।

श्वसन (Respiration) : कोशिका के जीवद्रव्य के भीतर होने वाला एक रासायनिक क्रियाकलाप जिसमें ऊर्जा निकलती है।

मृतभोजी आहारक (Saprophagous/saprozoic feeders) : वे प्राणी जो मृत तथा सड़ते-गलते जैव पदार्थ का भोजन करते हैं।

यूरिकोत्सर्गी (Uricotelic) : वे जीव जो उपापचय के मुख्य उत्सर्गी उत्पाद के रूप में यूरिकअम्ल का उत्सर्जन करते हैं।

पुच्छपाद (Uropod) : अनेक क्रस्टेशियनों में पश्चतम उपांग।

शिरा (Vein) : रक्त वाहिका जो रक्त को कोशिकाओं में हृदय की ओर ले जाती है।

अतिरिक्त पठन सामग्री

1. General and Comparative Physiology, William S. Hoare, 1983

2. Biology of Animals: A Text Book for Degree Students, B.B. Ganguli, A.K. Sinha and S. Adhikari, New Central Book Agency, 1977.

3. The Invertebrates: Functions and Form, Irwine W. Sherman and Vilia G. Sherman, Macmillan Publishing Co., Inc., 1976.

4. A Life of Invertebrates, W.D. Russel - Hunter, Macmillan Publishing Co., Inc., 1979.

5. Text-Book of Zoology: Invertebrates, Ed. by A.J. Marshall and W.O. William (The edition of A Text Book of Zoology, Vol. I by J. Jeffery Parker and William A. Haswell), The Macmillan Press Ltd., 1972.

6. Invertebrate Structure and Function. E.J.W. Barrington, ELBS, 1979.

7. Barnes, R.D. (1980) Invertebrate Zoology. Holt - Saunders, Tokyo.

8. Barrington, E.J.W. (1979) Invertebrate Structure and Function (Chapters 14,15 and 16), ELBS & Van Nostrand Reinhold (UK), 2nd Ed.

9. Ramsay, J.A. (1968) Physiological approach to the lower animals, Cambridge University Press.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY -01
प्राणि विविधता-I

खंड

4

अनुकूलन तथा व्यवहारात्मक प्रतिरूप

इकाई 14

अनुकूली विकिरण 5

इकाई 15

व्यवहारात्मक प्रतिरूप 51

इकाई 16

हानिकर अकशेरुकी 87

इकाई 17

लाभकारी अकेशरुकी 141

खंड 4 अनुकूलन तथा व्यवहार प्रतिरूप

पिछले खंड में आपने अकॉर्डेटों के तुलनात्मक स्वरूपों एवं प्रकार्यों के विषय में पढ़ा था। आपने जाना कि संघटना के स्तर में पाए जाने वाले अंतरों के बावजूद सभी प्राणी, चाहे वे सरल हो या सम्मिश्र, आवश्यक शारीरिक प्रकार्यों को करने में सक्षम होते हैं। इनमें से एक कार्य संचलन का है। आपने देखा कि किस तरह एक सरल प्रकार से सम्मिश्र तथा अधिक विकसित श्वसन एवं परिसंचरण तंत्रों का विकास हुआ। आपने जान लिया कि प्राणी अपने बाहरी तथा भीतरी पर्यावरण में होने वाले किसी भी परिवर्तन का बोध प्राप्त कर लेते, उस परिवर्तन का अभिकलन कर लेते, और अंततः इन अभिकलनों को आवश्यक क्रियाओं में एक ऐसे रूप में कार्यान्वित करते हैं जो प्राणी के लिए सर्वाधिक लाभकारी तथा अनुकूलनी हो, और यह समस्त घटना-क्रम तंत्रिकाओं एवं संवेदी अंगों के तंत्र द्वारा सम्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त आपने अंतःस्रावी तंत्र के विषय में पढ़ा जो अंतःस्रावी ग्रंथियों द्वारा हार्मोन नामक रासायनिक पदार्थों के माध्यम से संचार स्थापित करता है। पिछले खंड में आपने यह भी देखा कि किस तरह अकॉर्डेटों में जनन की सरल द्विविपाटन की विधि से लेकर लैंगिक जनन, अनिषेकजनन, आदि की अति जटिल विधियों तक कितनी विविध जनन-विधियों का विकास हुआ है। प्राणि-विविधता-I पाठ्यक्रम (एल.एस.ई.-09) के अंतिम खंड में 4 इकाइयां हैं जिनमें अनुकूलन तथा व्यवहार प्रतिरूपों के विविध पहलू दिए गए हैं।

इस खंड की **इकाई–14** में आप पढ़ेंगे कि विभिन्न समूहों के जीव अक्सर समान पर्यावरणों के लिए स्वयं को अनुकूलित कर लेते और देखने में एकसमान होते तथा क्रियाएं करने में भी समान होते हैं। इसे अनुकूलन अभिसरण कहते हैं। इसके विपरीत वह दशा जिसमें एक ही वर्ग में आने वाले अथवा निकटतः संबंधित समूहों के प्राणी भिन्न आवासों में रहते और और भिन्न कार्यात्मक अनुकूलन प्राप्त कर लेते हैं, इसे अनुकूली अपसरण अथवा अनुकूली विकिरण कहते हैं। इस इकाई में समझाया जाएगा कि विभिन्न अकॉर्डेट समूहों में अनुकूली विकिरण किस प्रकार विकसित हुए हैं।

इकाई–15 में प्राणियों में पायी जाने वाली उन मुद्राओं एवं गतियों का वर्णन किया गया है जो उनके पर्यावरण के भीतरी एवं बाहरी उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया के रूप में होती हैं। आप जान पाएंगे कि अकॉर्डेटों में घड़ी के जैसी परिशुद्धता के साथ नियमित अंतरालों पर होने वाले व्यवहारपरक क्रियाकलापों को जैवताल कहते हैं। इस इकाई में अकॉर्डेटों में विविध अनुचलनों तथा गतिताओं, तालों, सामाजिक संघटनाओं, प्रणय एवं संचार-व्यवहार तथा परजीवियों का व्यवहार और उनके अनुकूलनों के विषय में वर्णन किया गया है।

इकाई–16 में आप ऐसे अकॉर्डेटों के विषय में पढ़ेंगे जो परपोषियों में जैसे पौधों में और मानव सहित अन्य प्राणियों में रोग पैदा करते हैं। आप पढ़ेंगे कि कुछ अकॉर्डेट परोक्ष रूप में हानिकारक होते हैं - वे विभिन्न परजीवियों तथा रोगजनकों को एक परपोषी से दूसरे परपोषी में प्रेषित करते और उसके द्वारा भयानक रोगों को फैलाते हैं। साथ ही हम प्रोटोज़ोअनों, प्लैटीहेल्मिंथीज़, नीमैटोडों तथा आर्थ्रोपोडों की खास-खास स्पीशीज़ का भी विवेचन करेंगे जो मानव स्वास्थ्य अथवा अर्थव्यवस्था के लिए हानिकर होती हैं।

इकाई–17 में मानव के लिए लाभकारी अकॉर्डेटों की दो श्रेणियों का वर्णन किया गया है। आप पढ़ेंगे कि कुछ अकॉर्डेट मानवों के लिए स्वयं ही आहार के रूप में सीधे लाभकारी होते हैं अथवा उनके द्वारा एकत्रित किए गए आहार के रूप में जो मानवों के उपयोग में आता है, इनसे हमें उपयोगी उत्पाद, औषधियां प्राप्त होती हैं अथवा ये सुंदर होने के नाते सजावट के रूप में काम में लाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अकॉर्डेट होते हैं जो कृषि के क्षेत्र में अथवा पर्यावरण को स्वच्छ करने के रूप में परोक्षतः लाभकारी होते हैं।

उद्देश्य

इस खंड को पढ़ चुकने के बाद आप —

- उन अनुकूली विकिरणों की सूची बना सकेंगे जिनके द्वारा जीव सतत परिवर्तनशील पर्यावरण के कटुप्रभावों का सामना करने के लिए सक्षम हो जाता है,
- अकॉर्डेटों में व्यवहार प्रतिरूपों का तथा उनके अनुकूली मूल्यों का स्पष्टीकरण कर सकेंगे,
- मानव-चिकित्सा, पशु-चिकित्सा तथा कृषि महत्व के मुख्य हानिकर अकॉर्डेटों का वर्णन कर सकेंगे,
- उन भांति-भांति की विधियों से परिचित हो सकेंगे जिनके द्वारा अकॉर्डेट प्राणी मानवों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में लाभ पहुंचाते हैं।

1 ऊष्णकटिबंधीय कांतर

2. "स्टिंक–बग"

3. *मार्फो मेनेलौस* (*Morpho menelaus*) — पंख–शल्कों से व्यतिकरण रंगों का परावर्तन होता है। पंखों को टेढ़ा करके देखने से रंगों का अनुक्रम बन जाता है।

4. भूरी एकाकी मकड़ी

5. *टीएलिया पिसिवोरा* (*Tealia piscivora*) — इसमें रंग मुक्त अथवा एस्टरीकृत कैरॉटिनॉइडों के कारण होते हैं।

6. *ऐग्रियोलाइमैक्स कोलम्बिऐनस* (*Agrioilimax columbianus*)— पीला बनाना स्लग

7. *डैसिकैलाइना साइकैंथिना* (*Dasychalina cyçanthina*) — उपज्वारीय स्पंज

इकाई 14 अनुकूली विकिरण

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

14.2 एकल तथा कॉलोनीय स्वरूप
प्रोटोज़ोआ में कॉलोनीय स्वरूप
मेटाज़ोआ में कॉलोनीय स्वरूप

14.3 अनुकूली विकिरण
ऐनेलिडा में अनुकूली विकिरण
आर्थ्रोपोडा में अनुकूली विकिरण
मौलस्का में अनुकूली विकिरण

14.4 कीटों में उड्डयन

14.5 कीटों में प्रवास

14.6 सारांश

14.7 अंत में कुछ प्रश्न

14.8 उत्तर

14.1 प्रस्तावना

वर्गिकी तथा विकास के विषय पर हमारे पाठ्यक्रम एल एस ई-07 में आप पढ़ चुके हैं कि सजीव जीवधारी विकास की प्रक्रिया के उत्पाद हैं। सरल शब्दों में परिभाषित करें तो विकास 'परिवर्तन से युक्त वंशजता' कहा जा सकता है। यहां मूलभूत कारक परिवर्तन है। यह विकास या तो पर्यावरण की प्रकृति में हो सकता है या जीव की रचनाकृति एवं कार्य में हो सकता है। जीव के स्वरूप और उसके प्रकार्य पर पर्यावरण की प्रवृत्ति का बहुत प्रभाव होता है। इस पाठ्यक्रम के खंड-1 (इकाई-1) के भाग 1.3 में आपने पढ़ा है कि जीवधारियों में अपने पर्यावरण के साथ साम्य स्थापित करने की प्रवृति होती है। अनुकूलन कही जाने वाली इस प्रक्रिया से जीव में अपने सतत परिवर्तनशील पर्यावरण की 'तरंगों' से टक्कर लेने की क्षमता आ जाती है।

आपने देखा होगा कि जब कभी अलग-अलग वर्गों के जीव समान पर्यावरण में रहने लग जाते हैं तब उनमें संरचनात्मक एवं व्यवहारात्मक समानताएं इतनी अधिक आ जाती हैं कि उनसे इन जीवों के निकट संबंधित होने का मिथ्या आभास होने लगता है। उदाहरणतः मछलियाँ और ह्वेल जो वास्तव में अलग-अलग वर्गों (क्रमशः पाइसीज़ तथा मैमेलिया) में आती हैं, समान आवास में पायी जाती हैं, अर्थात् वे दोनों ही जलीय हैं। वे एक-दूसरे के इतनी समान दिखायी पड़ती हैं कि एक साधारण व्यक्ति इन दोनों को 'मछली' ही कह देता है। यह दशा जिसमें विभिन्न वर्गों में आने वाले जीव समान पर्यावरण के लिए इस प्रकार अनुकूलित हो जाते हैं कि वे एक ही जैसे दिखायी देते हैं और एक ही तरह कार्य करते जान पड़ते हैं, अनुकूली अभिसरण (adaptive convergence) कहलाती है।

उधर दूसरी ओर, ऐसी स्थितियां भी हैं जिनमें एक ही वर्ग के अथवा निकट संबंध वाले वर्गों के जीवों में अलग-अलग पर्यावरणों में रहने के कारण उनमें अलग-अलग अनुकूलन आ जाते हैं। ऐसा होने पर विकास की भिन्न दिशाएं बन जाती हैं। आप जानते ही हैं कि छिपकलियां, सांप, कछुए तथा मगरमच्छ एक ही वर्ग रेप्टीलिया के अंतर्गत आते हैं। मगर वे एक-दूसरे से इतने भिन्न दिखायी पड़ते हैं कि हो सकता है कोई व्यक्ति उन्हें अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत करने की

सोचने लगे। ऐसी स्थिति जिसमें एक ही वर्ग और निकटतः संबंधित वर्गों के सदस्य जीव, विभिन्न आवासों में रहने लगे हों और उन्होंने भिन्न कार्यात्मक अनुकूलन प्राप्त कर लिए हों, अनुकूली अपसरण (adaptive divergence) अथवा अनुकूली विकिरण (adaptive radiation) कहलाती है। इस इकाई में आप देखेंगे कि अकशेरुकी समूहों में किस प्रकार अनुकूली विकिरण विकसित हुए हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप

- प्राणियों के एकल तथा कॉलोनीय स्वरूपों में विभेद कर सकेंगे और निम्नतर अकशेरुकी समूहों में वास्तविक कॉलोनियों (निवहों) के विकास की आवश्यकता का स्पष्टीकरण कर सकेंगे,
- अनुकूली अभिसरण तथा अनुकूली अपसरण में अंतर बता सकेंगे और उन विविध विधियों को पहचान सकेंगे जिनके द्वारा ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा तथा मौलस्का में अनुकूली विकिरण हुआ है,
- कीट के पंख की संरचना का वर्णन कर सकेंगे तथा कीटों में उड्डयन की क्रियाविधि समझा सकेंगे,
- कीटों में प्रवास का अर्थ, उसकी प्रक्रिया एवं उसका महत्व बता सकेंगे।

14.2 एकल तथा कॉलोनीय स्वरूप

विभिन्न प्राणी या तो अलग-अलग व्यष्टियों के रूप में या समूहों में रहते हैं। जब वे अलग-अलग व्यष्टिगत रूप में रहते हैं तब उन्हें एकल (solitary) कहते हैं मगर जब वे संघटित कॉलोनियों में रहते हैं तब उन्हें कॉलोनीय (colonial) कहते हैं। कालोनियाँ एक प्रकार की अंतःस्पीशीज़ी साहचर्य होती हैं जिनमें प्रत्येक व्यष्टि का हित समूचे समूह के हित के अधीन रहता है। वास्तविक कॉलोनियों में व्यष्टियां या तो जीवित पदार्थ के माध्यम से शरीरतः संयोजित होती हैं या उनके द्वारा स्त्रावित पदार्थ के माध्यम से जुड़ी होती हैं। कॉलोनी में व्यष्टियों की निकटता होती है। वास्तविक कॉलोनियां सरल संघटना वाले केवल आदिम समूहों में ही पायी जाती हैं जैसे कि प्रोटोज़ोआ तथा सीलेंटेरेटा में। स्पंजों में यह निर्धारित करना कठिन है कि शाखायुक्त प्राणी कोई एक व्यष्टि है या कॉलोनीय। कॉलोनीय प्राणी अधिकतर अलैंगिक विधि से जनन करते हैं। देखा जाए तो कॉलोनियाँ वास्तव में तभी बनती हैं जब उनकी व्यष्टियां एक-दूसरे से पृथक नहीं हो पातीं। कॉलोनी की प्रत्येक व्यष्टि को जूऑइड (zooid) अर्थात् जीवक कहते हैं।

14.2.1 प्रोटोज़ोआ में कॉलोनीय स्वरूप

प्रोटोज़ोआ में अनेक सुपरिचित कॉलोनीय जीव आते हैं। सरलतम कॉलोनी-निर्माण कोएनोफ़्लैजेलेट (choanoflagellates) में पाया जाता है, इनमें कशाभ के आधार पर एक कॉलर बना होता है (यही इस वर्ग के नाम का आधार है) एक कॉलोनी में कुछ ही जूऑइड होते हैं जैसे *कोडोसिगा* (*Codosiga*) (चित्र 14.1 a) में। प्रत्येक जूऑइड का अपना अलग स्वतंत्र जीवन चलता है यद्यपि वह एक सम्मिलित वृंत से जुड़ा रहता है वॉल्वोकेलीज़ (Volvocales) प्राणियों में अधिक सम्मिश्र कॉलोनियां पायी जाती हैं। उदाहरणतः *गोनियम* (*Gonium*) में 4-16 व्यष्टियों की एक चपटी प्लेट जैसी कॉलोनी बनती है; *पैंडोराइना (Pandorina)* में 16 व्यष्टियों की गोलाकार कॉलोनी बनती है; *यूडोराइना* (*Eudorina*) की सतह पर व्यवस्थित 32 जूऑइडों की एक गोल कॉलोनी बनी होती है, *प्लीओडोराइना (Pleodorina)* में 128 जूऑइड होते हैं।

अधिक उन्नत प्रकार की कॉलोनी *वॉल्वॉक्स* (*Volvox*) में पायी जाती है जो एक पौधे-जैसा मैस्टाइगोफ़ोर अथवा फ़ाइटोफ़्लैजेलेट होता है। इसकी कॉलोनी में हजारों जूऑइड होते हैं जो इन्हीं के द्वारा स्रावित गोल, जेली-जैसे पदार्थ की सतह पर जड़े रहते हैं (चित्र 14.1 b)। इसमें भी प्रत्येक जूऑइड का स्वतंत्र अस्तित्व होता है, बस अंतर केवल इतना है कि इसमें कशाभी गति समन्वित होती है जिससे तैरने में सहायता मिलती है। साथ ही इसमें जूऑइड प्रोटोप्लाज़्मी धागों द्वारा परस्पर संयोजित भी होते हैं (चित्र 14.1)। यह जानना बहुत ही रोचक है कि ये कॉलोनियां सदैव एक विशिष्ट दिशा को ही सामने की ओर रखते हुए तैरती हैं, यानी इनमें ध्रुवता होती है अर्थात् एक ऐसा लक्षण जो कॉलोनीय अस्तित्व के लिए एक आधारभूत महत्व का है। *वॉल्वॉक्स* तथा *प्लीओडोराइना* में एक प्रकार का श्रम-विभाजन भी देखने को मिलता है। इनके अग्र जूऑइड जनन नहीं करते जबकि अन्य जूऑइड जननशील होते हैं और उनमें से कुछ तो लैंगिक जनन तक करने के लिए विशेषित हो गए हैं।

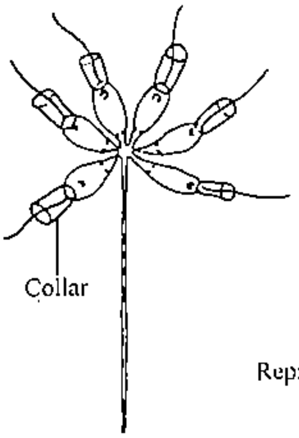

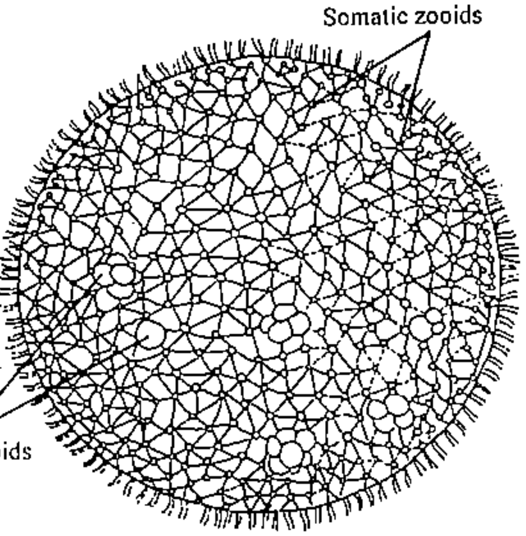

चित्र 14.1 : (a) कोएनोफ़्लैजेलेट-प्राणी : सरलतम प्रोटोज़ोअन कॉलोनी *कोडोसिगा* (b) *वॉल्वॉक्स* : एक उन्नत कॉलोनी।

अनेक सिलिएट भी, जैसे *एपिस्टाइलिस* (*Epistylis*) तथा *ज़ूथैम्नियम* (*Zoothamnium*) कॉलोनी बनाते हैं। ऐसी प्रत्येक कॉलोनी में घंटीनुमा जूऑइड होते हैं जो अपने वृंतों द्वारा एक सम्मिलित स्तम्भ से जुड़े होते हैं (चित्र 14.2 a तथा b)। *एपिस्टाइलिस* में सभी जूऑइड एक-जैसे होते हैं जबकि *ज़ूथैम्नियम* में जूऑइड-संरचना में बहुरूपता पायी जाती है। इसकी कॉलोनी में चार प्रकार के जूऑइड होते हैं (चित्र 14.2 b) — एक अकेला अंतस्थ जूऑइड जो एक गुरुसंयुग्मी में परिवर्तित हो जाता है, मध्यक अक्षीय सूक्ष्मजूऑइड जो प्रवासी सिलियोस्पोर बन सकते हैं, अंतस्थ शाखा सूक्ष्मजूऑइड जिनसे सूक्ष्मसंयुग्मी बन सकते हैं और कायिक सूक्ष्मजूऑइड जो या तो सिलियोस्पोरों में या सूक्ष्मसंयुग्मियों में बदल सकते हैं।

आइए अब देखें कि प्रोटोज़ोओं में कॉलोनीय जीवन के क्या-क्या लाभ हैं। अधिसंख्य प्रोटोज़ोअन कॉलोनियां स्वपोषी (autotrophic) होती हैं अर्थात् वे अपना आहार प्रकाश-संश्लेषण के द्वारा पादप-सरीखी विधि से प्राप्त करते हैं। अतः कॉलोनीय अस्तित्व द्वारा कोई प्रकट पोषण लाभ नहीं प्रदान होता। तब फिर इसके लाभ क्या हैं ? इससे हमें निम्नलिखित लाभ दिखायी पड़ते हैं :

1. जेली-सदृश पदार्थ में व्यष्टियों के साहचर्य से, विशेषतः जब वे प्रोटोप्लाज़्मी सूत्रों से परस्पर संयोजित होते हैं, पोषकों का संचारण आसानी से हो जाता है।
2. अनेक जूऑइडों की संयोजित कशाभी क्रिया से संचलन लाभ प्रदान होता है।
3. अधिकतर कॉलोनियां गोल होती हैं और इस तरह गोले के किसी निर्दिष्ट आयतन के होते

हुए परिवेशी जल के प्रति न्यूनतम सतह-क्षेत्रफल सम्पर्क में आता है जिसके कारण जल द्वारा न्यूनतम प्रतिरोध होता है।

4. सिलिएटों की कॉलोनियों में सामूहिक साहचर्य से सुरक्षा प्रदान होती है और साथ ही आहार-आपूर्तियों का अधिक प्रभावशाली उपयोग होता है।

मेटाज़ोआ में कॉलोनीय जीवन पर और आगे चर्चा करने से पहले आइए देखें कि आपने क्या-क्या सीख लिया है।

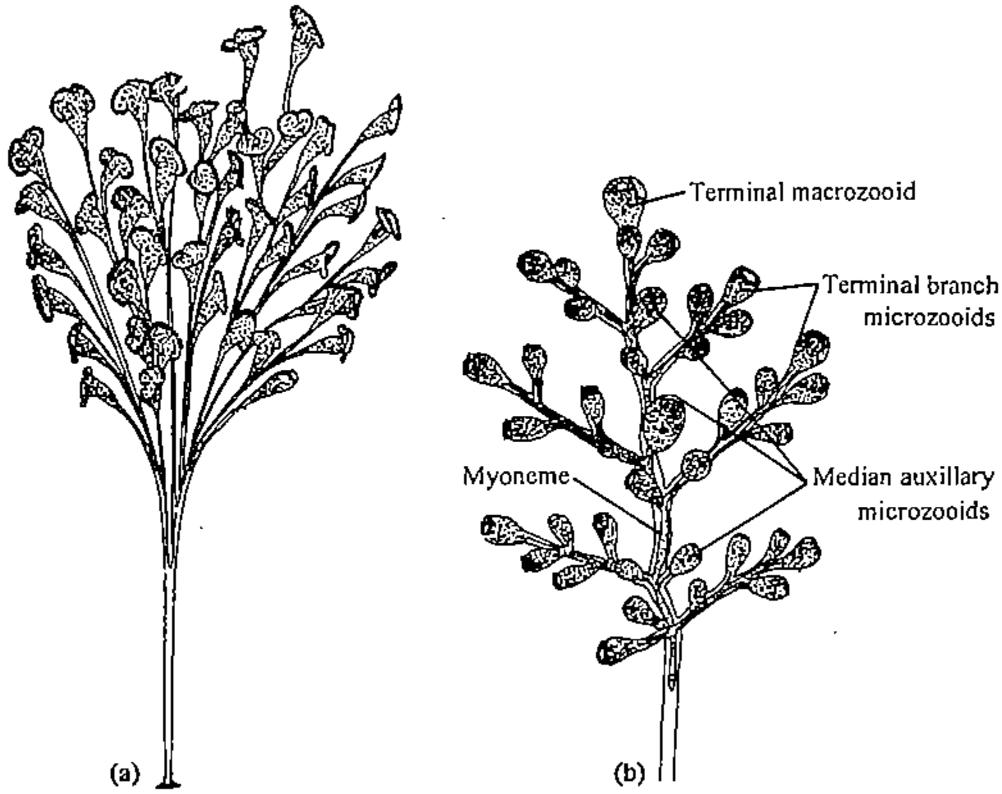

चित्र 14.2 : (a) *एपिस्टाइलिस* : समान जूऑइडों वाली कॉलोनी; (b) *ज़ूथैम्नियम* : एक बहुरूपी प्रोटोज़ोआ कॉलोनी।

बोध प्रश्न 1

1. नीचे कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   (पर्यावरण, भिन्न, समान, अनुकूली अभिसरण, अनुकूली अपसरण)

   (i) वह दशा जिसमें भिन्न जातिवृत्तीय समूहों में आने वाले जीव एक समान .... के प्रति अपने को अनुकूलित कर लेते हैं एवं देखने में एक जैसे दिखाई देते हैं एवं क्रियाएं भी उसी प्रकार से करते हैं .... कहलाती हैं।

   (ii) जब जातिवृत्तीय दृष्टि से निकट संबंध वाले प्राणी अलग-अलग आवासों को ग्रहण कर लेते हैं और भिन्न अनुकूली रूपांतरण प्राप्त कर लेते हैं तब इस दशा को .... कहते हैं।

2. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं (T) अथवा गलत (F)।

   (i) वास्तविक कॉलोनियों में जूऑइड एक-दूसरे के साथ शारीरिक दृष्टि से संयोजित नहीं होते। ☐

   (ii) वास्तविक कॉलोनियां केवल उन जीवों में पायी जाती हैं जो अपेक्षा सरल संघटना वाले होते हैं। ☐

(iii) *जूथैम्नियम* की कॉलोनियों में बहुरूपता पायी जाती है। ☐

(iv) कॉलोनीय जीवन से सभी कॉलोनीय जीवों को पोषण लाभ प्राप्त होते हैं। ☐

14.2.2 मेटाज़ोआ में कॉलोनीय स्वरूप

मेटाज़ोओं में यथार्थ कॉलोनीय स्वरूप सीलेंटेरेटा में पाए जाते हैं, हालांकि शब्द कॉलोनी अक्सर स्पंजों एवं कीटों के लिए भी प्रयोग किया जाता है। स्पंजों में 'कॉलोनी' शब्द को बस यूं ही इसलिए प्रयोग कर लेते हैं कि इनमें बहुत से ऑस्कुलम होते हैं। "एक ऑस्कुलम-एक व्यष्टि" का नियम हुआ करता है। मगर यह परिभाषा मात्र एक सुविधा की दृष्टि से है। कीटों में "कॉलोनी" शब्द उन जटिल समाजों को व्यक्त करने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है जिन्हें वे बनाते हैं जैसे मधुमक्खियों, चींटियों, दीमकों आदि में। परंतु ये सामाजिक समूह सही अर्थों में कॉलोनी शब्द की परिभाषा की परिधि में नहीं आते।

सीलेंटेरेट कॉलोनियां

हाइड्रोज़ोआ तथा ऐंथोज़ोआ के सदस्य वास्तविक कॉलोनियां बनाते हैं। कॉलोनी में सुस्पष्ट व्यष्टित्व से युक्त ज़ूऑइड पाए जाते हैं जिनकी आकृति एवं प्रतिरूप अलग-अलग स्पीशीज़ में अलग-अलग होते हैं। उतराती (तिरती हुई) कॉलोनियां साइफ़ोनोफ़ोरों की होती हैं। स्थानबद्ध हाइड्रोज़ोअन कॉलोनियों के मामले में कॉलोनियां अधःस्तर से जुड़ी होती हैं और अधःस्तर से जोड़ने का काम धागे-जैसे सजीव क्षैतिज स्टोलन अथवा हाइड्रोराइज़ा करते हैं (चित्र 14.3 a)। इन स्टोलनों से सीधे ऊपर को खड़े शाखायुक्त स्तम्भ निकलते हैं जिन्हें हाइड्रोकैलस (hydrocaulus) कहते हैं। प्रत्येक हाइड्रोकैलस से पार्श्व शाखाएं निकलती हैं और स्वयं इन शाखाओं से भी तीसरे क्रम की शाखाएं निकलती हैं। इन्हीं शाखाओं पर ज़ूऑइड बने होते हैं (चित्र 14.3 a)।

कॉलोनी की शाखाएं और ज़ूऑइड एक सजीव सीनोसार्क (coenosarc) द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं, और इसके ऊपर एक निर्जीव शृंगीय पेरिसार्क चढ़ी होती है। समूची कॉलोनी में सीलेंटेरॉन जारी रहती है। ज़ूऑइड या तो सिलिंडराकार अथवा छत्रनुमा होता है और वह द्विकोरकीय (डिप्लोब्लास्टिक) होता है जिसके भीतर एक देह-गुहा तथा सीलेंटेरॉन होती है जो हाइपोस्टोम् पर स्थित एक मुख द्वारा बाहर को खुलती है। हाइपोस्टोम के चारों ओर स्पर्शकों (tentacles) का एक चक्र बना होता है। कुछ स्थितियों में ज़ूऑइडों के चारों ओर एक प्याले जैसी संरचना अथवा केप्सूल जैसा आवरण बन जाता है जिसे हाइड्रोथीका अथवा गोनोथीका जैसे अलग-अलग नाम दिए जाते हैं। थीका से आवृत्त ज़ूऑइडों को थीकेट (thecate) कहते हैं तथा बिना थीका वाले ज़ूऑइडों को नग्न अथवा एथीकेट (athecate) कहते हैं।

हाइड्रोकैलस की वृद्धि दो प्रकार की होती है – मोनोपोडियल (monopodial) और सिम्पोडियल (sympodial) (चित्र 14.3 b तथा 14.3 c)। मोनोपोडियल वृद्धि में मुख्य अक्ष में सीधी एक ही रेखा में वृद्धि होती जाती है अर्थात् प्रत्येक शाखा के अंत पर एक स्थायी अंतस्थ ज़ूऑइड बनता है जो उस शाखा का सबसे पुराना ज़ूऑइड होता है। इस अंतस्थ ज़ूऑइड के आधार के नीचे वृद्धि-क्षेत्र होता है। इसी क्षेत्र के द्वारा शाखा की लंबाई बढ़ती है। वृद्धि क्षेत्र से पार्श्व मुकुल भी निकलते हो सकते हैं जो स्वयं लंबे होते जाते हैं। सिम्पोडियल वृद्धि में प्राथमिक पौलिप में वृद्धि जारी नहीं रहती, वरन इससे पार्श्व पौलिप बनते हैं। इसमें भी वृद्धि रूक जाती है मगर पुनः पार्श्व मुकुल बनते हैं। इनमें अंतस्थ पौलिप अल्पतम आयु वाला होता है। प्रधान अक्ष अनेक पौलिपों के संयोजित हाइड्रोकैलसों का बना होता है (उदा. *हैलीसियम*)। कुछ उदाहरणों जैसे कि *हाइड्रैक्टिनिया* (*Hydractinia*) में ज़ूऑइड एक अनियमित रूप में सीधे स्टोलन से ही निकलते हैं।

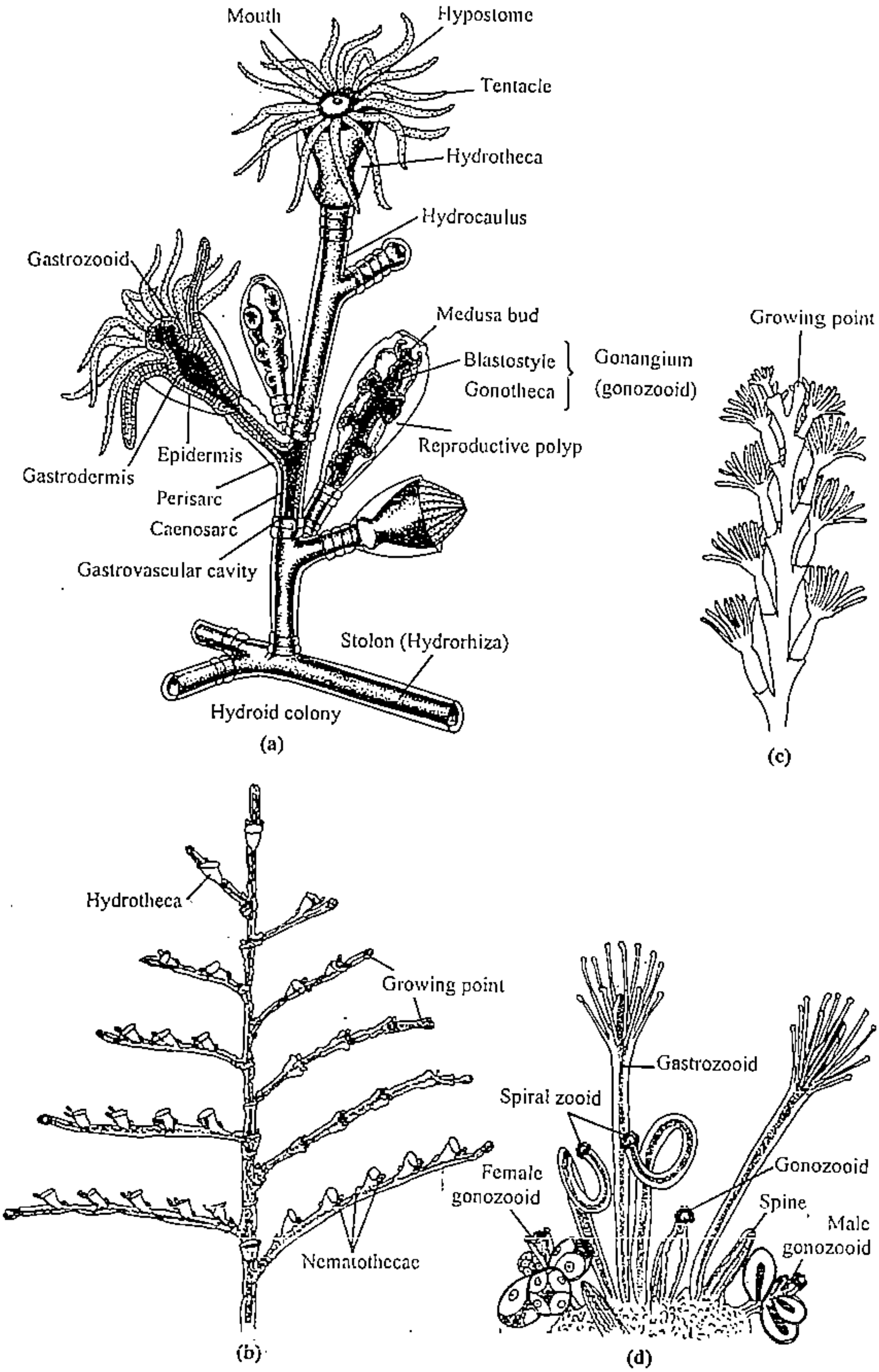

चित्र 14.3 : (a) *ओबीलिया* : एक हाइड्रॉइड कॉलोनी (मोनोपोडियल कॉलोनी)। (b) *प्लुमुलैरिया* कॉलोनी जिसमें मोनोपोडियल वृद्धि दिखायी पड़ रही है। (c) *हैलीसियम* कॉलोनी की सिम्पोडियल वृद्धि। (d) *हाइड्रैक्टिनिया* कॉलोनी जिसमें पॉलिप सीधे स्टोलन-गद्दी से निकलते होते हैं।

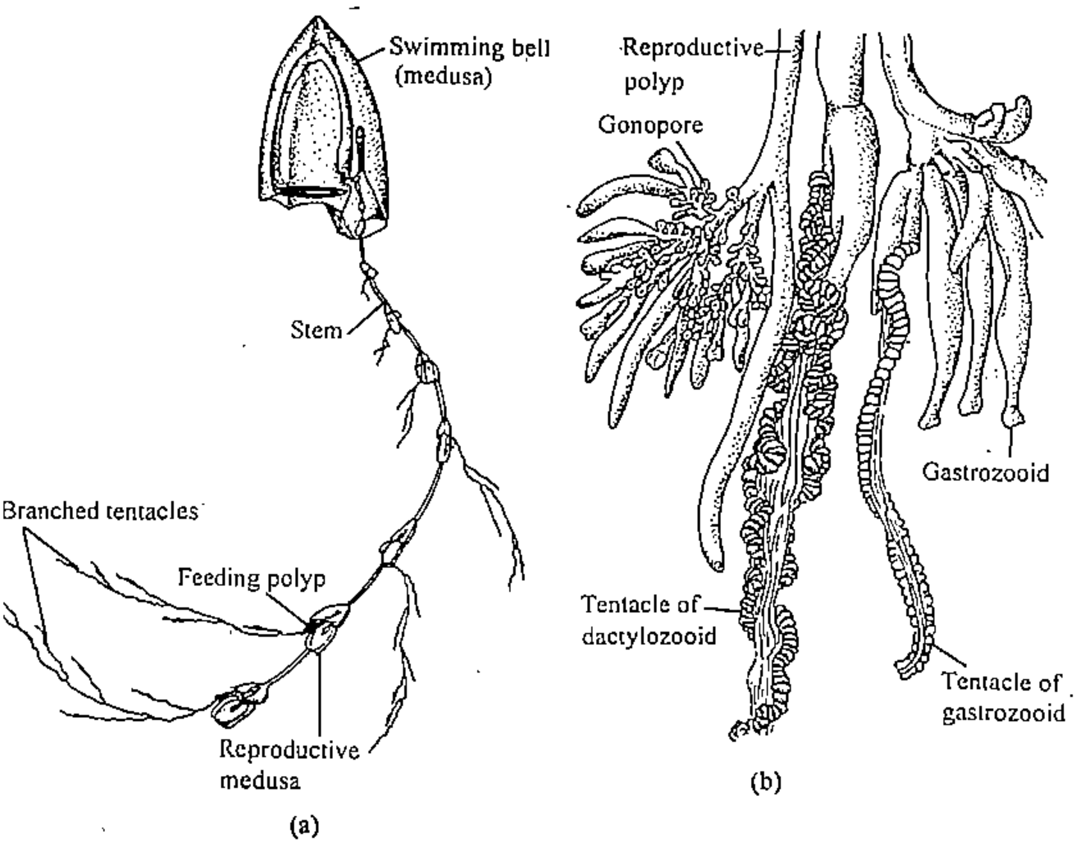

चित्र 14.4 : (a) एक प्ररूपी जलनिमग्नी साइफ़ोनोफ़ोर *मग्जिया*। (b) एक अन्य साइफ़ोनोफ़ोर *फ़ाइसेलिया* की कॉलोनी का एक भाग जिसमें जूऑइड बहुरूपता दर्शायी गयी है

सीलेंटेरेट कॉलोनियों का एक और लक्षण है बहुरूपता (polymorphism)। जूऑइड अनेक स्वरूपों में पाए जाते हैं और उनमें श्रम-विभाजन पाया जाता है। सामान्यतः कुछ जूऑइडों का संबंध अशन से होता है, इन्हें गैस्ट्रोजूऑइड (gastrozooid) कहते हैं।

ब्लास्टोजूऑइड (blastozooid) अथवा जिनमें गोनोजूऑइड भी हैं, जनन का कार्य करते हैं, उनमें से मेडुसाओं का मुकुलन होता रहता है, ये मेडुसा एक अन्य प्रकार के जूऑइड होते हैं। इनके अलावा डैक्टिलोजूऑइड (dactylozooids) होते हैं जिनके काम सुरक्षा प्रदान करना है। प्याले-जैसी आकृति के जूऑइड जिन्हें मेडुसा कहते हैं युग्मक (गैमीट) बनाते हैं और लैंगिक जनन करते हैं। यहां आप एक बार फिर से उन साइफ़ोनोफ़ोरों तथा अन्य हाइड्रोजोअन कॉलोनियों का विचार कीजिए जिनके विषय में आप पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं। साइफोनोफ़ोरा समूह में चार प्रकार की बहुरूपता पायी जाती है, उदाहरणतः *मग्जिया* (*Muggiaea*) तथा *फ़ाइसेलिया* (*Physalia*) (चित्र 14.4) में। इस समूह में वेलापवर्ती जूऑइड आते हैं। इनकी कॉलोनी में गैस्ट्रोजूऑइड, डैक्टिलोजूआइड तथा गोनोजूऑइड होते हैं। मेडुसा जनकों के साथ संलग्न बने रहते हैं और रूपांतरित होकर *गोनोफ़ोर* (जन जूऑइड), नेक्टोफ़ोर (nectophore) (संचलनी जूऑइड) तथा गैस-भरे न्यूमैटोफ़ोर (pneumatophore) (यानि उत्प्लावी जूऑइड, floating zooids) बन जाते हैं।

पिछली इकाइयों में से एक इकाई में आपने सीलेंटेरेटों का अध्ययन करते हुए मूंगों तथा प्रवाल भित्तियों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की थी। आप उस खंड के विषय में पुनः स्मरण करें। *हाइड्रोकौरैलाइना* (हाइड्रोकोरल प्राणी जैसे *स्टाइलैस्टर, मिलेपोरा*) (चित्र 14.5)। कॉलोनीय, पौलीपॉइड हाइड्रॉइड प्रवाल होते हैं जो बड़ा-बड़ा आकार प्राप्त कर लेते हैं जो

प्रवाल भित्तियों के निर्माण में योगदान देते हैं। इनका कंकाल कैल्सियमी तथा भीतरी एवं एपिडर्मिसी होता है। अनेक ऐंथोज़ोआन भी जैसे कि *पैलिथोआ* (*Palythoa*) कॉलोनीय तो होते हैं मगर उनमें बहुरूपता नहीं पायी जाती।

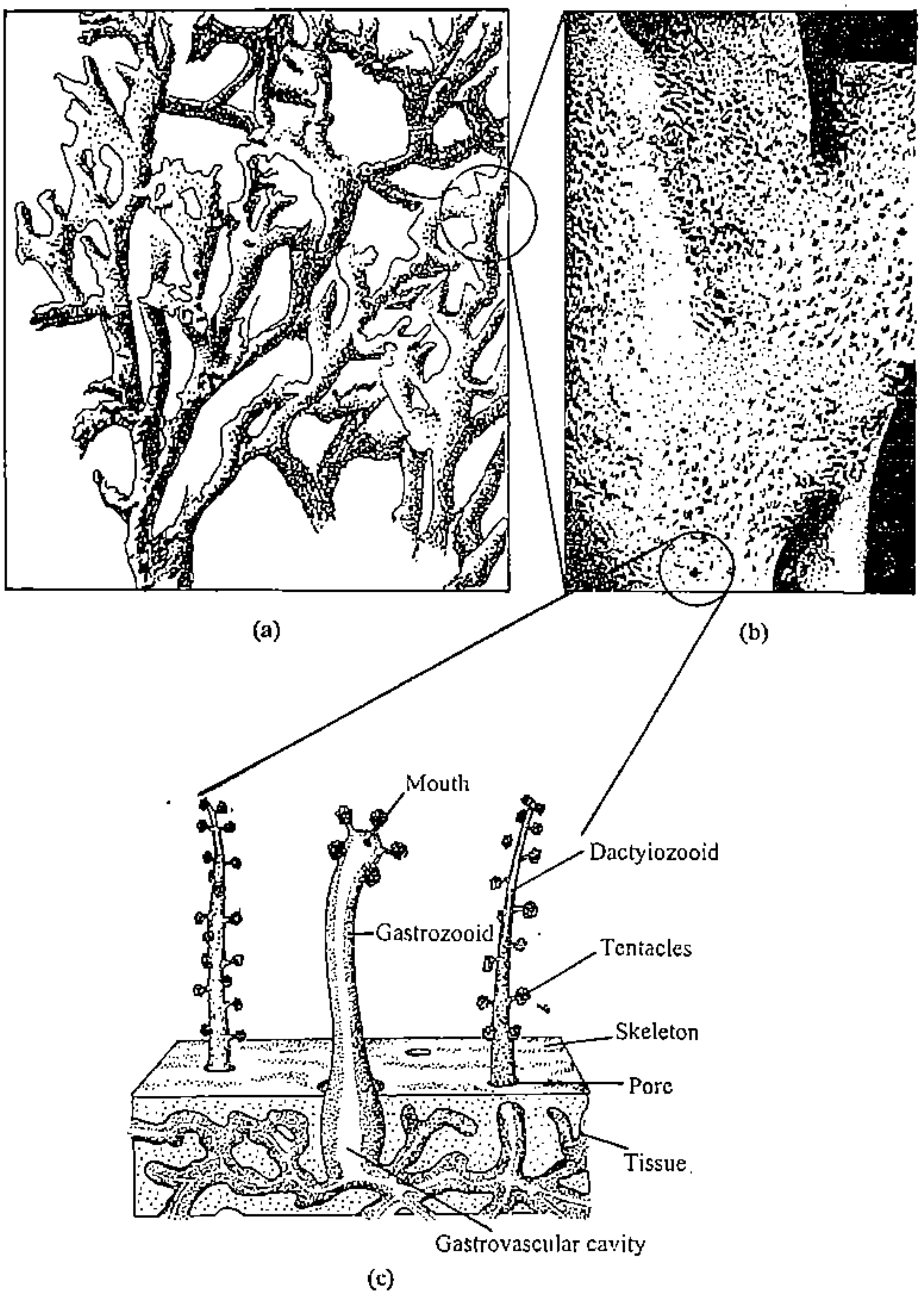

चित्र 14.5 : हाइड्रोकोरल *मिलेपोरा;* (a) कॉलोनी, (b) कॉलोनी का एक आवर्धित भाग जिसमें छिद्र दिखायी पड़ रहे हैं; (c) *मिलेपोरा* के पौलिप कंकाल के छिद्रों में से निकलते आ रहे हैं।

अनेक वास्तविक प्रवाल भी, हालांकि सबके सब नहीं, कॉलोनीय होते हैं। सच तो यह है कि कॉलोनीय ऐंथोज़ोआनों में बहुत-से ऐसे ख़ास हैं जो प्रवाल-निर्माता हैं। कॉलोनी-निर्माता *स्क्लेरैक्टीनियन* (*scleractinian*) प्रवाल अर्थात् अश्म-प्रवाल जिन्हें हेक्साकोरल तथा मैड्रेपोरेरियल प्रवाल भी कहते हैं (चित्र 14.6) जिनमें *ऐस्ट्रैंजिया* (*Astrangia*), *मोनैस्ट्रीया* (*Monastrea*) और

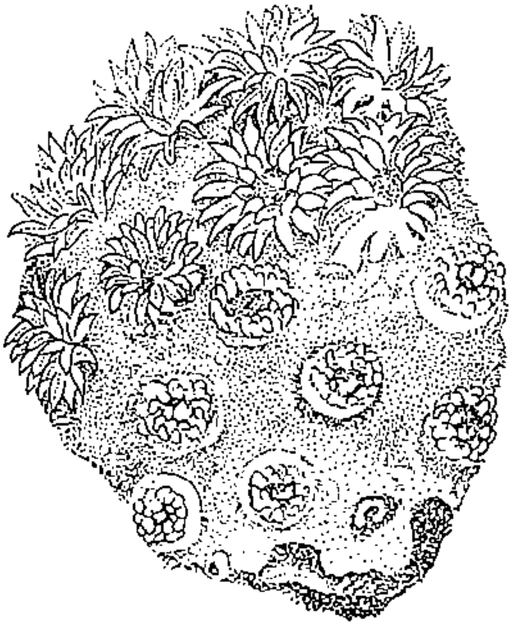

चित्र 14.6 : प्रवाल कॉलोनी का एक अंश जिसमें संकुंचित एवं प्रसृत पौलिप दिखाए गए हैं।

और मस्तिष्क-प्रवाल (brain coral) आते हैं। इनमें इनके पौलिप क्षैतिज संयोजनों द्वारा परस्पर संयोजित रहते हैं। इनका कंकाल एपिडर्मिसी तथा बाहरी होता है (चित्र 14.7)। इनमें एकल प्रवाल भी होते हैं जैसे *फंजिया* (चित्र 14.8)। कॉलोनी-निर्माता ऑक्टोकोरलों (ऐल्सायोनेरियनों, Alcyoniarians) में ऐंथोज़ोअनों में आने वाले प्राणी ये हैं : सामान्य समुद्री-कलम, समुद्री-शलाकाएं, समुद्री-पैंज़ियां, समुद्री-पंखे, कोड़ा-प्रवाल, नलिका प्रवाल, आदि (चित्र 14.9)। इनके कंकाल जो कॉलोनी को आलम्ब प्रदान करते हैं, अभीवाणुओं द्वारा स्रावित होते हैं। इन ऑक्टोकोरलों का कंकाल इस प्रकार भीतरी होता है और वह ऊतक का ही एक भाग होता है।

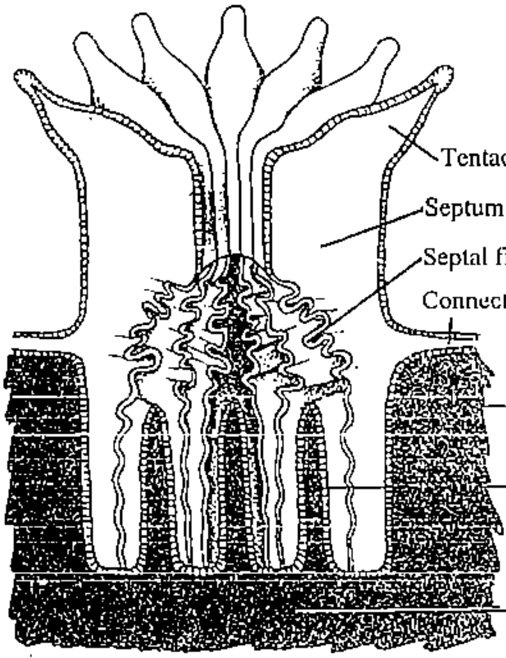

चित्र 14.7 : प्रवाल पौलिप का, उसका थीका वो भीतर होते हुए उदग्र सेक्शन।

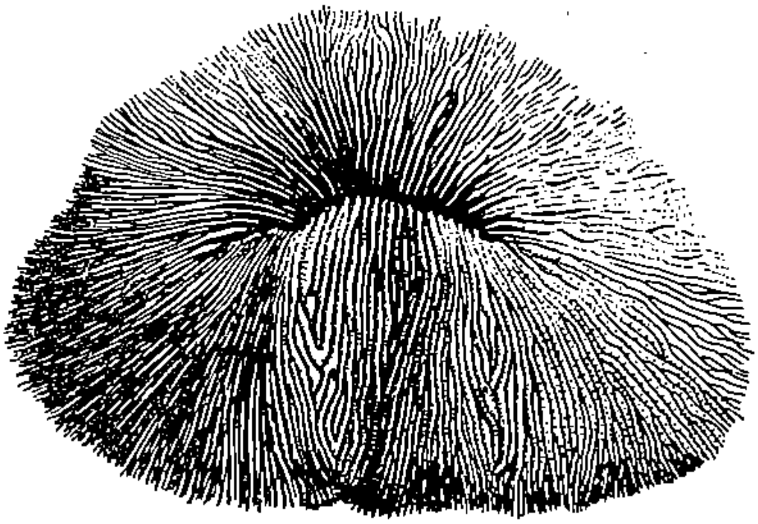

चित्र 14.8 : *फंजिया*

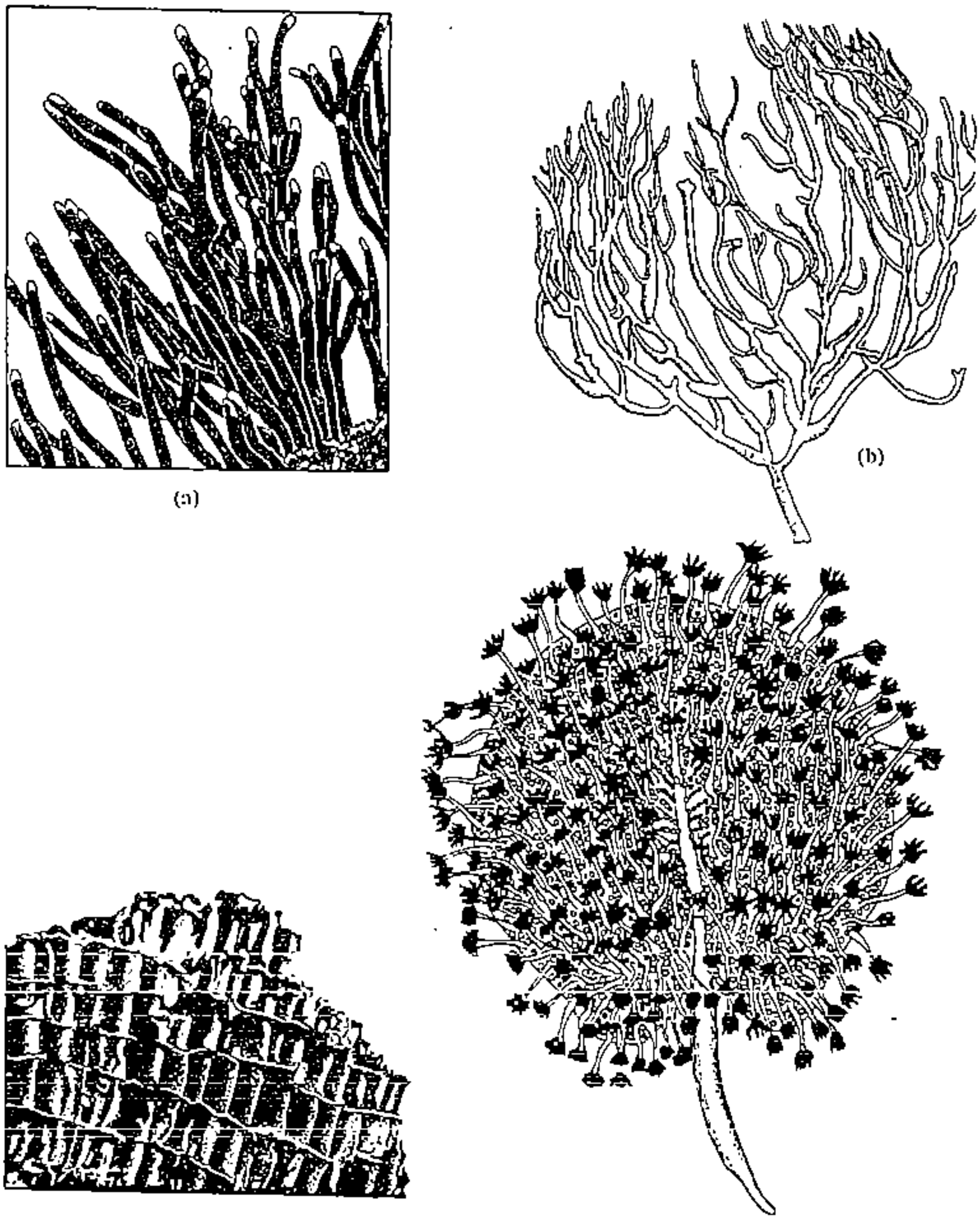

चित्र 14.9 : (a) समुद्री शलाकाएं (b) समुद्री पंखे, (c) ऑर्गन-पाइप प्रवाल, (d) समुद्री पैंज़ी

इस विवरण से आपको पता चल गया होगा कि प्रवालों का विकास अलग-अलग सीलंटेरेट समूहों से हुआ है। यह उनके अनुकूलन में अभिसरण का उदाहरण है।

इस प्रकार कॉलोनीय जीवन का लाभ भी स्पष्ट हो गया है, व्यष्टियों के बीच उत्तरजीविता के लिए स्पर्धा के स्थान पर सहयोग अथवा सहकार ने स्थान ले लिया है। इससे इन्हें पोषण, सुरक्षा एवं जनन में स्पष्ट लाभ मिलते हैं।

बोध प्रश्न 2

1. सूची 'क' में दिए गए शब्दों को सूची 'ख' में दिए गए शब्दों से मिलाइए :

सूची क	सूची ख
i) डैक्टिलोज़ूऑइड	(क) अशन
ii) गैस्ट्रोज़ूऑइड	(ख) तैरना
iii) न्यूमैटोफ़ोर	(ग) सुरक्षा
iv) मेडुसा	(घ) लैंगिक जनन

2. आपने जो कुछ उपभाग 14.2.2 में पढ़ा है उसके आधार पर निम्न कथन में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   हाइड्रोकैलस की वृद्धि दो प्रकार की अर्थात् ....तथा ....प्रकार की होती है। इनमें से पहले प्रकार में प्रत्येक शाखा एक .... वृद्धतम अंतस्थ लंबा कटता है तथा जिसमें से मुकुल निकलते हैं।

14.3 अनुकूली विकिरण

इस इकाई के आरंभ में आपने पढ़ा कि जब एक ही अथवा निकटतः संबंधित समूहों के जंतु अलग-अलग जीवन-विधियों के लिए अनुकूलित होते जाते हैं तब इनमें अनुकूली अपसरण अथवा अनुकूली विकिरण होता हुआ कहा जाता है। यह संकल्पना लैमार्क तथा डार्विन जैसे शुरू के प्राणिवैज्ञानिकों को ज्ञात थी। लैमार्क ने इसे 'एम्ब्रांचमेंट' अर्थात् 'प्रशाखन' कहा तथा डार्विन ने अपसरण (divergence) कहा। मगर इस विचारधारा को ओस्बॉर्न ने एक नियम के रूप में मूर्त रूप किया जिसे अनुकूली विकिरण का नियम कहा गया। हालांकि ऑस्वार्न ने अनुकूली विकिरण का नियम स्तनियों पर किए गए अध्ययनों के आधार पर किया था मगर यह अन्य प्राणि-समूहों — अकशेरुकी तथा कशेरुकी दोनों पर समान रूप में लागू होता है। सभी प्राणी समूहों के इतिहास में सदैव एक थोड़ा-सा ऐसा समय जरूर आता है जब उनमें विकास की दर बहुत तेज हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप अनेक नयी प्रमुख विकास रेखाएं अथवा अनुकूलन प्रकट होते हैं। मूल जीव भंडार के विविध दिशारेखाओं में टूटने की प्रक्रिया को, जिनमें से प्रत्येक शाखा का अपना-अपना विकास आगे चलता जाता है, अनुकूली विकिरण कहते हैं।

जीवों की दो आधारभूत आवश्यकताएं होती हैं जो मुख्यतः उनके अनुकूली विकिरण के लिए उत्तरदायी होती हैं। ये आवश्यकताएं हैं एक तो आहार और दूसरी सुरक्षा। प्राणियों के विकास में आहार संग्रहण का स्वभाव एक मुख्य कारक रहा है। इस स्वभाव के दो मूलभूत तरीके रहे हैं। एक तो ऐसे प्राणी थे जो बस आहार के, स्वयं उनके समीप आने की प्रतीक्षा करते थे। दूसरे प्राणी वे थे जो सक्रिय रूप में आहार को ढूंढ़-ढूंढ़ कर उसका पीछा करते थे। पहले प्रकार यानी प्रतीक्षा करने वाले प्राणियों ने स्थानबद्ध स्वभाव ग्रहण कर लिया और उनमें अरीय सममिति

(radial symmetry) आ गयी। अरीय सममिति से इन स्थानबद्ध प्राणियों को अपने इर्द-गिर्द सभी दिशाओं में आहार से सम्पर्क बन सकता था। ऐसे प्राणियों में एक विशेष प्रकार की अशन युक्ति विकसित हो गयी जिसे फ़िल्टर-अशन (filter feeding) कहा जाता है। इसके विपरीत एक प्ररूपी आहार खोजकर्ता को आहार संग्रह के लिए इधर-उधर जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। ये प्राणी आहार के पीछे-पीछे चलेंगे। इसमें उनमें अग्र-पश्च ध्रुवता, शिरोभवन तथा द्विपार्श्व सममिति के लक्षण आए। अग्र सिरा एक स्पष्ट शीर्ष बनता गया जिसमें मुखांग, संवेदी अंग तथा मस्तिष्क भी बने (इससे पहले की इकाई देखिए)।

प्राणियों के विकास में दूसरा मुख्य कारक रहा है सुरक्षा की आवश्यकता का, उस सुरक्षा का जो उन्हें पर्यावरण के प्रतिकूल अजैविक एवं जैविक घटकों से करनी जरूरी थी। इस सबने भी प्राणियों को नए-नए आवासों तथा नई-नई परिस्थितियों के प्रति अनुकूल बनने और उनका अधिकाधिक लाभ उठाने की ओर अग्रसर किया। ये रूपांतरण प्राणियों के और उनके स्वभावों में, आकारिकी में और उनकी शरीर क्रिया में आए। विविध विकास दिशाओं एवं प्राणी-समूहों के विकास इतिहास से पता चलता है कि अलग-अलग प्राणी वर्गों में अलग-अलग कार्यात्मक अनुकूलन हुए हैं। अतः आप अलग-अलग प्राणि वर्गों में अलग-अलग अनुकूली विकिरण दिशाएं पाएंगे।

14.3.1 ऐनेलिडा में अनुकूली विकिरण

फ़ाइलम ऐनेलिडा में तीन वर्ग हैं — *पौलीकीटा, ओलाइगोकीटा* तथा *हिरुडिनिया*। इनमें से पौलीकीटा में क्लाइटेलम नहीं होता; ओलाइगोकीटा तथा हिरुडिनिया क्लाइटेलम से युक्त होते हैं। अब आप ऐनेलिडा के वर्गीकरण और उसके लक्षणों का स्मरण कीजिए जिन्हें आपने इस पाठ्यक्रम के खंड-1 की इकाई 4 में पढ़ रखा है। माना जाता है कि आरंभिक ऐनेलिड समुद्री कृमि थे जो तली में अथवा समुद्रतट की रेत अथवा कीचड़ में बिल बनाकर रहते थे। पौलीकीट में समुद्री स्पीशीज़ शामिल हैं जो समुद्र में ही अपना जीवन चलाती रहीं और उसी में विविध निकेतों में फैल गयीं। ओलाइगोकीटों में वह दिशा आती है जिससे अलवणजलीय स्वरूप बने एवं केंचुए भी बने। हिरुडिनिया में जोंकें आती हैं जो कुछ अलवणजलीय ओलाइगोकीटों से बनीं।

पौलीकीटा में अनुकूली विकिरण

महासागरों में बिलकारी तथा रेंगने वाले जीवन के लिए अनुकूलित कुछ छोटे ऐनेलिड कृमि - जैसे जीवों से आरंभ होकर यह वर्ग खाद्य-स्वभावों के आधार पर दो मुख्य शाखाओं में एक-दूसरे से अलग होते गए — एक वर्ग सक्रिय रूप में आहार-खोजकर्त्ताओं का था और दूसरा वर्ग स्थानबद्ध प्राणियों का। सक्रिय वर्ग के प्राणी आहार ढूंढते फिरते थे जिसमें वे या तो अपमार्जन करते (मृत अवशेषों को खाते) या उसका शिकार करते थे। दूसरे वर्ग यानी स्थानबद्ध प्राणियों ने मुख्यतः बिलकारी अथवा नलिकावासी स्वरूपों को जन्म दिया। इकाई के इस भाग में हम पौलीकीट समूह की चर्चा करेंगे जो संचालन, आवासन तथा पोषण की विविध विधियों के लिए अनुकूलित हो गए हैं।

भ्रमणशील पौलीकीट (Errant polychaetes)

नीरिड तथा हेसिओनिड प्रकार के प्राणी तीव्र रेंगने वाले कृमि होते हैं, ये चट्टानों में तथा प्रवाल दरारों, पत्थरों और कवचों के नीचे और शैवालों एवं स्थानबद्ध प्राणियों के बीच-बीच में तेजी से रेंगते चलते-फिरते हैं। इन कृमियों में शीर्ष सुविकसित होता है जिस पर एक से लेकर चार जोड़ी तक आंखें, पांच तक की संख्या में ऐंटेना और एक जोड़ी पैल्प होते हैं (चित्र 14.10)।

इन कृमियों में बड़े आकार के परापाद (parapodia) होते हैं जो रेंगने में सहायता करते हैं। इनमें से अनेक पौलीकीट मांसभक्षी होते हैं और अन्य पौलीकीटो सहित छोटे-छोटे कशेरुकियों को खाते हैं। अन्य खाद्य-स्वभाव जैसे कि अपमार्जन, शैवाल-भक्षण तथा अपरद-भक्षण भी इनमें से कुछ पौलीकीटों में विकसित हुए। भ्रमणशील पौलीकीटों की ग्रसनी दंशीय तथा बहिर्वर्तनी होती है

एवं उसमें दांत अथवा जबड़े होते हैं जिनकी संख्या अलग-अलग वर्गों में अलग-अलग होती है (चित्र 14.11)।

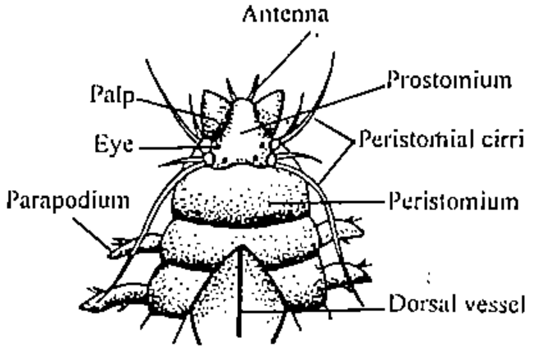

चित्र 14.10 : *नीरीस* नामक पौलीकीट का शीर्ष भाग

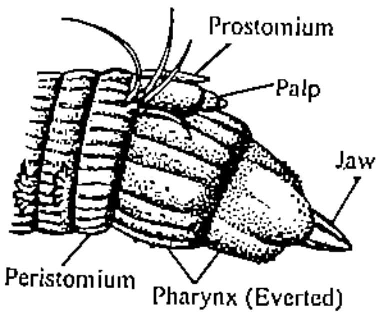

चित्र 14.11 : *नीरीस* नामक पौलीकीट की शीर्ष जिसमें वहिवर्तित ग्रसनी (पार्श्व दृश्य दिखायी पड़ रही हैं, ग्रसनी के वहिवर्तित होने पर जबड़े खुल जाते हैं और उसके आकुंचित होने पर बंद हो जाते हैं

वेलापवर्ती पौलीकीट (Pelagic polychaetes)

पौलीकीटों के कुछ वंश सागर में जीवन के लिए अनुकूलित होती हैं और इस तरह वे या तो वेलापवर्ती (pelagic) होती हैं या प्लवकीय (palanktonic)। इन कृमियों में शीर्ष सुव्यवस्थित होता है तथा परापाद बड़े होते हैं जिन्हें तैरने में सहायता के लिए पैडलों की तरह इस्तेमाल किया जाता है। अन्य प्लवक प्राणियों की ही तरह ये पौलीकीट भी हल्के पीले से अथवा पारदर्शी होते हैं। ये कृमि सामान्यतः मांसभक्षी होते हैं, उदा. *रिंकोनेरेला ऐंजेलाइना* (*Rhynchonerella angelina*) (चित्र 14.12), *टोमोप्टेरिस रीनेटा* (*Tomopteris renata*)।

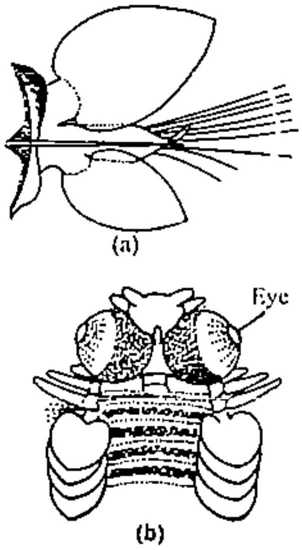

चित्र 14.12 : वेलापवर्ती पौलीकीट *रिंकोनेरेला ऐंजेलाइना* (a) तथा उसका परापाद (b)

दीर्घावासी (Gallery dwellers)

ये पौलीकीट रेत अथवा कीचड़ में बनी दीर्घाओं यानी बिलों में रहने के लिए अनुकूलित होते हैं। दीर्घावासी लंबी-चौड़ी बिल व्यवस्था बनाते हैं जो सतह के ऊपर कई बिंदुओं पर खुलती हैं (चित्र 14.13 a)। इन बिलों के अस्तर पर कृमियों द्वारा स्रावित श्लेष्मा की परत चढ़ायी होती है जो बिलों को ढह जाने से रोकती है। इन कृमियों का पुरोमुख (prostomium) या तो एक सरल पिंडक हो सकता है या वह शंक्वाकार आकृति का होता है और उसमें आंखें एवं अन्य संवेदी अंग नहीं होते (चित्र 14.13 b)।

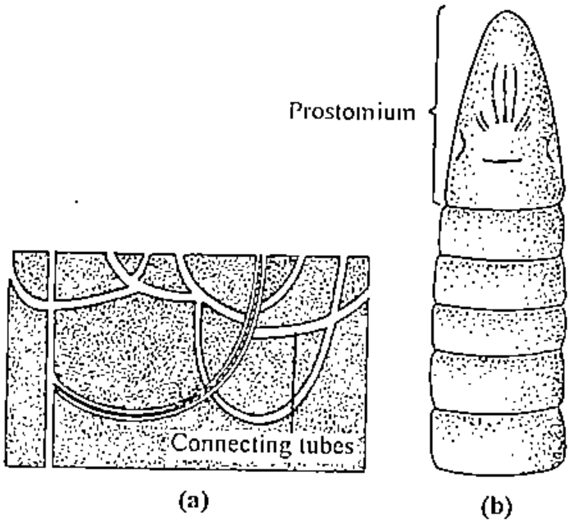

चित्र 14.13 : (a) दीर्घावासी कृमि *ग्लाइसेरा ऐल्बा* (*Glycera alba*) की बिल-व्यवस्था जिसमें कृमि अपने शिकार की घात में बैठा है। (b) दीर्घावासी *ड्राइलोनीरीस* (*Drilonereis*) का अग्र सिरा जिसमें शंक्वाकार पुरोमुख दिखायी पड़ रहा है जिस पर न आंखें हैं और न ही संवेदी उपांश।

ये कृमि अपने बिलों के भीतर सामान्यतः क्रमाकुंचनी गतियों द्वारा गति करते हैं, तथा उनके परापाद ह्रासित होते हैं जो कृमि के देहखंडों को बिल की दीवारों से कस कर चिपकाने में मदद करते हैं। पट और वृत्ताकार पेशियां सुविकसित होती हैं। मगर कुछ ऐसे भी दीर्घवासी हैं जो अपने परापादों की सहायता से रेंग सकते हैं। ये या तो मांसभक्षी होते हैं या बिना छांटे-ढूंढे निक्षेपों का आहार करते हैं और उस अधःस्तर तक को भी खाते जाते हैं जिसमें वे अपने बिल बनाते हैं।

ग्लाइसेरा नामक दीर्घावासी पौलीकीट का सर्वाधिक अध्ययन किया गया है और इसे मछली पकड़ने के चारे के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। ये कृमि अपनी दीर्घाओं में ही पड़े-पड़े शिकारी की प्रतीक्षा करते रहते हैं और जब शिकार सतह पर से चलता हुआ दाब तरंगें पैदा करता है तो यह कृमि एक निकटवर्ती छेद की तरफ बढ़ता है। रक्त-कृमियों में एक लंबी शुंडिका होती है जिसे शिकार को पकड़ने हेतु, तीव्र विस्फोटक बल के साथ बाहर को निकाला जाता है (चित्र 14.14)।

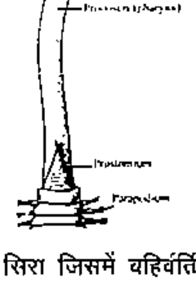

चित्र 14.14: *ग्लाइसेरा* का अग्र सिरा जिसमें बहिर्वर्तित ग्रसनी दिखायी पड़ रही है।

कुछ पोलीकीट साधारण विल बनाते हैं जिनमें बाहर को खुलने वाले मात्र एक या दो छिद्र ही होते हैं (चित्र 14.15 a)। ये कृमि जब कभी भी चलते हैं तो बहुत थोड़ी-सी ही गति करते हैं, साथ ही वे केवल क्रमाकुंचनी संकुचनों से ही गति करते हैं। परापाद ह्रासित होकर हुक जैसे सीटा (शूक) बन जाते हैं जो उन्हें बिल की दीवार से जकड़कर चिपकने में सहायता करते हैं। पुरोमुख में अधिकांश संवेदी संरचनाओं का अभाव होता है। फिर भी, कुछ विशेष अशन उपांग मौजूद हो सकते हैं। कुछ स्थानवद्ध विलकारियों में बिना छांट या पसंद के कैसे भी निक्षेपों को खाने का स्वभाव पाया जाता है जबकि अन्य ऐसे भी हैं जो चुनिंदा निक्षेप अशनकर्त्ता होते हैं। 'लग-वर्म' (*ऐरेनिकोला, Arenicola*) एक अचयनकारी निक्षेप आहारक होता है जो एल-आकृति के विलों में रहता है और अपनी बहिःवर्तनी ग्रसनी के द्वारा तली में से रेत अंतर्ग्रहीत करता रहता है। निश्चित अंतरालों के बाद कृमि अपने बिल से बाहर आता है और सतह पर अपनी बीट के रूप में विष्ठा विसर्जित करता है। उसके बाद कृमि फिर से आहार करना आरंभ करता है और बिल के भीतर वायु का संचार क्रमांकुंचनी गतियों द्वारा जलधारा के भीतर आने से होता है।

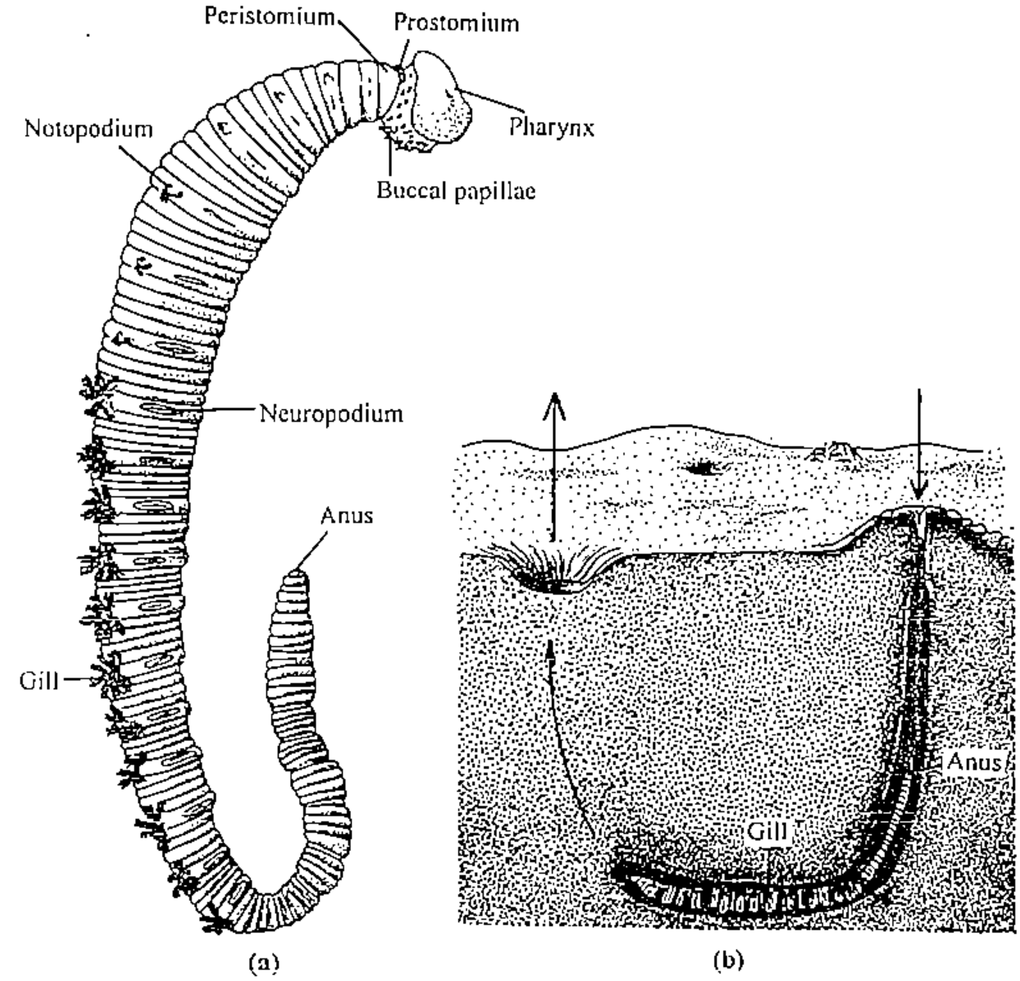

चित्र 14.15: 'लग-वर्म' (*ऐरेनिकोला*) जिसकी ग्रसनी बहिवर्तित है (a) कृमि बिल के भीतर है (b)

चयनात्मक निक्षेप आहारकों में बहिवर्तनी ग्रसनी नहीं होती। उसके स्थान पर उनमें विशेष शीर्ष संरचनाएं होती हैं जो इर्द-गिर्द के रेत के कणों से जैविक पदार्थ ले लेती हैं। उदाहरण के लिए, *ऐम्फिट्राइट* में बहुत संख्या में स्पर्शक होते हैं जो बिल के छिद्र से सतह को फैले होते हैं (चित्र 14.16)। अपरद पदार्थ स्पर्शकों के ऊपर के श्लेष्मा में चिपक जाता है और फिर स्पर्शकों के संकुंचनों की सहायता से मुख में को एक सिलियायित स्पर्शक खांच में पहुंच जाता है।

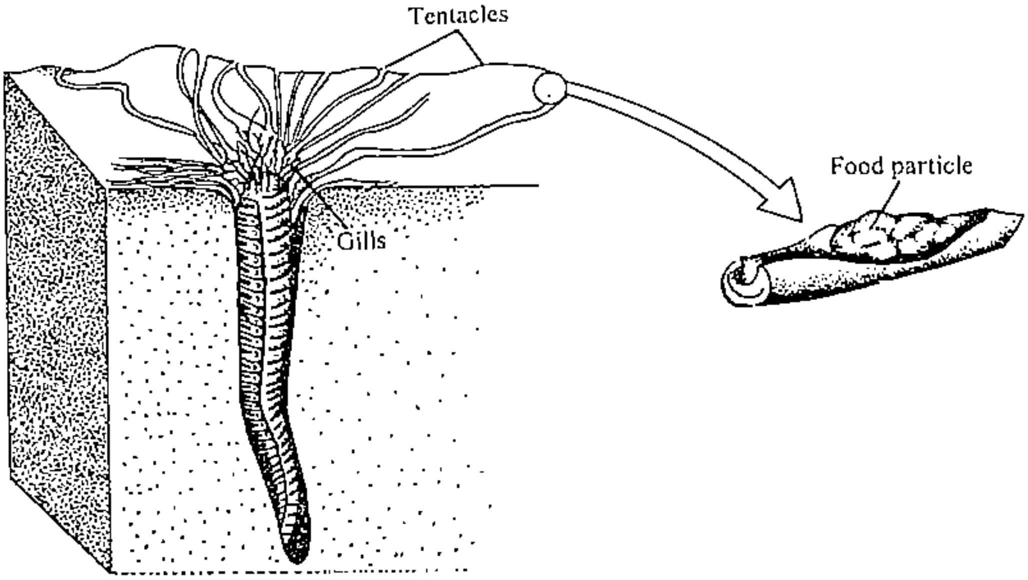

चित्र 14.16 : अपने बिल में स्थित *ऐम्फिट्राइट* जिसके स्पर्शक सतह पर फैले हैं। साथ ही स्पर्शकों पर पकड़ लिए गए आहार कण भी दिखाए गए हैं, ये स्पर्शक ऊपर को लिपटाए जाकर एक सिलियटी खांच बना लेते हैं।

नलिकावासी पोलीकीट

अन्य प्राणि समूहों की अपेक्षा पौलीकीटों में नलिकावासी स्वभाव अधिक व्यापक पाया जाता है। ये कृमि या तो रेत में या दृढ़ एवं खुले अधःस्तरों में जैसे कि शैवालों, चट्टानों, प्रवालों अथवा कवचों में अपनी नलिकाएं बना लेते हैं। इस प्रकार की नली या तो कृमि द्वारा ही स्रावित कठोर हो गए पदार्थ की ही बनी हो सकती है या वह परस्पर चिपकाए गए वाह्य पदार्थों की बनी हो सकती है। इस प्रकार यदि नलिका को रेत में से खोदकर निकाला जाए तो वह समूची बनी रहती है।

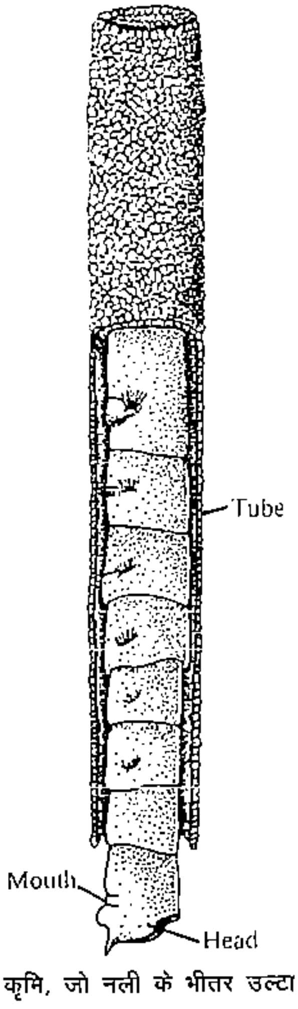

चित्र 14.17 : बांस कृमि, जो नली के भीतर उल्टा सिर नीचे किए हुए रहता है।

नलिकावासी पौलीकीटों में संरचनात्मक विविधता पायी जाती है जिसका संबंध उनकी अलग-अलग प्रकार की अशन-विधियों से होता है। अधिकतर नलिकावासी स्थानबद्ध होते हैं और वे नली के भीतर अपने क्रमाकुंचनी संकुंचनों की सहायता से बस धीमी-धीमी ही गति कर पाते हैं। इनमें संवेदी संरचनाओं का अभाव होता है हालांकि अशन उपांग मौजूद हो सकते हैं। परापाद ह्रासित होकर कूटक जैसे रह गए हैं जिनमें पकड़ बनाने हेतु हुक-युक्त शूक होते हैं। वास्तव में ये अनुकूलन स्थानबद्ध बिलकारियों के अनुकूलनों के समान होते हैं क्योंकि ये दोनों आवास कुछ सीमा तक समान होते हैं।

अचयनात्मक निक्षेप आहारकर्त्ता जैसे कि बांस-कृमि (bamboo worms) *क्लाइनेनेला,* [*Clymenella*] *ऐक्सियोथेला,* (*Axiothella*) बालु कण नलिकाओं में रहते हैं जिसमें वे अपना शीर्ष नीचे को किए रहते हैं और नली की तली में पड़ी अधःस्तर को अपनी बहिःवर्तनी ग्रसनी की सहायता से अंतग्रहीत कर लेते हैं (चित्र 14.17)। समय-समय पर कृमि वापस सतह पर आता है और विष्ठा निकालता है।

फ़िल्टर-अशन (filter feeding) एक अन्य पोषण विधि है जो स्थानबद्ध एवं नलिका-वासी पौलीकीटों के कई वंशों में विकसित हुई है। एक प्रकार का फ़िल्टर अशन पंखा-कृमियों अथवा 'फैदर-डस्टर' कृमियों में पाया जाता है जिसमें पुरोमुख पैल्प विकसित होकर कीपाकार अथवा सर्पिल किरीट बनाते हैं, इस किरीट में पिच्छाकार प्रवर्ध होते हैं जिन्हें रेडियोल (radioles) कहते हैं, जैसे कि *साबेला* (*Sabella*) (चित्र 14.18) में।

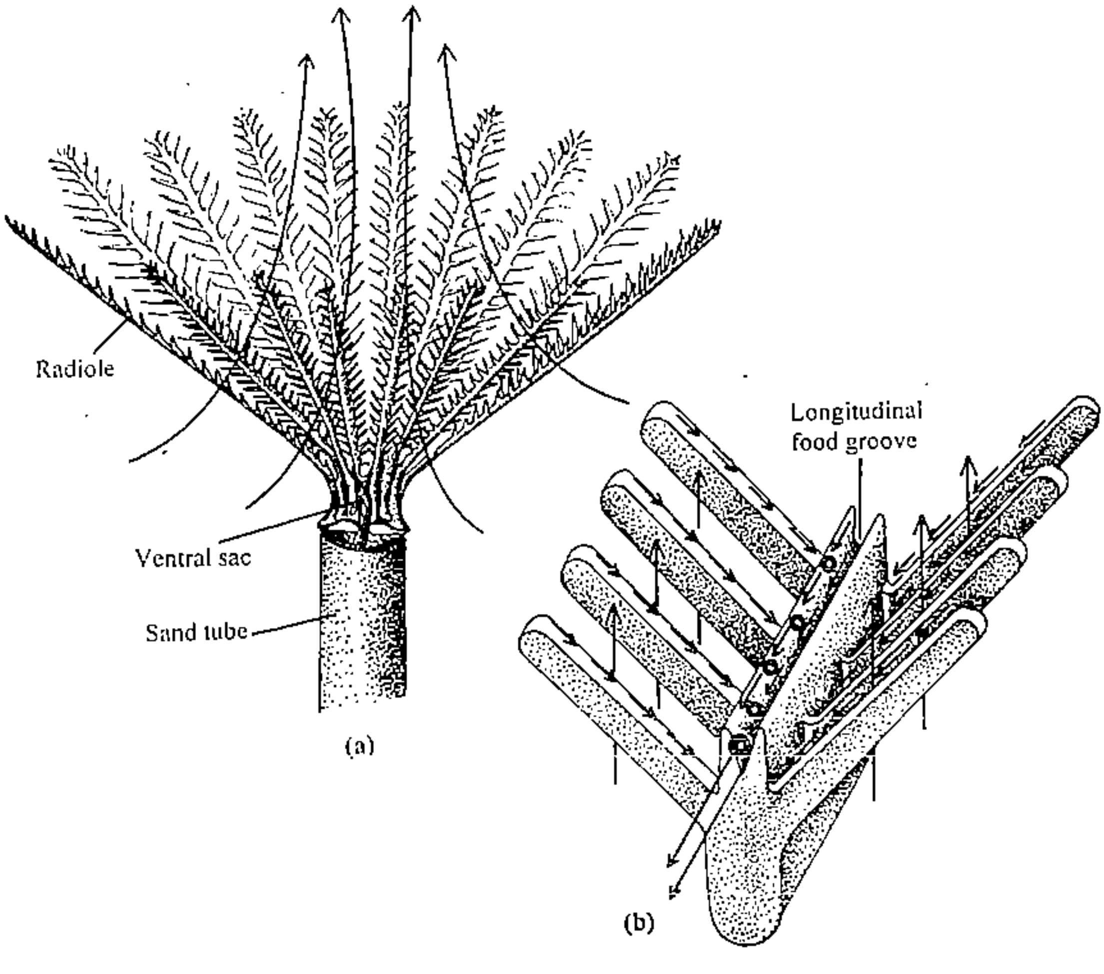

चित्र 14.18 : पंखा कृमि *साबेला* में फ़िल्टर अशन (a) जलधारा का रेडियोलों में से बहना, (b) रेडियोल के एक अंश पर सिलियरी पथ और जलधारा।

अशन के दौरान पहले-पहल कण रेडियोलों की सतह पर श्लेष्मा में फंस जाते हैं और फिर सिलिया के द्वारा मुंह में पहुंचा दिए जाते हैं। जब कृमि अपनी अग्र सिरे को नलिका के मुक्त सिरे के भीतर खींच लेता है तब रेडियोल लिपट कर परस्पर बंद हो जाते हैं।

कीटॉप्टेरस (Chaetopterus) में एक अन्य प्रकार का फ़िल्टर अशन पाया जाता है। यह जल को एक श्लेष्मल थैले में से फ़िल्टर करके अशन करता है। ये कृमि एक V-आकृति की नलिका में रहते हैं जो स्रावित हुए पार्चमेंट-सदृश पदार्थ की बनी होती है (चित्र 14.19)। कृमि के शरीर के मध्य में तीन पिस्टन जैसे पंखा सरीखे परापद होते हैं जो जल को नलिका में से बहाते हैं। एक जोड़ी लंबे पंख-जैसे अग्र नोटोपोडियम से श्लेष्मा की एक परत स्रावित होती है जो सिलिया की सहायता से लिपटती जाती हुई एक थैले जैसी आकृति प्राप्त कर लेती है। नलिका में बहाई जाने वाली जलधारा इसी थैली से गुजरती है। बीच-बीच में श्लेष्मा का स्राव होना रुक जाता है और रोक लिए गए आहार से युक्त श्लेष्मा थैले को एक गेंद जैसी संरचना में गोल लपेट लिया जाता है जिसे सिलियायित खांच के सहारे मुख में पहुंचा दिया
जाता है।

अब तक आपने ऐनेलिडा में अनुकूलनों के विषय में पढ़ा। आगे पढ़ने से पहले आइए, नीचे दिए जा रहे बोध प्रश्न हल कर लीजिए।

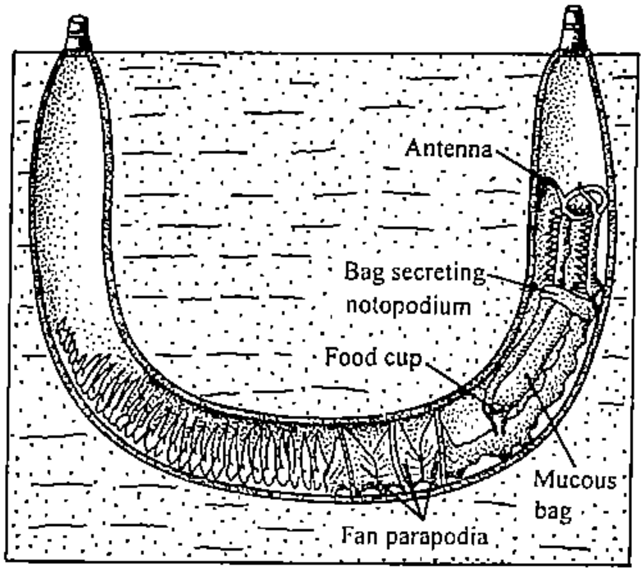

चित्र 14.19 : *कीटॉप्टोरस*, अपनी नलिका के भीतर

बोध प्रश्न 3

नीचे दिए जा रहे कथनों में सही विकल्प पर सही का निशान लगाइए :

(i) अनुकूली विकिरण का नियम लैमार्क/ओसबॉर्न ने प्रतिपादित किया था।

(ii) अनुकूली अपसरण को 'एम्ब्राचमेंट' का नाम डार्विन/लैमार्क ने दिया था।

(iii) जिन कृमियों में सुविकसित शीर्ष होता है, आंखें, ऐंटेना और एक जोड़ी पैल्प बने होते हैं वे दीर्घावासी पौलीकीट/भ्रमणशील पौलीकीट होते हैं।

(iv) पौलीकीटों के बड़े परापाद, जिन्हें पैडलों की तरह इस्तेमाल किया जाता है, समुद्रों/रेत एवं कीचड़ में जीवन के लिए अनुकूलन होते हैं।

बोध प्रश्न 4

1. बताइए कि निम्न कथन सही हैं (T) या गलत (F)।

   (i) स्थानबद्ध बिलकारी पौलीकीट अनिवार्यतः मांसभक्षी होते हैं। ☐

   (ii) फ़िल्टर अशन अधिकतर स्थानबद्ध नलिकावासी पौलीकीटा में पाया जाता है। ☐

   (iii) पौलीकीट मुख्यतः अलवण जलीय प्राणी होते हैं। ☐

   (iv) स्थानबद्ध एवं नलिकावासी पौलीकीटों में सुविकसित संवेदी अंगों का अधिकतर अभाव होता है। ☐

2. अनुकूली विकिरण के लिए उत्तरदायी दो आधारभूत आवश्यकताओं के नाम लिखिए :

   (i) ....

   (ii) ....

क्लाइटेलमित ऐनेलिडों में अनुकूली विकिरण

जलीय होने के नाते पौलीकीट अपने अंडे जल में देते हैं तथा उनमें से अधिकतर *ट्रोकोफ़ोर* लार्वा अवस्था में से गुजर कर परिवर्धित होते हैं। जलीय पर्यावरण कई लाभ प्रदान करता है, जैसे, प्राणियों को अपने देह-भार को आलम्ब प्रदान करने में कम ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, जल एक गद्दी-जैसा आवरण प्रदान करता है जिससे झटकों और खिंचावों से सुरक्षा मिलती है, तापमान प्रवणता जल में सबसे कम होती है तथा अंडे देने और उनके परिवर्धन के लिए जल एक आदर्श माध्यम है। ये लाभ समुद्री और अलवणजलीय दोनों प्रकार के जीवों को प्राप्त होते हैं तथापि अलवणजलीय जीवों को एक खास कमी अथवा असुविधा का भी सामना करना होता है। ये आवास समुद्री आवास की भांति स्थायी नहीं होते। वर्ष के किसी भाग में ये सूख सकते हैं। अतः अलवणजलीय प्राणियों को, और थल प्राणियों को भी, अलग-अलग सीमा तक दो समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पहली तो यह है कि इन्हें जल के स्थायी और लगातार मिलते रहने वाले माध्यम के लाभ नहीं मिल पाते और दूसरी यह कि इनके सामने शुष्कन का खतरा बना रहता है। इस समस्या को क्लाइटेलमी ऐनेलिडों ने सफलतापूर्वक सुलझा लिया है। आइए देखें कैसे ?

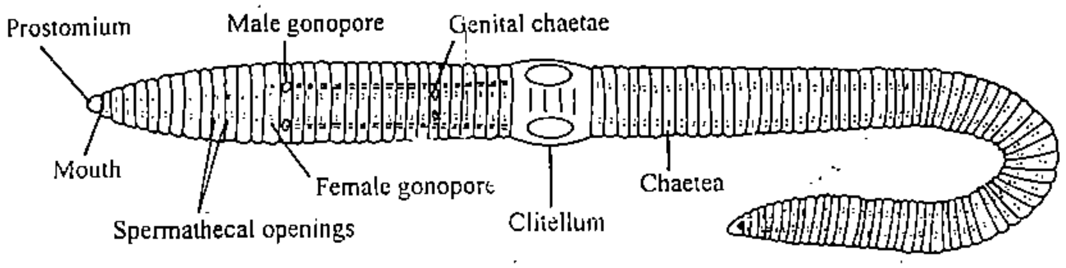

चित्र 14.20 : केंचुआ जिसमें क्लाइटेलम दर्शित हो रहा है।

क्लाइटेलम-धारी ऐनेलिडा अर्थात् ओलाइगोकीटा एवं हिरुडिनिया अधिकतर अलवणजलीय तथा थल-आवासों में रहते हैं। इनमें कोई लार्वा अवस्था नहीं होती तथा परिवर्धन प्रत्यक्ष होता है। प्रजनन ऋतु के दौरान उनके कुछ देह खंडों की ग्रंथि कोशिकाएं सक्रिय हो जाती हैं और अलग से उभरी हुई बेल्ट जैसी संरचना, क्लाइटेलम बनाती हैं (चित्र 14.20) जिससे एक ककून बना

करता है। अंडे इन्हीं ककूनों में दिए जाते हैं और इन्हीं के भीतर वे परिवर्धित होते हैं। क्लाइटेलम स्थायी हो सकता है (जैसे केंचुए में) या अस्थायी होता है (जैसे जोंकों में)। ये ऐनेलिड उभयलिंगी होते हैं हालांकि केंचुओं में पारस्परिक मैथुन का होना सभी को मालूम है। क्लाइटेलमी प्राणियों में ऐंटेना, पैल्प तथा परापाद नहीं होते।

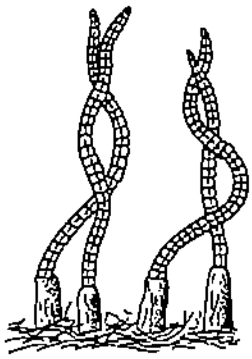

चित्र 14.21 : *ट्यूबिफेक्स* लंबी-लंबी नलिकाओं में अपना सिर नीचे को किए हुए रहता है। इसका पश्च सिरा जल में लहराता है जिससे गैस विनिमय सुगम हो जाता है।

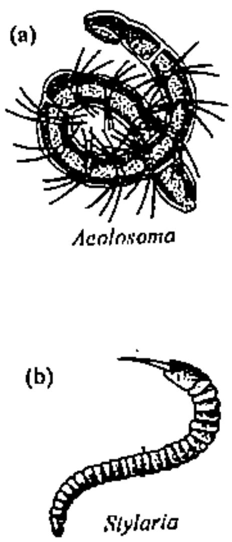

चित्र 14.22 : (a) *इओलोसोमा* — मुख के चारों ओर बने सिलिया आहार कणों को भीतर को पहुंचाते हैं (b) *स्टाइलेरिया* — पुरोमुख लंबे थूथन के रूप में बाहर को खिंच आता है।

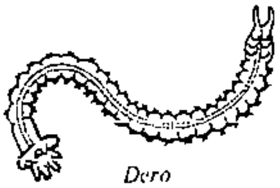

चित्र 14.23 : *डीरो* में सिलियायित गुदा गिल

जान पड़ता है कि ओलाइगोकीटा का विकास, पौलीकीटों से अलग स्वतंत्र रूप में समुद्री ऐनेलिडों से हुआ है। ट्यूबलिफिसिड तथा एंकाइट्रीइड्स की कुछ स्पीशीज़ और उनमें भी खास तौर से वे जो वेलांचली (littoral) तथा अंतराज्वारीय क्षेत्रों एवं ज्वारनदमुखों में पायी जाती हैं समुद्री जलों में पायी गयी हैं।

ट्यूबिफ़ेक्स (*Tubifex*) (चित्र 14.21) तथा *लिम्नोड्राइलस* (*Limnodrilus*) मल प्रदूषित जलों में खूब पनपते पाए गए हैं। स्थिर जल में कीचड़ में रहने वाला *ट्यूबिफ़ेक्स* नलिकाएं बनाता है। यह अपने शरीर के पश्च भाग को नलकी में से बाहर को निकालता है और उसे जल में हिलाता-डुलाता है जिससे गैस-विनिमय में सुविधा होती है। *इओलोसोमा* (*Aeolosoma*) तथा *स्टाइलेरिया* (*Stylaria*) (चित्र 14.22) अलवणजलीय स्वरूप हैं। *औलोफ़ोरस* (*Aulophorus*) कीचड़ और अवपंक में अपनी नलकी बनता है। *डीरो* (*Dero*) (चित्र 14.23) तथा *औलोफ़ोरस* जैसे जलीय स्वरूपों में पश्च सिरे पर उंगली-जैसे गिल होते हैं। *ब्रैंकियूरा* (*Branchiura*) तथा *ब्रैंकियोड्राइलस* (*Branchiodrilus*) में शरीर पर तंतुकी गिल बने होते हैं। जलीय स्वरूप सामान्यतः छोटे होते हैं मगर उनमें अधिक लंबे शूक होते हैं। कुछ जैसे कि एंकाइट्रीड्स जलीय तथा थलीय आवासों के बीच संक्रांतिक होते हैं और वे दलदलों में रहते हैं। इनमें आने वाले हैं लुम्ब्रिसिड, मेगास्कोलेसिड तथा मोनिलिगैस्ट्रिड। केंचुए बिलकारी प्राणी होते हैं और उनके बारे में हम जानते हैं कि उनसे भूमि की उर्वरता बढ़ती है।

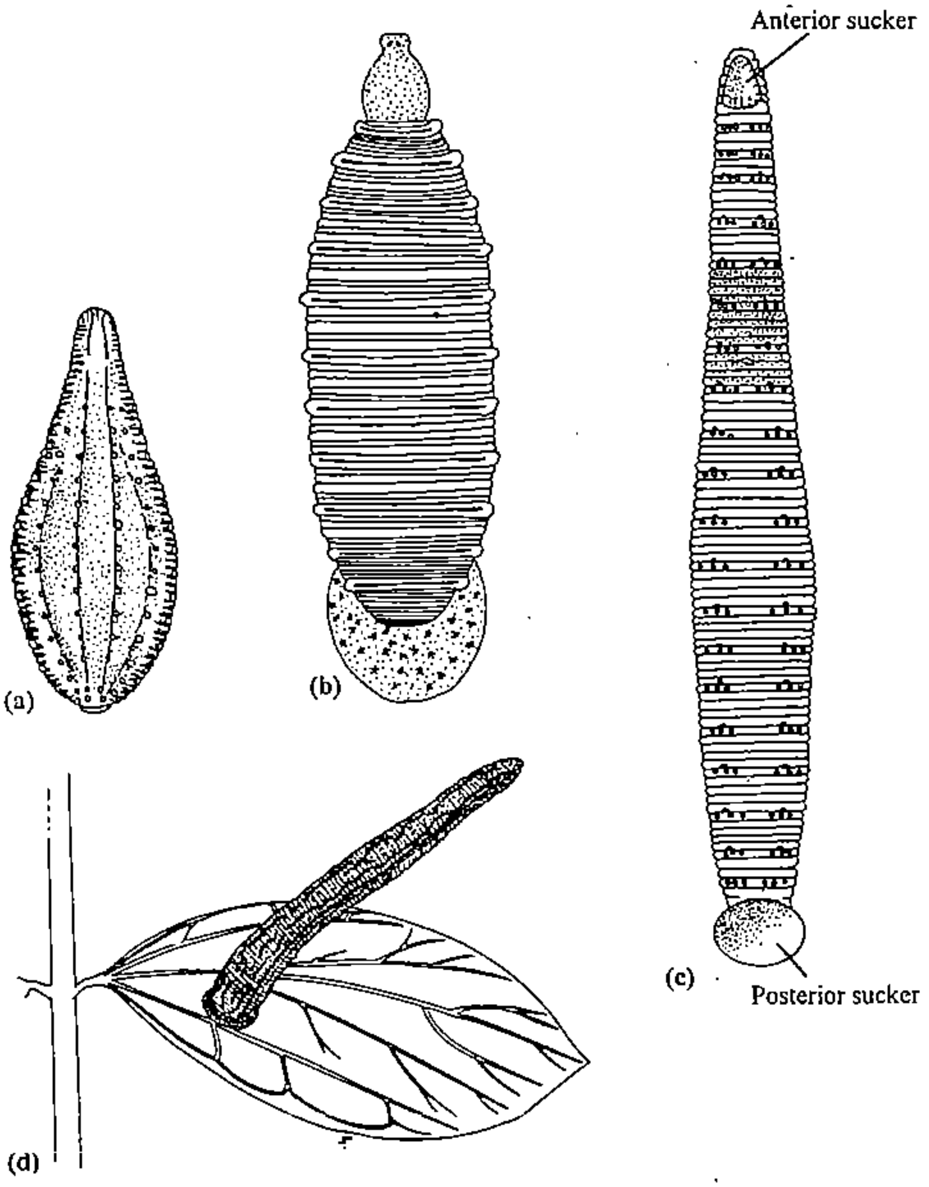

चित्र 14.24: (a) ग्लौसिफ़ोनीइड जोंक *ग्लौसिफ़ोनिया कॉम्प्लैनाटा* (***Glossiphonia complanata***); (b) पिसिकोलिड जोंक *सिस्टोब्रैंकस* (*Cystobranchus*) (c) हिरुडिनिड जोंक *हिरुडो मेडिसिनैलिस* (***Hirudo medicinalis***), (d) हीमैडिप्सिड जोंक *हीमैडिप्सा* (***Haema-dipsa***)।

हिरुडिनिया समूह में जोंकें आती हैं। अनेक जोंकें कशेरुकियों की बाह्य परजीवी होती हैं [ग्लौसिफ़ोनिइड्स, पिसिकोलिड्स, हिरुडिनिड्स, हीमैडिप्सिड्स (चित्र 14.24)]। जोंकों के

परजीवीय अनुकूलन इस प्रकार हैं : एक चूषणी ग्रसनी का तथा एक पश्च-गुदा चूषक का होना, त्वचा ग्रंथियों द्वारा शरीर के ऊपर श्लेष्मा परत के स्रवण का प्रावधान ताकि शुष्कन न हो सके, एक प्रतिस्कंदक *हिरुडिन* का स्रवण जो रक्त अशन को सुगम बनाता है तथा विशाल क्रॉप (crop) के भीतर आहार भंडारण का प्रावधान। जोंक का पूर्ण भरपेट भोजन उसके लिए चार महीनों तक चल सकता है। जोंकों तथा ओलाइगोकीटों की एक ही पूर्वजता रही है। जोंकें अधिकतर अलवणजलीय प्राणी होती हैं। फिर भी उनमें से कुछ जैसे कि *हीमैडिप्सा (Haemadipsa)* थल जीवन के लिए अनुकूलित हो गयी हैं। कुछ परवर्ती रूप में समुद्री आवास के लिए अनुकूलित हो गयी हैं।

बोध प्रश्न 5

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं (T) या गलत (F)।

1. फाइलम ऐनेलिडा के सभी सदस्य ट्रोकोफ़ोर नामक लार्वा अवस्था से गुजर कर परिवर्धित होते हैं। ☐
2. केंचुओं में क्लाइटेलम एक सुविकसित स्थायी संरचना होती है। ☐
3. जोंकों की त्वचा में ऐसी ग्रंथि कोशिकाएं होती है जिनसे शरीर के ऊपर एक श्लेष्मा परत का स्रवण होता है जो शुष्कन को रोकती है। ☐
4. *ट्यूबिफ़ेक्स* मल-प्रदूषित तालाबों में बहुत आरामदेह स्थिति में रहता है। ☐

14.3.2 आर्थ्रोपोडा में अनुकूली विकिरण

संख्यात्मक सबलता, अनुकूली विविधता तथा क्षेत्र-वितरण के विस्तार की दृष्टि जैविकीय रूप में आर्थ्रोपोडा सर्वाधिक सफल प्राणि-समूह है। इन्हें बहुमूलोद्भवी माना जाता है जिनमें अनेक (तीन या चार) पृथक विकास दिशा-रेखाएं पायी जाती हैं। इन सबमें इनके देहखंडों की संख्या में, उनके समेकन अथवा हानि से, कमी होते जाने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। आर्थ्रोपोडा जिसका शाब्दिक अर्थ है संधिपाद (arthros : संधि, podos : पाद), में ये सब अनेक प्रकार के प्राणी आते हैं — अश्व-नाल केकड़े (उपक्लास जाइफ़ोस्यूरा, Xiphosura), झींगा, लॉबस्टर, केकड़े (उपफ़ाइलम क्रस्टेशिया, Crustacea), मकड़ियां तथा बिच्छू (क्लास ऐरेक्निडा, Arachnida), कांतर (क्लास काइलोपोडा, Chilopoda), गिजाइयां (क्लास डिप्लोपोडा, Diplopoda) तथा कीट (क्लास इन्सेक्टा, Insecta)। इससे पहले *पेरिपैटस (Peripatus)* (ओनाइकोफ़ोरा, Onychophora) को भी इसी फ़ाइलम में रखा जाता था। आर्थ्रोपोड-प्राणी निश्चय ही समुद्री ऐनेलिडों से विकसित हुए हैं और यह परिवर्तन एक तो शरीर के ऊपर काइटिन का कवच प्राप्त करके और दूसरे लगभग सभी देह खंडों पर युग्मित उपांग प्राप्त करके संभव हुआ है। कवचीय आवरण से इन प्राणियों को न केवल आलम्ब एवं सुरक्षा प्रदान हुई है वरन् जलीय स्वरूपों के मामले में, आवश्यकता से अधिक जल एवं लवणों का भीतर प्रवेश भी रूका और थलीय स्वरूपों में शुष्कन से भी बचाव हुआ। मगर इससे एक तो देह सतह से गैस-विनिमय में होने में बाधा आयी और दूसरे वृद्धि में भी रूकावट हुई। आर्थ्रोपोडा का अनुकूली विकिरण मुख्यतः श्वसन क्रियाविधि, कुंचित पाद-रूपांतरणों एवं उड्डयन से संबंधित है।

श्वसन

ऐनेलिडों में श्वसन क्रिया या तो सामान्य देह सतह से होती है या गिलों के द्वारा। आर्थ्रोपोडा में जब कि एक ओर जलीय स्वरूपों में गिल कायम बने रहते हैं, वहीं दूसरी ओर थलीय सदस्यों में

एक तो पुस्त-फुप्फस (book lungs) विकसित कर लिए गए हैं (बिच्छुओं में) और दूसरे वातिकाएं (tracheae) (कांतर, गिजाइयां तथा कीट)। ज़ाइफ़ोस्यूरा तथा क्रस्टेशिया लगभग पूर्णतः जलीय हैं। वे जल में विकसित हुए और वहीं बने रहे। साथ ही कुछ जलवासी आर्थ्रोपोड भी हैं जिन्होंने वास्तव में थल पर आकर अपना अड्डा जमाया और थलीय अनुकूलन प्राप्त किए मगर इन्होंने एक बार फिर से जल में प्रवेश किया और उसे अपना दूसरा आवास बनाया। इसी श्रेणी में आते हैं अनेक कीट (जैसे कि जल- मत्कुण, जल-बीटल आदि) जो जल के भीतर रहते हुए भी वातिकाओं (tracheae) द्वारा श्वसन करते हैं। इस प्रकार आर्थ्रोपोडा में जलीय श्वसन दो प्रकार से हो सकता है — एक तो गिलों द्वारा (जिसे प्रायः गिल-श्वसन, branchial respiration, कहते हैं) और दूसरा वातिकाओं द्वारा (जिसे वातिका श्वसन, tracheal respiration, कहते हैं)।

गिलों द्वारा जलीय श्वसन

ज़ाइफ़ोस्यूरा, क्रस्टेशिया तथा अनेक लार्वा-कीटों में श्वसन गिलों द्वारा होता है। गिल देह भित्ति की ही एक रक्तवाहिकीय बहिर्वृद्धि होता है। यह पानी में ही तर रहता है और गैसीय विनिमय इसकी सतह से होता है। *लिम्युलस* (*Limulus*) (ज़ाइफ़ोस्यूरा) में पांच जोड़ी पुस्त-गिल (book gills) अधर सतह पर बने होते हैं (चित्र 14.25)। ये चपटे पटलित उदरीय उपांग होते हैं। ऐसे प्रत्येक गिल में लगभग 150 गिल पटलिकाएं होती हैं जो इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि उनका स्वरूप एक पुस्तक जैसा बन जाता है और इसीलिए इन्हें यह नाम पुस्त-गिल दिया गया है।

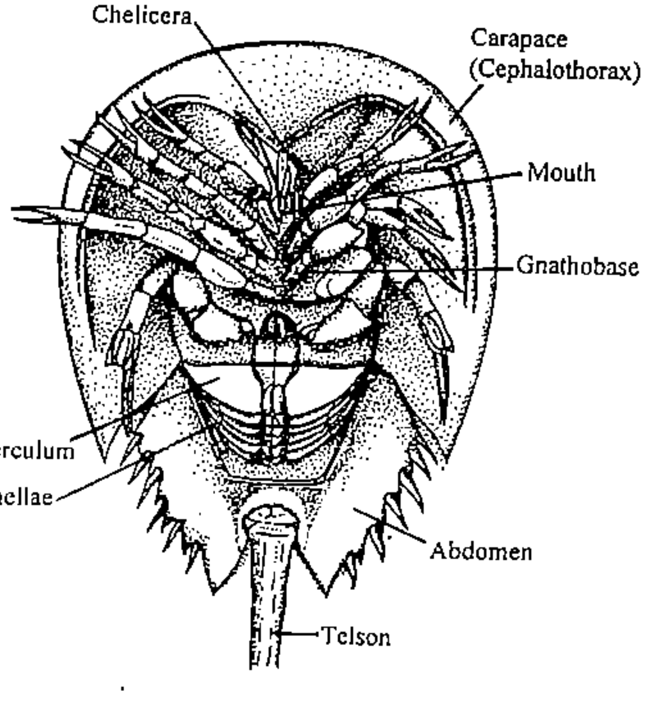

चित्र **14.25:** *अश्वनाल केकड़े लिम्युलस पौलीफ़ीलस* का अधर दृश्य।

क्रस्टेशियनों में गिल एक केंद्रीय अक्ष पर पार्श्व प्रसारों के रूप में व्यवस्थित होते हैं। गिल तीन प्रकार के हो सकते हैं : **पर्णगिल (phyllobranchs)** सरल पत्ती-जैसे होते हैं जिनमें एक मध्य अक्ष के दोनों पार्श्वों पर पत्ती जैसी पिंडक बनी होती हैं (चित्र 14.26 a), **शूकगिलों (trichobranchs)** में एक केंद्रीय अक्ष के चारों ओर तंतु व्यवस्थित रहते हैं (चित्र 14.26 b) और **द्रुमगिल (dendrobranchs)** रूपांतरित पर्णगिल ही होते हैं जिनमें प्रत्येक पार्श्वपिंडक उपविभाजित हो गयी होती है (चित्र 14.26 c)। गिलों में रक्तसीलोमी सरणियां पहुंची होती हैं। गिल-कक्ष में एक सतत जल-आपूर्ति बनी रहती है। इससे सही गैस विनिमय सुनिश्चित रहता है।

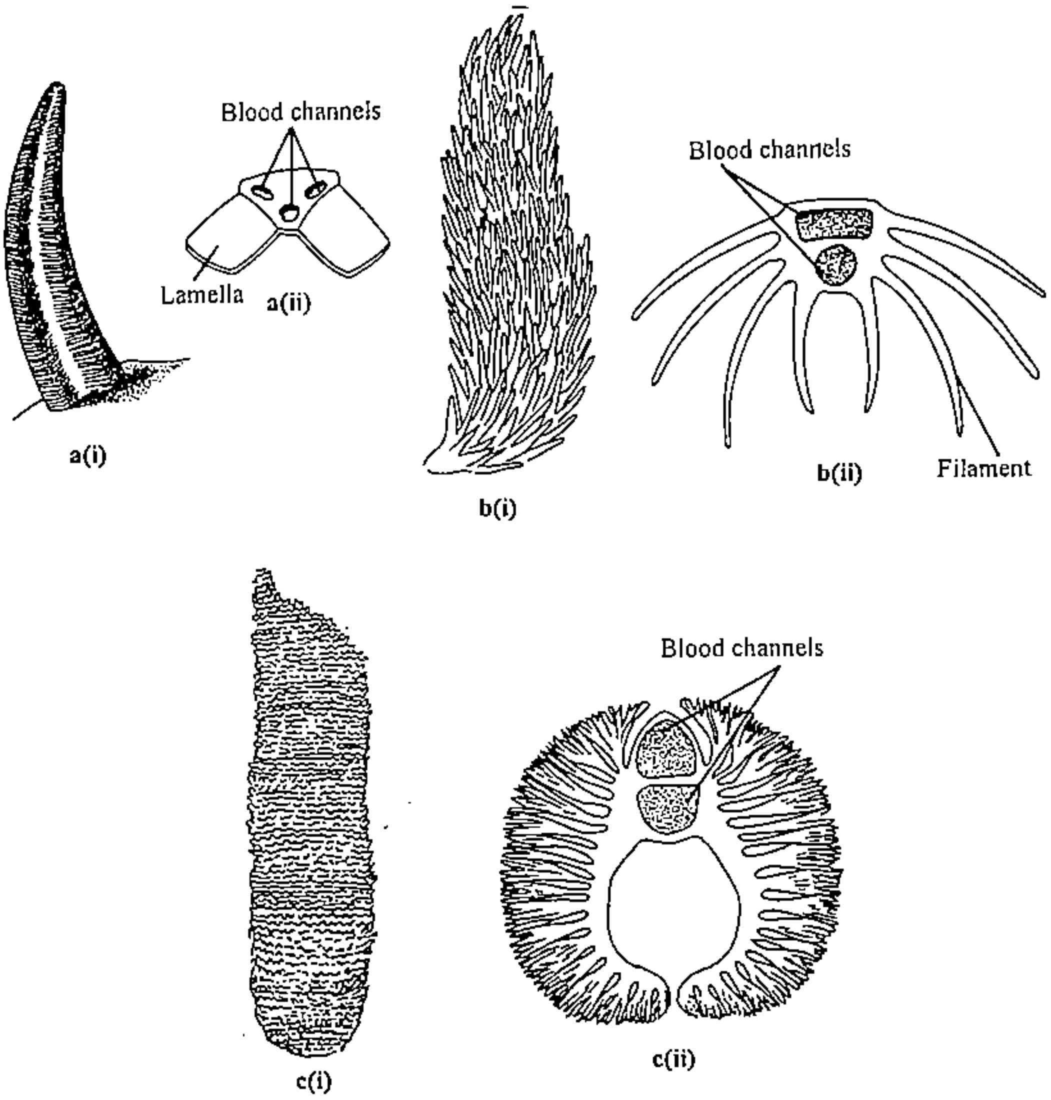

चित्र 14.26 : क्रस्टेशियनों में गिलों के प्रकार। (a) पर्णगिल, (b) शूकगिल, (c) दुमगिल, (i) पार्श्व दृश्य, (ii) अनुप्रस्थ दृश्य।

कीटों में जलीय श्वसन

कीटों में दो प्रकार के श्वसन होते पाए जाते हैं। एक प्रकार में कीट जल में घुली ऑक्सीजन प्राप्त करते हैं। ऐसा या तो सीधे ही सामान्य देह के माध्यम से हो सकता है या विभिन्न प्रकार के गिलों के द्वारा। मेफ़लाई, स्टोनफ़लाई तथा कैडिसफ़लाई के जलीय लार्वो में **वातिकीय गिल (tracheal gills)** देह-भित्ति से निकली पार्श्व बहिर्वृद्धियां होती हैं जिनके भीतर वातिका-शाखाएं पहुंची होती हैं। **मलाशय गिल (Rectal gill)** ओडोनोटा के लार्वा के मलाशय के भीतर होते हैं। स्टोनफ़्लाई के लार्वा (चित्र 14.27) में वातिकीय गिल होते हैं जो देह के विविधि क्षेत्रों में बने होते हैं तथा गुदा के प्रत्येक पार्श्व पर बने **गुदा गिल** होते हैं। डिप्टेरन लार्वा के **रक्त गिल** देह-भित्ति की रक्त से भी बहिर्वृद्धियां होतेहैं। *काइरोनोमस (Chironomous)* के लार्वा का रक्त हीमोग्लोबिन के मौजूद होने के कारण लाल होता है, और इसी आधार पर इन लार्वों को रक्त-लार्वा नाम दिया गया।

कुछ ऐसे कीट भी होते हैं जो जल में रहते हुए भी वायु का ही श्वास लेते हैं। इन्होंने ऐसी युक्तियां बना ली हैं जिनके द्वारा वे कुछ अंतराल के बाद ताजी वायु की आपूर्ति प्राप्त कर लेते हैं।

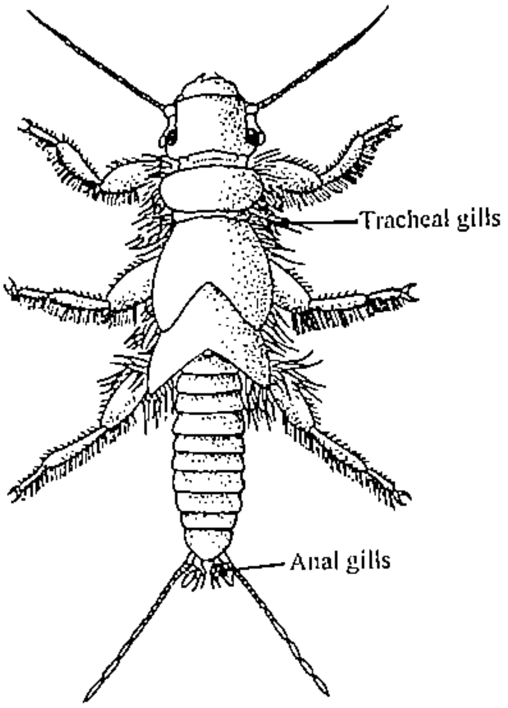

चित्र 14.27: स्टोनफ़्लाई का लार्वा जिसमें वातिकीय गिल तथा गुदा गिल दिखाए गए हैं।

थलीय आर्थ्रोपोडा में श्वसन

थलवासी आर्थ्रोपोडा में श्वसन या तो पुस्त-फुपफुसों (book lungs) द्वारा होता है (ऐरेक्निडा) या वातकों द्वारा (मिरिऐपोडा तथा इन्सेक्टा)। जान पड़ता है कि पुस्त-फुप्फुसों का रूपांतरित सृजन मीरोस्टोमैटा नामक पूर्वज ऐरेक्निडों से हुआ है। विच्छुओं में चार जोड़ी पुस्त-फुपफुस पाए जाते हैं जो प्रत्येक मीसोसोमैटिक (मध्यकार्यिक) खंडों पर प्रत्येक पार्श्व में एक-एक बने होते हैं (चित्र 14.28 a)। पुस्त-फुपफुस में एक अधर **एट्रियल कक्ष** तथा एक पृष्ठ **फुप्फुस कक्ष** होता है (चित्र 14.28 b)। एट्रियल कक्ष स्टिग्मा (श्वास छिद्र) द्वारा बाहर को खुलता है और फुप्फुस कक्ष के भीतर लगभग 150 उदग्रतः पटलिकाएं होती हैं जिससे संपूर्ण संरचना को पुस्तक के पन्नों जैसी आकृति प्रदान हो जाती है और यही कारण है कि इन्हें यह नाम पुस्त-फुपफुस दिया गया। मकड़ियों में श्वसन अंग या तो प्राथमिक पुस्त-फुपफुस हो सकते हैं या उनकी कोई रूपांतरित संरचना हो सकती है जैसे कि **नलिका-वातिका (tube-trachea)** तथा **चालनी वातिका (sieve trachea)**।

वातिकाओं द्वारा श्वसन

छोटे सरल त्वचा-श्वासकों को छोड़कर अधिकतर प्राणियों में ऑक्सीजन की शरीर के विभिन्न भागों में आपूर्ति रक्त-धारा के द्वारा होती है। रक्त और वायु का सम्पर्क या तो गिलों में या फ़ेफ़ड़ों मे होता है। तथापि, मिरिऐपोडों और इन्सेक्टा जैसे थल आर्थ्रोपोडों में शरीर में ऑक्सीजन परिवहन के लिए एक सर्वथा भिन्न प्रकार का तंत्र विकसित हुआ है। इनमें वक्ष और उदर के दोनों पार्श्वों पर क्रमबद्ध छिद्र बने होते हैं जिन्हें श्वासछिद्र अथवा स्पाइरेकल (spiracle) कहते हैं। ये छिद्र भीतर की ओर को ट्रैकिया अथवा वातिका (trachea) नामक विषाखित नलिकाओं के एक जाल में को खुलती हैं, ये नलिकाएं समस्त शरीर में फैली होती हैं। इन वातिकाओं की सूक्ष्मतर शाखाओं को अनुवातिकाएं अथवा **ट्रैकियोल (tracheoles)** कहते हैं जो लगभग हर कोशिका तक पहुंची होती हैं। वायु स्पाइरेकलों में से होकर वातिका में पहुंचती और फिर वहां से सीधे ऊतकों में पहुंच जाती है। इस प्रकार श्वसन गैसों को लाने और ले जाने का काम रक्त को नहीं करना होता।

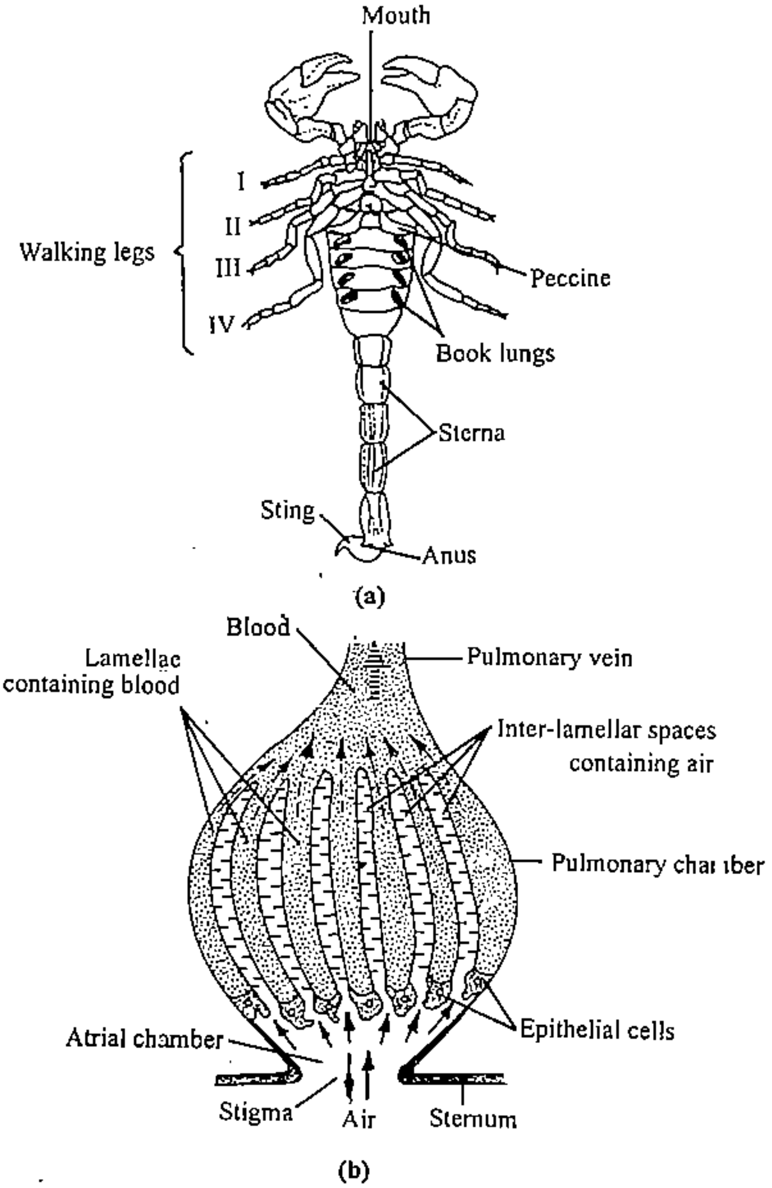

चित्र 14.28 : विच्छू की अधर सतह जिसमें पुस्त-फुफ्फुस का रंध्र दिखाया गया है(a)। पुस्त-पु:फ्फुस का उदग्र सेक्शन (b)।

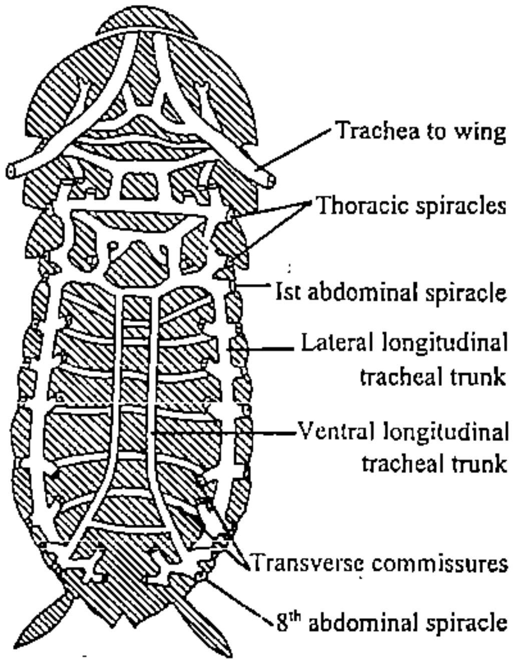

चित्र 14.29 : कीटों का वातिका तंत्र (पृष्ठ दृश्य)।

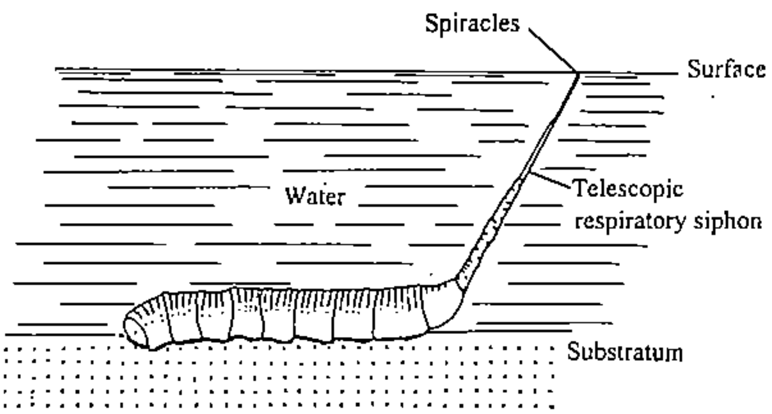

चित्र 14.30 : *एरिस्टैलिस* के लार्वा में श्वसन साइफ़न

जब हम जलीय कीटों में श्वसन के विषय में समझा रहे थे तो यह जिक्र किया था कि कुछ कीट जल में रहते हैं मगर श्वसन वे वायु से ही करते हैं। आइए देखें कि ऐसा वे किस प्रकार करते हैं। इन वायु-श्वासियों में वातिका-तंत्र में लगभग कोई परिवर्तन नहीं होता और उनके स्पाइरेकल खुले होते हैं। मगर इन कीटों में ताजी वायु के नवीकरण के लिए अलग-अलग रूपांतरण प्राप्त कर लिए गए हैं। ओडोनेटा तथा मच्छरों के लार्वा बीच-बीच में जल की सतह पर आकर ताजी वायु ग्रहण करते रहते हैं। जब मत्कुणों तथा जल बीटलों में शरीर के विभिन्न भागों पर जलरोधी (hydrofuge) रोमों के गुच्छ बने होते हैं। इन रोमों में फंसी हुई वायु को श्वसन में काम में लाया जाता है। जल बीटल में *डाइटिस्कस* (*Dytiscus*) में वायु को शरीर तथा अग्र-पंखों (इलाइट्रॉनों, elytra) के बीच में जकड़ लिया जाता है। जल मत्कुण *नीपा* में तथा *एरिस्टैलिस* (डिप्टेरा) के लार्वा में एक लंबा श्वसन साइफ़न (चित्र 14.30) होता है जो वायु के साथ सम्पर्क बनाए रखता है।

बोध प्रश्न 6

अभी तक उपभाग 14.3.2 में जो कुछ आपने पढ़ा उसके आधार पर आप निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(i) बिच्छुओं में श्वसन अंग .... होते हैं जिनकी कुल संख्या .... जोड़ी होती है।

(ii) *लिम्युलस* के श्वसन अंग .... होते हैं।

(iii) क्रस्टेशिया में तीन प्रकार के गिल पाए जाते हैं। ये हैं ...., ...तथा ....।

(iv) .... नामक जल मत्कुण के वयस्कों में एक लंबा श्वसन साइफ़न पाया जाता है।

पादों का रूपांतरण

याद कीजिए कि 'प्राणि विविधता' के अंतर्गत आपने आर्थ्रोपोड उपांगों के विषय में क्या पढ़ा था। आर्थ्रोपोडा में उपांगों में तीन प्रमुख कार्यात्मक रूपांतरण हुए हैं : (i) संवेदी अंगों के रूप में, (ii) मुखांगों के रूप में तथा (iii) संचलन अंगों के रूप में। इन तीनों में से सर्वाधिक अनुकूली अपसरण संचलन अंगों तथा मुखांगों में होता पाया जाता है। संचलन अंग अधिकतर आर्थ्रोपोड समूहों में रूपांतरित हुए हैं। कुल मिलाकर आदिम समूहों में अधिक उपांग होते हैं। जैसे-जैसे संचलन उपांग विविध कार्यों के लिए विशेषित और रूपांतरित होते जाते हैं, वैसे-वैसे इनकी संख्या कम होती जाती है। इससे इनकी कार्यक्षमता और गति दोनों ही बढ़ जाते हैं। इनमें दो अनुकूलन दिशाएं होती पायी जाती हैं - एक तो जलीय और दूसरी थलीय। इसके विपरीत मुखांगों में सर्वाधिक अपसरण कीटों में ही पाया जाता है, इनके विषय में आप इसी पाठ्यक्रम के

खंड-1 की इकाई 4 में पहले ही पढ़ चुके हैं। अतः यहां हम इस समय केवल संचलन अंगों के रूपांतरणों के विषय में ही चर्चा करेंगे।

जलीय आर्थ्रोपोडा में संचलन

जलीय आर्थ्रोपोडा अधिकतर अतःस्तर पर रेंगने अथवा चलने के लिए या फिर तैरने के लिए रूपांतरित होते हैं। अश्व-नाल केकड़ा *लिम्यूलस* एक समुद्रतटवासी है। यह रेत पर अथवा कीचड़-तलियों पर चलता हुआ संचलन करता है। इसके लिए इसमें पांच जोड़ी गमन टांगें होती हैं। पांचवी जोड़ी की गमन टांगें विशेषतः बिल बनाते समय कीचड़ हटाने के लिए रूपांतरित होती हैं। इस जोड़ी की पटलिकाएं दूरस्थ फैल जाती हैं और वे फ़र्श के प्रति धक्का दे सकती हैं ताकि वह कीचड़ में नीचे को न धंसता जाए।

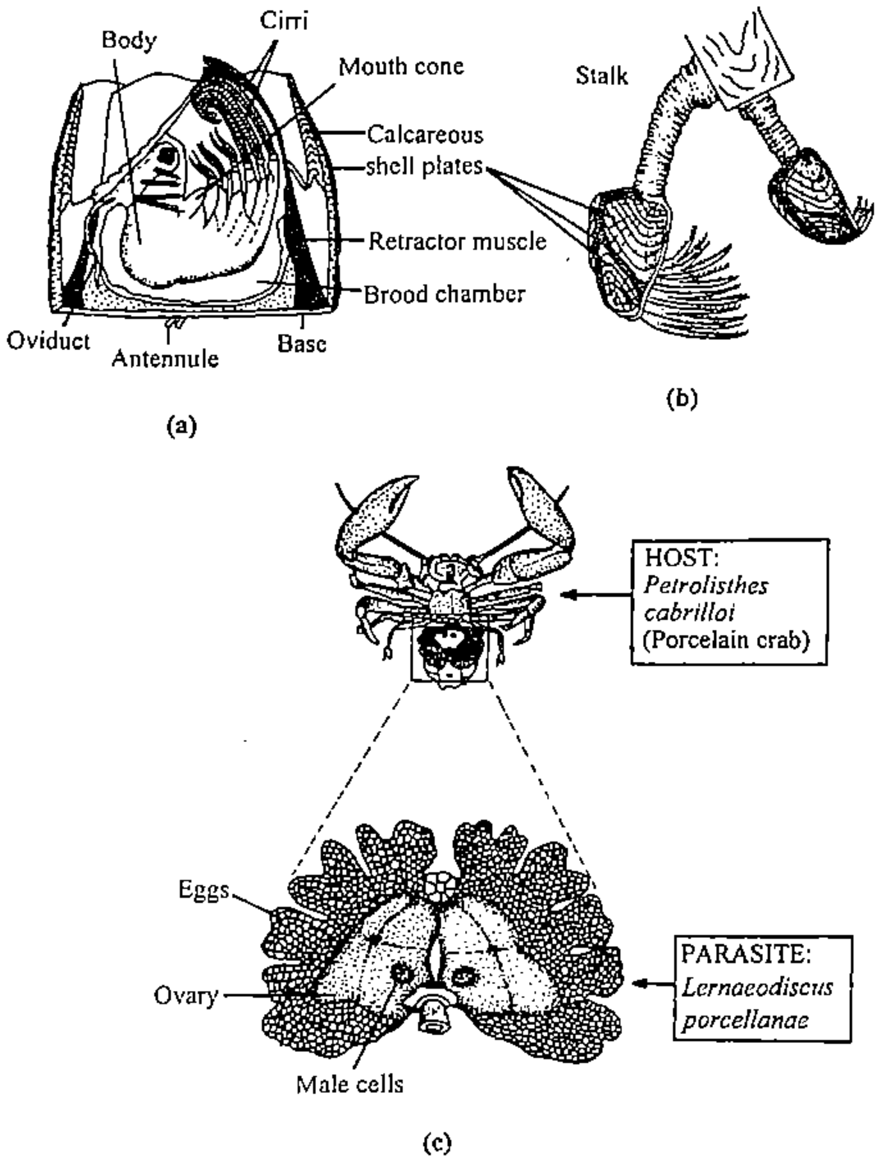

चित्र 14.31: (a) एक वृंतहीन बार्नेकल *बैलेनस*; (b) एक वृंतयुक्त बार्नेकल *लीपस*। बार्नेकल समुद्री प्राणी होते हैं जो उपक्लास सिर्रीपीडिया (Cirripedia) के आर्डर थोरैसिका (Thoracica) में आते हैं। ये प्राणी सामान्यतः कैल्सियमी प्लेटों एक कवच में बंद रहते हैं। इन आर्थ्रोपोडों में शीर्ष ह्रसित होता है, उदर नहीं होता। (c) राइज़ोसेफ़ेलन बार्नेकल *लर्नियोडिस्कस पोर्सेलेनी* (*Lernaeodiscus pocellanae*) पोर्सलीन केकड़े पर परजीवी होता है।

स्थानबद्ध तथा परजीवी सिर्रीपोडों (चित्र 14.31) को छोड़कर अधिकतर क्रस्टेशियन सक्रिय तैरने वाले होते हैं। उनके वक्षीय एवं उदरीय उपांग तैरने के लिए अनुकूलित होते हैं। ये पतवार जैसे होते हैं तथा इनमें प्रायः रेखाबद्ध शूक बने होते हैं जिनसे तरण अंगों का सतह क्षेत्र बढ़ जाता है।

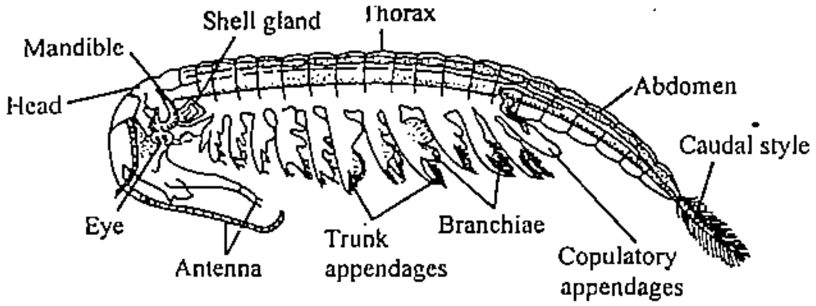

चित्र 14.32 : ब्रैंकियोपोडा : तैरने तथा श्वसन में काम आने वाले उपांग

ब्रैंकियोपोड़ों (छोटे अलवणजलीय क्रस्टेशियनों) में सभी उपांग तैरने के लिए और साथ ही श्वसन के लिए भी अनुकूलित होते हैं (चित्र 14.32)। जल-पिस्सू (water fleas) अपने संशक्त दूसरे ऐंटेनाओं से तैरते हैं। स्वच्छंदजीवी सूक्ष्म कोपीपौड भी तैरने के लिए मुख्यतः अपने दूसरे ऐंटेनाओं का ही इस्तेमाल करते हैं (चित्र 14.33 a)। अधिकतर क्रस्टेशियन रेंगने वाले हो गए हैं जबकि वे तैर भी सकते हैं और बिल भी बना सकते हैं। यद्यपि अनेक परजीवी कोपीपोड (चित्र 14.33 b) परजीवी जीवन विधि के लिए अनुकूलित हो गए हैं, फिर भी झींगे, लॉब्स्टर, केकड़े तथा कई अन्य उदाहरणों में सुविकसित तरण एवं गमन उपांग होते हैं। झींगों तथा लॉब्स्टरों में पैदल चलने की क्रिया पांच जोड़ी गमन टांगों के द्वारा सम्पन्न होती है, इनमें से टांगें पश्चीय वक्ष उपांग होती हैं (चित्र 14.34 a)।

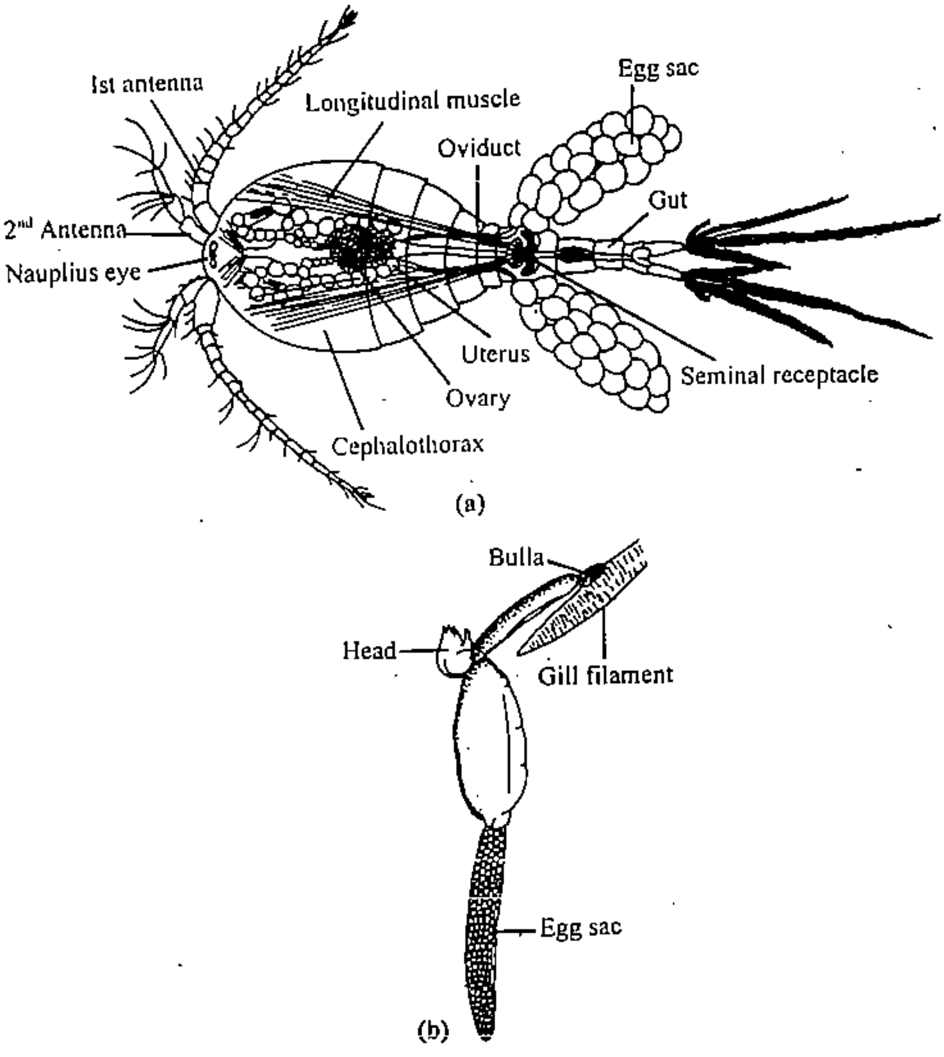

चित्र 14.33: (a) एक कोपीपौड *मैक्रोसाइक्लॉप्स ऐल्बिडस* (***Macrocyclops albidus***);
(b) *साल्मिनकोला साल्मोनिया* (***Salmincola salmonea***) जो एक परजीवी कोपीपौड होता है। परिपक्व मादा यूरोपियन सामन के गिल पर चिपकी रहती है।

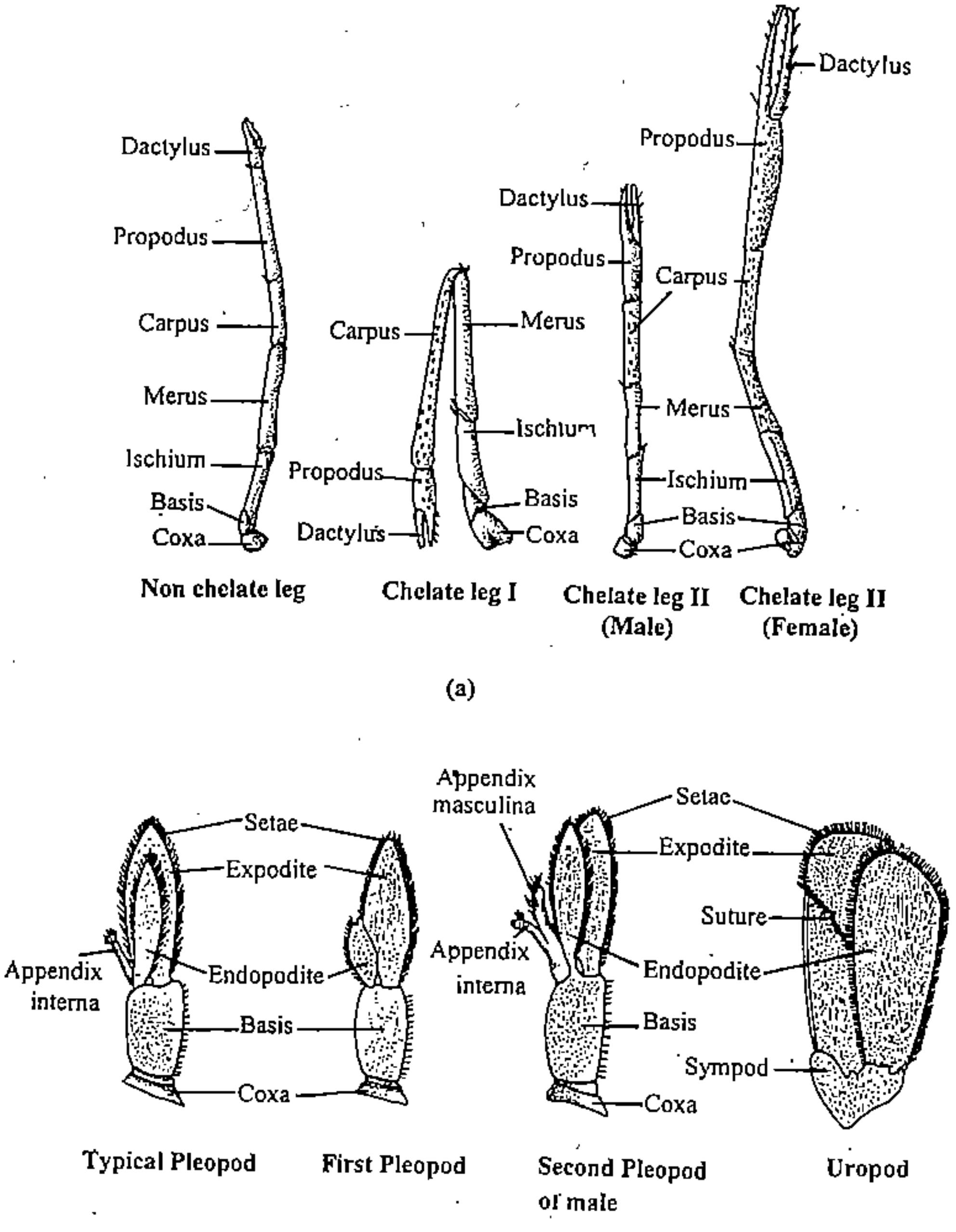

चित्र 14.34: (a) झींगा की गमन टांगें; (b) झींगा के तरण पादप

तैरने के वास्ते इन प्राणियों में छह जोड़ी उदर उपांग होते हैं जिन्हें तरणपाद (pleopods) और पुच्छपाद (uropods) (चित्र 14.34 b) कहते हैं। केकड़ों ने तैरने को तिलांजली देकर गमन को अपना लिया है। फलतः उनका उदर छोटा हो गया है, उदर उपांग नहीं होते तथा पांच जोड़ी वक्ष टांगें गमन के बन गयी हैं।

क्रस्टेशियन सभी प्रकार के जलीय निकेतों में भली-भांति रहते पाए जाते हैं और इस प्रकार उनमें उच्च मात्रा में अनुकूली विकिरण होता पाया जाता है। समुद्री पर्यावरण में यह ही प्रधान आर्थ्रोपोड समूह हैं और साथ ही अलवणजल आवास में भी कीटों के साथ प्रधानता बनाए रखने वाले हैं। तथापि थलीय पर्यावरण में इनका पहुंचना बहुत ही सीमित रहा है। सर्वाधिक विविध क्लास मैलाकॉस्ट्राका का है तथा सर्वाधिक संख्या वाला समूह कोपीपोडा का है। इन दोनों समूहों में प्लवक निलम्बन आहारक है तथा बहुत से अपमार्जक भी। कोपीपोडों में कशेरुकियों तथा अकशेरुकियों दोनों के परजीवी भी शामिल हैं। सिर्रीपोडों में स्थानबद्ध तथा परजीवी दोनों प्रकार के क्रस्टेशियन पाए जाते हैं। स्वच्छंदजीवी क्रस्टेशियनों की अपेक्षा परजीवी कोपीपोडों में नानाविध रूपांतरण पाए जाते हैं। अधिकतर परजीवी कोपीपोडों में वयस्क परजीवी होते हैं तथा उनकी लार्वा-अवस्थाएं स्वच्छंद तैरने वाली होती हैं। परजीवी सिर्रीपोडों में भी स्वच्छंदजीवी सिर्रीपोडों की अपेक्षा अधिक रूपांतरण पाए जाते हैं। इनका शरीर कोशाकार होता है और मेंटल

यानी प्रावार में कैल्सियमी प्लेटें नहीं होतीं। साथ ही इनमें उपांगों तथा खंडीभवन का भी अभाव होता है।

जलीय कीटों में तैरने की क्रिया विविध रूप में रूपांतरित टांगों के द्वारा की जाती है (चित्र 14.35 a)। अनेक लार्वा स्वरूपों में रोमिल शूक तैरने में सहायता करते हैं, जैसे मच्छर के लार्वों में नौवें उदर खंड पर बने रडर-शूक (चित्र 14.35 b)।

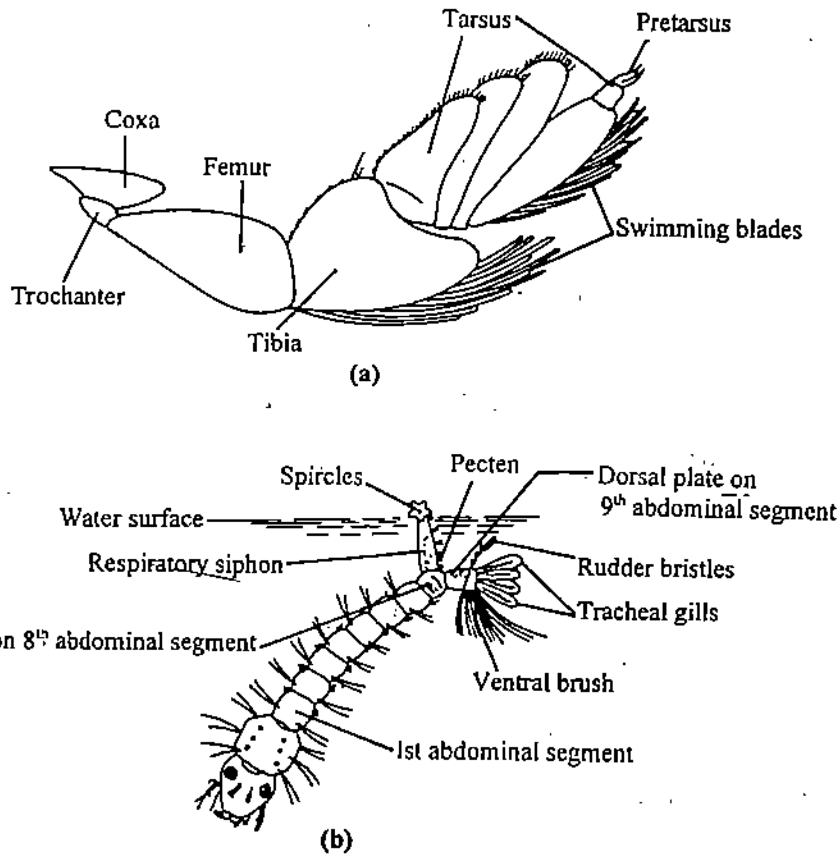

चित्र 14.35 : (a) एक कीट की तैरने के लिए अनुकूलित टांग; (b) मच्छर के लार्वा के रडर-शूक

थलीय आर्थ्रोपोडों का संचलन

अधिकतर वयस्क थलीय आर्थ्रोपोडों में सुविकसित गमन टांगें होती हैं जो उनके आवासों की आवश्यकताओं के लिए अनुकूलित होती हैं। इनकी संख्या तथा इनकी संरचना अलग-अलग प्रकार की हो सकती है। बिच्छुओं में चार जोड़ी चलन टांगें होती हैं (चित्र 14.28 a) जिनका काम तेज गति से दौड़ना होता है। मकड़ियों में भी चार जोड़ी गमन टांगें होती हैं और वे सभी चलन में काम आती हैं। ये आर्थ्रोपोड थोड़े-थोड़े समय के लिए बहुत तेजी से दौड़ सकते हैं। कांतर और गिजाइयां मिट्टी और कूड़े-करकट में तथा पत्थरों लट्ठों तथा वृक्षों की छालों के बीच दरारों में रहने के लिए अनुकूलित हैं। कांतरों में प्रति देहखंड एक-एक जोड़ी टांगें होती हैं जबकि गिजाइयों में प्रति देह खंड में दो-दो जोड़ी टांगें होती हैं। अन्य आर्थ्रोपोडों से भिन्न इनकी ये टांगें छोटी एवं ठूंठनुमा होती हैं। ये रेंगने, तेज चलने तथा दौड़ने के लिए अनुकूलित होती हैं। गिज़ाइयां मिट्टी में भी कुशलता से घुस सकती हैं।

वयस्क कीटों में नियमतः तीन जोड़ी टांगें होती हैं और इन्हें *हेक्सापोडा* (hexapoda) यानी छह टांगों से युक्त कहा जाना ठीक ही है। कीट की टांग एक वलयाकार कॉक्सा द्वारा वक्ष-भित्ति से संलग्न रहती है। कॉक्सा के अलावा इसमें पांच और खंड होते हैं — *ट्रोकैंटर, फ़ीमर, टिबिया, टार्सस* तथा *प्रीटार्सस* (चित्र 14.36)। टार्सस में *टार्सोमीयर* नामक तीन से पांच की संख्या में उपखंड होते हैं। कीटों की टांगें न केवल संचलन का ही कार्य करती हैं, वरन अन्य भूमिकाएं भी निभाती हैं जैसे कूदना (टिड्डे की पिछली टांग, चित्र 14.37 a), तैरना (*गाइरिनस* की पिछली

टांगें, चित्र 14.35 a), खोदना ('मोल-क्रिकेट' की अगली टांगें, चित्र 14.37b), दबोचना ('प्रेइंग-मैंटिस' की अगली टांगें, चित्र 14.37 c) तथा अलंकरणी (grooming) (मधुमक्खियों की पिछली टांगों पर बना प्रसाधन-अंग, चित्र 14.37 d)।

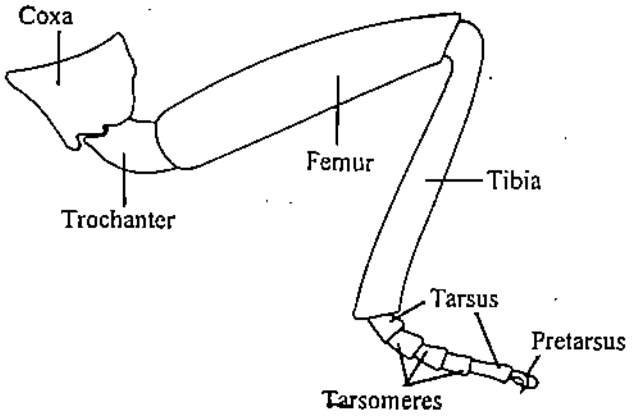

चित्र 14.36 : कीट-टांग जो विभिन्न कार्यों के लिए अनुकूलित होती हैं

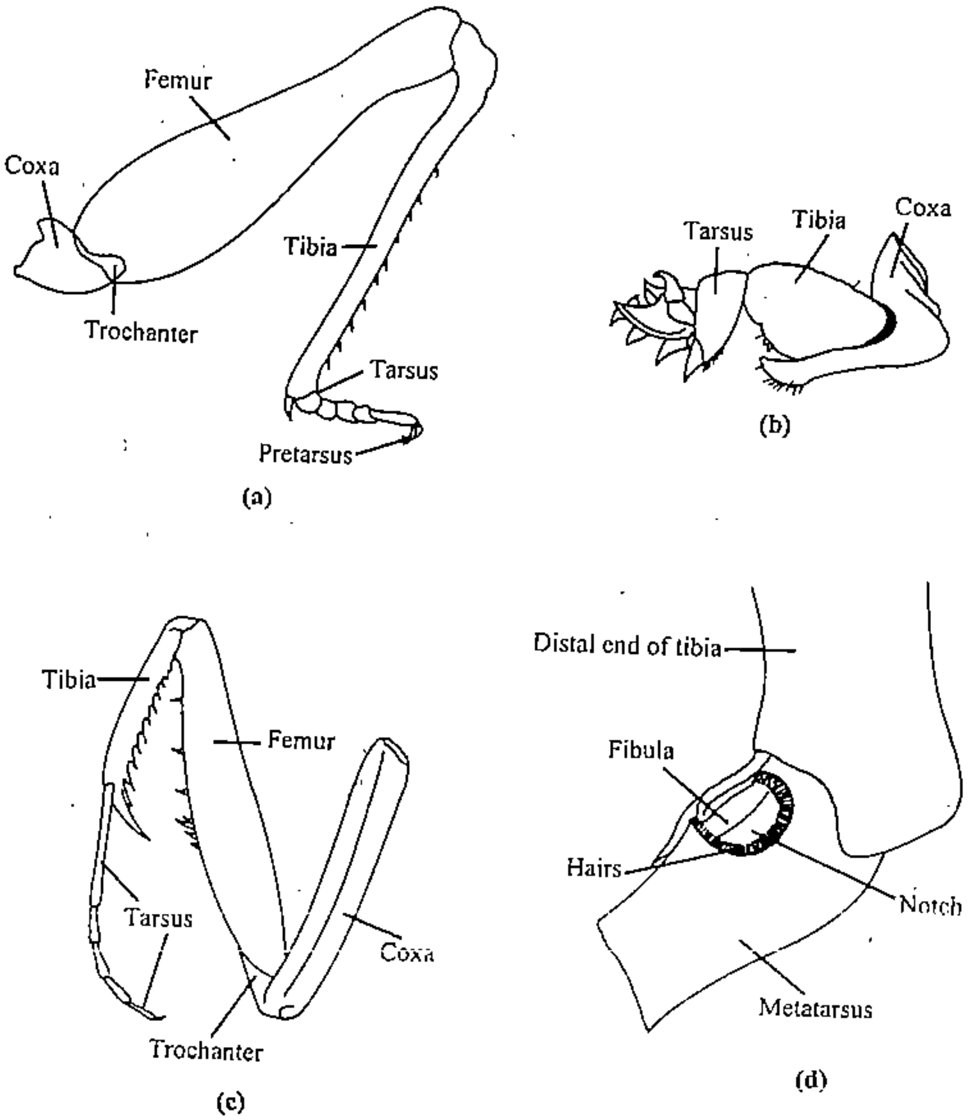

चित्र 14.37 : कीटों की टांगें जो इन सबके लिए अनुकूलित हैं : (a) कूदने (b) खोदने, (c) दबोचने तथा (d) अलंकरण के वास्ते मधुमक्खी का प्रसाधन अंग।

कीट-पंख

थलीय प्राणियों के रूप में कीटों को जो विलक्षण सफलता प्राप्त हुई है वह बहुत हद तक उनके उड़ सकने की क्षमता के कारण है। इस उद्देश्य के लिए उनमें से अधिकतर में उनके वक्ष खंडों पर दो जोड़ी पंख होते हैं। कीटों में पंखों की संरचना तथा उड्डयन-क्रियाविधि पर भाग 14.4 में चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 7

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत

(i) आर्थ्रोपोडा के मुखांग रूपांतरित खंडीय उपांग होते हैं। ☐

(ii) झींगों तथा लॉब्स्टरों में गमन क्रिया उदर उपांगों द्वारा होती है। ☐

(iii) जलीय कीटों में तैरने की क्रिया छह जोड़ी उदर उपांगों द्वारा होती है। ☐

(iv) टिड्डों की पिछली टांगें कूदने के लिए अनुकूलित होती हैं। ☐

(v) कांतरों में प्रत्येक खंड में दो-दो जोड़ी टांगें होती हैं। ☐

(vi) मच्छर के लार्वों में रडर–शूकों को श्वसन में इस्तेमाल किया जाता है। ☐

14.3.3 मौलस्कों में अनुकूली विकरण

कवच, प्रावार, रैडुला तथा पाद की उपस्थिति मौलस्का को अन्य फ़ाइलमों से अलग पहचान प्रदान करती है। आज के मौलस्कों में आने वाले नानाविधि प्रतिनिधि हैं, जैसे – *नीओपिलाइना (Neopilina)* (मॉनोप्लैकोफ़ोरा), *काइटॉन* (पोलीप्लैथोफ़ोरा), *डेंटैलियम* (स्कैफ़ोपोडा), घोंघे और स्लग (गैस्ट्रोपोडा), मसेल और सीपियां (पीलेसिपोडा) तथा स्क्विड और ऑक्टोपस (सीफ़ेलोपोडा)। जलीय स्वरूपों में श्वसन गिलों के द्वारा तथा थलीय मौलस्कों में फेफड़ों के द्वारा होता है। मौलस्का में पाए जाने वाले रूपांतरण मुख्यतः उनके कवच, पाद तथा श्वसन उपकरणों में दिखाई पड़ते हैं। आप मौलस्कीय कवच की संरचना और उसके विभिन्न प्ररूपों के विषय में इसी पाठ्यक्रम के खंड–2 की इकाई 4 में और पाद के विभिन्न रूपांतरणों के विषय में इसी पाठ्यक्रम के खंड–2 की इकाई 11 की इकाई 7 में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहां आप एक बार फिर से उसका स्मरण कर सकते हैं। अब हम अगले कुछ अनुच्छेदों मौलस्का में श्वसन क्रियाविधि के संरचनापरक रूपांतरणों के विषय में विवेचन करेंगे।

मौलस्का में श्वसन

मौलस्का अधिकतर समुद्री प्राणी होते हैं। कुछ गैस्ट्रोपोड तथा पीलेसिपोड अलवणजल में पाए जाते हैं जबकि पल्मोनेट गैस्ट्रोपौड थल पर पाए जाते हैं। जलीय मौलस्क श्वसन के लिए गिल अथवा **टेनिडियम** (ctenidia, sing. ctenidium) का उपयोग करते हैं। उधर दूसरी ओर थलीय संरचनाओं में फुफ्फुस कक्ष (pulmonary chamber) द्वारा सांस लिया जाता है, इस कक्ष को 'फेफड़े' की संज्ञा दी जाती है। कुछ मौलस्कों में तीन प्रकार के श्वसन होते हैं – गिलों से, फेफड़े से और त्वचा से।

गिल अथवा **टेनिडियमी श्वसन** जलीय मौलस्कों में होता है। टेनिडियम देह-भित्ति की बहिर्वृद्धियों के रूप में बनते और *प्रावार* गुहा के भीतर पाए जाते हैं। सभी मौलस्कन समूहों में टेनिडियम की मूलभूत संरचना एक ही होती है। गिल में एक क्षैतिज प्रधान अक्ष होता है जो शरीर से संलग्न रहता है। इस अक्ष के एक पार्श्व पर अथवा दोनों पार्श्वों पर कोमल, लचीली श्वसन पटलिकाओं **(respiratory lamellae)** की पंक्ति बनी होती है और इन पटलिकाओं की सतह पर

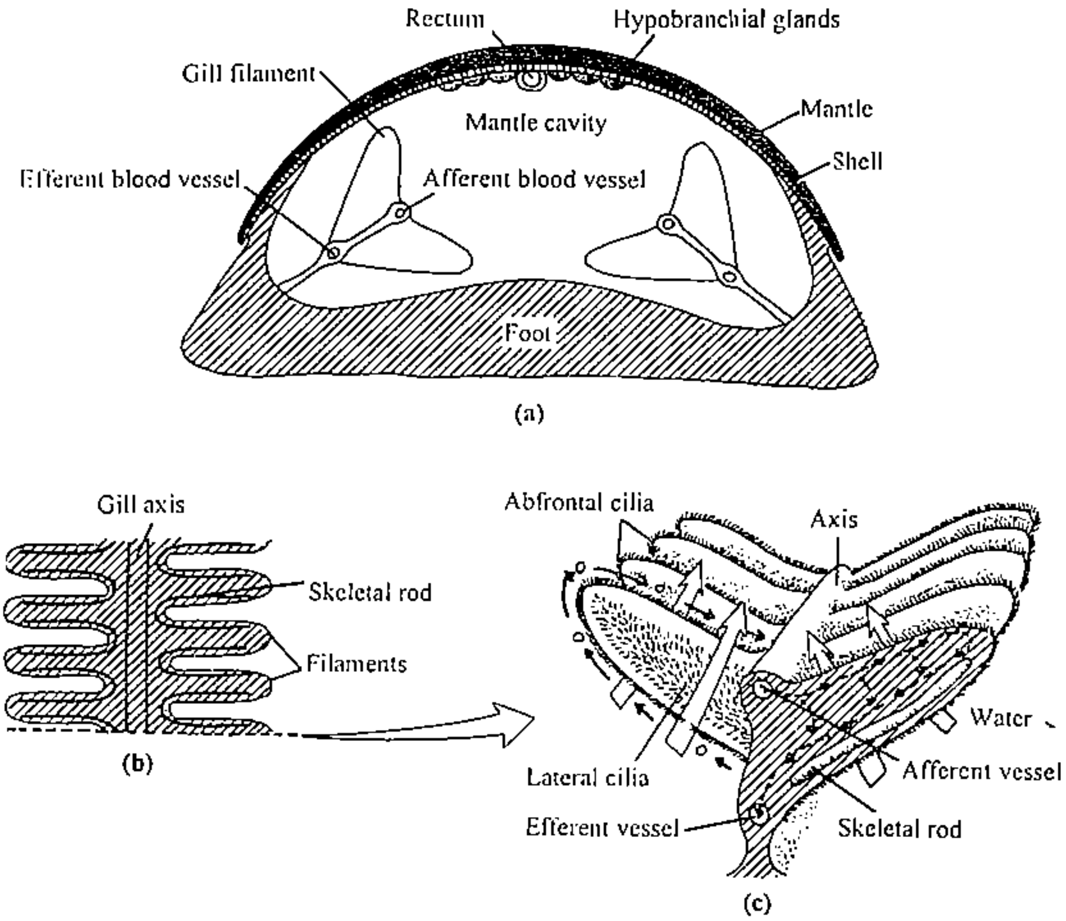

चित्र 14.38 : एक मौलस्क के शरीर के प्रावार गुहा के स्तर पर से लिए गए अनुप्रस्थ सेक्शन। (a) गिल का अग्रमुखी सेक्शन जिसमें गिल पटलिकाएं दिखायी गयी हैं। (b) जलधारा और रक्त-प्रवाह का अनुप्रस्थ सेक्शन (c) गिल पटलिकाएं जिनमें जलधारा की दिशा दर्शायी गयी है।

सिलियायित एपिथीलियम चढ़ी होती है (चित्र 14.38)। जब पटलिकाएं केवल एक ओर ही बनी होती हैं तब इस व्यवस्था को **एककंकती (monopectinate)** कहते हैं और जब ये पटलिकाएं दोनों पार्श्वों पर बनी होती हैं तब द्विकंकली (bipectinate) कहते हैं। सिलियमी गति से एक सतत जलधारा पैदा होती है जो अति रक्तवाहिकामय गिलों के ऊपर से बहती रहती है, इन पटलिकाओं में **अभिवाही गिल शिराओं (afferent branchial veins)** के द्वारा विऑक्सीजनित रक्त लाया जाता है। गिलों से ऑक्सीजनित रक्त **अपवाही गिल शिराओं (efferent branchial veins)** द्वारा वापस भेजा जाता है। गिलों के ऊपर से जलधारा के प्रवाह की दिशा गिलों के भीतर रक्त-प्रवाह की दिशा से सदैव विपरीत होती है (चित्र 14.38 c)। इस प्रतिधारा प्रवाह (counter current flow) से अधिकतम और कुशल गैस-विनिमय सुनिश्चित हो जाता है।

टेनिडियम व्यवस्था मौलस्का के अलग-अलग वर्गों में अलग-अलग होती है। पीलैसिपोडा में गिल न केवल श्वसन का ही कार्य करते हैं वरन अशन में भी सहायता करते हैं। मॉनोप्लैकोफ़ोरा में पांच जोड़ी मॉनोपेक्टिनेट यानी एककंकती गिल होते हैं जिनमें उंगली जैसी पटलिकाएं बनी होती हैं (चित्र 14.39 a)। इस वर्ग में गिलों का स्थान मौलस्कों की खंडीय प्रकृति दर्शाता है जो अन्यथा अन्य वर्गों में कतई प्रकट नहीं है। पॉलीप्लैकोफ़ोरा यानी काइटॉनों में छह से लेकर आठ द्विकंकती गिल होते हैं जो दो प्रावार गुहाओं के भीतर एक पंक्ति में व्यवस्थित होते हैं (चित्र 14. 39 b), जबकि एप्लैकोफ़ोरा (Aplacophora) (सॉलीनोगैस्ट्रीज़, Solenogastres) में गिल ह्रासित होते हैं या होते ही नहीं।

गैस्ट्रोपोडा में तीन उपवर्ग होते हैं - प्रोसोब्रैंकिआ (prosobranchia), ओपिस्थोब्रैंकिआ (opisthobranchia) और पल्मोनैटा (Pulmonata)। प्रोसोब्रैंकिआ में मरोड़ (torsion) के कारण

प्रावार गुहा के साथ-साथ गिल आगे की ओर को खिसक गए हैं और उनमें या तो एक एककंकती गिल हो सकता है (जैसे *पाइला* में) या दो द्विकंकली गिल हो सकते हैं (जैसे *हैलिओटिस* में)। ओपिस्थाब्रैंकिया में प्रावार गुहा और उसके भीतर बने अंग विमरोड़ (detorsion) के कारण दाहिनी ओर को खिसक गए हैं (मरोड़ के विषय में इससे पहले की इकाई देखिए)। *ऐप्लीसिया* (समुद्री शशक) जैसे स्वरूपों में एक टेनिडियन दाहिनी ओर बना होता है जबकि *डोरिस* तथा *ईओलिस* (न्यूडिब्रैंकिआ) में वास्तविक गिल पूरी तरह समाप्त हो गए हैं। उनकी बजाए इनमें द्वितीयक गिल बन गए हैं जो या तो गुदा को घेरते हुए मौजूद होते हैं या प्रावार के पार्श्व सीमांत पर बने होते हैं या देह की पृष्ठ सतह पर पंक्तिकार बने होते हैं (चित्र 14.39 c) पल्मोनेटों में गिल नहीं होते। प्रावार गुहा दाहिनी ओर होती है। यह रक्तवाहिकामय होकर एक 'फेफड़ा' बन जाता है जिससे वायु-श्वसन होने लगता है।

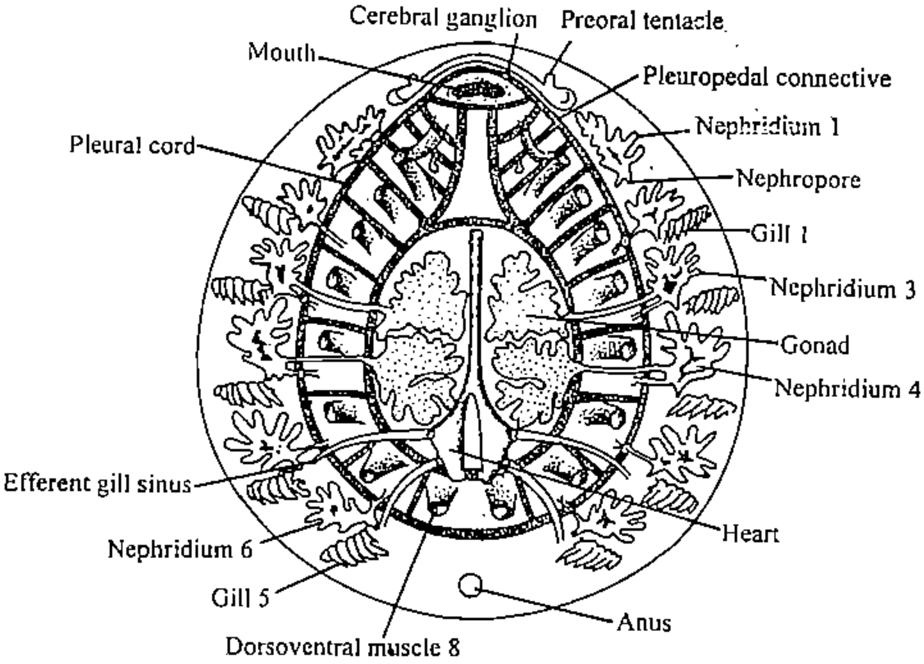

(a)

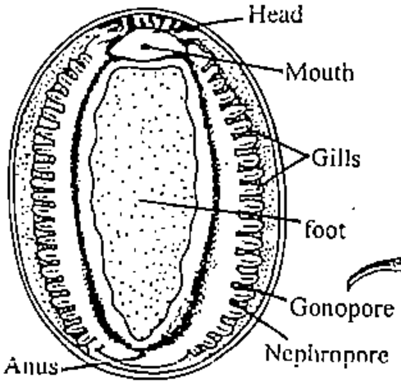

(b)

(c)

चित्र 14.39 : मौलस्कन गिल – (a) मॉनोप्लैकोफ़ोरा (*नीलोपिलाइना*); (b) *काइटॉन*; (c) समुद्री स्लग (*ईओलिस*)

फुफ्फुस श्वसन

थलीय गैस्ट्रोपोडों में प्रावार गुहा एक फुफ्फुस कक्ष अथवा फेफड़े में परिवर्तित हो गया है जिसकी

छत में रक्त वाहिकाओं की भरपूर आपूर्ति होती है। फुफ्फुस थैले का विकास एक थलीय अनुकूलन है। प्रावार के फर्श का एकांतर क्रम में संकुंचन करने और शिथिलन करने से वायु एक छोटे से छिद्र में से होकर जिस पर वाल्व तैनात रहता है, फुफ्फुस थैले के भीतर जाती और बाहर आती है। गैसों का विनिमय प्रकार भित्ति के द्वारा होता है। कुछ स्वरूपों में फुफ्फुस थैला जलीय श्वसन में भी सहायता कर सकता है।

पीलैसिपोडा में गिलों की संमिश्र संरचना होती है। श्वसन के अलावा ये आहार एकत्रित करने और एक प्रजनन कोष्ठ के रूप में कार्य करने में भी सहायता करते हैं। प्रावार गुहा के भीतर एक जोड़ी द्विकंकती गिल होते हैं, जो देह के दोनों पार्श्वों में एक-एक बने होते हैं। ये गिल प्राणी के अग्र सिरे से लेकर पश्च सिरे तक पूरी लंबाई में फैले होते हैं। प्रत्येक गिल में अक्ष के प्रत्येक पार्श्व पर लंबे-लंबे तंतु अधरतः फैले होते हैं और फिर हेयरपिन के रूप में ऊपर को मुड़ गए होते हैं (प्रत्येक पार्श्व पर 'दो हेयरपिनें' होती हैं) (चित्र 14.40)। अतः प्रत्येक 'हेयरपिन' में एक आरोही शाखा तथा एक अवरोही शाखा होती है। बाहरी तथा भीतरी पटलिकाएं अंतरापटलिका संधियों द्वारा परस्पर जुड़ी रहती हैं (चित्र 14.40)। गिल प्लेटें प्रावार गुहा को दो भागों में विभाजित कर देती हैं — एक ऊपरी अधिगिल कक्ष (Suprabranchial chamber) और एक निचला अवगिल कक्ष (infrabranchial chamber)। अधिगिल कक्ष एक बहिर्वाही अथवा पृष्ठ साइफ़न के द्वारा बाहर को खुलता है, इस साइफ़न से जल बाहर को बह जाता है। अवगिल कक्ष में एक अंतःवाही (inhalant, incurrent) अथवा अधर साइफ़न होता है जिसमें से होकर जल भीतर आता है। गिलों पर उपस्थित सिलिया एक सतत जलधारा पैदा करते हैं जो प्रावार गुहा में उनकी सतहों पर बहती जाती है, और उनकी सतहों पर गैसों का विनिमय होता है।

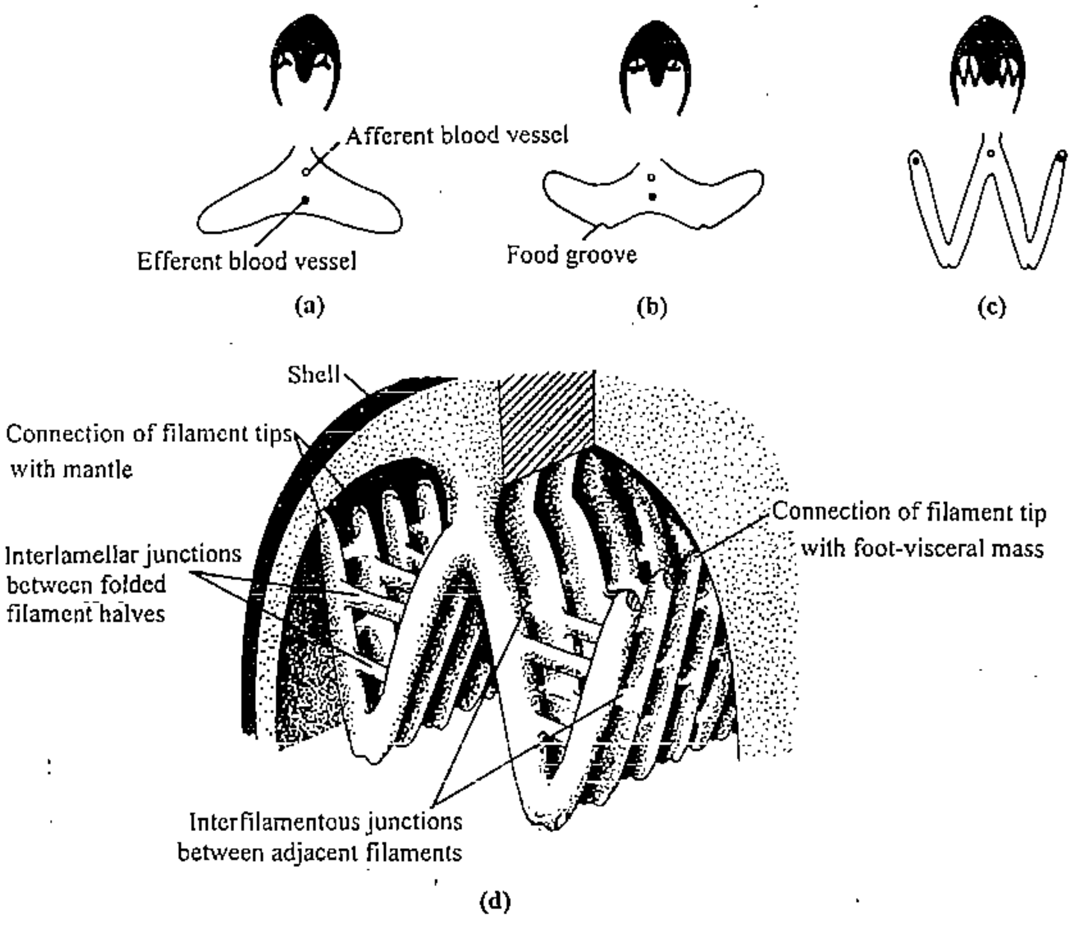

चित्र 14.40 : पीलैसिपोडा में लैमेलिब्रैंक गिलों का विकास (a) आदिम प्रोटोब्रैंक गिल, (b) आहार खांच का बनना जिसके द्वारा लैमेलिब्रैंक दशा बनती है। (c) आहार खांच पर तंतु बलनित होकर लैमिलिब्रैंक दशाएं बनाते हैं। (d) लैमेलिब्रैंक गिल जिनमें ऊतक संधियाँ बलनित तंतुओं को आलम्ब प्रदान कर रही हैं।

पीलैसिपौड अभ्रमणशील आहारक होते हैं और उन्हें स्वयं आहार को अपने रास्ते में आने की प्रतीक्षा करनी होती है। अंतःवाही साइफ़न द्वारा प्रावार गुहा में को जल के निरंतर प्रवेश होते रहने से आहारकण भीतर आते हैं जिनमें सूक्ष्मजीव और जैविक कचरा होता है। जब जल भीतर प्रवेश करता है तब भारी कण नीचे को बैठते जाते हैं और बाहर निकाल दिए जाते हैं। हल्के आहार कण गिल पटलिकाओं की बाहरी सतह के ऊपर से गुजरते हैं जहां वे गिलों से स्रावित श्लेष्मा में चिपक जाते हैं। श्लेष्मा-मिश्रित आहार कण गिलों के अधर सीमांतों पर बनी आहार-खांचों में पहुंच जाते हैं जहां से वे मुख की ओर पहुंचाए जाते हैं। मुख के समीप लेबियल पैल्प दुबारा कणों को उनकी प्रकृति के आधार पर छांटते हैं। छोटे पचनीय कणों को मुख के भीतर पहुंचाया जाता है तथा बड़े अपचनीय कणों को प्रावार गुहा से बाहर फेंक दिया जाता है।

सेफ़ैलोपोड में सरल द्विकंकती गिल गुदा के अगल-बगल बने होते हैं। पत्ती-सदृश पटलिकाएं अक्ष पर एक रेखीय पंक्ति में व्यवस्थित होती हैं। गिल की सतह पर सिलिया नहीं होते और जल का प्रवाह पेशीय प्रावार, कीप तथा अंतःप्रवेश वाल्वों द्वारा नियंत्रित होता है। कटलफिश, स्क्विड तथा ऑक्टोपसों में दो-दो गिल होते हैं तथा नौटिलॉइडों में चार-चार।

त्वचीय श्वसन

स्कैफ़ोपोडा, एप्लैकोफ़ोरा तथा परजीवी अथवा थलीय ओपिस्थोब्रैंकिआ में श्वसन प्रावार गुहा की गीली त्वचा के अथवा देह की सामान्य सतह से होता है। इसे त्वचा श्वसन कहते हैं।

बोध प्रश्न 8

(क) निम्नलिखित वाक्यों में नीचे कोष्ठकों के भीतर दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(विऑक्सीजनित, अपवाही गिल, टेनिडिया, अभिवाही गिल, ऑक्सीजनित, प्रवाह, धकेलता है, वाहिकीय)

(i) देह भित्ति की बहिर्वृद्धियों के रूप में बनकर .... प्रावार गुहा में पाए जाते हैं।

(ii) सिलियरी गति प्रचुर .... गिलों के ऊपर से एक निरंतर जलधारा बहाती है, ये गिल अंतःप्रवेशी शिराओं, जिन्हें .... शिराएं कहते हैं, से .... रक्त प्राप्त करते हैं और .... रक्त को .... शिरा नामक निर्गम शिराओं के द्वारा वापस भेजते हैं।

(ख) बताइए कि निम्न कथन सही है (T) या गलत (F)।

(i) पीलैसिपोडा में गिल आहार पकड़ने का काम भी करते हैं। ☐

(ii) *पाइला* में एक एककंकती गिल होता है। ☐

(iii) *ईओलिस* तथा *डोरिस* में वास्तविक गिल नहीं होते। ☐

(iv) फुफ्फुस कक्ष केवल जलीय मौलस्का में पाए जाते हैं। ☐

(v) ओपिस्थोब्रैंकिआ में गिल अग्रतः स्थित होते हैं। ☐

14.4 कीटों में उड्डयन

उड़ सकने की क्षमता विकसित कर लेने के क्षेत्र में कीट अकशेरुकों में सबसे भिन्न प्रकार के हैं। इस काम के लिए वयस्क कीटों में उनके वक्ष खंडों पर एक या दो जोड़ी पंख बने होते हैं। कीट वर्गीकरण में पंखों का एक विशेष आधार है। कीट मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – पंखयुक्त तथा पंखविहीन। पंखविहीन कीट या तो मूलतः पंखविहीन हो सकती हैं या परवर्ती रूप में। मूलतः पंखविहीन कीटों में पंखों का विकास ही नहीं हुआ। इन मूलतः पंखविहीन कीटों में आते हैं सिल्वरफ़िश तथा स्प्रिंगटेल। परवर्ती रूप में पंखविहीन कीटों में पंखयुक्त कीटों से उनके विकास के दौरान पंख समाप्त हो गए। चींटियां, जूँ और पिस्सू ऐसी ही श्रेणी में आते हैं, जिनमें पंख परवर्ती रूप में समाप्त हो गए। ड्रैगन-फ़्लाई, तितलियां, घरेलू मक्खियां, मत्कुण, बीटल आदि पंखयुक्त कीट होते हैं। कीटों के पंख शरीर की पार्श्व बहिर्वृद्धियों के रूप में विकसित हुए हैं।

पंखों की संरचना

पंख (चित्र 14.41) मध्यवक्ष तथा पश्चवक्ष पर देह-भित्ति की पृष्ठ-पार्श्व वहिर्वृद्धियों के रूप में बनते हैं। प्रत्येक पंख एक पतली झिल्ली के रूप में होता है और उसमें नलिकाकार शिराओं की

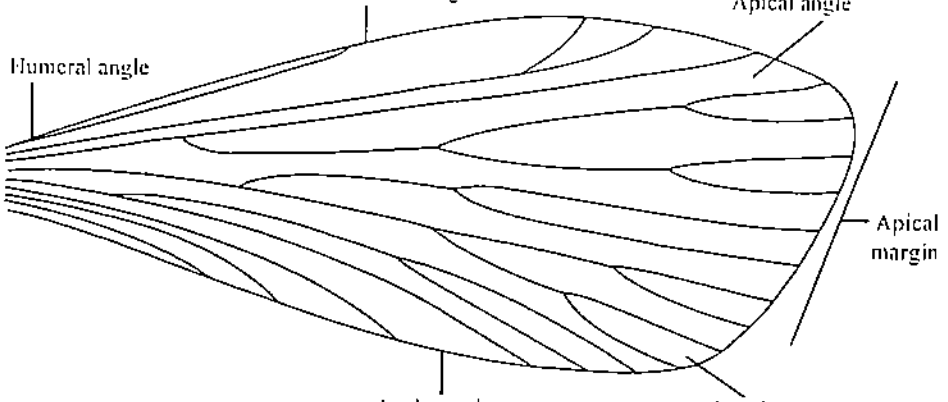

चित्र 14.41 : कीट का पंख

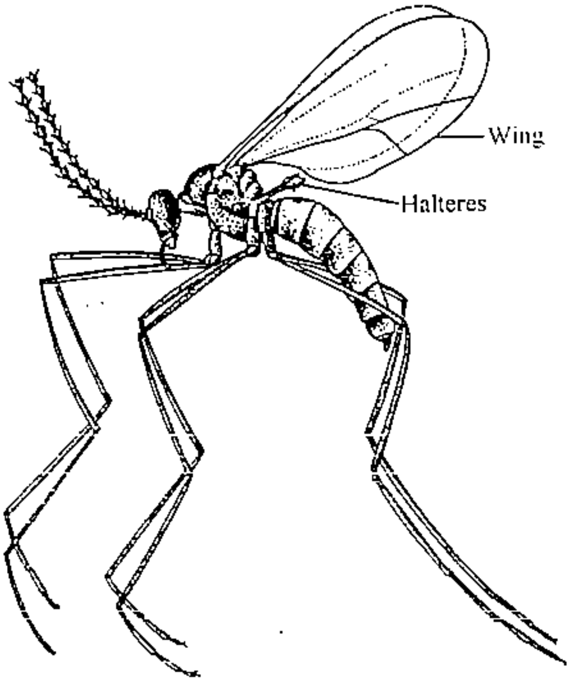

चित्र 14.42 : एक गॉल-नैट जिसमें पंख तथा हाल्टीयर दिखायी पड़ रहे हैं। हाल्टीयरों का काम उड़ान के दौरान संतुलन करना होता है।

एक व्यवस्था उसे आलम्ब प्रदान करती होती है। झिल्ली वास्तव में अध्यावरण की एक -दूसरे से निकटतः चिपकी हुई दो परतों की बनी होती है। शिराएं बहुत अधिक स्क्लेरोटित क्षेत्र होती हैं जिनमें दो परतें पृथक होती हैं। शिराओं के भीतर तंत्रिकाओं एवं वातिकाओं की शाखाएं होती हैं। पंख के भीतर शिराओं में रक्त बहता है।

कभी-कभार अग्र पंख कड़ा होकर पिछले पंखों को सुरक्षा प्रदान करने का काम करता है जैसे बीटलों में। डिप्टेरनों में (जैसे मक्खियों एवं मच्छरों में) पिछले पंख एक संवेदी अंग के रूप में बदल गए हैं जिसे हाल्टीयर कहते हैं (चित्र 14.42)। मगर अधिकतर कीटों में प्रत्येक पार्श्व पर बने दो पंख झिल्लीदार होते हैं और कीट के बैठे रहने की स्थिति में उन्हें मोड़ा जा सकता है (चित्र 14.43)। ये एक अकेले पंख की तरह कार्य कर सकने के लिए जुड़े हुए भी हो सकते हैं। इससे उड्डयन के दौरान इनकी कुशलता बढ़ जाती है।

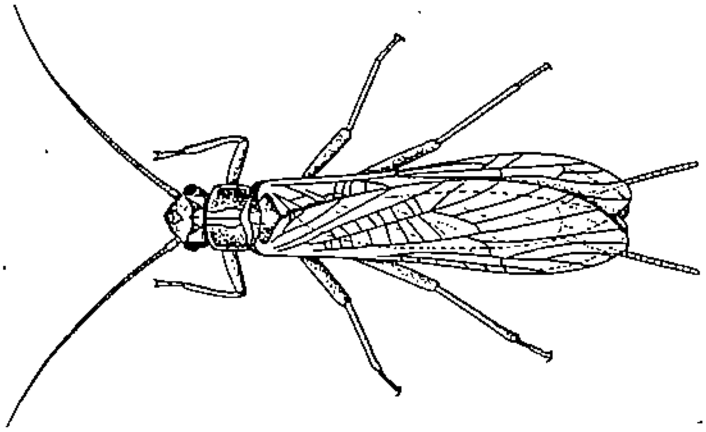

चित्र 14.43 : स्टोनफ़्लाई जिसमें विश्रामावस्था में पंख मोड़ लिए गए दिखाए गए हैं।

पंख-गति

कीटों में उड्डयन समन्वित पंख स्पंदनों का परिणाम होता है। ये गतियां अति जटिल होती हैं जिनमें विविध घटक होते हैं जैसे उत्थापन (elevation) (ऊपर को गति), अवनमन (depression) (नीचे की गति), तथा आगे को और साथ पीछे को गति। ये पंख-गतियां मुख्यतः तीन प्रकार से बनती हैं : (i) सीधे ही पंख-आधार पर निवेशित पेशियों द्वारा (प्रत्यक्ष उड्डयन पेशियां), (ii) प्रत्यक्ष पंखों से असंबंधित पेशियों के द्वारा वक्ष की आकृति में परिवर्तन (परोक्ष उड्डयन पेशियां) (चित्र 14.44 a-d); (iii) पंख हिंज की प्रत्यास्थता। एक बार जब पेशियां पंखों को एक खास अस्थिर स्थिति में ले आती हैं तब प्रत्यास्थता गतियां तीव्र बल के साथ स्वचालित रूप में पंखों को स्थिर दशा में ले आती हैं। इसे 'क्लिक' क्रियाविधि कहते हैं। एक बहुत ही अधिक प्रत्यास्थता के गुणधर्म वाला प्रोटीन 'रेज़िलिन' (resilin) कीटों की हिंज-संधियों में मौजूद होता है, यही प्रोटीन कीटों में 'क्लिक' गति पैदा करता है।

इस प्रकार कीटों के उड़ने में पंख स्पंदन बारंबारता अलग-अलग होती है जैसे तितलियों में 4-20 प्रति सेकंड तथा मधुमक्खियों और घरेलू मक्खियों में 190 प्रति सेकंड होती है। कुछ छोटे डिप्टेरनों में यह पंख स्पंदन बारंबारता 1,000 प्रति सेकंड हो सकती है।

उड्डयन

पंख गतियां बहुत ही जटिल होती हैं। उड्डयन की संपूर्ण क्रियाविधि को सरल शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है। विविध पंख गतियां पंखों के ऊपर एक निम्न वायु दाब का क्षेत्र बनाती हैं और पंखों के नीचे उच्च वायु दाब का क्षेत्र बनाती हैं जिसके परिणामस्वरूप कीट की देह हवा में ऊपर को उठती है। इसी प्रकार पंख के ऐंठन से आगे की ओर वायु की निम्न दाब बन जाती है तथा कीट के पीछे उच्च वायु दाब बन जाती है। इससे शरीर को आगे की ओर को प्रणोद (thrust) मिलता है। अनेक कीट उड़ान के दौरान एक ही स्थान पर स्थिर भी

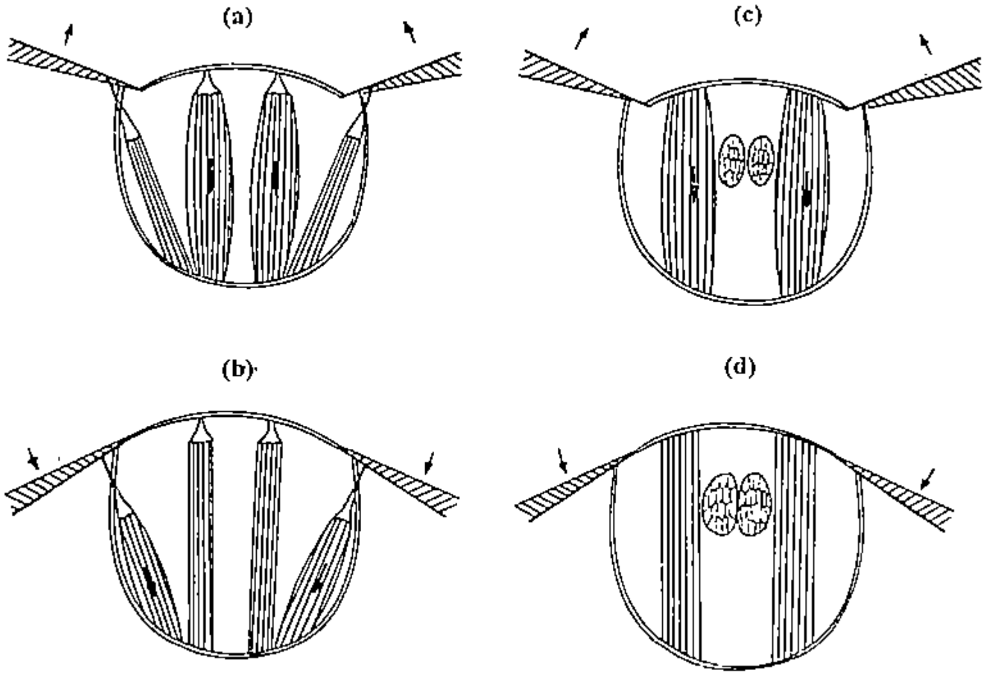

चित्र 14.44: (a) तथा (b) ड्रैगन-फ़्लाई तथा टिड्डी जैसे कीटों की उड्डयन पेशियां जिनमें उपरि घात परोक्ष पेशियों द्वारा तथा अधोमुखी घात प्रत्यक्ष पेशियों द्वारा करायी जाती है। (c) तथा (d) मधुमक्खियों जैसे कीटों में उड्डयन पेशियां जिसमें उपरि घात तथा अधोमुखी घात दोनों ही परोक्ष पेशियों द्वारा होती है।

रह सकते हैं। इनके मामले में पंख गतियां केवल उत्थान पैदा करती हैं प्रणोद पैदा नहीं करती। उड़ान के दौरान दिशा चालन के लिए पंख-स्पंदन में परिवर्तन करके गुरुत्व केंद्र को खिसकाया जाता है।

बोध प्रश्न 9

(क) निम्न कथनों में सही विकल्प पर निशान लगाइए

(i) वे कीट जिनमें पंख बिल्कुल भी विकसित नहीं हुए हैं मूलतः/परवर्ती रूप में पंख विहीन कीट कहलाते हैं।

(ii) ड्रैगनफ़्लाइ पंखयुक्त/पंखविहीन कीट होती हैं।

(ख) सूची–I में दिए गए शब्दों को सूची–II में दिए गए शब्दों से मिलाइए :

सूची–I	सूची–II
(i) सिल्वरफ़िश	(क) परवर्ती पंखविहीन
(ii) चींटियां	(ख) मूलतः पंखविहीन
(iii) हाल्टीयर	(ग) रूपांतरित पिछले पंख
(iv) रेज़िलिन	(घ) क्लिक गति में सहायक

14.5 कीटों में प्रवास

कीटों में मुख्यतः दो प्रकार के उड्डयन कार्यकलाप होते हैं। छोटी उड़ानें दिन-प्रतिदिन के

कार्यकलापों में, उदाहरणतः खाने-पीने और संगमन (मैथुन) संबंधी क्रियाओं में होती हैं जबकि प्रवास में उड्डयन क्रिया की ही प्रबलता रहती है। प्रवास अनिवार्यतः प्रकीर्णन की है। जब कभी किसी एक आवास में कोई एक पर्यावरण कारक अशन अथवा प्रजनन क्रिया में बाधक बन जाता है तब कीट आहार और जनन के लिए किन्हीं नए क्षेत्रों की तलाश में निकल पड़ते हैं। इसी को प्रवास का नाम दिया गया है। अनेक कीटों के वयस्क जीवन में कोई ऐसी खास प्रावस्था आ जाती है जिसमें यह क्रिया प्रमुख हो जाती है। इसे **प्रवास प्रावस्था** (migratory phase) कहते हैं तथा यह कुछ एक घंटों से लेकर जो कई कीटों में होती है, कई-कई दिन तक की होती है (जैसे कुछ कोलियोप्टेरा तथा लेपिडॉप्टेरा में)। प्रवास में प्रायः अशन क्रिया की समाप्ति पर अपने अशन क्षेत्रों से अन्यत्र प्रजनन क्षेत्रों की तलाश में चले जाते हैं और प्रजनन करने के उपरांत वापस अपने पुराने आवासों में लौट आते हैं।

चूंकि प्रवास का प्रमुख उद्देश्य प्रकीर्णन है, अतः इसमें लगभग सदैव ही मादाएं भाग लेती हैं, जबकि नर ऐसा करें या न करें। *सिस्टोसर्का* (*Schistocerca*) नामक टिड्डी में प्रवास उड़ानों में दोनों ही लिंग शामिल होती हैं लेकिन *यूरिगैस्टर* (*Eurygaster*) नामक मत्कुण में नर और मादा दोनों ही प्रजनन क्षेत्रों से अशन क्षेत्रों में तो प्रवास करते हैं मगर प्रजनन क्षेत्रों में लौटने में केवल मादाएं ही वापिस लौटती हैं। एक लेपिडॉस्टेरन *राइएसायोनिया* (*Rhyacionia*) में प्रजनन क्षेत्रों के लिए यात्रा करने से पहले ही मादाएं निषेचित कर दी जाती हैं। नर प्रवास नहीं करते।

प्रवास-दिशा

प्रवास की दिशा मुख्यतः पवन वेग तथा पवन दिशा द्वारा प्रभावित होती है। जैसे-जैसे कोई वायु में ऊपर हो उठता जाता है वैसे-वैसे पवन-वेग भी बढ़ता जाता है। वायु के सापेक्ष उड़ान में कीटों की रफ़्तार को वायु चाल (air speed) कहते हैं। धरती के निकटतर स्तर पर वायु चाल अपेक्षाकृत कम होती है। इससे जो चीज बनती है उसे सीमा-परत (boundary layer) कहते हैं। सीमा परत पर पवन चाल वायु चाल की अपेक्षा अधिक होती है। सीमा परत पर कीट स्वयं ही प्रवास की दिशा और मार्ग निर्धारित कर सकता है। उदाहरण के लिए, फ़्लोरिडा (संयुक्त राज्य अमेरिका) में *ऐसिया मोनस्टे* (*Ascia monuste*) नामक शलभ धरती-स्तर से 1 से 4 मीटर ऊपर उड़ता है। यह 10 किलोमीटर प्रति घंटा की पवन धारा वेग के विपरीत आसानी से उड़ता जा सकता है। इस शलभ की प्रवास-दिशा, उस क्षेत्र के फूलों की उपलब्धता द्वारा निर्धारित होती है। अन्य कीटों में प्रवास-दिशा के निर्धारण का उत्तरदायित्व कुछ अन्य कारकों पर हो सकता है जैसे कि सूर्य की स्थिति, कुछ भूचिन्हों जैसे कि सड़कें, तटरेखा आदि पर। सीमा परत के भीतर प्रवास का आरंभ करने वाले कारक अनेक हो सकते हैं मगर अंततः प्रवास-पथ क्या होगा इसका निर्धारण सूर्य की स्थिति, आकाश में ध्रुवित प्रकाश का प्रतिरूप और दृश्यमान भूचिन्हों द्वारा होता है।

सीमा परत के बाहर प्रवास का होना अनेक कीटों में पाया जाता है। कभी-कभी सामान्यतः सीमा परत में ही प्रवास करने वाले कीट सीमा परत के ऊपर उड़ते पाए गए हैं। *ऐसियाए मोनस्टे* को आर्जेंटिना में 1,500 मीटर की ऊँचाई पर उड़ते पाया गया है। अधिक ऊँचाईयों पर कीट वायुधारा की दिशा में ही उड़ते हैं। अधिक ऊँचाई पर कीट पवन धारा की ही दिशा में उड़ते हैं। टिड्डियों के सघनतर दल अधिक ऊँचाईयों पर कीट वायु धारा की दिशा में ही उड़ते हैं। निम्नतर चाल (0.6 मीटर प्रति सेकंड) वाले एफ़िडों को पवन धाराओं के विपरीत दिशा में उड़ना कठिन होता है और इसी तरह सीमापरत में प्रवास करना भी कठिन होता है। ये परावैंगनी किरणों के प्रति धनात्मक प्रकाशानुचलनी प्रतिक्रिया के कारण वायु में ऊपर उठते जाते हैं और फिर पवनधाराओं के साथ लंबी-लंबी दूरियों तक पहुंचा दिए जाते हैं। कई अन्य कीट भी जैसे कि फिर पवनधाराओं के साथ लंबी-लंबी दूरियों तक पहुंचा दिए जाते हैं। कई अन्य कीट भी जैसे कि ड्रैगनफ़्लाइ, बीटल, तितलियां तथा शलभ भी अधिक ऊँचाइयों पर पवन की धारा में ही (पवन की दिशा में) उड़ते जाते हैं। एक बार जब कीट ऊपर उठती जाती हुई पवन धाराओं (संवहन धाराओं, convection currents) के द्वारा अधिक ऊँचाईयों पर पहुंच जाते हैं तब ये पवन धाराएं उन्हें थोड़े ही समय में अधिक दूरियों तक ले जाती हैं। देखा गया है कि *शिस्टोसर्का* (*Schistocerca*) टिड्डी के दल धरती से 700 मीटर की ऊँचाई पर 45 किलोमीटर प्रति घंटा की पवन चाल पर 24 घंटों के भीतर 1,200 किलोमीटर की दूरी तय कर लेते हैं।

वापसी प्रवास

कुछ कीटों में जाने और वापस आने की प्रवास गति होती पायी जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की मोनार्क तितली *डैनेइस प्लेक्सिप्पस (Danais plexippus)* शरद ऋतु में उत्तर से, जहां तापमान बहुत नीचे चला जाता है एवं आहार दुर्लभ हो जाता है, दक्षिण में चली जाती है जहां तापमान मध्यम होता है और आहार आपूर्ति भी पर्याप्त होती है। फरवरी के महीने में ये तितलियां पुनः उत्तर दिशा में वापसी प्रवास करती है। रोचक बात यह है कि वे ही व्यष्टियां जो पहले आयी थी दक्षिण से वापस उत्तर में लौटती हैं। इस प्रकार उन्हीं व्यष्टियों का द्वि-दिश प्रवास आस्ट्रेलिया में *ऐग्रोटिस इफ्यूसा* (*Agrotis infusa*) (लेप्डॉप्टेरा), तथा *हिप्पोडैमिया कनवर्जेंस* (*Hippodamia convergens*) (कोलियोप्टेरा) और साथ ही और भी अनेक कीटों में होता पाया जाता है।

टिड्डी प्रवास

टिड्डियों में सामूहिक प्रवास अथवा दल का उड़ना होता पाया जाता है। मरुस्थली टिड्डी *शिस्टोसर्का ग्रीगैरिया* (*Schistocerca gregaria*) के दल 10 से लेकर 250 वर्ग किलोमीटर तक में फैले हो सकते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि 20 वर्ग किलोमीटर में फैले किसी टिड्डी दल में लगभग 100 करोड़ टिड्डियां तक हो सकती हैं। टिड्डी दल एक-एक दिन में सौ-सौ किलोमीटर तक की दूरी तय कर सकते हैं।

टिड्डियों के दल दो प्रकार के होते हैं – **स्ट्रैटिफ़ार्म (stratiform,** स्तराकार) तथा **क्यूमुलिफ़ार्म (cumuliform,** पुंजाकार)। स्ट्रैटिफ़ॉर्म दलों में टिड्डियां धरती के कुछ ही मीटर ऊपर चपटी तह के रूप में एक पतली परत के भीतर उड़ती हैं, तथा उनमें प्रति घनमीटर में 1 से लेकर 10 तक टिड्डियां हो सकती हैं। क्यूमुलिफ़ार्म दलों में टिड्डियां एक मीनार जैसे स्तम्भ में उड़ती हैं जो धरती से 1,000 मीटर ऊपर तक फैला हो सकता है और इसमें टिड्डियों का घनत्व कम होता है - प्रति घन मीटर में 0.001 से लेकर 0.1 टिड्डियों तक। स्ट्रैटिफार्म टिड्डी दल तब बनते हैं जब संहवनी वायु धाराएं नहीं होतीं जिनके द्वारा वे अंदर जा सके जबकि क्यूलिफार्म दल तब बनते हैं जब वायु धाराएं उन्हें ऊपर की ओर ले जाती हैं।

टिड्डी दलों का एक रोचक पहलू यह है कि दल के भीतर की सभी टिड्डियों के मुंह सामने की ओर को नहीं होते। उनके शीर्ष भिन्न दिशाओं में हो सकते हैं। इस दशा को यादृच्छिक दिशाविन्यास (random orientation) कहते हैं। तथापि, दल के सीमांतों पर होने वाली टिड्डियां अन्य टिड्डियों के देह की ओर को मुंह किए रहती हैं। इस स्वभाव से दल की संपूर्णता कायम बनी रहती है।

प्रवास का आरम्भ और अंत

आइए देखें कि प्रवास होता क्यों है। प्रवास का समारम्भ अक्सर वास्तविक प्रतिकूल पर्यावरण दशाओं के आने से नहीं होता। उदाहरण के लिए, मोनार्क तितली का प्रवास उत्तर में शीत दशाओं के आरम्भ होने से पूर्व ही शुरू हो जाता है, और टिड्डी दल अपने आवासों को जब छोड़ने लगते हैं तब उन क्षेत्रों में अब भी भरपूर भोजन होता है। इससे प्रकट होता है कि इन उदाहरणों में प्रवास एक विकासगत पैदा हुआ अनुकूलन है और वह मात्र प्रतिकूल पर्यावरण उद्दीपनों से ही नहीं होता। प्रवास का आरम्भ प्रतिकूल दशाओं के आरम्भ से पहले ही होने लगता है। इस प्रकार के प्रवास को स्वतः प्रवास (spontaneous migration) कहा जा सकता है। इसके विपरीत कुछ मामलों में प्रवास की उत्तेजना किसी शरीर क्रियात्मक अथवा व्यवहारात्मक परिघटनाओं द्वारा प्रेरित होती है जिनके कारण कीट प्रवास के लिए तैयार स्थिति में आ जाता है। इस प्रकार के प्रवास को विकल्पी प्रवास (facultative migration) कहा जा सकता है। दीप्तिकाल, तापमान और आहार आपूर्ति ऐसे ही कुछ कारक हैं। एक बार कीटों को प्रवास के लिए तत्पर दशा में रखने पर वास्तविक उड़ान भरना अन्य कारकों पर निर्भर करता है जैसे किसी विशिष्ट तीव्रता का प्रकाश, पवन की चाल, तापमान आदि। इसी प्रकार प्रवास का अंत लाने वाला कारक शारीरिक शिथिलन नहीं है वरन् (एफिड़ों में) पत्तियों द्वारा परावर्तित प्रकाश के विभिन्न तरंग-दैर्ध्य, या लवण दलदलों की गंध (जैसे *ऐस्किया* में) तथा परपोषी वृक्षों की गंध (जैसे

मीलोलॉन्था, Melolontha बीटल में), आदि प्रवास को समाप्त कराने के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं।

प्रवास का महत्व

प्रवास के द्वारा स्पीशीज़ को उसके आवासों के स्थानों में होने वाले परिवर्तनों से जूझने की क्षमता मिल जाती है। यह उन कीटों में ज्यादा पाया जाता है जो अस्थायी आवासों में रहते हैं। उदाहरणतः ओडोनाटा की अनेक स्पीशीज़ जो स्थायी जलधाराओं में रहती हैं प्रवास नहीं करती, जबकि अस्थायी तलैयों में रहने वाली आधे से ज्यादा स्पीशीज़ प्रवास किया करती हैं। आवासों की अस्थायी प्रकृति का होना तापमान, आर्द्रता, वर्षा आदि में होने वाले परिवर्तनों के कारण होता है। प्रवास प्रतिकूल पर्यावरण दशाओं से पार पाने का एक साधन है।

बोध प्रश्न 10

बताइए कि निम्न कथन सही हैं (T) अथवा गलत (F) :

(i) छोटी उड़ानें आहार करने तथा मैथुन करने में सहायता करती हैं। ☐

(ii) *शिस्टोसर्का* टिड्डी में प्रवास उड़ानों में केवल नर टिड्डियां ही भाग लेती हैं। ☐

(iii) वायु की सीमा परत धरती के निकट होती है और इस परत के भीतर वायु-चाल पवन-चाल से अधिक होती है। ☐

(iv) संयुक्त राज्य अमेरिका में मोनार्क तितली *डैनेइस प्लेक्सिप्पस* शीत ऋतु में दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवास करती हैं। ☐

(v) वायु में अधिक ऊँचाईयों पर कीट पवन की ही दिशा में अर्थात् हवा चलने की ही दिशा में उड़ते हैं। ☐

(vi) स्वतः प्रवास का समारंभ किसी एक या अन्य पर्यावरण कारक के द्वारा होता है। ☐

(vii) कीट की शारीरिक थकावट से प्रवास का अंत होता है। ☐

(viii) प्रवास उन कीटों में सामान्यतः पाया जाता है जो अस्थायी आवासों में रहते हैं। ☐

14.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा :

- जो प्राणी अलग-अलग व्यष्टिगत रूप में रहते हैं उन्हें एकल कहते हैं और जो सुगठित समूहों में रहते हैं उन्हें कॉलोनीय कहते हैं। वास्तविक कॉलोनियां जिनमें व्यष्टियां अथवा जूऑइड शारीरिक रूप में जीवित पदार्थ द्वारा परस्पर संयोजित होते हैं, प्रोटोज़ोअनों तथा सीलेंटेरेटों में पायी जाती हैं। बहुरूपता तथा श्रम-विभाजन कॉलोनीय जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं।
- यदि एक ही वर्ग के अथवा निकटतः संबंधित वर्गों के प्राणी अलग-अलग जीवन-विधियों के लिए अनुकूलित हो जाते हैं तो उन्हें अनुकूली विकिरण दर्शाते हुए कहा जाता है जिसे अनुकूली अपसरण भी कहते हैं।
- प्राणियों की आधारभूत आवश्यकताएं अर्थात् आहार एवं सुरक्षा से अनुकूली विकिरण आता है। अकशेरुकियों में ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा तथा मौलस्का में स्पष्ट अनुकूली विकिरण होता दिखाई पड़ता है।

- अनुकूली विकिरण ऐनेलिडा में मुख्यतः अशन-विधि में और विभिन्न आवासों के समुपयोजन में दिखायी पड़ता है, आर्थ्रोपोडों में श्वसन रूपांतरणों एवं पाद रूपांतरणों में, और मौलस्का में कवच, पाद तथा श्वसन यंत्र में भी होता पाया जाता है।
- पंख कीटों की अद्वितीय प्राप्तियां हैं। देह-भित्ति की पृष्ठ-पार्श्व बहिर्वृद्धियों के रूप में बने थे पंख प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार की पेशियों द्वारा और साथ ही वक्ष की उड्डयन पेशियों की तथा पंख हिंज की प्रत्यास्थता से गति प्रदान होती है। ये कीटों को उड्डयन क्षमता प्रदान करते हैं।
- कीटों में दो प्रकार की उड्डयन क्रियाएं पायी जाती हैं। दैनिक क्रियाकलापों के लिए जैसे कि अशन तथा मैथुन के लिए छोटी-छोटी उड़ानें होती हैं तथा प्रकीर्णन अर्थात् फैलाव के लिए प्रवास होता है। प्रवास अनेक कीट-स्पीशीज़ में सामान्यतः पाया जाता है, वह या तो स्वतः हो सकता है या विकल्पी।

14.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. अनुकूली अभिसरण तथा अनुकूली अपसरण में विभेद कीजिए।

   इसका उत्तर अपने ही शब्दों में दो या तीन पंक्तियों में दीजिए।

   ....

   ....

   ....

2. तीन कशाभधारी प्रोटोज़ोअनों के नाम लिखिए जो उन्नत कॉलोनियाँ बनाते हैं। क्या इनमें से किसी में ध्रुवता दिखायी पड़ती है ? यदि हाँ, तो बताइए कि आप ऐसा क्यों समझते हैं ?

   ....

   ....

   ....

3. बहुरूपता की परिभाषा लिखिए। आप कैसे कहेंगे कि साइफ़ोनोफ़ोरा की कॉलोनी बहुरूपी होती है ?

   ....

   ....

   ....

4. निम्न कथनों में सही विकल्प पर सही का निशान लगाइए :

   (क) जो प्राणी, स्वयं आहार को उनके पास आने की प्रतीक्षा करते हैं उनमें अरीय/द्विपार्श्व सममिति होती है।

   (ख) फ़िल्टर अशन की विधि स्थानबद्ध/सक्रिय आहार खोजकर्ता में पायी जाती है।

   (ग) शुंडिका का बहिर्वर्तन परभक्षी/परजीवी पॉलीकीटा में अशन कराता है।

   (घ) केंचुओं में ऐंटेना तथा पैल्प नहीं होते/होते हैं।

   (ङ) जोंक द्वारा किया गया पूरा भोजन चार घंटों/महीनों तक चलता है।

5. आर्थोपोडा में शरीर के ऊपर जो कड़ा और दृढ़ कवच होता है उसके दो लाभ तथा दो हानियां बताइए।

....

....

....

....

6. सूची क में दिए गए शब्दों की सूची ख में दिए गए शब्दों से मिलाइए :

सूची क	सूची ख
1. गिल	(a) डिप्टेरन लार्वा
2. वातिकाएं	(b) स्टोन-फ़्लाई लार्वा
3. गुदा (वातिकीय) गिल	(c) कीट
4. रक्त-गिल	(d) क्रस्टेशिया

7. मौलस्का-प्राणी ऐनेलिडन पूर्वजों से विकसित हुए माने जाते हैं, हालांकि उनमें खंडीभवन कतई नहीं पाया जाता। कोई दो कारण बताइए जिनके आधार पर ऐनेलिडा के साथ इनकी पूर्वजता बताई जा सके।

8. बताइए कि निम्न कथन सही हैं अथवा गलत :

(क) कीटों में प्रवास केवल अशन के लिए होता है।

(ख) स्तराकार टिड्डी दल धरती के 1,000 मीटर ऊपर एक स्तम्भ में उड़ते हैं।

(ग) यादृच्छिक दिशाचालन में टिड्डी दल के सभी सदस्य सामने की ओर को मुख किए रहते हैं।

(घ) कीटों के प्रवास का मार्ग और दिशा केवल सूर्य की स्थिति द्वारा निर्धारित होते हैं।

14.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (1) (i) पर्यावरण, अनुकूली अभिसरण
   (ii) अनुकूली अपसरण

   (2) (i) गलत, (ii) सही (iii) सही (iv) गलत

2. (1) (i) (ग), (ii) (क), (iii) (ख), (iv) (घ)

   (2) मोनोपोडियल, सिम्पोडियल, स्थायी

3. (i) ओसबॉर्न, (ii) लैमार्क (iii) भ्रमणशील पौलीकीट (iv) महासागर

4. (1) (i) गलत, (ii) सही, (iii) गलत, (iv) सही

   (2) (i) आहार, (ii) सुरक्षा

5. (i) और (ii) गलत, (iii) और (iv) सही

6. (i) पुस्त फुफ्फुस, चार, (ii) पुस्त-गिल, (iii) पर्णगिल, शूक गिल तथा द्रुमगिल, (iv) ओडोनोटा, (v) नीपा

7. (i) सही, (ii) तथा (iii) गलत, (iv) सही, (v) तथा (vi) गलत।

8. (क) (i) टेनिडिया, (iii) वाहिकायित, विऑक्सीजनित, अभिवाही गिल, ऑक्सीजनित, अपवाही गिल

   (ख) (i) सही, (ii) सही, (iii) सही (iv) गलत (v) गलत (vi) गलत

9. (क) (i) मूलतः (ii) पंखयुक्त

   (ख) (i) ख, (ii) ग, (iii) ग, (iv) घ

10. (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) गलत (viii) सही

अंत में कुछ प्रश्न

1. अनुकूली अभिसरण में असंबंधित समूहों के प्राणी एक ही आवास के लिए अनुकूलित होते हैं जबकि अनुकूली अपसरण में एक ही समूह अथवा निकटतः संबंधित समूहों में आने वाले प्राणी अलग-अलग आवासों के लिए अनुकूलित होते हैं।

2. कशाभधारी प्रोटोज़ोअनों में उन्नत कॉलोनियां बनाने वाले तीन सदस्य हैं : *वॉल्वॉक्स*, *प्लीओडोराइना* तथा *पैंडोराइना*। इन सभी में ध्रुवता पायी जाती है क्योंकि वे सदैव एक खास दिशा ही सामने को रखे तैरते हैं।

3. जुऑइडों अथवा व्यष्टियों की कॉलोनी जिनमें श्रम-विभाजन होता है, बहुरूपता कहलाता है। साइफ़ोनोफ़ोस कॉलोनी में अशन के लिए गैस्ट्रोज़ूऑइड होते हैं, सुरक्षा के लिए डैक्टिलोज़ूऑइड होते हैं, सुरक्षा के लिए डैक्टिलोज़ूऑइड होते हैं तथा तीन अन्य ज़ूऑइड होते हैं – जनन के लिए गोनोज़ूऑइड, संचलन के लिए नेक्टोफ़ोर और तैरने के लिए न्यूमैटोफ़ोर।

4. सही विकल्प हैं – (क) अरीय, (ख) स्थानबद्ध (ग) परभक्षी, (घ) नहीं होते (ङ) महीनों

5. लाभ

   (i) आलम्ब और सुरक्षा प्रदान करते हैं।

   (ii) शुष्कन रोकती है।

   हानियां:

   (i) वृद्धि में अवरोध

   (ii) सामान्य देह सतह से गैसीय विनिमय में रूकावट डालती है।

6. (i) ङ, (ii) घ, (iii) ख, (iv) क

7. दो आधार इस प्रकार हैं :

   1. ऐनेलिडा के पौलीकीटा वर्ग में तथा मोलस्का में एक ट्रोकोफ़ोर लार्वा अवस्था पायी जाती है।

   2. *नीओपिलाइना* (मॉनोप्लैकोफ़ेरा) में युग्मित गिलों की व्यवस्था मोलस्कों में खंडीभवन का संकेत प्रदान करते है।

8. सभी कथन गलत हैं।

इकाई 15 व्यवहारात्मक प्रतिरूप

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

15.2 अनुचलन तथा गतिता
अनुचलन
गतिता

15.3 जैविकीय तालें
जैवतालों का नियंत्रण
जैविक घड़ी

15.4 संचार व्यवहार
दृश्य संकेत
यांत्रिक संकेत
रासायनिक संकेत
मधुमक्खियों में संचार–नृत्य भाषा

15.5 अनुरंजन व्यवहार
अनुरंजन व्यवहार की आवश्यकता
अनुरंजन व्यवहार में लैंगिक अंतर
दृश्य, यांत्रिक तथा रसायनिक प्रदर्शन
कामद उपहार
शुक्राणु प्रतिस्पर्द्धा एवं मैथुनी की चौकसी
मैथुनी प्रतिस्पर्धा के वैकल्पिक तरीके
अनुरंजन में अस्वीकृति तथा छल–कपट

15 6 कीटों में सामाजिक संघटनों
सामाजिक व्यवहार के लाभ तथा हानियां
सामाजिक कीटों की विशिष्टताएं
सामाजिक वर्ग
चींटियां
मधुमक्खियां
दीमकें

15.7 परजीविता
परजीविता के प्ररूप
परजीवियों पर परजीविता के प्रभाव

15.8 सारांश

15.9 अंत में कुछ प्रश्न

15.10 उत्तर

15.1 प्रस्तावना

प्राणियों के व्यवहारात्मक प्रतिरूप वे प्रतिरूप होते हैं जो उनके पर्यावरण में उद्दीपनों के प्रति की अनुक्रिया के रूप में उनकी मुद्राओं तथा गतियों में दिखायी पड़ते हैं। व्यवहार के प्रतिरूप उद्देश्यपूर्ण होते हैं और हो सकता है वे आहार प्राप्त करने, अपने मैथुन साथी को ढूंढने, किसी सुविधाजनक एवं आश्रयी स्थल को ढूंढने अथवा अपनी ही स्पीशीज़ या भिन्न स्पीशीज़ के प्राणियों के साथ संचार करने के लिए हों।

जब कोई प्राणी किसी उद्दीपन के प्रति गति करता है तब इन गतियों को **अनुचलन** (taxes) तथा **गतिताएं** (kineses) कहते हैं। नियमित अंतरालों पर **अनुरंजन** (courtship) तथा **संगम** (mating) से संबंधित बहुत विशद क्रियात्मिक व्यवहार प्रतिरूप होते हैं जिनमें अपनी ही स्पीशीज़ के और साथ ही अन्य स्पीशीज़ के सदस्यों के साथ भी संचार शामिल है। कुछ प्राणी समूहों में रहते हुए समाज व्यवस्था बनाए रहते हैं और सामाजिक व्यवहार दर्शाते हैं। इन प्राणियों में अपनी ही स्पीशीज़ के सदस्यों के साथ **संचार** (communication) कर सकने के लिए कुछ विशेष साधन मौजूद होते हैं। कुछ संचार संकेत आत्म-रक्षा के लिए होते हैं। इस इकाई में आप अकॉर्डेटों के संदर्भ में विविध अनुचलनों तथा गतिताओं के विषय में, लयों, सामाजिक संघटनाओं, अनुरंजन एवं संचार व्यवहार तथा परजीवियों के व्यवहार के विषय में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अनुचलन तथा गतिता में विभेद कर सकेंगे,
- अंतर्जनित तथा बहिर्जनित जैविकीय लयों का स्पष्टीकरण कर सकेंगे,
- अकॉर्डेटों में संचार विधियों के विभिन्न प्ररूपों का वर्णन कर सकेंगे,
- अकॉर्डेट अपने साथियों एवं मैथुनियों को किस प्रकार आकर्षित करते हैं, इसके उदाहरण दे सकेंगे,
- जाति वर्ण व्यवस्था, श्रम-विभाजन तथा सामाजिक समूहों में रहने के लाभों का वर्णन कर सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार के परजीवियों में विभेद कर सकेंगे,
- परजीवी अनुकूलनों का विवेचन कर सकेंगे।

15.2 अनुचलन तथा गतिता

गतिशीलता प्राणियों की विशेषता है। पर्यावरण से प्राप्त होने वाले उद्दीपन इन गतियों को दिशा देते हैं। ये गतियां अनुचलन हो सकती हैं अथवा गतिता।

15.2.1 अनुचलन

चित्र 15.1 : शलभ का प्रकाश-स्रोत की ओर उड़ना/अनुचलन का एक उदाहरण है।

अनुचलन (taxis) एक दिशागत गति होती है, जिसमें प्राणी या तो उद्दीपन के स्रोत की ओर अथवा उससे विपरीत दिशा में गति करता है। प्राणी एक ऐसी रेखा में उन्मुख हो जाता है जो उद्दीपन के स्रोत और प्राणी के शरीर के लम्बे अक्ष में से होती चलती जाती है। अनुचलन को उस समय धनात्मक (positive) कहते हैं जब प्राणी की गति उद्दीपन की ओर की होती है तथा जब उससे दूर की दिशा में होती है तब उसे ऋणात्मक (negative) कहते हैं। अनुचलन एक व्यवहारात्मक अनुक्रिया होती है जो बदलती नहीं है। अनुचलन का एक सुपरिचित उदाहरण शलभ का है जो प्रकाश की ओर आकर्षित होते हुए उड़ता जाता है (चित्र 15.1)। इसी प्रकार भारी वर्षा के बाद केंचुए का मिट्टी की सतह पर प्रवास करना भी अनुचलन है अनुचलनों को प्राणि-सदृश प्रोटिस्टों में जैसे कि *अमीबा* तथा *पैरामीशियम* में सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है (चित्र 15.2)

अनुचलनों को उद्दीपन की प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। तालिका 15.1 में विविध अनुचलनों को लिया गया है जैसे कि तापानुचलन, प्रकाशानुचलन, धारानुचलन, विद्युतधारानुचलन, तथा गुरुत्वानुचलन।

तालिका 15.1: विभिन्न प्रकार के अनुचलन

उद्दीपन की प्रकृति	अनुचलन का नाम	अनुचलन का प्रकार (सकारात्मक + अथवा नकारात्मक –)	उदाहरण
तापमान	तापानुचलन	+ अथवा –	प्राणी विभिन्न ताप परासों में रहते हैं। अनुकूलतम परास 20-25°C है। असमतापी प्राणी अपने सहनीय तापमान परास के ऊपर अथवा उससे नीचे के तापमानों से बचते हैं।
प्रकाश	प्रकाशानुचलन	+	*हाइड्रा, मस्का* (घरेलू मक्खी), *रैनेट्रा* (एक जलीय कीट) प्रकाश की ओर चलते हैं।
		–	केंचुए, मच्छर, काकरोच, काष्ठ-जूँ प्रकाश से दूर जाते हैं।
यांत्रिक	स्पर्शानुचलन	+	आहार से सम्पर्क होने पर अधिकतर प्राणियों में सकारात्मक अनुचलन होता है।
		–	बाधाओं के सम्पर्क में आने पर परिहार प्रतिक्रिया होती है।
रसायन	रसानुचलन	+	आहार के रासायनिक घटकों की गंध से घरेलू मक्खियां उसकी ओर आकर्षित होती हैं; यही बात *हाइड्रा* की है।
		–	मच्छर, मच्छर प्रतिकर्षियों से बचते हैं। प्राणी हानिकर रसायनों के प्रति नकारात्मक अनुक्रिया करते हैं।
जल एवं पवन धाराएं	धारानुचलन	+	शलभ तथा तितलियां पवन धाराओं में उड़ते हैं
		–	स्वच्छंदजीवी चपटा कृमि *प्लैनेरिया* जलधारा के विपरीत चलता है।
विद्युतधारा	विद्युतधारानुचलन	+	हल्की विद्युतधाराओं के प्रति *हाइड्रा* प्रतिक्रिया करता है और ऐनोड की ओर मुड़ जाता हैं
गुरुत्व	गुरुत्वानुचलन	+	प्लैनुला नामक नाइडेरियन लार्वा समुद्र की तली की ओर तैरता है।
		–	जेली फ़िश के एफ़िरा लार्वा समुद्र की तली से दूर जाने की दिशा में तैरते हैं। ड्रोसोफ़िलिड (फल-मक्खी) गुरुत्व के विपरीत ऊपर को यानी जार के भीतर के सूखे हिस्सों की ओर उड़ती हैं।

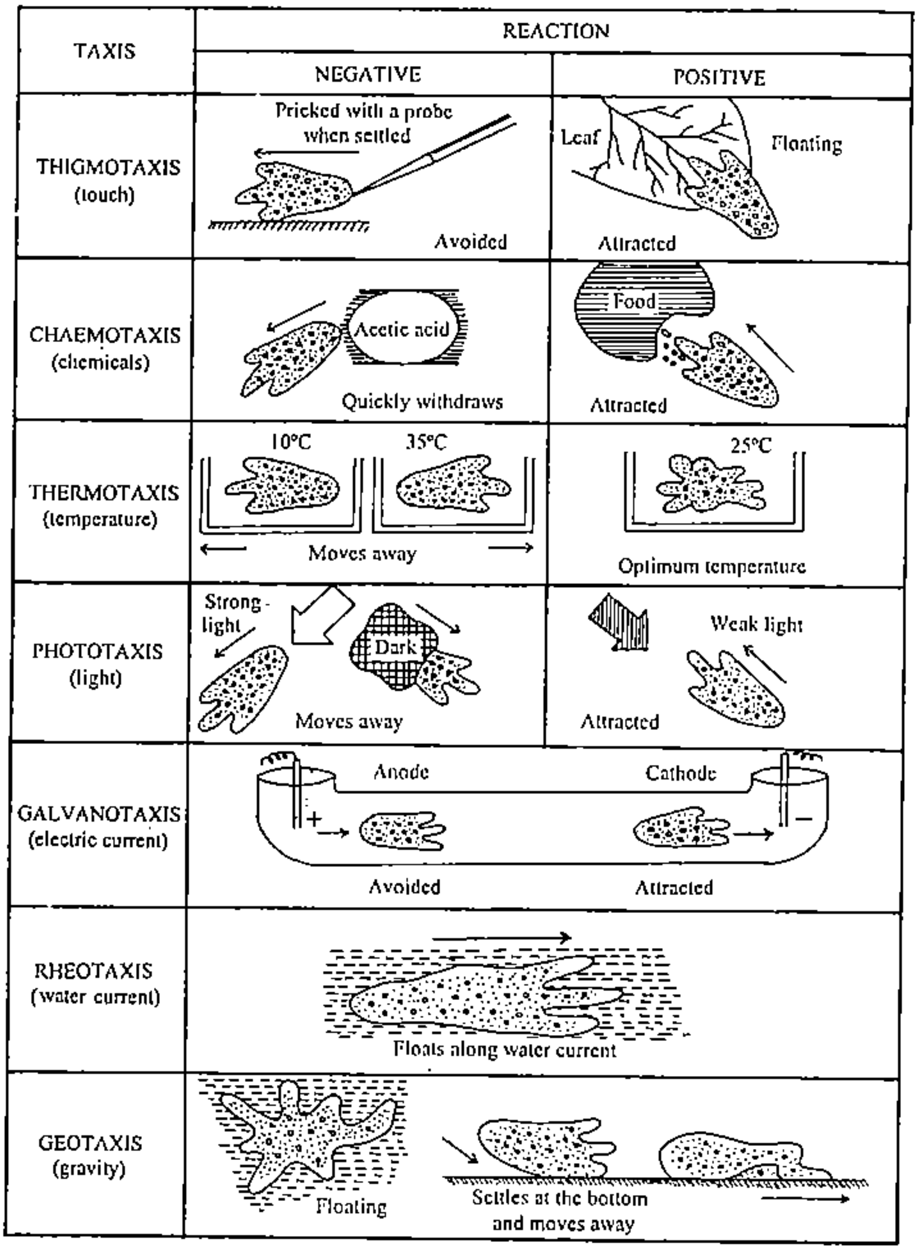

चित्र 15.2 : अमीबा के विभिन्न उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रियाएं, तीर के निशान गति की दिशा दर्शाते हैं।

15.2.2 गतिता

गतिता (kinesis) अदिशागत (non-directional) गति होती है। इसमें प्राणी का शरीर उद्दीपन-स्रोत के सापेक्ष दिशा अनुस्थापित नहीं होता, परंतु उद्दीपन की तीव्रता के साथ उसकी गति की चाल-दर बदलती है। हाइड्रा अपने स्पर्शकों को आहार की खोज में यादृच्छिक रूप में गति करता रहता है, परंतु यदि आहार स्पर्शकों के समीप रखा जाता है तब वह उन्हें ज़्यादा तेज़ी से गति कराता है।

यदि काष्ठ जूँ *पोरसेलिओ स्कैबर* (*Porcellio scaber*) को रहने के लिए आर्द्र और शुष्क क्षेत्रों का विकल्प दिया जाए तो वे धीरे-धीरे आर्द्र क्षेत्रों में एकत्रित होने लग जाती है। उनमें ऐसा दिशा-निरपेक्ष गति के कारण होता है। दूसरे शब्दों में वे आर्द्र क्षेत्र नहीं ढूंढतीं बल्कि उनकी गति यादृच्छिक होती हैं। यहां होता है कि शुष्क क्षेत्रों में उनकी गति तीव्र हो जाती है मगर जब वे आर्द्र क्षेत्रों में आ जाती हैं तो उनकी गति धीमी हो जाती हैं। तीव्रता से यादृच्छिक गतियों के होने का अर्थ है एक ऐसा प्रयास जिसके द्वारा अनुकूलतम परिस्थितियां ढूंढी जाती हैं। एक बार जब वे आर्द्र क्षेत्रों में पहुंच जाती हैं तब उनकी चाल धीमी पड़ जाती है और वे वहीं जम जाती है (चित्र 15.3)।

चित्र 15.3 : काष्ठ जूं में गतिता

बोध प्रश्न 1

1. अनुचलन किसे कहते हैं ?

....

....

2. गतिता किसे कहते हैं ?

....

....

3. निम्नलिखित अनुचलनों के लिए क्या-क्या शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं ?

(i) प्रकाश की ओर होने वाली गति

....

(ii) विद्युत्धारा से दूर की ओर को होने वाली गति

....

(iii) गुरुत्व के प्रति अनुक्रिया के कारण गति

....

15.3 जैविकीय तालें

ऐसे अनेक व्यवहार क्रिया-कलाप हैं जिन्हें प्राणी नियमित समय-अंतरालों पर करते रहते हैं। अधिसंख्य प्राणी दिन के समय सक्रिय रहते और रात को विश्राम करते हैं (दिवाचर, diurnal), जबकि कुछ अन्य प्राणी जैसे कि कॉकरोच रात के अंधियारे में सक्रिय रहते और दिन को आराम करते हैं (रात्रिचर, nocturnal) इसी प्रकार के चक्रीय नियमितता से होने वाले व्यवहार क्रिया-कलापों को जैवताल (biorhythm) कहते हैं।

कुछ ऐसे ही क्रिया कलापों, जिसमें तालबद्ध दोलन होते हैं, अशन, मैथुन, अण्डे देना, प्यूपा में से कीट का निकलना, प्रवास व्यवहार आदि है। तालबद्ध क्रियाकलापों का प्रकृति के चक्रों के साथ समन्वय होता है जैसे कि रात और दिन के चक्र, वार्षिक ऋतुएं, एक चंद्रोदय से दूसरे चंद्रोदय का चांद्र-चक्र। इस प्रकार की तालबद्ध सक्रियता प्रतिकूल पर्यावरण कारकों से बचाने तथा

अनुकूल कारकों का भरपूर उपयोग करने के लिए है। उदाहरणतः मधुमक्खियों तथा अन्य दिवाचर कीटों के लिए जैसे कि तितलियो के लिए, दिन में ही सक्रिय रहना लाभकारी होगा क्योंकि जिन फूलों पर वे जाते हैं वे दिन में ही खिलते हैं, ताकि वे उनसे मकरंद तथा पराग एकत्रित कर सकें। इस प्रकार जीवों ने अपनी-अपनी तालें विकसित कर ली हैं जो उनके क्रिया-कलापों का पर्यावरणीय तालों के साथ समन्वय बनाती हैं। दैनिक तालें जैसेकि अशन, पायन और निद्रा लगभग 24 घंटों के चक्र का अनुसरण करती हैं तथा इन्हें **दिवसप्राय** (circadian, अर्थात् लगभग एक दिन) कहते हैं। अनेक वेलांचली समुद्रतटीय प्राणी उस समय सक्रिय हो जाते है जब ज्वार नीचे उतरकर उन्हें पानी से बाहर छोड़ देता है। इसे **ज्वारीय ताल** (tidal rhythm) कहते हैं, जैसे फिडलर केकड़ा निम्न ज्वार पर अपने बिलों में से बाहर निकल आता है। कुछ अंतराज्वारीय घोंघें बहुत ऊंचे ज्वारों पर अपने अंडे विमोचित करते हैं, ये ऊंचे ज्वार हर दो महीने बाद आते हैं। पैलोलो कृमि (palolo worm) तथा कुछ अन्य पौलीकीट ऐनेलिडों में चांद्र ताल पायी जाती है। ये कुछ ख़ास चांद प्रावस्थाओं में समुद्र की सतह पर आते हैं और अण्डे देते हैं। कुछ अन्य प्राणी वर्ष में एक बार अनुरंजन व्यवहार दर्शाते, संगम करते तथा जनन करते हैं (**वर्षप्राय ताल** circannual rhythm)। अनेक प्राणी वर्ष में दो बार प्रजनन स्थलों की ओर तथा वहां से वापिस प्रवास यात्राएं करते हैं। अनेक कीट अथवा उनकी अवस्थाएं शीत ऋतु में, जब जलवायु अनुकूल नहीं होती, एक प्रसुप्तावस्था अथवा डायापौज़ (diapause) में चली जाती हैं। उदाहरणतः *ईडीस* मच्छर के अण्डे, मांस मक्खी (*सार्कोफ़ेगा Sarcophaga*) के लार्वे तथा कुछ ड्रैगनफ़लाई निम्फ़ शीतकाल में डायापोज़ में चले जाते हैं। ये जैवतालें व्यवहार-क्रियाकलाप हैं, जो नियमित अंतरालों पर हुआ करते हैं।

15.3.1 जैवतालों का नियंत्रण

कुछ क्रियाकलापों को नियमित अंतरालों पर होते रहने के लिए किसी न किसी बाहरी उद्दीपन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की जैवतालों को **बहिर्जात तालें** (exogenous rhythms) कहते हैं। ऐसे तालबद्ध क्रियाकलापों का प्रमुख नियमनकारी बाह्य कारक **दीप्तिकाल** (photoperiod) अर्थात दिन अवधि (यदि दीप्त घंटों) तथा रात (यानी अदीप्त घंटों) की आपेक्षिक लम्बाई होती है। तापमान तथा आर्द्रता भी ऐसे ही अन्य कारक हैं जो प्राणियों की तालों पर नियंत्रण कर सकते हैं। पैलोलो कृमि वर्ष के अंतिम चांद्र चतुर्थांश के पहले दिन वृंदन एवं संगम करते हैं। इस क्रिया-कलाप को चालू कर देने में चांद्र चक्र बहिर्जात कारक है।

मगर लगभग सभी यूकेरियोटों में एक आंतरिक जैविक घड़ी भी होती है, जो यदि पर्यावरणीय संकेत न हो तो भी समय के बीतते जाने को पहचानती जाती है। जीव के भीतर जैविक घड़ी के द्वारा नियंत्रित होने वाली व्यवहार क्रियाओं को **अंतर्जात तालें** (endogenous rhythms) कहते हैं। अनेक थलीय कीटों का व्यवहार प्रकाशकाल से संबंधित अंतर्जात तालों द्वारा नियंत्रित होता जान पड़ता है। *ड्रोसोफ़िला* अपने प्यूपों में से सदैव उषा काल में ही निकला करती है। कीटों में सामान्यतः एक भीतर ही भीतर बनी जैविक घड़ी होती है। इन जैवतालों में सर्वाधिक सामान्यतः पायी जाने वाली तालें दिवसप्राय अर्थात दिवाचर तालें होती हैं और वे अंतर्जात जैविक घड़ियों द्वारा नियंत्रित होती हैं।

आप किस प्रकार पहचानेगें कि प्राणियों द्वारा प्रदर्शित कोई ताल बहिर्जात है या कि अंतर्जात? उदाहरणतः कॉकरोच रात्रिचर होते है वे रात होते ही सक्रिय हो जाते हैं, तथा भोर होते-होते अपने क्रियाकलाप रोक देते हैं। प्रश्न है कि क्या यह ताल बहिर्जात है (यानी इस मामले में क्या बाहर के अंधियारे से नियंत्रित हो रही है) या कि उसकी स्वयं अपनी भीतरी घड़ी के द्वारा? इसका एक आसान तरीका यह है कि कॉकरोचों को या तो निरंतर अंधेरे में रख दिया जाए या निरंतर प्रकाश में। तब आप देखेंगे कि चाहे सतत अंधेरे में रखे गए हों या सतत प्रकाश में लगभग 24 घंटों की कालिकता अथवा ताल ही दर्शाते हैं। इससे पता चलता है कि इनमें अंतर्जात ताल होती है, जो बाहर की प्रकाशमय अथवा अंधेरे की दशाओं से स्वतंत्र होती हैं।

15.3.2 जैविक घड़ी

जैविक घड़ियां ऐसी भीतरी क्रियाविधियां होती हैं जो समय के मापन का एक साधन प्रदान करती हैं। ये भीतरी घड़ियां प्रकृति की चक्रीय घटनाओं के साथ मिलायी गयी होती हैं जैसे कि रात और दिन, ऋतुओं के दौरान तापमान में परिवर्तन, उच्च तथा निम्न ज्वार (समुद्री जीवों के संदर्भ में), आदि। इसी के अनुसार प्राणियों में अशन व्यवहार, निद्रा एवं विश्राम अथवा प्रवास (प्रवासी प्राणियों के मामले में) होते पाए जाते हैं जो भीतरी घड़ी द्वारा नियंत्रित होते हैं। इस प्रकार किसी जैविक घड़ी का होना अधिकतर जीवों के लिए एक आवश्यकता है।

जैविक घड़ी का संरोहण और उसका स्वयं चलते रहना

जैविक घड़ी स्वायत्त होती तथा अपने समय-द्योतक गुणधर्म में कोई घट-बढ़ नहीं करती। परंतु यदि पर्यावरण चक्र बदल जाता है जैसे कि तब होता है जब जब प्रवास के दौरान प्राणी लम्बी-लम्बी दूरियां तय करके अन्यत्र पहुंच जाते हैं या तब जबकि प्रयोग उद्देश्यों के लिए प्राणियों को अन्य महाद्वीपों में ले जाया जाता है, भीतरी घड़ी उस नए स्थान में चल रही बाह्य घड़ी के साथ मिला ली जाती है। तब कहा जाता है कि जैविक घड़ी मिला ली गयी है जिसे **संरोहण** (entrained) कह सकते हैं। संरोहण किसी घड़ी को सही समय के साथ मिलाए जाने के समान है ताकि उसके द्वारा गलत समय पर गलत संकेत न मिलें। दूसरे शब्दों में जैविक घड़ी को पर्यावरण चक्र के साथ मिलाया जाना संरोहण होता है। एक बार जैविक घड़ी सेट हो जाने के बाद यदि पर्यावरण दशाएं सहसा बदल जाएं तब भी वह कुछ समय उसी सेट किए समय के अनुसार चलती रहती है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे-वैसे जैविक घड़ी पुनः सेट होती रहती अर्थात संरोहित हो जाती है तथा नयी पर्यावरण दशाओं के साथ सम-प्रावस्था में आ जाती है।

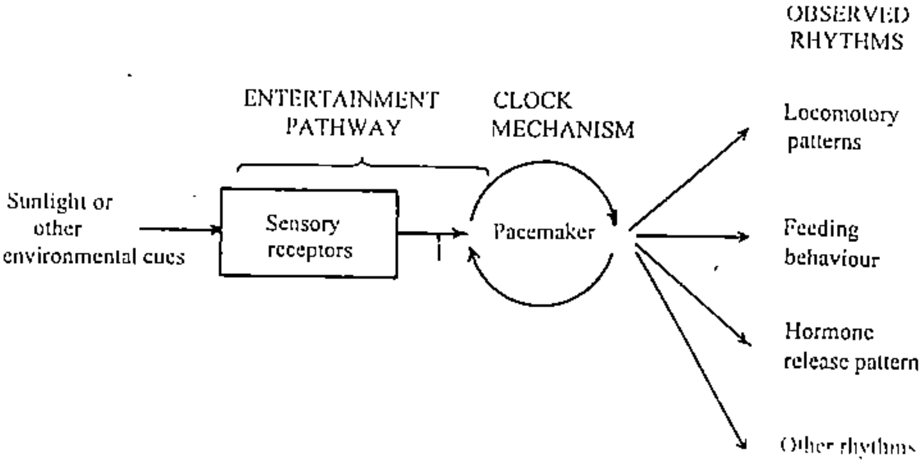

चित्र 15.4 : कुछ स्पीशीज़ में एक मास्टर घड़ी पेसमेकर की तरह काम करती है जो जीव की दिवसप्राय ताल के नियंत्रण करने वाली कई अन्य घड़ियों का नियमन करती हैं।

यदि प्राणियों को पर्यावरण प्रभावों से पृथक कर दिया जाए तब चक्र 24 घंटे की ताल पर नहीं बना रहता। उदाहरणतः कॉकरोच रात्रिचर है मगर यदि उन्हें सतत अंधेरे में रखा जाए तब उनके ताल क्रियाकलाप जारी तो रहते हैं मगर 24 घंटे के चक्र की बजाए उनमें थोड़ी सी भिन्न जैसे कि 23.8 घंटों का चक्र बन जाता है। चक्र का यह गुणधर्म जिसमें ठीक 24 घंटे का समय सारणी थोड़ी सी कम अथवा थोड़ी सी ज़्यादा हो जाती है, **जैविक घड़ी का मुक्त चालन** कहा जाता है। उस स्थिति में जब प्राणी को पर्यावरण चक्र से पृथक करके स्थिर दशाओ में रखा जाता है तब मुक्त चालन काल भीतरी घड़ी का आवर्ती चक्र होता है।

ज़ाइटगेबर

जैविक घड़ी के संरोहण कारी पर्यावरण उद्दीपन को *ज़ाइटगेबर* (*Zeitgeber*) कहते हैं (जर्मन भाषा में "ज़ाइट"=समय, "गेबर"=देने वाला)। प्रकाश, तापमान तथा ज्वार महत्वपूर्ण ज़ाइटगेबर हैं। अनेक पर्यावरण कारकों को ज़ाइटगेबरों की तरह काम करते दर्शाया जा चुका है (चित्र 15.4)।

जैविक घड़ी कहां स्थित होती है?

शोधकर्त्ताओं ने जैविक घड़ी को तंत्रिका तंत्र में स्थित देखने की कोशिश की है। लेकिन वह क्या चीज़ है जिससे ये तालें पैदा होती हैं, अभी तक ज्ञात नहीं है। काकरोचों तथा फल-मक्खियों पर किए गए कुछ प्रयोगों से ऐसा माना जाता है कि ताल का आरम्भ मस्तिष्क की दृक्पालियों (optic lobes) में होता है। अतः इन जीवों में दृक् पालियां जैविक घड़ी के पेसमेकर हैं (चित्र 15.5)।

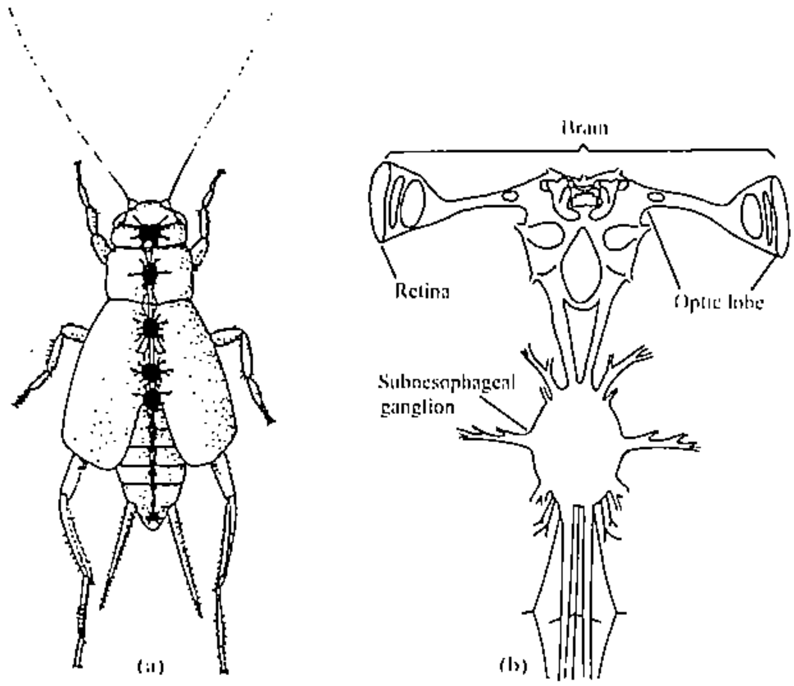

चित्र 15.5 : झींगुर में तंत्रिका तंत्र। दृश्य सूचना आगे मस्तिष्क की दृक् पालियों में पहुंचा दी जाती है। यदि दृक् पालियों को शेष मस्तिष्क से शल्य द्वारा वियोजित कर दिया जाए तो झींगुर की दिवसप्राय ताल को बनाए रखने की क्षमता समाप्त हो जाती है।

जैविक घड़ी की प्रकृति

जैविक घड़ी जैवरायासनिक प्रकृति की होती जान पड़ती है। यह जैवरासायनिक क्रियाविधि न तो ठंडे मौसम में धीमी हो जाती है और न ही गर्म दिनों में तीव्र हो जाती है, और ऐसा होना इस तथ्य के बावजूद है कि शीत-रक्तीय अथा असमतापी प्राणियों में हर 10°C के बढ़ जाने पर जैवरासायनिक क्रियाकलाप दोगुने हो जाते हैं। भीतरी घड़ियों पर बदलती तापमान परिस्थितियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार जैविक घड़ियों को तापमान क्षतिपूर्तित (temperature compensated) कहा जाता है।

जैविक घड़ियों की विशिष्टताएं

1. जैवताल अथवा जैविक घड़ी में आवर्ती इकाइयां होती हैं जिन्हें सक्रियता एवं विश्राम, निद्रा तथा जाग्रतता, आदि के चक्र कहा जाता है।
2. प्रत्येक चक्र एक विशिष्ट समय काल का होता हैं
3. इसमें शिखरें और गर्त होते हैं, यानी अधिकतम सक्रियता की प्रावस्था के बाद निम्न सक्रियता की प्रवस्था आती है।
4. तालों को तापमान क्षतिपूर्तिक कहा जाता है। अर्थात ताल (जैविक घड़ी) एक ही समय बनाए रखती है भले ही बाहर का तापमान बढ़ता हो या घटता हो।
5. उपापचयी संदमक जैविक घड़ियों अथवा जैव तालों को प्रभावित नहीं करते।

बोध प्रश्न 2

1. जैवताल की परिभाषा लिखिए।

....

....

2. कॉलम I में दिए गए शब्दों को कॉलम II में दिए गए शब्दों अथवा कथनों में मिलाइए

कॉलम I	कॉलम II
(i) दिवसप्राय ताल	(क) दीप्त घंटे
(ii) प्रकाशकाल	(ख) सतत अंधेरे में ताल
(iii) ज़ाइटगेवर	(ग) समुद्री अकशेरुकी
(iv) चांद्र ताल	(घ) पर्यावरण उद्दीपन जो जैविक घड़ी को सेट करते हैं।
(v) मुक्त चालन	(च) पृथ्वी के घूर्णन का 24 घंटे का चक्र

3. बहिर्जात तथा अंतर्जात ताल में क्या अंतर है?

....

4. जैविक घड़ी के संरोहण (entrainment) का क्या अर्थ है?

....

5. वह कौन सा अंग-तंत्र है जो जैविक घड़ी को नियंत्रित करता जान पड़ता है?

....

15.4 संचार व्यवहार

प्राणियों को अपनी ही स्पीशीज़ के सदस्यों और साथ ही अन्य स्पीशीज़ के सदस्यों के साथ अन्योन्य क्रियाएं करनी होती हैं। इस परस्परक्रिया में कारगर संचार विधियों की आवश्यकता होती है। इस तरह प्राणियों में तरह-तरह की संचार विधियां विकसित हो चुकी हैं। सामाजिक व्यवहार दर्शाने वाले प्राणियों में संचार व्यवहार श्रेष्ठतः विकसित हो गया है। यद्यपि संचार की अनेक परिभाषाएं हैं, फिर भी हमारे अपने उद्देश्य के लिए दो जीवों के बीच होने वाले संचार के लिए नीचे दी जा रही परिभाषा स्वीकार्य हो सकती है।

कोई भी ऐसी क्रिया जो एक व्यष्टिगत जीव करता हो तथा जिससे एक अन्य जीव के व्यवहार प्रतिरूप में कोई परिवर्तन आ जाता हो जैविकीय संचार कही जाती है। यह क्रिया एक प्राणी से दूसरे प्राणी के लिए निकले संकेत के रूप में होती है और इस संकेत का प्रेषक सामान्यतः प्राप्तकर्ता की अनुक्रिया से लाभ प्राप्त करता है।

मनुष्य सामान्यतः शब्दों से रची गयी भाषा के द्वारा संचार करता है। शब्दों को असंख्य रूप में पुनर्व्यवस्थित करके नानाविध सूचनाएं तैयार की जाती हैं। मनुष्य को छोड़कर अन्य प्राणियों की भाषा संकेतों के रूप में होती है। परस्पर रूप में पहचाने जा सकने वाले संकेत दृष्टिगत, श्रवणगत, स्पर्श अथवा रसायन प्रकृति के होते हैं। संकेतों का व्यष्टियों के बीच आदान-प्रदान

होता है और इससे एक-दूसरे का व्यवहार प्रभावित होता है। एक संकेत से एक या एक से अधिक सूचनाएं भेजी जा सकती हैं।

संकेतों के प्ररूप तथा उनके उद्देश्य

संचार संकेत चार प्रकार के हो सकते हैं :-

1. **दृश्य** (visual) -- इन्हें देखकर पहचाना जा सकता है।

2. **यांत्रिक** (mechanical) -- जिन्हें स्पर्श संवेद के द्वारा पहचाना जा सकता है।

3. **श्रवण** (auditory) -- ये विभिन्न आवृतियों वाले ध्वनि संकेत होते हैं जो अलग-अलग संदेश पहुंचाते हैं।

4. **रासायनिक** (chemical) -- ये संकेत स्रावों के कारण होते हैं। इस स्रावों में फ़ीरोमोन शामिल हैं।

संकेतों को विविध सूचनाओं के संचार में उपयोग किया जाता है। ये सूचनाएं इन तीन बातों से संबंधित हो सकती हैं :--

(I) आहार की उपलब्धता

(II) परभक्षियों से सुरक्षा की आवश्यकता

(III) मैथुन साथियों की उपलब्धता

प्राणी एक ही संचार धारा को एक से अधिक उद्देश्यों के लिए उपयोग में ला सकता है। उदाहरणतः अनेक मकड़ियां अपने जाल-कम्पनों के द्वारा, जाल में फंस गए शिकार के प्रति अनुक्रिया करती हैं। जाल कम्पनों के ही द्वारा अपने हो सकने वाले मैथुनियों से संचार करती हैं। कूदने वाली मकड़ियां अपने शिकार की घात में एवं उसे दबोचने में दृश्य संकेतों का इस्तेमाल करती हैं। वे संकेतों को अनुरंजन के लिए भी इस्तेमाल करती हैं। प्रदर्शन के सभी संकेत व्यवहार प्रतिरूप होते हैं जो विकास क्रम के द्वारा स्थापित होकर संचार के लिए कारगर हो गए हैं। इसे विधिवध व्यवहार (ritualisation) कहा जाता है। विधिवध व्यवहार के द्वारा सरल गतियां अथवा लक्षण अधिक तीव्र हो जाते हैं तथा सुव्यक्त एवं सुस्पष्ट हो जाते हैं और उनका मूल अविभेदित कार्य एक संकेत मूल्य प्राप्त कर लेता है।

संचार व्यवहार अक्सर नियमित क्रमों में हुआ करता है। ये क्रम अपरिवर्तनीय हो जाते हैं और तब इन्हें **नियत क्रिया प्रतिरूप** (fixed action patterns) कहा जाता है। अधिकतर अपरिवर्तनीय संकेत अनुरंजन तथा क्षेत्रीयता के लिए होते हैं।

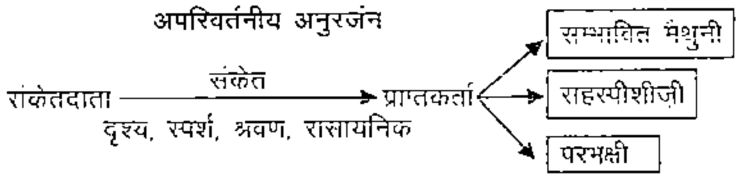

संकेत का अर्थ

1. प्रेषक संगम के लिए तैयार

2. प्रेषक चिंतित है परभक्षी दिख रहा है

3. शिकार अथवा भोजन निकट है

4. परभक्षी, सचेत हो जाओ, प्रेषक हानिकारक है

5. यह प्रेषक का क्षेत्र है, इसलिए अतिक्रमणकारी को भाग खड़ा होना है।

15.4.1 दृश्य संकेत

अकशेरुकियों में शरीर की मुद्रा तथा प्राणि के रंग प्रतिरूप दो मुख्य दृश्य संकेत होते हैं। सामान्यतः मौलस्कों तथा आर्थोपोडों में सुविकसित आंखें होती हैं। इनकी कारगर आंखें एवं सुविकसित तंत्रिका तंत्र दृश्य संकेतों में विभेद कर सकते हैं। अतः ये प्राणी दृश्य संकेतों से बहुत कुछ संचार करते हैं। इनमें से अनेक प्राणी आकृतियों तथा गतियों में विभेद कर सकते हैं।

रात्रिचर प्राणियों तथा गहरे समुद्र के निवासियों में दृश्य संकेतों द्वारा संचार प्रकाश कौंधों अथवा जैवसंदीप्ति (bioluminescence) तक ही सीमित होते हैं (चित्र 15.6 a,b)।

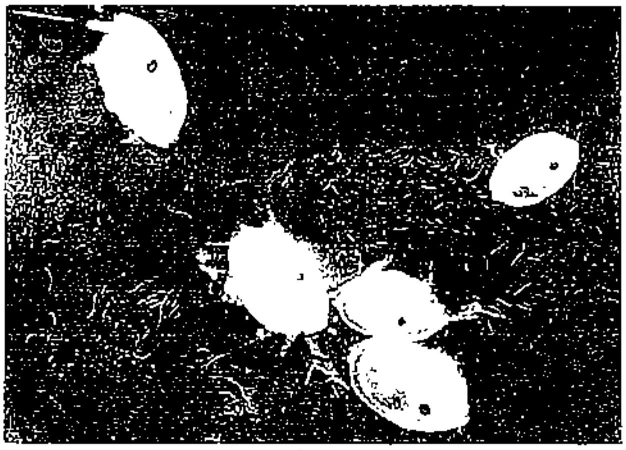

(a)

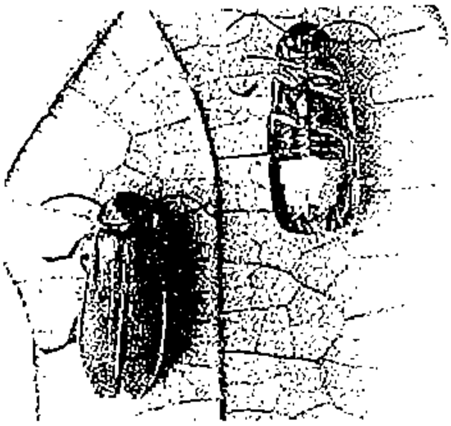

(b)

चित्र 15.6 : जैवसंदीप्त अकशेरुकी: (a) *सिप्रिडाइना* (क्रस्टेशियन), (b) जुगनू जो वास्तव में एक बीटल होता है। प्रकाश-कोशिकाओं से युक्त सफ़ेद उदर खण्डों में प्रचुर ट्रैकियोलों द्वारा ऑक्सीजन की आपूर्ति होती हैं। Mg आयनों तथा एंज़ाइम ल्यूसिफ़रेज़ की उपस्थिति में ऑक्सीजन ल्यूसिफ़ेरिन + ATP का ऑक्सीकरण करती है।

संकेत मुख्यतः निम्नलिखित के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं :–

(i) परभक्षी को डराने के लिए

(ii) शिकार को फुसलाने के लिए

(iii) मैथुनी को आकर्षित करने के लिए

दृश्य संकेतों का एक लाभ यह है कि यदि प्रापक संकेत को देख लेता है तो प्रेषक को तुरंत पहचान लिया जाता है कि वह कहां है। परंतु दृश्य संकेत रात में इस्तेमाल नहीं किए जा सकते, हां जैवसंदीप्ति इसका अपवाद है। ये संकेत अनेक भौतिक अवरोधों को पार नहीं कर सकते जैसा कि अन्यथा श्रवण एवं रासायनिक संकतों में हो सकता है। एक अन्य बड़ी कमी यह है कि इसका प्रेषक अपने परभक्षी द्वारा आसानी से पहचान लिया जाता हैं

चित्र 15.7: शलभ के पंखों पर बने दृक् बिंदु।

अकशेरुकियों में दृश्य संकेतों के द्वारा संचार के अनेक उदाहरण हैं जो यहां आपकी जानकारी के लिए सूचीबद्ध किए जा रहे हैं और आप स्वयं भी इसमें और बहुत से उदाहरण जोड़ सकते हैं।

1. परभक्षी को चौंकाने के लिए; कुछ शलभ (मॉथ), अपने पिछले पंखों पर बने आंख जैसे निशानों का उपयोग करते हैं (चित्र 15.7)।

2. "स्वालो-टेल" तितली की इल्ली (कैटरपिलर) पर बने बड़े रंगदार दृक् बिंदुओं से एक सांप के शीर्ष जैसी शक्ल प्रदान होती है (चित्र 15.8) जिससे परभक्षी डर जाता है।

3. *क्रीमैटोगैस्टर* चींटी अपने उदर को ऊपर को मोड़कर एक चेतावनी देती हुई सुरक्षा मुद्रा अपना लेती है जिसके द्वारा अपने परभक्षी को अपने विषैले डंक के होने के चेतावनी भरे संकेतों को प्रेषित करती है (चित्र 15.9)।

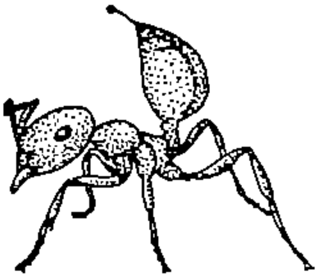

त्र 15.9: *क्रीमैटोगैस्टर* की चेतावनी एवं सुरक्षा मुद्रा

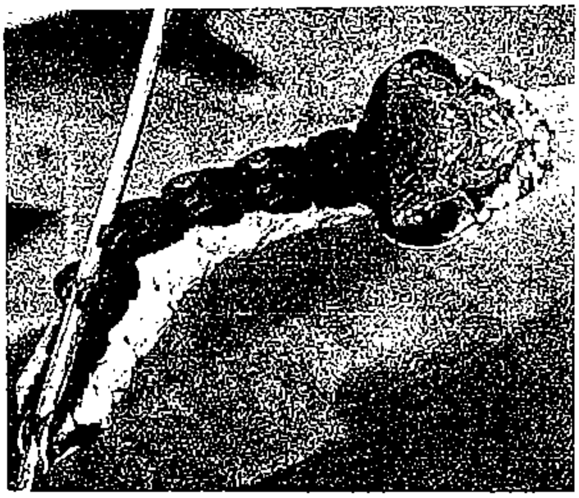

चित्र 15.8 : सर्प शीर्ष कैटरपिलर

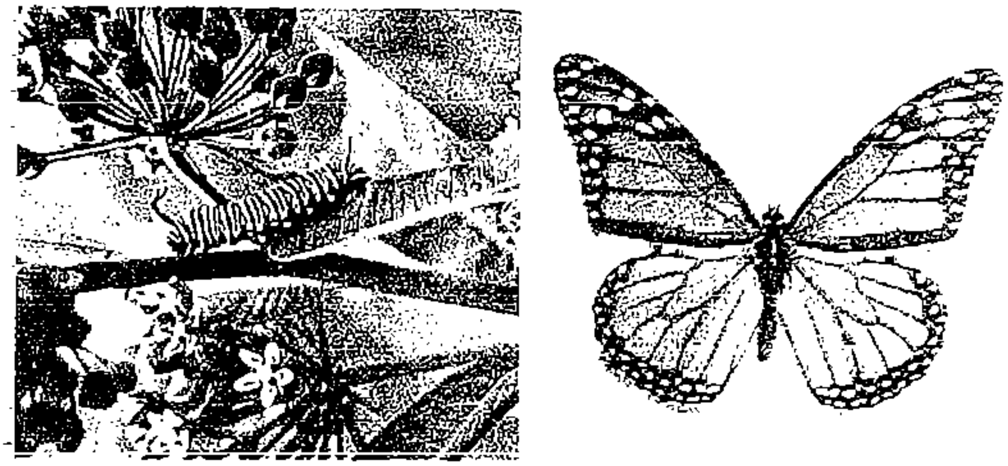

चित्र 15.10 : मोनार्क तितली का लार्वा तथा वयस्क जिनमें ऐपोसीमैटिक (अपसचेतक) रंग-व्यवस्था दिखायी गयी है जो उनके शरीर के भीतर हृद् ग्लाइकोसाइडों की उपस्थिति की परभक्षियों को चेतावनी देती है।

4. मोनार्क तितली *डैनेअस* (*Danaus*) और उसका कैटरपिलर चटकीले रंगों के होते हैं। ये चटकीले रंग परभक्षियों को दूर रखते हैं क्योंकि वे इन तेज़ रंगों का उनके भीतर विषैले हृद् ग्लोइकोसाइडों की उपस्थिति के साथ जोड़ लेते हैं। (चित्र 15.10)

5. प्रवाल स्क्विड *सीपियोट्यूथिस सीपिऑयडिया* (*Sepioteuthis sepioidea*) अपने वर्णकधरों (choromatophores) में परिवर्तन करके इस प्रकार के रंग प्रतिरूप बना लेता है और उसी के साथ-साथ अपने शरीर की मुद्रा एवं स्पर्शकों की स्थिति भी ऐसी बना लेता है कि परभक्षी को चेतावनी मिल जाती है कि दूर ही रहो।

6. क्रस्टेशियन *सिप्रिडाइना* (*Cypridina*) (चित्र 15.6 a) रात में आहार करने निकलता है और जैवसंदीप्ति पदार्थों (*ल्यूसिफ़ेरिन*) को जल में छोड़ता है। जैवसंदीप्ति शिकार को आकर्षित करती है।

7. पोलीकीट *ओडॉण्टोसिलिस* (*Odontosyllis*) की मादा अपने संगम काल के दौरान लगातार हरा प्रकाश छोड़ती रहती है। प्रकाश के घेरे नर कृमियों को आकर्षित करते हैं। बदले में वे भी बीच-बीच में प्रकाश कौंध निकालते हुए जवाब देते हैं। अण्डे और शुक्राणु जल में छोड़ दिए जाते हैं जिससे निषेचन होता है।

8. *फ़ोटिनस* (*Photinus*) जीनस के नर और मादा जुगनूओं में जैवसंदीप्ति अंग होते हैं (चित्र 15.6 b)। इनसे प्रकाश-कौंधे निकलती हैं जो मैथुन के लिए दृष्टि संकेतों का कार्य करते हैं।

दृश्य संचार में धोखा देना

रंग व्यवस्था तथा अनुहरण (mimicry) परभक्षी विरोधी व्यवहार प्रतिरूप हैं। *कैलिमा* (*Kallima*) नामक "मृत पर्ण तितली" (dead leaf butterfly) इसका एक उदाहरण है। यह तितली विश्राम करते समय अपने पंखों को ऊपर को मोड़ लेती और एक सूखी पत्ती के जैसी दिखायी पड़ती है और इस प्रकार यह एक पत्ती का स्वांग (अनुहरण) कर लेती है (चित्र 15.11)।

(a) (b)

चित्र 15.11 : (a) *कैलिमा* जब अपने पंखों को ऊपर को मोड़ लेती है जब एक सूखी पत्ती के जैसी दिखायी पड़ती है (a) इसके पंखों पर बनी रेखाएं पत्ती की शिराओं का आभास देती हैं; (b) *कैलिमा* का खुले पंखों की स्थिति में एक परिरक्षित नमूना।

पर्ण कीट (leaf insect) हरे रंग का तथा पत्ती की आकृति का होता है; चित्तीदार पर्ण कैटिडिड (leaf katydid) उन पत्तियों के जैसा दिखायी देता है जिन पर वह आहार करता है; "स्टिक इंसेक्ट" यानी यष्टिकीट उस डाल या टहनी जैसा दिखायी पड़ता है जिस पर वह बैठा होता है (चित्र 15.12 तथा b)। अनुहरण के और भी बहुत से उदाहरण हैं। ये कीट अपने को इस प्रकार दिखाते हैं मानों ये अखाद्यशील हों अथवा निर्जीव वस्तुएं हों। धोखा देने वाले दृष्टि संकेत इन कीटों को उनके परभक्षियों से बचाते हैं।

कुछ जैवसंदीप्त जुगनू तो दृश्य संकेतों के द्वारा अपने शिकार को धोखा तक देते हैं (यह शिकार किसी अन्य जीनस के जुगनू हो सकते हैं) उदाहरणतः *फ़ोट्यूरिस (Photuris)* जुगनू की परभक्षी मादा, *फ़ोटिनस (Photinus)* स्पीशीज़ के नर जुगनुओं द्वारा छोड़े जाने वाली प्रणय कौंधों का

जवाब देती है। यदि वह उस दूसरी स्पीशीज़ के नर को आकर्षित करने में सफल हुई तो उसे दबोच लेती और मार कर खा जाती है।

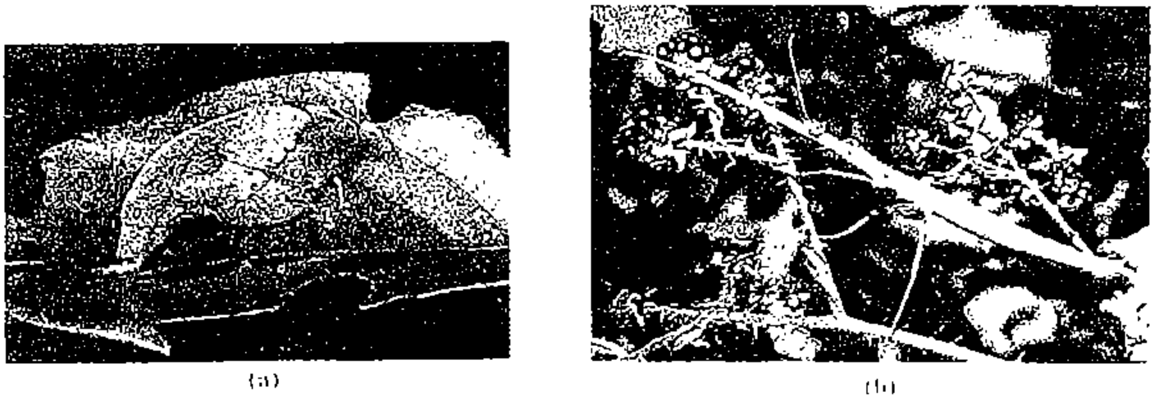

चित्र 15.12 : (a) चित्तीदार पर्ण कैटिडिड ठीक उस पत्ती के जैसा होता है जिस पर वह बैठा होता है, (b) यष्टि कीट (स्टिक इंसेक्ट) तो मुश्किल से ही दिखायी पड़ता है। इस कीट के शरीर पर बने उन कांटों को देखिए जो उस पेड़ के कांटों जैसे ही हैं जिन पर वह बैठा होता है

15.4.2 यांत्रिक संकेत

संचार के यांत्रिक संकेतों में एक तो स्पर्श संकेत आते हैं जिनमें संचार स्पर्श द्वारा होता है और दूसरे श्रवण अथवा ध्वनि संकेत आते हैं जिनमें ध्वनि को या तो पंखों की गति से या विशिष्ट घर्षण-ध्वनि अंगों (stridulatory organs) द्वारा पैदा किया जाता है।

स्पर्श संकेत का एक अच्छा उदाहरण *फॉर्मिका* चींटी के लार्वो का आहार याचना व्यवहार होता है। जब कभी किसी वयस्क कर्मी चींटी के मुखांग अथवा ऐंटेना छू जाते हैं तो लार्वा अपने मुखांगों को कर्मी चींटी के शीर्ष और फिर मैंडिबलों से छुआने का प्रयत्न करता है मानो भोजन की याचना कर रहा हो। कर्मी तुरंत एक बूंद आहार उगलता है और उसे लार्वा को भेंट करता है। जब कोई वयस्क *फॉर्मिका* चींटी किसी अन्य कर्मी पर अपने ऐंटेना थपथपाती है तब यह संकेत होता है कि चलना-फिरना बंद करके खड़े रहो।

प्रेषक द्वारा भेजे जाने वाले श्रवण संकेत हवा में चलने वाली ध्वनि तरंगों द्वारा प्राप्तकर्ता तक पहुंचते हैं। विशेष ध्वनि-उत्पादक अंग तथा श्रवण अंग कीटों में आमतौर से पाए जाते हैं। ध्वनि-संकेत संकेतकर्ता की उपस्थिति के कारगर प्रदर्शन साधन होते हैं। इस प्रकार वे कई रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं जैसे अनुरंजन संगीत के रूप में; चेतावनी युक्तियों तथा क्षेत्रस्वामित्व के दावों के प्रदर्शन के लिए, आदि। ध्वनि आसानी से फैल सकती है और पैदा की जाने वाली ध्वनि की आवृति को बदल-बदलकर बहुत सी सूचनाएं भेजी जा सकती है। मगर ध्वनि संकेत से हानि यह है कि परभक्षी इसका फ़ायदा उठा लेते हैं। उदाहरणतः नर झींगुर जो संगीत निकालता है वह मादा को अपने बिल के भीतर आकर्षित करने के लिए होता है, मगर परभक्षी इस संगीत को सुनकर झींगुर की उपस्थिति का स्थान जान लेता है और उसे खा जाता है।

अकशेरुकियों में कीट वर्ग में बहुत कारगर ध्वनि संचार प्रणाली पायी जाती है। मधुमक्खियों की गूंज, झींगुरों की चिर-चिर, साइकेडाओं का जबर्दस्त शोर और रात में मच्छरों की भिनभिनाहट से हर कोई परिचित है। कीटों में ध्वनि का पैदा होना प्रायः घर्षण विधि से ही होता है जिसमें शरीर के दो भागों की विशेषीकृत सतहों को परस्पर रगड़ा जाता है जैसे कि वक्ष, उदर, और टांगों को। इसे घर्षण-ध्वनि (stridulation) कहते हैं। ध्वनि ग्रहण का काम रोम सदृश यांत्रिकग्राहियों (mechanoreceptors) द्वारा होता है जो ध्वनिपटहांगो (tympanal organs) से संबंध बनाए वितरित रहते हैं।

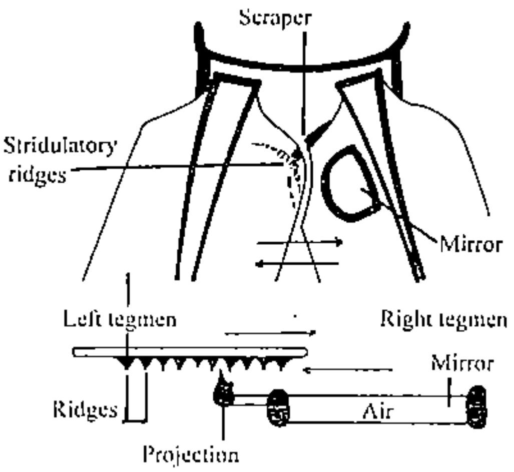

चित्र 15.13: झींगुर के घर्षणध्वनि अंग

दिन ढलते ही नर झींगुरों का अनुरंजन राग अलापना उनकी दैनिक दिनचर्या है। पंखों को इस प्रकार गति दी जाती है कि एक इलाइट्रॉन (अग्र पंख) के किनारे पर बना कटक एक "स्क्रेपर" (घर्षक) का रूप ले लेता है जो दूसरे इलाइट्रॉन (अग्र पंख) की निचली दिशा पर बनी एक दंतुर रेती पर रगड़ता है मानो वायोलिन के तारों पर कमानी चल रही हो और उससे विविध ध्वनि-प्रतिरूप पैदा होते हैं (चित्र 15.13)। हर स्पीशीज़ के अपने गायन प्रतिरूप अलग होते हैं और उनका अर्थ भी अपना-अपना विशिष्ट होता है। सर्वाधिक सामान्य गायन पुकार संगीत होता है ताकि लैंगिकतः ग्रहणशील मादाएं उसे पहचान कर एवं मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए उन नर झींगुरों के बिलों के भीतर जा सकें। एक बार युगल के मिल जाने के बाद अनुरंजन गान आरंभ होता है संगम के बाद नर झींगुर एक विजय गान गाता है।

ड्रोसोफ़िला की अनुरंजन गतियां तथा संगीत भी इसी प्रकार विशिष्ट होते हैं। नर मादा का स्पर्श करता और अपने पंख फैलाता है। जब यह अपने शरीर को गति देकर एक विशिष्ट ध्वनि पैदा करता है जिसे केवल उसी स्पीशीज़ की मादा ही अपने ऐंटेना से पहचान सकती है यदि मादा संगम के लिए तैयार नहीं होती तो वह अपने पंखों से भिनभिनाहट पैदा करती और नर पलटकर दूसरी तरफ़ चला जाता है।

15.4.3 रासायनिक संकेत

प्राणी कुछ ख़ास किस्म के रासायनिक यौगिकों का स्रवण करते हैं जो घ्राण (olfaction) यानी सूंघने के लिए संकेत होते हैं। इनका काम एक ही स्पीशीज़ के सदस्यों के बीच अथवा भिन्न स्पीशीज़ के बीच संचार स्थापित करना होता है। रासायनिक संकेत अनेक उद्देश्यों के लिए काम करते हैं। इनमें से कुछ संकेत सेक्स आकर्षकों के रूप में कार्य करते हैं, जैसे शलभों में। सामाजिक कीटों में रासायनिक संकेतन बहुत अच्छी तरह विकसित होता है और इसका उपयोग कई उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

रासायनिक संकेत पर्यावरण में विसरित हो जाते हैं और रसायनों की गंध कितनी तेज़ी से और किस दिशा में विसरित होगी यह हवा पर निर्भर होता है। मगर इसका लाभ इस बात में है कि चाहे छोटे-छोटे शलभ लम्बी दूरियों पर न तो देखे जा सकते हैं और न ही सुने जा सकते हैं, किंतु स्पीशीज-विशिष्ट रासायनिक अणु की गंध मैथुनी द्वारा कई-कई किलोमीटर दूर तक पहचानी जा सकती है। रासायनिक संकेत कायम बने रहते हैं और इनके प्रेषक के दूर चले जाने

के बाद भी संकेत देते रहते हैं। ये अंधेरे में भी कारगर होते हैं, ये बाधाओं को पार कर सकते तथा बहुत-बहुत दूरियों में फैल सकते हैं। संचार के लिए संकेतों के रूप में निकाले जाने वाले इन रसायनों को **फ़ीरोमोन** (pheromones) कहते हैं।

फ़ीरोमोन ऐसे रसायन होते हैं जो एक जीव द्वारा छोड़े जाते और समप्रजाति (उसी स्पीशीज़ के सदस्यों) में अनुक्रिया पैदा करते हैं। फ़ीरोमोन संचार को एककोशिका जीवों में और साथ ही साथ लगभग सभी प्राणि-समूहों में प्रारम्भक पाया गया है। अनेक रसायन फ़ीरोमोनों की तरह कार्य करते हैं तथा फ़ीरोमोनों के द्वारा अनेक प्रकार के संकेत पहुंचाए जा सकते हैं।

फ़ीरोमोन सामान्यतः **निर्मोचको (releasers)** (संकेती फ़ीरोमोनों) की तरह कार्य करते हैं जो प्राप्तकर्त्ता को उत्तेजित करके उसमें एक विशिष्ट मगर अस्थायी प्रकार का व्यवहार कराते हैं। कीटों के सेक्स फ़ीरोमोन सामान्यतः इसी श्रेणी मे आते हैं। कुछ फ़ीरोमोन **प्रारम्भक** (primers) की तरह काम करते हैं और प्राप्तकर्त्ता में अधिक मंद किंतु दीर्घकालीन शरीरक्रियात्मक अनुक्रियाएं पैदा करते हैं। इसका एक उदाहरण वह रसायन है जो " रानी पदार्थ" (queen substance) में होता है जिससे कर्मी मधुमक्खियों में अण्डाशय का बनना संदमित होता है।

सामाजिक कीटों में फ़ीरोमोनो द्वारा संचार

कुछ कीट लीक चिह्नकारी (trail marking) फ़ीरोमोनों का उपयोग करते हैं जिससे वे अपने मैथुन साथियों को ढूंढ सकें, आहार के मौजूद होने के स्थान एवं उसकी मात्रा के विषय में सूचना दे सकें और सुनिश्चित कर सके कि प्रवासी समूह अपनी सम्पूर्णता बनाए रखें। सामाजिक कीटों में जैसे कि चींटियों में, जब भोजनखोजी कर्मी चींटियां लौटती हैं तब वे लीक चिह्नकारी फ़ीरोमोनों को ज़मीन पर छोड़ती जाती हैं ताकि उसके सहारे अन्य कर्मी चींटियां आहार स्रोत तक जा सकें (चित्र 15.23)। यदि लीकों को लगातार सुदृढ़ न किया जाता रहे तो अधिकतर लीकें जल्दी ही फीकी पड़ जाती हैं। अभी तक बहुत थोड़े ही लीक-चिह्नकारी फ़ीरोमोनों की रासायनिक प्रकृति मालूम हो पायी है। दीमकों तथा चींटियों में ये दीर्घ श्रृंखला अम्ल, ऐल्कोहॉल, एल्डीहाइड अथवा हाइड्रोकार्बन होते हैं।

कीटों में सामाजिक समूह के सदस्यों की पहचान करने में भी फ़ीरोमोन सहायक होते हैं। सतर्कता फ़ीरोमोन किसी गैर घुसपैठिए के प्रति स्पीशीज़ के सदस्यों को सचेत कर देते हैं। दीमकों में यदि किसी अन्य कालोनी के सदस्य उनकी कालोनी में आ जाते हैं तो इस कालोनी के सैनिक सदस्य एक सतर्कता फ़ीरोमोन छोड़ते हैं जो अन्य सैनिक दीमकों को आकर्षित करता है और ये सैनिक दीमकें गैर आगन्तुकों को बाहर भगा देती है।

सतर्कता फ़ीरोमोनों की प्रकृति अलग-अलग प्रकार की होती है मगर हर समूह के लिए वह विशिष्ट होती है। मधुमक्खियों में यह फ़ीरोमोन डंक के शैफ़्ट से निकलता है, और यह डंक आक्रमणकारी के भीतर घुसाकर छोड़ दिया जाता है। इससे अन्य मधुमक्खियां आकर्षित होती हैं ताकि वे भी हमला कर सकें।

मधुमक्खी की कॉलोनी में रानी अपनी **मैंडिबुलर** ग्रंथियों से एक "रानी पदार्थ, (queen substance) का स्राव छोड़ती है। इसमें दो रचक होते हैं - ऑक्सीडेकानोइक अम्ल तथा 9-हाइड्रॉक्सीडेकानोइक अम्ल, जो सहक्रियात्मक रूप में एक तो कर्मियों के भीतर गोनडों के बनने पर संदमन करते हैं। और दूसरे उनके द्वारा ऐसे विशेष ख़ानों (कोष्ठों) के निर्माण का प्रेरण करते हैं जिनके भीतर के लार्वा रानी बनते हैं। इस तरह यह प्ररम्भक फ़ीरोमोन कर्मियों का नई रानी बनाने में संदमन करते है और साथ ही कर्मियों के भीतर अण्डाशयों के विकास को भी रोके रहते हैं।

शलभों में लिंग आकर्षी अथवा लिंग फ़ीरोमोन

रेशम शलभों की कुआंरी मादाओं में विशेष फ़ीरोमोन ग्रंथियां होती हैं जिनके स्राव रासायनिक लिंग आकर्षी होते हैं। नर इस रसायनों को "सूंघ लेते हैं" और सूंघने का यह काम उनके बड़े-बड़े झब्बेदार ऐंटेना करते हैं जिन पर घ्राणग्राहियों की तरह कार्य करने वाले बहुसंख्यक संवेदीरोम बने होते हैं। ये ग्राही मादा रेशम शलभ द्वारा बनाए जाने वाले **बाम्बिकॉल**

(bombykol) के प्रति अतिसंवेदशील होते हैं। मादा एक जगह बैठी हुई अपना यह फ़ीरोमोन **बॉम्बिकॉल** बाहर को छोड़ती है जो हवा के सहारे बहता जाता और नर के ऐंटेनों तक पहुंचता है। नर तुरंत उत्तेजित हो जाता है और मादा को ढूंढने के लिए हवा के विमुख उड़ना शुरू कर देता है। वह इधर-उधर गति करता हुआ अंततः मादा के समीप पहुंच जाता है, और बाम्बिकॉल की गंध से उसकी ओर उड़ता हुआ उसे ढूंढ लेता है तथा उसके साथ संगम करता है। अतः यह पदार्थ स्पष्टतः एक निर्मोचक फ़ीरोमोन है।

जिप्सी मॉथ में एक ऐसी निर्मोचन फ़ीरोमोन **जिप्लयूर (gyplure)** होता है जो दो लिंगों को एक साथ लाने में काम करता है।

15.4.4 मधुमक्खियों में संचार- नृत्य भाषा

आस्ट्रिया के व्यवहारविज्ञानी कार्ल वॉन फ्रिश (Karl von Frisch) को उसके द्वारा मधुमक्खियों में संचार पर की गयी खोजों के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया।

ऐपिस मधुमक्खी में सामाजिक व्यवहार पाया जाता है। कर्मी मधुमक्खियां अपने कॉलोनी-साथियों को आहार कराने के वास्ते बहुत मात्रा में पराग तथा मकरंद इकट्ठा करती हैं। यह कार्य एक सहकारी प्रयास के द्वारा सम्पन्न होता है जिसमें कर्मी मक्खी पराग एवं मकरंद का एक भरपूर स्रोत खोज लेने के बाद छत्ते में वापिस आकर अपने विशिष्ट नृत्य प्रतिरूपों द्वारा आहार स्रोत के विषय में अन्य कर्मियों को सूचना प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, जब कोई आहार खोजी मक्खी अपने छत्ते के काफ़ी समीप ही मान लीजिए कि 50 मीटर की दूर पर फूलों का बगीचा ढूंढ लेती है। तब वह छत्ते पर एक **गोल नृत्य** (round dance) करती है (चित्र 15.14 a)। गोल नृत्य में मधुमक्खी एक बार दाएं और एक बार बाएं इस प्रकार एकांतरण क्रम में गोल-गोल नाचती है। मधुमक्खी छत्ते के भीतर घुसती जाती और बहुत उत्तेजित होते हुए गोल-गोल दौड़ती है। अन्य कर्मी मक्खियां इस कर्मी मक्खी का अनुसरण करती जाती हैं। अंततः नृत्यरत मक्खी मकरंद का उद्गलन (regurgitaion) कर देती है। इस नृत्य करती मधुमक्खी से स्वाद और गंध को प्राप्त कर अन्य मक्खियां आहार स्रोत की तलाश कर लेती है।

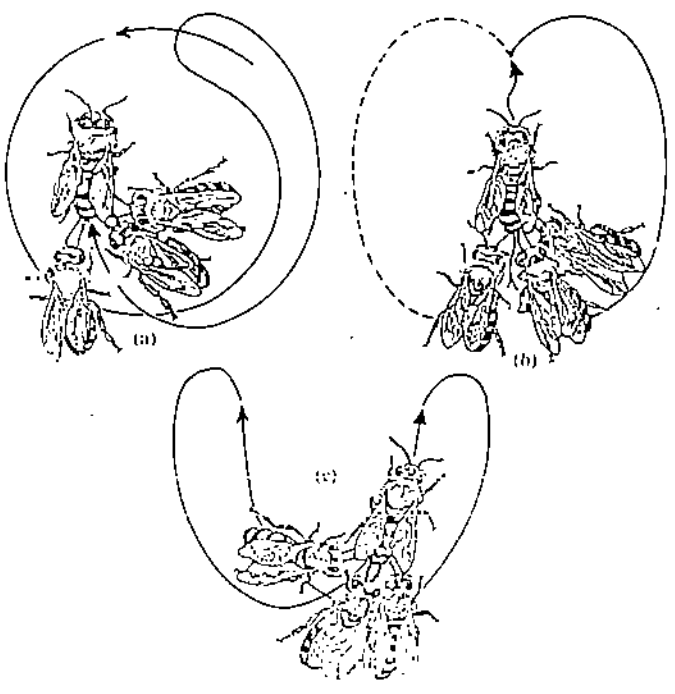

चित्र 15.14: अन्य कर्मी मधुमक्खियों को सूचना देने के लिए कि आहार छत्ते से कितनी दूर है, कर्मी मक्खियां अलग-अलग प्रतिरूप के नृत्य करतीं हे।

यदि आहार स्रोत छत्ते से 50 मीटर से ज़्यादा की दूरी पर है तब मधुमक्खी **थिरकन नृत्य** (waggle dance) करती है। यह गोल नृत्य का परिवर्तित रूप है, जिसमें एक सीधी दौड़ शामिल हो गयी है। इस सीधी दौड़ के दौरान कर्मी मक्खी अपने उदर को अगल-बगल हिलाती यानी थिरकती है। आहार स्थल जितना अधिक दूर होता है नृत्य का सीधी दौड़ का भाग उतना ही ज़्यादा लम्बा होता है (चित्र 15.14 b)। इस प्रकार थिरकन नृत्य से मकरंद स्रोत की दूरी और दिशा का संकेत दिया जाता है।

हंसिया नृत्य (sickle dance) गोल नृत्य का ही एक रूपांतरण है; और इसे इतालवी मधुमक्खी करती है जब आहार-स्रोत छत्ते से न बहुत पास, न बहुत दूर पर होता है तब वह अंग्रेज़ी की गिनती आठ की चौड़ी हो गयी आकृति में नृत्य करती है। हंसिया का खुला भाग आहार-स्रोत की दिशा में होता है (चित्र 15.14 c)। नृत्य करने वाली मक्खी का सदैव ही छत्ते की अन्य मक्खियां अनुसरण करने लग जाती हैं।

बोध प्रश्न 3

i) जैविक संचार की परिभाषा लिखिए?

....

....

ii) विधिवध व्यवहार किसे कहते हैं?

....

....

iii) "नियत क्रिया प्रतिरूपों" का क्या अर्थ है?

....

....

iv) दो-दो उद्देश्य बताइए जिसके लिए

(क) दृष्टि संकेत इस्तेमाल होते हैं

....

....

(ख) श्रवण संकेत इस्तेमाल होते हैं

....

....

....

....

v) घर्षणध्वनि किसे कहते हैं?

....

....

....

....

....

....

vi) कीट के किस शीर्ष उपांग पर सामान्यतः सेक्स फीरोमोन के ग्राही होते हैं?

....

vii) मधुमक्खियों में (क) गोल नृत्य तथा (ख) थिरकन नृत्य की क्या सार्थकता है?

....

....

15.5 अनुरंजन व्यवहार

जनन के उद्देश्य के लिए विपरीत लिंगों को आकर्षित करने के लिए प्राणियों में जो विशेषित व्यवहार प्रतिरूप पाए जाते हैं उन्हें **अनुरंजन व्यवहार** (courtship behaviour) कहते हैं। ये व्यवहार प्रतिरूप अलग-अलग प्रकार के हो सकते हैं जैसे चटकीले रंगों का प्रदर्शन अथवा सहायक आकारिकीय संरचनाओं का प्रदर्शन, या कामद (nuptial) उपहारों का अर्पण किया जाना, या विपरीत लिंग के सम्मुख विशिष्ट मुद्राएं प्रकट करना। प्रणय व्यवहार का अंतिम नतीजा संगम में होता है, बशर्ते कि भावी मैथुनी प्रणय व्यवहार से संतुष्ट होने से इनकार न कर दे।

मादा को आकर्षित करने के लिए प्रायः नर ही विविध प्रकार की विशद प्रणय व्यवहार दर्शाता है जो कभी-कभी बहुत विचित्र होता है। मादा शायद ही कभी प्रणय व्यवहार दिखाती हो मगर हां नर के हाव-भाव का उत्तर अवश्य देती है। मैथुनी को पसंद-नापसंद करना मादा का विशेष अधिकार है।

संगम सम्पन्न हो चुकने के बाद सेक्सों (लिंगो) के बीच परस्पर क्रिया समाप्त हो जाती हैं

15.5.1 अनुरंजन व्यवहार की आवश्यकता

अनुरंजन व्यवहार से निम्नलिखित उद्देश्य पूरे होते हैं :–

1. लैंगिक साथियों का समकालन एवं अभिविन्यास

सफल निषेचन के वास्ते जरूरी है कि दोनों सेक्सों के द्वारा शुक्राणु तथा अण्डे एक ही समय पर छोड़े जाएं। एक ही स्पीशीज़ के नर और मादा को सही-सही स्थिति में आना भी ज़रूरी है। नर का प्रणय व्यवहार अंततः लैंगिकतः परिपक्व मादा को आकर्षित कर लेता है और निषेचन संपन्न हो जाता है।

2. राज़ी करना

नर अपने प्रणय व्यवहार प्रतिरूप प्रदर्शित करता है और मादा उन्हें परखती जांचती है। तथा अपने मैथुनी की उपयुक्तता के विषय में निर्णय लेती है। अक्सर नर का व्यवहार मादा को अपने पक्ष में राज़ी करा ही देता है कि वह उसका मैथुनी बनेगा।

3. समजातियों के बीच संगम

अनुरंजन-व्यवहार स्पीशीज-विशिष्ट होता है। किसी एक स्पीशीज़ की मादा अपनी ही स्पीशीज़ के नर का अनुरंजन व्यवहार पहचान सकती है। इससे एक ही स्पीशीज़ के सदस्यों के बीच संगम सुनिश्चित होता है।

4. जननात्मक विलगन

अनुरंजन व्यवहार की स्पीशीज-विशिष्टताके कारण अन्य स्पीशीज़ के सदस्यों के बीच संगम को

रोका जाता है। इस प्रकार अनुरंजन जननात्मक विलगन का एक साधन है। अंतरस्पीशीज़ी प्रजनन एवं संकर उत्पत्ति को रोकने वाले अनुरंजन प्रतिरूपों को व्यवहारात्मक विलगन (ethological isolation) कहते हैं।

15.5.2 अनुरंजन व्यवहार में लैंगिक अंतर

मादा को रिझाने के लिए नर प्राणी तरह-तरह के और कभी-कभी बड़े विचित्र प्रतिरूप अपनाते हैं। नर प्राणी मादाओं से प्रणय करने में पहल क्यों करते हैं और मादाएं इस प्रणय को क्यों अस्वीकार कर देती हैं इसका संबध नर और मादा द्वारा अपने संतान को पालने व देख–रेख करने में लगाए गये समय तथा ऊर्जा निवेश के अंतर से होता है। नर एवं मादा की जननात्मक युक्तियों में इस प्रकार के अंतरों ने ही एक प्रकार का प्राकृतिक वरण जिसे लैंगिक वरण (natural selection) कहते हैं, पैदा करने में सहायता की होगी। लैंगिक वरण तब होता है जब व्यष्टियों में – (i) मैथुनियों के लिए दूसरों से प्रतिस्पर्द्धा करने की क्षमता अथवा (ii) विपरीत लिंग के सदस्यों को आकर्षित करने की क्षमता भिन्न होती है।

लैंगिक वरण में :–

1. अक्सर, मगर हमेशा नहीं, नरों में मैथुनियों तक पहुंच पाने की प्रतिस्पर्द्धा (अंतरालैंगिक प्रतिस्पर्द्धा, intrasexual competition) होती है। नर अपनी ही स्पीशीज़ के अन्य नरों से अपने मैथुनी के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। कदाचित इसी चीज़ से नरों का यह आक्रामक व्यवहार विकसित हुआ जो अक्सर उनमें देखने को मिलता हैं

2. अधिकतर मादाओं में अच्छे से अच्छा संभावित मैथुनी छांटने की प्रतिस्पर्द्धा (अंतरलैंगिक वरण, intersexual selection) होती है।

मादाओं द्वारा प्रदर्शित मैथुनी चुनाव कदाचित दो व्यावहारिक महत्वों के द्वारा उत्पन्न हुआ:–

(i) नर में प्रदान करने योग्य जीन किस प्रकार के हैं,

(ii) यदि चयन किये गये मैथुनी का कोई और महत्व भी है।

लैंगिक वरण का सिद्धांत सर्वप्रथम चार्ल्स डार्विन (1871) ने प्रस्तुत किया था। उन्होने देखा कि जननात्मक सफलता इस बात पर निर्भर है कि एक लिंग की व्यष्टियां दूसरी लिंग की व्यष्टियों को ढूंढ सकती हैं, अपनी ही लिंग के अन्य समस्पीशीज़ सदस्यों से टक्कर ले सकतीं एवं अपने मैथुनी को प्राप्त करने में जीत सकती हैं या नहीं। समझा जाता था कि एक ही लिंग की व्यष्टियों के बीच मैथुनियों को प्राप्त करने की प्रतिस्पर्द्धा से ही उस लिंग के विशिष्ट लक्षणों, जिनमें अपने मैथुनी के वरण में निहित व्यवहारात्मक क्रियाविधियां भी शामिल हैं, का विकास हुआ है।

अब यह ज्ञात हो चुका है कि जननात्मक सफलता अथवा अधिक संख्या में जीवनक्षम संतान को पैदा करने की क्षमता, मादाओं की अपेक्षा नरों में अधिक विभिन्नताशील होती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि ज़ाइगोट (युग्मनज) में और इसीलिए परिवर्धनशील भ्रूण के भीतर नर और मादा से पहुंचे जननात्मक संसाधनों में अंतर होता है यानी संतान में नर का जनक निवेश मादा के निवेश से कम होता है।

मादाओं के मामले में पैतृक-निवेश (parental investment) अधिक इसलिए होता है क्योंकि

1. मादा गैमीट (युग्मक) यानी अण्डा नर गैमीट यानी शुक्राणु से ज़्यादा बड़ा होता है

2. अण्डाशय से एक समय में सामान्यतः कुछ थोड़े से अण्डे निकलते हैं

3. अण्डे में पीतक के जैसा पोषक पदार्थ होता है जो परिवर्धनशील भ्रूण के काम आता है।

4. अनेक मामलों में मैथुन के बाद मादा ही पैतृक देखरेख के लिए अधिक समय देती है।

इन सभी क्रियाकलापों में समय, ऊर्जा तथा पदार्थ खर्च होता है और परिणामतः पैदा होने वाली संतान की संख्या पर सीमा लगती है।

इसके विपरीत

(i) नर अधिक संख्या में शुक्राणु छोड़ते हैं।

(ii) शुक्राणु अंडों की अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं।

(iii) नर अपने शुक्राणुओं के माध्यम से केवल जीनों का योगदान देते हैं, पोषक तत्वों का नहीं।

(iv) अधिकतर अकशेरुकी स्पीशीज़ में नर केवल मादा में शुक्राणु पहुंचाने भर का कार्य करते हैं, इसके अलावा कुछ नहीं।

लैंगिक वरण से नरों और मादाओं में अलग-अलग श्रेणी की जननात्मक सफलता की नानाविध श्रेणी पैदा होती हैं। कुछ नर हो सकता है कई-कई मादाओं से मैथुन कर लेते हों, जबकि कुछ अन्य नर पूर्णतः असफल रहे हो सकते हैं। मादाओं को बस एक या दो बार ही मैथुन करना होता है क्योंकि उन्हें एक या दो नरों से ही उन सभी शुक्राणुओं की प्राप्ति हो जाती है जिनसे उन मादाओं में अपेक्षाकृत कम संख्या में बनने वाले अंडों का निषेचन हो जाता है। नरों की जननात्मक कार्यसिद्धता इस बात पर निर्भर है कि कोई नर कितनी मादाओं में वीर्यसेचन कर सकता है और इसलिए यह अलग-अलग नरों में अलग-अलग होती है। इनके विपरीत मादाएं संतानों की लगभग एक ही संख्या पैदा करती हैं।

मादाएं, यानी पसंदकर्ता लिंग, चुने जाने वाले नरों में कुछ लक्षण-योग्यताएं चाहती हैं जिसके आधार पर मैथुनसाथी का वरण (mate selection) होता है। क्या पसंद किया जाता है यह अलग-अलग स्पीशीज़ में भिन्न होता है। इन्हीं में से कुछ लक्षण-योग्यताएं इस प्रकार हैं :

- बड़ा आकार
- नर द्वारा प्रेषित दृश्य, यांत्रिक तथा रासायनिक संकेत एवं प्रदर्शन
- नर द्वारा कामद उपहारों (nuplial gifts) की प्रस्तुति
- श्रेष्ठतर लड़ाई क्षमता एवं नर का आक्रामक व्यवहार
- अपने मैथुनी की रक्षा करने की नर की क्षमता
- नर की सामाजिक दृष्टि से प्रभावी हो सकने की क्षमता

कुछ स्पीशीज़ में नर बलपूर्वक मादा के साथ मैथुन कर लेते हैं।

आइए, अब हम नर अनुरंजन व्यवहार के उन प्रतिरूपों के कुछ उदाहरण देखें जिन्हें समस्पीशीजी मादाओं को आकर्षित करने में इस्तेमाल किया जाता है।

15.5.3 दृश्य यांत्रिक तथा रासायनिक प्रदर्शन

यूका (Uca) केकड़ा अपने ज्यादा बड़े हो गए कीला (चित्र 15.15) को हिला-हिला कर मादा को आकर्षित करता है। कुछ नर बीटलों की सींगों तथा थूथनों का भी यही प्रभाव होता है। नर झींगुर तथा टिड्डियां ध्वनिकर्षण करते हैं जिससे अलग-अलग स्पीशीज़ की अपनी विशिष्ट ध्वनियां पैदा होती हैं। इन ध्वनियों की आवृतियां अलग-अलग होती हैं और इनका अर्थ संगम-ग्राह्यता, विजय आदि हो सकता है (ध्वनि संकेतों के लिए, देखिए अनुभाग 15.4.2)।

चित्र 15.15 : नर फिड्लर केकड़े में आवर्धित कीला जो मादा को आकर्षित करने में उपयोग में लाया जाता है।

बिच्छुओं में नर और मादा दोनों ही वर्षा ऋतु में अनुरंजन नृत्य किया करते हैं (चित्र 15.16)। नर और मादा एक-दूसरे के सामने आ जाते हैं और अपने उदर के पीछे वाले भाग को हवा में ऊपर को उठा लेते हैं और उसके बाद वे गोल-गोल चक्कर काटते हैं। नर अपने पेडिपैलाई से मादा के पेडिपैलाई (शिरोवक्ष पर बने नखरयुक्त उपांगों) को पकड़ लेता है और फिर वे दोनों अपने-अपने पश्च उदरों को एक-दूसरे के साथ लपेट कर गोल-गोल चक्कर लगाते हैं या कभी आगे को और कभी पीछे को चलते जाते हैं। घेरे में चलते-चलते नर पीछे को चलता और मादा को खींचता जाता है। यह अनुरंजन क्रीड़ा कई-कई घंटे और कई-कई दिन तक चलती जाती है नर एक बिल बनाता है, और दोनों ही उसके भीतर चले जाते और संगम करते हैं। नर बिच्छू एक शुक्राणुधर निकालता है जिसे वह एक जगह रख देता है और फिर मादा को इस तरह चलाता है कि उस मादा के शरीर का जनन क्षेत्र शुक्राणुधर के ऊपर आ जाए। अब शुक्राणु मादा के जनन छिद्र के भीतर प्रवेश करते हैं। संगम के बाद मादा नर को खा जाती है।

कुछ मकड़ियों में मादा अपने जाल के केंद्र में बैठती है नर जाल के समीप आता है और जाल के एक धागे को एक खास आवृत्ति पर खींच कर हिलाता है। मादा अपने सामान्य आक्रामक स्वरूप को कम कर देती है। मगर यदि यह नर संयोगवश किसी अन्य स्पीशीज़ की मादा को आकर्षित कर रहा हो तो वह मार दिया जाता है।

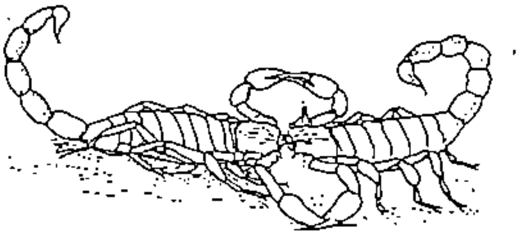

चित्र 15.16 : बिच्छुओं का अनुरंजन नृत्य

फ़ीरोमोन भी लिंग आकर्षकों का काम करते हैं (अनुभाग 15.4.3 देखिए)। वह फ़ीरोमोन अनिषेचित वयस्क मादा शलभ के उदर की नोंक पर बनी बहिवर्तनी ग्रंथियों से निकलता है। नर शलभों के एंटेनाओं पर इन फ़ीरोमोनों के घ्राणग्राही बने होते हैं, और ये नर अपने स्पीशीज़-विशिष्ट प्रतिरूप में मादा की ओर उड़ते हैं और उसके साथ संगम करते हैं। *डैनेअस गिलिप्पस* तितली का नर अपने उदर के अंतिम सिरे पर से फ़ीरोमोन युक्त 'हेयरपेंसिलें' निकालकर उन्हें मादा पर रगड़ता है। इससे मादा संगम के लिए उत्तेजित हो जाती है।

15.5.4 कामद उपहार

मादाओं से अनुरंजन के लिए नरों द्वारा प्रदान किए जाने वाले उपहार दो रूपों में हो सकते हैं – या तो (i) आहार के रूप में या (ii) शुक्राणुधर के रूप में। ब्लैक टिप्ड हैंगिंगफ्लाई *(हाइलोबिट्टैकस*

एपिकैलिस, *Hylobittacus apicalis*) की मादा ऐसे नर को चुनती है जो एक बड़ा पोषण आहार उपहार के रूप में प्रदान करता है। यह उपहार एक मृत कीट होता है (चित्र 15.17)। यदि उपहार के रूप में वदज़ायका लेडी-वर्ड बीटल प्रस्तुत किए जाते हैं तो मादा उस नर को अस्वीकार कर देती है। संगम कितनी देर तक चलेगा यह इस पर निर्भर होता है कि नर ने उपहार स्वरूप जो शिकार भेंट किया है वह किस साइज़ का है और उसकी गुणवत्ता क्या है। यदि उपहार छोटा हुआ तो मादा अपने आपको नर से छुड़ा लेती है और शुक्राणुओं को स्वीकार किए बिना ही संगम को समाप्त कर देती है।

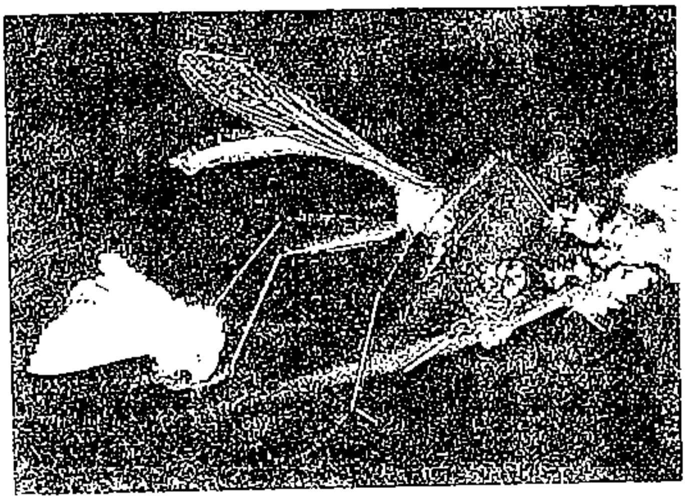

चित्र 15.17 : नर हैंगिंग मक्खी अपने मैथुनी के वास्ते कामद उपहार के रूप में एक पकड़ा गया शिकार ले जाते हुए।

टिड्डों के संबंधी कैटिडिडों में नर 'शुक्राणुधर' (यानी शुक्राणुओं का एक पैकेट) पेश करता है। यह शुक्राणुधर प्रोटीन से भरपूर होता है और संगम के बाद मादा उसे खा लेती है। यदि नर एक छोटा शुक्राणुधर भेंट करता है तब मादा उसमें से शुक्राणुओं को अपने शुक्रग्राही (spermatheca) (यानी मादा का शुक्राणु संग्रह अंग) में नहीं आने देती।

'मॉरमॉन' झींगुर *ऐनैब्रस सिम्प्लेक्स* (*Anabrus simplex*) में नर संगम के दौरान द्विअंशी शुक्राणुधर को अपनी मैथुनी के जनन छिद्र से चिपका देता है (चित्र 15.18)। संगम के बाद नर पृथक हो जाता है और मादा शुक्राणुधर के एक भाग स्पर्मेटोफ़ाइलैक्स (spermatophylax) को खा जाती है और उसका दूसरा भाग जिसमें शुक्राणु होते हैं, उसी स्थान पर बचा रह जाता है। शुक्राणुधर जितना बड़ा होगा उतनी ही ज्यादा देर तक वह उसे खाती रहती है तथा इस तरह शुक्राणुओं को शुक्राणु ऐम्पुला में से मादा के शुक्रग्राही में अधिक संख्या में प्रवेश करने के लिए अधिक समय मिल जाता है। पहला भाग खा जाने के बाद दूसरे भाग — ऐम्पुला का भी बचा-खुचा भाग वह खा जाती है।

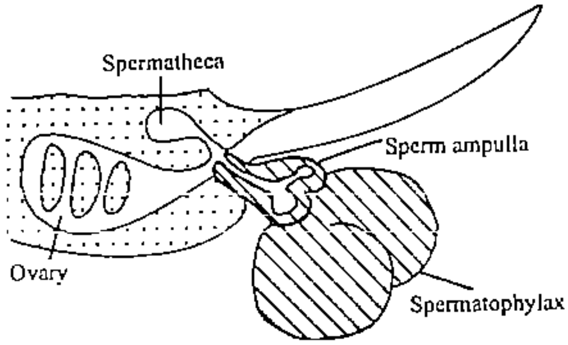

चित्र 15.18 : मादा कैटिडिड के पश्च भाग का आरेख जिसमें संगम के बाद नर शुक्राणुधर दो भागों का बना होता है, एक तो शुक्राणु धारण किया हुआ ऐम्पुला और दूसरा पोषण सामग्री से युक्त स्पर्मेटोफ़ाइलैक्स।

चित्र 15.19: एम्फ़िडों के नर, अपनी सह मैथुनियों के वास्ते रेशमी गुब्बारे लिए हुए।

एक एम्फ़िड गुब्बारा मक्खी (*हिलेरिया सार्टोर, Hilaria sartor*) का नर कामद उपहारों के रूप में रेशमी गुब्बारे बनाता है (चित्र 15.19)। गुब्बाराधारी नरों का एक समूह आगंतुक मादाओं के लिए साथ-साथ मिलकर प्रदर्शन करता है। मादा उनमें से किसी एक गुब्बाराधारी नर को चुन लेती है और संगम करने की एक पूर्वशर्त के रूप में गुब्बारे को स्वीकार कर लेती है।

15.5.5 शुक्राणु प्रतिस्पर्द्धा तथा मैथुनी की सुरक्षा

शुक्राणु प्रतिस्पर्द्धा तथा मैथुनी की सुरक्षा कीटों में बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कीटों की मादाएं शुक्रग्राही नामक अंग में शुक्राणुओं का भण्डारण कर सकती हैं और बाद में उन्हें इस्तेमाल करती रहती हैं। एक नर के साथ संगम हो चुकने का अर्थ यह नहीं कि अन्य प्रतिस्पर्द्धी नरों के साथ सफल संगम नहीं हो सकता। शुक्राणु प्रतिस्पर्द्धा का एक रोचक उदाहरण डैम्ज़ेल फ़्लाई *कैलॉप्टेरिक्स मैकुलैटा* (*Calopteryx maculata*) में देखा जाता है। इसके कुछ नर एक से लेकर तीन मीटर तक के नदी तट के क्षेत्र की सुरक्षा बनाए रखते हैं जिसमें से वे अन्य सभी नरों को बाहर खदेड़ देते हैं। मादाएं जलमग्न वनस्पति पर अण्डे देने के लिए आती है और नर उसके साथ अनुरंजन करता और मादा के अण्डनिक्षेपण करने से पूर्व वह उसके साथ संगम करता है। नर के उदर के अंत पर विशेषित आलिंगक बने होते हैं जिनसे मादा को दबोच कर रखा जा सकता है। नर अपने उदर को झुकाकर एक लूप बना लेता है ताकि अपने शुक्राणुओं को शिश्न में पहुंचा सके। ग्रहणशील मादा अपने उदर को घुमाती और अपने जननांग को शिश्न पर लगा देती है। उदर की तालबद्ध गति के द्वारा शिश्न को भीतर प्रवेश कराया जाता है। यदि मादा के शुक्रग्राही में पहले से किसी अन्य नर के शुक्राणु मौजूद हों तो उन्हें शुक्रग्राही में से बाहर निकाल दिया जाता है और उसके बाद यह शिश्न द्वारा अपने शुक्राणु भर देता है। तदुपरांत वह नर इस मादा को छोड़ देता है मगर जब वह इसके क्षेत्र में अण्डे दे रही होती है तब यह उसकी चौकसी करता रहता है। यदि नर उसकी चौकसी नहीं कर पाता तो वह उड़कर किसी अन्य क्षेत्र में चली जाती है जहां वह एक अन्य नर के साथ संगम करती, और वही पुरानी क्रिया फिर से दोहरायी जाती है।

15.5.6 मैथुनी प्रतिस्पर्द्धा के वैकल्पिक तरीके

एक स्पीशीज़ के सभी नर एक ही तरीके से मैथुनियों के लिए प्रतिस्पर्द्धा नहीं करते। अनेक स्पीशीज़ में संगम के लिए नर वैकल्पिक तरीके अपनाते हैं। उदाहरणतः "बिच्छू-मक्खी" *पैनोर्पा (Panorpa)* संगम के लिए तीन तरीके अपनाते हैं : (1.) कुछ नर मृत कीटों की रखवाली करते हैं जिनसे ग्राही मादा आकर्षित होकर आती हैं (2.) अन्य हैं जो पत्तियों के ऊपर अपना लार-पदार्थ स्रावित करते हैं और मादाओं की प्रतीक्षा करते हैं कि वे कब आएं और उसे खाएं. (3.) कुछ अन्य, छोटे नर, मादा को कोई उपहार नहीं देते बस वे उसके साथ बलपूर्वक संगम करते हैं।

केवल विच्छू मक्खियों के ही नहीं बल्कि अन्य कीट स्पीशीज़ के नर भी मादाओं के साथ बलपूर्वक संगम करते हैं। आक्रमणकारी नर मादाओं को ख़ास तौर से उस समय आ दबोचते हैं जब वे अण्डे दे रही होती हैं। कुछ स्पीशीज़ में ऐसी क्षमता है कि उस समय की परिस्थितियों के अनुसार जो भी विधि बन पड़े वैसे ही काम कर लेते हैं।

नर द्वारा मैथुनी का चयन

अभी-तक हमने ऐसे उदाहरण देखे जिनमें मैथुनी के लिए प्रतिस्पर्द्धा नरों के बीच होती है और मैथुनी का चयन मादा करती है। जब कभी शिशु पालन- देखरेख का कार्य नर करते हैं न कि मादा, तब लिगों की भूमिकाएं उलट जाती हैं। मॉरमॉन झींगुरों की अति घनी समष्टि में जहां आहार की न्यूनता होती है, वहां नर जब शुक्राणुधर बना सकने के लिए काफी संसाधन जुटा लेता है तब वह किसी झाड़ी पर चढ़ जाता और राग अलापने लग जाता है। उस समय भूखी मादाएं आकर्षित होती हैं और जब एक से अधिक मादाएं पहुंच जाती हैं तब संगम करने के लिए उनमें प्रतिस्पर्द्धा होती है। नर केवल उसी मादा को स्वीकार करता है जो तिरस्कृत मादाओं की अपेक्षा काफ़ी ज़्यादा भारी होती है। लिंग की भूमिका का इस प्रकार उलट जाना कम ही पाया जाता है और इससे प्रकट होता है कि जब कभी शिशु पालन अथवा देख रेख नर द्वारा ज़्यादा किया जाता है तब मैथुनी के लिए मादा में ज़्यादा प्रतिस्पर्द्धा होती है।

15.5.7 अनुरंजन में अस्वीकृति तथा छल-क़पट

कुछ स्पीशीज़ की मादाओं में मैथुनी को अस्वीकार कर देने के लिए विशिष्ट संकेत होते हैं। मादा "ग्राउंड बीटल" *प्लेरोस्टिकस ल्युकुब्लैंडस* (*Plerostichus lucublandus*) अस्वीकृत नर के ऊपर एक विषैला तरल छोड़ती है और उसके कारण नर काफ़ी देर तक बेहोशी में चला जाता है।

कोलियस (*Colias*) तितली की मादा अण्डे देने के दौरान अग्राही होती है और यदि उस समय नर अनुरंजन का प्रयत्न करते हों तो वह एक दम बहुत ऊंची उड़ान भरती है, और जब नर वहां से भाग जाते हैं तो नीचे आती और शांति से अण्डे देती है।

अनुरंजन में छल-कपट भी देखने को मिलता है जैसे *"हैंगिग-फ़्लाई" हाइलोबिट्टैक्स* के कुछ नरों में। एक नर जिसके पास देने के लिए कोई कामद उपहार नहीं होता एक मादा की तरह बन कर बैठ जाता है और जब कोई दूसरा नर उसे मादा समझकर उसे उपहार भेंट करता है तो वह उपहार लेकर चम्पत हो जाता एवं स्वयं उस उपहार को किसी मादा को भेंट करता है।

बोध प्रश्न 4

i) अनुरंजन व्यवहार किसे कहते हैं?

....

....

ii) नर और मादा के अनुरंजन के तरीकों में एक मुख्य अंतर क्या है?

....

....

iii) नरों द्वारा मादाओं को भेंट किए जाने वाले कुछ कामद उपहार बताइए :–

....

15.6 कीटों में सामाजिक संघटना

सामाजिक संघटना शब्द समष्टियों अथवा समूहों के लिए इस्तेमाल होता है न कि व्यष्टियों के लिए। किसी स्पीशीज़ के सदस्य एक-दूसरे से किस प्रकार क्रिया करते हैं उससे सामाजिक संघटना की परिभाषा होती है। अकॉर्डेटों में समाजिक संघटना के सबसे अच्छे उदाहरण हैं कीट चींटियां, बर्रें, ततैये, मधुमक्खियां तथा दीमकें सहकारी रूप में छत्ते बनाकर उनमें रहती हैं। अनेक व्यष्टियां एक साथ मिलकर एक समाज अथवा कॉलोनी या निवह बना कर रहती हैं। नानाविध कार्य जैसे कि घर बनाना, आहार प्राप्त करना, सफ़ाई करना आदि समाज के सदस्यों में बांट दिए गए होते हैं। इस प्रकार जब एक ही स्पीशीज़ की अनेक व्यष्टियां परस्पर सहयोग करके साथ रहती और जीवन के कार्यों को बांट लेती हैं तब उनमें सामाजिक व्यवहार प्रदर्शित होता ऐसा कहा जाता है।

15.6.1 सामाजिक व्यवहार के लाभ तथा हानियां

सामाजिक जीवन के अनेक लाभ हैं। सामूहिक सुरक्षा रणनीति से परभक्षियों को आसानी से खदेड़ा जा सकता है। व्यष्टियों की कालोनी में बच्चों की बेहतर देख-रेख की जा सकती है तथा उनकी सुरक्षा करी जा सकती है। सामाजिक जीवन के कुछ अलाभ यानी हानियां भी हैं। तालिका 15.2 में सामाजिकता के कुछ प्रमुख लाभ और अलाभ दिए गए हैं।

तालिका 15.2: सामाजिक संघटना के लाभ तथा हानि

लाभ	अलाभ
1. परभक्षियों से सुरक्षा (i) एक सदस्य परभक्षी की पहचान कर लेता, और चेतावनी देकर अन्य सदस्यों को बचा सकता है। (ii) सम्मिलित आक्रमण से शत्रु को आसानी से भगाया जा सकता है। (iii) आखेट्य व्यष्टियों की कॉलोनी का दिखायी देना मात्र ही परभक्षी को डरा सकने का एक बेहतर अवसर प्रदान करता हैं	**1. समूह के भीतर ही प्रतिस्पर्द्धा** समाज के सदस्य आहार, नीड़ सामग्री नीड़ स्थान तथा मैथुनी के लिए आपस में ही प्रतिस्पर्द्धा करते सकते हैं।
2. आहार संग्रहण (i) आहार संसाधनों को एक सदस्य द्वारा देखकर दूसरों को सूचना प्रदान कर दी जाती है। इस प्रकार अशन क्षेत्रों को ढूंढने में खर्च होने वाली ऊर्जा की बचत हो जाती है। (ii) संग्रहित आहार को बच्चों, बूढ़ों, दुर्बलो आदि में और अन्य सभी में बॉट लिया जाता है।	**2. महामारी तथा परजीवियों का जोखिम** छूत के रोगों तथा परजीवियों के संक्रमण का ख़तरा बढ़ जाता है।
3. संतान की देखरेख सामुदायिक अशन तथा शत्रुओं से सुरक्षा के द्वारा संतान की बेहतर देखभाल होती है।	**3. समजाति सदस्यों के द्वारा जनकीय देखभाल का शोषण** सुस्त सदस्य संतान की देखभाल का काम दूसरों पर छोड देते हैं।
4. अधिकृत क्षेत्र की सुरक्षा उसी स्पीशीज़ के अन्य समूहों से आने वाले घुसपैठिए जो उसी आवास और आहार की टोह में होते हैं संयुक्त प्रयास के द्वारा भगा दिए जाते हैं।	**4. संतान की हानि का जोखिम** समजाति सदस्यों के द्वारा संतान के मारे जाने का ख़तरा बढ़ जाता है।

15.6.2 सामाजिक कीटों की विशिष्टताएं

आप दीमकों (आइसॉप्टेरा), चींटी तथा मधुमक्खियों (हाइमेनॉप्टेरा) के अति सुसंघटित कीट समाजों में बहुरूपता के विषय में इसी पाठ्यक्रम के खण्ड– I, इकाई-7 में पहले ही पढ़ चुके हैं। इन समाजों में सामाजिक जीवन के लिए बहुत विशिष्ट अनुकूलन पाए जाते हैं कि इन्हें मात्र सामाजिक ही नहीं कहा जाता बल्कि ये सुसामाजिक (eusocial) कीट होते हैं।

सभी यथार्थतः सुसामाजिक कीटों में तीन लक्षण पाए जाते हैं :–

(1) बच्चों की देखभाल में उसी स्पीशीज़ की अनेक व्यष्टियां सहयोग करती हैं।

(2) इनमें श्रम-विभाजन पाया जाता है जिनमें वंध्य व्यष्टियां होती हैं जो जननशील (fecund) व्यष्टियों की तरफ से कार्य करती हैं

(3) ऐसी जीवन अवस्थाओं में जो कॉलोनी के श्रम में योगदान करने में सक्षम होती है, कम से कम दो पीढ़ियां अतिव्यापी होती हैं, ताकि संतानें अपने जीवन काल के कुछ भाग में अपने जनकों की मदद कर सकें।

आपको याद होगा कि ये समाज वर्णजातियों (castes) में विभाजित होते हैं जैसे कि सैनिकों, कर्मियों तथा जननकर्त्ताओं में जो आकार में एक-दूसरे से भिन्न होते और कॉलोनी के भीतर प्रत्येक का एक पृथक कार्य होता है। सुसामाजिक कीटों में सहयोग और परोपकारिता बड़े विशेष रूप में पायी जाती हैं। ये बड़े सुव्यवस्थित छत्ते/घरोंदे बनाते हैं जिनके भीतर तापमान और आर्द्रता स्थिर बनाए रखे जाते हैं। सामूहिक रूप में आहार संग्रहण से आहार को मिल-बांट कर खाना होता है तथा व्यापक फैले आहार संसाधनों से आहार एकत्रित करना सहज हो जाता है। इनमें आहार ढूंढ कर लाने और कॉलोनी की संरचनाओं को बनाए रखने में जो संचार निहित होता है वह काफी जटिल होता है, और घोंसले अथवा छत्ते को जैसे कि मधुमक्खी में, बड़े आक्रामण तरीके से सुरक्षित रखा जाता है। जब कर्मी मधुमक्खी डंक मारती है और डंक मारने के बाद जब पीछे हटने का जोर लगाती है, तब विष ग्रंथि समेत उसका डंक और संकुचनी पेशियां वहीं शत्रु के शरीर में रह जाती हैं। परिणामस्वरूप इस खींचने के दौरान भी वह शिकार के भीतर विष को पम्प करती जाती है हालांकि स्वयं मर जाती है। चित्र 15.20 में डंक उपकरण दिखाया गया है जिसमें पेशियां और विष थैला भी दिखाया गया है। इसमें फ़ीरोमोन होते हैं जो अन्य संतरी मक्खियों को आकर्षित करते हैं। अजननकारी वर्णजातियों के विकास में आत्म-बलिदान की जो तत्परता दिखायी पड़ती है वह आश्चर्यजनक है। आगे दिए जा रहे अनुभागों में हम कीटों में पायी जाने वाली कुछ रोचक संघटनाओं का वर्णन करेंगे।

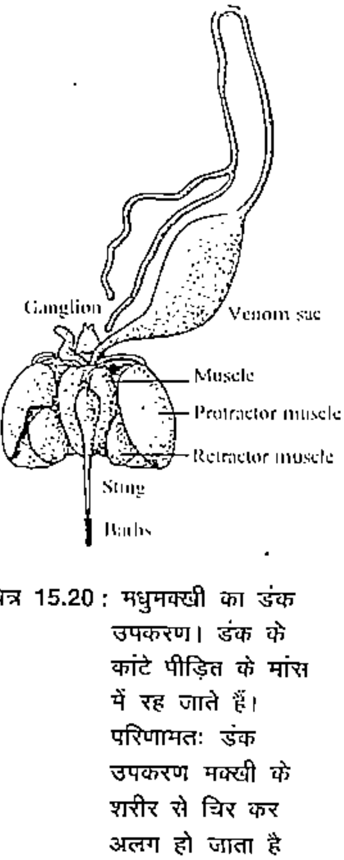

चित्र 15.20 : मधुमक्खी का डंक उपकरण। डंक के कांटे पीड़ित के मांस में रह जाते हैं। परिणामतः डंक उपकरण मक्खी के शरीर से चिर कर अलग हो जाता है और वह मर जाती है। उपकरण के साथ लगी जो पेशियां होती हैं वे शरीर से बाहर हो गए डंक के साथ लगी-लगी संकुचन करती रहती हैं और जिस प्राणी पर आक्रमण किया गया है, उसमें अधिकाधिक विष पहुंचाती जाती रहती है।

15.6.3 सामाजिक बर्रे (ततैये)

बर्रों में सुसामाजिक व्यवहार पूरी तरह वेस्पिडी (Vespideae) फ़ैमिली तक ही सीमित है। एक सामान्य उदाहरण पीले ततैये *पॉलिस्टीस (Polistes)* का है जिसका डंक पीड़ादायी होता है। ये ततैये अपने छोटे-छोटे खुले छत्ते घरों में छत के नीचे, भुसौरों, गराजों, तथा अन्य उपभवनों में बनाते हैं। ये वार्षिक कॉलोनियां बनाते हैं। इनकी कॉलोनी में तीन वर्ण जातियां होती हैं : रानियाँ (जननशील मादाएं), कर्मी (अजननशील मादाएं) तथा ड्रोन (पुंमधुप यानी नर)। जननशील मादाएं (रानियां) अपने कागज़ी घोंसले के कोष्ठों में से देर से प्रजनन ऋतु में निकलती है; मैथुन करतीं और जाड़ों में शीतनिष्क्रियता में चली जाती है। वसंत में मादाएं बाहर आ जाती हैं और या तो वे अकेले-अकेले (नींवकारी) या फिर अन्य समान मादाओं (सहायताकारी रानियों) के साथ मिलजुल कर एक छत्ते बनाती हैं। नींवकारी रानी अंडे देती है और अपने पैदा हुए प्रथम लार्वों को मसले हुए कीटों का भोजन कराती है। इन सारे लार्वा से कर्मी बनते हैं उसके बाद छत्ते को बनाए रखने का काम ये ही कर्मी करते हैं। ये छत्तों में और नए कोष्ठ बनाते हैं, तुरंत ही रानी की देखभाल करना शुरू कर देते हैं, भोजन ढूंढते और उसे छत्ते में लाते हैं (चित्र 15.21)। उसके बाद से नींवकारी मादा छत्ते में ही रहती और अण्डे देती रहती है। अब जैसे-जैसे और नए कर्मी आते जाते हैं वैसे-वैसे कॉलोनी तेज़ी से बढ़ती जाती है। ग्रीष्म के अंत में कुछ नयी रानियां बनती हैं और अनेक नर भी बनते हैं। ये दोनों छत्ता छोड़कर बाहर उड़ते-फिरते, संगम करते तथा

शीतनिष्क्रियता में चले जाते हैं। जाड़ों के बाद वे नए छत्ते बनाते हैं। पुरानी रानी तथा पुराने कर्मी मर जाते तथा मूल कॉलोनी समाप्त हो जाती हैं।

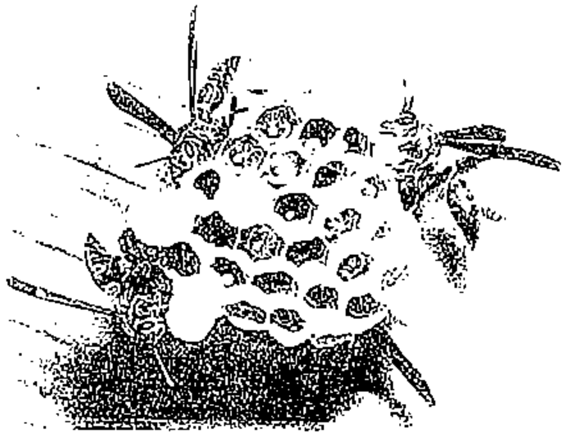

चित्र 15.21 : एक सामाजिक ततैया पॉलिस्टीस। एक वयस्क रानी तथा अन्य कर्मी दिखाए गये हैं जो छत्ता बनाने तथा बच्चों को यानी कोष्ठों के भीतर पड़े लार्वों की देखभाल करते हैं।

15.6.4 चींटियां

चीटियां फ़ॉर्मिसिड़ी (Formicidae) फ़ेमिली (आर्डर हाइमेनॉप्टेरा) में आती हैं। सामान्य चीटियों में आती हैं छोटी *मॉनोमोरियम* (*Monomorium*) और बड़ी काली *कैम्पोनोटस* (*Camponotus*)। *फ़ॉर्मिका* (*Formica*), *लेसिअस* (*Lasius*) अन्य जीनसें हैं। ये अपने घोंसले बनाती हैं पौधों में, मिट्टी में, अथवा पत्थरों या लट्ठों के नीचे। उष्णकटिबंधीय चींटी *ऑइकोफिल्ला स्मैरेग्डिना* (*Oecophylla smaragdina*) रेशम के धागों से वृक्षों की पत्तियों को सिलकर घोंसला बनाती हैं।

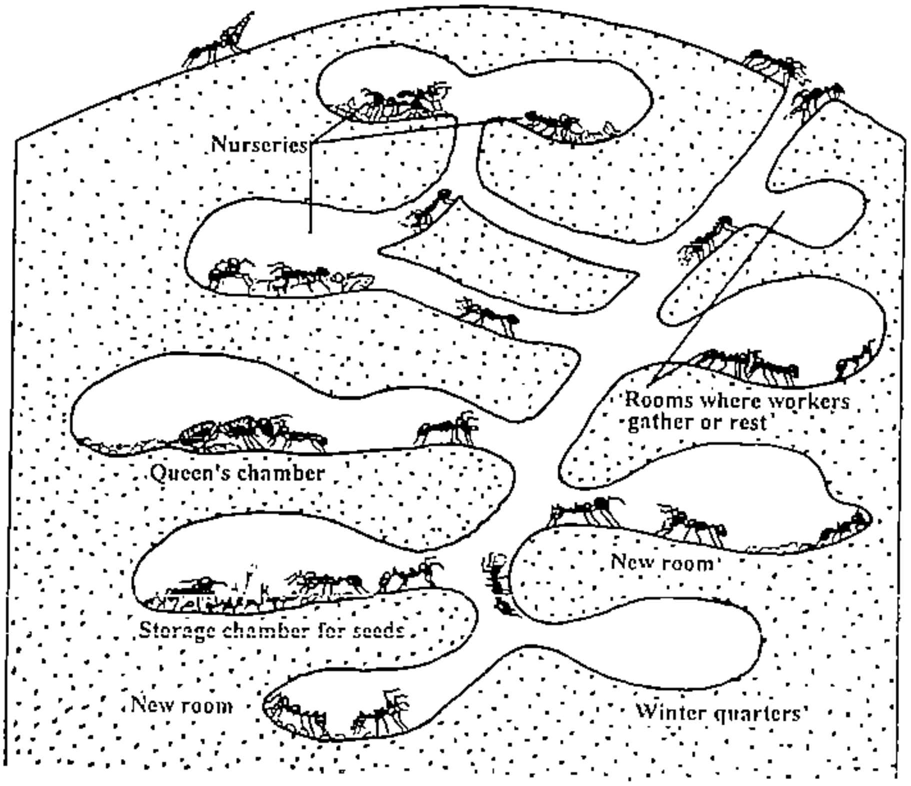

चित्र 15.22 : भूमिगत बीज-संग्रहकारी चींटी की कॉलोनी। घोंसले में विविध कक्ष होते हैं और उन्हें जोड़ती हुई सुरंगे। एक कक्ष में रानी रहती है। अनेक पालनगृह होते हैं जिनमें कर्मी बच्चों की देखीभाल करते हैं। बीज संग्रहकारी चींटियों में बीजों के संग्रह के कक्ष भी होते हैं।

सभी चींटियां सामाजिक तथा बहुरूपी होती हैं। आप इसी पाठ्यक्रम के खण्ड 1 की इकाई 7 में पहले ही जान चुके हैं कि मुख्य तीन वर्ण जातियां होती हैं - (1) पंखविहीन बंध्य मादाएं, या तो बड़े शीर्ष एवं सुविकसित मैंडिबलों (जबड़ों) से युक्त सैनिक होती हैं या साधारण कर्मी। (2) पंखयुक्त जननशील मादाएं जो अण्डे देती हैं (यानी मादाएं) तथा (3) पंखयुक्त जननशील नर जो अल्पजीवी होते और संगम उपरांत मर जाते हैं।

चींटियों के भूमिगत घोंसलों को "फ़ॉर्मिकेरियम" अर्थात पिपीलिकालय कहते हैं (चित्र 15.22)। उडते-उड़ते हवा में संगम करने के बाद, मादाएं विपखंन (dealation) (यानी पंखों को गिरा देना) करती हैं। उसके बाद वे नया घोंसला बनाती तथा कोष्ठों अथवा कक्षों में अंडे देती हैं। आरम्भ में रानी अन्य सभी कार्य भी करती है। मगर एक बार प्रथम अंडपुंज से लार्वा के निकलने और कर्मी बन जाने पर ये कर्मी ही कॉलोनी का सारा काम अपने ऊपर ले लेते हैं। तब रानी केवल अण्डे देने पर ही एकाग्रित हो जाती एवं आकार में बढ़ती जाती है।

चींटियों में ग्रंथियां होती हैं जिनके द्वारा वे लीकपथ (trail) बिछाने वाले फ़ीरोमोनों का स्रवण करती हैं (चित्र 15.23)। ये फ़ीरोमोन संचार में सहायता करते और चींटियों को इन लीकपथों पर पंक्तिवत चलते देखा जा सकता है। कुछ चींटियों के घोंसलों में बीटल तथा अन्य कीटों को मेहमानों के तौर पर रहते देखा जाता है। और तो और कुछ चींटियां कवक वाटिकाएं उगाती हैं।

चित्र 15.23 : "अग्नि" चींटी की कर्मी अपने बाहर को निकाले डंक के सहारे फ़ीरोमोन का विमोचन करते हुए लीकपथ बना रही। डंक बीच-बीच में धरती से छुआया जाता रहता है।

15.6.5 मधुमक्खियां

मधुमक्खियां एपिडी फ़ैमिली (आर्डर हाइमेनॉप्टेरा) में आती हैं। हमारे देश में मधुमक्खियों की तीन सामान्य स्पीशीज पायी जाती हैं - बड़ी मक्खी *एपिस डॉर्सेटा* (*Apis dorsata*), छोटी मक्खी *एपिस फ्लोरिया* (*apis florea*) और भारतीय मधुमक्खी *एपिस इंडिका* (*Apic indica*)। सामाजिक तौर पर मधुमक्खियां बहुत सुसंगठित होती हैं। एक छत्ते के भीतर 10,000 से लेकर 16000 तक मक्खियां हो सकती हैं। इसी पाठ्यक्रम की इकाई 7 से याद कीजिए कि प्रत्येक कॉलोनी में एक रानी यानी जननक्षम मादा, लगभग 500 से 1000 नर (ड्रोन यानी पुंमधुप) और शेष बंध्य मादा कर्मी होते हैं। रानी, ड्रोन तथा कर्मी सबके सब पंखयुक्त होते हैं। कॉलोनी के कार्य इन्हीं तीन वर्ण जातियों में विभाजित रहते हैं। रानी पूरी कालोनी की मां होती है।

कर्मी मोम द्वारा छत्तों को बनाते हैं, यह मोम उनके उदर पर बनी मोम ग्रंथियों से निकलता है। ये फूलों से मकरंद इकट्ठा करते हैं, जिसके लिए उनके मुखांग अनुकूल बने होते हैं। पराग लार्वो तथा वयस्क मक्खियों के भोजन का एक महत्वपूर्ण भाग होता है । पराग एकत्र करने के लिए कर्मियों की टांगें ख़ासतौर से अनुकूलित होती हैं। इनकी पश्च टांगों (चित्र 15.24) में टिबिया के सीमांत के सहारे-सहारे लम्बे वक्र रोम बने होते हैं जो पराग ब्रश का काम करते हैं। इन रोम के बीच बनी जगह से पराग करंड (pollen basket) बन जाता है। टांगों में पदकंट (spurs) तथा शूक (bristles) बने होते हैं। जिनसे शरीर पर चिपके पराग को छुड़ाया जा सकता है। कर्मियों में उदर के सिरे पर एक डंक होता है जिसमें एक विष ग्रंथि खुलती है (देखिए चित्र 15.20)। रानी में एक सुविकसित डंक होता है जिससे वह प्रतिस्पर्द्धी रानियों को दूर भगाए रखती है। ड्रोन में डंक नहीं होता।

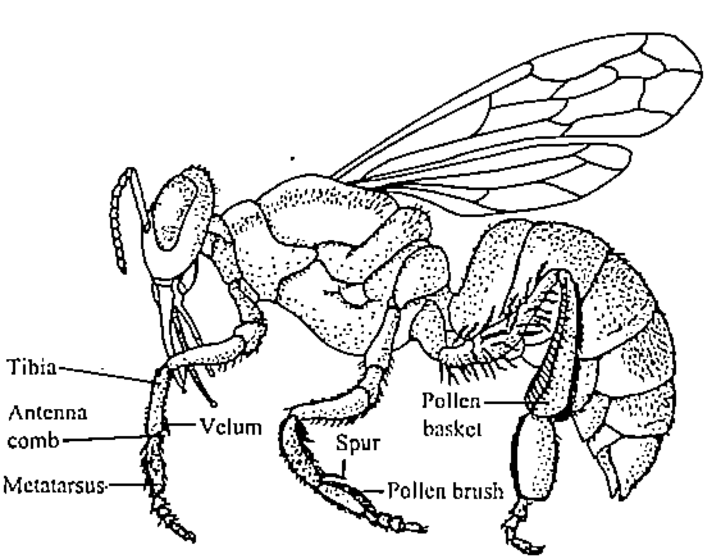

चित्र 15.24 : मधुमक्खियों के कर्मियों की टांगें जो पराग एकत्र करने के लिए खासतौर से अनुकूलित होती हैं। पिछली टांग में लम्बे रोम होते हैं जिनसे एक पराग करंड बन जाता है। अगली टांग की टिबिया तथा मेटाटार्सस के बीच संधि पर एक "ऐंटेना-क्लीनर" बन गया है।

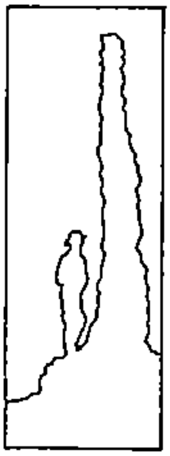

चित्र 15.25 : दीमकों के टीले बड़ी विशेष संरचनाएँ होती हैं। अफ़्रीकी दीमक *मैक्रोटर्मीस बेलिकोसस* (*Macrotermes bellicosus*) के घोंसले गगनचुंभी ऊँचाइयों के हो सकते हैं। इन घोंसलों की दीवार चट्टान जैसी मज़बूत और जलरोधी बनी होती हैं जिन्हें ये दीमकें अपनी लार और विष्टा की मिट्टी एवं पादप पदार्थ के साथ- साथ मिलाकर बनाती हैं। ये दीवार चरम तापमानों से भी घोंसले को प्रभावित नहीं होने देती।

15.6.6 दीमकें

सभी दीमकें सामाजिक कीट होती हैं जो एक आदिम आर्डर आइसॉप्टेरा में आती है। इनके उदाहरण हैं *कैलोटर्मीस फ़्लैविकोलिस* (*Kalotermes flovicollis*) तथा *रेटिकुलिटर्मीस ल्युसिफ़्यूगस* (*Reticulitermes lucifugus*), *माइक्रोसेरोटर्मीस स्पी.* (*Microcerotermes* sp.)। दीमक द्वारा घरों के लकड़ी के सामान, फ़र्नीचर आदि को भारी क्षति पहुंचने से हम खूब परिचित हैं। दीमकें भी बहुरूपी होती हैं। दीपकों की वर्ण जातियों के विस्तृत विवरण के लिए इसी पाठ्यक्रम की इकाई 7 के पृष्ठ 164-165 पढ़िए। ये सुरंगें बना कर उनके भीतर एक सामुदायिक जीवन बिताती हैं। दीमकों की अधिकतर स्पीशीज़ मिट्टी के भीतर बने "टीलों" के अंदर रहती हैं जिन्हें वमी अथवा वल्मीकि (termitarium) अथवा दीमकगृह कहते हैं (चित्र 15.25)। दीमकें लकड़ी खाती हैं जिसे वे अपनी अंतड़ियों में रह रहे सहजीवों कशाभी प्रोटोजोअनों की सहायता से पचाती हैं। कुछ दीमकें अपने घोंसलों में कर्मी दीमकों द्वारा खासतौर से बनायी गयी कवक वाटिकाएं बनाती हैं।

बोध प्रश्न 5

क. निम्न में पायी जाने वाली वर्णजातियों के नाम लिखिए :–

(i) मधुमक्खी

(ii) दीमकें

....

....

ख. सुसामाजिक कीटों से क्या अभिप्राय है?

....

15.7 परजीविता

इससे पहले के भाग में आपने जाना कि किस प्रकार सुसामाजिक कीट सहयोग व्यवहार दर्शाते

हैं। और प्रायः अपनी कॉलोनी को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए आत्मघाती हद तक चले जाते हैं। इस भाग में हम एक अन्य व्यवहार-परजीविता के विषय में सीखेंगे जो इस व्यवहार क्रम क़ा दूसरा सिरा है। एक ओर जबकि सामाजिक व्यवहार अंतः स्पीशीज़ व्यवहार है वहीं दूसरी ओर परजीविता एक ऐसा नियमित एवं निकटता का आंतरस्पीशीज़ व्यवहार है जिसमें एक प्राणी यानी परजीवी विशेषकर पोषण की दृष्टि से लाभान्वित होता है। दूसरे शब्दों में परजीवी अपने परपोषी को हानि पहुंचाते हुए जीता है। परजीवी सामान्यतः छोटा और कमज़ोर होता है। यह अपने से बड़े और अधिक सबल परपोषी की देह की सतह पर अथवा शरीर के भीतर रहता है।

परजीविता का विकास अनेक प्रमुख प्राणि-वर्गों में अलग-अलग विकसित हुआ है। प्लेटीहेल्मिन्थीज़, नेमाटोहेल्मिन्थीज़ तथा आर्थ्रोपोड़ा तीन मुख्य अकॉर्डेट समूह हैं जिनमें परजीवी व्यवहार के उदाहरण पाए जाते हैं।

15.7.1 परजीविता के प्ररूप

परजीवियों को निम्न प्रकार के भिन्न प्ररूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है :—

बाह्यपरजीवी (Ectoparasites) वे होते हैं जो परपोषी की बाहरी सतह पर संलग्न होते हैं। (उदाहरण मवेशियों पर पायी जाने वाली जोंक)।

अंतः परजीवी (Endoparasites) परपोषी की देह के भीतर रहते हैं जैसे मनुष्यों की आंत्र में रहने वाले गोल कृमि (*ऐस्केरिस*) और फ़ीताकृमि (*टीनिया*)।

विकल्पी परजीवी (Facultative parasites) बिना परपोषी के भी रह सकते हैं।

अविकल्पी परजीवी (Obligate parasites) अपने जीवन क़ा कम से कम कुछ अंश तो परपोषी के भीतर बिताते ही हैं उसके बाद ही उनका जीवन चक्र पूरा हो सकता है, उदाहरण *टीनिया*। परपोषी के बिना उनका जीवन-इतिहास पूरा नहीं हो सकता।

प्लेटीहेल्मिन्थीज़ तथा नेमाटोहेल्मिन्थीज़ के अलावा परजीवी स्पीशीज़ आर्थ्रोपोड़ा में आमतौर से पायी जाती हैं (क्रस्टेशिया, एरेक्निडा तथा कीटों में अनेक उदाहरण है)। आर्थ्रोपोड परजीवियों के और अधिक उदाहरण आपको अगली इकाइयाँ हानिकर तथा लाभकारी आकॉर्डेटों में संबद्ध भागों में पढ़ने को मिलेंगे।

15.7.2 परजीवियों पर परजीविता के प्रभाव

अधिकतर प्लेटीहेल्मिन्थीज़ और नेमाटोहेल्मिन्थीज़ परजीवी जीवन बिताते हैं। परजीविता का स्तर जितना अधिक होगा परजीवी में उतना ही अधिक परिवर्तन उसकी आकारिकी और शरीरक्रिया में होगा। मगर ये सभी विचलन परजीवी जीवन के लिए अनुकूलित होते हैं। यहां आप उन अनुकूलनों का स्मरण कीजिए जिनका इसी पाठ्यक्रम की संबद्ध इकाईयों में विवेचन किया गया है।

मुख्य परजीवी अनुकूलन इस प्रकार है :—

1. **सतही एपिडर्मिस का आभावः** और उसके स्थान पर एक टेग्युमेंट (tegument) बन जाती है जिसकी परजीवी की शरीरक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परजीवी प्लेटीहेल्मिन्थीज़ में यह टेग्यूमेंट आम पायी जाती है। नेमाटोड में क्यूटिकल अपारगम्य होती है। अण्डों के चारों ओर कवच होता है तथा लार्वो के चारों ओर पुटी भित्तियां होती हैं जिनसे सुरक्षा प्रदान होती है।

2. **आसंजन अंगों का पाया जानाः** जिसके द्वारा परपोषी पर स्थिर जमा रहा जा सकता है। इनमें आते हैं हुक, नखर, विविध प्रकार के चूषक और कुछ मामलों में आसंजक स्रावों का पाया जाना। आसंजी अंगों के विकसित होने के फलस्वरूप परजीवियों की गतिशीलता समाप्त हो जाती है। परजीवी अपने परपोषियों से दृढ़ता से चिपके रहते हैं।

3. **संवेदी अंगों का आभावः** उत्तरोत्तर बढ़ते जाते परजीवी स्तर के साथ उसी हिसाब से संवेदी अंगों की हानि होती जाती है और तंत्रिका तंत्र का भी उसी तरह अपकर्ष होता जाता है।

4. **पाचन-तंत्र का सरलीकरण एवं अंततः उसकी समाप्तिः** भोजन के लिए परजीवी अपने परपोषी पर निर्भर रहते हैं। फ़ीताकृमियों में पाचन-तंत्र का पूर्ण ह्रास हो चुका है जबकि पर्णाभों (flukes) में एक मुख, एक चूषणी ग्रसनी तथा पीछे बंद सिरे वाली एक आंत्र होती है। फ़ीताकृमि अपने टेग्यूमेंट में से परपोषी के सम्पूर्णतः पचे भोजन को अवशोषित करते हैं।

5. **जनन तंत्रः** परजीवियों का जनन-तंत्र सबसे अधिक जटिल प्रकार का होता है। परजीवियों में बहुत ज़्यादा संख्या में अंडे देने की क्षमता होती हैं। फ़ीताकृमियों में स्ट्रॉबिलः (शरीर के प्रोग्लौटिडों) में लैंगिक अंगों का प्रगुणन होता पाया जाता है जो अंडे पैदा करने की क्षमता को और भी ज़्यादा बढ़ा देते हैं। अनेक परजीवी उभयलिंगी होते हैं (जिससे निषेचन सुनिश्चित हो जाता है।)

6. **परजीवियों का जीवन-चक्र जटिल होता** है। पर्णाभों के जीवन-चक्र में अवस्थाएं होती हैं जो एक से लेकर तीन मध्यस्थ परपोषियों में से गुज़रती हैं। ऐसी दशा से अनुकूल होते हुए इन परजीवियों मे कई-कई लार्वा अवस्थाएं होती हैं। इनमें अक्सर बहुभ्रूणता (polyembryony) पायी जाती है जिससे और प्रगुणन होकर प्राणी को अतिरिक्त जनन लाभ प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न 6

i) परजीविता की परिभाषा लिखिए।

....

Ii) परजीवियों के आम संलगनकारी अंग क्या-क्या होते हैं?

....

iii) परजीवियों का पाचन-तंत्र असम्पूर्ण अथवा अविद्यमान क्यों होता है?

....

15.8 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया :–

- अनुचलन तथा गतिता में वे सब गतियां आती हैं जो पर्यावरण उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया के रूप में होती हैं। अनुचलन जीव की दिशागत गति होती है। उद्दीपनों के आधार पर अनुचलन को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :–
  - प्रकाशानुचलन, प्रकाश के प्रति अनुक्रिया
  - तापानुचलन, तापक्रम के प्रति अनुक्रिया
  - स्पर्शानुचलन, यांत्रिक स्पर्श के प्रति अनुक्रिया
  - रसानुचलन, रसायनों के प्रति अनुक्रिया

- धारानुचलन, पवन और जलधाराओं के प्रति अनुक्रिया
- विद्युत्धारानुचलन, विद्युत्धाराओं के प्रति अनुक्रिया
- गुरुत्वानुचल, गुरुत्व के प्रति अनुक्रिया

- गतिता दिशा-निरपेक्ष गति होती है।

- जैवतालें नियमित अंतरालों पर होने वाली व्यवहार क्रियाएं होती हैं। दैनिक तालें जिनमें लगभग चौबीस घंटे का चक्र होता है, दिवसप्रायः तालें होती हैं। समुद्री प्राणियों में ज्वारों द्वारा नियमित होने वाले क्रियाकलापों को ज्वारतालें कहते हैं जबकि जो तालें चंद्रमा की कलाओं से नियंत्रित होती हैं उन्हें चांद्रतालें कहते हैं। वर्ष में एक बार होने वाली तालें वर्षप्राय तालें कहलाती हैं। जैवतालें तब बाह्यजनिक होती हैं जब उनकी ताल क्रिया बाहरी उद्दीपनों जैसे कि प्रकाशकाल द्वारा नियंत्रित होती हैं। अंतर्जात जैवतालें एक आंतरिक जैवघड़ी द्वारा नियमित की जाती है।

- जैविक घड़ियां ऐसी आंतरिक क्रियाविधियां होती हैं जो समय को माप सकती हैं। वे दिन और रात के जैसी चक्रीय घटनाओं से मिलायी हुई होती हैं। पर्यावरण चक्र के परिवर्तन के मामले में जैसेकि सतत अंधेरे में रखने पर जैविक घड़ी का समय मामूली सा बदल जाता है और इसे घड़ी का स्वतंत्र चलना कहा जाता है। जब जीव एक अलग ही प्रकाशकाल में चला जाता है जैसेकि प्राणियों का विश्व के एक भाग से दूसरे भाग में चले जाना, तब जैविक घड़ी नयी पर्यावरण परिस्थितियों के अनुसार मिल जाती है और इसे "संरोहण" कहते हैं। जैविक घड़ी के समय को सेट करने वाले उद्दीपन को ज़ाइटगेबर कहते हैं।

- प्राणी एक-दूसरे के साथ संकेतों के माध्यम से संचार करते हैं। विविध संकेत होते हैं दृश्य, यांत्रिक, श्रवण, रासायनिक, आदि तथा इनसे पता चलता है आहार की उपलब्धता, इर्द-गिर्द किसी परभक्षी अथवा मैथुनीक का होना। जब संचार संकेत नियमित विधिवध नियमित क्रमों में होते हैं तब इन्हें नियत क्रिया प्रतिरूप कहते हैं।

- कुछ दृष्टि संकेत जैसेकि शरीर की मुद्रा यानी संस्थिति में अथवा विशिष्ट रंग प्रतिरूपों में होने वाले परिवर्तन शिकार को अथवा मैथुनी को ललचाते-लुभाते हैं या परभक्षी को डराते अथवा चेतावनी देते हैं। स्पर्श संकेतों को चींटियां इस्तेमाल करतीं है जिससे लार्वा द्वारा स्पर्श किए जाने पर चींटी पेट में से भोजन उगलकर लार्वा को खिलाती है। अनुरंजन संकेत कीटों में आम पाए जाते हैं। रासायनिक संचार में फ़ीरोमोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मधुमक्खियां अपने छत्तों के सदस्यों में संचार के वास्ते "नृत्य भाषा" का उपयोग करती हैं।

- अनुरंजन व्यवहार एक ही स्पीशीज के विपरीत लिंगों को आकर्षित करने में सहायता करता है ताकि संगम और जनन हो सके। अनुरंजन व्यवहार से संगम क्रियाकलाप का समकालन होता है और मैथुनी उचित रूप में परस्पर उन्मुख हो पाते हैं। अनुरंजन व्यवहार का प्रारंभन प्रायः नर किया करता है और मैथुनी के चयन का विशेषाधिकार मादा का होता है। अनुरंजन व्यवहार के प्रतिरूपों में शामिल हैं दृश्य प्रदर्शन, लिंग-आकर्षी फ़ीरोमोनों की उत्पत्ति, कामद उपहार, आदि।

- चींटियां, दीमकें, ततैये तथा मधुमक्खियां सामाजिक कीटों के कुछ उदाहरण हैं। इन चारों ही समूहों में बहुरूपता और उसके साथ श्रम-विभाजन पाया जाता है। जातियां मोटे तौर पर सभी में एक जैसी होती हैं। मगर एक ओर हाइमेनॉप्टेरनो (मधुमक्खियों, चींटियों और ततैयों) में और दूसरी ओर आइसॉप्टेरनों (दीमकों) में कुछ मूलभूत अंतर भी पाए जाते हैं।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण अंतर है कि हाइमेनॉप्टेरन कीटों में कर्मी वर्ण जाति में केवल वयस्क मादाएं ही होती हैं, जबकि दीमकों (आइसॉप्टेरनों) में कर्मियों में नर और मादा दोनों व्यस्क पाए जाते हैं। अपरिपक्व अवस्थाएं भी कॉलोनी के कार्यो में योगदान देती हैं। सामाजिक जीवन के लाभ इस प्रकार है :–

– आक्रमणकारियों तथा परभक्षियों से सामूहिक सुरक्षा

– आहार का सहकारीय संग्रह एवं मिल-बांट कर उपयोग

– शिशु और रोगियों की सामुदायिक देख-रेख

हानियों में शामिल हैं सामाजिक समूह के भीतर प्रतिस्पर्द्धा, महामारियों तथा परजीवियों का खतरा, तथा समस्पीशीज़ सदस्यों द्वारा पैतृक देखरेख का शोषण।

- परजीविता एक नियमित तथा निकट का अंतरास्पीशीज़ी व्यवहार है जिसमें परजीवी अपने परपोषी की हानि पर लाभ उठाता है। परजीविता के लाभ ये हैं परजीवियों को आहार तत्काल उपलब्ध होता है, उन्हें आश्रय मिलता है। हानियों इस प्रकार हैं : परजीवी को बहुत बड़ी संख्या में अण्डे पैदा करने होते हैं ताकि उनमें से कुछ तो परपोषी तक पहुंच ही सकेंगे। एक बार परपोषी मिल जाने के बाद वह अपने जीवन को चलाने के लिए उसी पर निर्भर रहता हैं

परजीविता के लिए अनुकूलन इस प्रकार हैं :–

– अभेद्‌य क्यूटिकल, पुटी अथवा कवच का होना।

– परपोषी से संलग्न रहने के वास्ते हुकों अथ्वा चूषकों का होना, गतिशीलता का ह्रास

– संवेदी अंगों का आभाव एंव अल्प विकसित तंत्रिका-तंत्र।

– सरल पाचन-तंत्र अथवा इसका पूर्ण अभाव जिसके साथ-साथ एक विशेष टेग्युमेंट का बनना जो उसके पर्यावरण में उपलब्ध पूर्वपाचित आहार का अवशोषण करती है।

– सुविकसित सम्मिश्र जनन तंत्र

– अति विशाल संख्या में अण्डे पैदा करने की क्षमता

– उभयलिंगता

– जटिल जीवन-चक्र जिसमें अनेक लार्वा अवस्थाएं और साथ में प्रत्येक अवस्था में बहुभ्रूणता भी होती है।

15.9 अंत में कुछ प्रश्न

1. विभिन्न प्रकार की जैवतालों के नाम लिखिए तथा उदाहरण देकर उन्हें समझाइए।

....

....

2. "जैविक घड़ी" पर एक छोटा अनुच्छेद लिखिए।

....

....

....

....

3. अकशेरुकियों में संचार में इस्तेमाल किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के संकेतों का दो-दो उदाहरण देकर स्पष्टीकरण कीजिए।

....

....

....

4. कीट फ़ीरोमोनों का इस्तेमाल करके किस प्रकार संचार करते हैं समझाइए।

....

....

5. मैथुनी के चयन का क्या अर्थ है?

....

....

6. प्राणियों में अनुरंजन का क्या महत्व है?

....

....

7. सामाजिक व्यवहार किसे कहते हैं? इसके गुण-दोष बताइए।

....

....

....

15.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1. 1. अनुचलन किसी उद्दीपन के प्रति दिशागत गति होती है।
   2. गतिता किसी उद्दीपन के प्रति अदिशागत गति होती है।
   3. (i) धनात्मक प्रकाशनुलन; (ii) ऋणाात्मक विद्युतधारानुचलन; (iii) गुरुत्वानुचलन

2. 1. नियमित अंतरालों पर की जाने वाली व्यवहार क्रियाएं
   2. i-च; ii-क; iii-घ; iv-ग; v-ख
   3. बहिर्जात ताल में एक बाहरी उद्दीपन नियमित अंतरालों पर प्राणी में व्यवहार प्रतिरूप पैदा करता है। अंतर्जात ताल में एक आंतरिक घड़ी होती है जो नियमित अंतरालों पर जीव के भीतर क्रियाएं आरंभ कराती हैं।
   4. जैविक घड़ी का पर्यावरण चक्र की प्रावस्था के साथ संरोहण करना।
   5. तंत्रिका तंत्र

3. i) किसी व्यष्टि की कोई क्रिया अथवा संकेत जो किसी अन्य व्यष्टि के व्यवहार का प्रतिरूप बदल देता है।
   ii) विकास के द्वारा स्थापित व्यवहार प्रतिरूप जिनके द्वारा संचार हो सके।
   iii) नियमित अंतरालों पर होने वाले अपरिवर्तनीय अनुक्रम
   iv) (क) परभक्षी को डराना/शिकार को ललचाना/मैथुनी को आकर्षित करना
   (ख) प्रणय/चेतावनी
   v) सतहों को एक-दूसरे के प्रति रगड़कर ध्वनि पैदा करना
   vi) ऐंटेना

vii) (क) कर्मियों को सूचना देना कि आहार निकट ही है (छत्ते से 50 मीटर के भीतर)
(ख) साथी कर्मी मक्खियों को सूचित करना कि आहार-स्रोत छत्ते 50 मीटर से दूर है।

4. i) जनन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विपरीत लिंग को आकर्षित करने के रास्ते प्रणियों में पाए जाने वाले विशेषित व्यवहार प्रतिरूप
ii) नर दृष्टि प्रदर्शन प्रस्तुत करता है, कामद उपहार भेंट करता है या फिर मादा को आकर्षित करने के लिए समस्पीशीज़ी सदस्यों के साथ लड़ता है। मादा उसे चुन लेती है या अस्वीकार कर देती हैं।
iii) आहार/शुक्राणुधर/रेशम गुब्बारे

5.(क) i) मधुमक्खी-रानी (जननक्षम मादा), कर्मी (बंध्य मादाएं), ड्रोन (जननक्षम नर)
ii) दीमकें
(1) राजा और रानी (प्राथमिक जननकर्ता)
(2) पूरक जननकर्ता (नर और मादाएं)
(3) कर्मी (बंध्य नर तथा मादांए)
(4) सैनिक (बंध्य नर और मादाएं)

(ख) ऐसे कीट जिनमें अतिविकसित और सुनिश्चित वर्ण जातियां होती हैं।

6. i) ऐसा निकट और नियमित अंतरास्पीशीज़ी साहचर्य जिसमें एक जीव दूसरे जीव से पोषण प्राप्त करता है।
ii) हुक, चूषक, आसंजी स्राव
iii) परजीवी उस आहार का अवशोषण करते हैं जिसे परपोषी पहले ही पचा चुका है।

अंत में कुछ प्रश्न

1. देखिए उपभाग 15.3.1
2. देखिए भाग 15.3
3. देखिए भाग 15.4
4. देखिए उपभाग 15.4.3
5. देखिए उपभाग 15.5.2
6. देखिए उपभाग 15.5.1

7. (क) किसी स्पीशीज़ की बहुत सी व्यष्टियां एक साथ सहवासी रूप में रहते हुए जीवन की ज़िम्मेदारियां परस्पर बांट लेती होती हैं।
(ख) परभक्षियों/घुसपैठियों से सुरक्षा के सामूहिक साधन; आहार का सहकारी संग्रह एवं मिल-बांटना
(ग) समूह के भीतर प्रतिस्पर्द्धा, संतति की हानि का ख़तरा, महामारियों/ परजीवियों से सहज प्रभाविता

आभार

चित्र 15.3; 15.12b	The Illustrated Éncyclopedia of Animals (Exter Books) से
चित्र 15.6 a तथा b; 15.7; 15.11; 15.12 a	Living Invertebrates, Pearse and Bushsbaum (Blackwell Scientific Publication) से
चित्र 15.8	The Unity and Diversity of Life, Starr and Taggart (Wadsworth Publishing Company Inc.)
चित्र 15.10a तथा b	Biology, Arms and Camp (CBS College Publishing) 3rd Edition
चित्र 15.15	Animal Behaviour (Time Life Series)
चित्र 15.21	Animal Behaviour John Alcock

इकाई 16 हानिकर अकशेरुकी

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

16.2 परजीवी प्लैटिहेल्मिंथीज़
क्लास मॉनोजीनिया
क्लास ट्रीमैटोडा
क्लास सेस्टोडा

16.3 परजीवी नीमैटोड
क्लास नीमैटोडा
पादप परजीवी नीमैटोड
प्राणि-परजीवी

16.4 क्षतिकारक तथा हानि आर्थ्रोपोड
चिकित्सा, पशु-चिकित्सा तथा कृषि महत्व के ऐरेक्निड
मानव चिकित्सा महत्व के कीट
घरेलू महत्व के कीट
पशु-चिकित्सा महत्व के कीट
कृषि महत्व के कीट

16.5 सारांश

16.6 अंत में कुछ प्रश्न

16.7 उत्तर

16.1 प्रस्तावना

खण्ड 1 तथा 2 में हमने प्राणि-जगत में पायी जाने वाली विविधता के विषय में एक काफ़ी अच्छी पृष्ठभूमि जानकारी प्राप्त कर ली है। हमने प्रोटोजोअनों तथा मेटाज़ोअनों के विविध समूहों के विषय में और उनके नानाविध विशिष्ट लक्षणों के विषय में भी जानकारी हासिल कर ली हैं। खण्ड 3 की इकाइयों में हमने इन सभी समूहों की संरचनात्मक संघटना और उनकी संरचनाओं के कार्यों के विषय में भी जान लिया है। इनमें से अधिसंख्य प्राणी स्वच्छंद जीवन बिताने वाले होते हैं। जबकि कुछ एक अन्य जीवधारियों के साथ साहचर्य बना कर रहते हैं। अन्य जीवों पर उनकी निर्भरता आश्रय के लिए, परिवहन के लिए या फिर आहार प्राप्त करने के लिए हो सकती हैं। यह निर्भरता बहुत गहरी और अति निकटता वाली हो सकती है। ऐसा ही एक साहचर्य है परजीविता। परिभाषा के रूप में यह एक ऐसा नियमित और निकट साहचर्य कहा जा सकता है जिसमें परजीवी परपोषी के ऊपर अथवा उसके शरीर के भीतर रहता और उसी से अपना पोषण प्राप्त करता है मगर यह ज़रूरी नहीं कि वह उसे नष्ट कर ही दे। खण्ड 2 की इकाई 4 में आप कुछ परजीवियों के विषय में पढ़ चुके हैं। प्रकृति में इनमें से अनेक परजीवी स्वयं अपने आप जीवित नहीं रह सकते। ये परजीवी अपने परपोषी के साथ संसाधनों को बांटता है या फिर उसे उससे वंचित कर देता है। परजीवी अपने परपोषी में कई प्रकार से क्षति पहुंचा सकता है जैसे कि उसके ऊतकों का विनाश करके अथवा कोई रोग पैदा करके या कुछ चरम मामलों में परपोषी के भीतर अपने अविषी उपापचयनों को छोड़कर जिससे उसकी मृत्यु तक हो सकती है।

तो, इस प्रकार कुछ अकशेरुकी अपने परपोषियों में, जो मानव सहित प्राणी दोनों ही हो सकते हैं, में रोग पैदा करते हैं। मगर कुछ अकशेरुकी ऐसे हैं जो परोक्ष रूप में हानिकर होते हैं, क्योंकि वे विविध परजीवियों अथवा रोगजनक कारकों को एक परपोषी से दूसरे परपोषी में प्रेषित करते हैं, ऐसे जीवों को रोगवाहक (vectors) कहते हैं। इस प्रकार वे भयानक रोगों को फैलाते हैं। अतः आइए इस इकाई में हम अकॉर्डेटों में से कुछ ऐसे प्राणियों का अध्ययन करेंगे जो मानव के दृष्टिकोण में किसी न किसी प्रकार हानिकर होते हैं और इसलिए वे मानव चिकित्सा, पशुचिकित्सा अथवा कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

जब हम विभिन्न अकशेरुकी समूहों पर निगाह डालते हैं तो पता चलता है कि मानव स्वास्थ्य तथा/अथवा अर्थव्यवस्था में जो मुख्य हानिकारक स्पीशीज़ हैं वे प्रोटोजोअनों, प्लैटिहेल्मिंथीज़, नीमैटोडों तथा आर्थ्रोपोडों के अंतर्गत आती हैं। इनमें से प्रोटोज़ोअनों, के विषय में इससे पहले की एक इकाई में चर्चा कर चुके हैं। इस इकाई में हम फ़ाइलम् प्लैटिहेल्मिंथीज़, नीमैटहेल्मिंथीज़ तथा आर्थ्रोपोड़ा से कुछ चुने हुए सदस्यों के विषय में अध्ययन करेंगे। ये परजीवी किस प्रकार अपना जीवन-चक्र चलाते और अपने परपोषियों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं इस पर भी चर्चा करेंगे। इस जानकारी से हमें यह भी अंदाज़ा लगेगा कि प्रकृति इस परजीवियों आदि के फैलने तथा प्रसार को किस प्रकार रोका जा सकता एवं उनका नियंत्रण किया जा सकता है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद आप ये सब बातें कर सकेंगे :-

- मानव चिकित्सा-पशुचिकित्सा तथा कृषि महत्व के कुछ ख़ास हेल्मिंथ परजीवियों के नाम बता सकेंगे।
- ये हेल्मिंथ किस प्रकार अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं तथा एक परपोषी से दूसरे परपोषी में किस प्रकार पहुंचते हैं, इस सबकी विधियों का वर्णन कर सकेंगे।
- पादपों, प्राणियों तथा मानव के लिए रोगवाहकों के अथवा रोगजनकों के रूप में कार्य करने वाले कुछ महत्वपूर्ण आर्थ्रोपोडों के उदाहरण दे सकेंगे।
- ऐसी विधियों को पहचान सकेंगे जिनके द्वारा परजीवियों के प्रसार एवं संचरण को रोका जा सकता है।

16.2 परजीवी प्लैटिहेल्मिंथीज़

इस इकाई को पढ़ना शुरू करने से पहले यदि आप वर्गीकरण के संबंधित अनुभागों को फिर से पढ़ लें तो अच्छा रहेगा। फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिथीज़ में आने वाले ये तीन क्लास मॉनोजीनिया, ट्रीमैटोडा तथा सेस्टॉयडीया (पहले का सेस्टोडा) अपना सम्पूर्ण जीवन-चक्र में अथवा उसके किसी अंश में परजीवी होते हैं। ट्रीमैटोड तथा सेस्टोड स्पीशीज़ पशु-चिकित्सा महत्व की हैं और साथ ही मानव-स्वास्थ्य के लिए भी इनसे चिंता बनी रहती है। मॉनोजीनियन प्रायः निम्नतर कशेरूकियों के बाह्यपरजीवी होते हैं, और उनमें भी विशेषकर मछलियों के।

16.2.1 क्लास मॉनोजीनिया (Class Monogenea)

अधिकतर मॉनोजीनियम बाह्यपरजीवी होते हैं और वह भी ख़ासतौर से मछलियों के कुछ एक पर्णाभ (flukes) विविध जलीय कशेरुकियों के मूत्राशय में भी पाए जाते हैं।

मॉनोजीनियन पर्णाभ छोटे 1 मि.मी से 2 मि.मी से भी कम होते हैं। वे वृत्ताकार अथवा स्पिंडल की आकृति के होते हैं तथा पृष्ठ-अधरतः चपटे होते हैं। इनके शरीर में एक शीर्ष, घड़ तथा हैप्टर (haptor जिसे ओपिस्थेप्टर, Opisthaptor भी कहते हैं) होते हैं (चित्र 16.1)। शीर्ष में मुख चूषक नहीं होता मगर उसमें आसंजक ग्रंथियां (adhesive glands) होती हैं जिन्हें "शीर्ष-अंग" भी कहा जाता है। एक संम्मिश्र सुविकसित ओपिस्थेप्टर पश्च सिरे पर होता है जो इन परजीवियों को अपने परपोषी पर कसकर चिपकने में सहायता करता है तथा परपोषी के गिलों एवं उसकी त्वचा पर जल के प्रवाह को भी सहन कर लेता है।

मॉनोजीनियनों का ओपिस्थैप्टर अलग-अलग स्पीशीज में भिन्न होता है और उस पर तरह-तरह के हुक, चूषक एवं क्लैम्प अकेले या मिले-जुले बने हो सकते हैं। इन पर आसंजी स्राव भी मौजूद हो सकते हैं। अग्र सिरे पर एक या एक से अधिक चूषक होते हैं जो सामान्यतः इतने सुविकसित नहीं होते जितने कि डॉइजेनिटिक पर्णाभों के।

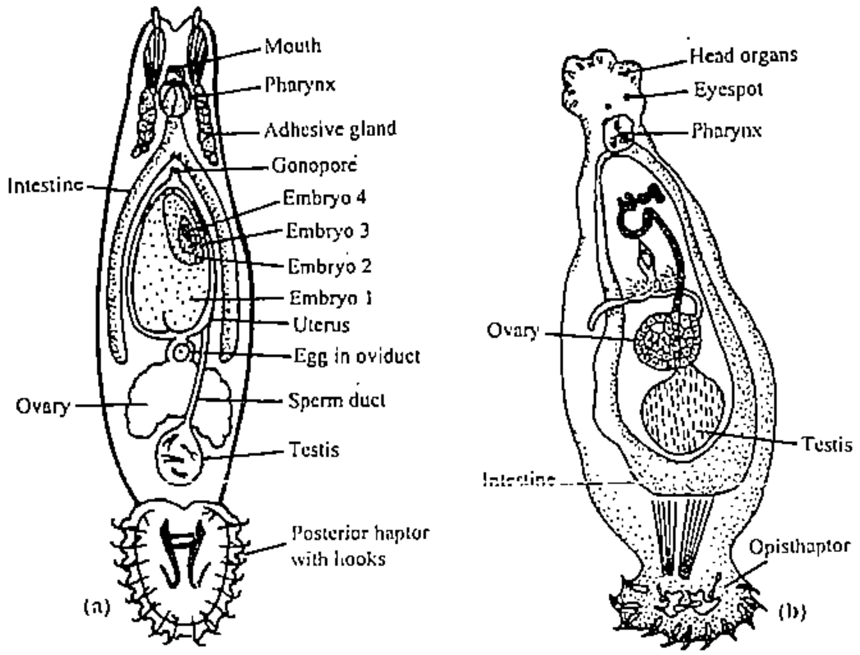

चित्र 16.1 : कुछ वाह्यपरजीवी मॉनोजीनियन। (a) *गाइरोडैक्टिलस (Gyrodactylus)*, एक मत्स्य परजीवी जो मछली-तालाबों और हैचरियों में जहां बहुत मछलियां होती हैं गंभीर पीड़क होता है। (b) *डैक्टिलोगाइरस वैस्टेटर (Dactylogyrus Vastator)* अलवणजल मछलियोंके गिलों पर वाह्यपरजीवी होता है, साथ ही यह मछली हेचरियों में गंभीर पीड़क भी होता है।

मॉनोजीनियनों में कोई मध्यस्थ परपोषी नहीं होता। इनमें एक अंडे से केवल एक ही वयस्क कृमि बनता है, इसीलिए यह नाम मॉनोजीनिया अर्थात "एक पीढ़ी" दिया गया है।

अण्डे से एक स्वच्छंद तैरने वाला सिलियायित लार्वा निकलता है जिसे ऑन्कोमिरेसिडियम (oncomiracidium) कहते हैं। यह लार्वा अपने ओपिस्थैप्टर की सहायता से अपने परपोषी पर चिपक जाता है और जल्दी से कायांतरण करके वयस्क बन जाता है।

16.2.2 क्लास ट्रीमैटोडा (Class Trematoda)

क्लास ट्रीमैटोडा में पर्णाभ आते हैं। इनमें से अधिकतर पर्णाभ कुछ ही मिलीमीटर लम्बे होते हैं (चित्र 16.2)। ये सभी परजीवी होते हैं। इनमें से कुछ अपने परपोषी की बाहरी सतह पर रहते हैं तो कुछ अन्य अंतः परजीवी के रूप में परपोषी के शरीर के भीतर रहते हैं।

क्लास ट्रीमैटोडा में डाइजीनिया आते हैं, जो एक बड़ा तथा आर्थिक एवं चिकित्सा की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण टैक्सॉन है।

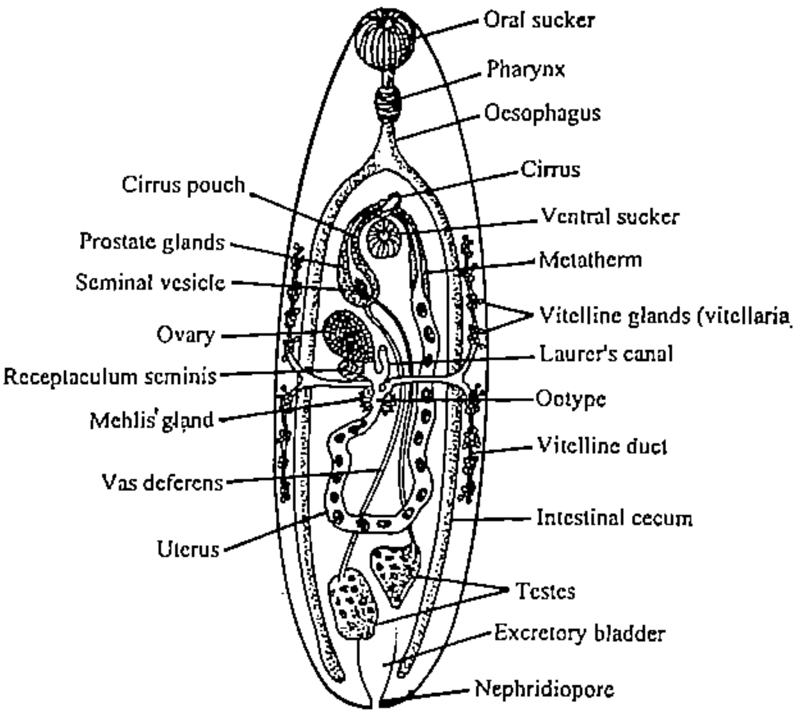

चित्र 16.2: एक सामान्यीकृत ट्रीमैटोड का आरेख

अधिसंख्य डाइजीनियन ट्रीमैटोड अपने अंतिम परपोषियों के पाचन पथ में रहते हैं। मगर कुछ स्पीशीज़ पित्त वाहिनियों में, कुछ फेफड़ों के भीतर और कुछ अन्य निवाहिका शिरा रक्त में रहती हैं।

डाइजीनिया मानव सहित उच्चतर प्राणियों में संक्रमण करते हैं। ये सभी कशेरुकी-क्लासों के सामान्य परजीवी है। इनकी कुछ स्पीशीज़ ख़ास तौर से वे जो यकृत, फेफड़ों और रक्त में रहती हैं मानवों तथा पशुधन की गंभीर रोगजनक होती हैं क्योंकि इन परपोषियों में रहते हुए वे इनमें अति दुर्बलकारी रोग पैदा करते हैं।

जीवन-चक्र

लगभग सभी डाइजेनिटिक ट्रीमैटोड कशेरूकियों के भीतर अंतः परजीवी होते हैं। ये इनके प्राथमिक अथवा अन्त्य परपोषी होते हैं क्योंकि इनका लैंगिक जनन कशेरूकी परपोषी में ही होता है। उनके इस परपोषी को अन्त्य परपोषी (definitive host) कहते हैं। डाइजीनियनों में सामान्यतः उनका प्रथम मध्यस्थ परपोषी कोई अकशेरुकी ही होता है। इस प्रकार डाइजीनियनों का जीवन चक्र संम्मिश्र प्रकार का होता है जिसमें कम से कम दो पीढ़ियां और दो परपोषी आते हैं। इसी आधार पर इनका यह नाम "डाइजीनिया" अर्थात दो पीढ़ियों वाला दिया गया है। इस प्रकार के जटिल जीवन-चक्र में दो या अधिक मध्यस्थ परपोषी हो सकते हैं जिनमें परजीवी की लार्वा अवस्थाएं संक्रमण करती हैं और उसके बाद आगे जीवन-चक्र चलता है। अंतिम लार्वा अवस्था अंतिम कशेरुकी परपोषी में, जिसे अन्त्य परपोषी कहते हैं, में पहुंचती है और उसी के भीतर परजीवी लैंगिक जनन करता है।

परजीवी के लार्वा-परिवर्धन में प्रायः कोई गैस्ट्रोपौड घोंघा (मौलस्क) ही प्रधान मध्यस्थ परपोषी होता है। कुछ स्पीशीज़ में एक दूसरा (मछली, केकड़ा या अन्य क्रस्टेशियन) और यहां तक कि एक तीसरा (ऐम्फ़िबियन, रेप्टाइल अथवा स्तनी) मध्यस्थ परपोषी भी हो सकता है। प्रथम मध्यस्थ परपोषी पर सफलतापूर्वक आक्रमण कर चुकने के बाद ये डाइजीनियन दो बार अलैंगिक विभाजन करते हैं जिससे इनकी संख्या में बहुत ज्यादा वृद्धि होती है और साथ ही इससे इनके अपने जीवन-चक्र को पूरा करने की संभावनाएं भी बहुत बढ़ जाती हैं।

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं डाइजीनियों के जीवन-चक्र अलग-अलग स्पीशीज़ में भिन्न होते हैं। यकृत-पर्णाभ फ़ैसियोला के जीवन-चक्र को इस इकाई के एक उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

यकृत पर्णाभ (फ़ैसियोला, *Fasciola*)

रोमंथी भेड़-बकरी और मवेशियों में, विश्व भर में पाया जाने वाला यकृत पर्णाभ *फ़ैसियोला*

हिपैटिका (Fasciola hepatica) (चित्र 16.3) है। यह एक गंभीर रोग "लिवर-रॉट" (यकृत विगलन) पैदा करता है। *फ़ैसियोला इंडिका* एक भारतीय स्पीशीज़ है। वयस्क यकृत पर्णाभ परपोषी के यकृत में पित्त मार्गों के भीतर रहता है, जहां अधिक संक्रमण की स्थिति में बहुत ज़्यादा क्षति पहुंचाता है और यकृत-विगलन (ऊतकक्षय) पैदा होता है। पित्त के सामान्य प्रवाह में बाधा पड़ने से अवरोधगत पीलिया (जौंडिस) रोग हो जाता है (जीवन चक्र के लिए इसी पाठ्यक्रम की इकाई 4.6.2 को देखिए।)

चीनी यकृत पर्णाभ *क्लोनार्किस (ओपिस्थार्किस) साइनेनसिस* यकृत का पर्णाभ है जो आमतौर से चीन, दक्षिण एशिया एवं जापान में पाया जाता हैं

फेफड़ा-पर्णाभ- पैरागोनिमस

पैरागोनिमस (Paragonimus) (चित्र 16.4) जीनस की अनेक स्पीशीज़ मनुष्यों में तथा मांसभक्षी स्तनियों की अनेक स्पीशीज़ में फेफड़ों की परजीवी होती हैं। एक स्पीशीज़ पी. वेस्टरमेनाई *(P. westermani)* सुदूर-पूर्व अफ़्रीका तथा दक्षिण अमेरिका में व्यापक पायी जाती है। भारत में भी यह कभी-कभी पश्चिम बंगाल, असम तथा दक्षिण भारत के राज्यों में पायी गयी है।

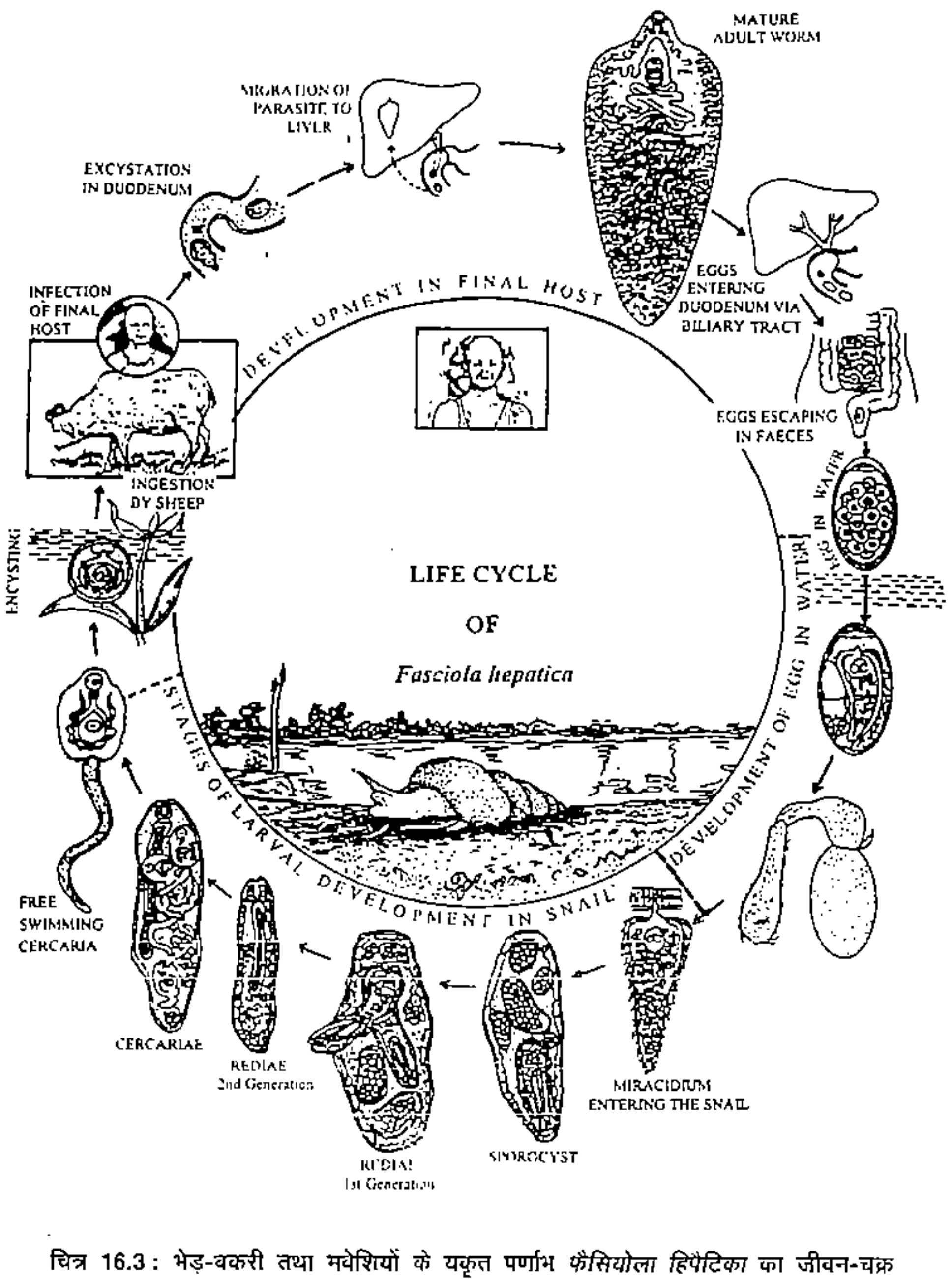

चित्र 16.3 : भेड़-बकरी तथा मवेशियों के यकृत पर्णाभ *फ़ैसियोला हिपैटिका* का जीवन-चक्र

पी. वेस्टरमेनाई के जीवन-चक्र में दो मध्यस्थ परपोषी होते हैं– घोंघा प्रथम मध्यस्थ परपोषी है तथा अलवणजलीय क्रेफ़िश अथवा केकड़ा दूसरा मध्यस्थ परपोषी होता है।

फेफड़ा-पर्णाभ के संक्रमण को रोकने का सबसे अच्छा उपाय है घोंघों की परपोषी स्पीशीज़ को समाप्त करना तथा केकड़ों और क्रेफ़िश को केवल अच्छी तरह पकाकर ही खाना चाहिए।

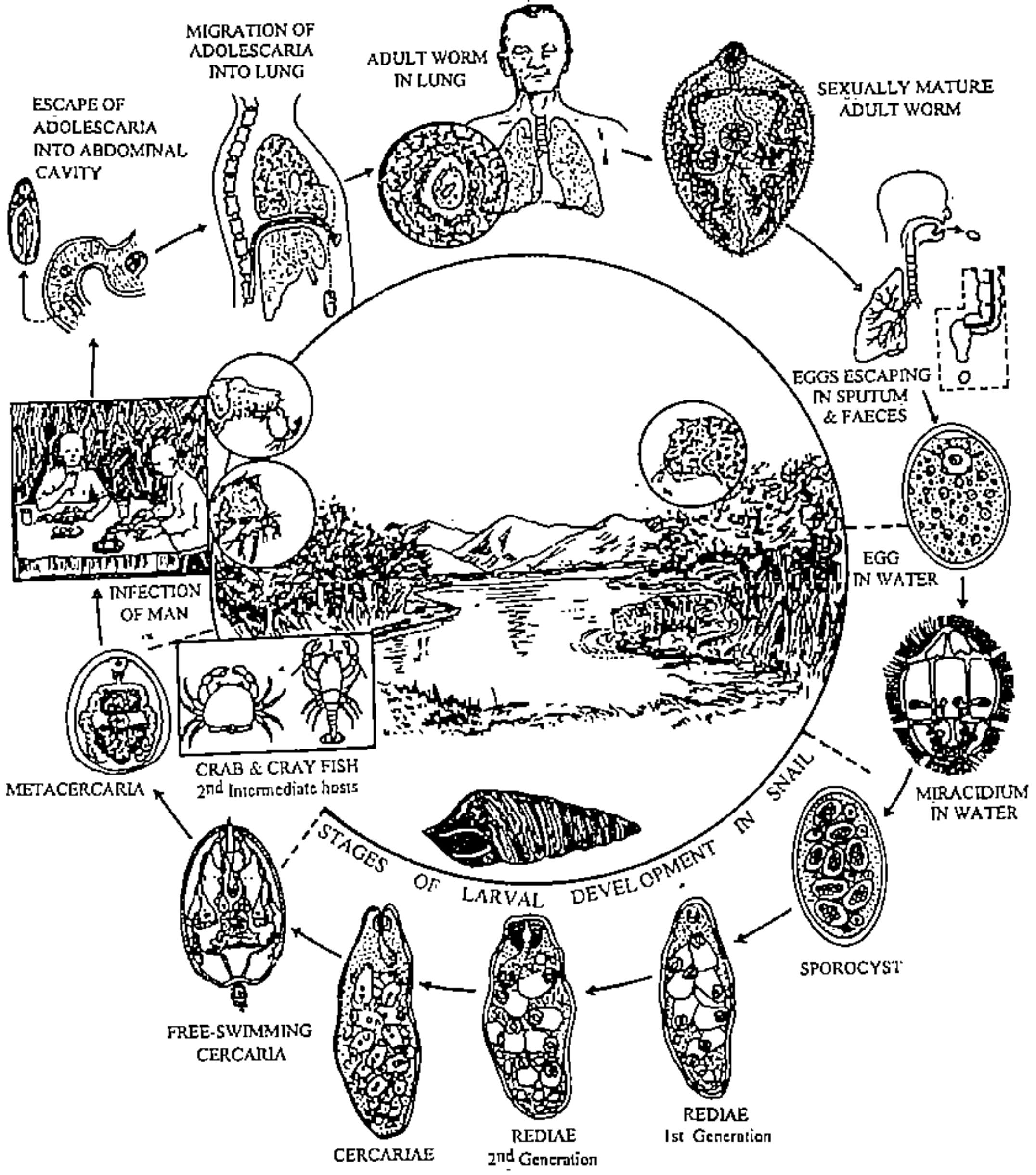

चित्र 16.4 : (a) वयस्क पैरागोनिमस वेस्टरमनाई, (b) सर्केरिया

रक्त पर्णाभ (Blood flukes) (*शिस्टोसोमा, Schistosoma*)

इनसे मानव रोग *शिस्टोसोमिऐसिस* पैदा होता है। इस जीनस की तीन महत्वपूर्ण स्पीशीज है :-

शिस्टोसोमा हीमैटोबियम, शिस्टोसोमा मैन्सोनाई तथा *शिस्टोसोमा जैपोनिकम* (चित्र 16.5) जो तीनों ही मानवों के गंभीर परजीवी हैं। (इसी पाठ्यक्रम की इकाई 4.6.2 भी देखिए)।

शिस्टोसोमों का आयु-काल 20-30 वर्षों का होता है। वयस्क *शिस्टोसोमा* मानवों में रहता और वह 2 से.मी. लम्बा तथा 1 मि.मी. मोटा हो सकता है। अन्य पर्णाभों से *शिस्टोसोमा* इस बात में भिन्न होता है कि यह पृथकलिंगाश्रयी (dioecious) होता है (चित्र 16.5)।

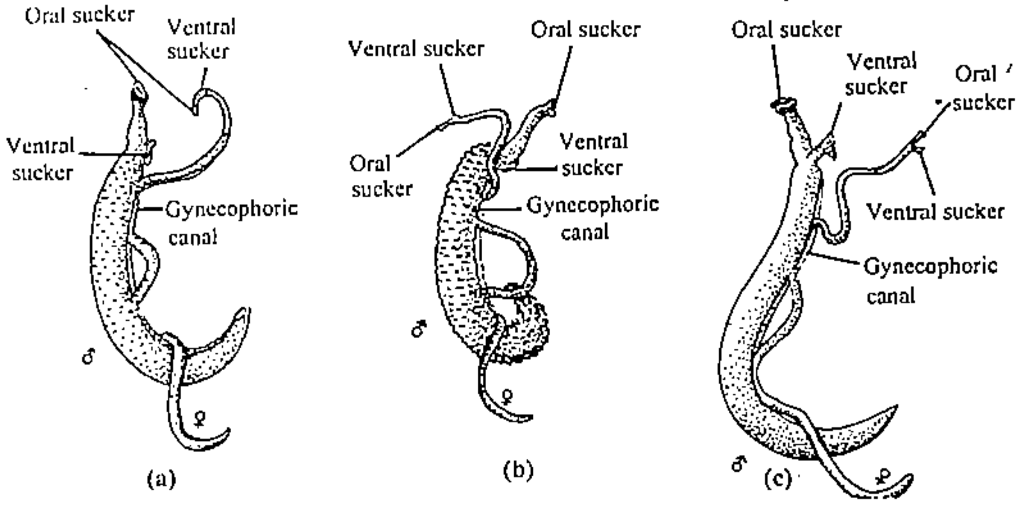

चित्र 16.5 : मानव के महत्वपूर्ण शिस्टोसोम। (A) *शिस्टोसोमा हीमैटोबियम*, (B) *एस. मैन्सोनाई* (C) *एस. जैपोनिकम*।

नर और मादा पर्णाभ भले ही पृथक तो होते हैं मगर इन दोनों का एक स्थायी जोड़ा बना रहता है। नर छोटा, अधिक चौड़ा और ज़्यादा भारी होता है और उसमें एक बड़ी अधर खांच होती है जिस *मादाधर नाल* (gynecophoric canal) कहते हैं और जो अधर चूषक के पीछे-पीछे बनी होती है और जिसके भीतर अधिक पतली और लम्बी मादा स्थित रहती है। अलग-अलग स्पीशीज़ पर निर्भर करते हुए शिस्टोसोम शरीर के अलग-अलग अंगों की रक्त शिरिकाओं में रहते हैं और उनके अपने-अपने विशिष्ट मध्यस्थ घोंघा परपोषी होते हैं।

शिस्टोसोमा मैन्सोनाई (*Schistosoma mansoni*) मूलतः उन शिरिकाओ (venules) में रहता है जो बड़ी आंत्र से रक्त लाती हैं, तथा यह परजीवी अफ़्रीका, दक्षिण अमेरिका के उत्तरी भागों एवं पश्चिमी द्वीप समूह में व्यापक पाया जाता है। इसके मुख्य मध्यस्थ घोंघे परपोषी बाइओम्फ़ेलेरिया (Biomphalaria) की स्पीशीज़ होती है।

शिस्टोसोमा हीमैटोबियम (*Schistosoma haematobium*) मूत्राशय की शिरिकाओं में पाया जाता है। इसका भौगोलिक वितरण है मध्य पूर्व, तथा अफ़्रीका के कुछ भाग। इसके मुख्य मध्यस्थ घोंघे परपोषी ब्यूलिनस (Bulinus) तथा फ़ाइसॉप्सिस (Physopsis) जीनसों में आते हैं।

एस. जैपोनिकम (*S. Japonicum*) अधिकतर छोटी अंतड़ी की शिरिकाओं में रहता है तथा यह जापान तथा सुदूर पूर्व के देशों में पाया जाता है। इसके मुख्य मध्यस्थ घोंघे-परपोषी ऑन्कोमेलैनिया (Oncomelania) की विभिन्न स्पीशीज़ के होते हैं।

रक्त पर्णाभों का जीवन-चक्र सामान्यतः सभी स्पीशीज़ में एक ही जैसा होता है। इस इकाई में हम *शिस्टोसोमा मैन्सोनाई* के जीवन-चक्र का अध्ययन करेंगे।

शिस्टोसोमा मैन्सोनाई का जीवन-चक्र

वयस्क नर और मादा का जोड़ा (युगल) मनुष्यों में रहता है। और बड़ी अंतड़ी की शिरिकाओं में रहता है। मादा अपने अण्डे छोटी अंतड़ी की शिरिकाओं में देती है। अपने कांटे का उपयोग करते हुए अण्डा अंतड़ी को वेधता हुआ उसकी अवकाशिका में पहुंच जाता है और वहां से बाहर को निकाल दिया जाता है। परपोषी में बाहर आने के समय हर अण्डे में एक पूर्णविकसित सिलियायित मिरैसिडियम होता है। जल के सम्पर्क में आने पर अण्डे में से मिरैसिडियम निकलकर जल में आ जाते हैं। मिरैसिडियम अपने विशिष्ट मध्यस्थ परपोषी जो कि एक अलवणजलीय घोंघा होता है, को ढूंढता और उसे वेध कर उसके भीतर प्रविष्ट हो जाता है। इस स्पोरोसिस्ट में दूसरी पीढ़ी के अनेक स्पोरोसिस्ट बन जाते हैं। संतति स्पोरोसिस्टों से बिना रीडिया में से गुज़रे सीधे सर्केरिया (cercaria) बन जाते हैं। घोंघा परपोषी में से सर्केरियां बाहर आ

जाते और अपनी द्विशाखी पूंछ से पानी में तैरते फिरते हैं। मानव परपोषी के सम्पर्क में आने पर वे त्वचा को वेधकर त्वचीय रक्त वाहिकाओं में पहुंच जाते और अपने को एक बाल्य अथवा *शिस्टोसोम्युला* (Schistosomula) में बदल लेते हैं।

शिस्टोसोम्युले अपनी प्रवास यात्रा में परिसंचरण तंत्र के द्वारा फेफड़ों, उसके बाद यकृत और फिर अंततः अपने अंतिम लक्ष्य स्थान यानी बड़ी अंतड़ियों की शिरिकाओं में पहुंच जाते हैं।

त्वचा में से वेधने के दौरान सर्केरिया प्रवेश स्थल पर स्थानीय त्वचा शोथ (डर्मेटाइटिस) पैदा कर देते हैं। यकृत के निवाहिका-तंत्र के भीतर अपनी वृद्धि प्रावस्था के दौरान ये परजीवी अविषी उपापचयज छोड़ते हैं जिनसे ज्वर हो जाता तथा जिगर और तिल्ली बढ़ जाते हैं। रक्त कोशिकाओं में से बाहर जाते समय अण्डे व्यापक क्षति पहुंचाते हैं। यकृत जैसे ऊतकों में रहते हुए अण्डों के चारों ओर ऊतक प्रतिक्रियाएं होती हैं जिसके परिणामस्वरूप ग्रंथिकाएं बन जाती हैं जो धीरे-धीरे अनुत्क्रमणीय कैल्सीकृत हो जाती हैं और इस तरह उस अंग को हानि पहुंचाती हैं। यकृत में ये परिसंचरण में रुकावट डाल सकती और सिर्रोसिस पैदा करती हैं, एवं उस अंग के सामान्य कार्य करने में बाधा डालती हैं।

बोध प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों में उचित शब्द लिखिए :-

(i) पर्णाभों के मुक्त तैरने वाले, सिलियायित लार्वा को.......................................कहते हैं।

(ii) रोमंथको के विश्वव्यापी यकृत पर्णाभ का वैज्ञानिक नाम.......................................है।

(iii) चीनी यकृत पर्णाभ का मेटासर्केरिया मध्यस्थ परपोषी.........................में पाया जाता है।

(iv) *पैरागोमिनस* एक मानव परजीवी है जो...................................में पाया जाता है।

(v) फेफड़ा पर्णाभ का दूसरा मध्यस्थ परपोषी या तो.....................या.....................होता है।

(vi) *शिस्टोसोमा हीमैटोबियम* का मुख्य मध्यस्थ घोंघा परपोषी................जीनस में आता है।

2. बताइए कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत :-

(i) डाइजीनियन पर्णाभ का केवल एक ही परपोषी होता है। ☐

(ii) फेफड़ा पर्णाभ भारत में नही पाया जाता। ☐

(iii) *शिस्टोसोमा मैन्सोनाई* अधिकतर बड़ी अंतड़ी की शिरिकाओं में पाया जाता है। ☐

(iv) *फ़ैसियोला हिपैटिका* का मध्यस्थ परपोषी एक घोंघा होता है। ☐

16.2.3 क्लास सेस्टोडा (Class Cestoda)

सभी फ़ीताकृमियों के वयस्क कशेरुकी आहार नाल के अंतः परजीवी होते हैं। इनके मध्यस्थ परपोषियों में से एक सामान्यतः अकशेरुकी होता है। अल्पवयस्क अवस्थाएं अकॉर्डेटों के तथा कशेरुकियों के भी विविध ऊतकों में पायी जाती है। सेस्टोडों की अनेक स्पीशीज़ मानव में तथा आर्थिक महत्व के प्राणियों में पायी जाती हैं। जिनमें से दो सर्वाधिक आर्थिक महत्व की स्पीशीज़ हैं *टीनिया सोलियम* तथा *टीनियारिंकस* (टीनिया) *सैजिनैटस* (इसी पाठ्यक्रम की इकाई 4.6.2 भी देखिए)।

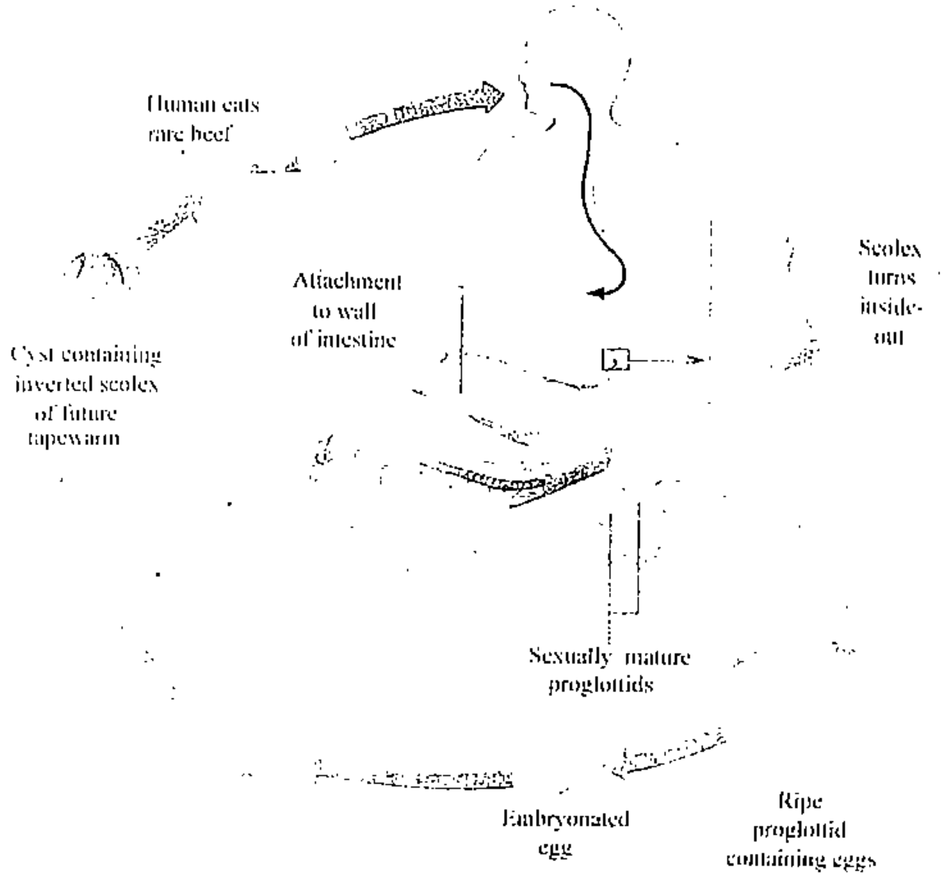

चित्र 16.6 : *टीनिया सोलियम* (शूकरमांस फ़ीताकृमि) का जीवन-चक्र

टीनिया सोलियम (सूअर का फ़ीता कृमि) तथा *टीनियोरिंकस (टीनिया) सैजिनैटस* (गोमांस फ़ीता कृमि)

टीनिया सोलियम तथा *टीनियोरिंकस सैजिनैटस* (*Taeniorhynhus saginatus*) मानव में पायी जाने वाली विश्वव्यापी फ़ीताकृमि स्पीशीज़ हैं। जैसाकि आपको याद होगा *टीनिया सोलियम* का मध्यस्थ परपोषी सूअर है जिसके कारण इसे सूअर-मांस अथवा सूअर फ़ीताकृमि कहते हैं। टीनियोरिंकस सैजिनैटस का मध्यस्थ परपोषी गाय-बैल होते हैं जिससे इसे गोमांस फ़ीताकृमि कहते हैं (चित्र 16.6)।
मनुष्यों में भारी संक्रमण होने पर अनेक परेशानियां होती हैं जैसे पाचन समस्याएं, दस्त लगना, वज़न घटना, पेट में दर्द, अंतड़ी की अवकाशिका में अक्सर रुकावटें आना और कृमि के आविषी अपशिष्टों से होने वाली प्रतिक्रियाएं। मांस को ठीक से पकाने तथा बेहतर स्वास्थ्य विधियां अपनाने से *टीनिया* संक्रमणों को रोका जा सकता है।

हाइमेनोलेपिस नाना (Hymenolepis nana) छोटा फ़ीताकृमि

हाइमेनोलेपिस नाना मनुष्यों का एक अन्य फ़ीताकृमि है। इसका परिवर्धन प्रायः सीधा बिना किसी मध्यस्थ परपोषी के होता है। अण्डे बाहर निकल जाते और किसी न किसी प्रकार एक अन्य मानव परपोषी द्वारा अंतः ग्रसित कर लिए जाते हे और उसकी डुओडिनम मे, उनमें से ऑन्कोस्फ़ीयर या हेक्सेकैंथ भ्रूण बाहर निकल आते हैं।

डाइफ़िल्लोबॉथ्रियम लैटम (Diphyllobothrium latum) (मछली का फ़ीताकृमि)

वयस्क डाइफ़िल्लोबॉथ्रियम लैटम मानव, कुत्ता, बिल्ली तथा अन्य स्तनियों की अंतड़ी में पाया जाता है। इसकी अपरिपक्व अवस्थाएं कोपीपॉडों (क्रस्टेशियन) तथा मछली में पायी जाती हैं जो इसके मध्यस्थ परपोषी होते हैं।

इकाइनोकॉक्कस ग्रैनुलोसस (Echinococcus granulosus) (कुत्ते का फ़ीताकृमि)

मानवों में पाया जाने वाला एक सबसे गंभीर लार्वा-सेस्टोड संक्रमण *इकाइनोकॉक्कस ग्रैनुलोसस* से पैदा होता है (इसी पाठ्यक्रम की इकाई 4 देखिए)।

वयस्क परजीवी केनाइन (कुत्ता वर्ग) प्राणियों की अंतड़ी में पाया जाता है और केवल 3 से 6 मि. मी. लम्बा होता है। इसमें एक स्कोलेक्स तथा 3 या 4 खण्डों वाला एक स्ट्रॉबिला होता है। लार्वा-अवस्थाएं अनेक स्तनियों में जैसे कि भेड़ों, मवेशियों, घोड़ों और यहां तक कि मनुष्यों में भी पायी जाती हैं जो मध्यस्थ परपोषियों का कार्य करते हैं अतः इस उदाहरण में मध्यस्थ परपोषी के रूप में मानव होते हैं और कुत्तों के सम्पर्क में रहते हुए अस्वच्छ आदतों के कारण संक्रमण प्राप्त कर लेते हैं।

अण्डें मध्यस्थ परपोषी द्वारा अंतग्रसित कर लिए जाते हैं और उनकी अंतड़ी में अण्डों से ऑक्सोस्फ़ीयर अथवा हेक्सैकैंथ निकल आते हैं। हेक्सैकैंथं अंतड़ी में से निकल कर रक्त परिसंचरण के द्वारा विविध अंगों में पहुंच जाते हैं जैसे कि फेफड़ों, यकृत, गुर्दों, हृदय, मस्तिष्क और यहां तक कि हड्डियों तक में पहुंच जाते हैं। इन अंगों में ऑन्कोस्फ़ीयर में परिवर्धन होकर एक लार्वा स्वरूप हाइडैटिड सिस्ट (hydatid cyst) बन जाती है। हाइडैटिड सिस्ट एक ब्लैडरवर्म होता है जिसमें एकल कक्ष अथवा एकलकोष्ठकी कक्ष होता है जिसके भीतर बहुसंख्यक संतति पुटियां अथवा ब्लैडरवर्म बन जाते अथवा मुकुलित हो जाते हैं। और फिर स्वयं इनमें से हर एक में उसके भीतर अनेक स्कोलेक्स बन जाते हैं। (कैनाइन परपोषी द्वारा खा लिए जाने पर प्रत्येक स्कोलेक्स से एक कृमि बन जाता है)। समय के साथ-साथ हाइडेटिड पुटी बहुत बड़े आकार की, यहां तक कि 15 से.मी. व्यास तक की बड़ी हो सकती है। अपने साइज़ तथा स्थान पर निर्भर करते हुए यह पुटी (सिस्ट) मध्यस्थ परपोषी में नानाविध मात्रा में हानि पहुंचा सकती है। मनुष्य में सिस्ट के फूट जाने से अविषी प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं (ज्वर, उल्टियां, पक्षाघात और यहां तक कि मृत्यु भी)। यदि हाइडैटिड सिस्ट किसी मर्मांग में जैसे कि हृदय अथवा केंद्रीय तंत्रिका में बढ़ रही हो तो गंभीर लक्षण प्रकट होते हैं। हाइडैटिड सिस्टें संक्रमण आरंभ होने के बहुत-बहुत वर्ष बाद तक जीवित और जीवनक्षम बनी रह सकती हैं, तथा मनुष्यों में केवल शल्य क्रिया द्वारा ही इनसे छुटकारा पाया जा सकता है। स्वयं अपनी और पालतू कुत्तों की उचित सफ़ाई और स्वास्थ्यरक्षा सावधानियों आदि का पालन करना ही हाइडैटिड संक्रमणों से बचने के नियंत्रण उपाय हैं।

बोध प्रश्न 2

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए।

(i) सेस्टोडों को सामान्यतः .... कहा जाता है।

(ii) फ़ीताकृमि का शीर्ष सिरा ...., ...कहलाता है।

(iii) एक .... फ़ीताकृमि के शरीर का एक खण्ड होता है।

(vi) .... नामक फ़ीताकृमि गोमांस फ़ीताकृमि होता है।

(v) .... नामक फ़ीताकृमि शूकरमांस फ़ीताकृमि होता है।

(vi) .... मानव फ़ीताकृमि है जिसका सामान्यतः सीधा परिवर्धन होता है।

(vii) ....एक मछली फ़ीताकृमि है जिसे आपने इस इकाई में पढ़ा है।

(viii) मनुष्यों में कुत्ते के फ़ीताकृमि का ऑन्कोस्फीयर ....
सिस्ट नामक लार्वा स्वरूप में परिवर्धित होता है।

16.3 परजीवी नीमैटोड

16.3.1 क्लास नीमैटोडा

अनेक नीमेटोड पौधों और प्राणियों में परजीवी होते हैं (खाद्य फ़सलों, पालतू जानवरों तथा मानवों में)। इस वर्ग के वर्णन के लिए आप इसी पाठ्यक्रम की एक पहले की इकाई 4 उपअनुभाग 4.7 को पढ़िए जिसमें आपको इनके वर्गीकरण तथा इनकी संघटना के विषय में जानकारी मिलेगी। नीमैटोडों के साइज़ में बहुत विविधता मिलती है, ये सूक्ष्मदर्शीय से लेकर एक-एक मीटर तक के लम्बे हो सकते हैं। पादप परजीवी नीमैटोडों की अधिकतर स्पीशीज़ 0.3 मि.मी. से 5 मि.मी. तक लम्बी होती हैं। अनेक इससे भी छोटी होती हैं। अधिकतर स्वच्छंदजीवी नीमैटोड ज्यादा लम्बे होते हैं। प्राणि-परजीवी 5 मि.मी. से कम से लेकर 1 मीटर तक के भारी अंतर के साइज़ में पाए जाते हैं।

मुख गुहा में आमतौर से दांत अथवा कर्तन प्लेटें होती हैं। पादपपरजीवी नीमैटोडों में अक्सर एक "बर्छी" अथवा सूचिका होती है (चित्र 16.7)।

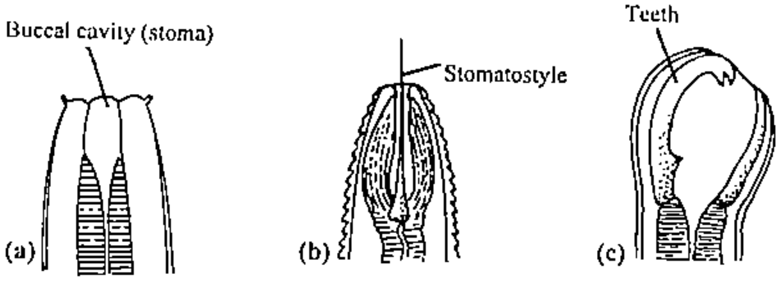

चित्र 16.7 : नीमैटोडों की मुख गुहाएं। (a) स्वच्छंदजीवी जीवाणुभक्षी रैब्डाइटिस *(Rhabditis)* (b) पादपजड़ परजीवी *क्राइकोनेमॉइडीस (Criconemoides)*, (c) आंत्र परजीवी *ऐंकाइलोस्टोमा (Ancylostoma)*

16.3.2 पादप परजीवी नीमैटोड

पादप परजीवी नीमैटोड फ़सली पौधों में व्यापक क्षति पहुंचाते हैं। जिससे भारी नुकसान होता है अधिसंख्य फ़सली पौधें इनसे प्रभावित होते हैं। यह क्षति या तो सीधे ही पहुंचती है या परोक्ष होती है जिसमें पादप नीमैटोड या तो पादप वाइरसों को भीतर प्रवेश करा देते हैं या पौधों के क्षतिग्रस्त क्षेत्रों से अन्य रोगजनक भीतर पहुंच जाया करते हैं। इन सभी में एक तेज़, नुकीली बहिःसारी मुख सूचिका अथवा "बर्छी" बनी होती है (चित्र 16.7 b)। इसी से ये पादप कोशिकाओं में सूराख करते हैं। इन्हीं सूराख़ की गयी कोशिकाओं में से परजीवी कोशिका रस चूसते हैं। नीमैटोड कोशिका के भीतर अपनी लार भी पहुंचा देता है जो पौधों के लिए आविषी होती है और संक्रमित पौधों में तरह-तरह के रोग लक्षण पैदा कर देता है।

पादप जीवी नीमैटोड रिसते हुए जल अथवा एक जगह से दूसरी जगह लायी-ले जायी जाने वाली मिट्टी के द्वारा एक खेत से दूसरे खेत में फैलते जाते हैं। बाढ़ के जल से भी व्यापक फैलाव होता है। संदूषित बीज सामग्री भी इन नीमैटोडों का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत होती है।

पौधों पर कुछ पादप परजीवी नीमैटोड आक्रमण के रोग लक्षण

एक नीमैटोड *ऐफ़ेलेंकॉइडीज़ (Aphelenchoides)* मुकुलों तथा प्ररोह अग्रों को नुकसान पहुंचाता

तथा स्तम्भ में विकृति पैदा करता एवं पत्तियों में फटना पैदा करता है। *ऐंग्विना* (*Anguina*) की बाल्यावस्थाएं गेहूँ की पत्तियों तथा दाने को क्षति पहुंचाता है। *डाइटिलेंकस* (*Ditylenchus*) आलू के कंद तथा प्याज़ के शल्क कंद में गलन पैदा करके भारी नुकसान पहुंचाता है। *प्रेटिलेंकस* (*Pretylenchus*) तथा *रैडोफ़ोलस* (*Radopholus*) मिर्ची, कॉफ़ी, मक्का, कपास, धान, अनन्नास, गेहूँ, केला, नारियल, शकरकंद, आलू आदि के जड़ में सड़न और गलन पैदा करते हैं। *मेलॉयडोगाइने* (*Meloidogyne*) (चित्र 16.9 a) अनेक पौधों और खास तौर से सॉलेनेसी पौधों की जड़ों में गॉल अथवा गांठें पैदा करता है। *मेलॉयडोगाइने* की विभिन्न स्पीशीज़ मिर्ची, टमाटर, बैंगन, गाजर, कपास तथा और बहुत-सी उपयोगी फसलों को प्रभावित करती हैं। नीमैटोड संक्रमण के कारण होने वाले कुछ विशिष्ट रोग लक्षण इस प्रकार हैं – फसल की बढ़वार में कमी, जाड़े से क्षति, वृक्षों में पत्ते मुरझाना, बीज से निकले नए-नए पौधों का मर जाना, बढ़वार न होना, पत्तों का फीका पड़ जाना या उनमें चकत्ते बन जाना। *हेटेरोडेरा* (*Heterodera*) की कई स्पीशीज़ जड़ों में पुटी बनाने वाले नीमैटोड होते हैं और ये शीततर देशों में पाए जाते हैं। इनकी मादा अंडों से भरी प्रतिरोधी पुटियां बनाती है। हेटेरोडेरा की स्पीशीज़ आलू, शकरकंद, जई, गेहूँ, बंदगोभी, तम्बाकू आदि को ख़राब करती हैं। फसलों की वृद्धि में कमी, शीत क्षति, पेड़ों का सूखना, पौधों का क्षय, पौधों के बढ़वार में कमी, पत्तियों में धब्बे आना एवं फसलों के पर्णसमूहों के रंग का बदलना आदि नीमैटोड के संक्रमण से होने वाले कुछ विशिष्ट लक्षण है।

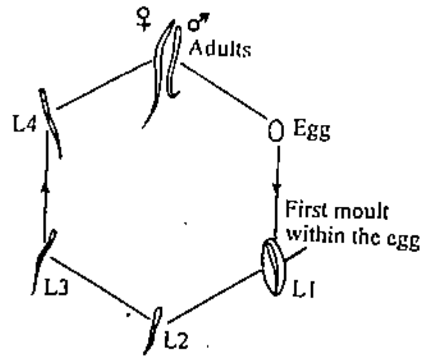

चित्र 16.8 : एक पादप परजीवी नीमैटोड का सामान्यकृत जीवन-चक्र जिसमें चार लार्वा अवस्थाएं L1, L2, L3, L4 दिखाई देती हैं

16.3.3 प्राणी परजीवी नीमैटोड

ऐसकैरियॉड नीमैटोडः पादपों की तरह करीब-करीब सभी कशेरुकी एवं अकशेरुकी प्राणी नीमैटोडों के परजीवी होते हैं।

नीमैटोड लगभग सभी कशेरुकियों तथा अकशेरुकियों में भी परजीवी होते हैं। इनमें से अनेक नीमैटोड मानवों तथा पालतू जानवरों के बड़े महत्वपूर्ण रोगजनक हैं। इनमें से एक नीमैटोड *ऐस्कैरिस लम्ब्रिकॉइडीस* मानवों का एक ख़ास पीड़क है (इस नीमैटोड के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए इसी पाठ्यक्रम की इकाई 4 देखिए)।

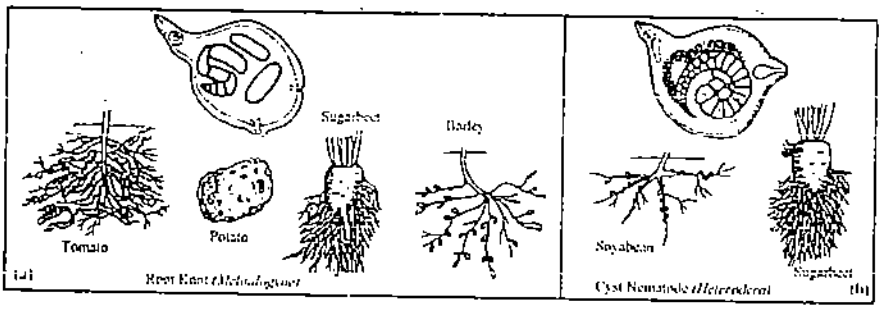

चित्र 16.9 : कुछ विशेष पादप परजीवी निमैटोड और उनके द्वारा क्षति (a) *मेलायॅडोगाइने (Meloidogyne)* स्पीशीज़, (b) *हेटेरोडेरा स्पीशीज़*

पिनकृमि (Pinworm) (*एंटेरोबियस वर्मिकुलेरिस*, ***Enterobius vermicularis***) (देखिए इकाई 4) पिनकृमि *ऐंटेरोबियस वर्मिकुलेरिस* बच्चों में सबसे ज़्यादा पाया जाता है। वयस्क कृमि लगभग 10 मि.मी. लम्बा होता है और वड़ी आंत्र के सीकम में रहता है। वयस्क मादा गुदा क्षेत्र में अण्डे देती है। इससे परिगुदा क्षेत्र में तीव्र खुजली होती है। खुजाते समय अंगुलियों के सिरे और नाखुन संदूषित हो जाते हैं। जब बच्चे अपनी उंगली मुंह में डालते या उंगली या अंगूठा चूसते हैं तब ये अण्डे निगल लिए जाते हैं। अंतड़ी में पहुंचकर अण्डे स्फोटित होते और उनसे निकले बच्चे 3-4 सप्ताह में वयस्क कृमि बन जाते हैं। इन परजीवियों से अपेक्षाकृत कोई ख़ास रोगलक्षण पैदा नहीं होते।

हुकवर्म (*ऐंकाइलोस्टोमा डुओडिनेल*, *Ancylostoma duodenale* (चित्र 16.10) तथा *नीकैटोर अमेरिकानस*, *Necator americanus*)

मानव के दो सामान्य हुकवर्म *ऐंकाइलोस्टोमा, डुओडिनेल* (पुरानी दुनिया में सामान्य) तथा *नीकैटोर अमेरिकानस* संसार के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के विकासशील राष्ट्रों में तथा शीतोष्ण क्षेत्रों में व्यापक पाया जाता है। इनके मुख क्षेत्रों में प्रायः कर्तन प्लेटें, हुक, दांत तथा इन सबकी मिली जुली व्यवस्था इन परजीवियों को परपोषी की आहार नाल की दीवार से चिपकने में सहायता करती है। वयस्क कृमि अंतड़ी की श्लेष्मा दीवार से संलग्न रहते हुए जीवन बिताते हैं।

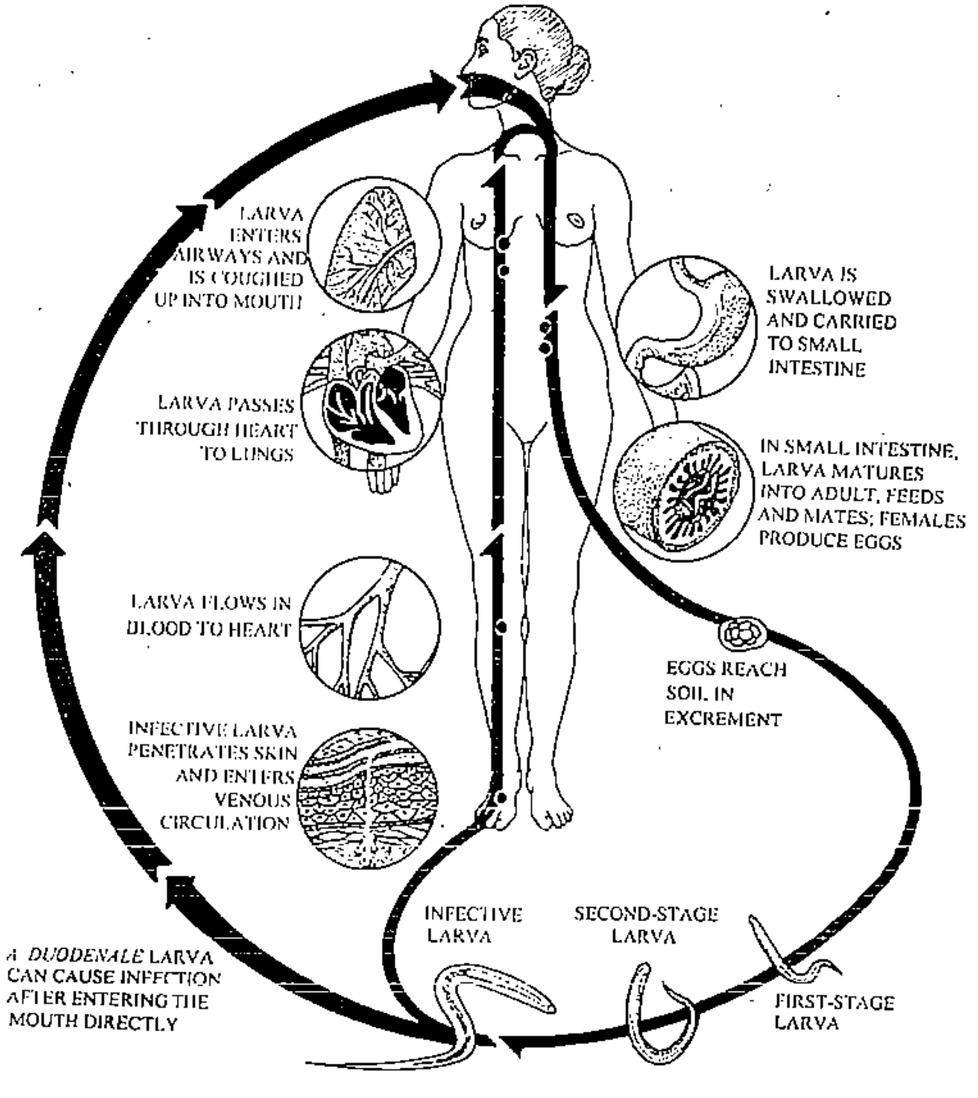

चित्र 16.10 : हुकवर्म का सामान्य जीवन चक्र

मादा प्रतिदिन कई-कई सौ अण्डे देती है जो विष्ठा के साथ बाहर निकल जाते हैं। अण्डों से स्फोटित होने के बाद लार्वे मिट्टी में आ जाते हैं। लगभग एक सप्ताह में ये संक्रमणशील बन जाते हैं और मनुष्यों के पैरों की त्वचा को वेध कर उनके शरीर में पहुंच जाते हैं। तब वे परिसंचरणशील रक्त में से यात्रा करते हुए फेफड़ों में और फ़िर वायुमार्गों, श्वास नली और एपिग्लॉटिस में पहुंचते हैं जहां से वे निगल लिए जाते हैं तथा आहार नाल में पहुंच जाते हैं। अंतड़ी में ये बाल्यावस्थाएं श्लेष्मा दीवार से कसकर चिपक जाती हैं और वहां पर रक्त एवं टूटे-फूटे ऊतकों को खाती हैं, इस कार्य के लिए इनमें हुक, कर्तन प्लेटें तथा दांत उपयोगी होते हैं। एक सप्ताह में ये पूरे वयस्क बन जाते हैं और तब इनकी लम्बाई लगभग 10 मि.मी. होती है। हुकवर्म के संक्रमण से अंतड़ी की दीवार को यांत्रिक क्षति पहुंचती है और रक्त की हानि होती है जिससे अरक्तता की दशा पैदा होती है। संक्रमित व्यक्तियों में शरीर की बढ़वार कम होती है।

व्हिपवर्म (कशाभ कृमि) (Whip worm)- *ट्राइक्यूरिस ट्राइक्यूरा (Trichuris trichura)*

व्हिपवर्म अथवा *ट्राइक्यूरिस* (एल.एस.ई.-9 की इकाई 4 देखिए) कशेरुकियों और उनमें भी ख़ासतौर से मानवों, कुत्तों, बिल्लियों, मवेशियों तथा अन्य स्तनियों में आहार नाल के परजीवी होते हैं। ये अपेक्षाकृत छोटे आकार के होते हैं। *ट्राइक्यूरिस ट्राइक्यिूरा* मानवों का परजीवी है। इसका वयस्क लगभग 4 से.मी. लम्बा होता है तथा बड़ी अंतड़ी में पाया जाता है।

जीवन-चक्र पिनवर्म के जीवन-चक्र जैसा है। संदूषित आहार के साथ परपोषी द्वारा खा लिए जाने के बाद अण्डों से लार्वा निकलते हैं जो बड़ी अंतड़ी के सीकम में पहुंच जाते और वहीं पर लगभग 3 महीने में वयस्क कृमि बन जाते हैं। अधिक मात्रा में संक्रमण होने पर ये कृमि दस्त और पेचिश के रोग पैदा कर देते हैं।

ट्राकिनेला स्पाइरैलिस (*Trichinella spiralis*) (ट्राइकिना कृमि)

यह सूक्ष्म आकार का होता है (लगभग 3 मि.मी. लम्बा) तथा चूहों, सूअरों एवं मानवों में पाया जाता है। मानवों में यह *"ट्राइकिनोसिस"* रोग पैदा करता है जो संसार के अधिकतर देशों में काफ़ी पाया जाता है। एक ही परपोषी में लार्वे तथा वयस्क दोनों ही पाए जाते हैं। मगर संक्रमण के लिए एक अन्य परपोषी चाहिए (एल.एस.ई.-9 की इकाई 4 देखिए)।

वयस्क अंतड़ी (चित्र 16.11) की श्लेष्मा में रहते हैं। परपोषी पर इनका ज़्यादा असर नहीं पड़ता। वयस्क मादा एक ही समय में लगभग एक हज़ार बाल्यों को जन्म देती है। ये बाल्य रक्तधारा में प्रविष्ट होते और सारे शरीर में ले जाए जाते हैं जिसमें ये लगभग प्रत्येक ऊतक तथा देहगुहा में पाए जा सकते हैं। अंततः ये कंकालीय पेशियों में प्रवेश करते और वहीं पर पुटीभूत हो जाते हैं। पुटी की दीवार धीरे-धीरे कैल्सीकृत हो जाती है। परपोषी की कंकालीय पेशी-कोशिकाओं में व्यापक परिवर्तन होते हैं और वे ही इन बाल्यों को पोषण प्रदान करती हैं। इसके बाद इन पुटियों में तब तक आगे परिवर्धन नहीं होता जब तक कि ये एक नए परपोषी द्वारा खा नहीं ली जाती। जब मानव बाल्यों से युक्त शूकर मांस को खा जाते हैं तब पुटियां फूट जातीं और उनके भीतर के बाल्य बाहर अंतड़ी में आ जाते हैं जहां वे परिपक्व होते हैं। मानवों में इनका संक्रमण प्रायः तभी होता है जब वे ठीक से न पका शूकर मांस खाते हैं।

भारी संक्रमण घातक हो सकता है, जिसमें ट्राइकिनोसिस हो जाता और मृत्यु हो जाती है। जब बाल्य पेशियों में पुटी बनाते हैं तब तीव्र पीड़ा और शोथ हो जाता है एवं आविषी हानि होती है। इनसे पेशी ऊतक का विघटन होता है।

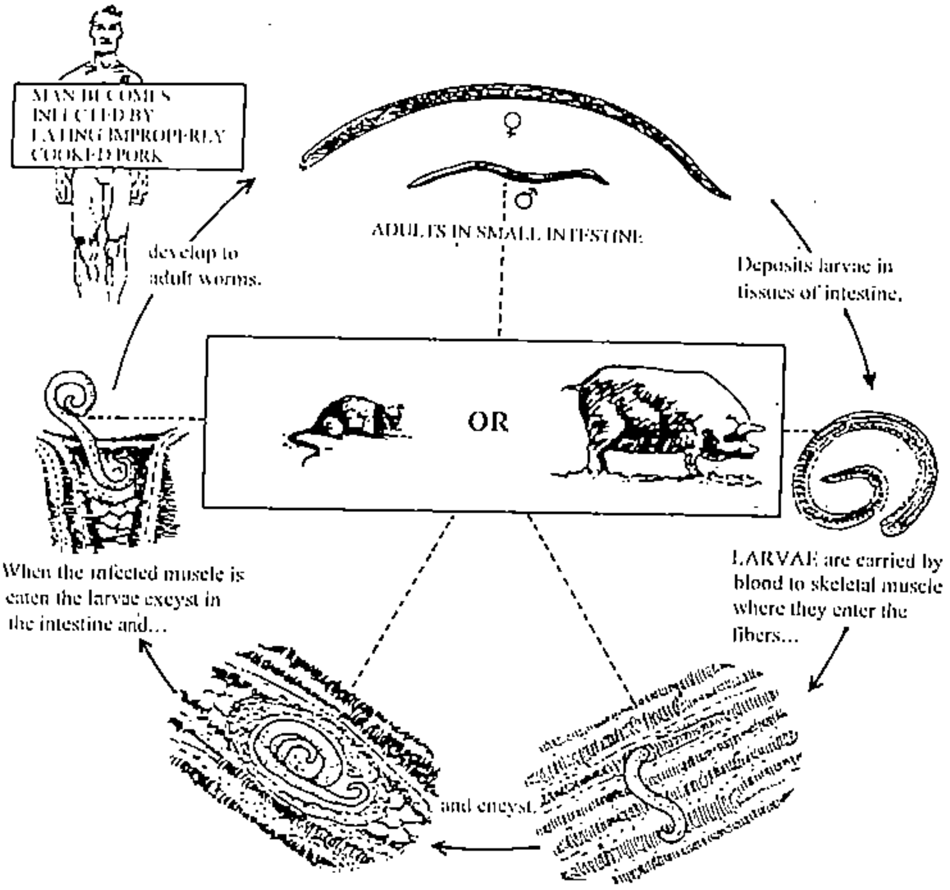

चित्र 16.11 : *ट्राइकिनेला स्पाइरैलिस* (*Trichinella spiralis*) का जीवन चक्र।

फ़ाइलेरियाई नीमैटोड (*Filarial nematodes*)

फ़ाइलेरियाई नीमैटोडों की अनेक स्पीशीज़ मानवों की परजीवी होती हैं और रोग पैदा करती हैं। ये धागे-जैसे कृमि होते हैं और लसीका ग्रंथियों तथा लसीका वाहिकाओं में रहते हैं। मादा बाल्यों को जन्म देती है जिन्हें माइक्रोफ़ाइलेरी (microfilariae) कहते हैं। इन नीमैटोडों के जीवन-चक्र के लिए एक आर्थ्रोपोड मध्यस्थ परपोषी चाहिए जैसे कि पिस्सुओं, मक्खियों अथवा मच्छरों की कुछ ख़ास-ख़ास स्पीशीज़।

वुचेरीरिया बैंक्रॉफ़्टाई (*Wuchereria bancrofti*) तथा *ब्रुगिआ मलैयी* (*Brugia malayi*)

उष्णकटिबंधीय देशों में लगभग 2.5 करोड़ लोग इन दो परजीवियों *वुचेरीरिया बैंक्रॉफ़्टाई* (40-90 मि.मी. लम्बा; 1.-24 मि.मी. चौड़ा) अथवा *ब्रुगिआ मलैयी* से संक्रमित हैं, इन दोनों ही मध्यस्थ परपोषी मच्छरों की ही कुछ ख़ास स्पीशीज़ होती हैं और इन्हीं से फ़ाइलेरिएसिस का रोग होता है जिसका चरम रूप "फ़ीलपांव" (elephantiasis) अर्थात श्लीपद होता है।

वुचेरीरिया बैंक्रॉफ़्टाई (चित्र 16-12) तथा *ब्रुगिआ मलैयी* दोनों का जीवन-चक्र समान होता है। इनके वयस्क लसीका वाहिनियों में रहते हैं। इनके लार्वे अथवा माइक्रोफ़ाइलेरी रक्त अथवा लसीका तंत्र में छोड़े जाते हैं। इनमें रात्रि-कालिकता पायी जाती है यानी ये रात को ही परिधीय रक्त वाहिकाओं में आते हैं।

कुछ ख़ास मच्छर-स्पीशीज़ ही इनकी मध्यस्थ परपोषी होती हैं (इसी इकाई में आर्थ्रोपोडों पर उपअनुभाग देखिए)। जब ये संक्रमित मानव परपोषी को काटती हैं तब परपोषी के रक्त के साथ-साथ माइक्रोफ़ाइलेरी इन मच्छरों में पहुंच जाते हैं। मध्यस्थ परपोषी के भीतर परिवर्धन के दौरान ये माइक्रोफ़ाइलेरी उसकी आहार नाल को वेध कर वक्ष पेशियों में और उसके बाद शुंडिका में पहुंचते हैं। जब कभी यह मच्छर किसी मानव को काटता है तो शुंडिका में से ये माइक्रोफ़ाइलेरी फिर से प्राथमिक परपोषी के भीतर पहुंच जाते हैं।

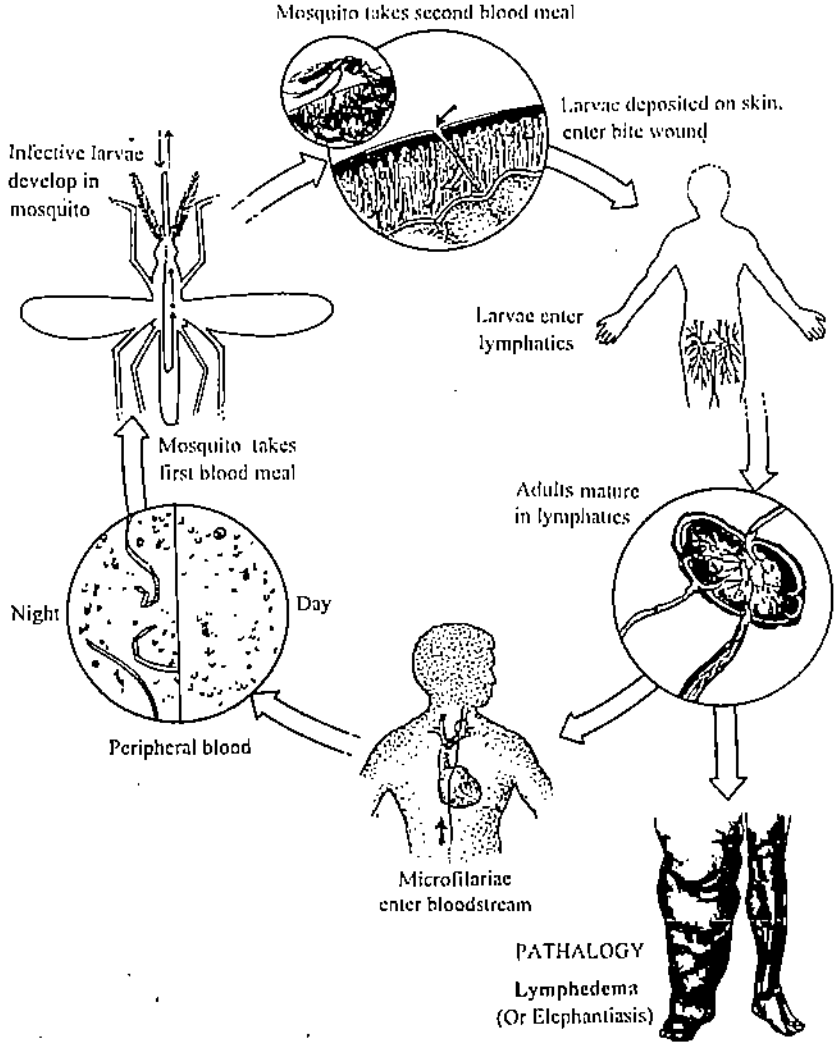

चित्र 16.12: वूचेरीरिया बैंक्रॉफ्टाई का जीवन चक्र

गंभीर फ़ाइलेरियाई संक्रमणों में अधिक संख्या में कृमियों के होने पर लसीका वाहिकाएं अवरुद्ध हो जाती हैं और गंभीर लसीका-शोथ पैदा हो जाता है जिसमें पीड़ा और ज्वर हो जाते हैं। दीर्घकालिक संक्रमण में संयोजी ऊतक में वृद्धि हो जाती है (संक्रमित क्षेत्रों का फ़ाइब्रोसिस) और उसे टांगों, भुजाओं तथा कभी-कभी वृषण-कोश में (मगर भग और स्तन शायद ही कभी प्रभावित होते हों) भारी उत्फूलन एवं विकृति आ जाती है, और ये परिवर्तन एक बार आ जाएं तो पलट कर सामान्य नहीं होते। इस प्रकार के उत्फूलन को "श्लीपद" (elephantiasis) कहते हैं और इसे केवल शल्य से ही ठीक किया जा सकता है। सौभाग्य से आजकल श्लीपद के चरम मामले कम ही नज़र आते हैं।

भारत में यह रोग बहुत हानिकारक है तथा पूर्वी उत्तर-प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा तथा पूर्वी समुद्रतटीय क्षेत्रों में पाया जाता है।

रीवर ब्लाइंडनेस वर्म, ऑन्कोसर्का वॉल्वुलस (*Onchocerca volvulus*) एक अन्य फ़ाइलेरियाई नीमैटोड है जो मनुष्यों में "सरिता-आंघता" (रिवर-ब्लाइंडनेस) अथवा ऑनकोसर्किऐसिस नामक रोग पैदा करता है। अफ़्रीका के कुछ भागों, अरब, मध्य अमेरिका तथ दक्षिण अमेरिका में 3 करोड़ से अधिक लोग इस रोग से पीड़ित हैं। यह आंखों में तीव्र खुजली और क्षति पैदा करता है और अंततः आंधता आ जाती है। इसका मध्यस्थ परपोषी *साइमुलियम* (*Simulium*) नामक काली-मक्खी होती है।

नेहरुआ (Guinea worm)- *ड्रैकनकुलस मेडिनेन्सिस* (*Dracunculus medinensis*)

ड्रैकनकुलस मेडिनेन्सिस अर्थात नहेरुआ (चित्र16.13) सारे अफ़्रीका, मध्य पूर्व देशों, पाकिस्तान तथा भारत के कुछ भागों विशेषकर राजस्थान और गुजरात राज्यों में मानवों का एक आम

परजीवी है। ये एक धागे जैसा नीमैटोड है इसकी मादा लगभग 1 मि.मी. मोटी और 120 से.मी. तक लम्बी हो सकती है।

परपोषी की देहगुहा तथा संयोजी ऊतक में परिवर्धन-काल बिताने के बाद सगर्भ मादा उपत्वचीय ऊतक में आ जाती है और एक पीड़ादायी फफोला बनाती है जो फूट कर एक छाले जैसा छिद्र बना देता है। यदि परपोषी का छाला-क्षेत्र पानी के सम्पर्क में आ जाए तो प्रथम अवस्था के बाल्य लार्वे, जल में निकल जाते हैं ये बाल्य अवस्थाएं अलवण जलीय कोपीपौड क्रस्टेशियन *साइक्लॉप्स* द्वारा खा ली जाती हैं, जो एक रोगवाहक के रूप में कार्य करता है। ये बाल्य संक्रमित पेय जल के माध्यम से पुनः मानव परपोषी में पहुंच जाते हैं। तब वे आंत्र दीवार को वेध कर सीलोम अथवा उपत्वचीय ऊतकों में पहुंच जाते हैं।

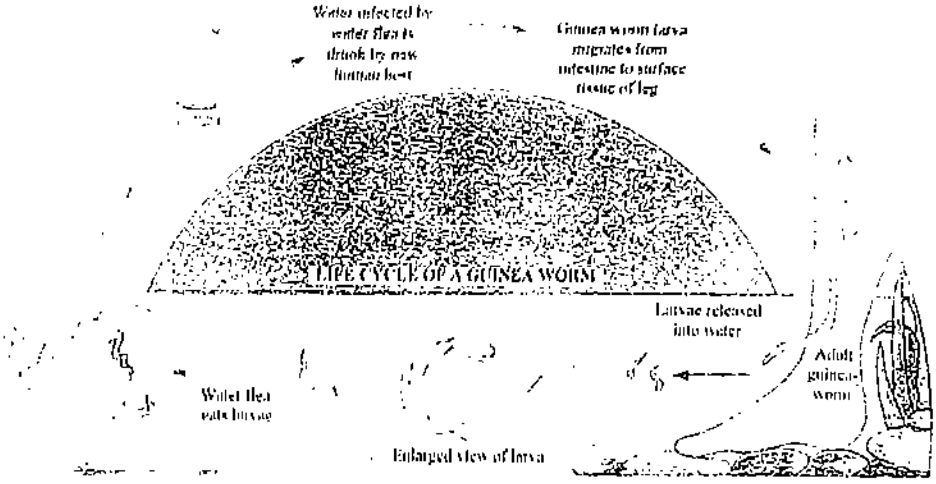

चित्र 16.13 : नेहरुआ *ड्रैकनकुलस मेडिनेन्सिस* का जीवन चक्र

जब सगर्भ मादा त्वचा-ऊतक में प्रवास करके आती है तब तीव्र ऐलर्जी प्रतिक्रियाएं होती हैं। इस वर्म को शल्य चिकित्सा द्वारा दूर किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

कॉलम A में दिए गए परजीवियों को कॉलम B में दिए गए नामों से मिलाइए :

कॉलम A	कॉलम B
1. *फैसियोला*	(i) व्हिपवर्म
2. *क्लोनॉर्किस सिनेन्सिस*	(ii) चीनी यकृत पर्णाभ
3. *शिस्टोसोमा*	(iii) हुकवर्म
4. *पैरागोनिमस*	(iv) रक्त पर्णाभ
5. *टीनिया*	(v) ब्लैडरवर्म
6. *इकाइनोकॉक्कस*	(vi) कुत्ता
7. *ऐस्कैरिस* लम्ब्रिकॉयडीस	(vii) *साइक्लॉप्स*
8. *ऐंकाइलोस्टोमा*	(viii) श्लीपद
9. *ड्रैकनकुलस*	(ix) भेड़
10. *वुचेरीदिया*	(x) सामान्य मानव गोल कृमि
11. *ट्राइक्यूरिस*	(xi) फेफड़ा पर्णाभ
12. *हेटेरोडेरा*	(xii) जड़ों की गांठ का नीमैटोड
13. *मेलॉइडोगाइने*	(xiii) पादप पुटी नीमैटोड

16.4 क्षतिकारक तथा हानिकारक आर्थ्रोपोड

जैसा कि आप खण्ड 2 की इकाई 5 के अनुभाग 5.3 में पढ़ चुके हैं, फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा में प्राणि-जगत की सर्वाधिक स्पीशीज़ पायी जाती हैं। इनमें से अनेक स्पीशीज़ मानक पालतू प्राणियों तथा कृषि पौधों के रोगों के प्रमुख स्रोत हैं। कुछ स्पीशीज़ रोगजनकों का संचरण करती हैं जैसे कि वाइरसों, बैक्टीरिया, कवकों तथा प्रोटोज़ोअनों का।

16.4.1 चिकित्सा, पशुचिकित्सा तथा कृषि महत्व के ऐरेक्निड

इस वर्ग के आर्थिक दृष्टि के महत्वपूर्ण आर्डर इस प्रकार हैं। - (i) स्कॉर्पियोनीस (Scorpiones) (विच्छु), (ii) ऐरेनी ;Araneae) (मकड़ियां) और (iii) एकैराइना (Acarina) (किलनियां और वरुथियां)। इसी पाठ्यक्रम की इकाई 5 देखिए जिसमें यहां बताए गए टैक्सानों के विभेदक लक्षण पहले ही आर्डर स्तर पर दिए जा चुके हैं।

(i) विच्छू

बिच्छुओं में "डंक" होता है। अधिकतर बिच्छुओं के डंक का जीविष केवल•स्थानीय प्रतिक्रिया पैदा करता है। (LSE-9 की इकाई 5 का चित्र 5.42 देखिए)।

(a)

(b)

चित्र 16.14 : ज़हरीली मकड़ियां (a) भूरी एकान्तवासी मकड़ी *लाक्सोस्केलीज़ रेक्लूज़ा (Loxosceles reclusa)* (b) मादा *ब्लैक विडो लैट्रोडेक्टस मैकटारा (Latrodectus mactaus)* मकड़िया इस स्पेशीज़ के उदर के नीचे के तरफ लाल निशान इसके पहचान का खास लक्षण है।

(ii) मकड़ियां

मकड़ियां परभक्षी तथा मांसभक्षी होती हैं। ये सामान्यतः कीटों को खातीं और हर प्रकार से मानव की सहायता करती हैं और उसके लिए यह शायद ही कभी खतरनाक (चित्र 16.14) होती हों। (एल.एस.ई.-9 की इकाई 5 का चित्र 5.46 देखिए)।

(iii) एकैराइना

एकैराइना में वरुथिया (mites) तथा किलनियां (ticks) आती हैं। इनमें से अनेक मानव पर, पालतू जानवरों पर, तथा फसलों पर परजीवी होती हैं या ये रोगवाहक होती हैं। कई अन्य ऐसी हैं जो खाद्य एवं उपयोगी उत्पादों के लिए विनाशकारी होती हैं। अधिकतर वरुथियां 1 मि.मी. तथा उससे कम आकार की होती हैं। किलनियां वरुथियों से अधिक बड़ी होती हैं तथा कुछ स्पीशीज़ 3 से.मी. लम्बी तक हो जाती है। (LSE-9 की इकाई 5, चित्र 5.52 देखिए)

पादप वरुथियां

पादप वरुथियां दो फ़ेमिलियां टेट्रानिकिडी (Tetranychidae) तथा एरिओफ़िइडी (Eriophyidae) में आती हैं। टेट्रानिकिडी वरुथियों को माकड़ वरुथियां कहते हैं (चित्र 16. 15a)। इनका शरीर अखंडी (शिरोवक्ष तथा उदर में विभाजित नहीं होता) तथा इनमें चार जोड़ी टांगें होती हैं। एरियोफ़िइड वरुथियों (चित्र 16.15 b)का शरीर कृमिरूप होता है जो एक शिरावक्ष एवं एक लम्बे, अंत में नुकीले होते जाते, उदर स्पष्टतः विभाजित होता है तथा इनमें शरीर के अग्र सिरे के समीप दो जोड़ी टांगे होती हैं।

पादप वरुथियां पौधों को निम्न प्रकार से क्षति पहुंचाती हैं।

1. ये पादप पदार्थ को चूसती हैं। इससे पौधे कमज़ोर हो जाते हैं।
2. इनसे पौधों में गंभीर विकृतियां आ जाती हैं जैसे कि गॉल यानी पिटिकाओं का बनना।
3. कुछ वरुथियां वाइरस रोगों का संचरण करती हैं।

पादपभोजी वरुथियों के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण इस प्रकार हैं - *टेट्रानिकस सिनैबैरिनस (Tetranychus cinnabarinus)* लाल मकड़ी-वरुथि (चित्र 16.15 a) जो कपास, अंरडी, सिट्रस, बैंगन, कद्दू, चाऊ-चाऊ, अंगूर, पपीता, शहतूत, पटसन, चाय आदि पर आक्रमण करती है। *ओलाइगोराइकस ओराइज़ी* (*Oligorychus oryzae*) (चावल वरुथि) चावल पर लगती है।

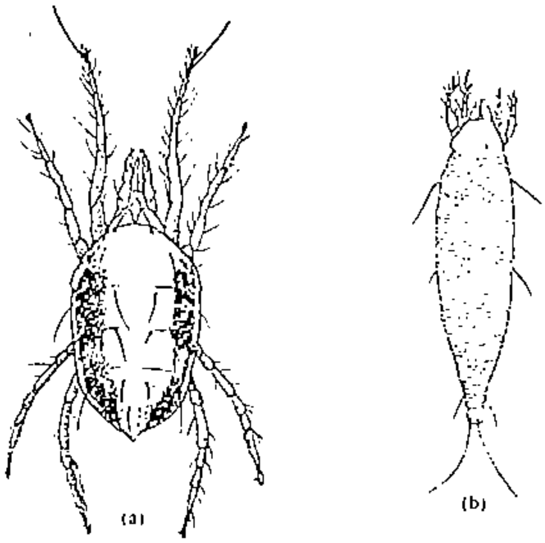

चित्र 16.15 : (a) टेट्रानिकिड वरुथि, लाल मकड़ी वरुथि, *टेट्रानिकस सिनैबैरिनस* (*Tetranychus cinnabarinus*) (*T. telarius*) वयस्क मादा, (b) वयस्क नर एरियोफ़िड वरुथि - पुटिका वरुथि एरियोफिस।

पशुचिकित्सा एवं मानव-चिकित्सा महत्त्व की वरुथियां

कुक्कुट वरुथि (Chicken mite) (*डर्मेनिस्सस गैलिनी, Dermanyssus gallinae*): ये वरुथियां (चित्र 16.16) अपने तीक्ष्ण वेधन मुखांगों के द्वारा कुक्कुटों का रक्त चूसती हैं। जब इनकी संख्या बढ़ जाती है तब मुर्गे-मुर्गियों का अण्डे देना एवं उनका वज़न बढ़ना दोनों प्रभावित हो जाता है।

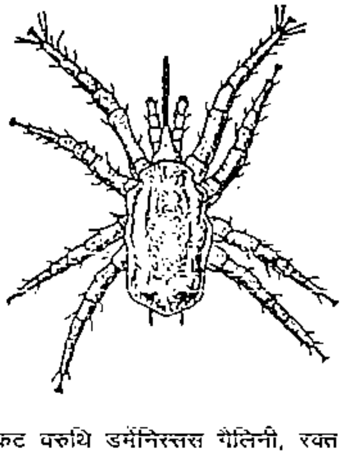

चित्र 16.16 : कुक्कट वरुथि डर्मेनिस्सस गैलिनी, रक्त चूसकर फूलने से पहले निम्फ़

भेड़ की खुजली वरुथि

सोरोप्टीस (*Psoroptes*) (चित्र 16.17) भेड़, बकरियों और मवेशियों की त्वचा पर संग्रसन करती है। इनके आक्रमण से ऊन की हानि होती है।

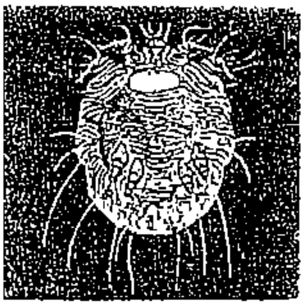

चित्र 16.17 : भेड़ की खुजली वरुथि (*सोरोप्टीस इक्वाई ओविस, Psoroptes equiiovis*) की मादा।

चित्र 16.18: खाज वरुथि *सार्कोप्टीस स्केबिआई* की मादा

खाज वरुथि (itch mite) (*सार्कोप्टीस स्केबिआई, Sarcoptes scabei*)

मानव खाज वरुथि (*सार्कोप्टीस स्केबिआई*) (चित्र 16.18) मनुष्यों में स्केबीज़ नामक खाज रोग पैदा करती है। यह त्वचा में सूक्ष्म सुरंगें बनाती है जहां वह अण्डे देती है और परिवर्धन भी वहीं पर होता है। वरुथियों द्वारा सुरंगें बनाने और अशन करने से तीव्र खाज पैदा होती है और यही है इस रोग का मुख्य लक्षण। ये वरुथियां रोगी के स्पर्श से अथवा उसके कपड़े-लत्तों से फैलती हैं।

चिगर (Chiggers)

चिगर उन वरुथियों की परजीवी लार्वा अवस्थाएं होती हैं जो फैमिली ट्रॉम्बिकुलिडी (Trombiculidae) में आती हैं जैसेकि *यूट्रॉम्बिकुला (Eutrombicula)* तथा *ट्रॉम्बिकुला* (*Tromibicula*)। ये कुक्कटों, ज़मीन पर आराम करते पक्षियों तथा मानव सहित स्तनियों पर पायी जाती हैं। इनके आक्रमण से त्वचा पर जहां-तहां लाल चकत्ते बन जाते हैं जिनमें तीव्र खुजलाहट होती है।

किलनियां (Ticks)

सभी किलनियां कशेरुकियों की परजीवी होती है। वे अपने परपोषियों की त्वचा में से कई-कई दिन तथा कई-कई सप्ताह तक लगातार अशन करती रहती हैं। वे स्थानिक शोथ को हानि पहुंचाती हैं और खाज पैदा करती हैं। ये अनेक रोगजनकों जैसे कि वाइरसों, रेकेट्सियाओं, बैक्टीरिया तथा प्रोटोज़ोअनों के रोगवाहकों के रूप में भी कार्य करती हैं। कुछ महत्वपूर्ण किलनियों का नीचे उल्लेख किया जा रहा हैं

मवेशी किलनी

मवेशी किलनियां (बूफ़िलस, *Boophilus*) (चित्र 16.19) मवेशियों का खून चूसकर पेट भरती हैं। ये "टेक्सस ज्वर" फैलाती हैं, यह ज्वर एक प्रोटोज़ोअन परजीवी से होता है। ज़िसके लिए ये किलनियां रोगवाहक का कार्य करती हैं।

चित्र 16.19 : मवेशी किलनी *बूफ़िलस माइक्रोप्लस (Boophilus microplus)*।

बोध प्रश्न 4

(a) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत

(i) सभी मकड़ियां परभक्षी और मांसाहारी होती हैं।

(ii) मकड़ियां आर्डर ऐरेनी में आती हैं।

(iii) किलनियों तथा वरुथियों का मुख्य विभेदक लक्षण इनके क्यूटिकल की मोटाई में अंतर होना होता है।

(b) कालम A में लिए गए नामों को कालम B में दिए गए लक्षणों/नाम आदि से मिलाइए

कालम A	कालम B
(i) *टेट्रानिकस*	(a) अनेक ख़ास सब्जियों पर आक्रमण करती है
(ii) *सार्कोप्टीस स्केबियाई*	(b) टेक्सस ज्वर
(iii) *बूफ़िलस माइक्रोप्लस*	(c) खाज वरुथियां
(iv) *सोरोप्टीस इक्विओविस*	(d) कुक्कुट वरुथी
(v) *डर्मेनिस्सस*	(e) भेड़-खाज वरुथी

(c) उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(i) मवेशी किलनियाँ .... नामक जीनस में आती हैं।

(ii) टेक्सस ज्वर के लिए उत्तरदायी परजीवी प्रोटोज़ोअन .... होता है।

(iii) टेट्रानिकिड वरुथियां .... वरुथियां कहलाती हैं।

16.4.2 मानव-चिकित्सा महत्व के कीट

अनेक कीट मानवों एवं पालतू जानवरों में रोग फैलाते हैं। कुछ अन्य कीट फ़सलों, भण्डारित उत्पादों तथा वनों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। इनमें से अनेक कीट पादप वाइरसों एवं पौधों में रोग फैलाने वाले अन्य सूक्ष्मजीवों के रोगवाहक होते हैं।

मच्छर (आर्डर डिप्टेरा) विश्व भर में पाए जाते हैं। ये अधिकतर पक्षियों और मानव सहित स्तनियों जैसे उष्णरक्तीय प्राणियों को प्रभावित करते हैं।

मच्छर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीनसें हैं *ऐनॉफ़िलीस* (*Anopheles*), *क्यूलेक्स* (*Culex*) (चित्र 16.20), *ईडीस* (*Aedes*), मैन्सोनिआ (*Mansonia*)। *ऐनॉफ़िलीस* की विविध स्पीशीज़ *प्लाज़्मोडियम* नामक मलेरिया परजीवी की रोगवाहक होती हैं। भारत के मुख्य मलेरिया रोगवाहक ये हैं : *ए. क्यूलिसिफ़ेसीज़* (*A. culicifacies*) तथा *ए. स्टीफ़ेन्साई* (*A. stephensi*)। *क्यूलेक्स फ़ैटिगैन्स* फ़ाइलेरियल नीमैटोड (*वुचेरीरिया बैंक्रॉफ़्टाई*) का मुख्य मध्यस्थ परपोषी होता है जिससे *फ़ाइलेरिऐसिस* होता है। *मैन्सोनिआ* फ़ाइलेरियल नीमैटोड *ब्रुगिआ मलैयी* का संचरण करता है। *ईडीस* जीनस की कुछ स्पीशीज़ पीत ज्वर तथा डेंगू फैलाती हैं। मस्तिष्कशोथ के वाइरस *क्यूलेक्स टार्सेलिस* द्वारा संचरित होते हैं।

मादा मच्छरों में ऐंटेना में छोटे-छोटे रोमों के चक्र बने होते हैं मगर नर में अनेक लम्बे-लम्बे रोम बने होते हैं जिससे उनका स्वरूप पिच्छाकार सा दिखायी पड़ता है (चित्र 16.20)। साथ ही मादाओं में ख़ास तौर से लम्बे और वेधन एवं मानव रक्त चूसने के लिए रूपांतरित हो गए मुखांग पाए जाते हैं। नर मादाओं की अपेक्षा छोटे होते हैं, वे रक्त का आहार नहीं करते तथा उनके पैल्प अधिक सुव्यक्त होते हैं। इस प्रकार नर तथा मादा मच्छरों को सरलता से पहचाना जा सकता है (चित्र 16.20)।

मच्छर जल में विकसित होते हैं, और ऐसे जल मे जिसमे सूक्ष्मदर्शीय पौधे और प्राणी पनपते होते हैं जिन पर मच्छरों के लार्वे आहार करते हैं। अण्डे जल के ऊपर दिए जाते हैं, अथवा ऐसे स्थानों पर जहां जल के एकत्रित होने की संभावना होती है। *क्यूलेक्स* के अण्डे अकेले एक-एक अथवा सूक्ष्म बेड़ों अथवा संहतियों के रूप में दिए जाते हैं जबकि ऐनॉफ़िलीस मच्छरों के अण्डे अकेले एक-एक दिए जाते है जिनमें तिराने के लिए उत्प्लावक (float) बने होते हैं। इनके चार लार्वा इन्स्टार (रिगलर, wriglers) पाए जाते हैं (सारणी 16.1)

अधिकतर मच्छरों के लार्वों को वायुमण्डलीय हवा में श्वास लेने के लिए सतह पर आना पड़ता

है, और इसके लिए उनके शरीर के अंत पर बनी साइफ़न नामक नली पर स्थित स्पाइरेकल होते हैं जिनसे हवा भीतर ली जाती है (चित्र 16.20)। *मैन्सोनिआ* के लार्वो में विशेषित साइफ़न होता है जिसे जलीय पौधों की जड़ों और स्तम्भों में घुसाया जा सकता है जहां से लार्वीय श्वसन के लिए ऑक्सीजन प्राप्त की जाती है। मगर ऐनॉफ़िलीस मच्छरों के लार्वो में साइफ़न नहीं होते हालांकि स्पाइरेकल होते हैं। इनमें गुदा-गिल भी होते हैं।

पूर्ण विकसित लार्वे अनशनकारी किंतु सक्रिय रूप से तैरने वाले प्यूपों में बदल जाते हैं जिन्हें "टम्बलर" कहते हैं। ये "कौमा" (अंग्रेज़ी के ",") की आकृति के होते हैं। इनके शिरोवक्ष पर पृष्ठतः एक जोड़ी श्वसन "तुरही" बने होते हैं।

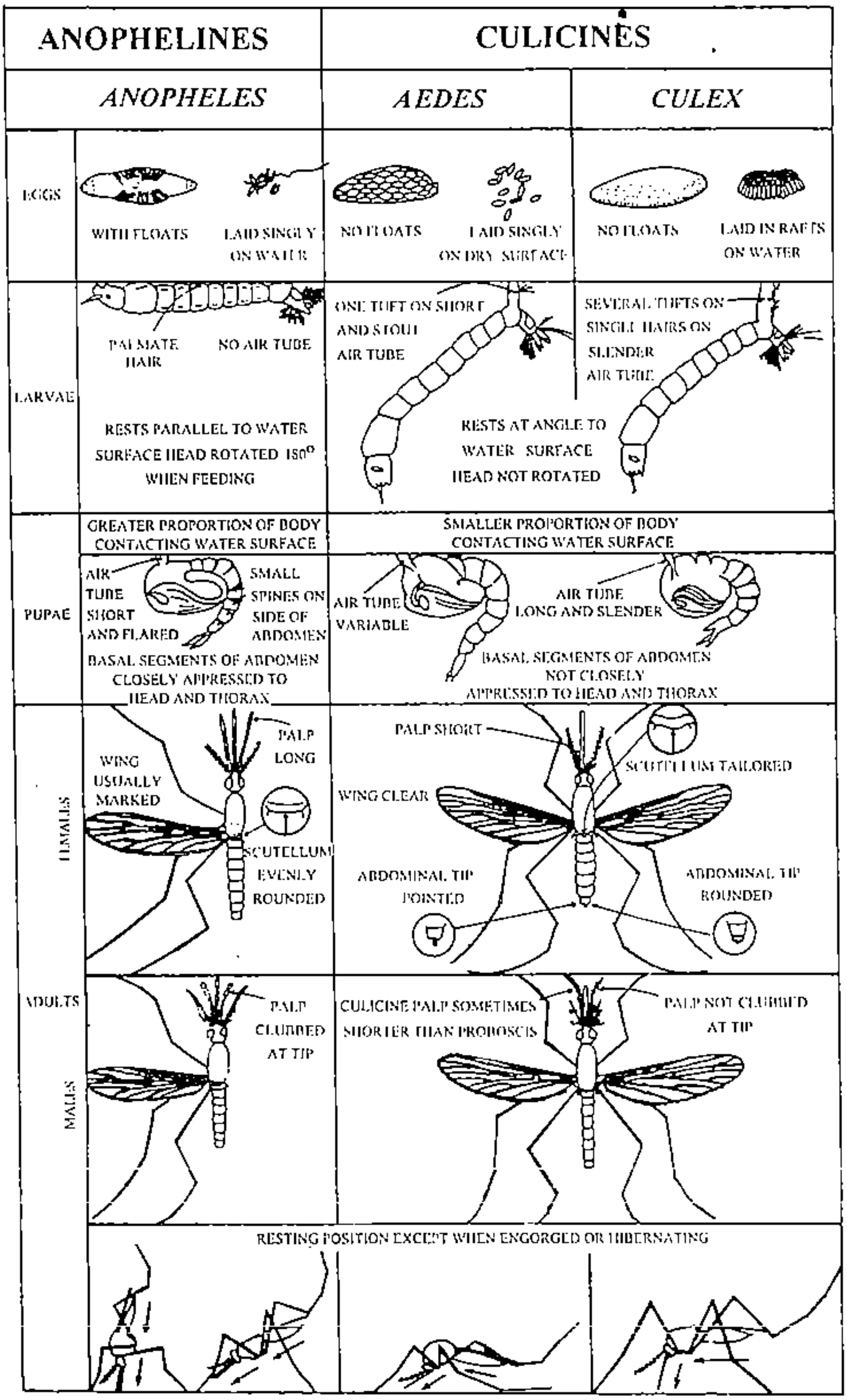

चित्र 16.20 : *ऐनाफ़िलीस* तथा *क्यूलेक्स* प्रकार के मच्छरों के जीवन-चक्र के विविध अवस्थाओं को पृथक करते हुए उनके क्षणों का आरेखीय प्रतिदर्श।

ऐनॉफिलीज तथा क्यूलैक्स प्रकार के मच्छरों के बीच और उनकी परिवर्धनशील अवस्थाओं में सहायक मुख्य लक्षण सारणी 16.1 तथा चित्र 16.20 में दिए गए हैं।

सारणी 16.1: *एनाफिलीस* तथा *क्यूलेक्स* मच्छरों की पहचान के मुख्य लक्षण

अवस्था	*एनाफिलीस*	*क्यूलेक्स*
अण्डे	अकेले अण्डे देती है, तैरते हैं।	अकेले अण्डे देती या समूह में अण्डे देती है, तैरते नहीं हैं।
डिम्भक (larvae)	साइफन नहीं होता, पानी के सतह के समानान्तर रहते हैं।	सभी डिम्भक में छोटे या लम्बे साइफन होते हैं पानी की सतह पर कोण बनाते हैं
प्यूपी (Pupae)	श्वसन तुरही छोटी एवं छोर तक चौड़ी होती है।	श्वसन तुरही लम्बी एवं नलिकाकार होती है।
वयस्कों Adults) (दोनों लिंग)	पानी की सतह पर कोण बनाते हुए विश्राम।	पानी की सतह के समानान्तर शरीर के साथ विश्राम।

बोध प्रश्न 5

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(i) चार सर्वाधिक महत्वपूर्ण मच्छर ...., ..., ...तथा जीनसों .... में आते हैं।

(ii) फ़ाइलेरिया नीमैटोड *वुचेरीरिया बैंक्रॉफ़्टाई* का मुख्य मध्यस्थ परजीवी .... है।

(iii) .... की स्पीशीज़ मलेरिया परजीवी *प्लाज़्मोडियम स्पी.* की रोगवाहक होती है।

(iv) मच्छर के लार्वों को .... कहते हैं।

(v) मैन्सोनिआ की स्पीशीज़ फ़ाइलेरियल नीमैटोड .... का संरचण करती हैं।

(vi) नर और मादा मच्छरों को उनके साइज़, मुखांग .... तथा .... के आधार पर सरलता से पहचाना जा सकता है।

(vii) .... नामक मच्छर मस्तिष्कशोथ वाइरस फैलाता है।

(viii) डेंगी वाइरस तथा पीतज्वर .... नामक जीनस में आने वाली मच्छर स्पीशीज़ से संचरित होता है।

सामान्य घरेलू मक्खी

घरेलू मक्खियां (आर्डर डिप्टेरा) विश्वव्यापी हैं। हालांकि *मस्का डोमेस्टिका* (*Musca domestica*) (चित्र 16.21) समूचे संसार में पायी जाती है, मगर भारत में *मस्का विसिना* (*Musca vicina*) तथा *मस्का नेबुलो* (*Musca nebulo*) अधिक मिलती हैं।

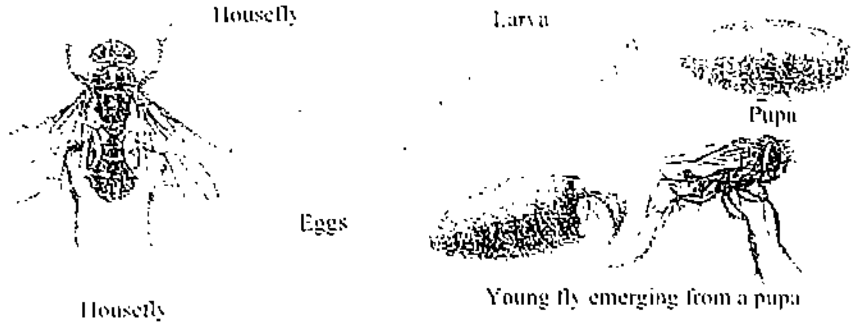

चित्र 16.21: घरेलू मक्खी मस्का डोमेस्टिका की दो जीवन अवस्थाएं (a) वयस्क मादा (b) अण्डे, बहुत बड़ा करके दर्शाए गए हैं।

घरेलू मक्खियां संदूषित आहार के माध्यम से मनुष्यों में अनेक रोग फैलाती हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं - टाइफॉइड ज्वर, हैज़ा, पोलियोमाइलिटिस, दस्त और पेचिश। ये अनेक कृमियों (हेल्मिंथों) के अण्डों के वाहकों के रूप में भी कार्य करती हैं।

चित्र 16.22 : *साइमेक्स हेमिप्टेरस* नामक खटमल का व्यस्क नर

वयस्क मादा सड़ते-गलते जैविक पदार्थ पर अण्डे देती हैं। अण्डे से निकलने वाले लार्वा को मैगट (maggot) कहते हैं।

खटमल (आर्डर हेमिप्टेरा, Order Hemiptera)

ये *साइमेक्स* (*Cimex*) की स्पीशीज़ (चित्र 16.22) होते हैं। ये रात्रिचर स्वभाव के होते हैं। ये पृष्ठ-अधरतः चपटे होते हैं और इनके पंख ह्रासित होकर अस्पष्ट पैड बन गए हैं। वयस्क और निम्फ़ दोनों ही मानव, अन्य स्तनियों तथा कुक्कुटों का रक्त चूसते हैं।
इनकी दो सामान्य स्पीशीज़ हैं - *साइमेक्स लेक्टुलेरियस* (*cimex lectularius*) तथा *सी. हेमिप्टेरस* (*C. hemipterus*)

पिस्सू (आर्डर साइफ़ोनॉप्टेरा, Order Siphonoptera)

मानव पिस्सू *प्यूलेक्स इरिटेन्स* (*Pulex irritans*) (चित्र 16.23) तथा मूषक पिस्सू अथवा ओरियंटल पिस्सू *ज़ीनॉप्सिला कीओपिस* (*Xenopsylla cheopis*) आम मिलने वाली स्पीशीज़ हैं। ये रक्त चूसती और बैक्टीरिया जनित ब्यूबोनिक प्लेग फैलाती हैं।

वयस्क पिस्सू पार्श्वतः सम्पीडित तथा पंखविहीन होते हैं। और इनमें वेधन एवं चूषण प्रकार के मुखांग होते हैं। इनकी पिछली जोड़ी टांगें कूदने के किए अनुकूलित होती हैं। चित्र 16.23 में मानवों में संक्रमण करने वाला पिस्सू दिखाया गया है।

चित्र 16.23 : मानव पिस्सू की वयस्क मादा

मानव जूँएं (आर्डर ऐनॉप्ल्यूरा, Order Anoplura)

मनुष्य में सामान्यतः तीन स्पीशीज़ की जूँएं संक्रमण करती हैं - 1. देह जूँ *पेडिकुलस ह्यूमैनस*

कॉर्पोरिस *(Pediculus humanus corporis)*, 2. शीर्ष जूँ *पेडिकुलस ह्यूमैनस कैपिटिस (Pediculus humanus capitis)*, 3. जघन जूँ (Pubic louse) *फ़्थाइरस प्यूबिस (Phthirus pubis)* (चित्र 16.24)। सर और देह जूँएं पुनरावर्ती ज्वर, महामारीय टाइफ़सज्वर तथा ट्रैंच ज्वर की रोगवाहक होती हैं।

चित्र 16.24: मानव जूँएं (a) देह जूँ पेडिकुलस ह्यूमैनस (b) जघन जूँ फ़्थाइरस प्यूबिस

सैंड फ़्लाई (आर्डर-डिप्टेरा, Order Diptera)

फ़्लेबोटोमस आर्जेंटिपेस (Phlebotomus argentipes) भारतीय स्पीशीज़ (चित्र 16.25) जिससे "काला आज़ार" "ओरियंटल सोर" (प्राच्य व्रण) तथा फ़्लेबोटोमस ज्वर फैलते हैं। ये मक्खियां *लीश्मानिया डोनोवनाई* (जिससे काला आज़ार होता है) तथा *एल. ट्रोपिका* (जिससे प्राच्य व्रण होता है) और एक वाइरस जिससे फ़्लेबोटोमस ज्वर होता है, फैलाती हैं

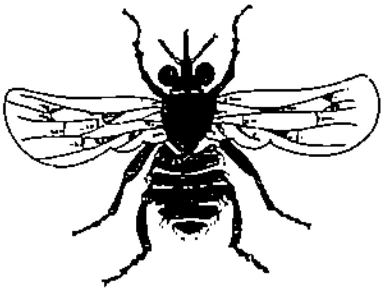

चित्र 16.25: सड फ्लाइ

बोध प्रश्न 6

कॉलम A में दिए गए कीट नामों को कॉलम B में दिए नामों आदि से मिलाइए

कॉलम A	कॉलम B
i मस्का डोमेस्टिका	(a) पिस्सू
ii साइमेक्स	(b) ट्रैंच ज्वर
iii प्यूलेक्स इरिटेन्स	(c) सामान्य घरेलू मक्खी
iv पेडिकुलस ह्यूमैनस	(d) खटमल

चींटियां (आर्डर हाइमेनॉप्टेरा, Order Hymenoptera)

चींटियां सामाजिक कीट हैं (इसी पाठ्यक्रम की इकाई 7 में देखिए)। कुछ सामान्य भारतीय स्पीशीज़ इस प्रकार हैं - *मॉनोमोरियम इंडिकम (Monomorium indicum)*, *डोरिलस लेबिऐटस (Dorylus labiatus)* (छोटी लाल घरेलू चींटी) तथा *कैम्पोनोटस कम्प्रेसस (Camponotus compressus)* (बड़े आकार की काली चींटी जिसे Carpenter ant भी कहते हैं।) (चित्र 16.26)।

ये घरेलू पीड़क हैं तथा इनकी कर्मी चींटियां विविध पदार्थों को खाती हैं जिनमें हमारा अपना भोजन, बीज, फल तथा मकरंद आदि शामिल हैं।

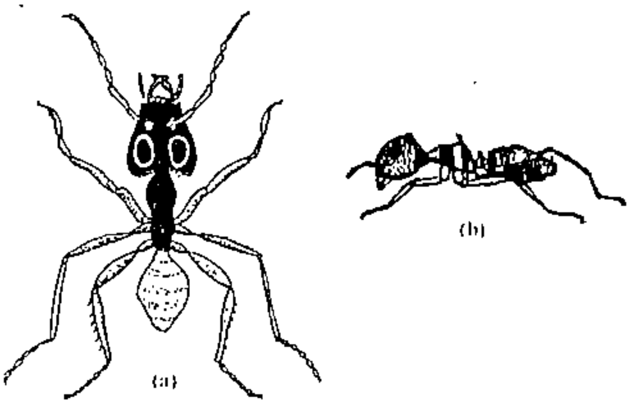

चित्र 16.26 : चींटियां। (a) काली चींटी (*मॉनोमोरियम इंडिकम*) (b) बड़ी काली चींटी (*कैम्पोनोटस कम्प्रेसस*) जिसे "कार्पेंटर" चींटी भी कहते हैं, का कर्मी।

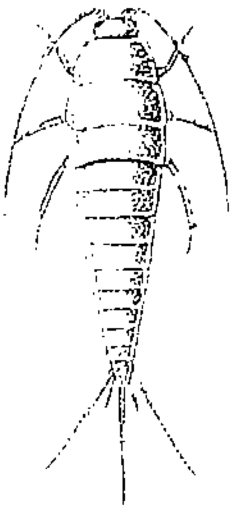

चित्र 16.27 : सिल्वर फिश

दीमकें (आर्डर-आइसॉप्टेरा, Order Isopters)

ये ऐसी पीड़क होती हैं जो लकड़ी के हर प्रकार के सामान को तथा अन्य अनेक घरेलू सामान को भारी नुकसान पहुंचाती है।

सिल्वरफ़िशें (आर्डर थाइसैन्यूरा Order Thysanura)

ये छोटे आदितः पंखविहीन कीट होते हैं जो पुस्तकों में अक्सर पाए जाते हैं उदाहरणः *लेपिज़्मा* (*Lepisma*) (चित्र 16.27), टीनोलेपिज़्मा (Ctenolepisma)। ये नानाविध सामान को हानि पहुंचाती हैं जिन्हें ये खाया करती हैं जैसे कि स्टार्च लगे कपड़े, पुस्तकों की जिल्दें आदि।

कॉकरोच (आर्डर डिक्टियोप्टेरा Order Dictyopera या ब्लैटेरिया Blattria).

कॉकरोच (*पेरिप्लैनेटा अमेरिकाना, Periplaneta americana,*), (चित्र 16.28) तथा *ब्लाटा ओरिएंटेलिस, (Blatta orientalis)* बहुत परिचित कीट हैं।

वयस्क तथा निम्फ़ दोनों ही हानि पहुंचाते हैं जो नाना प्रकार के पदार्थों को खाते हैं जैसे पुस्तकों की जिल्दें और पन्ने, रसोई के खाद्य उत्पाद।

निषेचित मादा अंडकोष्ठ अथवा ऊथीका (ootheca) नामक एक केप्सूल के भीतर लगभग 30 अण्डे देती है, इसे मादा कुछ दिन अपने उदर में ही लिए फिरती हैं और उसके बाद कहीं एक जगह छोड़ देती है। अण्डों से निम्फ़ निकलती हैं जो परिपक्व होकर वयस्क बन जाती हैं (चित्र 16.28)।

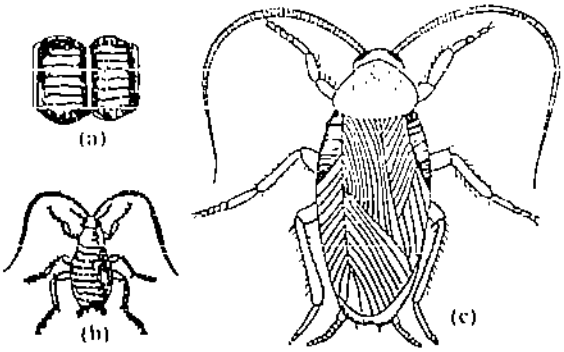

चित्र 16.28: *पेरिप्लैनेटा अमेरिकाना* लिम्न (a) अंड कोष्ठ जिसके भीतर अंडे दो अनुदैर्घ्य पंक्तियों में व्यवस्थित हैं। (b) दूसरा अन्तरूप निम्फ (c) वयस्क।

16.4.4 पशु चिकित्सा महत्व के कीट

अश्व-मक्खी (Horse fly) (आर्डर डिप्टेरा)

अश्व मक्खियां (टैबेनस स्ट्रिऐटस, *Tabanus striatus*) देखने में घरेलू मक्खियों जैसी होती है मगर आकार में ज़्यादा बड़ी और मज़बूत दिखायी पड़ती है। इसकी मादा घोड़ों, मवेशियों, कुत्तों, मानवों, हिरनों आदि पर आक्रमण करती है। ये त्वचा को वेधकर रक्त चूसती हैं। जहां पर मक्खी जानवर को काटती है वहां पर मक्खी के छोड़कर चले जाने पर भी घाव में से खून वहता रहता है।

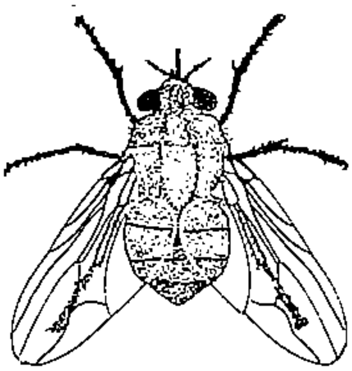

चित्र 16.29: अस्तवल मक्खी *स्टोमॉक्सिस कैल्सिट्रेन्स* का वयस्क

अस्तवल मक्खी (आर्डर-डिप्टेरा)

अस्तवल मक्खी (*स्टोमॉक्सिस कैल्सिट्रेन्स, Stomoxys calcitrans*) खच्चरों, घोड़ों, तथा मानव सहित अन्य प्राणियों पर भी आक्रमण करती है। यह (चित्र 16.29) घरेलू मक्खी जैसी दिखायी पड़ती हैं मगर उससे थोड़ी छोटी होती है। नर और मादा दोनों हि रक्त चूसते हैं। इसके आक्रमण किए गए जानवर दुवले हो जाते और उनका दुग्ध उत्पादन घट जाता है।

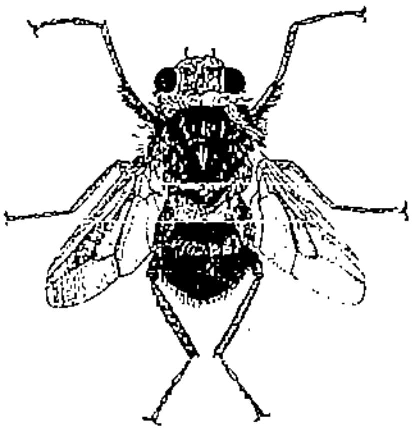

चित्र 16.30: सामान्य मवेशी भ्रव *हाइपोडर्मा लिनिऐटम* की वयस्क मादा

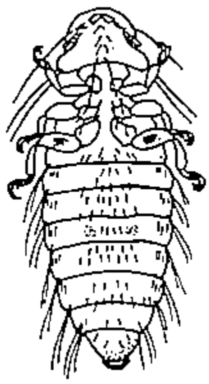

चित्र 16.31: शैफ़्ट जूँ *मीनोपान गैलिनी*

वृषभ वार्बल मक्खी (Ox warble fly) (आर्डर-डिप्टेरा)

सामान्य मवेशी ग्रब हाइपोडर्मा लिनिऐटम (*Hypoderma lineatum*) (चित्र 16.30) है। इन मक्खियों के मैगट पीठ की त्वचा के नीचे ट्यूमर अथवा सिस्ट बना देते हैं। प्रत्येक ट्यूमर के भीतर एक मैगट होता है। परिपक्व होने पर यह बाहर निकल आता और ज़मीन पर गिर जाता और फिर प्यूपा बन जाता है। प्यूपा में से वयस्क निकलता है। अण्डे खुर के समीप बालों पर चिपक जाते हैं तथा अण्डे फूट जाने पर मैगट त्वचा को वेध कर भीतर पहुंच जाते हैं।

ब्लोफ़्लाई (Blowfly) (आर्डर-डिप्टेरा)

ल्यूसिलिया सेरेनिसिमा (Lucilia serenissima) यह छोटा धात्विक नीले अथवा हरे रंग का होता है। अन्य उदाहरण हैं *कैलिफ़ोरा (Calliphora)* तथा *फ़ोर्मिया (Formia)* केवल लार्वे ही मवेशियों पर आहार करते हैं। घाव मादा ब्लोफ़्लाई को आकर्षित करते हैं जो उनमें अण्डे देती है।

चूज़ा पिस्सू (आर्डर-साइफ़ोनैप्टेरा)

चूज़ा पिस्सू *एकिड्नोफ़ैगा गैलिनेशियस (Echidnophaga gallinaceous)* चूज़ों तथा अन्य कुक्कुट-पक्षियों पर आक्रमण करता है। संग्रसित कम उम्र के मुर्गे अक्सर मर जाते हैं। साथ ही संग्रसित कुक्कुटों में अण्डे दिया जाना तथा उनकी वृद्धि बुरी तरह प्रभावित होती है।

शैफ़्ट जूँ (आर्डर-मैलोफ़ैगा)

शैफ़्ट जूँ (*मीनोपॉन गैलिनी, Menopon gallinae*) (चित्र 16.31) मुख्यतः चूजों पर रहती है। शैफ़्ट जूँ त्वचा के सूखे शल्कों, परों अथवा त्वचाके खुंरडों (scab) को कुतर-कुतर कर खाती है। इससे पैदा होने वाली जलन से पक्षियों को बहुत बेचेनी हीती है जैस कि नींद न आना और भूख मर जाना।

बोध प्रश्न 7

बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत

(i) सामान्य मवेशी ग्रब अपने परपोषी की पीठ की त्वचा में ट्यूमर बना देते हैं। [ ]

(ii) ब्लोफ़्लाइयों के केवल लार्वा ही परपोषी के ऊतकक्षयी ऊतकों का आहार करते हैं। [ ]

(iii) अश्व-मक्खियां (*टैबेनस*) केवल घोड़ों पर ही आक्रमण करती हैं। [ ]

(iv) अस्तबल मक्खी द्वारा आक्रमण किए गए मवेशियों का दूध उत्पादन अक्सर घट जाता है। [ ]

(v) *लेपिज़्मा* तथा *टीनोलेपिज़्मा* का सामान्य नाम वृषभ वार्बल फ़्लाई है। [ ]

(vi) काकरोच की मादा ऊथीका नामक एक केप्सूल के भीतर लगभग 30 अण्डे देती है। [ ]

16.4.5 कृषि महत्त्व के कीट

कीट बहुत से वृक्षों, सब्ज़ियों, फलों तथा सजावटी पौधों पर आक्रमण करते हैं और इन वृक्षों तथा पौधों के अलग-अलग भागों पर आक्रमण किए जाते हैं।

कृषि में हानियों के प्रकार

कीटों द्वारा कृषि में होने वाली हानियां दो प्रकार से हो सकती है (1) प्रत्यक्ष यानी सीधे पौधों को हानि पहुंचाकर और (2) परोक्ष हानियां।

1. प्रत्यक्ष हानियां

(i) पर्णभक्षी अथवा पत्तियों को गिरा देने वाले कीट – इन कीटों में काटने और चबाने प्रकार के मुखांग होते हैं जिनसे वे पत्तियां खाते तथा फसलों को गंभीर क्षति पहुंचाते हैं। इनके उदाहरण हैं - टिड्डे, टिड्डियां, बीटल, सुरसुरियां, तथा नानाविध शलभों तथा तितलियों की लार्वा अवस्थाएं।

(ii) पर्ण-सुरंगकारी (leaf miners) – इस समूह के कीट पत्तियों की ऊपरी तथा निचली एपिडर्मिसों के बीच रहते हैं और पत्तियों के हरे भागों को खाते जाते हैं, उदाहरण - नींबू का पर्ण सुरंगकारी

(iii) पर्ण-वेल्लक (leaf rollers) – कीटों के केटरपिलर जो पत्तियों को खाने के साथ-साथ उन्हें गोल लपेटते भी जाते हैं जो बाद में मुर्झाकर झड़ जाती हैं, उदाहण कपास का पर्णा-वेल्लक।

(iv) स्तम्भ तथा मूल वेधक – (stem and root borers) – केटरपिलर विविध पौधों के स्तम्भ तथा जड़ों में सूराख करते हैं और अक्सर उनमें गंभीर हानि पहुंचाते हैं। परिणामतः प्रभावित पौधे सूख जाते हैं और उनकी वृद्धि मारी जाती है - उदाहरण गन्ने का तना-वेधक और चावल का तना-वेधक।

(v) पादप एवं चूषक – ये कीट पौधों का वेधन करके उनका पादप रस चूसते हैं और यदि वे वहुत संख्या में हुए तो वहुत गंभीर क्षति पैदा करते हैं। उदाहरण चावल का गंधी मत्कुण, सरसों का एफ़िड, आदि।

(vi) छाल और काष्ठ आहारक – इस वर्ग में मुख्यतः आते हैं केटरपिलर, बीटल और सुरसुरियां जो झाड़ियों तथा वृक्षों की छाल और काष्ठ के बीच सुरंगें बनाते हैं।

(vii) फल विनाशक - इस श्रेणी के कीट फलों पर आक्रमण करते हैं और उन्हें मानव उपभोग के लिए अखाद्यशील बना देते हैं और बीज उद्देश्य के लिए बेकार बना देते हैं। उदाहरण फल-मक्खियां।

(viii) बीज आहारक अथवा भंडारक कीट – कुछ कीट जैसे कि चावल की सुरसुरी भण्डारित खाद्य पदार्थों तथा अनाज को वहुत नुकसान पहुंचाते हैं।

2. पौधों को परोक्ष हानियां

अधिकतर पर्ण फुदकी ओर एफ़िड अपने परपोषी पौधों को, उनकी पत्तियों पर अपनी "हनी-ड्यू" (honey dew) का स्रवण करके जिससे उनपर काली फफूंदियां उग जाती हैं, बहुत परोक्ष हानि पहुंचाते हैं। इससे पौधों का विकास और वृद्धि कम हो जाती है। अनेक पादपरस चूषक भी पौधों पर आहार करते समय परोक्ष रूप में कवक, वैक्टीरियल तथा वाइरस रोग जिन्हें अंगमारी (blight), फफूंद (mould), म्लानी (wilt), वीटल कद्दू वर्ग के पौधों पर वैक्टीरियल म्लानि तथा पातफुदक, एफ़िड और फुल्गोरिड कीट तम्बाकू, आलू, आडू आदि के वाइरस फैलाते हैं।

कीट पीड़क की प्रकृति

कुछ कीट पौधों की केवल एक स्पीशीज़ पर ही आक्रमण करते हैं, ऐसे कीटों को एकभक्षी (monophagous) कहते हैं। कुछ अन्य कीट कुछ थोड़ी सी संबंधित पादप स्पीशीज़ पर लगते और उन्हें खाते हैं इन्हें कतिपयभक्षी (oligophagous) कहते हैं। इनके अलावा ऐसे वहुत से कीट हैं जो काफ़ी अधिक संख्या में परपोषी स्पीशीज़ पर आक्रमण करते हैं इन्हें वहुभक्षी (polyphagous) कहते है।

इस भाग में हम आगे दिए जा रहे जिन पौधों पर पाये जाने वाले दो-दो, तीन-तीन कृषि पीड़कों का विवेचन करेंगे वे इस प्रकार है : (1) धान (2) गेहूँ (3) गन्ना (4) नरियल (5) तिलहनें (6)

कपास (7) दलहनें (8) आलू (9) सब्जियां, (10) फल (11) भाण्डारित अनाज (12) सागवान के वृक्ष।

इस अध्ययन को सरल बनाने के लिए आइए पहले हम कुछ बहुभक्षी कीटों का जैसे कि दीमकों, मरुस्थलीय टिड्डियों तथा रोमिल केटरपिलरों का संक्षेप में अध्ययन करेंगे जो बहुत से पौधों पर आक्रमण करते हैं। उसके बाद हम ऊपर दी गयी सूची के पौधों के दो-दो या तीन-तीन महत्वपूर्ण पीड़कों का वर्णन करेंगे जो एकभक्षी होते, कतिपयभक्षी तथा बहुभक्षी हो सकते हैं।

अ. कुछ बहुभक्षी पीड़क

दीमकें (आर्डर आइसोप्टेरा Order Isoptera)

दीमकों के विषय में इसी इकाई और साथ इसी पाठ्यक्रम की इकाई 7 में भी पहले ही कहा जा चुका है। फ़सलों को हानि पहुंचाने वाली महत्वपूर्ण अधोभूमिक स्पीशीज़ हैं *माइक्रोटर्मीस ओबेसाई (Microtermes obesi)* तथा *ओडोण्टोटर्मीस ओबेसस (Odontotermes obesus)*। दीमकें बहुभक्षी होती हैं। ये लकड़ी को बरबाद करती और अनेक फ़सलों जैसे कि धान, गेहूँ, गन्ना, जौ, कपास, मूंगफली, जुआर, बाजरा, मक्का, मिर्च, बैंगन, अमरूद, नींबू, आम, भण्डारित अनाज, फल वृक्ष जैसे नारियल और वन वृक्षों आदि को नुकसान पहुंचाती हैं। इनसे प्रभावित पौधों में पत्तियां सूख जाती और कलियाँ खराब हो जाती हैं।

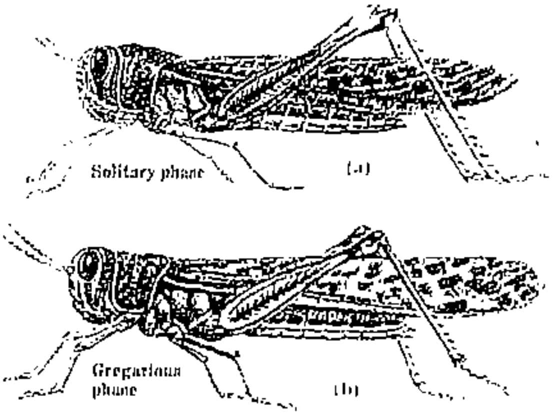

चित्र 16.32 : टिड्डियों की दो प्रावस्थाएं विभिन्न रंगों की

टिड्डियां (*आर्डर ऑर्थोप्टेरा,* Order Orthoptera)

टिड्डियां एक प्रकार की टिड्डा स्पीशीज़ ही हैं। अनुकूल परिस्थितियों में ये बहुत तेज़ी से प्रजनन करती हैं। ये दल बनातीं और दूर-दूर एक जगह से दूसरी जगह प्रवास करती हैं जिसके दौरान वे रास्ते में वनस्पति का विनाश करती जाती हैं।

भारत में टिड्डियों की तीन ख़ास स्पीशीज़ पायी जाती हैं :-

1. *शिस्टोसर्का ग्रीगैरिया (Schistocerca gregaria)* (मरुस्थलीय टिड्डी)
2. *लोकस्टा माइग्रेटोरिया (Locusta migratoria)* (प्रवासी टिड्डी)
3. *पतंगा सक्सिनेटा (Patanga succinata)* (बांम्बे टिड्डी)

टिड्डियां बहुभक्षी होती हैं और वे अधिकतर पौधों पर आक्रमण करती हैं। टिड्डियों की मुख्यतः दो प्रावस्थाएं होती हैं 1. एकचारी (solitary) तथा 2. यूथचारी (gregarious) (चित्र 16.32)। एकचारी प्रावस्था में टिड्डियां बिखरी-बिखरी रहतीं और स्थानबद्ध रहती हैं तथा रेगिस्तानी क्षेत्र में प्रजनन करती हैं भारत में यह क्षेत्र राजस्थान, सौराष्ट्र एवं बड़ौदा के कुछ भाग, कच्छ और हिसार तथा पंजाब के कुछ ज़िले हैं। यूथचारी प्रावस्था में ये ज़्यादा सक्रिय एवं पास-पास सटी भीड़ सी बनाए रहती हैं। ये दल बनातीं और दूर-दूर प्रवास करती हैं। मरुस्थलीय टिड्डी सर्वाधिक विनाशकारी होती है। इसका सक्रियता-क्षेत्र दक्षिण पुर्तगाल, जिबराल्टर, उत्तर-पश्चिम

पूर्वी एवं उत्तर-पूर्वी अफ़्रीका से लेकर अरब, इज़राइल, उत्तर रूस, इराक, इरान, तुर्की, अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान तथा भारत तक फैला है।

मरुस्थलीय टिड्डियां परिपक्वता प्राप्त करने के तुरंत बाद मैथुन करती हैं। एक मादा एक समय में लगभग 50-100 अण्डे एक समूचे गुच्छे के रूप में रेतीली मिट्टी के भीतर देती है। (चित्र 16.33)।

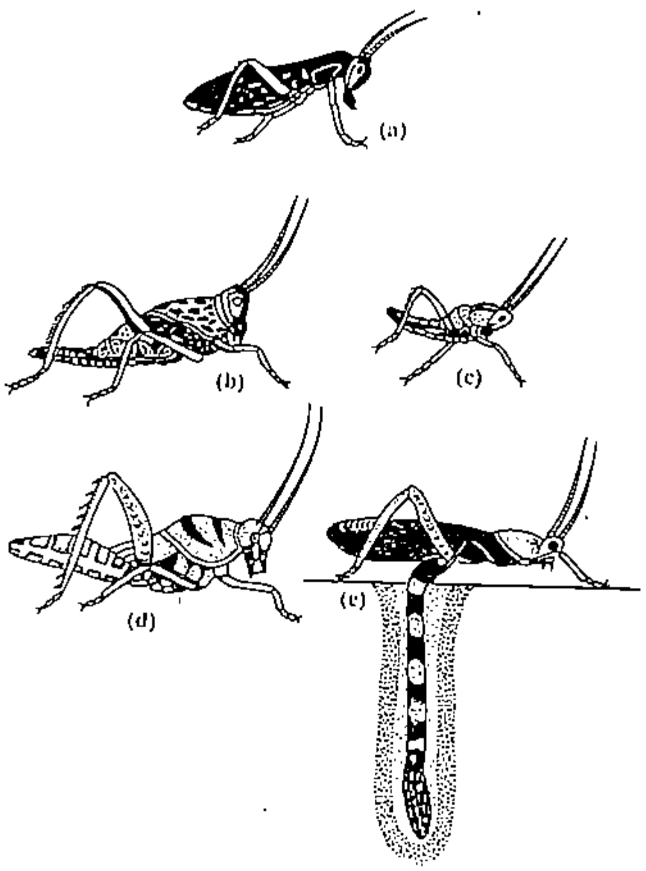

चित्र 16.33 : शिस्टोसर्का ग्रीगेरिया। (a) तथा (b) यूथचारी प्रावस्था की निम्फ़ें, (c) तथा (d) यूथचारी प्रावस्था की निम्फ़ें (e) मादा टिड्डी अण्डे देती हुई।

शलभ (आर्डर-लेपिडॉप्टेरा, order Lepidoptera)

शलभों तथा तितलियों के लार्वो को कैटरपिलर कहते हैं। इनमें से अनेक बहुभक्षी होते हैं। विशेष रोमिल कैटरपिलर तो ऐसा होता ही हैं।

अधिक महत्वपूर्ण रोमिल कैटरपिलर पीड़क इस प्रकार है :-

1. *ऐम्सैक्टा मूरिआई (Amsacta moorei)* (लाल रोमिल कैटरपिलर)
2. *डायाक्रिसिया ओब्लीका (Diacrisia obliqua)* (बिहार का रोमिल कैटरपिलर)

ये सभी कैटरपिलर बहुभक्षी हैं और नानाविध आहार-पौधों पर आक्रमण करते हैं। ये यत्र-तत्र पीड़क होते हैं और कुछ ख़ास ऋतुओं में भारी संख्या में प्रकट होते हैं।

लाल रोमिल कैटरपिलर (*ऐम्सेक्टा मूरिआई*)

परपोषी पौधे - मूंगफली, अरहर तथा अन्य दालें, कपास, मक्का, बाजरा, सनी आदि।

क्षति का स्वरूप - लाल रोमिल कैटरपिलर (चित्र 16.34) पत्तियों का भीषण आहारक है जो कुछ भी हरा मिल जाए उसे हड़पता जाता है। यह पीड़क नियमित रूप से पाया जाता है मगर किसी-किसी वर्ष गंभीर महामारी का रूप ले लेता है।

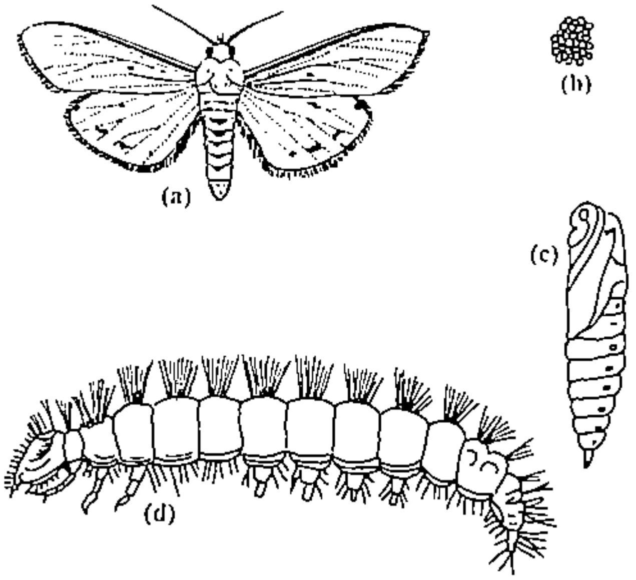

चित्र 16.34 : लाल रोमिल कैटरपिलर (*ऐमैक्टा मूरिआई*) - जीवन इतिहास (a) अण्डा, (b) लार्वा, (c) प्यूपा, (d) वयस्क।

वयस्क शलभ मध्यम साइज़ का होता है और मादा अपने जीवनकाल में 800 से 1000 अण्डे देती हैं जिन्हें वह अलग-अलग धानों में पत्तियों की निचली सतह पर अथवा मिट्टी के ऊपर देती है। केटरपिलर जो कुछ भी हरा मिल जाए उसे खाते हैं और एक पौधे से दूसरे पौधे पर जाते रहते हैं और मार्ग में आए हुए सब कुछ को सफ़ा-चट करते जाते हैं। पूरा बढ़ चुका लाल कैटरपिलर मिट्टी में एक ककून के भीतर प्यूपा अवस्था बिताता है, यह ककून लार्वा के रोमों का ही बना होता है। तदनंतर शलभ बाहर निकलता और अगली पीढ़ी की शुरुआत करता है।

बिहार का रोमिल कैटरपिलर (*डायक्रिसिया ओब्लीका*)

यह तिल, अलसी, सरसों, मूंगफली, अंरडी, पटसन, सैफ़लावर, सूरजमुखी, आलू, टमाटर, फूलगोभी तथा बंदगोभी पर लगता है।

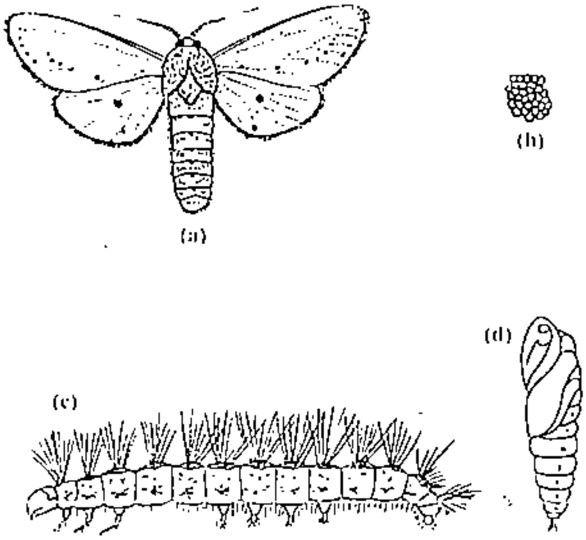

चित्र 16.35 : बिहार के रोमिल कैटरपिलर (*डायाक्रिसिया ओब्लीका*) का इतिहास (a) वयस्क, (b) अण्डा, (c) लार्वा, (d) प्यूपा।

ये कैटरपिलर नन्हीं और कोमल पत्तियों की निचली सतह को खाते हैं। जब ये अधिक संख्या में ग्रसन किए होते हैं तब पत्ती का केवल मध्यशिरा वाला भाग ही बस बचा-खुचा रह जाता है। गंभीरता से प्रभावित फसलों में पत्तियां पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

शलभ मध्यम साइज़ का होता (चित्र 16.35) है। मादा सैकड़ों-सैकड़ों अण्डे समूहों में देती है जिन्हें वह पत्तियों की निचली सतह पर चिपकाती है। ननहें कैटरपिलर पत्तियों की निचली एपिडर्मिस को खाते हैं। वे धीरे-धीरे तितर-वितर हो जाते और पूरे क्षेत्र में फैल जाते हैं जहां हर तरफ ये भुख्खड़ बने हुए खाते ही जाते हैं। ये कैटरपिलर एक खेत से दूसरे खेत में भारी संख्या में जाते रहते हैं और फ़सलों को पत्ताविहीन करते जाते हैं। तथा नष्ट कर देते हैं। प्यूपा बनने की क्रिया रेशम और लार्वा रोमों के बने ककून के भीतर होती है।

ब. कुछ आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण पादप पीड़क।

चावल (धान) के पीड़क

अनेक महत्वपूर्ण पीड़क हैं जो चावल की फ़सल को हानि पहुंचाते हैं।

धान के कुछ पीड़क

पत्ती खाने वाले पीड़क

1. *हीरोग्लाइफ़ा निग्रोरिप्लेटस (Hieroglypha nigrorepletus)* (चावल का टिड्डा)

2. *डाइक्लैडिस्पा आर्मिजेरा (Dicladispa armigera)* (चावल का हिस्पा)

3. *स्पोडॉप्टेरा मौरिशिया* (*Spodoptera mauritia*) (वृंदन कैटरपिलर अथवा "आर्मिवर्म")

4. *ऐम्सेक्टा मूरिआई* (*Amsacta moorei*) (लाल रोमिल कैटरपिलर)-देखिए बहुभक्षी

पीड़क पत्ती एवं तना चूषक पीड़क

5. *नेफ़ोटेट्टिक्स वाइरेसेन्स* (*Nephotettix virescens*), एन. एपिकैलिस (N. *apicalis*) हरा धान पर्ण-फुदक

तना वेधक पीड़क

6. सर्पोफैगा (ट्राइपोराइज़ा) इंसर्टुलस (*Scirpophaga (Tryporyza)incertulas*)

अनाज चूषक पीड़क

7. लेप्टोकोराइज़ा वेरिकॉर्निस (*Leptocorisa varicornis*) - चावल का गंधी मत्कुण (चावल की बाल का मत्कुण)

चावल का टिड्डा - (*हीरोग्लाइफ़ा निग्रोरिप्लेटस, एच. बैनियन, H. banian*) (आर्डर -ऑर्थोप्टेरा)

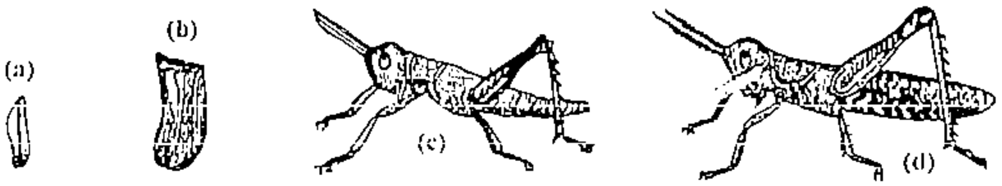

चित्र 16.36: हीरोग्लाइफ़ा निग्रारिप्लेटस का जीवन इतिहास

निम्फ़ और वयस्क (चित्र 16.36) दोनों ही धान की पत्तियों तथा प्ररोहों को खाकर फ़सल को नष्ट करते हैं। जब पौधों पर बहुत ज़्यादा आग्रसन हुआ होता है तब पौधे पूर्णतः पत्ताविहीन हो जाते और ये खेत-दर-खेत दूर-दूर से क्षेत्रों में फैल जाता है जिससे उत्पादन में भारी गिरावट आ जाती है।

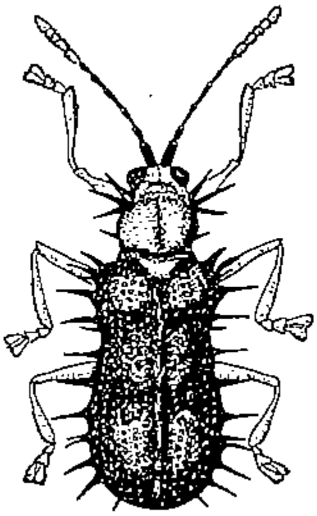

चित्र 16.37 : वयस्क डाइक्लैडिस्पा आर्मिजेरा

चावल का हिस्पा *(डाइक्लेडिस्पा आर्मिजेरा) (आर्डर-कोलियॉप्टेरा)*

यह बीटल (चित्र 16.37) पत्तियों के हरे पदार्थ को खाता है। इस बीटल के ग्रब चावल की पत्तियों में सुरंग बनाता और दो एपिडर्मिस परतों के बीच के ऊतकों को खाता जाता है। फलतः फ़सल की बढ़वार मारी जाती और पौधों की नोकें सूख जाती हैं।

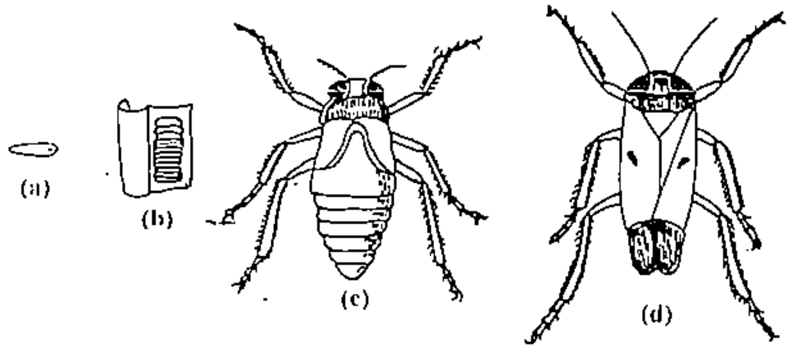

चित्र 16.38 : *नेफ़ोटेट्टिक्स वाइरेसेन्स* (a) अंडा, (b) अंडे की पंक्ति में व्यवस्थित, (c) निम्फ, (d) वयस्क

चावल का हरा पर्ण-फुदका (नेफ़ोटेट्टिक्स वाइरेसेन्स, *Nephotettis virescens* (आर्डर हेमिप्टरा)

एन. वाइरेसेन्स (चित्र 16.38) जिसे हरा जैसिड भी कहते हैं एक हरा पर्ण फुदका है जिसके नर में अग्र पंखों पर दो निशान बने होते हैं जो मादा में नहीं होते। निम्फ़ तथा वयस्क दोनों ही पत्तियों का रस चूसते हैं और इस तरह पौधों को प्रभावित करते हैं जो बीमार से दिखने लग जाते तथा पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। ये वाइरस-रोग भी फैलाते हैं जो कुछ क्षेत्रों में धान की खेती के लिए भारी खतरा होते हैं।

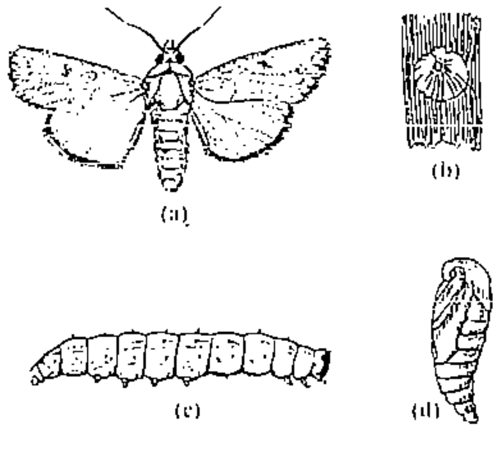

चित्र 16.39 : *स्पोडोप्टेरा मौरिशिया* का जीवन-इतिहास (a) वयस्क, (b) अण्डा, (c) लार्वा, (d) प्यूपा

चावल का वृंदन कैटरपिलर (Rice swarming Caterpillar) अथवा "आर्मी वर्म" (*सोडॉप्टेरा मौरिशिया*) (आर्डर-लेपिडॉप्टेरा)

भारी संख्या में होने पर सोडॉप्टेरा मौरिशिया (चित्र 16.39) के कैटरपिलर फ़सलों को गंभीर क्षति पहुंचाते हैं। ये जत्थे बनाकर चलते जाते हैं और इसीलिए इन्हें यह नाम "आर्मी-वर्म" (सैन्य कृमि) दिया गया है। और चलते जाते हुए खा-खाकर एकदम सफ़ा चट करते जाते हैं बस बची रह जाती है पत्तीविहीन डंठलें।

पूर्णविकसित कैटरपिलर मिट्टी में प्यूपा अवस्था बिताता है।

चावल का तना वेधक (*सर्पोफ़ैगा इनसर्टुलस*), आर्डर-लेपिडॉप्टेरा सर्पोफैगा इनसर्टुलस (चित्र 16.40) के कैटरपिलर जड़ों के निकट तने में सूराख करता है जिससे "डेड हार्ट" नामक लक्षण अर्थात केन्द्रीय प्ररोह का सूखना हो जाता है जिससे खींचे जाने पर यह भाग आसानी से ही बाहर आ जाता है। जब पुष्पन के समय पौधे में आक्रमण होता है तब पैनिकल यानी बालियां सूख जाती हैं जिससे श्वेत बाली रोग हो जाता है।

कटुवा सूंडी (*माइथिम्ना सेपैरेटा*) (आर्डर-लेपिडॉप्टेरा)

माइथिम्ना सैपैरेटा कैटरपिलर (चित्र 16.41) की विनाशकारी अवस्था होती है। यह पत्तियों को अतृप्ततः खाता ही रहता है और तनों एवं अनपकी बालियों को काटता जाता है। अंतिम लार्वा अवस्था बालियों को उनके वृंत पर ही काट देता है और इसी से इसका यह नाम "बाली कटुवा" पड़ा। यही अवस्था है जो फ़सलों को हानि पहुंचाती है। पूर्णविकसित होने पर कैटरपिलर मिट्टी में घुस जाता और एक कोष्ठ बनाकर उसके भीतर प्यूपा अवस्था बिताता है।

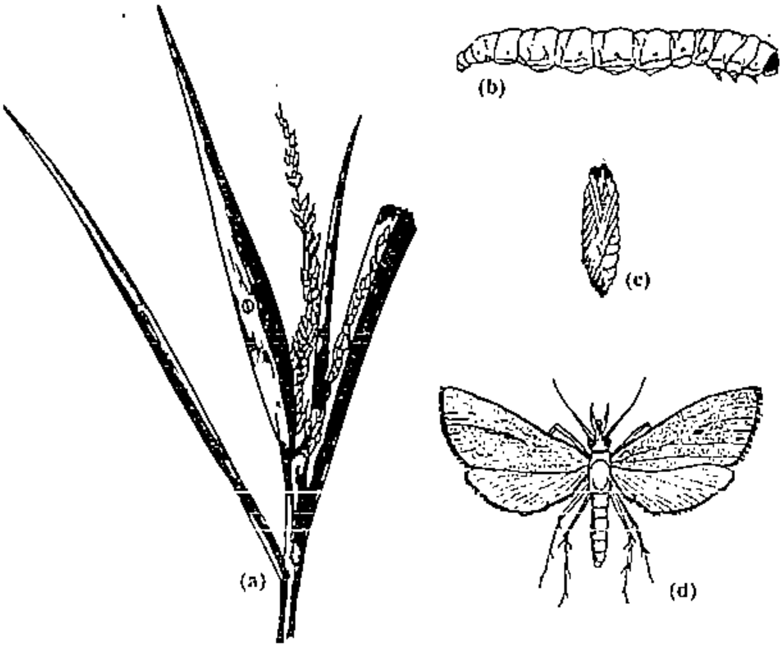

चित्र 16.40 : चावल का तना वेधक *सर्पोफ़ैगा इनसर्टुलस* का जीवन चक्र (a) अण्डों के साथ पादप संक्रमित (b) लार्वा, (c) प्यूपा, (d) वयस्क।

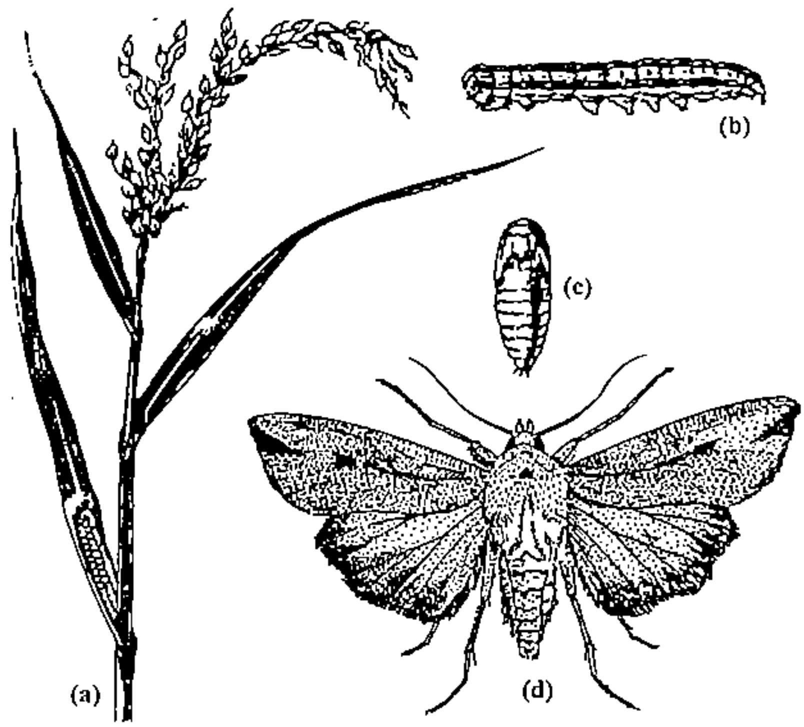

चित्र 16.41 : *माइथिम्ना सेपैरेटा* (Wlk) जीवन इतिहास (a) अण्डा, (b) कैटरपिलर, (c) प्यूपा, (d) वयस्क शलभ

चावल का बाली मत्कुण (लेप्टोकोराइज़ा) आर्डर हेमिप्टेरा

वयस्क और निम्फ़ दोनों (चित्र 16.42) ही पुष्पावलि-वृंत (peduncle), कोमल स्तम्भ तथा दूधिया अवस्था में दानों के रस को चूस जाते हैं, फलतः दाने खोखले हो जाते हैं।

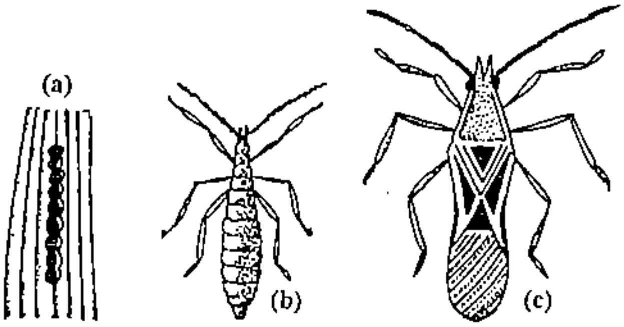

चित्र 16.42 : *लेप्टोकोराइजा वैरिकॉर्निस* का जीवन इतिहास। (a) वयस्क, (b) अण्डा, (c) निम्फ़

गेहूँ के पीड़क

गेहूँ पर भी बहुत से पीड़क आक्रमण करते हैं :–

इनमें से कुछ ख़ास पीड़क इस प्रकार हैं :–

1. *ऐग्रोस्टिस इप्सिलॉन* (*Agrostis ipsilon*)- कटुवा सूंडी (cut worm)
2. *सीसैमिया इनफ़ेरेन्स* (*Sesamia inferens*)- गुलाबी तना वेधक

ऐग्रोस्टिस इप्सिलॉन-कटुवा सूंडी (आर्डर-लेपिडॉप्टेरा)

एग्रोस्टिस इप्सिलॉन - कटुवा सूंडी (आर्डर-लेपिडॉप्टेरा) लार्वा अवस्था (चित्र 16.43) कोमल पौधों को ठीक मिट्टी की सतह के ऊपर काटकर खड़ी फ़सलों को नुकसात पहुंचाती है। ये लार्वा ज़मीन में कोष्ठ बनाकर उनके भीतर प्यूपा अवस्था बिताते हैं। शलभ रात के समय बाहर आता है।

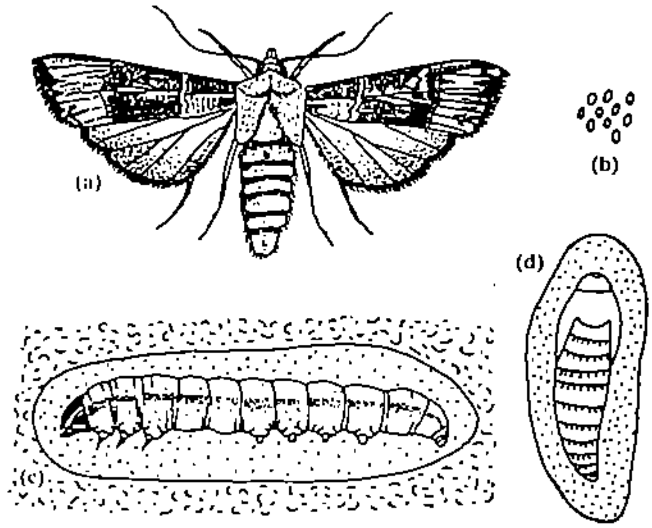

चित्र 16.43 : *ऐग्रोस्टिस इप्सिलॉन* का जीवन इतिहास। (a) वयस्क, (b) अण्डे, (c) लार्वा

(d) प्यूपा

गुलाबी तना वेधक (*सीसैमिया इनफ़ेरेन्स*) (*आर्डर-लेपिडॉप्टेरा*)

इसके कैटरपिलर (चित्र 16.44) भी चावल के तना-वेधक की तरह "डेड-हार्ट" दशा पैदा कर देते हैं।

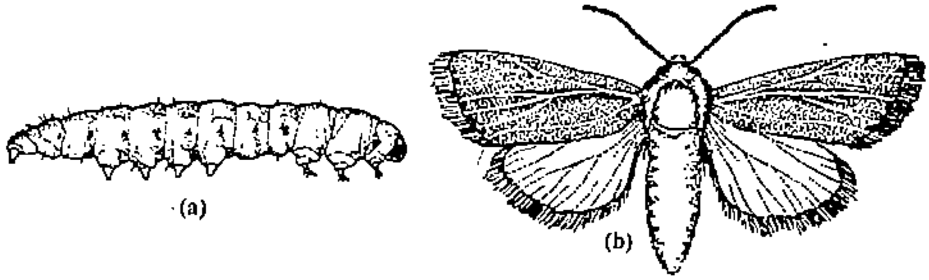

चित्र 16.44: *सीसैमिया इनफ़ेरेन्स* (a) वयस्क, (b) लार्वा

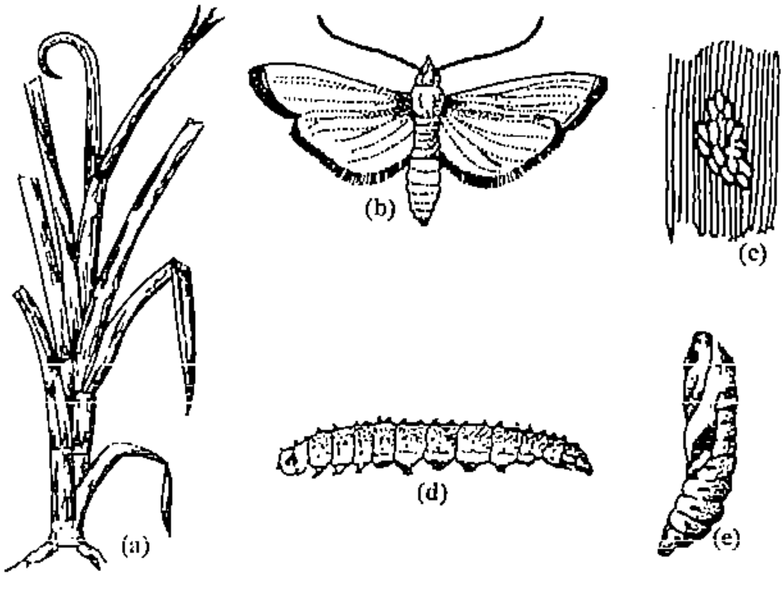

चित्र 16.45: *काइलो इनफस्कैटेलस* का जीवन इतिहास (a) ग्रसित पौधा, (b) वयस्क, (c) अण्डे, (d) लार्वा, (e) प्यूपा

गन्ने के पीड़क

गन्नें के मुख्य पीड़क इस प्रकार हैं :-

1. *काइलो इनफ़स्कैटेलस* (*chilo infuscatellus*) (प्ररोह वेधक)
2. *पाइरिला पर्पुसिल्ला* (*Pyrilla perpusilla*) (पर्ण फुदक)
3. *सेसामिया इनफेरेन्स* – गुलाबी तना वेधक, देखिए इस इकाई में गेहूँ का पीड़क
4. *हीरोग्लाइफ़स निग्रोरेप्लेटस* (*Hieroglyphas nigrorepletus*) - टिड्डे देखिए धान के पीड़क
5. *माइथिम्ना सेपैरेटा* (*Mythimna separata*) - कटुवा सूंडी - देखिए गेहूँ के पीड़क

गन्ने का प्ररोह वेधक (*काइलो इनफ़स्कैटेलस* : आर्डर लेपिडॉप्टेरा)

इस पीड़क (चित्र 16.45) के कैटरपिलर तने को वेध कर उसके भीतर कोमल ऊतकों को खाते हैं जिससे "डेड हार्ट" नामक दशा पैदा होती है।

यह शलभ पत्तियों की निचली सतह पर 8-10 अण्डों के समूहों में उन्हें पंक्तियों में देती हैं। इनके कैटरपिलर ठीक धरती के स्तर पर तने के भीतर प्रवेश करते हैं। पूर्ण विकसित लार्वे प्ररोह अथवा तने के भीतर ही प्यूपा अवस्था बिताते हैं जिसमें से पूरी तरह बढ़ चुके शलभ ही बाहर को आते हैं।

गन्ने का पर्ण फुदक (*पाइरिला पर्पुसिल्ला*) आर्डर हेमिप्टेरा

इसके निम्फ़ और वयस्क (चित्र 16.46) दोनों ही गन्ने की पत्तियों का कोशिका रस चूसते हैं। फलतः गन्ने की पत्तियां पीली पड़ जातीं और सूख जाती हैं। वे "हनीड्यू" भी स्रावित करते हैं जिससे हानिकर कवक भी आकर्षित होते और उनके कारण काली-काली फफूंद भी लग जाती है जिससे प्रकाश-संश्लेषण की दर घट जाती और गन्ने में शर्करा का अंश कम हो जाता है।

वयस्क कीट का शीर्ष आगे की ओर को एक थूथन जैसी संरचना के रूप में निकल गया होता है जिसे तुंड अथवा रॉस्ट्रम कहते हैं। मादा में एक जोड़ी गुदा गुच्छे से बने होते हैं जिससे मोमिया सूत्र बन जाते हैं।

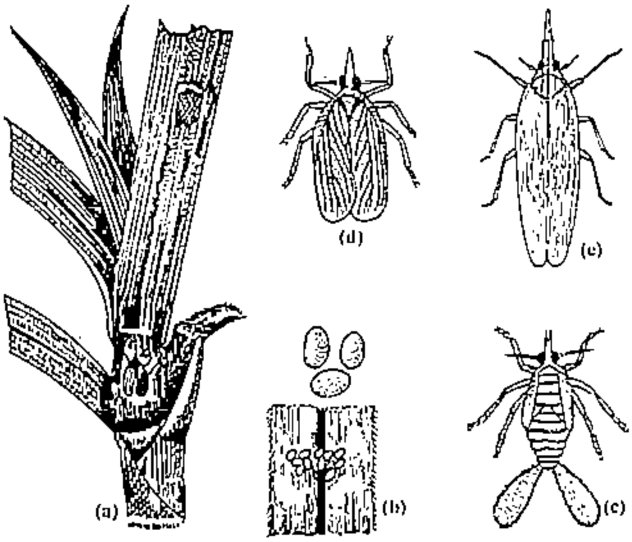

चित्र 16.46 : *पाइरिला पर्पुसिल्ला* का जीवन इतिहास (a) गन्ने का ग्रसित पौधा (b) अण्डे, (c) डिम्भक (d) नर (e) मादा

रेशा फ़सलों के पीड़क

कपास के पीड़क

कपास पर अनेक पीड़क कीट लगते हैं जिनसे कपास को भारी क्षति पहुंचती है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

1. *एरियस विटेला* (एरियस फ़बा) {*Earias vitella (Earias faba)*} चित्तीदार डोड़ी सूंडी
2. *डिसडर्कस कोएनिगाई* (*Dysdercus Koenigii*) - कपास का लाल मत्कुण
3. *ऐम्सैक्टा* स्पी. (*Amsacta* spp.) लाल रोमिल कैटरपिलर - देखिए बहुभक्षी पीड़क
4. डायाक्रिसिया ओब्लीका (*Diacrisia obliqua*) -बिहार का रोमिल कैटरपिलर, देखिए बहुभक्षी पीड़क
5. माइथिम्ना सेपैरेटा (*Mythimna separata*) - कटवा सूंडी - देखिए गेहूँ के पीड़क

चित्तीदार डोड़ी सूंडी *(एरियस विटेला)* आर्डर-लेपिडॉप्टेरा

चित्तीदार डोड़ी सूंडी (एरियस विटेला) का कैटरपिलर (चित्र 16.47) कपास के पौधों के वृद्धिशील प्ररोहों में, जब ये पौधे 6 सप्ताह की आयु के होते हैं, सूराख़ करके भीतर पहुंच जाते हैं जिससे पौधा झुक जाता और मुर्झा जाता है। बाद में जब फूलों की कलियां लगती हैं और कपास की डोड़ी प्रकट हो जाती हैं तब उनपर भी कैटरपिलर हमला बोल देते हैं और फलतः वे भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। परिणाम होता कि डोड़े झड़ जाते हैं।

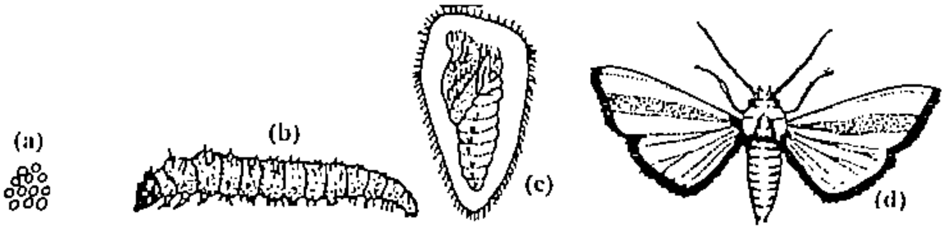

चित्र 16.47 : *एरियस विटेला* का जीवन इतिहास (a) अण्डे, (b) लार्वा, (c) प्यूपा (d) वयस्क

कपास का लाल मत्कुण *(डिसडर्कस कोएनिगाई)* (चित्र 16.48) आर्डर : हेमिप्टेरा

निम्फ़ और वयस्क दोनों ही परपोषी पौधे और डोड़ियों का रस चूसकर उन्हें क्षति पहुंचाते हैं।

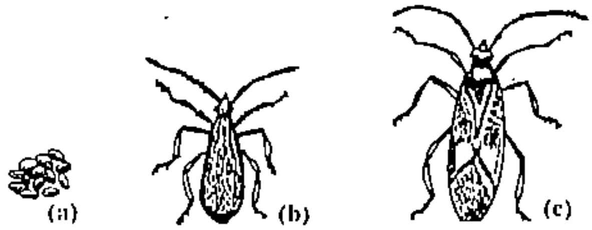

चित्र 16.48 : *डिसडर्कस कोएनिगाई* का जीवन इतिहास। (a) अण्डे, (b) निम्फ़ (c) वयस्क

तिलहनों के पीड़क

अंरडी के पौधे के पीड़क

अरंडी के पीड़क इस प्रकार हैं :-

1. *ऐकीया जनाटा* (*Achea janata*) - अरंडी का "सेमीलूपर"
2. *ऐमसैक्टा मूरिआई* - लाल रोमिल कैटरपिलर- देखिए बहुभक्षी पीड़क इस इकाई में

अरंडी का "सेमीलूपर" (ऐकीया जनाटा) (चित्र 16.49) आर्डर लेपिडॉप्टेरा कैटरपिलर पत्तियों को बड़ी जोर से खाते जाते हैं और पूर्णतः बढ़ चुकने के बाद मिट्टी में प्यूपा अवस्था बनाते हैं।

चित्र 16.49 : *ऐकीया जनाटा* का जीवन-चक्र (a) पूर्ण विकसित कैटरपिलर, (b) वयस्क

मूंगफली की फ़सल के पीड़क

मूंगफली के कुछ महत्त्वपूर्ण पीड़क इस प्रकार हैं :-

1. *एफ़िस क्रैसिवोरा* (Aphis crassivora) – मूंगफली का एफ़िड
2. *ऐमसैक्टा पूरियाई* – लाल रोमिल कैटरपिलर – देखिए बहुभक्षी पीड़क
3. *डायाक्रिसिया ओब्लीका* – बिहार का रोमिल कैटरपिलर – देखिए बहुभक्षी पीड़क
4. *ऐग्रोटिस* की कुछ स्पीशीज़ – कर्तन सूंडी – देखिए गेहूँ के पीड़क
5. *हेलियोठिस आर्मिजेरा* – चने का फली वेधक – देखिए दालों के पीड़क

मूंगफली का एफ़िड *(एफ़िस क्रैसिवोरा)* आर्डर हेमिप्टेरा

निम्फ़ों और वयस्कों (चित्र 16.50) को बड़ी संख्या में पौधे की कोमल कोपलों पर लगे देखा जा सकता है जहां वे कोशिका रस चूसते रहते है। जिसके फलस्वरूप प्ररोह सूख जाते हैं। ये मूंगफली के रोज़ेट रोग के वाहक भी हैं। पौधों पर इस पीड़कों की समष्टि बड़ी तेज़ी से बढ़ती जाती है। मूंगफली की फसल पर इस पीड़क का ग्रसन पौधों के बोए जाने के प्रायः 4-6 सप्ताह बाद होता है।

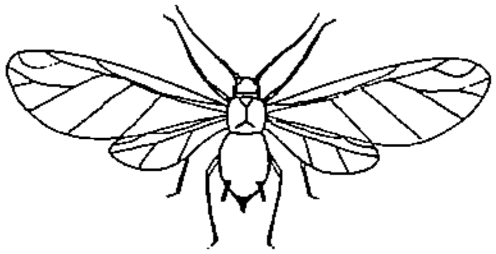

चित्र 16.50 : मूंगफली के एफ़िड *एफ़िस क्रैसिवोरा* का वयस्क

नारियल के पीड़क

नारियल के कुछ पीड़क इस प्रकार हैं :-

1. *रिंकोफ़ोरस फ़ेरुजिनियस* (*Rhynchophorus ferrugineus*) - लाल नारियल सुरसुरी
2. *ओरिक्टिस राइनोसेरॉस* (*Oryctes rhynoceros*) - गैंडा बीटल
3. *ओपिसाइना ऐरीनोसेला (नीफैंटिस सेरिनोपा)* {*Opisina arenosella (Nephantis serinopa)*} - काली शीर्ष कैटरपिलर

नारियल की लाल सुरसुरी (*रिंकोफ़ोरस फ़ेरुजिनियस*)-आर्डर कोलियॉप्टेरा

वयस्क सुरसुरी (चित्र 16.51) लगभग 35 मि.मी. लम्बी, आकृति में सिलिंडराकार तथा लाली लिए हुए भूरा। क्षति ग्रबों द्वारा होती है जो नारियल के तने के नरम ऊतकों में वेधन करके भीतर पहुंचता और वहीं आहार करता है। जब आक्रमण गंभीर होता है तब केंद्रीय प्ररोह मुर्झा जाता है और नारियल का पेड़ मर जाता है। मादा परपोषी के कोमल ऊतकों में छोटे-छोटे सूराख़ कर देती और उनके भीतर अण्डे देती है। लाल सिर वाले पादविहीन कोमल सफ़ेद ग्रब नरम ऊतकों को खाते जाते हैं जिससे वृक्ष के तने में सुरंग बन जाती है।

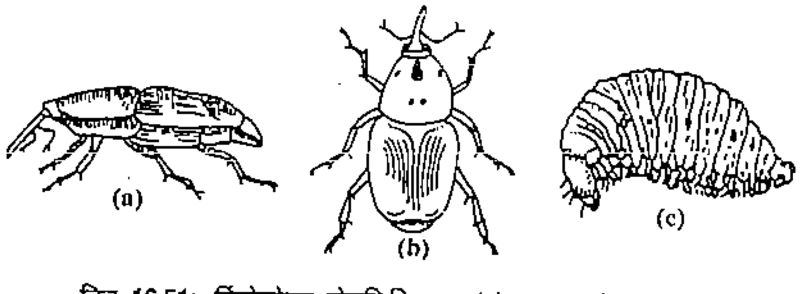

चित्र 16.51: *रिंकोफ़ोरस फ़ेरुजिनियस* - (a) वयस्क, (b) ग्रब, (c) ककून

गैंडा बीटल (*ओरिक्टीज राइनोसेरॉस*) -आर्डर कोलियॉप्टेरा

पौधों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुचाने वाला कीट वयस्क गैंडा बीटल (चित्र 16.52) ही है। यह अनखुली, और वलनित कोमल पत्तियों उनके डठंलो में सूराख़ करता है, उनके ऊतको को खा जाता है, और बिल में बचा रह जाता है रेशेदार पदार्थ। वृक्ष छोटा ही रह जाता है तथा उसके वृद्धिशील विंदु नष्ट हो जाते हैं। नारियल के पेड़ों का यह एक मुख्य पीड़क है।

वयस्क बीटल लगभग 5 से.मी. का होता है और उसका शरीर मज़बूत, सिलिंडराकार तथा लालीपन लिए हुए काले रंग का होता है। शीर्ष पर एक नुकीला सींग सा बना होता है। जो ऊपर को पृष्ठतः उभरा होता है। मादा अपने अण्डे सड़ते-गलते जैविक पदार्थ में अथवा खाद के गढ़ों में देती है, जिनकी संख्या 100-150 के लगभग हुआ करती है। ग्रब सड़ते-गलते पदार्थ को ही खाते हैं। ग्रब मिट्टी में ही करीब 30 से.मी. की गहराई पर एक ककून के भीतर प्यूपा अवस्था बिताता है। वयस्क बीटल निकलते ही अपने परपोषी वृक्ष की ओर उड़ता है और आहार करना शुरू कर देता है तथा इस प्रकार वृक्ष को हानि होने लगती है। वयस्क का जीवन काल लगभग 200 दिन का होता है।

चित्र 16.52: वयस्क बीटल *ओरिक्टीज़ राइनोसीरॉस*

काला शीर्ष कैटरपिलर (*ओपिसाइना ऐरीनोऐला*) - आर्डर लेपिडॉप्टेरा

काला शीर्ष कैटरपिलर *ओपिसाइना ऐरीनोसेला (नीफैंटिस सेरिनोपा)* (चित्र 16.53) पत्तियों की निचली सतह पर आहार करते हैं जहां वे हरा पदार्थ खुरच-खुरच कर खाते हैं। फलतः पत्तियां सूख जातीं है। जब आक्रमण गंभीर होता है तब पूरा-का-पूरा वृक्ष क्षेत्र लगता है मानो जल चुका हो।

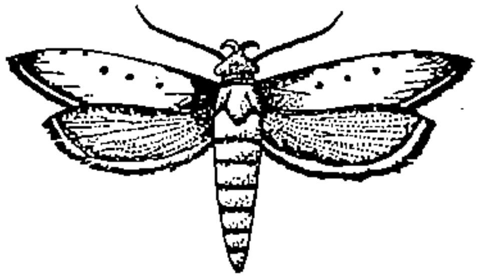

चित्र 16.53 : *ओपिसाइना ऐरीनोसेला (नीफैंटिस सेरिनोपा)* का वयस्क

दलहनों के पीड़क

दलहनों में ये सब आते हैं - मूंग, उर्द, चना, मटर, अरहर, आदि

दलहनों के कुछ मुख्य पीड़क इस प्रकार हैं :-

1. *हेलिकोवर्पा (हीलियोठिस) आर्मिजेरा* – आर्डर लेपिडॉप्टेरा
2. *एफ़िस क्रैसिवोरा*- एफ़िड – देखिए मूंगफली की फसल के पीड़क
3. *ऐमसेक्टा मूरियाई* – लाल रोमिल कैटरपिलर – देखिए बहुभक्षी पीड़क
4. डायाक्रिसिया ओब्लीका – बिहार का रोमिल कैटरपिलर – देखिए बहुभक्षी पीड़क

चने का फलीवेधक (*हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा*) - आर्डर लेपिडॉप्टेरा

चने की फली वेधक *हेलिकोवर्पा (हीलियोठिस) आर्मिजेरा* (चित्र 16.54) एक बहुभक्षी पीड़क है। जो अनेक दलहनों (चना, सोयाबीन, मूंग, उर्द, मटर) तथा कई अन्य महत्वपूर्ण फसलों जैसे सैफ़्लावर, मिर्च, सॉरघम, मूंगफली, टमाटर, कपास आदि को नुकसान पहुंचाता है।

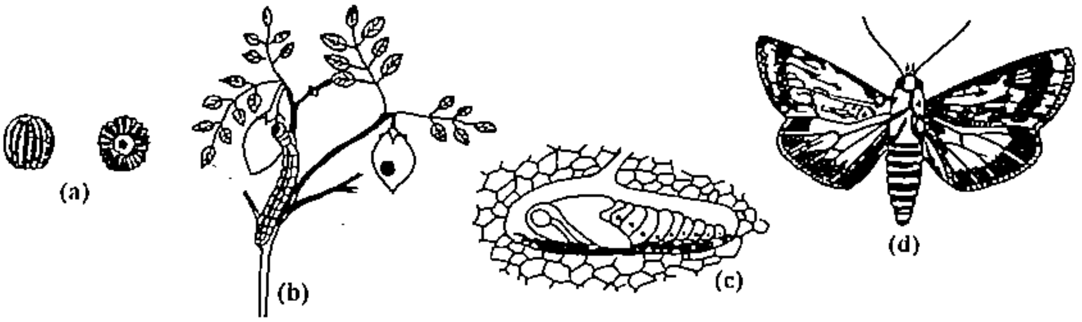

चित्र 16.54: चने की फली वेधक *हेलिकोवर्पा .(हेलियोथिस) आर्मिजेरा* (a) अण्डे, (b) संक्रामित पौधे (c) मृदा के नीचे प्यूपा (d) वयस्क

इसके कैटरपिलर तीव्र आहारक होते हैं और नई-नई बनी फलियों को, पत्तियों को एवं नए-नए बन रहे दानों को उनमें सूराख करके तथा उन्हें नुकसान पहुंचाकर उत्पादन में कमी लाते हैं। अमेरिका में यह सबसे ज्यादा हानि कपास को पहुंचाता है और इसीलिए इसे "अमेरिकन कॉटन बोल वर्म" कहा जाता है।

वयस्क मादाएं पौधे के कोमल भागों पर अकेला एक-एक अण्डा देती हैं। इन अण्डों में से बच्चा कैटरपिलर निकलते हैं जो गपागप खाना शुरू कर देते हैं जिसमें वे आरम्भ में तो पत्तियों को खाते हैं तथा बाद में फलियों को। पूर्णविकसित होने पर कैटरपिलर मिट्टी के भीतर प्यूपा अवस्था बिताते हैं। वयस्क शलभ निकलकर पत्तियों पर अण्डे देते हैं।

सब्ज़ियों के पीड़क

आलू तथा बैंगन के कुछ पीड़क

कुछ फलों की पत्तियों और कभी-कभी समस्त पादप सब्जियों जैसे बैंगन, आलू, भिण्डी, पत्तागोभी, फूलगोभी आदि को कीट पीड़कों से भारी क्षति पहुंचती है। इनमें कुछ पीड़कों का अध्ययन यहां किया जाता है।

1. *ल्यूसिनोडीस ऑर्बोनेलिस* (*Leucinodes orbonalis*) – प्ररोह फल वेधक
2. *एपिलैक्ना विजिंटिऑक्टोपंक्टेटा* (*Epilachna vigintioctopunctata*) – चित्तीदार पत्ता बीटल
3. *ऐग्रॉस्टिस इप्सिलॉन* – कर्तन सूंडी – देखिए गेहूँ के पीड़क
4. *हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा* – चने का फली वेधक – देखिए दलहनों के पीड़क
5. *माइज़स पेरीसीकी* (*Myzus perisicae*) – देखिये सरसों के पीड़कों को इस ईकाई में

प्ररोह-फल वेधक (Shoot and fruit borer) (*ल्यूसिनोडीस ऑर्बोनैलिस*) – आर्डर लेपिडॉप्टेरा

यह पीड़क (चित्र 16.55) आलू, बैंगन तथा बहुत से अन्य *सॉलोनेशियस* पौधों पर बहुभक्षी पीड़क होता है। इसका कैटरपिलर नए-नए पौधों के कोमल प्ररोहों में वेधन करके क्षति पहुंचाता है। वृद्धिशील बिंदु मुर्झा जाता है, प्ररोह झुक जाते हैं जो अंततः मुर्झा जाते और मर जाते है। कैटरपिलर फूल और फलों में भी सूराख करता जाता है।

चित्र 16.55: *ल्यूसिनोडीस ऑर्बोनैलिस* का जीवन-चक्र (1) ग्रस्त पौधो, (a) वयस्क, (b) अंडा, (c) लार्वा, (d) प्यूपा बैंगन के फल में

चित्तीदार पत्ता बीटल (Spotted leaf beetle) (*एपिलैक्ना विजिंऑक्टोपंक्टेटा*) (ऑर्डर कॉलियॉप्टेरा)

यह भी बहुभक्षी है। वयस्क तथा ग्रब दोनों ही आलू, बैंगन, टमाटर तथा अन्य सॉलैनिशयस पौधों को खाते हैं। मगर आलू और बैंगन का यह एक बहुत गंभीर पीड़क है। वयस्क तथा ग्रब दोनों ही क्षतिकारक अवस्थाएं हैं जो पत्ती के हरे क्लोरोफ़िल को खुरच-खुरचकर खाते जाते हैं और शेष रह जाता है जाली जैसी संरचना वाला पत्ती का कंकाल। बाद में ये पत्तियां सूख जाती हैं। ई. *विजिंटिऑक्टोपंक्टेटा* (चित्र 16.56) के वयस्क में उसके इलाइट्रा पर अनेक जगह बिंदु बने होते हैं।

चित्र 16.56 : चित्तीदार पत्ता बीटल *एपिलैक्ना विजिंटिऑक्टोपंक्टेटा*

भिंडी के पीड़क

जो पीड़क कपास के पौधे पर आक्रमण करते हैं वे ही भिंडी पर भी लगते हैं (देखिए इसी इकाई में कपास के पौधों के पीड़क) इनमें ये शामिल हैं।

1. *एरियस विटेला* - चित्तीदार डोड़ा सूंडी
2. *हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा* - चने का फली वेधक
3. *डिसडर्कस कोएनिगाई* - कपास का लाल मत्कुण

कुकुरबिटेशियस सब्जियों के पीड़क

कुकुरबिटेशियस सब्जियों में भांति-भांति के कद्दू, तोरई आदि आते हैं।

कुकुरबिटेशियस सब्जियों के कुछ खास पीड़क इस प्रकार हैं :

1. *डैकस, कुकुरबिटी* - फल मक्खी

फल मक्खियां (Fruit flies) (*डैकस, कुकुरबिटी, Dacus cucurbitae*) - आर्डर *डिप्टेरा*

फल मक्खियां *डैकस कुकुरबिटी* (चित्र 16.57) सर्वाधिक परिचित हैं और इस इकाई में इनका ही विवेचन किया गया है।

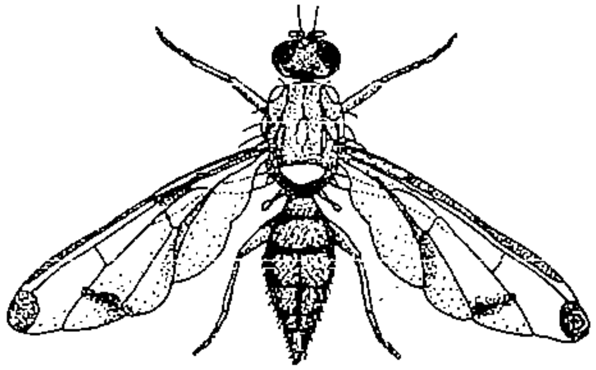

चित्र 16.57: *डैकस कुकुरबिटी* का वयस्क नर

ये *कुकुरबिटेशयस* सब्जियों के सबसे महत्वपूर्ण पीड़क हैं। इनके परपोषियों में आने वाले पौधे हैं - घीया (लौकी), करेला, सीताफल (कुम्हड़ा), तरबूज, खरबूजा, खीरा आदि। पौधों को हानि पहुंचाने वाले मैगट होते हैं जो फलों का गूदा खाते हैं। इनसे ग्रस्त फल सड़ने लग जाता है।

मादा अपने अंडे फूलों और कोमल फलों के भीतर देती है। मैगट फलों के गूदे को खाती हैं। पूर्णविकसित मैगट मिट्टी में प्यूपा बनते हैं। प्यूपा से वयस्क मक्खियां निकलती हैं।

क्रूसिफ़ेरस सब्जियों के पीड़क

क्रूसिफ़ेरस सब्जियों में ये सब आती हैं - बंदगोभी, फूलगोभी, गांठगोभी, चुकंदर, मूली, शलगम, आदि। इनके पीड़कों में से कुछ इस प्रकार हैं :

1. *प्लूटेला ज़ाइलोस्टेला* (*Plutella xylostella*) - 'डायमंड-वैक' शलभ।
2. *ट्राइकोप्लूसिया नाई* (*Trichoplusia ni*) - बंदगोभी का हरा सेमीलूपर।
3. *लाइपेफ़िस एरिसिमाई* (*Lipaphis erysimi*) तथा *माइज़स पर्सीकी* (*Myzus persicae*) - एफ़िड।
4. *ऐग्रॉस्टिस इप्सिलॉन* - कर्तन सूंडी - देखिए गेहूँ के पीड़क।

'डायमंड-ब्लैक' शलभ (Diamond black moth) (*प्लूटेला ज़ाइलोस्टेला*) - आर्डर लेपिडॉप्टेरा

डायमंड ब्लैक शलभ (चित्र 16.58) की नुकसान करने वाली अवस्था इनका छोटा कैटरपिलर है जो पत्तियों की निचली सतह पर आहार करता है और अनेक छेद बना देता है। कैटरपिलरों से पौधों की स्वस्थ बढ़वार मारी जाती है जिससे उत्पादन बहुत घट जाता है।

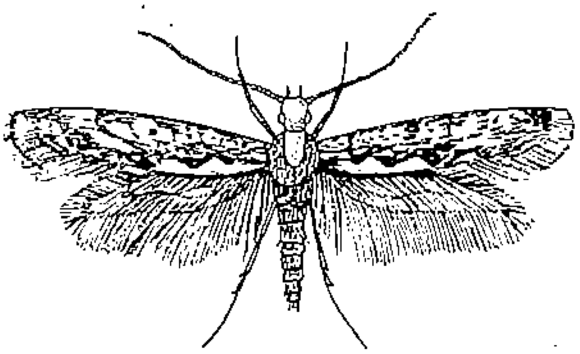

चित्र 16.58 : 'डायमंड-वैक' शलभ *प्लूटेला ज़ाइलोस्टेला*

बंदगोभी का हरा सेमीलूपर (*ट्राइकोप्लूसिया नाई*) - आर्डर : लेपिडॉप्टेरा *ट्राइकोप्लूसिया नाई*

ट्राइकोप्लूसिया नाई (चित्र 16.59) का कटरपिलर पीड़क होता है। बंदगोभी के अलावा यह सलाद, पालक, चुकंदर, मटर, सेलरी, पार्सले, आलू, टमाटर, कार्नेशन, नेस्टर्शियम, आदि को भी नुकसान पहुंचाता है।

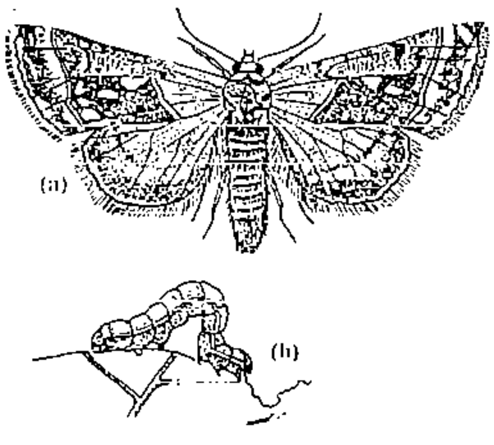

चित्र 16.59 : *ट्राइकोप्लूसिया नाई* (a) वयस्क (b) कैटरपिलर

सरसों का एफ़िड (*लाइपेफ़िस एरिसिमाई*) तथा आलू का एफ़िड (*माइज़स पर्सीकी*) आर्डर - हेमिप्टेरा लाइपेफिस एरिसिमाई (चित्र 16.60 a) एवं माइजस पर्सीकी (चित्र 16.60 b) दोनों ही के वयस्क एवं निम्फ परपोषी (host) पादपों के रस को चूस लेते हैं। सरसों, पत्तागोभी, मूली एवं दूसरे क्रूसीफेरस पादपों को नुकसान मुख्यतः सरसों के एफ़िड से होता है। आलू का एफिड सरसों और आलू, बीन, भिंडी, टमाटर आदि को नुकसान पहुंचाता है।

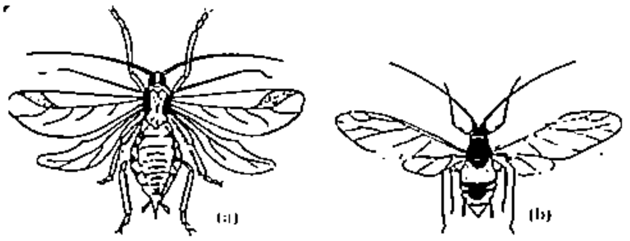

चित्र 16.60 : एफ़िड (a) सरसों का एफिड (*लाइपेफिस एरिसिमी*), (b) आलू का एफ़िड (*माइज़स पर्सीकी*)

फल-फ़सलों के पीड़क

फल के वृक्षों को अनेकों प्रकार कीट पीड़कों से क्षति पहुंचती है जिनमें से कुछ का वर्णन यहां किया जाता है।

आम के पीड़क

आम के कुछ खास-खास पीड़क इस प्रकार हैं :

1. *इडियोस्कोपस क्लाइपिऐलिस* (*Idioscopus clypealis*), *ऐम्रिटोडस ऐट्किंसोनाई* (*Amritodus atkinsoni*), *डैकस डार्सेलिस* (*Dacus dorsalis*) - फल मक्खी।

2. आम के फुदके (Mango hoppers) (*इडियोस्कोपस क्लाइपिऐलिस, ऐम्रिटोडस ऐंट्किंसोनाई*) - आर्डर हेमिप्टेरा

फुदकों के निम्फ़ और वयस्क (चित्र 16.61) दोनों ही आम के गंभीर पीड़क हैं। ये नई कोपलों से, बौर से, कलियों और फूलों से पादप रस चूसते हैं। जब ग्रसन बहुत ज़्यादा हुआ होता है तब समूचा पुष्पक्रम और यहां तक कि नन्हें फल भी मुरझा जाते हैं। नन्हें फल और फूलों की कलियां गिर जाती हैं जिससे फसल को भारी नुकसान होता है क्योंकि फल नहीं बैठ पाते। फुदके 'हनीड्यू' का स्रवण करते हैं जिस पर काली-काली फफूंद उग आती है।

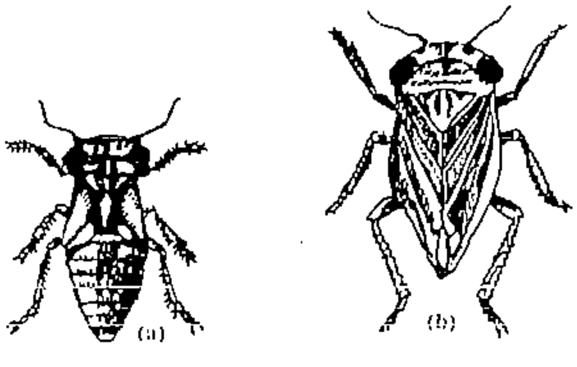

चित्र 16.61: *इडियोसीरस ऐंट्किंसोनाई* (a) वयस्क, (b) निम्फ़

फल मक्खी (*डैकस डॉर्सेलिस*) - आर्डर डिप्टेरा

यह एक बहुभक्षी पीड़क (चित्र 16.62) है जो आम, अमरूद, केला, नींबू, खुबानी, सेब, अनार, लोकाट, आलूबुखारा, आड़ू, नाशपाती तथा और भी अनेक फलों एवं सब्जियों पर भी पायी जाती है।

क्षति मुख्यतः मैगटों के कारण होती है जो फलों का गूदा खाते हैं जिससे फल सड़ जाते और गिर जाते हैं।

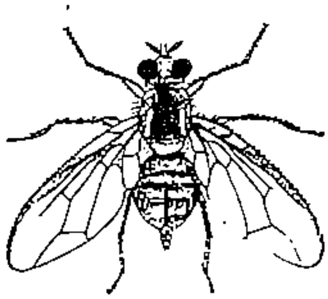

चित्र 16.62: फल मक्खी *'डैकस डॉर्सेलिस'* का वयस्क

सिट्रस (नींबू आदि) के पीड़क

पैपीलियो डिमॉलियस (Papilio demoleus) - नींबू की तितली

नींबू की तितली (*पैपीलियो डिमॉलियस*) - आर्डर लेपिडॉप्टेरा

नींबू की तितली (*पैपीलियो डिमॉलियस*) सिट्रस पौधों की एक खास पीड़क (चित्र 16.63) है। नुकसान कैटरपिलर पहुंचाते हैं जो सिट्रस पौधों की नयी पत्तियों तथा अंतस्थ प्ररोहों को खाते हैं। जब ग्रसन बहुत ज्यादा हुआ होता है तब पौधा फलों के लगने के लिए अयोग्य हो जाता है।

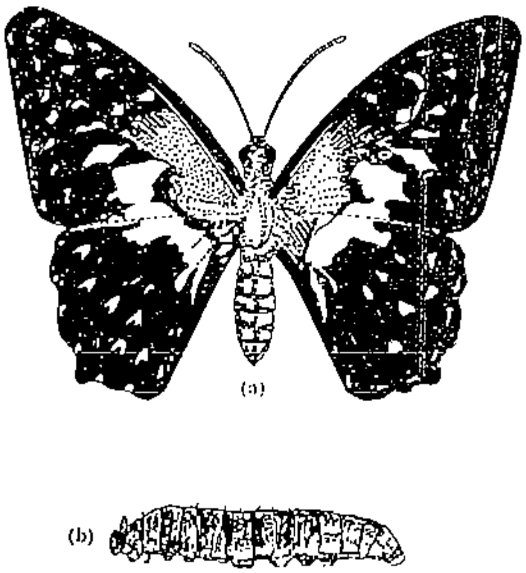

चित्र 16.63 : नींबू की तितली (*पैपीलियो डिमॉलियस*) (a) वयस्क, (b) लार्वा

भंडारित अनाज के पीड़क

भंडारित अनाजों को बहुत से कीट पीड़कों से नुकसान पहुंचता है। यहां हम केवल कोलियॉप्टेरा आर्डर के नाम एवं चित्र दे रहे हैं जो भंडारित अनाजों को नुकसान पहुंचाते हैं (चित्र 16.64)।

1. *साइटोफ़िलस ओरोइज़ी* (*Sitophilus oryzae*) - चावल की सुरसुरी, आर्डर कोलियॉप्टेरा (चित्र 16.64 a)।

2. *ट्राइबोलियम कैस्टेनियम* (*Tribolium castaneum*) - आटे का लाल बीटल, आर्डर कोलियॉप्टेरा (चित्र 16.64 b)।

3. *कैलोसोब्रूकस चिनेन्सिस* (*Callosobruchus chinensis*) - दलहन बीटल, आर्डर कोलियॉप्टेरा (चित्र 16.64 c)।

4. *राइज़ोपर्था डोमिनिका* (*Rhizopertha dominica*) - चना वेधक अथवा धान वेधक बीटल, ऑर्डर कोलियॉप्टेरा (चित्र 16.64 d)।

5. *ट्रोगोडर्मा ग्रैनेरियम* (*Trogoderma granarium*) - खपरा बीटल, ऑर्डर कोलियॉप्टरा (चित्र 16.64 e)

आर्डर लेपिडॉप्टेरा के पीड़क

भंडारित अनाजों को लेपिडॉप्टेरा के कई स्पीशीज़ों से क्षति पहुंचती है। यहां कुछ लेपिडॉप्टेरा पीड़कों के नाम एवं चित्र दिए जाते हैं।

1. *साइटोट्रोगा सीरिएलेला* (*Sitotroga cerealella*) - 'अंगुमोइस' चना शलभ (चित्र 16.65a)।

2. *प्लोडिया इंटरपंक्टेला* (*Plodia interpunctella*) - चूर्ण शलभ (चित्र 16.65 b)।

3. *कोरसाइरा सेफ़ैलोनिका* (*Corcyra cephalonica*) - चावल का शलभ (चित्र 16.65 c)।

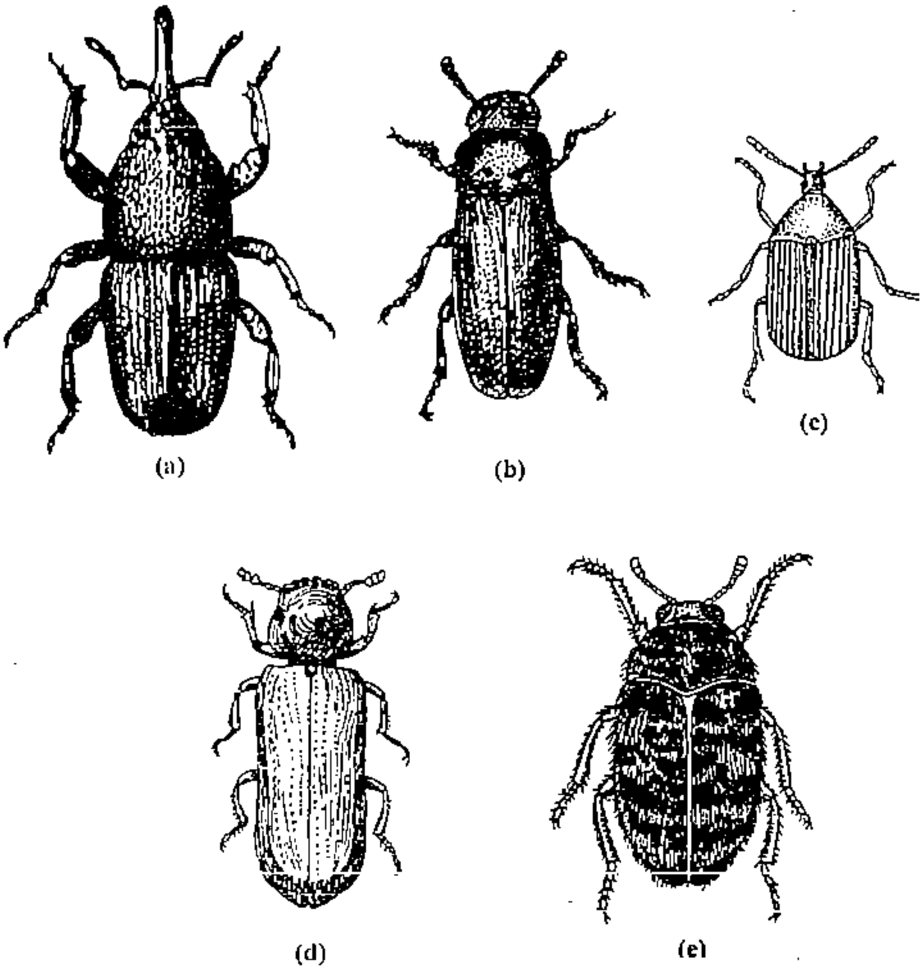

चित्र 16.64 : भंडारित अनाजों के कछ कोलियाप्टेरन पीड़क। (a) चावल की सुरसुरी (*साइटोफ़िलस ओराइज़ी*), (b) आटे का लाल बीटल (*ट्राइबोलियम कैस्टेनियम*), (c) दालों का बीटल (*कैलोसोब्रूकस चिनेन्सिस*), (d) चना-वेधक अथवा धान वेधक बीटल (*राइज़ोपर्था डोमिनिका*), (e) खपरा बीटल (*ट्रोगोडर्मा ग्रैनेरियम*)

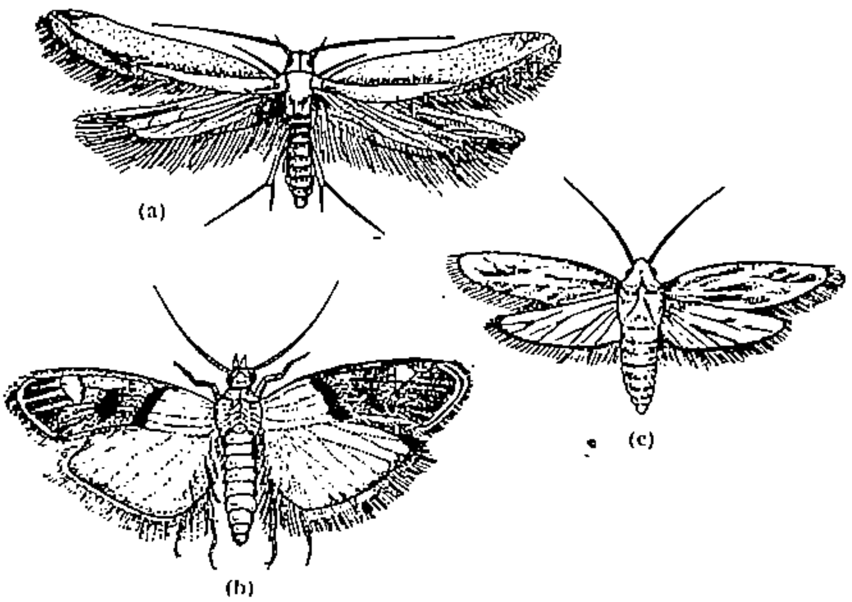

चित्र 16.65 : भंडारित अनाजों के कुछ लेपिडॉप्टेरन पीड़क (a) अंगुमोइस अनाज शलभ (*साइटोट्रोगा सीरिएलेला*), (b) भारतीय चूर्ण शलभ (*प्लोडिया इंटरपंक्टेला*), (c) चावल का शलभ (*कौरसाइरा सेफ़ैलोनिका*)

वृक्षों के पीड़क

ऐसे अनेक कीट हैं जो वृक्षों के पीड़क होते हैं और उन्हें तरह-तरह से नुकसान पहुंचाते हैं। इन्हीं में से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण वृक्ष है सागवान (टीक) जिससे बहुत मूल्यवान इमारती लकड़ी मिलती है।

सागवान वृक्ष के पीड़क

सागवान का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पीड़क यह है :

1. *हिब्लीया प्यूएरा* (Hyblea puera) – सागवान का निष्पत्रणकारी

सागवान का निष्पत्रणकारी (*हिब्लीया प्यूएरा*) – आर्डर लेपिडॉप्टेरा। इसके कैटरपिलर (चित्र 16.66) कोमल पत्तियों को खाती हैं और पुरानी पत्तियों को कंकालीकृत कर देते हैं जिससे बहुत व्यापक निष्पत्रण (defoliation) होता है।

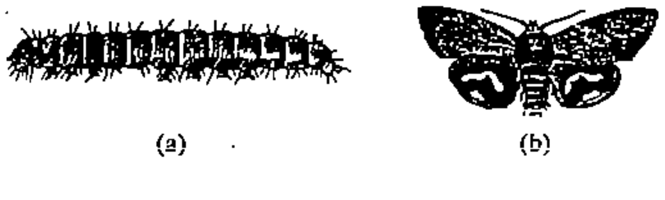

चित्र 16.66 : *हिब्लीया प्यूएरा* (a) लार्वा, (b) वयस्क शलभ

बोध प्रश्न 8

कॉलम A में दिए गए पीड़कों को उनके द्वारा प्रभावित होने वाले पौधे जो कॉलम B में दिए गए हैं, से मिलाइए :

कॉलम A	कॉलम B
(i) *नीफ़ैंटिस सेरेनोपा*	(a) कपास
(ii) *काइलो इन्फसकेटेलस*	(b) गेहूँ
(iii) *ऐग्रोटिस इप्सिलॉन*	(c) अरंडी
(iv) *हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा*	(d) बंदगोभी
(v) *एपिलैक्ना विजिंटीऑक्टोपंक्टेटा*	(e) दाल
(vi) *एरिअस विटेला*	(f) मूंगफली
(vii) *नीफ़ोटेलिक्स वाइरेसेन्स*	(g) नारियल
(viii) *ऐकीया जनाटा*	(h) बैंगन
(ix) *ट्राइकोप्लूसिया नाई*	(i) चावल
(x) *एफिस क्रैसिवोरा*	(j) गन्ना
(xi) *डैकस डार्सेलिस*	(k) नींबू
(xii) *पैपीलियो डिमॉलियस*	(l) आम
(xiii) *ट्राइबोलियम कैस्टेनियम*	(m) सागवान
(xiv) *हिब्लीया प्यूएरा*	(n) गेहूँ का दाना

आर्थ्रोपोड पीड़कों से बचाव और उनका नियंत्रण

आधुनिक युग में ऐसे बहुत से कीटनाशी उपलब्ध हैं जिनसे आर्थ्रोपोड पीड़कों की समष्टि संरचना को एक खासे सही स्तर पर नीचे लाया जा सकता है। मगर उनमें से किसी एक से भी किसी पीड़क विशेष को पूरा तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। अतः पीड़क फिर से पनप आता है और इस कारण कीटनाशी को बार-बार इस्तेमाल करना होगा। अधिकतर कीटनाशी केवल मानव के ही लिए नहीं, वरन् पालतू जानवरों के लिए भी यहां तक कि मधुमक्खी जैसे लाभकारी आर्थ्रोपोडों के लिए भी विषैले होते हैं। अतः जहां तक हो सके पीड़कनाशियों का इस्तेमाल न ही किया जाए या फिर उसे निम्नतर स्तर पर रखा जाए। इस लक्ष्य को कुछ ऐसे तरीके अपना कर प्राप्त किया जा सकता है जो पीड़क की संख्या को बढ़ने देने से रोके रखते हैं।

ऐसी अनेक बचाव विधियां हैं जिन्हें अनेक आर्थ्रोपोड पीड़कों के प्रति अपनाया जा सकता है। यह कर सकना पीड़क की जैविकी की संपूर्ण जानकारी होने पर ही निर्भर होता है।

1. घरेलू पीड़कों, पशुचिकित्सा संबंधी पीड़कों एवं मानव चिकित्सा संबंधी पीड़कों में से अधिकतर अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में प्रजनन करते एवं संख्यावृद्धि करते हैं। अतः आवश्यक है कि मच्छरों, घरेलू मक्खियों और अन्य संबंधित मक्खियों, खटमलों, काकरोचों, जूँओं, पिस्सुओं, आदि पीड़कों को न पनपने देने के वास्ते अपने घरों और अड़ौस-पड़ोस में स्वच्छता एवं स्वास्थ्यकर परिस्थितियां बनायी रखी जाएं। खासतौर से ध्यान में रखना चाहिए कि मच्छरों की अनेक स्पीशीज़ रुके और गंदे जल में प्रजनन करती हैं और ऐसी जगहों पर भी जहां इस प्रकार के जल के एकत्रित होने की संभावनाएं होती हैं। इस सबसे बचना चाहिए। रुके हुए जलाशयों में जैसे कि कुंओं,

टैंकों, तालाबों आदि में *गैम्बूज़िया* (Gambusia) तथा *ऐप्लोकाइलस* (Aplochilus) जैसी लार्वाभक्षी मछलियों को पालना चाहिए जो मच्छरों के लार्वों को खा जाती हैं। गंदे और रुके हुए जलाशयों में कच्चा तेल छिड़कने से भी अनेक प्रकार के मच्छर-लार्वा समाप्त हो जाते हैं क्योंकि ऐसा करने से मच्छर श्वास नहीं ले पाते। इसी तरह, घरेलू मक्खियां तथा अनेक संबंधित मक्खियां सड़ते-गलते पदार्थ में प्रजनन करती हैं, इसलिए ऐसे पदार्थ को सही तरीके से विसर्जित किया जाना चाहिए।

2. कृषि में स्वच्छ विधियाँ अपनायी जानी चाहिए ताकि खेत में पीड़क न पनप पाएं। फ़सल बोने के लिए पीड़क-मुक्त बीज लिए जाने चाहिए। फ़सल कट चुकने के बाद बचा-खुचा कचरा जला देना चाहिए ताकि कचरे में मौजूद पीड़क की विभिन्न अवस्थाएं नष्ट हो जाएं। खेत को बहुत अच्छी तरह जोता जाना चाहिए ताकि मिट्टी के भीतर रह रहे अंडे और प्यूपे आदि बाहर खुले में मिट्टी के ऊपर आ जाएं जिन्हें पक्षी आसानी से खा सकते और नष्ट कर सकते हैं। चूंकि अनेक पीड़क बहुभक्षी होते हैं, इसलिए फसल कट चुकने के बाद वे खेत में मौजूद खरपतवारों पर भी रहने के लिए चले जाते है क्योंकि ये भी उनकी परपोषी होती हैं। अतः खेत को खरपतवार से मुक्त रखने के लिए समय-समय पर खरपतवारों को हटाते रहना भी पीड़क के जमावड़े को रोके रखता है।

3. कुछ पीड़क (या तो वयस्क या अन्य अवस्थाएं) काफी बड़े आकार के होते हैं, जैसी कि नारियल की लाल सुरसुरी और गैंडा बीटल। इन्हें हाथ से पकड़ा जा सकता है, या फिर नारियल के प्ररोह पर बने इनके सुराखों में किसी नुकीले या कंटीले तार को भीतर डाल-डाल कर कर खींच बाहर निकाला जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है।

4. भंडारित उत्पाद पीड़कों को न पनपने देने के लिए अनाज को अथवा इसी प्रकार के अन्य उत्पादों को भंडारित करने से पूर्व सुखाया जाना चाहिए। ऐसे भंडारण पीड़कों के जमावड़े को न बनने देने के लिए बीच-बीच में सुखाया जाना आवश्यक हो सकता है।

5. वेधकों के आक्रमण को रोकने के लिए 'लटकते' तथा 'मुरझाए' प्ररोह तथा स्तम्भों (जो संकेत देते हैं कि भीतर का वेधक क्या करामात कर रहा है) को तोड़ कर अलग कर देना चाहिए और उन्हें तुरंत जला देना चाहिए।

6. रात में उड़ने वाले ऐसे अनेक कीट हैं, जैसे कि शलभ तथा बीटल जो रात में प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं। अतः खेतों में प्रकाश-जाल लगाए जा सकते हैं जिनसे पीड़क फसाए जा सकते हैं और उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

7. अनेक कीट आहार की ओर आकर्षित होते हैं। अतः उनके आहार में कीटनाशी मिलाकर (यानी विष चारा बनाकर) उन्हें आकर्षित किया जा सकता है ताकि उसे खाकर वे मर जा सकें। काकरोचों तथा अनेक शलभों को आसानी से आकर्षित किया और मारा जा सकता है।

ये थे कुछ तरीके, हालांकि और भी बहुत से हैं, जो हमें उपलब्ध हैं और इन तरकीबों को सोच-समझकर अपनाने से पीड़कों की संख्या वृद्धि को काफी हद तक रोका जा सकता है।

सारांश

इस इकाई में आपने कुछ हानिकर कशेरुकियों के विषय में अध्ययन किया। ये अनेक रूप में हानिकारक हो सकते हैं। ये मानव को, उसके पालतू जानवरों को या फिर आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधों अथवा उनके उत्पादों को सीधे ही क्षति पहुंचाते हैं। ये परजीवी हो सकते हैं जो पौधों तथा मानव सहित नानाविध जानवरों में रोग पैदा कर सकते हैं अथवा हो सकता है कि ये उनमें कुछ रोगकारी साधनों को संप्रेषित करने के माध्यम हों। प्लैटीहेल्मिंथीज़, नीमैटोड और

आर्थ्रोपोडा ये ही तीन प्रधान कशेरुकी समूह हैं जिनमें सर्वाधिक हानिकारक स्पीशीज़ आती हैं।

- प्लैटीहेल्मिंथों में ट्रीमैटोडों तथा सेस्टोडों जैसे कृमि आते हैं। इनमें से अनेक गंभीर रोगजनक होते हैं जो मानव तथा जानवरों में रोग पैदा करते हैं। परजीवी ट्रीमैटोड पूर्णतः कशेरुकियों के ही शरीर पर बाहर अथवा शरीर के भीतर पाए जाने वाले परजीवी हैं। इनमें *फैसियोला* तथा *क्लोनॉर्किस* महत्वपूर्ण यकृत परजीवी हैं। *पैरागोनिमस* एक फेफड़ा पर्णाभ है तथा *शिस्टोसोमा* की एकाधिक स्पीशीज़ रक्त परजीवी होती हैं। सभी परजीवी अपना जीवन-चक्र दो या अधिक परपोषियों में पूरा करते हैं। इनकी लार्वा अवस्थाएं घोंघें में विकसित होती हैं, जो इनके मध्यस्थ परपोषी का कार्य करता है। कुछ ट्रीमैटोडों के जीवन-चक्र में अतिरिक्त परपोषी भी शामिल हो सकते हैं जैसे कि कोई मछली या केकड़ा। सर्केरिया अथवा मेटासर्केरिया अवस्था संक्रामक अवस्था होती है जिसे अंतिम परपोषी प्राप्त करता है।

- ट्रीमैटोडों की ही तरह सेस्टोड भी पूर्णतः परजीवी ही होते हैं और उनमें प्रायः एक परोक्ष जीवन-चक्र होता है। *टीनिया, हाइमेनोलेपिस* तथा *डाइफिलोबॉथ्रियम* जीनसों के फीताकर्मी मानव के सामान्य आंत्र परजीवी हैं। वयस्क के रूप में वे अपने परपोषियों में क्षति पहुंचाते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ स्पीशीज़ की लार्वा अवस्थाएं भी भयंकर रूप में हानिकारक हो सकती हैं। *टीनिया सोलियम* के सिस्टिसर्कस का ब्लैडरवर्म तथा *इकाइनोकॉक्कस ग्रैनुलोसस* (कुत्ते का फ़ीताकृमि) की हाइडैटिड सिस्ट द्वारा होने वाले संक्रमण खतरनाक हो सकते हैं।

- नीमैटोडों (गोल कृमियों) की अनेक स्पीशीज़ परजीवी होती हैं। इन सभी के जीवन-चक्र का एक ही प्रतिरूप होता है : वयस्क कृमि, अंडा तथा 4 अनुक्रमिक लार्वा अवस्थाएं जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने निर्मोचन के बाद आती है। पौधों के नीमैटोड परजीवियों को पादपपरजीवी कहते हैं। कुछ नीमैटोड वाइरसों तथा बैक्टीरिया के रोगवाहकों तथा साथ ही साथ पौधों के रोगजनकों के रूप में भी कार्य करते हैं। जड़ की गांठ का नीमैटोड *मेलॉइडोगाइने* जो जड़ों में गॉल पैदा करता है और सिस्ट नीमैटोड *हेटेरोडेरा* पौधों के मुख्य परजीवी हैं।

- प्राणि नीमैटोड परजीवी अपने परपोषी की आंत्र में अथवा अन्य किसी तंत्र में रहते हैं। सामान्य गोल कृमि (*ऐस्कैरिस*), ट्राइकिना कृमि (*ट्राइकिनेला*), कोड़ा कृमि (*ट्राइक्यूरिस*), पिन-कृमि (*एंटेरोबियस*), दो फ़ाइलेरिया कृमि (*वुचेरीरिया* तथा *ब्रुगिया*), सरिता-अंधता कृमि (*ऑन्कोसर्का*), गिनीवर्म अर्थात् नहरुआ (*ड्रैकनकुलस*) तथा हुकवर्म (*ऐंकाइलोस्टोमा* तथा *नीकेटॉर*) मानव के महत्वपूर्ण नीमैटोड परजीवी हैं। *ऐस्कैरिस*, कोड़ा कृमि, पिन वर्म तथा हुकवर्म परजीवियों के रूप में, मानवों के पाचन-तंत्र में रहते हैं, मानव इन परजीवियों का संक्रमण दो प्रकार से प्राप्त करते हैं, या तो उस संदूषित भोजन अथवा पानी का सेवन करके जिसमें संक्रमणकारी अंडे होते हैं या फिर मिट्टी में मौजूद संक्रामक लार्वों द्वारा त्वचा को वेध कर भीतर पहुंच जाते हैं। फ़ाइलेरियल कृमियों (*वुचेरीरिया* तथा *ब्रुगिया*) के परिवर्धन में एक माइक्रोफ़ाइलेरिया अवस्था होती है जो रक्त धारा में पायी जाती है। फ़ाइलेरिया के संक्रमण को मच्छर फैलाते हैं। मेडिना कृमि अथवा गिनीवर्म (*ड्रैकनकुलस*) मानव के उपत्वचिक ऊतक में रहता है तथा फफोले पैदा करता है जिनके फूट पड़ने पर संक्रामक बाल्य बाहर आ जाते हैं। इस कृमि के लार्वों से संक्रमित *साइक्लॉप्स* से संक्रमण फैलता है।

- आर्थ्रोपोडों की अनेक स्पीशीज़ हानिकारक होती हैं क्योंकि वे मनुष्यों के अनेक रोगों के वाहकों के रूप में कार्य करती हैं, जैसे - टाइफॉइड, प्लेग, हैज़ा, पीत ज्वर, आदि के वाहकों के रूप में। आर्थ्रोपोड अनेक हेल्मिंथ परजीवियों के जैविकीय वाहक होते हैं तथा परजीवी के जीवन-चक्र के पूरा हो सकने के लिए मध्यस्थ परपोषी के रूप में अनिवार्य होते हैं। मच्छर, मक्खियां, खटमल, बीटल, कोपीपौड तथा किलनियां आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं। अनेक आर्थ्रोपोड सीधे ही मानव को हानि पहुंचाते हैं क्योंकि वे स्वयं ही

क्षति पहुंचाते या रोग पैदा करते हैं। बिच्छुओं, मकड़ियों, किलनियों, बीटलों, जूँओं, पिस्सुओं तथा मक्खियों की विभिन्न स्पीशीज़ मानव को तथा पालतू जानवरों को स्थानिक क्षति पहुंचाती हैं।

- अनेक कीट पीड़क विविध पौधों पर रहते हैं। इनमें से अनेक पौधों को सीधे ही क्षति पहुंचाते हैं जबकि अन्य परोक्ष रूप में पहुंचाते हैं जिसमें वे रोगजनक सूक्ष्मजीवों का संप्रेषण करते हैं। दीमक, टिड्डियां, बीटलों की अनेक स्पीशीज़ एवं शलभ महत्वपूर्ण कीटपीड़क हैं।

16.6 अंत में कुछ प्रश्न

1. मानव के कुछ महत्वपूर्ण ट्रीमैटोड परजीवियों के नामों की सूची बनाइए तथा सामान्य यकृत पर्णाभ के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2. *टीनिया सोलियम* का जीवन-चक्र किस प्रकार पूरा होता है। कुछ फीताकृमियों के लार्वा रूप मानव के लिए किस प्रकार हानिकारक हो सकते हैं, समझाइए।

....

....

....

3. मानव शरीर के विभिन्न अंगों में परजीवी रूप में रहने वाले नीमैटोडों का उल्लेख कीजिए। किन्हीं तीन महत्वपूर्ण नीमैटोडों द्वारा होने वाले रोगों का वर्णन कीजिए एवं उनकी संक्रमण-विधि भी बताइए।

....

....

....

4. रोगजनकों के रूप में आर्थ्रोपोड तथा मानव रोगों के रोगवाहकों के रूप में आर्थ्रोपोड, इन दोनों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

5. *शिस्टोसोमा मैनसोनाई* नामक रक्त पर्णाभ के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिए।

....

....

....

16.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1. (a) (i) मिरैसिडियम, (ii) *फैसियोला हिपैटिका,* (iii) मछली, (iv) फेफड़ा, (v) क्रेफ़िश, केकड़ा (vi) *ब्यूबिनस फाइज़ॉप्सिस*।

   (b) (i) गलत, (ii) गलत, (iii) सही, (iv) सही

2. (i) फीताकृमि, (ii) स्कोलेक्स, (iii) प्रोग्लौटिड; (iv) *टीनियारिंकस सैजिनैटस,* (v) *टीनिया सोलियम,* (vi) *हाइमेनोलेपिस नाना,* (vii) *डाइफ़िलोबॉथ्रियम लैटम,* (viii) हाइडैटिड

3. (a) 1-ix, 2-ii, 3-iv, 4-xi, 5-v 6-vi, 7-x, 8-iii, 9-vii, 10-viii, 11-i, 12-xiii, 13-xii

4. (a) (i) सही, (ii) सही, (iii) सही, (iv) गलत

   (b) (i) -b, (ii) -b, (iii) -d, (iv) -f, (vi) e

   (c) (i) *बूफिलस,* (ii) *बैबीसिया,* (iii) लाल मकड़ी, (iv) लेट्रोडैक्टस मैक्टेन्स

5. (i) *ऐनॉफ़िलीस, क्यूलेक्स, ईडीस, मैन्सोनिआ,* (ii) *क्यूलेक्स फ़ैटिगैन्स,* (iii) *ऐनॉफ़िलीस,* (iv) रिंगलर, (v) *ब्रुगिया मलैयी,* (vi) ऐंटेना तथा पैल्प, (vii) *क्यूलेक्स टार्सेलिस* (viii) *ईडीस*।

6. (i) –c; (ii) –d; (iii) –g; (iv) –a; (v) –b

7. (i) सही, (ii) सही, (iii) गलत, (iv) सही, (v) गलत, (vi) गलत, (vii) सही

8. (i) –g; (ii)–j; (iii) –b; (iv) –e; (v) –h; (vi) –a; (vii) –i; (viii) –c; (ix) –d; (x) –f; (xi) –l; (xii) –h; (xiii) –n; (xiv) –m

अंत में कुछ प्रश्न

1. *फैसियोला, क्लोनोर्किस, पैरागोनिमस* तथा *शिस्टोसोमा* मानव में परजीवी रूप में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण ट्रीमैटोड हैं। सामान्य पर्णाभ *फैसियोला* का संक्रमण मानव में उन कच्चे पानी की वनस्पति आदि को खा लेने से पहुंचता है जिस पर पर्णाभ के मेटासर्केरिया मौजूद हो सकते हैं। वयस्क कृमि यकृत के पित्त मार्गों में रहता है। विष्ठा के साथ बाहर निकल जाने वाले अंडों में से जल के भीतर मिरैसिडियम बाहर आ जाता है। यह एक घोंघा परपोषी के भीतर प्रवेश कर जाता है और एक स्पोरोसिस्ट में बदल जाता है। स्पोरोसिस्ट के अलैंगिक प्रगुणन से रीडिया लार्वों की पीढ़ी बनती है जिनमें और आगे सर्केरिया लार्वा बनते हैं। ये पूंछदार सर्केरिया घोंघे में से बाहर जल में आ जाते हैं और फिर वनस्पति पर जलीय पुटी बन कर मेटासर्केरिया बन जाते हैं। ये मेटासर्केरिया अंतिम परपोषी द्वारा खा लिए जाते हैं।

2. वयस्क *टीनिया सोलियम* कृमि मानव की आंत्र में होता है। फीताकृमि के सगर्भ प्रोग्लौटिड जिनके भीतर अंडे भरे रहते हैं, मल के साथ-साथ परपोषी के शरीर से बाहर आ जाते हैं। सूअर मध्यस्थ परपोषी का कार्य करते हैं जो इन अंडों को खा जाते हैं। सूअर की आंत्र में हेक्सैकैंथ लार्वा विमोचित होता है जो आंत्र दीवार को वेधकर तथा रक्त परिसंचरण के माध्यम से पेशियों अथवा अन्य अंगों में पहुंच जाता है। यहां यह एक सिस्टिसर्कस अथवा ब्लैडरवर्म अवस्था में विकसित हो जाता है। जब मानव सूअर का कच्चा अथवा अधपका संक्रमित मांस खाता है तब ब्लैडरवर्म उसकी आंत्र में पहुंच जाता

है और वयस्क बन जाता है। *टीनिया सोलियम* का सिस्टिसर्कस, *मल्टीसेप्स* का सीन्यूरस तथा *इकाइनोकॉक्कस* की हाइडैटिड सिस्ट अवस्था मानव में भी पनप सकता है जैसा कि अन्यथा अन्य स्तनीय मध्यस्थ परपोषियों में हुआ करता है और रोग पैदा कर सकता है।

3. *ऐस्कैरिस, एंटेरोबियस, ऐंकाइलोस्टोमा, नीकेटोर* तथा *ट्राइक्यूरिस* पाचन पथ में रहते पाए जाते हैं। *ट्राइकिनेला* के लार्वा कंकालीय पेशियों में पुटीभूत हुए रहते हैं, *वुचेरीरिया* लसीका वाहिनियों में रहता है जबकि इसके माइक्रोफ़ाइलेरी रक्त में रहते हैं। *ड्रैकनकुलस* सगर्भ अवस्था में अधःत्वचिक ऊतकों में पाया जाता है। ट्राइकिनोसिस दशा *ट्राइकिनेला* के लार्वों से पैदा होती है। इस संक्रमण से तीव्र पेशी पीड़ा होती है। इसका संक्रमण संक्रमित शूकर मांस के खाने से होता है। *वुचेटीरिया* बैंक्रोफ़्लाई से श्लीपद रोग होता है, एक ऐसा रोग जिसमें भुजाओं अथवा टांगों के अपसामान्य सूजन आ जाती है और वे विकृत हो जाती हैं। मच्छर रोगवाहक की तरह काम करता है और संक्रमण का प्रेषण करता है। *ड्रैकनकुलस मेडिनेंसिस* से फफोले पड़ जाते हैं और तीव्र पीड़ा होती है। जल में कृमि के लार्वा *साइक्लॉप्स* के भीतर घुस जाते हैं और ऐसे साइक्लॉप्स-संदूषित जल को पीने से मानव में संक्रमण पहुंच जाता है।

4. अनुभाग 16.4 के संदर्भ में आप रोग-उत्पादक आर्थ्रोपोडों के उदाहरण और ऐसे आर्थ्रोपोडों के भी उदाहरण दे सकते हैं जो रोगवाहक की भूमिका निभाते हैं।

5. देखिए 16.2.1 रक्त पर्णाभ का जीवन-चक्र।

इकाई 17 लाभकारी अकशेरुकी

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

17.2 अकशेरुकियों की लाभकारी प्रकृति का विस्तृत श्रेणीकरण

17.3 आहार प्रदान करने वाले अकशेरुकी
फ़ाइलम आर्थोपोडा – आहार-स्रोत के रूप में
फ़ाइलम मौलस्का – आहार-स्रोत के रूप में

17.4 अकशेरुकी – शहद प्रदायी
शहद की संघटना
मधुमक्खियों की किस्में
शहद किस प्रकार बनता है

17.5 अकशेरुकी जो औद्योगिक उत्पाद प्रदान करते हैं
रेशम
लाख
मक्षिमोम
कवच, शंख आदि
मोती
मूल्यवान प्रवाल (मूंगे)
स्पंज
रंजक और वर्णक

17.6 अकशेरुकियों के औषध उपयोग

17.7 कृषि में उपयोगी अकशेरुकी
अकशेरुकी जो मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं
अकशेरुकी परागणकारियों के रूप में
अकशेरुकी--पीड़कों के नाशकारियों के रूप में (जैविक नियंत्रण)

17.8 आहार-शृंखलाओं के घटकों एवं अपमार्जकों के रूप में अकशेरुकी

17.9 सारांश

17.10 अंत में कुछ प्रश्न

17.11 उत्तर

17.1 प्रस्तावना

इकाई-16 में आपने हानिकर अकशेरुकियों के विषय में पढ़ा था। आपने जान लिया है कि विश्व की अनेक भयंकर बीमारियों को पैदा करने वाले और कुछ सबसे भीषण खाद्य-नष्टकर्ता भी अकशेरुकी ही हैं। यहां इस इकाई में आप अनुभव करेंगे कि कुछ अकशेरुकी मानवों के लिए बहुत लाभकारी भी हैं।

यहां हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि ये प्राणी खाद्य शृंखलाओं सहित अनेक प्राकृतिक चक्रों में किस प्रकार महत्वपूर्ण कड़ियां होते हैं या यह कि ये वैज्ञानिकों के हाथों में किस प्रकार शोध सामग्री के रूप में काम आते हैं, बल्कि हम देखेंगे कि इनमें से कुछ प्राणी अन्य नानाविध तरीकों से किस प्रकार अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

इस इकाई में आपको उन विविध तरीकों से परिचित कराया जाएगा जिनमें अकशेरुकी प्राणी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, दोनों प्रकार से मानव के लिए उपयोगी हैं।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप

- उन सब विधियों का वर्गीकरण कर सकेंगे जिनमें अकशेरुकी मानवों के लिए लाभकारी हैं,
- आहार के स्रोतों के रूप में अकशेरुकियों की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे,
- अकशेरुकियों के विविध औद्योगिक उत्पादों को सूचीबद्ध कर सकेंगे तथा उनमें से प्रत्येक के उत्पादन के तरीके का भी संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे,
- ऐसे अकशेरुकियों के उदाहरण दे सकेंगे जो औषधियों के स्रोतों तथा सजावटी वस्तुओं के रूप में काम में लाए जाते हों,
- कृषि में इनकी उपयोगिता बता सकेंगे।

17.2 अकशेरुकियों की लाभकारी प्रकृति का विस्तृत श्रेणीकरण

अनेक अकशेरुकी मानवों के लिए नानाविध प्रकार से लाभकारी हैं। यह लाभकारी प्रकृति या तो प्रत्यक्ष हो सकती है या परोक्ष। प्रत्यक्ष उपयोगिता में या तो उन्हें सीधे भोजन के रूप में इस्तेमाल करना हो सकता है या मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उत्पादों के स्रोत के रूप में। परोक्ष लाभ उनके क्रियाकलापों से प्राप्त होते हैं और स्वयं ये क्रियाकलाप मानव कल्याण में योगदान देते हैं। नीचे दी जा रही सूची में अकशेरुकियों से प्राप्त लाभों का मोटे तौर पर वर्गीकरण किया जा रहा है।

A. प्रत्यक्ष रूप में लाभकारी

1. आहार के रूप में इस्तेमाल किया जाना
2. जिस आहार को वे एकत्रित करते हैं उसे मानव-उपभोग के लिए आहार के रूप में इस्तेमाल किया जाना
3. उनके द्वारा उपयोगी पदार्थों का पैदा किया जाना
4. औषधियों में उपयोग
5. सुंदर वस्तुओं तथा सजाने में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं के रूप में

B. परोक्ष रूप में लाभकारी

1. कृषि में उपयोगी
2. ये पर्यावरण को स्वच्छ करते हैं तथा अपमार्जकों के रूप में कार्य करते हैं।

आइए, अब हम ऊपर दी गयी एक-एक बात को विस्तार से लें तथा मानव कल्याण में विविध अकशेरुकियों के योगदानों का सर्वेक्षण करें।

17.3 आहार प्रदान करने वाले अकशेरुकी

अकशेरुकियों में केवल आर्थ्रोपोड तथा मौलस्क ही ऐसे वर्ग हैं जिनमें खाद्यशील स्पीशीज़ आती हैं।

17.3.1 फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा :– आहार स्रोत के रूप में

कुछ आदिवासी जातियां कीटों को भी खाती हैं जैसे कि दीमकों और टिड्डों को, मगर सुपरिचित खाद्यशील आर्थ्रोपोड स्पीशीज़ क्रस्टेशियनों तक ही सीमित हैं।

अनेक क्रस्टेशियन खाद्यशील हैं मगर उनमें से कुछ, बड़े आकार वाले ही व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अधिकतर श्रिम्प छोटी होती हैं और इसीलिए उनका अधिक व्यापारिक महत्त्व नहीं होता। परंतु झींगा (prawns), लॉब्स्टर तथा केकड़े अपेक्षाकृत बड़े आकार के होते हैं और इसलिए इनका व्यापारिक रूप में बहुत उपयोग किया गया है। ये सभी डेकापोडा (Decapoda) आर्डर में आते हैं। इनका बहुत अधिक खाद्य महत्त्व है और ये आमदनी का, और उसमें भी विशेषतः विदेशी मुद्रा कमाने का, एक मुख्य स्रोत है। इनके मुख्य निर्यात उत्पाद हैं हिमनित झींगे, डिब्बाबंद झींगे, सुखाए गए झींगे, झींगों का अचार, हिमनित केकड़ा-गोश्त तथा डिब्बाबंद केकड़ा-गोश्त।

1. झींगे तथा श्रिम्प (Prawns and Shrimps)

झींगों तथा श्रिम्पों का शरीर सिलिंडराकार अथवा संपीडित होता है तथा उदर बड़ा और उसमें एक विचित्र मोड़ बना होता है (चित्र 17.1)। वक्षचर्म (कैरापेस) में एक सुविकसित तुंड (rostrum) होता है। वक्ष टांगें पतली होती हैं, जिनमें आगे की टांगें कीलायुक्त होती हैं। ये प्राणी जल में तैरते हैं।

झींगों को समस्त विश्व में एक स्वादिष्ट व्यंजन माना जाता है। झींगों की नानाविध स्पीशीज़ पायी जाती हैं जो समुद्रों में, अलवण जलीय आगारों में, नदियों में तथा ज्वारनदमुखों में रहती हैं। झींगों की कुछ महत्वपूर्ण स्पीशीज़ जिन्हें व्यापार के वास्ते बहुत पकड़ा जाता है, इस प्रकार हैं:

पिनीअस इंडिकस (*Penaeus indicus*) (भारतीय झींगा) जो केवल समुद्रतटीय क्षेत्र में ही पायी जाती है, *पिनीअस मॉनोडॉन* (*Penaeus monodon*) तथा *मेटापिनीअस मॉनोसेरॉस* (*Metapenaeus monoceros*) (विशाल टाइगर प्रॉन) जो अलवण जल और साथ ही साथ लवणजल में भी पायी जाती है; *मैक्रोब्रैकियम मैल्कॉमसोनाई* (*Macrobrachium malcomsonii*) जो अलवण जल तथा न्यूनखरे जल में रहती हैं; *मैक्रोब्रैकियम स्कैब्रिकुलम* (*Macrobrachium scabriculum*) जो केवल अलवण जल में रहती है तथा *मैक्रोब्रैकियम रोज़ेनबर्जाई* (*Macrobrachium rosenbergii*) जो अलवणजलीय विशाल झींगा है।

पिनीअस इंडिकस सबसे ज्यादा सामान्यतः पायी जाने वाली झींगा है और इसी को सबसे ज्यादा पकड़ा जाता है। यह लंबाई में 25 सेंटीमीटर तक लंबी होती है। *पि. मॉनोडॉन* इससे भी ज्यादा बड़ी 30 सेंटीमीटर तक की होती है। *मेटापिनीअस मॉनोसेरॉस* भारत तथा अन्य उष्णकंटिबंधीय देशों में पैदा की जा सकने वाली सबसे उपयुक्त स्पीशीज़ है। अलवणजलीय संवर्धन के लिए विशाल झींगा *मैक्रोब्रैकियम रोज़ेनबर्जाई* सबसे अधिक उपयुक्त है।

झींगा-पालन का उद्योग अनेक देशों में बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है जैसे कि फ़िलीपीन्स, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, तैवान और भारत में भी जहां ताल-तलैयों, धान के खेतों, ज्वारनदमुखों एवं तटवर्ती समुद्री जल को झींगा पालने के क्षेत्रों में बदला जा रहा है।

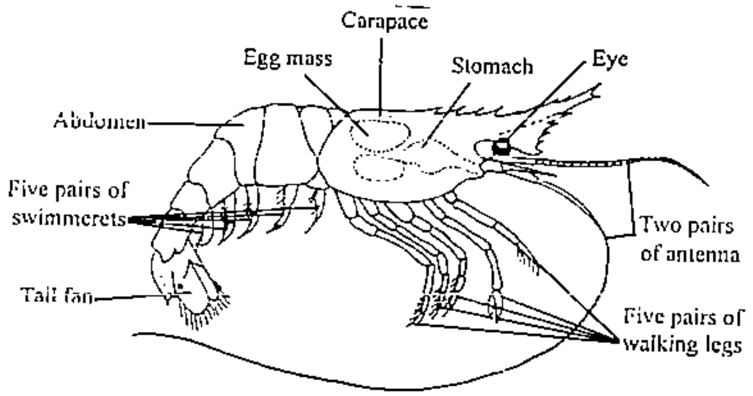

चित्र 17.1 : एक श्रिम्प *क्रैंगॉन* (Crangon), पार्श्व दृश्य

2. लॉब्स्टर (Lobsters)

लॉब्स्टर बड़ी-बड़ी और भारी वजन की समुद्री क्रस्टेशियन होती है। इनका शरीर सीधा पृष्ठ-अधरतः चपटा होता है जिसमें मोटी टांगें होती हैं। इनकी प्रथम जोड़ी की गमन (पादचलनी) टांगें सशक्त रूप में कीलायुक्त होती हैं (कीलापाद, chelipods) जिनसे शिकार को पकड़ा जाता है। ये रेंगने तथा घिसटने में भी काम आती हैं। *होमैरस अमेरिकानस* (*Homarus americanus*) (चित्र 17.2) नामक अमेरिकी लॉब्स्टर 60 सेंटीमीटर तक लंबी और 20 किलोग्राम तक भारी हो सकती है। यूरोपीय लॉब्स्टर *होमैरस गैमेरस* (*Homarus gammarus*) अपेक्षाकृत छोटी होती है। *सिलैरस* (*Scyllarus*) स्पेन की लॉब्स्टर है। *पैन्युलिरस* (*Panulirus*) भारतीय लॉब्स्टर है।

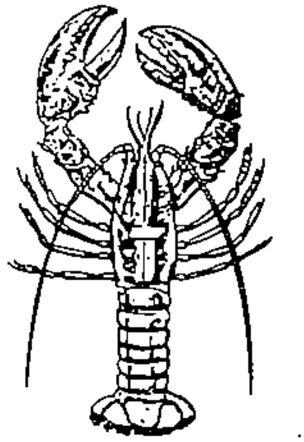

चित्र 17.2 : एक लॉब्स्टर होमैरस *अमेरिकानस*

3. केकड़े (Crabs)

केकड़े मुख्यतः समुद्री क्रस्टेशियन होते हैं जिनका शरीर छोटा होता है जिसमें एक चपटा वक्षवर्म (शिरोवर्म) होता है जो अक्सर लंबाई जितना ही चौड़ा होता है। इनमें एक छोटा उदर होता है जो शिरोवृक्ष के नीचे मुड़ा होकर सामने की ओर को रूख किए हुए सटा रहता है। कीलापाद रूपांतरित होकर परिग्राही चिमटियां बन गए हैं (चित्र 17.3)। केकड़े सतह पर रेंगते हैं और तेजी से रेंगते हुए वे अगल-बगल हिलते-डुलते जाते हैं। अनेक केकड़ों को विश्व के अनेक भागों में स्वादिष्ट व्यंजन माना जाता है। भारत के कुछ खाद्यशील केकड़े हैं *पोर्टुनस सैंग्विनोलेंटस* (*Portunus sanguinolentus*), *पी. पीलेजिक्स* (*P. pelagicus*) तथा *कैरिब्डिस क्रुशिएटा* (*Charybdis cruciata*)।

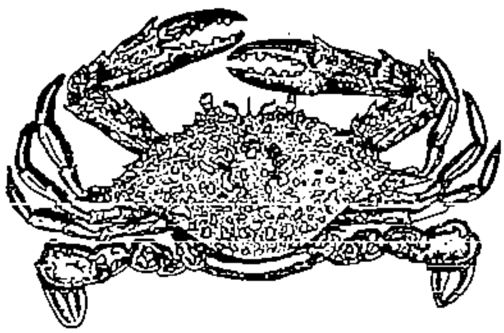

चित्र 17.3 : एक केकड़ा

17.3.2 फ़ाइलम मौलस्का आहार के स्रोत के रूप में

अनेक मौलस्का खाद्यशील होते हैं। ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं स्कैलप, मसेल, क्लैम, शुक्तियां (सीपियां), घोंघे, स्क्विड तथा ऑक्टोपस। खाद्यशील सीपियों में कदाचित *ऑस्ट्रीया* (*Ostrea*)

सर्वाधिक जानी पहचानी है। *क्रैसॉस्ट्रीया मैड्रासेंसिस* (*Chassostrea madrasensis*) (भारतीय उपसामुद्रिक जल की सीपी), *क्रैसॉस्ट्रीया कुकुलैटा* (*Crassostrea cucullata*) (शैल सीपी) तथा *सी. डिस्कॉयडीया* (*C. discoidea*) (डिस्क सीपी), ये सभी भारतीय खाद्यशील सीपियां हैं। ये सभी समुद्री द्विकपाटी हैं। अनेक अलवणजलीय मसेल जैसे कि *यूनिओ* (*Unio*) तथा *ऐनोडॉन्टा* (*Anodonta*) भी खाए जाते हैं। यूरोप में खाये जाने वाले सामान्य मसेल हैं *मिटिलस एडुलिस* (*Mytilus edulis*) तथा इसका निकट संबंधी *एम. गैलोप्रोविंशिएलिस* (*M. galloprovinciialis*)। ये भी समुद्र में पाले जाते हैं या तो खंभों के ऊपर या समुद्र की तली में या गाड़े गए फ्रेमों पर या समुद्र में स्वच्छंद तिरती हुई संरचनाओं पर। *मिटिलस विरिडिस* (*Mytilus viridis*) तथा *मि. एडुलिसं* भारतीय स्पीशीज़ हैं। भारत में पाये जाने वाले मौलस्कन तलक्षेत्र पश्चिमी समुद्रतट तथा पाक जलडमरू मध्य एवं मनार की खाड़ी हैं। गैस्ट्रोपोडों का खाद्य के स्रोत के रूप में इतना महत्त्व नहीं है हालांकि कुछं स्पीशीज़ हैं जिन्हें गरीब लोग खा लिया करते हैं। इसी प्रकार भारत में सेफैलोपोड भी हैं मगर इन्हें निर्यात के लिए पूर्वी तट से पकड़ा जाता है। ऐसी ही एक भारतीय स्पीशीज़ है *सीपियोट्यूथिस आर्क्टिपिन्निस* (*Sepioteuthis arctipinnis*)।

बोध प्रश्न 1

(i) वे कौन से दो अकशेरुकी फ़ाइलम हैं जिनमें सर्वाधिक प्रकार के खाद्यशील उदाहरण मिलते हैं ?

....

....

(ii) सामान्यतः खाए जाने वाले किन्हीं चार क्रस्टेशियनों के नाम लिखिए।

....

....

(iii) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं (T) अथवा गलत (F)।

(क) झींगा-पालन एक उभरता हुआ उद्योग है। ☐

(ख) श्रिम्प मुख्यतः समुद्री प्राणी होते हैं। ☐

(ग) कीटों को विश्व के किसी भी भाग में खाया नहीं जाता। ☐

(घ) सभी प्रकार के अलवणजलीय मसेल खाद्यशील नही होते है। ☐

(ङ.) आदिम मानव जातियां अक्सर अपने आहार में बीटलों, तथा कैटरपिलरों को शामिल करती हैं। ☐

(च) श्रिम्प आकार में 30 सेंटीमीटर तक लंबी हो सकती हैं। ☐

17.4 अकशेरुकी – शहद प्रदायी

हम सबने अपने जीवन में कभी न कभी शहद अवश्य खाया होगा और हम सभी मधुमक्खियों से थोड़ा-बहुत परिचित भी हैं। मधुमक्खियां कीट हैं (आर्डर हाइमेनाप्टेरा)। इन कीटों में सामाजिक व्यवस्था एक परिपूर्ण स्तर पर पहुंच चुकी है। इनकी सामाजिक संघटना तथा व्यवहार के विषय में अलग से व्यवहार प्रतिरूपों की इकाई में चर्चा की जाएगी। ये मधुमक्खियां शहद बनातीं हैं

और उसे अपने छत्तों में भंडारित करती हैं और इसे स्वयं अपने तथा अपने बच्चों के लिए इस्तेमाल करती हैं। मानव ने इसकी खोज की और वह बहुत पुराने समय से ही शहद इकट्ठा करता आया है। शुरू के दिनों में वह जंगली अवस्था में रहने वाली मधुमक्खियों के छत्तों को दबा कर उनमें से शहद निचोड़ा करता था। आज भी अनेक जनजातीय लोग जंगलों से इसी प्रकार शहद इकट्ठा करते हैं। बाद में मनुष्यों ने नानाविध प्रकार की मधुमक्षिशालाएं (apiaries) बनायीं और मधुमक्खियों को पालतू बनाया। मधुमक्खी पालन आजकल लगभग पूरे विश्व में बहुत प्रचलित है तथा इसे 'एपिकल्चर' का नाम दिया गया है। भारत में खादी और ग्रामोद्योग कमीशन मधुमक्खी-पालन को एक बड़े स्तर पर प्रोत्साहित कर रहा है। तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, जम्मू तथा कश्मीर और हिमाचल प्रदेश भारत के मुख्य शहद उत्पादक राज्य हैं।

17.4.1 शहद की संघटना

शहद एक ऐरोमैटिक श्यान उत्पाद है। यह मीठा होता है और एक बहुत ही पोषक आहार है। यह एक ऐसा उत्पाद है जिसे मधुमक्खियां पौधों के मकरंद से प्राप्त करके उसे रूपांतरित करती हैं। शब्द को अनेक प्रकार से इस्तेमाल किया जाता है जैसे कि रोटी-ब्रेड आदि पर लगाकर, और इसे तरह-तरह के पेय पदार्थों; केक आदि में और औषधियों तक में इस्तेमाल किया जाता है।

शहद ऊर्जा का एक तात्कालिक स्रोत है। इसके ठोस रचक अधिकतर मौनोसैकेराइड होते हैं जो रक्त में तुरंत ही अवशोषित हो जाते हैं। इसमें पाए जाने वाले भरपूर विटामिन तथा खनिजों के कारण शहद का पोषण-महत्त्व और भी ज़्यादा बढ़ जाता है।

शहद की रासायनिक संघटना

शहद की संघटना थोड़ी बहुत अलग-अलग हो सकती है मगर औसत रूप में शहद की संघटना नीचे की सारणी में दी जा रही है:

शर्कराएं

फ़्रक्टोज़	-	40-50%
ग्लूकोज़	-	32-37%
सुक्रोज़	-	2%
माल्टोज़	-	लेशमात्र

पौलीसैकेराइड

डेक्स्ट्रिन	-	1-12%
विटामिन	-	भरपूर 'ए' 'बी' तथा 'सी' विटामिन

खनिज - लौह, तांबा, मैंगेनीज़, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, कैल्सियम, सिलिका और विविध फास्फेटों के लेश। अम्ल भी पाए जाते हैं, जैसे ऐसीटिक, ब्यूटिरिक, साइट्रिक, फॉर्मिक, लैक्टिक, मैलिक तथा सक्सीनिक अम्ल और साथ ही ऐमीनो अम्ल भी। कुछ एंज़ाइम भी पाए जाते हैं जैसे कि इनवर्टेज़, डाएस्टेज़ तथा फ़ॉस्फ़ेटेज़।

जल	-	13-20%

शहद का रंग और सुगंध प्रायः उन फूलों पर निर्भर होता है जिनसे मकरंद इकट्ठा किया गया है।

17.4.2 मधुमक्खियों की किस्में

मधुमक्खियां आर्डर हाइमेनॉप्टेरा के अंतर्गत आने वाले कीट हैं। मधुमक्खियों की चार स्पीशीज़ हैं:

1. *एपिस डॉर्सेटा* (*Apis dorsata*) (जंगली मक्खी, rock-bee)

यह सबसे बड़ी मधुमक्खी होती है। यह विशाल एकल कंकती छत्ता बनाती है जिसे वह वृक्षों की ऊंची शाखाओं पर, ऊँची इमारतों पर अथवा चट्टानों पर बनाती है। इस स्पीशीज़ को पालतू नहीं बनाया जा सकता। यह खतरनाक होती है। इसमें भयंकर डंक होता है और इसके काटने पर ज्वर तक हो सकता है।

2. *एपिस इंडिका* (*Apis indica*) (भारतीय मधुमक्खी)

यह एक मध्यम आकार की मक्खी होती है। यह अंधेरी जगहों में जैसे कि वृक्षों के तनों के खोखलों में, कच्ची दीवारों में, मिट्टी के बर्तनों आदि में छत्ता बनाती हैं जिसमें अगल-बगल बने हुए कई-कई समांतर कंकत बने होते हैं। यह इतनी भयानक नहीं होती और सरलता से पाली जा सकती है। मधुमक्खी-पालन में इसी स्पीशीज़ का उपयोग किया जाता है (चित्र 17.4)।

3. *एपिस फ़्लोरिया* (*Apis florea*) (छोटी मधुमक्खी)

यह और भी छोटी मक्खी होती है। यह छोटे-छोटे एकल कंकत बनाती है जिन्हें यह झाड़ियों, हेजों आदि में बनाती है। इससे बना शहद थोड़ी मात्रा में होता है। इसलिए आर्थिक दृष्टि से यह उपर्युक्त नहीं है।

4. *एपिस मेलिफ़ेरा* (*Apis mellifera*) (यूरोपीय मधुमक्खी)

यह मूलतः यूरोप में पायी जाने वाली है मगर इसे भारत सहित विश्व के अनेक भागों में आप्रविष्ट कर लिया गया है क्योंकि इसके छत्तों से भारी मात्रा में शहद प्राप्त किया जा सकता है।

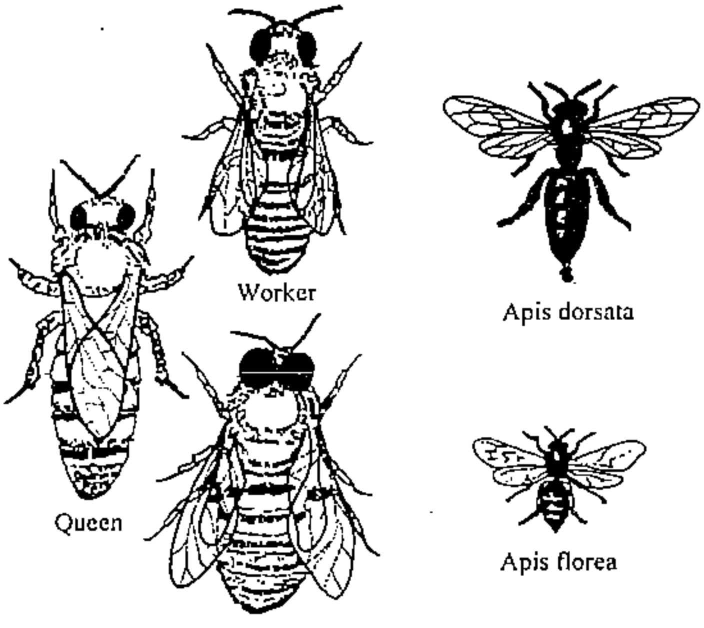

चित्र 17.4 : तीन भारतीय मधुमक्खियां : एपिस इंडिया 1. कर्मी, 2. रानी, 3. ड्रोन तथा अन्य दो सामान्य मधुमक्खियां ए. डार्सेटा एवं ए. फ्लोरिया

17.4.3 शहद किस प्रकार बनता है

कर्मी मक्खियां फूलों पर जाती हैं और उनसे मकरंद प्राप्त करती हैं।

मधुमक्खी के मुखांग

वयस्क मधुमक्खी के मुखांग इस प्रकार रूपांतरित हुए होते हैं कि उनसे तरल आहार यानी मकरंद तथा शहद ग्रहण किया जा सकता है। मुखांग चर्वण-लेहन (chewing and lapping)

प्रकार के होते हैं। मुख्य अशन उपकरण एक मैक्सिला-लेबियल सम्मिश्र (maxillo-labial complex) होता है। बीचों-बीच पड़ी लेबियम के ग्लौसाओं से बनी 'जिह्वा' को घेरते हुए एक नलिका-स्वरूप रचना मैक्सिलाओं के गैलियाओं से बनी होती है। चूषण पम्प ताकि 'जिह्वा' के ऊपर-नीचे की गति, इन दोनों के मिले-जुले कार्य से मकरंद शरीर के भीतर को खींचा जाता है। मैंडिबल सामान्यतः अशन क्रिया में भाग नहीं लेते मगर यदि फूलों का दलपुंज अधिक बड़ा हो तब उसे काटकर मकरंद तक पहुंच पाने के लिए इनका इस्तेमाल किया जाता है या फिर सुरक्षा के लिए अथवा छत्ते के भीतर शहद भंडारित करने के वास्ते कंकतों को आकृति प्रदान करने में किया जाता है।

मकरन्द में डाइसैकेराइड (मुख्यतः सुक्रोज़) होते हैं। मकरंद चूसते समय मधुमक्खियां अपनी लार को इसमें मिलाती जाती हैं और उसे निगल कर अपने मधु जठर (क्रॉप) में ले जाती हैं। छत्ते में लौट आने पर ये श्रमिक मक्खियां इस मिश्रण को जठर से वापस मुंह में लाती है और फिर से उसे खूब चबा-चबाकर उसमें लार मिश्रित कर देती हैं। लार में ऐमाइलेज़ एंज़ाइम की मात्रा भरपूर होती है जो सुक्रोज़ का जल अपघटन करके उसे ग्लूकोज़ तथा फ़्रक्टोज़ में बदल देता है। यह संसाधित मकरंद (शहद) छत्ते के भंडारण कोष्ठों में जमा कर दिया जाता है। यह किसी कदर पतला पनैला शहद होता है, कर्मी मक्खियां इन कोष्ठों के ऊपर अपने पंखों को तेज़ी से फड़फड़ाते हुए बहुत से जल का वाष्पन कर देती हैं जिससे शहद गाढ़ा हो जाता है। जब कोई कोष्ठ इस प्रकार के 'पूर्ण पक गए' शहद से भर जाता है तब उसके ऊपर मोम का आवरण लगाकर उसे सीलबंद कर दिया जाता है।

बोध प्रश्न 2

(i) शहद के कोई दो लाभ बताइए।

....

....

(ii) नीचे कॉलम I में शहद के कुछ रचकों के नाम दिए गए हैं। इन्हें कॉलम II में इस प्रकार पुनर्व्यवस्थित कीजिए कि वे बगल में दिए गए प्रतिशतों के अनुरूप हों।

कॉलम I	कॉलम II	प्रतिशतता (लगभग)
जल	(i)	45%
फ्रुक्टोज़	(ii)	15%
सुक्रोज़	(iii)	2%

(iii) निम्नलिखित मधुमक्खियों के वैज्ञानिक नाम लिखिए :

(क) भारतीय पालतू मधुमक्खी..

(ख) जंगली मधुमक्खी..

(iv) मकरंद को शहद में बदलने में मधुमक्खी की लार का क्या योगदान होता है ?

....

....

....

(v) भारत के किन्हीं तीन मुख्य राज्यों के नाम लिखिए जिनमें शहद भारी मात्रा में पैदा किया जाता है।

(a)

(b)

(c)

17.5 अकेशरुकी जो औद्योगिक उत्पाद प्रदान करते हैं

हमने देखा कि अनेक अकशेरुकी या तो सीधे ही मानव-आहार होते हैं या उनके उत्पाद जैसे कि शहद, मानव का आहार होते हैं। अब हम यहां इन अकशेरुकियों के कुछ अन्य उपयोगों का वर्णन करेंगे।

निम्नलिखित औद्योगिक उत्पाद कुछ कशेरुकियों से ही प्राप्त होते हैं :

1. रेशम
2. लाख
3. मक्षिमोम
4. कवच-शंख आदि
5. मोती
6. मूंगे
7. स्पंज
8. रंजक और वर्णक

17.5.1 रेशम

यूं तो रेशम पैदा करने वाले अनेक कीट हैं मगर व्यापारिक दृष्टि से उत्तम किस्म का रेशम कुछ थोड़ी ही स्पीशीज़ बनाती हैं। रेशम इन कीटों की लार ग्रंथियों का स्राव होता है। इन सभी अलग-अलग रेशमों में सबसे अधिक मूल्यवान रेशम *बॉम्बिक्स मोराई* (Bombyx mori) नामक स्पीशीज़ के शहतूत पर पलने वाले रेशम के कीड़े द्वारा बनाया जाता है। यह स्पीशीज़ *बॉम्बिसिडी* (*Bombycidae*) फैमिली में आती है। यह रेशम सबसे अधिक मूल्यवान एवं सबसे जयादा व्यापक इस्तेमाल किया जाने वाला है। यह रेशम शलभ *बॉम्बिक्स मोराई* की पूर्ण वृद्धि-प्राप्त अंतिम लार्वा-अवस्था की युग्मित लार ग्रंथियों का स्राव होता है (चित्र 17.5)। यह कीड़ा शहतूत (*मोरस ऐल्बा*, Morus alba) की पत्तियों का आहार करता है।

वयस्क शलभ हल्के सफेद से रंग का होता है जिसकी पूरे पंख फैलाए की चौड़ाई लगभग 5 सेंटीमीटर होती है। शीर्ष से उदर के अंतिम सिरे तर यह लगभग 3 सेंटीमीटर लंबा होता है मगर पंख दुर्बल होते हैं और यह कीट मुश्किल से ही थोड़ा-बहुत उड़ पाता है। वयस्क अवस्था में यह कुछ नहीं खाता और केवल 2-3 दिन तक ही जीवित रह पाता है जिसके दौरान इसकी मादा 300-500 अंडे देती है। 8-12 दिन में अंडों में से नन्हें लार्वा निकल आते हैं। ये लार्वा शहतूत की पत्तियां खाते हैं और आकार में बढ़ते जाते हैं। इनमें चार बार निर्मोचन होता है तब जाकर ये पूर्ण वृद्धि प्राप्त आकार प्राप्त करते हैं जो लगभग 8 सेंटीमीटर लंबा होता है। यह अवस्था भूरे से रंग की होती है, इसके शीर्ष के पीछे एक कूबड़ बना होता है और पश्च सिरे पर पृष्ठतः

उभरा हुआ एक कांटे-जैसा शृंग बना होता है। 28-30 दिन का हो जाने पर यह पूर्णतः बढ़ चुका होता है। पूरा बढ़ चुकने पर यह बेचैन-सा हो जाता है और तब यह एक ककून बनाता है।

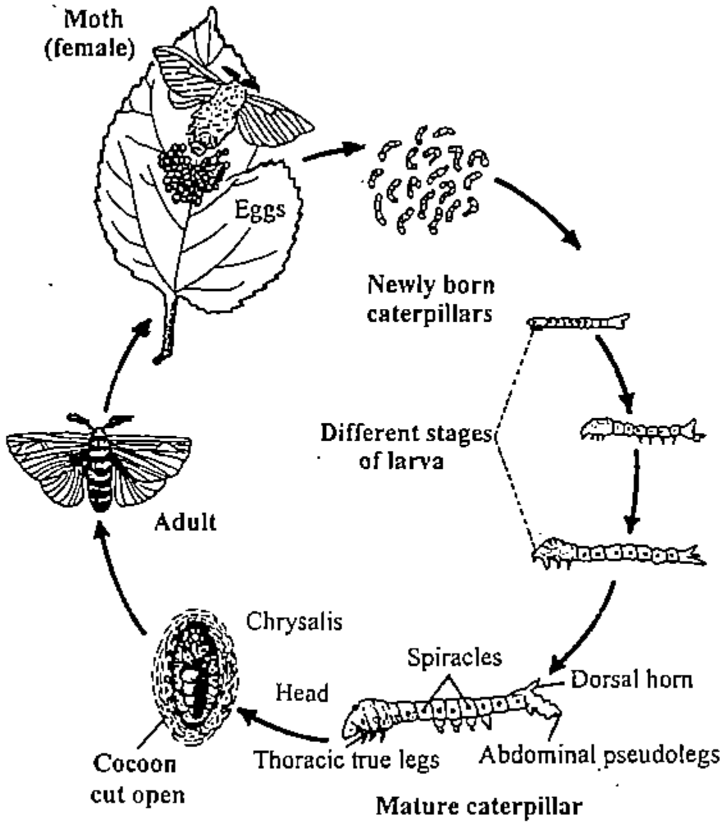

चित्र 17.5 : *बॉम्बिक्स मोराई* का जीवन चक्र

ककून-वयन (Spinning of cocoon) में लगभग 3 दिन लगते हैं। इस क्रिया में शीर्ष को बहुत जल्दी-जल्दी 65 बार प्रति मिनट की दर से दाएं-बाएं चलाया जाता है। जब वह लार्वा ऐसा करता होता है तब निचले होंठ यानी लेबियम पर बने एक मध्य सिलिंडराकार वयित्र (spinneret) की नोंक पर बने एक सम्मिलित छिद्र में से लार ग्रंथियों का स्राव निरंतर बाहर को आता रहता है। यह स्राव एक स्वच्छ गाढ़ा-सा तरल होता है जो हवा में खुला रहने पर कड़ा होकर महीन रेशम का रेशा बन जाता है। ककून बनाने वाला यह रेशा अविछिन्न होता है और इसकी लंबाई 700 से 1,100 मीटर तक की होती है। रेशम में दो प्रोटीन होते हैं - फ़िब्राइन (fibroin) तथा सेरिसिन (sericin)। रेशम का धागा प्रत्यास्थ (लचीला), प्रतिरोधी और ऊष्मा एवं विद्युत का कुचालक होता है। इसमें तनन शक्ति (tensile strength) भी अच्छी होती है जो इस्पात के जैसी होती है। ककून अंडाकार होते हैं। रेशम का रंग सफेद से लेकर सुंदर सुनहरे पीले तक अलग-अलग प्रकार का हो सकता है।

प्यूपन (Pupation)

लार्वा ककून के भीतर प्यूपन करता है। समूचा ककून एक अकेले उतारे जा सकने वाले धागे का बना होता है। प्यूपा अक्रिय अवस्था होती है जिसके भीतर उसमें कायांतरण होकर वयस्क शलभ बनता है। वयस्क शलभ ककून के भीतर से 10-12 दिन में बाहर निकलता है। बाहर आते समय

यह एक क्षारीय स्राव के द्वारा ककून के एक सिरे को नरम कर देता है जिससे वह रेशम के सूत्रों को तोड़ते हुए बाहर आ जाता है। ऐसे ककूनों को जिनमें से शलभ वेध कर बाहर आ गए होते हैं, वेधित ककून (pierced cocoons) कहते हैं। ऐसे वेधित ककून कम मूल्यवान होते हैं क्योंकि इनमें से सीधा धागा नहीं उतारा जा सकता।

व्यावर्त्तन (Reeling)

व्यावर्त्तन (धागे को चर्खी पर लपेटना) के लिए ककूनों का वयन आरंभ करने के 8 दिन बाद, उन्हें इकट्ठा किया जाता है और प्यूपा को भीतर ही या तो भाप से, या गर्म हवा से, या यहां तक कि धूमन से भी मारा जाता है और उसके बाद उन्हें सुखाया जाता है। तदुपरांत ककूनों को गर्म पानी में डुबो कर रखा जाता है, ऐसा करने से रेशा ढीला पड़ जाता है। चार या पांच ककूनों से रेशे लेकर उन्हें एक साथ मिलाते हुए ऐंठन देकर धागा बनाया जाता है जिसे चर्खी पर लपेटा जाता है।

रेशम का इतिहास

रेशम की उपयोगिता की खोज पहले-पहल चीन में सम्राज्ञी लोटज़ू ने लगभग 2700 ई. पूर्व में की थी। उसके बाद से रेशम के कीड़ों को चीन में ही पाला जाने लगा और अगले लगभग 2000 वर्षों तक रेशम-उत्पादन के क्षेत्र में इसी देश चीन का ही एकाधिकार बना रहा। सन् 550 ईसवी में दो यूरोपीय साधुओं ने रेशम के शलभ के अंडे चोरी-छिपे बाहर निकाले और इस प्रकार उनके माध्यम से यूरोप में रेशम-पालन आरंभ हुआ।

आज रेशम कीट पालन (Sericulture) अर्थात् रेशम का व्यापारिक उत्पादन अनेक देशों में एक महत्वपूर्ण उद्योग बन गया है, इन देशों में शामिल हैं — चीन, जापान, भारत, फ्रांस, स्पेन और इटली। भारत में शहतूत के रेशम का उत्पादन कर्नाटक, तमिलनाडु, असम, पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर तथा पंजाब में बड़ी मात्रा में हो रहा है।

गैर-शहतूत रेशम उद्योग

आपने ऊपर पढ़ा कि रेशम के कीड़े *बॉम्बिक्स मोराई* से किस प्रकार शहतूत का रेशम पैदा कराया जाता है। यह शलभ अब जंगली अवस्था में नहीं पाया जाता और इसे पूरी तरह पालतू बनाया जा चुका है। मगर कुछ अन्य शलभ अब भी जंगली अवस्था में पाए जाते हैं। इनका और इनके उत्पादों का नीचे वर्णन किया जा रहा है।

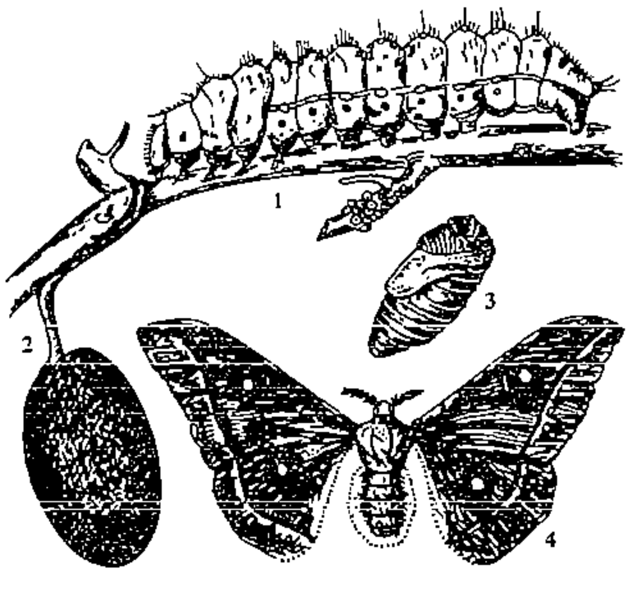

चित्र 17.6 : टसर रेशम का शलभ *ऐंथीरिया पाफिया* : वयस्क, अंडा, लार्वा, प्यूपा तथा ककून

1. टसर रेशम (Tasar silk)

टसर रेशम *ऐंथीरिया* (*Antheraea*) नामक शलभ की तीन स्पीशीज़ से बनता है। यह शलभ सैटर्निडी फ़ैमिली में आता है। इनमें सबसे अधिक सामान्यतः पायी जाने वाली स्पीशीज़ है *ए. पैफ़िया* (*A. paphia*) (चित्र 17.6)। इसके लार्वा बिहार, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के घने जंगलों में *टर्मिनैलिया, डालबर्जिया, शोरिया, जिज़िफ़स, फाइकस* जैसे वृक्षों पर आहार करते हैं। इसके ककूनों का रेशम भी व्यावर्त्तनीय है और भूरा अथवा तांबे के जैसे रंग का होता है।

2. मगा रेशम (Muga silk)

यह रेशम *ऐंथिरिया असमिया* (*Antheraea assamia*) (चित्र 17.7) का बनाया हुआ होता है जो भारत में केवल असम में ब्रह्मपुत्र की वादी में पाया जाता है।

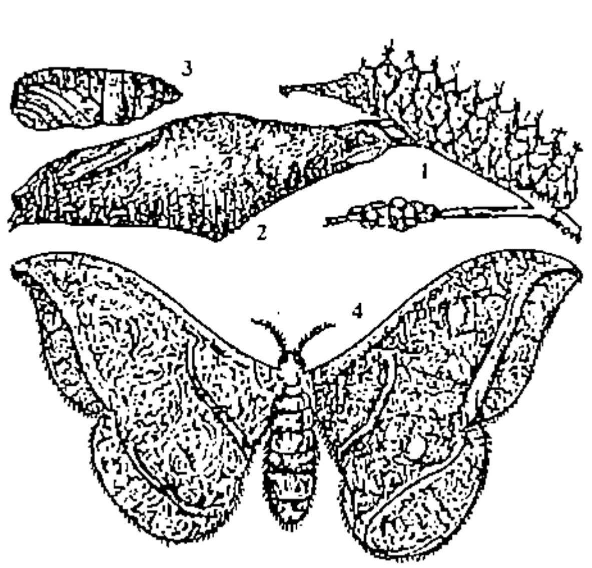

चित्र 17.7 : मगा रेशम कीट *ऐंथीरिया असमिया*। वयस्क, अंडे, ककून (पत्ती के भीतर बंद) तथा प्यूपा

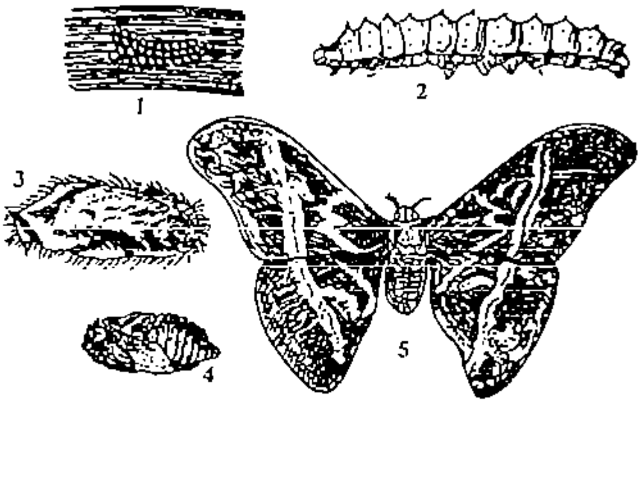

चित्र 17.8 : ऐरी रेशम शलभ *फ़ाइलोसैमिया रिसिनाई*, वयस्क, अंडे, लार्वा, ककून तथा प्यूपा

3. एरी रेशम (Eri silk)

एरी रेशम एरी रेशम-कीड़े *फ़ाइलोसैमिया रिसिनाई* (*Phylosamia ricini*) (चित्र 17.8) का उत्पाद है जो अरंडी के पौधे (*Ricinus communis*) पर पनपता है। यह शलभ भी सैटर्निडी फैमिली में ही आता है। इसे व्यापारिक तौर पर उड़ीसा तथा असम में पाला जाता है और इसे अरंडी की पत्तियों पर पाला जाता है। इसका रेशम सफेद अथवा चटकीले लाल रंग का होता है मगर यह उतना चमकदार नहीं होता जितना कि शहतूत का रेशम। इसका एकल लगातार धागा नहीं होता। इसलिए यह व्यावर्त्तनीय नहीं होता जितना कि शहतूत का रेशम। अतः इसके शलभों को ककून में से बाहर आने दिया जाता है।

17.5.2 लाख (Lac)

लाख एक सामान्य परिचित पदार्थ है जिसे तरह-तरह की पॉलिशें, ग्रामोफ़ोन रिकार्ड, चूड़ियों, मुद्रण रोशनाई, बिजली के विद्युतरोधियों तथा सील करने वाले लाख आदि बनाने के काम में लाया जाता है। इसे और भी अनेक कामों में इस्तेमाल किया जाता है। मगर आजकल ऊपर बताए गए बहुत से कामों में लाख की बजाए संश्लिष्ट पदार्थ काम में लाए जाने लगे हैं।

लाख एक सूक्ष्म कीट *लैकिफ़र लाका* (*Laccifer lacca*) का उत्पाद है जिसे आम भाषा में लक्ष-कीट (*lac insect*) कहते हैं। यह कीट अनेक जंगली पेड़ों पर रहता है जैसे कि *ब्यूटिया फ्रॉण्डोसा* (पलास), *ज़िज़िफ़स जुजुबा* (बेर) तथा *श्लाइचेरा त्रिजुगा* (कुसुम) पर। भारत के अलावा पाकिस्तान, मियानमार (पहले का बर्मा), मलेशिया, श्रीलंका, चीन, थाईलैंड तथा इंडोचाइना में भी लाख का कीट कुछ जंगली पेड़ों पर पाया जाता है।

जीवन इतिहास

लक्ष-कीट के सूक्ष्म बच्चे जिन्हें 'क्रॉलर (crawlers)' कहते हैं (यानी लार्वा) अंडों से बाहर आकर किसी उपयुक्त स्थान अथवा टहनी पर आ टिकते हैं। वहां वे अपनी शुंडिका अथवा चोंच को मांसल पादप ऊतक के भीतर घुसाते हैं और पादप रस चूसना आरंभ कर देते हैं। इस प्रकार वे पनपते जाते हैं और एक रेज़िनी पदार्थ स्रावित करते हैं जो उन्हें अंततः पूरी तरह ढक लेता है। कीट के आकार में वृद्धि होते जाने के साथ-साथ यह रेज़िनी पपड़ी भी आकार में बढ़ती जाती है। जैसे-जैसे हजारों क्रॉलर अगल-बगल आ जमते हैं और रेज़िनी पपड़ी उन सबको घेरती हुई बनती जाती है, वैसे-वैसे अंततः वह टहनी को पूरी तरह घेर लेती है। तीन महीने बाद अधिसंख्य क्रॉलर मादाओं में बदल जाते हैं जो इस रेज़िनी संहति से बाहर नहीं आ सकतीं। नर जो कि पंखयुक्त हो सकते हैं अथवा पंखविहीन भी, बाहर निकल आते हैं और मादाओं को सूक्ष्म छिद्रों में से निषेचित कर देते हैं। ये मादाएं सतह पर सूक्ष्म छिद्रों पर पहुंची होती हैं। मादाओं को निषेचित करने के उपरांत नर मर जाते हैं। अंडे मादा के शरीर के भीतर ही परिवर्धित होते हैं और उसके साथ-साथ मादा का आकार भी बढ़ता जाता और वह एक चटकीले लाल थैले-जैसी संरचना का रूप ले लेती है। यही लाल वर्णक लाख रंजक का स्रोत होता है। मादा अपने छोटे से कक्ष के भीतर ही मर जाती है, उसके भीतर के अंडों में से क्रॉलर निकलते हैं जो सूक्ष्म छिद्र में से बाहर आकर टहनी के निकटवर्ती खाली स्थानों पर जाकर जम जाते हैं और इस पूरे चक्र को फिर से दोहराते हैं (चित्र 17.9)।

17.5.3 मक्षिमोम (Beeswax)

मक्षिमोम वह पदार्थ है जिससे छत्ता बना होता है। यह पदार्थ कर्मी मक्खियों का स्राव होता है जो उनके उदर के नीचे की ओर खुलने वाली मोम ग्रंथियों से बाहर को बहता है और बाहर आकर पतले नाजुक शल्कों का रूप ले लेता है। कर्मी मक्खी इन मोम शल्कों को अपनी टांगों से हटाती है और उन्हें मुंह में पहुंचाती है जहां वह इसे जबड़ों से संभाल कर उसकी लुग्दी सी बनाकर उससे छत्ते के कंकत को बनाती जाती है। भारत में मक्षिमोम का मुख्य स्रोत जंगली मधुमक्खियां विशेषकर *एपिस डॉर्सेटा* होती है। मक्षिकमोम से अनेक प्रकार की वस्तुएं बनायी जाती हैं जैसे मोमबत्तियां, शेविंग क्रीम, सौंदर्य प्रसाधन (विविध क्रीम, लोशन, लिपिस्टिकें, आई-ब्रो

पेंसिलें, रूज़, पोमेड आदि), पौलिशें, फ़र्श-मोम, मॉडल, क्रेयॉन, आदि। मगर आजकल इनमें से बहुत सी चीजें, मक्षिकमोम की बजाए पैराफ़िन मोम से बनायी जाने लगी हैं।

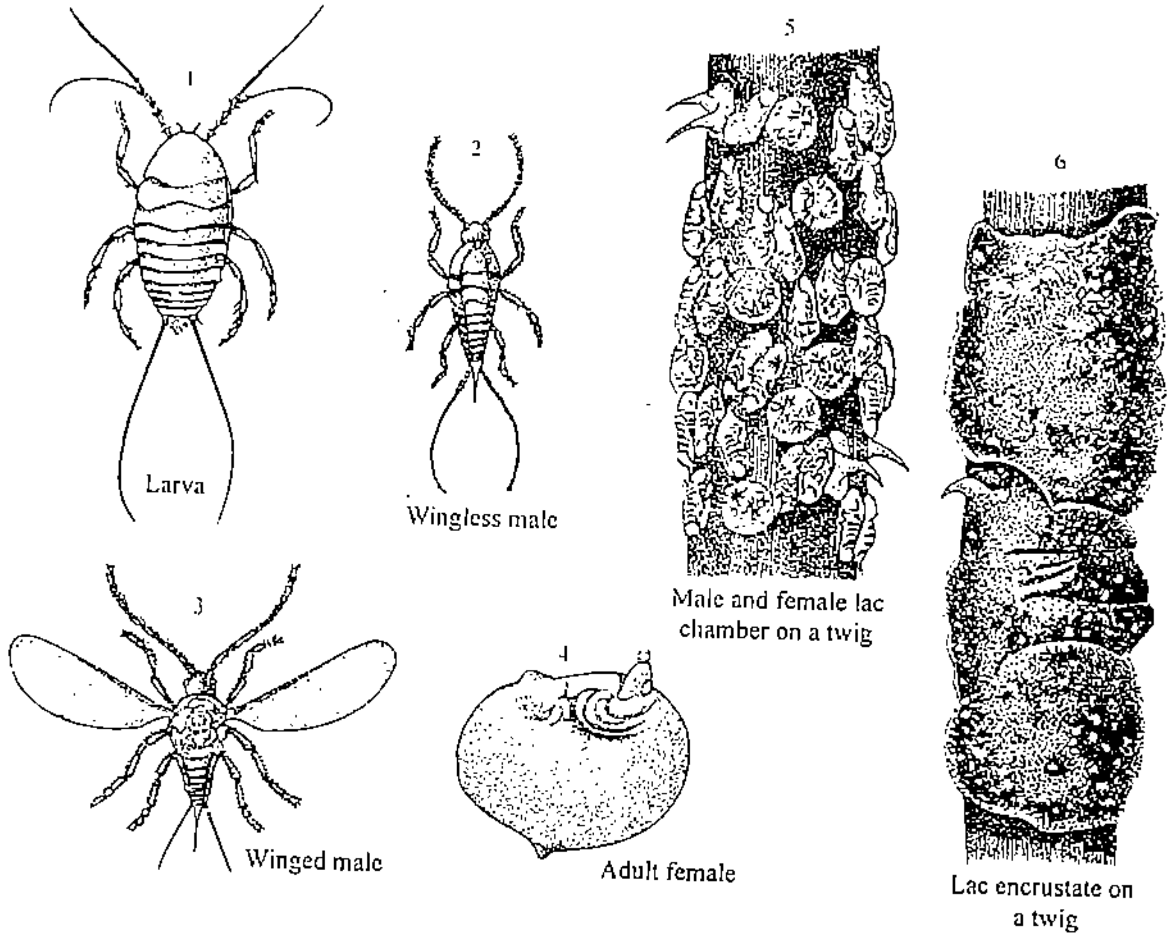

चित्र 17.9 : लक्ष-कीट की विविध अवस्थाएं

17.5.4 कवच, शंख आदि (Shells)

'कवच' एक आम शब्द है जो मुख्यतः दो फ़ाइलमों प्रोटोज़ोआ तथा मौलस्का की कड़ी कंकालीय संरचनाओं के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रोटोजोआ में फ़ोरैमिनिफ़ेरन प्राणियों में एक कड़ा कैल्सियमी कवच होता है तथा मौलस्का में या तो एककपाटी कवच हो सकता है (गैस्ट्रोपोडों तथा सेफ़ैलोपोडों में) या द्विकपाटी कवच हो सकता है (बाइवाल्वों में)। प्रोटोज़ोआ के कवच मुख्यतः चॉक (chalk) बनाने में योगदान देते हैं जैसा कि आप इसी पाठ्यक्रम की इकाई-2 में पढ़ चुके हैं।

चॉक (Chalk)

चॉक एक नरम, सफ़ेद, धूसर या भूरा सा चूना पत्थर होता है जो मुख्यतः *एल्फ़िडियम (पौलीस्टोमेला)* तथा *ग्लोबिजेराइल* जैसे फ़ोरैमिनीफ़ेरनों के कवचों की बनी होती है। समुद्र के फ़र्श का लगभग 30 से 40 प्रतिशत भाग इन्हीं मृतजीवों के 'कवचों' का बना होता है और इस समूचे पदार्थ को फ़ोरैमिनिफ़ेरन निपंक (formaniferan ooze) कहते हैं। कालांतर में इन नली निक्षेपों के उत्पाद चट्टानी चूना पत्थर तथा चॉक बन गए हैं। जब ये भूगर्भीय रूप में ऊपर को उठ जाते हैं तब इनसे चूना-पत्थर के पर्वत एवं चॉक पहाड़ियां बन जाती हैं। चॉक के अनेक उपयोग हैं।

मौलस्क कवच

मौलस्क कवचों के कुछ सुविदित व्यापारिक एवं औद्योगिक उपयोग इस प्रकार हैं: नानाविध

मौलस्कों के कवचों को बिन बुझा चूना बनाने में इस्तेमाल किया जाता है जिसे निर्माण कार्य में उपयोग में लाया जाता है। अलवणजलीय मसेलों (सीपियों) को खासतौर से बटन बनाने के लिए लगभग पूरे विश्व में काम में लाया जाता रहा है। ऐसे बटन चमकीले होते हैं और धोए जाने पर अप्रभावित रहते हैं। मगर आजकल बटन संश्लिष्ट पदार्थों से बनाए जाने लगे हैं।

कौड़ियां (Cowries)

कौड़ियां *सिप्रिया* (*Cypraea*) एवं उससे संबंधित स्पीशीज़ (सिप्रिएसी) के सुंदर कवच होती हैं। इनके कवचों को आभूषणों एवं अन्य सजावटी वस्तुओं को बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। कौड़ियों को कुछ खेलों में भी इस्तेमाल किया जाता है।

शंख (Conches)

शांख कुछ खास सर्पिल कवची समुद्री गैस्ट्रोपोडों (जैसे कि *स्ट्रॉम्बस* तथा *कैसिस* जीनसों) के कवच होते हैं। इन कवचों को मूर्त्ति कला में अथवा उन पर खुदाई करने के कामों में इस्तेमाल किया जाता रहा है। *ज़ैंकस पाइरम* (*Xaneus pyrum*) एक शंख है। इसे मंदिरों में बजाया जाता है। और भी अनेक सुंदर शंख हैं जिन्हें संग्रहकर्त्ता इकट्ठा किया करते हैं। कई गैस्ट्रोपौड जैसे कि *ट्राइटन* (*Triton*) तथा *टेरेब्रा* (*Terebra*) तथा एक सेफ़ेलोपॉड *नौटिलस* (*Nautilus*) खास तौर से बहुत ही आकर्षक होते हैं। *नौटिलस* का काट-दृश्य उसके बहुत ही सुंदर भीतरी दृश्य को उजागर कर देता है। इसके कवच की भीतरी सतह बहुत ही चिकनी होती है जिसमें मोती जैसी चमक होती है, इसीलिए इसे *मुक्ताभ नौटिलस* (*Pearly Nautilus*) भी कहा जाता है।

समुद्र-झाग (Cuttle bone)

यह कटलफ़िश *सीपिया* (Sepia) का कैल्सियमी भीतरी कंकाल होता है। कभी-कभी यह बहुत बड़े आकार का 20 सेंटीमीटर तक लंबा हो जाता है। समुद्र झाग बहुत हल्का होता है - इसमें भीतर सूक्ष्म वायु-गुहाएं बनी होती हैं। प्राणी के मरने के बाद जब उसका शरीर पूरी तरह विघटित हो चुका होता है तब उसकी यह स्वच्छ कंकाली संरचना 'समुद्र-झाग' समुद्र की सतह पर तैरने लग जाती हैं और इन्हें लहरों के थपेड़ों से समुद्र तट पर फेंक दिया जाता है। समुद्र-झाग को तरह-तरह के कामों में इस्तेमाल किया जाता है जैसे कि पौलिश करने के काम में और पालतू पक्षियों तथा इसे मुर्गे-मुर्गियों को आहार पूरक के रूप में खिलाया जाता है।

17.5.5 मोती

मोतियों को प्राचीन युगों से ही मूल्यवान वस्तु माना गया है। ये सुंदर एवं मूल्यवान वस्तुएं आभूषणों में प्रयोग की जाती रही हैं। मोती दो प्रकार के मौलस्कों द्वारा पैदा किए जाते हैं :

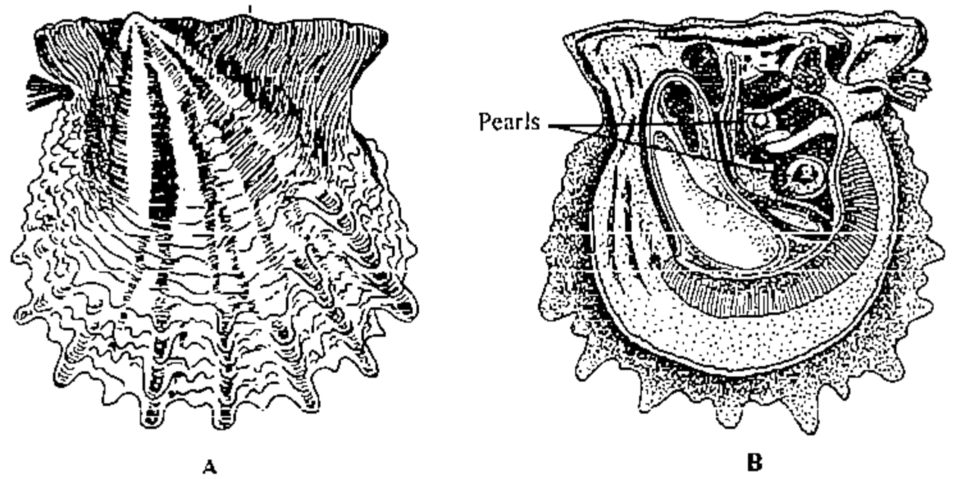

चित्र 17.10 : (a) मुक्ता सीपी, संपूर्ण, (b) भीतर खोलकर दिखाई गयी मुक्ता सीपी जिसमें मोती दिखायी पड़ रहे हैं

(i) मुक्ता सीपी (Pearl oyster) *पिंक्टाडा (Pinctada)* की अनेक स्पीशीज़ जिनमें दो स्पीशीज़ सबसे आम पायी जाती हैं - *पी. वल्गैरिस (P. vulgaris)* तथा *पी. मार्गेरेटिफ़ेरा (P. margaratifera)*। मुक्ता सीपियाँ (चित्र 17.10 क) सब की सब समुद्रों में ही पायी जाती हैं और इनसे बनने वाले प्राच्य मोती (oriental pearls) बहुत उत्तम माने जाते हैं।

(ii) अलवणजलीय मसेल (यूनियो, Unio तथा *ऐनोडॉण्टा*, Anodonta) : इन मसेलों के बनने वाले मोती घटिया माने जाते हैं।

मोती उत्पादन के स्थान

मोती उत्पादन के मुख्य स्थान हैं — फारस की खाड़ी, मनार की खाड़ी, पाक खाड़ी, कच्छ की खाड़ी, पनामा की खाड़ी तथा कैलिफ़ोर्निया की खाड़ी। मगर आजकल जापान अपनी मोती संवर्धन तकनीक के द्वारा विश्व का सबसे बड़ा मोती-उत्पादक देश बन गया है।

मोती-निर्माण

मोती निर्माण की विधि का अध्ययन करने के पूर्व आइए पहले मौलस्क के कवच की संरचना के बारे में जान लें। कवच का स्राव नीचे स्थित प्रावार (मेंटल, mantle) से होता है। मसेल अथवा सीपी के एक कवच-कपाट से लिए गए अनुप्रस्थ सेक्शन में कवच निर्माणकारी तीन परतें स्पष्ट नज़र आती हैं (चित्र 17.11)।

(i) **पेरिऑस्ट्रैकम (Periostracum):** सबसे बाहरी शृंगीय परत। यह कवच को विमिश्रण (घुल जाने) से बचाती है।

(ii) **प्रिज़्मी परत (Prismatic layer):** यह कैल्सियमी होती है जो कैल्शियम कार्बोनेट के सूक्ष्म क्रिस्टलों की बनी होती है, ये क्रिस्टल कॉन्किओलिन पदार्थ की पतली परतों के पृथक हुए होते हैं।

(iii) **मुक्ताभी परत (Nacreous layer):** कवच की चिकनी अंतःतम परत। इसे 'मुक्ता जननी' (mother of pearl) भी कहते हैं। यह कैल्सियम कार्बोनेट के क्रिस्टलों की बनी होती है जो प्रावार की सतह के समांतर जुड़े बने होते हैं। यही वह चमकदार चिकनी सतह होती है जो कवच कपाटों के भीतरी ओर पायी जाती है।

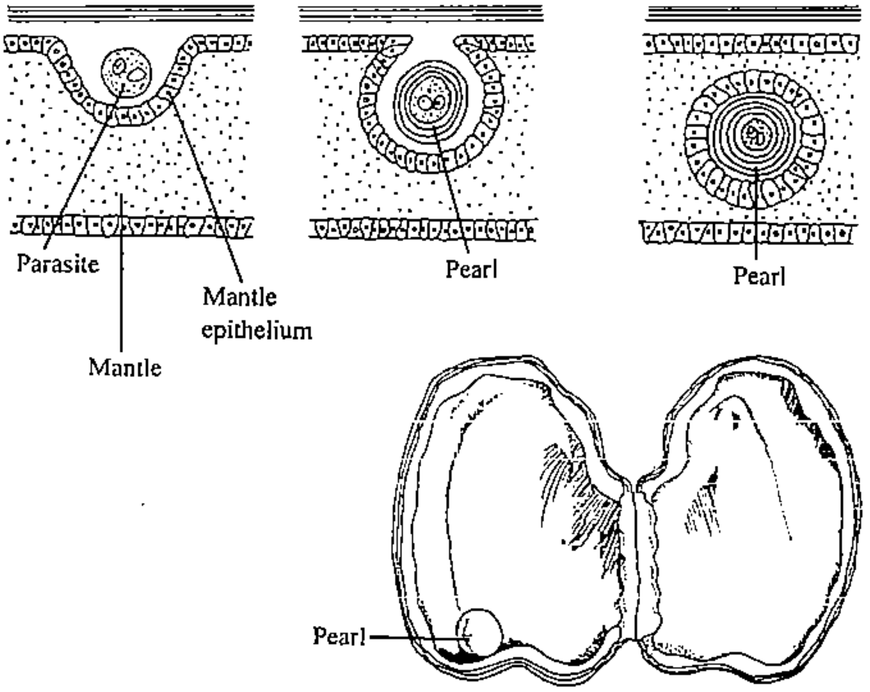

चित्र 17.11 : मोती का बनना। (A-C) एक परजीवी को लपेटते हुए एपिथीलियमी थैले का बनना। (D) कवच से जुड़ा एक मोती

प्रावार में भी तीन परतें पायी जाती हैं :

(i) **स्तम्भाकार एपिथीलियम (Columnar epithelium)** : यह कवच की मुक्ताभी परत से तुरंत लगी हुई होती है। इसी की कोशिकाओं से 'मुक्ता-जननी' का स्राव निकलता है।

(ii) **संयोजी ऊतक परत** : यह बीच की परत होती है।

(iii) **सिलियायिल एपिथीलियम** : यह वह परत है जो कवच की मुक्ताभ परत (मुक्ता-जननी) से दूरतम होती है और यह श्लेष्म का स्रवण करती है।

मोती तब बनता है तब कोई बाहरी सूक्ष्म वस्तु जैसे कि कोई बालू-कण अथवा परजीवी लार्वा प्रावार तथा कवच-कपट के बीच आकर टिक जाता है। इस बेचैनी पैदा करने वाली गैर वस्तु के प्रति सुरक्षाकारी उपाय के रूप में प्रावार की एपिथीलियम उस वस्तु को धीरे-धीरे लपेटती जाती है और इस तरह उसे एक एपिथीलियमी थैले में बंद कर लेती है। यह एपिथीलियम उस वस्तु के चारों ओर मुक्ताभ पदार्थ की संकेंद्रिक परतें, स्रावित करती जाती है। लगभग 3-4 वर्षों में पूरा मोती बन जाता है (चित्र 17.11)।

मुक्ता सीपियों को निकालने का काम गोताखोर करते हैं। उसके बाद उन्हें कुछ दिन के लिए खुली हवा में छोड़ दिया जाता है ताकि उनका मांस गल जाए। तदुपरांत उन्हें धो-धोकर उनमें से मोती निकाल लिए जाते हैं।

मोती संवर्धन अब एक नयी तकनीक है जिसे विशेषकर जापान में विकसित किया गया है और व्यापक रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस विधि में कृत्रिम वस्तुओं को मुक्ता सीपी के प्रावार तथा कवच के बीच में प्रवेश करा दिया जाताहै। इस 'अंतःवेशित' सीपी को उसके सामान्य आवास में जीने के लिए छोड़ दिया जाता है और समय के साथ उसके भीतर मोती बन जाता है।

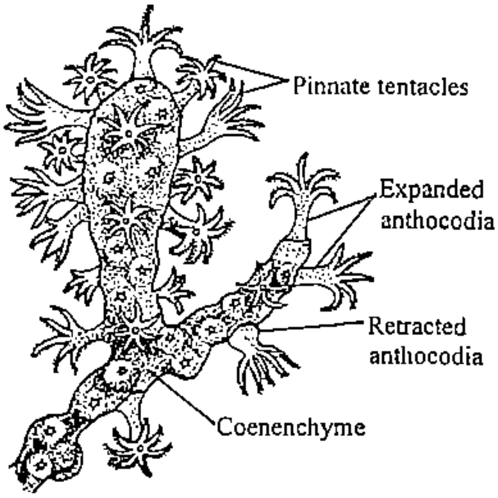

चित्र 17.12 : व्यापारिक लाल मूंगा *कोरैलियम रुब्रम*

17.5.6 मूल्यवान प्रवाल (मूंगे)

प्रवाल अथवा मूंगा एक सामान्य शब्द है जो कुछ खास नाइडेरियनों (ऐंथोज़ोअनों और विरलतः हाइड्रोज़ोअनों) द्वारा बनाए गए कैल्सियमी अथवा शृंगीय कंकाल निक्षेप होते हैं। इनमें से एक है लाल मूंगा जो बहुत मूल्यवान होता है और उसका व्यापार होता है। इससे आभूषण बनाए जाते हैं। यह मूंगा *कोरैलियम रुब्रम* (*Corallium rubrum*) का बनाया हुआ कंकाल होता है जो एक

शाखायुक्त कॉलोनी के रूप में पनपता है (चित्र 17.12)। यह व्यापारिक लाल मूंगा जापान के इर्द-गिर्द तथा भूमध्यसागर में प्राकृतिक रूप से पनपता रहता पाया जाता है।

अनेक प्रावालों (नाइडेरिया) की सुंदरता प्रंशसनीय होती है। कवक-मूंगा (fungus coral) (*फ़ंजिया, Fungia*) (चित्र 17.13) ऐसा ही एक उदाहरण है जो प्राकृतिक वस्तुओं के किसी भी संग्रह को सौंदर्य प्रदान करेगा।

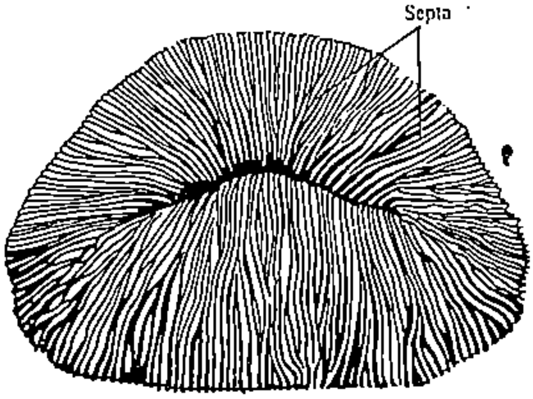

चित्र 17.13: *कवक प्रवाल फ़ंजिया*

17.5.7 स्पंज

स्पंजों का उपयोग प्राचीन काल से ही होता चला आया है। यूनानियों ने और बाद में विशेषकर मुगलों ने स्पंजों के सूखे रेशीय कंकालों को अनेक कामों में इस्तेमाल किया है जैसे नहाने, धोने, फ़र्श रगड़ने, तथा कवच आदि में पैडिंग के रूप में। रोमवासियों ने इन्हें पेंटिंग में इस्तेमाल किया है। इन्हें अस्पतालों, शिशु-गृहों आदि में भी इस्तेमाल किया जाता है। ये सभी वस्तुएं वास्तव में स्पंजों के कंकाल होती है। मगर आज संशिलष्ट 'स्पंजों' ने लगभग पूरी तरह प्राकृतिक स्पंजों का स्थान ले लिया है।

स्पंजों की जल-धारक क्षमता उन सूक्ष्म कोशिका अवकाशों के कारण होती है जो स्पंजिन रेशों के बीच परिसीमित हो जाते हैं।

व्यापारिक स्पंज केवल समुद्रों से ही प्राप्त किए जाते हैं। सामान्य स्नान-स्पंज *स्पंजिया* (*Spongia*) तथा *हिप्पोस्पंजिया* (*Hippospongia*) हैं। ये स्पंजिआइडी फ़ेमिली में आते हैं। इन्हें मेक्सिको की खाड़ी, कैरिबियन तथा भूमध्यसागर से प्राप्त किया जाता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

स्रोत प्राणी	पाए जाने का स्थान
यूस्पंजिया ऑफ़िसिनेलिस (*Euspongia officinalis*)	भूमध्यसागर तथा एड्रिऐटिक सागर
स्पंजिया ड्यूरा (*Spongia dura*)	बहामा द्वीपसमूह
हिप्पोस्पंजिया लैक्ने (*Hippospongia lachne*)	बहामा द्वीपसमूह

एकत्रित करने के बाद इनके सजीव ऊतकों को सड़ने-गलने दिया जाता है। उसके बाद इन्हें अच्छी तरह धोया जाता है, साफ़ किया जाता है, काटा-छांटा जाता है, ब्लीच किया जाता है तथा उनको श्रेणीबद्ध किया जाता है।

'वीनस फ़्लावर बास्केट' (Euplectella) (चित्र 17.14) एक कांचीय स्पंज होता है, इसका कंकाल एक सुंदर वस्तु होती है जिसे उपहार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

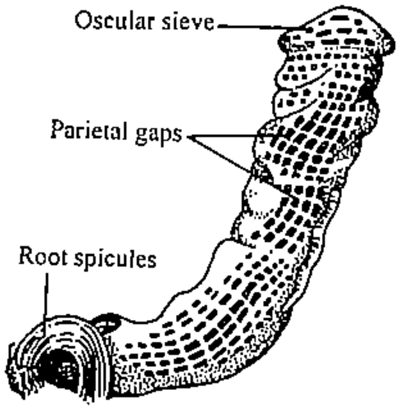

चित्र 17.14: वीनस फ़्लावर बास्केट *यूप्लेक्टेला ऐस्पजिल्लम*

17.5.8 रंजक तथा वर्णक

इस श्रेणी में सर्वाधिक जाने गए उदाहरण कीटों से प्राप्त होने वाले कुछ वर्णक हैं। एक बहुत ही आम वर्णक जो प्राचीन काल से इस्तेमाल किया जाता रहा है, वह है किरमिज़ी रंजक (*कोचीनियल रंजक, Cochineal dye*)। यह एक सुंदर लाल रंजक होता है जो कपड़ा उद्योग में बहुत इस्तेमाल होता है तथा इसे बहुत ज्यादा पसंद किया जाता है क्योंकि इसका रंग पक्का होता है। इसे और भी कई कामों में इस्तेमाल किया जाता है जैसे सौंदर्य प्रसाधनों में, पेय पदार्थों में रंग मिलाने तथा केक-पेस्ट्रियों की सजावट में। इसका स्रोत एक नन्हा कीट *डेक्टाइलोपियस कॉक्कस* (*Dactylopius coccus*) होता है जो मेक्सिको में *ओपंशिया कॉक्सीनेलिफ़ेरा* (*Opuntia coccinellifera*) पर रहता पाया जाता है। इसी का एक संबंधी *डेक्टिलोपियस टोमेंटोसस* (*Dactylopius tomentosus*) भारत में *ओपंशिया डिल्लेनिआई* (*Opuntia dillenii*) पर पाया जाता है। ये कीट लाख-कीटों के निकट संबंधी होते हैं। इन कीटों के सुखाए गए शरीरों को पीसकर रंजक प्राप्त किया जाता है।

कीट पिटिकाओं (insect galls) से प्राप्त होने वाले रंजक

पिटिकाएं पौधों में बनने वाली विचित्र वृद्धियां होती हैं, जो अनेक कीटों के कारण बनती हैं। ये कीट अपने अंडों को पादप ऊतकों में घुसा देते हैं तथा इन ऊतकों में पिटिकाएं बन जाती हैं जिनके भीतर परिवर्धनशील लार्वा अवस्थाएं होती हैं। कुछ पिटिकाओं से निकलने वाले रंजकों को बालों, ऊन तथा चमड़े को रंगने में इस्तेमाल किया जाता है तथा स्थायी रोशनाई बनाने में भी उपयोग किया जाता है। कुछ पिटिकाओं में टैनिक अम्ल (tannic acid) बहुत मात्रा में पाया जाता है।

17.6 अकशेरुकियों के औषध उपयोग

कुछ कशेरुकियों को औषधियों में उपयोग किया जाता है विशेषकर पारंपरिक प्राचीन चिकित्सा में।

जोंके (Leeches) आज भी रक्त खिंचवाने के काम में लायी जाती हैं। लोगों की धारणा है कि जोंक 'खराब खून' को चूस लेती है।

मधुमक्खियों को उत्तेजित कर्मी मक्खियों में से एक औषधि निकालने के काम में लाया जाता है जिसे डिफ्थीरिया के उपचार में इस्तेमाल किया जाता है। मधुमक्खी के विष को रुमेटिज़्म तथा गठिया के उपचार में इस्तेमाल किया जाता है।

'ऐलेन्टोइन (Allantoin)' नामक पदार्थ मैगट लार्वा से प्राप्त किया जाता है। कहते हैं कि गहरे जख्मों के उपचार में यह उपयोगी होता है।

स्पेनिश मक्खी लिट्टा (कैंथेरिस) विसिकैटीरिया [Lytta (Cantharis visicatoria)] तथा *माइलैब्रिस* (Mylabris) स्पीशीज़ *कैंथेरेडिन* के उत्तम स्रोत हैं जो एक औषधीय उत्पाद हैं।

बोध प्रश्न 3

(i) कॉलम I में दिए गए व्यापारिक उत्पादों को कॉलम II में दिए गए स्रोत प्राणियों से मिलाइए

कॉलम I (व्यापारिक उत्पाद)	कॉलम II (स्रोत प्राणी)
(क) शहतूत रेशम	(i) *लैकिफ़र लाका*
(ख) मोती	(ii) *ऐंथीरिया पाफ़िया*
(ग) लाख	(iii) *बॉम्बिक्स मोराई*
(घ) टसर रेशम	(iv) *कोरैलियम रुब्रम*
(ङ) शहद	(v) *पिंक्टाडा मार्गेरिटिफ़ेरा*
(च) व्यापारिक लाल मूंगा	(vi) *यूस्पंजिया*
(छ) स्नान स्पंज	(vii) *एपिस इंडिका*

(ii) व्यावर्तन के वास्ते रेशम प्राप्त करने के लिए प्यूपा को रेशम ककूनों के भीतर ही मारना क्यों आवश्यक है ?

....

....

(iii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(क) रेशम-कीड़ा मुख्यतः .... वृक्ष की पत्तियों का आहार करता है।

(ख) लाख कीट की वयस्क .... रेज़िनी कक्ष के भीतर से बाहर नहीं आ सकती और अंततः उसी के भीतर मर जाती है।

(ग) चॉक एक ऐसा पदार्थ है जो फ़ाइलम .... के कुछ खास सदस्यों द्वारा बनाया जाता है।

(घ) किरमिजी कीट .... पर रहता है।

(iv) किन्हीं चार मौलस्क कवचों के नाम तथा उनके मुख्य व्यापारिक अथवा औद्योगिक उपयोग बताइए।

....

....

(v) वह कौन सी चीज़ है जो मुक्ता सीपी को मोती बनाने के लिए प्रेरित करती है।

....

....

(vi) नीचे कुछ अक़शेरुकियों की सूची दी जा रही है :

मैगट लार्वा, मधुमक्खी, जोंक, स्पेनिश मक्खी

नीचे दिए जा रहे वाक्यों में रिक्त स्थानों में उचित कशेरुकी का नाम लिखिएः

(क) गहरे जख़्मों के इलाज के वास्ते ऐलेंटोइन ....से प्राप्त की जाती है।

(ख) कैंथेरिडिन .... से प्राप्त किया जाता है।

(ग) रुमैटिज़्म तथा गठिया के उपचार के वास्ते मधुमक्खी विष .... से प्राप्त किया जाता है।

(घ) .... को कभी-कभार खून खिंचवाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

(vii) निम्नलिखित फ़ाइलमों में एक-एक ऐसा उदाहरण दीजिए जो सजावट वस्तु के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

(क) मौलस्का

(ख) नाइडेरिया

17.7 कृषि में उपयोगी अकशेरुकी

जहां एक ओर अनेक अकशेरुकी फ़सलों के लिए हानिकर होते हैं जिनके विषय में आपने इकाई 16 में पहले ही पढ़ रखा है, वहीं यह भी सच है कि इनके अनेक वर्ग विलक्षण रूप में उपयोगी एवं लाभकारी भी हैं। इनकी उपयोगिता के तीन मुख्य क्षेत्र इस प्रकार हैं :

1. मृदा की उर्वरता बढ़ाने में
2. परागण संपन्न कराने में
3. हानिकर पीड़कों का नाश करने में

17.7.1 अकशेरुकी जो मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं

मृदा अर्थात् मिट्टी की भौतिक दशा को बेहतर बनाने तथा उसकी उर्वरता बढ़ाने में दो मुख्य योगदानकर्त्ता हैं। ये हैं :

(i) केंचुए (फ़ाइलम ऐनेलिडा)

(ii) नानाविध कीट (फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा)

केंचुए

केंचुओं को कृषकों का परम मित्र माना जाता है। ये मिट्टी को कई प्रकार से उन्नत करते हैं।

(i) जब ये मिट्टी में सुरंगें बनाते जाते हैं तो उससे मिट्टी के वायुवन में सहायता मिलती है और साथ ही सिंचाई तथा पानी की निकासी में भी सहायता मिलती है। इससे मिट्टी के मिश्रण और उसके नीचे-ऊपर मंथन में सहायता मिलती है। केंचुओं का कदाचित यही सबसे बड़ा उपयोग है।

(ii) अशन के दौरान केंचुए धरती की सतह पर पड़ी पत्तियों का विघटनशील पदार्थ और स्थूल मृदा कणों को अपने पाचन पथों में ले जाकर, उनको चूरा करके तथा उनमें से कार्बनिक पदार्थ का अवशोषण करने के उपरांत सूक्ष्म चूर्णित मृदा रचकों को अपनी विष्ठा के रूप में बाहर निकालते हैं। यह पदार्थ एक अति उत्तम कार्बनिक खाद होता है। इस प्रकार मिट्टी का चूर्णन हो जाता है तथा मिट्टी नीचे-ऊपर पलटती जाती है।

(iii) नेफ्रेडियमी उत्सर्जन मिट्टी में नाइट्रोजनी रचक भाग बढ़ा देता है।

(iv) मरने पर केंचुओं के विघटन होने वाले शरीर से मिट्टी में कार्बनिक अवशेष बढ़ जाते हैं।

कीट

अनेक कीट तथा उनकी लार्वा-अवस्थाएं स्वभावतः मिट्टी के भीतर ही रहती हैं। वे मिट्टी में सुरंगें बनाते हैं और मिट्टी को छिद्रिल बनाते है और इस तरह केंचुओं के कार्य में योगदान देते हैं। ऐसे कीटों के कुछ सामान्य उदाहरण हैं चींटियां, बीटल तथा ग्रब (बीटलों के लार्वा) तथा जंगली मधुमक्खियों की कुछ स्पीशीज़। अनेक कीट जैसे कि बीटल, चींटियां, दीमक और स्प्रिंग-टेल (Spring-tails, कोलेम्बोला प्राणी) गिरी हुई पत्तियों, टहनियों आदि को छोटे-छोटे अंशों में तोड़ते हैं, उन्हें खाते हैं तथा पोषक तत्त्वों को पुनः मिट्टी में लौटा देते हैं।

17.7.2 अकशेरुकी – परागणकर्त्ताओं के रूप में

बिना परागण के फल बहुत कम पनपते हैं और बीज शायद ही कभी बनते हों। साथ ही, एक ही किस्म के दो पौधों के बीच होने वाले पर-परागण से निश्चित लाभ प्राप्त होते हैं। भांति-भांति के प्राणी मकरंद तथा पराग की तलाश में एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाते हुए पर-परागण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस क्रिया-कलाप में कीटों का प्रमुख स्थान है, और कीटों की हज़ारों स्पीशीज़ हैं जो परागणकर्त्ताओं के रूप में यह भूमिका निभा रही हैं।

कीटों द्वारा परागित पौधे

कुछ मुख्य फसलें जो कीट-परागण से लाभान्वित होती हैं जिससे कृषि एवं बागवानी उपज में बढ़ोतरी होती है, इस प्रकार हैं : सेब, संतरे, बैंगन, नाशपातियां, नींबू, टमाटर, आड़ू, तरबूज-खरबूजे, सोयाबीन, आलूबुखारा, खीरा, सूरजमुखी, चेरी, सेम, कपास, स्ट्रॉबेरी, मटर, तम्बाकू, अंजीर तथा कुछ सजावटी फूल।

ऐसे बहुत से वन-वृक्ष एवं अन्य जंगली पौधे हैं जिनकी स्पीशीज़ की पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरंतरता बने रहना केवल कीटों के द्वारा ही संभव हो रहा है।

सामान्य कीट-परागणकारी

हज़ारों कीट परागणकारिओं में से कुछ इस प्रकार हैं :

मधुमक्खियां, जंगली मधुमक्खियां, गुंज मक्षिकाएं (bumble bees), ततैये, विविध मक्खियां, तितलियां, शलभ, कुछ बीटल तथा चींटियां। वास्तव में फल-उद्यानी, खास तौर से पश्चिमी देशों में, अपने बागों की उपज बढ़ाने के उद्देश्य से मधुमक्खी पालन किया करते हैं।

कीट-परागणकारियों तथा उनके द्वारा परागित फूलों में कुछ अनुकूलन

कीट-परागित फूल आमतौर से बड़े, अक्सर चटकीले रंगीन, खुशबूदार होते हैं तथा उनके भीतर मकरंद-कोश होते हैं। इनके पराग कण अपेक्षाकृत बड़े और चिपकदार होते हैं।

अधिसंख्य कीट परागणकर्त्ताओं में एक लंबी भीतर घुसने वाली जीभ (शुंडिका) होती है जिसे वे फूलों के गहरे मकरंद-कोश में घुसाते हैं। जब वे ऐसा कर रहे होते हैं तब उनका शरीर पराग-कोशों से रगड़ता जाता है जिससे उनके ऊपर पाऊडर जैसा पराग लग जाता है। जब यही कीट

उसी किस्म के एक अन्य फूल पर जाकर बैठता है तब यही पराग उसके वर्तिकाग्र से लगता-पोंछा जाता है जिससे परागण हो जाता है। फूलों पर मकरंद के लिए सबसे ज्यादा आने-जाने वाले कीटों में मधुमक्खियां खास हैं मगर साथ ही वे बहुत मात्रा में पराग भी इकट्ठा करती हैं जिसे वे अपने परिवर्धनशील लार्वों के लिए 'मक्षिकादन (bee bread)' के रूप में इस्तेमाल करते हैं। पराग एकत्रित करने के वास्ते मधुमक्खियों में उनकी पिछली टांगों की टिबिया पर एक विशेष 'पराग-करंड (pollen basket)' होता है (चित्र 17.15)। मधुमक्खियों का यही पराग-एकत्रीकरण स्वभाव उन्हें सक्षम परागणकारी बना देता है।

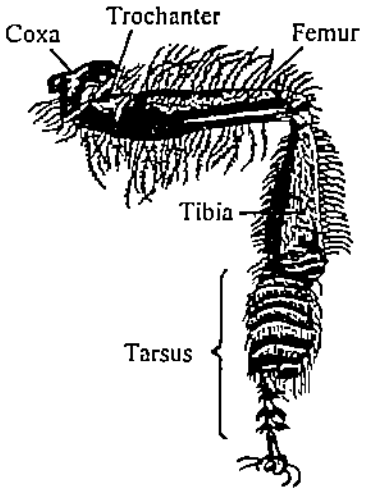

चित्र 17.15 : मधुमक्खी की पिछली टांग जिसमें टिबिया पर पराग-करंड तथा टार्सस पर मोम की परत बनी होती है

तथाकथित 'हॉक-मॉथ' फल-उद्यानों में उनके फूलों का मकरंद एक लंबी संकरी नलिका की तली में पड़ा होता है और वहां एक केवल 'लंबी जिह्वा वाले' हॉक-मॉथ ही अपनी पहुंच बना सकते हैं। मकरंद तक पहुंच पाने के लिए इस शलभ को अपनी प्रत्येक आंख को एक चिपकदार डिस्क के साथ लाना होता है जिसके साथ एक पराग-संहति संलग्न रहती है। उसके बाद शलभ वहां से उड़कर चला जाता है और उसकी आंखों पर एक-एक संहति (पौलीनिया, pollinia) चिपकी होती है। जब शलभ अपनी शुंडिका को एक अन्य फूल के अंदर डालता है तब पौलीनिया वर्तिकाग्र पर ठीक सही-सही चिपक-बैठ जाती हैं।

17.7.3 अकशेरुकी – पीड़कों के नाशकारियों के रूप में (जैविक नियंत्रण)

तीन अकशेरुकी समूह जो विविध पीड़कों के नाश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्रमशः प्रोटोज़ोआ, नीमैटोडा तथा आर्थ्रोपोडा में आते हैं।

प्रोटोज़ोआ

अनेक प्रोटोज़ोअन स्पीशीज़ उन कुछ नीमैटोडों तथा कीटों के परजीवी होते हैं जो कृषि फसलों को हानि पहुंचाया करते हैं। यह सब प्राकृतिक रूप में होता है और इनमें ऐसे व्यापक अनुप्रयोग की संभावना है जिसके द्वारा हानिकर नीमैटोडों का जैविक नियंत्रण (biological control) प्राप्त किया जा सकता है। *मैल्पीझअमीबा लोकस्टी* (*Malpighamoeba locustae*) नामक प्रोटोज़ोअन टिड्डों में रोगजनक होता है। *फैरिनोसिस्टिस ट्राइबोलियाई* (*Farinocystis tribolii*) भारत के अनाज बीटल *ट्राइबोलियम कैस्टेनियम* में संक्रमण करता है। अनेक प्रोटोज़ोअनों, जैसे कि *नोसीमा बॉम्बिसिस* (*Nosema bombycis*) तथा *नोसीमा लिमैंट्रीई* (*Nosema lymantriae*) का यूरोपियन मक्का छेदक (*ऑस्ट्रिनिया न्यूबिलैलिस, Ostrinia nubilalis*) पीड़क के विरुद्ध इस्तेमाल किया जाता है।

नीमैटोडा

अनेक नीमैटोड विशेषकर रैब्डिटिड्ज, और उनके साथ बैक्टीरिया मिलकर ऐसा रोग संमिश्र बनाते हैं जो अनेक कीट पीड़कों को प्रभावित करते हैं। एक नीमैटोड *नीओप्लेक्टाना कार्पोकैप्सी* (*Neoplectana carpocapsae*) एक बैक्टीरियम *एक्रोमोबैक्टर नीमैटोफ़िलस* (*Achromobacter nematophilus*) के साथ मिलकर एक संमिश्र बनाता है जिसे डी डी -136 कहते हैं। यह कॉड्लिंग मॉथ *साइडिया पामोनेल्ला* (*Cydia pomonella*) के केटरपिलरों पर असर डालता है।

आर्थ्रोपोडा

आर्थ्रोपोडा में परभक्षी तथा परजीवी दोनों ही हैं जो हानिकर पीड़कों को नष्ट करते हैं। परभक्षी अपने शिकार को पकड़ते हैं और उसे खा जाते हैं। बिच्छू, मकड़ियां, कांतर और बहुसंख्यक कीट उपयोगी परभक्षी हैं। कीट परभक्षियों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

ड्रैगन-फ़लाई (ओडोनेट)	इनके वयस्क कुछ पीड़कों को खाते हैं।
'एफिड-लायन' एफ़िडों	ये कैडिस-फ़लाई के लार्वा होते हैं जो (लाहियों) को खाते हैं।
लेडीबर्ड बीटल (कोलियोप्टेरन)	एफ़िडों को खाते हैं।
थल बीटल (कोलियोप्टेरन)	इनके वयस्क विविध पीड़कों को खाते हैं।
सिर्फ़िड फ़लाई लार्वे (डिप्टेरन)	मुख्यतः एफ़िडों को खाते हैं।

अनेक परजीवी कीट हैं जो कुछ कीट पीड़कों के शरीर के ऊपर अथवा शरीर के भीतर अंडे देते हैं (चित्र 17.16)। ये परजीवी कीट मुख्यतः आर्डर हाइमेनॉप्टेरा (फ़ैमिली इकन्यूमोनिडी, ब्रैकोनिडी, एनसिर्टिडी, यूलोफ़िडी, ऐफ़ेलिनिडी, टेरोमैलिडी तथा ट्राइकोग्रैमैटिडी) और डिप्टेरा (फ़ैमिली टैकिनिडी) में आते हैं। अंडों से लार्वा निकलकर परपोषी के ऊतकों को खाने लग जाते हैं और अंततः उसे नष्ट कर देते हैं। परपोषी कीट के मरने से पहले ही वयस्क परजीवी उसमें से बाहर निकल आता है तथा अन्य परपोषी कीटों को ढूंढ़ कर उन पर अंडे देना जारी रखता है। कुछ परजीवी अन्य कीटों के अंडों के भीतर अंडे देते हैं। *ट्राइकोग्रामा मिन्यूटम* (*Trichogramma minutum*) एक ऐसा ही अंडा परजीवी है (चित्र 17.17)।

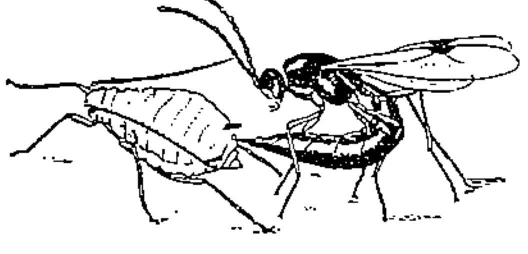

चित्र 17.16 : एक परजीवी चैल्सिड वर्र एक एफ़िड के भीतर अंडा प्रविष्ट करता हुआ

चित्र 17:17 : *ट्राइकोग्राम मिन्यूटम* एक शलभ के अंडे के भीतर अपना अंडा प्रवेश कराता हुआ

अनेक परभक्षियों तथा परजीवियों को वैज्ञानिक विधि से पीड़कों के नियंत्रण में काम में लाया जाता है। पीड़कों को नियंत्रण करने की इस विधि को जैविक नियंत्रण (biological control) कहते हैं। उदाहरण के लिए, कैलिफ़ोर्निया (संयुक्त राज्य अमेरिका) में 'कपासीय कुशन स्केल' *आइसीरिया पर्चेज़ाई* (*Icerya purchasi*) नामक पीड़क का नियंत्रण परभक्षी बीटल *रोडोलिया कार्डिनेलिस* (फ़ेमिली कॉक्सिनेलिडी का एक लेडी बर्ड बीटल) द्वारा किया जा चुका है। नारियल के काले शीर्ष केटरपिलर *ओपिसाइना ऐरीनोसेला* (*Opisina arenosella*) (दूसरा पुराना नाम *Nephantis serinopa*) का परजीवी *पेरेसिएरोला नेफैंटिडिस, ट्राइकोस्पाइलस प्यूपिवोरा* तथा *ब्रेकॉन ब्रेविकॉर्निस* के द्वारा नियंत्रण करने के प्रयास किए जा रहे हैं। जैविक नियंत्रण में काम में लाए जा रहे जीवों के ये कुछ थोड़े से ही उदाहरण हैं। यहां यह भी बताना जरूरी है कि कुछ कीट खरपतवारों को काबू में किए रहते हैं और इन्हें जैविक नियंत्रण साधनों के रूप में उपयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिए, ऑस्ट्रेलिया के बहुत बड़े भूभाग में फैले हुए नागफनी *ओपंशिया इनर्मिस* (*Opuntia inermis*) को एक कीट *कैक्टोब्लास्टिस केक्टोरम* (*Cactoblastis cactorum*) के आप्रवेश से समाप्त कर दिया गया है।

बोध प्रश्न 4

(i) कोई तीन प्रकार बताइए जिनके रूप में अकशेरुकी कृषि के लिए उपयोगी है।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

(ii) किन्हीं चार अकशेरुकियों के नाम बताइए जो मृदा की छिद्रिलता बढ़ाते हैं।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

(iii) केंचुए मिट्टी की उर्वरता को किस प्रकार बढ़ाते हैं ?

....

....

(iv) कॉलम-I में दिए गए शब्दों को कॉलम-II में दिए गए प्राणियों से मिलाइए।

कॉलम-I	**कॉलम-II**
(क) पराग करंड	(i) लेडीबर्ड बीटलों के लार्वा
(ख) एफ़िड का परभक्षी	(ii) *ट्राइकोग्रामा मिन्यूटम*
(ग) परजीवी कीट	(iii) मधुमक्खी

17.8 आहार शृंखलाओं के घटकों एवं अपमार्जकों के रूप में अकशेरुकी

अकशेरुकों की विशाल अधिसंख्या आहार-शृंखलाओं की अभिन्न भाग होती है। ऐसी अनेक शृंखलाएं अंततः ऐसे जीव बनाती हैं जो या तो मानव आहार के रूप में इस्तेमाल होती हैं या किसी और रूप में मानव के काम आते हैं। छोटी मछलियां सूक्ष्म जलीय जीवों को खाती हैं

जिन्हें सामूहिक रूप में प्लवक (plankton) कहते हैं (यह शब्द प्लवक उन तमाम अत्यंत छोटे जीवों के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो निष्क्रिय रूप में तैरते रहते हैं अथवा बहुत मामूली-सा तैरते हैं)। बड़ी मछलियां जो छोटी मछलियों को खाती हैं मूलतः इसी प्लवक जीवन पर निर्भर होती हैं क्योंकि स्वयं छोटी मछलियां इसी प्लवक को खाती हैं। इस तरीके से महासागर के अधिकतर प्लवक जीव आहार-शृंखलाओं के उपयोगी घटक होते हैं जो अंततः महासागर में तथा थलीय जल आगारों में मछलियों की समष्टि का आकार बढ़ाते जाते हैं।

अपमार्जक (Scavengers)

कोई भी जीव जो मृत पदार्थ पर आहार करता है इसी श्रेणी के अंतर्गत आता है। लगभग प्रत्येक फ़ाइलम में अपमार्जकों के उदाहरण पाए जाते हैं। विशेषकर आर्थ्रोपोडा में इनके बहुसंख्यक उदाहरण पाए जाते हैं, जैसे कांतर, गिजाइयां, अनेक क्रस्टेशियन, सामान्य मक्खियां और इनके अलावा अन्य बहुत से कीट भी अपमार्जक होते हैं। चींटियां, गुबरीले, मांस पर भिनभिनाने वाली मक्खियां आदि इन्हीं के कुछ उदाहरण हैं।

बोध प्रश्न 5

(i) बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

(क) सभी आहार-शृंखलाएं मानवों के लिए लाभकारी होती हैं। ☐

(ख) समुद्री प्राणीप्लवक में अधिकतर कुछ सिलिएट तथा फ्लैजेलेट और बहुत से छोटे क्रस्टेशियन आते हैं। ☐

(ग) अकशेरुकी प्राणी आहार-शृंखलाओं के रचक होते हैं जो अंततः मछलियों में समाप्त होती हैं। ☐

(ii) 'कांतरों तथा चींटियों को अपमार्जक माना जा सकता है'। इस कथन को आप किस प्रकार न्यायोचित्त कहेंगे ? ☐

17.9 सारांश

- बहुत से अकशेरुकी हैं जो नानाविध रूप में मानव के लिए हितकारी हैं। कुछ को आहार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, कुछ हमारे लिए आहार इकट्ठा करते हैं, कुछ औद्योगिक उत्पाद प्रदान करते हैं, और कुछ की भूमिका आहार-शृंखलाओं में होती है।

- सर्वाधिक सामान्य खाद्यशील अकशेरुकों में झींगें, श्रिम्प, लॉबस्टर, केकड़े, आदि तथा कुछ मौलस्क जैसे ऑयस्टर (सीपियां) तथा अलवणजलीय मसेल। शहद एक मुख्य खाद्य है जो मानव द्वारा इस्तेनाल किया जाने वाला ऐसा पदार्थ है जिसे एक अकशेरुकी इकट्ठा करता है। शहद मुख्यतः एक पूर्वचालित मोनोसैकेराइड है जिसके साथ-साथ बहुत से विटामिन भी होते हैं। भारत में शहद प्राप्त करने के लिए मधुमक्खी पालन में भारतीय मधुमक्खी *एपिस इंडिका* इस्तेमाल की जाती है। *एपिस मेलिफ़ेरा* यूरोपीय स्पीशीज़ है जो भारत में भी लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इससे पैदा होने वाला शहद ज्यादा मात्रा में होता है। रेशम, रेशम के कीड़े की लार-ग्रंथियों का स्राव होता है जिसके द्वारा वह अपना ककून बुनता है। भारत में चार प्रकार के सामान्य रेशम शलभ पाए जाते हैं - शहतूत का रेशम शलभ *बॉम्बिक्स मोराई,* मगा रेशम बनाने वाला *ऐंथीरिया असमिया,* टसर रेशम का स्रोत *ऐंथीरिया पाफ़िया* तथा एरी रेशम बनाने वाला *फ़ाइलोसेमिया रिसिनाई।*

- भारत सर्वाधिक लाख-उत्पादक देश है। नन्हा कीट *लैकिफ़र लाका* अनेक वन वृक्षों पर पनपता है। सूक्ष्माकार नर और मादा लाख कीट भारी संख्या में टहनियों पर जमते हैं और रेज़िनी सुरक्षाकारी कोष्ठ बनाते हैं जिसकी एक पपड़ी-सी बन जाती है और यही पदार्थ लाख होता है। लाख का अनेक उद्योगों में भारी उपयोग होता है। अकशेरुकियों के कुछ उपयोगी देह-स्रावों हैं : मक्षिमोम एवं नानाविध सुरक्षाकारी मौलस्क कवच। चॉक फ़ोरेमिनिफ़ेरन प्रोटोजोअनों का कवच पदार्थ होता है। मौलस्का के कवच अनेक कामों में आते हैं जैसे कि बटन बनाना, सुंदर सजावटी वस्तुएं बनाना आदि। मोती एक सुंदर वस्तु होती हैं और इसे आभूषणों में उपयोग किया जाता है। मोती मुक्ता सीपियों तथा अलवणजलीय क्लैमों में उस समय बनते हैं, जब कोई परजीवी लार्वा-जैसी बाह्य वस्तु प्रावार और कवच के बीच में आ जाती है, तो उससे सुरक्षा उपाय के रूप में उसके चारों ओर मोती-पदार्थ की परतें चढ़ा दी जाती हैं। मोती संवर्धन तथा मोती-निकालना अब सुस्थापित उद्योग बन चुके हैं।

- कुछ मूंगे (प्रावाल) जैसे कि व्यापारिक लाल मूंगा आभूषण बनाने के महत्त्व का है। कुछ अन्य मूंगें सजावट के काम में लाए जाते हैं। स्पंजों की अनेक स्पीशीज़ नहाने, धोने तथा पैडिंग के काम में आती हैं।

- एक गहरे लाल रंग का रंजक कोचीनियल कीट *डैक्टिलोपियस केक्टस* जो नागफनी पर पनपता है, के मृत शरीरों को पीस कर प्राप्त किया जाता है।

- अकशेरुकियों के औषध प्रयोग अधिकतर पारंपरिक हैं। जोंक, मधुमक्खी तथा स्पेनिश-मक्खी कुछ खास रोगों में इस्तेमाल होते आए हैं। अनेक अकशेरुकी पर्यावरण को सुंदरता प्रदान करते हैं तथा सजावट के काम आते हैं।

- केंचुए तथा अनेक कीट मिट्टी के भीतर सुरंगें बनाने तथा अपनी अन्य क्रियाओं से मिट्टी को बेहतर बना देते हैं। मधुमक्खियों तथा अन्य कीटों के द्वारा फ़सली पौधों के परागण से फल पकते हैं और इस प्रकार वे मानव कल्याण में योगदान देते हैं। इसी प्रकार अनेक आर्थोपोड कृषि पीड़कों को उनके परभक्षी अथवा परजीवी बनकर नष्ट करते हैं और उनकी संख्या को बढ़ने नहीं देते।

- कुछ कीट खरपतवारों को खाते हैं और उन्हें नियंत्रित किए रहते हैं। अनेकानेक अकशेरुकी आहार-शृंखलाओं में मध्यवर्ती कड़ियां होते हैं और अंततः मानव के लिए लाभकारी होते हैं। ऐसे अकशेरुकी भी खासी संख्या में पाए जाते हैं जो महत्त्वपूर्ण अपमार्जक होते हैं और पर्यावरण को स्वच्छ किए रहते हैं।

17.10 अंत में कुछ प्रश्न

1. मानव के लिए उपयोगिता की दृष्टि से अकशेरुकियों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कीजिए और प्रत्येक श्रेणी का एक-एक उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

2. अकशेरुकी किस प्रकार मानव आहार के रूप में काम आते हैं, वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

3. मधुमक्खियां मानव के लिए किस प्रकार उपयोगी हैं ?

....

....

....

....

....

4. रेशम की किस्मों का वर्णन कीजिए तथा बताइए कि रेशम किस प्रकार प्राप्त किया जाता है।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5. लाख क्या होता है ? किन्हीं तीन वृक्षों के नाम बताइए जिन पर लाख आमतौर से पैदा होता है।

....

....

....

6. मोती किस प्रकार बनता है ?

....

....

....

....

....

17.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1 (i) आर्थ्रोपोडा, मौलस्का

(ii) झींगे (जैसे *पीनियस*), श्रिम्प (जैसे *क्रैंगॉन*), लॉब्स्टर (जैसे *होमैरस*), केकड़े (जैसे *पॉर्टुनस*)।

(iii) (क) सही, (ख) सही, (ग) गलत, (घ) गलत, (ड.) सही (च) गलत

2 (i) (क) आहार/पोषक के रूप में इस्तेमाल होता है।

(ख) औषधियों में इस्तेमाल किया जाता है।

(ii) (क) फ़्रक्टोज़

(ख) जल

(ग) सुक्रोज़

(iii) (क) *एपिस इंडिका*

(ख) *एपिस डॉर्सेटा*

(iv) लार में इनवर्टेज़ होता है जो मकरंद के सुक्रोज़ को ग्लूकोज़ तथा फ़्रक्टोज़ में बदल देता है।

(v) तमिलनाडु, कर्नाटक तथा जम्मू-कश्मीर

3 (i) (क) iii, (ख) v, (ग) i, (घ) ii, (ड.) vii, (च) iv, (छ) vi

(ii) यदि प्यूपा को वयस्क बनने दिया जाता है, तब वह ककून को काटकर बाहर आता है, जिससे रेशम का लगातार जारी रेशा प्राप्त नहीं हो सकता।

(iii) (क) अरंडी, (ख) मादा, (ग) प्रोटोज़ोआ, (घ) नागफनी/*ओपंशिया कॉक्सिनेलिफ़ेरा*

(iv) अलवण जल मसेल - बटन, कटलफ़िश -समुद्र झाग; समुद्री गैस्ट्रोपोड/*स्ट्रॉम्बस* - शंख, *सिप्रिया* - कौड़ियां, सीपी-बिना बुझा चूना जो एक इमारती सामग्री है।

(v) कोई भी गैर वस्तु जैसे कि नन्हा परजीवी जो कवच तथा प्रावार के बीच आ बैठता है।

(vi) (क) मैगट लार्वा, (ख) स्पेनिश फ़्लाई, (ग) मधुमक्खी, (घ) जोंक

(vii) (क) *नौटिलस,* (ख) कवच प्रावाल *(फ़ंजियों)*

4 (i) (क) मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं/मिट्टी को मुलायम कर देते हैं।

(ख) परागण करते हैं।

(ग) हानिकर पीड़कों का नाश करते हैं।

(ii) (क) केंचुए, (ख) चींटियां, (ग) ग्रब, (घ) दीमक

(iii) (क) मिट्टी के भीतर बिल बनाते हैं जिससे वह रंध्रित हो जाती है।

(ख) नाइट्रोजनी अपशिष्ट उत्सर्जित करते हैं जो बाहर निकाल दिए जाते हैं और विष्ठा के रूप में मिट्टी में मिल जाते हैं।

(ग) मिट्टी की परतें नीचे से ऊपर आ जाती हैं।

(घ) मरने पर उनके जैविक अवशेष विघटित होते हैं।

(iv) (क) iii (ख) i, (ग) ii

5 (1) (i) गलत, (ii) सही (iii) गलत

(2) दोनों ही मृतजीवों को खाते हैं और इस प्रकार पर्यावरण को स्वच्छ करते हैं।

अंत में कुछ प्रश्न

1.

(i)	आहार की तरह उपयोग	झींगा
(ii)	आहार संग्रहकर्त्ता	मधुमक्खी
(iii)	औद्योगिक उत्पादों का स्रवण	रेशम का कीड़ा
(iv)	औषधियां प्रदानकर्त्ता	ऐलेंटोइन
(v)	सजावट	प्रावाल
(vi)	कृषि को सहारा	मधुमक्खी
(vii)	आहार-शृंखला के भाग	क्रस्टेशियन लार्वा
(viii)	पर्यावरण स्वच्छ करते हैं	गुबरीले

2. प्रधानतः दो अकशेरुकी फाइलम - आर्थोपोडा और मौलस्क मानवों के लिए आहार प्रदान करते हैं। आर्थोपोडों में झींगे (*पीनियस, मेटापीनियस, मैक्रोब्रेकियम* की अनेक स्पीशीज़), श्रिम्प जैसे कि *क्रैंगॉन, लॉब्स्टर* तथा कई केकड़े स्वादिष्ट व्यंजन माने जाते हैं। मौलस्कों में खाद्यशील सीपियां और मसेल मूल्यवान खाद्य पदार्थ माने जाते हैं।

3. मधुमक्खियां फूलों का परागण करती हैं जिससे कृषि एवं बागवानी फ़सलों से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। मधुमक्खियां शहद प्रदान करती हैं जो ऊर्जा एवं पोषक तत्त्वों का एक उत्तम स्रोत है। शहद औषधियों में इस्तेमाल होता है। मधुमक्खियाँ मोम का स्राव निकालती हैं जो छत्ता बनाने के काम आता है। मक्षिमोम के अनेक औद्योगिक उपयोग हैं।

4. रेशम की चार मुख्य किस्में पायी जाती हैं – शहतूत रेशम जो *बॉम्बिकस मोराई* से मिलता है, टसर रेशम जो *ऐंथीरिया पाफिया* से मिलता है, मगा रेशम जो *ऐंथीरिया असमिया* से मिलता है, तथा एरी रेशम जो *फ़ाइलोसेमिया रिसिनाई* से मिलता है। रेशम अंतिम लार्वा अवस्था से निकला एक स्राव होता है तथा यह लार ग्रंथियों से निकलता है। यह एक लगातार जारी रहता हुआ रेशा होता है जिसे लार्वा अपना ककून बुनने में काम में लाता है। सामान्यतः वयस्क शलभ ककून में एक छेद करके उसमें से बाहर आता है। परंतु औद्योगिक उद्देश्य के लिए ककूनों को गर्म किया जाता है ताकि शलभ भीतर ही मर जाएं और व्यावर्तन के लिए रेशम का एक लगातार रेशा प्राप्त किया जा सके।

5. लाख *लैकिफ़र लाका* नामक कीट का रेज़िनी स्राव होता है। लाख आमतौर से 'पलास', 'बेर' और 'कुसुम' के वृक्षों पर लगता है।

6. मोतियों का निर्माण मुक्ता सीपी तथा कुछ अलवणजलीय मसेलों के भीतर होता है, और ऐसा तब होता है जब कोई वस्तु जैसे कि परजीवी अथवा कोई सूक्ष्म अक्रिय पदार्थ कवच के कपाट एवं प्रावार के बीच स्थापित हो जाता है। प्रावार की एपिथीलियम वस्तु को घेर लेती है और उसके चारों ओर मोती-पदार्थ का स्रावण करने लग जाती है तथा यह स्त्रवण परतों में जमता जाता है जिससे एक गोल मोती बन जाता है।